

उपनिषत्सङ्ग्रहः

0
5-4



उपनिषत्संग्रहः



UPANISAT-SAMGRAHAH

Containing 188 Upaniṣads

Edited with Sanskrit Introduction by
Prof. J. L. SHASTRI

MOTILAL BANARSIDASS
Delhi :: Varanasi :: Patna

उपनिषत्संग्रहः

प्रथमे भागे ईशादिर्विशोत्तरशतोपनिषदः
द्वितीये च योगाद्यष्टोत्तरषष्ट्युपनिषदः

स चायं भागद्वयोपेतः
पण्डितजगदीशशास्त्रिणा



विषयानुक्रमण्या लघुभूमिकया च समलङ्कृत्य सम्पादितः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

© मोती लाल बनारसीदास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७

शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१

अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४

६ अपर स्वामी कोइल स्ट्रीट, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

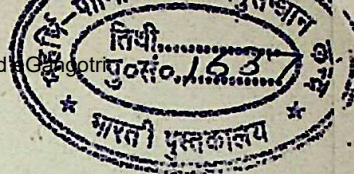
प्रथम संस्करण : दिल्ली, १९७०

पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८०, १९८४

मूल्य : ₹० १५० (सजिल्द)

₹० १२० (अजिल्द)

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७
द्वारा प्रकाशित तथा श्री शान्तिलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५,
फेज-१, नारायणा, नई दिल्ली २८ द्वारा मुद्रित ।



उपोद्घातः

अपरिमेयजननसंसृतस्य पुनरावर्तनमनिच्छतः प्राणिनो धर्मं एव परमालम्बनम् । को धर्मः, कथं वा तत्र प्रवृत्तिरिति जिज्ञासायां वेद एव नः शरणम् 'वेदो हि मूलं धर्मस्य' इत्युक्तेः । को नाम वेद इत्याकाङ्क्षायां 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इत्याहुराचार्याः । तत्र मन्त्रात्मको वेदश्चतसृषु संहितासु विभक्तः ऋग्यजुस्सामाथर्वनामभिर्व्यपदिश्यते ।

मन्त्रात्मकस्य वेदस्य पुरा ऋषिसम्प्रदायक्रमेण विनियोगादिभेदाद् बह्व्यः शाखा अभूवन् । परमद्यत्वे न तास्सर्वाः समुपलभ्यन्ते । ब्राह्मणात्मकस्य वेदस्यापि काश्चिदेव शाखा अवशिष्टाः । तत्र कयोश्चिदेव लुप्तालुप्तब्राह्मणशाखयोरारण्यकोपनिषदः प्राप्यन्ते ।

मन्त्रात्मके वेदे कर्मणोऽङ्गित्वमङ्गीकृतम्, यज्ञाङ्गभूतानां देवाहुतिमन्त्राणां निसर्गत एव कर्मप्रधानत्वात् । ब्राह्मणग्रन्थेष्वपि यागादिक्रियाप्रसङ्गेन कर्मण एव मुख्यत्वं व्याख्यातम् । इयमेव परम्परा परवर्तिनि श्रौतगृह्यसामान्ताये दृश्यते । परं नायं पन्था मुमुक्षूणां मुक्तये साधनीयान्, स च 'स्वर्गकामो यजेत' इत्युक्त्या 'स्वर्गार्थिनां न तु मोक्षाय, 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' इति पुण्यक्षये पुनरावृत्तिदर्शनात् ।

निवृत्तिपथानुयायिनां प्राणिनां कृते तु कश्चित्कर्मव्यतिरिक्तो भिन्न एव मार्ग आरण्यकेषु उपनिषत्सु च प्रतिपादितः । आरण्यकोपनिषत्सामान्तायो ब्राह्मणात्मकस्य वेदस्यैवाङ्गम् अतस्तत्प्रामाण्यं स्वतःसिद्धम् । यथा चेष्टप्रतिपादकं यागादिकं कर्म ब्राह्मणेषु विधीयते तथैव बन्धमोक्षादिकं संसृतिनिवर्तकं ज्ञानं ब्राह्मणाङ्गभूतेषु आरण्यकोपनिषद्ग्रन्थेषूपदिश्यते, नहि ज्ञानादृते मुक्तिरिति श्रवणात् ।

तज्ज्ञानमादौ साक्षात्कृतधर्माणामृषीणामाश्रमेषु अपरिग्रहाणां मुमुक्षूणां कृते समुद्गतम् । गृहस्थेषु कर्मविरतिर्मा भूदिति धिया महर्षिभिरस्य प्रसृतिररण्येष्वेव

व्यधीयत । परं बृहदारण्यकोपनिषदि गार्गीयाज्ञवल्क्यसंवादेऽस्य चर्चा जनकराज-
सभायामपि श्रूयते ।

उपनिषत्प्रतिपादितोऽयं मार्गः संसृतिशीलानां प्राणिनां मोहावरणनिवृत्तये
कर्मसाधनपेक्षते, शुद्धबुद्धसिद्धस्यैव प्राणिनो मोक्षयोग्यत्वात्, अनेकजन्म-
संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् इति भगवद्वचनाच्च । मनसो निर्वासनीभावाय
प्रथम क्रियायोगनाश्रितानामेव मुमुक्षूणां कालक्रमेण मोक्षो नान्येषाम् । एवञ्च
क्रियानिरपेक्षा मुक्तिरशक्यैवेति गम्यते ।

‘अहं ब्रह्मास्मि’, ‘तत्त्वमसि’, ‘अयमात्मा ब्रह्म’ इत्यादिभिः श्रुतिवाक्यैर्ज्ञातृ-
ज्ञेययोरेकत्ववाच्यं ज्ञानस्य साधनत्वे प्रमाणिते तज्ज्ञानप्रतिपादकस्य शास्त्रस्य
चरितार्थता स्पष्टैव । यथैकस्याकाशस्य घटाद्युपहितस्य घटाकाशादिभेदाः,
निष्पाधिकत्वे च आकाशमात्रस्थितिः तथैवात्मनो देहाद्युपाधिभेदान्नात्त्वप्रतीतिः,
निष्पाधिकत्वे च एकत्वबोधः । एवमेव मायोपहितत्वे प्रत्यक्चैतन्यस्य विशुद्ध-
चैतन्यात्तृयक् प्रतीतिः, अनुपहितत्वे तु एकत्वमेव । सति च एकत्वबोधे को
द्रष्टा, किं दृश्यम्, को ज्ञाता, किं ज्ञेयम् ? ऐकात्म्यमुद्भाव्य व्युपरते ज्ञाने,
विलीने द्रष्टृदृश्यभावे बन्धमोक्षभावी निवर्तते, चैतन्यमात्रमवतिष्ठते ।

एतज्ज्ञानात्मनो भागद्वयोपेत उपनिषत्सङ्ग्रहः श्रद्धावतां जिज्ञासूनां साधकानां
भूयसे कश्याणाय प्रभविष्यतीत्याशास्महे ।



विषयानुक्रमणी

प्रथमो भागः

| | | | |
|---------------------------|-----|------------------------------|-----|
| १. ईशावास्योपनिषत् | १ | २२. अमृतनादोपनिषत् | १६९ |
| २. केनोपनिषत् | २ | २३. अथर्वशिरउपनिषत् | १७० |
| ३. कठोपनिषत् | ४ | २४. अथर्वशिखोपनिषत् | १७५ |
| ४. प्रश्नोपनिषत् | १० | २५. मैत्रायण्युपनिषत् | १७६ |
| ५. मुण्डकोपनिषत् | १५ | २६. कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत् | १९४ |
| ६. माण्डूक्योपनिषत् | २० | २७. बृहज्जाबालोपनिषत् | २०७ |
| ७. तैत्तिरीयोपनिषत् | २१ | २८. नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत् | २१८ |
| ८. ऐतरेयोपनिषत् | ३१ | २९. नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् | २२७ |
| ९. छान्दोग्योपनिषत् | ३४ | ३०. कालाग्निरुद्रोपनिषत् | २३६ |
| १०. बृहदारण्यकोपनिषत् | ८४ | ३१. मंत्रेय्युपनिषत् | २३७ |
| ११. श्वेताश्वतरोपनिषत् | १३४ | ३२. सुबालोपनिषत् | २४२ |
| १२. ब्रह्मविन्दूपनिषत् | १४१ | ३३. क्षुरिकोपनिषत् | २५० |
| १३. कैवल्योपनिषत् | १४२ | ३४. मन्त्रिकोपनिषत् | २५२ |
| १४. जाबालोपनिषत् | १४४ | ३५. सर्वसारोपनिषत् | २५३ |
| १५. हंसोपनिषत् | १४६ | ३६. निरालम्बोपनिषत् | २५४ |
| १६. आरुणिकोपनिषत् | १४८ | ३७. शुकहस्योपनिषत् | २५७ |
| १७. गर्भोपनिषत् | १४९ | ३८. वज्रसूचिकोपनिषत् | २६० |
| १८. नारायणाथर्वशिरउपनिषत् | १५१ | ३९. तेजोविन्दूपनिषत् | २६२ |
| १९. महानारायणोपनिषत् | १५२ | ४०. नादविन्दूपनिषत् | २८३ |
| २०. परमहंसोपनिषत् | १६५ | ४१. ध्यानविन्दूपनिषत् | २८६ |
| २१. ब्रह्मोपनिषत् | १६७ | ४२. ब्रह्मविद्योपनिषत् | २९२ |

| | | | |
|---|-----|----------------------------|-----|
| ४३. योगतत्त्वोपनिषत् | २९७ | ६७. तुरीयातीतोपनिषत् | ४७३ |
| ४४. आत्मप्रबोधोपनिषत् | ३०४ | ६८. संन्यासोपनिषत् | ४७५ |
| ४५. नारदपरिव्राजकोपनिषत् | ३०६ | ६९. परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् | ४८२ |
| ४६. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् | ३२८ | ७०. अक्षमालिकोपनिषत् | ४८५ |
| ४७. सीतोपनिषत् | ३७३ | ७१. अव्यक्तोपनिषत् | ४८८ |
| ४८. योगचूडामण्युपनिषत् | ३९३ | ७२. एकाक्षरोपनिषत् | ४९२ |
| ४९. निर्वाणोपनिषत् | ३४६ | ७३. अन्नपूर्णोपनिषत् | ४९३ |
| ५०. मण्डलब्राह्मणोपनिषत् | ३४७ | ७४. सूर्योपनिषत् | ५०९ |
| ५१. दक्षिणामूर्त्युपनिषत् | ३५२ | ७५. अक्ष्युपनिषत् | ५१० |
| ५२. शरभोपनिषत् | ३५४ | ७६. अध्यात्मोपनिषत् | ५१३ |
| ५३. स्कन्दोपनिषत् | ३५७ | ७७. कुण्डिकोपनिषत् | ५१७ |
| ५४. त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो- पनिषत् | ३५८ | ७८. सावित्र्युपनिषत् | ५१९ |
| ५५. अद्वयतारकोपनिषत् | ३८४ | ७९. आत्मोपनिषत् | ५२० |
| ५६. रामरहस्योपनिषत् | ३८६ | ८०. पाशुपतब्रह्मोपनिषत् | ५२३ |
| ५७. श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् | ३९५ | ८१. परब्रह्मोपनिषत् | ५२७ |
| ५८. श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत् | ४०१ | ८२. अवधूतोपनिषत् | ५२९ |
| ५९. वासुदेवोपनिषत् | ४०५ | ८३. त्रिपुरातापिन्युपनिषत् | ५३२ |
| ६०. मुद्गलोपनिषत् | ४०७ | ८४. देव्युपनिषत् | ५४२ |
| ६१. शाण्डिल्योपनिषत् | ४०९ | ८५. त्रिपुरोपनिषत् | ५४४ |
| ६२. पैङ्गलोपनिषत् | ४२० | ८६. कठरुद्रोपनिषत् | ५४५ |
| ६३. भिक्षुकोपनिषत् | ४२६ | ८७. भावनोपनिषत् | ५४८ |
| ६४. महोपनिषत् | ४२७ | ८८. रुद्रहृदयोपनिषत् | ५५० |
| ६५. शारीरकोपनिषत् | ४५३ | ८९. योगकुण्डल्युपनिषत् | ५५३ |
| ६६. योगशिखोपनिषत् | ४५५ | ९०. भस्मजाबालोपनिषत् | ५६१ |
| | | ९१. रुद्राक्षजाबालोपनिषत् | ५६७ |

| | | | |
|------------------------------|-----|------------------------------|-----|
| १२. गणपत्युपनिषत् | ५७० | १०७. कलिसन्तरणोपनिषत् | ६२७ |
| १३. जाबालदर्शनोपनिषत् | ५७२ | ३०८. जाबाल्युपनिषत् | ६२७ |
| १४. तारसारोपनिषत् | ५८३ | १०९. गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् | ६२९ |
| १५. महावाक्योपनिषत् | ५८५ | ११०. गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् | ६३३ |
| १६. पञ्चब्रह्मोपनिषत् | ५८६ | १११. संन्यासोपनिषत् | ६४१ |
| १७. प्राणाग्निहोत्रोपनिषत् | ५८८ | ११२. गोपीचन्दनोपनिषत् | ६४२ |
| १८. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् | ५९१ | ११३. सरस्वतीरहस्योपनिषत् | ६४५ |
| १९. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् | ५९४ | ११४. पिण्डोपनिषत् | ६४८ |
| १००. कृष्णोपनिषत् | ५९९ | ११५. महोपनिषत् | ६४९ |
| १०१. याज्ञवल्क्योपनिषत् | ६०१ | ११६. बह्व चोपनिषत् | ६५० |
| १०२. वराहोपनिषत् | ६०३ | ११७. आश्वमोपनिषत् | ६५१ |
| १०३. शाट्यायनीयोपनिषत् | ६१६ | ११८. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् | ६५३ |
| १०४. ह्यग्रीवोपनिषत् | ६१९ | ११९. योगशिखोपनिषत् | ६५६ |
| १०५. दत्तात्रेयोपनिषत् | ६२१ | १२०. मुक्तिकोपनिषत् | ६५७ |
| १०६. गारुडोपनिषत् | ६२३ | | |

द्वितीयो भागः

योगोपनिषदः

| | | | |
|-----------------------|---|--------------------|----|
| १. योगराजोपनिषत् | १ | ६. इतिहासोपनिषत् | १० |
| सामान्यवेदान्तोपनिषदः | | ७. चतुर्वेदोपनिषत् | २० |
| २. अद्वैतोपनिषत् | ४ | ८. चाक्षुषोपनिषत् | २२ |
| ३. आचमनोपनिषत् | ५ | ९. छागलेयोपनिषत् | २३ |
| ४. आत्मपूजोपनिषत् | ६ | १०. तुरीयोपनिषत् | २६ |
| ५. आर्षेयोपनिषत् | ७ | ११. द्वयोपनिषत् | २७ |
| | | १२. निरुक्तोपनिषत् | २८ |

| | | | |
|------------------------------------|-----|----------------------------|-----|
| १३. पिण्डोपनिषत् | २९ | ३६. सुदर्शनोपनिषत् | २९३ |
| १४. प्रणवोपनिषत् | ३० | शैवोपनिषदः | |
| १५. बाष्कलमन्त्रोपनिषत् | ३७ | ३७. नीलरुद्रोपनिषत् | २९६ |
| १६. मठाम्नायोपनिषत् | ४८ | ३८. पारायणोपनिषत् | ३०२ |
| १७. विश्रामोपनिषत् | ५० | ३९. बिल्वोपनिषत् | ३०३ |
| १८. शौनकोपनिषत् | ५१ | ४०. मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् | ३०७ |
| १९. सूर्यतापिन्युपनिषत् | ५४ | ४१. रुद्रोपनिषत् | ३०८ |
| २०. स्वसंवेद्योपनिषत् | ६० | ४२. लिङ्गोपनिषत् | ३०९ |
| बैष्णवोपनिषदः | | ४३. वज्रपिञ्जरोपनिषत् | ३११ |
| २१. ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत् | ६३ | ४४. वटुकोपनिषत् | ३१३ |
| २२. कात्यायनोपनिषत् | ६४ | ४५. शिवसङ्कल्पोपनिषत् | ३१८ |
| २३. गोपीचन्दनोपनिषत् | ६५ | ४६. शिवोपनिषत् | ३२४ |
| २४. तुलस्युपनिषत् | ७० | ४७. सदानन्दोपनिषत् | ३७८ |
| २५. नारदोपनिषत् | ७२ | ४८. सिद्धान्तशिखोपनिषत् | ३८० |
| २६. नारायणपूर्वतापनीयोपनिषत् | ७३ | ४९. सिद्धान्तसारोपनिषत् | ३८३ |
| २७. नारायणोत्तरतापनीयोपनिषत् | ८० | ५०. हेरम्बोपनिषत् | ३९० |
| २८. नृसिंहषट्चक्रोपनिषत् | ८४ | शाक्तोपनिषदः | |
| २९. पारमात्मिकोपनिषत् | ८६ | ५१. अल्लोपनिषत् | ३९२ |
| ३०. यज्ञोपवीतोपनिषत् | २०७ | ५२. आथर्वणद्वितीयोपनिषत् | ३९३ |
| ३१. राघोपनिषत् | २०८ | ५३. कामराजकीलितो- | |
| ३२. लाङ्गूलोपनिषत् | २१३ | द्वारोपनिषत् | ४०० |
| ३३. श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तो- | | ५४. कालिकोपनिषत् | ४०१ |
| पनिषत् | २१७ | ५५. कालीमेघादीक्षितोपनिषत् | ४०४ |
| ३४. सङ्कर्षणोपनिषत् | २१८ | ५६. गायत्रीरहस्योपनिषत् | ४०५ |
| ३५. सामरहस्योपनिषत् | २१९ | ५७. गायत्र्युपनिषत् | ४०९ |

| | | | |
|----------------------------|-----|---------------------------|-----|
| ५८. गुह्यकाल्युपनिषत् | ४१० | ६४. श्रीचक्रोपनिषत् | ४६८ |
| ५९. गुह्यषोढान्यासोपनिषत् | ४२० | ६५. श्रीविद्यातारकोपनिषत् | ४६९ |
| ६०. पीताम्बरोपनिषत् | ४२१ | ६६. षोढोपनिषत् | ४७२ |
| ६१. राजश्यामलारहस्योपनिषत् | ४२३ | ६७. सुमुख्युपनिषत् | ४७३ |
| ६२. वनदुर्गोपनिषत् | ४२६ | ६८. हंसषोढोपनिषत् | ४७४ |
| ६३. श्यामोपनिषत् | ४६७ | | |



ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषद्:

॥ ॐ तत्सत् ॥

ईशावास्योपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा
गृधः कस्य स्विन्नम् ॥ १ ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ॥
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥ असूर्या नाम ते लोका
अन्धेन तमसावृताः ॥ तांश्छे प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनहेवा आमुयन्पूर्वमर्पत् ॥ तद्धावतोऽन्यानत्येति
तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥ तदेजति तज्जैजति तद्गुरे तद्वन्तिके ॥
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्ये-
वानुपश्यति ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥ यस्मिन्सर्वाणि
भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥ तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमज्ञाविरः शुद्धमपापविद्धम् ॥ कविर्मनीषी परिभूः
स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीन्म्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥ अन्धन्तमः प्रवि-
शन्ति येऽविद्यामुपासते ॥ ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ ९ ॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ॥ इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे
॥ १० ॥ विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ॥ अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्य-
यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥ अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ॥ ततो भूय
इव ते तमो य उ संभूत्या रताः ॥ १२ ॥ अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभ-
वात् ॥ इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥ १३ ॥ संभूतिं च विनाशं च
यस्तद्वेदोभयं सह ॥ विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥
हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥ तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्मीष
द्वये ॥ १५ ॥ पूषन्नेकर्षं यम सूर्य प्राजापत्य न्यूह रश्मिन्समूह ॥ तेजो यत्ते
रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

वायुरनिलममृतमथेदं अस्मान्तं शरीरम् ॥ ॐ क्रमो स्मर कृतं स्मर क्रतो
स्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥ अग्रे नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयु-
नानि विद्वान् ॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्ति विधेम ॥ १८ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति वाजसनेयसंहितायामीशावास्तोपनिषत्संपूर्णा ॥ १ ॥

केनोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि
च । सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोद-
निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते
मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ॥ केनेषितं
वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥ श्रोत्रस्य श्रोत्रं
मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ॥ चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य
धीराः प्रेत्यासालोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥ न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्ग-
च्छति नो मनो न विप्रो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदिता-
दथो अविदितादधि ॥ इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचक्षिरे ॥ ३ ॥
यद्वाचानभ्युदितं येन वाग्भ्युद्यते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपा-
सते ॥ ४ ॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूषि पश्यति ॥
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन
श्रोत्रमिदं श्रुतम् ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥ यत्प्राणेन
न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

इति केनोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दग्धमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ॥ यदस्य त्वं
यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ ९ ॥ १ ॥ नाहं
मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ॥ यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद
च ॥ १० ॥ २ ॥ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ॥ अविज्ञातं

खण्डः ३]

केनोपनिषत् ॥ २ ॥

३

विज्ञानतां विज्ञातमविज्ञानताम् ॥ ११ ॥ ३ ॥ प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि
चिन्दते ॥ आत्मना चिन्दते वीर्यं विद्यया चिन्दतेऽमृतम् ॥ १२ ॥ ४ ॥ इह
चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ॥ भूतेषु भूतेषु विचित्र्य
धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ १३ ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ॥ त
ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥ १ ॥ तद्वैषां
विजिज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥ २ ॥
तेऽग्निमनुवज्जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ ॥ ३ ॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति
॥ १७ ॥ ४ ॥ तस्मिन्स्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्या-
मिति ॥ १८ ॥ ५ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न
शशाकं दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ ॥
॥ ६ ॥ अथ वायुमनुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति
॥ २० ॥ ७ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मा-
तरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ २१ ॥ ८ ॥ तस्मिन्स्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं
सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥ ९ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतदाद-
त्सेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतद-
शकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥ १० ॥ अथेन्द्रमनुवन्मघवन्नेतद्वि-
जानीहि किमेतद्यक्षमिति ॥ तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ ॥ ११ ॥
स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच
किमेतद्यक्षमिति ॥ २५ ॥ १२ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदां-
चकार ब्रह्मेति ॥ २६ ॥ १ ॥ तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्य-
दग्निर्वायुरिन्द्रस्तेन ह्येनन्नेदिष्टं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति
॥ २७ ॥ २ ॥ तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्टं पस्पृशं स
ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥ २८ ॥ ३ ॥ तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो
व्यद्युतदा ३ इतीक्ष्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥ २९ ॥ ४ ॥ अथाध्यात्मं
यदेतद्वच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥ ३० ॥ ५ ॥
तन्न तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं रा य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्वाणि
भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ३१ ॥ ६ ॥ उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता य उपनिषद्ब्राह्मीं

वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ३२ ॥ ७ ॥ तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा
वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥ ८ ॥ यो वा एतामेवं वेदापहस्य
पाप्मानम(न)न्ते स्वर्गे लोके ज्येथे प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ ॥ ९ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च
सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिरा-
करणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि
सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति सामवेदीया केनोपनिषत्समाप्ता ॥ २ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

कठोपनिषत् ॥ ३ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्विना-
वधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ॥ उशनः ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ॥ तस्य ह नचिकेता नाम
पुत्र आस ॥ १ ॥ तद् ह कुमारः सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश
सोऽमन्यत ॥ २ ॥ पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ॥ अनन्दा
नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥ स होवाच पितरं तत कस्मै
मां दास्यसीति ॥ द्वितीयं तृतीयं तद् होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥ ४ ॥
बहूनामेभि प्रथमो बहूनामेभि मध्यमः ॥ किंस्त्रिद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य-
कैरिष्यति ॥ ५ ॥ अनुपश्य यथा पूर्वं प्रतिपश्य तथाऽपरे ॥ सत्यमिव मर्त्यः
पच्यते सत्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥ वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ॥
तस्यैताः शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥ ७ ॥ आशाप्रतीक्षे सङ्गतः
सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपञ्चः सर्वान् ॥ एतद्ब्रह्मे पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यान-
श्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥ तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्नब्रह्मवति-
थिर्नमस्यः ॥ नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व
॥ ९ ॥ शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ॥ त्व-
त्पृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतन्नयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥ यथा पुरस्ताद्भविता
प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मध्यमः ॥ मुन्श्वात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां दह-
क्षिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥ स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं

न जरया विमेति ॥ उमे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके
 ॥ १२ ॥ स त्वमग्निः स्वर्ग्यमध्येऽपि मृत्यो प्रवृहति त्वं श्रद्धधानाय मद्यम् ॥
 स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥ प्र ते ब्रवीमि
 तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ॥ अनन्तलोकासिमथो प्रतिष्ठां
 विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥ लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका
 यावतीर्वा यथा वा ॥ स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह
 नुष्टः ॥ १५ ॥ तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ॥
 तवैव नाज्ञा भवितायमग्निः सृङ्गां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥ त्रिणा-
 चिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यु ॥ ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं
 विदित्वा निचार्येमांश्च ज्ञान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा
 य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ॥ स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो
 मोदते स्वर्गलोके ॥ १८ ॥ एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन
 वरेण ॥ एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥
 येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ॥ एतद्विद्यामनु-
 शिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥ देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न
 हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः ॥ अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्तीरति
 मा सृजैनम् ॥ २१ ॥ देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुवि-
 ज्ञेयमात्थ ॥ वक्ता चास्य त्वाद्गन्धो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य
 कश्चित् ॥ २२ ॥ शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् ॥
 भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥ एतत्तुल्यं
 यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ॥ महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
 कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥ ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
 सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ॥ इमा रामाः सरथाः सत्पूया न हीदृशा
 लम्भनीया मनुष्यैः ॥ आभिर्मत्पत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं
 मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥ श्रोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति
 तेजः ॥ अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥ न
 वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लुप्त्यामहे वित्तमद्रक्षम चेत्वा ॥ जीविष्यामो
 यावदीक्षिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥ अजीर्यताममृताना-
 मुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः कंधःस्थः प्रजानन् ॥ अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घं
 जीविते को रमेत ॥ २८ ॥ यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यस्तपरादे

महति ब्रूहि नस्तत् ॥ योऽयं चरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता
वृणीते ॥ २९ ॥

इति प्रथमेऽध्याये प्रथमा वल्ली ॥ १ ॥

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषसिनीतः ॥ तयोः श्रेय
आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥ श्रेयश्च प्रेयश्च
मनुष्यमेतस्त्रौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ॥ श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥ स त्वं प्रियान्प्रियरूपाश्च कामानभि-
ध्यायन्नचिकेतोऽत्यन्ताक्षीः ॥ नैतां सृङ्गां वित्तमयीमवासो यस्यां मज्जन्ति बहवो
मनुष्याः ॥ ३ ॥ दूरमेते विपरीते विपूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ॥
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितमन्यमानाः ॥ दन्द्रम्यमाणाः
परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥ न सांपरायः प्रतिभाति
बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ॥ अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः
पुनर्वेशमापद्यते मे ॥ ६ ॥ श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि
बहवो यं न विद्युः ॥ आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशला-
नुक्षिप्तः ॥ ७ ॥ न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ॥
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान्द्व्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥ नैषा तर्केण
मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ट ॥ यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादङ्गो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥ जानाम्यहं शेषधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः
प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ॥ ततो मया नचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि
नित्यम् ॥ १० ॥ कामस्यासि जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् ॥
स्तोममहदुस्मायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्वा धीरो नचिकेतोऽत्यन्ताक्षीः ॥ ११ ॥ तं
दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ॥ अध्यात्मयोगाधिगमेन
देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥ एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ॥ स मोदते मोदनीयश्च हि लब्ध्वा विवृतश्च सन्न
नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥ अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ॥
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥ सर्वे वेदा यत्पदमा-
मनन्ति तपाश्चि सर्वाणि च यद्वदन्ति ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं
संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥ एतच्छेवाक्षरं ब्रह्म एतच्छेवाक्षरं परम् ॥
एतच्छेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥ एतदालम्बनं श्रेष्ठमे-

वल्ली ३]

कठोपनिषत् ॥ ३ ॥

७

तदालम्बनं परम् ॥ एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥ न
जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः
शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥ हन्ता चेन्मन्यते
हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते
॥ १९ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ तम-
ऋतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ २० ॥ आसीनो दूरं
व्रजति शयानो याति सर्वतः ॥ कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥
अशरीरः शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥ महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न
शोचति ॥ २२ ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तन् ॥ २३ ॥ नाविरतो
दुश्शरिताज्ञाशान्तो नासमाहितः ॥ नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात्
॥ २४ ॥ यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः ॥ मृत्युर्यस्योपसेचनं क
इत्था वेद यन्न सः ॥ २५ ॥

इति प्रथमेऽध्याये द्वितीया वल्ली ॥ २ ॥

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ॥ छायातपौ
ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥ यः सेतुरीजानाना-
मक्षरं ब्रह्म यत्परम् ॥ अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतः शकेमहि ॥ २ ॥
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह-
मेव च ॥ ३ ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेन्द्रियमनो-
युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥ यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दृष्टान्ना इव सारथेः ॥ ५ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन
पनसा सदा ॥ तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदृशान्ना इव सारथेः ॥ ६ ॥ यस्त्वविज्ञान-
वान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ॥ न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति
॥ ७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥ स तु तत्पदमा-
प्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवाहकः ॥
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥ इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था
अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥ महतः
परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ पुरुषाच्च परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः
॥ ११ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ॥ इदृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या
सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥ यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ॥
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ १३ ॥ उत्तिष्ठत

जाग्रत प्राप्य वराग्निबोधत ॥ क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्त्ववयो
वदन्ति ॥ १४ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ॥
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाप्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥
नाविकेतमुपाल्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ॥ उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्म-
लोके महीयते ॥ १६ ॥ य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि ॥ प्रयतः
श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ॥ कश्चि-
दीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥ पराचः कामाननु-
यन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ॥ अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥ येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शोऽश्च
मैथुनान् ॥ एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते, एतद्वै तत् ॥ ३ ॥ स्वमान्तं
जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ॥ महान्तं विमुमात्मानं मत्वा धीरो न
शोचति ॥ ४ ॥ य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकत् ॥ ईशानं भूतभव्यस्य
न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ॥ ५ ॥ यः पूर्वं तपसो जातमन्त्रः पूर्वमजायत ॥
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यते, एतद्वै तत् ॥ ६ ॥ या प्राणेन
संभवत्यदितिर्देवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत, एतद्वै
तत् ॥ ७ ॥ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भं इव सुभृतो गर्भिणीभिः ॥ दिवे
दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरभिः, एतद्वै तत् ॥ ८ ॥ यतश्चोदेति
सूर्योऽस्त्वं यत्र च गच्छति ॥ तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तद् नालेति कश्चन, एतद्वै
तत् ॥ ९ ॥ यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य
इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥ मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ मृत्योः
स मृत्यु गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य
आत्मनि तिष्ठति ॥ ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ॥ १२ ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ॥ ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स
उ श्वः, एतद्वै तत् ॥ १३ ॥ यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ॥ एवं धर्मा-
नृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥ यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिकं तादृ-
गेव भवति ॥ एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

इति द्वितीयेऽध्याये प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥ १ ॥ (४) ।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ॥ अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमु-

च्यते, एतद्वै तत् ॥ १ ॥ हृत्सः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिषदतिथिर्दु-
 रोगसत् ॥ नृषद्वरसद्वत्सद्योमसदब्जा गोजा कृतजा अद्रिजा कृतं बृहत् ॥ २ ॥
 ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ॥ मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपा-
 सते ॥ ३ ॥ अस्य विस्त्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ॥ देहाद्विमुच्यमानस्य
 किमन्न परिशिष्यते, एतद्वै तत् ॥ ४ ॥ न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति
 कश्चन ॥ इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतानुपाश्रितौ ॥ ५ ॥ हन्त त इदं प्रव-
 क्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ॥ यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥
 योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ॥ स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म
 यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥ य एष सुतेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ॥ तदेव
 शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन,
 एतद्वै तत् ॥ ८ ॥ अद्रियैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥
 एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥ वायुर्यैको
 भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं
 रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥ सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते
 चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः
 ॥ ११ ॥ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ॥
 तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥
 नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥ तमा-
 त्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥ तदेत-
 दिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ॥ कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति
 विभ्रमिति वा ॥ १४ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो
 भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं
 विभाति ॥ १५ ॥

इति द्वितीयेऽध्याये द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥ २ ॥ (५) ।

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ॥ तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवा-
 मृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वै तत् ॥ १ ॥
 यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ॥ महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्वि-
 दुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥ भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ॥ भयादि-
 न्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥ इह चेदशकद्धोर्दुं प्राक् शरीरस्य
 विस्त्रसः ॥ ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥ यथादर्शं तथात्मनि
 यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ॥ यथाप्सु परीव दृश्ये तथा गन्धर्वलोके क्षयात्प-

योरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥ इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ॥ पृथ-
 गुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥ इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः
 सत्त्वमुत्तमम् ॥ सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥ अव्यक्तात्तु
 परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ॥ यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति
 ॥ ८ ॥ न संदहो तिष्ठति रूपस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ॥
 हृदा मनीषी मनसाऽभिकृषो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥ यदा
 पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥ बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः
 परमां गतिम् ॥ १० ॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥
 अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाम्ययौ ॥ ११ ॥ नैव वाचा न
 मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ॥ अस्तीति ब्रुवतोऽन्वत्र कथं तदुपलभ्यते
 ॥ १२ ॥ अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ॥ अस्तीत्येवोपलब्धस्य
 तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३ ॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥
 अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥ यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह
 ग्रन्थयः ॥ अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावच्चनुशासनम् ॥ १५ ॥ शतं चैका च हृदयस्य
 नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्मुन्या
 उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६ ॥ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये
 संनिविष्टः ॥ तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेपीकां धैर्येण ॥ तं विद्याच्छुक्रम-
 मृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥ मृत्युप्रोक्तां नैविकेतोऽथ लब्ध्वा
 विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ॥ ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो
 विदध्यात्ममेव ॥ १८ ॥

इति द्वितीयेऽध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥ (६) ।

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्विना-
 वधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति यजुर्वेदीया कठोपनिषत्समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

प्रश्नोपनिषत् ॥ ४ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तु-
 श्रवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः

पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्य-
श्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कवन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः
परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं
पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥ तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण
श्रद्धया संवत्सरं संवत्सथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह
वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥ अथ कवन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ भगवन्कुतो
ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥ तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजा-
पतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते ॥ रथिं च प्राणं
चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ ४ ॥ आदित्यो ह वै प्राणो रथिरेव
चन्द्रमा रथिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रथिः ॥ ५ ॥
अथादित्य उदयन्यत्पार्चीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान्प्राणाग्रिमिषु संनिधत्ते
यदक्षिणां यत्प्रीतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रका-
शयति तेन सर्वान्प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥ ६ ॥ स एव वैश्वानरो विश्व-
रूपः प्राणोऽग्निरुदयते ॥ तदेतद्वचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ॥ सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजाना-
मुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥ संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च ॥
तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते ॥
त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते ॥ एष ह
वै रथिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥ अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानम-
न्विष्यादित्यमभिजयन्त एतद्वै प्राणानामायतनमेतदश्रुतमभयमेतत्परायणमेत-
स्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेव श्लोकः ॥ १० ॥ पञ्चपादं पितरं द्वाद-
शाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ॥ अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं
सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥ मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष
एव रथिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल ईष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्
॥ १२ ॥ अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रथिः प्राणं वा एते
प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्वात्रौ रत्या संयुज्य-
न्ते ॥ १३ ॥ अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्व्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त
इति ॥ १४ ॥ तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते ॥ तेषा-

मेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ तेषामसौ
विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

इति प्रथमः प्रश्नः ॥ १ ॥

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ, भगवन्कलेव देवाः प्रजां विधारयन्ते,
कतर एतत्प्रकाशयन्ते, कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥ तस्मै स होवाचाकाशो
ह वा एष देवो वायुरभिरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ॥ ते प्रकाश्या-
भिवदन्ति वयमेतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २ ॥ तान्वरिष्ठः प्राण
उवाच, मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्वाणमवष्टभ्य विधा-
रयामीति ॥ तेऽश्रद्धाणा बभूवुः ॥ ३ ॥ सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मि-
न्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्वे एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वे एव प्रातिष्ठन्ते
तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च
प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं
स्तुन्वन्ति ॥ ४ ॥ एषोऽभिस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष
पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चासृतं च यत् ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं
प्रतिष्ठितम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्च-
रसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ॥ तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः
प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥ देवानामसि वह्निमतमः पितृणां प्रथमा स्वधा ॥
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥ इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि
परिरक्षिता ॥ त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥ ९ ॥ यदा त्वम-
भिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः ॥ आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायाज्ञं भविष्य-
तीति ॥ १० ॥ ब्राह्मस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ॥ वयमाद्यस्य
दातारः पिता त्वं मातरिश्च नः ॥ ११ ॥ या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे
या च चक्षुषि ॥ या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्कमीः ॥ १२ ॥
प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मातेव पुत्रात्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां
च विधेहि न इति ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः प्रश्नः ॥ २ ॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ ॥ भगवन्कुत एष प्राणो जायते
कथमायात्यस्मिञ्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं
बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥ तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि
ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥ २ ॥ आत्मन एष प्राणो जायते ॥ यथैषा
पुरुषे छाद्यैतस्मिन्नेतदातत मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ ॥ यथा सन्नाडे-

प्रश्नः ४]

प्रश्नोपनिषद् ॥ ४ ॥

१३

वाधिकृतान्विनियुङ्गे एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठत्येवमेवैष प्राण इतरा-
 न्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ॥ ४ ॥ पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुख-
 नासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः ॥ एष ह्येतद्भुतमब्रं
 समं नयति तस्यादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ ॥ हृदि ह्येष आत्मा ॥
 अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशा-
 खानाडीसहस्राणि अवन्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ ॥ अथैकयोर्ध्वं उदानः पुण्येन
 पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ ॥ आदित्यो
 ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुर्ध्वं प्राणमनुगृह्णातः ॥ पृथिव्यां या
 देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुव्यानः
 ॥ ८ ॥ तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ॥ पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि
 संपद्यमानैः ॥ ९ ॥ यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहा-
 त्सना यथासंकल्पितं लोकं नयति ॥ १० ॥ य एवं विद्वान्प्राणं वेद न
 हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥ उत्पत्तिमायति स्थानं
 विश्रुत्वं चैव पञ्चधा ॥ अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृत-
 मश्नुत इति ॥ १२ ॥

इति तृतीयः प्रश्नः ॥ ३ ॥

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ ॥ भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति
 कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्शु
 सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ ॥ तस्मै स होवाच, यथा गार्ग्य मरीच-
 योऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिन्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनःपुन-
 रुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति ॥ तेन तर्ह्येष पुरुषो
 न शृणोति न पश्यति न जिग्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते
 नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ ॥ प्राणाग्रय एवैतस्मिन्पुरे
 जाग्रति ॥ गार्हपत्यो ह वा एपोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्याग्नी-
 यते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥ यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं
 नयतीति स समानः ॥ मनो ह वाच यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमा-
 नमहरहर्क्ष गमयति ॥ ४ ॥ अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति, यद्दृष्टं
 दृष्टमनुपश्यति, श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति, देशदिगन्तरेष्वप्रत्यनुभूतं पुनः
 पुनः प्रत्यनुभवति, दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चा-
 सच्च सर्वं पश्यति सर्वैः पश्यति ॥ ५ ॥ स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष

देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिच्छरीर एतत्सुखं भवति ॥ ६ ॥ स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते ॥ एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ ७ ॥ पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक् च स्पर्शयितव्यं च वाक् च वक्तव्यं च हृत्सौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥ ८ ॥ एष हि द्रष्टा स्पर्ष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ॥ स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ ९ ॥ परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति ॥ तदेष श्लोकः ॥ १० ॥ विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र ॥ तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥

इति चतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ॥ स यो ह वै तद्गगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत ॥ कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥ १ ॥ तस्यै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥ स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसंपद्यते ॥ तस्मै चो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तन्न तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥ अथ शब्दि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुक्षीयते सोमलोकम् ॥ स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥ यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतैनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः ॥ यथा पादोदरस्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुक्षीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परत्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ॥ तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥ तित्तो मात्रा मृत्युमलयः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः ॥ क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्बन्धप्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥ ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

इति पञ्चमः प्रश्नः ॥ ५ ॥

अथ हैनं सुकेता भारद्वाजः पप्रच्छ ॥ भगवन्निर्हरण्यनामः कौसल्यो
 राजपुत्रो मासुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत् ॥ षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ,
 तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद ॥ यद्यहमिममवेदिपं कथं ते नावक्ष्य-
 मिति ॥ समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्माद्बार्हस्पत्यनृतं
 वक्तुम् ॥ स तूर्णी रथमारुह्य प्रवव्राज ॥ तं त्वा पृच्छामि कासौ पुरुष इति
 ॥ १ ॥ तस्मै स होवाच ॥ इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मि-
 ज्जेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ ॥ स ईक्षां चक्रे ॥ कस्मिन्नहमुत्क्रान्ते उत्क्रा-
 न्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥ स प्राणमसृजत
 प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः ऋषिवीन्द्रियं मनोऽक्षमज्ञादीर्यं तपो मन्त्राः
 कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥ स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः
 समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥
 एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति
 भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति ॥ तदेष
 श्लोकः ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ॥ तं वेद्यं पुरुषं
 वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ ॥ तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं
 ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥ ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकम-
 विद्यायाः परं पारं तारयसीति ॥ नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

इति षष्ठः प्रश्नः ॥ ६ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गै-
 स्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति
 नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पति-
 र्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

मुण्डकोपनिषद् ॥ ५ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तु-
 ष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः
 पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
 ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ स ब्रह्म-

विद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥ अथर्वणे यां प्रव-
देत् ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ॥ स भारद्वाजाय सत्यवहाय
प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥ शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधि-
बहुपसङ्गः पप्रच्छ ॥ कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥
तस्मै स होवाच ॥ द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा
चैवापरा च ॥ ४ ॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा
कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ॥ अथ परा यथा तदक्षरमधिग-
म्यते ॥ ५ ॥ यत्तदद्रेक्ष्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं
विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यज्जतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥ यथो-
र्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ॥ यथा सतः
पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥ तपसा चीयते ब्रह्म
ततोऽन्नमभिजायते ॥ अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥
यः सर्वज्ञः सर्वविषयज्ञानमयं तपः ॥ तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च
जायते ॥ ९ ॥

इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्ताति त्रेतायां बहुधा संत-
तानि ॥ तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ १ ॥
यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ॥ तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रति-
पादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २ ॥ यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्र-
यणमतिथिवर्जितं च ॥ अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमाससमांस्तस्य लोका-
न्निहन्ति ॥ ३ ॥ काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधृजवर्णा ॥
रूपुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४ ॥ एतेषु
यश्चरते अजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ॥ तन्नयन्येताः सूर्यस्य
रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥ एषेहीति तमाहुतयः सुव-
र्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ॥ प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष
वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥ प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्त-
मवरं येषु कर्म ॥ एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि
यन्ति ॥ ७ ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितमन्यमानाः ॥
जहन्न्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥ अविद्यार्या
बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ॥ यत्कर्मिणो न प्रवेद-

खण्डः २]

मुण्डकोपनिषत् ॥ ५ ॥

१७

यन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥ इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ॥ नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीन-
तरं वा विशन्ति ॥ १० ॥ तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो मैक्ष-
चर्या चरन्तः ॥ सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रासृतः स पुरुषो ह्यव्य-
यात्मा ॥ ११ ॥ परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः
कृतेन ॥ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समिन्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्
॥ १२ ॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ॥
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

इति प्रथममुण्डकं समाप्तम् ।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ॥
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥ दिव्यो
ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः
परः ॥ २ ॥ एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुर्ज्योति-
रापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥ अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः
श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ॥ वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पन्थां पृथिवी ह्येष
सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥ तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमार्त्पजैन्य ओष-
धयः पृथिव्याम् ॥ पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां वह्नीः प्रजाः पुरुषास्सं-
प्रसूताः ॥ ५ ॥ तस्मादक्षः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ॥
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥ तस्माच्च
देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ॥ प्राणापानौ
व्रीहियवौ तश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ ॥ सप्त प्राणाः प्रभवन्ति
तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ॥ सप्त इमे लोका येषु चरन्ति
प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥ अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मा-
त्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ॥ अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतै-
स्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥ पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परासृतम् ॥
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थि विकिरतीह सोम्य ॥ १० ॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् ॥ एजप्राणश्चिमिषश्च
यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥ यद्वर्चिमथ-

दण्ड्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥ तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु
वाचनः ॥ तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेदव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥ धनुर्गृहीत्वोप-
निषदं महात्वं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्ल-
क्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेदव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥ यस्मिन्धौः
पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ॥ तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ॥
स एयोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ॥ ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः
पराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि ॥
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रैतिष्ठितः ॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठा-
तोऽज्ञे हृदयं संनिधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं
यद्विभाति ॥ ७ ॥ मिथ्ये हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्त्र
कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥ हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न
चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव आन्तमनुभाति
सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चा-
द्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्
॥ ११ ॥

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

॥ इति द्वितीयमुण्डकं समाप्तम् ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोरन्यः पिप्पलं
स्वाद्वत्त्यनभक्षन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥ समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया
शोचति मुह्यमानः ॥ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः
॥ २ ॥ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिसु ॥ तदा
विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥ प्राणो ह्येष यः
सर्वभूतैर्विभाति विज्ञानन्विद्वान्भवते नातिवादी ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिः
क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्य-
ग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥ अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि जुष्टो यं पश्यन्ति
यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥ सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देव-
यानः ॥ येनाक्रमन्त्युषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

खण्ड० ३.]

मुण्डकोपनिषत् ॥ ५ ॥

१९

बृहच्च तद्विद्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ॥ दूरात्सुदूरे तदि-
हान्तिके च पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७ ॥ न चक्षुषा गृह्यते नापि
वाचा नाप्येदैर्वैस्तपसा कर्मणा वा ॥ ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं
पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥ एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मि-
न्प्राणः पञ्चधा संविवेश ॥ प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभ-
वत्येष आत्मा ॥ ९ ॥ यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते
थांश्च कामान् ॥ तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूति-
कामः ॥ १० ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ॥ उपासते पुरुषं
ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥ १ ॥ कामान्यः कामयते मन्य-
मानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र ॥ पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वं
प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना
श्रुतेन ॥ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ ३ ॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् ॥ एतेरूपा-
यैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥ संप्राप्यैनमृषयो
ज्ञानवृत्ताः कृतात्मानो धीतरागाः प्रशान्ताः ॥ ते सर्वेणं सर्वतः प्राप्य धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥ वेदान्तविज्ञानमुनिश्चितार्थाः संन्यास-
योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ॥ ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति
सर्वे ॥ ६ ॥ गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु ॥
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति ॥ ७ ॥ यथा नद्यः
स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्त्रं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ॥ तथा विद्वांश्चामरूपाद्वि-
मुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥ स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद
ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मविष्कुले भवति ॥ तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा-
ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ ९ ॥ तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥ क्रियावन्तः
श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः ॥ तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां
वदेत शिरोव्रतं विधिवच्चैस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥ तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः
पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ॥ नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः ॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरै-
रङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिः ॥ व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-

अवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति
नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया मुण्डकोपनिषत्समाप्ता ॥ ५ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

माण्डूक्योपनिषत् ॥ ६ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः ॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गै-
स्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिः ॥ व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-
अवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति
नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवन्नविष्यदिति सर्वमोङ्कार
एव ॥ यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ १ ॥ सर्वꣳ ह्येतद्ब्रह्मायसात्मा
ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥ जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग
एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥ स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः
सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥ ४ ॥ यत्र
सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् ॥ सुषुप्तस्थान
एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः
पादः ॥ ५ ॥ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य
प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ ६ ॥ नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न
प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ॥ अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यप-
देक्ष्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स
आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥ सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥ जागरितस्थानो वैश्वान-
रोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽक्षरादिमस्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च
भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादु-
भयत्वाद्दोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मविकुले
भवति य एवं वेद ॥ १० ॥ सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेर-
पीतेर्वा मिनोति ह वा इदꣳ सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥
अमात्रश्चतुर्योऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संवि-
दस्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः ॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरै-
रङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिः ॥ व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-
श्रवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति
नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति माण्डूक्योपनिषत्समाप्ता ॥ ६ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

तैत्तिरीयोपनिषत् ॥ ७ ॥

॥ शीक्षाध्यायः ॥

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवस्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृह-
स्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुक्मः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव
प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं
वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवस्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥
शं नो विष्णुरुक्मः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मा-
मवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः
शान्तिः ॥ १ ॥ सत्यं वदिष्यामि पञ्च च ॥ १ ॥

इति शीक्षाध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः ॥ वर्णः स्वरः ॥ मात्रा बलम् ॥ साम संतानः ॥
इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥ १ ॥ (शीक्षां पञ्च) ॥

इति शीक्षाध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

सह नौ यशः ॥ सह नौ ब्रह्मवर्चसम् ॥ अथातः सꣳहिताया उपनिषदं
व्याख्यास्यामः ॥ पञ्चस्वधिकरणेषु ॥ अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रज-
मध्यात्मम् ॥ तामहासꣳहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् ॥ पृथिवी पूर्वरूपम् ॥
द्यौरुत्तररूपम् ॥ आकाशः संधिः ॥ १ ॥ वायुः संधानम् ॥ इत्यधिलोकम् ॥ अथा-
धिज्यौतिषम् ॥ अग्निः पूर्वरूपम् ॥ आदित्य उत्तररूपम् ॥ आपः संधिः ॥ वैद्युतः
संधानम् ॥ इत्यधिज्यौतिषम् ॥ अथाधिविद्यम् ॥ आचार्यः पूर्वरूपम् ॥ २ ॥
अन्तेवास्त्युत्तररूपम् ॥ विद्या संधिः ॥ प्रवचनꣳ संधानम् ॥ इत्यधिविद्यम् ॥
अथाधिप्रजम् ॥ माता पूर्वरूपम् ॥ पितोत्तररूपम् ॥ प्रजा संधिः ॥ प्रजननꣳ

संधानम् ॥ इत्यधिप्रजम् ॥ ३ ॥ अथाध्यात्मम् ॥ अधरा हनुः पूर्वरूपम् ॥
उत्तरा हनुत्तररूपम् ॥ वाक् संधिः ॥ जिह्वा संधानम् ॥ इत्यध्यात्मम् ॥
इतीमा महासंहिताः ॥ य एवमेता महासंहिता व्याख्याता वेद ॥ संधीयते
प्रजया पशुभिः ॥ ब्रह्मवर्चसेनाज्ञाद्येन सुवर्ग्येण लोकेन ॥ ४ ॥ (संधिरा-
चार्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजं लोकेन) ॥

इति शीक्षाध्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः ॥ छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव ॥ स मेन्द्रो
मेधया स्पृणोतु ॥ अमृतस्य देव धारणो भूयासम् ॥ शरीरं मे विचर्षणम् ॥
जिह्वा मे मधुमत्तमा ॥ कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् ॥ ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया
पिहितः ॥ श्रुतं मे गोपाय ॥ आवहन्ती वितन्वाना ॥ कुर्वाणाऽचीरमात्मनः ॥
वासांसि मम गावश्च ॥ अन्नपाने च सर्वदा ॥ ततो मे श्रियमावह ॥ लोमशां
पशुभिः सह स्वाहा ॥ १ ॥ आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ वि मायन्तु
ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ प्र मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ दमायन्तु ब्रह्मचारिणः
स्वाहा ॥ शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ २ ॥ यशो जनेऽसानि स्वाहा ॥
श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा ॥ तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा ॥ स मा भग
प्रविश स्वाहा ॥ तस्मिन् सहस्रशाखे ॥ नि भगाहं त्वयि मृजे स्वाहा ॥
यथापः प्रवतायन्ति ॥ यथा मासा अहर्जरम् ॥ एवं मां ब्रह्मचारिणः ॥ धात-
रायन्तु सर्वतः स्वाहा ॥ प्रतिवेशोऽसि प्र मा भाहि प्र मा पद्यस्व ॥ ३ ॥ वित-
न्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ (धातरायन्तु सर्वतः स्वाहैकं च) ॥

इति शीक्षाध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्त्रिणो व्याहृतयः ॥ तासामु ह सैतां चतु-
र्थीम् ॥ माहाचमस्यः प्रवेदयते ॥ मह इति ॥ तद्ब्रह्म ॥ स आत्मा ॥ अङ्गा-
न्यन्या देवताः ॥ भूरिति वा अयं लोकः ॥ भुव इत्यन्तरिक्षम् ॥ सुवरि-
त्यसौ लोकः ॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः ॥ आदित्येन वाव सर्वे लोका मही-
यन्ते ॥ भूरिति वा अग्निः ॥ भुव इति वायुः ॥ सुवरित्यादित्यः ॥ मह इति
चन्द्रमाः ॥ चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीरपि महीयन्ते ॥ भूरिति वा
ऋचः ॥ भुव इति सामानि ॥ सुवरिति यजूंषि ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म ॥
ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ॥ भूरिति वै प्राणः ॥ भुव इत्यपानः ॥ सुव-
रिति व्यानः ॥ मह इत्यन्नम् ॥ अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते ॥ ता वा
एताश्चतस्रश्चतुर्धा ॥ चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः ॥ ता यो वेद ॥ स वेद ब्रह्म ॥
सर्वेऽसौ देवा बलिमावहन्ति ॥ ३ ॥ (असौ लोको यजूंषि वेद द्वे च) ॥

इति शीक्षाध्याये पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः ॥ तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः ॥ अमृतो
हिरण्मयः ॥ अन्तरेण तालुके ॥ य एष स्तन इवावलम्बते ॥ सेन्द्रयोनिः ॥
यत्रासौ केशान्तो विवर्तते ॥ व्यपोह्य शीर्षकपाले ॥ भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति ॥
अथ इति वायौ ॥ १ ॥ सुवरित्यादित्ये ॥ मह इति ब्रह्मणि ॥ आप्नोति स्वारा-
ज्यम् ॥ आप्नोति मनसस्पतिम् ॥ वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः ॥ श्रोत्रपतिर्विज्ञान-
पतिः ॥ एतत्ततो भवति ॥ आकाशशरीरं ब्रह्म ॥ सत्यात्म प्राणारामं मन-
आनन्दम् ॥ शान्तिसमृद्धममृतम् ॥ इति प्राचीनयोग्योपास्त्र ॥ २ ॥
(वायावमृतमेकं च) ॥

इति शिक्षाध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः ॥ अभिर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्ष-
त्राणि ॥ आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा ॥ इत्यधिभूतम् ॥
अथाध्यात्मम् ॥ प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः ॥ चक्षुः श्रोत्रं मनो
वाक् त्वक् ॥ चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा ॥ एतदधिविधाय ऋषिरवो-
चत् ॥ पाङ्क्तं वा इदं सर्वम् ॥ पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तं सृणोतीति ॥ १ ॥
(सर्वमेकं च) ॥

इति शिक्षाध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

ओमिति ब्रह्म ॥ ओमितीदं सर्वम् ॥ ओमित्येतदनुकृति इ स वा अप्यो
श्रावयेत्याश्रावयन्ति ॥ ओमिति सामानि गायन्ति ॥ ओं शोमिति शस्त्राणि
शंसन्ति ॥ ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति ॥ ओमिति ब्रह्मा प्रसूति ॥
ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ॥ ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपासना-
नीति ॥ ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ १ ॥ (अदश) ॥

इति शिक्षाध्यायेऽष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

कृतं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ तपश्च
स्वाध्यायप्रवचने च ॥ दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ शमश्च स्वाध्यायप्रवचने
च ॥ अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥
अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजा च
स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजातिश्च स्वाध्याय-
प्रवचने च ॥ सत्यमिति सत्यवचा राशीतरः ॥ तप इति तपोनित्यः पौरुषेष्टिः ॥
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्वल्यः ॥ तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ ६ ॥
(प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च षट् च) ॥

इति शिक्षाध्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अहं वृक्षस्य रेरिवा ॥ कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव ॥ ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव
स्मृतमस्मि ॥ द्रविणं सवर्षसम् ॥ सुमेधा अमृतोक्षितः ॥ इति त्रिश-
ङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥ १ ॥ (अहं पद) ॥

इति शीक्षाध्याये दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति ॥ सत्यं वद ॥ धर्मं चर ॥ स्वाध्या-
यान्मा-प्रमदः ॥ आचार्याय प्रियं धनमाहुत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ॥
सत्याज्ञ प्रमदितव्यम् ॥ धर्माज्ञ प्रमदितव्यम् ॥ कुशलाज्ञ प्रमदितव्यम् ॥
भृत्यै न प्रमदितव्यम् ॥ स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १ ॥ देव-
पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ मातृदेवो भव ॥ पितृदेवो भव ॥ आचार्य-
देवो भव ॥ अथितिदेवो भव ॥ यान्यनवधानि कर्माणि ॥ तानि सेवित-
व्यानि ॥ नो इतराणि ॥ यान्यस्माकं सुचरितानि ॥ तानि त्वयोपास्यानि
॥ २ ॥ नो इतराणि ॥ ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः ॥ तेषां त्वयाऽऽसने न
प्रशस्तितव्यम् ॥ अश्रद्धया देयम् ॥ अश्रद्धयाऽदेयम् ॥ श्रिया देयम् ॥ द्विया
देयम् ॥ भिया देयम् ॥ संविदा देयम् ॥ अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा
वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३ ॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः ॥ युक्ता
आयुक्ताः ॥ अल्लक्षा धर्मकामाः स्युः ॥ यथा ते तत्र वर्तेरन् ॥ तथा तत्र
वर्तेथाः ॥ अथाभ्याख्यातेषु ॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः ॥ युक्ता आयुक्ताः ॥
अल्लक्षा धर्मकामाः स्युः ॥ यथा ते तेषु वर्तेरन् ॥ तथा तेषु वर्तेथाः ॥ एष
आदेशः ॥ एष उपदेशः ॥ एषा वेदोपनिषत् ॥ एतदनुशासनम् ॥ एवमु-
पासितव्यम् ॥ एवमु चैतदुपास्यम् ॥ ४ ॥ (स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रम-
दितव्यं तानि त्वयोपास्यानि स्यात्तेषु वर्तेरन् सप्त च) ॥

इति शीक्षाध्याये एकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥
शं नो विष्णुरुक्मः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं
ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् ॥ ऋतमवादिषम् ॥ सत्यमवादि-
षम् ॥ तन्मामावीत् ॥ तद्वक्तामावीत् ॥ आवीन्माम् ॥ आवीद्वक्ताम् ॥
॥ १ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (सत्यमवादिषं पञ्च च) ॥

इति शीक्षाध्याये द्वादशोऽनुवाकः ॥ १२ ॥

शं नः शीक्षा सह नौ यद्वन्दसां भूः स यः पृथिव्योमित्यृतं चाहं
वेदमनूच्य शं नो ब्रह्म ॥ १२ ॥ शं नो मह इत्यादित्यो नो इतराणि

अनु० ३]

तैत्तिरीयोपनिषत् ॥ ७ ॥ ५

२५

अयोविंशतिः ॥ २३ ॥ ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमां ॥
 शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते
 वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं
 वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥
 अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
 इति कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषदि प्रथमः शीक्षाध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मवल्ग्यध्यायः ॥ २ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि
 नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मविदामोति परम् ॥ तदेवाऽभ्युक्ता ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ यो
 वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ॥ सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा
 विपश्चितेति ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ॥ आकाशाद्वायुः ॥
 वायोरग्निः ॥ अग्नेरापः ॥ अन्नः पृथिवी ॥ पृथिव्या ओषधयः ॥ ओषधी-
 भ्योऽन्नम् ॥ अन्नात्पुरुषः ॥ स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥ तस्येदमेव
 शिरः ॥ अयं दक्षिणः पक्षः ॥ अयमुत्तरः पक्षः ॥ अयमात्मा ॥ इदं पुच्छं
 प्रतिष्ठा ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवल्ग्यध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अन्नाद्दे प्रजाः प्रजायन्ते ॥ याः काश्च पृथिवीऽश्रिताः ॥ अथो अन्नेनैव
 जीवन्ति ॥ अथैनदपि यन्त्यन्ततः ॥ अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् ॥ तस्मात्सर्वौ-
 षधमुच्यते ॥ सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति ॥ येऽन्नं ब्रह्मोपासते ॥ अन्नं हि
 भूतानां ज्येष्ठम् ॥ तस्मात्सर्वौषधमुच्यते ॥ अन्नाद्भूतानि जायन्ते ॥ जाता-
 न्यन्नेन वर्धन्ते ॥ अद्यतेऽस्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति ॥ तस्माद्वा
 एतस्मादन्नरसमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा
 एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य प्राण
 एव शिरः ॥ व्यानो दक्षिणः पक्षः ॥ अपान उत्तरः पक्षः ॥ आकाश आत्मा ॥
 पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवल्ग्यध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति ॥ मनुष्याः पशवश्च ये ॥ प्राणो हि भूताना-
 मायुः ॥ तस्मात्सर्वायुषमुच्यते ॥ सर्वमेव त आयुर्यन्ति ॥ ये प्राणं ब्रह्मो-
 पासते ॥ प्राणो हि भूतानामायुः ॥ तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति ॥ तस्यैष एव

शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् ॥ अन्योऽन्तर
आत्मा मनोमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुष-
विधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य यजुरेव शिरः ॥ ऋग् दक्षिणः पक्षः ॥
सामोत्तरः पक्षः ॥ आदेश आत्मा ॥ अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तदप्येष
श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवह्न्यध्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ॥
न बिभेति कदाचनेति ॥ तस्यैष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा
एतस्मान्मनोमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा
एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य श्रद्धैव
शिरः ॥ ऋतं दक्षिणः पक्षः ॥ सत्यमुत्तरः पक्षः ॥ योग आत्मा ॥ महः पुच्छं
प्रतिष्ठा ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवह्न्यध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते ॥ कर्माणि तनुतेऽपि च ॥ विज्ञानं देवाः सर्वे ॥ ब्रह्म
ज्येष्ठमुपासते ॥ विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद ॥ तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति ॥ शरीरे पाप्मनो
हित्वा ॥ सर्वान्कामान्समश्नुत इति ॥ तस्यैष एव शारीर आत्मा ॥ यः
पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः ॥
तेनैष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं
पुरुषविधः ॥ तस्य प्रियमेव शिरः ॥ मोदो दक्षिणः पक्षः ॥ प्रमोद उत्तरः
पक्षः ॥ आनन्द आत्मा ॥ ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवह्न्यध्याये पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

असन्नेव स भवति ॥ असद्ब्रह्मेति वेद चेत् ॥ अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद ॥
सन्तमेनं ततो विदुरिति ॥ तस्यैष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ अथा-
तोऽनुप्रश्नाः ॥ उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य ॥ कश्चन गच्छती ३ ॥ आहो विद्वान-
मुं लोकं प्रेत्य ॥ कश्चित्समश्नुता ३ उ ॥ सोऽकामयत ॥ बहु स्यां प्रजाये-
येति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥ इदं सर्वमसृजत ॥ यदिदं किंच ॥
तत्सृष्ट्वा ॥ तदेवानुप्राविशत् ॥ तदनु प्रविश्य ॥ सच्च त्यच्चाभवत् ॥ निरुक्तं
चानिरुक्तं च ॥ निलयनं चानिलयनं च ॥ विज्ञानं चाविज्ञानं च ॥ सत्यं
चानृतं च सत्यमभवत् ॥ यदिदं किंच ॥ तत्सत्यमित्याचक्षते ॥ तदप्येष
श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवह्न्यध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

असद्वा इदमग्र आसीत् ॥ ततो वै सद्जायत ॥ तदात्मानं स्वयमकुरुत ॥ तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ॥ यद्वै तत्सुकृतम् ॥ रसो वै सः ॥ रसं ह्येवायं लब्धवानन्दी भवति ॥ को ह्येवान्यात्कः प्राप्यात् ॥ यदेव आकाश आनन्दो न स्यात् ॥ एष ह्येवानन्दयाति ॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽना-
द्व्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते ॥ अथ सोऽभयं गतो भवति ॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते ॥ अथ तस्य भयं भवति ॥ तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवर्ण्यध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

भीषाऽस्माद्वातः पचते ॥ भीषोदेति सूर्यः ॥ भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च ॥ मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥ सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति ॥ युवा स्यात्साधु-
युवाध्यायकः ॥ आशिष्ठो द्रदिष्ठो बलिष्ठः ॥ तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ॥ स एको मानुष आनन्दः ॥ ते ये शतं मानुषा आनन्दाः ॥ स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः ॥ स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः ॥ स एकः पितॄणां चिर-
लोकलोकानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं पितॄणां चिर-
लोकलोकानामानन्दाः ॥ स एक आजानजानां देवानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः ॥ स एकः कर्म-
देवानां देवानामानन्दः ॥ ये कर्मणा देवानपियन्ति ॥ श्रोत्रियस्य चाकाम-
हतस्य ॥ ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः ॥ स एको देवानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवानामानन्दाः ॥ स एक इन्द्रस्या-
नन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः ॥ स एको बृहस्पतेरानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः ॥ स एकः प्रजापतेरानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं प्रजा-
पतेरानन्दाः ॥ स एको ब्रह्मण आनन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ स यश्चायं पुरुषे ॥ यश्चासावादित्ये ॥ स एकः ॥ स य एवंविद् ॥ अस्माल्लो-
कात्प्रेत्य ॥ एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति ॥ एतं प्राणमयमात्मानमुप-
संक्रामति ॥ एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति ॥ एतं विज्ञानमयमात्मानमु-
पसंक्रामति ॥ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति ॥ तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवर्ण्यध्यायेऽष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ॥ न बिभेति कुतश्चेनेति ॥ एतं ह वाच न तपति किमहं साधु नाकरवम् ॥

किमहं पापमकरवमिति ॥ स य एवं विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते ॥ उमे
ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते ॥ य एवं वेद ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति ब्रह्मवह्न्यध्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

ब्रह्मविदिदमेकविंशतिरश्वादक्षरसमयाख्याणो व्यानोऽपान आकाशः पृथिवी
पुच्छं षड्विंशतिः प्राणं यजुर्ऋक् सामादेशोऽथर्वाङ्गिरसः पुच्छं द्वाविं-
शतिर्यतः श्रद्धर्तुसत्यं योगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोद आनन्दो
ब्रह्म पुच्छं द्वाविंशतिरसन्नेवाथाष्टाविंशतिरसत्पोडश भीषाऽस्मान्मानुषो
मनुष्यगन्धर्वाणां देवगन्धर्वाणां पितॄणां चिरलोकलोकानामाजानजानां कर्म-
देवानां ये कर्मणा देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः । स यश्च संक्रा-
मत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्च नैतमेकादश नव ॥ ब्रह्मविद्य एव वेदेत्युपनिषत् ॥

सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधी-
तमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति द्वितीयो ब्रह्मवह्न्यध्यायः ॥ २ ॥

अथ ऋगुवह्न्यध्यायः ॥ ३ ॥

हरिः ॐ ॥ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ऋगुर्वै वारुणिः ॥ वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥
तस्मा एतत्प्रोवाच ॥ अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति ॥ तं होवाच ॥
यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ॥ येन जातानि जीवन्ति ॥ यत्प्रयन्त्यभिसं-
विशन्ति ॥ तद्विज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥

इति ऋगुवह्न्यध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ अन्नाज्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥ अन्नेन
जातानि जीवन्ति ॥ अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरुणं
पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तं होवाच ॥ तपसा ब्रह्म
विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥

इति ऋगुवह्न्यध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ प्राणाज्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥ प्राणेन
जातानि जीवन्ति ॥ प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरुणं
पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तं होवाच ॥ तपसा ब्रह्म
विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥

इति ऋगुवह्न्यध्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

शृगु०]

तैत्तिरीयोपनिषत् ॥ ७ ॥

२९

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥
मनसा जातानि जीवन्ति ॥ मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ त५ होवाच ॥
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥
इति शृगुवल्ग्यध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ विज्ञानाच्चेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति ॥ विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ त५ होवाच ॥
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तप्त्वा ॥
इति शृगुवल्ग्यध्याये पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ आनन्दाच्चेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥
आनन्देन जातानि जीवन्ति ॥ आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ सैषा
भार्गवी वारुणी विद्या ॥ परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता ॥ य एवं वेद प्रति-
ष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो भवति ॥ महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ॥
महान् कीर्त्या ॥

इति शृगुवल्ग्यध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

अन्नं न निन्द्यात् ॥ तद्व्रतम् ॥ प्राणो वा अन्नम् ॥ शरीरमन्नादम् ॥ प्राणे
शरीरं प्रतिष्ठितम् ॥ शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः ॥ तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ स य
एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो भवति ॥ महान् भवति
प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ॥ महान् कीर्त्या ॥

इति शृगुवल्ग्यध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अन्नं न परिचक्षीत् ॥ तद्व्रतम् ॥ आपो वा अन्नम् ॥ ज्योतिरन्नादम् ॥
अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् ॥ ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः ॥ तदेतदन्नमन्ने प्रति-
ष्ठितम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो
भवति ॥ महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ॥ महान् कीर्त्या ॥

इति शृगुवल्ग्यध्याये अष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

अन्नं बहु कुर्वीत ॥ तद्व्रतम् ॥ पृथिवी वा अन्नम् ॥ आकाशोऽन्नादः ॥
पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः ॥ आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता ॥ तदेतदन्नमन्ने
प्रतिष्ठितम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो
भवति ॥ महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ॥ महान् कीर्त्या ॥

इति शृगुवल्ग्यध्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत ॥ तद्वत्तम् ॥ तस्माद्यया कया च विधया
 बह्वन्नं प्राप्नुयात् ॥ अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते ॥ एतद्वै सुखतोऽन्नं राक्षम् ॥
 सुखतोऽस्मा अन्नं राध्यते ॥ एतद्वै मध्यतोऽन्नं राक्षम् ॥ मध्यतोऽस्मा
 अन्नं राध्यते ॥ एतद्वा अन्ततोऽन्नं राक्षम् ॥ अन्ततोऽस्मा अन्नं राध्यते
 ॥ १ ॥ य एवं वेद ॥ क्षेम इति वाचि ॥ योगक्षेम इति प्राणापानयोः ॥
 कर्मेति हस्तयोः ॥ गतिरिति पादयोः ॥ विमुक्तिरिति पायौ ॥ इति मानुषीः
 समाज्ञाः ॥ अथ दैवीः ॥ वृत्तिरिति वृष्टौ ॥ बलमिति विद्युति ॥ २ ॥ यज्ञ
 इति पशुषु ॥ ज्योतिरिति नक्षत्रेषु ॥ प्रजापतिरमृतमानन्द इत्युपस्थे ॥ सर्व-
 मित्याकाशे ॥ तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत ॥ प्रतिष्ठावान् भवति ॥ तन्मह इत्युपा-
 सीत ॥ महान् भवति ॥ तन्मन इत्युपासीत ॥ मानवान् भवति ॥ ३ ॥
 तज्जम इत्युपासीत ॥ नम्यन्तेऽस्मै कामाः ॥ तद्वहेत्युपासीत ॥ ब्रह्मवान्
 भवति ॥ तद्वह्मणः परिमर इत्युपासीत ॥ पर्येणं त्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः ॥
 परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः ॥ स यश्चायं पुरुषे ॥ यश्चासावादित्ये ॥ स एकः
 ॥ ४ ॥ स य एवंविद् ॥ अस्माच्छोकाभ्येत्य ॥ एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥
 एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ एतं
 विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ इमौ-
 श्छोकान्कामाग्नी कामरूप्यनुसंचरन् ॥ एतत्साम गायन्नास्ते ॥ हा३हु हा ३हु
 हा३हु ॥ ५ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ॥ अहमन्नादोऽहमन्नादोऽह-
 मन्नादः ॥ अहं श्लोककृदहं श्लोककृदहं श्लोककृत् ॥ अहमस्मि प्रथमज्ञा
 क्रता ३ स्य ॥ पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य नाश्नायि ॥ यो मा ददाति स इदेव-
 माश्वाः ॥ अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ श्चि ॥ अहं विश्वं भुवनमभ्यभवाश्म् ॥
 सुवर्नज्योतीः ॥ य एवं वेद ॥ इत्युपनिषत् ॥ ६ ॥ (राध्यते विद्युति मान-
 वान्भवत्येको हा ३ हु य एवं वेदैकं च) ॥

इति शृगुवह्न्यध्याये दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

शृगुस्तस्मै यतो वै विशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तन्नयोदशाज्ञं प्राणं मनो
 विज्ञानमिति तद्विज्ञाय तं तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति सैषा दशाज्ञं न
 स्निन्धात् प्राणः शरीरमज्ञं न परिचक्षीतापो ज्योतिरज्ञं बहु कुर्वीत पृथिव्या-
 माकाश एकादशैकादश ॥ न कंचनैकषष्टिरेकाज्ञविंशतिरेकाज्ञविंशतिः ॥
 सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधीतमस्तु
 मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति शृगुवह्न्यध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

खण्डः ३]

ऐतरेयोपनिषत् ॥ ७ ॥

३१

शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥
 शं नो विष्णुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मा-
 सि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥
 तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥
 ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति तैत्तिरीयोपनिषत्संपूर्णा ॥ ७ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

ऐतरेयोपनिषत् ॥ ८ ॥

वाक् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ॥
 वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधोतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं
 वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु
 वक्तारमवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् स ईक्षत लोकांस्तु
 सृजा इति ॥ १ ॥ स इमांल्लोकानसृजत ॥ अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः
 परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः ॥ पृथिवी मरो या अधस्तात्ता
 आपः ॥ २ ॥ स ईक्षतेमे तु लोका लोकरूपांस्तु सृजा इति ॥ सोऽन्य एव
 पुरुषं समुद्भूत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥ तमभ्यतपत्तस्यामितसस्य मुखं निरभिद्यत
 यथाण्डम् ॥ मुखोद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणा-
 द्यायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षीभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां
 कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्गिरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधि-
 वनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत
 नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिशं निरभिद्यत शिश्राद्देतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्पर्यवे प्रापतंस्तमशनापिपासाभ्यामन्व-
 वार्जत् ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति
 ॥ १ ॥ ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ ताभ्योऽश्वमानयत्ता
 अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २ ॥ ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं
 वतेति पुरुषो वाव सुकृतम् ॥ ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ॥ ३ ॥
 अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षु-
 र्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो

लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो
भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥ तमशनापिपासे
अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति ॥ ते अब्रवीदेतास्त्वेव वां देवतास्वाभजा-
म्येतासु भागिन्यौ करोमीति ॥ तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते
भागिन्यावेवास्यामैशनापिपासे भवतः ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १ ॥ सोऽपो-
ऽभ्यतपत् ताम्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत ॥ या वै सा मूर्तिरजायताऽन्नं वै
तत् ॥ २ ॥ तदेनस्पृष्टं पराकृत्यजिघांसत् तद्वाचाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रही-
तुम् ॥ स यद्वैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमन्नप्यत् ॥ ३ ॥ तत्प्राणे-
नाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् ॥ स यद्वैनप्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य
हैवान्नमन्नप्यत् ॥ ४ ॥ तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुम् ॥ स
यद्वैनचक्षुषाऽग्रहैष्यदृष्ट्वा हैवान्नमन्नप्यत् ॥ ५ ॥ तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्ना-
शक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम् ॥ स यद्वैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमन्नप्यत्
॥ ६ ॥ तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुम् ॥ स यद्वैनत्वचाऽग्रहै-
ष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमन्नप्यत् ॥ ७ ॥ तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा
ग्रहीतुम् ॥ स यद्वैनन्मनसाऽग्रहैष्यच्चात्वा हैवान्नमन्नप्यत् ॥ ८ ॥ तच्छिश्ने-
नाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुम् ॥ स यद्वैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्न-
मन्नप्यत् ॥ ९ ॥ तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् । सैषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुर-
न्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १० ॥ स ईक्षत कथं निवदं मदते स्यादिति स ईक्षत
कतरेण प्रपद्या इति ॥ स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं
यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं
यद्यपानेनापानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११ ॥ स एतमेव
सीमानं विदायैतया द्वारा प्रापद्यत ॥ सैषा विदितिनोम द्वास्तदेतन्नान्दनम् ॥ तस्य
त्रय आवसथान्नयः स्वप्ना भयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२ ॥
स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति ॥ स एतमेव पुरुषं
ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमिती ॥ १३ ॥ तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै
नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण ॥ परोक्षमिया इव हि देवाः
परोक्षमिया इव हि देवाः ॥ १४ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

इत्यैतरेये द्वितीयारण्यके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

उपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति ॥ यदेतद्वेतस्तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य-
स्तेजःसंभूतमात्मन्येवात्मानं विभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्येनज्जनयति तदस्य
प्रथमं जन्म ॥ १ ॥ तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथास्त्रमङ्गं तथा ॥
तस्यादेवां न हिनस्ति साऽस्यैतमात्मानमन्नं गतं भावयति ॥ २ ॥ सा आव-
यित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भं विभर्ति सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽ-
ग्रेऽधिभावयति स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भाव-
यत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥
सोऽस्याथमात्मा पुण्येभ्यः कर्मेभ्यः प्रतिधीयतेऽथास्याऽयमितर आत्मा कृत-
कृत्यो वयोगतः प्रैति स इतः प्रयज्ञेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥ ४ ॥
तदुक्तम्विणा । गर्भे तु सन्नन्वेषाम वेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ॥ शतं
मा पुर आयसीररक्षन्नधः ज्वेनो जवसा निरदीयमिति गर्भं एवेतच्छयानो
वामदेव एवमुवाच ॥ ५ ॥ स एवं विद्वानस्माच्छरीरमेदादूर्ध्वं उत्क्रम्यामु-
ष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाह्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥ ६ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इत्यैतरेयारण्यके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ उपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कौऽयमात्मेति वयमुपास्महे कवरः स आत्मा येन वा पश्यति येन वा
शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु
चास्वादु च विजानाति ॥ १ ॥ यदेतद्बुद्धयं मनश्चैतत् ॥ संज्ञानमाज्ञानं
विज्ञानं प्रज्ञानं येधा दृष्टिर्धृतिर्भक्तिर्मेनीया जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः
कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ ॥
एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीर्पीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव ॥
बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जाह्नजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि
चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं
सर्वं तत्प्रज्ञानेन प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेनो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म
॥ ३ ॥ स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माह्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्का-
मानाह्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥ इत्योम् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इत्यैतरेयारण्यके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ उपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अ. उ. ३

वाञ्छो मनसि प्रतिष्ठिता ब्रह्मो मे वाञ्छि अस्तिष्ठितमाविर्वावीर्यं पृथि ॥
 वेदस्य म आणीत्यः श्रुतं मे मा ब्रह्माक्षीरनेनाग्नीदेयाहोरात्राभ्यन्तं दाम्युतं
 ब्रह्मिष्यामि सत्यं ब्रह्मिष्यामि सन्मामवतु तद्वक्त्रमवतवतु मामवतु वक्त्र-
 मवतु वक्त्रम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इत्यैतरेयोपनिषत् संपूर्णा ॥ ८ ॥

ॐ तत्सत् ॥

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च
 सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिरा-
 करणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तद्वत्तमसि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि
 सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्रीथमुपासीत, ओमिति ब्रुवायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥
 एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां
 पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साक्ष उद्रीथो
 रसः ॥ २ ॥ स एष रसानां रसतमः परमः परार्थोऽष्टमो यदुद्रीथः ॥ ३ ॥
 कतमा कतमर्कतमलकतमत्साम कतमः कतम उद्रीथ इति विष्टुष्टं भवति ॥ ४ ॥
 वागेवर्कं प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्रीथः ॥ तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक् च प्राण-
 श्चर्कं च साम च ॥ ५ ॥ तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सप्तसृज्यते यदा वै
 मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तान्न्योव्यस्य कामम् ॥ ६ ॥ आपयिता ह
 वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्रीथमुपास्ते ॥ ७ ॥ तद्वा एतद्वृ-
 ज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्थमि-
 ता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्रीथमुपास्ते ॥ ८ ॥ तेनेयं
 अग्नी विद्या वर्तत ओमित्याश्रावयत्योमिति वाक्सत्योमित्युद्वायत्येवस्यैवाक्षर-
 स्थापयित्यै महिज्ञा रसेन ॥ ९ ॥ तेनोभौ कुरुतो यक्षैतदेवं वेद यश्च न वेद ॥
 नाना तु विद्या चाग्निद्या च तदेव विद्यया करोति ब्रह्मयोपनिषदा तदेव श्रीर्य-
 वत्सरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

देवासुरा ह वै यत्र संवेतिर उभवे प्राजापत्यास्तद् देवा उद्रीथमाप्नुवन्ते-

नैवात्म्यमिदं विष्णुत्वं इति ॥ १ ॥ ते ह नास्मिन् प्राणमुद्रीथमुपासांचकिरे
 तद्हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं शिघ्रंति सुरभि च दुर्गेन्धि च पाप्म-
 ना ह्येष विद्धः ॥ २ ॥ अथ ह वाज्रमुद्रीथमुपासांचकिरे तद्हासुराः पाप्मना
 विविधुस्तस्मात्तेनोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥
 अथ ह चक्षुस्त्रयीथमुपासांचकिरे तद्हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं
 प्रत्यति दृशनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ४ ॥ अथ ह श्रोत्रमु-
 द्रीथमुपासांचकिरे तद्हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं शृणोति श्रव-
 णीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ५ ॥ अथ ह मन उद्रीथमुपासां-
 चकिरे तद्हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं संकल्पयते संकल्पनीयं
 चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ६ ॥ अथ ह य एवायं मुख्यः प्राण-
 स्तमुद्रीथमुपासांचकिरे तद्हासुरा ऋत्वा विद्वध्वं सुर्यथाऽऽमानमाखणमृत्वा
 विध्वंसेत् ॥ ७ ॥ एवं यथाऽऽमानमाखणमृत्वा विध्वंसते एव हेव स
 विध्वंसते य एवंविदि धापं कम्पयते शब्देनमभिद्रासति स एषोऽऽमाखणः
 ॥ ८ ॥ नैवैतेन सुरभि न दुर्गेन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यद्विद्वति
 अस्तिबति तेनेतरान् प्राणानवति । एतमु एवान्ततोऽचित्त्वोक्तामति व्यादृष्टात्ते-
 चान्तत इति ॥ ९ ॥ तद्हासुरा उद्रीथमुपासांचक एतमु एवाक्रिरसं मन्य-
 न्तेऽह्वानां यद्रसः ॥ १० ॥ तेन तद्हासुरा बृहस्पतिरुद्रीथमुपासांचक एतमु एव
 बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्धि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥ तेन तद्हासुरा
 उद्रीथमुपासांचक एतमु एवायासं मन्यन्त आस्थाद्यदयते ॥ १२ ॥ तेन तद्हा-
 सको ब्रह्मो विद्वांचकार ॥ स ह नैसिषीयानामुद्राता बभूव स ह सौम्यः
 कामानायायति ॥ १३ ॥ आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान-
 क्षरमुद्रीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्रीथमुपासीतोयन्वा एष प्रजाभ्य
 उन्नायति उद्यत्समोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै मयस्य तमसो भवति य एवं
 वेद ॥ १ ॥ समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते
 स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिमममुं चोद्रीथमुपासीत ॥ २ ॥
 अथ खलु व्यानमेवोद्रीथमुपासीत यद्वै प्राणिति सं प्राणो यदपानिति
 सोऽपानः ॥ अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक्

तस्मादप्राणजनपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥ या वाक्सर्वतस्मादप्राणजनपानन्वा-
चमभिव्याहरति यर्क्तस्माम तस्मादप्राणजनपानन्वाम गायति यत्स्माम स
उद्गीथस्तस्मादप्राणजनपाननुद्गायति ॥ ४ ॥ अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि
यथाग्नेर्मेन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयसनमप्राणजनपानन्वास्तानि करोत्ये-
तस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥ अथ खल्वुद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ
इति प्राण एवोद्भाणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं यमन्ने
हीदुः सर्वं स्यितम् ॥ ६ ॥ द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी यमादित्य एवो-
द्वायुर्गारमिस्थः सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्गवेदस्यं दुग्धेऽस्यै वाग्दोहं यो
वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त
उद्गीथ इति ॥ ७ ॥ अथ खल्वाग्नीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साक्षा
स्तोष्यन्त्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥ यस्यामृष्टिं तामृष्टं यदार्पेयं तमृष्टिं यां
देवतामभिष्टोष्यन्त्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥ येन च्छन्दसा स्तोष्यन्त्यात्त-
च्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तत् स्तोममुपधावेत् ॥ १० ॥
यां दिशमभिष्टोष्यन्त्यात्तां दिशमुपधावेत् ॥ ११ ॥ आभ्यामन्तत उपसृत्य
स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्यै स कामः समृचेत यत्कामः
स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति हुद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥
देवा वै मृत्योर्विभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशः स्ते छन्दोभिरच्छादयन्त्यदेभिराच्छा-
दयः स्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥ तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिप-
श्येदेवं पर्यपश्यद्वि सांनि यजुषि । ते नु नित्वोर्ध्वा ऋचः सांनो यजुषः
स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥ यदा वा ऋचमामोत्योमित्येवातिस्वरत्येव सामैवं
यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया
अभवन् ॥ ४ ॥ स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरं स्वरममृतमभयं
प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य
उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरज्ञेति ॥ १ ॥ एतमु एवाहमभ्यगासिषं
तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीः स्त्वं पर्यावर्तयाद्वा-
हवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥ अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः

प्राणस्तुद्धीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरश्चेति ॥ ३ ॥ एतमु एनाहमभ्यगासिपं
तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौपीतकिः उत्रमुवाच प्राणास्त्वं भूमानमभि-
गायताद्वहो वै मे भविष्यन्तीति ॥ ४ ॥ अथ खलु य उद्धीथः स प्रणवो
यः प्रणवः स उद्धीथ इति होतृषदनाद्वैवापि दुद्धीतमनुसमाहरतीत्यनुसमा-
हरतीति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इयमेवर्गभिः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मादच्यध्यूढं साम
गीयत इयमेव साऽग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥ अन्तरिक्षमेवर्गयुः साम तदेतदे-
तस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मादच्यध्यूढं साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायु-
रमस्तत्साम ॥ २ ॥ द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मा-
दच्यध्यूढं साम गीयते द्यौरेव सादित्योऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥ नक्षत्राण्येवर्क-
चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मादच्यध्यूढं साम गीयते
नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ॥ ४ ॥ अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं
भाः सैवर्गय यज्ञीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मा-
दच्यध्यूढं साम गीयते ॥ ५ ॥ अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ
यज्ञीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाऽथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते
हिरण्यममश्रुहिरण्यकेश आग्रणस्तासर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥ तस्य यथा
कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित
उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥ तस्यर्कं च साम च गेष्णौ
तस्मादुद्धीथस्तस्मात्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो
लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यभिदैवतम् ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथाध्यात्मं वागेवर्कं प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्माद-
च्यध्यूढं साम गीयते ॥ वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥ चक्षुरेवर्गात्मा
साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं साम तस्मादच्यध्यूढं साम गीयते ॥ चक्षुरेव
साऽऽत्माऽमस्तत्साम ॥ २ ॥ श्रोत्रमेवर्ज्जमनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढं
साम तस्मादच्यध्यूढं साम गीयते ॥ श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥
अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गय यज्ञीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्या-
मृच्यध्यूढं साम तस्मादच्यध्यूढं साम गीयते ॥ अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः
सैव साऽथ यज्ञीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ ४ ॥ अथ य एषोऽन्तरिक्षिणि
पुरुषो दृश्यते सैवर्कतत्साम तदुक्तं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं

यदमुष्य रूपं चावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यज्ञस्य तन्नाम ॥ ५ ॥ स एष ये
 चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति तत्र इमे वीणाधारी
 गायन्त्येते ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥ अथ य एतदेवं विद्वान्नाम
 गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताँ-
 श्चाप्नोति देवकामाँश्च ॥ ७ ॥ अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताँ-
 श्चाप्नोति मनुष्यकामाँश्च तस्माद्दु हेवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥ कं ते
 काममागायानीत्येष ह्येव काममानस्तेष्टे य एवं विद्वान्नाम गायति साम
 गायति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथो होद्रीये कुक्कुला बभूवुः शिलकः शालावत्यञ्चैकितायनो दाहभ्यः
 प्रवाहणो जैवलिरिति, ते होयुरुद्रीये वै कुक्कुलाः सो हन्तोद्रीये कथां वदाम
 इति ॥ १ ॥ तथेति ह समुपविबिभूवुः, स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच, अगव-
 न्तावमे वदतां ब्राह्मणचोर्वदतोर्वाचँ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥ स ह शिलकः
 शालावत्यञ्चैकितायनं दाहभ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति, पृच्छेति होवाच
 ॥ ३ ॥ का साञ्चो गतिरिति, स्वर इति होवाच, स्वरस्य का गतिरिति, प्राण
 इति होवाच, प्राणस्य का गतिरित्यपि इति होवाचाञ्चस्य का गतिरित्याप इति
 होवाच ॥ ४ ॥ अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का
 गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच, स्वर्गं वयं लोकँ सामभिसं-
 स्थापयामः स्वर्गसँस्त्वावँ हि सामेति ॥ ५ ॥ तँ ह शिलकः शालावत्यञ्चैकि-
 तायनं दाहभ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाहभ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा
 ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ॥ ६ ॥ हन्ताहमेतद्भगवतो
 वेदानीति, विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवा-
 चस्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच, प्रतिष्ठां
 वयं लोकँ सामभिसँस्थापयामः प्रतिष्ठासँस्त्वावँ हि सामेति ॥ ७ ॥
 तँ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि
 ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो
 वेदानीति, विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायः खण्डः ॥ ८ ॥

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि
 भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यावा-

नाथः पराजयम् ॥ १ ॥ स एव परोवरीवानुद्रीथः स एषोऽनन्तः परोव-
रीयो ह्यस्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जलि य एतदेवं विद्वान्परोवरीया
समुद्रीथयुपास्ते ॥ २ ॥ तं हेतमसिधन्वा ज्ञानक उदरशाण्डित्यायो-
क्तोवाच यान्त एनं प्रजम्पामुद्रीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हेभ्यस्तावदखिल्लोके
जीवनं भविष्यति ॥ ३ ॥ तथासुष्मिल्लोके लोक इति स य एतदेवं
विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्याखिल्लोके जीवनं भवति तथासुष्मिल्लोके
लोक इति लोके लोक इति ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

मदचीहतेषु कुलवाटिक्या सह जाययोदसिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्रा-
णकं उवाच ॥ १ ॥ स हेभ्यं कुलभाषान्खादन्तं विभिसे तः होवाच ॥
जेतोऽन्ते विचन्ते यज्ञ ये म इम उपनिहिता इति ॥ २ ॥ एतेषां मे देहीति
होवाच, तानसौ प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतं स्यादिति होवाच
॥ ३ ॥ न खिदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानस्तादक्षिति
होवाच कामो म उदपानमिति ॥ ४ ॥ स ह खादिस्वातिशेषाज्जायाया आज-
हार साय एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥ स ह प्रातः
संजिहान उवाच यद्वताज्ञस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्रा राजासौ यक्ष्यते
स मा सर्वैरात्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥ तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुलभाषा
इति तान्खादिस्वाऽमुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥ तन्नोद्गाहृतास्तावे स्तोष्य-
माणानुपोपविचेन्न, स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥ प्रस्तोतर्या देवता प्रस्ताव-
मन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥ एवमे-
वोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्रीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा
ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥ एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच, प्रतिहर्तर्या देवता
प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति, ते ह
समारतास्तुष्णीमासांचक्रिरे ॥ ११ ॥

इति प्रथमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथ हैनं यजमान उवाच, भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीशुषस्तिरसि
चक्रायण इति होवाच ॥ १ ॥ स होवाच, भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरा-
त्विजैः पदैषिषं भगवन्तो वा अहमविऽस्यान्यानवृषि ॥ २ ॥ भगवाँस्त्वेव
मे सर्वैरात्विज्यैरिति तथेत्यथ तद्धेत एव समतिष्ठतः स्तुवतां यावत्वेभ्यो धनं
दद्यास्तावन्मम दद्या इति, तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥ अथ हैनं प्रस्तो-
तोपससादः प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि

१ ५ नमेव इति पाठः । २ उद्गातारमिति पाठः ।

मूर्धा ते विपतिष्यतीति, मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥ प्राण इति होवाच, सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्राप्तोऽप्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥ अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्यां देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गात्स्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति, मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥ आदित्य इति होवाच, सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गात्स्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥ अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद्, प्रतिहर्तर्यां देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति, मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥ अन्नमिति होवाच, सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अथातः श्रौव उद्गीथस्तद्ध बको दासभ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्ब्रज ॥ १ ॥ तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव, तमन्ये श्वान उपसत्सोऽचुरच्चं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥ तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति, तद्ध बको दासभ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयान्चकार ॥ ३ ॥ ते ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सश्रब्धाः सर्पन्तीत्येव मासखपुस्त्ये ह समुपविश्य हिंचक्रुः ॥ ४ ॥ ॐ इमदा इमो इ पिबा इमो इ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता रक्षमिहारः हरदक्षपते रक्षमिहारः हरारः हरारो रक्षमिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अयं वाव लोको हाउकारो त्रायुर्हाङ्कारश्चन्द्रमा अथकार आत्सेहकारोऽग्निरिकारः ॥ १ ॥ आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवा औहोङ्कारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोऽञ्चं या वाऽङ्गिराद् ॥ २ ॥ अनिरुक्तस्योदशः स्तोमः संचरो हुङ्कारः ॥ ३ ॥ दुरधेऽस्मै वाऽदोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानज्ञादो भवति य एतामेव सास्त्रासुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद इति ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ समस्तस्य खलु साम्न उपासनं साधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥ तदुत्ताप्याहुः साध्वैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाध्वैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥ अथोत्ताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥ स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनं साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरूप च नमेयुः ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीत पृथिवी हिंकारोऽग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥ अथावृत्तेषु द्यौर्हिंकार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥ कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वान्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्वनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥ उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपासीत मेघो यत्संश्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः ख्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥ न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरपतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥ कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

पशुषु पञ्चविधं सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वः

प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥ १ ॥ नवमिह ह्यस्य पक्षवः पशुमान्भवति य
एतदेवं चिद्वान्पशुषु पञ्चविधः सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षु-
रूदीयः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाः सि वैतानि ॥ १ ॥ परो-
वरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाक्षयति य एतदेवं चिद्वान्प्राणेषु
पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्ते इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधः सामोपासीत यत्किंच वाचो हृषिति स
हिंकारो यत्वेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥ यदुदिति स उद्गीथो
यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २ ॥
दुग्धेऽसौ वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवान्वाद्यो भवति, य एतदेवं चिद्वान्वाचि
सप्तविधः सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ खल्वमुमादित्यः सप्तविधः सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां
प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥ तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूता-
न्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्त-
स्मात्ते हिंकुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २ ॥ अथ यत्प्रथमोदित्ये
स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकाः प्रशः साकामाः
प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥ अथ यत्सङ्गववेलायाः स आदिस्त-
दस्य वयाः स्यन्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्भणान्यादायात्मानं परिप-
तन्त्यादिभाजिनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥ अथ यत्संप्रति मध्यन्दिने स उद्गी-
थस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो
ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥ अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य
गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य
साम्नः ॥ ६ ॥ अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवंस्तदस्यारण्या
अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षः श्रममित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य
साम्नः ॥ ७ ॥ अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्त-
स्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्नः एवं खल्वमुमादित्यः सप्तविधः
सामोपास्ते ॥ ८ ॥

इति द्वितीयाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ स्वत्वात्मसंमितमतिमृत्यु ससक्विधः सामोपासीत हिंकार इति
 ज्यक्षरं प्रस्ताव इति ज्यक्षरं तत्समम् ॥ १ ॥ आदिरिति व्यक्षरं प्रतिहार इति
 चतुर्क्षरं तत् इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥ उद्गीथ इति ज्यक्षरमुपद्रव इति चतु-
 रक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिस्त्रिभ्यते ज्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥
 निधनमिति ज्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षरमणि
 ॥ ४ ॥ एकविंशत्यादित्यमात्रोत्प्रेक्षविंशो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविंशोन
 परमादिप्राजायति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥ आमोतीहादित्यस्य जयं परो
 हास्यादित्यजयाज्ज्यो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु ससक्विधः
 सामोपास्ते सामोपास्ते ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुर्द्वीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेत-
 द्वायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्रणी-
 भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या
 महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अभिमन्यति स हिंकारो धूमो जयते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गी-
 थोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनं स शास्यति तन्नि-
 धनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्म-
 वर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
 महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्मुनिमात्रमेव निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

उपमन्त्रयते स हिंकारो जपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः
 प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्नि-
 धनमेतद्द्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्द्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं
 वेद मिथुनीभवति मिथुनान्मिथुनाप्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महा-
 न्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

उच्चर्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽह्णं
 यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद
 तेजस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
 महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अग्निं संभवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योत्तते स्तनयति स प्रतिहार उद्ब्रूहति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपाक्षश्च सुररूपाक्षश्च पशून्-वरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं नो निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्तुश्च निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्रयो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥ स य एवमेताः शक्रयो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान् निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधन-मेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ १ ॥ स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान्भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महा-न्कीर्त्या पशून् निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो मांससमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमे-तद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाऽङ्गीभवति नाङ्गेन विद्वच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्जो नाक्षीयात्तद्व्रतं मज्जो नाक्षीयादिति वा ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

अग्निहिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्वाजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वाजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतामासु सलोकतां साधिति सायुज्यं गच्छति

सर्वमायुरेति ज्योर्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणाञ्च निन्देत्तद्वत् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये विंशः खण्डः ॥ २० ॥

त्रयीं विद्यां हिंकारश्च इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाऽसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तृक्षि-
धनमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वं ह भवति ॥ २ ॥ तदेष श्लोकः ॥ यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥ यस्तद्वेद स वेद सर्वं सर्वा दिशो बलिमसौ हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्वत् तद्वत् ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

विनर्दिं सान्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य श्रुद् श्रुक्ष्णं वायोः श्रुक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥ अमृतत्वं देवेभ्य आगाया-
नीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्त्वृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायाज्ञमात्मन आगायानीत्येतां मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥ सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्वे ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा सृष्टो-
रात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालमेतेन्द्रं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यती-
त्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥ अथ यद्येनमूष्मसूपालमेत प्रजापतिं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनं स्पर्शेषूपालमेत सृष्ट्युः शरणं प्रपन्नो-
ऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥ सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्वे ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्याः सृष्टोरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति । प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्म-
चार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥ प्रजापतिर्लोकानभ्यतप-
त्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयीं विद्यां संप्राप्तवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्य-
क्षराणि संप्राप्तवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥ तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य
ॐकारः संप्राप्तवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोकारेण सर्वा
वाक् संतृण्णोकार एवेदं सर्वमोकार एवेदं सर्वम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

ब्रह्मवादिनो ब्रह्मन्ति यद्वसूनां प्रातःसवनं सवनाणां माध्यन्दिनं सव-
 नादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥ क तर्हि यजमा-
 नस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥ २ ॥ पुरा
 प्रातरनुवाकस्योपाकरणाजघनेन गार्हपत्यस्योदबुध उपविश्य स वासवं
 सामाभिगायति ॥ ३ ॥ लो३कद्वारमपावा ३ णूं ३३ पश्येम त्वा वयं स्वा-
 ३ ३ ३ ३ ३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ४ ॥ अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै
 यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ५ ॥ अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽप-
 जहि परिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनं संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥
 पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाजघनेनाग्नीध्रीयस्योदबुध उपविश्य
 स रौद्रं सामाभिगायति ॥ ७ ॥ लो३कद्वारमपावा ३ णूं ३३ पश्येम त्वा
 वयं वैरा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ८ ॥ अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे
 यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ९ ॥ अत्र यजमानः
 परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्य-
 न्दिनं सवनं संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥ पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाजघने-
 नाहवनीयस्योदबुध उपविश्य स आदित्यं स वैश्वदेवं सामाभिगा-
 यति ॥ ११ ॥ लो३कद्वारमपा वा ३ णूं ३३ पश्येम त्वा वयं स्वारा
 ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ १२ ॥ आदि-
 त्यमथ वैश्वदेवं लो३कद्वारमपावा ३ णूं ३३ पश्येम त्वा वयं साक्षा
 ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ १३ ॥ अथ जुहोति
 नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षित्यो लोकक्षित्यो लोकं मे
 यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥ एष वै यजमानस्य लोक एताऽस्म्यत्र यजमानः
 परस्तादायुषः स्वाहाऽपहतपरिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥ १५ ॥ तस्मा आदित्याश्च
 विश्वे च देवास्तृतीयं सवनं संप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं
 वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य धौरेव सिरश्चीनवः सोऽन्तरिक्षमध्वो मरीचयः पुत्राः ॥ १ ॥ तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाढ्यः । अहं हव मधुकृतं क्रगवेद एव पुष्यं ता अमृता आपः ॥ २ ॥ एतन्मृगवेदमभ्यतपः सत्यामितस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यः रसोऽजायत ॥ ३ ॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्यतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितः रूपम् ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाढ्यो यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्यं ता अमृता आपः ॥ १ ॥ तानि वा एतानि यजूंष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपः सत्यामितस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यः रसोऽजायत ॥ २ ॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्यतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य जुहुः रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ येऽस्य प्रत्यङ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाढ्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्यं ता अमृता आपः ॥ १ ॥ तानि वा एतानि सामान्येतः सामवेदमभ्यतपः सत्यामितस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यः रसोऽजायत ॥ २ ॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्यतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णः रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ येऽस्योदङ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाढ्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्यं ता अमृता आपः ॥ १ ॥ ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपः सत्यामितस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यः रसोऽजायत ॥ २ ॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्यतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णः रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाढ्यो गुह्या एवादेशा मधुकृतो ऋग्वेद पुष्यं ता अमृता आपः ॥ १ ॥ ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्व्यक्षरत्तपः सत्यामितस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यः रसोऽजायत ॥ २ ॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्यतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव

॥ ३ ॥ ते वा एते रसानाँ रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा
एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न
पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्मा-
द्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाऽग्निनैव
मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स य एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादु-
देति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव ताव-
दाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ यद्वितीयममृतं तद्ब्रुवा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति
न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्ये-
तस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव
मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति
॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावदक्षिणत उदेतो-
त्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा
अश्नन्ति त पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपम-
भिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामे-
वैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसं-
विशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्त-
मेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यं
स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति
न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्ये-
तस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा
सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपा-

दुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्त्रावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंवि-
शन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येत-
स्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्त्रा-
वदूर्ध्व उदेताऽर्वाङ्स्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष
श्लोकः ॥ १ ॥ न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन ॥ देवा-
स्तोनाहं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥ न ह वा अस्मा उदेति न
निम्लोचति सकृद्विवा हैवासौ भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥
तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालका-
यारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥ इदं वाव तज्येष्ठाय
पुत्राय पिता ब्रह्म प्रभूयात्प्रणाद्याय वाऽन्तेवासिने ॥ ५ ॥ नान्यस्मै कस्मैचन
यद्यप्यस्मा इमामग्निः परिगृहीतां धनस्य पूर्णा दद्यादेतदेव ततो भूय इत्ये-
तदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वै इदं सर्वं
भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥ या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथि-
व्यस्यां हीदं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥ २ ॥ या वै सा
पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एत-
देव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥ यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः
पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥ सैषा
चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतद्वाभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥ तावानस्य महिमा
ततो ज्यायांश्च पुरुषः । पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति
॥ ६ ॥ यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा
पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥ अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै

अ. उ. ४

सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥ अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदे-
तत्पूर्णमप्रवर्ति पूर्णमप्रवर्तिनी५ अयं लभते य एवं वेद ॥ ९ ॥

इति तृतीयाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राण-
सञ्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं
वेद ॥ १ ॥ अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स ध्यानस्तच्छ्रोत्रं स चन्द्रमास्तदे-
तच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥ अथ
योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः सोऽपानः सा वाक् सोऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपा-
सीत ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ अथ योऽस्योदङ्सुषिः
स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्तिंश्च ज्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान्ज्युष्टि-
मान्भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः
स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद
॥ ५ ॥ ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं
पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते
स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥ ६ ॥
अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु
लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मिन्छरीरे
स५ स्यैर्ज्ञानोऽग्निमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णोवपिगृह्य तिनदमिव
नदधुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः
श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत । अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो
यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥ १ ॥
मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः
सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥ एष म आत्मा-
ऽन्तर्हृदयेऽणीयान्नीहेवां यवाद्वा सर्वपाद्वा इयामाकाद्वा इयामाकतण्डुलाद्वा
एष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्यायान्दिवो ज्याया-
नेभ्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥ सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदम-
भ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मतमितः प्रेत्याभिसंभविता-
स्मीति यस्य स्याद्ब्रह्म न विचिकित्साऽस्मीति ह स्याद् शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

खण्डः १६]

छान्दोग्योपनिषद् ॥ ९ ॥

५१

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य सक्तयो द्यौर-
 स्योत्तरं बिलं स एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदं श्रितम् ॥ १ ॥ तस्य
 प्राची दिग्बुध्नूनां सहमाना चाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूला
 नामोदीची तासां चायुर्वत्सः स य एतमेवं चायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदं
 रोदिति सोऽहमेतमेवं चायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदं रुदम् ॥ २ ॥ अरिष्टं
 कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽ-
 मुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥
 स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच तमेव
 तत्प्रापत्ति ॥ ४ ॥ अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं
 अपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥ अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं
 अपद्ये चायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ६ ॥ अथ यदवोचं
 स्वः प्रपद्य इत्युर्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तद-
 पोचम् ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंश-
 शक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव
 एते हीदं सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स
 ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनं सवनमनुसंतनुतेति माऽहं
 प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥
 अथ यानि चतुश्चत्वारिंशर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनं चतुश्चत्वारिंशदक्षरा
 त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा
 एते हीदं सर्वं रोदयन्ति ॥ ३ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स
 ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनं सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माऽहं
 प्राणानां रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति
 ॥ ४ ॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा
 जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते
 हीदं सर्वमाददते ॥ ५ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा
 आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां
 मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ६ ॥ एतद्ध स वै
 तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्या-
 मीति स ह षोडशं वर्षं शतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षं शतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षा ॥ १ ॥ अथ
यदभ्राति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥ २ ॥ अथ यद्वसति यज्जक्षति
यन्मैथुनं चरति स्तुतश्चैरेव तदेति ॥ ३ ॥ अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा
सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥ तस्मादाहुः सोष्यत्यस्योष्टेति पुन-
रुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावमृत्यः ॥ ५ ॥ तद्धेतद्वोर आङ्गिरसः कृष्णाय
देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतन्नयं प्रति-
पद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥
आदिभ्यस्त्वस्य रेतस उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरं स्वः पश्यन्त
उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भव-
त्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥ १ ॥ तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म वाक्पादः प्राणः पाद-
श्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः
पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥
वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च
तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥ प्राण एव ब्रह्मण-
श्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च
कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥ चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः
स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा
ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥ श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्यो-
तिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य
एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्स-
मभवत्तदाण्डं निरवर्तत तत्सर्वस्वरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्ड-
कपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ १ ॥ तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सु-
वर्णं सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्ब्रं स मेघो नीहारो या धमनयस्ता
नद्यो यद्वास्तेयमुदकं स समुद्रः ॥ २ ॥ अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं
जायमानं घोषा उल्लुब्धोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि च सर्वे च कामास्त-
स्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उल्लुब्धोऽनूदतिष्ठन्ति सर्वाणि च

भूतानि सर्वे चैव कामाः ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽ-
भ्याशो ह यदेन५ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरूप च निम्नेऽदेरन्निम्नेऽदेरन् ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ जानश्रुतिर्हं पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह
सर्वत भावसथान्मापयांचक्रे सर्वत एव मेऽस्त्यन्तीति ॥ १ ॥ अथ ह ह९सा
निशायामतिषेतुस्तद्वेव९ ह९सो ह९समभ्युवाद हो होऽयिं भल्लाक्ष भल्लाक्ष
जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा
प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥ तमु ह परः प्रत्युवाच कम्बर एनमेतत्सन्त९सयुगवान-
मिव रैकमात्येति यो नु कथ९ सयुगवा रैक इति ॥ ३ ॥ यथा कृतायविजि-
तायाधरेयाः संयन्त्येवमेन९ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति
यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥ तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण
उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुगवानमिव रैकमा-
त्येति यो नु कथ९ सयुगवा रैक इति ॥ ५ ॥ यथा कृतायविजितायाधरेयाः
संयन्त्येवमेन९ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स
वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥ स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रलेयाय त९
होवाच यन्नारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमच्छेति ॥ ७ ॥ सोऽधस्ताच्छकटस्य
पामानं कपमाणमुपोपविवेश त९ हाम्युवाद त्वं नु भगवः सयुगवा रैक
इत्यह९ श्वरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रलेयाय ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः पद शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय
प्रतिचक्रमे त९ हाम्युवाद ॥ १ ॥ रैकैमानि षट् शतानि गवामयं निष्कोऽय-
मश्वतरीरथो नु म एतां भगवो देवता९ शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥
तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्रं तवैव सह गोभिरस्त्विति तदुह पुन-
रेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय
प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥ त९ हाम्युवाद रैकेद९ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरी-
रथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्तेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४ ॥ तस्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह सुखमुपोद्गच्छुवाचाजहरेमाः श्मद्गानेनैव सुखेनालापयिष्यथा इति ते
हेते रैक्षणी नाम महावृषेभु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

वायुर्वाच संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति
वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥ यदाप उच्छ्रुष्यन्ति
वायुमेवापियन्ति वायुर्होवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥ अथाध्यात्मं
प्राणो वाच संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं
प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥ ३ ॥ तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायु-
रैव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥ अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च
काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी निभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥ स
होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपासं कापेय
नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न
दत्तमिति ॥ ६ ॥ तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायाऽऽत्मा देवानां
जनिता प्रजानां हिरण्यदंष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरन-
क्षमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति
॥ ७ ॥ तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश संतस्तत्कृतं तस्मा-
त्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतं सैषा विराडन्नादी तयेदं सर्वं दष्टं सर्वमख्येदं
दष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्नयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विव-
त्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥ १ ॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गो-
त्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलमे साऽहमेतन्न वेद
यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्य-
काम एव जाबालो भुवीथा इति ॥ २ ॥ सह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच
प्रत्यक्षं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥ तं होवाच किंगोत्रो
तु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं स
मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलमे साऽहमेतन्न वेद
यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहं
सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतद्ब्राह्मणं
विवक्षुमर्हति समिधं सोम्याऽऽहरोप त्वा नेत्ये न सत्यादगा इति तमुपनी-
कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति त

अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवाच ता यदा सहस्रं संपेदुः ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्रासाः सोम्य सहस्रं सः प्रापन्न न आचार्यकुलम् ॥ १ ॥ ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥ स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाजयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्रोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि-सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्-पोपविवेश ॥ १ ॥ तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रति-शुश्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतु-ष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवाज्ञाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाजयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

हँसस्ते पादं वक्तेति स ह श्रोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि-सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्-पोपविवेश ॥ १ ॥ तँ हँस उपनिषत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वाँश्च-तुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाजयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योति-ष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

मद्गृष्टे पादं वक्तेति स ह श्रोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्पोप-

विवेश ॥ १ ॥ तं मद्गुरुपनिषत्प्राप्त्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवानाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते आयतनवानसिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाक्षयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

प्राप हाऽऽचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥ ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥ श्रुतँ ह्येव मे भगवद्गुरुभ्य आचार्याद्वैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचान्न ह न किंचन वीयायेति वीयायेति ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवाच तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्माऽन्यानन्तेवासिनः समावर्तयँस्तँ ह स्मैव न समावर्तयति ॥ १ ॥ तं जायोवाच तसो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाऽभ्यः परिप्रवोचन्प्रब्रूहस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासांचके ॥ २ ॥ स ह व्याधिनाऽनशितुं दग्धे तमाचार्यं जायोवाच ब्रह्मचारिज्ञान किं नु नाश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्मया व्याधिभिः प्रतिपूर्णाऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥ अथ हाभ्यः समूदिरे तसो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः ॥ ४ ॥ प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरजमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योऽजीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्ते उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

ते होचुरूपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्यात्मविद्या चाचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति ॥ १ ॥ भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु माऽनुशिष्याङ्गो इतीहापेव निह्रुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्युदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ २ ॥ इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोका-न्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति ॥१॥ एतँ संय-द्राम इत्याचक्षत एतँ हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥ एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥ एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥ अथ यदु चैवास्मिन्लब्धं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह आर्प्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्पडुदङ्केति मासाँस्तान्मासेभ्यः संवत्सरँ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥५॥

इति चतुर्थाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यज्ञिदं सर्वं पुनाति यदेष यज्ञिदं सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ॥ १ ॥ तयोरन्यतरां मनसा सँस्करोति ब्रह्मा वाचा होताऽध्वर्युरुद्धातान्यतराँ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥ अन्यतरामेव वर्तनीँ सँस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद्भजत्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञँ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ३ ॥ अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाकेन पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्तनी सँस्कुरुवन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥ स यथोभयपाद्भजत्रयो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाँ रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायु-
मन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥ १ ॥ स एतास्त्रिस्तो देवता अभ्यतपत्तासां तप्य-
मानानाँ रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूँषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥ स
एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृहद्भूरित्यृगभ्यो भुवरिति
यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥ तद्यद्युक्तो रिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये
जुहुयादचामेव तद्रसेनर्चा वीर्येणर्चा यज्ञस्य विरिष्टँ संदधाति ॥ ४ ॥ अथ
यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां
वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टँ संदधाति ॥ ५ ॥ अथ यदि सामतो रिष्ये-
त्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्सामामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य
विरिष्टँ संदधाति ॥ ६ ॥ तद्यथा लवणेन सुवर्णँ संदध्यात्सुवर्णेन रज-
तँ रजतेन त्रपु त्रपुणा सीसँ सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ७ ॥
एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रया विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टँ
संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥ एष ह वा
उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदँ ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा
यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥ मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरुनश्वाभिर-
क्षत्येवंविद् वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानँ सर्वाँश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवंविदमेव
ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ ॥ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥ यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥ यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिँश्च श्लोकेऽसुष्मिँश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥ यो ह वै संपदं वेद सँहास्यै कामाः पद्यन्ते देवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ॥ ४ ॥ यो ह वा आयतनं वेदायतनँ ह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥ अथ ह प्राणा अहँ श्रेयसि व्यूदिरेऽहँ श्रेयानस्म्यहँ श्रेयानसीति ॥ ६ ॥ ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥ चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥ श्रोत्रँहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥ मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥ अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पङ्कीशशङ्खसंखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तँ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्कमीरिति ॥ १२ ॥ अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ॥ १३ ॥ अथ हैनं श्रोत्रमुवाच यदहँ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥ न वै वाचो न चक्षूँपि न श्रोत्राणि न मनाँसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो हेवैतानि सर्वाणि भवति ॥ १५ ॥

इति पञ्चमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किंचिदिदमाश्रम्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदन्नस्यान्नमनो तै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किंच-

नानन्नं भवतीति ॥ १ ॥ स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचु-
स्तस्माद्वा एतदक्षिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्चान्निः परिदधति लम्भुको ह वासो
भवत्यनघो ह भवति ॥ २ ॥ तद्वैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्र-
पद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरक्षेवासिन्च्छाखाः प्ररो-
हेयुः पलाशानीति ॥ ३ ॥ अथ यदि महज्जिगमिपेदमावास्यायां दीक्षित्वा
पौर्णमास्यां रात्रौ सर्वौपधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहे-
त्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥ ४ ॥ वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावा-
ज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे
संपातमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाय
स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥ ५ ॥ अथ प्रतिसृष्ट्याञ्जलौ
मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदं स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो
राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यं श्रेष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदं सर्व-
मसानीति ॥ ६ ॥ अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्या-
चामति वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठं सर्वधातममित्याचामति तुरं
भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति निर्णिज्य कंसं चमसं वा पश्चादग्नेः
संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत्स-
मृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ७ ॥ तदेष श्लोकः ॥ यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं
स्वप्नेषु पश्यति ॥ समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शन
इति ॥ ८ ॥

इति पञ्चमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

श्वेतकेतुर्हार्णवेयः पञ्चालानां समितिमेयाय तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच
कुमारानु त्वाऽक्षिष्यति तेत्यनु हि भगव इति ॥ १ ॥ वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः
प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्तन्त ३ इति न भगव इति वेत्थ
पथोर्देवयानस्य पितृयानस्य च व्यावर्तना ३ इति न भगव इति ॥ २ ॥ वेत्थ
यथासौ लोको न संपूर्यत ३ इति न भगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुता-
वापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति ॥ ३ ॥ अथानु किमनुशिष्टोऽबो-
चथा यो हीमानि न विद्यात्कथं सोऽनुशिष्टो ब्रवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुर-
र्धमेयाय तं होवाचाऽननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽक्षिष्यमिति
॥ ४ ॥ पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकं च नाशकं विवक्तुमिति
स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकं च न वेद यद्यहमिमानवे-
दिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥ स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्रासा-

यार्हाचकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय त९ होवाच मानुषस्य भगवन्नौ-
तम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यासेव
कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ॥ ६ ॥ त९
ह चिरं वसेत्याज्ञापयांचकार त९ होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न
प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति तस्माद्दु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव
प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ७ ॥

इति पञ्चमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्च-
न्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां
जुहति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिर-
ङ्गारा हादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोम९ राजानं
जुहति तस्या आहुतेर्वैर्ष९ संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिर-
र्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा
वर्षं जुहति तस्या आहुतेरन्न९ संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः
श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुहति तस्या आहुते
रेतः संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योति-
रर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मि-
न्नग्नौ देवा रेतो जुहति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो
दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते ॥ १ ॥ स जातो
यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः
संभूतो भवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

तद्य इत्थं विदुः । ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्य-
र्चिषोऽहरह्य आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्बद्धद्वेति मासाँस्तान् ॥ १ ॥
मासेभ्यः संवत्सरँ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पु-
रुषोऽमानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥ अथ य
इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्वाग्निं रात्रेरपर-
पक्षमपरपक्षाद्यान्बद्धदक्षिणेति मासाँस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥
मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेव सोमो राजा तद्दे-
वानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥ तस्मिन्यावत्संपातमुपित्वाऽथैतमेवाध्वानं
पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽन्नं
भवति ॥ ५ ॥ अन्नं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह
व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं
यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ६ ॥ तद्य इह रमणीय-
चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं
वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमाप-
द्येरन् श्रयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥ अथैतयोः पथोर्न
कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व
त्रियस्वेत्येतत्तृतीयँ स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते तस्माज्जगुप्सेत तदेष
श्लोकः ॥ ८ ॥ स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबँश्च गुरोस्तल्पमावसन्नब्रह्म ह च । एते
पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरँस्तैरिति ॥ ९ ॥ अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नी-
न्वेद न स ह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य
एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥

इति पञ्चमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

प्राचीनशाल औषमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरेन्द्रियुद्धो भाल्लवेयो जनः
शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य
मीमाँसां चक्रुः को नु आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ १ ॥ ते ह संपादयांचक्रुर्ब्रह्म-
लोको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तँ हन्ताभ्या-
गच्छामेति तँ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥ स ह संपादयां चकार प्रक्षयन्ति मामिमे
महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशा-
सानीति ॥ ३ ॥ तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं
वैश्वानरमध्येति तँ हन्ताभ्यागच्छामेति तँ हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥ तेभ्यो ह
प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयांचकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो

खण्डः १४]

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

६३

जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो
यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि ताव-
द्भगवन्तो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५ ॥ ते होसुर्येन हेवार्येन पुरु-
षश्चरेत्त५ हेव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानर५ संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥ ६ ॥
तान्होवाच प्रातर्बः प्रतिवक्तासीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे
तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ७ ॥

इति पञ्चमाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष
वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं
कुले दृश्यते ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्स्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं
कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच
मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्या-
दित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमा-
त्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥ प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो
दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्स्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं
कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वे तदात्मन इति होवाचान्धोऽ-
भविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

अथ होवाचेन्द्रियुन्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायु-
मेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्बल्य आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं
पश्यसि प्रियमत्स्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं
वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां
नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अथ होवाच जन५ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो
राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं
बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्स्यन्नं

पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते
संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

अथ होवाच बुडिलमाश्वतरांश्चि वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप
एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्ते
तस्मात्त्वयं रयिमान्पुष्टिमानसि ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्स्यन्नं पश्यति
प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष
आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यमेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव
भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्ते
तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रिय-
मत्स्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानर-
मुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नाग-
मिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वांसोऽन्नमत्थ
यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु
सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्व्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥ तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य
मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विंश्रूपः प्राणः पृथग्वात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव
रयिः पृथिव्येव पादाबुव एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्य-
पचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

तद्यज्ञक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयं स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुया-
त्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ १ ॥ प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि
तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच
द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन
तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्वायुनाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥ १ ॥

ज्वाने तृप्यति ओत्रं तृप्यति ओत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति
दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति
तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये विंशः खण्डः ॥ २० ॥

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥
अपाने तृप्यति वास्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्वमौ तृप्यति पृथिवी
तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किंच पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तृप्यति तस्या
नु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याय एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ॥ १ ॥
समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्वे तृप्यति
विष्टुस्तृप्यति विष्टुति तृप्यन्त्यां यत्किंच विष्टुश्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तृप्यति
तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥
उदाने तृप्यति त्वक् तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्या-
काशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किंच वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तृप्यति तस्यानु
तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य भस्मति जुहुयात्तादह-
त्स्वात् ॥ १ ॥ अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु
सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्व्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥ तद्यथेवीकात्तुलममौ प्रोतं प्रदू-
यैतैव* हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥
तस्मादु हैव*विद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे
हुत* स्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥ यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते ।
एव* सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ श्वेतकेतुर्होऽऽरुणेय आस तँ ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥ स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध पुराय तँ ह पितोवाच श्वेतकेतो यद्वु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्त्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥ २ ॥ येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥ ३ ॥ यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेलेव सत्यम् ॥ ४ ॥ यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ ५ ॥ यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कण्ठ्यायसं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेव सोम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६ ॥ न वै नूनं भगवन्तस्त एतद्वेदिषुर्यच्चेतद्वेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाँस्त्वेव मे तद्वीक्ष्यति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

इति षष्ठाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ तद्वैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥ १ ॥ कुतस्तु खलु सोम्यैव स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति ॥ सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥ तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत ॥ तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥ ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यन्न एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिजमिति ॥ १ ॥ सेयं देवतैक्षत इन्ताहमिमास्त्रिस्तो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥ तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्त्रिस्तो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥ ३ ॥ तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्त्रिस्तो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

खण्डः ६]

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

६७

यदग्ने रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागा-
 दग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥
 यदादित्यस्य रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापा-
 गादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव
 सत्यम् ॥ २ ॥ यच्चन्द्रमसो रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं
 तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणी-
 त्येव सत्यम् ॥ ३ ॥ यद्विद्युतो रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं
 तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव
 सत्यम् ॥ ४ ॥ एतद्व स वै तद्विद्वाँस आहुः पूर्वं महाशाला महाश्रोत्रिया
 न नोऽथ कश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति हेभ्यो विदांचकुः ॥ ५ ॥
 यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदांचकुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्य-
 पा रूपमिति तद्विदांचकुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदांचकुः
 ॥ ६ ॥ यद्विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानां समास इति तद्विदांच-
 कुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिष्ठो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्रिवृदेकैका
 भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ७ ॥

इति षष्ठाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अन्नमक्षितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तपुरीषं भवति यो
 मध्यमस्तन्माँसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥ आगः पीताश्वेधा विधीयन्ते तासां
 यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लो हेतं योऽणिष्ठः स प्राणः
 ॥ २ ॥ तेजोऽक्षितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति
 यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ३ ॥ अन्नमयं हि सोम्य
 मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति
 तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

दक्षः सोम्य मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति
 ॥ १ ॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्वमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति
 तन्मनो भवति ॥ २ ॥ अपाँ सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः
 समुदीषति स प्राणो भवति ॥ ३ ॥ तेजसः सोम्याश्वमानस्य योऽणिमा स
 ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥ अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः
 प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति
 होवाच ॥ ५ ॥

इति षष्ठाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममपः पिबापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति ॥ १ ॥ स ह पञ्चदशाहानि नाऽऽशाय हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूंषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ २ ॥ तः होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः ख्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवः सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तथैतर्हि वेदानुभवस्य शानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥ स हाशाय हैनमुपससाद तः ह यत्किञ्च यप्रच्छ सर्वः ह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥ तः होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं ख्योतमात्रं परिशिष्टं तं तुणैरुपसमाधाय प्राञ्चलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेव ॥ ५ ॥ एवः सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाभूत्साऽग्नेनोपसमाहिता प्राञ्चाली तथैतर्हि वेदानुभवस्यज्ञमयः हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी चागिति तद्वास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६ ॥

इति षष्ठाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

उद्दालको हाऽऽरुणः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वमान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनः स्वपितीत्याचक्षते स्वः स्वपीतो भवति ॥ १ ॥ स यथा शकुनिः सुत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनः हि सोम्य मन इति ॥ २ ॥ अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिपति नामाप एव तदक्षितं नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽश्वनायेति तत्रैतच्छुक्रमुत्पतितः सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ३ ॥ तस्य क मूलः स्यादन्यत्राज्ञादेवमेव खलु सोम्याग्नेन शुक्नेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुक्नेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुक्नेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥ अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्त्येति तत्रैतदेव शुक्रमुत्पतितः सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ५ ॥ तस्य क मूलः स्यादन्यत्रान्योऽद्भिः सोम्य शुक्नेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुक्नेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्त्रिभ्यो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते

मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥ स य एषोऽणिमै-
तदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति श्रूय एव मा
भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

इति षष्ठाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निक्षिप्यन्ति नानात्मयानां वृक्षाणां रसान्सम-
वहारमेकतां रसं गमयन्ति ॥ १ ॥ ते यथा तत्र न विद्येकं लभन्तेऽमुष्याहं
वृक्षस्य रसोऽस्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्योत्प्लेवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः
सति संपद्य न विदुः सति संपद्यामह इति ॥ २ ॥ त इह व्याघ्रो वा सिंहो
वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यन्न-
वन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स
आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति श्रूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा
सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्पृथीच्यास्ताः समुद्रात्समुद्र-
मेवापियन्ति समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति
॥ १ ॥ एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत
अगाच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा
पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यन्नवन्ति तदाभवन्ति ॥ २ ॥ स य
एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति
श्रूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याजीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्या-
हन्याजीवन् स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याजीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपी-
यमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥ अस्य च देकांश्च द्वासां जीवो जहात्यथ सा
शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं
जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्मोति होवाच ॥ २ ॥ जीवापेक्षं
वाच किलेदं त्रियते न जीवो त्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं
सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति श्रूय एव मा भगवान्
विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्धीति भिक्षं भगव इति किमन्न

पश्यसीत्यथ्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्वीति भिन्ना भगव
इति किमत्र पश्यसीति न किंचन भगव इति ॥ १ ॥ त५ होवाच यं वै सोम्यै-
तमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिञ्ज एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति
अद्धत्स्व सोम्येति ॥ २ ॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स
आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा
सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार त५
होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥ १ ॥
यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति
कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोप-
सीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते त५ होवाचात्र वाव किल
सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ २ ॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं
सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्
विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽनिजने विसृजेत्स
यथा तत्र प्राङ्मोदङ्माधराङ्मा प्रत्यङ्मा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धा-
क्षो विसृष्टः ॥ १ ॥ तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रवृणोदेतां दिशं गन्धारा एतां
दिशं व्रजेति स ग्रामाङ्गामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंघेतैव-
मेवेहाचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य
इति ॥ २ ॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्व-
मसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति
होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

पुरुषं सोम्येतोपतापिनं ज्ञातयः पशुपासते जानासि मां जानासि
मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां
देवतायां तावज्जानाति ॥ १ ॥ अथ यदास्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे
प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ २ ॥ स य एषोऽणि-
मैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव
मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

पुरुषः सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्यपहार्पिस्तेयमकार्षीत्परशुमसौ तप-
तेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिस-
न्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥
अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यामात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः
सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥ २ ॥
स यथा तत्र नादाद्येतैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सस्य स आत्मा तत्त्वमसि श्वेत-
केतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ॐ ॥ अधीहि भगव इति हापससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच
यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥ १ ॥ ऋग्वेदं भग-
वोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां
वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूत-
विद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥ सोऽहं
भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतं ह्येव मे भगवद्वृशेभ्यस्तरति शोकमात्म-
विदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाच्छोकस्य पारं तारयत्विति
तं होवाच यद्वै किंचितदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ३ ॥ नाम वा ऋग्वेदो यजु-
र्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो
राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या
नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्त्विति ॥ ४ ॥ स यो नाम ब्रह्मे-
त्युपास्ते यावद्ब्राह्मो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपा-
स्तेऽस्ति भगवो नास्ते भूय इति नास्ते वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्र-
वीत्विति ॥ ५ ॥

इति सप्तमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

वागवाव नास्ते भूयसी वागवा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेद-
माथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं
वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां
सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाश्च

मनुष्याः पशूः च यथाऽस्ति च तृणवनस्पतीन्पुष्पापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिक
धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च
यद्वै वाङ्मनाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु
नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवंतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्तेति
॥ १ ॥ स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो
भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाक्षौ
मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति
मन्त्रानधीयीत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीत्यथ कुरुते पुत्राः पशूः श्रेष्ठेभ्ये-
त्यथेच्छत इमं च लोकमयुं चेच्छेय्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको
मनो हि ब्रह्म मन उपास्तेति ॥ १ ॥ स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो
गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो
मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

संकल्पो वाव मनसो भूतान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमी-
रयति तामु नाङ्गीरयति नाङ्गि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥
तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि
समकल्पतां चावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च
तेजश्च तेषां संकृष्यै वर्षं संकल्पते वर्षस्य संकृष्या अन्नं संकल्पतेऽन्नस्य
संकृष्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानां संकृष्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणां
संकृष्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणां संकृष्यै लोकः संकल्पते लोकस्य
संकृष्यै सर्वं संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्तेति ॥ २ ॥ स यः संकल्पं
ब्रह्मेत्युपास्ते कृसान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यय-
मानानव्ययमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो
भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संकल्पाद्वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ
वाचमीरयति तामु नाङ्गीरयति नाङ्गि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि

॥ १ ॥ तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्याद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवेनमाहुर्नयं वेद यद्वा अयं विद्वांस्तेष्वमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविद्वित्तवान्भवति तस्या एवोत शुभ्रवन्ते चित्तं ह्येवैषांनेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्त्वेति ॥ २ ॥ स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति सप्तमाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांश्चा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कल्हिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांश्चा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्त्वेति ॥ १ ॥ स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावच्चानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं देवं निर्धिं वाकोवाक्यमैकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पद्भूंश्च वयांस्ति च तृणवनस्पतीन्कापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चक्षुः च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्त्वेति ॥ १ ॥ स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकान् विज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता

भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता
भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्ब-
लेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाँसि च तृणवनस्पतयः
श्वपदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्वेति ॥ १ ॥ स
यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलान्द्रय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भग-
वान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अन्नं वाव बलान्द्रयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाभीयाद्यु ह जीवेदथवाऽद्र-
ष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽयं द्रष्टा भवति श्रोता
भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्वेति
॥ १ ॥ स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावद-
न्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नान्द्रय
इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

आपो वावान्नान्द्रयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं
कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु
भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यस्पर्वता यद्देव-
मनुष्या यत्पशवश्च वयाँसि च तृणवनस्पतयः श्वपदान्याकीटपतङ्गपिपीलक-
माप एवेमा मूर्ता अप उपास्वेति ॥ १ ॥ स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वा-
न्कामाँस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नो भूय इत्यन्नो वा भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्र-
वीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

तेजो वावान्नो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्णाकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति
नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदे-
तद्दूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विबुधिराहादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तन-
यति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपा-
स्वेति ॥ १ ॥ स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भा-
स्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति

यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्रा-
ण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आका-
शे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्तेति ॥ १ ॥
स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसंवाधानु-
रुगायवतोऽभिसिद्ध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य
आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे
भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

सरो वावाकाशाद्भूयस्तस्याद्यपि बहव आसीरन्नसरन्तो नैव ते कंचन
शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन् यदा वाव ते सरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ
विजानीरन् सरेण वै पुत्रान्विजानाति सरेण पशून् सरमुपास्तेति ॥ १ ॥
स यः सरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्सरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः
सरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः सराद्भूय इति सराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे
भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आशा वाव सराद्भूयस्याशेद्धो वै सरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राँश्च
पशूँश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्तेति ॥ १ ॥ स य
आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृच्यन्त्यमोघा हास्याक्षिषो
भवन्ति यावदाशया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्यु-
पास्तेऽस्ति भगव आशया भूय इत्याशया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवा-
न्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

प्राणो वा आशया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे
सर्वेँ समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो
ह पिता प्राणो माता प्राणो आता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः
॥ १ ॥ स यदि पितरं वा मातरं वा आतरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं
वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि
मातृहा वै त्वमसि आतृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्माचार्यहा वै त्वमसि

ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ २ ॥ अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणान् शूलेन समालं
व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न
स्वसृहाऽसीति नाचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥ प्राणो ह्येवतास्मि
सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एव विज्ञानव्रतिवादी
भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यसीति ब्रूयान्नापडुवीत ॥ ४ ॥

इति सप्तमाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

एष तु वा भतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदा-
नीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविज्ञानम् सत्यं वदति विज्ञानमेव
सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास
इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्त्वेव विजानाति
मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

यदा वै श्रद्धात्यथ मनुते नाश्रद्धधन्मनुते श्रद्धदेव मनुते श्रद्धा त्वेव
विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याय एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्धाति नानिस्तिष्ठन्श्रद्धाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्धा-
धाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये विंशः खण्डः ॥ २० ॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वेव निस्तिष्ठति
कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याय एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा
करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

यो वै भूमा तत्सुखं नात्ये सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञा-
सितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

खण्डः २६]

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

७७

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्य-
त्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदस्युतमथ यदल्पं
तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति
॥ १ ॥ गोभक्षमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्याधतन्-
नीति नाहमेवं ज्वीमि ज्वीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स
एवेदं सर्वमिष्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं
पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति ॥ १ ॥ अथात आत्मादेह
एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मो-
त्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्ना-
त्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराद्भवति तस्य सर्वेषु
लोकेषु कामचारो भवति । अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्तो क्षत्र्यलोका
भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये पञ्चविंशः खण्डः ॥ २५ ॥

तस्य ह वा एतत्सर्वं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण
आत्मत आशात्मतः खर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत
आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यान-
मात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो
मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदं सर्वमिति ॥ १ ॥ तदेव श्लोको न पश्ये
मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति
सर्वंश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुन-
श्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिराहारशुद्धौ सख-
शुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्यैव मृदि-
तकषायाय तमसस्सारं दर्शयति भगवान् सनात्कुमारस्तं स्कन्द इत्याच-
क्षते तं स्कन्द इत्याचक्षते ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये षड्विंशः खण्डः ॥ २६ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ॐ अथ यदिदमस्मिन्नब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेदम दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश-
स्मिन्नन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ १ ॥ तं चेद्भूयुर्यदिदम-
स्मिन्नब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेदम दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते
यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ २ ॥ यावान्वा अयमाका-
शास्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते
उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसोऽपि विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्यैहास्ति यच्च
नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥ ३ ॥ तं चेद्भूयुरस्मिन् श्रेदिदं ब्रह्मपुरे
सर्वं समाहितं सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वामोति प्रध्वं-
सते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ४ ॥ स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न
वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्माऽपहत-
पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो
यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति
यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति ॥ ५ ॥ तद्यथेह कर्मजितो लोकः
क्षीयत एवमेवायमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमननुविद्य ब्रज-
न्येताः सत्यान् कामाः स्तेषाः सर्वेषु लोकेष्वकामचारो अवत्यथ यं
इहात्मानमनुविद्य ब्रजन्येताः सत्यान् कामाः स्तेषाः सर्वेषु लोकेषु
कामचारो भवति ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन
पितृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ १ ॥ अथ यदि मातृलोककामो भवति संक-
ल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥
अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन
भ्रातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ३ ॥ अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संक-
ल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ४ ॥
अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन
सखिलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ५ ॥ अथ यदि गन्धमात्यलोककामो भवति
संकल्पादेवास्य गन्धमात्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमात्यलोकेन संपन्नो महीयते
॥ ६ ॥ अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठ-
तस्तेनान्नपानलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ७ ॥ अथ यदि गीतवादितलोक-
कामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादिते समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादितलोकेन

खण्डः ५]

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

७९

संपन्नो महीयते ॥ ८ ॥ अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्त्र
स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ९ ॥ यं यमन्तमभि-
कामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो
महीयते ॥ १० ॥

इत्यष्टमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

त इमे सत्याः कामाः अनृतमपिधानास्तेषां सत्यानां सतामनृतमपिधानं
यो यो ह्यस्येत्यत्रैति न तस्मिन् दर्शनाय लभते ॥ १ ॥ अथ ये चास्येह जीवा
ये च प्रेता यस्यान्यदिच्छन्ति लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः
कामाः अनृतमपिधानास्तस्यापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संच-
रन्तो न विन्देयुरवमेवेष्टाः सर्वाः प्रजा अहरर्ह्यच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न
विन्दन्त्यनृतेन हि अस्यूदाः ॥ २ ॥ स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं
हृदयमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंविस्वर्गं लोकमेति ॥ ३ ॥ अथ य एष
संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिलिख्यत
एष आत्मेति होवाचतदसृष्टतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम
सत्यमिति ॥ ४ ॥ तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्त-
दसृष्टतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोमे यच्छति यदनेनोमे यच्छति तस्माद्य-
महरहर्वा एवंविस्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

इत्यष्टमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ य आत्मा स सेतुर्विद्युतिरेषां लोकानामसंसेदाय नैतं सेतुमहोरात्रे
तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वं पाप्मानोऽतो
निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा शेष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥ तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वाऽन्धः
सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति
तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिलिख्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्म-
लोकः ॥ २ ॥ तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष
ब्रह्मलोकस्तेषां सवेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते-
ऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्टात्मानमनुविन्दते
॥ १ ॥ अथ यत्सन्नायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत् आत्म-
नन्नायणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मान-
मनुविद्य मनुते ॥ २ ॥ अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेव

आत्मा न गच्छति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्म-
चर्यमेव तत्तदरथा ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके मृतीयस्यामितो द्विवि तदैरं
मदीयः सरस्वत्यथः सोमसचनस्तदपराजिता पूर्वह्वयः प्रभुचिमितः हिरण्य-
यम् ॥ ३ ॥ तत्र एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति
तेषामेवैव ब्रह्मलोकेस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याभिप्रासिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य
पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत
एष लोहितः ॥ १ ॥ तत्रया महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छन्तीमं चायुं
चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चायुं चायुष्मादादि-
त्यात्मतायन्ते ता आसु नाडीषु सृष्टा आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मि-
न्नादित्ये सृष्टाः ॥ २ ॥ तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु
तदा नाडीषु सृष्टो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा
संपन्नो भवति ॥ ३ ॥ अथ यत्रैतदवलिमात्रं नीतो भवति तमभित आसीना
आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्याच्छरीरादुत्क्रामन्तो भवति
तावज्जानाति ॥ ४ ॥ अथ यत्रैतदस्याच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतरेव रश्मिभिरुर्ध्व-
माक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावदक्षिण्येन्मनसावदादित्यं गच्छ-
त्येव द्वे खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदयं तिरोचोऽविदुषाम् ॥ ५ ॥ तदेव
श्लोकः । शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां सृष्टानमभिभिः सृतेका । तयो-
र्धर्मायन्नमृतत्वमेति विष्वक्नुवा उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्य-
कामः सत्यसंकरः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकाना-
मोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच
॥ १ ॥ तद्वोभये देवासुरा अनुवुधिरं ते होतुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो
यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानामोति सर्वांश्च कामानितीन्द्रो हेव देवा-
नामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समिर्पाणी प्रजा-
पतिसकाशमाजगमतुः ॥ २ ॥ तौ ह द्वात्रिंशत् वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूपतुस्तौ ह
प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुयं आत्माऽपहतपाप्मा
विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकरः सोऽन्वे-
ष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानामोति सर्वांश्च कामान्यस्त-

मात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्त-
मिति ॥ ३ ॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिरूपायते यश्चाय-
मादर्शो कृतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिरूपायत इति होवाच ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूवमिति तौ
होदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः
सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूप-
मिति ॥ १ ॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वो-
दशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावे-
ऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥ तौ होचतु-
र्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्त्र एवमेवेमौ भगवः
साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेत-
द्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ३ ॥ तौ हान्द्रीक्ष्य प्रजापतिरुवा-
चानुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा
वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराज्जगाम
तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महस्य आत्मा परिचर्य आध्मा-
नमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चायुं चेति
॥ ४ ॥ तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो वतेत्यसुराणां
होषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सः स्कुर्वन्त्येतेन वसुं
लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

इत्यष्टमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वनमस्मिन्धरीरे साध्व-
लंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवाव-
मस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्त्रामे स्त्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्त्रैव शरीरस्य
नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥ नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरे-
याय तः ह प्रजापतिरुवाच मधवन्वच्छान्तहृदयः आत्राणीः सार्धं विरोचनेन
क्रिमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वनं अगनोऽस्मिन्धरीरे
साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एव-
मेवावमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्त्रामे स्त्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्त्रैव शरीरस्य
नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवेव मधव-

क्षिति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिंशत् वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिंशत् वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अ एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्त्यैव देवानैतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदं शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्नाममस्नामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य स्नाम्येण स्नामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाग्निर्वेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ स समित्पाणिः पुनरेयाय तं ह प्रजापतिरुवाच मध्वन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्नाममस्नामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य स्नाम्येण स्नामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाग्निर्वेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मध्वन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिंशत् वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिंशत् वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

तद्यज्ञैतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्त्यैव देवानैतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेव संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥ स समित्पाणिः पुनरेयाय तं ह प्रजापतिरुवाच मध्वन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच नाह खल्वयं भगव एव संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवैष मध्वन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतं संपेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मध्वान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

मध्वन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमाप्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥ अशरीरो वायुरथं

विद्युस्तनयितुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योति-
रूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥ एवमेवैष संप्रसादोऽस्मा-
च्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तम-
पुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्ममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोप-
जनं सरस्त्रिदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमसिञ्च-
रीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥ अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः
पुच्छो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय प्राणमथ
यो वेदेदमभिव्याहाराणीति स आत्माऽभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदं शृण-
वानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥ अथ यो वेदेदं मन्वानीति स
आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैत्ताम्
कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते
तस्मात्तेषां सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाश्च लोका-
श्चाप्नोति सर्वाश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापति-
रुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

इयामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छयामं प्रपद्येऽथ इव रोमाणि विधूय पापं
चम्ब इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धृत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसं-
भवामीत्यभिसंभवाप्नोति ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदद्भुतं च
आत्मा प्रजापतेः सर्वा वैश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां
यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः इयेतमदत्कमदत्कं
इयेतं लिन्दु माऽभिगां लिन्दु माऽभिगां ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

सज्जैतब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुका-
द्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ वैश्वे
स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्बिदधवात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहि-
सन्त्सर्वमूत्रान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसं-
पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

इत्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो वक्त्रमिन्द्रियाणि च
सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराक-
रणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु
ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति छान्दोग्योपनिषत्संपूर्णा ॥ ९ ॥

बृहदारण्यकोपनिषत् ॥ १० ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-
शिष्यते ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ उवा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः ॥ सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्नि-
वैश्वानरः संवत्सर आत्माऽश्वस्य मेध्यस्य ॥ द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी
पाजस्यं दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पश्चाच्च ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च
पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीति नभो माँसानि । ऊवध्यँ
सिकताः सिन्धवो गुदा यदृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च
लोमान्युद्यन् पूर्वाधौ निम्नोच्चक्षणाधौ तद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते
तत्क्षतयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ॥ १ ॥ अहर्वा अश्वं पुरस्ता-
न्महिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वं समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमाऽन्वजायत
तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः अश्वभूवतुः । हयो
भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वाऽसुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धुः
समुद्रो योनिः ॥ २ ॥

इति प्रथमाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

नैवेह किंचनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत् । अशनाययाऽशनाया हि
मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी त्यामिति । सोऽर्चन्नचरत्स्यार्चत आपोऽजायन्ता-
र्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं कँ ह वा अस्मै भवति य एवमेत-
देकस्यार्कत्वं वेद ॥ १ ॥ आपो वा अर्कस्तद्यदाँ शर आसीत्तत्समहन्यत । सा
पृथिव्यभवत्तत्सामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तस्य तेजोरसो निरवर्ततामिः ॥ २ ॥
स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादिसं तृतीयं वायुं तृतीयँ स एष प्राणस्त्रेधा विहितः ।
तस्य प्राची दिक्शरोऽसौ चासौ चेमौ । अथास्य प्रतीची दिक्पुच्छमसौ चासौ
अस्य सवयौ दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमियसुरः स

एषोऽप्सु प्रतिष्ठितो यत्र क चैति तदेव प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् ॥ ३ ॥ सोऽका-
 मयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनं समभवद्दश-
 नाया मृत्युस्तद्यद्वेत् आसीत्स संवत्सरोऽभवत् । न ह पुरा ततः संवत्सर
 आस तमेतावन्तं कालमविभः । यावानसंवत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्ता-
 दसृजत तं जातमभिध्याददात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् ॥ ४ ॥ स ऐक्षत
 यदि वा इममविभं स्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेदं
 सर्वमसृजत यदिदं किंचर्चो यजूंषि सामानि च्छन्दांसि यज्ञान्प्रजाः पशून् ।
 स यद्यदेवासृजत तत्तदनुमश्रियत सर्वं वा अचीति तददितेरदितित्वं सर्व-
 स्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददिनेरदितित्वं वेद ॥ ५ ॥
 सोऽकामयत भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति । सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्य
 आन्तस्य तप्तस्य यशो वीर्यमुदकामत् । प्राणा वै यशो वीर्यं तप्राणेषूत्क्रान्तेषु
 शरीरं श्रयितुमश्रियत तस्य शरीर एव मन आसीत् ॥ ६ ॥ सोऽकामयत
 मेध्यं म इदं स्यादात्मन्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वः समभवद्यदश्वतन्मेध्य-
 मभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् । एष ह वा अश्वमेधं वेद य एनमेवं
 वेद । तमनवरुध्येवामन्यत । तं संवत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पशून्दे-
 वताभ्यः प्रत्यौहत् । तस्मात्सर्वदेवत्वं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्त ॥ एष ह वा
 अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्माऽग्रमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मा-
 नस्तावेतावर्काश्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति
 नैनं मृत्युरामोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति ॥ ७ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च । ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा
 असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त ते ह देवा ऊर्जुहन्तासुरान्यज्ञ उद्गीयेनात्यया-
 मेति ॥ १ ॥ ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायत् । यो
 वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत् कल्याणं वदति तदात्मने । ते विदुरनेन वै
 न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवे-
 दमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा ॥ २ ॥ अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गा-
 येति तथेति तेभ्यः प्राण उदगायद्यः प्राणे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत् कल्याणं
 जिघ्रति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्म-
 नाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मा ॥ ३ ॥
 अथ ह चक्षुःमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यश्चक्षुरुदगायत् । यश्चक्षुषि

ओगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं पश्यति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रा-
 ऽत्येभ्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं
 पश्यति स एव स पाप्मा ॥ ४ ॥ अथ ह ओन्नमूक्षुत्वं न उद्गायेति तथेति
 तेभ्यः ओन्नमुदगायद्यः ओन्ने भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं शृणोति
 तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येभ्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽवि-
 द्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं शृणोति स एव स पाप्मा ॥ ५ ॥
 अथ ह मन ऊचुरत्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो मन उदगायद्यो मनसि
 भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत् कल्याणं संकल्पयति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न
 उद्गात्राऽत्येभ्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्र-
 तिरूपं संकल्पयति स एव स पाप्मैवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिरुपाख-
 ज्ञन्नेवमेनाः पाप्मनाऽविध्यन् ॥ ६ ॥ अथ हेममासन्त्यं प्राणमूक्षुत्वं न उद्गा-
 येति तथेति तेभ्य एष प्राण उदगायत्ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येभ्यन्तीति
 तदभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्सन्स यः प्राणमनमृत्वा लोष्टो विध्वंसेतैव हैव
 विध्वंसमाना विष्वङ्घो विनेशुस्ततो देवा अभवन् परासुरा अवत्यात्मना
 परास्य द्विषन्भ्रातृभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ते होतुः क नु सोऽभूद्यो न
 इत्थमसत्तेत्ययमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः ॥ ८ ॥
 सा वा एषा देवता दूर्नाम दूरं इत्या मृत्युर्दूरं ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य
 एवं वेद ॥ ९ ॥ सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहस्य
 यत्रासां दिशामन्तस्तद्गमयांचकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्तस्माच्च जन-
 मियाच्चान्तमियाच्चेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववायानीति ॥ १० ॥ सा वा एषा देव-
 तैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहृत्याथैना मृत्युमत्यवहत् ॥ ११ ॥ स वै
 वाचमेव प्रथमामत्यवहत्सा यदा मृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्सोऽयमग्निः
 परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते ॥ १२ ॥ अथ प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्यु-
 मत्यमुच्यत स वायुरभवत्सोऽयं वायुः परेण मृत्युमतिक्रान्तः पवते ॥ १३ ॥
 अथ चक्षुरत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः
 परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति ॥ १४ ॥ अथ ओन्नमत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमु-
 च्यत ता दिशोऽभवत्सा इमा दिशः परेण मृत्युमतिक्रान्ताः ॥ १५ ॥ अथ
 मनोऽत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोऽसौ चन्द्रः परेण
 मृत्युमतिक्रान्तो आत्येव ह वा पुनमेषा देवता मृत्युमतिवहति य एवं वेद
 ॥ १६ ॥ अथात्मनेऽद्याद्यमागायद्यदि किंचान्नमद्यतेऽनेनैव तदद्यत इह
 प्रतितिष्ठति ॥ १७ ॥ ते देवा अनुवञ्चेतावद्वा इदं सर्वं यद्वक्षं तदात्मन

आगासीरनु नोऽस्मिन्नन्न आभजस्वेति ते वै माऽभिसंविशतेति तथेति तं
समन्तं परिण्यविशन्ति । तस्माद्यदनेनान्नमत्ति तेनैतास्तृप्यन्त्येव ह वा पुन
स्वा अभिसंविशन्ति भर्ता स्वानां श्रेष्ठः पुर एता भवत्यन्नादोऽधिपतिर्य एवं
वेद य उ हैवंविदस्वेषु प्रति प्रतिर्बुभूयति न हैवालं भार्येभ्यो भवत्यथ य
एवैतमनुभवति यो वैतमनु भार्यान् बुभूयति स हैवालं भार्येभ्यो भवति
॥ १८ ॥ सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः प्राणो वा अङ्गानां रसः
प्राणो हि वा अङ्गानां रसस्तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गाप्राण उत्क्रामति तदेव
तच्छ्रुष्यत्येष हि वा अङ्गानां रसः ॥ १९ ॥ एष उ एव बृहस्पतिर्वाग्
वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः ॥ २० ॥ एष उ एव ब्रह्मणस्पति-
र्वाग् वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पतिः ॥ २१ ॥ एष उ एव साम
वाग् वै सामैष सा चामश्चेति तत्सान्नः सामत्वम् । यद्वै समः दुषिणा समो
मशकेन समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोऽनेन सर्वेण तस्माद्वेव
सामाश्रुते सान्नः सायुज्यं सलोकतां य एवमेतत्साम वेद ॥ २२ ॥
एष उ वा उद्गीथः प्राणो वा उत्प्राणेन हीदं सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च
गीथा चेति स उद्गीथः ॥ २३ ॥ तद्धापि ब्रह्मदत्तश्चैकितानेयो राजानं भक्ष-
यन्नुवाचायं तस्य राजा मूर्धानं विपातयताद्यदितोऽयास्य आङ्गिरसोऽन्येनो-
दगायदिति वाचा च ह्येव स प्राणेन चोदगायदिति ॥ २४ ॥ तस्य हैतस्य
सान्नो यः स्वं वेद भवति हास्य स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं तस्मादात्विज्यं
करिष्यन्वाचि स्वरमिच्छेत तथा वाचा स्वरसंपन्नयात्विज्यं कुर्यात्तस्माद्यज्ञे
स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एवं । अथो यस्य स्वं भवति भवति हास्य स्वं य एवमेत-
त्सान्नः स्वं वेद ॥ २५ ॥ तस्य हैतस्य सान्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य
सुवर्णं तस्य वै स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतत्सान्नः सुवर्णं
वेद ॥ २६ ॥ तस्य हैतस्य सान्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठति तस्य वै
वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि सत्त्वेष एतप्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्यु हैक
आहुः ॥ २७ ॥ अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः स वै खलु प्रस्रोता साम
प्रस्रौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत् । असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्यो-
तिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति स यदाहासतो मा सद्गमयेति मृत्युर्वा अस-
त्सदमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह तमसो मा ज्योतिर्गम-
येति मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मां कुर्वित्येवैतदाह
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति । अथ यानीतराणि स्त्रोत्राणि
तेष्व्वात्मनेऽन्नाथमागायेत्तस्माद् तेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत तस्मात् स एष

एवंविदुद्गातात्मने वा यजमानाय वा यं कामं कामयते तमागायति तद्धैत-
ल्लोकजिदेव न हैवालोक्त्यताया आशाऽस्ति य एवमेतत्साम वेद ॥ २८ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्
सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहं नामाभवत्तस्मादप्येतर्ह्यामन्नितोऽहमयमित्ये-
वाग्र उक्त्वाऽथान्यज्ञाम प्रब्रूते यदस्य भवति स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वान्पा-
प्मन औपत्तस्मात्पुरुष ओषति ह वै स तं योऽस्मात्पूर्वो भुभूषति य एवं वेद
॥ १ ॥ सोऽविमेत्तस्मादेकाकी विमेति स हायमीक्षांचक्रे यन्मदन्त्यज्ञास्ति
कस्माद्यु विमेमीति तत् एवास्य भयं वीयाय कस्माच्च भेष्यद्वितीयाद्वै भयं
भवति ॥ २ ॥ स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् । स
हैतावानास यथा स्त्रीपुमाँसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातय-
त्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धं बृगुलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञ-
वल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ताँ समभवत्ततो मनुष्या अजा-
यन्त ॥ ३ ॥ सा हेयमीक्षांचक्रे कथं नु माऽऽत्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त
तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्ताँ समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त वड-
चेतराऽभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ताँ समेवाभवत्तत एकशफ-
मजायताऽजेतराश्चवद्वस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्ताँ समेवाभवत्ततोऽजाव-
योऽजायन्तैवमेव यदिदं किंच मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ॥ ४ ॥
सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्यहँ हीदँ सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्याँ हा-
स्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां
चाग्निमसृजत तस्मादेतदुभयमलोमकमन्तरतोऽलोमका हि योनिरन्तरतः । तद्य-
दिदमाहुरसुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः ।
अथ यत्किंचेदमार्द्रं तद्वेतसोऽसृजत तदु सोम एतावद्वा इदँ सर्वमजं चैवा-
न्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिर्यच्छेयसो देवानसृज-
ताथ यन्मर्त्यः सन्नमृतानसृजत तस्मादतिसृष्टिरतिसृष्ट्याँ हास्यैतस्यां भवति
य एवं वेद ॥ ६ ॥ तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रिय-
तासौ नामायमिदँ रूप इति तदिदमप्येतर्हि नामरूपाभ्यामेव व्याक्रिय-
तेऽसौनामायमिदँ रूप इति स एष इह प्रविष्टः । आनखाग्नेभ्यो यथा क्षुरः क्षुर-
जानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाये तं न पश्यन्ति । अकृत्स्नो हि स
प्राणश्चैव प्राणो नाम भवति । वदन् वाक् पश्यँश्चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो
मनस्तान्यस्यैतालि कर्मनामान्येव । स योऽत एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो

ह्येषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येषोपासीतात्र ह्येते सर्वे एकं भवन्ति । तदेतत्पद-
नीयमस्य सर्वस्य यदयमात्माऽनेन ह्येतत्सर्वं वेद । यथा ह वै पदेनानुविन्दे-
देवं कीर्तिं५ श्लोकं विन्दते य एवं वेद ॥ ७ ॥ तदेतत्प्रियः पुत्रात्प्रियो वित्ता-
त्प्रियोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा । स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं
ब्रूयात् प्रियं५ रोत्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य
आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ॥ ८ ॥ तदाहुर्न-
ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते किमु तद्ब्रह्माऽवेद्यस्मात्तत्सर्वम-
भवदिति ॥ ९ ॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति ।
तस्मात्तत्सर्वमभवत् तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां
तथा मनुष्याणां तद्धेतत्पश्यन्नृषिर्वाग्मदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभव५ सूर्यश्चेति ।
तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मीति स इदं५ सर्वं भवति तस्य ह न
देवाश्चनाभूत्या ईशते । आत्मा ह्येषां५ स भवत्यथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्यो-
ऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव५ स देवानाम् । यथा ह वै बहवः
पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्त्येकस्मिन्नेव पशावादी-
यमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विष्टुः
॥ १० ॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं५ सन्न व्यभवत् । तच्छ्रेयोरूपमत्य-
सृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो
मृत्युरीशान इति । तस्मात् क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादु-
पास्ते राजसूये क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । तस्माद्य-
द्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिं य उ पुन५
हिनस्ति स्वां५ स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयाऽस५ हि५-
सित्वा ॥ ११ ॥ स नैव व्यभवत् स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि
गणना आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ १२ ॥ स
नैव व्यभवत् स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेय५ हीदं५ सर्वं पुण्यति
यदिदं किंच ॥ १३ ॥ स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं तदेतत्
क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीया५समाश५सते
धर्मेण यथा राज्ञेयं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं
वदतीति धर्मं वा वदन्त५ सत्यं वदतीत्येतच्छ्रेयैतदुभयं भवति ॥ १४ ॥
तदेतद्ब्रह्म क्षत्रं विद् शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद्ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रि-
येण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते
ब्राह्मणे मनुष्येष्वेताभ्या५ हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत् । अथ यो ह वा भस्मा-

ल्लोकास्त्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽन-
नूक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्वा-
स्यान्ततः क्षीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते
न हास्य कर्म क्षीयते । अस्माच्चेवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते ॥ १५ ॥
अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यजुहोति यद्यजते तेन
देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निष्ठाणाति यत्प्रजा-
मिच्छते तेन पिदृणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनु-
ष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्रापदा
वयाँस्यापिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोका-
यारिष्टिमिच्छेदेवँ हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तद्वा एतद्विदितं
मीमाँसितम् ॥ १६ ॥ आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोऽकामयत जाया मे
स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान् वै कामो नेच्छँश्च
नातो भूयो विन्देत्तस्मादप्येतर्ह्येकाकी कामयते जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ
वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेति स यावदप्येतेषामेकैकं न प्राप्नोत्यकृत्स्न एव
तावन्मन्यते तस्यो कृच्छता मन एवास्यात्मा वाग्जाया प्राणः प्रजा चक्षुर्मा-
नुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विन्दते श्रोत्रं दैवँ श्रोत्रेण हि तच्छृणोत्यात्मैवास्य
कर्मात्मना हि कर्म करोति स एष पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पशुः पाङ्क्तः पुरुषः
पाङ्क्तमिदँ सर्वं यदिदं किंच तदिदँ सर्वमाप्नोति य एवं वेद ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

यत्सप्तज्ञानि मेधया तपसाऽजनयत्पिता । एकमस्य साधारणं द्वे देवान-
भाजयत् । त्रीण्यात्मनेऽङ्कुरत पशुभ्य एकं प्रायच्छत्तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च
प्राणिति यच्च न । कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदा । यो वैतामक्षितिं
वेद सोऽन्नमत्ति प्रतीकेन । स देवानपिगच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति श्लोकाः
॥ १ ॥ यत्सप्तज्ञानि मेधया तपसाऽजनयत्पितेति मेधया हि तपसाऽजनय-
त्पितैकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते । स य एत-
दुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्तते मिश्रँ ह्येतत् । द्वे देवानभाजयदिति हुतं च
प्रहुतं च तस्मादेवेभ्यो जुह्वति च प्र च जुह्वत्यथो आहुर्दशपूर्णमासाविति ।
तस्मान्नेष्टियाजुकः स्यात् । पशुभ्य एकं प्रायच्छदिति तत्पयः । पयो ह्येवाग्ने
मनुष्याश्च पशवश्चोपजीवन्ति तस्मात् कुमारं जातं घृतं वैवाग्ने प्रतिहेहयन्ति
स्तनं वाऽनुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहुर्नृणाद इति । तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं
यच्च प्राणिति यच्च नेति पयसि हीदँ सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च न ।

तद्यद्विदमाहुः संवत्सरं पयसा जुह्वदप पुनर्मृत्युं जयतीति न तथा विद्याद्यदह-
 दैव जुहोति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्सर्वं हि देवेभ्योऽन्नाद्यं ग्रय-
 ष्कति । कस्माच्चानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदेति पुरुषो वा अक्षितिः स
 ह्रीदमन्नं पुनः पुनर्जनयते । यो वैतामक्षितिं वेदेति पुरुषो वा अक्षितिः स
 ह्रीदमन्नं धिया धिया जनयते । कर्मभिर्यद्वैतन्न कुर्यात्क्षीयेत ह सोऽन्नमसि
 प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं मुखेनेत्येतत्स देवानपिगच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति
 प्रशंस ॥ २ ॥ त्रीण्यात्मनेऽकुरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुतान्य-
 भ्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति
 मनसा शृणोति । कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा घृतिरघृतिर्हीर्षी-
 र्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति यः
 कश्च शब्दो वागोव सैषा ह्यन्तमायसैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः
 समानोऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एवैतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः
 प्राणमयः ॥ ३ ॥ त्रयो लोका एत एव वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः
 प्राणोऽसौ लोकः ॥ ४ ॥ त्रयो वेदा एत एव वागेवर्ग्वेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः
 सामवेदः ॥ ५ ॥ देवाः पितरो मनुष्या एत एव वागेव देवा मनः पितरः
 प्राणो मनुष्याः ॥ ६ ॥ पिता माता प्रजैत एव मन एव पिता वाङ्माता
 प्राणः प्रजा ॥ ७ ॥ विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञातमेत एव यत्किंच विज्ञातं
 वाचस्तद्रूपं वाग्धि विज्ञाता वागेनं तद्भूत्वाऽवति ॥ ८ ॥ यत्किंच विजिज्ञास्यं
 मनस्तद्रूपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भूत्वाऽवति ॥ ९ ॥ यत्किंचा-
 विज्ञातं प्राणस्य तद्रूपं प्राणो ह्यविज्ञातः प्राण एनं तद्भूत्वाऽवति ॥ १० ॥
 तस्यै वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतीरूपमयमग्निस्तथावत्येव वाक्तावती पृथिवी
 तावानयमग्निः ॥ ११ ॥ अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्य-
 स्तथावदेव मनस्तावती द्यौस्तावानसावादित्यसौ मिथुनं समैतां ततः प्रा-
 णोऽजायत स इन्द्रः स एषोऽसपत्नो द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति
 य एवं वेद ॥ १२ ॥ अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस्त-
 द्भावानेव प्राणस्तावत्य आपस्तावानसौ चन्द्रस्त एते सर्व एव समाः सर्वेऽ-
 नन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्तं स लोकं जयत्यथ यो हैतान-
 नन्तानुपास्तेऽनन्तं स लोकं जयति ॥ १३ ॥ स एष संवत्सरः प्रजापतिः
 षोडशकलस्तस्य रात्रय एव पञ्चदश कला ध्रुवेचास्य षोडशी कला स रात्रि-
 धिरेवा च पूर्वतेऽप च क्षीयते सोऽमावास्यां रात्रिमेतया षोडश्या कल्पया

सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते तस्मादेताः रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्धादपि कृकलासस्यैतस्या एव देवताया अपचित्यै ॥ १४ ॥ यो वै स संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंविदुः पुरुषस्तस्य वित्तमेव पञ्चदश कला आत्मैवास्त्य षोडशी कला स वित्तेनैवा च पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्यं यद्यमात्मा प्रधिवित्तं तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानि जीयत आत्मना च्वेजीवति प्रधिनाऽगादित्येवाहुः ॥ १५ ॥ अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जड्यो नान्येन कर्मणा कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशंसन्ति ॥ १६ ॥ अथातः संप्रतिर्यदा प्रैष्यन्मन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति यद्वै किंचानूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता । ये वै के च यज्ञास्तेषां सर्वेषां यज्ञ इत्येकता ये वै के च लोकास्तेषां सर्वेषां लोक इत्येकतैतावद्वा इदं सर्वमेतन्मा सर्वं सन्नयमितोऽभुनजदिति तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुस्तस्मादेनमनुशासति स यदेवंविदस्माल्लोकात्प्रैत्यथैभिरेव प्राणैः सह पुत्रमाविशति । स यद्यनेन किंचिदक्षण्याऽकृतं भवति तस्मादेनं सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चति तस्मात्पुत्रो नाम स पुत्रेणैवास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यथैनमेते देवाः प्राणा अमृता आविशन्ति ॥ १७ ॥ पृथिव्यै चैनमग्नेश्च दैत्री वागाविशति सा वै दैवी वाग्यया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ॥ १८ ॥ दिवश्चैनमादित्याच्च दैवं मन आविशति तद्वै दैवं मनो येनानन्येव भवत्यथो न शोचति ॥ १९ ॥ अद्वैतश्चैनं चन्द्रमसश्च दैवः प्राण आविशति स वै दैवः प्राणो यः संचरंश्चासंचरंश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति स एवंवित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति यथैषा देवतैव स यथैतां देवतां सर्वाणि भूतान्यवन्येव हेवंविदं सर्वाणि भूतान्यवन्ति । यदु किंचेमाः प्रजाः शोचन्त्यमैवासां तद्भवति पुण्यमेवासुं गच्छति न ह वै देवान् पापं गच्छति ॥ २० ॥ अथातो व्रतमीमांसा प्रजापतिर्ह कर्माणि ससृजे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पृधन्त चदिष्याम्येवाहमिति वाग्दधे द्रक्ष्याम्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यानि कर्माणि यथाकर्म तानि सृष्टुः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्यामोत्तान्याह्वा सृष्टुरवाहन्त तस्माच्छ्राम्यत्येव वाक् श्राम्यति चक्षुः श्राम्यति श्रोत्रमथेममेव नामोद्योऽयं मध्यमः प्राणस्तानि ज्ञातुं दधिरे । अयं वै नः श्रेष्ठो यः संचरंश्चासंचरंश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति त एतस्यैव सर्वे रूपमभवत्तस्मादेत

एतेनाख्यायन्ते प्राणा इति तेन ह वाव तत्कुलमाचक्षते यस्मिन्कुले भवति
अ एवं वेद य उ हैवंविदा स्पर्धतेऽनुशुण्यत्यनुशुण्य हैवान्ततो त्रियत इत्य-
ध्यात्मम् ॥ २१ ॥ अथाधिदैवतं ज्वलिष्याम्येवाहमित्यग्निर्दध्रे तप्स्याम्यहमि-
त्यादित्यो भास्याम्यहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथादैवतं स यथैषां
प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुर्ग्लोचन्ति ह्यन्या देवता
न वायुः सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः ॥ २२ ॥ अथैष श्लोको भवति यत-
श्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति तं
देवाश्चक्रिरे धर्मं स एवायं स उ अ इति यद्वा एतेऽसुहृद्भ्रियन्त तदेवाप्यद्य
कुर्वन्ति । तस्मादेकमेव व्रतं चरेत्प्राण्याच्चैवापान्याच्च नेन्मा पाप्मा मृत्युरामु-
वदिति यद्यु चरेत्समापिपियेत्तेनो एतस्यै देवतायै सायुज्यं सलोकतां
जयति ॥ २३ ॥

इति प्रथमाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नास्मां वागित्येतदेषामुबध्मतो हि
सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति । एतदेषां सामैतद्धि सर्वैर्नामभिः सममेतदेषां
ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि विभर्ति ॥ १ ॥ अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थ-
मतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषां सामैतद्धि सर्वै रूपाः सममेतदेषां
ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि विभर्ति ॥ २ ॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थ-
मतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषां सामैतद्धि सर्वैः कर्मभिः सममे-
तदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि विभर्ति तदेतन्नयं सदेकमयमात्माऽऽत्मो
युक्तः सन्नेतन्नयं तदेतदमृतं सत्येन च्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं
ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः ॥ ३ ॥

इति प्रथमाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ ॥ इति ब्राह्मणं किर्हानूचानो गार्ग्य आस स होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्म
ते ब्रवाणीति स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दशो जनको जनक
इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥ स होवाच गार्ग्यो य एवासावादित्ये पुरुष
एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा अतिष्ठाः

सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपा-
 स्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजा भवति ॥ २ ॥ स होवाच गार्ग्यो य
 एवासौ चन्द्रे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मि-
 न्संवदिष्टा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अहमेतमुपास इति स य
 एतमेवमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति नास्यान्नं क्षीयते ॥ ३ ॥ स
 होवाच गार्ग्यो य एवासौ विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-
 चाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टास्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति स य एत-
 मेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥ ४ ॥ स
 होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-
 चाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टाः पूर्णमप्रवर्तीति वा अहमेतमुपास इति स
 य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिर्नास्यास्माल्लोकाम्रजोद्धर्तते ॥ ५ ॥ स
 होवाच गार्ग्यो य एवायं वायौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचा-
 जातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेत-
 मुपास इति स य एतमेवमुपास्ते जिष्णुर्हापराजिष्णुर्भवत्यन्यतस्त्यजायी ॥ ६ ॥
 स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-
 चाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स
 य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥ स
 होवाच गार्ग्यो य एवायमप्सु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचा-
 जातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टाः प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति स य
 एतमेवमुपास्ते प्रतिरूप^५ हैवैनमुपगच्छति नाप्रतिरूपमथो प्रतिरूपोऽस्मा-
 जायते ॥ ८ ॥ स होवाच गार्ग्यो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास
 इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा रोचिष्णुरिति वा अहमेतमु-
 पास इति स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति रोचिष्णुर्हास्य प्रजा भव-
 त्यथो यैः संनिगच्छति सर्वा^५स्तानतिरोचते ॥ ९ ॥ स होवाच गार्ग्यो य
 एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातश-
 त्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा असुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमु-
 पास्ते सर्व^५ हैवासिल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालात्प्राणो जहाति ॥ १० ॥
 स होवाच गार्ग्यो य एवायं दिक्षु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-
 चाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति
 स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान् ह भवति नास्माद्गणदिश्यते ॥ ११ ॥ स
 होवाच गार्ग्यो य एवायं छायाभयः पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-

चाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य
 एतमेवमुपास्ते सर्वे हैवासिल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्युरागच्छति
 ॥ १२ ॥ स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्मनि पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास
 इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्टा आत्मन्वीति वा अहमेतमु-
 पास इति स य एतमेवमुपास्त आत्मन्वी ह भवत्यारमन्विनी हास्य प्रजा
 भवति स ह तूष्णीमास गार्ग्यः ॥ १३ ॥ स होवाचाजातशत्रुरेतावद्धू ३ इत्येता-
 वद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ॥ १४ ॥
 स होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैतद्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद्ब्रह्म मे वक्ष्यतीति
 श्रेय त्वा ज्ञपथिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्थौ तौ ह पुरुषे सुप्तमाजग्म-
 सुक्लमेतैर्नामभिरामघ्नयांचक्रे बृहन्पाण्डरवासः सोम राजस्रिति स नोत्तस्थौ
 वं पाणिना पेवं बोधयांचकार स होत्तस्थौ ॥ १५ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्ध-
 नैष एतत्सुप्तोऽभूच्च एष विज्ञानमयः पुरुषः कैष तदाभूत्कुत एतदागादिति
 तदु ह न मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूच्च
 एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्त-
 र्हृदय आकाशस्तस्मिन्ष्टेते तानि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति वाम
 कृद्गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं
 श्रनः ॥ १७ ॥ स यत्रैतत्स्वप्नयया चरति ते हास्य लोकास्तदुतेव महाराजो
 भवत्युतेव महाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानपदान्
 गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्ततेवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे
 शरीरे यथाकामं परिवर्तते ॥ १८ ॥ अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्य-
 च्चन वेद हिता नाम नाड्यो द्वाससतिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठते
 तानिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महा-
 ब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥ १९ ॥ स यथोर्ध-
 नाभिस्तन्मुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे
 प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य
 सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २० ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

यो ह वै शिशुः साधावः सप्रत्याधानः सस्थूणः सदासं वेद सप्त ह
 द्विषतो भ्रातृव्यानवरुणद्धि । अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेषा-
 धानमिदं प्रत्याधानं प्राणः स्थूणाञ्च दाम ॥ १ ॥ तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते

तथा इमा अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेन रुद्रोऽन्वायतोऽथ या अक्षन्ना-
पस्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तथादित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेने-
न्द्रोऽधरयैर्न वतेत्या पृथिव्यन्वायत्ता द्यौरुत्तरया नास्यान्नं क्षीयते य एवं वेद
॥ २ ॥ तदेप श्लोको भवति । अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्न्यशो निहितं
विश्वरूपम् । तस्याऽऽसत् ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति ।
अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मि-
न्न्यशो निहितं विश्वरूपमिति प्राणा वै यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्याऽऽसत्
ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संवि-
दानेति वाग्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ॥ ३ ॥ इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव
गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं
जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवान्निर्वाचा
ह्यन्नमद्यतेऽस्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति
य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च
त्यं च ॥ १ ॥ तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्चैतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्त-
त्यैतस्य मूर्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत् एष रसो य एष तपति सतो
ह्येष रसः ॥ २ ॥ अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतमेतद्यदेतत्स्थं तस्यैतस्या-
मूर्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत् एतस्य त्यस्यैष रसो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरु-
षस्तस्य ह्येष रस इत्यधिदैवतम् ॥ ३ ॥ अथाध्यात्ममिदमेव मूर्तं यदन्यत्प्रा-
णाच्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मूर्तस्यैतस्य
मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत् एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष रसः ॥ ४ ॥
अथामूर्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्स्थं तस्यैतस्या-
मूर्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत् एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य
ह्येष रसः ॥ ५ ॥ तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा
पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाऽऽयर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत् ५ सकृ-
द्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति न
ह्येतस्मादिति नेत्यन्यपरमस्यथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं
तेषामेष सत्यम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्यास्थानादस्मि हन्त
 तैऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ॥ १ ॥ सा होवाच मैत्रेयी यन्म म इयं
 अगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच
 याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु
 नाऽऽशास्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥ सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं
 तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥ ३ ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः
 प्रिया वतारे नः सती प्रियं भाषस पृष्ट्वास्त्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य
 तु मे निदिध्यासस्वेति ॥ ४ ॥ स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः
 प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय
 जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां
 कामाय पुत्राः प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा
 अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न
 वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति ।
 न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं
 भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय
 लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवत्यात्म-
 नस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि
 प्रियाणि भवत्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा
 अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं
 भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो
 मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदि-
 तम् ॥ ५ ॥ ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादा-
 द्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं
 परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद
 सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा
 इमानि भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा ॥ ६ ॥ स यथा दुन्दुमेहैन्यमानस्य न
 बाह्याच्छब्दाच्छ्रुत्याद्ब्रह्मणाय दुन्दुमेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो
 गृहीतः ॥ ७ ॥ स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याच्छब्दाच्छ्रुत्याद्ब्रह्म-
 णाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥ स यथा वीणायै
 वाद्यमानायै न बाह्याच्छब्दाच्छ्रुत्याद्ब्रह्मणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणा-
 वादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥ स यथाऽऽद्रैधामेरभ्याहितात्पृथग्भूमा विलि-

अरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्चितमेतन्नद्वेदो यजुर्वेदः अस्मि-
 द्योऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुष्ठा-
 नानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्चितानि ॥ १० ॥ स यथा
 सर्वासामपां समुद्र एकायनमेव सर्वेषां स्थानां स्वगोकायनमेव सर्वेषां
 गन्धानां नासिके एकायनमेव सर्वेषां रसानां जिह्वेकायनमेव सर्वेषां
 कृपाणां चक्षुरेकायनमेव सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनमेव सर्वेषां
 संकल्पानां मन एकायनमेव सर्वासां विद्यानां हृदयमेकायनमेव सर्वेषां
 कर्मणां हस्तावेकायनमेव सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेव सर्वेषां
 विसर्गाणां पायुरेकायनमेव सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेव सर्वेषां वेदाणां
 वागेकायनम् ॥ ११ ॥ स यथा सैन्धवस्त्रित्य उदके प्रास्य उदकमेवाहु-
 विलीयेत न हास्योद्ग्रहणायैव स्याद्यतो यत्स्वादीत लवणमेवैवं वा अर इदं
 मद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवाऽऽ-
 विनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरेऽब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥ सा
 होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवानमूयुह्य प्रेत्य संज्ञाऽस्तीति स होवाच याज्ञ-
 वल्क्यो न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥ यन्न
 हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदिष्ट
 इतरं शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं
 विजानाति यन्न वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन
 कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं विजानीयात्ते-
 नेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानी-
 यादिति ॥ १४ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्चा-
 यमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं शरीरस्तेजोम-
 योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १ ॥
 इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपां सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमा-
 स्तप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं रेतसस्तेजोमयोऽमृतमयः
 पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ २ ॥ अयमग्निः
 सर्वेषां भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्त्रिभौ तेजोमयो-
 ऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मायस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव
 स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ३ ॥ अयं वायुः सर्वेषां भूतानां

मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्वायौ तेजोमयोऽमृतमयः
 पुरुषो यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
 त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ४ ॥ अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मध्व-
 स्यादित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः
 पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽय-
 मात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ५ ॥ इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वस्त्रां
 दिशां सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमासु दिक्षु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं श्रोत्रः प्रातिष्ठत्स्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽय-
 मात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ६ ॥ अयं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य
 चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-
 ममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ७ ॥ इयं विद्युः सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः
 सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चाय-
 मध्यात्मं तैजसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं
 ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ८ ॥ अयं स्तनयितुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तनयितोः
 सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्स्तनयितौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं शाब्दः सौवरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽय-
 मात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ९ ॥ अयमाकाशः सर्वेषां भूतानां मध्व-
 स्याकाशस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नाकाशे तेजोमयोऽमृतमयः
 पुरुषो यश्चायमध्यात्मं ह्यकाकाशस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
 ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १० ॥ अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्व-
 स्य धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् धर्मे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृत-
 तमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ ११ ॥ इदं सत्यं सर्वेषां भूतानां मध्वस्य
 सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
 यश्चायमध्यात्मं सात्यस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-
 ममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १२ ॥ इदं मानुषं सर्वेषां भूतानां मध्वस्य
 मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरु-
 षोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १३ ॥ अयमात्मा
 सर्वेषां भूतानां मध्वस्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नात्मनि
 तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स

योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥ १४ ॥ स वा अयमात्मा सर्वेषां
भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेभौ चाराः
सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः
सर्वे प्राणाः सर्वे एत आत्मानः समर्पिताः ॥ १५ ॥ इदं वै तन्मधु दध्यङ्गा-
थर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदधिः पश्यन्नवोचत् । तद्वां नरा सनये दस उग्र-
माविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिं । दध्यङ्ग ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीष्णां प्र-
बदीमुवाचेति ॥ १६ ॥ इदं वै तन्मधु दध्यङ्गाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदधिः
पश्यन्नवोचदाथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् । स वां मधु
प्रवोचदतान्यन्त्वाष्ट्रं यद्वत्तावपि कक्ष्यं वामिति ॥ १७ ॥ इदं वै तन्मधु दध्य-
ङ्गाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदधिः पश्यन्नवोचत् । पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे
चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति । स वा अयं पुरुषः
सर्वासु पूर्णं पुरिशयो नैनेन किंचनानावृतं नैनेन किंचनासंवृतम् ॥ १८ ॥
इदं वै तन्मधु दध्यङ्गाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदधिः पश्यन्नवोचद्रूपं रूपं
प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति । अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि
चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वाभुभू-
रित्यनुशासनम् ॥ १९ ॥

इति द्वितीयाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ वक्शः पौतिमाष्यो गौपचनाद्गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौप-
वनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः
कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः ॥ १ ॥ आग्निवेद्यादाग्निवेद्यः शाण्डिल्याच्चा-
नभिस्लाताच्चानभिस्लात आनभिस्लातादानभिस्लात आनभिस्लातादानभि-
स्लातो गौतमाद्गौतमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्यां सैतवप्राचीनयोग्यौ पारा-
शर्यात्पाराशर्यो भारद्वाजाद्भारद्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वा-
जाद्भारद्वाजः पाराशर्यात् पाराशर्यो वैजवापायनाद्वैजवापायनः कौशिकायनैः
कौशिकायनिः ॥ २ ॥ घृतकौशिकादृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः
पाराशर्यात् पाराशर्यो जातूकर्ण्याजातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासु-
रायणश्चैवणेचैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद्भारद्वाज आत्रे-
यादात्रेयो माण्डेर्माण्डिर्गौतमाद्गौतमो गौतमाद्गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डि-
ल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहा-
रितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातो बाभ्रवा-

ब्रह्मसन्पाद्वाभवः पथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गि-
रस आभूतेस्त्वाङ्गादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपाष्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्या-
मश्विनौ दधीच आथर्वणादध्यङ्गाथर्वणोऽथर्वणो दैवादथर्वा दैवो मृत्योः।
प्राध्वँसनान्मृत्युः प्राध्वँसनः प्रध्वँसनात्प्रध्वँसन एकर्षेरकर्षिर्विप्र-
विचेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात्सनातनः सनगात्सनगः
परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ ॥ जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां
ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव
कःस्विदेष्टां ब्राह्मणानामनूचानतम इति स ह गवाँ सहस्रमवस्रोध दश दश
पादा एकैकस्याः शृङ्गयोरारब्धा बभूवुः ॥ १ ॥ तान्होवाच ब्राह्मणा भग-
वन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति । ते ह ब्राह्मणा न दध्पुःपुरथ
ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सोम्योदज सामश्रवा इति
ता होदाचकार ते ह ब्राह्मणाश्चकुपुः कथं नो ब्रह्मष्टो ब्रवीतेत्यथ ह जनकस्य
वैदेहस्य होताऽश्वलो बभूव स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मि-
ष्ठोऽसी इति स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयँ स्य
इति तँ ह तत एव प्रष्टुं दध्ने होताऽश्वलः ॥ २ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच
यदिदँ सर्वं मृत्युनाऽऽसँ सर्वं मृत्युनाभिपन्नं केन यजमानो मृत्योरासिमति-
मुच्यत इति होत्रर्विजाभिना वाचा वाग्वै यज्ञस्य होता तद्येयं वाक् सोऽय-
मग्निः स होता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ३ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदँ
सर्वमहोरात्राभ्यामाप्तँ सर्वमहोरात्राभ्यामभिपन्नं केन यजमानोऽहोरात्रयो-
रासिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युर्णर्विजा चक्षुषाऽऽदित्येन चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युस्तथ-
दिदँ चक्षुः सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ४ ॥ याज्ञ-
वल्क्येति होवाच यदिदँ सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्तँ सर्वं पूर्वपक्षापर-
पक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोरासिमतिमुच्यत इत्युद्गात्र-
र्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स
उद्गाता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदमन्तरिक्ष-

मनारम्भणमिव केनाऽऽक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकं याक्रमत इति ब्रह्मणः
 त्विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स
 ब्रह्मा स मुक्तिः साऽतिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ संपदः ॥ ६ ॥ याज्ञ-
 वल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्यर्गिभर्होतास्त्रिन्यज्ञे करिष्यतीति तिस्र-
 भिरिति कतमास्तास्त्रिस्त इति पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया
 किं ताभिर्जयतीति यत्किंचेदं प्राणभृदिति ॥ ७ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच कथ-
 यमद्याध्वयुरस्त्रिन्यज्ञ आहुतीर्होष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्त्रिस्त इति या
 हुता उज्ज्वलन्ति या हुता अतिनेदन्ते या हुता अधिशोरेते किं ताभिर्जयतीति
 या हुता उज्ज्वलन्ति देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इति हि देवलोको
 या हुता अतिनेदन्ते पितृलोकमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको या हुता
 अधिशोरेते मनुष्यलोकमेव ताभिर्जयत्यथ इव हि मनुष्यलोकः ॥ ८ ॥ याज्ञ-
 वल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गोपायती-
 ल्येकयेति कतमा सैकेति मन एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वे देवा अनन्त-
 मेव स तेन लोकं जयति ॥ ९ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच कथयमद्योद्गाता-
 ऽस्त्रिन्यज्ञे स्त्रोत्रियाः स्त्रोष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्त्रिस्त इति पुरोऽनुवाक्या
 च याज्या च शस्यैव तृतीया कतमास्ता या अध्यात्ममिति प्राण एव पुरोऽनु-
 वाक्याऽपानो याज्या व्यानः शस्य किं ताभिर्जयतीति पृथिवीलोकमेव पुरो-
 ऽनुवाक्या जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्या ध्रुवलोकः शस्य ततो ह होताऽश्वत्थ
 उपरराम ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ हैनं जारत्कारव आर्तभागः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच कति ग्रहाः
 कत्यतिग्रहा इति । अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा इति ये तेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः
 कतमे त इति ॥ १ ॥ प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेनाऽतिग्राहेण गृहीतोऽपानेन हि
 गन्धाक्षिप्रति ॥ १ ॥ वाग्वै ग्रहः स नाम्नाऽतिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामा-
 न्यभिवदति ॥ ३ ॥ जिह्वा वै ग्रहः स रसेनाऽतिग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि
 रसान्विजानाति ॥ ४ ॥ चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणाऽतिग्राहेण गृहीतश्चक्षुषा हि
 रूपाणि पश्यति ॥ ५ ॥ श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनाऽतिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण
 हि शब्दान्दृणोति ॥ ६ ॥ मनो वै ग्रहः स कामेनाऽतिग्राहेण गृहीतो
 मनसा हि कामान्कामयते ॥ ७ ॥ हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणाऽतिग्राहेण गृहीतो
 हस्ताभ्यां हि कर्म करोति ॥ ८ ॥ त्वग्वै ग्रहः स स्पर्शेनाऽतिग्राहेण गृहीत-
 स्त्वचा हि स्पर्शान्नेदयत इत्येतेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ॥ ९ ॥ याज्ञ-

वल्क्येति होवाच यदिदं सर्वं मृत्योरक्षं का स्वित्ता देवता यस्या मृत्युरक्ष-
 सित्यक्षिर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमप पुनर्मृत्युं जयति ॥ १० ॥ याज्ञवल्क्येति
 होवाच यत्रायं पुरुषो ज्ञियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो३ नेति नेति होवाच
 याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्रयस्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते
 ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो ज्ञियते किमेनं न जहातीति
 नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥ १२ ॥
 याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षु-
 रादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लोमानि वन-
 क्ष्पतीन्केशा अप्सु लोहितं च रेतश्च लिधीयते कायं तदा पुरुषो भवतीत्याहर
 सोम्य हस्तमार्तभागोऽऽवामेवैतस्य वेदिष्यावो न नावेतत् सजन इति तौ
 होत्क्रम्य मन्त्रायांचक्राते तौ ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशंसतुः
 कर्म हैव तत्प्रशशंसतुः पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति
 ततो ह जारत्कारव भार्तभाग उपरराम ॥ १३ ॥

इति तृतीयाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ हैनं भुज्युर्लोह्यायतिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मग्नेषु चरकाः
 पर्यव्रजाम ते पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीदुहिता गन्धर्वगृहीता
 तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति तं यदा लोकानाम-
 न्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क पारिक्षिता अभवन्निति क पारिक्षिता अभवन् स
 त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क पारिक्षिता अभवन्निति ॥ १ ॥ स होवाचोवाच
 वै सोऽगच्छन्वै ते तद्यन्नाश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति क न्वश्वमेधयाजिनो
 गच्छन्तीति द्वात्रिंशत्तं वै देवथाह्वयान्ययं लोकस्तं समन्तं पृथिवीं द्विस्ता-
 वत्पर्येति तां समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः पर्येति तद्यावती क्षुरस्य धारा
 यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्तरेणाकाशस्तानिन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे
 प्रायच्छतान्वायुरात्मनि धित्वा तन्नागमयद्यन्नाश्वमेधयाजिनोऽभवन्नित्येवमिव
 वै स वायुमेव प्रशशंस तस्माद्वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिरप पुनर्मृत्युं
 जयति य एवं वेद ततो ह भुज्युर्लोह्यायनिरुपरराम ॥ २ ॥

इति तृतीयाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ हैनमुपस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्साक्षादपरो-
 क्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरक्षं मे व्याचक्ष्व इत्येष त आत्मा सर्वान्तरः
 क्तमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो
 योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानीति स त

आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तर एष स आत्मा सर्वान्तरः ॥ १ ॥ स होवाचोषस्तश्चाकायणो यथा विन्यादसौ गौरसावश्च इत्येवमेवैतद्व्यपदिष्टं भवति यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः । न दृष्टे-
र्ब्रह्मरं पश्येनं श्रुतेः श्रोतारं ऋणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्वि-
ज्ञातारं विजानीयाः । एष त आत्मा सर्वान्तरोऽतोऽन्यदार्त्तं ततो होषस्तश्चा-
कायण उपरराम ॥ २ ॥

इति तृतीयाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ हैनं कहोलः कौषीतकेयः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदेव साक्षा-
दपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः ।
कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो योऽशयनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युम-
त्येति । एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च
लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा
या वित्तैषणा सा लोकैषणोमे हेते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं
निर्विद्य बाल्येन तिष्ठत्सेद्वात्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च मौनं
च निर्विद्याऽथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तं
ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥ १ ॥

इति तृतीयाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ हैनं गार्गी वाचकवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वम-
प्स्रोतं च प्रोतं च कस्मिन् खल्वाप ओताश्च प्रोताश्चेति वायौ गार्गीति
कस्मिन् खलु वायुरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्तरिक्षलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खल्वन्त-
रिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति गन्धर्वलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खलु गन्धर्व-
लोका ओताश्च प्रोताश्चेत्यादित्यलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खल्वदित्यलोका
ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खलु चन्द्रलोका ओताश्च
प्रोताश्चेति नक्षत्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खलु नक्षत्रलोका ओताश्च प्रोता-
श्चेति देवलोकेषु गार्गीति कस्मिन् खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतीन्द्रलो-
केषु गार्गीति कस्मिन् खल्विन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेषु
गार्गीति कस्मिन् खलु प्रजापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोकेषु गार्गीति
कस्मिन् खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गी माऽतिप्राक्षीर्मा
ते मूर्धा व्यपसदनतिप्रभयां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गी माऽतिप्राक्षीरिति
ततो ह गार्गी वाचकव्युपरराम ॥ १ ॥

इति तृतीयाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ हैनमुदाहरणं आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच भद्रेष्ववसाम
 षतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद्भार्या गन्धर्वगृहीता तम-
 पुच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत् कवन्ध आथर्वण इति सोऽब्रवीत्पतञ्जलं काप्यं
 याज्ञिकाँश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः
 सर्वाणि च भूतानि संदृग्धानि भवन्तीति सोऽब्रवीत्पतञ्जलः काप्यो नाहं
 तद्भगवन्वेदेति सोऽब्रवीत्पतञ्जलं काप्यं याज्ञिकाँश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तम-
 न्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च लोकं सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो
 यमयतीति सोऽब्रवीत्पतञ्जलः काप्यो नाहं तं भगवन्वेदेति सोऽब्रवीत्पतञ्जलं
 काप्यं याज्ञिकाँश्च यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्स
 लोकवित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्वविदिति तेभ्योऽब्र-
 वीत्तदहं वेद तद्यत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वाँस्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजले
 श्रुत्वा ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणमिति यो
 वा ब्रह्म कश्चिद्भयाद्वेद वेदेति यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ॥ १ ॥ स होवाच वायुर्वै
 गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि
 च भूतानि संदृग्धानि भवन्ति तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रँस्तिपता-
 स्त्राङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृग्धानि भवन्तीत्येवमेवैतथाज्ञव-
 ल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति ॥ २ ॥ यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं
 पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मा-
 न्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥ योऽप्सु तिष्ठन्न्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं
 योऽपोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ४ ॥ योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेर-
 न्तरो यमग्निं वेद यस्माग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्त-
 र्याम्यमृतः ॥ ५ ॥ योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद
 यस्यान्तरिक्षं शरीरं योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः
 ॥ ६ ॥ यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो
 वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ७ ॥ यो दिवि तिष्ठन्दिवो-
 ऽन्तरो यं द्यौर्न वेद यस्य द्यौः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयत्येष त आत्मा-
 न्तर्याम्यमृतः ॥ ८ ॥ य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद
 यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ९ ॥
 यो दिक्षु तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं यो दिशो-
 ऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १० ॥ यश्चन्द्रतारके तिष्ठँश्चन्द्र-
 तारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकं शरीरं यश्चन्द्रतारक-

मन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ११ ॥ य आकाशो तिष्ठन्नाका-
 दन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमय-
 त्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १२ ॥ यस्तमसि तिष्ठन्स्तमसोऽन्तरो यं तमो
 न वेद यस्य तमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १३ ॥
 यस्तेजसि तिष्ठन्तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो
 यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृत इत्यधिदैवतमथाधिभूतम् ॥ १४ ॥ यः
 सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यः सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य
 सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्या-
 म्यमृत इत्यधिभूतमथाध्यात्मम् ॥ १५ ॥ यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं
 प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्या-
 म्यमृतः ॥ १६ ॥ यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाक् न वेद यस्य वाक्
 शरीरं यो वाचमन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १७ ॥ यश्चक्षुषि
 तिष्ठन्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्नेष
 त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १८ ॥ यः श्रोत्रे तिष्ठन्श्रोत्रादन्तरो यः श्रोत्रं न
 वेद यस्य श्रोत्रं शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः
 ॥ १९ ॥ यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं
 यो मनोऽन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २० ॥ यस्त्वचि तिष्ठन्-
 त्वचोऽन्तरो यं त्वक् न वेद यस्य त्वक् शरीरं यस्त्वचमन्तरो यमयत्नेष त
 आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २१ ॥ यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं
 न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्या-
 म्यमृतः ॥ २२ ॥ यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यः रेतो न वेद यस्य रेतः
 शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयत्नेष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽक्षुतः
 श्रोताऽभूतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति
 श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्य-
 मृतोऽतोऽन्यदार्तं ततो होद्वाक्यं आरुणिरुपराराम ॥ २३ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ ह वाचक्रन्त्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्षयामि
 तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेत्येति पृच्छ
 गार्गीति ॥ १ ॥ सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यपो वा वैदेहो
 बोधप्रपुत्र उज्जयं भनुरभिजयं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्न्यातिव्याधिनौ दृक्षे
 कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रसाभ्यामुपोदस्यां तौ मे ब्रूहीति पृच्छ

गार्गीति ॥ २ ॥ सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् पृथिव्या यद-
न्तरा धावापृथिवी इमे यज्ज्ञतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिँस्तदोतं
च प्रोतं चेति ॥ ३ ॥ स होवाच यदूर्ध्वं गार्गी दिवो यदवाक् पृथिव्या यद-
न्तरा धावापृथिवी इमे यज्ज्ञतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते आकाशे तदोतं
च प्रोतं चेति ॥ ४ ॥ सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य यो म एतं व्यवो-
चोऽपरस्मै धारयस्वेति पृच्छ गार्गीति ॥ ५ ॥ सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य
दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा धावापृथिवी इमे यज्ज्ञतं च भवच्च भवि-
ष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिँस्तदोतं च प्रोतं चेति ॥ ६ ॥ स होवाच यदूर्ध्वं गार्गी
दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा धावापृथिवी इमे यज्ज्ञतं च भवच्च भविष्य-
च्चेत्याचक्षते आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति कस्मिन्नु खत्वाकाश ओतश्च
प्रोतश्चेति ॥ ७ ॥ स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गी ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलम-
णवबहस्वमदीर्घमलोहितमस्त्रेहमच्छायमतमोऽचार्यवनाकाशमसङ्गमरसमगन्ध-
मचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तद-
ज्ञाति किंचन न तदज्ञाति कश्चन ॥ ८ ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी
सूर्याचन्द्रमसौ विद्यते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी धावा-
पृथिव्यौ विद्यते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी निमेषा मुहूर्ता
अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विद्यतास्त्रिष्टय्येतस्य वा
अक्षरस्य प्रशासने गार्गी प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रती-
व्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी ददतो मनुष्याः
प्रशंसन्ति यजमानं देवा दूर्वां पितरोऽन्वायन्ताः ॥ ९ ॥ यो वा एतदक्षरं
गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहुनि वर्षसहस्राण्यन्तव-
द्देवास्तज्जवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकायैति स कृपणोऽथ
य एतदक्षरं गार्गी विदित्वाऽस्माल्लोकायैति स ब्राह्मणः ॥ १० ॥ तद्वा एत-
दक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतं श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टु
नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्त्रु नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु
स्त्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ११ ॥ सा होवाच ब्राह्मणा भगव-
न्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकस्मिं
कस्मिन्नस्त्रोयं जेतेति ततो ह वाचक्रन्त्युपरराम ॥ १२ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

अथ हेनं विदुषः शाकल्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स हेतयैव
निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्रयश्च ग्री च शता नयश्च

त्री च सहज्योमिति होवाच कस्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रयस्त्रिंशदित्यो-
 मिति होवाच कस्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कस्येव देवा
 याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कस्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वाविं-
 त्योमिति होवाच कस्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्धं इत्योमिति होवाच
 कस्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमे ते त्रयश्च त्री च
 शता त्रयश्च त्री च सहजेति ॥ १ ॥ स होवाच महिमान एवेषांते
 त्रयस्त्रिंशत्स्येव देवा इति कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश
 रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशदिति ॥ २ ॥
 कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च
 नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वं हितमिति तस्माद्वसव इति ॥ ३ ॥
 कतमे रुद्रा इति दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदाऽस्माच्छरीरान्मर्त्यादु-
 त्कामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ४ ॥ कतम आदित्या
 इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति
 ते यदिदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ५ ॥ कतम इन्द्रः
 कतमः प्रजापतिरिति स्तनयितुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतमः स्तनयितु-
 रित्यज्ञनिरिति कतमो यज्ञ इति पञ्चव इति ॥ ६ ॥ कतमे षडित्यग्निश्च पृथिवी
 च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्चैते षडेते हीदं सर्वं षडिति ॥ ७ ॥ कतमे
 ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ
 द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्धं इति योऽयं पवत इति ॥ ८ ॥
 तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथमध्यर्धं इति यदस्मिन्निदं सर्वमध्याश्रोत्ते-
 नाध्यर्धं इति कतम एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ९ ॥
 पृथिव्येव यस्यायतनमभिर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः
 परायणं स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः
 परायणं यमात्थ य एवायं शारीरः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का
 देवतेत्यमृतमिति होवाच ॥ १० ॥ काम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनो-
 ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् । याज्ञ-
 वल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं काम-
 मयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति स्त्रिय इति होवाच ॥ ११ ॥
 रूपाण्येव यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्या-
 त्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं
 सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवासावादित्ये पुरुषः स एष वदैव शाकल्य

तस्य का देवतेति सत्यमिति होवाच ॥ १२ ॥ आकाश एव यस्यायतनं
 जीर्णं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणं स वै
 वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमास्थ
 य एवायं औत्रः प्रातिश्रुतः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति
 द्विष इति होवाच ॥ १३ ॥ तम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो
 वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद
 वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमास्थ य एवायं छायायमः पुरुषः
 स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति सृष्टुरिति होवाच ॥ १४ ॥ रूपाण्येव
 यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परा-
 यणं स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः
 परायणं यमास्थ य एवायमादर्शो पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देव-
 तेत्यसुरिति होवाच ॥ १५ ॥ आप एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनोज्यो-
 तिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् याज्ञवल्क्य
 वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमास्थ य एवायमप्सु पुरुषः स
 एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति वरुण इति होवाच ॥ १६ ॥ रेत एव
 यस्यायतनं हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परा-
 यणं स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं
 यमास्थ य एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति
 प्रजापतिरिति होवाच ॥ १७ ॥ शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्यस्त्वां स्विदिमे
 ब्राह्मणा अङ्गारावक्षयणमक्रता इति ॥ १८ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच
 शाकल्यो यदिदं कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादीः किं ब्रह्म विद्वानिति दिवो वेद
 स देवाः सप्रतिष्ठा इति यद्विशो वेत्थ सदेवाः सप्रतिष्ठाः ॥ १९ ॥ किंदेवतोऽस्यां
 प्राच्यां दिश्यसीत्यादित्यदेवत इति स आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति
 चक्षुषीति कस्मिन् चक्षुः प्रतिष्ठितमिति रूपेण्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति
 कस्मिन् रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति
 हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २० ॥ किंदेव-
 तोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति यमदेवत इति स यमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति यज्ञ
 इति कस्मिन् यज्ञः प्रतिष्ठित इति दक्षिणायामिति कस्मिन् दक्षिणा प्रतिष्ठितेति
 अद्वायामिति यदा ह्येव अद्भत्तेऽथ दक्षिणां ददाति अद्वायां ह्येव दक्षिणा
 प्रतिष्ठितेति कस्मिन् अद्वा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन हि अद्वा
 जानाति हृदये ह्येव अद्वा प्रतिष्ठिता भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २१ ॥

किं देवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति वरुणदेवत इति स वरुणः कस्मिन्प्रतिष्ठित इत्यपि स्थिति कस्मिन्वापः प्रतिष्ठिता इति रेतसीति कस्मिन् रेतः प्रतिष्ठितमिति हृदय इति तस्मादपि प्रतिरूपं जातमाहुर्हृदयादिव सृक्षो हृदयादिव निर्मित इति हृदये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतथाज्ञवल्क्य ॥ २२ ॥ किं देवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोमदेवत इति स सोमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति दीक्षायामिति कस्मिन् दीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्मादपि दीक्षितनाहुः सत्यं वदेति सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति कस्मिन् सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतथाज्ञवल्क्य ॥ २३ ॥ किं देवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्यग्निदेवत इति सोऽग्निः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वाचीति कस्मिन् वाक् प्रतिष्ठितेति हृदय इति कस्मिन् हृदयं प्रतिष्ठितमिति ॥ २४ ॥ अहलिंकेति होवाच याज्ञवल्क्यो यन्नैतदन्यत्रास्मन्मन्यासै यच्चैतदन्यत्रास्मत्स्याच्छ्वानो वैनद्दुर्वयांसि वैनद्विमञ्जीरन्ति ॥ २५ ॥ कस्मिन् त्वं चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति प्राण इति कस्मिन् प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति कस्मिन्नपानः प्रतिष्ठित इति व्यान इति कस्मिन् व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति कस्मिन्नुदानः प्रतिष्ठित इति समान इति स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसज्जो न हि सज्यतेऽसिक्तौ न व्यथते न रिष्यति । एतान्यष्टावायतनान्यष्टौ लोका अष्टौ देवा अष्टौ पुरुषाः स यस्तान्पुरुषाभिरूह्य प्रत्युह्यात्यक्रामत्तं त्वौपनिषदं पृच्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति । तं ह न मेने शाकल्यस्तस्य ह मूर्धा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यपजहुरन्यन्मन्यमानाः ॥ २६ ॥ अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु सर्वे वा मा पृच्छत यो वः कामयते तं वः पृच्छामि सर्वान्वा वः पृच्छामीति ते ह ब्राह्मणा न ददुषुः ॥ २७ ॥ तान् हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ ॥ यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ॥ तस्य लोमानि पर्णानि त्वंगस्योत्पाटिका बहिः ॥ त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः ॥ तस्मात्तदा तृण्णात्प्रैति रसो वृक्षादिवाऽऽहतात् ॥ मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्त्राव तस्मिन् ॥ अस्थीन्यन्तरतो दारुणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥ यद्वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः ॥ मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कसान्मूलात्प्ररोहति ॥ रेतस इति मा वोचत जीवतस्तत्प्रजायते ॥ धानारूह इव वै वृक्षोऽक्षसा प्रेत्य संभवः ॥ यत्समूलमावृहेत्युर्वृक्षं न पुनरभवत् ॥ मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कसान्मूलात्प्ररोहति ॥

ज्जात एव न जायते को न्वेवं जनयेत्पुनः ॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः
परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदु इति ॥ २८ ॥

इति तृतीयाध्याये नवमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ जनको ह वैदेह आसांचक्रेऽथ ह याज्ञवल्क्य आववाज । त९ होवाच
याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्नपवन्तानिति । उभयमेव सन्नाडिति
होवाच ॥ १ ॥ यत्ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवासेत्यब्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग्वै ब्रह्मेति
यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छैलिनिरब्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्यवदतो
हि किं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्स-
न्नाडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य । वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येनदु-
पासीत । का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य वागेव सन्नाडिति होवाच । वाचा वै सन्नाद
अन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं
विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं
पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सन्नाद प्रज्ञा-
यन्ते वाग्वै सन्नाद परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति
देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते । हस्त्युषभं सहजं ददामीति
होवाच जनको वैदेहः । स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुक्षिप्य
हरेतेति ॥ २ ॥ यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवासेत्यब्रवीन्म उदङ्कः शौल्बायनः
प्राणो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छौल्बायनोऽब्र-
वीत्प्राणो वै ब्रह्मेत्यप्राणतो हि किं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न
मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सन्नाडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य प्राण एवायत-
नमाकाशः प्रतिष्ठा प्रियमित्येनदुपासीत का प्रियता याज्ञवल्क्य प्राण एव
सन्नाडिति होवाच प्राणस्य वै सन्नादकामायायाजं याजयत्यप्रतिगृह्यस्य
प्रतिगृह्यात्यपि तत्र वधाशङ्कं भवति यां दिशमेति प्राणस्यैव सन्नाद कामाय
प्राणो वै सन्नाद परमं ब्रह्म नैनं प्राणो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो
भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्युषभं सहजं ददामीति होवाच
जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुक्षिप्य हरेतेति

॥ ३ ॥ यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृण्वामेत्यब्रवीन्मे चर्तुर्वाण्यश्नुर्वै ब्रह्मेति
 यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्भूयात्तथा तद्वाण्योऽब्रवीच्छ्रुर्वै ब्रह्मेत्यपश्यतो
 हि किं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतस्स-
 म्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य चक्षुरेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा सत्यमित्येन-
 दुपासीत का सत्यता याज्ञवल्क्य चक्षुरेव सम्राडिति होवाच चक्षुषा वै
 सम्राट् पश्यन्तमाहुरद्वाक्षीरिति स आहाद्वाक्षमिति तस्सत्यं भवति चक्षुर्वै
 सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं चक्षुर्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा
 देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभं सहस्रं ददामीति होवाच
 जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य
 हरेतेति ॥ ४ ॥ यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृण्वामेत्यब्रवीन्मे गर्दभीविपीतौ
 आरद्वाजः श्रोत्रं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्भूयात्तथा सम्राट्-
 द्वाजोऽब्रवीच्छ्रोत्रं वै ब्रह्मेत्यश्नुवतो हि किं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं
 प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतस्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य श्रोत्र-
 म्वायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽनन्त इत्येनदुपासीत काऽनन्तता याज्ञवल्क्य दिश
 एव सम्राडिति होवाच तस्माद्दिशं कां च दिशं गच्छति नैवास्या अन्तं
 गच्छत्यनन्ता हि दिशो दिशो वै सम्राट् श्रोत्रं श्रोत्रं वै सम्राट् परमं ब्रह्म
 नैव श्रोत्रं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य
 एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभं सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स
 होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥ ५ ॥ यदेव ते
 कश्चिदब्रवीत्तच्छृण्वामेत्यब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालो मनो वै ब्रह्मेति यथा
 मातृमान्पितृमानाचार्यवान्भूयात्तथा तज्जाबालोऽब्रवीन्मनो वै ब्रह्मेत्यमनसो
 हि किं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा
 एतस्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य मन एवायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽऽ-
 नन्द इत्येनदुपासीत का आनन्दता याज्ञवल्क्य मन एव सम्राडिति होवाच
 मनसा वै सम्राट् क्षियमभिहार्यते तस्यां प्रतिकृपाः पुत्रो जायते सं आनन्दो
 मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं मनो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति
 देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभं सहस्रं ददा-
 मीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नान-
 नुशिष्य हरेतेति ॥ ६ ॥ यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृण्वामेत्यब्रवीन्मे सिद्धा-
 शाकस्यो हृदयं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्भूयात्तथा तज्ज-
 षाकस्यो हृदयं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्भूयात्तथा तज्ज-

कस्योऽश्ववीरुदयं वै ब्रह्मेत्यहदयस्य हि किं स्यादित्यश्ववीरुत्ते तस्या-
चतनं प्रतिष्ठां न मेऽश्ववीरुदयेकपाद्वा एतत्सञ्जायति स वै नो ब्रूहि याज्ञ-
वल्क्य हृदयमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिरित्येनदुपासीत का स्थितता
याज्ञवल्क्य हृदयमेव सञ्जायति होवाच हृदयं वै सञ्जाद सर्वेषां भूताना-
मायतनं हृदयं वै सञ्जाद सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा हृदये होव सञ्जाद सर्वाणि
भूतानि प्रतिष्ठितानि भवन्ति हृदयं वै सञ्जाद परमं प्रथमं नैनं हृदयं जहाति
सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते
सुस्तृप्यन् ॥ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः
पिता मेऽमन्यत नाननुक्षिप्य हरेतेति ॥ ७ ॥

इति चतुर्थाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

ॐ जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पकुवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्याय मा
द्याधीति स होवाच यथा वै सञ्जाणमहान्त्रमध्वानमेव्यन् रथं वा नावं वा
समादधीतैवमेवैतामिरुपनिषन्तिः समाहितात्माऽस्येवं बृहदारक आद्यः सञ्ज-
धीतवेद उक्तोपनिषत्क इतो विमुच्यमानः क गमिष्यसीति नानं तज्जगदन्वेदं
यज्ञ गमिष्यामीत्यथ वै तेऽहं तद्वक्ष्यामि यज्ञ गमिष्यसीति ब्रवीतु भगवा-
न्मिति ॥ १ ॥ इन्द्रो ह वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तं वा एतमिन्द्रं
सक्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः
॥ २ ॥ अथैतद्वासेऽक्षणि पुरुषरूपमेषास्य पत्नी विराद तयोरेव सङ्स्तावो
य एषोऽन्तर्हृदय आकाशोऽथैनयोरेतदग्रं य एषोऽन्तर्हृदये कोहितविष्णो-
ऽथैनयोरेतत्प्रावरण यदेतदन्तर्हृदये जालकमिवाथैनयोरेषा सृतिः संचरणी
येषां हृदयादूर्ध्वा नाड्युत्तरति यथा केशः सहस्रधां भिन्न एवमस्यैता हितां
नाम नाड्योऽन्तर्हृदये प्रतिष्ठिता भवत्येव ताभिर्वा एतदाक्षवदाक्षवति
तस्यादेश प्रवित्रिकाहारत्तर इवैव भवत्यस्माच्छरीरादात्मनः ॥ ३ ॥ तस्य
प्राची दिक् प्राञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग्दक्षिणं प्राणाः प्रतीची दिक् प्रत्यक्षः
प्राणाः सदीची दिग्दक्षः प्राणा ऊर्ध्वा दिगूर्ध्वाः प्राणा अवापी दिग्वाञ्चः
प्राणाः सर्वा दिक्षः सर्वे प्राणाः स एष नेति नेत्यात्माऽगृहो नहि गृह्यते-
ऽक्षीर्षो नहि क्षीर्यतेऽसक्तो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते ग रिष्यत्यभयं
वै जनकं प्राप्नोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः । स होवाच जनको वैदेहोऽमर्ष-
त्वा गच्छतायाज्ञवल्क्य यो नो भगवन्नभयं वेदयसे नमस्तेऽस्तिमे विदेहा
जयमदमसि ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

जनकः ह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम स मेने न वदिष्य इत्यथ ह यज्ञ-
नकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्यश्चाभिहोत्रे समुदाते तस्यै ह याज्ञवल्क्यो वरं ददौ स
ह कामप्रभमेव वने तः तस्यै ददौ तः ह सन्नाडेव पूर्वं प्रपच्छ ॥ १ ॥ याज्ञवल्क्य
क्रिज्योतिरयं पुरुष इति । आदित्यज्योतिः सन्नाडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योति-
षास्ते पत्ययते कर्म कुरुते विपत्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २ ॥ अस्मिन् आदित्ये
याज्ञवल्क्य क्रिज्योतिरेवायं पुरुष इति चन्द्रमा एवास्य ज्योतिर्भवतीति चन्द्रम-
सैवायं ज्योतिषास्ते पत्ययते कर्म कुरुते विपत्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ ३ ॥
अस्मिन् आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्मिन् क्रिज्योतिरेवायं पुरुष इत्य-
ग्निरेवास्य ज्योतिर्भवतीत्यग्निरैवायं ज्योतिषास्ते पत्ययते कर्म कुरुते विप-
त्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ ४ ॥ अस्मिन् आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रम-
स्यस्मिन् ज्ञान्तेऽग्नौ क्रिज्योतिरेवायं पुरुष इति वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति
वाचैवायं ज्योतिषास्ते पत्ययते कर्म कुरुते विपत्येतीति तस्माद्दे सन्नाडपि
यत्र स्वः पाणिर्न विनिर्ज्ञायतेऽथ यत्र वागुच्चरत्युपैव तत्र न्येतीत्येवमेवैत-
द्याज्ञवल्क्य ॥ ५ ॥ अस्मिन् आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्मिन् ज्ञान्ते-
ऽग्नौ ज्ञान्तायां वाचि क्रिज्योतिरेवायं पुरुष इत्यात्मैवास्य ज्योतिर्भवतीत्या-
त्मनैवायं ज्योतिषास्ते पत्ययते कर्म कुरुते विपत्येतीति ॥ ६ ॥ कतम आ-
त्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु ह्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सञ्च भौ
लोकावनुसंचरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रा-
मति मृत्यो रूपाणि ॥ ७ ॥ स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिलंघ्य-
मानः पाप्मभिः सः सृज्यते स उत्क्रामन् क्रियमाणः पाप्मनो विजहाति
॥ ८ ॥ तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं
च सन्ध्यं तृतीयः स्वप्नस्थानं तस्मिन्सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्य-
तीदं च परलोकस्थानं च । अथ यथाक्रमोऽयं परलोकस्थाने भवति तमाक्रममा-
क्रम्योभयान् पाप्मन आनन्दाः पश्यति स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य
सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहस्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्यो-
तिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥ ९ ॥ न तत्र रथा न रथ-
योगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथात्रथयोगान्पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः
प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः
स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता ॥ १० ॥
वदेते श्लोका भवन्ति ॥ स्वप्ने शरीरमभिप्रहत्याऽमुसः सुप्तानभिचाकशीति ॥
शुक्रमादाय पुनरेति स्थानः हिरण्यमयः पुरुष एकहः सः ॥ ११ ॥ प्राणेन

रक्षन्तवरे कुलायं बहिष्कुलायं वृत्तश्चरित्वा । स ईयतेऽमृतो यत्र कामं
 हिरण्मयः पुरुष एकहंसः ॥ १३ ॥ स्वप्नान्त उवाच चम्रीयमानो रूपानि
 देवः कुर्वते बहूनि । उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुतेवापि अयापि
 पश्यन् ॥ १३ ॥ आरामस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चनेति । तं नायत्तं
 बोधयेदित्याहुः ॥ दुर्भिक्ष्यं हास्यै भवति यमेष न प्रतिपद्यते । अथो खत्वा-
 हुर्जागरितदेह एवास्यैव इति यानि ह्येव जाग्रत्पश्यति तानि सुप्त इत्यत्रायं
 पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षाय
 ब्रूहीति ॥ १४ ॥ स वा एष एतस्मिन्संभ्रसादे रत्वा चरित्वा हृष्टैव पुण्यं
 च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किंचित्प-
 न्यत्यनन्वागतस्तेन अवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतथाज्ञवत्क्य सोऽहं
 भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥ १५ ॥ स वा एष
 एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा हृष्टैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रति-
 योन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन अवत्यसङ्गो
 ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतथाज्ञवत्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं
 विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥ १६ ॥ स वा एष एतस्मिन्बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा
 हृष्टैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव ॥ १७ ॥
 तद्यथा महामत्स्य उभे कूलेऽनुसंचरति पूर्वं चापरं चैवमेवायं पुरुष एता-
 भावन्तावनुसंचरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च ॥ १८ ॥ तद्यथास्मिन्नाकाक्षौ
 इयेनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहृत्य पक्षौ संलयायैव भ्रियत
 एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते
 न कंचन स्वप्नं पश्यति ॥ १९ ॥ ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा
 केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताऽणिष्ठा तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरि-
 तस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं गन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति
 गर्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव
 इव राजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः ॥ २० ॥
 तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माऽभयं रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया
 संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञैनात्मना
 संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतादात्मकामात्मकाम-
 मकामं रूपं शोकान्तरम् ॥ २१ ॥ अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता
 लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति ब्रूणहा-
 ऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्लसोऽपौल्लसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽता-

एतौऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्दृष्टव्यं
 भवति ॥ २२ ॥ यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरि-
 लोपो विद्यतेऽविनाशित्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् ॥ २३ ॥ यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि प्रातुर्मातेर्विपरिलोपो
 विद्यतेऽविनाशित्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यजिघ्रेत् ॥ २४ ॥ यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयित् रसयतेर्विपरिलोपो
 विद्यतेऽविनाशित्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् ॥ २५ ॥ यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्त्रेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविना-
 शित्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत् ॥ २६ ॥ यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-
 त्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात् ॥ २७ ॥ यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-
 त्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ॥ २८ ॥ यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्पर्शः स्पर्शेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-
 त्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् ॥ २९ ॥ यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-
 त्वाच्च तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥ ३० ॥ यन्न वान्यदिव स्यात्तन्नान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यजिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्य-
 द्रदेवन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात् ।
 ॥ ३१ ॥ सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सद्भाडिति हैममनुवा-
 द्यास याज्ञवल्क्य पृथास परमा गतिरेषास्य परमा संपदेशोऽस्य परमो लोकः
 पृथोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मान्नाशुपधीवन्ति
 ॥ ३२ ॥ स यो मनुष्याणां राक्षः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्य-
 कैर्भोगैः संपन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः
 स एकः पितृणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये शतं पितृणां जितलोकानामान-
 नन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः
 कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसंपन्नन्तेऽथ ये शतं कर्मदेवाना-
 मानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दो यश्च ओन्नियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ
 ये शतमाजानदेवानामानन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च ओन्नि-
 वोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक
 आनन्दो यश्च ओन्नियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथैव एव परम आनन्द एष ब्रह्म-

लोकः सन्नाडिति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते सहजं ददाम्यत ऊर्ध्वं
विमोक्षायैव ब्रूहीत्यत्र ह याज्ञवल्क्यो विभर्थाचकार मेधावी राजा सर्वेभ्यो
माऽन्तेभ्य उदरौत्सीदिति ॥ ३३ ॥ स वा एष एतस्मिन्स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा
इद्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्ववति बुद्धान्तायैव ॥ ३४ ॥
तद्यथाऽनः सुसमाहितसुस्सर्जधायादेवमेवायं शरीर आत्मा प्राज्ञेनात्मना-
न्वारुढसुस्सर्जन्त्याति यन्नैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ॥ ३५ ॥ स यन्नायमणिमानं
न्येति जरथा वोपतपता वाणिमानं निगच्छति तद्यथाऽन्नं चोदुम्बरं वा पिप्पलं
वा बन्धनात्प्रमुच्यत एवमेवायं पुरुष एभ्योऽङ्गैर्भ्यः संप्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं
प्रतियोन्याद्ववति प्राणायैव ॥ ३६ ॥ तद्यथा राजानमायान्तमुग्राः प्रत्येनसः
सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्तेऽयमायालयमागच्छतीत्येवं हैवं-
धिदं सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्मायातीदमागच्छतीति ॥ ३७ ॥
तद्यथा राजानं प्रथियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽभिसमायन्त्येव-
मेवैवमात्मानमन्तकाले एवै प्राणा अभिसमायन्ति यन्नैतदूर्ध्वोच्छ्वासी
भवति ॥ ३८ ॥

इति चतुर्थाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

स यन्नायमात्माऽबल्यं न्येत्य संमोहमिव न्येत्यथैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति
स एतास्तेजोमात्राः समभ्यादवानो हृदयमेवान्ववक्रामति स यन्नैव चाक्षुषः
पुरुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवति ॥ १ ॥ एकीभवति न पश्यतीत्या-
हुरेकीभवति न जिघ्रतीत्याहुरेकीभवति न रसयत इत्याहुरेकीभवति न
वदतीत्याहुरेकीभवति न शृणोतीत्याहुरेकीभवति न मनुत इत्याहुरेकीभवति
न स्पृशतीत्याहुरेकीभवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृतयस्याग्रं प्रचोतते
तेन प्रचोतेनैव आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा श्रोत्रो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदे-
शेभ्यस्तुष्क्रामन्तं प्राणोऽनूष्क्रामति प्राणमनूष्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूष्क्रा-
मन्ति स विज्ञानो भवति सविज्ञानमेवान्ववक्रामति । तं विद्याकर्मणी सम-
न्वारमेते पूर्वप्रज्ञा च ॥ २ ॥ तद्यथा तृणजलायुक्ता तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रम-
माक्रम्यात्मानमुपसंहरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽ-
न्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरति ॥ ३ ॥ तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा-
मषादायान्ववतर्त कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निह-
त्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यववतर्त कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा
दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ॥ ४ ॥ स वा अयमात्मा
ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो

वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽस्तेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽ-
 क्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्वदेतदिदमयोऽद्वोमय इति यथा-
 कारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति
 पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन ॥ अथो खल्वबाहुः काममय एवायं
 पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म क्रुते
 यत्कर्म क्रुते तदभिसंपद्यते ॥५॥ तदेष श्लोको भवति ॥ तदेव सक्तः सह कर्म-
 णेति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य ॥ प्राप्शान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् ॥
 तस्माच्छोकापुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मण इति तु कामयमानोऽथाकामयमानो योऽ-
 कामो निष्काम आसक्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्त-
 द्वाप्येति ॥६॥ तदेष श्लोको भवति । यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि
 भिताः ॥ अथ मर्याऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति ॥ तद्यथाऽहिनिर्व्वयनी
 वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदं शरीरं शीतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो
 ब्रह्मैव तेज एव सोऽहं भगवते सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः ॥७॥ तदेष
 श्लोका भवन्ति ॥ अणुः पन्था विततः पुराणो माँ स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव ॥ तेव
 धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः ॥८॥ तस्मिन्नुत्प्लुत
 नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च ॥ एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति
 ब्रह्मविपुण्यकृतैजसश्च ॥९॥ अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ॥ ततो
 भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः ॥१०॥ अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन
 तमसाऽऽवृताः ॥ ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वाँसोऽजुधो जनाः ॥ ११ ॥
 आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः ॥ किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरम-
 नुसंज्वरेत् ॥१२॥ यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन्संदेहो गहने प्रतिष्ठः ॥
 स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥ १३ ॥ इहैव
 सन्तोऽथ विद्यस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः ॥ ये तद्विदुरमृतास्ते अवन्त्य-
 येतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १४ ॥ यदेतमनुपश्यत्यात्मानं देवमक्षता ॥
 ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ १५ ॥ यस्मादवाकंसंवत्सरोऽहोभिः
 परिचर्तते ॥ तदेवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥ १६ ॥ यस्मिन्पञ्च
 पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ॥ तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतम्
 ॥ १७ ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो
 विदुः ॥ ते निश्चिकुर्ब्रह्म पुराणमग्रम् ॥ १८ ॥ मनसैवानुदृष्टव्यं नेह
 नानास्ति किंचन ॥ मृत्योः स मृत्युमामोति य इह नानेव पश्यति ॥ १९ ॥
 एकैवानुदृष्टव्यमेतदग्रमयं ध्रुवम् ॥ विरजः पर आकाशादज आत्मा महा-

न्मुचः ॥ २० ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥ नानुध्वयाद्-
 हृच्छब्दान्वाचो विस्फापनं हि तदिति ॥ २१ ॥ स वा एष महानज
 आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्त्रिभिर्भूते
 सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः स न साधुना कर्मणा श्रूयान्नो
 एवासाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्वि-
 धरण एषां लोकानामसंभेदाय तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति
 यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति । एतमेव प्रब्राजिनो
 लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति । एतद् स नैतत्पूर्वं विद्वान्सः प्रज्ञां न कामयन्ते
 किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स पुत्रैषणा-
 याश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव
 पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोमे ह्येते एषणे एव भवतः ॥
 स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसज्जो न हि
 सज्यतेऽसितो न ज्यथते न रिष्यत्येतमु हैवैते न तरत इत्यतः पापमकरवमि-
 त्यतः कल्याणमकरवमित्युभे उ हैवैष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः ॥ २२ ॥
 तदेतद्वचाम्युक्तम् । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कवी-
 यान् ॥ तस्यैव स्थापदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति । तस्या-
 देवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्त्रिभुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं
 पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं
 पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो
 भवत्येष ब्रह्मलोकः सज्जाहेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं
 अगवते विदेहान् ददामि मां चापि सह दास्यायेति ॥ २३ ॥ स वा एष
 महानज आत्माऽद्वादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद ॥ २४ ॥ स वा
 एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्मभयं वै ब्रह्मभयं हि वै ब्रह्म
 भवति य एवं वेद ॥ २५ ॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुमैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्हं
 मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्ध-
 हुत्तमुपाकरिष्यन् ॥ १ ॥ मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजित्यन्वा अरेऽ-
 हमस्मात्स्यानादसि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति ॥ २ ॥ सा
 होवाच मैत्रेयी यद्यु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी विस्तेन पूर्णा स्यात्स्यां न्वहं
 तेनामृताऽऽहोऽ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां स्त्रीवित्तं

तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशक्तिं विचेनेति ॥ ३ ॥ सा होवाच
 मैत्रेयी येनाहं नामृता स्थां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे
 ब्रूहीति ॥ ४ ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलु नो भवतीं सती
 प्रियममृतममृतं तर्हि भवत्येतद्व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्या-
 सत्येति ॥ ५ ॥ स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो अवस्था-
 त्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाता प्रिया
 अवस्थात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय
 पुत्राः प्रिया अवस्थात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य
 कामाय वित्तं प्रियं अवस्थात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे
 पत्न्यां कामाय पत्नयः प्रिया अवस्थात्मनस्तु कामाय पत्नयः प्रिया भवन्ति ।
 न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं अवस्थात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति ।
 न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं अवस्थात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति ।
 न वा अरे लोकाणां कामाय लोकाः प्रिया अवस्थात्मनस्तु कामाय लोकाः
 प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया अवस्थात्मनस्तु कामाय
 देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया अवस्थात्मनस्तु
 कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि
 अवस्थात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय
 सर्वं प्रियं अवस्थात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः
 श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते
 विज्ञात इदं सर्वं विदितम् ॥ ६ ॥ ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद
 क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोका-
 न्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो
 वेदान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्य-
 त्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि भूता-
 नीदं सर्वं यदयमात्मा ॥ ७ ॥ स यथा दुन्दुमेहर्हन्मानस्य न बाह्यान्ष्टब्दा-
 न्ष्टक्रुयाद्ब्रह्मणाय दुन्दुमेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्यावातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥ स
 यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्यान्ष्टब्दान्ष्टक्रुयाद्ब्रह्मणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन
 शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥ स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्या-
 न्ष्टब्दान्ष्टक्रुयाद्ब्रह्मणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः
 ॥ १० ॥ स यथाद्रौघाभेरभ्याहिनस्य पृथग्भूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य
 महतो भूतस्य निश्चितमेतद्यद्वेदो भुवैवैवः सामवेदोऽथर्वागिरस इतिहासः

पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानाति व्याख्यानानीष्टं हुत-
 माशितं पायितमयं च लोकः परस्व लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि
 जिह्वसितानि ॥ ११ ॥ स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेव सर्वेषां स्प-
 र्शानां त्वगैकायनमेव सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेव सर्वेषां रसा-
 नां जिह्वैकायनमेव सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनमेव सर्वेषां शब्दानां
 ओष्ठमेकायनमेव सर्वेषां संकल्पाणां मन एकायनमेव सर्वासां विद्यानां
 हृदयमेकायनमेव सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनमेव सर्वेषामानन्दानामु-
 पस्थ एकायनमेव सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेव सर्वेषामध्वनां पादा-
 वेकायनमेव सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ १२ ॥ स यथा सैन्धवघनो-
 ऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः
 प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः सञ्जुस्थाय तान्येवानुबिन्दयति न प्रेत्य संज्ञा-
 ऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १३ ॥ सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भ-
 गवान्मोहान्तमापीपिपक्ष वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं
 मीहं ब्रवीम्यविनाश्री वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ॥ १४ ॥ यत्र हि द्वैतमिदं
 अचति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं रसयते
 तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर
 इतरं स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं
 ग्रह्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं रसयेत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं शृणुयात्त-
 त्केन कं मन्वीत तत्केन कं स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाद्येनेदं सर्वं विजानाति
 तं केन विजानीयात्स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शी-
 र्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजा-
 नीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वनृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञव-
 ल्क्यो विजहार ॥ १५ ॥

इति चतुर्थाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ वक्षः पौतिमाध्यात्पौतिमाध्या गौपवनाद्गौपवनः पौतिमाध्यात्पौति-
 माध्या गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डित्या-
 त्शाण्डित्यः कौशिकाश्च गौतमाश्च गौतमः ॥ १ ॥ आग्निवेदयादाग्निवेदयो
 गार्ग्याद्गार्ग्यो गार्ग्याद्गार्ग्यो गौतमाद्गौतमः सैतवात्सैतवः पाराशर्यायणात्पारा-
 शर्यायणो गार्ग्यायणाद्गार्ग्यायण उद्दालकायनादुद्दालकायनो जाबालायनाज्जा-
 बालायनो माध्यन्दिनायनामाध्यन्दिनायनः सौकरायणात्सौकरायणः काषा-
 यणात्काषायणः सायकायनात्सायकायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः ॥ २ ॥

श्रुतकौशिकादृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः पाराशर्यात्पाराशर्यो जा-
तृकृष्णार्ज्यातृकृष्ण आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणकैवणेस्त्रैवणिरौपजन्मनैद्वौ-
पजन्मनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजान्नारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्डेर्माण्डिगौतमाद्वौ-
तमो गौतमाद्वौतमो चात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कै-
शोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्या-
द्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातो वाञ्छवाद्बत्सनपाद्वाञ्छवः पथः सौभरात्पन्थाः
सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वाद्वाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्व-
रूपास्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विन्यामश्विनौ दधीच अथर्वणात्थर्वणाथर्वणो
दैवादथर्वाद्वैवो मृत्योः प्राध्व५ सनान्मृत्युः प्राध्व५ सनः प्राध्व५ सनात्प्राध्व५ सन-
पुक्वरेकविंविप्रचित्तेविंविप्रचित्तिर्व्यष्टेद्वष्टिः सनारोः सनारः सनातनात्स-
नातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-
शिष्यते ॥ ॐ खं ब्रह्म खं पुराणं वायुरं खमिति ह खाह कौरव्यायणीपुत्रौ
वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदेनेन यद्वेदितव्यम् ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यं मृषुर्देवा मनुष्या असुरा
उपित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द
इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच
व्यज्ञासिष्टेति ॥ १ ॥ अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैत-
देवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्देसेति न
आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥ २ ॥ अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो
भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासि-
ष्मेति होचुर्दयध्वमिति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषा
देवी वागनुवदति स्तनयिषुर्द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतन्नयं
क्षिप्रैर्दमं दानं दयामिति ॥ ३ ॥

इति पञ्चमाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पृथ प्रजापतिर्यदुदयमेतद्ब्रह्मैतत्सर्वं तदेतन्नयंक्षरं हृदयमिति ह इत्येकम-

क्षरमभिहरन्त्यसौ स्वाध्याये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यसौ स्वा-
ध्याये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

तद्वै तदेतदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं
ब्रह्मेति जयतीमाँल्लोकान् जित इत्यवसावसथ एवमेतं महद्यक्षं प्रथमजं
वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापतिं
प्रजापतिर्देवाँस्ते देवाः सत्यमेवोपासते तदेतन्नयक्षरं सत्यमिति स इत्येक-
मक्षरं तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदे-
तदनुत्तमुभयतः सत्येन परिगृहीतं सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वाँ समनुत्तं
हिनस्ति ॥ १ ॥ तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एव एतस्मिन्मण्डले पुरुषो
यश्चायं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन्प्र-
तिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन् स यदोत्कस्मिन्मभवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति
नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥ २ ॥ य एव एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य श्रूरिति
क्षिर एकं क्षिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति
प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति
च य एवं वेद ॥ ३ ॥ योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य श्रूरिति शिर एकं शिर
एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे
द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

मनोमयोऽयं पुरुषो आः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा ग्रीहिर्वा यवो वा स
एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

विष्टुब्रह्मेत्याहुर्विद्वानाद्विष्टुद्विषत्येनं पाप्मनो य एवं वेद विष्टुब्रह्मेति
विष्टुर्ब्रह्मेव ब्रह्म ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्व-
धाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं
मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्यायेऽष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमग्रं पच्यते यदिदमच्यते तस्यैष
बोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय झृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैनं
बोषः शृणोति ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये नयमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

यदा वै पुरुषोऽस्माहोकात्रैति स वायुमागच्छति तस्यै स तत्र विजिहीते
यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्वं आक्रमते स आदित्यमागच्छति तस्यै स तत्र
विजिहीते यथा लम्बरस्य खं तेन स ऊर्ध्वं आक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति
तस्यै स तत्र विजिहीते यथा दुन्दुभेः खं तेन स ऊर्ध्वं आक्रमते स लोकमाग-
च्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समाः ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये दशमं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

एतद्वै परमं तपो यद्याहितस्तप्यते परमं ह वै लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै
परमं तपो यं प्रेतमरण्यं हरन्ति परमं ह वै लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै
परमं तपो यं प्रेतमन्नावभ्यादधति परमं ह वै लोकं जयति य एवं वेद ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याय एकादशं ब्राह्मणम् ॥ ११ ॥

अन्नं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा पूयति वा अन्नमृते प्राणाध्वाणो ब्रह्मेत्येक
आहुस्तन्न तथा शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नादेते ह त्वेव देवते एकधाभूयं भूत्वा
परमतां गच्छतस्तद् आह प्रातृदः पितरं किं स्विदेवैवं विदुषे साधु कुर्या
किमेवास्मा असाधु कुर्यामिति स ह आह पाणिना मा प्रातृद कस्त्वेनयोरे-
कधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतीति तस्मा उ हैतदुवाच वीत्यन्नं वै व्यन्ने
हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि
भूतानि रमन्ते सर्वाणि ह वा अस्मिन्भूतानि विद्वान्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते
य एवं वेद ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये द्वादशं ब्राह्मणम् ॥ १२ ॥

उक्थं प्राणो वा उक्थं प्राणो हीदं सर्वमुत्थापयत्युद्धास्मादुक्थविद्वीरस्त्रि-
ष्ट्युक्थस्य सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ १ ॥ अजुः प्राणो वै
अजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते युज्यन्ते हास्यै सर्वाणि भूतानि
ऋध्याय यजुषः सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ २ ॥ साम प्राणो
वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि सम्यञ्चि हास्यै सर्वाणि
भूतानि ऋध्याय कल्पन्ते साम्नः सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद
॥ ३ ॥ क्षत्रं प्राणो वै क्षत्रं हि त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्रक्षत्रमन्नमाप्नोति
क्षत्रस्य सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति पञ्चमाध्याये त्रयोदशं ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥

श्रुमिरन्तरिक्षं यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतद्बु
 हैवास्या एतस्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं
 वेद ॥ १ ॥ ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गा-
 यत्र्यै पदमेतद्बु हैवास्या एतस्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या-
 एतदेवं पदं वेद ॥ २ ॥ प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा
 एकं गायत्र्यै पदमेतद्बु हैवास्या एतस्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति
 योऽस्या एतदेवं पदं वेदायास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष
 तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददश इव ह्येष परोरजा इति
 सर्वसु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येव ह वै श्रिया यशसा तपति योऽस्या
 एतदेवं पदं वेद ॥ ३ ॥ सैषा गायत्र्येतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजस्ति
 प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्वि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं
 द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति
 तस्या एव श्रद्धयाम तद्वै तत्सत्यं बलं प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रति-
 स्थित तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवम्वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा
 हैषा गयास्त्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणास्त्रे तद्यद्गयास्त्रे तस्माद्गायत्री
 नाम स यासेवाभूत् सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्या अन्वाह तस्य प्राणास्त्रा-
 यते ॥ ४ ॥ ताऽहैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुवेतद्वाचमनुष्टुभ
 इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेव सावित्रीमनुष्टुभाद्यदिह वा अप्येवंविद्धद्विव
 प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकंचन पदं प्रति ॥ ५ ॥ स य इमांस्त्री-
 ण्णोकान्पूर्णां प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाभ्यादथ यावतीयं त्रयी
 विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्वितीयं पदमाभ्यादथ यावदिदं प्राणि
 यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाभ्यादथास्या एतदेव तुरीयं
 दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनान्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णी-
 यात् ॥ ६ ॥ तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदपदसि
 नहि पथसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति
 यं द्विष्यादसावसौ कामो मा समृद्धीति वा न हैवासौ स कामः समृद्धते
 यस्या एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्राप्नोमिति वा ॥ ७ ॥ एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो
 बुद्धिमाश्रतराश्विमुवाच यजु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ कथं हस्तीभूतो
 बहसीति मुखं ह्यस्याः सन्नापन विदांचकारेति होवाच तस्या अभिरेव मुखं
 यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्संदहत्येव हैवैवविद्य-

अपि बह्विष पापं कुरुते सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः
संभवति ॥ ८ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्दशं ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥

हिरण्यमेव पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्यं प्राजापत्य न्यूह रश्मीन्समूह तेजो यत्से रूपं कल्याण-
जमं तत्ते पश्यामि । योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि । वायुरलिलममृतमथेदं
अस्मान्तरं शरीरम् । ॐ क्रतो खर द्रुतं खर क्रतो खर द्रुतं खर ।
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्वजुहु-
राणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्ति विधेम ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चदशं ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ ॥ यो वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेदं ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै
ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद
॥ १ ॥ यो ह वै वसिष्ठां वेदं वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा वसिष्ठः
स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥ २ ॥ यो ह वै प्रसिष्ठां वेदं
प्रसिष्ठति स मे प्रसिष्ठति दुर्गे चक्षुर्वै प्रसिष्ठा चक्षुषा हि स मे च दुर्गे च
प्रसिष्ठति प्रसिष्ठति स मे प्रसिष्ठति दुर्गे य एवं वेद ॥ ३ ॥ यो ह वै
संपदं वेद स ह्यसौ पद्यते यं कामं कामयते ओत्रं वै संपच्छोत्रे हीमे सर्वं
वेदा अभिसंपन्नाः स ह्यसौ पद्यते यं कामं कामयते य एवं वेद ॥ ४ ॥ यो
ह वा आयतनं वेदायतनं स्वानां भवत्यायतनं जनानां मनो वा आयतन-
मायतनं स्वानां भवत्यायतनं जनानां य एवं वेद ॥ ५ ॥ यो ह वै प्रजातिं
वेदं प्रजायते ह प्रजया पशुमी रेतो वै प्रजातिः प्रजायते ह प्रजया पशु-
भिर्य एवं वेद ॥ ६ ॥ ते हे मे प्राणा अहं श्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुस्त-
द्धोचुः को नो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन्व उत्क्रान्त इदं शरीरं पापीयो
मन्यते स नो वसिष्ठ इति ॥ ७ ॥ वाग्वोचक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यागम्यो-
वाच कथमन्नकतं महते जीवितुमिति ते होचुर्यथा कला अवदन्तो वाचा
प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः ओत्रेण विद्वांसो मनसा प्रजाच-

ब्राह्मणम् २]

बृहदारण्यकोपनिषत् ॥ १० ॥

१२७

अना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥ चक्षुर्होषकाम तत्संवत्सरं
 प्रोष्यागल्योवाच कथमशक्त मदते जीवितुमिति ते होचुर्यथाऽन्धा अपश्य-
 न्तश्चक्षुषा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाँसो मनसा
 प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥ श्रोत्रं होषकाम
 तत्संवत्सरं प्रोष्यागल्योवाच कथमशक्त मदते जीवितुमिति ते होचुर्यथा
 अधिरा अशृण्वन्तः श्रोत्रेण प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा
 विद्वाँसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥
 मनो होषकाम तत्संवत्सरं प्रोष्यागल्योवाच कथमशक्त मदते जीवितुमिति
 ते होचुर्यथा मुग्धा अविद्वाँसो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्य-
 न्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह
 मनः ॥ ११ ॥ रेतो होषकाम तत्संवत्सरं प्रोष्यागल्योवाच कथमशक्त
 मदते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्लीबा अप्रजायमाना रेतसां प्राणन्तः प्राणेन
 वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाँसो मनसैवमजीवि-
 ष्मेति प्रविवेश ह रेतः ॥ १२ ॥ अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन्त्यथा महासुहयः
 सैन्धवः पञ्चीशशङ्खन्संवृहेदेवँ हैवेमान्प्राणान्संववर्ह ते होचुर्मा भगवं
 उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदते जीवितुमिति तस्यो मे बलिं कुरुतेति तथेति
 ॥ १३ ॥ सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठाऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति
 यद्वा अहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठोऽसीति चक्षुर्यद्वा अहँ संपदस्मि
 त्वं तत्संपदसीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति
 मनो यद्वा अहं प्रजातिरस्मि त्वं तत्प्रजातिरसीति रेतस्तस्यो मे किमन्नं
 किं वास इति यदिदं किंचा श्वभ्य आ कृमिभ्य आ कीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नमापो
 वास इति न ह वा अस्यानन्नं जग्धं भवति. नानन्नं परिगृहीतं य एवंमेतदन-
 स्यान्नं वेद तद्विद्वाँसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्यक्षित्वाचामन्येतमेव
 तदनमनन्नं कुर्वन्तो मच्यन्ते ॥ १४ ॥

इति षष्ठाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः पञ्चालानां परिपदमाजगाम स आजगाम जैबलिं
 प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारः ३ इति स भो ३ इति
 प्रतिशुश्रावानुशिष्टोऽन्वसि पित्रेत्योमिति होवाच ॥ १ ॥ वेत्थ यथेमाः प्रजाः
 प्रयत्यो विप्रतिपद्यन्ता ३ इति नेति द्वौवाच वेत्थो यथेमं लोकं पुनरपद्यन्ता ३

इति नेति हैवोवाच वेत्थो यथासौ लोक एवं बहुभिः पुनः पुनः प्रयज्जिर्न
 संपूर्यता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यतिथ्यामाहुत्यां हुतायामापः पुरुषवाचो
 भूत्वा समुत्थाय वदन्ती ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो देवयानस्य वा पथः प्रतिपदं
 पितृयाणस्य वा यत्कृत्वा देवयानं वा पन्थानं प्रतिपद्यन्ते पितृयाणं वापि हि न
 ऋषेर्षचः श्रुतम् । द्वे सृती अशृणनं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ता-
 भ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं चेति नाहमत एकंचन वेदेति
 होवाच ॥ २ ॥ अथैनं वसत्योपमन्त्रयांचक्रेऽनादृत्य वसतिं कुमारः प्रदुद्वाव स
 आजगाम पितरं तं होवाचेति वाव किल नो भवान्पुरानुशिष्टानवोच
 इति कथं सुमेध इति पञ्च मा प्रश्नान् राजन्यबन्धुरप्राक्षीक्षतो नैकंचन वेदेति
 कतमे त इतीम इति ह प्रतीकान्युदाजहार ॥ ३ ॥ स होवाच तथा नस्त्वं
 तात जानीथा यथा यदहं किंच वेद सर्वमहं तत्तुभ्यमवोचं प्रेहि तु तन्न प्र-
 तीत्य ब्रह्मचर्यं वत्स्याव इति भवानेव गच्छत्विति स आजगाम गौतमो यज्ञ
 प्रवाहणस्य जैवलेरास तस्मा आसनमाहृत्योदकमाहारयांचकाराथ हास्या
 लभ्यं चकार तं होवाच वरं भगवते गौतमाय दद्या इति ॥ ४ ॥ स होवाच
 प्रतिज्ञातो म एष वरो यां तु कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तां मे ब्रूहीति ॥ ५ ॥
 स होवाच दैवेषु वै गौतम तद्वरेषु मानुषाणां ब्रूहीति ॥ ६ ॥ स होवाच
 विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्यापातं गोअश्वानां दासीनां प्रवारणां परिधानस्य
 मा नो भवान्त्रहोरनन्तस्यापर्यन्तस्याभ्यवदान्योभूदिति स वै गौतम ती-
 र्थेनेच्छासा इत्युपैम्यहं भवन्तमिबि वाचा ह खैव पूर्वं उपयन्ति स होपाय-
 नकीर्त्योवास ॥ ७ ॥ स होवाच तथा नस्त्वं गौतम माऽपराधास्तव च पिता-
 महा यथेयं विधेतः पूर्वं न कस्मिंश्चन ब्राह्मण उवास तां त्वहं तुभ्यं व-
 क्ष्यामि को हि त्वैवं ब्रुवन्तमहति प्रत्याख्यातुमिति ॥ ८ ॥ असौ वै लोकोऽ-
 भिगौतम तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तर-
 दिशो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुत्यै सोमो
 राजा संभवति ॥ ९ ॥ पर्जन्यो वाग्निगौतम तस्य संवत्सर एव समिदभ्राणि
 धूमो विद्युदचिरशनिरङ्गारा हादुनयो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः
 सोमं राजानं जुह्वति तस्या आहुत्यै वृष्टिः संभवति ॥ १० ॥ अयं वै लोको-
 ऽभिगौतम तस्य पृथिव्येव समिदग्निर्धूमो रात्रिरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि
 विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वृष्टिं जुह्वति तस्या आहुत्या अन्नं संभ-
 वति ॥ ११ ॥ पुरुषो वाऽभिगौतम तस्य व्यात्तमेव समिदपाणो धूमो वागर्चि-
 श्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या
 आहुत्यै रेतः संभवति ॥ १२ ॥ योषा वा अभिगौतम तस्या उपस्थ एव

समिलोमानि धूमो योनिरर्चियदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलि-
ङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुहति तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति स
जीवति यावज्जीवत्यथ यदा म्रियते ॥ १३ ॥ अथैनमग्नये हरन्ति तस्याग्निरे-
वाग्निर्भवति समिस्समिद्धमो धूमोऽर्चिरर्चिरङ्गारा अङ्गारा विस्फुलिङ्गा विस्फु-
लिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पुरुषं जुहति तस्या आहुत्यै पुरुषो मास्वर-
वर्णः संभवति ॥ १४ ॥ ते य एवमेतद्विदुर्यं चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमु-
पासते तेऽर्चिरभिसंभषन्त्यर्चिपोऽहरह आर्प्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्व-
पमासानुदङ्गादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं
तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः
परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ॥ १५ ॥ अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा
लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमप-
क्षीयमाणपक्षाद्यान्वपमासान्दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोका-
च्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति तांस्तत्र देवा यथा सोमं राजानमाप्याय-
स्वापक्षीयस्वेत्येवमेनांस्तत्र भक्षयन्ति तेषां यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाकाशम-
भितिष्पद्यन्त आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यान्नं
भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रत्युत्थायिनस्त
एवमेवानुपरिवर्तन्तेऽथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं
दन्दशूकम् ॥ १६ ॥

इति षष्ठाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

स यः कामयेत महत्प्राप्तुयामित्युदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे द्वाद-
शाहमुपसङ्गती भूत्वौदुम्बरे कसे चमसे वा सर्वौषधं फलानीति संभृत्य
परिसमुद्य परिलिप्याग्निमुपसमाधाय परिक्षीर्यावृताऽग्नं सँस्कृत्य पुँसा
नक्षत्रेण मन्थं संनीय जुहोति । यावन्तो देवास्त्वयि जातवेदस्तिर्यञ्चो मन्ति
पुरुषस्य कामान् । तेभ्योऽहं भागधेयं जुहोमि ते मा तृप्ताः सर्वैः कामैस्सर्प-
यन्तु स्वाहा । या तिरश्ची निपद्यतेऽहं विधरणी इति । तां त्वा घृतस्य धारया
यजे सँराधनीमहँ स्वाहा ॥ १ ॥ ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा
मन्थे सँस्रवमवनयति प्राणाय स्वाहा वसिष्ठायै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे
सँस्रवमवनयति वाचे स्वाहा प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँस्रवमव-
नयति चक्षुषे स्वाहा संपदे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँस्रवमवनयति
श्रोत्राय स्वाहाऽऽयतनाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँस्रवमवनयति मनसे
स्वाहा प्रजात्यै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँस्रवमवनयति रेतसे स्वाहे-

अ. उ. ९

त्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति ॥ २ ॥ अग्नये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे
 स५स्रवमवनयति सोमाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति भूः
 स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति भुवः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५-
 स्रवमवनयति स्वः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति भूर्भुवःस्वः
 स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति ब्रह्मणे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५-
 स्रवमवनयति क्षत्राय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति भूताय स्वा-
 हेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति भविष्यते स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५-
 स्रवमवनयति विश्वाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति सर्वाय स्वा-
 हेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५स्रवमवनयति प्रजापतये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे स५-
 स्रवमवनयति ॥ ३ ॥ अथैनमभिमृशति अमदसि ज्वलदसि पूर्णमसि प्रस्त-
 ब्धमस्येकसभमसि हिंक्रुतमसि हिंक्रियमाणमस्युद्गीथमस्युद्गीथमानमसि श्रा-
 वितमसि प्रत्याश्रावितमस्याद्रं संदीप्तमसि विभूरसि प्रभूरस्यज्ञमसि ज्योति-
 रसि निधनमसि संवर्गोऽसीति ॥ ४ ॥ अथैनमुद्यच्छत्याम५ स्याम५ हि ते महि
 स हि राजेशानोऽधिपतिः स मा५ राजेशानोऽधिपतिं करोत्विति ॥ ५ ॥ अथैन-
 माचामति तत्सवितुर्वरेण्यम् । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
 माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । भूः स्वाहा । भर्गो देवस्य धीमहि । मधु नक्तमुतोपसो
 मधुमत्पार्थिव५ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । भुवः स्वाहा । धियो यो नः
 प्रचोदयात् । मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमाँ३ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु
 नः । स्वः स्वाहेति । सर्वा च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेद५ सर्व
 भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्क्षिराः
 संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेक-
 पुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो व५शं जपति ॥ ६ ॥ त५
 हैतमुद्दालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि
 य एन५ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति
 ॥ ७ ॥ एतमु हैव वाजसनेयो याज्ञवल्क्यो मधुकाय पैङ्ग्यायान्तेवासिन
 उक्त्वोवाचापि य एन५ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररो-
 हेयुः पलाशानीति ॥ ८ ॥ एतमु हैव मधुकः पैङ्ग्यश्रूलाय भागवित्तयेऽन्ते-
 वासिन उक्त्वोवाचापि य एन५ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः
 प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ९ ॥ एतमु हैव चूलो भागवित्तिर्जानक्य क्षाय-
 स्थूणायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एन५ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेर-
 ञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ १० ॥ एतमु हैव जानकिरायस्थूणः सत्य-

कामाय जाबालायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनं शुक्ले स्थाणौ निषिञ्चे-
ज्जायेरन्धाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ११ ॥ एतमु हेव सत्यकामो जाबा-
लोऽन्तेवासिभ्य उक्त्वोवाचापि य एनं शुक्ले स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरन्धाखाः
प्ररोहेयुः पलाशानीति तमेतं नापुत्राय वाऽनन्तेवासिने वा द्रयात् ॥ १२ ॥
चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः सुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्म औदुम्बर्दा
उपमन्थन्यौ दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति त्रीहियवास्तिलमापा अणुप्रिय-
ङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खन्वाश्च खलकुलाश्च तान् पिष्टान्दधति मधुनि घृत
उपसिञ्चत्याज्यस्य जुहोति ॥ १३ ॥

इति षष्ठाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

एवं वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपामोषधय ओषधीनां
पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः ॥ १ ॥ स ह प्रजा-
पतिरीक्षां चक्रे हन्तास्यै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियं ससृजे तां सृष्ट्वाऽथ
उपास्त तस्मात्स्त्रियमथ उपासीत स एतं ब्राह्मं प्रावाणमात्मन एव समुदपा-
रयत्तेनैनामभ्यसृजत् ॥ २ ॥ तस्या वेदिरूपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्मोधिषवणे
समिद्धो मध्यतस्तौ शुक्लौ स यावान् ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको
भवति तावानस्य लोको भवति य एवं विद्वानधोपहासं चरत्यासां स्त्री-
णां सुकृतं वृक्षेऽथ य इदमविद्वानधोपहासं चरत्यास्य स्त्रियः सुकृतं
वृक्षते ॥ ३ ॥ एतद् अस्म वै तद्विद्वानुद्दालक आरुणिराहैतद् अस्म वै-
तद्विद्वान्नाको मौद्गल्य आहैतद् अस्म वै तद्विद्वान्कुमारहारित आह बहवो
मर्था ब्राह्मणायना निरिन्द्रिया विसुकृतोऽस्माहोकात्प्रयन्ति य इद-
मविद्वान्ऽसोऽधोपहासं चरन्तीति बहु वा इदं सुसत्य वा जाग्रतो वा रेतः
स्कन्दति ॥ ४ ॥ तदभिमृशेदनु वा मन्त्रयेत यन्मेऽथ रेतः पृथिवीमस्कान्त्सी-
द्यदोषधीरप्यसरद्यदपः । इदमहं तद्वेत आददे पुनर्मैतिविन्द्रियं पुनस्तेजः पुन-
र्भगः । पुनरक्षिर्धिष्ण्या यथास्थानं कल्पन्तामित्यनामिकाङ्कुष्ठाभ्यामादायान्तरेण
स्तनौ वा भुवौ वा तिमृज्यात् ॥ ५ ॥ अथ यद्युदक आत्मानं पश्येत्तदभिम-
न्त्रयेत मयि तेज इन्द्रियं यशो द्रविणं सुकृतमिति श्रीर्ह वा एषा स्त्रीणां
यन्मलोद्वासास्तस्मान्मलोद्वाससं यशस्विनीमभिक्रम्योपमन्त्रयेत ॥ ६ ॥ सा
चेदस्यै न दद्यात्काममेनामवकीणीयात् सा चेदस्यै नैव दद्यात्काममेनां यद्या
वा पाणिना वोपहृत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव
भवति ॥ ७ ॥ सा चेदस्यै दद्यादिन्द्रियेण ते यशसा यश आदधामीति

अवास्तिनावेव भवतः ॥ ८ ॥ स यामिच्छेत्कामयेत मेति तस्यामर्थं निष्ठाय
 मुखेन मुखं संधायोपस्थमस्या अभिष्टुभ्य जपेदङ्गादङ्गात्संभवति हृदयादधि-
 जायते । स त्वमङ्गकषायोऽस्ति दिग्धविद्धामिव मादयेमामभूं मयीति ॥ ९ ॥
 अथ यामिच्छेन्न गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं संधायाभिप्रा-
 ण्यापान्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एव भवति ॥ १० ॥
 अथ यामिच्छेद्दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं संधायापान्याभि-
 प्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति ॥ ११ ॥ अथ
 यस्य जायायै जारः स्यात्तं चेद्विष्यादामपान्नेऽग्निमुपसमाधाय प्रतिलोमं
 शरबर्हिंस्तीर्त्वा तस्मिन्नेताः शरभृष्टीः प्रतिलोमाः सर्पिषाऽक्ता जुहुयान्मम
 समिद्धेऽहौषीः प्राणापानौ त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीः पुत्रपञ्चंस्त
 आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीरिष्टासुकृते त आददेऽसाविति मम समि-
 द्देऽहौषीराणापराकाशौ त आददेऽसाविति स वा एष निरिन्द्रियो विभु-
 तोऽस्माल्लोकात्प्रैति यमेवंविद्वाह्यः शपति तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण
 नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति ॥ १२ ॥ अथ यस्य जाधामार्तं वि-
 न्देन्नयहं कंसेन पिवेदहतवासा नैनां वृषलो न वृषत्युपहन्यान्निरान्त
 आहुत्य व्रीहीनवघातयेत् ॥ १३ ॥ स य इच्छेत्पुत्रो मे जुहो जायेत वेदम-
 नुब्रवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामी-
 श्वरौ जनयितवै ॥ १४ ॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वौ
 वेदावनुब्रवीत सर्वमायुरियादिति दध्यौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्री-
 यातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १५ ॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो
 जायेत त्रीन्वेदानुब्रवीत सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्त-
 मश्रीयातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १६ ॥ अथ य इच्छेद्बुहिता मे पण्डिता जायेत
 सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामीश्वरौ जनयि-
 तवै ॥ १७ ॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां
 वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदानुब्रवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं
 पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामीश्वरौ जनयित्वा औक्षेण वार्धमेण वा ॥ १८ ॥
 अथाभिप्रातरेव स्थालीपाकावृताज्यं चेष्टित्वा स्थालीपाकस्योपघातं जुहोत्य-
 ग्रये स्वाहाऽनुमतये स्वाहा देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य
 प्राश्नाति प्राश्येतरस्याः ग्रथच्छति प्रक्षाल्य पाणी उदपात्रं पूरयित्वा तेनैनां
 त्रिरभ्युक्षत्युत्तिष्ठतो विश्वावसोऽन्यामिच्छ प्रपूर्वां सं जायं पत्या सहेति ॥ १९ ॥
 अथैनमभिपद्यतेऽमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि कर्त्तव्यं ।

द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेहि स० रभावहै सह रेतो दधावहै पु० से पुत्राय वित्तय
इति ॥ २० ॥ अथास्या ऊरु विहापयति विजिहीथां द्यावापृथिवी इति
तस्यामर्थं निष्ठाय सुखेन सुखं संधाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि विष्णुर्मोनिं
कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पि० शतु । आसिञ्जतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्क-
रज्जौ ॥ २१ ॥ हिरण्ययी अरणी याभ्यां निर्मन्थतामश्विनौ । तं ते गर्भं हवामहे
दशमे मासि सूतये । यथाऽग्निगर्भां पृथिवी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । वायुर्दिशां
यथा गर्भं एवं गर्भं दधामि तेऽसाविति ॥ २२ ॥ सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति,
यथा वायुः पुष्करिणीं सभिज्ञयति सर्वतः । एवा ते गर्भं एजतु सहावैतु
जरायुणा । इन्द्रस्यायं व्रजः कृतः सार्गलः सपरिश्रयः । तमिन्द्र निर्जहि गर्भेण
स्वावरां सहेति ॥ २३ ॥ जातेऽग्निमुपसमाधायान्न आधाय कं से पृषदाज्यं
संतीय पृषदाज्यस्योपघातं जुहोत्यस्मिन्सहस्रं पुण्यासमेधमानः स्वे गृहे ।
अस्योपसंधां मा चैस्तीत् प्रजया च पशुभिश्च स्वाहा । मयि प्राणास्त्वयि
मनसा जुहोमि स्वाहा । यत्कर्मेणाऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टस्त्रि-
ष्टकृद्विद्वान्स्त्रिष्टं सुहुतं करोतु नः स्वाहेति ॥ २४ ॥ अथास्य दक्षिणं कर्णम-
भिनिधाय वागवागिति त्रिरथ दधि मधु दृतं संनीयानन्तर्हितेन जातरूपेण
प्राशयति । भूस्ते दधामि भुवस्ते दधामि स्वस्ते दधामि भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि
दधामीति ॥ २५ ॥ अथास्य नाम करोति वेदोऽसीति तदस्य तद्गृहमेव नाम
अवति ॥ २६ ॥ अथैनं मात्रे प्रदाय स्ननं प्रयच्छति यस्ते स्ननः शशयो यो
मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदन्नः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति
तमिह धातवे करिति ॥ २७ ॥ अथास्य मातरगभिमन्नयते, इलाऽसि मैत्राव-
रुणी वीरे वीरमजीजनत् । सा त्वं वीरवती भव. याऽस्मान् वीरवतोऽकरदिति
तं वा एतमाहुरतिपिता वताभूरतिपितामहो वताभूः परमां वत काष्ठां प्राप-
च्छ्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवंविदो ब्राह्मणस्य पुत्रो जायत इति ॥ २८ ॥

इति षष्ठाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ वंशः । पौत्तिमापीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात् कात्यायनीपुत्रो गौतमीपु-
त्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद्भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्र औप-
स्वस्तीपुत्रादौपस्वस्तीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात्कात्याय-
नीपुत्रः कौशिकीपुत्रात्कौशिकीपुत्र आलम्बीपुत्राच्च वैयाघ्रपदीपुत्राच्च वैयाघ्र-
पदीपुत्रः काण्वीपुत्राच्च कापीपुत्राच्च कापीपुत्रः ॥ १ ॥ आत्रेयीपुत्रादात्रे-
यीपुत्रो गौतमीपुत्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद्भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रा-

त्पाराहारीपुत्रो वात्सीपुत्राद्वात्सीपुत्रः पाराहारीपुत्रात्पाराहारीपुत्रो वाकार्कणी-
 पुत्राद्वाकार्कणीपुत्रो वाकार्कणीपुत्राद्वाकार्कणीपुत्र आतैभागीपुत्रादातैभागीपुत्रः
 शौङ्गीपुत्राच्छौङ्गीपुत्रः साङ्कृतीपुत्रात्साङ्कृतीपुत्र आलम्बायनीपुत्रादालम्बायनी-
 पुत्र आलम्बीपुत्रादालम्बीपुत्रो जायन्तीपुत्राजायन्तीपुत्रो माण्डूकायनीपुत्रा-
 न्माण्डूकायनीपुत्रो माण्डूकीपुत्रान्माण्डूकीपुत्रः शाण्डिलीपुत्राच्छाण्डिली-
 पुत्रो राथीतरीपुत्राद्राथीतरीपुत्रो भालुकीपुत्राज्भालुकीपुत्रः क्रौञ्चिकीपु-
 त्राभ्यां क्रौञ्चिकीपुत्रो वैदभृतीपुत्राद्वैदभृतीपुत्रः कार्वाक्येयीपुत्रात्कार्वाक्येयीपुत्रः
 प्राचीनयोगीपुत्रात्प्राचीनयोगीपुत्रः सांजीवीपुत्रात्सांजीवीपुत्रः प्राक्षीपुत्रा-
 दासुरिवासिनः प्राक्षीपुत्र आसुरायणादासुरायण आसुरेरासुरिः ॥ २ ॥
 याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्य उद्दालकादुद्दालकोऽरुणादरुण उपवेशोरुपवेशिः कुश्रेः
 कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योराजिह्वावान्बाध्योरोऽसि-
 ताद्वार्षगणादसितो वार्षगणो हरितात्कश्यपाद्धरितः कश्यपः क्षित्पात्क-
 श्यपाच्छित्पः कश्यपः कश्यपाक्षेध्रुवेः कश्यपो नैध्रुविर्वाचो वागन्निभण्या
 अन्निभण्यादित्यादादित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञव-
 ल्क्येनाख्यायन्ते ॥ ३ ॥ समानमा सांजीवीपुत्रात्सांजीवीपुत्रो माण्डू-
 कायनेर्माण्डूकायनिर्माण्डव्यान्माण्डव्यः कौत्सात्कौत्सो माहित्येर्माहित्यिर्वाम-
 कक्षायाणाद्दामकक्षायणः शाण्डित्याच्छाण्डित्यो वात्स्याद्वात्स्यः कुश्रेः कुश्रिर्य-
 ज्ञवचसो राजस्तम्बायनाद्यज्ञवचा राजस्तम्बायनस्तुरात्कावषेयात्तुरः कावषेयः
 प्रजापतेः प्रजापतिर्ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ इति बृहदारण्यकोपनिषत्समाप्ता ॥ १० ॥

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधीतमस्तु
 मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषत् ॥ ११ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-
 शिष्यते ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन
 क्व च संप्रतिष्ठाः । अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्
 ॥ १ ॥ काकः स्वभावे निरतिर्यच्छा भूताति योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।

संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥ ते ध्यान-
योगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । यः कारणानि निखिलानि
तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥ तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः । अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गमेदं द्विनि-
मित्तैकमोहम् ॥ ४ ॥ पञ्चस्रोतोस्तुं पञ्चयोन्युप्रवक्तां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्या-
दिमूलाम् । पञ्चावर्ता पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्देवां पञ्चपर्वामधीमः ॥ ५ ॥
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो आभ्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं
च मत्वा जुष्टस्तत्स्तेनामृतत्वमेति ॥ ६ ॥ उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिन्मयं
सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनि-
मुक्ताः ॥ ७ ॥ संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ८ ॥ ज्ञाज्ञौ
द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता । अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो
ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥ क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः शरा-
त्मानावीशते देव एकः । तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्व-
मायानिवृत्तिः ॥ १० ॥ ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्यु-
प्रहाणिः । तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहमेदे विधैश्वर्यं केवल आसकामः ॥ ११ ॥
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् । भोक्ता भोक्तृ-
प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२ ॥ बह्वैर्यथा योनि-
गतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः । स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्बोभयं
वै प्रणवेन देहे ॥ १३ ॥ स्वदेहमरणं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननि-
र्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निरगूढवत् ॥ १४ ॥ तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः
स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः । एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुप-
श्यति ॥ १५ ॥ सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिर्निवारितम् । आत्मविद्यातपो-
मूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परं तद्ब्रह्मोपनिषत्परमिति ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः । अमेज्योर्तिर्निचाव्य पृथिव्या
अध्यामरत् ॥ १ ॥ युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेवाय
शक्त्या ॥ २ ॥ युक्त्वाय मनसा देवान्सुवर्गतो भिया दिवम् । बृहज्योतिः

करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥ युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा
विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सविनुः
परिधुतिः ॥ ४ ॥ युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोर्भिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरैः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥ अग्नि-
र्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते । सोमो यन्नातिरिच्यते तत्र संजायते मनः
॥ ६ ॥ सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् । तत्र योनिं कृणवसे न हि ते
पूर्तमक्षिपत् ॥ ७ ॥ त्रिरुजतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संलि-
वेद्य । ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्क्षोतांसि सर्वाणि भयावहाणि ॥ ८ ॥ प्राणा-
न्प्रीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत । दुष्टाश्चयुक्तमिव
वाहसेन विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥ समे शुचौ शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः । मनोजुकूले न तु चक्षुषीडने गुहानिवाता-
श्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥ नीहारधूमाकानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक-
शशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥
पृथ्व्यसेजोऽनिलस्ते समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते । न तस्य रोगो
न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निसमं शरीरम् ॥ १२ ॥ लघुत्वमारोग्यमलो-
लुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्टवं च । गन्धः शुभो मृत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं
प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥ यथैव विश्वं सृदयोपलिसं तेजोमयं आजते तत्सुधा-
न्तम् । तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् । अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वै-
र्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥ एष ह देवः प्रदिशोऽनु
सर्वाः पूर्वा ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्य-
ङ्मनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १६ ॥ यो देवोऽसौ योऽस्मि यो विश्वं भुवन-
माविवेश । य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥ १७ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः । य
एवैक उन्मवे संभवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥ एको हि रुद्रो
न द्वितीदय एतदुर्थं इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः । प्रत्यङ्मनांस्तिष्ठति संभु-

कोपान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥ विश्वतश्चक्षुरुत विश्व-
तोमुखो विश्वतोबाहुस्त विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं प्रतत्रैर्धावाभूमी
जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥ यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥ या ते
रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तथा नस्तनुवा शंतमया गिरिशन्ताभि-
चाकशीहि ॥ ५ ॥ यामिषुं गिरिशंत हस्ते विभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां
कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ६ ॥ ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं यथानिकायं
सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥ ७ ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाऽति
मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥ यस्मात्परं नापरमस्ति किंचि-
द्विस्मान्नापीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं
पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥ ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदु-
रमृतास्ते अवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १० ॥ सर्वाननशिरोग्रीवः सर्व-
भूतगुहाशयः । सर्वव्यापी स अगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥ महा-
न्प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैव प्रवर्तकः । सुनिर्मलाभिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिर-
व्ययः ॥ १२ ॥ अजुष्टमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मन्वीशो मनसाभिहृसो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १३ ॥ सहस्र-
शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूर्मि विश्वतो बृत्वाऽत्यतिष्ठदशाङ्गुलम्
॥ १४ ॥ पुरुष एवेदं सर्वं यज्ज्ञतं यच्च अभ्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यद्वे-
नातिरोहति ॥ १५ ॥ सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः-
श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६ ॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविव-
र्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥ नवद्वारे पुरे देही
हृंसी लेलायते बहिः । वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च
तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरर्घ्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥ अणोरणीयान्महतो मही-
यानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसा-
दान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥ वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभु-
त्वात् । जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥ २१ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्गणाननेकास्त्रिहितार्थो दधाति । वि चैति
 चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥ तदेवाग्नि-
 स्तदादित्यस्तद्वायुस्तद्गु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्त्वप्रजापतिः ॥ २ ॥
 त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी । त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
 त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३ ॥ नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्त-
 ङ्गिद्वर्भं ऋतवः समुद्राः । अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुव-
 नानि विश्वा ॥ ४ ॥ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां
 सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ५ ॥
 द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वा-
 द्दत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ६ ॥ समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया
 शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः
 ॥ ७ ॥ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तं न वेद
 किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८ ॥ छन्दांसि यज्ञाः ऋतवो
 व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मि-
 श्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ९ ॥ मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिन् तु महेश्व-
 रम् । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ १० ॥ यो योर्नि योनिम-
 धितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं
 निचार्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ११ ॥ यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो
 रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु
 ॥ १२ ॥ यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे अस्य द्विपदश्च-
 तुष्पदः कस्यै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥ सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
 विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्य-
 न्तमेति ॥ १४ ॥ स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
 यस्मिन्युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥ १५ ॥
 घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवे-
 ष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १६ ॥ एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
 सदा जनानां हृदये संनिविष्टः । हृदा मनीषा मनसाऽभिमूढसो य एतद्विदुर-
 मृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥ यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासन्निव एव
 केवलः । तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥ १८ ॥
 नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् । न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम

अध्यायः ५]

श्वेताश्वतरोपनिषत् ॥ ११ ॥

१३९

महद्यशः ॥ १९ ॥ न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २० ॥ अजात इत्येवं
कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते । रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१ ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ॥ २२ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे । क्षरं त्वविद्या
ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥ १ ॥ यो योनिं योनिम-
धितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः । ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे
ज्ञानैर्विभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥ २ ॥ एकैकं जातं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन्क्षेत्रे
संहारत्येष देवः । भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥
सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्प्रकाशयन्भ्राजते यद्वनद्धान् । एवं स देवो भग-
वान्बरेण्यो योनिस्त्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥ ४ ॥ यच्च स्वभावं पचति विश्व-
योनिः पाच्यांश्च सर्वान्परिणामयेद्यः । सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च
सर्वान्विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥ तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद्वद्ब्रह्मा वेदते ब्रह्म-
योनिम् । ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६ ॥
गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता । स विश्वरूपस्त्रिगुण-
स्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥ अद्भुष्टमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि
दृष्टः ॥ ८ ॥ बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स
विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ९ ॥ नैव स्त्री न पुमानेन न चैवायं ननु-
सकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ॥ १० ॥ संकल्पनस्पर्शनदृष्टि-
मोहैर्ग्रासांबुबृष्ट्या चात्मविवृद्धिजन्म । कर्मानुगान्धनुक्रमेण देही स्थानेषु
रूपाण्यभिसंप्रपद्यते ॥ ११ ॥ स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही
स्वगुणैर्वृणोति । क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥ १२ ॥
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्यैकं पतिर्येष्टितारं

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥ आवग्राह्यमनीड्याख्यं आवाभावकरं
शिवम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ १४ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्वभावमेकं कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिसुखमानाः । देवस्यैष महिमा
तु लोके येनेदं ब्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥ येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः
कालकारो गुणी सर्वविद्यः । तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथग्याप्यतेजोऽनिलखानि
चिन्त्यम् ॥ २ ॥ तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरेष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥ ३ ॥ आरभ्य
कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः । तेषामभावे कृतकर्म-
नाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥ ४ ॥ आदिः स संयोगलिप्ति-
हेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्त-
स्थमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥ स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्यात्पञ्चः परि-
वर्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं
परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ ७ ॥ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न
तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी
ज्ञानबलक्रिया च ॥ ८ ॥ न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेक्षिता
नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जलिता न
चाधिपः ॥ ९ ॥ यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावंतो देव एकः
स्वमावृणोत् । स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेत्ता
केवलो निर्गुणश्च ॥ ११ ॥ एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः
करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामात् । तत्कारणं
सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥ न तत्र सूर्यो
भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव आन्तम-
नुभाति सर्वं तस्य आत्मा सर्वमिदं विभाति ॥ १४ ॥ एको हृत्सो भुवन-

स्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥ स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकारो
गुणी सर्वविद् यः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः सः सारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६ ॥
स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता । य ईशे अस्य
जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ १७ ॥ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च ग्रहिणोति तस्मै । तद्देवमात्मबुद्धिप्रकाशं सुमुक्षुर्वै शरणमहं
प्रपद्ये ॥ १८ ॥ लिङ्गकलं निष्क्रियं ज्ञान्तं निरवयं निरञ्जनम् । अमृतस्य परं
लेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥ १९ ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥ तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच्च
ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् । अंत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषि-
सङ्गजुष्टम् ॥ २१ ॥ वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय
दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे
तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मन
इति ॥ २३ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्विनावधीतम-
स्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोपनिषत्संपूर्णा ॥

ब्रह्मविन्दूपनिषत् ॥ १२ ॥

अमृतविन्दूपनिषद्वेद्यं यत्परमाक्षरम् ।

तदेव हि त्रिपाद्रामचन्द्राख्यं नः परा गतिः ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥ ॐ मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं
चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसंकरं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ १ ॥ मन एव
मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्
॥ २ ॥ यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते । तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः
कार्यं सुमुक्षुणा ॥ ३ ॥ निरस्तविषयासक्तं संतिरुद्धं मनो हृदि । यदा यात्यु-
न्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ४ ॥ तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं

क्षयम् । एतज्ज्ञानं च मोक्षं च अतोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ ५ ॥ १ ॥ नैव चिन्त्यं
 न वाचिन्त्यमचिन्त्यं चिन्त्यमेव च । पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते तदा
 ॥ ६ ॥ स्वरेण संधयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम् । अस्वरेण हि भावेन आबो
 नाभाव इष्यते ॥ ७ ॥ तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् । तद्ब्रह्माह-
 मिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ॥ ८ ॥ निर्विकल्पमनन्तं च हेतुवृत्तान्त-
 वर्जितम् । अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम् ॥ ९ ॥ न निरोधो न
 चोत्पत्तिर्न वन्द्यो न च शासनम् । न मुमुक्षा न मुक्तिश्चंदिलेषा परमार्थता
 ॥ १० ॥ २ ॥ एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वमसुषुप्तिषु । स्थानत्रयाद्यती-
 तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११ ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
 एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १२ ॥ घटसंवृतमाकाशं लीय-
 माने घटे यथा । घटो लीयेत नाकाशं तद्ब्रह्मजीवो नभोपमः ॥ १३ ॥ घटव-
 द्विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः । तद्भ्रमं न च जानाति स जानाति च
 नित्यशः ॥ १४ ॥ शब्दमायावृतो यावत्तावत्तिष्ठति पुष्करे । भिन्ने तमसि
 चैकस्त्वमेकमेवानुपश्यति ॥ १५ ॥ ३ ॥ शब्दाक्षरं परं ब्रह्म यस्मिन्क्षीणे यदक्ष-
 रम् । तद्विद्वानक्षरं ध्यायेद्यदीच्छेच्छान्तिमात्मनः ॥ १६ ॥ द्वे विद्ये वेदितव्ये
 तु शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १७ ॥
 ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थ-
 मशेषतः ॥ १८ ॥ गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता । क्षीरवत्पश्यते ज्ञानं
 लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥ १९ ॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति
 विज्ञानम् । सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ॥ २० ॥ ज्ञाननेत्रं
 समादाय चरेद्ब्रह्ममतः परम् । निष्कलं निर्मलं शान्तं तद्ब्रह्माहमिति स्मृतम्
 ॥ २१ ॥ सर्वभूताधिवासं च यद्भूतेषु वसत्यपि । सर्वनुग्राहकत्वेन तदस्म्यहं
 वासुदेवः तदस्म्यहं वासुदेव इति ॥ २२ ॥ ४ ॥ सह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया ब्रह्मविन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ १२ ॥

कैवल्योपनिषत् ॥ १३ ॥

कैवल्योपनिषद्वेद्यं कैवल्यानन्दतुन्दिलम् ।

कैवल्यगिरिजाराजं स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥

ॐ सह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

ॐ अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच । अधीहि भगवन्ब्र-

ह्यत्रिंशं वरिष्ठां सदा सन्निः सेव्यमानां निगूढाम् । यथाऽचिरात्सर्वपापं
 व्यपोह्य परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ॥ १ ॥ तस्मै स होवाच पितामहश्च
 श्रद्धाभक्तध्यानयोगादवैहि ॥ २ ॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके
 अमृतत्वमानयुः । परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतथो विशन्ति
 ॥ ३ ॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते
 ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले पराभूताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ४ ॥ विविक्तदेशे च
 सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः । अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि
 निरुध्य भक्त्या स्वगुहं प्रणम्य ॥ ५ ॥ हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य
 मध्ये विशदं विशोकम् । अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं
 ब्रह्मयोनिम् ॥ ६ ॥ तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं विदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
 उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनि-
 र्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥ ७ ॥ स ब्रह्मा स शिवः
 सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् । स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स
 चन्द्रमाः ॥ ८ ॥ स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् । ज्ञात्वा तं
 मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ९ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि
 चात्मनि । संपश्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥ १० ॥ आत्मानमरणिं
 कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पापं दहति पण्डितः ॥ ११ ॥
 स एव मायापरिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम् । स्त्रियक्षपानादि-
 विचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥ १२ ॥ स्वप्ने स जीवः सुखदुःख-
 भोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके । सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभि-
 भूतः सुखरूपमेति ॥ १३ ॥ पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्स एव जीवः स्वपिति
 प्रबुद्धः । पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् ॥ आधा-
 रमानन्दमखण्डबोधं यस्मिँल्लयं याति पुरत्रयं च ॥ १४ ॥ एतस्माज्जायते
 प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी
 ॥ १५ ॥ यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् । सूक्ष्मासूक्ष्मतरं नित्यं
 सत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥ १६ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाशते । तद्ब्रह्माह-
 मिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ १७ ॥ त्रिषु धामसु यद्भोरयं भोक्ता
 भोगश्च यद्भवेत् । तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ १८ ॥
 मध्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्मा-
 द्रयमस्म्यहम् ॥ १९ ॥ अणोरणीयानहमेव तद्ब्रह्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
 पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमसि ॥ २० ॥ अपाणि-

पादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः । अहं विजानामि
विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥ २१ ॥ वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् । न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रि-
यबुद्धिरस्ति ॥ २२ ॥ न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न
चाम्बरं च । एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥ २३ ॥

इति कैवल्योपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् । यः शतरुद्रीय-
मधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आत्मपूतो भवति स
सुरापानात्पूतो भवति स ब्रह्महत्यात्पूतो भवति स सुवर्णस्त्रेयात्पूतो भवति
स कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति अत्याश्रमी सर्वदा
सकृद्वा जपेत् ॥ अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम् । तस्मादेवं
विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते कैवल्यं फलमश्नुत इति ॥ २४ ॥

इति कैवल्योपनिषदि द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ॐ सह नाववतिवति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया कैवल्योपनिषत्समाप्ता ॥ १३ ॥

जाबालोपनिषत् ॥ १४ ॥

जाबालोपनिषत्ख्यातं संन्यासज्ञानगोचरम् ।

वस्तुतत्त्वैपदं ब्रह्म स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां
भूतानां ब्रह्मसदनम् । अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां
ब्रह्मसदनम् । तस्माद्यत्र कचन गच्छति तदेव मन्येत तदविमुक्तमेव । इदं वै
कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥ अत्र हि जन्तोः
प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति
तस्मादविमुक्तमेव निषेचेत अविमुक्तं न विमुञ्चेदेवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं
विजानीयामिति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्त उपास्यो य एषोऽन-

न्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्तं प्रतिष्ठित इति । सोऽविमुक्तः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वरणायां नास्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति । का वै वरणा का च नासीति सर्वा निन्द्रियकृतान्दोषान्वारयतीति तेन वरणा भवति सर्वा निन्द्रियकृतान्पापाश्चाशयतीति तेन नासी भवतीति ॥ कतमच्चास्य स्थानं भवतीति । भुवो-
र्ग्राणस्य च यः संधिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च संधिर्भवतीति ॥ एतद्वै संधिं संध्यां ब्रह्मविद उपासत इति सोऽविमुक्त उपास्य इति । सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वै तदेतदेवं वेदेति ॥ २ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जाप्येनामृतत्वं ब्रूहीति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेणेत्येतानि ह वा अमृतनामधेयान्येतैर्ह वा अमृतो भवतीति ॥ एवमेवतद्याज्ञवल्क्यः ॥ ३ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ ह जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन् संन्यासमनु-
ब्रूहीति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा
वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ यदि चेतरेथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्ब्रह्माद्वा-
वनाद्वा ॥ अथ पुनरब्रवीत वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा उत्सन्नाभिरन-
भिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ॥ तद्धैके प्राजापत्यामेवाष्टं कुर्वन्ति ॥
तदु तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात् ॥ अग्निर्ह वै प्राणः प्राणमेवैतया करोति
पश्चाच्चैधातवीयामेव कुर्यात् ॥ एतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ॥ तं जानन्नन्न आरोहाथा नो
वर्धय रयिम् इत्यनेन मन्त्रेणाग्निमाजिघ्रेत् ॥ एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं
गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाह ॥ ग्रामादग्निमाहृत्य पूर्ववदग्निमाग्रापयेत् ॥ यद्यग्निं
न विन्देदप्सु जुहुयात् ॥ आपो वै सर्वा देवताः । ॐ सर्वाभ्यो देवताभ्यो
जुहोमि स्वाहेति हुत्वा समुद्धृत्य प्राश्नीयात्साज्यं हविरनामयं मोक्षमन्नस्त्रयैवं
विन्देत् ॥ तद्ब्रह्मैतदुपासितव्यम् ॥ एवमेवैतद्भगवन्निति वै याज्ञवल्क्यः ॥ ४ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ हैनमग्निः पप्रच्छ ॥ याज्ञवल्क्य पृच्छामि त्वा याज्ञवल्क्य अयज्ञोप-
वीती कथं ब्राह्मण इति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्य इदमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं य
आत्मा प्राश्याचम्यायं विधिः परिव्राजकानाम् ॥ वीराध्वाने वाऽनाशके वाऽपां

अ. उ. १०

प्रवेशे वाऽग्निप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वाऽथ परिब्राह्म विवर्णवासा मुण्डोऽपरि-
ग्रहः शुचिरद्रोही भैक्षणागो ब्रह्मभूयाय भवति ॥ यद्यातुरः स्थान्मनसा वाचा
वा संन्यसेत् ॥ एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति संन्यासी ब्रह्म विदित्येवमे-
वैष भगवन्निति वै याज्ञवल्क्यः ॥ ५ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिकेतुदुर्वासक्रमुनिदाघजडभरतदत्तात्रे-
यरैवतकप्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुमत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रि-
दण्डं कमण्डलुं शिख्यं पात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्वं भूः
स्वाहेत्युपरित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् ॥ यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि-
ग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्प्रवसंपन्नः शुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले
विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समौ भूत्वा शून्यागारदेवगृहतृण-
कूटवलमीकवृक्षमूलकुलालशालाभिहोत्रनदीपुलिनगिरिकुहरकन्दरकोटरनिर्झर-
स्थण्डिलेष्वनिकेतवास्यप्रयतो निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठोऽशुभ-
कर्मनिर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो नाम स परमहंसो
नामेति ॥ ६ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदे जाबालोपनिषत्समाप्ता ॥ १४ ॥

हंसोपनिषत् ॥ १५ ॥

हंसाख्योपनिषत्प्रोक्तनादादिर्यत्र विश्रमेत् ।

तदाधारं निराधारं ब्रह्ममात्रमहं महः ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ गौतम उवाच । भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञास्त्रविशारद । ब्रह्मविद्याप्रबोधो
हि केनोपायेन जायते ॥ १ ॥ सनत्सुजात उवाच । विचार्य सर्ववेदेषु मतं
ज्ञात्वा पिनाकिनः । पार्वत्या कथितं तत्त्वं शृणु गौतम तन्मम ॥ २ ॥ अना-
ख्येयमिदं गुह्यं योगिनां कोशसंनिभम् । हंसस्य गतिविस्तारं भुक्तिमुक्तिफल-
प्रदम् ॥ ३ ॥ अथ हंसपरमहंसनिर्णयं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मचारिणे शान्ताय
वान्ताय गुरुभक्त्याय । हंसहंसेति सदाऽयं सर्वेषु देहेषु व्याप्तो वर्तते ॥

यथा ह्यग्निः काष्ठेषु तिलेषु तैलमिव तं विदित्वा न सृष्ट्युमत्येति । गुदमवष्टभ्या-
 धाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वा अनाहत-
 मतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणाग्निरुध्याज्ञामनुध्यायन्ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमि-
 त्येवं सर्वदा ध्यायन्नथो नादमाधाराद्ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्फटिकसंकाशं स
 वै ब्रह्म परमत्मेत्युच्यते ॥ १ ॥ अथ हंस ऋषिः, अच्यक्तगायत्री छन्दः ।
 परमहंसो देवता । हमिति बीजम् । स इति शक्तिः । सोऽहमिति कील-
 कम् । षट्संख्यया अहोरात्रयोरेकविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि भव-
 न्ति । सूर्याय सोमाय निरञ्जनाय निराभासाय तनुसूक्ष्म प्रचोदयादिति
 अग्नीषोमाभ्यां चोपद् हृदयाद्यङ्गन्यासकरन्यासौ भवतः । एवं कृत्वा हृदये-
 ऽष्टदले हंसात्मानं ध्यायेत् । अग्नीषोमौ पक्षावोकारः शिरो बिन्दुस्तु नेत्रं
 मुखं रुद्रो रुद्राणी चरणौ बाहू कालश्चाग्निश्चोमे पार्श्वे भवतः । पश्यत्यनागा-
 रश्च शिष्टोभयपार्श्वे भवतः । एषोऽसौ परमहंसो भानुकोटिप्रतीकाशो येनेदं
 व्याप्तम् । तस्याष्टधा वृत्तिर्भवति । पूर्वदले पुण्ये मतिः आग्नेये निद्रालया-
 दयो भवन्ति याम्ये क्रूरे मतिः नैऋत्ये पापे मनीषा चारुण्यां क्रीडा वायव्ये
 गमनादौ बुद्धिः सौम्ये रतिप्रीतिः ईशाने द्वयादानं मध्ये वैराग्यं केशरे
 जाग्रदवस्था कर्णिकायां स्वप्नं लिङ्गे सुषुप्तिः पञ्चालागे तुरीयं यदा हंसो नादे-
 लीनो भवति तदा तुर्यातीतमुन्मननमजपोपसंहारमित्यभिधीयते । एवं सर्वं
 हंसवशात्तस्मान्मनो विचार्यते । स एव जपकोट्यां नादमनुभवति एवं
 सर्वं हंसवशात्तादो दशविधो जायते । चिणीति प्रथमः । चिञ्चिणीति द्वितीयः ।
 घण्टानादस्तृतीयः । शङ्खानादश्चतुर्थम् । पञ्चमस्तङ्घ्रीनादः । षष्ठस्तालनादः । स-
 क्षमो वेणुनादः । अष्टमो मृदङ्गनादः । नवमो मेरीनादः । दशमो मेघनादः ।
 जवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत् । प्रथमे चिञ्चिणीगात्रं द्वितीये गात्रमञ्ज-
 नम् । तृतीये खेदनं याति चतुर्थे कम्पते शिरः ॥ पञ्चमे ज्वरते तालु षष्ठेऽमृ-
 तनियेवणम् । सप्तमे गूढविज्ञानं परा वाचा तथाऽष्टमे ॥ अदृश्यं नवमे देहं
 दिव्यचक्षुस्तथाऽमलम् । दशमं परमं ब्रह्म अवेद्ब्रह्मात्मसंनिधौ ॥ तस्मिन्मनो
 विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः शक्त्यात्मा सर्व-
 त्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जनः शान्तः प्रकाशत इति ॥
 ॐ वेदप्रवचनं वेदप्रवचनमिति ॥ २ ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदे हंसोपनिषत्समाप्ता ॥ १५ ॥

आरुणिकोपनिषत् ॥ १६ ॥

आरुणिकाख्योपनिषत्ख्यातसंन्यासिनोऽमलाः ।

यत्प्रबोधाद्यान्ति मुक्तिं तद्रामब्रह्म मे गतिः ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

ॐ आरुणिः प्रजापतेलोकं जगाम । तं गत्वोवाच । केन भगवन्कर्माण्य-
शेषतो विसृजानीति । तं होवाच प्रजापतिस्त्व पुत्रान्भ्रातृन्बन्ध्वादीञ्छिख्रां
यज्ञोपवीतं च यागं च सूत्रं च स्वाध्यायं च भूलोकभुवलोकस्वलोकमहलोक-
जनलोकतपोलोकसत्यलोकं चातलपातालवितलसुतलरसातलतलातलमहातल-
ब्रह्माण्डं च विसर्जयेदण्डमाच्छादनं चैव कौपीनं च परिग्रहेत् । शेषं विसृजे-
दिति ॥ १ ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा लौकिकाग्नीनुदराग्नौ
समारोपयेत् । गायत्रीं च स्ववाचाग्नौ समारोपयेदुपवीतं भूमावप्सु वा
विसृजेत् । कुटीचरो ब्रह्मचारी कुटुम्बं विसृजेत् । पात्रं विसृजेत् । पवित्रं
विसृजेत् । दण्डांश्च लौकिकाग्नींश्च विसृजेदिति होवाच । अत ऊर्ध्वममन्न-
वदाचरेत् । ऊर्ध्वगमनं विसृजेत् । त्रिसंध्यादौ स्नानमाचरेत् । संधिं
समाधावात्मन्याचरेत् । सर्वेषु वेदेष्वारण्यकमावर्तयेदुपनिषदमावर्तयेदुपनिष-
दमावर्तयेदिति ॥ २ ॥ खल्वहं ब्रह्म सूत्रं सूचनात्सूत्रं ब्रह्म सूत्रमहमेव विद्वां-
स्त्रिवृत्सूत्रं त्यजेद्विद्वान्य एवं वेद संन्यस्तं मया संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति
त्रिः कृत्वाऽभर्थ सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । सखा मा गोपायौजः
सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽस्ति वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेति ।
अनेन मन्त्रेण कृतं वैणवं दण्डं कौपीनं परिग्रहेदौषधवदशनमाचरेदौषधवद-
शनमाचरेत् । ब्रह्मचर्यमहिंसां चापरिग्रहं च सत्यं च यत्नेन हे रक्षतोऽ
हे रक्षतोऽ हे रक्षत इति ॥ ३ ॥ अथातः परमहंसपरिव्राजकानामासन-
शयनादिकं भूमौ ब्रह्मचारिणां मृत्पात्रं वाऽलावुपात्रं दारुपात्रं वा कामकोध-
हर्षरोषलोभमोहदम्भदर्पासूयाममत्वाहंकारादीनपि त्यजेत् । वर्षासु ध्रुव-
शीलोऽष्टौ मासानेकाकी यतिश्चरेत् द्वावेव वा चरेद्द्वावेव वा चरे-
दिति ॥ ४ ॥ खलु वेदार्थं यो विद्वान्सोपनयनादूर्ध्वमेतानि प्राग्वा त्यजेत् ।
पितरं पुत्रमश्व्युपवीतं कर्म कलत्रं चान्यदपीह यतयो भिक्षार्थं ग्रामं
प्रविशन्ति पाणिपात्रमुदरपात्रं वा । ॐ हि ॐ हि ॐ हीत्येतदुपनिषदं विन्य-
सेत् ॥ खल्वेतदुपनिषदं विद्वान्य एवं वेद पालाशं बल्वमौदुम्बरं दण्ड-
मजिनं मेखलां यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा शूरो य एवं वेद । तद्विष्णोः

परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्य-
वो जागृवांसः समिन्धते । निष्णोयँत्परमं पदमिति । एवं निर्वाणानुशासनं
वेदानुशासनं वेदानुशासनमिति ॥ ५ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति ज्ञान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीयारुणिकोपनिषत्समाप्ता ॥ १६ ॥

गर्भोपनिषद् ॥ १७ ॥

यद्गर्भोपनिषद्वेद्यं गर्भस्य स्वात्मबोधकम् ।

शरीरापह्नवास्त्रिदं स्वमात्रं कलये हरिम् ॥

ॐ स ह नाववत्विति ज्ञान्तिः ॥

ॐ पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम् ॥ तत्सप्तधातु त्रिमलं
द्वियोनि चतुर्विधाहारमयं शरीरम् ॥ भवति पञ्चात्मकमिति कस्मात्, पृथिव्या-
पस्तेजोवायुराकाशमित्यस्मिन्पञ्चात्मके शरीरे । का पृथिवी का आपः किं
तेजः को वायुः किमाकाशम् । तत्र यत्कठिनं सा पृथिवी यद्द्रवं ता आपो यदुष्णं
तत्तेजो यत्संचरति स वायुः यत्सुषिरं तदाकाशमित्युच्यते ॥ तत्र पृथिवी
नाम धारणे आपः पिण्डीकरणे तेजः प्रकाशने वायुर्व्यूहने आकाशमवकाश-
प्रदाने ॥ पृथुस्तु श्रोत्रे शब्दोपलब्धौ त्वक् स्पर्शं चक्षुषी रूपे जिह्वा रसने
नासिकाऽऽघ्राणे उपस्थश्चानन्दनेऽपानमुत्सर्गे बुद्ध्या बुध्यति मनसा संकलयति
वाचा वदति ॥ षडाश्रयमिति कस्मात्, मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायरसा-
न्निवन्दते ॥ षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादश्चेति । इष्टानिष्टा शब्द-
संज्ञाप्रणिधानाद्दशविधा भवन्ति ॥ १ ॥ शुक्लो रक्तः कृष्णो धूम्रः पीतः कपिलः
पाण्डुर इति ॥ सप्तधातुकमिति कस्मात्, यथा देवदत्तस्य द्रव्यादिविषया जायन्ते ॥
मरस्परं सौम्यगुणत्वात्षड्विधो रसो रसाच्छोणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो
मेदसः स्नावा स्नावोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा मज्जः शुक्रं शुक्रशोणितसंयोगादा-
वर्तते गर्भो हृदिव्यवस्थानीति । हृदयेऽन्तराग्निः अग्निस्थाने पित्तं पित्तस्थाने
वायुः वायुस्थाने हृदयं प्राजापत्यात्क्रमात् ॥ २ ॥ ऋतुकाले संप्रयोगादेक-
रात्रोषितं कलिलं भवति सप्तरात्रोषितं बुधुदं भवति अर्धमासाभ्यन्तरेण
पिण्डो भवति मासाभ्यन्तरेण कठिनो भवति मासद्वयेन शिरः संपद्यते मास-
त्रयेण पादप्रदेशो भवति ॥ अथ चतुर्थे मासेऽङ्गुल्यजठरकटिप्रदेशो भवति ॥

पञ्चमे मासे पृष्ठदंशो भवति ॥ षष्ठे मासे मुखनासिकाक्षिश्रोत्राणि भवन्ति ॥
 सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति ॥ अष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति ॥ पितृ
 रेतोऽतिरिक्तापुरुषो भवति मातृ रेतोऽतिरिक्तास्त्रियो भवन्त्युभयोर्बीजतुल्य-
 त्वात्पुंसको भवति ॥ व्याकुलितमनसोऽन्धाः खज्ञाः कुञ्जा वामना भवन्ति ॥
 अन्योन्यवायुपरिपीडितशुक्रद्वय्याद्विधा तनूः स्यात्ततो युग्माः प्रजायन्ते ॥
 पञ्चात्मकः समर्थः पञ्चात्मिका चेतसा बुद्धिर्गन्धरसादिज्ञाना ध्यानाक्षरमक्षरं
 मोक्षं चिन्तयतीति । तदेकाक्षरं ज्ञात्वाऽष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराः शरीरे
 तस्यैव देहिनाम् ॥ अथ मात्राऽक्षितपीत नाडीसूत्रगतेन प्राण आप्यायते ॥
 अथ नवमे मासि सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति पूर्वजातीः स्मरति कृताकृतं च कर्म
 भवति शुभाशुभं च कर्म विन्दति ॥ ३ ॥ नानायोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो
 मया ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ॥ जातस्यैव मृतस्यैव
 जन्म चैव पुनः पुनः ॥ अहो दुःखोदधौ ममो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ य-
 न्मया परिजनस्यार्थं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फ-
 लभोगिनः ॥ यदि योन्यां प्रमुञ्चामि सांख्यं योगं वा समाश्रये ॥ अशुभक्षयकर्तारं
 फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्यां प्रमुञ्चामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् ॥ अशुभक्ष-
 यकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्यां प्रमुञ्चामि तं प्रपद्ये भगवन्तं नारा-
 यणं देवम् । अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्यां प्रमुञ्चामि
 ध्याये ब्रह्म सनातनम् ॥ अथ जन्तुः स्त्रीयोनिशतं योनिद्वारि संप्राप्तो यन्त्रेणा-
 पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृश्य तदा न
 स्मरति जन्ममरणं न च कर्म शुभाशुभम् ॥ ४ ॥ शरीरमिति कस्मात्, साक्षा-
 दग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते ज्ञानाग्निदर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति ॥ तत्र कोष्ठाग्निर्नामाशि-
 तपीतलेह्यचोष्यं पचतीति ॥ दर्शनार्थी रूपादीनां दर्शनं करोति ॥ ज्ञानाग्निः
 शुभाशुभं च कर्म विन्दति यस्त्र ॥ त्रीणि स्थानानि भवन्ति हृदये दक्षिणा-
 ग्निरुदरे गार्हपत्यं मुखादाहवनीयात्मा यजमानो बुद्धिः पत्नी मनो ब्रह्मा नि-
 धाय लोभादयः पशवो धृतिर्दीक्षा संतोषश्च बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि कर्मे-
 न्द्रियाणि हवींषि शिरः कपालं केशा दर्भा मुखमन्तर्वेदिः, चतुष्कपालं शिरः
 षोडश पार्श्वदन्तोष्ठपटलानि सप्तोत्तरं मर्मशतं साक्षीतिकं संधिशतं सनवकं
 ज्ञायुशतं सप्त शिराशतानि पञ्च मज्जाशतानि अस्थीनि च ह वै त्रीणि शतानि
 षष्टिशार्धचतस्रो रोमाणि कोट्यो हृदयं पलान्यष्टौ द्वादश पलानि जिह्वा पित्तप्रस्थं

कफस्याढकं शुद्धं कुडवं मेदः प्रस्थौ द्वावनियतं मूत्रपुरीषमाहारपरिमाणात् ।
पैप्पलादं मोक्षशास्त्रं परिसमाप्तं पैप्पलादं मोक्षशास्त्रं परिसमाप्तमिति ॥ ५ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ।

इति गर्भोपनिषत्समाप्ता ॥ १७ ॥

नारायणार्थवर्षशिरउपनिषत् ॥ १८ ॥

मायातत्कार्यमखिलं यद्वोधाद्यात्यपह्नवम् ।

त्रिपाञ्चारायणाख्यं तत्कलये स्वात्ममात्रतः ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति ॥ नारायणात्प्राणो
जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥
नारायणाद्ब्रह्मा जायते ॥ नारायणाद्बुद्धो जायते ॥ नारायणादिन्द्रो जायते ॥
नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते ॥ नारायणाद्वादशदित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि
ऽल्लन्दांसि ॥ नारायणादेव समुत्पद्यन्ते ॥ नारायणात्प्रवर्तन्ते ॥ नारायणे प्रली-
यन्ते ॥ एतद्वेदशिरोऽधीते ॥ १ ॥ अथ नित्यो नारायणः ॥ ब्रह्मा नारायणः ॥
शिवश्च नारायणः ॥ शक्रश्च नारायणः ॥ कालश्च नारायणः ॥ दिशश्च नारा-
यणः ॥ विदिशश्च नारायणः ॥ ऊर्ध्वं च नारायणः ॥ अधश्च नारायणः ॥
अन्तर्बहिश्च नारायणः ॥ नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥ निष्क-
लङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽ-
स्ति कश्चित् ॥ य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति ॥ य
एतच्चतुर्वेदशिरोऽधीते ॥ २ ॥ ॐ नित्यमे व्याहरेत् ॥ नम इति पश्चात् ॥
नारायणायेत्युपरिष्ठात् ॥ ॐ नित्येकाक्षरम् ॥ नम इति द्वे अक्षरे ॥ नाराय-
णायेति पञ्चाक्षराणि ॥ एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम् ॥ यो ह वै नारायण-
स्याष्टाक्षरं पदमध्येति । अनपञ्चवः सर्वमायुरेति ॥ विन्दते प्राजापत्यं राय-
स्योषं गौपत्यं ततोऽमृतत्वमभुते ततोऽमृतत्वमभुत इति ॥ एतत्सामवेदशिरो-
ऽधीते ॥ ३ ॥ प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम् ॥ अकार उकारो मकार
इति ॥ ता अनेकधा समभवत्तदेतदोमिति यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसार-
बन्धनात् ॥ ॐ नमो नारायणायेति मंत्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति ॥
तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघनं ॥ तस्मात्तद्धिदाभमात्रम् ॥ ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो

ब्रह्मण्यो मधुसूदनः ॥ ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति ॥ सर्व-
भूतस्थमेकं वै नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म ओम् ॥ एतदथर्वेशिरो
योऽधीते ॥ ४ ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ॥ सायमधीयानो
दिवसकृतं पापं नाशयति ॥ तत्सायंप्रातरधीयानोऽपापो भवति ॥ मध्यंदिन-
मादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते ॥ सर्ववेदपारा-
यणपुण्यं लभते ॥ नारायणसायुज्यमवाप्नोति ॥ श्रीमन्नारायणसायुज्यमवा-
प्नोति य एवं वेद ॥ ५ ॥

ॐ स ह नावब्रत्विति शान्तिः ॥

॥ इति नारायणार्थर्वेशिरुपनिषत्समाप्ता ॥ १८ ॥

महानारायणोपनिषत् ॥ १९ ॥

ॐ नमो महते नारायणाय ॥ अम्भस्यपारे भुवनस्य मध्ये नाकस्य पृष्ठे
महतो महीयान् । शुक्ले ज्योतीषि समनुप्रविष्टः प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः
॥ १ ॥ यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
तदेव भूतं तदु अय्यमानमिदं तदक्षरे परमे व्योमन् ॥ २ ॥ येनावृतं खं च
दिवं मही च येनादित्यस्तपति तेजसा आजसा च । यदन्तः समुद्रे कवयो
वदन्ति तदक्षरे परमे प्रजाः ॥ ३ ॥ यत्तः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवा-
न्विससर्ज भूम्याम् । यत ओषधीभिः पुरुषान्पशूंश्च विवेश भूतानि चराचराणि
॥ ४ ॥ अतः परं नान्यदणीयसं हि परात्परं यन्महतो महान्तम् । यदेकम
व्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् ॥ ५ ॥ तदेवर्तं तदु सत्यमाहुस्त-
देव ब्रह्म परमं कवीनाम् । इष्टापूर्तं बहुधा जातं जायमानं विश्वं विभर्ति
भुवनस्य नाभिः ॥ ६ ॥ तदेवाग्निस्तद्वायुस्तस्यसूर्यस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्र-
ममृतं तद्ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः ॥ ७ ॥ सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषा-
दधि । कला सुहृताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ अर्धमासा मासा
ऋतवः संवत्सरश्च कल्पताम् । स आपः प्रदुधे उभे इमे अन्तरिक्षमथो सुवः
॥ ९ ॥ नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् । न तस्येशे कश्चन तस्य
नाम महद्यशः ॥ १० ॥ न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च-
नैनम् । हृदा मनीषा मनसाभिहृत्सो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ११ ॥
अन्त्यः सम्भूतो हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ ॥ १२ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

एष हि देवः प्र दिशोऽनु सर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः । स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १ ॥ विश्व-
तश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं
पतत्रैर्धावापृथिवी जनयन्देव एकः ॥ २ ॥ वेनस्तपश्यन्विश्वा भुवनानि विद्वान्
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । यस्मिन्निदं सं च वि चैकं स ओतः प्रोतश्च विभुः
प्रजासु ॥ ३ ॥ प्र तद्वोचे अमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो नाम निहितं गुहासु ।
त्रीणि पदा निहिता गुहासु यस्तद्वेद स पितुः पितासत् ॥ ४ ॥ स नो बन्धु-
र्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतत्वमान-
शानास्तृतीये धामान्यभ्यैरयन्त ॥ ५ ॥ परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः परि
लोकान्परि दिशः परि सुवः । ऋतस्य तन्तुं विततं विवृत्य तदपश्यत्तदभवत्त-
त्प्रजासु ॥ ६ ॥ परीत्य लोकान्परीत्य भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्यात्मनात्मानमभिसम्बभूव ॥ ७ ॥ सदसस्पतिमद्भुतं
प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सर्णि मेधामयासिपम ॥ ८ ॥ उद्दीप्यस्व जातवेदोऽ-
पन्नञ्चिर्ऋतिं मम । पशूँश्च मय्यमावह जीवनं च दिशो दिशः ॥ ९ ॥ मा नो
हिंसीजातवेदो गामश्च पुरुषं जगत् । अविभ्रदन्न आगहि श्रिया मा परि-
पातय ॥ १० ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तत्पुरुषस्य विद्महे सहस्राक्षस्य महादेवस्य धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ २ ॥
तत्पुरुषाय विद्महे नन्दिकेश्वराय धीमहि । तन्नो वृषभः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ ४ ॥
षण्मुखाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः षष्ठः प्रचोदयात् ॥ ५ ॥
पावकाय विद्महे सप्तजिह्वाय धीमहि । तन्नो वैश्वानरः प्रचोदयात् ॥ ६ ॥
वैश्वानराय विद्महे लालेलाय धीमहि । तन्नो अग्निः प्रचोदयात् ॥ ७ ॥
आस्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥ ८ ॥ दिवा-
कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्न आदित्यः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥
आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि । तन्नो भानुः प्रचोदयात् ॥ १० ॥
तीक्ष्ण शृङ्गाय विद्महे वक्रपादाय धीमहि । तन्नो वृषभः प्रचोदयात् ॥ ११ ॥
कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि । तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ॥ १२ ॥
महाशूलिन्यै विद्महे महादुर्गायै धीमहि । तन्नो भगवती प्रचोदयात् ॥ १३ ॥
सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥ १४ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे सुपर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥ १५ ॥
 नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ १६ ॥
 नृसिंहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि । तन्नः सिंहः प्रचोदयात् ॥ १७ ॥
 चतुर्भुजाय विद्महे कमण्डलुधराय धीमहि । तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ॥ १८ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा । सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्नना-
 शिनी ॥ १ ॥ दूर्वा अमृतसम्भूताः शतमूलाः शताङ्कुराः । शतं मे अन्नित्
 पापानि शतमायुर्विवर्धन्ति ॥ २ ॥ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि ।
 एवा नो दूर्वं प्रतनु सहजेण शतेन च ॥ ३ ॥ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते
 वसुन्धरे । शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥ ४ ॥ उद्धृतासि वराहेण
 कृष्णेन शतबाहुना । भूमिर्धेनुर्धरित्री च धरणी लोकधारिणी । तेन या
 ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमन्त्रिता ॥ ५ ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं
 कृतम् । त्वया हतेन पापेन जीवामि शरदः शतम् ॥ ६ ॥ वाचा कृतं कर्मकृतं
 मनसा दुर्विचिन्तितम् । त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् । मृत्तिके
 देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां
 करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ८ ॥ ॐ मूर्लेक्ष्मी-
 भुवर्लेक्ष्मीः सुवः कालकर्णी तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥ पद्मप्रभे
 पद्मसुन्दरि धर्मेरतये स्वाहा ॥ १० ॥ हिरण्यगङ्गां वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि
 याचितः । यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥ ११ ॥ यन्मे मनसा
 वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् । तन्मे इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च
 पुनन्तु पुनः पुनः ॥ १२ ॥ सुमित्रिया न आप ओपधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्यै
 भूयासुर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

नमोऽग्नयेऽसुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्यै नमोऽन्न्यः ॥ य-
 दपां क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतात् ॥ १ ॥ अत्याशनादतीपानायच्छ
 उग्रात्यतिग्रहात् । तन्मे वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु ॥ २ ॥ सोऽहमपापो
 विरजो निर्मुक्तो मुक्तिकिल्बिषः । नाकस्य पृष्ठमारुह्य गच्छेद्ब्रह्मसलोकताम् ॥ ३ ॥
 इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुषण्या । असिम्नया मरुद्वधे
 वितस्त्यार्जकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ४ ॥ ऋतं च सत्यं चाभीद्वात्तपसोऽ-
 ध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ ५ ॥ समुद्रादणवादधि

संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ ६ ॥ सूर्या-
चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः
॥ ७ ॥ यत्पृथिव्या रजः स्वमान्तरिक्षे विरोदसी । इमास्तदापो वरुणः पुना-
त्वघमर्षणः ॥ ८ ॥ एष सर्वस्य भूतस्य भव्ये भुवनस्य गोप्ता । एष पुण्यकृतां
लोकानेष मृत्यो हिरण्मयः । धावापृथिव्योर्हिरण्मयं संशृतं सुवः । स नः
सुवः संशिक्षाधि ॥ ९ ॥ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि । ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्मा-
हमस्मि । योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि । अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ॥ १० ॥
अकार्यकार्यवक्त्राणीं स्नेनो भ्रूणहा गुरुतल्पगः । वरुणोऽपामवमर्षणस्तस्मात्पापात्प्र-
मुच्यते ॥ ११ ॥ रजो भूमिस्त्वमौरोदयस्व प्रवदन्ति धीराः । पुनन्तु ऋषयः
पुनन्तु वसवः पुनातु वरुणः पुनात्वघमर्षणः ॥ १२ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा । वृषा पवित्रे
अधि सानो अज्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ १ ॥ जातवेदसे सुनवाम
सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं
दुरितात्यग्निः ॥ २ ॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु
जुष्टाम् । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसितरसे नमः ॥ ३ ॥ अग्ने त्वं पारया
नज्यो अस्मान् स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा । पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा
तोकाय तनयाय शंयोः ॥ ४ ॥ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुर्न नावा
दुरितातिपर्वि । अग्ने अत्रिवज्रमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविना तनूनाम् ॥ ५ ॥
पृतनोजितं सहमानमग्निसुप्रं हुवेम परमांसधस्थात् । स नः पर्षदतिदुर्गाणि
विश्वा क्षामदेवो अतिदुरितात्यग्निः ॥ ६ ॥ प्रतो हि कमीढ्यो अधरेषु सनाच्च
होता नव्यश्च सस्ति । स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वांसभ्यं च सोमगमायजस्व
॥ ७ ॥ परस्ताद्यशो गुहासु मम सुपर्णपक्षाय धीमहि । शतबाहुना पुनरजायत
सुवो राजा सधस्था त्रीणि च ॥ ८ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

ॐ भूरग्नये पृथिव्यै स्वाहा । भुवो वायवेऽन्तरिक्षाय स्वाहा । सुवरादित्या-
य दिवे स्वाहा । भूर्भुवःसुवश्चन्द्रमसे दिग्भ्यः स्वाहा । नमो देवेभ्यः स्वधा
पितृभ्यो भूर्भुवः सुवरश्चोम् ॥ १ ॥ भूरक्षमग्नये पृथिव्यै स्वाहा । भुवोऽन्नं
वायवेऽन्तरिक्षाय स्वाहा । सुवरक्षमादित्याय दिवे स्वाहा । भूर्भुवःसुवरक्षं च-
न्द्रमसे दिग्भ्यः स्वाहा । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यो भूर्भुवःसुवरक्षमोम्

॥ २ ॥ भूरभ्ये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा । भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा । सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा । भूर्भुवःसुव-
श्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यो भूर्भुवःसुवर्महरोम् ॥ ३ ॥ पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा । पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा ॥ यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा । सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा ॥ ४ ॥ यश्छन्दसामृद्धो विश्वरूपश्छन्दोभ्यश्छन्दांस्याविवेश । सतां शक्यः प्रोवाचोपनिषदिन्द्रो ज्येष्ठ इन्द्राय ऋषिभ्यो नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यो भूर्भुवःसुवश्छन्द ॐ ॥ ५ ॥ नमो ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासं कर्णयोः श्रुतं मा च्योढुं ममासुष्य ॐ ॥ ६ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्गहैतदुपास्यैतत्तपः ॥ १ ॥ यथा वृक्षस्य संपुष्पतस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति । यथासिधारां कर्तेश्वहितामवक्रामेद्यद्यु वेह वेहवा विह्वलिष्यामि कर्तं पतिष्यामीत्येवमनृतादात्मानं जुगुप्सेत् ॥ २ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ ३ ॥ सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त जिह्वाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ४ ॥ अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे अस्यात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः । अतश्च विश्वा ओषधयो रसश्च येनैव भूतैस्त्रिष्टते ह्यन्त-
रात्मा ॥ ५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषद्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । इयेनो गृध्राणां स्वधित्वीर्नानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥ अजामेकां लोहित-
शुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ २ ॥ हंसः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसङ्गो वा-
षट्तिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसद्वतसद्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ ३ ॥ यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आनिवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया संविदानस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ ४ ॥ विध-
तारं हवामहे वसोः कुबिद्वनाति नः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ५ ॥ अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वमियं सुव ॥ ६ ॥ विश्वानि देव सविर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ ७ ॥ मधु वाता ऋतायते

मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ८ ॥ मधुनक्तमुतोषसो
मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु घोरस्तु नः पिता ॥ ९ ॥ मधुमानो वनस्पतिर्म-
धुर्मा अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ १० ॥ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य
योलिघृते श्रितो घृतम्बस्य धाम । अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ
वक्षि हव्यम् ॥ ११ ॥ समुद्रादूर्मिर्मधुर्मा उदारदुपांशुना सममृतत्वमानह ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १२ ॥ वयं नाम प्रव-
चामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः । उप ब्रह्मा शृण्वच्छस्यमानं चतुः-
शृंगोऽवसीद्वौर एतत् ॥ १३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो
वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश ॥ १ ॥ त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्य-
मानं गति देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्र एकं सूर्यं एकं जजान वेनादेकं
स्वधया निष्टतधुः ॥ २ ॥ यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति ॥ ३ ॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्यान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इव
स्त्वन्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनैदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ४ ॥ न कर्मणा न प्रजया
धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानधुः । परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते
यद्यतयो विशन्ति ॥ ५ ॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितायाः सद्यसासयोगाद्यतयः
शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिसुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥
दहं विपाप्मं वरं वेदममृतं यस्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थम् । तत्रापि दहं गगनं
विशोकस्तस्मिन्यदन्तस्तदुपासितव्यम् ॥ ७ ॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदा-
न्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ ८ ॥ अजोऽन्यः
सुविभा नाभिः सर्वमस्यैव ॥ ९ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि दशमः खण्डः ॥ १० ॥

सहस्रशीर्षं देवं विश्वाख्यं विश्वशम्भुवम् । विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं
प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् । विश्वमेवेदं पुरुषस्त-
द्विश्वमुपजीवति ॥ २ ॥ पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् । नारायणं
महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम् ॥ ३ ॥ नारायणः परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणः परः ।
नारायणः परो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥ ४ ॥ नारायणः परो ध्याता
ध्यानं नारायणः परः । परादपि परश्चासु तस्माद्यस्तु परात्परः ॥ ५ ॥ यच्च
किञ्चिज्जगत्स्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः

स्थितः ॥ ६ ॥ अनन्तमव्ययं कविं समुद्रेतं विश्वशम्भुवम् । पद्मकोशप्रतीकाशं
 सुषिरं चाप्यधोमुखम् ॥ ७ ॥ अधोनिष्ठ्या वितस्तां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।
 हृदयं तद्विज्ञानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ॥ ८ ॥ सततं तु शिराभिस्तु लम्बत्या-
 कोशसन्निभम् । तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन्स्तवं प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥ तस्य
 मध्ये महानग्निर्विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः । सोऽग्रभुविभजंस्तिष्ठन्नाहारमक्षयः कविः
 ॥ १० ॥ सन्तापयति स्वं देहमापादतलमस्तकम् । तस्य मध्ये वह्निशिखा
 अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ॥ ११ ॥ नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भासुरा ।
 नीवारशूकवत्तन्वी पीताभा स्यात्तनूपमा ॥ १२ ॥ तस्याः शिखाया मध्ये पर-
 मात्मा व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराद ॥ १३ ॥
 अथातो योग जिह्वा मे मधुवादिनी । अहमेव कालो नाहं कालस्य ॥ १४ ॥
 नारायणः स्थितो व्यवस्थितश्चत्वारि च ॥ १५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलम् । ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै
 नमः ॥ १ ॥ आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । तत्र ता ऋचस्तदृचां
 मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डले अर्चिषि पुरुषस्ताति यजूंषि
 स यजुषां मण्डलं स यजुषां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डले अर्चिर्दीप्यते
 तानि सामानि स साध्नां मण्डलं स साध्नां लोकः सैषा ऋच्येव विद्या तपति
 य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः ॥ २ ॥ आदित्यो वै तेज ओजो बलं
 यशश्चक्षुःश्रोत्रमात्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः । प्राणो
 लोकपालकः । किं तत्सत्यमन्नमायुरमृतो जीवो विश्वः । कतमः स्वयम्भूः प्रजा-
 पतिः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो य एष पुरुष एष भूतानामधिपतिः ।
 ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामामोलेतासासेव देवतानां सायुज्यं सार्ष्टितां समान-
 लोकतामामोति य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ ३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

वृणिः सूर्य आदित्य ओम् ॥ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति तद्ब्रह्म तदाप
 आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ १ ॥ सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय
 नमो अस्तु । पुरुषो वै रुद्रस्तन्महो नमो नमः । विश्वं भूतं भव्यं भुवनं चित्रं
 बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ २ ॥
 कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुल्लुष्टमाय तज्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥ सर्वो ह्येष
 रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ ३ ॥ नमो हिरण्यवाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्य-
 रूपाय हिरण्यपतये । अम्बिकापतये उमापतये नमो नमः ॥ ४ ॥ यस्य

वैकंकल्यमिहोन्नहवणी भवति प्रतिष्ठिताः प्रत्येवास्याहुतयस्तिष्ठन्त्यथो प्रतिष्ठित्यै
॥ ५ ॥ कृणुष्व पाज इति पञ्च ॥ ६ ॥ अदितिर्देवा गन्धर्वा मनुष्याः पितरोऽ-
सुरास्तेषां सर्वभूतानां माता मेदिनी पृथिवी महती मही सावित्री गायत्री
जगत्सुर्वी पृथ्वी बहुला विश्वा भूता । कतमा का वा सा सत्येत्यमृतेति
वसिष्ठः ॥ ७ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणो वा आपः पशव आपो अन्न-
मापोऽमृतमापः सन्नाडापो विराडापो स्वराडापश्छन्दास्यापो ज्योतीर्ग्यापो
यजूंष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवःसुवराप ओम् ॥ १ ॥ आपः
पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु
माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापो असतां च
प्रतिग्रहं स्वाहा ॥ २ ॥ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो
रक्षन्ताम् । यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पञ्चामुदरेण शिक्षा
अहस्तदवलुम्पतु यत्किञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि
जुहोमि स्वाहा ॥ ३ ॥ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो
रक्षन्ताम् । यद्वाज्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पञ्चामुदरेण
शिक्षा रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये
ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ ४ ॥ अहर्नो अत्यपीपरद्वात्रिर्नो अतिपारयद्वात्रिर्नो
अत्यपीपरदहर्नो अतिपारयत् ॥ ५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम् । गायत्री छन्दसां माता इदं
ब्रह्म जुषस्व नः ॥ ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि आजोऽसि देवानां धाम
नामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरोम् ॥ गायत्रीमावाहयामि
सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि ॥ १ ॥ ओं भूः । ओं भुवः । ओं
स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यं । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ओमापोज्योतीरसोऽमृतं
ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः सुवर्मेहर्जनरूपः सत्यं मधु क्षरन्ति ।
तद्ब्रह्म । तदाप आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ ३ ॥ ओं तद्ब्रह्म ।
ओं तद्वायुः । ॐ तद्वात्मा । ओं तत्सर्वम् । ओं तत्पुरीं नमः ॥ ४ ॥ उत्तमे
शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि । ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथाशुखम्

॥ ५ ॥ ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं विष्णुस्त्वं
वषट्कारस्त्वं रुद्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं प्रजापतिः ॥ ६ ॥ अमृतोपस्तरणमसि ॥ ७ ॥
प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि प्राणाय स्वाहा । अपाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि
अपानाय स्वाहा । व्याने निविष्टोऽमृतं जुहोमि व्यानाय स्वाहा । उदाने
निविष्टोऽमृतं जुहोमि उदानाय स्वाहा । समाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि समा-
नाय स्वाहा ॥ ८ ॥ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय ।
प्राणाय स्वाहा ॥ अपाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । अपा-
नाय स्वाहा ॥ व्याने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । व्यानाय
स्वाहा ॥ उदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । उदानाय
स्वाहा ॥ समाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । समानाय
स्वाहा ॥ ९ ॥ अमृतापिधानमसि । ब्रह्मणि स आत्मा मृतत्वाय ॥ १० ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

अद्वायां प्राणे निविश्यामृतं हुतम् । प्राणमन्त्रेनाप्यायस्व ॥ अपाने निवि-
श्यामृतं हुतम् । अपानमन्त्रेनाप्यायस्व ॥ व्याने निविश्यामृतं हुतम् । व्यान-
मन्त्रेनाप्यायस्व ॥ उदाने निविश्यामृतं हुतम् । उदानमन्त्रेनाप्यायस्व ॥
समाने निविश्यामृतं हुतम् । समानमन्त्रेनाप्यायस्व ॥ ब्रह्मणि स आत्मा मृत-
त्वाय ॥ १ ॥ प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रोमाविशान्तकस्तेनात्मेनाप्यायस्व ॥ २ ॥
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो अंगुष्ठं च समाश्रितः । ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति
विश्वभुक् ॥ ३ ॥ मेधा देवी जुषमाणा न आगाद्विश्वाची भद्रा सुमनस्यमाना ।
त्वया जुष्टा जुषमाणा दुरुक्तान् बृहद्भदेम विदधे सुवीराः ॥ त्वया जुष्ट ऋषि-
र्भवतु देवी त्वया ब्रह्मा गतश्रीरुज त्वया । त्वया जुष्टश्चित्रं विन्दते वसु सा
नो जुषस्व द्रविणेन मेधे ॥ ४ ॥ मेधां मे इन्द्रो ददातु मेधां देवी सरस्वती ।
मेधां मे अश्विनावुभावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ ॥ ५ ॥ अप्सरासु च या मेधा गन्ध-
र्वेषु च यन्मनः । देवी मेधा मनुष्यजा सा मां मेधा सुरभिर्जुषताम् ॥ ६ ॥
आ मां मेधा सुरभिर्विश्वरूपा हिरण्यवर्णा जगती जगम्या । ऊर्जस्वती पयसा
पिन्वमाना सा मां मेधा सुप्रतीका जुषताम् ॥ ७ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवे भवे नातिभवे भजस्व मां
भवोद्भवाय नमः ॥ १ ॥ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय
नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय
नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ २ ॥ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो

घोर घोरतरेभ्यः । सर्वतः सर्वं सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ३ ॥ तत्पु-
 रुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ४ ॥ ईशानः
 सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु
 सदाशिवोम् ॥ ५ ॥ ब्रह्म मेतु माम् । मधु मेतु माम् । ब्रह्म मेऽव मधु मेतु माम् ।
 यस्ते सोम प्रजावत्सोऽभि सो अहम् । दुःस्वप्नहन्दुरूपवहा । यांस्ते सोम प्राणां-
 स्ताञ्जुहोमि ॥ त्रिसुपर्णमयाचितं ब्राह्मणाय दद्यात् । ब्रह्महत्यां वा एते घ्नन्ति ये
 ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्त्यासहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति ॥ ॐ ॥ ६ ॥
 ब्रह्ममेधया मधुमेधया ब्रह्म मेऽव मधुमेधया ॥ अद्या नो देव सवितः प्रजाव-
 त्सावीः सौभगं । परा दुःस्वमियं सुव ॥ विश्वानि देव सवितर्दुरिताति परा-
 सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
 माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ मधु नक्तमुतोपसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु घौरस्तु
 नः पिता ॥ मधुमाह्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥
 य इमं त्रिसुपर्णमयाचितं ब्राह्मणाय दद्यात् । भ्रूणहत्यां वा एते घ्नन्ति ये ब्राह्म-
 णास्त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्त्यासहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति ॥ ॐ ॥ ७ ॥ ॐ
 ब्रह्ममेधवा मधुमेधवा ब्रह्म मेऽव मधुमेधवा ॥ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना-
 मृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । इयेनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्र-
 मयेति रेभन् ॥ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् ।
 नृपद्वरसद्वतसब्योमसद्वजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ य इमं त्रिसु-
 पर्णमयाचितं ब्राह्मणाय दद्यात् । वीरहत्यां वा एते घ्नन्ति ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्ण
 पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्त्यासहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति ॥ ॐ ॥ ८ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि
 स्वाहा । पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि
 स्वाहा । अन्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । यद्विवा च नक्तं चैनश्चक्रम
 तस्यावयजनमसि स्वाहा । यद्विद्वांसश्चाविद्वांसश्चैनश्चक्रम तस्यावयजनमसि
 स्वाहा । यच्चाहमेनो विद्वांसश्चाविद्वांसश्चैनश्चक्रम तस्यावयजनमसि स्वाहा ।
 यत्स्वपन्तश्च जाग्रतश्चैनश्चक्रम तस्यावयजनमसि स्वाहा । यत्सुषुप्तश्च जाग्रत-
 श्चैनश्चक्रम तस्यावयजनमसि स्वाहा । एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा ॥ १ ॥
 कामोऽकार्षीन्नाहं करोमि कामः करोति कामः कर्ता कामः कारयिता । एतत्ते
 काम कामाय स्वाहा ॥ २ ॥ मन्युरकार्षीन्नाहं करोमि मन्युः करोति मन्युः
 कर्ता मन्युः कारयिता । एतत्ते मन्यो मन्यवे स्वाहा ॥ ३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

अ. उ. ११

तिलाः कृष्णास्तिलाः श्वेतास्तिलाः सौम्या वक्षानुगाः । तिलाः पुनन्तु मे
पापं यत्किञ्चिदुरितं मयि स्वाहा । यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृ-
तम् । दुःस्वमे दुर्जनस्पर्शं तिलाः शान्तिं कुर्वन्तु स्वाहा । चौरस्यान्नं नवभ्रातृ-
ब्रह्महा गुरुतल्पगः । गोस्तेयं सुरापानं भ्रूणहत्यां तिलाः शमयन्तु स्वाहा ।
गणान्नं गणिकान्नं कुष्टान्नं पतितान्नं भुक्त्वा वृषलीभोजनम् । श्रद्धा प्रजा च
मेधा च तिलाः शान्तिं कुर्वन्तु स्वाहा । श्रीश्च पुष्टिश्चानृत्यं ब्रह्मण्यं बहुपुत्रि-
णम् । श्रद्धा प्रजा च मेधा च तिलाः शान्तिं कुर्वन्तु स्वाहा ॥ १ ॥ अग्नये
स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ध्रुवाय भूमाय स्वाहा । ध्रुवक्षितये स्वा-
हा । धूमाय स्वाहा । अच्युतक्षितये स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । धर्माय
स्वाहा । अधर्माय स्वाहा । अग्न्यः स्वाहा । ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ।
रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा । गृह्णाभ्यः स्वाहा । अवसानेभ्यः स्वाहा । अव-
सानपतिभ्यः स्वाहा । सर्वभूतेभ्यः स्वाहा । कामाय स्वाहा । अन्तरिक्षाय
स्वाहा । यदेजति जगति यच्च चेष्टति नान्यो भागो यत्नान्मे स्वाहा । पृथिव्यै
स्वाहा । अन्तरिक्षाय स्वाहा । दिवे स्वाहा । सूर्याय स्वाहा । चन्द्रमसे
स्वाहा । नक्षत्रेभ्यः स्वाहा । इन्द्राय स्वाहा । बृहस्पतये स्वाहा । प्रजापतये
स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । स्वधा पितृभ्यः । नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा ।
देवेभ्यः स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा अस्तु । भूतेभ्यो नमः । मनुष्येभ्यो हन्ता ।
परमेष्ठिने स्वाहा ॥ २ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदेकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

ये भूताः प्रचरन्ति दिवानक्तं बलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेष्ठाः । तेभ्यो बलिं
पुष्टिकामो हरामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु स्वाहा ॥ १ ॥ सजोषा इन्द्र स-
गणो मरुद्भिः सोमं पिव वृत्रहञ्छ्वर विद्वान् । जहि शत्रूरपमृधो जुदस्वाथाभ-
यं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं
शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ३ ॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि-
द्विषो विमृधो जहि ॥ ४ ॥ स्वस्तिदा विशास्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषे-
न्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वं ऊ पु ण ऊतये तिष्ठा देवो
न सनिता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदङ्गिभिर्वागङ्गिर्विह्वयामहे ॥ ६ ॥ तर-
णिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ७ ॥ उपयाम
गृहीतोऽसि सूर्याय त्वा आजस्वत एष ते योतिः सूर्याय त्वा आजस्वते ॥ ८ ॥
विष्णुमुखा वै देवादछन्दोभिरिमाँल्लोकाननपजय्यमभ्यजयन् ॥ ९ ॥ श्री मे

खण्डः २२]

महानारायणोपनिषद् ॥ १९ ॥

१६३

भजत । अलक्ष्मी मे नश्यत ॥ १० ॥ महौ हन्द्रो वज्रबाहुः षोडशी शर्म
यच्छतु । अस्ति नो मघवा करोतु हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि ॥ ११ ॥ शरीरं
यज्ञः शमलं कुसीदं तस्मिन्सीदतु योऽस्मान्द्वेष्टि ॥ १२ ॥ वरुणस्य स्कम्भनमसि
वरुणस्य स्कम्भसर्जनमसि । उन्मुक्तो वरुणस्य पाशः ॥ १३ ॥ त्रीणि पदा वि-
चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ॥ १४ ॥ प्राणापानव्या-
नोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा
॥ १५ ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकृतिसंकल्पा मे ॥ १६ ॥
शिरःपाणिपादपार्श्वेष्टोदरजंघाक्षिश्रोपस्थपायवो मे ॥ १७ ॥ त्वक्कर्णमांस-
रुधिरस्त्रायुमेदोस्थिमज्जा मे ॥ १८ ॥ शःश्वस्पर्शरसरूपगन्धा मे ॥ १९ ॥
पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशा मे ॥ २० ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्द-
मया मे ॥ २१ ॥ विचिटि स्वाहा ॥ २२ ॥ खखोल्काय स्वाहा ॥ २३ ॥
उत्तिष्ठ पुरुषाहरितपिंगल लोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं ॥ २४ ॥ शुक्रशोणित्वाजोऽसि मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा
विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ २५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि विंशः खण्डः ॥ २० ॥

ॐ स्वाहा ॥ १ ॥ सत्यं परं परं सत्यं सत्येन न सुवर्गाल्लोकाश्च वन्ते कदा-
चन सतां हि सत्यं तस्मात्सत्ये रमन्ते ॥ तप इति तपो नान्नानात्परं यद्धि परं
तपस्तद्गुर्धर्मं तद्गुराधर्मं तस्मात्तपसि रमन्ते ॥ दम इति नियतं ब्रह्मचारिण-
स्तस्मादमे रमन्ते ॥ शम इत्यरण्ये मुनयस्तस्माच्छमे रमन्ते ॥ दानमिति
सर्वाणि भूतानि प्रशंसन्ति दानान्नातिदुष्करं तस्माद्दाने रमन्ते ॥ धर्म इति
धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं धर्मान्नातिदुश्चरं तस्माद्धर्मे रमन्ते ॥ प्रजननमिति
भूयांसस्तस्माद्भूयिष्ठाः प्रजायन्ते तस्माद्भूयिष्ठाः । प्रजनने रमन्ते ॥ अग्नेय
इत्याहुस्तस्मादग्नय आधातव्याः ॥ अभिहोत्रमित्याहुस्तस्मादभिहोत्रे रमन्ते ॥
यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गतास्तस्माद्यज्ञे रमन्ते ॥
मानसमिति विद्वांसस्तस्माद्विद्वांस एव मानसे रमन्ते ॥ न्यास इति ब्रह्मा
ब्रह्मा हि परः परो हि ब्रह्मा तानि वा एतान्यवराणि तपांसि न्यास
एवात्यरेचयत् । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ २ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

प्राजापत्यो ह्यरुणिः सौपर्णेयः प्रजापतिं पितरमुपससार किं भगवन्तः परमं
वदन्तीति । तस्मै प्रोवाच सत्येन वायुरावाति सत्येनाविद्यो रोचते दिवि सत्यं
वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति । तपसा देवा

देवतामग्र आयस्तपसऋषयः सुवरन्वविन्दंस्तपसा स्तपन्नान्प्रणुदामारातीस्तपसि
 सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्तपः परमं वदन्ति । दमेन दान्ताः किल्बिषमेवधून्वन्ति
 दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्दमो भूतानां दुराधर्षं दमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मा-
 द्दमः परमं वदन्ति । शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति शमेन नाकं सुनयोऽन्ववि-
 न्दन् । शमो भूतानां दुराधर्षं शमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माच्छमः परमं वदन्ति ।
 दानं यज्ञानां वरुथं दक्षिणा लोके दातारं सर्वभूतान्युपजीवन्ति दानेनारातीर-
 पानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दानं परमं
 वदन्ति । धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण
 पापमपबुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति । प्रजननं वै प्रतिष्ठा
 लोके साधुप्रजावास्तन्तुं तन्वानः पितृणामनृणो भवति तदेव तस्यानृणः तस्या-
 त्प्रजननं परमं वदन्ति । अग्नयो वै अग्नीं विद्या देवयानः पन्था गार्हपत्यमृक्
 पृथिवी रथन्तरमन्वाहार्यपचनो यजुरन्तरिक्षं वामदेव्यसाहवनीयः साम
 सुवर्गो लोको बृहत्तस्मादग्नीन् परमं वदन्ति । अग्निहोत्रं सायम्प्रातर्गृहाणां
 निष्कृतिः स्विष्टं सुहुतं यज्ञकृतूनां प्रायणं सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्नि-
 होत्रं परमं वदन्ति ॥ १ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गता यज्ञेनासुरानपानुदन्त
 यज्ञेन हि द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ।
 मानसं वै प्राजापत्यं पवित्रं मानसेन मनसा साधु पश्यति मानसा ऋषयः प्रजा
 असृजन्त मानसे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मान्मानसं परमं वदन्ति । न्यास इत्याहुर्म-
 नीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कतमः । स्वयम्भूः प्रजापतिः संवत्सर इति ।
 संवत्सरोऽसावादित्यो य एष आदित्ये पुरुषः स एव परमेष्ठी ब्रह्मात्मा । या-
 भिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः
 प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा
 श्रद्धा श्रद्धया सेधा सेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शान्तिः शान्त्या
 चित्तं चित्तेन स्मृतिः स्मृत्या स्मारे स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति ।
 तस्मादन्नं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददात्यन्नात्प्राणा भवन्ति भूतानां प्राणैर्मनो
 मनसश्च विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा
 पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च दिशश्चैवान्तरदिशाश्च
 सर्वैः सर्वमिदं जगत् ॥ १ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

स भूतं स च भव्यं जिज्ञासासक्तिपूरितं जारयिष्याः । श्रद्धासल्लो महस्वा-
क्षपसोपरिष्टाज्ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाहि विद्वान् ।
तस्मात्त्वासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः ॥ १ ॥ वसुरण्यो विभूरसि प्राणे त्वम-
सि सन्धाता ब्रह्मन् त्वमसि विश्वसृक् तेजोदास्त्वमस्यर्धैर्षोदास्त्वमसि सूर्य-
स्य बुधोदास्त्वमसि चन्द्रमसः । उपयाम गृहीतोऽसि । ब्रह्मणे स्वा महस
ओमित्यात्मानं युञ्जीत । एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम् । य एवं वेद
ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् ॥ २ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

तस्यैवंविदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्म उरो वेदिलोमाति
बहिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दसः शमयिता
दक्षिणा वाग्धोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमभीत् । थावद्भि-
यते सा दीक्षा यदश्नाति तद्विषयिष्यति तदस्य सोमपानं यद्रमते तदुपसदो
यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो यन्मुखं तदाहवनीयो याथाहुती-
राहुती यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायम्प्रातरस्ति तत्समिधो यत्सायम्प्रातर्म-
ध्यन्दिनं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपूर्णमासौ ये अर्धमासाश्च
मासाश्च ते चातुर्मास्यानि य ऋतवस्ते पशुबन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च
तेऽहर्गणाः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवभृथः । एतद्वै जरामर्यमग्नि-
होत्रं सत्रं य एवं विद्वानुदगयने प्रसीयते देवानामेव महिमानं गत्वादित्यस्य
सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रसीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः
सायुज्यं गच्छति । एतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति
तस्माद्ब्राह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्ब्राह्मणो महिमानमाप्नोतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पञ्चविंशः खण्डः ॥ २५ ॥

इत्याथर्षणीया महानारायणोपनिषत्समाप्ता ।

परमहंसोपनिषत् ॥ २० ॥

परमहंसोपनिषद्वेद्यापारसुखाकृति ।

त्रैपादश्रीरामतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ योगिनां परमहंसानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति
नारदो भगवन्तमुपगत्योवाच । तं भगवानाह । योऽयं परमहंसमार्गो लोके

दुर्लभतरो न तु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव नित्यपूतस्थः स एव वेद-
 शुद्ध इति विदुषो मन्यन्ते महापुरुषो यच्चित्तं तत्सर्वदा मन्येवावतिष्ठते तस्मा-
 दहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते । असौ स्वपुत्रमित्रकलत्रबन्धादीन्निष्ठायाज्ञोपवीते
 स्वाध्यायं च सर्वकर्मणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कौपीनं दण्डमाच्छादनं
 च स्वहारीरोपभोगार्थाय च लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत् । तच्च न मुख्योऽस्ति
 कोऽयं मुख्य इति चेदयं मुख्यः । न दण्डं न शिखां न यज्ञोपवीतं
 न चाच्छादनं चरति परमहंसो न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुःखं
 न मानावमाने च षड्वर्गिष्वर्जं निन्दागर्वमत्सरदम्भद्वेषसुखदुःख-
 कामक्रोधलोभमोहहर्षासूयाहंकारादींश्च हित्वा स्ववपुः कुणपमिव दृश्यते
 यतस्तद्वपुरपध्वस्तं संशयविपरीतमिथाज्ञानानां यो हेतुस्तेन नित्यनिवृत्तस्त-
 न्नित्यबोधस्तस्त्रयमेवावस्थितिस्तं शान्तमचलमद्वयानन्दविज्ञानघन एवास्मि ।
 तदेव मम परमधाम तदेव शिखा च तदेवोपवीतं च । परमात्मात्मनोरेकत्व-
 ज्ञानेन तयोर्भेद एव विभग्नः सा संध्या ॥ सर्वाङ्कामान्परित्यज्य अद्वैते परम-
 स्थितिः । ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी स उच्यते ॥ काष्ठदण्डो धृतो येन
 सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । (तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः । भिक्षा-
 मात्रेण यो जीवेत्स पापी यतिवृत्तिहा ।) स याति नरकान्धोरान्महारौरव-
 संज्ञकान् । इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस आशाश्वरो ननमस्कारो नस्वधा-
 कारो न निन्दा न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेद्भिक्षुः । नावाहनं न विसर्जनं
 न मग्नं न ध्यानं नोपासनं च न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथङ्नापृथगहं न न त्वं
 न सर्वं चानिकेतस्थितिरेव भिक्षुः सौवर्णादीनां नैव परिग्रहेन्न लोकं नाव-
 लोकं च चावाधकः क इति चेद्बाधकोऽस्त्येव यस्मान्निक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं
 च स ब्रह्महा भवेद्यस्मान्निक्षुर्हिरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत्स पौलकसो भवेद्यस्मा-
 न्निक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं च स आत्महा भवेत्तस्मान्निक्षुर्हिरण्यं रसेन न दृष्टं
 च स्पृष्टं च न ग्राह्यं च । सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तन्ते दुःखे नोद्भिन्नः
 सुखे न स्पृहा त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिस्नेहो न द्वेष्टि न मोदं च ।
 सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येवावस्थीयते । यत्पूर्णानन्दैकबोध-
 स्तद्ब्रह्मैवाहमस्मीति कृतकृत्यो भवति कृतकृत्यो भवति ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति परमहंसोपनिषत्समाप्ता ॥

ब्रह्मोपनिषद् ॥ २१ ॥

ब्रह्मकैवल्यजाबालः श्वेताश्वो हंस आरुणिः ।

गर्भो नारायणो हंसो विन्दुनादशिरः शिखा ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

ॐ शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं भगवन्तं पिप्पलादमपृच्छत् ।
 दिव्ये ब्रह्मपुरे संप्रतिष्ठिता भवन्ति, कथं सृजन्ति, कस्यैष महिमा बभूव यो
 ह्येष महिमा बभूव क एषः । तस्मै स होवाच ब्रह्मविद्यां वरिष्ठाम् । प्राणो ह्येष
 आत्मा, आत्मनो महिमा बभूव । देवानामायुः, स देवानां निधनमनिधनं दिव्ये
 ब्रह्मपुरे विरजं लिङ्गलं शुभ्रमक्षरं यद्ब्रह्म विभाति स नियच्छति, मधुरकराजानं
 माक्षिकवत् । यथा माक्षीकैकेन तन्तुना जालं विक्षिपति तेनापकर्षति तथैवैष
 प्राणो यदा याति संसृष्टमाकूष्य । प्राणदेवतास्ताः सर्वा नाड्यः सुषुप्ते इयेना-
 काशवद्यथा खं इयेनमाश्रित्य याति स्वमालयमेवं सुप्तो ब्रूते । यथैवैष देव-
 दत्तो यद्यापि ताड्यमानो न यत्येवमिष्टापूर्तैः शुभाशुभैर्न लिप्यते । यथा
 कुमारो लिङ्गाम आनन्दमुपयाति तथैवैष देवदत्तः स्वम आनन्दमभियाति ।
 वेद एव परं ज्योतिः । ज्योतिष्कामो ज्योतिरानन्दयते, भूयस्तेनैव स्वमाय
 गच्छति जलौकावत् । यथा जलौकाऽग्रमग्रं नयत्यात्मानं नयति परं संधय ।
 यत्परं नापरं त्यजति स जाग्रदभिधीयते । यथैवैष कपालाष्टकं संनयति,
 तमेव स्तन इव लम्बते वेददेवज्योतिः । यत्र जाग्रति शुभाशुभं निरुक्तमस्य
 देवस्य स संप्रसारोऽन्तर्यामी खगः कर्कटकः पुष्करः पुरुषः प्राणो हिंसा परा-
 परं ब्रह्म, आत्मा देवता वेदयति । य एवं वेद स परं ब्रह्म धाम क्षेत्रज्ञमुपैति ।
 अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति । नाभिर्हृदयं कण्ठं मूर्धेति ।
 तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति । जागरितं स्वप्नं सुप्तं तुरीयमिति । जागरिते
 ब्रह्मा स्वप्ने विष्णुः सुषुप्तौ रुद्रस्तुरीयं परमाक्षरम् । स आदित्यश्च विष्णुश्चेश्वरश्च
 स पुरुषः स प्राणः स जीवः सोऽग्निः सेश्वरश्च जाग्रत्तेषां मध्ये यत्परं ब्रह्म
 विभाति । स्वयममनस्कमश्रोत्रमपाणिपादं ज्योतिर्वर्जितम् । न तत्र लोका
 नलोका वेदा नवेदा देवा नदेवा यज्ञा नयज्ञा माता नमाता पिता नपिता
 सुषा नसुषा चाण्डालो नचाण्डालः पौलकसो नपौलकसः श्रमणो नश्रमणः
 पशवो नपशवस्तापसो नतापस इत्येकमेव परं ब्रह्म विभाति । हृद्याकाशे
 तद्विज्ञानमाकाशं तत्सुषिरमाकाशं तद्वेद्यं हृद्याकाशं यस्मिन्निदं संचरति विच-
 रति यस्मिन्निदं सर्वमोतं प्रोतं सं विभोः प्रजा ज्ञायेरन् । न तत्र देवा ऋषयः

पितर ईशते प्रतिबुद्धः सर्वविदिति । हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः
 प्रतिष्ठिताः । हृदि प्राणश्च ज्योतिश्च त्रिवृत्सूत्रं च यन्महत् । हृदि चैतन्ये
 तिष्ठति । यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं
 प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं
 त्यजेद्बुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् । सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं
 नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः । येन सर्वमिदं प्रोक्तं
 सूत्रे मणिगणा इव । तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान् । बहिःसूत्रं
 त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममास्थितः । ब्रह्मभावमयं सूत्रं धारयेद्यः स चेतनः ।
 धारणात्तस्य सूत्रस्य नोच्छिद्यो नाशुचिर्भवेत् ॥ सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञो-
 पवीतिनाम् । ते वै सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः ॥ ज्ञानशिखिनो
 ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः । ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते ॥
 अग्नेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा । स शिखीत्युच्यते विद्वानितरे
 केशधारिणः ॥ कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः । तैः संधार्थमिदं सूत्रं
 क्रियाङ्गं तद्धि वै स्मृतम् ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् ।
 ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः ॥ इदं यज्ञोपवीतं तु पवित्रं यत्परा-
 वणम् । स विद्वान्यज्ञोपवीती स्यात्स यज्ञः स च यज्ञवित् ॥ एको देवः सर्व-
 भूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी
 चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ एको मनीषी निष्क्रियाणां बहुनामैकं रूपं बहुधा यः
 करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥
 आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येज्जि-
 गूढवत् ॥ तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः क्षोतःस्वरणीषु चाग्निः । एव-
 मात्मात्मनि गूढतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ ऊर्णनाभिर्यथा तन्दू-
 न्सृजते संहरत्यपि । जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः ॥ पद्मकोश-
 प्रतीकाशं सुषिरं चाप्यधोमुखम् । हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ॥
 नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं विनिर्दिशेत् । सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि
 संस्थितम् ॥ यदात्मा प्रज्ञयात्मानं संधत्ते परमात्मनि । तेन संध्या ध्यानमेव
 तस्मात्संध्याभिवन्दनम् । निरोदका ध्यानसंध्या वाक्कायह्येशवर्जिता । संधिनी
 सर्वभूतानां सा संध्या ह्येकदण्डिनाम् ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य
 मनसा सह । आनन्दमेतज्जीवस्य यं ज्ञात्वा मुच्यते बुधः ॥ सर्वव्यापिनमा-
 त्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् । आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् । सर्वा-
 त्मैकस्वरूपेण तद्ब्रह्मोपनिषत्परमिति ॥ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति ब्रह्मोपनिषत्समाप्ता ॥

अमृतनादोपनिषत् ॥ २२ ॥

अमृतनादोपनिषत्प्रतिपाद्यं पराक्षरम् ।

त्रैपदानन्दसाम्राज्यं हृदि मे भातु संततम् ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥ शास्त्राण्यधीत्यं मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः । परमं ब्रह्मविद्याया उल्कावज्जान्यथोत्सृजेत् ॥ १ ॥ ओंकारं रथमारुह्य विष्णुं कृत्वाथ सारथिम् । ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ २ ॥ तावद्भयेन गन्तव्यं यावद्भयपथि स्थितः । स्थित्वा रथपथस्थानं रथमुत्सृज्य गच्छति ॥ ३ ॥ मात्रालिङ्गपदं त्यक्त्वा शब्दव्यञ्जनवर्जितम् । अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं च गच्छति ॥ ४ ॥ शब्दादिविषयाः पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम् । चिन्तयेदात्मनो रश्मीन्प्रत्याहारः स उच्यते ॥ ५ ॥ प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा । तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ ६ ॥ यथा पर्वतघातूनां दहन्ते धमनान्मलाः । तथेन्द्रियकृता दोषा दहन्ते प्राणनिग्रहात् ॥ ७ ॥ प्राणायामैर्दहेदोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् । (प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।) ॥ ८ ॥ किल्बिषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत् ॥ ९ ॥ रुचिरे रेचकं चैव वायोराकर्षणं तथा । प्राणायामास्त्रयः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः ॥ १० ॥ सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ११ ॥ उत्क्षिप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम् । शून्यभावेन युञ्जीयाद्रेचकस्येति लक्षणम् ॥ १२ ॥ नोच्छ्वसेन्नानुच्छ्वसेन्नैव गात्राणि च न चालयेत् । एवं वायुर्ग्रहीतव्यः पूरकस्येति लक्षणम् ॥ १३ ॥ चक्रत्रेणोत्पलनालेन वायुं कृत्वा निराश्रयम् । एवं वायुर्ग्रहीतव्यः कुम्भकस्येति लक्षणम् ॥ १४ ॥ अन्धः तपइय रूपाणि शृणु शब्दमकर्णवत् । काष्ठवत्पइय ते देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम् ॥ १५ ॥ मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान् । धारयित्वा तथात्मानं धारणा परिकीर्तिता ॥ १६ ॥ आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते । यं लब्ध्वाप्यवमन्येत स समाधिः प्रकीर्तिता ॥ १७ ॥ भूमिभागे समे रम्ये सर्वदोषविवर्जिते । कृत्वा मनोमयीं रक्षां जह्वा चैवाथ मण्डले ॥ १८ ॥ पद्मकं स्वस्तिकं वापि भद्रासनमथापि वा । बद्ध्वा योगासनं सम्यगुत्तराभिमुखस्थितः ॥ १९ ॥ नासिकापुटमङ्गुल्या पिधायैकेन मारुतम् । आकृष्य धारयेदग्निं शब्दमेवाभिचिन्तयेत् ॥ २० ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येकेन रेचयेत् । दिव्यमन्त्रेण बहुशः कुर्यादात्ममलच्युतिम् ॥ २१ ॥ पश्चाच्चायेत पूर्वोक्तं क्रमशो मन्त्र निर्दिशेत् । स्थूलातिस्थूलमात्रायां नातिमूर्ध्वमतिक्रमः ॥ २२ ॥ तिर्यगूर्ध्व-

मधो दृष्टिं विनिर्यार्थं महामतिः । स्थिरः स्थायी विनिष्कम्पं तदा योगं सम-
भ्यसेत् ॥ २३ ॥ ताला मात्रा तथा योगो धारणा योजनं तथा । द्वादशसन्त्रो
योगस्तु कालतो नियतः स्मृतः ॥ २४ ॥ अधोषमव्यञ्जनमस्वरं च अकण्ठ-
तालवोष्ठमनासिकं च । अरेफजातमुभयोष्ठवर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदा-
चित् ॥ २५ ॥ येनासौ पश्यते मार्गं प्राणस्तेन हि गच्छति । अतस्समभ्यसे-
क्षित्यं सन्मार्गगमनाय वै ॥ २६ ॥ हृद्द्वारं वायुद्वारं च ऊर्ध्वद्वारमतः परम् ।
मोक्षद्वारं बिलं चैव सुषिरं मण्डलं विदुः ॥ २७ ॥ अयं क्रोधमथालस्यमति-
स्वभातिजागरम् । अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ अनेन
विधिना सम्यङ्गित्यमभ्यसतः क्रमात् । स्वयमुत्पद्यते ज्ञानं त्रिभिर्मासेन संशयः
॥ २९ ॥ चतुर्भिः पश्यते देवान्पञ्चभिस्तुल्यविक्रमः । इच्छयाप्नोति कैवल्यं
षष्ठे मासि न संशयः ॥ ३० ॥ पार्थिवः पञ्चमात्राणि चतुर्मात्राणि वाहणः ।
आग्नेयस्तु त्रिमात्राणि वायव्यस्तु द्विमात्रकः ॥ ३१ ॥ एकमात्रस्तथाकाशो
ह्यर्धमात्रं तु चिन्तयेत् । सिद्धिं कृत्वा तु मनसा चिन्तयेदात्मनारम्भे ॥ ३२ ॥
त्रिंशत्पर्वाङ्गुलः प्राणो यत्र प्राणः प्रतिष्ठितः । एष प्राण इति ख्यातो बाह्य-
प्राणः स गोचरः ॥ ३३ ॥ अशीतिः दृष शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश । लक्ष-
श्रैकोऽपि निःश्वास अहोरात्रप्रमाणतः ॥ ३४ ॥ प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपा-
नस्तु पुनर्गुदे । समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः ॥ ३५ ॥ व्यानः
सर्वेषु चाङ्गेषु सदा व्यावृत्य तिष्ठति । अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनु-
क्रमात् ॥ ३६ ॥ रक्तवर्णमणिप्रख्यः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः । अपानस्तस्य मध्ये
तु इन्द्रगोपसमप्रभः ॥ ३७ ॥ समानस्तस्य मध्ये तु गोक्षीरध्वलप्रभः ।
अपाण्डुर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिःसमप्रभः ॥ ३८ ॥ यस्यैष मण्डलं भित्त्वा
माहूतो याति मूर्धनि । यत्र तत्र त्रियेद्वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयो-
ऽभिजायत इत्युपनिषत् ॥ ३९ ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इत्यमृतनादोपनिषत्समाप्ता ॥

अथर्वशिरउपनिषत् ॥ २३ ॥

अथर्वशिरसामर्थमनर्थप्रोतवाचकम् ।

सर्वाधारमनाधारं स्वमात्रत्रैपदाक्षरम् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायँस्ते रुद्रमपृच्छन्को अवानिति । सोऽब्रवीद-

हमेकः प्रथममासीद्वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त
 इति । सोऽन्तरादन्तरं प्राविशत् दिशो व्यन्तरं प्राविशत् सोऽहं नित्या-
 नित्यो व्यक्ताव्यक्तो ब्रह्माहं ब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यञ्चोऽहं दक्षिणाञ्च उदञ्चोऽहं अध-
 श्चोर्ध्वं चाहं दिशश्च प्रतिदिशश्चाहं पुमानपुमान् स्त्रियश्चाहं गायत्र्यहं सावित्र्यहं
 त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् चाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयोऽहं सत्योऽहं
 गौरहं गौर्यहमृगहं यजुरहं सामाहमथर्वाङ्गिरसोऽहं ज्येष्ठोऽहं श्रेष्ठोऽहं वरिष्ठो-
 ऽहमापोऽहं तेजोऽहं गुह्योऽहमरण्योऽहमक्षरमहं क्षरमहं पुष्करमहं पवित्रम-
 हमग्रं च मध्यं च बहिश्च पुरस्ताज्योतिरित्यहमेव सर्वं व्योममेव स सर्वं
 समा यो मां वेद स देवान्वेद स सर्वाश्च वेदान्साङ्गानपि ब्रह्म ब्राह्मणैश्च
 गां गोभिर्वाह्यागान्ब्राह्मण्येन हविर्हविषा आयुरायुषा सत्येन सत्यं धर्मेण धर्मं
 तर्पयामि स्वेन तेजसा । ततो ह वै ते देवा रुद्रमपृच्छन् ते देवा रुद्रमपश्यन् ।
 ते देवा रुद्रमध्याशंस्ते देवा ऊर्ध्वबाहवो रुद्रं स्तुन्वन्ति ॥ १ ॥ ॐ यो वै
 रुद्रः स भगवान्यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः ॥ १ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्
 यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः ॥ २ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च स्कन्दस्तस्मै
 वै नमो नमः ॥ ३ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः
 ॥ ४ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चाग्निस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ५ ॥ यो वै रुद्रः
 स भगवान्यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ६ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च
 सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ७ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च सोमस्तस्मै वै नमो
 नमः ॥ ८ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्ये चाष्टौ प्रहास्तस्मै वै नमो नमः ॥ ९ ॥
 यो वै रुद्रः स भगवान्ये चाष्टौ प्रतिग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ॥ १० ॥ यो वै
 रुद्रः स भगवान्या च भूस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ११ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या
 च भुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ १२ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या च स्वस्तस्मै
 वै नमो नमः ॥ १३ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च महस्तस्मै वै नमो नमः
 ॥ १४ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या च पृथिवी तस्मै वै नमो नमः ॥ १५ ॥
 यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः ॥ १६ ॥ यो वै रुद्रः
 स भगवान्या च द्यौस्तस्मै वै नमो नमः ॥ १७ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या-
 श्चापस्तस्मै वै नमो नमः ॥ १८ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च तेजस्तस्मै वै नमो
 नमः ॥ १९ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चाकाशं तस्मै वै नमो नमः ॥ २० ॥
 यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः ॥ २१ ॥ यो वै
 रुद्रः स भगवान्यश्च यमस्तस्मै वै नमो नमः ॥ २२ ॥ यो वै रुद्रः स

भगवान्यश्च सृष्टुस्तस्यै वै नमो नमः ॥ २३ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्य-
 न्यच्चासृष्टं तस्यै वै नमो नमः ॥ २४ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च विश्वं
 तस्यै वै नमो नमः ॥ २५ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च स्थूलं तस्यै वै
 नमो नमः ॥ २६ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च सूक्ष्मं तस्यै वै नमो
 नमः ॥ २७ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च शुक्लं तस्यै वै नमो नमः
 ॥ २८ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च कृष्णं तस्यै वै नमो नमः ॥ २९ ॥
 यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च कृत्स्नं तस्यै वै नमो नमः ॥ ३० ॥ यो वै रुद्रः
 स भगवान्यश्च सत्यं तस्यै वै नमो नमः ॥ ३१ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च
 सर्वं तस्यै वै नमो नमः ॥ ३२ ॥ २ ॥ भूस्ते आदिर्मध्यं भुवस्ते स्वस्ते शीर्षं
 विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा बद्धस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं
 दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अ-
 पाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् । किमस्मान्कृणव-
 दरातिः किमु धृतिरमृतं मयं च । सोमसूर्यः पुरस्ताद् सूक्ष्मः पुरुषः । सर्वं
 जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सौम्यं सूक्ष्मं पुरुषं ग्राह्यमग्राह्येण भावं
 भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं वायव्येन असति तस्यै महा-
 प्रासाय वै नमो नमः । हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिताः ।
 हृदि त्वमसि यो नित्यं तिष्ठो मात्राः परस्तु सः । तस्योत्तरतः शिरो
 दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारः य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः
 स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तच्छुक्लं
 यच्छुक्लं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः य
 एकः स रुद्रो यो रुद्रः स ईशानो य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ॥ ३ ॥
 अथ कस्मादुच्यते ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति
 तस्मादुच्यते ओङ्कारः । अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः-
 सामाथर्वाङ्गिरसो ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते
 प्रणवः । अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुच्चार्यमाण एव यथा पल्ल-
 पिण्डमिव शान्तरूपमीतप्रोतमनुप्राप्तो व्यतिसृष्टश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी ।
 अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्छास्यान्तो
 नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः । अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण
 एव गर्भजन्मव्याधिजरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते
 तारम् । अथ कस्मादुच्यते शुक्लं यस्मादुच्चार्यमाण एव कुन्दते क्लामयते
 च तस्मादुच्यते शुक्लम् । अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुच्चार्यमाण

एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम् । अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुच्चार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयते तस्मादुच्यते वैद्युतम् । अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात्परमपरं परायणं च बृहद्ब्रह्म बृहदयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म । अथ कस्मादुच्यते एको यः सर्वान्प्राणान्संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विसृजति च । तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके दक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह संगतिः । साकं स एको भूतश्चरति प्रजानंस्तस्मादुच्यत एकः । अथ कस्मादुच्यते रुद्रः यस्मादपिभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते रुद्रः । अथ कस्मादुच्यते ईशानः यः सर्वान्देवानां शते ईशानीभिर्जननीभिश्च शक्तिभिः । अभि त्वा शूर नोनुमो दुरथा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुष इति तस्मादुच्यत ईशानः । अथ कस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरः यस्माद्वक्ताज्ञानेन भजत्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विसृजति च सर्वान्भावान्परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरः । तदेतद्रुद्रचरितम् ॥ ४ ॥ एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वा ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः । एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्यै य इमाँल्लोकानीशत ईशानीभिः । प्रत्यङ्मनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोसा । यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको येनेदं संचरति विचरति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाच्येमां शान्तिमत्यन्तमेति । क्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या संचितं स्थापयित्वा तु रुद्रे रुद्रमेकस्त्वमाहुः । शाश्वतं वै पुराणमिपमूर्जेन पशवोऽनुनामयन्तं मृत्युपाशान् । तदेतेनात्मजेतेनार्धचतुर्थमात्रेण शान्तिं संसृजति पाशविमोक्षणम् । या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्ब्राह्मं पदम् । या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्द्वैष्णवं पदम् । या सा तृतीया मात्रा ईशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्देशानं पदम् । या साऽर्धचतुर्थी मात्रा सर्वदेवत्याऽव्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत्पद्मनामकं तदेतमुपासीत मुनयोऽवागवदन्ति न तस्य ग्रहणमयं पन्था विहित उत्तरेण येन देवा यान्ति येन पितरो येन ऋषयः परमपरं परायणं चेति । वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम् । तमात्मस्थं ये नु पश्यन्ति घीरास्तेषां शान्तिर्भवति नेतरेषाम् । यस्मिन्क्रोधं या चं तृष्णा क्षमां च तृष्णां हित्वा हेतुजालस्य मूलम् । बुद्ध्या

संचितं स्थापयित्वा तु रुद्रे रुद्रमेकत्वमाहुः । रुद्रो हि शाश्वतेन वै पुराणेनेष-
मूर्जेण तपसा नियन्ता । अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थल-
मिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वैरुह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्मा-
द्भूतमिदं पाशुपतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्ब्रह्म तदेतत्पाशुपतं पशुपाश-
विमोक्षणाय ॥ ५ ॥ योऽग्नौ रुद्रो योऽप्स्वन्तर्यं ओषधीर्वीरुध आविवेश । य
इमा विश्वा भुवनानि चाकूपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये । यो रुद्रोऽग्नौ यो
रुद्र ओषधीर्वीरुध आविवेश । यो रुद्र इमा विश्वा भुवनानि चाकूपे तस्मै
रुद्राय वै नमो नमः । यो रुद्रोऽप्सु यो रुद्र ओषधीषु यो रुद्रो वनस्पतिषु ।
येन रुद्रेण जगदूर्ध्वं धारितं पृथिवी द्विधा त्रिधर्ता धारिता नागा येऽन्तरिक्षे
तस्मै रुद्राय वै नमो नमः । मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वं प्रैरयत्पचमानोऽधि शीर्षतः । तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः
समुद्भिजतः । तत्प्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्नमथो मनः । न च दिवो देवजनेन
गुप्ता नवान्तरिक्षाणि नव भूम इमाः । यस्मिन्निदं सर्वमोतग्रेतं यस्मादच्यन्न
परं किंचनास्ति । न तस्मात्पूर्वं न परं तदस्ति न भूतं नोत अव्यं
यदासीत् । सहस्रपादेकमूर्धा व्यासं स एवेदमावरीवर्ति भूतम् । अक्षरात्सं-
जायते कालः कालाद्यापक उच्यते । व्यापको हि भगवान्रुद्रो भोगायमानो
यदा शेते रुद्रस्तदा संहार्यते प्रजाः । उच्छ्वसिते तमो भवति तमस आपो-
ऽप्स्वङ्गुल्या मथिते मथितं शिशिरे शिशिरं मथ्यमानं केनो भवति, केना-
दण्डं भवत्यण्डाद्ब्रह्मा भवति, ब्रह्मणो वायुः वायोरोंकार ओंकारात्सावित्री
सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोका भवन्ति । अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु
क्षरन्ति यजुवम् । एतद्धि परमं तप आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः
स्वरो नम इति ॥ ६ ॥ य इदमथर्वशिरो ब्राह्मणोऽधीते अश्रोत्रियः श्रोत्रियो
भवति अनुपनीत उपनीतो भवति सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति
स सूर्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स सत्यपूतो भवति स सर्वपूतो
भवति स सर्वदैवैर्ज्ञातो भवति स सर्वदैवैरनुध्यातो भवति स सर्वेषु तीर्थेषु
स्नातो भवति तेन सर्वैः क्रतुभिरिष्टं भवति गायत्र्याः पठिसहस्राणि जप्तानि
भवन्ति इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवा-
नामयुतं जप्तं भवति । आ चक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । आ सप्तमात्युरपयुगान्पु-
नातीत्याह भगवानथर्वशिरः सकृज्जह्वैव शुचिः स पूतः कर्मण्यो भवति ।
द्वितीयं जह्वा गणाधिपत्यमवाप्नोति । तृतीयं जह्वैवमेवानुप्रविशत्यो सत्यमो
सत्यम् ॥ ७ ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदेऽथर्वशिरउपनिषत्समाप्ता ॥

अथर्वशिखोपनिषत् ॥ २४ ॥

ओंकारार्थतया भातं तुर्योकाराग्रभासुरम् ।

तुर्यतुर्यं त्रिपाद्रामं स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ पिप्पलादोऽङ्गिराः सनत्कुमारश्चाथर्वाणं भगवन्तं पप्रच्छ भगवन्किमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तच्चायं को वा ध्याता कश्चिज्येय इति । अथैभ्योऽथर्वा प्रत्युवाच । ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यमोमित्येतदक्षरस्य पादाश्चत्वारो देवाश्चत्वारो वेदाश्चतुष्पादेतदक्षरं परं ब्रह्म । पूर्वाऽस्य मात्रा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः । द्वितीयान्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिर्यजुर्वेदो रुद्रो रुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षिणाग्निः । तृतीया द्यौः स मकारः स सामभिः सामधेदो विष्णुरादित्या जगत्याहवनीयः । यावसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा लुसमकारः सोथर्वणैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुत एकऋषी रुचिरा भास्वती स्वभा । प्रथमा रक्ता ब्राह्मी ब्रह्मदेवत्या द्वितीया शुभा शुक्ला रौद्री रुद्रदेवत्या तृतीया कृष्णा विष्णुमती विष्णुदेवत्या चतुर्थी विद्युन्मती सर्ववर्णा पुरुषदेवत्या । स एष ह्योकारश्चतुष्पादश्चतुःशिराश्चतुर्थ्यर्धमात्रा स्थूलह्रस्वदीर्घेभ्युत इति ॥ ॐ ॐ ॐ इति त्रिरुक्तश्चतुर्थः शान्तात्मा हुतप्रयोगे न सममित्यात्मज्योतिः सकृदावर्तव्य ॐ स एष सर्वान्प्राणान्सकृदुच्चारितमात्रः स एष ह्यूर्ध्वमुत्क्रामयतीत्योकारः ॥ १ ॥

प्रणवः सर्वान्प्राणान्प्रणामयति नामयति चैतस्मात्प्रणवश्चतुर्धाऽवस्थित इति वेददेवयोनिर्धेयाश्चेति संघर्ता सर्वेभ्यो दुःखभयेभ्यः संतारयति तारणात्तानि सर्वाणीति विष्णुः सर्वाञ्जयति ब्रह्माऽवृहत्सर्वकारणानि संप्रतिष्ठाप्य ध्यानाद्विष्णुर्मनसि नादान्ते परमात्मनि स्थाप्य ध्येयमीशानं प्रध्यायन्तीशा वा सर्वमिदं प्रयुक्तम् । ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्राः संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतानि करणं सर्वमैश्वर्यं संपन्नं शिवमाकाशं मध्येध्रुवस्थम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरः शिव एव च । पञ्चधा पञ्चदेवतः प्रणवः परिपठ्यते । तत्राधिकं क्षणमेकमास्थाय ऋतुशतस्यापि फलमवाप्नोति कृत्स्नमोकारगतं च सर्वज्ञानेन योगध्यानानां शिव एको ध्येयः शिवंकरः सर्वमन्यत्परित्यज्यैतामधीत्य द्विजो गर्भवासान्मुच्यते गर्भवासान्मुच्यत इति ॥ २ ॥ इत्योऽसत्यमित्युपनिषत् ॥ ३ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदेऽथर्वशिखोपनिषत्समाप्ता ॥ १ ॥

मैत्रायण्युपनिषत् ॥ २५ ॥

वैराग्योत्थभक्तियुक्तब्रह्ममात्रप्रबोधतः ।

यत्पदं मुनयो यान्ति तन्नैपदमहं महः ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

मैत्रायणी कौषितकी बृहज्जाबालतापनी । कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुवालक्षु-
रिमन्निका । ॐ बृहद्रथो ह वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं निधापयित्वेदम-
शाश्वतं मन्यमानः शारीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम स तत्र परमं तप
आस्थायदित्यमीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुस्तिष्ठत्यन्ते सहस्रस्य मुनिरन्तिकमाजगामा-
ग्निरिवाधूमकस्तेजसा निर्दहन्निवात्मविद्भगवाब्शाकायन्य उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं
वृणीष्वेति राजानमब्रवीत्स तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्नाहमात्मवित्तं तत्त्व-
विच्छृणुमो वयं स त्वं नो ब्रूहीत्येतद्गतं पुरस्तादशक्यं मा पृच्छ प्रश्नमैक्ष्वाका-
न्यान्कामान्वृणीष्वेति शाकायन्यस्य चरणावभिमृश्यमानो राजेमां गाथां
जगाद ॥ १ ॥ भगवन्नस्थिचर्मस्त्रायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्चेष्माश्रुदूषिते वि-
षमूत्रवातपित्तकफसंघाते दुर्गन्धे निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ २ ॥
कामक्रोधलोभभयविषादेर्व्यष्टवियोगानिष्टसंप्रयोगक्षुत्पिपासाजरामृत्युरोगशो-
काग्नैरभिहतेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ ३ ॥ सर्वं चेदं क्षयिष्णु प-
श्यामो यथेमे दंशमशकादयस्तृणवन्नश्यतयोद्भूतप्रध्वंसिनः ॥ ४ ॥ अथ कि-
मेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित्सुद्युम्नभूरियुञ्जेन्द्रद्युम्नकुवल्-
याश्वयौवनाश्ववद्धियाश्व श्वपतिः शशविन्दुर्हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो मनूक्तस्त्रयाति-
र्यदातिरनरण्योक्षसेनोत्थमरुत्तभरतप्रभृतयो राजानो मिपतो बन्धुवर्गस्य
महतीं श्रियं त्यक्त्वास्सालोकादमुं लोकं प्रयान्ति ॥ ५ ॥ अथ किमेतैर्वा
परेऽन्ये गन्धर्वासुरयक्षराक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनां निरोधनं पश्यामः
॥ ६ ॥ अथ किमेतैर्वान्यानां शोषणं महार्णवानां शिखरिणां प्रपतनं ध्रुवस्य
प्रचलनं स्थानं वा तरुणां निमज्जनं पृथिव्याः स्थानादपसरणं सुराणां सो-
ऽहमित्येतद्विधेऽस्मिन्संसारे किं कामोपभोगैर्यैरेवाश्रितस्यासकृदिहावर्तनं
इदं इत्युद्धर्तुमर्हसीत्यन्धोदपानस्थो मेक इवाहमस्मिन्संसारे भगवंस्त्वं नो
गतिस्त्वं नो गतिः ॥ ७ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु प्रथमः प्रपाठकः ॥

अथ भगवान्शकायन्यः सुप्रीतस्त्वग्रवीद्राजानम् । महाराज बृहद्रथेक्ष्वा-
कुवंशध्वज शीघ्रमात्मज्ञः कृतकृत्यस्त्वं मरुन्नामेति विश्रुतोऽसीति ।
अयं वाव खल्वात्मा ते यः कतमो भगवा इति तं होवाचेति ॥ १ ॥
अथ य एष उच्छ्वासाविष्टमभनेनोर्ध्वमुत्क्रान्तो व्ययमानोऽव्ययमानस्तमः
प्रणुदत्येष आत्मेत्याह भगवान्मैत्रिः । इत्येवं ह्याह । अथ य एष
संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिलिप्सद्यत
इत्येष आत्मेति होवाचेतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति ॥ २ ॥ अथ खल्वियं
ब्रह्मविद्या सर्वोपनिषद्विद्या वा राजन्नस्माकं भगवता मैत्रिणाऽऽख्याताऽहं
ते कथयिष्यामीति । अथापहतपाप्मानस्तिग्मतैजसा ऊर्ध्वरेतसो वाल्खिल्या
इति श्रूयन्ते । अथ कर्तुं प्रजापतिमब्रुवन्-भगवन्नाकदमिवाचेतनमिदं शरीरं
कस्यैव खल्वीदृशो महिमाऽतीन्द्रियभूतस्य येनैतद्विधमेतच्चेतनवत्प्रतिष्ठापितं
प्रचोदयिता वाऽस्य यद्भगवन्चेत्सि तदस्माकं ब्रूहीति तान्होवाचेति ॥ ३ ॥
यो ह खलु वावोपरिस्थः श्रूयते गुणेष्विबोर्ध्वरेतसः स वा एष शुद्धः पूतः
ज्ञान्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तोऽक्षय्यः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः ।
स्वे महिम्नि तिष्ठत्यजेनेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैपोऽप्य-
स्येति । ते होचुर्भगवन्कथमनेनेदृशो नानिष्ठेनैतद्विधमिदं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं
प्रचोदयिता वैपोऽस्य कथमिति तान्होवाच ॥ ४ ॥ स वा एष सूक्ष्मोऽ-
प्राहोऽदृश्यः पुरुषसंज्ञोऽबुद्धिपूर्वमिहैवावर्ततेऽज्ञेनेति सुसंख्येवाबुद्धिपूर्वं
विवोध एवमिति । अथ यो ह खलु वावैतस्य सोऽज्ञोऽयं यश्चेतामात्रः
प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वाख्यश्चेतने-
नेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैपोऽप्यस्येति । ते होचुर्भगव-
न्यद्यनेनेदृशो नानिष्ठेनैतद्विधमिदं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैपोऽस्य
कथमिति तान्होवाचेति ॥ ५ ॥ प्रजापतिर्वा एकोऽग्रेऽतिष्ठत्स नारमतैकः
सोऽमानमभिध्यात्वा बह्वीः प्रजा असृजत ता अश्मेवाप्रबुद्धा अप्राणाः
स्थाणुरिव तिष्ठमाना अपश्यत् स नारमत सोऽमन्यतैतासां प्रतिबोधनाया-
भ्यन्तरं विविशामि । स वायुरिवात्मानं कृत्वाऽभ्यन्तरं प्राविशत् ।
स एको नाशकस्स पञ्चधात्मानं विभज्योच्यते यः प्राणोऽपानः समान
उदानो व्यान इति । अथायं य ऊर्ध्वमुत्क्रामत्येष वाव स प्राणोऽथ योऽय-
मवाङ् संक्रामत्येष वाव सोऽपानोऽथ येन वैताऽनुगृहीतेत्येष वाव स

व्यानोऽथ योऽयं स्थविष्ठो धातुरन्नस्यापाने प्रापयत्यणिष्ठो चाऽङ्गेऽङ्गे
समानयत्येष वाव स समानसंज्ञा उत्तरं व्यानस्य रूपं चेतैषामन्तरा
प्रसूतिरेवोदानस्याथ योऽयं पीताक्षितमुद्गिरति निगिरतीति वैष वाव स
उदानः । अथोपांशुरन्तर्याममभिवत्यन्तर्याम उपांशुं चैतयोर्न्तरा
देवौष्ण्यं प्रासुवद्यदौष्ण्यं स पुरुषोऽथ यः पुरुषः सोऽभिर्वैश्वानरः ।
अन्यत्राप्युक्तमयमभिर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते
तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्नभवति
नैनं घोषं शृणोति स वा एष पञ्चधाऽऽत्मानं विभज्य निहितो गुहायाम् ।
मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मेति । स वा
एषोऽस्मद्दन्तरादकृतार्थोऽमन्यतार्थानश्नानीति । अतः खानीमानि भिन्नो-
दितः पञ्चमी रश्मिभिर्विपयान्तीति बुद्धीन्द्रियाणि यानीमान्येतान्यस्य
रश्मयः कर्मेन्द्रियाण्यस्य हया रथः शरीरं मनो नियन्ता प्रकृतिमयोऽस्य
प्रतोदोऽनेन खल्वीरितः परिभ्रमतीदं शरीरं चक्रमिव सृत्पचेनेदं शरीरं
चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽप्यस्येति ॥ ६ ॥ स वा एष आत्मे-
होशन्ति कवयः सितासितैः कर्मफलैरनभिभूत इव प्रतिशरीरेषु चरति
अव्यक्तत्वात्सौक्ष्म्याददृश्यत्वादग्राह्यत्वाज्जिर्ममत्वाच्चानवस्थोऽसति कर्ताऽकर्तै-
वावस्थः स वा एष शुद्धः स्थिरोऽचलश्चालेऽप्योऽजग्नो निस्पृहः प्रेक्षकवदव-
स्थितः स्वस्थश्च । ऋतुभिरगुणमयेन पटेनात्मानं संस्तर्ध्यावस्थिता इत्यव-
स्थिता इति ॥ ७ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

ते होचुर्भगवन्त्यद्येवमस्याऽऽत्मनो महिमानं सूचयसीत्यन्यो वा परः ।
कोऽयमात्माख्यो योऽयं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः सदसद्यो-
निमापद्यता इत्यवाङ्मयोर्ध्वा वा गतिर्द्वंद्वैरभिभूयमानः परिभ्रमति ॥ १ ॥
अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्माख्यो योऽयं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः
सदसद्योनिमापद्यता इत्यवाङ्मयोर्ध्वा वा गतिर्द्वंद्वैरभिभूयमानः परिभ्रमतीत्य-
स्योपव्याख्यानम् । पञ्चतन्मात्रा भूतशब्देनोच्यन्तेऽथ पञ्चमहाभूतानि भूत-
शब्देनोच्यन्ते । अथ तेषां यत्समुदयं तच्छरीरमित्युक्तमथ यो ह खलु वाव
शरीर इत्युक्तं स भूतात्मेत्युक्तम् । अथासृतोऽस्यात्मा बिन्दुरिव पुष्करा
इति स वा एषोऽभिभूतः प्राकृतैर्गुणैरिति । अथोऽभिभूतत्वात्संमूढत्वं प्रयातः

संमूढत्वात् । आत्मस्थं प्रभुं भगवन्तं कारयितारं नापश्यद्गुणोवैरह्यमानः
 कलुषीकृतश्चास्थिरश्चञ्चलो लुप्यमानः सस्पृहो व्यग्रश्चाभिमामित्वं प्रयाता इत्यहं
 सो ममेदमित्येवं मन्यमानो निबध्नात्यात्मनात्मानम् । जालेनेव खचरः
 कृतस्थानु फलैरभिभूयमानः सदसद्योनिमापद्यता इत्यवाञ्चयोर्ध्वा वा गति-
 र्द्धैरभिभूयमानः परिभ्रमति कतम एष इति तान्होवाचेति ॥ २ ॥ अथा-
 न्यत्राप्युक्तं—यः कर्ता सोऽयं वै भूतात्मा करणैः कारयिताऽन्तःपुरुषः । अथ
 यथाऽग्निनाऽयस्त्रिपण्डोऽन्यो वाऽभिभूतः कर्तृभिर्हन्यमानो नानात्वमुपैत्येवं
 वाव खल्वसौ भूतात्माऽन्तःपुरुषेणाभिभूतो गुणैर्हन्यमानो नानात्वमुपैति ।
 चतुर्जालं चतुर्दशविधं चतुरशीतिधा परिणतं भूतगणमेतद्वै नानात्वस्य
 रूपम् । तानि ह वा एतानि गुणानि पुरुषेणेरितानि चक्रमिव मृत्पचेनेति ।
 अथ यथाऽयस्त्रिपण्डे हन्यमाने नाग्निरभिभूयत्येवं नाभिभूयत्यसौ पुरुषोऽभि-
 भूयत्ययं भूतात्मापसंश्लिष्टत्वादिति ॥ ३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—शरीरमिदं
 मैथुनादेवोद्धतं संवृद्धयुपेतं निरयेऽथ मूत्रद्वारेण निष्कान्तमस्थिभिश्चितं
 मांसेनानुलिसं चर्मणाऽवनद्धं विण्मूत्रपित्तकफमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्चाऽऽमयै-
 र्बहुभिः परिपूर्णं कोश इव वसुना ॥ ४ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं संमोहो अयं
 त्रिषादो निद्रा तन्द्री प्रमादो जरा शोकः क्षुत्पिपासा कार्पण्यं क्रोधो
 नास्तिक्यमज्ञानं मात्सर्यं नैष्कारुण्यं मूढत्वं विद्वीडत्वं निराकृतित्वमुद्धतत्व-
 मसमत्वमिति तामसानि । अन्तस्तृष्णा स्नेहो रागो लोभो हिंसा रतिर्दंष्टि-
 र्वावृत्तत्वमीर्ष्याऽकाममस्थिरत्वं चलत्वं व्यग्रत्वं जिगीषार्थोपार्जनं मित्रा-
 नुग्रहणं परिग्रहावलम्बोऽनिष्टेष्टिविन्द्रियार्थेषु द्विष्टिरिष्टेष्ट्वभिष्वङ्गः शुक्तस्वरोऽज्ञ-
 तमस्त्विति राजसान्येतैः परिपूर्णं एतैरभिभूता इत्ययं भूतात्मा तस्याज्ञाना-
 रूपाण्यामोतीत्यामोतीति ॥ ५ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

ते ह खलु बावोर्ध्वरेतसोऽतिविस्मिता अभिसमेल्योच्चर्भगवन्नमस्तेऽस्त्वनु-
 शाधि त्वमस्माकं गतिरन्या न विद्यता इति । अस्य को विधिर्भूतात्मनो
 येनेदं हित्वात्मन्येव सायुज्यमुपैति तान्होवाचेति ॥ १ ॥ अथान्यत्रा-
 प्युक्तं—महानदीपूर्मग्र इवानिवर्तकमस्य यत्पुराकृतं समुद्रवेलेव दुर्निवार्यमस्य
 मृत्योरागमनं सदसस्फलमयैः पाशैः पङ्कुरिव बद्धं बन्धनस्थस्येवास्वातन्त्र्यं
 यमविषयस्थस्येव बहुभयावस्थं मदिरोन्मत्त इव मोहमदिरोन्मत्तं पाप्मना

गृहीत इव आत्म्यमाणं महोरगदष्ट इव विषयदष्टं महान्धकारमिव रागान्धम्,
 इन्द्रजालमिव मायामयं स्वप्न इव मिथ्यादर्शनं कदलीगर्भं इवासारं नष्ट इव
 क्षणवेषं चित्रभित्तिरिव मिथ्यामनोरममित्यथोक्तम् । शब्दस्पर्शादयो ह्यर्था
 मर्त्येऽनर्था इवाऽऽस्थिताः । येषां सक्तस्तु भूतात्मा न खरेत्परमं पदम् ॥ २ ॥
 अयं वाव खल्वस्य प्रतिविधिर्भूतात्मनो यद्वेदविद्याधिगमः । स्वधर्मस्यानुचरणं
 स्वाश्रमेऽप्येवानुक्रमणं स्वधर्मस्य वा एतद्गतं स्तम्भशाखेवापराण्यनेनोर्ध्व-
 भागभवत्यन्यथाऽवाङ्मित्येष स्वधर्मोऽभिहितो यो वेदेषु न स्वधर्मातिक्रमे-
 णाश्रमी भवति । आश्रमेऽप्येवानवस्थस्तपस्वी वेत्युच्यत इत्येतदयुक्तं नात-
 परकस्याऽऽत्मज्ञानेऽधिगमः कर्मसिद्धिर्वेति । एवं ह्याह—तपसा प्राप्यते सत्त्वं
 संस्वात्संप्राप्यते मनः । मनसः प्राप्यते ह्यात्मा यमात्वा न निवर्तत इति
 ॥ ३ ॥ अस्ति ब्रह्मेति ब्रह्मविद्याविदब्रवीद्ब्रह्मद्वारमिदमित्येवैतदाह यस्तप-
 साऽपहतपाप्मा ॐ ब्रह्मणो महिमैत्येवैतदाह यः सुयुक्तोऽजस्रं चिन्तयति
 तस्माद्विद्यया तपसा चिन्तया चोपलभ्यते ब्रह्म । स ब्रह्मणः पर एता भव-
 त्प्रधिदैवत्वं देवेभ्यश्चेत्यक्षय्यमपरिमितमनामयं सुखमश्नुते य एवं विद्वाननेक
 त्रिकेण ब्रह्मोपास्ते । अथ यैः परिपूर्णोऽभिभूतोऽयं रथितश्च तैर्वैव मुक्तस्त्वा-
 त्मन्नेव सायुज्यमुपैति ॥ ४ ॥ ते होचुर्भगवन्नभिवाद्यसीत्प्रभिवाद्यसीति ।
 निहितमस्माभिरितद्यथावदुक्तं मनसीत्यथोत्तरं प्रश्नमनुब्रूहीति । अभिर्वायुरा-
 दित्यः कालो यः प्राणोऽज्ञं ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्येकेऽन्यमभिधायन्त्येकेऽन्यं
 श्रेयः कतमो यः सोऽस्माकं ब्रूहीति तान्होवाचेति ॥ ५ ॥ ब्रह्मणो वावैता
 अग्न्यास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य तस्यैव लोके प्रतिमोदतीह यो यस्यानुपक्त
 इत्येवं ह्याह । ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम् । या वास्या अग्न्यास्तनवस्ता अभि-
 ध्यायेदर्चयेच्चिद्बुध्याच्चातस्ताभिः सहैवोपर्युपरि लोकेषु चरत्यथ कृत्स्नक्षय
 एकत्वमेति पुरुषस्य पुरुषस्य ॥ ६ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

अथ यथेयं कौत्सायनी स्तुतिः—त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वं
 प्रजापतिः । त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः ॥ त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं
 पृथिवी त्वं विश्वं स्वमथाच्युतः । स्वार्थं स्वाभाविकेऽर्थे च बहुधा संस्थिति-
 स्त्वयि ॥ विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् । विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं
 विश्वक्रीडारतिप्रभुः ॥ नमः शान्तात्मने तुभ्यं नमो गुह्यतमाय च । अवि-

न्यायाप्रमेयाय अनादिनिधनाय चेति ॥ १ ॥ तमो वा इदमग्र आसीदेकं तत्परे स्यात्तत्परेणेति विषमत्वं प्रयात्येतद्रूपं वै रजस्तद्रजः खल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै सत्त्वस्य रूपं तत्सत्त्वमेवेरितं रसः संप्राप्तवत्, सोंऽशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वेत्यस्य प्रागुक्ता एजास्तनवः । अथ यो ह खलु वावास्य तामसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं रुद्रोऽथ यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं ब्रह्माऽथ यो ह खलु वावास्य सारिकोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं विष्णुः स वा एष एकस्त्रिधा भूतोऽष्टैकादशधा द्वादशधाऽपरिमितधा वोद्भूत उद्भूतत्वाद्भूतं भूतेषु चरति प्रविष्टः स भूतानामधिपतिर्बभूवेत्यसावात्माऽन्तर्बहिश्चान्तर्बहिश्च ॥ २ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत् पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

द्विधा वा एष आत्मानं विभर्त्ययं यः प्राणो यश्चासावादित्यः । अथ द्वौ वा एता अस्य पन्थाना अन्तर्बहिश्चाहोरात्रेणैतौ व्यावर्तेते । असौ वा आदित्यो बहिरात्माऽन्तरात्मा प्राणोऽतो बहिरात्मक्या गत्याऽन्तरात्मनोऽनुमीयते गतिरित्येवं ब्रूह । अथ यः कश्चिद्विद्वानपहतपात्माऽक्षाध्यक्षोऽवदातमनास्त्रिष्ट आवृत्तचक्षुः सो अन्तरात्मक्या गत्या बहिरात्मनोऽनुमीयते गतिरित्येवं ब्रूह । अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो यः पश्यतीमां हिरण्यवस्थात्स एषोऽन्तरे हृत्पुष्कर एवाऽऽश्रितोऽन्नमन्ति ॥ १ ॥ अथ य एषोऽन्तरे हृत्पुष्कर एवाश्रितोऽन्नमन्ति स एषोऽग्निर्दिवि श्रितः सौरः कालाख्योऽद्वयः सर्वभूतान्यन्नमन्तीति । कः पुष्करः किंमयो वेति । ईदं वाच तत्पुष्करं योऽयमाकाशोऽस्येमाश्चतस्रो दिशश्चतस्र उपदिशो दलसंस्था आसम् । अर्वाग्विचरत एतौ प्राणादित्या एता उपासीतोमिषेतदक्षरेण व्याहृतिभिः सावित्र्या चेति ॥ २ ॥ द्वे वाच ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं चाथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म तज्योतिर्यज्योतिः स आदित्यः स वा एष ओमित्येतदात्माऽभवत्स त्रेधात्मानं व्यकुरुतोमिति तिस्रो मात्रा एताभिः सर्वमिदमोतं प्रोतं चैवासीत्येवं ब्रूहैतद्वा आदित्य ओमित्येवं ध्यायताऽऽत्मानं युञ्जीतेति ॥ ३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तम्—अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणवा इत्येवं ब्रूहोद्गीथं प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं विगतनिद्रं विजरं

विद्युत्पुं त्रिपदं त्र्यक्षरं पुनः पञ्चधा ज्ञेयं निहितं गुहायामित्येवं ब्रूह ।
ऊर्ध्वमूलं त्रिपाद्ब्रह्म शाखा आकाशवाय्वऋत्युदकभूत्यादय एकोऽश्वत्थनामै-
तद्ब्रह्मेतस्यैतत्तेजो यदसावादित्यः । ओमित्येतदक्षरस्य चैतत् । तस्मादो-
मित्यनेनैतदुपासीताजस्रमिति । एकोऽस्य संबोधयत्येवं ब्रूह । एतदेवाक्षरं
पुण्यमेतदेवाक्षरं परम् । एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्
॥ ४ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—स्वनवत्येषाऽस्य तनूर्योमिति स्त्रीपुंनपुंसकेति
लिङ्गवत्येषाऽथाभिर्वायुरादित्य इति भास्वत्येषाऽथ ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्यधि-
पतिवत्येषाऽथ गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीय इति मुखवत्येषाऽथ ऋग्यजुः
सामेति विज्ञानवत्येषा भूर्भुवः स्वरिति लोकवत्येषाऽथ भूतं भव्यं
भविष्यदिति कालवत्येषाऽथ प्राणोऽग्निः सूर्य इति प्रतापवत्येषाऽथान्नमाप-
श्चन्द्रमा इत्याप्यायनवत्येषाऽथ बुद्धिर्मनोऽहंकार इति चेतनवत्येषाऽथ
प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येषेत्यत ओमित्युक्तेनैताः प्रस्तुता अर्चिता
अर्पिता भवन्तीत्येवं ब्रूहैतद्वै सत्यकामं परं चापरं च ब्रह्म यदोमित्येत-
दक्षरमिति ॥ ५ ॥ अथाव्याहृतं वा इदमासीत्स सत्यं प्रजापतिस्तपस्तप्त्वाऽ-
नुव्याहारज्भूर्भुवः स्वरित्येषैवास्य प्रजापतेः स्थविष्ठा तनूर्या लोकवतीति
स्वरित्यस्याः शिरो नाभिर्भुवो भूः पादा आदित्यश्चक्षुः । चक्षुरायत्ता हि
पुरुषस्य महती मात्रा चक्षुषा ह्ययं मात्राश्चरति सत्यं वै चक्षुरक्षिण्यवस्थितो
हि पुरुषः सर्वोऽर्थेषु चरति । एतस्माज्भूर्भुवः स्वरित्युपासीतानेन हि
प्रजापतिर्विश्वात्मा विश्वचक्षुरिचोपासितो भवतीत्येवं ब्रूह । एषा वै
प्रजापतेर्विश्वभृत्तनूरेतस्यामिदं सर्वमन्तर्हितमस्मिन् सर्वस्मिन्नेषाऽन्तर्हितेति
तस्मादेषोपासीत ॥ ६ ॥ तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौ वा आदित्यः सविता स
वा एवं प्रवरणीय आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथ भर्गो देवस्य धीमहीति
सविता वै देवस्ततो योऽस्य भर्गाख्यस्तं चिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथ-
धियो यो नः प्रचोदयादिति बुद्धयो वै धियस्ता योऽस्माकं प्रचोदयादित्याहु-
र्ब्रह्मवादिनः । अथ भर्ग इति यो ह वा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि
वैष भर्गाख्यः । भाभिर्गतिरस्य हीति भर्गः । भर्जयतीति वैष भर्ग इति
रुद्रो ब्रह्मवादिनः । अथ भ इति भासयतीमाँल्लोकांश्च इति रञ्जयतीमानि
भूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्यादिमाः प्रजास्तस्मान्नरगत्वान्नर्गः ।
काश्चत्सूयमानात्सूर्यः सवनात्सविताऽऽदानादादित्यः पवनात्पावनोऽथाऽऽपोऽ-

प्रायनादित्येवं ह्याह । खत्वात्मनोऽऽत्मा नेताऽमृताख्यश्चेता मन्ता गन्तो-
 र्त्नष्टाऽऽनन्दयिता कर्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशति च
 विशुर्विग्रहे संनिविष्ट इत्येवं ह्याह । अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्र हि
 ऋणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति
 यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यकारणकर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किं
 तदवाच्यम् ॥ ७ ॥ एष हि खत्वात्मेज्ञानः शंभुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृ-
 ग्विहरण्यगर्भः सत्यं प्राणैर्हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता
 विधाता सञ्जाडिन्द्र इन्दुरिति । य एष तपस्यग्निरिवाग्निना पिहितः
 सहस्राक्षेण हिरण्ययेनगण्डेन । एष वाव जिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः सर्वभूते-
 भ्योऽभ्यर्च्य दत्त्वाऽऽर्च्यं गत्वाऽथ बहिः कृत्वेन्द्रियार्थान्स्वाच्छरीरादुपलभेतै-
 नमिति । विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्र-
 रश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥ तस्माद्वा
 एष उभयात्मैवंविदात्मन्नेवाभिध्यायत्यात्मन्नेव यजतीति ध्यानं प्रयोगस्थं
 मनो विद्वद्भिः द्रुतं मनःश्रुतिमुच्छिष्टोपहतमित्यनेन तत्पावयेत् । मन्त्रं
 पठति—उच्छिष्टोच्छिष्टोपहतं यच्च पापेन दत्तं मृतसूतकाद्वा वसोः पवित्र-
 मग्निः सधितुश्च रश्मयः पुनन्वक्तं मम दुष्कृतं च यदन्यत् । अग्निः पुरस्ता-
 त्परिदधाति । प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा समानाय
 स्वाहोदानाय स्वाहेति पञ्चभिरभिजुहोति । अथावशिष्टं यत्तवागभात्यतोऽ-
 द्भिर्भूय एवोपरिष्ठात्परिदधात्यावान्तो भूत्वाऽऽस्मेज्यालः प्राणोऽग्निर्विश्वोऽ-
 सीति च द्वाभ्यामात्मानमभिध्यायेत् । प्राणोऽग्निः परमात्मा वै पञ्चवायुः
 समाश्रितः । स प्रीतः प्रीणातु विश्वं विश्वभुक् । विश्वोऽसि वैश्वानरोऽसि
 विश्वं त्वया धार्यते जायमानम् । विश्वान्तु त्वामाहुतयश्च सर्वाः प्रजस्तत्र
 यत्र विश्वामृतोऽसीति । एवं न विधिना खल्वनेनात्ताऽक्षत्वं पुनरुपैति ॥ ९ ॥
 अथापरं वेदितव्यमुत्तरो विकारोऽस्यात्मयज्ञस्य यथाऽश्नमन्नादश्चेत्यस्योपव्या-
 ख्यानम् । पुरुषश्चेता प्रधानान्तःस्थः स एव भोक्ता प्राकृतमन्नं भुङ्क्ते इति ।
 तस्यायं भूतात्मा ह्यन्नमस्य कर्ता प्रधानः । तस्माद्भिगुणं भोज्यं भोक्ता पुरु-
 षोऽन्तःस्थः । अत्र दृष्टं नाम प्रत्ययम् । यस्माद्वीजसंभवा हि पशवस्तस्माद्वीजं
 भोज्यमनेनैव प्रधानस्य भोज्यत्वं व्याख्यातम् । तस्माद्भोक्ता पुरुषो भोज्या
 प्रकृतिस्तस्थो भुङ्क्ते इति । प्राकृतमन्नं त्रिगुणमेदपरिणामत्वान्महदाद्यं

विशेषान्तं लिङ्गम् । अनेनैव चतुर्दशविधस्य मार्गस्य व्याख्या कृता भवति । सुखदुःखमोहसंज्ञं ह्यन्नभूतमिदं जगत् । न हि बीजस्य स्वादुपरिग्रहोऽस्तीति यावन्न प्रसूतिः । तस्याप्येवं तिसृष्ववस्थास्त्रयत्वं भवति कौमारं यौवनं जरा परिणामत्वात्तदन्नत्वम् । एवं प्रधानस्य व्यक्ततां गतस्योपलब्धिर्भवति तन्न बुद्ध्यादीनि स्वादुनि भवन्ति । अध्यवसायसंकल्पाभिमाना इत्यथेन्द्रियार्थान्पञ्च स्वादुनि भवन्ति । एवं सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माण्येवं व्यक्तमन्नमव्यक्तमन्नमस्य निर्गुणो भोक्ता भोक्तृत्वाच्चैतन्यं प्रसिद्धं तस्य । यथाऽग्निर्वै देवानामन्नादः सोमोऽन्नमग्निनैवान्नमित्येवंविद् । सोमसंज्ञोऽयं भूतात्माऽग्निसंज्ञोऽप्यव्यक्तमुखा इति । वचनात्पुरुषो ह्यव्यक्तमुखेन त्रिगुणं भुङ्क्ता इति । यो हैवं वेद संन्यासी योगी चाऽऽत्मयाजी चेति । अथ यद्वन्न कश्चिच्छून्यागारे कामिन्यः प्रविष्टाः स्पृशतीन्द्रियार्थास्तद्ब्रूयो न स्पृशति प्रविष्टान्संन्यासी योगी चात्मयाजी चेति ॥ १० ॥ परं वा एतदात्मनो रूपं यदन्नमन्नमयो ह्ययं प्राणः । अथ न यद्यश्नात्यमन्ताऽश्रोताऽस्पृष्टाऽद्रष्टाऽवक्ताऽव्राताऽरसयिता भवति प्राणांश्चोत्सृजतीत्येवं ह्याह । अथ यदि खल्वश्नाति प्राणसमृद्धो भूत्वा मन्ता भवति श्रोता भवति स्पृष्टा भवति वक्ता भवति रसयिता भवति व्राता भवति द्रष्टा भवतीति । एवं ह्याह—अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते याः काश्चित्पृथिवीश्रिताः । अतोऽन्नेनैव जीवन्त्यथैतदपिन्यन्ततः ॥ ११ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यहरहः प्रपतन्त्यन्नमभिजिघृक्षमाणानि सूर्यो रश्मिभिराददात्यन्नं तेनासौ तपत्यन्नेनाभिषिक्ताः पचन्तीमे प्राणा अभिर्वा अन्नेनाभिज्वलत्यन्नकामेनेदं प्रकल्पितं ब्रह्मणा । अतोऽन्नमात्मेत्युपासीतेत्येवं ह्याह । अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽस्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥ १२ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं विश्वभृद्वै नामैषा तनूर्भगवतो विष्णोर्यदिदमन्नम् । प्राणो वा अन्नस्य रसो मनः प्राणस्य विज्ञानं मनस आनन्दं विज्ञानस्येतन्नवान्प्राणवान्मनस्वान्विज्ञानवानानन्दवांश्च भवति यो हैवं वेद । यावन्तीह वै भूतान्यन्नमदन्ति तावत्स्वन्तःस्थोऽन्नमस्ति यो हैवं वेद । अन्नमेव विजरन्नमन्नं संवननं स्मृतम् । अन्नं पशूनां प्राणोऽन्नं ज्येष्ठमन्नं भिषक्स्मृतम् ॥ १३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तमन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः कालश्चान्नस्य सूर्यो योनिः कालस्य । तस्यैतद्रूपं यन्निमेषादिकालात्संभृतं द्वादशात्मकं वत्सरमेतस्यामेयमर्धमर्धं

बाह्यम् । मघाद्यं अविद्याधर्माद्येयं क्रमेणोत्क्रमेण सापार्थं अविद्याधर्मान्तं
सौम्यम् । तत्रैकैकमात्मनो नवांशकं सचारकविधं सौक्ष्म्यत्वादेतत्प्रमाणमने-
नैव प्रमीयते हि कालः । न विना प्रमाणेन प्रमेयस्योपलब्धिः । प्रमेयोऽपि
प्रमाणतः पृथक्त्वादुपैत्यात्मसंबोधनार्थमित्येवं ब्रूह । यावत्सो वै कालस्य
कलास्तावतीषु चरत्यसौ यः कालं ब्रह्मेत्युपासीत कालस्तस्यातिदूरमपसरतीत्येवं
ब्रूह—कालास्त्रवन्ति भूतानि कालादृद्धिं प्रयान्ति च । काले चास्त्वं नियच्छन्ति
कालो मूर्तिरमूर्तिमान् ॥ १४ ॥ द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्चाथ यः
प्रागादित्यात्सोऽकालोऽकलोऽथ य आदित्याद्यः स कालः सकलः सकलस्य
वा एतद्रूपं यत्संवत्सरः संवत्सरास्त्रह्वेमाः प्रजाः प्रजायन्ते संवत्सरेणेह वै
जाता विवर्धन्ते संवत्सरे प्रत्यस्त्वं यन्ति तस्मात्संवत्सरो वै प्रजापतिः
कालोऽन्नं ब्रह्मनीडमात्मा चेत्येवं ब्रूह । कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव
महात्मनि । यस्मिंस्तु पच्यते कालो यस्त्वं वेद-स वेदवित् ॥ १५ ॥ विग्रह-
वानेष कालः सिन्धुराजः प्रजानाम् । एष तस्थः सविताऽग्नौ यस्मादेवेमे
चन्द्रर्क्षग्रहसंवत्सरादयः स्रूयन्तेऽधैभ्यः सर्वमिदमत्र वा यत्किंचिच्छुभाशुभं
दृश्येतेह लोके तदेतेभ्यस्तस्मादादित्यात्मा ब्रह्माथ कालसंज्ञमादित्यमुपासी-
तादित्यो ब्रह्मेत्येकेऽथेवं ब्रूह । होता भोक्ता हविर्मन्त्रो यज्ञो विष्णुः प्रजा-
पतिः । सर्वः कश्चिप्रभुः साक्षी योऽमुष्मिन्भाति मण्डले ॥ १६ ॥ ब्रह्म ह
वा इदमग्र आसीदेकोऽनन्तः प्रागनन्तो दक्षिणतोऽनन्तः प्रतीच्यनन्त उदी-
च्यनन्त ऊर्ध्वं चावाह च सर्वतोऽनन्तः । न हस्य प्राच्यादिदिशः कल्पन्तेऽथ
तिर्यग्वाऽवाह वोर्ध्वं वाऽनूह एष परमात्माऽपरिमितोऽजः । अतर्क्योऽचिन्त्य
एष आकाशात्मा एवैष कृत्स्नश्च एको जागर्ति । इत्येतस्मादाकाशादेव
स्त्वहं चेतामात्रं बोधयत्यनेनैव चेदं ध्यायतेऽस्मिंश्च प्रत्यस्त्वं याति ।
अस्यैतज्जास्वरं रूपं यदमुष्मिन्नादित्ये तपत्यग्नौ चाधूमके यज्योतिश्चित्र-
तरमुदरस्थोऽथ वा यः पचत्यन्नमित्येवं ब्रूह । यश्चैषोऽग्नौ यश्चायं
इदमे यश्चासावादित्ये स एष एका इत्येकस्य हैकत्वमेति य एवं वेद
॥ १७ ॥ तथा तत्प्रयोगकल्पः प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणा
तर्कः समाधिः षडङ्ग इत्युच्यते योगः । अनेन यदा पश्यन्पश्यति
रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योतिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विहाय
परेऽच्यये सर्वमेकी करोत्येवं ब्रूह । यथा पर्वतमादीप्तं नाशयन्ति

शुगद्विजाः । तद्वद्ब्रह्मविदो दोषा नाश्रयन्ति कदाचन ॥ १८ ॥
 अथान्यत्राप्युक्तं—यदा वै बहिर्विद्वान्मनो नियम्येन्द्रियाथाश्च प्राणो
 निवेशयित्वा निःसंकल्पस्ततस्तिष्ठेत् । अप्राणादिह यस्यात्संभूतः प्राणसंज्ञको
 जीवस्तस्मात्प्राणो वै तुर्याख्ये धारयेत्प्राणमित्येवं ह्याह । अचित्तं चित्तप्रत्य-
 ख्यमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् । तत्र चित्तं निधायेत तच्च लिङ्गं निराश्रयम्
 ॥ १९ ॥ अथान्यत्राप्युक्तम्—अतः पराऽस्य धारणा तालुरसनाग्रनिपीडना-
 द्वाख्यानः प्राणनिरोधनाद्ब्रह्म तर्केण पश्यति यदात्मनात्मानमणोरणीयांसं
 व्योत्तमानं मनःक्षयात्पश्यति तदात्मनात्मानं दृष्ट्वा निरात्मा भवति निरात्मक-
 त्वादसंख्योऽयोनिश्रित्यो मोक्षलक्षणमित्येतत्परं रहस्यमित्येवं ह्याह ।
 चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम् । प्रसङ्गात्मात्मनि स्थित्वा
 सुखमव्ययमश्नुता इति ॥ २० ॥ अथान्यत्राप्युक्तम्—ऊर्ध्वगा नाडी सुपुञ्जाख्यः
 प्राणसंचारिणी तात्त्वन्तर्विच्छिन्ना तथा प्राणोकारमनोयुक्तयोर्ध्वयुक्तमेव ।
 तात्त्वध्यग्रं परिवर्त्य चेन्द्रियाण्यसंयोज्य महिमा महिमानं निरीक्षेत ततो
 निरात्मकत्वमेति निरात्मकत्वाच्च सुखदुःखभागभवति केवलत्वं लभतः
 इत्येवं ह्याह । परः पूर्वं प्रतिष्ठाप्य निगृहीतानिष्ठं ततः । तीर्त्वा पारमपारेण
 यश्चाद्युजीत मूर्धति ॥ २१ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—द्वे वाक् ब्रह्मणी अग्निष्येदे
 ब्रह्मशब्दश्चाथ शब्देनैवाशब्दमाविष्कियतेऽथ तन्नोमिति शब्दोऽनेनोर्ध्व-
 मुत्क्रान्तोऽशब्दे निधनमेत्यथा हैषा गतिरेतदमृतमेतत्सायुज्यत्वं निर्वृतत्वं
 तथा चेति । अथ यथोर्णनाभिस्तन्तुनोर्ध्वमुत्क्रान्तोऽवकाशं लभतीत्येवं
 वाव खल्वसावभिध्यातोमित्यनेनोर्ध्वमुत्क्रान्तः स्वातन्त्र्यं लभते ।
 अन्यथा परे शब्दवादिनः । श्रवणाङ्गुष्ठयोगेनान्तर्हृदयाकाशशब्दमाकर्णयन्ति
 सप्तविधेयं तस्योपमा । यथा नद्यः किङ्किणी कांस्यचक्रकमेकविःकृन्धिका
 वृष्टिर्निवाते वदतीति तं पृथग्लक्षणमतीत्य परेऽशब्देऽन्यक्ते ब्रह्मण्यखं
 गतास्तत्र तेऽपृथग्धर्मिणोऽपृथग्विवेक्या यथा संपन्ना मधुत्वं नाना रसा
 इत्येवं ह्याह । द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि
 निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २२ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—यः शब्दस्तदोमित्ये-
 तदक्षरं यदस्याग्रं तच्छान्तमशब्दमभयमशोकमानन्दं त्वंसं स्थिरमचलममृ-
 तमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरत्वाय तदेता उपासीतेत्येवं ह्याह ।
 योऽसौ परापरो देवा ओंकारो नाम नामतः । निःशब्दः शून्यभूतस्तु मूर्ध्नि

स्थाने ततोऽभ्यसेत् ॥ २३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—धनुः शरीरमोमित्येतच्छरः
 शिखाऽस्य मनस्तमोलक्षणं भित्त्वा तमोऽतमाविष्टमागच्छत्यथाविष्टं भित्त्वा-
 ऽलातचक्रमिव स्फुरन्तमादित्यवर्णमूर्जस्त्रन्तं ब्रह्म तमसः पर्यमपश्यत् ।
 यदमुष्मिन्नादित्येऽथ सोमेऽग्नौ विद्युति विभात्यथ खल्वेनं दृष्ट्वाऽमृतत्वं
 गच्छतीत्येवं ह्याह । ध्यानमन्तः परे तत्त्वे लक्ष्येषु च निधीयते । अतोऽवि-
 शेषविज्ञानं विशेषमुपगच्छति ॥ मानसे च विलीने तु यत्सुखं चात्म-
 साक्षिकम् । तद्ब्रह्म चामृतं शुक्रं सा गतिलोक एव सः ॥ २४ ॥ अथान्यत्रा-
 प्युक्तं—निद्रेवान्तर्हितेन्द्रियः शुद्धितमया धिया स्वम इव यः पश्यतीन्द्रिय-
 विलेऽविवशः प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं विगतनिद्रं विजरं विमृश्युं विशोकं
 च सोऽपि प्रणवाख्यः प्रणेता भारूपो विगतनिद्रो विजरो विमृश्युर्विशोको
 अवतीत्येवं ह्याह । एवं प्राणमथोक्कारं यस्मात्सर्वमनेकधा । युनक्ति युञ्जते
 वाऽपि तस्माद्योग इति स्मृतः ॥ एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च ।
 सर्वंभावपरित्यागो योग इत्यभिधीयते ॥ २५ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—
 यथा वाऽऽसुचारिणः शाकुनिकः सूत्रयन्नेणोद्धृत्योदरेऽग्नौ जुहोत्येवं वाव
 खल्विमान्प्राणानोमित्यनेनोद्धृत्यानामयेऽग्नौ जुहोत्यतस्तसोर्वीव सः । अथ
 यथा तसोर्विसर्पिस्तृणकाष्ठसंस्पर्शेनोज्ज्वलतीत्येवं वाव खल्वसावप्राणाख्यः
 प्राणसंस्पर्शेनोज्ज्वलति । अथ यदुज्ज्वलत्येतद्ब्रह्मणो रूपं चैतद्विष्णोः परमं
 पदं चैतद्ब्रह्मस्य रुद्रत्वमेतत्तदपरिमितधा चात्मानं विभज्य पूरयतीमाँल्लो-
 कानित्येवं ह्याह । वहेत्स यद्वत्खलु विस्फुलिङ्गाः सूर्यान्मयूखाश्च तथैव तस्य ।
 प्राणादयो वै पुनरेव तस्मादभ्युच्चरन्तीह यथाक्रमेण ॥ २६ ॥ अथान्यत्रा-
 प्युक्तं—ब्रह्मणो वावैतत्तेजः परस्यामृतस्य । अशरीरस्यौष्ण्यमस्यैतद्भूतम् ।
 अथाऽऽविः सन्नभसि निहितं वैतदेकाग्रैवमन्तर्हृदयाकाशं विनुदन्ति यत्तस्य
 ज्योतिरिव संपद्यतीत्यतस्तन्नावमचिरेणैति भूमावयस्पिण्डं निहितं यथाऽ-
 चिरेणैति भूमित्वम् । मृद्वत्संस्थमयस्पिण्डं यथाऽऽययस्कारादयो नाभि-
 भवन्ति । प्रणश्यति चित्तं तथाऽऽश्रयेण सहैवमित्येवं ह्याह । ह्याकाशमयं
 क्रीशमानन्दं परमालयम् । स्वं योगश्च ततोऽस्माकं तेजश्चैवामिसूर्ययोः
 ॥ २७ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं भूतेन्द्रियार्थानतिक्रम्य ततः प्रव्रज्याज्यं धृतिदण्डं
 धनुर्गृहीत्वाऽनभिमानमयेन चैवेपुणा तं ब्रह्मद्वारपारं निहत्याऽऽद्यं
 संमोहमौली तृष्णेर्ष्याकुण्डली तन्द्रीराघवेज्यभिमानाध्वक्षः क्रोधज्यं

प्रलोभदण्डं धनुर्गृहीत्वैच्छामयेन चैवेषुणेमानी खलु भूताति हन्ति तं
 हत्वोङ्कारप्लवेनान्तर्हृदयाकाशस्य पारं तीर्त्वाऽऽविर्भूतेऽन्तराकाशे शनकै-
 रवटैवावटकुट्टातुकामः संविशत्येवं ब्रह्मशालां विशेषतश्चनुर्जालं ब्रह्मकोशं
 प्रणुदेद्वर्गागमेनेत्यतः शुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तोऽक्षयः
 स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः स्वे महिम्नि तिष्ठत्यतः स्वे महिम्नि तिष्ठमानं
 दृष्ट्वाऽऽवृत्तचक्रमिव संसारचक्रमालोकयतीत्येवं ब्रह्माह । षड्भिर्मासैस्तु
 युक्तस्य नित्यमुक्तस्य देहिनः । अनन्तः परमो गुह्यः सम्यग्योगः प्रवर्तते ।
 रजस्तमोभ्यां विद्धस्य सुसमिद्धस्य देहिनः । पुत्रदारकुटुम्बेषु सक्तस्य न
 कदाचन ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वाऽन्तर्हृदयः शाकायन्यस्तस्यै नमस्कृत्वाऽनया
 ब्रह्मविद्यया राजन्ब्रह्मगः पन्थानमारूढाः पुत्राः प्रजापतेरिति संतोषं द्वंद्व-
 तितिक्षां शान्तत्वं योगाभ्यासादवामोतीत्येतद्ब्रह्मतमं नापुत्राय नाक्षिण्याय
 नाशान्ताय कीर्तयेदित्यनन्यभक्ताय सर्वगुणसंपन्नाय दधात् ॥ २९ ॥
 ॐ शुचौ देशे शुचिः सत्त्वस्थः सदधीयानः सद्वादी सच्चायी सद्याजी
 स्यादित्यतः सद्ब्रह्मणि सत्यभिलाषिणि निर्वृत्तोऽन्यत्सफलच्छिन्नपाशो निराशः
 परेष्वामवद्विगतभयो निष्कामोऽक्षयमपरिमितं सुखमाक्रम्य तिष्ठति । परमं
 वै शेषधेरिव परस्योद्धरणं यज्ञिकामत्वम् । स हि सर्वकाममयः पुरुषोऽ-
 ध्यवसायसंकल्पाभिमानलिङ्गो बद्धोऽतस्तद्विपरीतो मुक्तः । अत्रैक आहुः—
 गुणः प्रकृतिभेदवशादध्यवसायात्मबन्धमुपागतोऽध्यवसायस्य दोषक्षयाद्वि-
 मोक्षः । मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति कामः संकल्पो विचिकित्सा
 श्रद्धाऽश्रद्धा घृतिरघृतिर्हीर्षीर्मीरित्येतत्सर्वं मन एव । गुणौघैरुद्यमानः कलुषी-
 कृतश्चास्थिरश्चञ्चलो लुप्यमानः सरूपहो व्यग्रश्चाभिमानित्वं प्रयात इत्यहं सो
 मसेदमित्येवं मन्यमानो निषध्नात्यात्मनात्मानं जालेनैव खचरोऽतः पुरु-
 षोऽध्यवसायसंकल्पाभिमानलिङ्गो बद्धोऽतस्तद्विपरीतो मुक्तः । तस्मान्निरध्य-
 वसायो निःसंकल्पो निरभिमानस्तिष्ठेदेतन्मोक्षलक्षणमेवाऽत्र ब्रह्मपदव्येपोऽत्र
 द्वारविचरोऽनेनास्य तमसः पारं गमिष्यति । अत्र हि सर्वे कामाः समाहिता
 इत्यत्रोदाहरन्ति । यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न
 विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ एतदुक्त्वाऽन्तर्हृदयः शाकायन्यस्तस्यै नम-
 स्कृत्वा यथावदुपचारी कृतकृत्यो मरुदुत्तरायणं गतो न ह्यत्रोद्वर्त्मना गतिरे-
 षोऽत्र ब्रह्मपथः सौरं द्वारं भित्त्वोर्ध्वेन विनिर्गता इत्यत्रोदाहरन्ति । अनन्ता

रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि । सितासिताः कटुनीलाः कपिला मृदुलो-
हिताः ॥ ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य
तेन यान्ति परां गतिम् ॥ यदस्यान्यद्भस्मिन्नातमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् । तेन
देवनिकायानां स्वधामानि प्रपद्यते ॥ ये नैकरूपाश्चाधस्ताद्भस्मयोऽस्य मृदु-
प्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैः संसरति सोऽवशः ॥ तस्मात्सर्गस्वर्गापवर्ग-
हेतुर्भगवानसावादित्य इति ॥ ३० ॥ किमात्मकानि वा एतानीन्निद्रयाणि
प्रचरन्त्युद्गन्ता चैतेषामिह को नियन्ता वेत्याह प्रत्याहात्मात्मकानीत्यात्मा
ह्येषामुद्गन्ता नियन्ता वाऽत्सरसो भानवीयाश्च भरीचयो नामाथ पञ्चमी
रश्मिभिर्विषयानन्ति । कतम आत्मेति । योऽर्थ शुद्धः पतः शून्यः शान्तादि-
लक्षणोक्तः स्वकैलिङ्गैरुपगृह्यः । तस्यैतल्लिङ्गमलिङ्गस्याग्नेर्यदौष्ण्यमाविष्टं चापरां
यः शिवतमो रस इत्येकेऽथ वाक्श्रोत्रं चक्षुर्मनः प्राण इत्येकेऽथ बुद्धिर्धृतिः
स्मृतिः प्रज्ञानमित्येके । अथ ते वा एतस्यैवं यथैवेह बीजस्याङ्कुरा वाऽथ
धूमार्चिर्विष्फुलिङ्गा इवाग्नेश्चेत्यत्रोदाहरन्ति । वह्नेश्च यद्वस्त्रलु विष्फुलिङ्गाः
सूर्यान्मयूखाश्च तथैव तस्य । प्राणादयो वै पुनरेव तस्मादभ्युच्चरन्तीह यथा-
क्रमेण ॥ ३१ ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मनि सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे वेदाः
सर्वे देवाः सर्वाणि च भूतान्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति । अथ
यथाऽऽग्नेर्वाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा निश्चरन्त्येवं वा एतस्य महतो भूतस्य
निश्चितमेतद्यद्देवो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्यो-
पनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि विश्वा
भूतानि ॥ ३२ ॥ पञ्चेष्टको वा एषोऽग्निः संवत्सरस्तस्येमा इष्टका यो वसन्तो
ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धेमन्तः स शिरःपक्षसीपृष्ठपुच्छवानेषोऽग्निः पुरुषविदः सैवं
प्रजापतेः प्रथमा चितिः । करैर्यजमानमन्तरिक्षमुत्क्षिप्त्वा वायवे प्रायच्छत् ।
प्राणौ वै वायुः प्राणोऽग्निस्तस्येमा इष्टका यः प्राणो व्यानोऽपानः समान-
उदानः स शिरःपक्षसीपृष्ठपुच्छवानेषोऽग्निः पुरुषविदस्तदिदमन्तरिक्षं प्रजाप-
तेर्द्वितीया चितिः करैर्यजमानं दिवमुत्क्षिप्त्वेन्द्राय प्रायच्छदसौ वा आदित्य
इन्द्रः सैषोऽग्निस्तस्येमा इष्टका यदग्न्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसा इतिहासः पुराणं
स शिरःपक्षसीपुच्छपृष्ठवानेषोऽग्निः पुरुषविदः सैषा द्यौः प्रजापतेस्तृतीया
चितिः करैर्यजमानस्यात्मविदेऽवदानं करोत्यथात्मविदुत्क्षिप्य ब्रह्मणे
प्रायच्छत्तत्राऽऽनन्दी मोदी भवति ॥ ३३ ॥ पृथिवी गार्हपत्योऽन्तरिक्षं दक्षि-

णामिद्यौराहवनीयस्तत एव पवमानपावकशुचय आविष्कृतमेतेनास्य यज्ञम् ।
यतः पवमानपावकशुचिसंघातो हि जाठरस्तस्मादग्निर्यष्टव्यश्चेतव्यः स्तोतव्योऽ-
भिध्यातव्यः । यजमानो हविर्गृहीत्वा देवताभिधानमिच्छति । हिरण्यवर्णः
शकुनो हृद्यादित्ये प्रतिष्ठितः । मद्गृहंसस्तेजोवृषः सोऽस्मिन्नग्नौ यजामहे ॥
इति चापि मन्त्रार्थं विचिनोति । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोऽस्योभिध्येयं यो
बुध्यन्तःस्थो ध्यायीह मनःशान्तिपदमनुसरत्यात्मन्येव धत्तेऽग्रेमे श्लोका
भवन्ति । यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनानुपशाम्यते । तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं
स्वयोनानुपशाम्यते ॥ स्वयोनानुपशान्तस्य मनसः सत्यकामतः । इन्द्रियार्थ-
विमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः ॥ चित्तमेव हि संसारं तःप्रयत्नेन शोधयेत् ।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति
कर्म शुभाशुभम् । प्रसन्नात्मनाऽसनि स्थित्वा सुखमव्ययमश्नुते ॥ समासक्तं
यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत
बन्धनात् ॥ मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसं-
पर्काच्छुद्धं कामविवर्जितम् ॥ लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ तावन्मनो निरोद्ध्वं हृदि
यावद्गतक्षयम् । एतज्ज्ञानं च मोक्षं च शेषान्ये ग्रन्थविस्ताराः ॥ समाधि-
निर्धौतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यःसुखं भवेत् । न शक्यते
वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ अगमापोऽग्निरग्नौ वा
व्योम्नि व्योम न लक्षयेत् । एवमन्तर्गतं यस्य मनः स परिमुच्यते ॥ मन
एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासङ्गि मोक्षे
निर्विषयं स्मृतमिति ॥ अतोऽनग्निहोष्यनग्निचिदज्ञानमभिध्यायिनां ब्रह्मणः
पदव्योमानुसरणं विरुद्धं तस्मादग्निर्यष्टव्यश्चेतव्यः स्तोतव्योऽभिध्यातव्यः
॥ ३४ ॥ नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकस्मृते लोकमसौ यजमानाय धेहि
नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकमसौ यजमानाय धेहि नम
आदित्याय दिविक्षिते लोकमसौ यजमानाय धेहि नमो ब्रह्मणे
सर्वक्षिते सर्वस्मृते सर्वमसौ यजमानाय धेहि । हिरण्यमेन पात्रेण संत्यस्या-
पिहितं मुखम् । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यवर्माय विष्णवे । योऽसावादित्ये
पुरुषः सोऽसावहमिति ॥ एष ह वै सत्यधर्मो यदादित्यस्यादित्यत्वं
तच्छुक्लं पुरुषमलिङ्गं नभसोऽन्तर्गतस्य तेजसोऽशमात्रमेतद्यदादित्यस्य मध्य

इवेत्यक्षिण्यभौ चैतद्ब्रह्मतदमृतमेतद्भर्गः । एतत्सत्यधर्मो नभसोऽन्तर्गतस्य
तेजसोऽशमात्रमेतत् । यदादित्यस्य मध्येऽमृतं यस्य हि सोमः प्राणा
वाऽप्ययङ्कुरा एतद्ब्रह्मतदमृतमेतद्भर्गः । एतत्सत्यधर्मो नभसोऽन्तर्गतस्य
तेजसोऽशमात्रमेतद्यदादित्यस्य मध्ये यजुर्दीप्यति । ओमापो ज्योती
रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् । अष्टपादं शुचिं हंसं त्रिसूत्रमणुमव्ययम् ।
द्विधर्मोऽन्धं तेजसेऽन्धं सर्वं पश्यन्पश्यति ॥ नभसोऽन्तर्गतस्य तेजसोऽशमात्र-
मेतद्यदादित्यस्य मध्ये उदित्वा मयूखे भवत एतत्सर्वित्सत्यधर्म एतद्यजुरेतत्तप
एतदग्निरेतद्वायुरेतत्प्राण एतदाप एतच्चन्द्रमा एतच्छुक्रमेतदमृतम् । एतद्ब्रह्म-
विषयमेतद्ज्ञानुरर्णवस्तस्मिन्नेव यजमानाः सैन्धव इव ग्लीयन्त एषा वै
ब्रह्मकृताऽत्र हि सर्वे कामाः समाहिता इत्यत्रोदाहरन्ति । अंशुधारय
इवाणुवातेरितः संस्फुरत्यसावन्तर्गः सुराणाम् । यो हैवंवित्स सवित्स
द्वैतवित्सैकधामेतः स्यात्तदात्मकश्च । ये विन्दव इवाभ्युच्चरन्त्यजसं विद्युदि-
वाभ्राविषः परमे ज्योमन् । तेऽर्चिषो वै यशस आश्रयवशाज्जटाभिरूपा
इव कृष्णवर्त्मनः ॥ ३५ ॥ द्वे वाव खल्वेते ब्रह्मज्योतिषो रूपके शान्तमेकं
समृद्धं चैकमथ यच्छान्तं तस्याऽऽवारं खमय यत्समृद्धमिदं तस्यान्नं
तस्यान्मन्त्रौषधाज्यामिषपुरोडाशस्थालीपाकादिभिर्गृह्यमन्तर्वेद्याम् । आस्त्य-
वशिष्टैरन्नपानैश्चाऽऽस्यमाहवनीयमिति मत्वा तेजसः समृद्धौ पुण्यलो-
कविजित्यर्थायामृतत्वाय च । अत्रोदाहरन्ति—अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामो
यमराज्यमग्निष्टोमेनाभियजति सोमराज्यमुक्थेन सूर्यराज्यं षोडश्विना
स्वाराज्यमतिरात्रेण प्रजापत्यमासहस्रसंवत्सरान्तक्रतुनेति । वर्त्याधारस्नेह-
योगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः । अन्तर्याण्डोपयोगादिमौ स्थितावात्मशुची
तथा ॥ ३६ ॥ तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीतापरिमितं तेजस्त्रेधाऽभि-
हितमन्नाद्यादित्ये प्राणे । अथैषा नाड्यन्नबहुमित्येपाऽभौ हुतमादित्यं
गमयत्यतो यो रसोऽन्नवत्स उद्गीथं वर्षति तेनेमे प्राणाः प्राणेभ्यः प्रजा
इत्यत्रोदाहरन्ति यद्विरभौ हूयते तदादित्यं गमयति तत्सूर्यो रश्मि-
भिर्वर्षति तेनान्नं भवत्यन्नाद्भूतानामुत्पत्तिरित्येवं ब्रूयात् । अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः
सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ३७ ॥
अग्निहोत्रं जुह्वानो लोभजालं भिनश्यतः संमोहं छित्त्वा न क्रोधान्स्तुब्धानः
काममभिधायमानस्ततश्चतुर्जालं ब्रह्मकोशं भिन्दवतः परमाकाशमत्र हि

सौरसौम्याभेयसात्त्विकानि मण्डलानि भित्त्वा ततः शुद्धः सत्त्वान्तरस्थमच-
लममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम सत्यकामसर्वज्ञत्वसंयुक्तं
स्वतन्त्रं चैतन्यं स्वे महिम्नि तिष्ठमानं पश्यत्यत्रोदाहरन्ति । रविमध्ये स्थितः
सोमः सोममध्ये हुताशनः । तेजोमध्ये स्थितं सर्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥
शरीरप्रादेशाङ्गुष्ठमात्रमणोरप्यङ्गं ध्यात्वाऽतः परमतां गच्छत्यत्र हि सर्वे
कामाः समाहिता इत्यत्रोदाहरन्ति । अङ्गुष्ठप्रादेशशरीरमात्रं प्रदीपप्रतापवद्-
द्विस्त्रिधा हि । तद्ब्रह्माभिष्टूयमानं महो देवो भुवनान्याविवेश । ॐ नमो
ब्रह्मणे नमः ॥ ३८ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

अग्निर्गायत्रं त्रिवृद्रथन्तरं वसन्तः प्राणो नक्षत्राणि वसवः पुरस्तादुद्यन्ति
तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति । अचिन्त्योऽमूर्तो
गभीरो गुप्तोऽनवद्यो घनो गहनो निर्गुणः शुद्धो भास्वरो गुणभुग्भयोऽ-
निर्वृत्तिर्गौश्वरः सर्वज्ञो मेघोऽप्रमेयोऽनाद्यन्तः श्रीमानजो धीमाननिर्देश्यः
सर्वसृक्सर्वस्याऽऽत्मा सर्वभुक् सर्वस्थेशानः सर्वस्यान्तरान्तरः ॥ १ ॥
इन्द्रस्त्रिष्टुप्पञ्चदशो बृहद्दीप्सो ज्ञानः सोमो रुद्रा दक्षिणत उद्यन्ति तपन्ति
वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्त्यनाद्यन्तोऽपरिमितोऽरिच्छिन्नोऽ-
परप्रयोज्यः स्वतन्त्रोऽलिङ्गोऽमूर्तोऽनन्तशक्तिर्धाता भास्करः ॥ २ ॥ मरुतो
जगती सप्तदशो वैरूपं वर्षा अपानः शुक्र आदित्याः पश्चादुद्यन्ति तपन्ति
वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति तच्छान्तमशब्दमभयमशोक-
मानन्दं तृप्तं स्थिररुचलममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम ॥ ३ ॥
विश्वे देवा अनुष्टुबेकविंशो वैराजः शरत्समानो वरुणः साध्या उत्तरत
उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्त्यन्तः शुद्धः पूतः
शून्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तः ॥ ४ ॥ मित्रावरुणौ पद्भिक्षिणवत्र-
याक्षिशौ शाक्ररैवते हेमन्तशिशिरा उदानोऽङ्गिरसश्चन्द्रमा ऊर्ध्वा उद्यन्ति
तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति प्रणवाख्यं प्रणेतारं
भारूपं विगतनिद्रं विजरं विमृत्युं विशोकम् ॥ ५ ॥ शनिराहुकेतुरगरक्षोय-
क्षनरविहगशरमेभादयोऽधस्तादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्वि-
शन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति यः प्राज्ञो विधरणः सर्वान्तरोऽक्षरः शुद्धः पूतो
भान्तः क्षान्तः शान्तः ॥ ६ ॥ एष हि खत्वात्माऽन्तर्हृदयेऽणीयानिद्धोऽग्नि-

रिव विश्वरूपोऽस्यैवाज्ञमिदं सर्वमस्मिन्नोता इमाः प्रजाः । एष आत्माऽपहत-
 पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविचिकित्सोऽविपाशः सत्यसंकल्पः सत्यकाम
 एष परमेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एष हि
 खल्व्वात्मेष्टानः शंभुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्विरण्यगर्भः सत्यं प्राणी हंसः
 शास्ताऽच्युतो विष्णुर्नारायणः । यश्चैषोऽग्नौ यश्चायं हृदये यश्चासावादित्ये स
 एष एकः । तस्मै ते विश्वरूपाय सत्ये नमसि हिताय नमः ॥ ७ ॥
 अथेदानीं ज्ञानोपसर्गा राजन्मोहजालस्यैष वै येनिर्यदस्वर्गैः सह
 स्वर्गस्यैष वाङ्मे पुरस्तादुक्तेऽप्यधःस्तम्बेनाश्लिष्यन्त्यथ ये चान्ये ह
 नित्यप्रसुदिता नित्यप्रवसिता नित्ययाचका नित्यं शिखोपजीविनोऽथ
 ये चान्ये ह पुरयाचका अयाज्ययाजकाः शूद्रशिष्यः शूद्राश्च शास्त्रविद्वी-
 सोऽथ ये चान्ये ह चाटजटनटभटप्रव्रजितरङ्गावतारिणो राजकर्मणि
 पतितादयः । अथ ये चान्ये ह यक्षराक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनामर्थं
 पुरस्कृत्य शमयाम इत्येवं ब्रुवाणा अथ ये चान्ये ह वृथा कपाय-
 कुण्डलिनः कापालिनोऽथ ये चान्ये ह वृथातर्कद्वष्टान्तकुहकेन्द्रजालैर्वैदिकेषु
 परिख्यातुमिच्छन्ति तैः सह न संवसेत्प्रकाशभूता वै ते तस्करा अस्वर्गा
 इत्येवं ब्रूह । नैरात्म्यवादकुहकैर्मिथ्याद्वष्टान्तहेतुभिः । आत्म्यलोको न
 जानाति वेदविद्यान्तरं तु यत् ॥ ८ ॥ बृहस्पतिर्वै शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयाय-
 तुरेभ्यः क्षयायेमामविद्यामसृजत्तया शिवमशिवमित्युद्दिशन्त्यशिवं शिवमिति ।
 वेदादिशास्त्रहिंसकधर्माभिधानमस्त्विति वदन्त्यतो नैनामभिधीयेतान्यथैषा
 वन्द्येवैषा रतिमात्रं फलमस्या वृत्तव्युतस्येव नारंभणीयेत्येवं ब्रूह । दूरमेते
 विपरीते विपूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीप्सितं नचिकेतसं
 मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्ते ॥ विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो-
 भयं सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ अविद्यायामन्तरे
 वेष्ट्यमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढा
 अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ९ ॥ देवासुरा ह वै य आत्मकामा ब्रह्म-
 णोऽन्तिकं प्रयातास्तस्यै नमस्कृत्योर्चुर्भगवन्वयमारमकामाः स त्वं नो ब्रूही-
 त्यतश्चिरं ध्यात्वाऽमन्यतान्यतात्मानो वै तेऽसुरा अतोऽन्यतममेतेषामुक्तं
 तदिमे मूढा उपजीवन्त्यभिष्वङ्गिणस्तर्षाभिघातिनोऽनृताभिर्शंसिनः सत्यमि-
 चानृतं पश्यन्ति । इन्द्रजालवदित्यतो यद्वेदेऽवमिहितं तत्सत्यं यद्वेदेषूक्तं तद्वि-

द्वांस उपजीवन्ति । तस्माद्ब्राह्मणो नवैदिकमधीयीतायमर्थः स्यादिति ॥ १० ॥
 एतद्वाच तत्स्वरूपं नभसः खेऽन्तर्भूतस्य यत्परं तेजस्तन्नेधाऽभिहितमन्ना
 आदित्ये प्राण एतद्वाच तत्स्वरूपं नभसः खेऽन्तर्भूतस्य यदोमित्येतदक्षरम् ।
 अनेनैव तदुद्बुध्यत्युदयत्युच्चसित्यजस्रं ब्रह्मधीयालग्नं वात्रैव । एतत्समीरणे
 प्रकाशप्रक्षेपकौण्यस्थानीयमेतद्धूमस्येव समीरणे नभसि प्रशाखयैवोत्क्रम्य
 स्कन्धात्स्कन्धमनुसरति । अप्सु प्रक्षेपको लवणस्येव घृतस्य चौण्यमिव ।
 अभिध्यातुर्विस्तृतिरिवैतदित्यत्रोदाहरन्ति । अथ कस्मादुच्यते वैद्युतः । यस्मा-
 दुच्चारितमात्र एव सर्वं शरीरं विद्योतयति तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीतापरि-
 मितं तेजः । पुरुषश्चाक्षुषो योऽयं दक्षिणेऽक्षिण्यवस्थितः । इन्द्रोऽयमस्य
 जायेयं सव्ये चाक्षिण्यवस्थिता । समागमस्तयोरेव हृदयान्तर्गते सुषौ ।
 तेजस्तल्लोहितस्यात्र पिण्ड एवोभयोस्तयोः ॥ हृदयादायता तावच्चाक्षुष्य-
 स्मिन्प्रतिष्ठिता । सारणी सा तयोर्नाडी द्वयोरेका द्विधा सती ॥ मनः
 कायामिमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति
 स्वरम् ॥ खजाम्रियोगाद्बुद्धिं संप्रयुक्तमणोर्ह्यणुर्द्विरणुः कण्ठदेशे । जिह्वाग्रदेशे
 त्र्यणुकं च विद्धि विनिर्गतं मातृकमेवमाहुः ॥ न पश्यन्त्यु पश्यति न रोगं
 नोत दुःखताम् । सर्वं हि पश्यन्पश्यति सर्वमामोति सर्वशः । चाक्षुषः
 स्वमचारी च सुसः सुसात्परश्च यः । मेदाश्चैतेऽस्य चत्वारस्तेभ्यस्तुर्थं
 महत्तरम् ॥ त्रिष्वेकपाच्चरेद्ब्रह्म त्रिपाच्चरति चोत्तरे । सत्यानृतोपभोगार्थो
 द्वैतीभावो महात्मन इति द्वैतीभावो महात्मन इति ॥ ११ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्समाप्ता ॥ २५ ॥

कौपीतकिब्राह्मणोपनिषत् ॥ २६ ॥

श्रीमत्कौपीतकीविद्यावेद्यप्रज्ञापराक्षरम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तब्रह्ममात्रं विचिन्तये ॥

ॐ वाचो मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविराविर्भ-
 योऽभूर्वेदसामत्सानीर्कतं मा मा हिंसीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संवसाम्यम
 ब्रूया नम ब्रूया नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो नमो वोऽस्तु देवेभ्यः
 शिवा नः शंतमा भव सुमृलीका सरस्वती मा ते व्योम संदशि । अदब्धं
 मन इषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हिंसीः ॥ १ ॥

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यद्व्यमाण आरुणिं वने स ह पुत्रं श्वेतकेतुं
 प्रजिघास याजयेति तं हासीनं पप्रच्छ गौतमस्य पुत्रास्ति संवृतं लोके
 यस्मिन्मा धास्यस्यन्यमुताहो वाधा तस्य मा लोके धास्यसीति । स
 होवाच नाहमेतद्वेद हन्ताचार्यं पृच्छानीति । स ह पितरमासाद्य पप्रच्छेतीति
 माऽप्राक्षीत्कथं प्रतिब्रवाणीति । स होवाचाहमप्येतन्न वेद सदस्येव वयं
 स्वाध्यायमधीत्य हरामहे यन्नः परे ददस्येह्यभौ गमिष्याव इति । स ह
 समित्पाणिश्चित्रं गार्ग्यायणिं प्रतिचक्रम उपायानीति । तं होवाच ब्रह्मार्घोऽसि
 गौतम यो न ज्ञानमुपागा एहि ज्येव त्वा जपयिष्यामीति ॥ १ ॥ स
 होवाच ये वै के चास्याल्लोकास्त्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति ।
 तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष आप्यायते तानपरपक्षे न प्रजनयति । एतद्वै स्वर्गस्य
 लोकस्य द्वारं यश्चन्द्रमास्तं यः प्रत्याह तमत्तिसृजतेऽथ य एनं न प्रत्याह
 तस्मिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति स इह कीटो वा पतङ्गो वा शकुनिर्वा शार्ङ्गलो
 वा सिंहो वा मत्स्यो वा परश्वा वा पुरुषो वाऽन्यो वृतेषु स्थानेषु प्रत्याजायते
 यथाकर्म यथाविद्यम् । तमागतं पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयाद्विचक्षणा-
 दतवो रेत आश्रुतं पञ्चदशाम्रसूतात्पिष्यवतस्तन्मा पुंसि कर्तयैरयध्वम् ।
 पुंसा कर्त्रा मातरिमा निषिक्त स जाय उपजायमानो द्वादशत्रयोदश उपमासो
 द्वादशत्रयोदशेव पित्रासं तद्विदे प्रतितद्विदेऽहं तन्म ऋतवो अमर्त्यव
 आभरध्वम् । तेन सस्येन तेन तपसा ऋतुरस्ययार्तवोऽसि कोऽसि त्वम-
 स्मीति तमत्तिसृजते ॥ २ ॥ स एतं देवयानं पन्थानमापद्याभिलोकमागच्छति
 स वायुलोकं स आदित्यलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं
 स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्य आरो हवो मुहूर्तां येष्टिहा
 विजरा नदीत्यो वृक्षः सालज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वार-
 गोपौ । विभुप्रमितं विचक्षणाऽऽसन्धमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रति-
 रूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यावयतौ वै च जगान्यम्बाश्चाम्बावयवीश्चाप्सरसः ।
 अम्बया नद्यस्तमित्यंविद्वागच्छति तं ब्रह्माहाभिभावत मम यशसा विजरां
 वा अयं नदीं प्रापन्न वा अयं जरयिष्यतीति ॥ ३ ॥ तं पञ्च शतान्यप्सरसां
 प्रतियन्ति शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फलहस्ताः शतमाञ्जनहस्ताः
 शतं मातृहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणालंकुर्वन्ति स ब्रह्मालंकारेणालंकृतो ब्रह्म
 विद्वान्ब्रह्माभिप्रैति स आगच्छत्यारं हृदं तं मनसाऽत्येति । तस्मिन्वा

संप्रतिविदो मज्जन्ति स आगच्छति सुहृत्तान्येष्टिहांस्तेऽस्मादपद्रवन्ति स आगच्छति विजरां नदीं तां मनसैवात्येति । तत्सुकृतदुष्कृते धुनुते । तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतं तद्यथा रथेन धावयन्त्यचक्रे पर्यवेक्षत, एवमहोरात्रे पर्यवेक्षत एवं सुकृतदुष्कृते सर्वाणि च द्रव्यानि स एव विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥ ३ ॥ स आगच्छतीत्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति, स आगच्छति सालज्यं संस्थानं तं ब्रह्मरसः प्रविशति, स आगच्छत्यपराजितमाश्रयतनं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छति । इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावत्स्यादपद्रवतः स आगच्छति विभुप्रभितं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छति विचक्षणामासन्दीं बृहद्रथंतरे सामनी पूर्वौ पादौ इयैतनौधसे चापरौ वैरूपवैराजे अनूच्यते शाकारवैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति स आगच्छत्यसितौजसं पर्यङ्कं स प्राणस्तस्य भूतं च भविष्यन्न पूर्वौ पादौ श्रीश्वेरा चापरौ बृहद्रथंतरे अनूच्ये अद्रय-ज्ञायजीथे शीर्षण्ये ऋचश्च सामानि च प्राचीनातानानि यजुंषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्रीथ उपश्रीः श्रीरूपवर्हणं तस्मिन्ब्रह्मास्ते तस्मिन्-विष्पादेनैवाग्र आरोहति । तं ब्रह्मा पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात् ॥ ५ ॥ ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्या एतत्संवत्सरस्य तेजो भूतस्य भूतस्य भूतस्य भूतस्यात्मा त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात्किं तद्यत्सत्यमिति यदन्यदेवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ यदेवाश्च प्राणाश्च तस्यं तदेतया वाचाऽभिव्याहियते सत्यमित्येताव-दिदं सर्वमिदं सर्वमसि । इत्येवैनं तदाह । तदेतद्वक्तृश्लोकेनाभ्युक्तम्— यजूदरः सामशिरा असावृद्धमूर्तिरव्ययः । स ब्रह्मेति स विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्मस्यो महानिति । तमाह केन मे पौल्यानि नामान्याप्नोषीति प्राणेनेति ब्रूयात् । केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकानीति मनसेति केन गन्धानिति प्राणे-नेत्येव ब्रूयात् । केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानिति श्रोत्रेणेति केनान्न-रसानिति जिह्वेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुखदुःखे इति शरीरे-णेति केनानन्दं रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति । केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति प्रज्ञयेति ब्रूयात्तमाह । आपो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणो जितिर्या व्यष्टिस्तं जितिं जयति तां व्यष्टिं न्यक्षुते य एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतकिब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कौषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो द्रुतं वाक्परिवेष्टी चक्षुर्गोसृ श्रोत्रं संश्रावयितुं तस्यै वा एतस्यै प्राणाय ब्रह्मणे एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बलिं हरन्ति तथो एवास्यै सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बलिं हरन्ति य एवं वेद तस्योपनिषन्न याचेदिति । तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वाऽलब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमभीयामिति । य एवं न पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति । एष धर्मो याचितो भवति । अन्यतस्त्वेवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति । प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह पैङ्ग्यस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो वाक्परस्ताच्चक्षुरारुन्धे चक्षुः परस्ताच्छ्रोत्रमारुन्धे श्रोत्रं परस्तान्मन आरुन्धे मनः परस्तात्प्राण आरुन्धे तस्यै वा एतस्यै प्राणाय ब्रह्मण एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बलिं हरन्ति तथो एवास्यै सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बलिं हरन्ति य एवं वेद तस्योपनिषन्न याचेदिति तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वाऽलब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमभीयामिति य एवं न पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इत्येष धर्मो याचितो भवत्यन्यतस्त्वेवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति ॥१॥ अथात एकधनाबरोधनं यदेकधनमभिध्यायात्पूर्णमास्यां वाऽमावास्यायां वा शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रेऽग्निमुपसमाधाय परितमुद्ध परित्सीर्य पर्युक्ष्योत्पूय दक्षिणं जान्वाच्य जुवेण वा चमसेन वा कंसेन वैता आज्याहुतीर्जुहोति वाङ्मनाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । प्राणो नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । चक्षुर्नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । श्रोत्रं नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । मनो नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । प्रज्ञा नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहेत्यथ धूमगन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेवाङ्गान्यनु विमृज्य वाचंयमोऽग्निप्रव्रज्यार्थं जुवीत द्रुतं वा ग्रहिणुयाद्धमते हैव ॥ २ ॥ अथातो दैवः सरो यस्य प्रियो बुभूषेद्यस्यै वा एषां वै तेषामेवैकस्मिन्पर्वण्यग्निमुपसमाधायैतयैवावृतेता आज्याहुतीर्जुहोति वाचं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । प्राणं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । श्रोत्रं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा ।

मनसो मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । प्रज्ञां ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहेत्यथ धूम-
गन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेनाङ्गान्यनु विमृज्य वाचंयमोऽग्निप्रव्रज्य संपूर्वा
जिगमिषेदपि वाताद्वा संभाषमाणस्तिष्ठेत्प्रियो हैव भवति स्मरन्ति
हैवास्मात् ॥ ३ ॥ अथातः सांयमनं प्रातर्दनमान्तरमग्निहोत्रमिति
चाचक्षते यावद्वै पुरुषो भाषते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि
जुहोति यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्वायितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति ।
एते अनन्ते अमृताहुती जाग्रच्च स्वपंश्च संततमन्यवच्छिन्नं जुहोत्यथ या अन्या
आहुतयोऽन्तवत्यस्ताः कर्ममन्यो हि भवन्त्येतद्ध वै पूर्वं विद्वंसोऽग्निहोत्रं न
जुहवांचक्रुः । उक्तं ब्रह्मेति ह स्माह शुष्कभृङ्गारस्तदग्नित्युपासीत सर्वाणि
हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्यायाभ्यर्चन्ते तद्यजुरित्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि
श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते तत्सामेत्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्याय सनमन्ते
तच्छ्रीरित्युपासीत तद्यज्ञ इत्युपासीत तत्तेज इत्युपासीत तद्यथैतच्छब्दाणां
श्रीमत्तमं यज्ञस्वितमं तेजस्वितमं भवति तथो एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां
श्रीमत्तमो यज्ञस्वितमस्तेजस्वितमो भवति । तमेतमैष्टकं कर्मभयमात्मानम-
ध्वर्युः संस्करोति तस्मिन्यजुर्मयं प्रवयति यजुर्मय ऋज्यं होता ऋज्ये साम-
मयमुद्गाता स एष सर्वस्य त्रयीविद्याया आत्मैष उ एवास्यात्मा एतदात्मा
भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ अथातः सर्वजितः कौपीतकेक्षीण्युपासनानि भवन्ति
यज्ञोपवीतं कृत्वाऽप आचम्य त्रिरुदपात्रं प्रसिच्योद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठेत्
वर्गोऽसि पाप्मानं मे वृद्धीत्येतयैवावृता मध्ये सन्तमुद्वर्गोऽसि पाप्मानं
म उद्वृद्धीत्येतयैवावृताऽस्तं यन्तं संवर्गोऽसि पाप्मानं मे संवृद्धीति ।
यदहोरात्राभ्यां पापं करोति सं तद्वृद्धे । अथ मासि मास्यमावास्यायां पञ्चा-
शच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता हरिततृणाभ्यां वाक्प्रत्यस्यति यत्ते
सुसीमं हृदयमपि चन्द्रमसि श्रितं तेनामृतत्वस्येशाने माऽहं पौत्रमघं रुदमिति
न हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति नु जातपुत्रस्याथाजातपुत्रस्याप्यायस्व समेतु ते
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीत्येतास्तिस्र ऋचो
जपित्वा माऽस्याकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययिष्ठा योऽस्यान्द्वेष्टि यं च
वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययस्वेति दैवीमावृतमावर्त आदि-
त्यस्यावृतमन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते ॥ ५ ॥ अथ पौर्णमास्यां
पुरस्ताच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता सोमो राजाऽसि विचक्षणः

पञ्चमुखोऽस्ति प्रजापतिर्ब्राह्मणस्त एकं मुखं तेन मुखेन राजोऽस्ति तेन मुखेन
 मामन्नादं कुरु राजा त एकं मुखं तेन मुखेन विशोऽस्ति तेन मुखेन मामन्नादं
 कुरु इयेनस्त एकं मुखं तेन मुखेन पक्षिणोऽस्ति तेन मुखेन मामन्नादं कुर्वन्निष्ट
 एकं मुखं तेन मुखेनमं लोकमस्ति तेन मुखेन मामन्नादं कुरु त्वयि पञ्चमं
 मुखं तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यस्ति तेन मुखेन मामन्नादं कुरु माऽस्माकं
 प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्टा योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन
 प्रजया पशुभिरवक्षीयस्वेति दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त
 इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते । अथ संवेद्यज्ञायायै हृदयमभिमृशेद्यत्ते
 सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं तेन माऽहं
 प्रोक्तमहं इति न हास्यात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति ॥ ६ ॥ अथ
 प्रोप्यायन्पुत्रस्य मूर्धानमभिमृशेत् । अङ्गादङ्गात्संभवति हृदयादधिजायसे ।
 आत्मा त्वं पुत्र माविथ स जीव शरदः शतमसाविति नामास्य
 गृह्णाति । अस्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव तेजो यै पुत्रनामासि
 स जीव शरदः शतमसाविति नामास्य गृह्णाति येन प्रजापतिः प्रजाः
 पर्यगृह्णादरिष्ट्यै तेन त्वा परिगृह्णाम्यसाविति नामास्य गृह्णात्यथास्य
 दक्षिणे कर्णे जपत्यस्मै प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्नितीन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि
 धेहीति सच्ये मा च्छित्था मा व्यथिष्ठाः शतं शरद आयुषो जीव पुत्र ते
 नास्मा मूर्धानमवजिघ्राम्यसाविति त्रिमूर्धानमवजिघ्रेद्भवां त्वा हिंकारेणामि हिं
 करोमीति त्रिमूर्धानमभि हिं कुर्यात् ॥ ७ ॥ अथातो देवः परिमर एतद्वै
 ब्रह्म दीप्यते यदग्निर्ज्वलत्यथैतन्म्रियते यन्न ज्वलति तस्यादित्यमेव तेजो
 गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न
 दृश्यते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते
 यच्चन्द्रमा दृश्यते । अथैतन्म्रियते यन्न दृश्यते तस्य विद्युतमेव तेजो गच्छति
 वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्विद्युद्विद्योततेऽथैतन्म्रियते यन्न विद्योतते
 तस्य वायुमेव तेजो गच्छति वायुं प्राणः । ता वा एताः सर्वा देवता
 वायुनेव प्रविश्य वायौ मृता न मृच्छन्ते तस्मादेव उ पुनरुदीरत इत्यधिदैव-
 तमथाध्यात्ममेतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्वाचा वदत्यथैतन्म्रियते यन्न वदति तस्य
 चक्षुरेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्चक्षुषा पश्यत्यथै-
 तन्म्रियते यन्न पश्यति तस्य श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म

दीप्यते यच्छ्रोत्रेण शृणोत्यथैतन्म्रियते यन्न शृणोति तस्य मन एव तेजो
 गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायत्यथैतन्म्रियते यन्न
 ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवताः
 प्राणमेव प्रविश्य प्राणे मृता न मृच्छन्ते तस्मादेव उ पुनरुदीरते तद्यदि ह वा
 एवं विद्वांस उभौ पर्वतावभिप्रवर्तेयातां तुस्तूर्वमाणौ दक्षिणश्चोत्तरश्च न हैवेनं
 स्तृण्वीयाताम् । अथ य एनं द्विषन्ति यांश्च स्वयं द्वेष्टि त एनं सर्वे परिम्रियन्ते
 ॥८॥ अथातो निःश्रेयसादानं सर्वा ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमानाः । अस्मा-
 च्छरीरादुच्चक्रमुस्तदारुभूतं शिश्येऽथैनद्वाक्प्रविवेश तद्वाचा वदच्छिश्य एव ।
 अथैनच्चक्षुः प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छिश्य एवाथैनच्छ्रोत्रं प्रविवेश
 तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वच्छिश्य एवाथैनन्मनः प्रविवेश
 तद्वाचावदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वन्मनसा ध्यायच्छिश्य एवाथैनत्प्राणः
 प्रविवेश तत्तत एव समुत्तस्थौ ते देवाः प्राणे निःश्रेयसं विदित्वा प्राणमेव
 प्रज्ञात्मानमभिसंभूय सहैतैः सर्वैरस्माह्लोकादुच्चक्रमुः । ते वायुप्रतिष्ठा आका-
 शात्मानः स्वरीयुस्तथो एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभि-
 संभूय सहैतैः सर्वैरस्माच्छरीरादुत्क्रामति स वायुप्रतिष्ठ आकाशात्मा स्वरेति
 स तद्भवति यत्रैते देवास्तत्प्राप्य तदमृतो भवति यदमृता देवाः ॥ ९ ॥
 अथातः पितापुत्रीयं संप्रदानमिति चाचक्षते । पिता पुत्रं प्रेष्यन्नाह्वयति
 नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्याभिमुपसमाधायोदकुम्भं सपात्रमुपनिधायहतेन
 वाससा संप्रच्छन्नः स्वयं ज्येत एत्य पुत्र उपरिष्ठादभिनिपद्यते, इन्द्रियैरस्यै-
 न्द्रियाणि संस्पृश्यापि वाऽस्याभियुक्त एवासीताथास्मै संप्रयच्छति वार्चं
 मे त्वयि दधानीति पिता वार्चं ते मयि दध इति पुत्रः प्राणं मे त्वयि दधा-
 नीति पिता प्राणं ते मयि दध इति पुत्रः । चक्षुर्मे त्वयि दधानीति पिता
 चक्षुस्ते मयि दध इति पुत्रः । श्रोत्रं मे त्वयि दधानीति पिता श्रोत्रं ते मयि
 दध इति पुत्रः । अन्नरसान्मे त्वयि दधानीति पिता अन्नरसांस्ते मयि दध इति
 पुत्रः । कर्माणि मे त्वयि दधानीति पिता कर्माणि ते मयि दध इति पुत्रः ।
 सुखदुःखे मे त्वयि दधानीति पिता सुखदुःखे ते मयि दध इति पुत्रः ।
 आनन्दं रतिं प्रजातिं मे त्वयि दधानीति पिता, आनन्दं रतिं प्रजातिं
 ते मयि दध इति पुत्रः । इत्या मे त्वयि दधानीति पिता, इत्यास्ते
 मयि दध इति पुत्रः । धियो विज्ञातव्यं कामान्मे त्वयि दधानीति पिता

वियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दध इति पुत्रः । अथ दक्षिणावुत्पाहु-
पनिष्क्रामति तं पिताऽनुमन्त्रयते यशो ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं कीर्तिस्त्वा शुभता-
मित्यथेतरः सव्यमंसमन्ववेक्षते पाणिनाऽन्तर्धाय वसनान्तेन वा प्रच्छाद्य
स्वर्गलोकान्कामानामुहीति स यद्यगदः स्यात्पुत्रस्यैश्वर्यं पिता वसेत्परि वा
व्रजेद्यद्यु वै प्रेयाद्यदेवैनं समापयति तथा समापयितव्यो भवति तथा
समापयितव्यो भवति ॥ १० ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतकिब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ प्रतर्दनो ह दैवो दासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम । युद्धेन च पौरुषेण च तं
हेन्द्र उवाच । प्रतर्दन वरं ते ददानीति स होवाच प्रतर्दनः । त्वमेव मे वृणीष्व
यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यस इति तं हेन्द्र उवाच । न वै वरोऽवरस्यै
वृणीते त्वमेव वृणीष्वेत्येवमवरो वै किल म इति होवाच प्रतर्दनोऽथो
खल्विन्द्रः सत्यादेव नेयाय । सत्यं हीन्द्रः स होवाच । मामेव विजानीहेत-
देवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये । ग्रन्मां विजानीयात् । त्रिशीर्षाणं त्वाह-
महनमरुन्मुखान्यनीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छं बह्वीः संघा अतिक्रम्य दिवि
प्रह्लादीयानतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान्पृथिव्यां कालखाज्ञान् । तस्य मे
तत्र नलोम च मा मीयते । स यो मां विजानीयान्नास्य केन च कर्मणा
लोको मीयते । न मातृवधेन न पितृवधेन न स्त्रियेन न अणहत्यया नास्य
पापं च न चकृषो मुखाङ्गीलं वेतीति ॥ १ ॥ स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा
तं मामायुरमृतमित्युपास्त्व । आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण
एवामृतम् । यावद्धयस्मिन्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः । प्राणेन देवा-
मुष्मिँल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति । प्रज्ञया सत्यं संकल्पम् । स यो ममायुर-
मृतमित्युपास्ते सर्वमायुरस्मिँल्लोक एति । आप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके ।
तद्धैक आहुरेकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति । न हि कश्चन शक्नुयात्सकृद्वाचा
नाम प्रज्ञापयितुं चक्षुषा रूपं श्रोत्रेण शब्दं मनसा ध्यातुमित्येकभूयं वै
प्राणाः । एकैकमेतानि सर्वाण्येव प्रज्ञापयन्ति । वाचं वदन्तीं सर्वे प्राणा
अनुवदन्ति । चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनु पश्यन्ति श्रोत्रं शृण्वत्सर्वे प्राणा
अनुशृण्वन्ति मनो ध्यायत्सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति प्राणं प्राणन्तं सर्वे
प्राणा अनुप्राणन्तीति । एवमु हैतदिति हेन्द्र उवाच । अस्ति त्वेव प्राणानां
निःश्रेयसमिति ॥ २ ॥ जीवति वागपेतो मूर्कान्निह पश्यामो जीवति चक्षु-

रूपेतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्हि पश्यामो जीवति
मनोपेतो बालान्हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्न इति ।
एवं हि पश्याम इति । अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थाप-
यति । तस्मादेतदेवोऽथमुपासीत । यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स
प्राणः । सह ह्येतावस्मिन्शरीरे वसतः सहोत्क्रामतस्तस्यैवैव दृष्टिः । एतद्विज्ञा-
नम् । यत्रैतत्पुरुषः सुप्तः स्वप्नं न कंचन पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति ।
तदैवं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं
सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति । स यदा प्रतिबुध्यते ।
यथाग्नेर्ज्वलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः
प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः । तस्यैषैव
सिद्धिः । एतद्विज्ञानम् । यत्रैतत्पुरुष आतौ मरिष्यन्नावृत्य न्येस्य संमोहं
न्येति तदाहुः । उदकमीक्षितम् । न शृणोति न पश्यति न वाचा
वदति न ध्यायत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति तदैवं वाक्सर्वैर्नामभिः
सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः
सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा विप्रति-
ष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो
लोकाः ॥ ३ ॥ स यदाऽस्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति वाग-
स्मात्सर्वाणि नामान्यभिविसृजते । वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति प्राणोऽस्मा-
त्सर्वान्गन्धानभिविसृजते प्राणेन सर्वान्गन्धानाप्नोति चक्षुरस्मात्सर्वाणि
रूपाण्यभिविसृजते चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्याप्नोति श्रोत्रमस्मात्सर्वान्शब्दान-
भिविसृजते श्रोत्रेण सर्वान्शब्दानाप्नोति मनोऽस्मात्सर्वाणि ध्यानान्यभिवि-
सृजते मनसा सर्वाणि ध्यानान्याप्नोति सैषा प्राणे सर्वासिः । यो वै प्राणः
सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः सह ह्येतावस्मिन्शरीरे वसतः सहोत्क्रामतः ।
अथ खलु यथाऽस्यै प्रज्ञायै सर्वाणि भूतान्येकं भवन्ति तद्ब्रूयाख्यास्यामः ॥
॥ ४ ॥ वागेवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्यै नाम परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा ।
प्राण एवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्य गन्धः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा चक्षु-
देवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्य रूपं परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा श्रोत्रमेवास्या
एकमङ्गमदूह्यं तस्य शब्दः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा जिह्वेवास्या एकमङ्ग-
मदूह्यं तस्या अन्नरसः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा हस्तावेवास्या एकमङ्गम-

दूह्यं तयोः कर्म परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा शरीरमेवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्य सुखदुःखे परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रोपस्थ एवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा पादावेवास्या एकमङ्गमदूह्यं तयोरित्याः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा प्रज्ञेवास्या एकमङ्गमदूह्यं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा ॥ ५ ॥ प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति । प्रज्ञया प्राणं समारुह्य प्राणेन सर्वान्गन्धानाम्नाप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्वाणि रूपाप्याप्नोति प्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वान्शब्दानाम्नाप्नोति प्रज्ञया जिह्वां समारुह्य जिह्वया सर्वान्नरसानाम्नाप्नोति प्रज्ञया हस्तौ समारुह्य हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माप्याप्नोति प्रज्ञया शरीरं समारुह्य शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति प्रज्ञयोपस्थं समारुह्योपस्थेनानन्दं रतिं प्रजातिमाप्नोति प्रज्ञया पादौ समारुह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आप्नोति प्रज्ञयैव धियं समारुह्य प्रज्ञयैव धियो विज्ञातव्यं कामानाम्नाप्नोति ॥ ६ ॥ न हि प्रज्ञापेता वाङ्मनाम किंचन प्रज्ञापयेत् । अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति । न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति । न हि प्रज्ञापेतं चक्षू रूपं किंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतद्रूपं प्राज्ञासिषमिति न प्रज्ञापेतं श्रोत्रं शब्दं कंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेता जिह्वाऽन्नरसं कंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतन्नरसं प्राज्ञासिषमिति न प्रज्ञापेतौ हस्तौ कर्म किंचन प्रज्ञापयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्कर्म प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखं दुःखं किंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्सुखं दुःखं प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं कांचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतमानन्दं न रतिं न प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतौ पादावित्यां कांचन प्रज्ञापयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतामित्यां प्राज्ञासिषमिति । न हि प्रज्ञापेता धीः कांचन सिध्येन्न प्रज्ञातव्यं प्रज्ञयेत् ॥ ७ ॥ न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यान्न गन्धं विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यान्न रूपं विजिज्ञासीत रूपविद्यं विद्यान्न शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्यान्नान्नरसं विजिज्ञासीतान्नरसस्य विज्ञातारं विद्यान्न कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं विद्यान्न सुखदुःखे विजिज्ञासीत

सुखदुःखयोर्विज्ञातारं विद्याज्ञानन्दं न रतिं न प्रजातिं विजिज्ञासीतानन्दस्य
 रतेः प्रजातेर्विज्ञातारं विद्याज्ञेयां विजिज्ञासीतैतारं विद्यात् । न मनो विजिज्ञा-
 सीत मन्तारं विद्यात् । ता वा एता दशैव भूतमात्रा अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा
 अधिभूतं यद्धि भूतमात्रा न स्युर्न प्रज्ञामात्राः स्युर्यद्वा प्रज्ञामात्रा न स्युर्न
 भूतमात्राः स्युः । न ह्यन्यतरतो रूपं किञ्चन सिध्येत् । नो एतद्ज्ञाना, तद्यथा
 रथस्थारेषु नेमिरर्पितो नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रा-
 स्वर्यिताः प्रज्ञामात्राः प्राणेऽर्पिताः स एष प्राण एव प्रज्ञात्मानन्दोऽजरो-
 ऽमृतः । न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान् । एष ह्येवैनं साधु
 कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवैनमसाधु कर्म
 कारयति तं यमघो निनीषते । एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेशः
 स म आत्मेति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात् ॥ ८ ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतकिब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचानः संस्पृष्ट आस सोऽवददुशीनरेषु स
 वसन्मत्स्येषु कुरूपञ्चालेषु काशिविदेहेष्विति स हाजातशत्रुं काश्यमेत्योवाच ।
 ब्रह्म ते ब्रवाणीति तं होवाचाजातशत्रुः । सहस्रं दशस्य इत्येतस्यां वाचि जनकौ
 जनक इति वा उ जना धावन्तीति ॥ १ ॥ आदित्ये बृहच्चन्द्रमस्यन्नं विद्युति
 सत्यं स्तनयितौ शब्दो वायाविन्द्रो वैकुण्ठ आकाशे पूर्णमग्नौ विषासहिरित्यप्सु
 तेज इत्यधिदैवतमथाध्यात्ममादर्शे प्रतिरूपश्छायायां द्वितीयः प्रतिश्रुत्काया-
 मधुरिति शब्दे मृत्युः स्वमे यमः शरीरे प्रजापतिर्दक्षिणेऽक्षिणि वाचः सव्येऽ-
 क्षिणि सत्यस्य ॥ २ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपास
 इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः । बृहन्पाण्डरवासा अतिष्ठाः
 सर्वेषां भूतानां मूर्धेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्तेऽतिष्ठाः
 सर्वेषां भूतानां मूर्धा भवति ॥ ३ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष चन्द्रमसि
 पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः सोमो
 राजाऽब्रह्मात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो मेवमुपासतेऽजस्रस्यात्मा भवति
 ॥ ४ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष विद्युति पुरुषस्तमेवाहमुपास इति
 तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठास्तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास
 इति स यो हैतमेवमुपास्ते तेजस आत्मा भवति ॥ ५ ॥ स होवाच

बालाकिर्य एवैष सन्नयितौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा
 मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः शब्दस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेव-
 मुपास्ते शब्दस्यात्मा भवति ॥ ६ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष आकाशो
 पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः पूर्णम-
 भवति ग्रहोति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया
 पशुभिः । नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालात्भवते ॥ ७ ॥ स होवाच
 बालाकिर्य एवैष वायौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैत-
 स्मिन्संवादयिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति स
 यो हैतमेवमुपास्ते । जिष्णुर्ह वापराजयिष्णुरन्यतस्त्यजायी भवति ॥ ८ ॥
 स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽग्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजात-
 शत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैत-
 मेवमुपास्ते विषासहिर्हैवान्वेष भवति ॥ ९ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैषो-
 ऽन्तु पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा
 नान्न आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नान्न आत्मा
 भवतीत्यधिदैवतमथाध्यात्मम् ॥ १० ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष आदर्शो
 पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः प्रति-
 रूप इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य
 प्रजायामाजायते भाप्रतिरूपः ॥ ११ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष प्रतिशु-
 त्कायां पुरुषस्तमेवाहमुपास इति, तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा
 द्वितीयोऽनपरा इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते विन्दते
 द्वितीयाद्वितीयवान्भवति ॥ १२ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष शब्दः
 पुरुषमन्वेति तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा
 असुरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य
 प्रजा पुरा कालात्संमोहमेति ॥ १३ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष छाया-
 पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा
 मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य
 प्रजा पुरा कालात्प्रमीयते ॥ १४ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष शरीरः पुरु-
 षस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः प्रजापति-
 रिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रजायते प्रजया

पशुभिः ॥ १५ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष प्राज्ञ आत्मा येनैतत्पुरुषः
सुप्तः स्वप्न्यया चरति तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्सं-
न्संवादयिष्ठा यमो राजेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते सर्वे
हास्मा इदं श्रेष्ठयाय यम्यते ॥ १६ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष दक्षिणेऽ-
क्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा
नाम्न आत्माऽभेरात्मा ज्योतिष आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैत-
मेवमुपास्त एतेषां सर्वेषामात्मा भवति ॥ १७ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष
सन्ध्येऽक्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवाद-
यिष्ठाः सत्यस्यात्मा विद्युत् आत्मा तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स
यो हैतमेवमुपास्त एतेषां सर्वेषामात्मा भवतीति ॥ १८ ॥ तत उ ह बाला-
किस्तूष्णीमास तं होवाचाजातशत्रुः । एतावन्तु बालाका इह इत्येतावद्धीति
होवाच बालाकिस्तं होवाचाजातशत्रुर्मृषा वै किल मा समवाद्यिष्ठा ब्रह्म ते
ब्रवाणीति । स होवाच । यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत्कर्मा
स वै वेदितव्य इति तत उ ह बालाकिः सन्निपाणिः प्रतिचक्रम उपायानीति
तं होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमरूपमेव तत्स्याद्यत्क्षत्रियो ब्राह्मणमुपनयेत् ।
एहि न्येव त्वा जपयिष्यामीति तं ह पाणावभिपद्य प्रवव्राज तौ ह सुप्तं पुरुष-
माजग्मतुस्तं हाजातशत्रुरामन्नयांचक्रे । बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्ति ।
स उ ह तूष्णीमेव शिष्ये । तत उ हैनं यष्टयाविचिक्षेप स तत एव सस्रु-
त्तस्थौ तं होवाचाजातशत्रुः । कैष एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट कैतदभू-
त्कृत एतदागादिति । तत उ ह बालाकिर्न विजज्ञे तं होवाचाजातशत्रुर्यत्रैव
एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट यत्रैतदभूद्यत एतदागादिति । हिता नाम हृदयस्य
नाम्नो हृदयात्पुरीततमभिप्रतन्वन्ति तद्यथा सहस्रधा केशो विपाटितस्ताव-
दण्यः पिङ्गलस्याणिङ्गा तिष्ठन्ति । शुक्लस्य कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्येति तान्
तदा भवति । यदा सुप्तः स्वप्न न कंचन पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति
तदैवं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः
शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते
यथाऽभेर्ज्वलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन्नैवमेवैतस्मादात्मनः
प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः ॥ १९ ॥
तद्यथा क्षुरः क्षुरधानेऽवहितः स्यात् । विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाय एवमेवैष

ब्राह्म० १]

बृहज्जाबालोपनिषत् ॥ २६ ॥

२०७

प्रज्ञ आत्मेदंशरीरमात्मानमनुप्रविष्ट आलोमभ्य आनखेभ्यः । तमेतमा-
त्मानमेत आत्मानोऽन्ववस्यन्ति यथा श्रेष्ठिनं स्वाः । तद्यथा श्रेष्ठी स्वर्भुङ्क्ते
यथा वा स्वाः श्रेष्ठिनं भुञ्जन्त्येवमेवैष प्रज्ञात्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते । एवं वै
तमात्मानमेत आत्मानो भुञ्जन्ति । स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न
विजज्ञे तावदेनमसुरा अभिवभूयुः । स यदा विजज्ञेऽथ हत्वाऽसुरान्विजित्य
सर्वेषां देवानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं परीयाय तथो एवैवं विद्वान्सर्वा-
न्पाप्मनोऽपहत्य सर्वेषां भूतानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति य एवं वेद
य एवं वेद ॥ २० ॥

ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि० । वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविर्मर्योऽभूर्वेदसा मत्साणीकृतं मा मा
हिंसीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संवसाम्यग्न इळा नम इळा नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृच्यो
मन्त्रपतिभ्यो नमोऽस्तु देवेभ्यः शिवा नः शंतमा भव सुमृच्छीका सरस्वति
मा ते व्योम संदशि । अदब्धं मन इषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे
मा मा हिंसीः ॥ १ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतकिब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इति कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥ २६ ॥

बृहज्जाबालोपनिषत् ॥ २७ ॥

यज्ज्ञानाग्निः स्वातिरिक्तभ्रमं भस्म करोति तत् ।

बृहज्जाबालनिगमशिरोवेद्यमहं महः ॥

अद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ अपो वा इदमासीत्सलिलमेव ॥ स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभ-
वत् ॥ तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत इदं सृजेयमिति । तस्माद्यत्पुरुषो
मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति । तत्कर्मणा करोति । तदेवाभ्यनूक्ता ।
कामस्तदग्रे समवर्तताधि । मनसा रेतः प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसति
निरविन्दन् । हृदि प्रतीप्या कवयो मनीषेति । उपैनं तदुपनमति । यत्कामो
भवति । य एवं वेद । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा स एतं सुसुण्डः
कालाग्रिरुद्रमगमदागत्य भो विभूतेर्माहात्म्यं ब्रूहीति तथेति प्रत्यबोध्यत् सुसु-
ॐ

चक्ष्यमाणं किमिति विभूतिरुद्राक्षयोर्माहात्म्यं बभाणेति आदावेव पैप्प-
लादेन सहोक्तमिति तत्फलश्रुतिरिति तस्योर्ध्वं किं वदामेति । बृहज्जाबाला-
भिधां शुक्तिश्रुतिं ममोपदेशं कुरुष्वेति । ॐ तथेति सद्योजातात्पृथिवी ।
तस्याः स्यान्नवृत्तिः । तस्याः कपिलवर्णानन्दा । तद्गोमयेन विभूतिर्जाता ।
वामदेवादुदकम् । तस्यात्प्रतिष्ठा । तस्याः कृष्णवर्णा भद्रा । तद्गोमयेन असितं
जातम् । आघोराद्वह्निः । तस्माद्विद्या । तस्या रक्तवर्णा सुरभिः । तद्गोमयेन
अस्र जातम् । तत्पुरुषाद्वायुः । तस्माच्छान्तिः । तस्याः श्वेतवर्णा सुशीला ।
तस्या गोमयेन क्षारं जातम् । ईशानादाकाशम् । तस्माच्छान्त्यतीता ।
तस्याश्चित्रवर्णा सुमनाः । तद्गोमयेन रक्षा जाता । विभूतिर्भसितं अस्र
क्षरं रक्षेति अस्मानो भवन्ति पञ्च नामानि । पञ्चभिर्नामभिर्वृशमैश्वर्यकार-
णान्नूतिः । अस्र सर्वाधभक्षणात् । भासनाद्भसितम् । क्षारणादपदां क्षारम् ।
भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसापसारभवभीतिभ्योऽभिरक्षणाद्रक्षेति ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सु प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रमग्नीषोमात्मकं अस्मस्मानविधिं प्रपच्छ । अग्नि-
र्यथैको भुवन्नं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एवं अस्म सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते । रौद्री
घोरा या तैजसी तन् । सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तन् । अमृतं
यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्या कला स्वयम् । स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसी
॥ १ ॥ द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका । तथैव रसशक्तिश्च
सोमात्मा चानलात्मिका ॥ २ ॥ वैद्युदादिमयं तेजो मथुरादमयो रसः ।
तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम् ॥ ३ ॥ अग्नेरमृतनिष्पात्तरमृतेनाग्निरेधते ।
अत एव हविः संतमग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वशक्तिमयः सोम अधो-
शक्तिमयोऽनलः । ताभ्यां संपुटितस्तस्माच्छब्दद्विधमिदं जगत् ॥ ५ ॥ अग्ने-
रूर्ध्वं भवत्येषा यावत्सौम्यं परामृतम् । यावदभ्यात्मकं सौम्यममृतं विसृज-
त्यधः ॥ ६ ॥ अत एव हि कामाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा । यावदादहनश्रो-
र्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत् ॥ ७ ॥ आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगा ।
तथैव निमग्नः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ॥ ८ ॥ शिवश्रोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्व-
शक्तिमयः शिवः । तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाग्यासमिह किञ्चन ॥ ९ ॥
असकृच्चाग्निना दग्धं जगत्तद्भस्मसात्कृतम् । अग्नेर्वीर्यमिदं प्राहुस्तद्वीर्यं अस्म

यत्ततः ॥ १० ॥ यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वाभिज्ञाति भस्मना । अग्नि-
रित्यादिभिर्मन्त्रैर्दग्धपापः स मुच्यते ॥ ११ ॥ अग्नेर्वीर्यं च तद्भस्म सोमेनाप्लावितं
पुनः । अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते ॥ १२ ॥ योगयुक्त्या तु
तद्भस्म प्लाव्यमानं समंततः । शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकाराच्चिवर्तते ॥ १३ ॥
अतो मृत्युंजयायेत्यमृतप्लावनं सताम् । शिवशक्त्यमृतस्पर्शं लब्ध एव
कुतो मृतिः ॥ १४ ॥ यो वेद गहनं गुह्यं पावनं च तथोदितम् । अग्नीषोमपुटं
कृत्वा न स भूयोऽभिजायते ॥ १५ ॥ शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसोमामृतेन
यः । प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पत
इति ॥ १६ ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सु द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ भुसुण्डः कालामिरुद्रं विभूतियोगमनुग्रहीति स होवाच । विकटाङ्गा-
मुन्मत्तां महाखला मलिनामशिवादिविह्वान्वितां पुनर्धेनुं कृशाङ्गां वत्सहीनाम-
शान्तामदुग्धदोहिनीं निरिन्द्रियां जग्धतृणां केशचेलस्थिभक्षिणीं संधिनीं
नवप्रसूतां रोगातां गां विहाय प्रशस्तगोमयमाहरेद्गोमयं स्वस्थं ब्राह्मं शुभे
स्थाने वा पतितमपरित्यज्यात ऊर्ध्वं मर्दयेद्ब्रह्मणेन गोमयग्रहणे कपिला वा
धवला वा अलामे तदन्या गौः स्याद्दोषवर्जिता कपिलागोर्भस्मोक्तं लब्धं
गोभस्म नो चेदन्यगोहारं यत्र कापि स्थितं च यत्तन्न हि धार्यं संस्कारसहितं
धार्यम् । तत्रैते श्लोका भवन्ति—विद्या शक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।
गुणत्रयाश्रया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥ १ ॥ गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्या-
भूद्गोमयं शुभम् । मूत्रं चोपनिषत्प्रोक्तं कुर्याद्भस्म ततः परम् ॥ २ ॥ वत्सस्तु
स्मृतयश्चास्य तत्संभूतं तु गोमयम् । आगाव इति मन्त्रेण धेनुं तन्नामिमन्त्रयेत्
॥ ३ ॥ गावो भगो गाव इति प्राशयेत्तर्पणं जलम् । उपोष्य च चतुर्दश्यां
शुक्ले कृष्णेऽथवा व्रती ॥ ४ ॥ परेद्युः प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
कृतस्नानो धौतवस्त्रः पयोर्ध्वं च सृजेच्च गाम् ॥ ५ ॥ उत्थाप्य गां प्रयत्नेन
गायत्र्या मूत्रमाहरेत् । सौवर्णे राजते तात्रे धारयेन्मृन्मये घटे ॥ ६ ॥
पौष्करेऽथ पलाशे वा पात्रे गोशृङ्ग एव वा । आदधीत हि गोमूत्रं गन्धद्वारेति
गोमयम् ॥ ७ ॥ अभूमिपातं गृह्णीयात्पात्रे पूर्वोदिते गृही । गोमयं शोधयेद्वि-
द्वाङ्ग्रीर्मै भजतु मन्त्रतः ॥ ८ ॥ अलक्ष्मीर्मै इति मन्त्रेण गोमयं धान्यवर्जितम् ।
सं त्वा सिञ्चामि मन्त्रेण गोमूत्रं गोमये क्षिपेत् ॥ ९ ॥ पञ्चानां त्विति मन्त्रेण
अ. उ. १४

पिण्डानां च चतुर्दश । कुर्यात्संशोध्य किरणैः सौरकैराहरेत्ततः ॥ १० ॥
 निदध्यादथ पूर्वोक्तपात्रे गोमयपिण्डकान् । स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठाप्याग्नि-
 मीजयेत् ॥ ११ ॥ पिण्डांश्च निक्षिपेत्तत्र आद्यन्तं प्रणवेन तु । षडक्षरस्य
 सूक्तस्य व्याकृतस्य तथाक्षरैः ॥ १२ ॥ स्वाहान्ते जुहुयात्तत्र वर्णदेवाय
 पिण्डकान् । आधारावाज्यभागौ च प्रक्षिपेद्याहतीः सुधीः ॥ १३ ॥ ततो
 निधनपतये त्रयोविंशज्जुहोति च । होतव्याः पञ्च ब्रह्मणि नमो हिरण्यबाहवे
 ॥ १४ ॥ इति सर्वाहुतीर्हुत्वा चतुर्थ्यन्तैश्च मन्त्रकैः ॥ ऋतं सत्यं क्रतुद्राय
 यस्य वैकंक्तीति च ॥ १५ ॥ एतैश्च जुहुयाद्विद्वानना ज्ञातत्रयं तथा ।
 व्याहृतीरथ हुत्वा च ततः स्विष्टकृतं हुनेत् ॥ १६ ॥ इध्मशेषं तु निर्वर्त्य
 पूर्णपात्रोदकं तथा । पूर्णमसीति यजुषा जलेनान्येन द्रुहयेत् ॥ १७ ॥
 ब्राह्मणेष्वमृतमिति तज्जलं शिरसि क्षिपेत् । प्राच्यामिति दिशं लिङ्गैर्दिक्षु तोयं
 विनिक्षिपेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा शान्त्यै पुलकमाहरेत् । आहरि-
 ष्यामि देवानां सर्वेषां कर्मगुप्तये ॥ १९ ॥ जातवेदसमेनं त्वां पुलकैश्छादया-
 म्यहम् । मन्त्रेणानेन तं वह्निं पुलकैश्छादयेत्ततः ॥ २० ॥ त्रिदिनं ज्वलनस्थित्यै
 छादनं पुलकैः स्मृतम् । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुञ्जीत चाग्यतः
 ॥ २१ ॥ भस्माधिक्यमभीप्सुस्तु अधिकं गोमयं हरेत् । दिनत्रयेण यदि
 वा एकस्मिन्दिनवरेऽथवा ॥ २२ ॥ तृतीये वा चतुर्थे वा प्रातः स्नात्वा
 सिताम्बरः । शुक्ल्यज्ञोपवीती च शुक्लमात्यानुलेपनः ॥ २३ ॥ शुक्लदन्तो
 भस्मदिग्धो मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । ॐ तद्रवेति चोच्चार्य पौलकं
 भस्मसंत्यजेत् ॥ २४ ॥ तत्र चावाहनमुखानुपचारांस्तु षोडश । कुर्याद्याहति-
 मिस्त्वेवं ततोऽग्निमुपसंहरेत् ॥ २५ ॥ अग्निर्भस्मेति मन्त्रेण गृहीयाद्भस्म
 चोत्तरम् । अग्निरित्यादिमन्त्रेण प्रमृज्य च ततः परम् ॥ २६ ॥ संयोज्य
 गन्धसलिलैः कपिलामूत्रकेण वा । चन्द्रकुङ्कुमकाश्मीरमुशीरं चन्दनं तथा
 ॥ २७ ॥ अगरुत्रितयं चैव चूर्णयित्वा तु सूक्ष्मतः । क्षिपेद्भस्मनि तच्चूर्णमो-
 मिति ब्रह्ममन्त्रतः ॥ २८ ॥ प्रणवेनाहरेद्विद्वान्वृहतो वटकानथ । अणोरणीया-
 निति हि मन्त्रेण च विचक्षणः ॥ २९ ॥ इत्थं भस्म सुसंपाद्य शुष्कमादाय
 मन्त्रवित् । प्रणवेन विमृज्याथ सप्तप्रणवमन्त्रितम् ॥ ३० ॥ ईशानेति शिरोदेशं
 मुखं तत्पुरुषेण तु । ऊरुदेशमघोरेण गुह्यं वामेन मन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥ सद्यो-
 जातेन वै पादान्सर्वाङ्गं प्रणवेन तु । तत उद्धृत्य सर्वाङ्गमापादतलमन्त्रकम्

॥ ३२ ॥ आचम्य वसनं धौतं ततश्चैतत्प्रधारयेत् । पुनराचम्य कर्म स्वं
कर्तुमर्हसि सत्तम ॥ ३३ ॥ अथ चतुर्विधं भस्मकल्पम् । प्रथममनुकल्पम् ।
द्वितीयमुपकल्पम् । उपोपकल्पं तृतीयम् । अकल्पं चतुर्थम् । अग्निहोत्र-
समुद्भूतं विरजानलजमनुकल्पम् । वने शुष्कं शकृत्संगृह्य कल्पोक्तविधिना
कल्पितमुपकल्पं स्यात् । अरण्ये शुष्कगोमयं चूर्णीकृत्यानुसंगृह्य गोमूत्रैः
पिण्डीकृत्य यथाकल्पं संस्कृतमुपोपकल्पम् । शिवालयस्थमकल्पं शतकल्पं च ।
इत्थं चतुर्विधं भस्म पापं निकृन्तयेन्मोक्षं ददातीति जगवान्कालाभि-
रुद्रः ॥ ३४ ॥

इति श्रीबृहज्जालोपनिषत्सु तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ भुसुण्डः कालाभिरुद्रं भस्मस्नानविधिं ब्रूहीति । स होवाचाथ प्रणयेन
विष्टुष्याथ सप्तप्रणवेनाभिमन्त्रितमागमेन तु तेनैव दिग्बन्धनं कारयेत्पुनरपि
तेनास्त्रमन्त्रेणाङ्गानि मूर्धादीन्युद्धूलयेन्मलस्नानमिदमीशानाथैः पञ्चभिर्मन्त्रैस्तुं
क्रमादुद्धूलयेत् । ईशानेति क्षिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु । ऊरुदेशमधोरेण
गुह्यकं वामदेवतः । सथोजातेन वै पादौ सर्वाङ्गं प्रणयेन तु । आपादतलमस्तकं
सर्वाङ्गं तत उद्धृत्याचम्य वसनं धौतं श्वेतं प्रधारयेद्विधिस्नानमिदम् । तत्र
श्लोका भवन्ति—भस्ममुष्टिं समादाय संहितामन्त्रमन्त्रिताम् । मस्तकात्पादप-
र्यन्तं मलस्नानं पुरोदितम् ॥ १ ॥ तन्मन्त्रेणैव कर्तव्यं विधिस्नानं समाचरेत् ।
ईशाने पञ्चधा भस्म विकिरेन्मूर्ध्नि यत्नतः ॥ २ ॥ मुखे चतुर्थवक्त्रेण अधीरेणा-
ष्टधा हृदि । वामेन गुह्यदेशे तु त्रिदशस्थानमेदतः ॥ ३ ॥ अष्टावन्तेन साध्येन
पदाबुद्धृत्य यत्नतः । सर्वाङ्गोद्धूलनं कार्यं राजन्यस्य यथाविधि ॥ ४ ॥ मुखं
विना च संत्सर्वमुद्धृत्य क्रमयोगतः । संध्याद्वये निशीथे च तथा पूर्वावसा-
नयोः ॥ ५ ॥ सुत्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चावश्यकादिकम् । स्त्रियं नपुं-
सकं गृध्रं विडालं वकमूषिकम् ॥ ६ ॥ स्पृष्ट्वा तथाविधानन्यान्भस्मस्नानं
समाचरेत् । देवाग्निगुरुवृद्धानां समीपेऽन्त्यजदर्शने ॥ ७ ॥ अशुद्धभूतले मार्गं
कुर्यान्नोद्धूलनं व्रती । शङ्कतोयेन मूलेन भस्मना मिश्रणं भवेत् ॥ ८ ॥ योजितं
चन्दनेनैव वारिणा भस्मसंयुतम् । चन्दनेन समालिम्पेज्ज्ञानदं चूर्णमेव तत्
॥ ९ ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्द्युक्तं तोयं तदनु वर्जयेत् ॥ अथ भुसुण्डो भगवन्तं
कालाभिरुद्रं त्रिपुण्ड्रविधिं पप्रच्छ । तत्रैते श्लोका भवन्ति—त्रिपुण्ड्रं कारये-
त्पश्चाद्भस्मविष्णुशिवात्मकम् । मध्याह्नलिभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रतः ॥ १० ॥

अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यान्निपुण्ड्रकम् । उद्धूलयेन्मुखं विप्रः क्षत्रियस्तच्छि-
 रोदितम् ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशत्स्थानके चार्धं षोडशस्थानकेऽथ वा । अष्टस्थाने तथा
 चैव पञ्चस्थानेऽपि योजयेत् ॥ १२ ॥ उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा ।
 नासावक्त्रे गले चैवमसद्वयमतः परम् ॥ १३ ॥ कूर्परे मणिबन्धे च हृदये
 पार्श्वयोर्द्वयोः । नाभौ गुह्यद्वये चैवमूर्वोः स्फिग्बिम्बजानुनि ॥ १४ ॥ जङ्घाद्वये
 च पादौ च द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् । अष्टमूर्त्यष्टविधेशान्दिक्पालान्वसुभिः सह
 ॥ १५ ॥ धरो ध्रुवश्च सोमश्च कृपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽ-
 ष्टावितीरिताः ॥ १६ ॥ एतेषां नाममन्त्रेण त्रिपुण्ड्रान्धारयेद्बुधः । विदध्यात्षो-
 डशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः ॥ १७ ॥ शीर्षके च ललाटे च कर्णे कण्ठेऽ-
 सकद्वये । कूर्परे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वयोः ॥ १८ ॥ पृष्ठे चैकं प्रति-
 स्थानं जपेत्तन्नाधिदेवताः । शिवं शक्तिं च सादाख्यामीशं विद्याख्यमेव च
 ॥ १९ ॥ वामादिनवशक्तीश्च एते षोडशदेवताः । नासत्यो दक्षकश्चैक अश्विनौ
 द्वौ समीरितौ ॥ २० ॥ अथवा मूर्ध्यलोके च कर्णयोः श्वसने तथा । बाहुद्वये
 च हृदये नाभ्यामूर्वोर्युगे तथा ॥ २१ ॥ जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च
 षोडश । शिवश्चेन्द्रश्च रुद्राकौ विघ्नेशो विष्णुरेव च ॥ २२ ॥ श्रीश्चैव हृदये-
 शश्च तथा नाभौ प्रजापतिः । नागश्च नागकन्याश्च उभे च ऋषिकन्यके ॥ २३ ॥
 पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठेऽपि च स्थिताः । एवं वा षोडशस्नानमष्टस्थान-
 मथोच्यते ॥ २४ ॥ गुरुस्थानं ललाटं च कर्णद्वयमवान्तरम् । अंसयुग्मं च
 हृदयं नाभिरित्यष्टमं भवेत् ॥ २५ ॥ ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकी-
 र्तिताः । अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च ॥ २६ ॥ पञ्च स्थानान्यमू-
 न्याहुर्भस्मतत्त्वविदो जनाः । यथासंभवतः कुर्याद्देशकालाद्यपेक्षया ॥ २७ ॥
 उद्धूलनेऽप्यशक्तश्चेत्त्रिपुण्ड्रदीनि कारयेत् । ललाटे हृदये नाभौ गले च मणि-
 बन्धयोः ॥ २८ ॥ बाहुमध्ये बाहुमूले पृष्ठे चैव च शीर्षके ॥ ललाटे ब्रह्मणे
 नमः । हृदये हव्यवाहनाय नमः । नाभौ स्कन्दाय नमः । गले विष्णवे नमः ।
 मध्ये प्रभञ्जनाय नमः । मणिबन्धे वसुभ्यो नमः । पृष्ठे हरये नमः । ककुद्दि-
 शंभवे नमः । शिरसि परमात्मने नमः । इत्यादिस्थानेषु त्रिपुण्ड्रं धारयेत् ।
 त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं प्रभुम् । सरन्नमः शिवायेति ललाटे तन्नि-
 पुण्ड्रकम् ॥ २९ ॥ कूर्पराधः पितृभ्यां तु ईशानाभ्यां तथोपरि । ईशाभ्यां नम
 इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ३० ॥ स्वच्छाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारये-

तत्प्रकोष्ठयोः । भीमायेति तथा पृष्ठे शिवायेति च पार्श्वयोः ॥ ३१ ॥ नील-
कण्ठाय शिरसि क्षिपेत्सर्वात्मने नमः । पापं नाशयते कृत्स्नमपि जन्मान्तरार्जि-
तम् ॥ ३२ ॥ कण्ठोपरि कृतं पापं नष्टं स्यात्तत्र धारणात् । कर्णे तु धारणा-
त्कर्णरोगादिकृतपातकम् ॥ ३३ ॥ बाह्वोर्याहुकृतं पापं वक्षःसु मनसा कृतम् ।
नाभ्यां क्षिप्तकृतं पापं पृष्ठे गुदकृतं तथा ॥ ३४ ॥ पार्श्वयोर्धारणात्पापं पर-
क्ष्यालिङ्गनादिकम् । तन्मसधारणं कुर्यात्सर्वत्रैव त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्म-
विष्णुमहेशानां त्रय्यम्नीनां च धारणम् । गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै
श्रुतम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सु चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

मानस्तोकेन मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत् । ऊर्ध्वपुण्ड्रं भवेत्सामं मध्यपुण्ड्रं
त्रियायुषम् ॥ १ ॥ त्रियायुषाणि कुरुते ललाटे च भुजद्वये । नाभौ शिरसि
हृत्पार्श्वे ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ॥ २ ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रस-
मुद्भवम् । इदं मुख्यं गृहस्थानां विरजानलजं भवेत् ॥ ३ ॥ विरजानलजं
चैव धार्यं प्रोक्तं महर्षिभिः । औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥ ४ ॥
समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा । शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्नि-
समुद्भवम् ॥ ५ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं चैवानलोद्भवम् । यतीनां
ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ॥ ६ ॥ अतिवर्णाश्रमाणां तु
श्मशानाग्निसमुद्भवम् । सर्वेषां देवालयस्थं भस्म शिवाग्निजं शिवयोनि-
नाम् । शिवालयस्थं तल्लिङ्गलिप्तं वा मन्त्रसंस्कारदग्धं वा । तत्रैते श्लोका
भवन्ति । तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । येन विप्रेण शिरसि
त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम् ॥ ७ ॥ त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः ।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्गधारणात्सोऽपि पूज्यते ॥ ८ ॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म
कुर्वन्ति मानवाः । तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ ९ ॥
महापातकयुक्तानां पूर्वजन्मार्जितागसां । त्रिपुण्ड्रोद्बलनद्वेषो जायते सुदृढं
बुधाः ॥ १० ॥ येषां कोपो भवेद्ब्रह्मललाटे भस्मदर्शनात् । तेषामुत्पत्तिसां-
कर्यमनुमेयं विपश्चिता ॥ ११ ॥ येषां नास्ति मुने श्रद्धा श्रौते भस्मनि सर्वदा ।
गर्भाधानादिसंस्कारस्तेषां नास्तीति निश्चयः ॥ १२ ॥ ये भस्मधारणं दृष्ट्वा नराः
कुर्वन्ति ताडनम् । तेषां चाण्डालतो जन्म ब्रह्मबूढं विपश्चिता ॥ १३ ॥
येषां क्रोधो भवेद्भस्मधारणे तत्प्रमाणके । ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रस्य

विषयः ॥ १४ ॥ त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते । धारयन्ति
च ये भक्त्या धारयन्ति शिवं च ते ॥ १५ ॥ धिग्भस्सरहितं भालं धिग्ग्राम-
मक्षिवालयम् । धिगानीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामक्षिवाश्रयाम् ॥ १६ ॥ रुद्राग्ने-
र्यत्परं वीर्यं तन्नस्य परिकीर्तितम् । तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्स-
संयुतः ॥ १७ ॥ भस्सनिष्ठस्य दहन्ते दोषा भस्माग्निसंगमात् । भस्सज्ञान-
विशुद्धात्मा भस्सनिष्ठ इति स्मृतः ॥ १८ ॥ भस्ससंदिग्धसर्वाङ्गो भस्सदीप्त-
त्रिपुण्ड्रकः । भस्सशायी च पुरुषो भस्सनिष्ठ इति स्मृतः ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सु पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रं नामपञ्चकस्य माहात्म्यं ब्रूहीति होवाच । अथ
वसिष्ठवंशजस्य शतभार्यासमेतस्य धनंजयस्य ब्राह्मणस्य ज्येष्ठभार्यापुत्रः करुण
इति नाम तस्य शुचिस्मिता भार्या । असौ करुणो भ्रातृवैरमसहमानो भवानी-
तटस्थं नृसिंहमगमत् । तन्न देवसमीपेऽन्येनोपायनार्थं समर्पिते जम्बीरफलं
गृहीत्वाजिघ्रस्तदा तन्नस्था अज्ञापन्पाप मक्षिको भव वर्षाणां शतमिति । सोऽपि
शापमादाय मक्षिका सन्त्वचेष्टितं तस्यै निवेद्य मां रक्षेति स्वभार्यामवदत्तदा
मक्षिकोऽभवत्तमेवं ज्ञात्वा ज्ञातयस्सैलमध्ये ह्यधारयन्सा स्मृतं पतिमादाया-
रुन्धतीमगमन्नो शुचिस्मितेऽभुं जीवयेति सोवाच शोकेनालमरुन्धत्यहमभुं
जीवयाम्यद्य विभूतिमादायेति । एषाग्निहोत्रजं भस्स-स्मृत्युंजयेन मन्त्रेण स्मृत-
जन्तो तदाक्षिपत् । मन्दवायुस्तदा जज्ञे व्यजनेन शुचिस्मितः ॥ १ ॥ उदतिष्ठ-
त्तदा जन्तुर्भस्सनोऽस्य प्रभावतः । ततो वर्षक्षते पूर्णे ज्ञातिरेको ह्यमारयत्
॥ २ ॥ अस्मैव जीवयामास काश्यां पञ्च तदाभवन् । देवानपि तथाभूतान्माम-
प्येतादृशं पुरा ॥ ३ ॥ तस्मात्तु भस्सना जन्तुं जीवयामि तदानवे । इत्येवमु-
क्त्वा भगवान्दधीविः समजायत ॥ ४ ॥ स्वरूपं च ततो गत्वा स्वमाश्रमपदं
ययाविति ॥ इदानीमस्य भस्सनः सर्वाधभक्षणसामर्थ्यं विधत्त इत्याह ।
श्रीगौतमविवाहकाले तामहल्यां दृष्ट्वा सर्वे देवा कामातुरा अभवन् । तदा नष्ट-
ज्ञाना दूर्वांससं गत्वा पप्रच्छुः । स तद्दोषं शमयिष्यामीत्युवाच । ततः शतरुद्रेण
मन्त्रेण मञ्जितं भस्स वै पुरा । मयापि दत्तं ब्रह्महत्यादि शान्तम् । इत्येवमुक्त्वा
दूर्वांसा दत्तवान्भस्स चोत्तमम् । जाता मद्बचनात्सर्वे यूयं तेऽधिकतेजसः ॥ ५ ॥
शतरुद्रेण मन्त्रेण भस्सोद्धूलितविग्रहाः । निर्धूतरजसः सर्वे तत्क्षणाच्च वयं मुने
॥ ६ ॥ आश्चर्यमेतज्जानीमो भस्ससामर्थ्यमीदृशम् । अस्य भस्सनः शक्तिमन्यां

शृणु । एतदेव हरिर्शंकरयोर्ज्ञानप्रदम् । ब्रह्महत्यादिपापनाशकम् । महाविभूति-
दमिति शिववक्षसि स्थितं नखेनादाय प्रणवेनाभिमुख्यं गायन्त्या पञ्चाक्षरेणाभि-
मुख्यं हरिर्मस्तकगात्रेषु समर्पयेत् । तथा हृदि ध्यायन्त्येति हरिमुक्त्वा हरः स्वहृदि
ध्यात्वा दृष्टो दृष्ट इति शिवमाह । ततो भस्म भक्षयेति हरिमाह हरस्ततः ।
भक्षयिष्ये शिवं भस्म स्नात्वाहं भस्मना पुरा ॥ ७ ॥ पृथ्वेश्वरं भक्तिगम्यं भस्म-
भक्षयदच्युतः । तन्नाश्वर्यमतीवासीत्प्रतिविम्बसमद्युतिः ॥ ८ ॥ वासुदेवः शुद्ध-
मुक्ताफलवर्णोऽभवत्क्षणात् । तदाप्रभृति शुक्लाभो वासुदेवः प्रसन्नवान् ॥ ९ ॥
न शक्यं भस्मनो ज्ञानं प्रभावं ते कुतो विभो । नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु त्वामहं
शरणं गतः ॥ १० ॥ त्वत्पादयुगले शंभो भक्तिरस्तु सदा मम । भस्मधारण-
संपन्नो मम भक्तो भविष्यति ॥ ११ ॥ अत एवैषा भूतिर्भूतिकरीत्युक्ता ।
अस्य पुरस्ताद्वसव आसन्नरुद्रा दक्षिणत आदित्याः पश्चाद्विश्वेदेवा उत्तरतो
ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ पार्श्वयोः । तदेतदवाभ्युक्तम्-ऋचो
अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः । यस्तस्मै वेद किञ्चिद्वा
करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते । य एतद्बृहज्जाबालं सार्वकामिकं मोक्ष-
द्वारमृद्वायं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति । य एतद्बृहज्जाबालं
बालो वा युवा वा वेद स महान्भवति । स गुरुः सर्वेषां मन्त्राणामुपदेष्टा
भवति । मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां बध्नीत । सप्तदीपवती
भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते तस्माच्छूडया यां काञ्चिद्वा दद्यात्सा दक्षिणा
भवति ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सु षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन् त्रिपुण्ड्रविधिं नो
ब्रूहीति । स होवाच सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्याभिरिति भस्मैत्यभिमुख्यं
मानस्तोक इति समुद्धृत्य त्रियायुषमिति जलेन संमृज्य त्र्यम्बकमिति शिरो-
ललाटवक्षःस्कन्धेषु धृत्वा पूतो भवति मोक्षी भवति शतरुद्रेण यत्फलमवाप्नोति
तत्फलमश्नुते स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥ जनको ह वैदेहः
स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मधारणात्किं फलमश्नुत इति । स होवाच तन्नभ-
धारणादेव मुक्तिर्भवति तन्नभधारणादेव शिवसायुज्यमवाप्नोति न स
पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः ॥ २ ॥
जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मधारणात्किं फलमश्नुते न वेति ।
तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुण्येति केतुर्दूर्वासकमुनिर्वाषडभरतदत्तात्रेय-

रैवतकभुसुण्डप्रभृतयो विभूतिधारणादेव मुक्ताः स्युः स एष भस्मज्योतिरिति
 वै याज्ञवल्क्यः ॥ ३ ॥ जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मज्ञानेन
 किं जायत इति । यस्य कस्यचिच्छरीरं यावन्तो रोमकूपास्तावन्ति लिङ्गानि भूत्वा
 तिष्ठन्ति ब्राह्मणो वा क्षत्रियो वा वैश्यो वा शूद्रो वा तद्भस्मधारणादेतच्छ-
 ष्ण्डस्य रूपं यस्यां तस्यां होवावतिष्ठते ॥ ४ ॥ जनको ह वैदेहः पैप्पलादेन सह
 प्रजापतिलोकं जगाम तं गत्वोवाच भो प्रजापते त्रिपुण्ड्रस्य माहात्म्यं ब्रूहीति । तं
 प्रजापतिरब्रवीद्यथैवेश्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्रस्येति ॥ ५ ॥ अथ पैप्पलादो
 वैकुण्ठं जगाम तं गत्वोवाच भो विष्णो त्रिपुण्ड्रस्य माहात्म्यं ब्रूहीति । यथैवे-
 श्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्रस्येति विष्णुराह ॥ ६ ॥ अथ पैप्पलादः काला-
 क्षिरुद्रं परिसमेल्योवाचाधीहि भगवन् त्रिपुण्ड्रस्य विधिमिति । त्रिपुण्ड्रस्य
 विधिर्मया वक्तुं न शक्य इति सत्यमिति होवाचाथ भस्मच्छन्नः संसारान्मुच्यते
 भस्मशय्याशयानस्तच्छब्दगोचरः शिवसायुज्यमवाप्नोति न स पुनरावर्तते न
 स पुनरावर्तते रुद्राध्यायी सन्नमृतत्वं च गच्छति । स एष भस्मज्योतिर्विभूति-
 धारणाद्वैकत्वं च गच्छति विभूतिधारणादेव सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति
 विभूतिधारणाद्वाराणस्यां स्नानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते । स एष भस्म-
 ज्योतिर्यस्य कस्यचिच्छरीरे त्रिपुण्ड्रस्य लक्ष्म वर्तते प्रथमा प्रजापतिर्द्वितीया
 विष्णुस्तृतीया सदाशिव इति स एष भस्मज्योतिरिति स एष भस्मज्योतिरिति
 ॥ ७ ॥ अथ कालाक्षिरुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छाधीहि भगवन्नुद्राक्ष-
 धारणविधिं । स होवाच रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते
 सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुलीकरोति तन्नयनाज्जाता
 रुद्राक्षा इति होवाच तस्मादुद्राक्षाणां रुद्राक्षत्वमिति । तदुद्राक्षे वाग्विषये
 कृते दशगोप्रदानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते स एष भस्मज्योती रुद्राक्ष
 इति तदुद्राक्षं करेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदानफलं भवति ।
 तदुद्राक्षे कर्णयोर्धार्ममाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति एकादशरुद्रत्वं
 च गच्छति । तदुद्राक्षे शिरसि धार्ममाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति ।
 एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच । मूर्ध्नि चत्वारिंश-
 च्छिन्नायामेकं त्रयं वा श्रोत्रयोर्द्वादश कर्णे द्वात्रिंशद्वाहोः षोडश षोडश
 द्वादश द्वादश मणिवन्धयोः षट् षडङ्गुष्ठयोस्ततः संध्यां सकुशोऽहरहरपासी-
 ताभिर्ज्योतिरित्यादिभिरभौ जुहुयात् ॥ ८ ॥

इति श्रीबृहज्जालोपनिषत्सु सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ बृहज्जाबालस्य फलं नो ब्रूहि भगवन्निति स होवाच य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आदित्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स ब्रह्मपूतो भवति स विष्णुपूतो भवति स रुद्रपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वपूतो भवति ॥ १ ॥ य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते सोऽग्निं स्तम्भयति स आदित्यं स्तम्भयति स सोमं स्तम्भयति स उदकं स्तम्भयति स सर्वान्देवान्स्तम्भयति स सर्वान्प्रहान्स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति ॥ २ ॥ य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स मृत्युं तरति स पाप्मानं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स सर्वं तरति स सर्वं तरति ॥ ३ ॥ य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स भूलोकं जयति स भुवर्लोकं जयति स सुवर्लोकं जयति स महर्लोकं जयति स जनोलोकं जयति स तपोलोकं जयति स सत्यलोकं जयति स सर्वाँल्लोकाञ्जयति स सर्वाँल्लोकाञ्जयति ॥ ४ ॥ य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूँयधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स कल्पानधीते स नाराशंसीरधीते स पुराणान्यधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते ॥ ५ ॥ अनुपनीतशतमेकमेकेनोपनीतेन तत्सममुपनीतशतमेकमेकेन गृहस्थेन तत्समं गृहस्थशतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन यतिना तत्समं यतीनां तु शतं पूर्णमेकमेकेन रुद्रजापकेन तत्समं रुद्रजापकशतमेकमेकेन अथर्वशिरःशिखाध्यापकेन तत्सममथर्वशिरःशिखाध्यापकशतमेकमेकेन बृहज्जाबालोपनिषदध्यापकेन तत्समं तद्वा एतत्परं धाम बृहज्जाबालोपनिषजपद्मशीलस्य यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भान्ति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्निर्दहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः । तदेतद्वचाभ्युक्तम्—तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहज्जाबालोपनिषत्सष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

॥ इत्यथर्षदेदीयबृहज्जाबालोपनिषत्समाप्ता ॥ २७ ॥

नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत् ॥ २८ ॥

यत्तुर्योङ्काराग्रपराभूमिस्थिरवरासनम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्ततुर्यतुर्यमहं महः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ १ ॥

आपो वा इदमासन्सलिलमेव स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत्तस्यान्त-
र्मेनासि कामः समवर्ततेदं सृजेयमिति तस्माद्यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा
वदति तत्कर्मणा करोति तदेषाभ्युक्ता—कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः
प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीप्य कवयो मनीषेत्पुपैनं
तदुपनमति यत्कामो भवति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स एतं मन्त्रराजं
नारसिंहमानुष्टुभमपश्यतेन वै सर्वमिदमसृजत यदिदं किंच तस्मात्सर्वमिदमा-
नुष्टुभमित्याचक्षते यदिदं किंचानुष्टुभो वा इमानि भूतानि जायन्तेऽनुष्टुभा
जातानि जीवन्यनुष्टुभं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तस्यैषा भवत्यनुष्टुप्प्रथमा भवत्य-
नुष्टुबुत्तमा भवति वाग्वा अनुष्टुब्वाचैव प्रयन्ति वाचैवोद्यन्ति परमा वा एषा
छन्दसां यदनुष्टुबिति ॥ १ ॥ ससागरां सपर्वतां ससद्दीपां वसुंधरां तत्साक्षः
प्रथमं पादं जानीयाद्यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितमन्तरिक्षं तत्साक्षो द्वितीयं पादं
जानीयाद्भुवुरुद्रादित्यैः सर्वैर्देवैः सेवितं दिवं तत्साक्षस्तृतीयं पादं जानीया-
द्ब्रह्मस्वरूपं निरञ्जनं परमव्योम्निकं तत्साम्नश्चतुर्थं पादं जानीयाद्यो जानीते
सोऽमृतत्वं च गच्छति । ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साक्षाः सशाखाश्च-
त्वारः पादा भवन्ति । किं ध्यानं किं दैवतं कान्यङ्गानि कानि दैवतानि किं छन्दः
क ऋषिरिति ॥ २ ॥ स होवाच प्रजापतिः स यो ह वै तत्सावित्रस्याष्टाक्षरं
पदं श्रियाऽभिषिक्तं तत्साक्षोऽङ्गं वेद, श्रिया ह वैषिच्यते सर्वे वेदाः प्रणवा-
दिकास्तं प्रणवं तत्साक्षोऽङ्गं वेद, स त्रींल्लोकाञ्जयति चतुर्विंशत्यक्षरा महा-
लक्ष्मीर्यजुस्तत्साक्षोऽङ्गं वेद, स आयुर्यशःकीर्तिज्ञानैश्वर्यवान्भवति, तस्मादिदं
साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, सावित्रीं प्रणवं
यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति, द्वात्रिंशदक्षरं साम जानीयाद्यो जानीते
सोऽमृतत्वं च गच्छति, सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात्स्त्रीशूद्रः स
मृतोऽधो गच्छति तस्मात्सर्वदा नाचष्टे यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव मृतोऽधो
गच्छति ॥ ३ ॥ स होवाच प्रजापतिरिभिर्वै वेदा इदं सर्वं विश्वानि भूतानि
प्राणा वा इन्द्रियाणि पशवोऽन्नममृतं सन्नादस्वराङ्गविरादतत्साक्षः प्रथमं पादं
जानीयाद्यजुःसामाथर्वरूपः सूर्योऽन्तरादित्ये हिरण्यः पुरुषस्तत्साक्षो द्वितीयं

पादं जानीयाद्य ओषधीनां प्रभवति तारापतिः सोमस्तत्साङ्गस्तृतीयं पादं जानीयात्स ब्रह्मा स शिवः स हरिः स इन्द्रः सोऽग्निः सोऽक्षरः परमः स्वराद तत्साङ्गस्तुर्थं पादं जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । ॐ उग्रं प्रथमस्याद्यं ज्वलं द्वितीयस्याद्यं तृप्तिं तृतीयस्याद्यं मृत्युं चतुर्थस्याद्यं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, तस्मादिदं साम यत्र कुत्रचिन्नाचष्टे यदि दातुमपेक्षते पुत्राय शुश्रूषवे दास्यत्यन्यसौ शिष्याय चेति ॥ ४ ॥ क्षीरोदार्यवशाथिनं वृकेसरिं योगिध्येयं परमं पदं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, वीरं प्रथमस्यार्धान्त्यं तंसं द्वितीयस्यार्धान्त्यं हंभी तृतीयस्यार्धान्त्यं मृत्युं चतुर्थस्यार्धान्त्यं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, तस्मादिदं साम येन केनचिदाचार्यमुखेन यो जानीते स तेनैव शरीरेण संसारान्मुच्यते मोचयति मुमुक्षुर्भवति जपात्तेनैव शरीरेण देवतादर्शनं करोति, तस्मादिदमेव मुख्यं द्वारं कलौ नान्येषां भवति, तस्मादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते स मुमुक्षुर्भवति ॥ ५ ॥ ॐ क्रतुं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं वृकेसरिविग्रहम् । कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितमुमापतिं पशुपतिं पिनाकिं ह्यमितद्युतिमीशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्बो यजुर्वेदवाच्यस्तं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । महा प्रथमान्तार्धस्याद्यम् । र्वतो द्वितीयान्तार्धस्याद्यं, षणं तृतीयान्तार्धस्याद्यं, तमा चतुर्थान्तार्धस्याद्यं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । तस्मादिदं सच्चिदानन्दमयं परं ब्रह्म तमेवं विद्वानमृत इह भवति । तस्मादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ विश्वसृज एतेन वै विश्वमिदमसृजन्त यद्विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृजो विश्वमेनाननु प्रजायते ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां यन्ति तस्मादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । विष्णुं प्रथमस्यान्त्यं मुखं द्वितीयस्यान्त्यं भद्रं तृतीयस्यान्त्यं न्यहं चतुर्थस्यान्त्यं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । योऽसौ सोऽवेदयदिदं किं चात्मनि ब्रह्मण्यानुष्टम्भं जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । स्त्रीपुंसोर्वा य इहैव स्थातुमपेक्षते स सर्वैश्वर्यं ददाति यत्र कुत्रापि त्रियते देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे, येनासावमृती भूत्वा सोऽमृतत्वं च गच्छति । तस्मादिदं साममध्यगं जपति तस्मादिदं सामाङ्गं प्रजापतिस्तस्मादिदं सामाङ्गं प्रजापतिर्य एव वेदेति

महोपनिषत् । य एतां महोपनिषदं वेद स कृतपुरश्चरणोऽपि महाविष्णुर्भवति
महाविष्णुर्भवतीति ॥ ७ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु प्रथमोपनिषत्समाप्ता ॥ १ ॥

देवा ह वै सृत्योः पाप्मभ्यः संसाराच्चाबिभ्युस्ते प्रजापतिमुपाध्वंस्तेभ्य
एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं प्रायच्छतेन वै सर्वे सृत्युमजयन्सर्वे पाप्मानं-
मतरन्संसाराच्चातरंस्तस्माद्यो ऋत्योः पाप्मभ्यः संसाराच्च विभीयात्स एवं
मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं प्रतिगृह्णीयात्स सृत्युं जयति स पाप्मानं तरति
स संसारं तरति तस्य ह वै प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा पृथिव्यकारः स
ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः स साम्नः प्रथमः पादो
भवति, द्वितीयाऽन्तरिक्षं स उकारः स यजुर्मिर्यजुर्वेदो विष्णू रुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षि-
णाग्निः स साम्नो द्वितीयः पादो भवति, तृतीया द्यौः स मकारः स
सामभिः सामवेदो रुद्रा आदित्या जगत्याहवनीयः स साम्नस्तृतीयः पादो
भवति, याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथर्वणैर्मन्त्रै-
रथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराडेक ऋषिर्भास्वती सा साम्नश्चतुर्थः पादो
भवति ॥ १ ॥ अष्टाक्षरः प्रथमः पादो भवत्यष्टाक्षराख्यः पादा भवन्ति, एवं
द्वात्रिंशदक्षराणि संपद्यन्ते द्वात्रिंशदक्षरा वा अनुष्टुब्भवति, अनुष्टुभा सर्वमिदं
सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहृतं तस्य हि पञ्चाङ्गानि भवन्ति, चत्वारः पादाश्चत्वा-
र्यङ्गानि भवन्ति, सप्रणवं सर्वं पञ्चमं भवति । ॐ हृदयाय नमः । ॐ
शिरसे स्वाहा । ॐ शिखायै वषट् । ॐ कवचाय हुम् । ॐ अस्त्राय
फडिति प्रथमं प्रथमेन युज्यते द्वितीयं द्वितीयेन तृतीयं तृतीयेन चतुर्थं
चतुर्थेन पञ्चमं पञ्चमेन व्यतिषक्ता वा इमे लोकास्तस्माद्व्यतिषक्तान्यङ्गानि
भवन्त्योमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्मात्प्रत्यक्षरमुभयत ओंकारो भवतीत्यक्षराणां
न्यासमुपदिशन्ति ब्रह्मादिनः ॥ २ ॥ तस्य ह वा उग्रं प्रथमं स्थानं
जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, वीरं द्वितीयं स्थानं महाविष्णुं
तृतीयं ज्वलन्तं चतुर्थं सर्वतोमुखं पञ्चमं नृसिंहं षष्ठं भीषणं सप्तमं भद्रमष्टमं
सृत्युसृत्युं नवमं नमामि दशममहमित्येकादशं स्थानं जानीयाद्यो जानीते
सोऽमृतत्वं च गच्छति । एकादशपदा वा अनुष्टुब्भवत्यनुष्टुभा सर्वमिदं
सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहृतं तस्मात्सर्वमिदमानुष्टुभं जानीयाद्यो जानीते सोऽ-
मृतत्वं च गच्छति ॥ ३ ॥ देवा ह वै प्रजापतिमनुवन्नथ कस्मादुच्यत

उग्रमिति, स होवाच प्रजापतिर्यस्यात्स्वमहिम्ना सर्वाल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतान्युद्ब्रूवात्यजस्रं सृजति विसृजति विवासयत्युद्ब्रूयते उद्ब्रूयते । स्तुहि श्रुतं गतंसदं युवानं मृगं नभीममुपहन्तुमुग्रम् । मृडा जरित्रे सिंह स्तवानो अन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः । तस्मादुच्यत उग्रमिति । अथ कस्मादुच्यते वीरमिति यस्यात्स्वमहिम्ना सर्वाल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजस्रं सृजति विसृजति वासयति । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः । तस्मादुच्यते वीरमिति । अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति । यः सर्वाल्लोकान्याप्नोति व्यापयति स्नेहो यथा पल्लपिण्डमोतप्रोतमनुप्राप्तं व्यतिषक्तो व्याप्यते व्यापयते । यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया संविदानक्षीणि ज्योतींषि सचते स षोडशीति । तस्मादुच्यते महाविष्णुमिति । अथ कस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति यस्यात्स्वमहिम्ना सर्वाल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वतेजसा ज्वलति ज्वालयति ज्वाल्यते ज्वालयते । सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन्दीप्यमानः । ज्वलञ्ज्वलिता तपन्वितपन्संतपन्नोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः । तस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति । अथ कस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति । यस्मादनिन्द्रियोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः शृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आदत्ते स सर्वगः सर्वतस्तिष्ठति । एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोपाः । यमप्येति भुवनं सांपराये नमामि तमहं सर्वतोमुखम् । तस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति । अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति । यस्यात्सर्वेषां भूतानां ना वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च सिंहो वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च तस्मान्नृसिंह आसीत्परमेश्वरो जगद्धितं वा एतद्रूपमक्षरं भवति । प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो नभीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेज्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा । तस्मादुच्यते नृसिंहमिति । अथ कस्मादुच्यते भीषणमिति । यस्याद्यस्य रूपं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि भीत्या पलायन्ते स्वयं यतः कुतश्चिन्न बिभेति । भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः । तस्मादुच्यते भीषणमिति । अथ कस्मादुच्यते भद्रमिति । यस्यात्स्वयं भद्रो भूत्वा सर्वदा भद्रं ददाति रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः । भद्रं कर्णेभिः

शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देव-
हितं यदायुः । तस्मादुच्यते भद्रमिति । अथ कस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति ।
यस्मात्स्वमहिम्ना स्वभक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयति । य
आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायामृतं
यो मृत्युमृत्युः कस्यै देवाय हविषा विधेम । तस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति ।
अथ कस्मादुच्यते नमामीति । यस्माद्यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवा-
दिनश्च । प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो
अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे । तस्मादुच्यते नमामीति । अथ कस्मादुच्यते-
ऽहमिति । अहमस्मि प्रथमजा ऋताश्च । पूर्वं देवभ्यो अमृतस्य नाश्भायि ।
यो मा ददाति स इदेव माश्वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमाश्शि । अहं विश्वं
भुवनमभ्यभवाश्म् । सुवर्नं ज्योतीः । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ ४ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत्समाप्ता ॥ २ ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्नानुष्टुभस्य मन्त्रराजस्य नारसिंहस्य शक्तिं बीजं च
नो ब्रूहि भगव इति । स होवाच प्रजापतिर्माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं
सृजति सर्वमिदं रक्षति सर्वमिदं संहरति । तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्यात्वा
एतां मायां शक्तिं वेद स पाप्मानं तरति सोऽमृतत्वं च गच्छति महतीं
श्रियमश्नुते मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनो हस्वा वा दीर्घा वा युता वेति । यदि
हस्वा भवति सर्थं पाप्मानं द्रहत्यमृतत्वं च गच्छति, यदि दीर्घा भवति महतीं
श्रियमाप्नुयादमृतत्वं च गच्छति, यदि युता भवति ज्ञानवान्भवत्यमृतत्वं
च गच्छति । तदेतद्विष्णोक्तं निदर्शनम्—सहस्रं पाहि य ऋजीषी तद्वन्नः
श्रियं लक्ष्मीमौपलाम्बिकां गां षष्टीं च यामिन्द्रसेनेत्युत आहुन्तां विद्यां
ब्रह्मयोनिं सरूपां तामिहायुषे शरणं प्रपद्ये । सर्वेषां वा एतच्छ्रुतानामाकाशः
परायणं सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते । आकाशादेव
जातानि जीवन्त्याकाशं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तस्मादाकाशं बीजं विद्यात्वा
देतद्विष्णोक्तं निदर्शनम्—हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिवदतिथिर्दु-
रोणसत् । नृषद्वरसद्वतसद्योमसद्वजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ।
य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु तृतीयोपनिषत्समाप्ता ॥ ३ ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्तानुभूय मन्त्रराजस्य नारसिंहस्याङ्गमन्त्राच्चो ब्रूहि भगव इति । स होवाच प्रजापतिः प्रणवं सावित्रीं यजुर्लक्ष्मीं नृसिंहगायत्रीमित्यङ्गानि जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपन्यास्यानं भूतं भवन्नविज्यदिति सर्वमोकार एव यच्चान्यभिकालातीतं तदप्योकार एव सर्वं हेतुब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलसुक्ष्मभानरः प्रथमः पादः स्वमस्थानेऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविक्लिप्तमुक्तैजसो द्वितीयः पादो यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुप्तं सुप्तस्थान एकोभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दमुक्तेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानां न बहिःप्रज्ञं नान्तःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमन्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमलङ्कृतमचिन्त्यमव्ययदेइयमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ १ ॥ अथ सावित्री गायत्री या यजुषा प्रोक्ता तथा सर्वमिदं व्यासं घृणिरिति द्वे अक्षरे सूर्य इति त्रीण्यादित्य इति त्रीण्येतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्तं य एवं वेद श्रिया हैवाभिषिच्यते । तदेतदृचाऽभ्युक्तम्—ऋचो अक्षरे परमे ज्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति । न ह वा एतस्यर्चा न यजुषा न साङ्गाऽर्थोऽस्ति यः सावित्रीं वेदेति । ॐ भूर्लक्ष्मीर्भुवर्लक्ष्मीः सुत्रःकालकणीं । तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयादित्येषा वै महालक्ष्मीर्यजुर्गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा भवति गायत्री वा इदं सर्वं यदिदं किंच तस्माद्य एतां महालक्ष्मीं याजुषीं वेद महतीं श्रियमश्नुते । ॐ नृसिंहाय विश्वहे वज्रनखाय धीमहि । तन्नः शिंहः प्रचोदयादित्येषा वै नृसिंहगायत्री वेदानां देवानां निदानं भवति य एवं वेद स निदानवान्भवति ॥ २ ॥ देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्त य केर्मन्त्रैर्देवः स्तुतः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तन्नो ब्रूहि भगव इति । स होवाच प्रजापतिः । ॐ उं ओं यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः १ । ॐ प्रं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः २ । ॐ वीं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च महेश्वरस्तस्मै वै नमो नमः ३ । ॐ रं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च पुरुषस्तस्मै वै नमो नमः ४ । ॐ मं

ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चेश्वरस्तस्यै वै नमो नमः ५ । ॐ हां
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या सरस्वती तस्यै वै नमो नमः ६ ।
 ॐ विं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या श्रीस्तस्यै वै नमो नमः ७ । ॐ ण्युं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या गौरी तस्यै वै नमो नमः ८ । ॐ ज्वं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या प्रकृतिस्तस्यै वै नमो नमः ९ । ॐ लं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या विद्या तस्यै वै नमो नमः १० । ॐ तं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चोकारस्तस्यै वै नमो नमः ११ । ॐ सं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्याश्चतस्रोऽर्धमात्रास्तस्यै वै नमो नमः १२ ।
 ॐ वं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये च वेदाः साक्षाः सशाखास्तस्यै वै
 नमो नमः १३ । ॐ तों ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये पञ्चाभयस्तस्यै
 वै नमो नमः १४ । ॐ सुं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्याः सप्त
 न्याहृत्यस्तस्यै वै नमो नमः १५ । ॐ खं ॐ यो वै नृसिंहो देवो
 भगवान्ये चाष्टौ लोकपालास्तस्यै वै नमो नमः १६ । ॐ नृं ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चाष्टौ वसवस्तस्यै वै नमो नमः १७ । ॐ सिं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये च रुद्रास्तस्यै वै नमो नमः १८ । ॐ हं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चादित्यास्तस्यै वै नमो नमः १९ । हीं
 भिं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चाष्टौ ग्रहास्तस्यै वै नमो नमः २० ।
 ॐ षं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यानि पञ्च महाभूतानि तस्यै वै नमो
 नमः २१ । ॐ णं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च कालस्तस्यै वै नमो नमः
 २२ । ॐ मं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च मनुस्तस्यै वै नमो नमः २३ ।
 ॐ द्रं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च मृत्युस्तस्यै वै नमो नमः २४ । ॐ मृं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च यमस्तस्यै वै नमो नमः २५ । ॐ त्र्युं
 ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चान्तकस्तस्यै वै नमो नमः २६ । ॐ मृं ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च प्राणस्तस्यै वै नमो नमः २७ । ॐ त्र्युं ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सूर्यस्तस्यै वै नमो नमः २८ । ॐ नं ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सोमस्तस्यै वै नमो नमः २९ । ॐ मां ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च विराट्पुरुषस्तस्यै वै नमो नमः ३० । ॐ म्यं ॐ
 यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च जीवस्तस्यै वै नमो नमः ३१ । ॐ हं ॐ यो
 वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सर्वं तस्यै वै नमो नमः ॥ ३२ ॥ इति तान्प्रजा-

पतिरब्रवीदेतैर्द्वात्रिंशन्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुवते ततो देवः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यति स सर्वं पश्यति सोऽमृतत्वं च गच्छति य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ ३ ॥

इत्यार्यवर्णीयानृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत्समाप्ता ॥ ४ ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्सहाचक्रं नाम चक्रं नो ब्रूहि भगव इति सार्वकामिकं मोक्षद्वारं यद्योमिन उपदिशन्ति स होवाच प्रजापतिः षडरं वा एतत्सुदर्शनं महाचक्रं तस्मात्षडरं भवति षट्पत्रं चक्रं भवति पद् वा ऋतव ऋतुभिः संमितं भवति मध्ये नाभिर्भवति नाभ्यां वा एतेऽराः प्रतिष्ठिताः । मायया वा एतत्सर्वं वेष्टितं भवति नात्मानं माया स्पृशति तस्मान्मायया बहिर्वेष्टितं भवति । अथाष्टारमष्टपत्रं चक्रं भवत्यष्टाक्षरा वै गायत्री गायत्र्या संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवति क्षेत्रं क्षेत्रं वा मायैषा संपद्यते । अथ द्वादशारं द्वादशपत्रं चक्रं भवति द्वादशाक्षरा वै जगती जगत्या संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवति । अथ षोडशारं षोडशपत्रं चक्रं भवति षोडशकलो वै पुरुषः पुरुष एवेदं सर्वं पुरुषेण संमितं भवति मायया बहिर्वेष्टितं भवति । अथ द्वात्रिंशदरं द्वात्रिंशत्पत्रं चक्रं भवति द्वात्रिंशदक्षरा वा अनुष्टुबनुष्टुभा संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवत्यर्वा एतत्सुयद्भं भवति वेदा वा एतेऽराः पत्रैर्वा एतत्सर्वतः परिक्रामति छन्दांसि वै पत्राणि ॥ १ ॥ तदेवं चक्रं सुदर्शनं महाचक्रं तस्य मध्ये नाभ्यां तारकं भवति यदक्षरं नारसिंहमेकाक्षरं तद्भवति षट्सु पत्रेषु षडक्षरं सुदर्शनं भवत्यष्टसु पत्रेष्वष्टाक्षरं नारायणं भवति द्वादशसु पत्रेषु द्वादशाक्षरं वासुदेवं भवति । षोडशसु पत्रेषु मातृकाद्याः सविन्दुकाः षोडश कला भवन्ति । द्वात्रिंशत्सु पत्रेषु द्वात्रिंशदक्षरं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं भवति । तद्वा एतत्सुदर्शनं महाचक्रं सार्वकामिकं मोक्षद्वारमृद्धमयं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति । तस्य पुरस्ताद्वसव आसते रुद्रा दक्षिणत आदित्याः पश्चाद्विश्वे देवा उत्तरतो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ पार्श्वयोः । तदेतद्व्यास्युक्तम्—ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति । तदेतन्महाचक्रं बालो वा युवा वा वेद स महान्भवति स गुरुर्भवति स सर्वेषां मन्त्राणामुपदेष्टा भवत्यनुष्टुभा होमं कुर्यादनुष्टुभार्चनं

अ. उ. १५

तदेतद्रक्षोभं मृत्युतारकं गुरुतो लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां वा बध्नीत सप्त-
द्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते तस्माच्छ्रद्धया यां कांचिद्द्यात्सा दक्षिणा
भवति ॥ २ ॥ देवा ह वै प्रजापतिमश्रुवन्नानुष्टुभस्य मन्त्रराजस्य फलं नो ब्रूहि
भगव इति स होवाच प्रजापतिर्य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते
सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आदित्यपूतो भवति स सोमपूतो
भवति स सत्यपूतो भवति स ब्रह्मपूतो भवति स विष्णुपूतो भवति स
रुद्रपूतो भवति स वेदपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वपूतो भवति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स मृत्युं तरति स पाप्मानं
तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वं
तरति स सर्वं तरति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं सोऽग्निं स्तम्भयति स वायुं स्तम्भयति
स आदित्यं स्तम्भयति स सोमं स्तम्भयति स उदकं स्तम्भयति स सर्वान्दे-
वान्स्तम्भयति स सर्वान्ग्रहान्स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स भूर्लोकं जयति स भुवर्लोकं
जयति स स्वर्लोकं जयति स महर्लोकं जयति स जनर्लोकं जयति स तपोलोकं
जयति स सत्यलोकं जयति स सर्वलोकं जयति स सर्वलोकं जयति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स मनुष्यानाकर्षयति स
देवानाकर्षयति स नागानाकर्षयति स यक्षानाकर्षयति स ग्रहानाकर्षयति स
सर्वानाकर्षयति स सर्वानाकर्षयति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते सोऽग्निष्टोमेन यजते स
उक्थ्येन यजते स षोडशिना यजते स वाजपेयेन यजते सोऽतिरात्रेण यजते
सोऽसौर्यामेण यजते सोऽश्वमेधेन यजते स सर्वैः क्रतुभिर्यजते स सर्वैः
क्रतुभिर्यजते ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूश्च-
धीते स सामान्यधीते सोऽथर्वानामधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स
पुराणान्यधीते स कल्पानधीते स गाथा अधीते स नाराशंसीरधीते स प्रणव-
मधीते यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते स सर्वमधीते ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अनुपनीतशतमेकमेकेनोपनीतेन तत्सममुपनीतशतमेकमेकेन गृहस्थेन
तत्समं गृहस्थशतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन यतिना
तत्समं यतीनां च शतं पूर्णं रुद्रजापकेन तत्समं रुद्रजापिशतमेकमेकेनाथर्व-
शिरःशिखाध्यायकेन तत्सममथर्वशिरःशिखाध्यायकशतमेकमेकेन मन्त्रराजजा-
पकेन तत्समं तद्वा एतत्परमं धाम मन्त्रराजाध्यायकस्य यत्र सूर्यो न तपति
यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमास्तपति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्नि-
र्दहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखं सदानन्दं परमानन्दं शाश्वतं
शान्तं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः ।
तदेतदृचाभ्युक्तम्—तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षु-
शततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदमिति
तदेतद्विष्कामस्य भवति तदेतद्विष्कामस्य भवति ॥ ३ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सुष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्समाप्ता ॥ ५ ॥

नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् ॥ २९ ॥

ॐ अद्गं कर्णेभिः शृणुयाम० ॥ १ ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः० ॥ २ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्नणोरणीयांसमिममात्मानमोँकारं नो व्याच-
क्ष्वेति तथेत्योमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं नृत्तं भवद्भविष्य-
दिनि सर्वमोँकार एव यच्चान्यन्निकालातीतं तदप्योँकार एव । सर्वं ह्येतद्ब्रह्माय-
मात्मा ब्रह्म तसेतमात्मानमोमिति ब्रह्मणैकीकृत्य ब्रह्म चात्मनोमित्येकीकृत्य
तदेकमजरमरममृतमभयमोमित्यनुभूय तस्मिन्निदं सर्वं त्रिशरीरमारोप्य
तन्मयं हि तदेवेति संहरेदोमिति तं वा एतं त्रिशरीरमात्मानं त्रिशरीरं परं
ब्रह्मानुसंदध्यात्स्थूलत्वात्स्थूलभुक्त्वाच्च सूक्ष्मत्वात्सूक्ष्मभुक्त्वाच्चैकयादानन्द-

ओंगाच्च सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जागरितस्थानः स्थूलप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति-
 मुखः स्थूलभुक्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः स्वप्नस्थानः सूक्ष्मप्रज्ञः
 सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः सूक्ष्मभुक्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयः
 पादो यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् ।
 सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखश्चतुरात्मा
 प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य
 प्रभवाप्ययौ हि भूतानां त्रयमप्येतत्सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो ह्यय-
 मात्माऽथ चतुर्थश्चतुरात्मा तुरीयावसितत्वादेकैकस्योतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्पैस्त्र-
 यमत्रापि सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो ह्यथायमादेशो न स्थूलप्रज्ञं न
 सूक्ष्मप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमप्राह्यम-
 लक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं
 चतुर्थं मन्यन्ते स एवात्मा स विज्ञेय ईश्वरग्रासस्तुरीयतुरीयः ॥ १ ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तं वा एतमात्मानं जाग्रत्स्वप्नमसुषुप्तं स्वप्नेऽजाग्रतमसुषुप्तं सुषुप्तेऽजा-
 ग्रतमस्वप्नं तुरीयेऽजाग्रतमस्वप्नमसुषुप्तमव्यभिचारिणं नित्यानन्तसदेकरसं
 ह्येवं चक्षुषो द्रष्टा श्रोत्रस्य द्रष्टा वाचो द्रष्टा मनसो द्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टा प्राणस्य
 द्रष्टा तमसो द्रष्टा सर्वस्य द्रष्टा ततः सर्वस्मादस्मादन्यो विलक्षणश्चक्षुषः
 साक्षी श्रोत्रस्य साक्षी वाचः साक्षी मनसः साक्षी बुद्धेः साक्षी प्राणस्य
 साक्षी तमसः साक्षी सर्वस्य साक्षी ततोऽविक्रियो महाचैतन्योऽस्मात्सर्वस्मा-
 दप्रियतम आनन्दघनं ह्येवमस्मात्सर्वस्मात्पुरतः सुविभातमेकरसमेवाजरम-
 मरममृतमभयं ब्रह्मैवाप्यजयैनं चतुष्पादं मात्राभिरोंकारेण चैकीकुर्या-
 ज्जागरितस्थानश्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरश्चतुरूपोऽकार एव चतुरूपो
 ह्ययमकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरकाररूपैरासेरादिमत्त्वाद्वा स्थूलत्वात्सू-
 क्ष्मत्वाद्बीजत्वात्साक्षित्वाच्चाप्नोति ह वा इदं सर्वमादिश्च भवति य एवं
 वेद स्वप्नस्थानश्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भश्चतुरूप उकार एव चतुरूपो
 ह्ययमुकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरुकाररूपैरुत्कर्षादुभयत्वाद्वा स्थूलत्वा-
 त्सूक्ष्मत्वाद्बीजत्वात्साक्षित्वाच्चोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति
 य एवं वेद । सुषुप्तस्थानश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरश्चतुरूपो मकार एव चतुरूपो
 ह्ययं मकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्मकाररूपैर्मितेरपीतेर्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्म-

त्वाद्दीजत्वात्साक्षित्वाच्च भिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद । मात्रा मात्राः प्रतिमात्राः कुर्यादथ तुरीय ईश्वरप्रासः स्वराद स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशश्चतुरात्मोतानुज्ञानुज्ञाविकल्पैरोतो ह्ययमात्मा यथेदं सर्वमन्तकाले कालाभिम्युय उचैरनुज्ञाता ह्ययमात्माऽस्य सर्वस्य स्वात्मानं ददातीदं सर्वं त्वात्मानमेव करोति यथा तमः सन्निताऽनुज्ञेकरसो ह्ययमात्मा चिद्रूप एव यथा द्राह्मं दग्ध्वाऽग्निरविकल्पो ह्ययमात्माऽवाङ्मनोगोचरत्वाच्चिद्रूपश्चतुरूप ओंकार एव चतुरूपो ह्ययमोंकार ओतानुज्ञानुज्ञाविकल्पैरोंकाररूपैरामैव नामरूपात्मकं हीदं सर्वं तुरीयत्वाच्चिद्रूपत्वाद्द्वोतत्वात्तुज्ञातुत्वाद्दुज्ञात्वादविकल्परूपत्वाच्चाविकल्परूपं हीदं सर्वं नैव तत्र काचन सिदाऽस्त्यथ तस्यायमादेशोऽन्नात्रश्चतुर्थोऽप्यवधार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत ओंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेदैष वीरो नारसिंहेन वानुष्टुभा मन्त्रराजेन तुरीयं विद्यादेशं ज्ञात्मानं प्रकाशयति सर्वसंहारसमर्थः परिभवासहः प्रभुर्व्याप्तः सद्योज्ज्वलोऽभिद्याकार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानमन्मात्रो निरन्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति तस्मादेवमेवेममात्मानं परं ब्रह्मानुमन्द्ध्यदेश वीरो नृसिंह एव ॥ २ ॥

इत्याथवेणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तस्य ह वै प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा प्रथमपादोभयतो भवति । द्वितीया द्वितीयस्य तृतीया तृतीयस्य चतुर्थ्योतानुज्ञानुज्ञाविकल्परूपा तथा तुरीयं चतुरात्मानसन्निवध्य चतुर्थपादेन च तथा तुरीयेणानुचिन्तयन्प्रसेत्तस्य ह वा यत्तस्य प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः सा प्रथमः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्द्वितीयाऽन्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिर्वज्रवेदो विष्णुरुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षिणाग्निः सा द्वितीयः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिस्तृतीया द्यौः स मकारः स सामभिः सामवेदो रुद्रादित्या जगत्या जगत्याहवर्नध्यः सा तृतीयः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्मात्राऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथवैश्वैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराडेकऋषिर्भस्वती स्मृता सा चतुर्थः पादो भवति । भवति

च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मवीजसाक्षिभिर्मात्रा मात्राः प्रतिमात्राः कृत्वोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्परूपं चिन्तयन्ग्रसेत ज्ञोऽमृतो हुतसंविक्कः शुद्धः संविष्टो निर्विघ्न इममसुनियमेऽनुभूयेहेदं सर्वं दृष्ट्वाऽसुप्रपञ्चहीनोऽथ सकलः साधारोऽमृतमयश्चतुरात्मा सर्वमयश्चतुरात्माऽथ महापीठे सपरिवारं तमेतं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानं मूलाभायभिरुपं प्रणवं संदध्यात्सप्तात्मानं चतुरात्मानमकारं ब्रह्माणं नाभौ सप्तात्मानं चतुरात्मानमुकारं विष्णुं हृदये सप्तात्मानं चतुरात्मानं मकारं रुद्रं भ्रूमध्ये सप्तात्मानं चतुरात्मानं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानमोकारं सर्वेश्वरं द्वादशान्ते । सप्तात्मानं चतुरात्मानं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानमानन्दामृतरूपमोकारं षोडशान्ते । अथानन्दामृतेनैतांश्चतुर्धा संपूज्य तथा ब्रह्माणमेव विष्णुमेव रुद्रमेव विभक्तांस्त्रीनेवाविभक्तांस्त्रीनेव लिङ्गरूपानेव च संपूज्योपहारैश्चतुर्धाऽथ लिङ्गान्संहृत्य तेजसा शरीरत्रयं संव्याप्य तदधिष्ठानमात्मानं संज्वात्य तत्तेज आत्मचैतन्यरूपं बलमवष्टभ्य तस्य गुणैरैक्यं संपाद्य महास्थूलं महासूक्ष्मं महासूक्ष्मं महाकारणे च संहृत्य मात्राभिरोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्परूपं चिन्तयन्ग्रसेत् ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

तं वा एतमात्मानं परमं ब्रह्मोकारं तुरीयोकाराग्रविद्योतमनुष्टुभा नत्वा प्रसाद्योमिति संहत्याहमित्यनुसंदध्यादथैतमेवात्मानं परमं ब्रह्मोकारं तुरीयोकाराग्रविद्योतमेकादशात्मानमात्मानं नारसिंहं नत्वोमिति संहरन्ननुसंदध्यात् । अथैतमेवात्मानं परमं ब्रह्मोकारं तुरीयोकाराग्रविद्योतं प्रणवेन संचिन्त्यानुष्टुभा सच्चिदानन्दपूर्णात्मसु नवात्मकं सच्चिदानन्दपूर्णात्मानं परमात्मानं परं ब्रह्म संभाव्याहमित्यात्मानमादाय नमसा ब्रह्मणैकीकुर्यादनुष्टुभैव वैष उ एव त्रेष हि सर्वत्र सर्वदा सर्वात्मा सिंहोऽसौ परमेश्वरोऽसौ हि सर्वत्र सर्वदा सर्वात्मा सन्सर्वमस्ति नृसिंह एवैकल एष तुरीय एष एवोत्र एष एव वीर एष एव महानेष्ट एव विष्णुरेष्ट एव ज्वलन्नेष्ट एव सर्वतोमुख एष एव नृसिंह एष एव भीषण एष एव भद्र एष एव सृत्युसृत्युरेष्ट एव नमाम्येष्ट एवाहमेवं योगारूढो ब्रह्मण्येवानुष्टुभं संदध्यादोकार इति । तदेतौ श्लोकौ भवतः—संस्तभ्य सिंहं स्वसुतान्गुणधान्संयोज्य शृङ्गैर्ऋषभस्य हत्वा । वदयां स्फुरन्तीमसतीं निपीड्य संभक्ष्य सिंहेन स एष वीरः । शृङ्गप्रोतान्पदा स्पृष्ट्वा हत्वा तामग्रसत्सयम् । नत्वा च बहुधा दृष्ट्वा नृसिंहः स्वयमुदभावेति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथैषो एवाकार आसतमार्थ आत्मन्येव नृसिंहे ब्रह्मणि वर्तत एष ह्येवा-
सतम एष हि साक्ष्येष ईश्वरोऽतः सर्वगतो न हीदं सर्वमेष हि व्यासतम
इदं सर्वं यदयमात्मा मायामात्रमेष एवोत्र एष हि व्यासतम एष एव वीर
एष हि व्यासतम एष एव महानेष हि व्यासतम एष एव विष्णुरेष हि
व्यासतम एष एव ज्वलन्नेष हि व्यासतम एष एव सर्वतोमुख एष हि व्यास-
तम एष एव नृसिंह एव हि व्यासतम एष एव भीषण एष हि व्यासतम
एष एव भद्र एष हि व्यासतम एष एव मृत्युमृत्युरेष हि व्यासतम एष एव
नमाम्येष हि व्यासतम एव एवाहमेष हि व्यासतम आत्मैव नृसिंहो ब्रह्म
भवति य एवं वेद । सोऽकामो निष्काम आसकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा
उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येत्यैषो एवोकार उत्कृष्टतमार्थं
आत्मन्येव नृसिंहे देवे ब्रह्मणि वर्तते । तस्मादेव सत्यस्वरूपो न ह्यन्यदस्त्यमेय-
मनात्मप्रकाशमेष हि स्वप्रकाशोऽमङ्गोऽन्यन्न वीक्षत आत्माऽतो नान्यप्रथाप्रा-
प्तिरात्ममात्रं हेतदुत्कृष्टमेष एवोत्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव वीर एष ह्येवोत्कृष्ट
एष एव महानेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव विष्णुरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव ज्वलन्नेष
ह्येवोत्कृष्ट एष एव सर्वतोमुख एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव नृसिंह एष ह्येवोत्कृष्ट
एष एव भीषण एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव भद्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव मृत्यु-
मृत्युरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव नमाम्येष ह्येवोत्कृष्ट एष एवाहमेष ह्येवोत्कृष्ट-
स्तस्मादात्मानमेवैवं जानीयादात्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्म भवति य एवं वेद ।
सोऽकामो निष्काम आसकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव सम-
वनीयन्ते । ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येत्यैषो एव मकारो महाविभूत्यर्थ आत्मन्येव
नृसिंहे देवे परे ब्रह्मणि वर्तते तस्मादयमनल्पोऽभिन्नरूपः स्वप्रकाशो ब्रह्मैव
व्यासतम उत्कृष्टतम एतदेव ब्रह्मापि सर्वं महामात्रं महाविभूत्येतदेवोत्रमे-
तद्धि महाविभूत्येतदेव वीरमेतद्धि महाविभूत्येतदेव महदेतद्धि महाविभूत्ये-
तदेव विष्ण्वेतद्धि महाविभूत्येतदेव ज्वलदेतद्धि महाविभूत्येतदेव सर्वतोमुख-
मेतद्धि महाविभूत्येतदेव नृसिंहमेतद्धि महाविभूत्येतदेव भीषणमेतद्धि महा-
विभूत्येतदेव भद्रमेतद्धि महाविभूत्येतदेव मृत्युमृत्य्वेतद्धि महाविभूत्येतदेव
नमाम्येतद्धि महाविभूत्येतदेवाहमेतद्धि महाविभूति तस्मादकारोकाराभ्यामि-
ममात्मानमासतममुत्कृष्टतमं चिन्मात्रं सर्वद्रष्टारं सर्वसाक्षिणं सर्वप्राप्तं सर्व-
प्रेमास्पदं सच्चिदानन्दमात्रमेकरसं पुरतोऽस्मात्सर्वस्मात्सुविभातमन्विष्या-

सूतममुत्कृष्टतमं चिन्मात्रं महाविभूतिं सच्चिदानन्दमात्रमेकरसं परमेव ब्रह्म
अकारेण जानीयादात्मैव नृसिंहो देवः परमेव ब्रह्म भवति य एवं वेद । सोऽ-
कामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समव-
नीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति ह प्रजापतिरुवाच ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

ते देवा इममात्मानं ज्ञातुमैच्छन्तान्हासुरः पाप्मा परिजग्रास । त ऐश्वर्यं
हन्तैनमासुरं पाप्मानं ग्रसाम इति । त एतमेवोत्काराग्रविद्योतं तुरीयतुरीय-
मात्मानमुग्रमनुग्रं वीरमवीरं महान्तममहान्तं विष्णुमविष्णुं उवलन्तमज्वलन्तं
सर्वतोमुखमसर्वतोमुखं नृसिंहमनृसिंहं भीषणमभीषणं भद्रमभद्रं मृत्युमृत्यु-
ममृत्युमृत्युं नमाम्यनमाम्यहमनहं नृसिंहानुष्टुभैव वुवुधिरे तेभ्यो हासावा-
सुरः पाप्मा सच्चिदानन्दधनं ज्योतिरभवत्तस्मादपक्कषाय इममेवोत्काराग्र-
विद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानं नृसिंहानुष्टुभैव जानीयात्तस्मासुरः पाप्मा
सच्चिदानन्दधनं ज्योतिर्भवति । ते देवा ज्योतिष उत्तितीर्षवो द्वितीयाद्भ्यमेव
पश्यन्तं इममेवोत्काराग्रविद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानं नृसिंहानुष्टुभान्विष्य
प्रणयेनैव तस्मिन्नवस्थितास्तेभ्यस्तज्योतिरस्य सर्वस्य पुरतः सुविभातमविभातम-
द्वैतमचिन्त्यमलिङ्गं स्वप्रकाशमानन्दधनं शून्यमभवत् । एवंवित्स्वप्रकाशं परमेव
ब्रह्म भवति ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च ससाधनेभ्यो
व्युत्थाय निरागारा निष्परिग्रहा अशिक्षा अयज्ञोपवीता अन्धा बधिरा मुरधाः
क्लृप्ता मूका उन्मत्ता हव परिवर्तमानाः शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः
समा हिता आत्मरतय आत्मक्रीडा आत्ममिथुना आत्मानन्दाः प्रणवमेव
परमं ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यं जानन्तस्तत्रैव परिसमासास्तस्माद्देवानां व्रतमा-
चरन्तोत्कारे परे ब्रह्मणि पर्यवसितो भवेत्स आत्मनैवात्मानं परमं ब्रह्म
पश्यति । तदेष श्लोकः—शृङ्गेष्वशृङ्गं संयोज्य सिंहं शृङ्गेषु योजयेत् ।
शृङ्गाभ्यां शृङ्गमाबध्य त्रयो देवा उदासत इति ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्भूय एव नो भगवान्विज्ञापयत्विति तथेत्यज-
त्वादभरत्वादजरत्वादमृतत्वादभयत्वादशोकत्वादमोहत्वादनशनायत्वादपि-
पासत्वादद्वैतत्वाच्चाकारेणेममात्मानमन्विष्योदुत्कृष्टत्वादुदुत्पादकत्वादुदुत्प्र-
वेष्टत्वादुदुत्थापयितृत्वादुदुद्गृष्टत्वादुदुत्कर्तृत्वादुदुत्पथवारकत्वादुदुद्भासकत्वा-

दुदुङ्गान्तत्वाद्दुदुत्तीर्णविकृतित्वाच्चाकारेण परमं सिंहमन्विष्याकारमि-
ममात्मानमुकारपूर्वार्धमाकृष्य सिंहीकृत्योत्तरार्धेन तं सिंहमाकृष्य महत्त्वा-
न्महत्त्वान्मानचान्भुक्तत्वान्महादेवत्वान्महेश्वरत्वान्महासत्त्वान्महाचित्वान्म-
हानन्दत्वान्महाप्रभुत्वाच्च मकारार्थेनानेनात्मनैकीकुर्यादशरीरो निरिन्द्रि-
योऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराद् भवति य एवं वेद ।
फट्त्वमित्यहमिति होवाचैवमेवेदं सर्वं तस्मादहमिति सर्वाभिधानं तस्यादिर-
यमकारः स एव भवति । सर्वं ह्ययमात्मायं हि सर्वान्तरो न हीदं सर्वं निरा-
त्मकमात्मैवेदं सर्वं तस्मात्सर्वात्मकेनाकारेण सर्वात्मकमात्मानमन्विच्छेद्ब्रह्मैवेदं
सर्वं सच्चिदानन्दरूपं सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वं सद्बीदं सर्वं तत्सदिति
चिद्बीदं सर्वं काशते काशते चेति किं सदितिदमिदं नेत्यनुभूतिरिति कैवेती-
यमियं नेत्यवचनेनैवानुभवशुवाचैवमेव चिदानन्दावप्यवचनेनैवानुभवशुवाच
सर्वमन्यदपि न परम आनन्दस्तस्य ब्रह्मणो नाम ब्रह्मेति तस्यान्योऽयं
अकारः स एव भवति तस्मान्मकारेण परमं ब्रह्मान्विच्छेदकिमिदमेवमित्यु-
ह्येवाहाविचिकित्सस्तस्मादकारेणममात्मानमन्विष्य मकारेण ब्रह्मणा
संदध्यादुकारेणाविचिकित्सन्नशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्द-
मात्रः स स्वराद् भवति य एवं वेद । ब्रह्म वा इदं सर्वमत्तत्वाद्ब्रह्माद्वी-
रत्वान्महत्त्वाद्भिष्युत्वाज्ज्वलत्वात्सर्वतोमुखत्वाच्चसिंहत्वाद्भीषणत्वाद्भद्रत्वान्मृ-
त्युमृत्युत्वान्नमामित्वादहन्त्वादिति सततं ह्येतद्ब्रह्मोऽब्रह्माद्वीरत्वान्महत्त्वाद्भिष्यु-
त्वाज्ज्वलत्वात्सर्वतोमुखत्वाच्चसिंहत्वाद्भीषणत्वाद्भद्रत्वान्मृत्युमृत्युत्वान्नमामि-
त्वादहन्त्वादिति तस्मादकारेण परमं ब्रह्मान्विष्य मकारेण मनआद्यवितारं
मनआदिसाक्षिणमन्विच्छेत्स यदैतत्सर्वमुपेक्षते तदैतत्सर्वमस्मिन्प्रविशति स
यदा प्रबुध्यते तदैतत्सर्वमस्मादेवोत्तिष्ठति स एतत्सर्वं निरुह्य प्रत्युह्य संपीड्य
संज्वात्य संभक्ष्य स्वात्मानमेषां ददात्यत्युग्रोऽतिवीरोऽतिमहानतिविष्णुरति-
ज्वलन्नतिसर्वतोमुखोऽतिवृत्तिर्हीनोऽतिभीषणोऽतिभद्रोऽतिमृत्युमृत्युरतिनमाम्य-
त्यहं भूत्वा स्वे महिम्नि सदा समासते तस्मादेनमकारार्थेन परेण ब्रह्मणैकी-
कुर्यादुकारेणाविचिकित्सन्नशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्दमात्रः
स स्वराद् भवति य एवं वेद । तदेष श्लोकः-शृङ्गं शृङ्गार्धमाकृष्य शृङ्गेणानेन
योजयेत् । शृङ्गमेवं परे शृङ्गे तमतेनापि योजयेत् ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ तुरीयेणोत्तमं प्रोक्तं ह्ययमात्मा सिंहोऽस्मिन्नि सर्वमयं हि सर्वा-
त्माऽयं हि सर्वं नैवोत्तोऽद्वयो ह्ययमात्मैकल एवाविकल्पो न हि वस्तु
सदयं ह्योत इव सद्बनोऽयं चिद्धन आनन्दघन एकरसोऽव्यवहार्यः
केनचनाद्वितीयोत्तमं प्रोक्तं श्रैष ओंकार एवं नैवमिति पृष्ट ओमित्येवाह
वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वं न ह्यशब्दनिवेहास्ति चिन्मयो ह्ययमो-
कारश्चिन्मयमिदं सर्वं तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतमभयमेत-
द्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यमनुज्ञाता
ह्ययमात्मैष ह्यस्य सर्वस्य स्वात्मानमनुजानाति न हीदं सर्वं स्वत आत्मवन्न
ह्ययमोतो नानुज्ञाताऽसङ्गत्वादविकारित्वादसत्त्वादन्त्यजानुज्ञाता ह्ययनोंकार
ओमिति ह्यनुजानाति वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वमनुजानाति चिन्मयो
ह्ययमोकारश्चिद्धीदं सर्वं निरात्मकमात्मसात्करोति तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव
तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं
वेदेति रहस्यमनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा प्रज्ञानघन एवायं ह्यस्मात्सर्वस्वात्पुरुतः
सुविभातोऽतश्चिद्धन एव न ह्ययमोतो नानुज्ञाताऽऽयं हीदं सर्वमस-
देवानुज्ञैरसो ह्ययमोकार ओमिति ह्येवानुजानाति वाग्वा ओंकारो वागेव
ह्यनुजानाति चिन्मयो ह्ययमोकारश्चिदेव ह्यनुज्ञा तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव
तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं
वेदेति रहस्यमविकल्पो ह्ययमात्माऽद्वितीयत्वादविकल्पो ह्ययमोकारोऽद्वितीय-
त्वादेव चिन्मयो ह्ययमोकारस्तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्यविकल्पो
नाविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदाऽस्ति नैवात्र काचन भिदाऽस्त्यत्र भिदा-
मिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिद्धी मृत्योर्मृत्युमामोति तदेतदद्वयं
स्वप्रकाशं महानन्दमात्मैवैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म
भवति य एवं वेदेति रहस्यम् ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्खण्डः ॥ ८ ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्निममेव नो भगवज्जोकारमात्मानमुपदिशेति
तथेत्युपद्रष्टाऽनुमन्तैष आत्मा सिंहश्चिद्रूप एवाविकारो ह्युपलब्धा सर्वत्र न
ह्यस्ति द्वैतसिद्धिरात्मैव सिद्धोऽद्वितीयो मायया ह्यन्यदिव स वा एष आत्मा
पर एवैषैव सर्वं तथा हि प्राज्ञे सैषाऽविद्या जगत्सर्वमात्मा परमात्मैव
स्वप्रकाशोऽप्यविषयज्ञानत्वाज्ज्ञानश्चेव ह्यत्र न विजानात्यनुभूतेर्माया च

तमोरूपाऽनुभूतेस्तदेतज्जडं मोहात्मकमनन्तं तुच्छमिदं रूपमस्यास्य व्यञ्जिका
नित्यनिवृत्ताऽपि मूढैरात्मैव दृष्टाऽस्य सत्त्वमसत्त्वं च दर्शयति सिद्धत्वासिद्ध-
त्वाभ्यां स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेन सैषा वटवीजसामान्यवदनेकवटशक्तिरेकैव । तद्यथा
वटवीजसामान्यमेकमनेकान्स्वाव्यतिरिक्तान्वटान्सवीजानुत्पाद्य तत्र तत्र पूर्णं
सत्तिष्ठत्येवमेवैषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि परिपूर्णानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा
जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति सैषा विचित्रा
सुदृढा बहुङ्कुरा स्वयं गुणभिन्नाऽङ्कुरेष्वपि गुणभिन्ना सर्वत्र ब्रह्माविष्णु-
शिवरूपिणी चैतन्यदीप्ता तस्मादात्मन एव त्रैविध्यं सर्वत्र योनित्वमप्यभिमन्ता
जीवो नियन्तेश्वरः सर्वाहंमानी हिरण्यगर्भस्त्रिरूप ईश्वरवद्व्यक्तचैतन्यः सर्वगो
ह्येष ईश्वरः क्रियाज्ञानात्मा सर्वं सर्वमयं सर्वं जीवाः सर्वमयाः सर्वावस्थासु
तथाप्यल्पाः स वा एष भूतानान्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा
प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव तस्मादद्वय एवायमात्मा
सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः
प्रत्यगेकरसः प्रमाणैरेतैरवगतः सत्तामात्रं हीदं सर्वं सदेव पुरस्तात्सिद्धं हि
ब्रह्म न ह्यत्र किंचनानुभूयते नाविद्याऽनुभवात्मनि स्वप्रकाशे सर्वसाक्षिण्य-
विक्रियेऽद्वये पश्यतेहापि सन्मात्रमसदन्यत्सत्यं हीत्थं पुरस्तादयोनिः स्वात्म-
स्थमानन्दचिद्धनं सिद्धं ह्यसिद्धं तद्विष्णुरीशानो ब्रह्माऽन्यदपि सर्वं सर्वगं
सर्वमत एव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मा न ह्येतन्निरात्मकमपि
नात्मा पुरतो हि सिद्धो न हीदं सर्वं कदाचिदात्मा हि स्वमहिमस्थो
निरपेक्ष एक एव साक्षी स्वप्रकाशः किं तन्नित्यमात्माऽत्र ह्येव न विचिकित्स्य-
मेतद्धीदं सर्वं साधयति द्रष्टा द्रष्टुः साक्ष्यविक्रियः सिद्धो निरविद्यो बाह्या-
न्तरवीक्षणत्सुविस्पष्टस्तमसः परस्ताद्भूतैष दृष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टोऽव्यवहार्यो-
ऽप्यल्पो नाल्पः साक्ष्यविशेषोऽन्योऽसुखदुःखोऽद्वयः परमात्मा सर्वज्ञो-
ऽनन्तोऽभिज्ञोऽद्वयः सर्वदाऽसंबित्तिर्मायया नासंबित्तिः स्वप्रकाशे यूयमेव
दृष्टः किमद्वयेन द्वितीयमेव न यूयमेव ब्रह्मेव भगवन्निति देवा ऊचुर्यूयमेव
दृश्यते चेन्नात्मज्ञा असङ्गो ह्ययमात्माऽतो यूयमेव स्वप्रकाशा इदं
हि सत्संविन्मयत्वाद्ययमेव नेति होचुर्हन्तासङ्गा वयमिति होचुः कथं
पश्यन्तीति होवाच न वयं विन्न इति होचुस्ततो यूयमेव स्वप्रकाशा इति
होवाच न च सत्संविन्माया एतौ हि पुरस्तात्सुविभातनव्यवहार्यमेवाद्वयं
ज्ञातो ह्येवैष विज्ञातो विदितान्विदितापर इति होचुः स होवाच तद्वा

मृतङ्गह्याद्वयं बृहत्त्वाक्षित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं स्वयं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानन्दं
 चिन्मात्रमात्मैवाव्यवहार्यं केनचन तदेतदात्मानमोमित्यपश्यन्तः पश्यन्त
 तदेतत्सत्यमात्मा ग्रहैव ग्रह्यात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्समित्यौ सत्यं
 तदेतत्पण्डिता एव पश्यन्त्येतद्वयशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धमव्यनमनादा-
 तत्यमगन्तव्यमविसर्जयितव्यमनानन्दयितव्यममन्तव्यमजोद्धव्यमनहंकृतैव्य-
 मचेतयितव्यमप्राणयितव्यमनपानयितव्यमव्यानयितव्यमनुदानयितव्यमस-
 मानयितव्यमनिन्द्रियमविषयमकरणमलक्षणमसङ्गमगुणमविक्रियमव्यपदेश्य-
 मसत्स्वमरजस्कमतमस्कममायमप्यौपनिषदमेव सुविभातं सकृद्भिभातं पुरतोऽ-
 स्थात्सर्वस्वात्सुविभातमद्वयं पश्यताहं स सोऽहमिति स होवाच किमेष
 दृष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टो विदिताविदितात्पर इति होचुः कैषा कथमिति होचुः
 किं तेन न किंचनेति होचुर्ययमाश्चर्यरूपा इति न चेत्साहोमित्यनुजानीध्वं
 ब्रूतैनमिति ज्ञातोऽज्ञातश्चेति होचुर्न चैवमिति होचुरिति ब्रूतैवैनमात्मसिद्धमिति
 होवाच पश्याम एव भगवन्न च वयं पश्यामो नैव वयं वक्तुं शक्नुमो नम-
 स्तेऽस्तु भगवन्प्रसीदेति होचुर्न मेतव्यं पृच्छतेति होवाच कैषाऽनुज्ञेत्येष
 एवात्मेति होवाच ते होचुर्नमस्तुभ्यं वयं त इतीति ह प्रजापतिर्देवाननुश-
 शासानुशशासेति । तदेव श्लोकः—ओतमोतेन जानीयादनुज्ञातारमान्तरम् ।
 अनुज्ञामद्वयं लब्ध्वा उपद्रष्टारमात्रजेदित्युपद्रष्टारमात्रजेदिति ॥ ९ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः ० १ । ॐ स्वस्ति न इन्द्रो ० २ । ॐ शान्तिः ३ ॥

इत्यार्षणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इत्यार्षणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्समाप्ता ॥

कालामिरुद्रोपनिषत् ॥ ३० ॥

ब्रह्मज्ञानोपायतया यद्विभूतिः प्रकीर्तिता ।

कालामिरुद्रं तमहं भजतां स्वात्मदं भजे ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

ॐ अथ कालामिरुद्रोपनिषदः संवर्तकोऽग्निकर्षिरेनुरुष्टुपञ्चन्दः श्रीकाला-
 मिरुद्रो देवता श्रीकालामिरुद्रप्रीत्यर्थे भस्त्रिपुण्ड्रधारणे वित्तियोगः ॥ अथ
 कालामिरुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ—अधीहि भगवंस्त्रिपुण्ड्रविधिं सतत्त्वं
 किं द्रव्यं कियद्स्थानं कतिप्रमाणं का रेखा के मन्त्राः का शक्तिः किं दैवतं

कः कर्ता किं फलमिति च । तं होवाच भगवान्कालाग्निरुद्रः—यद्व्यं तदा-
 श्येयं भस्म सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्याग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म
 जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्मेत्यनेनाभिमन्त्र्य मानसोक्त
 इति समुद्धृत्य मा नो महान्तमिति जलेन संसृज्य त्रियायुषमिति शिरोललाट-
 वक्षःस्कन्धेषु त्रियायुषैरुपसृज्य कक्षशक्तिमिस्तिर्यक्तस्यो रेखाः प्रकुर्वीत व्रत-
 मेतच्छास्त्रम्वं सर्वेषु देवेषु वेदवादिभिरुक्तं भवति तस्मात्तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न
 पुनर्भवाय ॥ अथ सनत्कुन्मरः पत्रच्छ ब्रमाणमस्य त्रिपुण्ड्रधारणस्य त्रिधा रेखा
 भवत्याललाटादाक्षुषोरामूर्ध्वोराम्भुवोर्मध्यतश्च यास्य प्रथमा रेखा सा गार्ह-
 पत्यश्चाकारो रजोभूर्लोकः स्वात्मा क्रियाशक्तिर्ऋग्वेदः प्रातःसवनं महेश्वरं
 देवतेति यास्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकारः सत्त्वमन्तरिक्षमन्तरात्मा
 चेच्छाशक्तिर्यजुर्वेदो माध्यदिनं सवनं सदाशिवो देवतेति यास्य तृतीया रेखा
 साहवनीयो मकारस्तमो धौर्लोकः परमात्मा ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं
 महादेवो देवतेति एवं त्रिपुण्ड्रविधिं भस्मना करोति यो विद्वान्ब्रह्मचारी गृही
 वानप्रस्थो यतिर्वा स महापातकोपपातकेभ्यः पूतो भवति स सर्वेषु तीर्थेषु
 स्नातो भवति स सर्वान्वेदानधीतो भवति स सर्वान्वेदाभ्यासातो भवति स
 सततं सकलरुद्रमन्त्रजापी भवति स सकलभोगान्भुङ्क्ते देहं त्यक्त्वा शिवसा-
 युज्यमेति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत इत्याह भगवान्कालाग्निरुद्रः ॥
 यस्त्वेतद्वाधीते सोऽप्येवमेव भवतीत्यो सत्यमित्युपनिषत् ॥ ३० ॥

ॐ सह नाववज्जिति शान्तिः ॥

इति कालाग्निरुद्रोपनिषत्समाप्ता ॥

मैत्रेय्युपनिषत् ॥ ३१ ॥

श्रुत्याचार्योपदेशेन मुनयो यत्पदं ययुः ।

तत्त्वानुभूतिसंसिद्धं स्वमात्रं ब्रह्म भावये ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

ॐ बृहद्रथो वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं निधापयित्वेदमशाश्वतं मन्य-
 मानः शरीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम । स तत्र परमं तप आस्थायादि-
 त्यमीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुस्तिष्ठत्यन्ते सहस्रस्य मुनिरन्तिकमाजगामाग्निरिवाधूम-
 कस्तेजसा निर्दहन्निवातमविद्भगवान्छाकायन्य उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति

राजानमब्रवीत्स तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्नाहमात्मवित्त्वं तत्त्वविच्छृणुभो
 वयं स त्वं नो ब्रूहीत्येतद्दत्तं पुरस्तादशक्यं मा पृच्छ प्रश्नमेक्ष्वाकान्यान्कासा-
 न्वृणीष्वेति शाकायन्यस्य चरणावभिमृश्यमानो राजेमां गाथां जगाद ॥ १ ॥
 अथ किमेतैर्वान्यानां शोषणं महार्णवानां शिखरिणां प्रपतनं ध्रुवस्य प्रचलनं
 स्थानं वा तरुणां निमज्जनं पृथिव्याः स्थानादपसरणं सुराणां सोऽहमित्येत-
 द्विधेऽस्मिन्संसारे किं कामोपभोगैर्यैरेवाश्रितस्यासकृदुपावर्तनं दृश्यत इत्युद्ध-
 र्तुमर्हसीत्यन्धोदपानस्थो भेक इवाहमस्मिन्संसारे भगवंस्त्वं नो गतिरिति ॥ २ ॥
 भगवन्शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भूतं संविदपेतं निरय एव मूत्रद्वारेण निष्क्रान्त-
 मस्थिभिश्चितं मांसेनानुलिसं चर्मणावबद्धं विण्मूत्रवातपित्तकफमज्जामेदोव-
 साभिरन्यैश्च मलैर्बहुभिः परिपूर्णमेतादृशे शरीरे वर्तमानस्य भगवंस्त्वं नो
 गतिरिति ॥ ३ ॥

अथ भगवान्छाकायन्यः सुप्रीतोऽब्रवीद्राजानं महाराज बृहद्रथेक्ष्वाकुवंश-
 ध्वजशीर्षात्मशः कृतकृत्यस्त्वं मरुद्बाहो विश्रुतोऽसीत्ययं खल्वात्मा ते कतमो
 भगवान्वर्ण्य इति तं होवाच ॥ शब्दस्पर्शमया येषार्था अनर्था इव ते स्थिताः ।
 येषां सक्तस्तु भूतात्मा न स्मरेच्च परं पदम् ॥ १ ॥ तपसा प्राप्यते सत्त्वं
 सत्त्वात्संप्राप्यते मनः । मनसा प्राप्यते ह्यात्मा ह्यात्मापत्त्या निवर्तते ॥ २ ॥
 यथा निरिन्धनो बहिः स्वयोनौपशाम्यति । तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोना-
 नुपशाम्यति ॥ ३ ॥ स्वयोनौपशान्तस्य मनसः सत्यगामिनः । इन्द्रियार्थ-
 विमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः ॥ ४ ॥ चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोध-
 येत् । यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ ५ ॥ चित्तस्य हि प्रसादेन
 हन्ति कर्म शुभाशुभम् । प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ॥ ६ ॥
 समासक्तं यदा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरम् ॥ यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न
 मुच्येत बन्धनात् ॥ ७ ॥ हृत्पुण्डरीकमध्ये तु भावयेत्परमेश्वरम् । साक्षिणं
 बुद्धिवृत्तस्य परमप्रेमगोचरम् ॥ ८ ॥ अगोचरं मनोवाचामवधूतादिसंल्लवम् ।
 सत्तामात्रप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥ ९ ॥ अहेयमनुपादेयमसामान्य-
 विशेषणम् । ध्रुवं स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् । निर्विकल्पं निरा-
 भासं निर्वाणमयसंविदम् ॥ १० ॥ नित्यः शुद्धौ बुद्धमुक्तस्वभावः सत्यः
 सूक्ष्मः संविमुश्चाद्वितीयः । आनन्दाविधिर्यः परः सोऽहमस्मि प्रत्यग्धातुर्नात्र
 संशीतिरस्ति ॥ ११ ॥ आनन्दमन्तर्निजमाश्रयं तमाशापिशाचीमवमानय-
 न्तम् । आलोकयन्तं जगदिन्द्रजालमापत्कथं मां प्रविशेदसङ्गम् ॥ १२ ॥

वर्णाश्रमाचारयुता विमूढाः कर्मानुसारेण फलं लभन्ते । वर्णादिधर्मं हि परित्यजन्तः स्वानन्दतृप्ताः पुरुषा भवन्ति ॥ १३ ॥ वर्णाश्रमं सावयवं स्वरूपमाद्यन्त्युक्तं ह्यतिकृच्छ्रमात्रम् । पुत्रादिदेहेष्वभिमानशून्यं भूत्वा वसेत्सौख्यतमे ह्यनन्त इति ॥ १४ ॥

इति मैत्रेय्युपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ जगवान्मैत्रेयः कैलासं जगाम तं गत्वोवाच भो भगवन्परमतत्त्वरहस्यमनुब्रूहीति ॥ स होवाच महादेवः । देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः दिवः । त्यजेद्ज्ञाननिर्मातृं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥ १ ॥ असेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः । ज्ञानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ २ ॥ ब्रह्मानृतं पिवेद्भैक्षमाचरेद्देहरक्षणे । वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते । इत्येवमाचरेद्दीमान्स पुनं मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ जातं मृतमिदं देहं मातापितृमलात्मकम् । सुखदुःखालयामेध्यं स्पृष्ट्वा ज्ञानं विधीयते ॥ ४ ॥ धातुबद्धं महारोगं पापमन्दिरमधुवम् । विकाराकारविस्तीर्णं स्पृष्ट्वा ज्ञानं विधीयते ॥ ५ ॥ नवद्वारमलस्रावं सदा काले स्वभावजम् । दुर्गन्धं दुर्मलोपेतं स्पृष्ट्वा ज्ञानं विधीयते ॥ ६ ॥ नातृसूतकसंबन्धं सूतके सह जायते । मृतसूतकजं देहं स्पृष्ट्वा ज्ञानं विधीयते ॥ ७ ॥ अहंमेति विष्मृत्त्रलेपगन्धादिमोचनम् । शुद्धशौचमिति प्रोक्तं नृजलमग्न्यां तु लौकिकम् ॥ ८ ॥ चित्तशुद्धिकरं शौचं वासनात्रयनाशनम् । ज्ञानवैराग्यमृत्तौयैः क्षालनाच्छौचमुच्यते ॥ ९ ॥ अद्वैतभावनाभैक्षमभक्ष्यं द्वैतभावनम् । गुरुशास्त्रोक्तभावेन भिक्षोर्भैक्षं विधीयते ॥ १० ॥ विद्वान्स्वदेशमुत्सृज्य संन्यासानन्तरं स्वतः । कारागारविनिर्मुक्तचोरवद्भूतो वसेत् ॥ ११ ॥ अहंकारसुतं वित्तभ्रातरं मोहमन्दिरम् । आशापत्नीं त्यजेद्वावन्मुक्तो न संशयः ॥ १२ ॥ मृतां मोहमयीं मातां जातो बोधमयः सुतः । सूतकद्वयसंप्राप्तौ कथं संध्यामुपासहे ॥ १३ ॥ हृदाकाशे विदादित्यः सदा भासति भासति । नास्तमेति न चोदेति कथं संध्यामुपासहे ॥ १४ ॥ एकमेवाद्वितीयं यदुरोर्वक्त्रेन निश्चितम् । एतदेकान्तमित्युक्तं न भटो न वनान्तरम् ॥ १५ ॥ असंशयवतां मुक्तिः संशयाविष्टचेतसाम् । न मुक्तिर्जन्मजन्मान्ते तस्माद्विश्वासमाप्नुयात् ॥ १६ ॥ कर्मत्यागाच्च संन्यासो न

प्रेषोच्चारणेन तु । संधौ जीवात्मनोरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥
 वमनाहारवद्यस्य भाति सर्वेषणादिषु । तस्याधिकारः संन्यासे त्यक्तदेहाभिमा-
 न्निनः ॥ १८ ॥ यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु । तदैव संन्यसेद्विद्वा-
 नन्यथा पतितो भवेत् ॥ १९ ॥ द्रव्यार्थमन्नवस्त्रार्थं यः प्रतिष्ठार्थमेव वा ।
 संन्यसेदुभयग्रष्टः स मुक्तिं नाप्नुमर्हति ॥ २० ॥ उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यमं
 शास्त्रचिन्तनम् । अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थभ्रान्त्यधमाधमा ॥ २१ ॥ अनुभूतिं
 विना मूढो ब्रूयाद् ब्रह्मणि मोदते । प्रतिविम्बितशास्त्राग्रफलास्वादनमोदवत्
 ॥ २२ ॥ न त्यजेच्चैयतिर्मुक्तो यो माधुकरमातरम् । वैराग्यजनकं श्रद्धाकलत्रं
 ज्ञाननन्दनम् ॥ २३ ॥ धनवृद्धा वयोवृद्धा विद्यावृद्धास्तथैव च । ते सर्वे
 ज्ञानवृद्धस्य किंकराः शिष्यकिंकराः ॥ २४ ॥ यन्मायया नोहितचेतसो
 मामात्मानमापूर्णमलब्धवन्तः । परं विदग्धोदरपूरणाय अस्मन्ति काका इव
 सूरयोऽपि ॥ २५ ॥ पाषाणलोहमणिमृण्मयविग्रहेषु पूजा पुनर्जन्मभोगकरी
 मुमुक्षोः । तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्याद्वाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय
 ॥ २६ ॥ अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे । अन्तःशून्यो बहिःशून्यः
 शून्यकुम्भ इवाम्बरे ॥ २७ ॥ मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राह्यकात्मा च मा
 भव । भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ २८ ॥ द्रष्टृदर्शन-
 दृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज
 ॥ २९ ॥ संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः । जाग्रद्भिद्राविनिर्मुक्ता सा
 स्वरूपस्थितिः परा ॥ ३० ॥

इति मैत्रेय्युपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अहमसि परश्चासि ब्रह्मासि प्रभवोऽस्म्यहम् । सर्वलोकगुरुश्चासि सर्व-
 लोकेऽसि सोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥ अहमेवासि सिद्धोऽसि शुद्धोऽसि परमो-
 ऽस्म्यहम् । अहमसि सदा सोऽसि नित्योऽसि विमलोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥
 विज्ञानोऽसि विशेषोऽसि सोमोऽसि सकलोऽस्म्यहम् । शुभोऽसि शोक-
 हीनोऽसि चैतन्योऽसि समोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥ मानावमानहीनोऽसि निर्गु-
 णोऽसि शिवोऽस्म्यहम् । द्वैताद्वैतविहीनोऽसि द्वन्द्वहीनोऽसि सोऽस्म्यहम्
 ॥ ४ ॥ भावाभावविहीनोऽसि भासाहीनोऽसि भास्यहम् । शून्याशून्य-
 प्रभावोऽसि शोभनाशोभनोऽस्म्यहम् ॥ ५ ॥ तुल्यातुल्यविहीनोऽसि नित्यः

शुद्धः सदाशिवः । सर्वासर्वविहीनोऽस्मि सात्त्विकोऽस्मि सदास्म्यहम् ॥ ६ ॥
 एकसंख्याविहीनोऽस्मि द्विसंख्यावानहं न च । सदसन्नेदहीनोऽस्मि संकल्प-
 रहितोऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥ नानात्मभेदहीनोऽस्मि ह्यखण्डानन्दविग्रहः । नाह-
 मस्मि न चान्योऽस्मि देहादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ ८ ॥ आश्रयाश्रयहीनोऽस्मि
 आधाररहितोऽस्म्यहम् । बन्धमोक्षादिहीनोऽस्मि शुद्धब्रह्मास्मि सोऽस्म्यहम्
 ॥ ९ ॥ चित्तादिसर्वहीनोऽस्मि परमोऽस्मि परात्परः । सदा विचाररूपोऽस्मि
 निर्विचारोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ अकारोकाररूपोऽस्मि मकारोऽस्मि
 सनातनः । ध्यातृध्यानविहीनोऽस्मि ध्येयहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ११ ॥
 सर्वपूर्णस्वरूपोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षणः । सर्वतीर्थस्वरूपोऽस्मि परमात्मा-
 स्म्यहं शिवः ॥ १२ ॥ लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि लयहीनरसोऽस्म्यहम् । मातृ-
 मानविहीनोऽस्मि मेयहीनः शिवोऽस्म्यहम् ॥ १३ ॥ न जगत्सर्वद्रष्टास्मि
 नेत्रादिरहितोऽस्म्यहम् । प्रबुद्धोऽस्मि प्रबुद्धोऽस्मि प्रसन्नोऽस्मि परोऽस्म्यहम्
 ॥ १४ ॥ सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृदप्यहम् । सर्ववेदान्ततृप्तोऽस्मि
 सर्वदा सुलभोऽस्म्यहम् ॥ १५ ॥ मुदितामुदिताख्योऽस्मि सर्वमौनफलोऽस्म्य-
 हम् । नित्यचिन्मात्ररूपोऽस्मि सदा सच्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥ १६ ॥ यत्किञ्चि-
 दपि हीनोऽस्मि स्वल्पमप्यति नास्म्यहम् । हृदयग्रन्थिहीनोऽस्मि हृदयाम्भोज-
 मध्यगः ॥ १७ ॥ षड्विकारविहीनोऽस्मि षड्भोगरहितोऽस्म्यहम् । अरिषड्वर्ग-
 मुक्तोऽस्मि अन्तरादन्तरोऽस्म्यहम् ॥ १८ ॥ देशकालविमुक्तोऽस्मि दिग-
 म्बरसुखोऽस्म्यहम् । नास्ति नास्ति विमुक्तोऽस्मि नकाररहितोऽस्म्यहम् ॥ १९ ॥
 अखण्डाकाशरूपोऽस्मि ह्यखण्डाकारमस्म्यहम् । प्रपञ्चमुक्तचित्तोऽस्मि प्रपञ्च-
 रहितोऽस्म्यहम् ॥ २० ॥ सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् । काल-
 त्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ कायिकादिविमुक्तोऽस्मि
 निर्गुणः केवलोऽस्म्यहम् । मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं
 सदा ॥ २२ ॥ सत्यासत्यादिहीनोऽस्मि सन्मात्राज्ञास्म्यहं सदा । गन्तव्य-
 देशहीनोऽस्मि गमनादिविवर्जितः ॥ २३ ॥ सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि
 पुरुषोत्तमः । एवं स्वानुभवो यस्य सोऽहमस्मि न संशयः ॥ २४ ॥ यः
 शृणोति सकृद्वापि ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत् ॥

इति मैत्रेय्युपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति मैत्रेय्युपनिषत्समाप्ता ॥ ३१ ॥

सुबालोपनिषत् ॥ ३२ ॥

बीजाज्ञानमहामोहापह्नवाद्यद्विशिष्यते ।

निर्वीजं त्रैपदं तत्त्वं तदस्मीति विचिन्तये ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ तदाहुः किं तदासीत्तस्मै स होवाच न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्त-
मः संजायते तमसो भूतादिर्भूतादेराकाशमाकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्रेरापोऽन्धः
पृथिवी तदण्डं समभवत्तत्संवत्सरमात्रमुषित्वा द्विधाऽकरोदधस्ताद्भूमिमुपरि-
ष्टादाकाशं मध्ये पुरुषो दिव्यः सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रबाहुरिति सोऽग्रे भूतानां मृत्युमसृजन्नयक्षरं त्रिशिरस्कं त्रिपादं खण्डपरञ्चुं
तस्य ब्रह्माभिधेति स ब्रह्माणमेव विवेश स मानसान्सस पुत्रानसृजन्ते ह विराजः
सत्यमानसानसृजन्ते ह प्रजापतयः ॥ ब्राह्मणोऽस्य सुखमासीद्वाहु राजन्यः कृतः ।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः
सूर्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च हृदयात्सर्वमिदं जायते ॥

इति सुबालोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वाश्चास्थिरभ्यः पर्वता लोमभ्य ओषधिवन-
स्पतयो ललाटात्क्रोधजो रुद्रो जायते तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमे-
वैतद्यदग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं
छन्दो ज्योतिषामननं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि व्याख्यानान्युपव्याख्या-
नानि च सर्वाणि च भूतानि हिरण्यज्योतिर्यसिन्नयमात्माधिक्षियन्ति सुव-
नानि विश्वा ॥ आत्मानं द्विधाऽकरोदधेन स्त्री अर्धेन पुरुषो देवो भूत्वा देवा-
नसृजद्विर्भूत्वा ऋषीन्यक्षराक्षसगन्धर्वाग्राम्यानागरण्यांश्च पशून्सृजदितरा
गौरितरोऽनङ्गानितरो वडवेतरोऽंश्च इतरा गर्दभीतरो गर्दभ इतरा विश्वंभरी-
तरो विश्वंभरः सोऽन्ते वैश्वानरो भूत्वा संदग्ध्वा सर्वाणि भूतानि पृथिव्यप्सु
प्रलीयत आपस्तेजसि प्रलीयन्ते तेजो वायौ विलीयते वायुराकाशे विलीयत
आकाशमिन्द्रियेष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूतादौ विलीयन्ते
भूतादिर्महति विलीयते महानव्यक्ते विलीयतेऽव्यक्तमक्षरे विलीयते अक्षरं
तमसि विलीयते तमः परे देव एकीभवति परस्तान्न सन्नासन्नासदसदित्ये-
तन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

असद्वा इदमग्र आसीदजातमभूतमप्रतिष्ठितमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमग-
न्धमव्ययममहान्तमबुहन्तमजमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ अप्राण-
ममुखमश्रोत्रमवागमनोऽस्तेजस्कमचक्षुष्कमनामगोत्रमशिरस्कमपाणिपादमस्त्रि-
रथमलोहितमग्रमेयमहस्वमदीर्घमस्थूलमनग्वनल्पमपारमनिर्देश्यमनपावृतमप्र-
तर्क्यमप्रकाश्यमसंवृतमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति
कश्चनैतद्वै संत्येन दातेन तपसाऽनाशकेन ब्रह्मचर्येण निर्वेदनेनानाशकेन षडङ्गे-
नैव साधयेदेतन्नयं वीक्षेत दमं दानं दयामिति न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्य-
त्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन्नब्रह्माप्येति य एवं वेद ॥

इति सुवालोलपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

हृदयस्य मध्ये लोहितं मांसपिण्डं यस्मिंस्तद्दहरं पुण्डरीकं कुमुदमिवाने-
कधा विकसितं हृदयस्य दश छिद्राणि भवन्ति येषु प्राणाः प्रतिष्ठिताः स
यदा प्राणेन सह संयुज्यते तदा पश्यति नद्यो नगराणि बहूनि विविधानि
च यदा व्यानेन सह संयुज्यते तदा पश्यति देवांश्च ऋषींश्च यदाऽपानेन सह
संयुज्यते तदा पश्यति यक्षराक्षसगन्धर्वान्यदा दातेन सह संयुज्यते तदा
पश्यति देवलोकान्देवान्स्कन्दं जयन्तं चेति यदा समानेन सह संयुज्यते
तदा पश्यति देवलोकान्धनानि च यदा वैरम्भेण सह संयुज्यते तदा पश्यति
दृष्टं च श्रुतं च भुक्तं चाभुक्तं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति अथेमा दश दश
नाड्यो भवन्ति । तासामेकैकस्य द्वाससतिर्द्वाससतिः शाखा नाडीसहस्राणि
भवन्ति यस्मिन्नयमात्मा स्वपिति शब्दानां च करोत्यथ यद्वितीये स कोशे
स्वपिति तदेमं च लोकं परं च लोकं पश्यति सर्वान्छब्दान्विजानाति स
संप्रसाद इत्याचक्षते प्राणः शरीरं परिरक्षति हरितस्य नीलस्य पीतस्य लोहि-
तस्य श्वेतस्य नाड्यो रुधिरस्य पूर्णा अथात्रैतद्दहरं पुण्डरीकं कुमुदमिवानेकधा
विकसितं यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तथा हिता नाम नाड्यो भवन्ति हृद्या-
काशे परे कोशे दिव्योऽयमात्मा स्वपिति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते
न कंचन स्वप्नं पश्यति न तत्र देवा न देवलोका यज्ञा न यज्ञा वा न माता
न पिता न बन्धुर्न बान्धवो न स्तेनो न ब्रह्महा तेजस्कायममृतं सलिल
म्वेदं सलिलं वनं भूयस्तेनैव मार्गेण जाग्राय धावति सम्राडिति होवाच ॥

इति सुवालोलपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

स्थानानि स्थानिभ्यो यच्छति नाडी तेषां निबन्धनं चक्षुरध्यात्मं द्रष्टव्यम-
धिभूतमादित्यस्त्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यश्चक्षुषि यो द्रष्टव्ये य

आदित्ये यो नाड्यां यः प्राणे यो विज्ञाने य आनन्दे यो हृद्याकाशे य एत-
 स्मिन्सर्वसिद्धान्तरे संचरति सोऽयमात्मा तमात्मानमुपासीताजरममृतमभय-
 मशोकमनन्तम् । श्रोत्रमध्यात्मं श्रोतव्यमधिभूतं दिशस्तत्राधिदैवतं नाडी
 तेषां निबन्धनं यः श्रोत्रे यः श्रोतव्ये यो दिक्षु यो नाड्यां यः प्राणे यो
 विज्ञाने य आनन्दे यो हृद्याकाशे य एतस्मिन्सर्वसिद्धान्तरे संचरति सोऽय-
 मात्मा तमात्मानमुपासीताजरममृतमभयमशोकमनन्तम् ॥ नासाध्यात्मं
 घ्रातव्यमधिभूतं पृथिवी तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो नासायां यो
 घ्रातव्ये यः पृथिव्यां यो नाड्यां० नन्तम् ॥ जिह्वाध्यात्मं यो रसयितव्यमधि-
 भूतं वरुणस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो जिह्वायां यो रसयितव्ये
 यो वरुणे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ त्वगध्यात्मं स्पर्शयितव्यमधिभूतं वायुस्त-
 त्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यस्त्वचि यः स्पर्शयितव्ये यो वायौ यो
 नाड्यां० नन्तम् ॥ मनोऽध्यात्मं मन्तव्यमधिभूतं चन्द्रस्तत्राधिदैवतं नाडी
 तेषां निबन्धनं यो मनसि यो मन्तव्ये यश्चन्द्रे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ बुद्धि-
 रध्यात्मं बोद्धव्यमधिभूतं ब्रह्मा तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो बुद्धौ
 यो बोद्धव्ये यो ब्रह्मणि यो नाड्यां० नन्तम् ॥ अहंकारोऽध्यात्ममहंकर्तव्य-
 मधिभूतं रुद्रस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं योऽहंकारे योऽहंकर्तव्ये
 यो रुद्रे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ चित्तमध्यात्मं चेतयितव्यमधिभूतं क्षेत्रज्ञस्त-
 त्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यश्चित्ते यश्चेतयितव्ये यः क्षेत्रज्ञे यो
 नाड्यां० नन्तम् ॥ वागध्यात्मं वक्तव्यमधिभूतमग्निस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां
 निबन्धनं यो वाचि यो वक्तव्ये योऽग्नौ यो नाड्यां० नन्तम् ॥ हस्तावध्या-
 त्ममादातव्यमधिभूतमिन्द्रस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो हस्ते य
 आदातव्ये य इन्द्रे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ पादावध्यात्मं गन्तव्यमधिभूतं
 विष्णुस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यः पादे यो गन्तव्ये यो विष्णौ यो
 नाड्यां० नन्तम् ॥ पायुरध्यात्मं विसर्जयितव्यमधिभूतं सृष्ट्युस्तत्राधिदैवतं
 नाडी तेषां निबन्धनं यः पायौ यो विसर्जयितव्ये यो सृष्ट्यौ यो नाड्यां०
 नन्तम् ॥ उपस्थोऽध्यात्ममानन्दयितव्यमधिभूतं प्रजापतिस्तत्राधिदैवतं नाडी
 तेषां निबन्धनं य उपस्थे य आनन्दयितव्ये यः प्रजापतौ यो नाड्यां यः
 प्राणे यो विज्ञाने य आनन्दे यो हृद्याकाशे य एतस्मिन्सर्वसिद्धान्तरे संचरति
 सोऽयमात्मा तमात्मानमुपासीताजरममृतमभयमशोकमनन्तम् ॥ एष सर्वज्ञ

एष सर्वेश्वर एष सर्वाधिपतिरेषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य सर्वसौख्यैरूपास्य-
मानो न च सर्वसौख्यान्युपास्यति वेदशास्त्रैरूपास्यमानो न च वेदशास्त्राण्यु-
पास्यति यस्यान्नमिदं सर्वं न च योऽन्नं भवत्यतः परं सर्वनयनः प्रशास्तान्न-
मयो भूतात्मा प्राणमय इन्द्रियात्मा मनोमयः संकल्पात्मा विज्ञानमयः
कालात्मानन्दमयो लयात्मैकत्वं नास्ति द्वैतं कुतो मर्त्यं नास्त्यमृतं कुतो
नान्तःप्रज्ञो न बहिःप्रज्ञो नोभयतःप्रज्ञो न प्रज्ञानघनो न प्रज्ञो नाप्रज्ञोऽपि
नो विदितं वेद्यं नास्तीत्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदा-
नुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

नैवेह किंचनाग्र आसीदमूलमनाधारमिमाः प्रजाः प्रजायन्ते । दिव्यो देव एको
नारायणश्चक्षुश्च द्रष्टव्यं च नारायणः श्रोत्रं च श्रोतव्यं च नारायणो घ्राणं च
घ्रातव्यं च नारायणो जिह्वा च रसयितव्यं च नारायणस्त्वक् च स्पर्शयितव्यं
च नारायणो मत्तश्च मन्तव्यं च नारायणो बुद्धिश्च बोद्धव्यं च नारायणोऽहं-
कारश्चाहंकर्तव्यं च नारायणश्चित्तं च चेतयितव्यं च नारायणो वाक् च
वक्तव्यं च नारायणो हस्तौ चादातव्यं च नारायणः पादौ च गन्तव्यं च
नारायणः पायुश्च विसर्जयितव्यं च नारायण उपस्थश्चानन्दयितव्यं च नारा-
यणो धाता विधाता कर्ता विकर्ता दिव्यो देव एको नारायण आदित्या रुद्रा
अरुतो वसवोऽश्विनावृचो यजूंषि सामानि मन्त्रोऽग्निराज्याहुतिर्नारायण उद्भवः
संभवो दिव्यो देव एको नारायणो माता पिता आता निवासः शरणं सुह-
ज्जतिर्नारायणो विराजा सुदर्शनाजितालोभ्यामोवाकुमारामृतासत्यामध्यमाना-
सौराशिश्चुरासूरासूर्यास्वराविज्ञेयानि नाडीनामानि दिव्यानि गर्जति गायति
वाति वर्षति वरुणोऽर्यमा चन्द्रमाः कला कलिर्धाता ब्रह्मा प्रजापतिर्मैषवा
दिवसाश्चार्धदिवसाश्च कलाः कल्पाश्चोर्ध्वं च दिशश्च सर्वं नारायणः ॥ पुरुष
भवेदं सर्वं यद्धतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
सद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ तद्वि-
प्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ तदेतन्निर्वा-
णानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अन्तःशरीरे निहितो गुहायामज एको नित्यो यस्य पृथिवी शरीरं यः
पृथिवीमन्तरे संचरन् यं पृथिवी न वेद ॥ यस्याः शरीरं योऽपोन्तरे संच-

रन्यमापो न विदुः ॥ यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोन्तरे संचरन् यं तेजो न वेद ।
 यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरे संचरन् यं वायुर्न वेद ॥ यस्याकाशः शरीरं
 य आकाशमन्तरे संचरन् यमाकाशो न वेद ॥ यस्य मनः शरीरं यो मनोन्तरे
 संचरन् यं मनो न वेद ॥ यस्य बुद्धिः शरीरं यो बुद्धिमन्तरे संचरन् यं
 बुद्धिर्न वेद ॥ यस्याहंकारः शरीरं योऽहंकारमन्तरे संचरन् यमहंकारो न
 वेद ॥ यस्य चित्तं शरीरं यश्चित्तमन्तरे संचरन् यं चित्तं न वेद ॥ यस्याव्यक्तं
 शरीरं योऽव्यक्तमन्तरे संचरन् यमव्यक्तं न वेद ॥ यस्याक्षरं शरीरं योऽक्षरमन्तरे
 संचरन् यमक्षरं न वेद ॥ यस्य मृत्युः शरीरं यो मृत्युमन्तरे संचरन् यं मृत्युर्न
 वेद ॥ स एष सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः ॥ एतां
 विद्यामपान्तरतमाय ददावपान्तरतमो ब्रह्मणे ददौ ब्रह्मा घोराङ्गिरसे ददौ
 घोराङ्गिरा रैकाय ददौ रैको रामाय ददौ रामः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ददानित्येवं
 निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अन्तःशरीरे निहितो गुहायां शुद्धः सोऽयमात्मा सर्वस्य मेदोमांसच्छेदा-
 वकीर्णे शरीरमध्येऽत्यन्तोपहते चित्रभित्तिप्रतीकाशे गान्धर्वनगरोपमे कदली-
 गर्भं वस्त्रिः सारे जलबुद्बुदवच्चञ्चले निःसृतमात्मानमचिन्त्यरूपं दिव्यं देवमसङ्गं
 शुद्धं तेजस्कायमरूपं सर्वेश्वरमचिन्त्यमशरीरं निहितं गुहायाममृतं विभ्राज-
 मानमानन्दं तं पश्यन्ति विद्वांसस्तेन लये न पश्यन्ति ॥

इति सुबालोपनिषत्सुष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ हैन रैकः प्रपच्छ भगवन्कस्मिन्सर्वेऽस्तं गच्छन्तीति ॥ तस्मै स होवाच
 चक्षुरेवाप्येति यच्चक्षुरेवास्तमेति द्रष्टव्यमेवाप्येति यो द्रष्टव्यमेवास्तमेत्यादि-
 त्यमेवाप्येति य आदित्यमेवास्तमेति विराजमेवाप्येति यो विराजमेवास्तमेति
 प्राणमेवाप्येति यः प्राणमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमे-
 त्यानन्दमेवाप्येति य आनन्दमेवास्तमेति तुरीयमेवाप्येति यस्तुरीयमेवास्त-
 मेति तदमृतमभयमशोकमनन्तनिर्बीजमेवाप्येतीति होवाच ॥ श्रोत्रमेवा-
 प्येति यः श्रोत्रमेवास्तमेति श्रोतव्यमेवाप्येति यः श्रोतव्यमेवास्तमेति दिश-
 मेवाप्येति यो दिशमेवास्तमेति सुदर्शनामेवाप्येति यः सुदर्शनामेवास्तमेत्य-
 पानमेवाप्येति योऽपानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमेति
 तदमृतमभयमशोकमनन्तनिर्बीजमेवाप्येतीति होवाच ॥ नासामेवाप्येति यो

नासामेवास्तमेति घ्रातव्यमेवाप्येति यो घ्रातव्यमेवास्तमेति पृथिवीमेवाप्येति
 यः पृथिवीमेवास्तमेति जितामेवाप्येति यो जितामेवास्तमेति ध्यानमेवाप्येति
 यो ध्यानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं होवाच ॥ जिह्वामेवाप्येति
 यो जिह्वामेवास्तमेति रसयितव्यमेवाप्येति यो रसयितव्यमेवास्तमेति वरुण-
 मेवाप्येति यो वरुणमेवास्तमेति सौम्यामेवाप्येति यः सौम्यामेवास्तमेत्यु-
 दानमेवाप्येति य उदानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं होवाच ॥
 त्वचमेवाप्येति यस्त्वचमेवास्तमेति स्पर्शयितव्यमेवाप्येति यः स्पर्शयितव्यमे-
 वास्तमेति वायुमेवाप्येति यो वायुमेवास्तमेति मेधामेवाप्येति यो मेधा-
 मेवास्तमेति समानमेवाप्येति यः समानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं
 होवाच ॥ वाचमेवाप्येति यो वाचमेवास्तमेति वक्तव्यमेवाप्येति यो वक्तव्य-
 मेवास्तमेत्यग्निमेवाप्येति योऽग्निमेवास्तमेति कुमारामेवाप्येति यः कुमार-
 मेवास्तमेति वैरम्भमेवाप्येति यो वैरम्भमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं
 होवाच ॥ हस्तमेवाप्येति यो हस्तमेवास्तमेत्यादातव्यमेवाप्येति य आदातव्य-
 मेवास्तमेतीन्द्रमेवाप्येति य इन्द्रमेवास्तमेत्यमृतमेवाप्येति योऽमृतमेवास्त-
 मेति मुख्यमेवाप्येति यो मुख्यमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं होवाच ॥
 पादमेवाप्येति यः पादमेवास्तमेति गन्तव्यमेवाप्येति यो गन्तव्यमेवास्तमेति
 विष्णुमेवाप्येति यो विष्णुमेवास्तमेति सत्यामेवाप्येति यः सत्यामेवास्तमे-
 त्यन्तर्याममेवाप्येति योऽन्तर्याममेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदं होवाच ॥
 पायुमेवाप्येति यः पायुमेवास्तमेति विसर्जयितव्यमेवाप्येति यो विसर्जयित-
 व्यमेवास्तमेति मृत्युमेवाप्येति यो मृत्युमेवास्तमेति मध्यमामेवाप्येति यो
 मध्यमामेवास्तमेति प्रभञ्जनमेवाप्येति यः प्रभञ्जनमेवास्तमेति विज्ञानमे-
 वाप्येति तदं होवाच ॥ उपस्थमेवाप्येति य उपस्थमेवास्तमेत्यानन्दयितव्य-
 मेवाप्येति य आनन्दयितव्यमेवास्तमेति प्रजापतिमेवाप्येति यः प्रजापति-
 मेवास्तमेति नासीरामेवाप्येति यो नासीरामेवास्तमेति कुमारमेवाप्येति यः
 कुमारमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं होवाच ॥ मन एवाप्येति यो
 मन एवास्तमेति मन्तव्यमेवाप्येति यो मन्तव्यमेवास्तमेति चन्द्रमेवाप्येति
 यश्चन्द्रमेवास्तमेति शिशुमेवाप्येति यः शिशुमेवास्तमेति ज्येनमेवाप्येति यः
 ज्येनमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृतं होवाच ॥ बुद्धिमेवाप्येति यो
 बुद्धिमेवास्तमेति बोद्धव्यमेवाप्येति यो बोद्धव्यमेवास्तमेति ब्रह्माणमेवा-

प्येति यो ब्रह्माणमेवास्तमेति सूर्यामेवास्तमेति यः सूर्यामेवास्तमेति
 कृष्णमेवाप्येति यः कृष्णमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृत० होवाच ॥
 अहंकारमेवाप्येति योऽहंकारमेवास्तमेत्यहंकर्तव्यमेवाप्येति योऽहंकर्तव्यमेवा-
 स्तमेति रुद्रमेवाप्येति यो रुद्रमेवास्तमेत्यसुरामेवाप्येति योऽसुरामेवा-
 स्तमेति श्वेतमेवाप्येति यः श्वेतमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृत०
 होवाच चित्तमेवाप्येति यश्चित्तमेवास्तमेति चेतयितव्यमेवाप्येति यश्चेत-
 यितव्यमेवास्तमेति क्षेत्रज्ञमेवाप्येति यः क्षेत्रज्ञमेवास्तमेति भास्वतीमेवाप्येति
 यो भास्वतीमेवास्तमेति नागमेवाप्येति यो नागमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति
 यो विज्ञानमेवास्तमेत्यानन्दमेवाप्येति य आनन्दमेवास्तमेति तुरीयमेवाप्येति
 यस्तुरीयमेवास्तमेति तदमृतमभयमशोकमनन्तं निर्वाजमेवाप्येति तदमृत०
 होवाच ॥ य एवं निर्वाजं वेद निर्वाज एव स भवति न जायते न म्रियते न
 सुह्यते न भिद्यते न दह्यते न छिद्यते न कम्पते न कुप्यते सर्वदहनोऽयमा-
 त्मेत्याचक्षते नैवमात्मा प्रवचनशतेनापि लभ्यते न बहुश्रुतेन बुद्धिज्ञाना-
 श्रितेन न मेधया न वेदैर्न यज्ञैर्न तपोभिरुग्रैर्न सांख्यैर्न योगैर्नाश्रमैर्नान्यैरा-
 त्मानमुपलभन्ते प्रवचनेन प्रशंसया व्युत्थानेन तमेतं ब्राह्मणा शुश्रुवांसोऽ-
 नूचाना उपलभन्ते शान्तो दान्त उपरतस्तितिधुः समाहितो भूत्वात्मन्येवा-
 त्मानं पश्यति सर्वस्यात्मा भवति य एवं वेद ॥

इति सुबालोपनिषत्सु नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ हैनं रैकः पप्रच्छ भगवन्कस्मिन्सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति रसातल-
 लोकेष्विति होवाच कस्मिन्नसातललोका ओताश्च प्रोताश्चेति भूर्लोकेष्विति
 होवाच । कस्मिन्भूर्लोका ओताश्च प्रोताश्चेति भुवर्लोकेष्विति होवाच । कस्मिन्भु-
 वर्लोका ओताश्च प्रोताश्चेति सुवर्लोकेष्विति होवाच । कस्मिन्सुवर्लोका ओताश्च
 प्रोताश्चेति महर्लोकेष्विति होवाच । कस्मिन्महर्लोका ओताश्च प्रोताश्चेति
 जनोलोकेष्विति होवाच । कस्मिन् जनोलोका ओताश्च प्रोताश्चेति तपोलोके-
 ष्विति होवाच । कस्मिन्स्तपोलोका ओताश्च प्रोताश्चेति सत्यलोकेष्विति होवाच
 कस्मिन्सत्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेष्विति होवाच । कस्मिन्प्र-
 जापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोकेष्विति होवाच । कस्मिन्ब्रह्मलोका
 ओताश्च प्रोताश्चेति सर्वलोका आत्मनि ब्रह्मणि मणय इवौताश्च प्रोताश्चेति
 स होवाच । एवमेतान् लोकानात्मनि प्रतिष्ठितान्वेदात्मैव स भवतीत्येत-
 निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथ हैनं रैकः पप्रच्छ भगवन्योऽयं विज्ञानघन उत्कामन्स केन कतरद्वाव
स्थानमुत्सृज्यापाक्रामतीति तस्मै स होवाच । हृदयस्य मध्ये लोहितं मांसपिण्डं
यस्मिंस्तद्दहरं पुण्डरीकं कुमुदमिवानेकधा विकसितं तस्य मध्ये समुद्रः समु-
द्रस्य मध्ये कोशस्तस्मिन्नाब्जश्चतस्रो भवन्ति रमारमेच्छाऽपुनर्भवेति तत्र रमा
पुण्येन पुण्यं लोकं नयत्यरमा पापेन पापमिच्छया यत्स्मरति तदभिसंपद्यते
अपुनर्भवया कोशं भिनत्ति कोशं भित्त्वा शीर्षकपालं भिनत्ति शीर्षकपालं
भित्त्वा पृथिवीं भिनत्ति पृथिवीं भित्त्वाऽपो भिनत्त्यापो भित्त्वा तेजो भिनत्ति
तेजो भित्त्वा वायुं भिनत्ति वायुं भित्त्वाकाशं भिनत्त्याकाशं भित्त्वा मनो भिनत्ति
मनो भित्त्वा भूतादिं भिनत्ति भूतादिं भित्त्वा महान्तं भिनत्ति महान्तं
भित्त्वाव्यक्तं भिनत्त्यव्यक्तं भित्त्वाक्षरं भिनत्त्यक्षरं भित्त्वा मृत्युं भिनत्ति मृत्युर्वै
परे देव एकीभवतीति परस्तान्न सन्नासन्न सदसदित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति
वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्स्वेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

ॐ नारायणाद्वा अन्नमागतं पक्कं ब्रह्मलोके महासंवर्तके पुनः पक्कमादित्ये
पुनः पक्कं ऋग्यादि पुनः पक्कं जालकिलङ्कितं पर्युषितं पूतमन्नमयाचितमसं-
कृष्टमन्नीयान्न कंचन याचेत ॥

इति सुबालोपनिषत्सु द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

बाल्येन तिष्ठासेद्बालस्वभावोऽसङ्गो निरवद्यो मौनेन पाण्डित्येन निरवधि-
कारतयोपलभ्येत कैवल्यमुक्तं निगमनं प्रजापतिरुवाच महत्पदं ज्ञात्वा वृक्ष-
मूले वसेत कुचेलोऽसहाय एकाकी समाधिस्थ आत्मकाम आसकामो
निष्कामो जीर्णकामो हस्तिनि सिंहे दंशे मशके नकुले सर्पराक्षसगन्धर्वे
मृत्यो रूपाणि विदित्वा न बिभेति कुतश्चनेति वृक्षमिव तिष्ठासेच्छिद्यमानो-
ऽपि न कुप्येत न कम्पेतोत्पलमिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पे-
ताकाशमिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेत सत्येन तिष्ठासेत्सत्यो-
ऽयमात्मा सर्वेषामेव गन्धानां पृथिवी हृदयं सर्वेषामेव रसानामापो हृदयं
सर्वेषामेव रूपाणां तेजो हृदयं सर्वेषामेव स्पर्शानां वायुर्हृदयं सर्वेषामेव शब्दा-
नामाकाशं हृदयं सर्वेषामेव गतीनामव्यक्तं हृदयं सर्वेषामेव सत्त्वानां
मृत्युर्हृदयं मृत्युर्वै परे देव एकीभवतीति परस्तान्न सन्नासन्न सदसदित्येत-
न्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

ॐ पृथिवी वाङ्ममापोऽन्नादा आपो वाङ्मं ज्योतिरन्नादं ज्योतिर्वाङ्मं वायुर-
न्नादो वायुर्वाङ्ममाकाशोऽन्नाद आकाशो वाङ्ममिन्द्रियाण्यन्नादानीन्द्रियाणि
वाङ्मं मनोऽन्नादं मनो वाङ्मं बुद्धिरन्नादा बुद्धिर्वाङ्ममव्यक्तमन्नादमव्यक्तं वाङ्म-
मक्षरमन्नादमक्षरं वाङ्मं मृत्युरन्नादो मृत्युर्वै परे देव एकीभवतीति परस्ताच्च
सन्नासन्न सदसदित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम्॥

इति सुबालोपनिषत्सु चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अथ हैनं रैक्कः पप्रच्छ भगवन्त्योऽयं विज्ञानघन उत्कामन्स केन कतरद्वाव
स्थानं दहतीति तस्मै स होवाच योऽयं विज्ञानघन उत्कामन्प्राणं दहत्यपानं
व्यानमुदानं समानं वैरम्भं मुख्यमन्तर्यामं प्रभञ्जनं कुमारं ज्येनं श्वेतं कृष्णं
नागं दहति पृथिव्यापस्तेजोवाय्वाकाशं दहति जागरितं स्वप्नं सुषुप्तं तुरीयं
च महतां च लोकं परं च लोकं दहति लोकालोकं दहति धर्माधर्मं दहत्य-
भास्करममर्यादं निरालोकमतः परं दहति महान्तं दहत्यव्यक्तं दहत्यक्षरं
दहति मृत्युं दहति मृत्युर्वै परे देव एकीभवतीति परस्ताच्च सन्नासन्न सदस-
दित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

सौबालबीजब्रह्मोपनिषद्वाप्रशान्ताय दातव्या नापुत्राय नाशिष्याय नासं-
वत्सररात्रोषिताय नापरिज्ञातकुलशीलाय दातव्या नैव च प्रवक्तव्या । यस्य
देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मन
इत्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति सुबालोपनिषत्समाप्ता ॥ ३२ ॥

श्रुरिकोपनिषत् ॥ ३३ ॥

ऋवत्यनाडीकान्तस्थपराभूमिनिवासिनम् ।

श्रुरिकोपनिषद्योगभासुरं राममाश्रये ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ श्रुरिकां संप्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये । यां प्राप्य न पुनर्जन्म
योगयुक्तः स जायते ॥ वेदतत्त्वार्थविहितं यथोक्तं हि स्वयंमुवा ॥ १ ॥
निःशब्दं देशमास्थाय तन्नासनमवस्थितः । कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य मनो
हृदि निरुध्य च ॥ २ ॥ मात्राद्वादशयोगेन प्रणवेन शनैः शनैः ।

पूरयेत्सर्वमात्मानं सर्वद्वारान्निरुध्य च ॥ ३ ॥ उरोमुखकटिग्रीवं किञ्चि-
 द्भृदयमुन्नतम् । प्राणान्संचारयेत्तस्मिन्नासाभ्यन्तरचारिणः ॥ ४ ॥ भूत्वा तत्र
 गतः प्राणः शनैरथ समुत्सजेत् ॥ ५ ॥ स्थिरमात्रादहं कृत्वा अङ्गुष्ठेन
 समाहितः । द्वे तु गुल्फे प्रकुर्वीत जङ्घे चैव त्रयस्त्रयः ॥ द्वे जानुनी
 तयोरुभ्यां गुदे शिखे त्रयस्त्रयः ॥ ६ ॥ वायोरायतनं चात्र नाभिदेशे
 समाश्रयेत् । तत्र नाडी सुषुम्ना तु नाडीभिर्बहुभिर्वृता ॥ अणुरक्ताश्च पीताश्च
 कृष्णास्तान्नविलोहिताः ॥ ७ ॥ अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं
 समाश्रयेत् । ततः संचारयेत्प्राणानूर्णनाभीव तन्तुना ॥ ८ ॥ ततो रक्तोत्प-
 लाभासं पुरुषायतनं महत् । दहरं पुण्डरीकेति वेदान्तेषु निगद्यते ॥
 तस्मिन्त्वा कण्ठमायाति तां नाडीं पूरयन्त्यतः ॥ ९ ॥ मनसस्तु क्षुरं गृह्य
 सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ॥ पादस्योपरि मर्मज्य तद्रूपं नाम कृन्तयेत् ॥ १० ॥
 मनोद्वारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यशः । इन्द्रवज्र इति प्रोक्तं मर्मजङ्घा-
 नुकीर्तनम् ॥ तच्चानवलयोगेन धारणाभिर्निकृन्तयेत् ॥ ११ ॥ उरोर्मध्ये
 तु संस्थाप्य मर्मप्राणविमोचनम् ॥ चतुरभ्यासयोगेन छिन्देदनभिः शङ्कितः
 ॥ १२ ॥ ततः कण्ठान्तरे योगी समूहं नाडिसंचयम् । एकोत्तरं नाडिशतं
 तासां मध्ये वराः स्मृताः ॥ १३ ॥ इडा रक्षतु वामेन पिङ्गला दक्षिणेन
 तु । तयोर्मध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १४ ॥ सुषुम्ना तु परे
 लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी । द्वासप्ततिसहस्राणि प्रति नाडीषु तैतिलम् ॥
 छिद्यन्ते ध्यानयोगेन सुषुम्नैका न छिद्यते ॥ १५ ॥ योगनिर्मलधारेण
 शुरेणामलवर्चसा । छिन्देन्नाडीशतं धीरः प्रभावादिह जन्मति ॥ १६ ॥
 जातीपुष्पसमायोगैर्यथा वास्यन्ति तैतिलम् । एवं शुभाशुभैर्भावैः सा नाडी
 तां विभावयेत् ॥ १७ ॥ तद्भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविजर्जिताः ॥ १८ ॥
 ततो विदितचित्तस्तु निःशब्दं देशमास्थितः । निःसङ्गस्तत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः
 ज्ञानैः शनैः ॥ १९ ॥ पाशं छित्त्वा यथा हंसो निर्विशङ्कः खमुत्क्रमेत् ।
 छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते तदा ॥ २० ॥ यथा निर्वाणकाले तु दीपो
 दग्ध्वा लयं ब्रजेत् । तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं ब्रजेत् ॥ २१ ॥
 प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित् । वैराग्योपलब्धृष्टेन छित्त्वा तन्तुं
 न बध्यते ॥ २२ ॥ अमृतत्वं समाप्नोति यदा कम्मात्प्रमुच्यते । सर्वैषणा-
 विनिर्मुक्तश्छित्त्वा तन्तुं न बध्यते छित्त्वा तन्तुं न बध्यत इति ॥ २३ ॥
 इत्याथर्वणीयश्रुरिकोपनिषत्समाप्ता ॥ ३३ ॥

मन्त्रिकोपनिषत् ॥ ३४ ॥

स्वाविद्याद्वयतत्कार्यापह्नवज्ञानभासुरम् ।

मन्त्रिकोपनिषद्वेद्यं रामचन्द्रमहं भजे ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ अष्टपादं शुचिं हंसं त्रिसूत्रमणुमव्ययम् । त्रिवर्त्मानं तेजसोऽहं सर्वतः-
पश्यन्न पश्यति ॥ १ ॥ भूतसंमोहने काले भिन्ने तमसि वैखरे । अन्तः
पश्यन्ति सत्त्वस्था निर्गुणं गुणगह्वरे ॥ २ ॥ अशक्यः सोऽन्यथा द्रष्टुं ध्यायमानः
कुमारकैः । विकारजननीमज्ञामष्टरूपामजां ध्रुवाम् ॥ ३ ॥ ध्यायतेऽध्यासिता
तेन तन्यते प्रेर्यते पुनः । सूयते पुरुषार्थं च तेनैवाधिष्ठितं जगत् ॥ ४ ॥
गौरनाथान्तवती सा जनित्री भूतभाविनी । सितासिता च रक्ता च सर्वकाम-
दुघा विभोः ॥ ५ ॥ पिबन्त्येनामविषयामविज्ञातां कुमारकाः । एकस्तु पिबते
देवः स्वच्छन्दोऽत्र वशानुगः ॥ ६ ॥ ध्यानक्रियाभ्यां भगवान्भुङ्क्तेऽसौ प्रसह-
द्विभुः । सर्वसाधारणीं दोग्ध्रीं पीयमानां तु यज्वभिः ॥ ७ ॥ पश्यन्त्यस्यां
महात्मानः सुवर्णं पिप्पलाशनम् । उदासीनं ध्रुवं हंसं स्नातकाध्वर्यवो जगुः
॥ ८ ॥ शंसन्तमनुशंसन्ति बहुचाः शास्त्रकोविदाः । रथन्तरं बृहत्साम सप्त-
वैधैस्तु गीयते ॥ ९ ॥ मन्त्रोपनिषदं ब्रह्म पदक्रमसमन्वितम् । पठन्ति भार्गवा
ज्ञेते ह्यथर्वाणो भृगूत्तमाः ॥ १० ॥ सन्नह्यचारिवृत्तिश्च स्तम्भोऽथ फलि-
तस्तथा । अनङ्गात्रोहितोच्छिष्टः पश्यन्ते बहुविस्तरम् ॥ ११ ॥ कालः प्राणश्च
भगवान्मृत्युः शर्वो महेश्वरः । उग्रो भवश्च रुद्रश्च ससुरः सासुरस्तथा ॥ १२ ॥
प्रजापतिर्विराट् चैव पुरुषः सलिलमेव च । स्तूयते मन्त्रसंस्तुत्यैरथर्वविदितै-
र्विभुः ॥ १३ ॥ तं षड्विंशक इत्येते सप्तविंशं तथापरे । पुरुषं निर्गुणं सांख्य-
मथर्वशिरसो विदुः ॥ १४ ॥ चतुर्विंशतिसंख्यातं व्यक्तमव्यक्तमेव च । अद्वैतं
द्वैतमित्याहुस्त्रिधा तं पञ्चधा तथा ॥ १५ ॥ ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च पश्यन्ति
ज्ञानचक्षुषः । तमेकमेव पश्यन्ति परिशुभ्रं विभुं द्विजाः ॥ १६ ॥ यस्मि-
न्सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजंगमम् । तस्मिन्नेव लयं यान्ति स्रवन्त्यः सागरे
यथा ॥ १७ ॥ यस्मिन्भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्चाव्यक्तां ययुः । पश्यन्ति
व्यक्तां भूयो जायन्ते बुहुदा इव ॥ १८ ॥ क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चैव कारणैर्विद्यते
पुनः । एवं स भगवान्देवं पश्यन्त्यन्ये पुनःपुनः ॥ १९ ॥ ब्रह्म ब्रह्मेत्यथा-
यान्ति ये विदुर्ब्राह्मणास्तथा । अत्रैव ते लयं यान्ति लीनाश्चाव्यक्तशालिनः
लीनाश्चाव्यक्तशालिन इत्युपनिषत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति यजुर्वेदीयमन्त्रिकोपनिषत्समाप्ता ॥ ३४ ॥

सर्वसारोपनिषत् ॥ ३५ ॥

समस्तवेदान्तसारसिद्धान्तार्थकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥

सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् ।

तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

ॐ कथं बन्धः कथं मोक्षः काऽविद्या का विद्येति जाग्रत्स्वप्नं सुषुप्तं तुरीयं च कथम्, अन्नमयः प्राणमयो मनोमयो विज्ञानमय आनन्दमयः कथं, कर्ता जीवः क्षेत्रज्ञः साक्षी कूटस्थोऽन्तर्यामी कथं प्रत्यगात्मा परमात्मा माया चेति कथम् । आत्मेश्वरोऽनात्मनो देहादीनात्मत्वेनाभिमन्यते सोऽभिमान आत्मनो बन्धस्तन्निवृत्तिर्मोक्षस्तदभिमानं कारयति या साऽविद्या, सोऽभिमानो ययाऽभिनिवर्तते सा विद्या । मनआदिचतुर्दशकरणैः पुष्कलैरादित्याद्यजुगृहीतैः शब्दादीन्विषयान्स्थूलान्यदोपलभते तदात्मनो जागरणं, तद्वासनारहितश्चतुर्भिः करणैः शब्दाद्यभावेऽपि वासनामयाशब्दादीन्यदोपलभते तदात्मनः स्वप्नम् । चतुर्दशकरणोपरमाद्विशेषविज्ञानाभावाद्यदा तदात्मनः सुषुप्तम् ॥ १ ॥ अवस्थान्नयभावाद्भावसाक्षि स्वयं भावाभावरहितं नैरन्तर्यं चैक्यं यदा तदा तत्तुरीयं चैतन्यमित्युच्यतेऽन्नकार्याणां घण्टां कोशानां समूहोऽन्नमयः कोश इत्युच्यते । प्राणादिचतुर्दशवायुमेदा अन्नमये कोशे यदा वर्तन्ते तदा प्राणमयः कोश इत्युच्यते एतत्कोशद्वयसंयुक्तो मनआदिचतुर्भिः करणैरात्मा शब्दादिविषयान्संकल्पादिधर्मान्यदा करोति तदा मनोमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशत्रयसंयुक्तस्तद्गतविशेषविशेषज्ञो यदाऽवभासते तदा विज्ञानमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशचतुष्टयं स्वकारणाज्ञाने चटकणिकायामिव गुप्तवटवृक्षो यदा वर्तते तदानन्दमयकोश इत्युच्यते । सुखदुःखबुद्ध्याश्रयो देहान्तः कर्ता यदा तदेष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिरनिष्टविषये बुद्धिर्दुःखबुद्धिः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः सुखदुःखहेतवः । पुण्यपापकर्मानुसारी भूत्वा प्राप्तशरीरसंधिर्योगमप्राप्तशरीरसंयोगमिव कुर्वाणो यदा दृश्यते तदोपहितत्वाज्जीव इत्युच्यते । मनआदिश्च प्राणादिश्च सत्त्वादिश्चेच्छादिश्च पुण्यादिश्चैते पञ्चवर्गा इत्येतेषां पञ्चवर्गाणां धर्मी भूतात्मज्ञानाद्वे न विनश्यति । आत्मसंनिधौ नित्यत्वेन प्रतीयमान आत्मोपाधिर्यस्तद्विज्ञं शरीरं हृद्ग्रन्थिरित्युच्यते तत्र यत्प्रकाशते चैतन्यं स क्षेत्रज्ञ इत्युच्यते ॥ २ ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामविर्भावतिरोभावज्ञाता स्वयमेवमाविर्भावतिरोभावहीनः
 स्वयंज्योतिः स साक्षीत्युच्यते ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तं सर्वप्राणिबुद्धिष्ववि-
 शिष्टतयोपलभ्यमानः सर्वप्राणिबुद्धिस्थो यदा तदा कूटस्थ इत्युच्यते ।
 कूटस्थाद्युपहितभेदानां स्वरूपलभहेतुर्भूत्वा मणिगणसूत्रमिव सर्वक्षेत्रेष्वनु-
 स्थितत्वेन यदा प्रकाशत आत्मा तदान्तर्यामीत्युच्यते सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः
 सुवर्णवद्विज्ञानघनश्चिन्मात्रस्वरूप आत्मा स्वतन्त्रो यदाऽवभासते तदा
 त्वंपदार्थः प्रत्यगात्मेत्युच्यते । सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म सत्यमविनाशि
 नामदेशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यत्यविनाशि तत्सत्यमित्यु-
 च्यते । ज्ञानमित्युत्पत्तिविनाशरहितं चैतन्यं ज्ञानमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥
 अनन्तं नाम सृष्टिकारेषु सृष्टिव सुवर्णविकारेषु सुवर्णमिव तन्तुकार्येषु
 तन्तुरिवाव्यक्तादिपृष्ठिप्रपञ्चेषु पूर्वं व्यापकं चैतन्यमनन्तमित्युच्यत आनन्दो
 नाम सुखचैतन्यस्वरूपोऽपरिमितानन्दसमुद्रोऽविशिष्टसुखरूपश्चानन्द इत्यु-
 च्यते । एतद्वस्तुचतुष्टयं यस्य लक्षणं देशकालवस्तुनिमित्तेष्वव्यभिचारि स
 तत्पदार्थः परमात्मा परं ब्रह्मेत्युच्यते । त्वंपदार्थादौपाधिकात्तत्पदार्थादौपाधि-
 काद्विलक्षण आकाशवत्सर्वगतः सूक्ष्मः केवलः सत्तामात्रोऽसिपदार्थः
 स्वयंज्योतिरात्मेत्युच्यतेऽतत्पदार्थश्चात्मेत्युच्यते । अनादिरन्तर्बली प्रमाणा-
 प्रमाणसाधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमविकाराद्विकारहेतौ
 निरूप्यमाणोऽसती । अनिरूप्यमाणे सती लक्षणशून्या सा मायेत्युच्यते ॥ ४ ॥
 इत्याथर्वणीयसर्वसारोपनिषत्समाप्ता ॥ ३५ ॥

निरालम्बोपनिषत् ॥ ३६ ॥

यशालम्बालम्बिभावो विद्यते न कदाचन ।

ज्विज्ञसम्यग्ज्ञालम्बं निरालम्बं हरिं भजे ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये । निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरा-
 लम्बाय तेजसे ॥ निरालम्बं समाश्रित्य सालम्बं विजहाति यः । स संन्यासी च
 योगी च कैवल्यं पदमश्नुते । एषामज्ञानजन्तूनां समस्तारिष्टशान्तये । यद्य-
 द्बोद्धव्यमखिलं तदाशङ्क्य ब्रवीम्यहम् ॥ किं ब्रह्म । क ईश्वरः । को जीवः ।
 का प्रकृतिः । कः परमात्मा । को ब्रह्मा । को विष्णुः । को रुद्रः । क इन्द्रः ।

कः शमनः । कः सूर्यः । कश्चन्द्रः । के सुराः । के असुराः । के पिशाचाः । के
 मनुष्याः । काः स्त्रियः । के पश्चादयः । किं स्थावरम् । के ब्राह्मणादयः । का
 जातिः । किं कर्म । किमकर्म । किं ज्ञानम् । किमज्ञानम् । किं सुखम् ।
 किं दुःखम् । कः स्वर्गः । को नरकः । को बन्धः । को मोक्षः । क उपास्यः ।
 कः शिष्यः । को विद्वान् । को मूढः । किमासुरम् । किं तपः । किं परमं
 पदम् । किं ब्राह्मम् । किमब्राह्मम् । कः संन्यासीत्याशङ्क्याह ब्रह्मेति । स होवाच
 महदहंकारपृथिव्यसेजोवाय्वाकाशत्वेन बृहद्रूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूप-
 तया भासमानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तं तत्सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्य-
 नन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ॥ ईश्वर
 इति च ॥ ब्रह्मैव स्वशक्तिं प्रकृत्यभिधेयामाश्रित्य लोकान्सृष्ट्वा प्रविश्यान्तर्या-
 मित्वेन ब्रह्मादीनां बुद्धीन्द्रियनियन्तृत्वादीश्वरः जीव इति च ब्रह्मविष्ण्वी-
 शानेन्द्रादीनां नामरूपद्वारा स्थूलोऽहमिति मिथ्याध्यासवशाज्जीवः । सोऽह-
 मेकोऽपि देहारम्भकभेदवशाद्बहुजीवः । प्रकृतिरिति च ब्रह्मणः सकाशाब्जा-
 नाविचित्रजगन्निर्माणसामर्थ्यबुद्धिरूपा ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः । परमात्मेति च
 देहादेः परतरत्वाद्ब्रह्मैव परमात्मा स ब्रह्मा स विष्णुः स इन्द्रः स शमनः स
 सूर्यः स चन्द्रस्ते सुरास्ते असुरास्ते पिशाचास्ते मनुष्यास्ताः स्त्रियस्ते पश्चादयस्त-
 त्स्थावरं ते ब्राह्मणादयः । सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन । जातिरिति च ।
 न चर्मणो न रक्तस्य न मांसस्य न चास्थिनः । न जातिरात्मनो जातिवैयवहार-
 प्रकल्पिता । कर्मेति च क्रियमाणेन्द्रियैः कर्माण्यहं करोमीत्यध्यात्मनिष्ठतया
 कृतं कर्मैव कर्म । अकर्मेति च कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यहंकारतया बन्धरूपं जन्मादि-
 कारणं नित्यनैमित्तिकयागव्रततपोदानादिषु फलाभिसंभानं यत्तदकर्म । ज्ञान-
 मिति च देहेन्द्रियनिग्रहस्तद्गुरुपासनश्रवणमनननिदिध्यासनैर्यद्यद्गृह्यस्व-
 रूपं सर्वान्तरस्थं सर्वसमं वटपटादिपदार्थमिवाविकारं विकारेषु चैतन्यं विना-
 किंचिन्नास्तीति साक्षात्कारानुभवो ज्ञानम् । अज्ञानमिति च रज्जौ सर्पभ्रान्ति-
 रिवाद्वितीये सर्वानुस्यूने सर्वमये ब्रह्मणि देवतिर्यङ्मनरस्थावरस्त्रीपुरुषवर्णाश्र-
 मबन्धमोक्षोपाधिनानात्मभेदकल्पितं ज्ञानमज्ञानम् । सुखमिति च सच्चिदान-
 न्दस्वरूपं ज्ञात्वानन्दरूपा या स्थितिः सैव सुखम् । दुःखमिति अनात्मरूपो
 विषयसंकल्प एव दुःखम् । स्वर्ग इति च सत्संसर्गः स्वर्गः । नरक इति च
 असत्संसारविषयजनसंसर्ग एव नरकः । बन्ध इति च अनाद्यविद्यावासनया

जातोऽहमित्यादिसंकल्पो बन्धः । पितृमातृसहोदरदारापत्यगृहारामक्षेत्रममता-
 संसारावरणसंकल्पो बन्धः । कर्तृत्वाद्यहंकारसंकल्पो बन्धः । अणिमाद्यैश्व-
 र्याशासिद्धसंकल्पो बन्धः । देवमनुष्याद्युपासनाकामसंकल्पो बन्धः । यमा-
 द्यष्टाङ्गयोगसंकल्पो बन्धः । वर्णाश्रमधर्मकर्मसंकल्पो बन्धः । आज्ञाभयसंश-
 यात्मगुणसंकल्पो बन्धः । यागव्रततपोदानविधिविधानज्ञानसंभवो बन्धः ।
 केवलमोक्षापेक्षासंकल्पो बन्धः । संकल्पमात्रसंभवो बन्धः । मोक्ष इति च
 नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारसुखदुःखविषयसमस्तक्षेत्रममताबन्धक्षयो
 मोक्षः । उपास्य इति च सर्वेशरीरस्थचतन्यब्रह्मप्राप्तो गुरुत्पास्यः । शिष्य
 इति च विद्याध्वस्तप्रपञ्चावगाहितज्ञानावशिष्टं ब्रह्मैव शिष्यः । विद्वानिति च
 सर्वान्तरस्थस्वसंविद्रूपविद्विद्वान् । मूढ इति च कर्तृत्वाद्यहंकारभावारुढो
 मूढः । आसुरमिति च ब्रह्मविष्णवीशानेन्द्रादीनामैश्वर्यकामनया निरशनजपा-
 ग्निहोत्रादिष्वन्तरात्मानं संतापयति चात्युग्ररागद्वेषविहिंसामाद्यपेक्षितं तप
 आसुरम् । तप इति च ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्यपरोक्षज्ञानाग्निना ब्रह्माद्यैश्वर्या-
 ज्ञासिद्धसंकल्पबीजसंतापं तपः । परमं पदमिति च प्राणेन्द्रियाद्यन्तःकरण-
 गुणादेः परतरं सच्चिदानन्दमयं नित्यमुक्तब्रह्मस्थानं परमं पदम् । ग्राह्यमिति
 च देशकालवस्तुपरिच्छेदराहित्यचिन्मात्रस्वरूपं ग्राह्यम् । अग्राह्यमिति च
 स्वस्वरूपव्यतिरिक्तमायामयबुद्धीन्द्रियगोचरजगत्सत्यत्वचिन्तनमग्राह्यम् । सं-
 न्यासीति च सर्वधर्मान्परित्यज्य निर्ममो निरहंकारो भूत्वा ब्रह्मेष्टं शरणमुप-
 गम्य तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेत्या-
 दिमहावाक्यार्थानुभवज्ञानाब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पसमाधिना
 स्वतन्त्रो यतिश्चरति स संन्यासी स मुक्तः स पूज्यः स योगी स परमहंसः
 सोऽवधूतः स ब्राह्मण इति । इदं निरालम्बोपनिषदं योऽधीते गुर्वनुग्रहतः
 सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते
 पुनर्नाभिजायते पुनर्नाभिजायत इत्युपनिषत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति निरालम्बोपनिषत्समाप्ता ॥ ३६ ॥

शुक्ररहस्योपनिषत् ॥ ३७ ॥

प्रज्ञानादिमहावाक्यरहस्यादिकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं त्रिपाद्राममहं भजे ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

अथातो रहस्योपनिषदं व्याख्यास्यामो देवर्षयो ब्रह्माणं संपूज्य प्रणिपत्य
 पप्रच्छुर्भगवन्नस्माकं रहस्योपनिषदं ब्रूहीति । सोऽब्रवीत् । पुरा व्यासो महा-
 तेजाः सर्ववेदतपोनिधिः । प्रणिपत्य शिवं साम्बं कृताञ्जलिरुवाच ह ॥ १ ॥
 श्रीवेदव्यास उवाच । देवदेव महाप्राज्ञ पाशच्छेददृढव्रत । शुक्रस्य मम
 पुत्रस्य वेदसंस्कारकर्मणि ॥ २ ॥ ब्रह्मोपदेशकालोऽयमिदानीं समुपस्थितः ।
 ब्रह्मोपदेशः कर्तव्यो भवताद्य जगद्गुरो ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच । मयोपदिष्टे
 कैवल्ये साक्षद्ब्रह्मणि शाश्वते । विहाय पुत्रो निर्वेदात्प्रकाशं यास्यति स्वयम्
 ॥ ४ ॥ श्रीवेदव्यास उवाच । यथा तथा वा भवतु ह्युपनायनकर्मणि ।
 उपदिष्टे मम सुते ब्रह्मणि त्वत्प्रसादतः ॥ ५ ॥ सर्वज्ञो भवतु क्षिप्रं मम
 पुत्रो महेश्वर । तव प्रसादसंपन्नो लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा
 व्यासवचनं सर्वदेवर्षिसंसदि । उपदेष्टुं स्थितः शम्भुः साध्वो दिव्यासने मुदा
 ॥ ७ ॥ कृतकृत्यः शुक्रस्तत्र समागत्य सुभक्तिमान् । तस्मात्स प्रणवं लब्ध्वा
 पुनरित्यब्रवीच्छिवम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक्र उवाच ॥ देवादिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द-
 लक्षण । उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ॥ ९ ॥ उपदिष्टं परंब्रह्म प्रण-
 वान्तर्गतं परम् । तत्त्वमस्यादिवाक्यानां प्रज्ञादीनां विशेषतः ॥ १० ॥ श्रोतु-
 मिच्छामि तत्त्वेन षडङ्गानि यथाक्रमम् । वक्तव्यानि रहस्यानि कृपयाद्य सदा-
 शिव ॥ ११ ॥ श्रीसदाशिव उवाच । साधु साधु महाप्राज्ञ शुक्र ज्ञाननिधे मुने ।
 प्रष्टव्यं तु त्वया पृष्टं रहस्यं वेदगर्भितम् ॥ १२ ॥ रहस्योपनिषद्वाग्ना सषडङ्गमि-
 होच्यते । यस्य विज्ञानमात्रेण मोक्षः साक्षान्न संशयः ॥ १३ ॥ अङ्गहीनानि
 वाक्यानि गुरुर्नोपदिशेत्पुनः । सषडङ्गान्युपदिशेन्महावाक्यानि कृत्स्नशः ॥ १४ ॥
 चतुर्णामपि वेदानां यथोपनिषदः शिरः । इयं रहस्योपनिषत्तथोपनिषदां शिरः
 ॥ १५ ॥ रहस्योपनिषद्ब्रह्म ध्यातं येन विपश्चिता । तीर्थैर्मन्त्रैः श्रुतैर्जप्यैस्तस्य
 किं पुण्यहेतुमिः ॥ १६ ॥ वाक्यार्थस्य विचारेण यदामोति शरच्छतम् । एक-
 वारजपेनैव ऋष्यादिध्यानतश्च यत् ॥ १७ ॥ ॐ अस्य श्रीमहावाक्यमहा-
 अ. उ. १७

मन्त्रस्य हंसऋषिः । अव्यक्तगायत्री छन्दः । परमहंसो देवता । हं बीजम् । सः शक्तिः । सोऽहं कीलकम् । मम परमहंसप्रीत्यर्थं महावाक्यजपे विनियोगः । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । नित्यानन्दो ब्रह्म तर्जनीभ्यां स्वाहा । नित्यानन्दमयं ब्रह्म मध्यमाभ्यां वषट् । यो वै भूमा अनामिकाभ्यां हुम् । यो वै भूमाधिपतिः कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म हृदयाय नमः । नित्यानन्दो ब्रह्म शिरसे स्वाहा । नित्यानन्दमयं ब्रह्म शिखायै वषट् । यो वै भूमा कञ्चाय हुम् । यो वै भूमाधिपतिः नेत्रत्रयाय वौषट् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म अस्त्राय फट् । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः । ध्यानम् । नित्यानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् । एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ १ ॥

अथ महावाक्यानि चत्वारि । यथा ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ १ ॥ ॐ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥ ॐ तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ ॐ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ तत्त्वमसीत्यभेदवाचकमिदं ये जपन्ति ते शिवसायुज्यमुक्तिर्भाजो भवन्ति ॥ तत्पदमहामन्त्रस्य । परमहंस ऋषिः । अव्यक्तगायत्री छन्दः । परमहंसो देवता । हं बीजम् । सः शक्तिः । सोऽहं कीलकम् । मम सायुज्यमुक्त्यर्थं जपे विनियोगः । तत्पुरुषाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ईशानाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । अवोराय मध्यमाभ्यां वषट् । सद्योजाताय अनामिकाभ्यां हुम् । वामदेवाय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । तत्पुरुषेशानाघोरसद्योजातवामदेवेश्यो नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिन्यासः । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः ॥ ध्यानम् । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यादतीतं शुद्धं बुद्धं मुक्तमप्यव्ययं च । सत्यं ज्ञानं सच्चिदानन्दरूपं ध्यायेदेवं तन्महो आजमानम् ॥ त्वंपदमहामन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः । गायत्री-छन्दः । परमात्मा देवता । हुं बीजम् । क्लीं शक्तिः । सौः कीलकम् । मम सुक्त्यर्थं जपे विनियोगः । वासुदेवाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । संकर्षणाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । प्रद्युम्नाय मध्यमाभ्यां वषट् । अनिरुद्धाय अनामिकाभ्यां हुम् । वासुदेवाय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धेभ्यः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिन्यासः । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः ॥ ध्यानम् ॥ जीवत्वं सर्वभूतानां सर्वत्राखण्डविग्रहम् । चित्ताहंकारयन्तारं जीवाख्यं त्वंपदं

भजे । असिपदमहामन्त्रस्य मन ऋयिः । गायत्री छन्दः । अर्धनारीश्वरो
देवता । अय्यक्तादिर्बीजम् । नृसिंहः शक्तिः । परमात्मा कीलकम् । जीवब्रह्मै-
क्यार्थे जपे विनियोगः । पृथ्वीद्यणुकाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । अद्भ्यणुकाय
तर्जनीभ्यां स्वाहा । तेजोद्यणुकाय मध्यमाभ्यां वषट् । वायुद्यणुकाय अना-
मिकाभ्यां हुम् । आकाशद्यणुकाय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । पृथिव्यसेजोवाक्वा-
काशद्यणुकेभ्यः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः ॥
ध्यानम् ॥ जीवो ब्रह्मेति वाक्यार्थं यावदस्ति मनःस्थितिः । ऐक्यं तत्त्वं लब्धे
कुर्वन्ध्यायेदसिपदं सदा ॥ एवं महावाक्यषडङ्गान्युक्तानि ॥

अथ रहस्योपनिषद्विभागशो वाक्यार्थश्लोकाः प्रोच्यन्ते ॥ येनेक्षते ऋगो-
तीदं जिघ्रति व्याकरोति च । स्वाद्स्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ १ ॥
चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु । चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्य-
पि ॥ २ ॥ परिपूर्णः परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि । बुद्धेः साक्षितया
स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ ३ ॥ स्वतः पूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ४ ॥ एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूप-
निवर्जितम् । सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तद्वितीर्यते ॥ ५ ॥ ओतुर्देहे-
न्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम् । एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूय-
ताम् ॥ ६ ॥ स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् । अहंकारादिदेहान्तं
प्रत्यगात्मेति गीयते ॥ ७ ॥ दृश्यमानस्य सर्वस्य जगत्स्तरवमीर्यते । ब्रह्मश-
ब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ ८ ॥ अनात्मदृष्टेरविवेकनिद्रामहं मम
स्वप्नगतिं गतोऽहम् । स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते स्फुटोक्तेरुर्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः
॥ ९ ॥ वाच्यं लक्ष्यमिति द्विधार्थस्मरणीनाच्चस्य हि त्वंपदे वाच्यं भौतिकमि-
न्द्रियादिरपि यल्लक्ष्यं त्वमर्थश्च सः । वाच्यं तत्पदमीशताकृतमतिलक्ष्यं तु
सच्चित्सुखानन्दब्रह्म तदर्थं एष च तयोरैक्यं त्वसीदं पदम् ॥ १० ॥ त्वमिति
तदिति कार्ये कारणे सत्युपाधौ द्वितयमितरथैकं सच्चिदानन्दरूपम् । उभय-
वचनहेतू देशकालौ च हित्वा जगति भवन्ति सोऽयं देवदत्तो यथैकः ॥ ११ ॥
कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरश्वरः । कार्यकर्मणतो हित्वा पूर्णबोधोऽव-
शिष्यते ॥ १२ ॥ श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदन्तरम् । निदिध्यासन-
मित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम् ॥ १३ ॥ अन्यविद्यापरिज्ञानमवश्यं नश्वरं
अवेत् । ब्रह्मविद्यापरिज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिकरं स्थितम् ॥ १४ ॥ महावाक्यश-

न्युपदिशेत्सपदङ्गानि देशिकः । केवलं नहि वाक्यानि ब्रह्मणो वचनं
यथा ॥ १५ ॥ ईश्वर उवाच । एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ रहस्योपनिषच्छ्रुतः ।
मया पित्राजुनीतेन व्यासेन ब्रह्मवादिना ॥ १६ ॥ ततो ब्रह्मोपदिष्टं वै सच्चि-
दानन्दलक्षणम् । जीवन्मुक्तः सदा ध्यायन्नित्यस्त्वं विहरिष्यसि ॥ १७ ॥ यो
वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स
महेश्वरः ॥ १८ ॥ उपदिष्टः शिवेनेति जगत्तन्मयतां गतः । उत्थाय प्रणिप-
त्येशं त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥ १९ ॥ परब्रह्मपयोराशौ लुब्धन्निव यथौ तदा । प्रब्र-
जन्तं तमालोक्य कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ २० ॥ अनुव्रजन्नाजुहाव पुत्रविश्लेष-
कातरः । प्रतिनेदुस्तदा सर्वे जगत्स्थावरजङ्गमाः ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा सकला-
कारं व्यासः सत्यदतीसुतः । पुत्रेण सहितः प्रीत्या परानन्दमुपेयिवान् ॥ २२ ॥
यो रहस्योपनिषदमधीते गुर्वनुग्रहाद् । सर्वपापविनिर्मुक्तः साक्षात्कैवल्यमश्नुते
साक्षात्कैवल्यमश्नुत इत्युपनिषत् ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति यजुर्वेदीयशुकरहस्योपनिषत्समाप्ता ॥

वज्रसूचिकोपनिषत् ॥ ३८ ॥

यज्जानाद्यान्ति मुनयो ब्राह्मण्यं परमाद्भुतम् ।

तत्रैपदब्रह्मतत्त्वमहमस्मीति चिन्तये ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्तिसाक्षिणे ।

नमो वेदान्तवेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे ॥

ॐ वज्रसूचीं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् । दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं
ज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति चत्वारो वर्णास्त्रेषां वर्णानां
ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवर्चनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् । तत्र चोद्यमस्ति को
वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं ज्ञानं किं कर्म किं धार्मिक
इति । तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न । अतीतानागतानेकदेहानां

जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीव-
स्यैकरूपत्वाच्च । तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति । तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न ।
आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामर-
णधर्माधर्मादिसाम्यदर्शनाद्ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः
शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् । पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्या-
दिदोषसंभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति ॥ तर्हि जातिब्राह्मण इति चेत्तन्न ।
तत्र जाल्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यशृङ्गो
मृगयाः, कौशिकः कुशात्, जाम्बूको जम्बूकात्, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः
कैवर्तकन्यकायाम्, शशपृष्ठात्, गौतमः, वसिष्ठ उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलशे
जात इति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो
बहवः सन्ति । तस्मान्न जातिब्राह्मण इति ॥ तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न ।
क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति । तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण
इति ॥ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंस्वितागाधि-
कर्मसाधर्म्यदर्शनात्कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न
कर्म ब्राह्मण इति ॥ तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयो हिर-
ण्यदातारो बहवः सन्ति । तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति ॥ तर्हि को वा
ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षड्वर्गिपञ्चभा-
वेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पा-
धारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्द-
स्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत्साक्षाद-
परोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नो भावमात्सर्य-
तृष्णाशमोहादिरहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेता वर्तत एवमुक्तलक्षणो
यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथा हि
ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव । सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेदात्मानं
सच्चिदानन्दं ब्रह्म भावयेदित्युपनिषत् ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति वज्रसूत्र्युपनिषत्समाप्ता ॥ ३८ ॥

तेजोविन्दूपनिषत् ॥ ३९ ॥

यत्र चिन्मात्रकलना यात्स्नपह्वमजसा ।

तच्चिन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥

ॐ सह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

ॐ तेजोविन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् । आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥ १ ॥ दुःखाढ्यं च दुराराढ्यं दुःप्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् । दुर्लभं तत्स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥ २ ॥ यत्ताहारो जितक्रोधो जितसङ्गो जितन्द्रियः । निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशीरपरिग्रहः ॥ ३ ॥ अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमनमानसः । सुखे त्रीणि च विन्दन्ति त्रिधामा हंस उच्यते ॥ ४ ॥ परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः । सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ५ ॥ त्रिवक्त्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जितम् । निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम् ॥ ६ ॥ उपाधिरहितं स्थानं बाह्यनोऽतीतगोचरम् । स्वभावं भावसंग्राह्यमसंघातं पदाच्युतम् ॥ ७ ॥ अनानानन्दनातीतं दुःप्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् । चिन्त्यमेवं विनिर्मुक्तं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् ॥ ८ ॥ तद्ब्रह्मणस्तदध्यात्मं तद्विष्णोस्तत्परायणम् । अचिन्त्यं चिन्मयात्मानं यद्योम परमं स्थितम् ॥ ९ ॥ अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम् । न ध्यानं च न च ध्याता न ध्येयो ध्येय एव च ॥ १० ॥ सर्वं च न परं शून्यं न परं नापरात्परम् । अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः ॥ ११ ॥ मुनीनां संप्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः । लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्बिषम् ॥ १२ ॥ शीतोष्णो क्षुत्पिपासे च संकल्पकविकल्पकम् । न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसंचयम् ॥ १३ ॥ न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः । एतद्भावविनिर्मुक्तं तद्ब्रह्मं ब्रह्म तत्परम् ॥ १४ ॥ यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः । आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १५ ॥ प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा । आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात् ॥ १६ ॥ सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः । यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः । नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥ १८ ॥ त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः ॥ १९ ॥ यस्मा-

द्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा
 बुधः ॥ २० ॥ वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्भक्तं केन शक्यते । प्रपञ्चो यदि
 बलव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥ २१ ॥ इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहज-
 संज्ञितम् । गिरां मौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २२ ॥ आदावन्ते
 च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते । येनेदं सततं व्यासं स देशो विजनः
 स्मृतः ॥ २३ ॥ कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः । कालशब्देन नि-
 र्दिष्टं ह्यखण्डानन्दमद्वयम् ॥ २४ ॥ सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजलं ब्रह्मचिन्तनम् ।
 आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥ २५ ॥ सिद्धये सर्वभूतादि वि-
 श्राधिष्ठानमद्वयम् । यस्मिन्सिद्धिं गताः सिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥ २६ ॥
 यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् । मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्यो-
 ऽसौ ब्रह्मवादिनाम् ॥ २७ ॥ अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते । नो
 चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥ २८ ॥ इष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्ये-
 द्ब्रह्ममयं जगत् । सा इष्टिः परमोदारा न नासाप्रावलोकिनी ॥ २९ ॥ द्रष्टु-
 दर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् । इष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाप्रावलो-
 किनी ॥ ३० ॥ चित्तादिसर्वभाषेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् । निरोधः सर्ववृ-
 त्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥ ३१ ॥ निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समी-
 रितः । ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते ॥ ३२ ॥ ततस्तद्वृत्तिनै-
 श्वर्यं कुम्भकः प्राणसंयमः । अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां प्राणपीडनम् ॥ ३३ ॥
 विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम् । प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो
 मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥ यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् । मनसा धारणं
 चैव धारणा सा परा मता ॥ ३५ ॥ ब्रह्मैवास्मीति सदृश्या निरालम्बतया
 स्थितिः । ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥ ३६ ॥ निर्विकारतया
 वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः । वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥ ३७ ॥
 इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत् । लक्ष्यो यावत्क्षणाभ्युत्थः प्रत्यक्त्वं
 संभवेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥ ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् । तत्त्वं
 रूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम् ॥ ३९ ॥ समाधौ क्रियमाणे तु विज्ञा-
 न्यायान्ति वै बलात् । अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ॥ ४० ॥
 लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता । एवं हि विज्ञबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्म-
 विशारदैः ॥ ४१ ॥ भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता । ब्रह्म-
 वृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥ ४२ ॥ ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्मा-

ख्यां पावनीं पराम् । वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥ ४३ ॥
 ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये । ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते
 भुवनत्रये ॥ ४४ ॥ येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः । ते वै
 सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः ॥ ४५ ॥ कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः
 सुराणिणः । तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥ ४६ ॥ तिमिषार्धं
 न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना । यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुका-
 दयः ॥ ४७ ॥ कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते । कारणं तत्त्वतो
 नश्येत्कार्याभावे विचारतः ॥ ४८ ॥ अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम् ।
 उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥ ४९ ॥ भावितं तीव्रवेगेन
 यद्वस्तु निश्चयात्मकम् । दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥ ५० ॥
 विद्वान्नित्यं सुखे तिष्ठेद्विया चिद्रसपूर्णया ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ ह कुमारः शिवं पप्रच्छाऽखण्डैकरसचिन्मात्रस्वरूपमनुब्रूहीति । स
 होवाच परमः शिवः । अखण्डैकरसं दृश्यमखण्डैकरसं जगत् । अखण्डैकरसं
 भावमखण्डैकरसं स्वयम् ॥ १ ॥ अखण्डैकरसो मन्त्र अखण्डैकरसा क्रिया ।
 अखण्डैकरसं ज्ञानमखण्डैकरसं जलम् ॥ २ ॥ अखण्डैकरसा भूमिरखण्डैक-
 रसं वियत् । अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसा त्रयी ॥ ३ ॥ अखण्डैकरसं ब्रह्म
 चाखण्डैकरसं व्रतम् । अखण्डैकरसो जीव अखण्डैकरसो ह्यजः ॥ ४ ॥ अख-
 ण्डैकरसो ब्रह्मा अखण्डैकरसो हरिः । अखण्डैकरसो रुद्र अखण्डैकरसोऽस्य-
 हम् ॥ ५ ॥ अखण्डैकरसो ह्यात्मा ह्यखण्डैकरसो गुरुः । अखण्डैकरसं लक्ष्य-
 मखण्डैकरसं महः ॥ ६ ॥ अखण्डैकरसो देह अखण्डैकरसं मनः । अखण्डै-
 करसं चित्तमखण्डैकरसं सुखम् ॥ ७ ॥ अखण्डैकरसा विद्या अखण्डैकरसो-
 ऽव्ययः । अखण्डैकरसं नित्यमखण्डैकरसं परम् ॥ ८ ॥ अखण्डैकरसं किंचिद-
 खण्डैकरसं परम् । अखण्डैकरसादन्यन्नास्ति नास्ति षडानन ॥ ९ ॥ अखण्डै-
 करसान्नास्ति अखण्डैकरसान्न हि । अखण्डैकरसाकिंचिदखण्डैकरसादहम्
 ॥ १० ॥ अखण्डैकरसं स्थूलं सूक्ष्मं चाखण्डैकररूपकम् । अखण्डैकरसं वेद्यम-
 खण्डैकरसो भवान् ॥ ११ ॥ अखण्डैकरसं गुह्यमखण्डैकरसादिकम् । अखण्डै-
 करसो ज्ञाता ह्यखण्डैकरसा स्थितिः ॥ १२ ॥ अखण्डैकरसा माता अखण्डै-
 करसः पिता । अखण्डैकरसो आता अखण्डैकरसः पतिः ॥ १३ ॥ अखण्डै-

करसं सूत्रमखण्डैकरसो विराट् । अखण्डैकरसं गात्रमखण्डैकरसं शिरः ॥ १४ ॥
 अखण्डैकरसं चान्तरखण्डैकरसं बहिः । अखण्डैकरसं पूर्णमखण्डैकरसामृतम् ॥ १५ ॥
 अखण्डैकरसं गोत्रमखण्डैकरसं गृहम् । अखण्डैकरसं गोप्यमखण्डैकरसइशशी ॥ १६ ॥
 अखण्डैकरसास्तारा अखण्डैकरसो रविः । अखण्डैकरसं क्षेत्रमखण्डैकरसा क्षमा ॥ १७ ॥
 अखण्डैकरसः शान्त अखण्डैकरसोऽगुणः । अखण्डैकरसः साक्षी अखण्डैकरसः सुहृत् ॥ १८ ॥
 अखण्डैकरसो बन्धुरखण्डैकरसः सखा । अखण्डैकरसो राजा अखण्डैकरसं पुरम् ॥ १९ ॥
 अखण्डैकरसं राज्यमखण्डैकरसाः प्रजाः । अखण्डैकरसं तारमखण्डैकरसो जपः ॥ २० ॥
 अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम् । अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत् ॥ २१ ॥
 अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम् । अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः ॥ २२ ॥
 अखण्डैकरसो होम अखण्डैकरसो जपः । अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम् ॥ २३ ॥
 अखण्डैकरसं सर्वं चिन्मात्रमिति भावयेत् । चिन्मात्रमेव चिन्मात्रमखण्डैकरसं परम् ॥ २४ ॥
 भवति चिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि । इदं च सर्वं चिन्मात्रमयं चिन्मयमेव हि ॥ २५ ॥
 आत्मभावं च चिन्मात्रमखण्डैकरसं विदुः । सर्वलोकं च चिन्मात्रं त्वत्ता मत्ता च चिन्मयम् ॥ २६ ॥
 आकाशो भूर्जलं वायुरग्निर्ब्रह्मा हरिः शिवः । यत्किञ्चिद्यत्र किञ्चिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २७ ॥
 अखण्डैकरसं सर्वं यच्चिन्मात्रमेव हि । भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २८ ॥
 द्रव्यं कालं च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि । ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मयमेव हि ॥ २९ ॥
 संभाषणं च चिन्मात्रं यच्चिन्मात्रमेव हि । असच्च सच्च चिन्मात्रमाद्यन्तं चिन्मयं सदा ॥ ३० ॥
 आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादि चिन्मयम् । दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥ ३१ ॥
 सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि । लिङ्गं च कारणं चैव चिन्मात्राच्च हि विद्यते ॥ ३२ ॥
 अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादि चिन्मयम् । पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥ ३३ ॥
 चिन्मात्रास्ति संकल्पश्चिन्मात्रास्ति वेदनम् । चिन्मात्रास्ति मन्त्रादि चिन्मात्रास्ति देवता ॥ ३४ ॥
 चिन्मात्रास्ति दिक्पालाश्चिन्मात्रास्ति व्यावहारिकम् । चिन्मात्रास्ति परमं ब्रह्म चिन्मात्रास्ति कोऽपि हि ॥ ३५ ॥
 चिन्मात्रास्ति माया च चिन्मात्रास्ति पूजनम् । चिन्मात्रास्ति मन्तव्यं चिन्मात्रास्ति सत्यकम् ॥ ३६ ॥

चिन्मात्राज्ञास्ति कोशादि चिन्मात्राज्ञास्ति वै वसु । चिन्मात्राज्ञास्ति मौनं च
चिन्मात्राज्ञास्त्यमौनकम् ॥ ३७ ॥ चिन्मात्राज्ञास्ति वैराग्यं सर्वं चिन्मात्रमेव
हि । यच्च यावच्च चिन्मात्रं यच्च यावच्च दृश्यते ॥ ३८ ॥ यच्च यावच्च दूरस्थं
सर्वं चिन्मात्रमेव हि । यच्च यावच्च भूतादि यच्च यावच्च लक्ष्यते ॥ ३९ ॥
यच्च यावच्च वेदान्ताः सर्वं चिन्मात्रमेव हि । चिन्मात्राज्ञास्ति गमनं
चिन्मात्राज्ञास्ति मोक्षकम् ॥ ४० ॥ चिन्मात्राज्ञास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्र-
मेव हि । अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्राज्ञा हि विद्यते ॥ ४१ ॥ शास्त्रे मयि
त्वयीशे च ह्यखण्डैकरसो भवान् । इत्येकरूपकतया यो वा जानात्यहं त्विति
॥ ४२ ॥ सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरुः ॥ ४३ ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कुमारः पितरमात्मानुभवमनुब्रूहीति पप्रच्छ । स होवाच परः शिवः ।
परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम् । केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽ-
स्म्यहम् ॥ १ ॥ केवलं ज्ञान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् । केवलं
नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥ केवलं सत्त्वरूपोऽहमहं त्यक्त्वा-
हमस्म्यहम् । सर्वहीनस्वरूपोऽहं विदाकाशमयोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥ केवलं
तुर्वरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः । सदा चैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्द-
मयोऽस्म्यहम् ॥ ४ ॥ केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा । के-
वलं ज्ञानरूपोऽस्मि केवलं प्रियमस्म्यहम् ॥ ५ ॥ निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि
निरीहोऽस्मि निरामयः । सदाऽसङ्गस्वरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः
॥ ६ ॥ सदैकरसरूपोऽस्मि सदा चिन्मात्रविग्रहः । अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि
ह्यखण्डानन्दरूपवान् ॥ ७ ॥ सत्परान्दरूपोऽस्मि चित्परानन्दमस्म्यहम् ।
अन्तरान्तररूपोऽहमवाञ्छनसगोचरः ॥ ८ ॥ आत्मानन्दस्वरूपोऽहं सत्यान-
न्दोऽस्म्यहं सदा । आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ॥ ९ ॥
आत्मप्रकाशरूपोऽस्मि ह्यात्मज्योती रसोऽस्म्यहम् । आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि
ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमव्ययः ।
नित्यशुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ॥ ११ ॥ नित्यशेषस्वरूपोऽस्मि सर्वा-
तीतोऽस्म्यहं सदा । रूपातीतस्वरूपोऽस्मि परमाकाशविग्रहः ॥ १२ ॥
भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि आषाहीनोऽस्म्यहं सदा । सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा
चिद्धनोऽस्म्यहम् ॥ १३ ॥ देहभावविहीनोऽस्मि चिन्ताहीनोऽस्मि सर्वदा ।

चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥ सर्वदृश्यविहीनोऽहं
 ह्यरूपोऽस्म्यहमेव हि । सर्वदा पूर्णरूपोऽस्मि नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा ॥ १५ ॥
 अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि । अहमेवाहमेवास्मि भूमाकाशस्वरूप-
 वान् ॥ १६ ॥ अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः । अहमन्यवदाभामि
 ह्यहमेव शरीरवत् ॥ १७ ॥ अहं शिष्यवदाभामि ह्ययं लोकत्रयाश्रयः । अहं
 कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः ॥ १८ ॥ अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते
 व्यवस्थितः । मत्त्यक्तं नास्ति किञ्चिद्वा मत्त्यक्तं पृथिवी च वा ॥ १९ ॥ मया-
 तिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु । अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्य-
 शुद्धोऽस्म्यहं सदा ॥ २० ॥ निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा ।
 केवलं ब्रह्ममात्रोऽस्मि ह्यजरोऽस्म्यमरोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ स्वयमेव स्वयं
 आमि स्वयमेव सदात्मकः । स्वयमेवात्मनि स्वस्थः स्वयमेव परा गतिः ॥ २२ ॥
 स्वयमेव स्वयं भुञ्जे स्वयमेव स्वयं रमे । स्वयमेव स्वयं ज्योतिः स्वयमेव
 स्वयं महः ॥ २३ ॥ स्वस्यात्मनि स्वयं रंसे स्वात्मन्येव विलोकये । स्वात्म-
 न्येव सुखासीनः स्वात्ममात्रावशेषकः ॥ २४ ॥ स्वचैतन्ये स्वयं स्थास्ये
 स्वात्मराज्ये सुखे रमे । स्वात्मसिंहासने स्थित्वा स्वात्मनोऽन्यन्न चिन्तये
 ॥ २५ ॥ चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् । आनन्दघन एवाहमहं
 ब्रह्मास्मि केवलम् ॥ २६ ॥ सर्वदा सर्वज्ञान्योऽहं सर्वात्मानन्दवानहम् ।
 नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माकाशोऽस्मि नित्यदा ॥ २७ ॥ अहमेव हृदाकाश-
 श्रिदादित्यस्वरूपवान् । आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः ॥ २८ ॥
 एकसंख्याविहीनोऽस्मि नित्यमुक्तस्वरूपवान् । आकाशादपि सूक्ष्मोऽहमाद्य-
 न्ताभाववानहम् ॥ २९ ॥ सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम् । सत्ता-
 मात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ॥ ३० ॥ सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानान-
 न्दघनोऽस्म्यहम् । विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ३१ ॥ ब्रह्म-
 मात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन । तदेवाहं सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनात-
 नम् ॥ ३२ ॥ त्वमित्येतत्तदित्येतन्मत्तोऽन्यन्नास्ति किञ्चन । चिच्चैतन्यस्वरू-
 पोऽहमहमेव परः शिवः ॥ ३३ ॥ अतिभावस्वरूपोऽहमहमेव सुखात्मकः ।
 साक्षिवस्तुविहीनत्वात्साक्षित्वं नास्ति मे सदा ॥ ३४ ॥ केवलं ब्रह्ममात्रत्वा-
 दहमात्मा सनातनः । अहमेवादिशेषोऽहम् । शेषोऽहमेव हि ॥ ३५ ॥
 नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः । इन्द्रियाभावरूपोऽहं सर्वभावस्व-

पकः ॥ ३६ ॥ बन्धमुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्दविग्रहः । आदिचैतन्यमात्रो-
 ऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ वाङ्मनोऽगोचरश्चाहं सर्वत्र सुखवानहम् ।
 सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥ ३८ ॥ सर्वत्र तृप्तिरूपोऽहं परा-
 मृतरसोऽस्म्यहम् । एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥ ३९ ॥ सर्वज्ञ-
 न्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः । मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूप-
 वान् ॥ ४० ॥ सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम् । तुरीयातीतरूपो-
 ऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान् ॥ ४१ ॥ सर्वदा ह्यजरूपोऽहं नीरागोऽस्मि निर-
 ज्ञनः । अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ॥ ४२ ॥ ओष्का-
 रार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम् । चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि
 न सोऽस्म्यहम् ॥ ४३ ॥ न हि किञ्चित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान् ।
 निरंशोऽस्मि निराभासो न मनो नेन्द्रियोऽस्म्यहम् ॥ ४४ ॥ न बुद्धिर्न
 विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम् । न जाग्रत्स्वरूपोऽहं न सुषुप्तिस्वरूप-
 वान् ॥ ४५ ॥ न तापत्रयरूपोऽहं नेषणात्रयवानहम् । श्रवणं नास्ति मे
 सिद्धेर्भननं च चिदात्मनि ॥ ४६ ॥ सजातीयं न मे किञ्चिद्विजातीयं न मे
 क्वचित् । स्वगतं च न मे किञ्चिन्न मे मेदत्रयं क्वचित् ॥ ४७ ॥ असत्यं हि
 मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम् । अहंकारमसद्गीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजरः
 ॥ ४८ ॥ देहत्रयमसद्विद्धि कालत्रयमसत्सदा । गुणत्रयमसद्विद्धि ह्यहं सत्या-
 त्मकः शुचिः ॥ ४९ ॥ श्रुतं सर्वमसद्विद्धि वेदं सर्वमसत्सदा । शास्त्रं सर्वम-
 सद्विद्धि ह्यहं सत्यचिदात्मकः ॥ ५० ॥ मूर्तित्रयमसद्विद्धि सर्वभूतमसत्सदा ।
 सर्वतत्त्वमसद्विद्धि ह्यहं भूमा सदाशिवः ॥ ५१ ॥ गुरुशिष्यमसद्विद्धि गुरो-
 र्मित्रमसत्ततः । यद्वृक्षं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥ ५२ ॥
 यच्चिन्त्यं तदसद्विद्धि यद्वाच्यं तदसत्सदा । यद्वितं तदसद्विद्धि न मां विद्धि
 तथाविधम् ॥ ५३ ॥ सर्वान्प्राणानसद्विद्धि सर्वान्भोगानसत्त्विति । इष्टं श्रुत-
 मसद्विद्धि ओतं प्रोतमसन्मयम् ॥ ५४ ॥ कार्याकार्यमसद्विद्धि नष्टं प्राप्तम-
 सन्मयम् । दुःखादुःखमसद्विद्धि सर्वासर्वमसन्मयम् ॥ ५५ ॥ पूर्णापूर्णम-
 सद्विद्धि धर्माधर्ममसन्मयम् । लाभालाभावसद्विद्धि जयाजयमसन्मयम्
 ॥ ५६ ॥ शब्दं सर्वमसद्विद्धि स्पर्शं सर्वमसत्सदा । रूपं सर्वमसद्विद्धि रसं सर्व-
 मसन्मयम् ॥ ५७ ॥ गन्धं सर्वमसद्विद्धि सर्वाज्ञानमसन्मयम् । असदेव सदा
 सर्वमसदं न भवोद्भवम् ॥ ५८ ॥ असदेव गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि । स्वात्म-

ममं सदा पश्येत्स्वात्मममं सदाभ्यसेत् ॥ ५९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं
दृश्यपापं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमन्यममं विनाशयेत् ॥ ६० ॥
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं देहदोषं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्म-
पापं विनाशयेत् ॥ ६१ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं मृत्युपाशं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत् ॥ ६२ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रो-
ऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चिन्तादुःखं विना-
शयेत् ॥ ६३ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं बुद्धिध्याधिं विनाशयेत् । अहं
ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तबन्धं विनाशयेत् ॥ ६४ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं
सर्वव्याधीन्विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत्
॥ ६५ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कामादीन्नाशयेत्क्षणात् । अहं ब्रह्मास्मि
मन्त्रोऽयं क्रोधशक्तिं विनाशयेत् ॥ ६६ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्त-
वृत्तिं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं संकल्पादीन्विनाशयेत् ॥ ६७ ॥
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्व-
तन्त्रं विनाशयेत् ॥ ६८ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मज्ञानं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मलोकजयप्रदः ॥ ६९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयम-
प्रतर्क्यसुखप्रदः । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमजडत्वं प्रयच्छति ॥ ७० ॥ अहं
ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्मासुरमर्दनः । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्माख्यगि-
रीन्हरेत् ॥ ७१ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्माख्यासुरान्हरेत् । अहं
ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वास्मान्मोक्षयिष्यति ॥ ७२ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं
ज्ञानानन्दं प्रयच्छति । सप्तकोटिमहामन्त्रं जन्मकोटिशतप्रदम् ॥ ७३ ॥
सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य पृतं मन्त्रं समभ्यसेत् । सद्यो मोक्षमवाप्नोति नात्र
संदेहमण्वपि ॥ ७४ ॥

इति तैजोविन्दूपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कुमारः परमेश्वरं पप्रच्छ जीवन्मुक्तविदेहमुक्तयोः स्थितिमनुब्रूहीति ।
स होवाच परः शिवः । चिदात्माहं परात्माहं निगुणोऽहं परात्परः । आत्म-
मात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १ ॥ देहजयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्य-
मस्म्यहम् । ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २ ॥ आनन्द-
घनरूपोऽस्मि परानन्दघनोऽस्म्यहम् । यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति
निश्चयः । परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३ ॥ यस्य किञ्चिदहं

नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते । चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रेकस्वरूपवान् ॥ ४ ॥
 सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः । आनन्दरतिरव्यक्तः परिपूर्णश्चिदा-
 त्मकः ॥ ५ ॥ शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः । नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा
 ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥ ६ ॥ किञ्चिदस्तिस्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ।
 न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहंकारो न चेन्द्रियम् ॥ ७ ॥ न मे देहः कदाचिद्वा
 न मे प्राणादयः क्वचित् । न मे माया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्थ-
 हम् ॥ ८ ॥ न मे किञ्चिदिदं वापि न मे किञ्चिक्वचिज्जागत् । न मे दोषो न
 मे लिङ्गं न मे चक्षुर्न मे मनः ॥ ९ ॥ न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा
 न मे करः । न मे जाग्रज्ज मे स्वप्नं न मे कारणमण्वपि ॥ १० ॥ न मे
 तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते । इदं सर्वं न मे किञ्चिदयं सर्वं न मे
 क्वचित् ॥ ११ ॥ न मे कालो न मे देशो न मे वस्तु न मे मतिः । न मे
 ज्ञानं न मे संध्या न मे दैवं न मे स्थलम् ॥ १२ ॥ न मे तीर्थं न मे
 सेवा न मे ज्ञानं न मे पदम् । न मे बन्धो न मे जन्म न मे वाक्यं न मे
 रविः ॥ १३ ॥ न मे पुण्यं न मे पापं न मे कार्यं न मे शुभम् । न मे
 जीव इति स्वात्मा न मे किञ्चिज्जाग्रदम् ॥ १४ ॥ न मे मोक्षो न मे द्वैतं
 न मे वेदो न मे त्रिधिः । न मेऽन्तिकं न मे दूरं न मे द्यौषो न मे
 रहः ॥ १५ ॥ न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः । न मे ब्रह्म
 न मे विष्णुर्न मे रुद्रो न चन्द्रमाः ॥ १६ ॥ न मे पृथ्वी न मे तोयं न मे
 वायुर्न मे विद्यत् । न मे ब्रह्मिर्न मे गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः ॥ १७ ॥
 न मे ध्याता न मे ध्येयं न मे ध्यातुं न मे मनुः । न मे शीतं न मे चोष्णं
 न मे तृष्णा न मे क्षुधा ॥ १८ ॥ न मे मित्रं न मे शत्रुर्न मे मोहो न मे
 जयः । न मे पूर्वं न मे पश्चात् न मे चोर्ध्वं न मे दिशः ॥ १९ ॥ न मे
 वक्तव्यमल्पं वा न मे श्रोतव्यमण्वपि । न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्य-
 मण्वपि ॥ २० ॥ न मे ओक्तव्यमीषद्वा न मे स्तुतव्यमण्वपि । न मे भोगो
 न मे रागो न मे यागो न मे लयः ॥ २१ ॥ न मे मोह्यं न मे शान्तं न मे
 बन्धो न मे प्रियम् । न मे मोदः प्रमोदो वा न मे स्थूलं न मे सूक्ष्मम् ॥ २२ ॥
 न मे दीर्घं न मे ह्रस्वं न मे बुद्धिर्न मे क्षयः । अध्यारोपोऽपवादो वा न मे
 चैकं न मे बहु ॥ २३ ॥ न मे आन्ध्यं न मे मान्द्यं न मे दृष्टिदमण्वपि ।
 न मे मांसं न मे रक्तं न मे मेदो न मे ह्यसृक् ॥ २४ ॥ न मे मज्जा न मेऽ-

मित्यपि ॥ ४६ ॥ इति निश्चयज्ञान्यो यो वैदेही मुक्त एव सः । चैतन्यमात्र-
संसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः ॥ ४७ ॥ अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूला-
दिवर्जितः । तुर्यतुर्यः परानन्दो वैदेही मुक्त एव सः ॥ ४८ ॥ नामरूपवि-
हीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः । तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः ॥ ४९ ॥
योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः । गुणागुणविहीनात्मा देशका-
लादिवर्जितः ॥ ५० ॥ साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किञ्चित्किञ्चिन्न किञ्चन । यस्य
प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न ॥ ५१ ॥ स्वस्वरूपे स्वयंज्योतिः स्वस्वरूपे
स्वयंरतिः । वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरः स्वयम् ॥ ५२ ॥ अतीता-
तीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः । चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः
॥ ५३ ॥ सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः । तस्मिन्काले विदेहीति
देहस्मरणवर्जितः ॥ ५४ ॥ ईषन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः । परैरदृष्ट-
बाह्यात्मा परमानन्दचिद्धनः ॥ ५५ ॥ परैरदृष्टबाह्यात्मा सर्ववेदान्तगोचरः ।
ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मामृतरसासक्तो ब्रह्मामृत-
रसः स्वयम् । ब्रह्मामृतरसे मग्नो ब्रह्मानन्दशिवायनः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मामृतरसे
वृत्तो ब्रह्मानन्दानुभावकः । ब्रह्मानन्दशिवायनन्दो ब्रह्मानन्दरसप्रभः ॥ ५८ ॥
ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्ब्रह्मानन्दनिरन्तरः । ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः
॥ ५९ ॥ ब्रह्मानन्दरसाखण्डो ब्रह्मानन्दैकचिद्धनः । ब्रह्मानन्दरसोद्वाहो ब्रह्मान-
न्दरसंभरः ॥ ६० ॥ ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः । आत्मरूपमिदं
सर्वमात्मनोऽन्यन्न किञ्चन ॥ ६१ ॥ सर्वमात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः ।
नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ६२ ॥ पूर्णरूपो महानात्मा प्रीता-
त्मा शाश्वतात्मकः । सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मलात्मा निरात्मकः ॥ ६३ ॥
निर्विकारस्वरूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः । शान्ताशान्तस्वरूपात्मा नैका-
त्मत्वविवर्जितः ॥ ६४ ॥ जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववर्जितः । मुक्तामुक्तस्व-
रूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः ॥ ६५ ॥ बन्धमोक्षस्वरूपात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः ।
द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः ॥ ६६ ॥ सर्वासर्वस्वरूपात्मा सर्वासर्व-
विवर्जितः । मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवर्जितः ॥ ६७ ॥ सर्वसंकल्प-
हीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः । निष्कलात्मा निर्मलात्मा शुद्धात्मा गुरुरा-
त्मकः ॥ ६८ ॥ आनन्दादिविहीनात्मा अमृतात्मा मृतात्मकः । कालत्रयस्वरू-
पात्मा कालत्रयविवर्जितः ॥ ६९ ॥ अखिलात्मा ह्यमेयात्मा मानात्मा

ज्ञानवर्जितः । नित्यप्रत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः ॥ ७० ॥ अन्यहीनस्वभावात्मा अन्यहीनस्वयंप्रभः । विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः ॥ ७१ ॥ नित्यानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः । शमादिषट्कशून्यात्मा मुमुक्षुत्वादिवर्जितः ॥ ७२ ॥ स्थूलदेहविहीनात्मा सूक्ष्मदेहविवर्जितः । कारणादिविहीनात्मा तुरीयादिविवर्जितः ॥ ७३ ॥ अन्नकोशविहीनात्मा प्राणकोशविवर्जितः । मनःकोशविहीनात्मा विज्ञानादिविवर्जितः ॥ ७४ ॥ आनन्दकोशहीनात्मा पञ्चकोशविवर्जितः । निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥ ७५ ॥ इदृशानुविद्धहीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः । सदा समाधिश्चूनात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः ॥ ७६ ॥ प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहं ब्रह्मास्त्रिवर्जितः । तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ॥ ७७ ॥ ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः । अवस्थान्नयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः ॥ ७८ ॥ आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः । आनामानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ७९ ॥ आत्मानमेव वीक्षस्व आत्मानं बोधय स्वकम् । स्वमात्मानं स्वयं बुद्ध्वा स्वस्थो भव पटानन ॥ ८० ॥ स्वमात्मनि स्वयं तृप्तः स्वमात्मानं स्वयं चर । आत्मानमेव मोदस्व वैदेही मुक्तिको भवेत्युपनिषत् ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

निदाघो नाम वै मुनिः पप्रच्छ ऋमुं अगवन्तमात्मानात्मविवेकमनुब्रूहीति । स होवाच ऋमुः । सर्ववाचोऽवधिर्ब्रह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः । सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः ॥ १ ॥ सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः । सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ॥ २ ॥ सर्वतेजःप्रकाशात्मा नादानन्दमयात्मकः । सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥ ३ ॥ सर्वनादकलातीत एव आत्माहमव्ययः । आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः ॥ ४ ॥ शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तज्योतिरूपकः । महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ॥ ५ ॥ तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः । क्षरःक्षरविहीनो यो नादान्तज्योतिरेव सः ॥ ६ ॥ अखण्डैकरसो वाऽहमानन्दोऽस्मीतिवर्जितः । सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तज्योतिरेव सः ॥ ७ ॥ आत्मेतिशब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः । सच्चिदानन्दहीनो य एवैवात्मा सनातनः ॥ ८ ॥ स निर्देष्टुमशक्यो यो वेदवाक्यैरगम्यतः । यस्य

किंचिद्वहिर्नास्ति किंचिदन्तः कियच्च च ॥ ९ ॥ यस्य लिङ्गं प्रपञ्चं वा ब्रह्मे-
 वात्मा न संशयः । नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूतभौतिकः ॥ १० ॥
 नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगशुद्धं च वा । सद्वाऽसद्वा स्थितिर्वापि यस्य
 नास्ति क्षराक्षरम् ॥ ११ ॥ गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः ।
 यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं च वा ॥ १२ ॥ गुरुशिष्यादिभेदं वा
 देवलोकः सुरासुराः । यत्र धर्ममधर्मं वा शुद्धं वाऽशुद्धमण्वपि ॥ १३ ॥ यत्र
 कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि । यत्र मन्त्रममन्त्रं वा विद्याऽविद्या न
 विद्यते ॥ १४ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकम् । अनात्मेति प्रसङ्गो
 वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा ॥ १५ ॥ अनात्मेति जगद्वापि नास्ति नास्तीति
 निश्चिनु । सर्वसंस्कारपशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् ॥ १६ ॥ केवलं ब्रह्ममात्रत्वं
 नास्त्यनात्मेति निश्चिनु । देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ॥ १७ ॥
 जीवत्रयगुणाभावात्तत्पन्नयविवर्जनात् । लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शास-
 नात् ॥ १८ ॥ चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च । पादाभावाद्वा-
 तिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥ १९ ॥ मृत्युर्न जननाभावाद्बुध्यभावा-
 त्सुखादिकम् । धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति भयं न च ॥ २० ॥
 अक्षरोच्चारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि । एकाभावे द्वितीयं न द्वितीयेऽपि
 न चैकता ॥ २१ ॥ सत्यत्वमस्ति चेत्किंचिदसत्यं न च संभवेत् ।
 असत्यत्वं यदि भवेत्सत्यत्वं न घटिष्यति ॥ २२ ॥ शुभं यद्यशुभं विद्धि
 अशुभाच्छुभमिष्यते । भयं यद्यभयं विद्धि अभयान्नयमापतेत् ॥ २३ ॥
 बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क्व मोक्षता । मरणं यदि चेज्जन्म
 जन्माभावे मृतिर्न च ॥ २४ ॥ त्वमित्यपि भवेच्चाहं त्वं नो चेदहमेव
 न । इदं यदि तदेवास्ति तदभावादिदं न च ॥ २५ ॥ अस्तीति चेन्नास्ति
 तदा नास्ति चेदस्ति किंचन । कार्यं चेत्कारणं किंचित्कार्याभावे न कारणम्
 ॥ २६ ॥ द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैतभावे द्वयं न च । दृश्यं यदि दृगप्यस्ति
 दृश्याभावे द्योव न ॥ २७ ॥ अन्तर्यद्वि बहिः सत्यमन्ताभावे बहिर्न च ।
 पूर्णत्वमस्ति चेत्किंचिदपूर्णत्वं प्रसज्यते ॥ २८ ॥ तस्मादेतत्कचिन्नास्ति त्वं
 चाहं वा इमे इदम् । नास्ति दृष्टान्तिकं सत्यं नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे ॥ २९ ॥
 परंब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो न हि । ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं त्वम-
 प्यहम् ॥ ३० ॥ चिन्मात्रं केवलं चाहं नास्त्यनात्मेति निश्चिनु । इदं प्रपञ्चं

नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं क्वचित् ॥ ३१ ॥ चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति
 नास्त्येव सर्वदा । न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहंकारो न जीवकः ॥ ३२ ॥ माया-
 कार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि । कर्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं
 मननं नहि ॥ ३३ ॥ समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि । अज्ञानं
 चापि नास्त्येव ह्यविवेकं कदाचन ॥ ३४ ॥ अनुबन्धचतुष्कं न संबन्धत्रयमेव
 न । न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि ॥ ३५ ॥ न भूमिर्न जलं
 नाग्निर्न वायुर्न च खं क्वचित् । न देवा नच दिक्पाला न वेदा न गुरुः
 क्वचित् ॥ ३६ ॥ न दूरं नान्तिकं नालं न मध्यं न क्वचित्स्थितम् । नाद्वैतं
 द्वैतसत्ये वा ह्यसत्यं वा इदं न च ॥ ३७ ॥ बन्धमोक्षादिकं नास्ति सद्वाऽसद्वा
 सुखादि वा । जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम् ॥ ३८ ॥
 सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि । चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहंभा-
 वणं नहि ॥ ३९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यशुद्धोऽस्मि न क्वचित् । वाचा
 यदुच्यते किञ्चिन्मनसा मनुते क्वचित् ॥ ४० ॥ बुद्ध्या निश्चिनुते नास्ति
 चित्तेन ज्ञायते नहि । योगियोगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च ॥ ४१ ॥
 अहोरात्रादिकं नास्ति स्नानध्यानादिकं नहि । भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव
 नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥ ४२ ॥ वेदः शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारण-
 मीश्वरः । लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४३ ॥ बन्धो
 मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः । गौणं मुख्यं परं चान्यत्सर्वं मिथ्या
 न संशयः ॥ ४४ ॥ वाचा वदति यत्किञ्चित्संकल्पैः कल्प्यते च यत् । मनसा
 चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४५ ॥ बुद्ध्या निश्चीयते किञ्चिच्चित्ते
 निश्चीयते क्वचित् । शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यद्यन्नेत्रेणैव निरीक्ष्यते ॥ ४६ ॥ श्रोत्राभ्यां
 श्रूयते यद्यदन्यत्सद्भावमेव च । नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चि-
 तम् ॥ ४७ ॥ इदमित्येव निर्दिष्टमयमित्येव कल्प्यते । त्वमहं तदिदं सोऽहमन्य-
 त्सद्भावमेव च ॥ ४८ ॥ यद्यत्संभाव्यते लोके सर्वसंकल्पसंभ्रमः । सर्वाध्यासं
 सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रमेदकम् ॥ ४९ ॥ सर्वदोषप्रमेदाच्च नास्त्यनात्मेति
 निश्चिनु । मदीयं च त्वदीयं च ममेति च तवेति च ॥ ५० ॥ मह्यं तुभ्यं मये-
 त्यादि सत्सर्वं वितथं भवेत् । रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम्
 ॥ ५१ ॥ संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु । स्नानं जपस्तपो होमः
 स्वाध्यायो देवपूजनम् ॥ ५२ ॥ मद्यं तद्यं च सत्सङ्गो गुणदोषविजृम्भणम् ।

अन्तःकरणसद्भावविद्यायाश्च संशयः ॥ ५३ ॥ अनेककोटिब्रह्माण्डं सर्वं
 मिथ्येति निश्चिनु । सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम् ॥ ५४ ॥
 दृश्यते जगति यद्यद्यज्जगति वीक्ष्यते । वर्तते जगति यद्यत्सर्वं मिथ्येति
 निश्चिनु ॥ ५५ ॥ येन केनाक्षरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम् । येन
 केनापि गदितं येन केनापि मोदितम् ॥ ५६ ॥ येन केनापि यदत्तं येन
 केनापि यत्कृतम् । यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम् ॥ ५७ ॥
 यद्यत्करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चिनु । त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो
 गुरुः ॥ ५८ ॥ त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वदा । त्वमेव सर्व-
 भावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः ॥ ५९ ॥ कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा
 ब्रह्मासि चिद्धनः । सर्वतः स्वस्वरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि ॥ ६० ॥ सत्योऽसि
 सिद्धोऽसि सनातनोऽसि मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि मुदामृदोऽसि । देवोऽसि
 शान्तोऽसि निरामयोऽसि ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि ॥ ६१ ॥ समोऽसि
 सच्चपि सनातनोऽसि सत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितोऽसि । सर्वाङ्गहीनोऽसि
 सदा स्थितोऽसि ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिविभावितोऽसि ॥ ६२ ॥ सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्जि-
 तोऽसि सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि । सर्वत्र संकल्पविवर्जितोऽसि सर्वाङ्गमा-
 न्तार्थविभावितोऽसि ॥ ६३ ॥ सर्वत्र संतोषमुखसन्नोऽसि सर्वत्र गत्यादिविव-
 र्जितोऽसि । सर्वत्र लक्ष्यादिविवर्जितोऽसि ध्यातोऽसि विष्ण्वादिपुरैरजस्रम्
 ॥ ६४ ॥ चिदाकारस्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कुशः । आत्मन्येव
 स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः ॥ ६५ ॥ आनन्दोऽसि परोऽसि त्वमेक
 एवाद्वितीयकः । चिद्धनानन्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः ॥ ६६ ॥ सदसि त्वमसि
 ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि । सच्चिदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै
 प्रभुः ॥ ६७ ॥ अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलो ह्यचलो ह्यसि । सर्वोऽसि सर्व-
 हीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः ॥ ६८ ॥ सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासा-
 मान्यको ह्यसि । नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥ ६९ ॥ ईषन्मा-
 त्रविशून्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः । अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिवि-
 वर्जितः ॥ ७० ॥ लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः । सर्वनादा-
 न्तरोऽसि त्वं कलाकाष्ठाविवर्जितः ॥ ७१ ॥ ब्रह्माविष्ण्वीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं
 प्रपश्यसि । स्वस्वरूपावशेषोऽसि स्वानन्दाब्धौ निमज्जसि ॥ ७२ ॥ स्वात्मराज्ये
 स्वमेवासि स्वयंभावविवर्जितः । क्षिष्टपूर्णस्वरूपोऽसि स्वस्मात्किञ्चिन्न पश्यसि

॥ ७३ ॥ स्वस्वरूपात्त चलसि स्वस्वरूपेण जृम्भसि । स्वस्वरूपादनन्योऽसि
 ह्यहमेवासि निश्चिनु ॥ ७४ ॥ इदं प्रपञ्चं यत्किञ्चिद्यज्जगति विद्यते ।
 दृश्यरूपं च दृश्यं सर्वं शशविषाणवत् ॥ ७५ ॥ भूमिरापोऽनलो वायुः
 खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकारश्च तेजश्च लोकं सुवनमण्डलम् ॥ ७६ ॥ नाशो
 जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकम् । रागः कामः क्रोधलोभौ
 ध्यानं ध्येयं गुणं परम् ॥ ७७ ॥ गुरुशिष्योपदेशादिरादिरन्तं शमं शुभम् ।
 भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम् ॥ ७८ ॥ शमो विचारः संतोषो
 भोक्तृभोज्यादिरूपकम् । यमाद्यष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम् ॥ ७९ ॥
 आदिमध्यान्तरङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरेः शिवः । इन्द्रियाणि मनश्चैव
 अवस्थान्त्रितयं तथा ॥ ८० ॥ चतुर्विंशतितत्त्वं च साधनानां चतुष्टयम् ।
 सजातीयं विजातीयं लोका भूरादयः क्रमात् ॥ ८१ ॥ सर्ववर्णाश्रमाचारं
 मन्त्रतन्त्रादिसंग्रहम् । विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेद्यं जडाजडम् ॥ ८२ ॥ बन्ध-
 मोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम् । बोधाबोधस्वरूपं वा द्वैताद्वैतादिभाष-
 णम् ॥ ८३ ॥ सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम् । अनेकजीवसद्भावमे-
 कजीवादिनिर्णयम् ॥ ८४ ॥ यद्यच्चायति चित्तेन यद्यत्संकल्पते क्वचित् ।
 बुद्ध्या निश्चीयते यद्यद्गुणा संश्लेषोति यत् ॥ ८५ ॥ यद्यद्वाचा व्याकरोति
 यद्यदाचार्यभाषणम् । यद्यत्स्वरेन्द्रियैर्भाष्यं यद्यन्मीमांस्यते पृथक् ॥ ८६ ॥
 यद्यद्व्यायेन निर्णीतं महन्निर्वेदपारगैः । शिवः क्षरति लोकान्वै विष्णुः पाति
 जगन्नयम् ॥ ८७ ॥ ब्रह्मा सृजति लोकान्वै एवमादिक्रियादिकम् । यद्यदस्ति
 पुराणेषु यद्यद्वेदेषु निर्णयम् ॥ ८८ ॥ सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाण-
 वत् । देहोऽहमिति संकल्पं तदन्तःकरणं स्मृतम् ॥ ८९ ॥ देहोऽहमिति संकल्पो
 महत्संसार उच्यते । देहोऽहमिति संकल्पस्तद्वन्धमिति चोच्यते ॥ ९० ॥ देहोऽ-
 हमिति संकल्पस्तदुःखमिति चोच्यते । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव नरकं स्मृतम्
 ॥ ९१ ॥ देहोऽहमिति संकल्पो जगत्सर्वमितीर्यते । देहोऽहमिति संकल्पो
 हृदयग्रन्थिरीरितः ॥ ९२ ॥ देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते । देहो-
 ऽहमिति यज्ज्ञानं तदसद्भावमेव च ॥ ९३ ॥ देहोऽहमिति या बुद्धिः सा
 चाविद्येति भण्यते । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते ॥ ९४ ॥
 देहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं
 परिच्छिन्नमितीरितम् ॥ ९५ ॥ देहोऽहमिति संकल्पो महापापमिति स्फुटम् ।

देहोऽहमिति या बुद्धिस्तृष्णा दोषामयः किल ॥ ९६ ॥ यत्किंचिदपि
 संकल्पस्तापत्रयमितीरितम् । कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं विश्वं दोषं कालना-
 नास्वरूपम् । यत्किंचेदं सर्वसंकल्पजालं तत्किंचेदं मानसं सोम्य विद्धि
 ॥ ९७ ॥ मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः । मन एव हि संसारो
 मन एव जगन्नयम् ॥ ९८ ॥ मन एव महदुःखं मन एव जरादिकम् ।
 मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा ॥ ९९ ॥ मन एव हि संकल्पो
 मन एव हि जीवकः । मन एव हि चित्तं च मनोऽहंकार एव च ॥ १०० ॥
 मन एव महद्वन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत् । मन एव हि भूमिश्च मन एव हि
 तोयकम् ॥ १०१ ॥ मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान् । मन एव हि
 चाकाशं मन एव हि शब्दकम् ॥ १०२ ॥ स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोशाः पञ्च
 मनोभवाः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि मनोमयमितीरितम् ॥ १०३ ॥ दिक्पाला
 वसवो रुद्रा आदित्याश्च मनोमयाः । दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं
 स्मृतम् ॥ १०४ ॥ संकल्पमेव यत्किंचित्तत्तन्नास्तीति निश्चिनु । नास्ति नास्ति
 जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहीत्युपनिषत् ॥ १०५ ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ऋभुः ॥ सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् । सच्चिदानन्दमद्वैतं
 सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ १ ॥ सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम् ।
 सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव खम् ॥ २ ॥ सच्चिदानन्दमेव त्वं
 सच्चिदानन्दकोऽस्म्यहम् । मनोबुद्धिरहंकारचित्तसंघातका अमी ॥ ३ ॥
 न त्वं नाहं न चान्यद्वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् । न वाक्यं न पदं वेदं
 नाक्षरं न जडं क्वचित् ॥ ४ ॥ न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निबन्ध-
 नम् । न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा ॥ ५ ॥ न देहं न मुखं
 घ्राणं न जिह्वा न च तालुनी । न दन्तोष्ठौ ललाटं च निःश्वातोच्छ्वास एव च
 ॥ ६ ॥ न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम् । न दूरं नान्तिकं
 नाङ्गं नोदरं न किरीटकम् ॥ ७ ॥ न हस्तपादचलनं न शास्त्रं न च शासनम् ।
 न वेत्ता वेदनं वेद्यं न जाग्रत्स्वप्नसुप्तयः ॥ ८ ॥ तुर्यातीतं न मे किंचित्सर्वं
 सच्चिन्मयं ततम् । नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायिकम् ॥ ९ ॥ न
 विश्वस्तैजसः प्राज्ञो विराट्सूत्रात्मकेश्वराः । न गमागमचेष्टा च न नष्टं न
 प्रयोजनम् ॥ १० ॥ त्याज्यं ग्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा । न पीनं

न कृशं ह्रैदं न कालं देशभाषणम् ॥ ११ ॥ न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्ष-
 तृणपर्वताः । न ध्यानं योगसंसिद्धिर्न ब्रह्मक्षत्रवैश्यकम् ॥ १२ ॥ न पक्षी न
 मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च । न मदो न च मात्सर्यं कामक्रोधादय-
 स्तथा ॥ १३ ॥ न स्त्रीशूद्रविडालादि भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् । न प्रौढहीनो
 नास्तिक्यं न वार्तावसरोऽस्ति हि ॥ १४ ॥ न लौकिको न लोको वा न
 व्यापारो न मूढता । न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पानपेयकम् ॥ १५ ॥
 न शत्रुमित्रपुत्रादिर्न माता न पिता स्वसा । न जन्म न मृतिर्बुद्धिर्न देहोऽह-
 मिति भ्रमः ॥ १६ ॥ न शून्यं नापि चाशून्यं नान्तःकारणसंसृतिः । न
 रात्रिर्न दिवा नक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः ॥ १७ ॥ न वारपक्षमासादि
 वत्सरं न च चञ्चलम् । न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः ॥ १८ ॥
 न स्वर्गो न च देवेन्द्रो नाग्निलोको न चाग्निकः । न यमो यमलोको वा न
 लोका लोकपालकाः ॥ १९ ॥ न भूर्भुवःस्वर्लोक्यं न पातालं न भूतलम् । ना-
 विद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा ॥ २० ॥ न स्थिरं क्षणिकं नाशं न
 गतिर्न च धावनम् । न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्त्रो न जपः क्वचित् ॥ २१ ॥
 न पदार्था न पूजाहं नाभिषेको न चार्चनम् । न पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपु-
 ण्पादिधूपकम् ॥ २२ ॥ न स्तोत्रं न नमस्कारो न प्रदक्षिणमण्वपि । न प्रा-
 थना पृथग्भावो न हविर्नाग्निवन्दनम् ॥ २३ ॥ न होमो न च कर्माणि न
 दुर्वाक्यं सुभाषणम् । न गायत्री न वा संधिर्न मनस्यं न दुःस्थितिः ॥ २४ ॥
 न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः । न दुःसहं दुरालापं न
 किरातो न कैतवम् ॥ २५ ॥ न पक्षपातं पक्षं वा न विभूषणतस्करौ । न च
 दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः ॥ २६ ॥ नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न
 महत्त्वं न चाल्पता । न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः ॥ २७ ॥ न
 गोत्रं न कुलं सूत्रं न विशुक्त्वं न शून्यता । न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या
 न वितन्तुता ॥ २८ ॥ न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविभ्रमः । न महावा-
 क्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः ॥ २९ ॥ सर्वचैतन्यमात्रत्वात्सर्वदोषः सदा
 न हि । सर्वं सन्मात्ररूपत्वात्सच्चिदानन्दमात्रकम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मैव सर्वं
 नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा । तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम् ॥ ३१ ॥
 ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः । ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्ब्रह्मैवाहं न
 चेन्द्रियः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः । ब्रह्मैवाहं न

जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं न भेदभूः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे
 सृतिः । ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्परः ॥ ३४ ॥ इदं ब्रह्म परं ब्रह्म
 सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः । कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंप्रभम् ॥ ३५ ॥
 एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम् । दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं
 विभुः प्रभुः ॥ ३६ ॥ लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः । पूर्वं ब्रह्म
 परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥ ३७ ॥ जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्द-
 मस्त्यहम् । सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥ ३८ ॥ स्वयं ब्रह्म न
 संदेहः स्वस्मादन्यन्न किंचन । सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम्
 ॥ ३९ ॥ नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किंचन । अणुमात्रलसद्रूपमणु-
 मात्रमिदं जगत् ॥ ४० ॥ अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम् । अणुमा-
 त्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं
 जगद्वयम् । आनन्दं परमानन्दमन्यत्किञ्चिन्न किंचन ॥ ४२ ॥ चैतन्यमात्र-
 मोंकारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम् । अहमेव . जगत्सर्वमहमेव परं पदम् ॥ ४३ ॥
 अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः । अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः
 ॥ ४४ ॥ अहमेवाखिलाधार अहमेव सुखात्सुखम् । आत्मनोऽन्यजगन्नास्ति
 आत्मनोऽन्यत्सुखं न च ॥ ४५ ॥ आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममय
 जगत् । आत्मनोऽन्यन्न हि कापि आत्मनोऽन्यत्तृणं नहि ॥ ४६ ॥ आत्मनोऽ-
 न्यत्तृणं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् । ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न
 हि ॥ ४७ ॥ ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम् । ब्रह्ममात्रं वृतं सर्वं
 ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ४८ ॥ ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
 ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यजगन्न च ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति
 ब्रह्मणोऽन्यत्फलं नहि । ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि
 ॥ ५० ॥ ब्रह्मणोऽन्यद्वरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः । ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहंता
 न्वत्तेदन्ते नहि क्वचित् ॥ ५१ ॥ स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन्न
 किंचन । यत्किञ्चिद्दृश्यते लोके . यत्किञ्चिद्भाष्यते जलैः ॥ ५२ ॥ यत्किञ्चि-
 द्बुज्यते कापि तत्सर्वमसदेव हि । कर्तृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकम्
 ॥ ५३ ॥ लिङ्गभेदमिदं सर्वमसदेव सदा सुखम् । कालभेदं देशभेदं वस्तु-
 भेदं जयाजयम् ॥ ५४ ॥ यद्यद्भेदं च तत्सर्वमसदेव हि केवलम् । अस-
 दन्तःकरणकमसदेवेन्द्रियादिकम् ॥ ५५ ॥ असत्प्राणादिकं सर्वं संवातमस-

दात्मकम् । असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवताः ॥ ५६ ॥ असत्यं षड्विकारादि असत्यमरिवर्गकम् । असत्यं षडृतुश्चैव असत्यं षड्रसस्तथा ॥ ५७ ॥ सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् । आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः ॥ ५८ ॥ सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्धनानन्दविग्रहः । अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः ॥ ५९ ॥ ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः । सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम् ॥ ६० ॥ अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत् । त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान् ॥ ६१ ॥ चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परमं सुखम् । आत्मैवाहमसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः ॥ ६२ ॥ सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् । कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्रकृतिरेव न ॥ ६३ ॥ अहमेव हरिः साक्षादहमेव सदाशिवः । शुद्धचैतन्यभावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः ॥ ६४ ॥ अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्धनैकरसोऽस्म्यहम् । सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६५ ॥ सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम् । सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणः ॥ ६६ ॥ परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः । सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः ॥ ६७ ॥ योगानन्दस्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः । सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ॥ ६८ ॥ तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः । चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः ॥ ६९ ॥ 'अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम् । शुद्धं बुद्धं सदासुक्तमनामकमरूपकम् ॥ ७० ॥ सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् । सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकलनादिकम् ॥ ७१ ॥ नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् । अनन्तमव्ययं शान्तमेकरूपमनामयम् ॥ ७२ ॥ मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका । वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किञ्चन ॥ ७३ ॥ शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतश्चेज्जगदस्ति तत् । मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ७४ ॥ नरशृङ्गेण नष्टश्चेत्कश्चिदस्त्विदमेव हि । गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥ ७५ ॥ गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति । शुक्तिकारजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत् ॥ ७६ ॥ रज्जुसर्पेण दष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः । जातरूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत् ॥ ७७ ॥ विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज्जगदुद्भवः । रम्भास्तम्भेन काष्ठेन पाकसिद्धौ जगद्भवत् ॥ ७८ ॥ सद्यःकुमारिकारूपैः पाके सिद्धे जगद्भवत् । चित्रस्थदीपैस्तमसो नाशश्चेदस्त्विदं जगत्

॥ ७९ ॥ मासात्पूर्वं सृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेजगद्भवेत् । तत्रं क्षीरस्वरूपं चेत्क-
 चिन्नित्यं जगद्भवेत् ॥ ८० ॥ गोस्तनादुद्भव क्षीरं पुनरारोपणे जगत् । भूर-
 जोऽब्धौ समुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८१ ॥ कूर्मरोम्णा गजे बद्धे जगदस्तु
 मदोत्कटे । नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेजगद्भवेत् ॥ ८२ ॥ तुरङ्गमालया
 सिन्धुर्वद्धश्चेदस्त्विदं जगत् । अग्नेरधश्चेज्ज्वलनं जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८३ ॥
 ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्ति रूपमिदं जगत् । ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेज-
 गदस्त्विदम् ॥ ८४ ॥ महच्छैलेन्द्रनीलं वा संभवेच्चेदिदं जगत् । मेरुरागल्य
 पद्माक्षे स्थितश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ८५ ॥ निगिरेच्चेद्भृङ्गसूनुर्मैरं चलवदस्त्विदम् ।
 मशकेन हते सिंहे जगत्सत्यं तदास्तु ते ॥ ८६ ॥ अणुकोटरविस्तीर्णे
 त्रैलोक्यं चेज्जगद्भवेत् । तृणानलश्च नित्यश्चेत्क्षणिकं तज्जगद्भवेत् ॥ ८७ ॥
 स्वप्नदृष्टं च यद्वस्तु जागरे चेज्जगद्भवः । नदीवेगो निश्चलश्चेत्केनापीदं भवे-
 ज्जगत् ॥ ८८ ॥ क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पितं भवेत् । जालान्धै रत्न-
 विषयः सुज्ञातश्चेज्जगत्सदा ॥ ८९ ॥ नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेज्जगद्भवत् ।
 निर्मितः शशशृङ्गेण रथश्चेज्जगदस्ति तत् । ॥ ९० ॥ सद्योजाता तु या कन्या
 भोगयोग्या भवेज्जगत् । वन्ध्या गर्भास्तत्सौख्यं ज्ञाता चेदस्त्विदं जगत्
 ॥ ९१ ॥ काको वा हंसवद्भृच्छेज्जगद्भवतु निश्चलम् । महाखरो वा सिंहेन
 युध्यते चेज्जगत्स्थितिः ॥ ९२ ॥ महाखरो गजगतिं गतश्चेज्जगदस्तु तत् ।
 संपूर्णचन्द्रसूर्यश्चेज्जगद्भातु स्वयं जडम् ॥ ९३ ॥ चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहु-
 श्चेद्दृश्यते जगत् । मृष्टवीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेज्जगदस्तु सत् ॥ ९४ ॥ दरिद्रो
 धनिकानां च सुखं भुङ्क्ते तदा जगत् । शुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि
 जगत्तदा ॥ ९५ ॥ ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा । श्वानेन सागरे
 पीते निःशेषेण मनो भवेत् ॥ ९६ ॥ शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा
 जगत् । भूमौ वा पतितं व्योम व्योमपुष्पं सुगन्धकम् ॥ ९७ ॥ शुद्धाकाशे
 वने जाते चलिते तु तदा जगत् । केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा
 जगत् ॥ ९८ ॥ अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि । सर्वथा भेदकलनं
 द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥ ९९ ॥ सायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम् । देहोऽह-
 मिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥ १०० ॥ हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्म-
 चक्रकम् । संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत् ॥ १०१ ॥ अनात्मरूपचोरश्चे-
 दात्मारत्नस्य रक्षणम् । नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥ १०२ ॥

एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम् । ब्रह्मैव सर्वभावनं भुवनं नाम
 संत्यज ॥ १०३ ॥ अहंब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज । सर्वमेव लयं
 याति सुप्ताहस्तस्थपुष्पवत् ॥ १०४ ॥ न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव
 केवलम् । न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्टयम् ॥ १०५ ॥ लक्षणात्र-
 यविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् । सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यहं ब्रह्मेति भावय
 ॥ १०६ ॥ अहं ब्रह्म न संदेहो ह्यहं ब्रह्म चिदात्मकम् । सन्निदानन्दमात्रोऽ-
 हमिति निश्चित्य तत्त्यज ॥ १०७ ॥ शांकरियं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्य-
 चित् । नास्तिकाय कृतप्राय दुर्धृत्ताय दुरात्मने ॥ १०८ ॥ गुरुभक्तिविशु-
 द्धान्तःकरणाय महात्मने । सम्यक् परीक्ष्य दातव्यं मासं षण्मासवत्सरम्
 ॥ १०९ ॥ सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज्य सादरम् । तेजोविन्दूपनिषदमभ्य-
 सेत्सर्वदा मुदा ॥ ११० ॥ सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मैव भवति स्वयं ब्रह्मैव
 भवति स्वयमित्युपनिषत् ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ ३९ ॥

नादविन्दूपनिषत् ॥ ४० ॥

वैराजात्मोपासनया संजातज्ञानवह्निना ।

दग्ध्वा कर्मत्रयं योगी यत्पदं याति तद्भजे ॥

ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः ॥

ॐ अकारो दक्षिणः पक्ष उकारस्तत्तरः स्मृतः । मकारं पुच्छमित्याहुर-
 धमात्रा तु मस्तकम् ॥ १ ॥ पादादिकं गुणास्तस्य शरीरं तत्त्वमुच्यते । धर्मो-
 ऽस्य दक्षिणं चक्षुरधर्मोऽथो परः स्मृतः ॥ २ ॥ भूलोकः पादयोस्तस्य भुव-
 लोक्तु जानुनि । सुवलोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत् ॥ ३ ॥ जनोलो-
 कस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः । भ्रुवोर्ललाटमध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः
 ॥ ४ ॥ सहस्रार्णमतीवात्र मन्त्र एष प्रदर्शितः । एवमेतां समारूढो हंसयो-
 गविचक्षणः ॥ ५ ॥ न भिद्यते कर्मचारैः पापकोटिशतैरपि । आग्नेयी प्रथमा
 मात्रा वायव्येषा तथापरा ॥ ६ ॥ भानुमण्डलसंकाशा भवेन्मात्रा तथोत्तरा ।
 परमा चार्धमात्रा या वारुणी तां विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥ कालत्रयेऽपि यस्यैमा मात्रा
 नूनं प्रतिष्ठिताः । एष ओंकार आख्यातो धारणाभिर्निबोधत ॥ ८ ॥ घोषिणी

प्रथमा मात्रा विद्या मात्रा तथाऽपरा । पतङ्गिनी तृतीया स्याच्चतुर्थी चायु-
वेगिनी ॥ ९ ॥ पञ्चमी नामधेया तु षष्ठी चैन्द्रमिधीयते । सप्तमी वैष्णवी
नाम अष्टमी शांकरीति च ॥ १० ॥ नवमी महती नाम धृतिस्तु दशमी
मता । एकादशी भवेन्नारी ब्राह्मी तु द्वादशी परा ॥ ११ ॥ प्रथमायां तु
यात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते । भरते वर्षराजासौ सार्वभौमः प्रजायते ॥ १२ ॥
द्वितीयायां समुत्क्रान्तो भवेद्यक्षो महात्मवान् । विद्याधरस्तृतीयायां गान्ध-
र्वस्तु चतुर्थिका ॥ १३ ॥ पञ्चम्यामथ मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते । उषितः
सह देवत्वं सोमलोके महीयते ॥ १४ ॥ षष्ठ्यामिन्द्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां
वैष्णवं पदम् । अष्टम्यां ब्रजते रुद्रं पशूनां च पतिं तथा ॥ १५ ॥ नवम्यां
तु महर्लोकं दशम्यां तु जनं ब्रजेत् । एकादस्यां तपोलोकं द्वादस्यां ब्रह्म
शाश्वतम् ॥ १६ ॥ ततः परतरं शुद्धं व्यापकं निर्मलं शिवम् । सदोदितं परं
ब्रह्म ज्योतिषामुदयो यतः ॥ १७ ॥ अतीन्द्रियं गुणातीतं मनो लीनं यदा
भवेत् । अनूपमं शिवं शान्तं योगयुक्तं सदाविशेत् ॥ १८ ॥ तद्युक्तस्तन्मयो
जन्तुः शनैर्मुञ्चेत्कलेवरम् । संस्थितो योगचारेण सर्वसङ्गविचर्जितः ॥ १९ ॥
ततो विलीनपाशोऽसौ विमलः कमलाग्रभुः । तेनैव ब्रह्मभावेन परमानन्दमश्नुते
॥ २० ॥ आत्मानं सततं ज्ञात्वा कालं नय महामते । प्रारब्धमखिलं मुञ्जन्नो-
द्वेगं कर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ उत्पन्ने तत्त्वविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति । तत्त्वज्ञा-
नोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते ॥ २२ ॥ देहादीनामसत्त्वात्तु यथा स्वप्ने
विबोधतः । कर्म जन्मान्तरीयं यत्प्रारब्धमिति कीर्तितम् ॥ २३ ॥ तत्तु
जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिचित् । स्वमदेहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि
देहकः ॥ २४ ॥ अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे कुतः स्थितिः । उपादानं
प्रपञ्चस्य सृष्ट्वाण्डस्येव पश्यति ॥ २५ ॥ अज्ञानं चेति वेदान्तैस्तस्मिन्नाष्टे क
विश्वता । यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ॥ २६ ॥ तद्वत्सत्य-
मविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः । रज्जुस्वप्ने परिज्ञाते सर्परूपं न तिष्ठति
॥ २७ ॥ अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चे शून्यतां गते । देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रा-
रब्धावस्थितिः कुतः ॥ २८ ॥ अज्ञानजनबोधार्थं प्रारब्धमिति चोच्यते ।
ततः कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते ॥ २९ ॥ ब्रह्मप्रणवसंधानं नादो
ज्योतिर्मयः शिवः । स्वयमाविर्भवेदात्मा मेधापायैऽंशुमानिव ॥ ३० ॥
सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम् । शृणुयादक्षिणे कर्णे नाज-

मन्तर्गतं सदा ॥ ३१ ॥ अभ्यस्यमानो नादोऽयं ब्रह्मावृणुते ध्वनिः । पक्षा-
द्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत् ॥ ३२ ॥ श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो
नानाविधो महान् । वर्धमाने तथाभ्यासे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मतः ॥ ३३ ॥
आदौ जलधिजीमूतभेरीनिर्झरसंभवः । मध्ये मर्दलशब्दाभो घण्टाकाहलज-
स्तथा ॥ ३४ ॥ अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वनः । इति नानाविधा
नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः ॥ ३५ ॥ महति श्रूयमाणे तु महाभेरीदिक-
ध्वनौ । तत्र सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं नाममेव परामृशेत् ॥ ३६ ॥ घनमुत्सृज्य वा
सूक्ष्मे सूक्ष्ममुत्सृज्य वा घने । रममाणमपि क्षिप्तं मनो नान्यत्र चालयेत्
॥ ३७ ॥ यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः । तत्र तत्र स्थिरीभूत्वा
तेन सार्धं विलीयते ॥ ३८ ॥ विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादे दुग्धाम्बुव-
न्मनः । एकीभूयाथ सहसा चिदाकाशे विलीयते ॥ ३९ ॥ उदासीन-
स्ततो भूत्वा सदाभ्यासेन संयमी । उन्मनीकारकं सद्यो नादमेवाव-
धारयेत् ॥ ४० ॥ सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः । नादमेवानुसं-
दध्यान्नादे चित्तं विलीयते ॥ ४१ ॥ मकरन्दं पिवन्भृङ्गो गन्धान्नापेक्षते
तथा । नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि काङ्क्षति ॥ ४२ ॥ बद्धः सुनाद-
गन्धेन सद्यः संत्यक्तचापलः । नादग्रहणतश्चित्तमन्तरङ्गभुजङ्गमः ॥ ४३ ॥
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति । मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्या-
नचारिणः ॥ ४४ ॥ नियामनसमर्थोऽयं निनादो निशिताङ्कुशः । नादोऽन्त-
रङ्गसारङ्गबन्धने वायुरायते ॥ ४५ ॥ अन्तरङ्गसमुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि
वा । ब्रह्मप्रणवसंलग्ननादो ज्योतिर्मयात्मकः ॥ ४६ ॥ मनस्तत्र लयं याति
तद्विष्णोः परमं पदम् । तावदाकाशसंकल्पो यावच्छब्दः प्रवर्तते ॥ ४७ ॥
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मा समीयते । नादो यावन्मनस्तावन्नादान्तेऽपि
मनोन्मनी ॥ ४८ ॥ सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् । सदा नादा-
नुसंधानात्संक्षीणा वासना तु या ॥ ४९ ॥ निरञ्जने विलीयेते मनोवायू न
संशयः । नादकोटिसहस्राणि बिन्दुकोटिशतानि च ॥ ५० ॥ सर्वे तत्र लयं
यान्ति ब्रह्मप्रणवनादके । सर्वावस्थाविनिर्मुक्तः सर्वचिन्ताविवर्जितः ॥ ५१ ॥
मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः । शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति
कदाचन ॥ ५२ ॥ काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थाया ध्रुवम् । न जानाति
स शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा ॥ ५३ ॥ न मानं नावमानं च संत्यक्त्वः

तु समाधिना । अवस्थात्रयमन्वेति न चित्तं योगिनः सदा ॥ ५४ ॥ जाग्र-
जिद्राविनिर्मुक्तः स्वरूपावस्थतामियात् ॥ ५५ ॥ इष्टिः स्थिरा यस्य विनासद-
इयं वायुः स्थिरो यस्य विनाप्रयत्नम् । चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं स
ब्रह्मतारान्तरनादरूप इत्युपनिषत् ॥ ५६ ॥ ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः ॥
इति नादविन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ ४० ॥

ध्यानविन्दूपनिषत् ॥ ४१ ॥

ध्यात्वा यद्ब्रह्ममात्रं ते स्वावशेषधिया ययुः ।
योगतत्त्वज्ञानफलं तत्स्वमात्रं विचिन्तये ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम् । भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो
भेदः कदाचन ॥ १ ॥ बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् । सशब्दं
चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥ २ ॥ अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य
यत्परम् । तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः ॥ ३ ॥ वालाग्रशतसा-
हस्रं तस्य भागस्य भागिनः । तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्
॥ ४ ॥ पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् । तिलमध्ये यथा तैलं
पाषाणेष्विव काञ्चनम् ॥ ५ ॥ एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्रमिवात्मनि ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ ६ ॥ तिलानां तु यथा तैलं पुष्पे
गन्ध इवाश्रितः । पुरुषस्य शरीरे तु सयाह्याभ्यन्तरे स्थितः ॥ ७ ॥ वृक्षं
तु विद्याच्छाया सकलं तस्यैव निष्कला । सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्मा
व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वमुमुक्षुभिः । पृथिव्यग्निश्च
ऋग्वेदो भूरित्येव पितामहः ॥ ९ ॥ अकारे तु लयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके ।
अन्तरिक्षं यजुर्वायुर्मुवो विष्णुर्जनार्दनः ॥ १० ॥ उकारे तु लयं प्राप्ते द्वितीये
प्रणवांशके । द्यौः सूर्यः सामवेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः ॥ ११ ॥ मकारे तु
लयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके । अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः ॥ १२ ॥
उकारः सार्विकः शुक्लो मकारः कृष्णतामसः । अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं
पञ्चदैवतम् ॥ १३ ॥ ओंकारं यो न जानाति ब्रह्मणो न भवेत्तु सः । प्रणवो
वनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ १४ ॥ अप्रमत्तेन वेद्व्यं शरवत्त-

न्मयो भवेत् । निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ १५ ॥ ओंकार-
 प्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः । ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराच-
 रम् ॥ १६ ॥ ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः । अर्धमात्रासमा-
 युक्तः प्रणवो मोक्षदायकः ॥ १७ ॥ तैलधाराभिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिना-
 दवत् । अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १८ ॥ हृत्पद्मकर्णिका-
 मध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम् । अङ्गुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारनीश्वरम् ॥ १९ ॥
 इडया वायुमापूर्य पूरयित्वोदरस्थितम् । ओंकारं देहमध्यस्थं ध्यायेज्ज्वालाव-
 लीवृतम् ॥ २० ॥ ब्रह्मा पूरक इत्युक्तो विष्णुः कुम्भक उच्यते । रेचो रुद्र
 इति प्रोक्तः प्राणायामस्य देवताः ॥ २१ ॥ आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं
 चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासादेव पश्येन्निगूढवत् ॥ २२ ॥ ओंकार-
 ध्वनिनादेन वायोः संहरणान्तिकम् । यावद्वलं समादध्यात्सम्यङ्गादलयावधि
 ॥ २३ ॥ गमारामस्थं गमनादिशून्यमोंकारमेकं रविकोटिदीप्तिम् । पश्यन्ति
 ये सर्वजनान्तरस्थं हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति ॥ २४ ॥ यन्मनस्त्रिजग-
 त्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् । तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्
 ॥ २५ ॥ अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम् । तस्य मध्ये स्थितो
 भानुर्भानुमध्यगतः शशी ॥ २६ ॥ शशिमध्यगतो वह्निर्वह्निमध्यगता प्रभा ।
 प्रभामध्यगतं पीतं नानारत्नप्रवेष्टितम् ॥ २७ ॥ तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं
 निरञ्जनम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम् ॥ २८ ॥ शुद्धस्फटि-
 कसंकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम् । एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं वा विनयान्वितः
 ॥ २९ ॥ अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजं महाविष्णुं
 पूरकेण विचिन्तयेत् ॥ ३० ॥ कुम्भकेन हृदि स्थाने चिन्तयेत्कमलासनम् ।
 ब्रह्माणं रक्ततौराभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥ ३१ ॥ रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं
 त्रिलोचनम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥ अब्जपत्रम-
 धःपुष्पमूर्ध्वनालमधोमुखम् । कदलीपुष्पसंकाशं सर्ववेदमयं शिवम् ॥ ३३ ॥
 शतारं शतपत्राढ्यं विकीर्णाम्बुजकर्णिकम् । तत्रार्कचन्द्रवह्नीनामुपर्युपरि
 चिन्तयेत् ॥ ३४ ॥ पद्मस्योद्गाटनं कृत्वा बोधचन्द्राग्निसूर्यकम् । तस्य हृदी-
 जमाहृत्य आत्मानं चरते ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ त्रिस्थानं च त्रिपात्रं च त्रिब्रह्म च
 त्रयाक्षरम् । त्रिमात्रमर्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ३६ ॥ तैलधारा-
 मिवाच्छिन्नदीर्घघण्टानिनादवत् । बिन्दुनादकलातीतं यस्तं वेद स वेदवित्

॥ ३७ ॥ यथैवोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः । तथैवोत्कर्षयेद्वायुं योगी
योगपथे स्थितः ॥ ३८ ॥ अर्धमात्रात्मकं कृत्वा कोशीभूतं तु पङ्कजम् ।
कर्षयेन्नालमात्रेण भ्रुवोर्मध्ये लयं नयेत् ॥ ३९ ॥ भ्रुवोर्मध्ये ललाटे तु नासि-
कायास्तु मूलतः । जानीयादमृतं स्थानं तद्ब्रह्मायतनं महत् ॥ ४० ॥ आसनं
प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति
षट् ॥ ४१ ॥ आसनानि च तावन्ति यावन्त्यो जीवजातयः । एतेषामनुला-
न्धेदान्विजानाति महेश्वरः ॥ ४२ ॥ छिद्रं भद्रं तथा सिंहं पद्मं चेति चतु-
ष्टयम् । आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ॥ ४३ ॥ योनिस्थानं
तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते । आधारारुख्ये गुदस्थाने पङ्कजं यच्चतुर्दलम्
॥ ४४ ॥ तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामारुख्या सिद्धवन्दिता । योनिमध्ये
स्थितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं तथा ॥ ४५ ॥ मस्तके मणिवज्रिच्चं यो जानाति
स योगवित् । तप्तचामीकराकारं तडिलेखेव विस्फुरत् ॥ ४६ ॥ चतुरस्रमु-
पर्यग्रेरधो मेढ्रात्प्रतिष्ठितम् । स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयम्
॥ ४७ ॥ स्वाधिष्ठानं ततश्चक्रं मेढ्रमेव निगद्यते । मणिवत्तन्तुना यत्र वायुना
पूरितं वपुः ॥ ४८ ॥ तन्नाभिमण्डलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् । द्वादशा-
रमहाचक्रे पुण्यपापनियन्त्रितः ॥ ४९ ॥ तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न
विन्दति । ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नामेः कन्दो योऽस्ति खगाण्डवत् ॥ ५० ॥ तत्र
नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः । तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदा-
हताः ॥ ५१ ॥ प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः । इडा च
पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ ५२ ॥ गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव
यशस्विनी । अलम्बुसा कुहूरत्र शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥ ५३ ॥ एवं नाडी-
मयं चक्रं विज्ञेयं योगिना सदा । सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः
॥ ५४ ॥ इडापिङ्गलासुषुम्नास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः । इडा वामे स्थिता
भागे पिङ्गला दक्षिणे स्थिता ॥ ५५ ॥ सुषुम्ना मध्यदेशे तु प्राणमार्गा-
स्त्रयः स्मृताः । प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानस्तथैव च ॥ ५६ ॥
नागः कूर्मः कृकरको देवदत्तो धनंजयः । प्राणाद्याः पञ्च विख्याता ना-
गाद्याः पञ्च वायवः ॥ ५७ ॥ एते नाडीसहस्रेषु वर्तन्ते जीवरूपिणः ।
प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं प्रधावति ॥ ५८ ॥ वामदक्षिणमा-
र्गेण चञ्चलत्वान्न दृश्यते । आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्चलति कन्दुकः

॥ ५९ ॥ प्राणापानसमाक्षिसस्तद्विजो न विश्रमेत् । अपानात्कर्षति प्राणोऽपानः प्राणाच्च कर्षति ॥ ६० ॥ खगरज्जुवदित्येतद्यो जानाति स योग-
 वित् । हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेषतः ॥ ६१ ॥ हंसहंसेत्यसुं मन्त्रं
 जीवो जपति सर्वदा । शतानि षड्विचारान्नं सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ६२ ॥
 एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा । अजपा नाम गायत्री योगिनां
 मोक्षदा सदा ॥ ६३ ॥ अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते । अनया
 सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ॥ ६४ ॥ अनया सदृशं पुण्यं न श्रूतं न
 अभिष्यति । येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम् ॥ ६५ ॥ सुखेना-
 च्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी । प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह
 ॥ ६६ ॥ सूचिवद्गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुपुत्रया । उद्धाटयेत्कपाटं तु यथा
 कुञ्चिकया हठात् ॥ ६७ ॥ कुण्डलिन्या तया योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्
 ॥ ६८ ॥ कृत्वा संपुटितौ करौ दृढतरं बध्वाथ पद्मासनं गाढं वक्षसि सञ्चि-
 धाय चुबुकं ध्यानं च तच्चेतसि । वारंवारमपातमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयन्पूरितं
 सुञ्चन्प्राणसुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः ॥ ६९ ॥ पद्मासनस्थितो योगी
 नाडीद्वारेषु पूरयन् । मारुतं कुम्भयन्त्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ७० ॥
 अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमजातेन वारिणा । कदम्बलवणत्यागी क्षीरपानरतः
 सुखी ॥ ७१ ॥ ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः । अवदादूर्ध्वं भवे-
 त्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥ ७२ ॥ कन्दोर्ध्वकुण्डली शक्तिः स योगी
 सिद्धिभाजनम् । अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः ॥ ७३ ॥ युवा भवति
 वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात् । पार्थिग्यभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्बुद्धम्
 ॥ ७४ ॥ अपानमूर्ध्वमुत्कृष्य मूलबन्धोऽयमुच्यते । उड्याणं कुरुते यस्माद-
 विश्रान्तमहाखगः ॥ ७५ ॥ उड्डियाणं तदेव स्यात्तत्र बन्धो विधीयते । उदरे
 पश्चिमं ताणं नामेरूर्ध्वं तु कारयेत् ॥ ७६ ॥ उड्डियाणोऽप्ययं बन्धो मृत्यु-
 मातङ्गकेसरी । बध्नाति हि शिरोजातमधोगामिनभोजलम् ॥ ७७ ॥ ततो
 जालन्धरो बन्धः कर्मदुःखौघनाशनः । जालन्धरे कृते बन्धे कर्णसंकोचलक्षणे
 ॥ ७८ ॥ न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति । कपालकुहरे जिह्वा
 प्रविष्टा विपरीतगा ॥ ७९ ॥ भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी । न
 रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा ॥ ८० ॥ न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो
 मुद्रां वेत्ति खेचरीम् । पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न च कर्मणा ॥ ८१ ॥

बन्धते न च कालेन यस्य मुद्रास्ति खेचरी । चित्तं चरति खे यस्याजिह्वा
भवति खे गता ॥ ८२ ॥ तेनैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धनमस्कृता । खेचर्यां
मुद्रया यस्य विवरं लट्ठिकोर्ध्वतः ॥ ८३ ॥ बिन्दुः क्षरति नो यस्य कामि-
न्यालिङ्गितस्य च । यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ॥ ८४ ॥
यावद्वद्धा नभोमुद्रा तावद्विन्दुर्न गच्छति । गलितोऽपि यदा बिन्दुः संप्राप्तो
योनिमण्डले ॥ ८५ ॥ व्रजत्यूर्ध्वं हठाच्छक्त्या निबद्धो योनिमुद्रया । स एव
द्विविधो बिन्दुः पाण्डुरो लोहितस्तथा ॥ ८६ ॥ पाण्डरं शुक्रमित्याहुर्लौहि-
ताख्यं महारजः । विद्रुमद्रुमसंकाशं योनिस्थाने स्थितं रजः ॥ ८७ ॥

शशिस्थाने वसेद्विन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम् । बिन्दुः शिवो रजः शक्तिर्विन्दु-
रिन्दू रजो रविः ॥ ८८ ॥ उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं वपुः । वायुना
शक्तिचालेन प्रेरितं खे यथा रजः ॥ ८९ ॥ रक्षिणैकत्वमायाति अवेद्विष्यं
वपुस्तदा । शुक्लं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्यसमन्वितम् ॥ ९० ॥ द्वयोः समरसी-
भावं यो जानाति स योगवित् । शोधनं मलजालानां घटनं चन्द्रसूर्ययोः
॥ ९१ ॥ रसानां शोषणं सम्यग्ब्रह्मामुद्राभिधीयते ॥ ९२ ॥ वक्षोन्यस्तहनुर्नि-
पीड्य सुषिरं योनेश्च वामाङ्घ्रिणा हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रवित्तं पादं तथा
दक्षिणम् । आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचयेदेषा पातकनाशिनी
ननु महामुद्रा नृणां प्रोच्यते ॥ ९३ ॥ अथात्मनिर्णयं व्याख्यास्ये ॥ हृदि-
स्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूप-
मणुमात्रं वर्तते तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं भवति सर्वं जानाति सर्वं करोति सर्व-
मेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खल्लो बधिरो मूकः कृशः
स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते ॥ पूर्वदले विश्रमते पूर्व दलं श्वेत-
वर्णं तदा भक्तिपुरःसरं धर्मे मतिर्भवति ॥ यदाऽऽग्नेयदले विश्रमते तदाग्नेयदलं
रक्तवर्णं तदा निद्रालस्यमतिर्भवति ॥ यदा दक्षिणदले विश्रमते तद्दक्षिणदलं
कृष्णवर्णं तदा द्वेषकोपमतिर्भवति ॥ यदा नैऋतदले विश्रमते तद्वैऋतदलं
नीलवर्णं तदा पापकर्महिंसामतिर्भवति ॥ यदा पश्चिमदले विश्रमते तत्प-
श्चिमदलं स्फटिकवर्णं तदा क्रीडाविनोदे मतिर्भवति ॥ यदा वायव्यदले
विश्रमते वायव्यदलं माणिक्यवर्णं तदा गमनचलनवैराग्यमतिर्भवति ॥
यदोत्तरदले विश्रमते तदुत्तरदलं पीतवर्णं तदा सुखशृङ्गारमतिर्भवति ॥
यदेशानदले विश्रमते तदीशानदलं वैदूर्यवर्णं तदा दानादिकृपासति-

भवति ॥ यदा संधिसंधिषु मतिर्भवति तदा वातपित्तश्लेष्ममहान्याधिप्रकोपो
 भवति ॥ यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्वं जानाति गायति नृत्यति पठत्या-
 नन्दं करोति ॥ यदा नेत्रश्रमो भवति श्रमनिर्भरणार्थं प्रथमरेखावल्यं
 कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते प्रथमरेखाबन्धूकपुष्पवर्णं तदा निद्रावस्था
 भवति ॥ निद्रावस्थामध्ये स्वप्नावस्था भवति ॥ स्वप्नावस्थामध्ये दृष्टं
 श्रुतमनुमानसंभववार्ता इत्यादिकल्पनां करोति तदादिश्रमो भवति ॥
 श्रमनिर्हरणार्थं द्वितीयरेखावल्यं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते द्वितीयरेखा
 इन्द्रकोपवर्णं तदा सुषुप्त्यवस्था भवति सुषुप्तौ केवलपरमेश्वरसंबन्धिनी
 बुद्धिर्भवति नित्यबोधस्वरूपा भवति पश्चात्परमेश्वररूपेण प्राप्तिर्भवति ॥
 तृतीयरेखावल्यं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते तृतीयरेखा पद्मरागवर्णं तदा
 तुरीयावस्था भवति तुरीये केवलपरमात्मसंबन्धिनी भवति नित्यबोधस्वरूपा
 भवति तदा शनैः शनैरुपरमेष्ठुष्या दृतिगृहीतमात्मसंस्थं मनः कृत्वा न
 किञ्चिदपि चिन्तयेत्तदा प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा सर्वं विश्वमात्मस्वरूपेण लक्ष्यं
 धारयति । यदा तुरीयातीतावस्था तदा सर्वेषामानन्दस्वरूपो भवति इन्द्रा-
 तीतो भवति यावद्देहधारणा वर्तते तावत्तिष्ठति पश्चात्परमात्मस्वरूपेण
 प्राप्तिर्भवति इत्यनेन प्रकारेण मोक्षो भवतीदमेवात्मदर्शनोपाया भवन्ति ॥
 चतुष्पथसमायुक्तमहाद्वारगवायुना । सहस्थितत्रिकोणार्धगमने दृश्यतेऽच्युतः
 ॥ ९४ ॥ पूर्वोक्तत्रिकोणस्थानादुपरि पृथिव्यादिपञ्चवर्णकं ध्येयम् । प्राणादि-
 पञ्चवायुश्च बीजं वर्णं च स्थानकम् । यकारं प्राणबीजं च नीलजीमूतसन्नि-
 भम् । रकारमग्निबीजं च अपानादित्यसंनिभम् ॥ ९५ ॥ लकारं पृथिवीरूपं
 व्यानं बन्धूकसंनिभम् । वकारं जीवबीजं च उदानं शङ्खवर्णकम् ॥ ९६ ॥
 हकारं वियत्स्वरूपं च समानं स्फटिकप्रभम् । हृन्नाभिनासार्कणं च पादाङ्गु-
 ष्ठादिसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीवर्गेषु वर्तते । अष्टाविं-
 शतिकोटीषु रोमकूपेषु संस्थिताः ॥ ९८ ॥ समानप्राण एकस्तु जीवः स एक
 एव हि । रेचकादि त्रयं कुर्याद्दृढचित्तः समाहितः ॥ ९९ ॥ शनैः समस्तमा-
 कृष्य हृत्सरोरुहकोटरे । प्राणापानौ च बध्वा तु प्रणवेन समच्चरेत् ॥ १०० ॥
 कर्णसंकोचनं कृत्वा लिङ्गसंकोचनं तथा । मूलाधारात्सुषुम्ना च पञ्चतन्तुनिभा
 शुभा ॥ १०१ ॥ अमूर्तो वर्तते नादो वीणादण्डसमुत्थितः । शङ्खनादादि-
 भिश्चैव मध्यमेव ध्वनिर्यथा ॥ १०२ ॥ व्योमरन्ध्रगतो नादो मायूरं नादमेव

च । कपालकुहरे मध्ये चतुर्द्वारस्य मध्यमे ॥ १०३ ॥ तदात्मा राजते तत्र
यथा ज्योतिर्दिवाकरः । कोदण्डद्वयमध्ये तु ब्रह्मरन्ध्रेषु शक्तितः ॥ १०४ ॥
स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मनस्तत्र लयं गतम् । रत्नानि ज्योत्स्निनादं तु बिन्दुमा-
हेश्वरं पदम् । य एवं वेद पुरुषः स कैवल्यं समश्नुत इत्युपनिषत् ॥ १०५ ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति ध्यानविन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ ४१ ॥

ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥ ४२ ॥

स्वाविद्यावत्कार्यजातं यद्विद्यापह्वं गतम् ।

तद्धंसविद्यानिष्पन्नं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

अथ ब्रह्मविद्योपनिषदुच्यते ॥ प्रसादाद्ब्रह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
रहस्यं ब्रह्मविद्याया ध्रुवाग्निं संप्रचक्षते ॥ १ ॥ ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं
ब्रह्मवादिभिः । शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालत्रयं तथा ॥ २ ॥ तत्र देवा-
स्तयः प्रोक्ता लोका वेदास्तयोऽग्नयः । तिस्रो मात्रार्धमात्रा च त्र्यक्षरस्य
शिवस्य तु ॥ ३ ॥ ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च । अकारस्य
शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥ ४ ॥ यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्त-
थैव च । विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥ सामवेदस्तथा द्यौश्चा-
हवनीयस्तथैव च । ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥ सूर्य-
मण्डलमध्येऽथ ह्यकारः शङ्खमध्यगः । उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यव-
स्थितः ॥ ७ ॥ मकारस्त्वग्निसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः । तिस्रो मात्रा-
स्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्निरूपिणः ॥ ८ ॥ शिखा तु दीपसंकाशा तस्मिन्नुपरि
वर्तते । अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥ ९ ॥ पद्मसूत्रनिभा
सूक्ष्मा शिखा सा दृश्यते परा । सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथापरा
॥ १० ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीं भित्त्वा च मूर्धनि । वरदः सर्वभूतानां सर्वं
व्याप्यावतिष्ठति ॥ ११ ॥ कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये । ओङ्का-
रस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता ॥ १२ ॥ यस्मिन्विलीयते शब्दस्त-
त्परं ब्रह्म गीयते । भियं हि लीयते ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥ वायुः

प्राणस्तथाकाशद्विविधो जीवसंज्ञकः । स जीवः प्राण इत्युक्तो बालाग्रशत-
 कल्पितः ॥ १४ ॥ नाभिस्थाने स्थितं विश्वं शुद्धतत्त्वं सुनिर्मलम् । आदित्यमिव
 दीप्यन्तं रश्मिभिश्चाखिलं शिवम् ॥ १५ ॥ सकारं च हकारं च जीवो जपति
 सर्वदा । नाभिरन्ध्राद्विनिष्कान्तं विषयव्याप्तिवर्जितम् ॥ १६ ॥ तेनेदं निष्कलं
 विद्याक्षीरात्सर्वैर्यथा तथा । कारणेनात्मना युक्तः प्राणायामैश्च पञ्चभिः
 ॥ १७ ॥ चतुष्कलासमायुक्तो आन्यते च हृदि स्थितः । गोलकस्तु यदा
 देहे क्षीरदण्डेन वा हतः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्वसते श्रीघ्नमविश्रान्तं महा-
 खगः । यावन्निःश्वसितो जीवस्तावन्निष्कलतां गतः ॥ १९ ॥ नमस्थं निष्कलं
 ध्यात्वा मुच्यते भवबन्धनात् । अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृद्गतम्
 ॥ २० ॥ स्वप्रकाशचिदानन्दं स हंस इति गीयते । रेचकं पूरकं मुक्त्वा
 कुम्भकेन स्थितः सुधीः ॥ २१ ॥ नाभिकन्दे समौ कृत्वा प्राणापानौ
 समाहितः । मस्तकस्थामृतास्वादं पीत्वा ध्यानेन सादरम् ॥ २२ ॥ दीपाकारं
 महादेवं ज्वलन्तं नाभिमध्यमे । अभिषिच्यामृतेनैव हंसं हंसेति यो जपेत्
 ॥ २३ ॥ जरामरणरोगादि न तस्य भुवि विद्यते । एवं दिने दिने कुर्यादणि-
 आदिविभूतये ॥ २४ ॥ ईश्वरत्वमवाप्नोति सदाभ्यासरतः पुमान् । बहवो
 नैकमार्गेण प्राप्ता नित्यत्वमागताः ॥ २५ ॥ हंसविद्यामृते लोके नास्ति
 नित्यत्वसाधनम् । यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां पारमेश्वरीम् ॥ २६ ॥
 तस्य दास्यं सदा कुर्यात्प्रज्ञया परया सह । शुभं वाऽशुभमन्यद्वा यदुक्तं
 गुरुणा भुवि ॥ २७ ॥ तत्कुर्याद्विचारेण शिष्यः संतोषसंयुतः । हंसविद्या-
 मिमां लब्ध्वा गुरुशुश्रूषया नरः ॥ २८ ॥ आत्मानमात्मना साक्षाद्ब्रह्म बुद्ध्वा
 सुनिश्चलम् । देहजात्यादिसंबन्धान्वर्णाश्रमसमन्वितान् ॥ २९ ॥ वेदशास्त्राणि
 चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत् । गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः
 ॥ ३० ॥ गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥ ३१ ॥ श्रुत्या यदुक्तं
 परमार्थमेव तत्संशयो नात्र ततः समस्तम् । श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं
 भवेदनर्थाय विना प्रमाणम् ॥ ३२ ॥ देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहव-
 र्जितः । आप्तोपदेशगम्योऽसौ सर्वतः समवस्थितः ॥ ३३ ॥ हंसहंसेति यो
 ब्रूयाद्धंसो ब्रह्मा हरिः शिवः । गुरुवक्त्रात् लभ्येत प्रत्यक्षं सर्वतोमुखम् ॥ ३४ ॥
 तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्ध इवाश्रितः । पुरुषस्य शरीरेऽस्मिन्स बाह्या-
 भ्यन्तरे तथा ॥ ३५ ॥ उत्काहस्तो यथालोके द्रव्यमालोक्य तां त्यजेत् ।

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत् ॥ ३६ ॥ पुष्पवत्सकलं विद्याद्-
 न्धस्तस्य तु निष्कलः । वृक्षस्तु सकलं विद्याच्छाया तस्य तु निष्कला ॥ ३७ ॥
 निष्कलः सकलो भावः सर्वत्रैव व्यवस्थितः । उपायः सकलस्तद्गुपेयश्चैव
 निष्कलः ॥ ३८ ॥ सकले सकलो भावो निष्कले निष्कलस्तथा । एकमात्रो
 द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः ॥ ३९ ॥ अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं
 परात्परम् । पञ्चधा पञ्चदैवत्यं सकलं परिपठ्यते ॥ ४० ॥ ब्रह्मणो हृदयस्थानं
 कण्ठे विष्णुः समाश्रितः । तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थो महेश्वरः ॥ ४१ ॥
 नासाग्रे अच्युतं विद्यात्तस्यान्ते तु परं पदम् । परत्वात्तु परं नास्तीत्येवं
 शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ४२ ॥ देहातीतं तु तं विद्याज्ञासाग्रे द्वादशाङ्गुलम् ।
 तदन्तं तं विजानीयात्तत्रस्थो व्यापयेत्प्रभुः ॥ ४३ ॥ मनोऽप्यन्यत्र निक्षिप्तं
 चक्षुरन्यत्र पातितम् । तथापि योगिनां योगो ह्यविच्छिन्नः प्रवर्तते ॥ ४४ ॥
 एतत्तु परमं गुह्यमेतत्तु परमं शुभम् । नातः परतरं किञ्चिज्जातः परतरं
 शुभम् ॥ ४५ ॥ शुद्धज्ञानाभ्युत्पत्तं प्राप्य परमाक्षरनिर्णयम् । गुह्याद्गुह्य-
 तमं गोप्यं ग्रहणीयं प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥ नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय
 कदाचन । गुरुदेवाय भक्त्या नित्यं भक्तिपराय च ॥ ४७ ॥ प्रदातव्यमिदं
 शास्त्रं नेतरेभ्यः प्रदापयेत् । दाताऽस्य नरकं याति सिद्ध्यते न कदाचन ॥ ४८ ॥
 गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः । यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी परमा-
 क्षरवित्सदा ॥ ४९ ॥ विषयी विषयासक्तो याति देहान्तरे शुभम् । ज्ञाना-
 देवास्य शास्त्रस्य सर्वावस्थोऽपि मानवः ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्याश्रमेधाद्यैः पुण्य-
 पापैर्न लिप्यते । चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्च परः स्मृतः ॥ ५१ ॥ इत्येषां
 त्रिविधो ज्ञेय आचार्यस्तु महीतले । चोदको दर्शयेन्मार्गं बोधकः स्थानमा-
 चरेत् ॥ ५२ ॥ मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज्ज्ञात्वा परमश्रुते । प्रत्यक्षयजनं देहे
 संक्षेपाच्छृणु गौतम ॥ ५३ ॥ तेनेष्ट्वा स नरो याति शाश्वतं पदमव्ययम् ।
 स्वयमेव तु संपश्येदेहे बिन्दुं च निष्कलम् ॥ ५४ ॥ अयने द्वे च विषुवे सदा
 पश्यति मार्गवित् । कृत्वायामं पुरा वत्स रेचपूरककुम्भकान् ॥ ५५ ॥ पूर्व
 चोभयमुच्चार्य अर्चयेत्तु यथाक्रमम् । नमस्कारेण योगेन मुद्रयारभ्य चार्चयेत्
 ॥ ५६ ॥ सूर्यस्य ग्रहणं वत्स प्रत्यक्षयजनं स्मृतम् । ज्ञानात्सायुज्यमेवोक्तं
 तोये तोयं यथा तथा ॥ ५७ ॥ एते गुणाः प्रवर्तन्ते योगाभ्यासकृतश्रमैः ।
 तस्माद्योगं समादाय सर्वदुःखबहिष्कृतः ॥ ५८ ॥ योगध्यानं सदा कृत्वा

ज्ञानं तन्मयतां ब्रजेत् । ज्ञानात्स्वरूपं परमं हंसमग्नं समुच्चरेत् ॥ ५९ ॥
 प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाच्युतः । हंस एव परं सत्यं हंस एव
 तु शक्तिकम् ॥ ६० ॥ हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वादिकम् । हंस एव
 परो रुद्रो हंस एव परात्परम् ॥ ६१ ॥ सर्वदेवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः । पृथिव्यादिशिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः ॥ ६२ ॥ कृतान्ता हंस
 एव स्थान्मातृकेति व्यवस्थिताः । मातृकारहितं मन्त्रमादिशन्ते न कुत्रचित् ॥ ६३ ॥ हंसज्योतिरनूपम्यं मध्ये देवं व्यवस्थितम् । दक्षिणामुखमाश्रित्य
 ज्ञानमुद्रां प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥ सदा समार्धं कुर्वीत हंसमन्त्रमनुसरन् ।
 निर्मलरूपटिकाकारं दिव्यरूपमनुत्तमम् ॥ ६५ ॥ मध्यदेशे परं हंसं ज्ञानमु-
 द्गात्मरूपकम् । प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥ ६६ ॥ पञ्च-
 कर्मेन्द्रियैर्युक्ताः क्रियाशक्तिबलोद्यताः । नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ६७ ॥ पञ्चज्ञानेन्द्रियैर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोद्यताः । पावकः शक्तिमध्ये तु
 नाभिकके रविः स्थितः ॥ ६८ ॥ बन्धमुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचने ।
 अकारे बहिरित्याहुर्कारे हृदि संस्थितः ॥ ६९ ॥ मकारे च भ्रुवोर्मध्ये
 प्राणशक्त्या प्रबोधयेत् । ब्रह्मग्रन्थिरकारे च विष्णुग्रन्थिर्हृदि स्थितः ॥ ७० ॥
 रुद्रग्रन्थिर्भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना । अकारे संस्थितो ब्रह्मा उकारे
 विष्णुरास्थितः ॥ ७१ ॥ मकारे संस्थितो रुद्रस्ततोऽस्यान्तः परात्परः ।
 कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः ॥ ७२ ॥ रसना पीड्यमा-
 नेयं षोडशी बोध्वर्गामिनी । त्रिकूटं त्रिविधा चैव गोलार्धं निखरं तथा ॥ ७३ ॥ त्रिशङ्खवज्रमोकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम् । कुण्डलीं चालयन्प्राणा-
 न्भेदयन्शशिमण्डलम् ॥ ७४ ॥ साधयन्वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत् ।
 सुमनःपवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा ॥ ७५ ॥ ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छा-
 किन्त्यमृतवर्षिणी । षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत् ॥ ७६ ॥ सर्व-
 भूतस्थितं देवं सर्वेशं नित्यमर्चयेत् । आत्मरूपं तमालोक्य ज्ञानरूपं निरा-
 मयम् ॥ ७७ ॥ इद्व्यन्तं दिव्यरूपेण सर्वव्यापी निरञ्जनः । हंस हंस वदे-
 द्वाक्यं प्राणिनां देहमाश्रितः । सप्राणापानयोर्ग्रन्थिरजपेत्यभिधीयते ॥ ७८ ॥
 सहस्रमेकं द्वायुतं षट्शतं चैव सर्वदा । उच्चरन्पठितो हंसः सोऽहमित्यभिधी-
 यते ॥ ७९ ॥ पूर्वभागे ह्यधोलिङ्गं शिखिन्यां चैव पश्चिमम् । ज्योतिर्लिङ्गं
 भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यतिः ॥ ८० ॥ अच्युतोऽहमचित्त्योऽहमतर्क्यो-

ऽहमजोऽस्म्यहम् । अप्राणोऽहमकायोऽहमनङ्गोऽस्म्यभयोऽस्म्यहम् ॥ ८१ ॥
 अशब्दोऽहमरूपोऽहमस्पर्शोऽस्म्यहमद्रव्यः । असोऽहमगन्धोऽहमनादिरमृ-
 तोऽस्म्यहम् ॥ ८२ ॥ अक्षयोऽहमलिङ्गोऽहमजरोऽस्म्यकलोऽस्म्यहम् । अप्रा-
 णोऽहममूकोऽहमचिन्त्योऽस्म्यकृतोऽस्म्यहम् ॥ ८३ ॥ अन्तर्याम्यहमप्राहो-
 ऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः । अगोत्रोऽहमगान्त्रोऽहमचक्षुष्कोऽस्म्यवागहम् ॥ ८४ ॥
 अदृश्योऽहमवर्णोऽहमखण्डोऽस्म्यहमद्रुतः । अश्रुतोऽहमदृष्टोऽहमन्वेष्टव्योऽ-
 मरोऽस्म्यहम् ॥ ८५ ॥ अवायुरप्यनाकाशोऽतेजस्कोऽग्न्यभिचार्यहम् । अम-
 तोऽहमजातोऽहमतिसूक्ष्मोऽविकार्यहम् ॥ ८६ ॥ अरजस्कोऽतमस्कोऽहमस-
 त्वोऽस्म्यगुणोऽस्म्यहम् । अमायोऽनुभवात्माहमनन्योऽविषयोऽस्म्यहम् ॥ ८७ ॥
 अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः । अश्रोताऽहमदीर्घोऽहमव्यक्तोऽहम-
 नामयः ॥ ८८ ॥ अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः । अनिच्छोऽहम-
 लेपोऽहमकर्ताऽस्म्यहमद्रव्यः ॥ ८९ ॥ अविद्याकार्यहीनोऽहमवाग्रसनशोचरः ।
 अनल्पोऽहमशोकोऽहमविकल्पोऽस्म्यविज्वलन् ॥ ९० ॥ आदिमध्यान्तही-
 नोऽहमाकाशसद्गोऽस्म्यहम् । आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्भनः ॥ ९१ ॥
 आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्थोऽहमनन्तरः । आत्मकाशोऽहमाकाशात्पर-
 मात्मेश्वरोऽस्म्यहम् ॥ ९२ ॥ ईशानोऽस्म्यहमीक्ष्योऽहमहमुत्तमपुरुषः ।
 उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टा अहमुत्तरतोऽस्म्यहम् ॥ ९३ ॥ केवलोऽहं कविः कर्मा-
 ध्यक्षोऽहं करणाधिपः । गुहाशयोऽहं गोसाहं चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम् ॥ ९४ ॥
 चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्भनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् । ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं
 ज्यायाऽथ्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ॥ ९५ ॥ तमसः साक्ष्यहं तुर्यतुर्योऽहं
 तमसः परः । दिव्यो देवोऽसि दुर्दर्शो दृष्टाध्यायो ध्रुवोऽस्म्यहम् ॥ ९६ ॥
 नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽसि निरञ्जनः । निर्मलो निर्विकल्पोऽ-
 हं निराख्यातोऽसि निश्चलः ॥ ९७ ॥ निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो नि-
 स्पृहोऽस्म्यहम् । निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽसि निष्कलः ॥ ९८ ॥
 पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् । परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञः प्रपञ्चो-
 पशमोऽस्म्यहम् ॥ ९९ ॥ परामृतोऽस्म्यहं पूर्णः प्रभुरसि पुरातनः ।
 पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥ १०० ॥ प्रज्ञातोऽहं प्रशा-
 न्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः । एकधा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः
 ॥ १०१ ॥ बुद्धोऽहं भूतपालोऽहं भारूपोऽहं भगवानहम् । महाज्ञेयो महा-

नस्मि महाज्ञेयो महेश्वरः ॥ १०२ ॥ विमुक्तोऽहं विभुरहं वरेण्यो व्या-
पकोऽस्म्यहम् । वैश्वानरो वासुदेवो विश्वतश्चक्षुरस्म्यहम् ॥ १०३ ॥
विश्वाधिकोऽहं विशदो विष्णुर्विश्वकृदस्म्यहम् । शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तो-
ऽस्मि शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ १०४ ॥ सर्वभूतान्तरात्माहमहमस्मि
सनातनः । अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिम्नि सदा स्थितः ॥ १०५ ॥
सर्वान्तरः स्वयंज्योतिः सर्वाधिपतिरस्म्यहम् । सर्वभूताधिवासोऽहं स-
र्वैक्यापी स्वराडहम् ॥ १०६ ॥ समस्तसाक्षी सर्वात्मा सर्वभूतगुहा-
शयः । सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ १०७ ॥ स्थानत्रयव्यती-
तोऽहं सर्वानुग्राहकोऽस्म्यहम् । सच्चिदानन्दपूर्णात्मा सर्वप्रेमास्पदोऽस्म्यहम्
॥ १०८ ॥ सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्धनः । सत्त्वस्वरूपस-
न्मात्रसिद्धसर्वात्मकोऽस्म्यहम् ॥ १०९ ॥ सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः स्वात्मबन्धहरो-
ऽस्म्यहम् । सर्वग्रासोऽस्म्यहं सर्वद्रष्टा सर्वानुभूतहम् ॥ ११० ॥ एवं यो
वेद तत्त्वेन स वै पुरुष उच्यते इत्युपनिषत् ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति ब्रह्मविद्योपनिषत्समाप्ता ॥ ४२ ॥

योगतत्त्वोपनिषद् ॥ ४३ ॥

योगैश्वर्यं च कैवल्यं जायते यत्प्रसादतः ।

तद्वैष्णवं योगतत्त्वं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

योगतत्त्वं प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया । यच्छ्रुत्वा च पठित्वा
च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ विष्णुर्नाम महायोगी महाभूतो महातपाः ।
तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥ तमाराध्य जगन्नाथं प्रणि-
पत्य पितामहः । पप्रच्छ योगतत्त्वं मे ब्रूहि चाष्टाङ्गसंयुक्तम् ॥ ३ ॥ तमु-
वाच हृषीकेशो वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः । सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मया-
जालेन वेष्टिताः ॥ ४ ॥ तेषां मुक्तिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं मृत्युतारकम् ॥ ५ ॥ नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं
कैवल्यं परमं पदम् । पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥ ६ ॥
अनिर्वाच्यं पदं वक्तुं न शक्यं तैः सुरैरपि । स्वात्मप्रकाशरूपं तत्किं शा-

खेण प्रकाश्यते ॥ ७ ॥ निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ।
 तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्द्वृतम् ॥ ८ ॥ परमात्मपदं नित्यं तत्कथं
 जीवतां गतम् ॥ सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ॥ ९ ॥ वारिवत्स्फुरितं
 तस्मिंस्तत्राहंकृतिरुत्थिता । पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुवद्धं गुणात्मकम् ॥ १० ॥
 सुखदुःखैः समायुक्तं जीवभावनया कुरु । तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धैः
 परमात्मनि ॥ ११ ॥ कामक्रोधभयं चापि मोहलोभमदो रजः । जन्म
 मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा ॥ १२ ॥ तृष्णा लज्जा भयं दुःखं
 विषादो हर्ष एव च । एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः स जीवः केवलो मतः ॥ १३ ॥
 तस्माद्दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते । योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति
 भुवम् ॥ १४ ॥ योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि । तस्माज्ज्ञानं
 च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ॥ १५ ॥ अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव
 विमुच्यते । ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैकसाधनम् ॥ १६ ॥ ज्ञातं येन निर्ज
 रूपं कैवल्यं परमं पदम् । निष्कलं निर्मलं साक्षात्सच्चिदानन्दरूपकम् ॥ १७ ॥
 उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमथ योगं
 ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥ योगो हि बहुधा ब्रह्मन्भिद्यते व्यवहारतः । मन्त्रयोगो
 लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगतः ॥ १९ ॥ आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयः
 स्मृतः । निष्पत्तिश्चैत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता ॥ २० ॥ एतेषां लक्षणं
 ब्रह्मन्वक्ष्ये शृणु समासतः । मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्
 ॥ २१ ॥ क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम् । अल्पबुद्धिरिमं योगं
 सेवते साधकाधमः ॥ २२ ॥ लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः ।
 गच्छंस्तिष्ठन्स्वप्नभुञ्जन्ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम् ॥ २३ ॥ स एव लययोगः स्या-
 द्दृढयोगमतः शृणु । यमश्च नियमश्चैव आसनं प्राणसंयमः ॥ २४ ॥ प्रत्याहारो
 धारणा च ध्यानं भ्रूमध्यमे हरिम् । समाधिः समतावस्था साष्टाङ्गो योग
 उच्यते ॥ २५ ॥ महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी । जालंधरोद्धियाणश्च
 मूलबन्धस्तथैव च ॥ २६ ॥ दीर्घप्रणवसंधानं सिद्धान्तश्रवणं परम् । वज्रोली
 चामरोली च सहजोली त्रिधा मता ॥ २७ ॥ एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्प्रत्येकं
 शृणु तत्त्वतः । लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतरः ॥ २८ ॥ अहिंसा
 नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन । सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम्
 ॥ २९ ॥ प्रथमाभ्यासकाले तु विज्ञाः स्युश्चतुरानन । आलस्यं कथनं धूर्त-

गोष्ठी मन्नादिसाधनम् ॥ ३० ॥ धातुस्त्रीलौत्यकादीनि मृगनृष्णामयानि वै ।
 ज्ञात्वा सुधीस्त्यजेत्सर्वान्विघ्नान्पुण्यप्रभावतः ॥ ३१ ॥ प्राणायामं ततः
 कुर्यात्पश्चासनगतः स्वयम् । सुशोभनं मठं कुर्यात्सूक्ष्मद्वारं तु निर्वणम् ॥ ३२ ॥
 सुष्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः । मत्कुणैर्मशकैर्लतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः
 ॥ ३३ ॥ दिने दिने च संमृष्टं संमार्जन्या विशेषतः । वासितं च सुगन्धेन
 धूपितं गुग्गुलादिभिः ॥ ३४ ॥ नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।
 तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः ॥ ३५ ॥ ऋजुकायः प्राञ्जलिश्च
 प्रणमेदिष्टदेवताम् । ततो दक्षिणहस्तस्य अङ्गुष्ठेनैव पिङ्गलाम् ॥ ३६ ॥ निरुध्य
 पूरयेद्वायुमिडया तु शनैः शनैः । यथाशक्त्यविरोधेन ततः कुर्याच्च कुम्भकम्
 ॥ ३७ ॥ पुनस्त्यजेत्पिङ्गलया शनैरेव न वेगतः । पुनः पिङ्गलयापूर्य पूरयेदुदरं
 शनैः ॥ ३८ ॥ धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदिडया शनैः । यथा त्यजेत्तथापूर्य
 धारयेदविरोधतः ॥ ३९ ॥ जातु प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम् ।
 अङ्गुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रा परिगीयते ॥ ४० ॥ इडया वायुमारोप्य शनैः
 षोडशमात्रया । कुम्भयेत्पूरितं पश्चाच्चतुःषष्ठ्या तु मात्रया ॥ ४१ ॥ रेचये-
 त्पिङ्गलानाड्या द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः । पुनः पिङ्गलयापूर्य पूर्ववत्सुसमाहितः
 ॥ ४२ ॥ प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं
 समभ्यसेत् ॥ ४३ ॥ एवं मासत्रयाभ्यासान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत् । यदा तु
 नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः ॥ ४४ ॥ जायन्ते योगिनो देहे तानि
 वक्ष्याम्यशेषतः । शरीरलघुता दीप्तिर्जाडशभिर्विवर्धनम् ॥ ४५ ॥ कृत्स्नत्वं च
 शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम् । योगविघ्नकराहारं वर्जयेद्योगवित्तमः ॥ ४६ ॥
 लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम् । शाकजातं रामठादि वह्निस्त्री-
 पथसेवनम् ॥ ४७ ॥ प्रातःस्नानोपवासादिकायक्लेशांश्च वर्जयेत् । अभ्यास-
 काले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ॥ ४८ ॥ गोधूममुद्रशाल्यञ्च योगवृद्धिकरं
 विदुः । ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायुधारणे ॥ ४९ ॥ यथेष्टधारणा-
 द्वायोः सिध्येत्केवलकुम्भकः । केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरविवर्जिते ॥ ५० ॥ न
 तस्य दुर्लभं किञ्चिन्निष्ठु लोकेषु विद्यते । प्रस्वेदो जायते पूर्वं मर्दनं तेन कारयेत्
 ॥ ५१ ॥ ततोऽपि धारणाद्वायोः क्रमेणैव शनैः शनैः । कम्पो भवति देहस्य
 आसनस्थस्य देहिनः ॥ ५२ ॥ ततोऽधिकतराभ्यासाद्दुर्दरी स्वेन जायते ।
 यथा च दुर्दुरो भाव उत्स्रुत्योत्स्रुत्य गच्छति ॥ ५३ ॥ पद्मासनस्थितो योगी तथा

गच्छति भूतले । ततोऽधिकतराभ्यासाद्भूमित्यागश्च जायते ॥ ५४ ॥ पद्मास-
 नस्थ एवासौ भूमिमुत्सृज्य वर्तते । अतिमानुषचेष्टादि तथा सामर्थ्यमुद्गचेत्
 ॥ ५५ ॥ न दर्शयेच्च सामर्थ्यं दर्शनं वीर्यवत्तरम् । स्वल्पं वा बहुधा दुःखं
 योगी न व्यथते तदा ॥ ५६ ॥ अल्पमूत्रपुरीषश्च स्वल्पनिद्रश्च जायते । कीलवो
 दूषिका लाला स्वेददुर्गन्धतानने ॥ ५७ ॥ एतानि सर्वथा तस्य न जायन्ते
 ततः परम् । ततोऽधिकतराभ्यासाद्बलमुत्पद्यते बहु ॥ ५८ ॥ येन भूचर-
 सिद्धिः स्याद्भूचराणां जये क्षमः । व्याघ्रो वा शरभो वापि गजो गवय एव वा
 ॥ ५९ ॥ सिंहो वा योगिना तेन त्रियन्ते हस्तताडिताः । कन्दर्पस्य यथा रूपं
 तथा स्यादपि योगिनः ॥ ६० ॥ तद्रूपवशाग नार्यः काङ्क्षन्ते तस्य सङ्गमम् ।
 यदि सङ्गं करोत्येष तस्य बिन्दुक्षयो भवेत् ॥ ६१ ॥ वर्जयित्वा स्त्रियाः सङ्गं
 कुर्यादभ्यासमादरात् । योगिनोऽङ्गे सुगन्धश्च जायते बिन्दुधारणात् ॥ ६२ ॥
 ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं हुतमात्रया । जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाश-
 हेतवे ॥ ६३ ॥ सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा । एवमभ्यासयोगेन
 सिद्धिरारम्भसंभवा ॥ ६४ ॥ ततो भवेद्धठावस्था पचनाभ्यासतत्परा । प्राणो-
 ऽपानो मनो बुद्धिर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ६५ ॥ अन्योन्यस्याविरोधेन एकता
 घटते यदा । हठावस्थेति सा प्रोक्ता तच्चिह्नानि ब्रवीम्यहम् ॥ ६६ ॥
 पूर्वं यः कथितोऽभ्यासश्चतुर्थांशं परिग्रहेत् । दिवा वा यदि वा सायं याम-
 मान्नं समभ्यसेत् ॥ ६७ ॥ एकवारं प्रतिदिनं कुर्यात्केवलकुम्भकम् । इन्द्रि-
 याणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरणं स्फुटम् ॥ ६८ ॥ योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्या-
 हारः स उच्यते । यद्यत्पश्यति चक्षुभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ६९ ॥ यद्य-
 च्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् । लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति
 भावयेत् ॥ ७० ॥ जिह्वया यद्रसं ह्यति तत्तदात्मेति भावयेत् । त्वचा यद्य-
 त्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ७१ ॥ एवं ज्ञानेन्द्रियाणां तु तत्तत्सौख्यं
 सुसाधयेत् । याममान्नं प्रतिदिनं योगी यत्नादतन्द्रितः ॥ ७२ ॥ यथा वा
 चित्तसामर्थ्यं जायते योगिनो ध्रुवम् । दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणादूरागमस्थथा
 ॥ ७३ ॥ वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा । मलमूत्रप्रलेपेन लोहादेः
 स्वर्णता भवेत् ॥ ७४ ॥ खे गतिस्तस्य जायेत संतताभ्यासयोगतः । सदा
 बुद्धिमता भाव्यं योगिना योगसिद्धये ॥ ७५ ॥ एते विघ्ना महासिद्धेर्न रमे-
 तेषु बुद्धिमान् । न दर्शयेत्स्वसामर्थ्यं यस्यकस्यापि योगिराट् ॥ ७६ ॥ यथा

मूढो यथा ह्यन्धो यथा बधिर एव वा । तथा वर्तेत लोकस्य स्वसामर्थ्यस्य
 गुणस्य ॥ ७७ ॥ शिष्याश्च स्वस्वकार्येषु प्रार्थयन्ति न संशयः । तत्तत्कर्मकर-
 व्यग्रः स्वाभ्यासेऽविस्मृतो भवेत् ॥ ७८ ॥ अविस्मृत्य गुरोर्वाक्यमभ्यसेत्तद-
 हर्निशम् । एवं भवेद्धठावस्था संतताभ्यासयोगतः ॥ ७९ ॥ अनभ्यासव-
 तश्चैव वृथागोष्ठ्या न सिद्ध्यति । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन योगमेव सदाभ्यसेत्
 ॥ ८० ॥ ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः । वायुः परिचितो यत्ता-
 दग्निना सह कुण्डलीम् ॥ ८१ ॥ आवयित्वा सुपुष्पायां प्रविशेदनिरोधतः ।
 वायुना सह चित्तं च प्रविशेच्च महापथम् ॥ ८२ ॥ यस्य चित्तं स्वपवनं
 सुषुम्नां प्रविशेदिह । भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकः ॥ ८३ ॥ येषु
 पञ्चसु देवानां धारणा पञ्चधोच्यते । पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवी स्थानमुच्यते
 ॥ ८४ ॥ पृथिवी चतुरस्रं च पीतवर्णं लवणकम् । पार्थिवे वायुमारोप्य लका-
 रेण समन्वितम् ॥ ८५ ॥ ध्यायंश्चतुर्भुजाकारं चतुर्वक्त्रं हिरण्यम् । धारये-
 त्पञ्च घटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात् ॥ ८६ ॥ पृथिवीयोगतो मृत्युर्न भवे-
 दस्य योगिनः । आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥
 आपोऽर्धचन्द्रं शुक्लं च वं बीजं परिकीर्तितम् । वारुणे वायुमारोप्य चकारेण
 समन्वितम् ॥ ८८ ॥ स्मरन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् । शुद्धस्फटिक-
 संकाशं पीतवाससमच्युतम् ॥ ८९ ॥ धारयेत्पञ्च घटिकाः सर्वपापैः प्रमु-
 च्यते । ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न विद्यते ॥ ९० ॥ आ पायोर्हृदयान्तं च
 वह्निस्थानं प्रकीर्तितम् । वह्निस्त्रिकोणं रक्तं च रेफाक्षरसमुद्भवम् ॥ ९१ ॥ वह्नौ
 चानिलमारोप्य रेफाक्षरसमुज्ज्वलम् । त्रियक्षं वरदं रुद्रं तरुणादित्यसंनिभम्
 ॥ ९२ ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन् । धारयेत्पञ्च घटिका वह्निनासौ
 न दह्यते ॥ ९३ ॥ न दह्यते शरीरं च प्रविष्टस्याग्निमण्डले । आ हृदयाद्बुधोर्मध्यं
 वायुस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥ वायुः षट्कोणकं कृष्णं यकाराक्षरभासुरम् ।
 मारुतं मरुतां स्थाने यकाराक्षरभासुरम् ॥ ९५ ॥ धारयेत्तत्र सर्वज्ञमीश्वरं
 विश्वतोमुखम् । धारयेत्पञ्च घटिका वायुवद्भोमगो भवेत् ॥ ९६ ॥ मरणं न तु
 वायोश्च भयं भवति योगिनः । आ भूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते
 ॥ ९७ ॥ व्योम वृत्तं च धूम्रं च हकाराक्षरभासुरम् । आकाशे वायुमारोप्य
 हकारोपरि शंकरम् ॥ ९८ ॥ बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम् ।
 शुद्धस्फटिकसंकाशं धृतबालेन्दुमौलिनम् ॥ ९९ ॥ पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दश-

बाहुं त्रिलोचनम् । सर्वायुधैर्घृताकारं सर्वभूषणभूषितम् ॥ १०० ॥ उमाह-
 देहं वरदं सर्वकारणकारणम् । आकाशधारणात्तस्य स्वेचरत्वं भवेद्भुवम् ॥ १०१ ॥
 यत्रकुत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमश्नुते । एवं च धारणाः पञ्च कुर्याद्योगी
 विचक्षणः ॥ १०२ ॥ ततो दृढशरीरः स्यान्मृत्युस्तस्य न विद्यते । ब्रह्मणः
 प्रलयेनापि न सीदति महामतिः ॥ १०३ ॥ समभ्यसेत्तथा ध्यानं घटिका-
 षष्टिमेव च । वायुं निरुध्य चाकाशे देवतामिष्टदामिति ॥ १०४ ॥ सगुणं
 ध्यानमेतत्त्यादणिमादिगुणप्रदम् । निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्
 ॥ १०५ ॥ दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् । वायुं निरुध्य
 मेधावी जीवन्मुक्तो भवत्ययम् ॥ १०६ ॥ समाधिः समतावस्था जीवात्मपर-
 मात्मनोः । यदि स्वदेहमुत्सृष्टमिच्छा चेदुत्सृजेत्स्वयम् ॥ १०७ ॥ परब्रह्मणि
 लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते । अथ नो चेत्समुत्सृष्टं स्वशरीरं प्रियं यदि
 ॥ १०८ ॥ सर्वलोकेषु विहरन्नणिमादिगुणान्वितः । कदाचित्स्वेच्छया देवो
 भूत्वा स्वर्गे महीयते ॥ १०९ ॥ मनुष्यो वापि यक्षो वा स्वेच्छयापीक्षणा-
 द्रवेत् । सिंहो व्याघ्रो गजो वाश्वः स्वेच्छया बहुतामियात् ॥ ११० ॥ यथेष्ट-
 भेव वर्तेत यद्वा योगी महेश्वरः । अभ्यासभेदतो भेदः फलं तु सममेव हि
 ॥ १११ ॥ पार्श्वे वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् । प्रसार्य दक्षिणं
 पादं हस्ताभ्यां धारयेद्दृढम् ॥ ११२ ॥ चुबुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद्वायुना
 पुनः । कुम्भकेन यथाशक्ति धारयित्वा तु रेचयेत् ॥ ११३ ॥ वामाङ्गेन सम-
 भ्यस्य दक्षाङ्गेन ततोऽभ्यसेत् । प्रसारितस्तु यः पादस्तमूरूपरि नामयेत्
 ॥ ११४ ॥ अयमेव महाबन्ध उभयत्रैवमभ्यसेत् । महाबन्धस्थितो योगी
 कृत्वा पूरकमेकधीः ॥ ११५ ॥ वायुना गतिमावृत्य निमृत्तं कर्णमुद्रया ।
 पुटद्वयं समाक्रम्य वायुः स्फुरति सत्वरम् ॥ ११६ ॥ अयमेव महावेधः
 सिद्धैरभ्यस्यतेऽनिशम् । अन्तःकपालकुहरे जिह्वां व्यावृत्य धारयेत् ॥ ११७ ॥
 भ्रूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति स्वेचरी । कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद्दृढया
 धिया ॥ ११८ ॥ बन्धो जालंघराख्योऽयं मृत्युमातङ्गकेसरी । बन्धो येन
 सुपुत्रायां प्राणस्तूङ्गीयते यतः ॥ ११९ ॥ उड्यानाख्यो हि बन्धोऽयं योगिभिः
 समुदाहृतः । पार्श्वभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्दृढम् ॥ १२० ॥ अपान-
 मूर्ध्वमुत्थाप्य योनिबन्धोऽयमुच्यते । प्राणापानौ नादविन्दू मूलबन्धेन चैक-
 ताम् ॥ १२१ ॥ गत्वा योगस्य संसिद्धिं यच्छतो नात्र संशयः । करणी विप-

रीताख्या सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ १२२ ॥ नित्यमभ्यासयुक्तस्य जाठराग्निवि-
चर्धनी । आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः साधकस्य च ॥ १२३ ॥ अल्पाहारो
यदि भवेदग्निर्देहं हरेत्क्षणात् । अधःशिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने
॥ १२४ ॥ क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेत्तु दिने दिने । वली च पलितं चैव
क्षणमासार्धान्न दृश्यते ॥ १२५ ॥ याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु काल-
जित् । वज्रोलीमभ्यसेद्यस्तु स योगी सिद्धिभाजनम् ॥ १२६ ॥ लभ्यते यदि
तस्यैव योगसिद्धिः करे स्थिता । अतीतानागतं वेत्ति खेचरी च भवेद्भुवम्
॥ १२७ ॥ अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिने दिने । वज्रोलीमभ्यसेन्नि-
त्यममरोलीति कथ्यते ॥ १२८ ॥ ततो भवेद्वाजयोगो नान्तरा भवति
श्रुवम् । यदा तु राजयोगेन निष्पन्ना योगिभिः क्रिया ॥ १२९ ॥ तदा विवे-
कवैराग्यं जायते योगिनो श्रुवम् । विष्णुर्नाम महायोगी महाभूतो महातपाः
॥ १३० ॥ तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरुषोत्तमः । यः स्तनः पूर्वपीतस्त्रं
निष्पीड्य सुदमश्नुते ॥ १३१ ॥ यस्माज्जातो भगात्पूर्वं तस्मिन्नैव भगे रमन् ।
या माता सा पुनर्भार्या या भार्या मातरेव हि ॥ १३२ ॥ यः पिता स पुनः
पुत्रो यः पुत्रः स पुनः पिता । एवं संचारचक्रेण कृपचक्रे घटा इव ॥ १३३ ॥
अमन्तो योजिज्जन्मानि श्रुत्वा लोकान्समश्नुते । त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्तिस्रः
संध्यास्त्रयः स्वराः ॥ १३४ ॥ त्रयोऽग्नयश्च त्रिगुणाः स्थिताः सर्वे त्रयाक्षरे ।
त्रयाणामक्षराणां च योऽधीतेऽप्यर्धमक्षरम् ॥ १३५ ॥ तेन सर्वमिदं प्रोतं
तत्सत्यं तत्परं पदम् । पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् ॥ १३६ ॥
तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव काञ्चनम् । हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तस्य
चक्रमधोमुखम् ॥ १३७ ॥ ऊर्ध्वनालमधोविन्दुस्तस्य मध्ये स्थितं मनः ।
अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते ॥ १३८ ॥ मकारे लभते नादमर्धमात्रा
तु निश्चला । शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ १३९ ॥ लभते
योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत्परं पदम् । कूर्मः स्वपाणिपादादि शिरश्चात्मनि धारयेत्
॥ १४० ॥ एवं द्वारेषु सर्वेषु वायुपूरितरेचितः । निषिद्धं तु नवद्वारे ऊर्ध्वं
प्राङ्निश्चसंस्तथा ॥ १४१ ॥ घटमध्ये यथा दीपो निवातं कुम्भकं विदुः ।
निषिद्धैर्नवभिर्द्वारैर्निर्जने निरुपद्रवे ॥ १४२ ॥ निश्चितं त्वात्ममात्रेणावशिष्टं
योगसेवयेत्युपनिषत् ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति योगतत्त्वोपनिषत्समाप्ता ॥ ४३ ॥

आत्मप्रबोधोपनिषत् ॥ ४४ ॥

श्रीमन्नारायणाकारमष्टाक्षरमहाशयम् ।

स्वमात्रानुभवात्सिद्धमात्मबोधं हरिं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

ॐ प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपं अकार उकारो मकार इति त्र्यक्षरं प्रणवं तदेतदोमिति । यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात् । ॐ नमो नारायणाय शङ्खचक्रगदाधराय तस्मात् ॐ नमो नारायणायेति मंत्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति । अथ यदिदं ब्रह्मपुरं पुण्डरीकं तस्मात्तडिदाभमात्रं दीपवत्प्रकाशं ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः । ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युतः ॥ सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म । शोकमोहविनिर्मुक्तो विष्णुं ध्यायन्न सीदति । द्वैताद्वैतमभयं भवति मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति । हृत्पद्ममध्ये सर्वं यत्तत्प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् । प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म । स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माद्धोकादुत्क्राम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानात्वाऽमृतः समभवदमृतः समभवत् । यत्र ज्योतिरजसं यस्मिंल्लोकेऽभ्यर्हितम् । तस्मिन्मां देहि स्वमानमृते लोके अक्षते अच्युते लोके अक्षते अमृतत्वं च गच्छत्यो नमः ॥ १ ॥ प्रगलितनिजमायोऽहं निस्तुलदृशिरूपवस्तुमात्रोऽहम् । अस्तमितोऽहं प्रगलितजगदीशजीवभेदोऽहम् ॥ १ ॥ प्रत्यगभिन्नपरोऽहं विध्वस्ताशेषविधिनियेधोऽहम् । समुदस्ताश्रमितोऽहं प्रविततमुखपूर्णसंविदेवाहम् ॥ २ ॥ साक्ष्यनपेक्षोऽहं निजमहिम्नि संस्थोऽहमचलोऽहम् । अजरोऽहमव्ययोऽहं पक्षविपक्षादिभेदविधुरोऽहम् ॥ ३ ॥ अवबोधैकरसोऽहं मोक्षानन्दैकसिन्धुरेवाहम् । सूक्ष्मोऽहमक्षरोऽहं विगलितगुणजालकेवलात्माहम् ॥ ४ ॥ निस्त्रैगुण्यपदोऽहं कुक्षिस्थानेकलोककलनोऽहम् । कूटस्थचेतनोऽहं निष्क्रियधामाहमप्रतर्क्योऽहम् ॥ ५ ॥ एकोऽहमविकलोऽहं निर्मलनिर्वानमूर्तिरेवाहम् । निरवयवोऽहमजोऽहं केवलसन्मात्रसारभूतोऽहम् ॥ ६ ॥ निरवधिनिरवबोधोऽहं शुभतरभावोऽहमप्रमेद्योऽहम् । विभुरहमनवद्योऽहं निरवधिलिःसीमतत्त्वमात्रोऽहम् ॥ ७ ॥ वेद्योऽहमागमान्तरारारध्यः सकलभुवनहृद्योऽहम् । परमानन्दवनोऽहं परमानन्दैकमूरूपोऽहम् ॥ ८ ॥ शुद्धोऽहमद्वयोऽहं

संततभावोऽहमादिशून्योऽहम् । शमितान्तत्रितयोऽहं बद्धो मुक्तोऽहम-
 द्भुतात्माहम् ॥ ९ ॥ शुद्धोऽहमान्तरोऽहं शाश्वतविज्ञानसमरसात्माहम् । शोधि-
 तपरतस्योऽहं बोधानन्दैकमूर्तिरेवाहम् ॥ १० ॥ विवेकयुक्तिबुद्ध्याहं जाना-
 म्यात्मानमद्वयम् । तथापि बन्धमोक्षादिव्यवहारः प्रतीयते ॥ ११ ॥
 निवृत्तोऽपि प्रपञ्चो मे सत्यवद्भाति सर्वदा । सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्म-
 सत्तेव केवलम् । प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्न हि ॥ १२ ॥ यथेशु-
 रससंव्यासा शार्करा वर्तते तथा । अद्वयब्रह्मरूपेण व्याप्तोऽहं वै जगन्नयम्
 ॥ १३ ॥ ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः । बुद्बुदादिविकारा-
 न्तस्तरङ्गः सागरे यथा ॥ १४ ॥ तरङ्गस्थं द्रवं सिन्धुर्न वान्छति यथा तथा ।
 विषयानन्दवान्छा मे सा श्रुदानन्दरूपतः ॥ १५ ॥ दारिद्र्याशा यथा नास्ति
 संपन्नस्य तथा मम । ब्रह्मानन्दे निमग्नस्य विषयाशा न तन्नवेत् ॥ १६ ॥
 विषं दृष्ट्वाऽमृतं दृष्ट्वा विषं त्यजति बुद्धिमान् । आत्मानमपि दृष्ट्वाहमनात्मानं
 त्यजान्यहम् ॥ १७ ॥ घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति । देहावभा-
 सकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ॥ १८ ॥ न मे बन्धो न मे मुक्तिर्न
 मे शास्त्रं न मे गुरुः । मायामात्रविकासत्त्वान्मायातीतोऽहमद्वयः ॥ १९ ॥
 प्राणाश्चलन्तु तद्धर्मैः कामैर्वा हन्यतां मनः । आनन्दबुद्धिपूर्णस्य मम
 दुःखं कथं भवेत् ॥ २० ॥ आत्मानमञ्जसा वेष्टि क्वाप्यज्ञानं पलायि-
 तम् । कर्तृत्वमद्य मे नष्टं कर्तव्यं वापि न क्वचित् ॥ २१ ॥ ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे
 च नामसौन्दर्यजातयः । स्थूलदेहगता एते स्थूलान्निग्रस्य मे नहि ॥ २२ ॥
 क्षुत्पिपासान्ध्यवाधिर्यकामक्रोधादयोऽखिलाः । लिङ्गदेहगता एते ह्यलि-
 ङ्गस्य न सन्ति हि ॥ २३ ॥ जडत्वप्रियमोदत्वधर्माः कारणदेहगाः । न सन्ति
 मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः ॥ २४ ॥ उत्कृत्स्य यथा भानुरन्धकारः प्रती-
 यते । स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते ॥ २५ ॥ चतुर्दृष्टिनिरोधेऽङ्गैः
 सूर्यो नास्तीति मन्यते । तथाऽज्ञानाद्भूतो देही ब्रह्म नास्तीति मन्यते ॥ २६ ॥
 यथाऽमृतं विषान्निग्रं निषदोषैर्न लिप्यते । न स्पृशामि जडान्निग्रो जड-
 दोषाप्रकाशतः ॥ २७ ॥ स्वल्पापि दीपकणिका बहुलं नाशयेत्तमः । स्वल्पोऽपि
 बोधो निविडं बहुलं नाशयेत्तमः ॥ २८ ॥ कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति
 तथा मयि । अहंकारादिदेहान्तं जगन्नास्यहमद्वयः ॥ २९ ॥ चिद्रूपत्वाच्च मे
 जाड्यं सत्यत्वान्नातृत्वं मम । आनन्दत्वाच्च मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत्-

॥ ३० ॥ आत्मप्रबोधोपनिषन्मुहूर्तमुपासित्वा न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत
इत्युपनिषत् ॥ ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः ॥

इत्यात्मप्रबोधोपनिषत्समाप्ता ॥ ४४ ॥

नारदपरिव्राजकोपनिषत् ॥ ४५ ॥

परिव्राज्यधर्मपूगालङ्कारा यत्प्रबोधतः ।

दशप्रणवलक्ष्यार्थं यान्ति तं राममाश्रये ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

परिव्रादत्रिशिखी सीताचूडानिर्वाणमण्डलम् । दक्षिणा शरभं स्कन्दं महा-
नारायणाद्वयम् ॥ अथ कदाचित्परिव्राजकाभरणो नारदः सर्वलोकसंचारं कुर्व-
न्नपूर्वपुण्यस्थलानि पुण्यतीर्थानि तीर्थाकुर्वन्नवलोक्य चित्तशुद्धिं प्राप्य निर्वैरः
शान्तो दान्तः सर्वतो निर्वेदमासाद्य स्वरूपानुसंधानमनुसंधाय नियमानन्द-
विशेषगण्यं मुनिजगैरुपसंकीर्णं नैमिषारण्यं पुण्यस्थलमवलोक्य सरिगमपध-
निसंज्ञैर्वैराग्यबोधकरैः स्वरविशेषैः प्रापञ्चिकपराञ्जुसैर्हरिकथात्वालैः स्थावरज-
ङ्गमनामकैर्मगवद्भक्तिविशेषैर्नरमृगकिंपुरुषामरकिंनराप्सरोगणान्संमोहयन्नाग-
तं ब्रह्मात्मजं भगवद्भक्तं नारदमवलोक्य द्वादशवर्षसत्रयागोपस्थिताः श्रुताध्य-
यनसंपन्नाः सर्वज्ञास्तपोनिष्ठापराश्च ज्ञानवैराग्यसंपन्नाः शौनकादिमहर्षयः
प्रत्युत्थानं कृत्वा नत्वा यथोचितातिथ्यपूर्वकमुपवेशयित्वा स्वयं सर्वेऽप्युपविष्टा
भो भगवन् ब्रह्मपुत्र कथं मुक्त्युपायोऽस्माकं वक्तव्य इत्युक्तत्वात् स होवाच
नारदः सत्कुलभवोपनीतः सम्प्रगुपनयनपूर्वकं चतुश्चत्वारिंशत्संस्कारसंपन्नः
स्वाभिमतैकगुरुसमीपे स्वशाखाध्ययनपूर्वकं सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा द्वादशव-
र्षशुश्रूषापूर्वकं ब्रह्मचर्यं पञ्चविंशतिवत्सरं गार्हस्थ्यं पञ्चविंशतिवत्सरं वानप्र-
स्थाश्रमं तद्विधिवत्कमान्निर्वर्त्य चतुर्विधब्रह्मचर्यं षड्विधं गार्हस्थ्यं चतुर्विधं वा-
नप्रस्थधर्मं सम्प्रगम्यस्य तदुचितं कर्म सर्वं निर्वर्त्य साधनचतुष्टयसंपन्नः सर्व-
संसारोपरि मनोवाङ्मायकर्मभिर्यथाशानिवृत्तस्तथा वासनैषणोपर्यपि निर्वैरः
शान्तो दान्तः संन्यासी परमहंसाश्रमेणास्त्रलितस्वस्वरूपध्यानेन देहत्यागं
करोति स मुक्तो भवति स मुक्तो भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अथ हैनं भगवन्तं नारदं सर्वे शौनकादयः पप्रच्छुर्भो भगवन् संन्यासविधिं
 नो ब्रूहीति तानवलोक्य नारदस्तत्स्वरूपं सर्वं पितामहमुखेनैव ज्ञातुमुचितमि-
 त्युक्त्वा सत्रयागपूर्यनन्तरं तैः सह संत्यलोकं गत्वा विधिवद्ब्रह्मनिष्ठापरं परमेष्ठिनं
 नत्वा स्तुत्वा यथोचितं तदाज्ञया तैः सहोपविश्य नारदः पितामहमुवाच
 गुरुस्त्वं जनकस्त्वं सर्वविधारहस्यज्ञः सर्वज्ञस्त्वमतो मत्तो मदिष्टं रहस्यमेकं
 वक्तव्यं त्वद्विना मदभिमत रहस्यं वक्तुं कः समर्थः । किमिति चेत् पारिव्राज्य-
 स्वरूपक्रमं नो ब्रूहीति नारदेन प्रार्थितः परमेष्ठो सर्वतः सर्वानवलोक्य मुह-
 र्तमात्रं समाधिनिष्ठो भूत्वा संसारार्तिनिवृत्त्यन्वेषण इति निश्चित्य नारदमव-
 लोक्य तमाह पितामहः । पुरा मत्पुत्र पुरुषसूक्तोपनिषद्ब्रह्मप्रकारं निरतिश-
 याकारावलम्बित्वा विराट्पुरुषेणोपदिष्टं रहस्यं ते विविच्योच्यते तत्क्रममतिर-
 हस्यं बाढमवहितो भूत्वा श्रूयतां श्री नारद विधिवदादावनुपनीतोपनयनान-
 न्तरं तत्सत्कुलप्रसूतः पितृमातृविधेयः पितृसमीपादन्यत्र सत्संप्रदायस्थं
 श्रद्धावन्तं सत्कुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्यं गुणवन्तमकुटिलं सद्गुरुमासाद्य
 नत्वा यथोपयोगशुश्रूषापूर्वकं स्वाभिमतं विज्ञाप्य द्वादशवर्षसेवापुरःसरं
 सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा तदनुज्ञया स्वकुलानुरूपामभिमतकन्यां विवाह्य पञ्च-
 विंशतिवत्सरं गुरुकुलवासं कृत्वाथ गुर्वनुज्ञया गृहस्थोचितकर्म कुर्वन्द्वात्रिंश-
 ष्यनिवृत्तिमेत्येव स्ववंशवृद्धिकामः पुत्रमेकमासाद्य गार्हस्थ्योचितपञ्चविंशतिव-
 त्सरं तीर्त्वा ततः पञ्चविंशतिवत्सरपर्यन्तं त्रिषवणमुदकस्पर्शनपूर्वकं चतुर्थका-
 लमेकवारमाहारमाहरन्नयमेक एव वनस्थो भूत्वा पुरग्रामप्राक्तनसंचारं विहाय
 निकिर (?) विरहिततदाश्रितकर्मोचितकृत्यं निर्वर्त्य दृष्टश्रवणविषयवैतृष्यमेत्य
 चत्वारिंशत्संस्कारसंपन्नः सर्वतो विरक्तश्चित्तशुद्धिमेत्याशासूयेर्ष्याहंकारं दग्ध्वा
 साधनचतुष्टयसंपन्नः संन्यस्तुमर्हतीत्युपनिषत् ॥ २ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

अथ हैनं नारदः पितामहं पप्रच्छ भगवन् केन संन्यासाधिकारी वेत्येवमादौ
 संन्यासाधिकारिणं निरूप्य पश्चात्संन्यासविधिरुच्यते अवहितः शृणु । अथ
 षण्डः पतितोऽङ्गचिकलः स्त्रैणो बधिरोऽर्भको मूकः पाषण्डश्चक्री लिङ्गी वैखा-
 नसहरद्विजौ भृत्काध्यापकः शिपिविष्टोऽनशिको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्या-
 साहर्हाः संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशेनाधिकारिणः पूर्वसंन्यासी परमहंसा-
 धिकारी ॥-परैर्गैवात्मनश्चापि परस्यैवात्मना तथा । अभयं समवामोति स
 परिव्राडिति स्मृतिः ॥ १ ॥ षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी ।

पतितश्च परद्वारी वैखानसहरद्विजौ ॥ २ ॥ चक्री लिङ्गी च पापण्डी शिवि-
विष्टोऽप्यनञ्जिकः । द्वित्रिवारेण संन्यस्तो श्रुतकाध्यापकोऽपि च । एते
नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम् ॥ ३ ॥ आतुरकालः कथमार्यसं-
मतः ॥-प्राणस्योत्क्रमणासन्नकालस्वातुरसंज्ञकः । नेतरस्वातुरः कालो
मुक्तिमार्गप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ आतुरेऽपि च संन्यासे लज्जन्मन्त्रपुरःसरम् ।
मन्त्रावृत्तिं च कृत्वैव संन्यसेद्विधिवद्बुधः ॥ ५ ॥ आतुरेऽपि क्रमे वापि प्रैषमेदो
न कुत्रचित् । न मन्त्रं कर्मरहितं कर्म मन्त्रमपेक्षते ॥ ६ ॥ अकर्म मन्त्ररहितं
नातो मन्त्रं परित्यजेत् । मन्त्रं विना कर्म कुर्याद्भ्रष्टान्याहुतिवद्भवेत् ॥ ७ ॥
विध्युक्तकर्मसंक्षेपाः संन्यासस्वातुरः स्मृतः । तस्यादातुरसंन्यासे मन्त्रावृत्ति-
विधिर्मुने ॥ ८ ॥ आहिताग्निर्धिरक्तश्चेद्देशान्तरगतो यदि । प्राजापत्येष्टि-
मप्येव निवृत्त्यैवाथ संन्यसेत् ॥ ९ ॥ मनसा वाथ विध्युक्तमन्त्रावृत्त्याथ
वा जले । श्रुत्यनुष्ठानमार्गेण कर्मानुष्ठानमेव वा ॥ १० ॥ समाप्य
संन्यसेद्विद्वाद्भो चेत्पातित्यमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ यदा मनसि संजातं वैतुष्यं
सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासमिच्छेत पतितः स्थाद्विपर्यये ॥ १२ ॥ विरक्तः
प्रव्रजेद्धीमानसरक्तस्तु गृहे वसेत् । सरागो नरकं याति प्रव्रजन्निह द्विजा-
धमः ॥ १३ ॥ यत्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः । संन्यसेदकृतोद्वाहो
ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥ १४ ॥ संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदक्षया ।
प्रव्रजत्यकृतोद्वाहः परं वैराग्यमाश्रितः ॥ १५ ॥ प्रवृत्तिलक्षणं कर्म ज्ञानं
संन्यासलक्षणम् । तस्याज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान् ॥ १६ ॥ यदा
तु विदितं तत्त्वं परं ब्रह्म सनातनम् । तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतां शिखां
त्यजेत् ॥ १७ ॥ परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि । सर्वैषणाविनि-
र्मुक्तः स भैक्षं भोक्तुमर्हति ॥ १८ ॥ पूजितो वन्दितश्चैव सुप्रसन्नो यथा
भवेत् । तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदा भवति भैक्षभुक् ॥ १९ ॥ अहमेवाक्षरं
ब्रह्म वासुदेवाख्यमद्वयम् । इति भावो ध्रुवो यस्य तदा भवति भैक्षभुक्
॥ २० ॥ यस्मिन्क्षान्तिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम् । अकिंचनमद-
म्भश्च स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ २१ ॥ यदा न कुर्वते भावं सर्वभूतेषु पाप-
कम् । कर्मणा मनसा वाचा तदा भवति भैक्षभुक् ॥ २२ ॥ दशलक्षणकं
धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदान्तान्विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनुणो द्विजः ॥ २३ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं

धर्मलक्षणम् ॥ २४ ॥ अतीतान्न सरेन्द्रोगाक्ष तथानागतानपि । प्राप्तांश्च
नाभिनन्देद्यः स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ २५ ॥ अन्तःस्थानीन्द्रियाण्यन्तर्बहि-
ष्ठान्विषयान्वहिः । शक्नोति यः सदा कर्तुं स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ २६ ॥ प्राणे
गते यथा देहः सुखं दुःखं न विन्दति । तथा चेष्टाण्युक्तोऽपि स कैवल्या-
श्रमे वसेत् ॥ २७ ॥ कौपीनयुगलं कन्था दण्ड एकः परिग्रहः । यतेः परम-
हंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥ २८ ॥ यदि वा कुस्ते रागादधिकस्य परिग्र-
हम् । रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥ २९ ॥ विशीर्णान्यमलान्येव
चेष्टानि प्रथितानि तु । कृत्वा कन्थां बहिर्वांसो धारयेद्भ्रातुरक्षितम् ॥ ३० ॥
एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः । एक एव चरेन्नित्यं वर्षास्वेकत्र
संवसेत् ॥ ३१ ॥ कुटुम्बं पुत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वदा । यज्ञं यज्ञोपवीतं
च त्यक्त्वा गूढश्चरेद्यतिः ॥ ३२ ॥ कामः क्रोधस्तथा दुर्पो लोभमोहादयश्च
ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राणिसर्ममो भवेत् ॥ ३३ ॥ रागद्वेषवियुक्तात्मा
समलोष्टाश्मकाञ्चनः । प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिरुद्धः ॥ ३४ ॥
दम्भाहंकारनिर्मुक्तो हिंसापैशुन्यवर्जितः । आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षम-
वाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयः । संतियम्य तु
तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति ॥ ३६ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन
शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३७ ॥ श्रुत्वा स्फुट्टा च
भुक्त्वा च दृष्ट्वा घ्रात्वा च यो नरः । न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो
जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ यस्य वाञ्छनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा । स वै सर्व-
मवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ ३९ ॥ संमानाद्वाह्यणो नित्यमुद्विजेत
विषादिव । अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ ४० ॥ सुखं ह्यवमतः
ज्ञेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता दिनदयति ॥ ४१ ॥
अतिवादांस्तिष्ठेत् नावमन्येत कंचन । न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत
केनचित् ॥ ४२ ॥ कुप्यन्तं न प्रतिकुप्येदाकुप्यः कुशलं वदेत् । ससद्गुरावकीर्णं
च न वाचमनुत्तां वदेत् ॥ ४३ ॥ अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह ॥ ४४ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन राग-
द्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ४५ ॥ अस्थिरस्थूणं
आयुबद्धं मांसशोणितलेपितम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ४६ ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं

ल्यजेत् ॥ ४७ ॥ मांसासृक्पूयविष्मूत्राद्युमज्जास्थिसंहतौ । देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो
 अविता नरकेऽपि सः ॥ ४८ ॥ सा कालपुत्रपदवी सा महावीचिवागुरा । सप्त-
 सिपन्नवनश्रेणी या देहेऽहमिति स्थितिः ॥ ४९ ॥ सा त्याज्या सर्वयत्नेन सर्वना-
 शोऽप्युपस्थिते । स्पष्टव्या सा न भवेन सश्वमांसेव पुत्कसी ॥ ५० ॥ प्रिये-
 शु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् । विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्मान्येति सना-
 तनम् ॥ ५१ ॥ अनेन विधिना सर्वास्त्यक्त्वा सङ्गान्शानैः शनैः । सर्वद्वन्द्वैर्वि-
 निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ५२ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धयर्थमसहायकः ।
 सिद्धिमेकस्य पश्यन्हि न जहाति न हीयते ॥ ५३ ॥ कपालं वृक्षमूलानि
 कुचेलान्यसहायता । समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥
 सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः । एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्रा-
 ममाविशेत् ॥ ५५ ॥ एको भिक्षुर्यथोक्तः स्याद्वावेव मिथुनं स्मृतम् । त्रयो
 ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥ ५६ ॥ नगरं नहि कर्तव्यं ग्रामो वा
 मिथुनं तथा । एतन्नयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्चयवते यतिः ॥ ५७ ॥ राजवार्तादि
 तेषां स्याद्भिक्षावार्ता परस्परम् । स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं संनिकर्षाच्च संशयः
 ॥ ५८ ॥ एकाकी निःस्पृहस्त्रिष्टेज्ज हि केन सहालपेत् । दद्यान्नारायणेत्येव प्र-
 तिवाक्यं सदा यतिः ॥ ५९ ॥ एकाकी चिन्तयेद्ब्रह्म मनोवाक्कायकर्मभिः ।
 शृणुं च नाभिनन्देत् जीवितं वा कथंचन ॥ ६० ॥ कालमेव प्रतीक्षेत
 यावदायुः समाप्यते । नाभिनन्देत् मरणं नाभिनन्देत् जीवितम् । कालमेव
 प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ६१ ॥ अजिह्वः षण्डकः पङ्कुरन्धो बधिर एव
 च । मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः ॥ ६२ ॥ इदमिष्टमिदं नेति
 योऽश्नन्नपि न सज्जति । हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते ॥ ६३ ॥
 अद्यजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम् । शतवर्षां च यो दृष्ट्वा निर्विकारः
 स षण्डकः ॥ ६४ ॥ भिक्षार्थमटनं यस्य विष्मूत्रकरणाय च । योजनाच्च परं
 याति सर्वथा पङ्कुरेव सः ॥ ६५ ॥ तिष्ठतो ब्रजतो वापि यस्य चक्षुर्न दूरगम् ।
 चतुर्युगां भुवं सुक्त्वा परिव्राज सोऽन्ध उच्यते ॥ ६६ ॥ हिताहितं मनोरामं
 वचः शोकावहं तु यत् । श्रुत्वापि न शृणोतीव बधिरः स प्रकीर्तितः ॥ ६७ ॥
 साक्षिध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः । सुसवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुग्ध
 उच्यते ॥ ६८ ॥ नटादिप्रेक्षणं द्यूतं प्रमदासुहृदं तथा । भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण्ण
 पश्येत्कदाचन ॥ ६९ ॥ रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु । षडेतामि यति-

नित्यं मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ७० ॥ मन्त्रकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकयालौल्यमेव च ।
 दिवा स्वापं च यानं च यतीनां पातनानि पद ॥ ७१ ॥ दूरयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदा-
 त्मचिन्तकः । सदोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिर्हेतुकीम् ॥ ७२ ॥ न तीर्थसेवी नित्यं
 स्यान्नोपवासपरो यतिः । न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्
 ॥ ७३ ॥ अपापमशठं वृत्तमजिह्वं नित्यमाचरेत् । इन्द्रियाणि समाहृत्य कूर्मो-
 ऽङ्गनीव सर्वशः ॥ ७४ ॥ क्षीणेन्द्रियमनोवृत्तिर्निराशीर्निष्परिग्रहः । निर्द्वन्द्वो
 निर्ममस्कारो निःस्वधाकार एव च ॥ ७५ ॥ निर्ममो निरहंकारो निरपेक्षो
 निराशिषः । विविक्तदेशसंसक्तो मुच्यते नात्र संशय इति ॥ ७६ ॥—अप्रमत्तः
 कर्मभक्तिज्ञानसंपन्नः स्वतन्त्रो वैराग्यमेत्य ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा मुख्य-
 वृत्तिका चेद्ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद्ब्रह्मद्वानी भूत्वा प्रव्रजेद्यदि चेतरेथा ब्रह्म-
 चर्यादेव प्रव्रजेद्ब्रह्मद्वानावाऽथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको
 वोत्सन्नाभिरनशिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्तद्वैके प्राजापत्यामे-
 वेष्टिं कुर्वन्त्यथवा न कुर्यादाभ्येय्यामेव कुर्यादग्निर्हि प्राणः प्राणमेवैतया करोति
 तस्माद्वैधातवीयामेव कुर्यादेतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति ॥
 अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नन्न आरोहाथानो
 वर्धया रयिमित्यनेन मन्त्रेणाग्निमाजिघ्रेश्व वा अग्नेयोनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ
 स्वां योनिं गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाहवनीयादग्निमाहृत्य पूर्ववदग्निमाजि-
 घ्रेद्यदग्निं न विन्देदप्सु जुहुयादापो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो
 जुहोमि स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य तदुदकं प्राश्नीयात्साज्यं हविरनामयं मोदमिति
 शिखां यज्ञोपवीतं पितरं पुत्रं कलत्रं कर्म चाध्ययनं मन्त्रान्तरं विसृज्यैव परि-
 ब्रजत्यात्मविन्मोक्षमब्रह्मैधातवीयैर्विधेस्तद्ब्रह्म तदुपास्ति तव्यमेवैतदिति ॥ पिता-
 महं पुनः पप्रच्छ नारदः कथमयज्ञोपवीती ब्राह्मण इति ॥ तमाह पितामहः ।
 सशिक्षं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेद्बुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धार-
 येत् ॥ ७७ ॥ सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन
 स विप्रो वेदपारगः ॥ ७८ ॥ येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तत्सूत्रं
 धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शनः ॥ ७९ ॥ बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममा-
 स्थितः । ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः सचेतनः । धारणात्तस्य सूत्रस्य
 नोच्छिद्यो नाशुचिर्भवेत् ॥ ८० ॥ सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् । ते
 वै सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः ॥ ८१ ॥ ज्ञानशिखा ज्ञाननिष्ठा

ज्ञानयज्ञोपवीतिनः । ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते ॥ ८२ ॥ अग्नेरिव
 शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा । स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः
 ॥ ८३ ॥ कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः । तैर्विधायमिदं सूत्रं क्रियार्हं
 उद्धि वै स्मृतम् ॥ ८४ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् ।
 ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुरिति ॥ ८५ ॥ -तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः
 ररिब्रज्य परिव्राडेकशटी मुण्डोऽपरिग्रहः शरीरक्लेशासहिष्णुश्चेदथवा यथा-
 विधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा सपुत्रमित्रकलत्रासन्नधादीति स्वाध्यायं सर्व-
 कर्मणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च सर्वं कौपीनं दण्डमाच्छादनं च त्यक्त्वा द्वन्द्व-
 सहिष्णुर्न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुःखं न निद्रा न ज्ञानावमाने च षड्-
 र्मिर्वर्जितो निन्दाहंकारमत्सरगर्वदम्भेष्यासूयेच्छाद्वेषसुखदुःखकामक्रोधलोभ-
 मोहादीन्विसृज्य स्वयंपुः शवाकारमिव स्मृत्वा स्वव्यतिरिक्तं सर्वमन्तर्वाहिर-
 मन्यमानः कस्यापि वन्दनमकृत्वा न नमस्कारो न स्वाहाकारो न स्वधाकारो
 न निन्दास्तुतिर्यादृच्छिको भवेद्यदच्छालाभसंतुष्टः सुवर्णादीन् परिग्रहेज्जावाहनं
 न विसर्जनं न मन्त्रं नामन्त्रं न ध्यानं नोपासनं न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक्
 नापृथक् न त्वन्यत्र सर्वत्रानिकेतः स्थिरमतिः शून्यागारवृक्षमूलदेवगृहवृ-
 णकूटकुलालशालाभिहोत्रशालाभिदिगन्तरनदीतटपुलिनभूगृहकन्दरनिर्झरस्थ-
 ण्डिलेषु वने वा श्वेतकेतुकुमुनिदाघक्षमदुर्वासःसंवर्तकदत्तात्रेयैरवतकवद-
 व्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारो बालोन्मत्तपिशाचवदनुन्मत्तोन्मत्तवदाचरंश्चिदण्डं क्षि-
 क्यं पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वं भूःस्वाहेत्यप्सु परित्यज्य कटिसूत्रं
 च कौपीनं दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेदात्मा-
 नमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नः
 शुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले करपात्रेणान्येन वा याचिताहारमा-
 हरन् लाभालाभे समो भूत्वा निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः शुभा-
 शुभकर्मनिर्मूलनपरः संन्यस्य पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्माहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनु-
 स्सरन्भ्रमरकीटन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य संन्यासेनैव देहत्यागं करोति स
 कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषत् ॥ ८६ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

• त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च । आत्मन्येव स्थितो
 यस्तु स याति परमां गतिम् ॥ १ ॥ नामगोत्रादिवरणं देशं कालं श्रुतं कुलम् ।

वयो वृत्तं व्रतं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ॥ २ ॥ न संभायेत्स्त्रियं
 कांचित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् । कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येद्विस्मितामपि ॥ ३ ॥
 पृथक्पृथक् मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः । चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्र-
 णदयति ॥ ४ ॥ नृणां क्रोधोऽनृतं माया लोभमोहौ प्रियाप्रिये । शिल्पं
 व्याख्यानयोगश्च कामो रागपरिग्रहः ॥ ५ ॥ अहंकारो ममत्वं च चिकित्सा
 धर्मसाहसम् । प्रायश्चित्तं प्रवासश्च मन्त्रौषधपराशिषः ॥ ६ ॥ प्रतिषिद्धानि
 चैतानि सेवमानो ब्रजेदधः । आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदो-
 ऽपि वा ॥ ७ ॥ सन्माननं च न ब्रूयान्मुनिर्लोक्षपरायणः । प्रतिग्रहं न
 गृह्णीयान्नैव चान्यं प्रदापयेत् ॥ ८ ॥ प्रेरयेद्वा तथा भिक्षुः स्वमेऽपि न कदा-
 चन । जायाभ्रातृसुतादीनां बन्धूनां च शुभाशुभम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा इष्ट्वा न
 कृपेत् शोकहर्षौ त्यजेद्यतिः । अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ १० ॥
 अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्जवम् । अज्ञेहो गुरुशुश्रूषा श्रद्धा क्षान्ति-
 र्दमः क्षमः ॥ ११ ॥ उपेक्षा धैर्यमाधुर्यं तितिक्षा कष्टता तथा । ह्रीस्तथा
 ज्ञानविज्ञाने योगो लघ्वंशनं घृतिः ॥ १२ ॥ एष स्वधर्मो विख्यातो यतीनां
 नियतात्मनाम् । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थः सर्वत्र समदर्शनः ॥ १३ ॥ तुरीयः
 परमो हंसः साक्षाज्जापरायणो यतिः । एकरात्रं वसेद्भामे नगरे पञ्चरात्रकम् ॥ १४ ॥
 वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् । द्विरात्रं वा वसेद्भामे भिक्षुर्यदि
 वसेत्तदा ॥ १५ ॥ रागादयः प्रसज्येरंस्तेनासौ नारकी भवेत् । ग्रामान्ते
 निर्जने देशे नियतात्माऽनिकेतनः ॥ १६ ॥ पर्यटेऽकीटवद्भूमौ वर्षास्वेकत्र
 संवसेत् । एकवासा अवासा वा एकद्विष्टिरलोलुपः ॥ १७ ॥ अदूषयन्सतां मार्गं
 ध्यानयुक्तो महीं चरेत् । शुचौ देशे सदा भिक्षुः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ १८ ॥
 पर्यटेत सदा योगी वीक्षयन्वसुधातलम् । न रात्रौ न च मध्याह्ने संध्ययोनैव
 पर्यटन् ॥ १९ ॥ न शूल्ये न च दुर्गे वा प्राणिबाधाकरे न च । एकरात्रं वसे-
 द्भामे पत्तने तु दिनत्रयम् ॥ २० ॥ पुरे दिनद्वयं भिक्षुर्नगरे पञ्चरात्रकम् ।
 वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत् स्थाने पुण्यजलावृते ॥ २१ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि पश्य-
 न्निभश्चक्षुरेन्महीम् । अन्धवत्कुलवच्चैव बधिरोन्मत्तमूकवत् ॥ २२ ॥ ज्ञानं त्रिष-
 वणं प्रोक्तं बहुदकवनस्थयोः । हंसे तु सङ्गदेव स्यात्परहंसे न विद्यते ॥ २३ ॥
 मौनं योगासनं योगस्तिक्षैकान्तशीलता । निःस्पृहत्वं समत्वं च ससैतान्ये-
 कदण्डिनाम् ॥ २४ ॥ परहंसाश्रमस्थो हि ज्ञानादेरविधानतः । अशेषचित्त-

वृत्तीनां त्यागं केवलमाचरेत् ॥ २५ ॥ त्वज्ज्ञांससुधिरस्त्रायुमज्जामेदोस्थिसंहतौ ।
 विष्णुमूत्रपूये रमतां किमीणां कियदन्तरम् ॥ २६ ॥ क शरीरमशेषाणां
 श्लेष्मादीनां महाचयः । क चाङ्गशोभा सौभाग्यकमनीयादयो गुणाः ॥ २७ ॥
 मांसासृक्पूयविष्णुमूत्रस्त्रायुमज्जास्थिसंहतौ । देहे चेध्रीतिमान्मूढो भविता
 नरकेऽपि सः ॥ २८ ॥ स्त्रीणामवाच्यदेशस्य क्षिप्रनाडीव्रणस्य च । अमे-
 देऽपि मनोभेदाज्जनः प्रायेण वज्रयते ॥ २९ ॥ चर्मखण्डं द्विधा भिन्नमप-
 नोद्गारधूपितम् । ये रमन्ति नमस्तभ्यः साहसं किमतः परम् ॥ ३० ॥
 न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः । निर्ममो निर्भयः शान्तो
 निर्द्वन्द्वोऽवर्णभोजनः ॥ ३१ ॥ मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नशो वा ध्यानतत्परः ।
 एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३२ ॥ लिङ्गे सत्यपि खल्वस्मि-
 न्ज्ञानमेव हि कारणम् । निर्मोक्षायैह भूतानां लिङ्गग्रामो निरर्थकः ॥ ३३ ॥
 यज्ञं सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् । न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं चेद कश्चित्स
 ब्राह्मणः ॥ ३४ ॥ तस्मादलिङ्गो धर्मज्ञो ब्रह्मवृत्तमनुव्रतम् । गृहधर्माश्रितो
 विद्वानज्ञातचरितं चरेत् ॥ ३५ ॥ संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः ।
 अन्धवज्रजडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥ ३६ ॥ तं दृष्ट्वा शान्तमनसं
 स्पृहयन्ति दिवौकसः । लिङ्गाभावात्तु कैवल्यमिति ब्रह्मानुशासनमिति ॥ ३७ ॥
 अथ नारदः पितामहं संन्यासविधिं नो ब्रूहीति पप्रच्छ । पितामहस्तथेत्यङ्गी-
 कृत्यातुरे वा क्रमे वापि तुरीयाश्रमस्वीकारार्थं कृच्छ्रप्रायश्चित्तपूर्वकमष्टश्राद्धं
 कुर्यादेवर्षिदिव्यमनुष्यभूतपितृमात्राभेत्यष्टश्राद्धानि कुर्यात् । प्रथमं सत्यव-
 सुसंज्ञकान्विश्वान्देवान्देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरानृषिश्राद्धे देवर्षिक्षत्रियर्षि-
 मनुष्यर्षीन् दिव्यश्राद्धे वसुरुद्रादित्यरूपान्मनुष्यश्राद्धे सनकसनन्दनसत्कु-
 मारसनत्सुजातान्भूतश्राद्धे पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानि चक्षुरादिकरणानि
 चतुर्विधभूतग्रामान्पितृश्राद्धे पितृपितामहप्रपितामहान्मातृश्राद्धे मातृपिता-
 महीप्रपितामहीरात्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहाक्षीवपितृकश्चेत्पितरं त्यक्त्वा
 आत्मपितामहप्रपितामहानिति सर्वत्र युग्मकूप्या ब्राह्मणानर्चयेदेकाध्वर-
 पक्षेऽष्टाध्वरपक्षे वा स्वशास्त्रानुगतमग्नैरष्टश्राद्धान्यष्टदिनेषु वा एकदिने
 वा पितृयागोक्तविधानेन ब्राह्मणानभ्यर्च्य भुक्त्यन्तं यथाविधि निर्वर्त्य
 पिण्डप्रदानानि निर्वर्त्य दक्षिणाताम्बूलैस्तोषयित्वा ब्राह्मणान्प्रेषयित्वा शेषकर्म-
 सिद्ध्यर्थं सप्तकेशान्विसृज्य-‘शेषकर्मप्रसिद्ध्यर्थं केशान्सप्ताष्टधा द्विजः । संक्षिप्य

वापयेत्पूर्वं केशश्मश्रुनखानि च' इति सप्तकेशान्संरक्ष्य कक्षोपस्थवर्जं क्षौरपूर्वकं
 स्नात्वा सार्धसंध्यावन्दनं निर्वर्त्य सहस्रगायत्रीं जप्त्वा ब्रह्मयज्ञं निर्वर्त्य स्वाधी-
 नान्निमुपस्थाप्य स्वशाखोपसंहरणं कृत्वा तदुक्तप्रकरेणाज्याहुतिमाज्यभागान्तं
 हुत्वाहुतिविधिं समाप्यात्मादिभिस्त्रिवारं सक्तुप्राशनं कृत्वाचमनपूर्वकमग्निं
 संरक्ष्य स्वयमग्नेरुत्तरतः कृष्णाजिनोपरि स्थित्वा पुराणश्रवणपूर्वकं जागरणं
 कृत्वा चतुर्थयामान्ते स्नात्वा तदग्नौ चरुं श्रपयित्वा पुरुषसूक्तेनाक्षस्य पोडशा-
 हुतीर्हुत्वा विरजाहोमं कृत्वा अथाचम्य सदक्षिणं वस्त्रं सुवर्णपात्रं धेनुं
 दत्त्वा समाप्य ब्रह्मोद्गासनं कृत्वा । सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृह-
 स्पतिः । सं मायमग्निः सिञ्चत्वायुपा च धनेन च बलेन चायुष्मन्तः करोतु
 मे इति । या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मनात्मानम् । अच्छा वसूनि
 कृण्वन्नस्यो नर्या पुरुणि । यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो
 भुव आजायमानः स क्षय एधीत्यनेनाग्निमात्मन्यारोप्य ध्यात्वाग्निं प्रद-
 क्षिणनमस्कारपूर्वकमुद्गास्य प्रातःसंध्यामुपास्य सहस्रगायत्रीपूर्वकं सूर्योप-
 स्थानं कृत्वा नाभिद्वन्द्वोदकमुपविश्याष्टदिक्पालकाध्व्यपूर्वकं गायत्र्युद्गासनं
 कृत्वा सावित्रीं व्याहृतिषु प्रवेशयित्वा । अहं वृक्षस्य रेरेव । कीर्तिः पृष्ठं गि-
 रेरेव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीवस्वमृतमसि । द्रविणं मे सवर्चसं सुमेधा अमृ-
 तोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । यद्वन्द्वोदकमुपमो विश्वरूपः । छन्दो-
 भ्योऽध्यमृतासंबभूव । स मे इन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो
 भूयासं । शरीरं मे विचर्षणं । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि वि-
 श्रवं । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधयापिहितः । श्रुतं मे गोपाय । दारेषणा-
 याश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थितोऽहं ॐ भूः संन्यस्तं मया
 ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया ॐ भूर्भुवःसुवः
 संन्यस्तं मयेति मन्द्रमध्यमतालजध्वनिभिर्मनसा वाचोच्चार्याभयं सर्वभूतेभ्यो
 मत्तः सर्वं प्रवर्तते स्वाहेत्यनेन जलं प्राश्य प्राच्यां दिशि पूर्णाञ्जलिं प्रक्षिप्यो
 स्वाहेति शिखामुत्पाद्य । यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
 आयुष्यमग्रं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीतं बहिनं
 निवसेस्त्वमन्तः प्रविश्य मध्ये ह्यजस्तं परमं पवित्रं यज्ञो बलं ज्ञानवैराग्यं
 मेधां प्रयच्छेति यज्ञोपवीतं छित्वा उदकाञ्जलिना सह । ॐ भूः समुद्रं गच्छ
 स्वाहेत्यप्सु जुहुयात् । ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः संन्यस्तं मया । ॐ सुवः

संन्यस्तं मयेति त्रिरुत्वा त्रिवारमभिमन्त्र्य तज्जलं प्राश्याचम्य ॐ भूः स्वाहे-
त्यप्सु वस्त्रं कटिसूत्रमपि विसृज्य सर्वकर्मनिर्वर्तकोऽहमिति स्मृत्वा जातरूप-
धरो भूत्वा स्वरूपाधनुसंधानपूर्वकमूर्ध्वबाहुरुदीर्ची गच्छेत्पूर्ववद्विद्वत्संन्यासी
चेद्गुरोः सकाशात्प्रणवमहावाक्योपदेशं प्राप्य यथासुखं विहरन्मत्तः कश्चि-
न्नान्यो व्यतिरिक्त इति फलपत्रोदकाहारः पर्वतवनदेवतालयेषु संचरेत्संन्य-
स्याथ दिग्भ्रमरः सकलसंचारकः सर्वदानन्दस्वानुभवैकपूर्णहृदयः कर्मातिदूर-
लाभः प्राणायामपरायणः फलरसत्वक्पत्रमूलोदकैर्मोक्षार्थी गिरिकन्दरेषु
विसृजेद्देहं स्मरंस्तारकम् । विविदिषासंन्यासी चेच्छतपथं गत्वाचार्यादिभि-
र्विप्रैस्तिष्ठ तिष्ठ महाभाग दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं गृहाण प्रणवमहावाक्यग्रहणार्थं
गुरुनिकटभागच्छेत्त्याचार्यैर्दण्डकटिसूत्रकौपीनं शाटीमेकां कमण्डलुं पादा-
दिमस्तकप्रमाणमव्रणं समं सौम्यमकालपृष्ठं सलक्षणं देणवं दण्डमेकमाचमनपू-
र्वकं सखा मा गोपायौचः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म से भव
यत्पापं तन्निवारयेति दण्डं परिग्रहेज्जगज्जीवनं जीवनाधारभूतं मा ते मा
मन्त्रयस्व सर्वदा सर्वसौम्येति प्रणवपूर्वकं कमण्डलुं परिगृह्य कौपीनाधारं
कटिसूत्रमोमिति गुह्याच्छादकं कौपीनमोमिति शीतवातोष्णत्राणकरं देहैक-
रक्षणमोमिति कटिसूत्रकौपीनवस्त्रमाचमनपूर्वकं योगपट्टाभिषिक्तो भूत्वा
कृतार्थोऽहमिति मत्वा स्वाश्रमाचारपरो भवेदित्युपनिषत् ॥ ३८ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

अथ हैनं पितामहं नारदः पप्रच्छ भगवन्सर्वकर्मनिर्वर्तकः संन्यास इति
त्वयैवोक्तः पुनः स्वाश्रमाचारपरो भवेदित्युच्यते । ततः पितामह उवाच ।
शरीरस्य देहिनो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरुरीयावस्थाः सन्ति तदधीनाः कर्मज्ञान-
वैराग्यप्रवर्तकाः पुरुषा जन्तवस्तदनुकूलाचाराः सन्ति तथैव चेन्नगवन्संन्या-
साः कतिमेदास्तदनुष्ठानमेदाः कीदृशास्तत्त्वतोऽस्याकं वक्तुमर्हसीति । तथेत्य-
ङ्गीकृत्य तु पितामहेन संन्यासमेदैराचारमेदः कथमिति चेत्तत्तत्स्वेक एव
संन्यासः अज्ञानेनाशक्तिवशात्कर्मलोपश्च त्रैविध्यमेत्य वैराग्यसंन्यासो ज्ञान-
संन्यासो ज्ञानवैराग्यसंन्यासः कर्मसंन्यासश्चेति चातुर्विध्यमुपागतस्तद्यथेति
दुष्टमदनाभावाच्चेति विषयवैतृष्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मवशात्संन्यस्तः स वैराग्य-
संन्यासी शास्त्रज्ञानात्पापपुण्यलोकाभ्युपनिषत्परोऽपरतः क्रोधेर्ष्यासूयाहं-
काराभिमानात्मकसर्वसंसारं निर्वृत्य दारेषणाधनेषणालोकेषणात्मकदेहवासनां

शास्त्रवासनां लोकवासनां त्यक्त्वा वमनाक्षमिव प्रकृतीयं सर्वमिदं हेयं मत्वा
 साधनचतुष्टयसंपन्नो यः संन्यस्यति स एव ज्ञानसंन्यासी । क्रमेण सर्वमभ्यस्य
 सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य
 जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी । ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भूत्वा
 वानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्यभावेऽप्याश्रमक्रमानुसारेण यः संन्यस्यति स
 कर्मसंन्यासी । ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्यसंन्यासी ।
 विद्वत्संन्यासी ज्ञानसंन्यासी विविदिषासंन्यासी कर्मसंन्यासी । कर्मसंन्या-
 सोऽपि द्विविधः निमित्तसंन्यासोऽनिमित्तसंन्यासश्चेति । निमित्तस्त्वातुरः ।
 अनिमित्तः क्रमसंन्यासः । आतुरः सर्वकर्मलोपः प्राणस्योत्क्रमणकालसंन्यासः
 सनिमित्तसंन्यासः । दृढाङ्गो भूत्वा सर्वं कृतकं नश्वरमिति देहादिकं सर्वं हेयं
 प्राप्य । हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदिति शिर्दुरोणसत् । नृपद्वरस-
 हतसव्योमसदक्षा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् । ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं
 नश्वरमिति निश्चित्याथो क्रमेण यः संन्यस्यति स संन्यासोऽनिमित्तसंन्यासः ।
 संन्यासः षड्विधो भवति । कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसः तुरीया-
 तीतोऽवधूतश्चेति । कुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलधरः कौपीनक-
 न्थाधरः पितृमातृगुर्वाराधनपरः पिठरखनिश्रिक्यादिमन्त्रसाधनपर एकत्रा-
 ज्ञादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः । बहूदकः शिखादिकन्थाधारिपुण्ड्र-
 धारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकरवृत्त्याष्टकवलाशी हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्व-
 पुण्ड्रधारी असंकुप्तमाधुकराक्षाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी । परमहंसः शिखा-
 यज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेष्वेकरात्राज्ञादनपरः करपात्री एककौपीनधारी शास्त्री-
 मेकामेकं वैणवं दण्डमेकशादीधरो वा भस्मोद्धूलनपरः सर्वत्यागी । तुरीया-
 तीतो गोमुखः फलाहारी । अन्नाहारी चेद्बृहन्नये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः
 कुम्पवच्चरितवृत्तिकः । अवधूतस्त्वनियमोऽभिशास्तपतितवर्जनपूर्वकं सर्ववर्गे-
 ष्वजगरवृत्त्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः । आतुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः
 कर्तव्यः कुटीचकबहूदकहंसानां ब्रह्मचर्याश्रमादितुरीयाश्रमवत् कुटीचकादीनां
 संन्यासविधिः । परमहंसादित्रयाणां न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रं
 न कमण्डलुर्न दण्डः । सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं जातरूपधरत्वं विधिः ।
 संन्यासकालेऽप्यलंबुद्विपर्यन्तमधीत्य तदनन्तरं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं वस्त्रं
 कमण्डलुं सर्वमप्यु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेन्न कन्थावेशो नाप्येतव्यो

न श्रोतव्यमन्यत्किञ्चित्प्रणवादन्यं न तर्कं पठेन्न शब्दमपि बृहच्छब्दा-
 द्वाध्यापयेन्न महद्वाचोविग्लापनं गिरा पाण्यादिना संभाषणं नान्यस्माद्वा
 विशेषेण न शूद्रस्त्रीपतितोदकया संभाषणं न यतेर्देवपूजा नोत्सवदर्शनं
 तीर्थयात्रावृत्तिः । पुनर्यतिविशेषः । कुटीचकस्यैकत्र भिक्षा बहूदकस्यासंकृतं
 माधुकरं हंसस्याष्टगृहेष्वष्टकवलं परमहंसस्य पञ्चगृहेषु करपात्रं फलाहारो
 गोमुखं तुरीयातीतस्यावधूतस्याजगरवृत्तिः सार्ववर्णिकेषु यतिर्नैकरात्रं वसेन्न
 कस्यापि नमेत्तुरीयातीतावधूतयोर्न ज्येष्ठो यो न स्वरूपज्ञः । स ज्येष्ठोऽपि
 कनिष्ठो हस्ताभ्यां नद्युत्तरणं न कुर्यान्न वृक्षमारोहेन यानादिरुढो न क्रयवि-
 क्रयपरो न किञ्चिद्विनियमपरो न दाम्भिको नानृतवादी न यतेः किञ्चित्कर्त-
 व्यमस्त्यस्ति चेत्सांकर्यम् । तस्मान्मननादौ संन्यासिनामधिकारः । आतुर-
 कुटीचकयोर्भूलोको बहूदकस्य स्वर्गलोको हंसस्य तपोलोकः परमहंसस्य
 सत्यलोकस्तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानुसन्धानेन
 अमरकीटन्यायवत् । यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेव
 समाप्नोति नान्यथा श्रुतिशासनम् । तदेवं ज्ञात्वा स्वरूपानुसंधानं विनान्य-
 थाचारपरो न भवेत्तदाचारवशात्तत्तल्लोकप्राप्तिर्ज्ञानवैराग्यसंपन्नस्य स्वस्मिन्नेव
 मुक्तिरिति न सर्वत्राचारप्रसक्तिसदाचारः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिष्वेकशरीरस्य
 जाग्रत्काले विश्वः स्वप्नकाले तैजसः सुषुप्तिकाले प्राज्ञः अवस्थाभेदादवस्थे-
 श्वरभेदः कार्यभेदात्कारणभेदस्तासु चतुर्दशकारणानां बाह्यवृत्तयोऽन्तर्वृत्त-
 यस्तेषामुपादानकारणम् । वृत्तयश्चत्वारः मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति ।
 तत्तद्वृत्तिव्यापारभेदेन पृथगाचारभेदः । नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं
 समाविशत् । सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम् । तुरीयमक्षरमिति
 ज्ञात्वा जागरिते सुषुप्त्यवस्थापन्न इव यद्यच्छ्रुतं यद्यद्दृष्टं तत्तत्सर्वमविज्ञातमिव
 यो वसेत्तस्य स्वप्नावस्थायामपि तादृगवस्था भवति । स जीवनमुक्त इति
 वदन्ति । सर्वश्रुत्यर्थप्रतिपादनमपि तस्यैव मुक्तिरिति । भिक्षुर्नैहिकामुष्मिका-
 पेक्षः । यद्यपेक्षास्ति तदनु रूपो भवति । स्वरूपानुसन्धानव्यतिरिक्तान्य-
 शास्त्राभ्यासैरुक्ताकुङ्कुमभारवद्यर्थो न योगशास्त्रप्रवृत्तिर्न सांख्यशास्त्राभ्यासो
 न मन्त्रतन्त्रव्यापारः । इतरशास्त्रप्रवृत्तिर्यतेरस्ति चेच्छवालंकारवधर्मकारवदति-
 विदूरकर्माचारविद्यादूरो न प्रणवकीर्तनपरो यद्यत्कर्म करोति तत्तत्फलमनु-
 भवति एरण्डतैलफेनवदतः सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्तं मनोदण्डं करपात्रं

दिगम्बरं दृष्ट्वा परिव्रजेद्भिक्षुः । बालोन्मत्तपिशाचवन्मरणं जीवितं वा न
 काङ्क्षेत कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशभृतकन्यायेन परिव्राडिति । तितिक्षाज्ञान-
 वैराग्यशमादिगुणवर्जितः । भिक्षामात्रेण जीवी स्यात्स यतिर्यतिवृत्तिहा ॥ १ ॥
 न दण्डधारणेन न मुण्डनेन न वेषेण न दम्भाचारेण मुक्तिः । ज्ञानदण्डो
 धृतो येन एकदण्डो स उच्यते । काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।
 स याति नरकान्धोरात्महारौरवसंज्ञितान् ॥ २ ॥ प्रतिष्ठा सूक्रीविष्टासमा-
 गीता महर्षिभिः । तस्मादेनां परित्यज्य कीटवस्पर्यट्यतिः ॥ ३ ॥ अयाचितं
 यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्यात्परे-
 च्छया ॥ ४ ॥ स्वमेऽपि यो हि युक्तः स्याज्जाग्रतीव विशेषतः । ईदृवचेष्टः
 स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ५ ॥ अलाभे न विपादी स्याल्लाभे चैव
 न हर्षयेत् । प्राणयान्निक्रमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥ ६ ॥ अभिपूजि-
 तलाभांश्च जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते
 ॥ ७ ॥ प्राणयान्नानिमित्तं च व्यङ्गारे मुक्तवज्जने । काले प्रशस्ते वर्णानां
 भिक्षार्थं पर्यटद्गृहान् ॥ ८ ॥ पाणिपात्रश्चरन्योगी नासकृन्नेक्षमाचरेत् ।
 तिष्ठन्भुञ्ज्याच्चरन्भुञ्ज्यान्मध्येनाचमनं तथा ॥ ९ ॥ अधिवद्भृतमर्यादा
 भवन्ति विशदाशयाः । नियतिं न विमुञ्चन्ति महान्तो भास्करा इव ॥ १० ॥
 आख्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः । तदा समः स्यात्सर्वेषु सोऽमृत-
 स्वाय कल्पते ॥ ११ ॥ अनिन्यं वै व्रजेद्देहं निन्यं गेहं तु वर्जयेत् । अनावृते
 विशेष्वारि गेहे नैवावृते व्रजेत् ॥ १२ ॥ पांसुना च प्रतिच्छन्नश्चान्यागार-
 प्रतिश्रयः । वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥ १३ ॥ यन्नास्मितवायी
 स्यान्निरग्निरनिकेतनः । यथालब्धोपजीवी स्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः
 ॥ १४ ॥ निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञानयज्ञो जितेन्द्रियः । कालकाङ्क्षी चरन्नेव
 ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १५ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो मुनिः ।
 न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥ १६ ॥ निर्मानश्चानहंकारो
 निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः । नैव क्रुध्यति न द्वेष्टि नानृतं आपते गिरा ॥ १७ ॥
 पुण्ययातनचारी च भूतानामविर्हिसकः । काले प्राप्ते भवेन्नेक्षं कल्पयते
 ब्रह्मभूयसे ॥ १८ ॥ वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित् । अज्ञात-
 चर्यां लिप्सेत न चैनं हर्षं आविशेत् ॥ १९ ॥ अध्वा सूर्येण निर्दिष्टः
 कीटवद्विचरेन्महीम् । आशीर्युक्ताणि कर्माणि हिंसायुक्ताणि याति च ॥ २० ॥

लोकसंग्रहयुक्तानि नैव कुर्यान्न कारयेत् । नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत
जीविकाम् । अतिवादास्त्यजेत्कर्त्तव्यं कंचन नाश्रयेत् ॥ २१ ॥ न
शिष्याननुब्रवीत् ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून् । न व्याख्यामुपयुज्येत नारम्भा-
नारभेत्कचित् ॥ २२ ॥ अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तार्थो मुनिर्गन्तव्यबालवत् ।
कविर्मूकवदात्मानं तद्दृष्ट्वा दर्शयेन्नृणाम् ॥ २३ ॥ न कुर्यान्न वदेत्किञ्चित्
ध्यायेत्साध्वसाधु वा । आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ २४ ॥
एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः । आत्मक्रीड आत्मरतिरात्मवा-
न्समदर्शनः ॥ २५ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् । वदेदुन्मत्त-
वद्विद्वान् गोचर्या नैगमश्चरेत् ॥ २६ ॥ क्षिप्तोऽवसानितोऽसङ्गिः प्रलब्धो-
ऽसूयितोऽपि वा । ताडितः संलुब्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ २७ ॥
विष्टितो मूर्ध्नितो वाजैर्बहुधैवं प्रकल्पितः । श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्म-
नात्मानमुद्धरेत् ॥ २८ ॥ संमाननं परां हानिं योगर्द्धैः कुरुते यतः । जनेना-
वमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥ २९ ॥ तथा चरेत् वै योगी सतां
धर्ममदूषयन् । जना यथावमन्येरन्गच्छेद्युनैव सङ्गतिम् ॥ ३० ॥ जरायु-
जाण्डजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः । युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वलङ्गांश्च
वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ कामक्रोधौ तथा दर्पलोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषा-
न्परित्यज्य परिव्राड् भयवर्जितः ॥ ३२ ॥ भैक्षाशनं च औनिःशं तपो ध्यानं
विशेषतः । सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥ ३३ ॥ काषाय-
वासाः सततं ध्यानयोगपरायणः । ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि
वा ॥ ३४ ॥ भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नाशी भवेत्कचित् । चित्तशुद्धिर्भवे-
द्यावत्तावन्नित्यं चरेत्सुधीः ॥ ३५ ॥ ततः प्रव्रज्य शुद्धात्मा संचरेद्यत्र
कुत्रचित् । बहिरन्तश्च सर्वत्र संपश्यन्हि जनार्दनम् ॥ ३६ ॥ सर्वत्र विचरे-
न्मौनी वायुवद्वीतकल्मषः । समदुःखसुखः क्षान्तो हस्तप्राप्तं च भक्षयेत्
॥ ३७ ॥ निर्वैरेण समं पश्यन्निजगोऽश्वमृगादिषु । भावयन्मनसा विष्णुं
परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३८ ॥ चिन्मयं परमानन्दं ब्रह्मैवाहमिति स्मरन् ।
ज्ञात्वैवं मनोदण्डं धृत्वा आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदा
मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाञ्मुखः स्वरूपानुसन्धानेन
अमरकीटन्यायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषत् ॥ ३९ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु पञ्चमोपदेशः ॥ ५ ॥

अथ नारदः पितामहमुवाच ॥ भगवन् तदभ्यासवशात् अमरकीटन्याय-
वत्तदभ्यासः कथमिति । तमाह पितामहः । सत्यवाग्ज्ञानवैराग्याभ्यां
विशिष्टदेहावशिष्टो वसेत् । ज्ञानं शरीरं वैराग्यं जीवनं विद्धि शान्तिदान्ती
नेत्रे मनो मुखं बुद्धिः कला पञ्चविंशतितत्त्वान्यत्रयवा अवस्था पञ्चमहा-
भूतानि कर्म भक्तिज्ञानवैराग्यं शास्त्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरुरीयाश्चतुर्दशकरणानि
पङ्कस्तम्भाकाराणीति । एवमपि नावमतिपङ्कं कर्णधार इव यन्तेव गजं
स्वबुद्ध्या वशीकृत्य स्वव्यतिरिक्तं सर्वं कृतकं नश्वरमिति मत्वा विरक्तः पुरुषः
सर्वदा ब्रह्माहमिति व्यवहरेन्नान्यत्किंचिद्वेदितव्यं स्वव्यतिरेकेण । जीवनमुक्तो
वसेत्कृतकृत्यो भवति । न नाहं ब्रह्मेति व्यवहरेत्किंतु ब्रह्माहमस्मीत्यजस्रं
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । तुरीयावस्थां प्राप्य तुरीयातीतत्वं ब्रजेद्दिवा जाग्रन्नक्तं
स्वप्नं सुषुप्तमधरात्रं गतमित्येकावस्थायां चतस्रोऽवस्थास्त्वेकैककरणाधीनानां
चतुर्दशकरणानां व्यापारश्चक्षुरादीनाम् । चक्षुषो रूपग्रहणं श्रोत्रयोः शब्दग्रहणं
जिह्वाया रसास्वादनं घ्राणस्य गन्धग्रहणं वचसो वाग्व्यापारः पाणोरादानं
पादयोः संचारः पायोरुत्सर्ग उपस्थस्यानन्दग्रहणं त्वचः स्पर्शग्रहणम् ।
तदधीना च विषयग्रहणबुद्धिः बुद्ध्या बुध्यति चित्तेन चेत्यत्यहंकारेणा-
हं करोति । विसृज्य जीव एतान्देहाभिमानेन जीवो भवति । गृहाभिमानेन
गृहस्थ इव शरीरे जीवः संचरति । प्राग्दले पुण्यावृत्तिराग्नेय्यां निद्रालस्यौ
दक्षिणायां क्रौर्यबुद्धिर्नैऋत्यां पापबुद्धिः पश्चिमे क्रीडारतिर्वायव्यां गमने
बुद्धिरुत्तरे शान्तिरीशान्ये ज्ञानं कर्णिकायां वैराग्यं केसरेष्वात्मचिन्ता इत्येवं
वक्त्रं ज्ञात्वा जीवदवस्थां प्रथमं जाग्रद्वितीयं स्वप्नं तृतीयं सुषुप्तं चतुर्थं तुरीयं
चतुर्भिर्विरहितं तुरीयातीतम् । विश्वतैजसप्राज्ञतटस्थमेदैरेक एव एको देवः
साक्षी निर्गुणश्च तद्ब्रह्माहमिति व्याहरेत् । नो चेज्जाग्रदवस्थायां जाग्रदादि-
चतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादिचतस्रोऽवस्थाः सुषुप्ते सुषुप्त्यादिचतस्रोऽवस्थाः
तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्थाः न त्वेवं तुरीयातीतस्य निर्गुणस्य । स्थूलसूक्ष्म-
कारणरूपैर्विश्वतैजसप्राज्ञेश्वरैः सर्वावस्थासु साक्षी त्वेक एवावतिष्ठते । उत
तटस्थो द्रष्टा तटस्थो न द्रष्टा द्रष्टृत्वाच्च द्रष्टैव कर्तृत्वभोक्तृत्वाहंकारादिभिः
स्पृष्टो जीवः जीवेतरो न स्पृष्टः । जीवोऽपि न स्पृष्ट इति चेन्न । जीवाभि-
मानेन क्षेत्राभिमानः । शरीराभिमानेन जीवत्वम् । जीवत्वं धटाकाशमहा-
काशवद्भवघानेऽस्ति । व्यवधानवशादेव हंसः सोऽहमिति मन्त्रेणोच्चारस-

निःश्वासच्यपदेशेनानुसन्धानं करोति । एवं विज्ञाय शरीराभिमानं त्यजेत्
 शरीराभिमानी भवति । स एव ब्रह्मेत्युच्यते । त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो
 लब्धाहारो जितेन्द्रियः । पिधाय बुद्ध्या द्वााराणि मनो ध्याने निवेशयेत्
 ॥ १ ॥ शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु । नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं
 सम्यगुपक्रमेत् ॥ २ ॥ आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च । महाजनेषु
 सिद्ध्यर्थी न गच्छेद्योगविरक्तचित् ॥ ३ ॥ यथैनमवमन्यन्ते जनाः
 परिभवन्ति च । तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयेत् ॥ ४ ॥ वाग्दण्डः
 कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः । यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महा-
 यतिः ॥ ५ ॥ विधूमे च प्रशान्ताग्नौ यस्तु माधुकीं चरेत् । गृहे च
 विप्रमुल्यानां यतिः सर्वोत्तमः स्मृतः ॥ ६ ॥ दण्डभिक्षां च यः कुर्यात्स्वधर्मे
 व्यसनं विना । यस्तिष्ठति न वैराग्यं याति नीचयतिर्हि सः ॥ ७ ॥ यस्मिन्
 गृहे विशेषेण लभेद्भिक्षां च वासनात् । तत्र नो याति यो भूयः स
 यतिर्नेतरः स्मृतः ॥ ८ ॥ यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विहीनं सर्वसाक्षिणम् ।
 पारमार्थिकविज्ञानं सुखात्मानं स्वयंप्रभम् ॥ ९ ॥ परतत्त्वं विजानाति
 सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् । वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिताः
 ॥ १० ॥ नात्मनो बोधरूपस्य मम ते सन्ति सर्वदा । इति यो वेद वेदान्तेः
 सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥ ११ ॥ यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्श-
 नात् । स वर्णानाश्रमान्सर्वानतीत्य स्वात्मनि स्थितः ॥ १२ ॥ योऽतीत्य
 स्वाश्रमान्वर्णानात्मन्येव स्थितः पुमान् । सोऽतिवर्णाश्रमी प्रोक्तः सर्ववेदार्थ-
 वेदिभिः ॥ १३ ॥ तस्मादन्यगता वर्णा आश्रमा अपि नारद । आत्मन्यारो-
 पिताः सर्वे भ्रान्त्या तेनात्मवेदिना ॥ १४ ॥ न विधिर्न निषेधश्च न वर्ज्या-
 वर्ज्यकल्पना । ब्रह्मविज्ञानिनामस्ति तथा नान्यच्च नारद ॥ १५ ॥ विरज्य सर्व-
 भूतेभ्य आ विरिञ्चिपदादपि । घृणां विपाद्य सर्वस्मिन्पुत्रमित्रादिकेष्वपि
 ॥ १६ ॥ श्रद्धालुर्मुक्तिमार्गेषु वेदान्तज्ञानलिप्तया । उपायनकरो भूत्वा गुहं
 ब्रह्मविदं ब्रजेत् ॥ १७ ॥ सेवाभिः परितोष्यैनं चिरकालं समाहितः । सदा
 वेदान्तवाक्यार्थं शृणुयात्सुसमाहितः ॥ १८ ॥ निर्ममो निरहंकारः सर्वसङ्ग-
 विवर्जितः । सदा शान्त्यादियुक्तः सञ्जात्मन्यात्मानमीक्षते ॥ १९ ॥ संसार-
 दोषदृष्ट्यैव विरक्तिर्जायते सदा । विरक्तस्य तु संसारात्संन्यासः स्यान्न संशयः
 ॥ २० ॥ सुसुष्ठुः परहंसाख्यः साक्षान्मोक्षैकसाधनम् । अभ्यसेद्ब्रह्मविज्ञानं

वेदान्तश्रवणादिना ॥ २१ ॥ ब्रह्मविज्ञानलाभाय परहंससमाह्वयः । शान्ति-
दान्त्यादिभिः सर्वैः साधनैः सहितो भवेत् ॥ २२ ॥ वेदान्ताभ्यासनिरतः
शान्तो दन्तो जितेन्द्रियः । निर्मयो निर्ममो नित्यो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः
॥ २३ ॥ जीर्णकौपीनवासाः स्यान्मुण्डी नम्रोऽथ वा भवेत् । प्राज्ञो वेदान्तवि-
द्योगी निर्ममो निरहङ्कृतिः ॥ २४ ॥ मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव
जन्तुषु । एको ज्ञानी प्रशान्तात्मा स संतरति नेतरः ॥ २५ ॥ गुरुणां
च हिते युक्तस्तत्र संवत्सरं वसेत् । नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा
भवेत् ॥ २६ ॥ प्राप्य चान्ते ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् । अविरोधेन धर्मस्य
संचरेत्पृथिवीमिमाम् ॥ २७ ॥ ततः संवत्सरस्यान्ते ज्ञानयोगमनुत्तमम् ।
आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तश्च परमाश्रमम् ॥ २८ ॥ अनुज्ञाप्य गुरुंश्चैव चरेद्दि-
पृथिवीमिमाम् । त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ॥ २९ ॥ द्वा-
विमौ न विरज्येते विपरीतेन कर्मणा । निरारम्भो गृहस्थश्च कार्यवांश्चैव भिक्षु-
कः ॥ ३० ॥ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति । तस्माद्दृष्टिविषां
नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३१ ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा ।
नृत्यं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत् ॥ ३२ ॥ न स्नानं न जपः पूजा न
होमो नैव साधनम् । नाभिकार्यादिकार्यं च नैतस्यास्तीह नारद ॥ ३३ ॥
नार्चनं पितृकार्यं च तीर्थयात्रा व्रतानि च । धर्माधर्मादिकं नास्ति न विधि-
लौकिकी क्रिया ॥ ३४ ॥ संत्यजेत्सर्वकर्माणि लोकाचारं च सर्वशः । कृमि-
कीटपतङ्गांश्च तथा योगी वनस्पतीन् ॥ ३५ ॥ न नाशयेद्बुधो जीवन्परमार्थ-
मतिर्यतिः । नित्यमन्तर्मुखः स्वच्छः प्रशान्तात्मा स्वपूर्णधीः ॥ ३६ ॥ अन्तः-
सङ्गपरित्यागी लोके विहर नारद । नाराजके जनपदे चरत्येकचरो मुनिः
॥ ३७ ॥ निःस्तुतिर्निर्नैमस्कारो निःस्वधाकार एव च । चलाचलनिकेतश्च
यतिर्यादृच्छिको भवेदित्युपनिषत् ॥ ३८ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

अथ यतेर्नियमः कथमिति पृष्टं नारदं पितामहः पुरस्कृत्य विरक्तः सन्न्यो
वर्षासु ध्रुवशीलोऽष्टौ मास्येकाकी चरन्नेकत्र निवसेद्भिक्षुभयात्सारङ्गवदेकत्र
न तिष्ठेत्स्वगमननिरोधग्रहणं न कुर्याद्वस्त्राभ्यां नयुत्तरणं न कुर्यात् वृक्षारो-
हणमपि न देवोत्सवदर्शनं कुर्यान्नैकत्राशी न बाह्यदेवार्चनं कुर्यात्स्वयतिरिक्तं
सर्वं त्यक्त्वा मधुकरवृष्याहारमाहरन्कृशो भूत्वा मेदोवृद्धिमकुर्वन्नाज्यं रुधिर-

मिव त्यजेदेकत्रात्रं पललमिव गन्धलेपनमशुद्धिलेपनमिव क्षारमन्त्यजमिव
 वस्त्रमुच्छिष्टपात्रमिवाभ्यङ्गं स्त्रीसङ्गमिव मित्राह्लादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांस-
 मिव ज्ञातचरदेशं चण्डालवाटिकामिव स्त्रियमहिमिव सुवर्णं कालकूटमिव
 सभास्थलं श्मशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्रात्रं
 न देहान्तरदर्शनं प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य स्वदेशमुत्सृज्य ज्ञातचरदेशं विहाय
 विस्मृतपदार्थं पुनः प्राप्तहर्षं इव स्वमानन्दमनुस्मरन्स्वशरीराभिमानदेशवि-
 स्मरणं मत्वा स्वशरीरं शवमिव हेयमुपगम्य कारागृहविनिमुक्तचोरवत्पुत्रास-
 बन्धुभवस्थलं विहाय दूरतो वसेत् ॥ १ ॥ अयत्नेन प्राप्तमाहरन्ब्रह्मप्रणवध्यानानु-
 सन्धानपरो भूत्वा सर्वकर्मनिमुक्तः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यादिकं
 दग्ध्वा त्रिगुणातीतः पद्मैरिंहितः षड्भावविकारशून्यः सत्यवाक्शुचिरद्रोही
 ग्राम एकरात्रं पत्तने पञ्चरात्रं क्षेत्रे पञ्चरात्रं तीर्थे पञ्चरात्रमनिकेतः स्थिरम-
 तिर्नानृतवादी गिरिकन्दरेषु वसेदेक एव द्वौ वा चरेत् ग्रामं त्रिभिर्नगरं चतु-
 र्भिर्ग्राममित्येकश्चरेत् । भिक्षुश्चतुर्दशकरणानां न तत्रावकाशं दद्यादविच्छिन्न-
 ज्ञानाद्वैराग्यसंपत्तिमनुभूय मत्तो न कश्चिज्ज्ञान्यो व्यतिरिक्त इत्यात्मन्यालोच्य
 सर्वतः स्वरूपमेव पश्यन्जीवन्मुक्तिमवाप्य प्रारब्धप्रतिभासनाशपर्यन्तं
 चतुर्विधं स्वरूपं ज्ञात्वा देहपतनपर्यन्तं स्वरूपानुसंधानेन वसेत् ॥ २ ॥ त्रिषवण-
 स्नानं कुटीचकस्य बहूदकस्य द्विवारं हंसस्येकवारं परमहंसस्य मानसस्नानं
 तुरीयातीतस्य भस्मस्नानमवधूतस्य वायव्यस्नानम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रं कुटीचकस्य
 त्रिपुण्ड्रं बहूदकस्य ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं हंसस्य भस्मोद्धूलनं परमहंसस्य तुरीया-
 तीतस्य तिलकपुण्ड्रमवधूतस्य न किञ्चित् । तुरीयातीतावधूतयोः ऋतुक्षौरं
 कुटीचकस्य ऋतुद्वयक्षौरं बहूदकस्य न क्षौरं हंसस्य परमहंसस्य च न क्षौरम् ।
 अस्ति चेदयनक्षौरम् । तुरीयातीतावधूतयोः न क्षौरम् । कुटीचकस्यैकाग्रं
 मायुकरं बहूदकस्य हंसपरमहंसयोः करपात्रं तुरीयातीतस्य गोमुखं अवधूत-
 स्याजगरवृत्तिः । शाटीद्वयं कुटीचकस्य बहूदकस्यैकशाटी हंसस्य खण्डं दिग-
 म्बरं परमहंसस्य एककौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्जातरूपधरत्वं हंसपरम-
 हंसयोरजिनं न त्वन्येषाम् ॥ ३ ॥ कूटीचकबहूदकयोर्देवाच्येन हंसपरमहंसयोर्मन-
 सार्चनं तुरीयातीतावधूतयोः सोहंभावना । कुटीचकबहूदकयोर्मन्त्रजपाधिकारो
 हंसपरमहंसयोर्ध्यानाधिकारस्तुरीयातीतावधूतयोर्न त्वन्याधिकारस्तुरीयाती-
 तावधूतयोर्महावाक्योपदेशाधिकारः परमहंसस्यापि । कुटीचकबहूदकहंसानां

नान्यस्योपदेशाधिकारः । कुटीचकबहुदकयोर्मानुषप्रणवः हंसपरमहंसयोरा-
न्तरप्रणवः तुरीयातीतावधूतयोर्ब्रह्मप्रणवः । कुटीचकबहुदकयोः श्रवणं हंस-
परमहंसयोर्मेननं तुरीयातीतावधूतयोर्निदिध्यासः । सर्वेषामात्मानुसन्धानं
विधिरित्येव सुसुष्ठुः सर्वदा संसारतारकं तारकमनुस्मरन्जीवन्मुक्तो वसेदधि-
कारविशेषेण कैवल्यप्राप्त्युपायमन्विष्येद्यतिरित्युपनिषत् ॥ ४ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु सप्तमोपदेशः ॥ ७ ॥

अथ हैनं भगवन्तं परमेष्ठिनं नारदः पप्रच्छ संसारतारकं प्रसन्नो ब्रूहीति ।
तथेति परमेष्ठी वक्तुमुपचक्रमे ओमिति ब्रूहोति व्यष्टिसमष्टिप्रकारेण ।
का व्यष्टिः का समष्टिः संहारप्रणवः सृष्टिप्रणवश्चान्तर्बहिश्चोभयात्मकत्वाच्चि-
विधो ब्रह्मप्रणवः । अन्तःप्रणवो व्यावहारिकप्रणवः । बाह्यप्रणव आर्षप्रणवः ।
उभयात्मको विराट्प्रणवः । संहारप्रणवो ब्रह्मप्रणव अर्धमात्राप्रणवः । ओ-
मिति ब्रह्म । ओमित्येकाक्षरमन्तःप्रणवं विद्धि । स चाष्टधा भिद्यते । अक्षरो-
कारमकारार्धमात्रानादबिन्दुकलाशक्तिश्चेति । तत्र चत्वार अक्षरश्चायुतावय-
वान्वित उकारः सहस्रावयवान्वितो मकारः शतावयवोपेतोऽर्धमात्राप्रणवो-
ऽनन्तावयवकारः । सगुणो विराट्प्रणवः संहारो निर्गुणप्रणव उभयात्मकोऽप-
त्तिप्रणवो यथाद्भुतो विराट्द्भुतः सुत्रसंहारो विराट्प्रणवः षोडशमात्रात्मकः
पद्मत्रिंशत्तत्वातीतः । षोडशमात्रात्मकत्वं कथमित्युच्यते । अक्षरः प्रथमो-
कारो द्वितीया मकारस्तृतीयार्धमात्रा चतुर्थी नादः पञ्चमी विन्दुः षष्ठी कला
सप्तमी कलातीताष्टमी शान्तिर्नवमी शान्त्यतीता दशमी उन्मन्येकादशी
मनोन्मनी द्वादशी पुरी त्रयोदशी मध्यमा चतुर्दशी पश्यन्ती पञ्चदशी परा ।
षोडशी पुनश्चतुःषष्टिमात्रा प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमासाद्याष्टविंशत्युत्तरमेदमात्रा-
स्वरूपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्वमुपेत्यैकोऽपि ब्रह्मप्रणवः सर्वाधारः परंज्योति-
रेश सर्वेश्वरो विभुः सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः ॥ १ ॥ सर्वाक्षरमयः
कालः सर्वागममयः शिवः । सर्वश्रुत्युत्तमो मृग्यः सकलोपनिषन्मयः ॥ २ ॥
भूतं भव्यं भविष्यद्यच्चिकालोदितमव्ययम् । तदप्योङ्कारमेवायं विद्धि मोक्षप्र-
दायकम् ॥ ३ ॥ तमेवात्मानमित्येतद्ब्रह्मशब्देन वर्णितम् । तदेकममृतमजरम-
नुभूय तथोमिति ॥ ४ ॥ सशरीरं समारोप्य तन्मयत्वं तथोमिति । त्रिशरीरं
तमात्मानं परं ब्रह्म विनिश्चिनु ॥ ५ ॥ परं ब्रह्मानुसंदध्याद्विश्वादीनां क्रमः क्रमात् ।
स्थूलत्वात्स्थूलभुक्त्वाच्च सूक्ष्मत्वात्सूक्ष्मभुक् परम् ॥ ६ ॥ ऐक्यत्वानन्दभोगाच्च

सोऽयमात्मा चतुर्विधः । चतुष्पाज्जागरितः स्थूलः स्थूलप्रज्ञो हि विश्वभुक्
 ॥ ७ ॥ एकोनविंशतिमुखः साष्टाङ्गः सर्वगः प्रभुः । स्थूलभुक् चतुरात्माथ
 विश्वो वैश्वानरः पुमान् ॥ ८ ॥ विश्वजित्प्रथमः पादः स्वप्नस्थानगतः प्रभुः ।
 सूक्ष्मप्रज्ञः स्वतोऽष्टाङ्ग एको नान्यः परंतप ॥ ९ ॥ सूक्ष्मभुक् चतुरात्माथ तैजसो
 भूतराड्यम् । हिरण्यगर्भः स्थूलोऽन्तर्द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १० ॥ कामं
 कामयते यावच्चत्र सुप्तो न कंचन । स्वप्नं पश्यति नैवात्र तत्सुषुप्तमपि स्फुटम्
 ॥ ११ ॥ एकीभूतः सुषुप्तस्थः प्रज्ञानघनवान्सुखी । नित्यानन्दमयोऽप्यात्मा
 सर्वजीवान्तरस्थितः ॥ १२ ॥ तथाप्यानन्दभुक् चेतोमुखः सर्वगतोऽव्ययः ।
 चतुरात्मेश्वरः प्राज्ञस्तृतीयः पादसंज्ञितः ॥ १३ ॥ एष सर्वेश्वरश्चैष सर्वज्ञः
 सूक्ष्मभावनः । एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ ॥ १४ ॥ भूतानां
 त्रयमप्येतत्सर्वोपरमबाधकम् । तत्सुषुप्तं हि यत्स्वप्नं मायामात्रं प्रकीर्ति-
 तम् ॥ १५ ॥ चतुर्थश्चतुरात्मापि सच्चिदेकरसो ह्ययम् । तुरीयावसितत्वाच्च
 एकैकत्वानुसारतः ॥ १६ ॥ ज्ञातानुज्ञात्रननुज्ञातृविकल्पज्ञानसाधनम् । वि-
 कल्पत्रयमत्रापि सुषुप्तं स्वप्नमान्तरम् ॥ १७ ॥ मायामात्रं विदित्वैवं सच्चि-
 देकरसो ह्ययम् । विभक्तो ह्ययमादेशो न स्थूलप्रज्ञमन्वहम् ॥ १८ ॥ न
 सूक्ष्मप्रज्ञमत्यन्तं न प्रज्ञं न कश्चिन्मुने । नैवाप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञमा-
 न्तरम् ॥ १९ ॥ नाप्रज्ञमपि न प्रज्ञाघनं चादृष्टमेव च । तदलक्षणमग्राह्यं
 यद्वावहार्यमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं
 चतुर्थं मन्यन्ते स ब्रह्मप्रणवः स विज्ञेयो नापरस्तुरीयः सर्वत्र भानुवन्मुमुक्षु-
 णामाधारः स्वयंज्योतिर्ब्रह्माकाशः सर्वदा विराजते परंब्रह्मत्वादित्युपनिषत् ॥ २० ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्स्वष्टमोपदेशः ॥ ८ ॥

अथ ब्रह्मस्वरूपं कथमिति नारदः पप्रच्छ । तं होवाच पितामहः किं
 ब्रह्मस्वरूपमिति । अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति ये विदुस्ते पशवो न स्वभाव-
 पशवस्तमेवं ज्ञात्वा विद्वान्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।
 कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् । संयोग
 एषां नत्वात्मभावादात्मा ह्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ १ ॥ ते ध्यानयोगा-
 जुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । यः कारणानि निखिलानि
 ज्ञानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ २ ॥ तमेकस्मिन्निवृत्तं षोडशान्तं शता-
 धारं विंशतिप्रत्यराभिः । अष्टकैः षड्विंशत्स्वरूपैकपाशं त्रिमार्गमेदं द्वितिमित्तैक-

मोहम् ॥ ३ ॥ पञ्चस्रोतोऽङ्गं पञ्चयोन्युग्रवक्त्रं पञ्चप्राणोर्मि पञ्चबुद्ध्यादि-
मूलम् । पञ्चावर्ता पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामघीमः ॥ ४ ॥ सर्वा-
जीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन्हंसो आगम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं
च मत्वा जुष्टस्तत्क्षेनामृतत्वमेति ॥ ५ ॥ उद्गीथमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिन्मयं
स्वप्रतिष्ठाक्षरं च । अत्रान्तरं वेदविदो विदित्वा लीनाः परे ब्रह्मणि तत्परा-
यणाः ॥ ६ ॥ संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ७ ॥
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा द्वेका भोक्तृभोगार्थयुक्ता । अनन्तश्चात्मा
विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्म हेतत् ॥ ८ ॥ क्षरं प्रधानममृताक्षरं
हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः । तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते
विश्वमायानिवृत्तिः ॥ ९ ॥ ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः क्षीणैः क्लेशैर्जन्म-
मृत्युग्रहाणि । तस्याभिध्यानाश्रितयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आत्मकामः
॥ १० ॥ एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म हेतत् ॥ ११ ॥
आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् । य एवं विदित्वा स्वरूपमेवानुचिन्त-
यंस्तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १२ ॥ तस्माद्विराड्भूतं भव्यं
भविष्यद्भवत्यनश्वरस्वरूपम् । अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तो-
र्निहितो गुहायाम् । तमक्रुतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमान-
मीशम् ॥ १३ ॥ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति चेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १४ ॥
अक्षरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न
शोचति ॥ १५ ॥ सर्वस्य धातारमचिन्त्यशक्तिं सर्वांगमान्तार्थविशेषवेद्यम् ।
परात्परं परमं वेदितव्यं सर्वावसाने सकृद्देदितव्यम् ॥ १६ ॥ कविं पुराणं
पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम् । अनादिमध्यान्तमनन्तमव्ययं
शिवाच्युताम्भोरुहगर्भभूधरम् ॥ १७ ॥ स्वेनावृतं सर्वमिदं प्रपञ्चं पञ्चात्मकं
पञ्चसु वर्तमानम् । पञ्चीकृतानन्तभवप्रपञ्चं पञ्चीकृतस्वावयवैरसंवृतम् । परा-
त्परं यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवम् ॥ १८ ॥ नाविरतो
दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः । नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्
॥ १९ ॥ नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं न स्थूलं नास्थूलं न ज्ञानं नाज्ञानं नोभयतः-

प्रज्ञमब्राह्मणमन्यवहार्यं स्वान्तःस्थितः स्वयमेवेति य एवं वेद स मुक्तो भवति स मुक्तो भवतीत्याह भगवान्पितामहः । स्वस्वरूपज्ञः परिव्राद परिव्राडेकाकी चरति भयत्रस्तसारङ्गवत्तिष्ठति । गमनविरोधं न करोति । स्वशरीरव्यतिरिक्तं सर्वं त्यक्त्वा षट्पदवृत्त्या स्थित्वा स्वरूपानुसन्धानं कुर्वन्सर्वमनन्यबुद्ध्या स्वसिन्धेव मुक्तो भवति । स परिव्राद सर्वकियाकारकनिवर्तको गुरुशिष्यशास्त्रादिविनिर्मुक्तः सर्वसंसारं विसृज्य चामोहितः परिव्राद कथं निर्धनिकः सुखी धनवान्ज्ञानाज्ञानोभयातीतः सुखदुःखातीतः स्वयंज्योतिः प्रकाशः सर्ववेद्यः सर्वज्ञः सर्वसिद्धिदः सर्वेश्वरः सोऽहमिति । तद्विष्णोः परमं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः । सूर्यो न तत्र भाति न शशाङ्कोऽपि न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते तत्कैवल्यमित्युपनिषत् ॥ २० ॥

इति नारदब्राजकोपनिषत्सु नवमोपदेशः ॥ ९ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्समाप्ता ॥ ४५ ॥

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् ॥ ४६ ॥

(शुक्लयजुर्वेदीया)

योगज्ञानैकसंसिद्धशिवतत्त्वतयोज्ज्वलम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं परंब्रह्म भवाम्यहम् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्यलोकं जगाम तं गत्वोवाच । भगवन् किं देहः किं प्राणः किं कारणं किमात्मेति । स होवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि । किंतु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं दृष्ट्वा तप्तायःपिण्डवदेकं भिन्नवदवभासते । तद्भासकं किमिति चेदुच्यते । सच्छब्दवाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म । ब्रह्मणोऽव्यक्तम् । अव्यक्तान्महत् । महतोऽहंकारः । अहंकारात्पञ्च तन्मात्राणि । पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहांभूतानि । पञ्चमहामूलेभ्योऽखिलं जगत् ॥ तदखिलं किमिति । भूतविकारविभागादिरिति । एकस्मिन्पिण्डे कथं भूतविकारविभाग इति । तत्तत्कार्यकारणभेदरूपेणांशतत्त्ववाचकवाच्यस्थानभेदविषयदेवताकोशभेदविभागा भवन्ति । अथाकाशो-

ऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः । वायुः समानोदानव्यानापानप्राणाः ।
 वह्निः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाप्राणानि । आपः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । पृथिवी
 वाक्पाणिपादपायूपस्थाः । ज्ञानसंकल्पनिश्चयानुसंधानाभिमाना आकाश-
 कार्यान्तःकरणविषयाः । समीकरणोन्नयनग्रहणश्रवणोच्छ्वासा वायुकार्यप्राणा-
 दिविषयाः । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा अग्निकार्यज्ञानेन्द्रियविषया अबाधिताः ।
 वचनादानगमनविसर्गानन्दाः पृथिवीकार्यकर्मेन्द्रियविषयाः । कर्मज्ञानेन्द्रिय-
 विषयेषु प्राणतन्मात्रविषया अन्तर्भूताः । मनोबुद्ध्योश्चित्ताहंकारौ चान्तर्भूतौ ।
 अवकाशविधूतदर्शनपिण्डीकरणधारणाः सूक्ष्मतमा जैवतन्मात्रविषयाः । एवं
 द्वादशाङ्गानि आध्यात्मिकान्याधिभौतिकान्याधिदैविकानि अत्र निशाकर-
 चतुर्मुखदिग्वातार्कवर्णश्वयम्नीन्द्रोपेन्द्रप्रजापतियमा इत्यक्षाधिदेवतारूपैर्द्वाद-
 शनाड्यन्तःप्रवृत्ताः प्राणा एवाङ्गानि अङ्गज्ञानं तदेव ज्ञातेति । अथ व्योमा-
 निलानलजलान्नानां पञ्चीकरणमिति । ज्ञातृत्वं समानयोगेन श्रोत्रद्वारा शब्द-
 गुणो वागधिष्ठित आकाशे तिष्ठति आकाशस्तिष्ठति । मनोव्यानयोगेन
 त्वग्द्वारा स्पर्शगुणः पाण्यधिष्ठितो वायौ तिष्ठति वायुस्तिष्ठति । बुद्धिरुदान-
 योगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादाधिष्ठितोऽग्नौ तिष्ठत्यग्निस्तिष्ठति । चित्तमपान-
 योगेन जिह्वाद्वारा रसगुण उपस्थाधिष्ठितोऽप्सु तिष्ठत्यापस्तिष्ठन्ति । अहंकारः
 प्राणयोगेन घ्राणद्वारा गन्धगुणो गुदाधिष्ठितः पृथिव्यां तिष्ठति पृथिवी
 तिष्ठति य एवं वेद । अत्रैते श्लोका भवन्ति—पृथग्भूते षोडश कलाः स्वार्थ-
 भागान्परान्क्रमात् । अन्तःकरणव्यानाक्षिरसपायुनभः क्रमात् ॥ १ ॥
 मुख्यात्पूर्वोत्तरैर्भागैर्भूते भूते चतुश्चतुः । पूर्वमाकाशमाश्रित्य पृथिव्यादिषु
 संस्थिताः ॥ २ ॥ मुख्यादूर्ध्वं परा ज्ञेया न परानुत्तरान्विदुः । एवमंशो
 ह्यभूत्तस्मात्तेभ्यश्चांशो ह्यभूत्तथा ॥ ३ ॥ तस्मादन्योन्यमाश्रित्य ह्योतं
 प्रोतमनुक्रमात् । पञ्चभूतमयी भूमिः सा चेतनसमन्विता ॥ ४ ॥ तत
 ओषधयोऽन्नं च ततः पिण्डाश्चतुर्विधाः रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि
 धातवः ॥ ५ ॥ केचित्तद्योगतः पिण्डा भूतेभ्यः संभवाः क्वचित् । तस्मिन्नन्न-
 मयः पिण्डो नाभिमण्डलसंस्थितः ॥ ६ ॥ अस्य मध्येऽस्ति हृदयं सनालं
 पद्मकोशवत् । सत्त्वान्तर्वर्तिनो देवाः कर्त्रहंकारचेतनाः ॥ ७ ॥ अस्य बीजं
 तमःपिण्डं मोहरूपं जडं घनम् । वर्तते कण्ठमाश्रित्य मिश्रीभूतमिदं जगत्
 ॥ ८ ॥ प्रत्यगानन्दरूपात्मा मूर्ध्नि स्थाने परे पदे । अनन्तशक्ति-

संयुक्तो जगद्रूपेण भासते ॥ ९ ॥ सर्वत्र वर्तते जाग्रत्स्वप्नं जाग्रति वर्तते ।
 सुषुप्तं च तुरीयं च नान्यावस्थासु कुत्रचित् ॥ १० ॥ सर्वदेशेष्वनुस्यू-
 तश्चैतद्रूपः शिवात्मकः । यथा महाफले सर्वे रसाः सर्वप्रवर्तकाः ॥ ११ ॥
 तथैवान्नमये कोशे कोशास्तिष्ठन्ति चान्तरे । यथा कोशस्तथा जीवो यथा
 जीवस्तथा शिवः ॥ १२ ॥ सविकारस्तथा जीवो निर्विकारस्तथा शिवः ।
 कोशास्तस्य विकारास्ते ह्यवस्थासु प्रवर्तकाः ॥ १३ ॥ यथा रसाशये
 केनं मथनादेव जायते । मनोनिर्मथनादेव विकल्पा बहवस्तथा ॥ १४ ॥
 कर्मणा वर्तते कर्मां तत्त्यागाच्छान्तिमाप्नुयात् । अयने दक्षिणे प्राप्ते प्रपञ्चा-
 भिमुखं गतः ॥ १५ ॥ अहंकाराभिमानेन जीवः स्याद्वि सदाशिवः । स
 चाविवेकप्रकृतिसङ्गत्या तत्र मुह्यते ॥ १६ ॥ नानायोनिशतं गत्वा शेतेऽसौ
 वासनावशात् । विमोक्षात्संचरत्येव मत्स्यः कूलद्वयं यथा ॥ १७ ॥ ततः
 कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः । उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात्स्थानान्तरं
 क्रमात् ॥ १८ ॥ मूर्ध्न्याधायैवात्मनः प्राणान्योगाभ्यासं स्थितश्चरन् । योगा-
 त्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते ॥ १९ ॥ योगज्ञानपरो नित्यं स योगी
 न प्रणश्यति । विकारस्थं शिवं पश्येद्विकारश्च शिवे न तु ॥ २० ॥ योग-
 प्रकाशकं योगैर्ध्यायेच्चानन्यभावनः । योगज्ञाने न विद्येते तस्य भावो न
 सिद्ध्यति ॥ २१ ॥ तस्मादभ्यासयोगेन मनःप्राणान्निरोधयेत् । योगी निश्चित-
 धारेण क्षुरेणैव निकृन्तयेत् ॥ २२ ॥ शिखा ज्ञानमयी वृत्तिर्यमाद्यष्टाङ्ग-
 साधनैः । ज्ञानयोगः कर्मयोग इति योगो द्विधा मतः ॥ २३ ॥ क्रियायोगम-
 येदानीं शृणु ब्राह्मणसत्तम । अव्याकुलस्य चित्तस्य बन्धनं विषये क्वचित्
 ॥ २४ ॥ यत्संयोगो द्विजश्रेष्ठ स च द्वैविध्यमश्रुते । कर्म कर्तव्यमित्येव विहि-
 तेष्वेव कर्मसु ॥ २५ ॥ बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते । यतचित्तस्य
 सततमर्थं श्रेयसि बन्धनम् ॥ २६ ॥ ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः
 शिवः । यस्योक्तलक्षणे योगे द्विविधेऽप्यव्ययं मनः ॥ २७ ॥ स याति परमं
 श्रेयो मोक्षलक्षणमञ्जसा । देहेन्द्रियेषु धैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः ॥ २८ ॥
 अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः । सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासन-
 मुत्तमम् ॥ २९ ॥ जगत्सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः । चित्तस्यान्तर्भुखी-
 भावः प्रत्याहारस्तु सत्तम ॥ ३० ॥ चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं
 विदुः । सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते ॥ ३१ ॥ ध्यानस्य

विस्मृतिः सम्यक्समाधिरभिधीयते । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ॥ ३२ ॥ क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश । तपःसन्तुष्टिरास्तिक्यं दानमाराधनं हरेः ॥ ३३ ॥ वेदान्तश्रवणं चैव हीमतिश्च जपो व्रतम् ॥ इति । आसनानि तदङ्गानि स्वस्तिकादीनि वै द्विज ॥ ३४ ॥ वर्ण्यन्ते स्वस्तिकं पादतलयोरुभयोरपि । पूर्वोत्तरे जानुनी द्वे कृत्वासनमुदीरितम् ॥ ३५ ॥ सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् । दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखं यथा ॥ ३६ ॥ एकं चरणमन्यस्मिन्नूरावारोप्य निश्चलः । आस्ते यदि-दमेनोन्नं वीरासनमुदीरितम् ॥ ३७ ॥ गुदं नियम्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः । योगासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः ॥ ३८ ॥ ऊर्वोरुपरि वै धत्ते यदा पादतले उमे । पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम् ॥ ३९ ॥ पद्मासनं सुसंस्थाप्य तदङ्गुष्ठद्वयं पुनः । व्युत्क्रमेणैव हस्ताभ्यां बद्धपद्मासनं भवेत् ॥ ४० ॥ पद्मासनं सुसंस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ । निवेश्य भूमावा-तिष्ठेद्योमस्थः कुक्कुटासनः ॥ ४१ ॥ कुक्कुटासनबन्धस्थो दोभ्यां संवध्य कन्धरम् । शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम् ॥ ४२ ॥ पादाङ्गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि । धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम् ॥ ४३ ॥ सीवनीं गुल्फदेशाभ्यां निपीड्य व्युत्क्रमेण तु । प्रसार्य जानुनोर्हस्तावासनं सिंहरूपकम् ॥ ४४ ॥ गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्युभयपार्श्वयोः । निवेश्य पादौ हस्ताभ्यां बद्धा भद्रासनं भवेत् ॥ ४५ ॥ सीवनीपार्श्वमुभयं गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण तु । निपीड्यासनमेतच्च मुक्तासनमुदीरितम् ॥ ४६ ॥ अवष्टभ्य धरां सम्यक्तलाभ्यां हस्तयोर्द्वयोः । कर्पूरौ नाभिपार्श्वे तु स्थापयित्वा मयूर-वत् ॥ ४७ ॥ समुन्नतशिरःपादं मयूरासनमिष्यते । वामोरुमूले दक्षाङ्गिं जान्वोर्वेष्टितपाणिना ॥ ४८ ॥ वामेन वामाङ्गुष्ठं तु गृहीतं मत्स्यपीठकम् । योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम् ॥ ४९ ॥ ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम् । प्रसार्य भुवि पादौ तु दोभ्यामङ्गुष्ठमादरात् ॥ ५० ॥ जानूपरि ललाटं तु पश्चिमं तानमुच्यते । येन केन प्रकारेण सुखं धार्यं च जायते ॥ ५१ ॥ तत्सुखासनमित्युक्तमशक्तस्तत्समाचरेत् । आसनं विजितं येन जितं तेन जगन्नयम् ॥ ५२ ॥ यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयतः । नाडी-शुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत् ॥ ५३ ॥ देहमान स्वाङ्गुलिभिः पण-

चत्यङ्गुलायतम् । प्राणः शरीरादधिको द्वादशाङ्गुलमानतः ॥ ५४ ॥ देहस्थम-
 निलं देहसमुद्भूतेन वह्निना । न्यूनं समं वा योगेन कुर्वन्ब्रह्मविदिष्यते ॥ ५५ ॥
 देहमध्ये शिखिस्थानं तसजाम्बूनदप्रभम् । त्रिकोणं द्विपदामन्यच्चतुरस्रं चतु-
 ष्षदम् ॥ ५६ ॥ वृत्तं विहङ्गमानां तु षडस्रं सर्पजन्मनाम् । अष्टास्रं स्वेदजानां
 तु तस्मिन्दीपवदुज्ज्वलम् । कन्दस्थानं मनुष्याणां देहमध्यं नवाङ्गुलम् ।
 चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् ॥ ५७ ॥ अण्डाकृतिं तिरश्चां च द्विजानां
 च चतुष्पदाम् । तुन्दमध्ये तदिष्टं वै तन्मध्ये नाभिरिष्यते ॥ ५८ ॥ तत्र
 चक्रं द्वादशारं तेषु विष्ण्वादिमूर्तयः । अहं अत्र स्थितश्चक्रं आमयामि
 स्वमायया ॥ ५९ ॥ अरेषु भ्रमते जीवः क्रमेण द्विजसत्तम । तन्तुपञ्जरमध्य-
 स्था यथा भ्रमति लूतिका ॥ ६० ॥ प्राणाविरूढश्चरति जीवस्तेन विना नहि ।
 तस्योर्ध्वं कुण्डलीस्थानं नासेस्तिर्यग्धोर्ध्वतः ॥ ६१ ॥ अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा
 कुण्डलीकृता । यथावद्वायुसारं च ज्वलनादि च नित्यशः ॥ ६२ ॥ परितः कन्द-
 पार्श्वे तु निरुध्यैव सदा स्थिता । मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा ॥ ६३ ॥
 योगकालेन मरुता साग्निना बोधिता सती । स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा
 महोज्ज्वला ॥ ६४ ॥ अपानाद्वयङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढस्य तावता । देहमध्यं
 मनुष्याणां हन्मध्ये तु चतुष्पदाम् ॥ ६५ ॥ इतरेषां तुन्दमध्ये प्राणापानस-
 मायुताः । चतुष्प्रकारव्ययुते देहमध्ये सुषुम्नया ॥ ६६ ॥ कन्दमध्ये स्थिता
 नाडी सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता । पञ्चसूत्रप्रतीकाशा ऋजुर्ध्वप्रवर्तिनी ॥ ६७ ॥
 ब्रह्मणो विवरं यावद्विद्युदाभासनालकम् । वैष्णवी ब्रह्मनाडी च निर्वाणप्राप्ति-
 पद्धतिः ॥ ६८ ॥ इडा च पिङ्गला चैव तस्याः सव्येतरौ स्थिते । इडा समुत्थिता
 कन्दाद्रामनासापुटावधि ॥ ६९ ॥ पिङ्गला चोत्थिता तस्माद्दक्षनासापुटावधि ।
 गान्धारी हस्तिजिह्वा च द्वे चान्ये नाडिके स्थिते ॥ ७० ॥ पुरतः पृष्ठतस्तस्य
 वामेतरद्वयौ प्रति । पूषायशस्त्रिणीनाड्यौ तस्मादेव समुत्थिते ॥ ७१ ॥
 सव्येतरश्चतुर्वधौ पायुमूलादलम्बुसा । अधोगता शुभा नाडी मेढान्तावधि-
 रायता ॥ ७२ ॥ पादाङ्गुष्ठावधिः कन्दादधोयाता च कौशिकी । दशप्रकार-
 मूतास्ताः कथिताः कन्दसंभवाः ॥ ७३ ॥ तन्मूला बहवो नाड्यः स्थूल-
 सूक्ष्माश्च नाडिकाः । द्वासप्ततिसहस्राणि स्थूलाः सूक्ष्माश्च नाड्यः ॥ ७४ ॥
 मंख्यातुं नैव शक्यन्ते स्थूलमूलाः पृथग्विधाः । यथाश्चत्थदले सूक्ष्माः

स्थूलाश्च विततास्तथा ॥ ७५ ॥ प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।
 नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ७६ ॥ चरन्ति दशनाडीषु दश
 प्राणादिवायवः । प्राणादिपञ्चकं तेषु प्रधानं तत्र च द्वयम् ॥ ७७ ॥ प्राण
 एवाथवा ज्येष्ठो जीवात्मानं विभर्ति यः । आस्यनासिकयोर्मध्यं हृदयं नाभि-
 मण्डलम् ॥ ७८ ॥ पादाङ्गुष्ठमिति प्राणस्थानानि द्विजसत्तम । अपानश्चरति
 ब्रह्मन्मुदमेढोरुजानुषु ॥ ७९ ॥ समानः सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी व्यवस्थितः ।
 उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि ॥ ८० ॥ व्यानः श्रोत्रोरुक्त्वां च
 गुल्फस्कन्धगलेषु च । नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ॥ ८१ ॥
 तुन्दस्थजलमश्रं च रसादीनि समीकृतम् । तुन्दमध्यगतः प्राणस्तानि
 कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥ ८२ ॥ इत्यादिचेष्टनं प्राणः करोति च पृथक्स्थितम् ।
 अपानवायुर्मूत्रादेः करोति च विसर्जनम् ॥ ८३ ॥ प्राणापानादिचेष्टादि
 क्रियते व्यानवायुना । उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता ॥ ८४ ॥
 पोषणादिशरीरस्य समानः कुरुते सदा । उद्गारादिक्रियो नागः कूर्मोऽक्षादि-
 निमीलनः ॥ ८५ ॥ कृकरः क्षुतयोः कर्ता दत्तो निद्रादिकर्मकृत् । मृतगात्रस्य
 शोभादेर्धनंजय उदाहृतः ॥ ८६ ॥ नाडिभेदं मरुद्भेदं मरुतां स्थानमेव च ।
 चेष्टाश्च विविधास्तेषां ज्ञात्वैव द्विजसत्तम ॥ ८७ ॥ शुद्धौ यतेत नाडीनां
 पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः । विविक्तदेशमासाद्य सर्वसंबन्धवर्जितः ॥ ८८ ॥ योगाङ्ग-
 द्रव्यसंपूर्णं तत्र दारुमये शुभे । आसने कल्पिते दर्भकुशकृष्णाजिनादिभिः
 ॥ ८९ ॥ तावदासनमुत्सेधे तावद्भूयसमायते । उपविश्यासनं सम्यक्स्वस्तिकादि
 यथारुचि ॥ ९० ॥ बद्ध्वा प्राणासनं विप्रो ऋजुकायः समाहितः । नासा-
 ग्रन्यस्तनयनो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ॥ ९१ ॥ रसनां तालुनि न्यस्य
 स्वस्थचित्तो निरामयः । आकुञ्चितशिरः किञ्चिन्निवध्नन्योगमुद्रया ॥ ९२ ॥
 हस्तौ यथोक्तविधिना प्राणायामं समाचरेत् । रेचनं पूरणं वायोः शोधनं
 रेचनं तथा ॥ ९३ ॥ चतुर्भिः क्लेशनं वायोः प्राणायाम उदीर्यते । हस्तेन
 दक्षिणेनैव पीडयेन्नासिकांपुटम् ॥ ९४ ॥ शनैः शनैरथ बहिः प्रक्षिपेत्पिङ्ग-
 लानिलम् । इडया वायुमापूर्य ब्रह्मन्षोडशमात्रया ॥ ९५ ॥ पूरितं कुम्भ-
 येत्पश्चाच्चतुःषष्टया तु मात्रया । द्वात्रिंशन्मात्रया सम्यग्प्रेचयेत्पिङ्गलानिलम्
 ॥ ९६ ॥ एवं पुनः पुनः कार्यं न्युत्क्रमानुक्रमेण तु । संपूर्णकुम्भवदेहं कुम्भ-

येन्मातरिश्वना ॥ ९७ ॥ पूरणाज्ञादयः सर्वाः पूर्यन्ते मातरिश्वना । एवं कृते
 सति ब्रह्मंश्चरन्ति दश वायवः ॥ ९८ ॥ हृदयाम्भोरुहं चापि व्याकोचं भवति
 स्फुटम् । तत्र पश्येत्परात्मानं वासुदेवमकल्मषम् ॥ ९९ ॥ प्रातर्मध्यन्दिने
 सायमर्धरात्रे च कुम्भकान् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ १०० ॥
 एकाहमात्रं कुर्वाणः सर्वप्रापैः प्रमुच्यते । संवत्सरत्रयादूर्ध्वं प्राणायामपरो नरः
 ॥ १०१ ॥ योगसिद्धो भवेद्योगी वायुजिद्विजितेन्द्रियः । अल्पाशीं स्वल्पनिद्रां
 तेजस्वी बलवान्भवेत् ॥ १०२ ॥ अपमृत्युमतिक्रम्य दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
 प्रस्वेदजननं यस्य प्राणायामस्तु सोऽधमः ॥ १०३ ॥ कम्पनं वपुषो यस्य
 प्राणायामेषु मध्यमः । उत्थानं वपुषो यस्य स उत्तम उदाहृतः ॥ १०४ ॥
 अधमे व्याधिपापानां नाशः स्यान्मध्यमे पुनः । पापरोगमहान्याधिनाशः
 स्यादुत्तमे पुनः ॥ १०५ ॥ अल्पमूत्रोऽल्पविष्टश्च लघुदेहो मिताशनः । पट्विन्द्रियः
 पटुमतिः कालत्रयविदात्मवान् ॥ १०६ ॥ रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भीकरणमेव
 यः । करोति त्रिषु कालेषु नैव तस्यास्ति दुर्लभम् ॥ १०७ ॥ नाभिकन्दे च
 नासाग्रे पादाङ्गुष्ठे च यत्नवान् । धारयेन्मनसा प्राणान्सन्ध्याकालेषु वा सदा
 ॥ १०८ ॥ सर्वरोगैर्विनिर्मुक्तो जीवेद्योगी गतक्लमः । कुक्षिरोगविनाशः स्यान्ना-
 भिकन्देषु धारणात् ॥ १०९ ॥ नासाग्रे धारणाद्दीर्घमायुः स्याद्देहलाघवम् ।
 ब्राह्मे मुहूर्ते संप्राप्ते वायुमाकृष्य जिह्वया ॥ ११० ॥ पिबतस्त्रिषु मासेषु
 वाक्सिद्धिर्महती भवेत् । अभ्यासतश्च षण्मासान्महारोगविनाशनम् ॥ १११ ॥
 यत्र यत्र धृतो वायुरङ्गे रोगादिदूषिते । धारणादेव मरुतस्तत्तदारोग्यमश्नुते
 ॥ ११२ ॥ मनसो धारणादेव पवनो धारितो भवेत् । मनसः स्थापने हेतु-
 रूच्यते द्विजपुङ्गव ॥ ११३ ॥ करणानि समाहृत्य विषयेभ्यः समाहितः । अपान-
 मूर्ध्वमाकृष्येदुदरोपरि धारयेत् ॥ ११४ ॥ बध्नन्कराभ्यां श्रोत्रादिकरणानि
 यथातथम् । युञ्जानस्य यथोक्तेन वर्त्मना स्ववशं मनः ॥ ११५ ॥ मनोवशा-
 त्प्राणवायुः स्ववशे स्थाप्यते सदा । नासिकापुटयोः प्राणः पर्यायेण प्रवर्तते
 ॥ ११६ ॥ तिस्रश्च नाडिकास्तासु स यावन्तं चरत्ययम् । शङ्किनीविवरे याम्ये
 प्राणः प्राणमृतां सताम् ॥ ११७ ॥ तावन्तं च पुनः कालं सौम्ये चरति सं-
 ततम् । इत्थं क्रमेण चरता वायुना वायुजिन्नरः ॥ ११८ ॥ अहश्च रात्रिं पक्षं
 च मासमृत्त्वयनादिकम् । अन्तर्मुखो विजानीयात्कालभेदं समाहितः ॥ ११९ ॥

अङ्गुष्ठादिस्वावयवस्फुरणादशनेरपि । अरिष्टैर्जोवितस्यापि जानीयात्क्षयमात्मनः
 ॥ १२० ॥ ज्ञात्वा यतेत कैवल्यप्राप्तये योगवित्तमः । पादाङ्गुष्ठे कराङ्गुष्ठे
 स्फुरणं यस्य न श्रुतिः ॥ १२१ ॥ तस्य संवत्सरादूर्ध्वं जीवितस्य क्षयो भवेत् ।
 मणिवन्धे तथा गुल्फे स्फुरणं यस्य नश्यति ॥ १२२ ॥ षण्मासावधिरेतस्य
 जीवितस्य स्थितिर्भवेत् । कूर्परे स्फुरणं यस्य तस्य त्रैमासिकी स्थितिः ॥ १२३ ॥
 कुक्षिमेहनपार्श्वे च स्फुरणानुपलम्भने । मासावधिर्जोवितस्य तु दर्शने तदर्धस्य
 ॥ १२४ ॥ आश्रिते जठरद्वारे दिनानि दश जीवितम् । ज्योतिः खद्योतवद्यस्य तदर्धं
 तस्य जीवितम् ॥ १२५ ॥ जिह्वाग्रादर्शने त्रीणि दिनानि स्थितिरात्मनः । ज्वालाया
 दर्शने मृत्युर्द्विदिने भवति ध्रुवम् ॥ १२६ ॥ एवमादीन्यरिष्टानि दृष्टायुःक्षयका-
 रणम् । निःश्रेयसाय युञ्जीत जपध्यानपरायणः ॥ १२७ ॥ मनसा परमात्मानं
 ध्यात्वा तद्रूपतामियात् । यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम् ॥ १२८ ॥
 स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारा स उच्यते । पादाङ्गुष्ठं तथा गुल्फं जङ्घामध्यं
 तथैव च ॥ १२९ ॥ मध्यमूर्ध्वोश्च मूलं च पायुर्हृदयमेव च । मेहनं देहमध्यं च
 नाभिं च गलकूर्परम् ॥ १३० ॥ तालुमूलं च मूलं च घ्राणस्याक्षणोश्च मण्डलम् ।
 सुवोर्मध्यं ललाटं च मूलमूर्ध्वं च जानुनी ॥ १३१ ॥ मूलं च करयोर्मूलं महा-
 न्येतानि वै द्विज । पञ्चभूतमये देहे भूतेष्वेतेषु पञ्चसु ॥ १३२ ॥ मनसो
 धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः । धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम्
 ॥ १३३ ॥ आजानुपादपर्यन्तं पृथिवीस्थानमिष्यते । पित्तला चतुरस्रा च
 वसुधा वज्रलाञ्छिता ॥ १३४ ॥ सप्तैव्या पञ्च घटिकास्तत्रारोप्य प्रभञ्जनम् ।
 आ जानुकटिपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ १३५ ॥ अर्धचन्द्रसमाकारं
 श्वेतमर्जुनलाञ्छितम् । सप्तैव्यमम्भः श्वसनमारोप्य दश नाडिकाः ॥ १३६ ॥
 आ देहमध्यकट्यन्तमग्निस्थानमुदाहृतम् । तत्र सिन्दूरवर्णोऽग्निर्ज्वलनं दश पञ्च
 च ॥ १३७ ॥ सप्तैव्यो नाडिकाः प्राणं कृत्वा कुम्भे तथेरितम् । नामैरुपरि
 नासान्तं वायुस्थानं तु तत्र वै ॥ १३८ ॥ वेदिकाकारवद्धूत्रो बलवान्भूतमा-
 रुतः । सप्तैव्यः कुम्भकेनैव प्राणमारोप्य मारुतम् ॥ १३९ ॥ घटिका विंशति-
 स्तस्माद्घ्राणाद्ब्रह्मविलावधि । व्योमस्थानं नभस्तत्र मित्राञ्जनसमप्रभम्
 ॥ १४० ॥ व्योम्नि मारुतमारोप्य कुम्भकेनैव यत्नवान् । पृथिव्यंशे तु देहस्य
 चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ १४१ ॥ अनिरुद्धं हरिं योगी यतेत भवमुक्तये ।
 अवंशे पूरयेद्योगी नारायणमुदग्रधीः ॥ १४२ ॥ प्रद्युम्नमग्नौ वाय्वंशे संकर्षण-

मतः परम् । व्योमांशे परमात्मानं वासुदेवं सदा स्मरेत् ॥ १४३ ॥ अचिरा-
 देव तत्प्राप्तिर्युञ्जानस्य न संशयः । बद्धा योगासनं पूर्वं हृद्देशे हृदयाजलिः
 ॥ १४४ ॥ नासाग्रन्यस्तनयनो जिह्वां कृत्वा च तालुनि । दन्तैर्दन्तानसंस्पृश्य
 ऊर्ध्वकायः समाहितः ॥ १४५ ॥ संयमेच्चन्द्रियग्राममात्मबुद्धया विशुद्धया ।
 चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मनः ॥ १४६ ॥ स्वरूपव्याप्तरूपस्य ध्यानं
 कैवल्यसिद्धिदम् । यममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत्कुम्भकेन यः ॥ १४७ ॥ सप्त-
 जन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति योगिनः । नाभिकन्दात्समारभ्य यावद्बुद्धय-
 गोचरम् ॥ १४८ ॥ जाग्रद्वृत्तिं विजानीयात्कण्ठस्थं स्वप्नवर्तनम् । सुषुप्तं तालु-
 मध्यस्थं तुर्यं भ्रूमध्यसंस्थितम् ॥ १४९ ॥ तुर्यातीतं परं ब्रह्म ब्रह्मरन्ध्रे तु
 लक्षयेत् । जाग्रद्वृत्तिं समारभ्य यावद्ब्रह्मविलान्तरम् ॥ १५० ॥ तत्रात्मायं
 तुरीयस्य तुर्यान्ते विष्णुरुच्यते । ध्यानेनैव समायुक्तो व्योम्नि चात्यन्तनिर्मले
 ॥ १५१ ॥ सूर्यकोटिद्युतिरथं नित्योदितमधोक्षजम् । हृदयाम्बुरुहासीनं
 ध्यायेद्वा विश्वरूपिणम् ॥ १५२ ॥ अनेकाकारखचितमनेकवदनान्वितम् । अनेक-
 भुजसंयुक्तमनेकायुधमण्डितम् ॥ १५३ ॥ नानावर्णधरं देवं शान्तमुग्रमुदायु-
 धम् । अनेकनयनाकीर्णं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १५४ ॥ ध्यायतो योगिनः
 सर्वमनोवृत्तिर्विनश्यति । हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं चैतन्यज्योतिरन्ययम् ॥ १५५ ॥
 कदम्बगोलकाकारं तुर्यातीतं परात्परम् । अनन्तमानन्दमयं चिन्मयं भास्करं
 विभुम् ॥ १५६ ॥ निवातदीपसदृशमकृत्रिममणिप्रभम् । ध्यायतो योगिनस्तस्य
 मुक्तिः करतले स्थिता ॥ १५७ ॥ विश्वरूपस्य देवस्य रूपं यत्किञ्चिदेव हि ।
 स्थवीयः सूक्ष्ममन्यद्वा पश्यन्हृदयपङ्कजे ॥ १५८ ॥ ध्यायतो योगिनो यस्तु
 साक्षादेव प्रकाशते । अणिमादिकलं चैव सुखेनैवोपजायते ॥ १५९ ॥ जीवा-
 त्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि । अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः
 ॥ १६० ॥ समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः । ब्रह्म संपद्यते योगी न
 भूयः संसृतिं व्रजेत् ॥ १६१ ॥ एवं विशोध्य तत्त्वानि योगी निःस्पृहचेतसा ।
 यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ १६२ ॥ ग्राह्याभावे मनः
 प्राणो निश्चयज्ञानसंयुतः । शुद्धसत्त्वे परे लीनो जीवः सैन्धवपिण्डवत्
 ॥ १६३ ॥ मोहजालकसंघातो विश्वं पश्यति स्वप्नवत् । सुषुप्तिवद्यश्चरति
 स्वभावपरिनिश्चलः ॥ १६४ ॥ निर्वाणपदमाश्रित्य योगी कैवल्यमश्नुत इत्यु-
 पनिषत् ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति शुकुयजुर्वेदीयत्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥ ४६ ॥

सीतोपनिषद् ॥ ४७ ॥

३३७

सीतोपनिषद् ॥ ४७ ॥

(आथर्वणीया)

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यन्नावसाधनम् ।

तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

देवा इ वै प्रजापतिमब्रुवन्का सीता किं रूपमिति । स होवाच प्रजापतिः सा सीतेति । मूलप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिः स्मृता । प्रणवप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिरुच्यते । सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी भवेत् । विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते । सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कीर्त्यते । तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः ॥ १ ॥ ईकाररूपिणी सोमाश्मृतावयवदिव्यालंकारस्त्रयौक्तिकाद्याभरणालंकृता महामायाऽन्यक्तरूपिणी व्यक्ता भवति । प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना उद्गावनकरी सारिमिका, द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना, तृतीया ईकाररूपिणी अन्यक्तस्वरूपा भवतीति सीतेत्युदाहरन्ति । शौनकीये—श्रीरामसाध्विष्यवशाज्जगदानन्दकारिणी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् । सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता । प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन इति । अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च । सा सर्ववेदमयी सर्वदेवमयी सर्वलोकमयी सर्वकीर्तिमयी सर्वधर्ममयी सर्वाधारकार्यकारणमयी महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका ब्रह्मस्थावरात्मिका तद्गुणकर्मविभागमेदाच्छरीररूपा देवर्षिमनुष्यगन्धर्वरूपा असुरराक्षसभूतप्रेतपिशाचभूतादिभूतशरीररूपा भूतेन्द्रियमनःप्राणरूपेति च विज्ञायते ॥२॥ सा देवी त्रिविधा भवति—शक्त्यासनेच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति । इच्छाशक्तिस्त्रिविधा भवति—श्रीभूमिनीलात्मिका भद्ररूपिणी प्रभावरूपिणी सोमसूर्याग्निरूपा भवति । सोमात्मिका ओषधीनां प्रभवति कल्पवृक्षपुष्पफललतागुल्मात्मिका औषधमेषज्जात्मिका अमृतरूपा देवानां महत्सोमफलप्रदा अमृतेन तृप्तिं जनयन्ती देवानामन्नेन पशूनां तृणेन तत्तज्जीवानां सूर्यादिसकलभुवनप्रकाशिनी दिवा च रात्रिः कालकलानिमेषमारभ्य घटिकाष्टयामदिवस(वार)रात्रिभेदेन पक्षमासत्र्वयनसंवत्सरभेदेन मनुष्याणां शतायुः-

कल्पनया प्रकाशमाना चिरक्षिप्रव्यपदेशेन निमेषमारभ्य परार्धपर्यन्तं काल-
चक्रं जगच्चक्रमित्यादिप्रकारेण चक्रवत्परिवर्तमानाः सर्वस्यैतस्यैव कालस्य
विभागविशेषाः प्रकाशरूपाः कालरूपा भवन्ति । अग्निरूपा अन्नपानादि-
प्राणिनां क्षुत्तृष्णात्मिका देवानां मुखरूपा वनौषधीनां शीतोष्णरूपा काष्ठेष्वन्त-
र्बहिश्च नित्यानित्यरूपा भवति ॥ ३ ॥ श्रीदेवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्संक-
ल्पानुगुण्येन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति । श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा
भवतीति विज्ञायते । भूदेवी ससागराम्भःससद्वीपा वसुन्धरा भूरादिचतुर्दश-
भुवनानामाधाराधेया प्रणवात्मिका भवति । नीला च मुखविद्युन्मालिनी
सवौषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति । समस्तभुवनस्याधोभागे
जलाकारात्मिका मण्डूकमयेति भुवनाधारेति विज्ञायते ॥ क्रियाशक्तिस्वरूपं
हरेर्मुखाब्जादः । तन्नादाद्विन्दुः । बिन्दोरोंकारः । ओंकारात्परतो रामवैखान-
सपर्वतः । तत्पर्वते कर्मज्ञानमयीभिर्बहुशाखा भवन्ति ॥ ४ ॥ तत्र त्रयीमयं
शास्त्रमाद्यं सार्वार्थदर्शनम् । ऋग्यजुःसामरूपत्वात्त्रयीति परिकीर्तिता । ...
कार्यसिद्धेन चतुर्धा परिकीर्तिता । ऋचो यजूंषि सामानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा ।
चातुर्होत्रप्रधानत्वाल्लिङ्गादित्रितयं त्रयी । अथर्वाङ्गिरसं रूपं सामऋग्यजुरात्म-
कम् । तथा दिशन्त्याभिचारसामान्येन पृथक्पृथक् । एकविंशतिशाखाया-
मृगवेदः परिकीर्तितः । शतं च नवशाखासु यजुषामेव जन्मनाम् । साज्ञः सहस्र-
शाखाः स्युः पञ्चशाखा अथर्वणः । वैखानसमतस्तस्मिन्नादौ प्रत्यक्षदर्शनम् ।
स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् । कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं
ज्योतिषं छन्द एतानि षडङ्गानि ॥५॥ उपाङ्गमयनं चैव मीमांसान्यायविस्तरः ।
धर्मज्ञसेवितार्थं च वेदवेदोऽधिकं तथा । निबन्धाः सर्वशाखा च समयाचार-
सङ्गतिः । धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तःकरणसंभृतम् । इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च
प्रकीर्तितम् । वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने । आयुर्वेदश्च पञ्चैते
उपवेदाः प्रकीर्तिताः । दण्डो नीतिश्च वार्ता च विद्या वायुजयः परः । एक-
विंशतिभेदोऽयं स्वप्रकाशः प्रकीर्तितः । वैखानसस्रुपेः पूर्वं विष्णोर्वाणी ससुद्र-
वेत् । त्रयीरूपेण संकल्प्य इत्थं देही विजृम्भते । संख्यारूपेण संकल्प्य वैखा-
नस्रुपेः पुरा । उदितो यादृशः पूर्वं तादृशं शृणु मेऽखिलम् ।
शश्वद्ब्रह्ममयं रूपं क्रियाशक्तिरुदाहृता । साक्षाच्छक्तिर्भगवतः स्मरणमात्ररूपा-
विर्भावप्रादुर्भावात्मिका निग्रहानुग्रहरूपा शान्तितेजोरूपा व्यक्तान्यक्त-
कारणचरणसमग्रावयवमुखवर्णभेदाभेदरूपा । भगवत्सहचारिण्यनपायिन्य-

योगचूडामण्युपनिषत् ॥ ४८ ॥

३३९

नवरतसहाश्रयिष्युदितानुदिताकारा निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानु-
ग्रहादिसर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ॥ ६ ॥ इच्छाशक्ति-
स्त्रिविधा प्रलयावस्थायां विश्रमणार्थं भगवतो दक्षिणवक्षःस्थले श्रीवत्सा-
कृतिर्भूत्वा विश्राम्यतीति सा योगशक्तिः । भोगशक्तिर्भोगरूपा कल्पवृक्ष-
कामधेनुचिन्तामणिशङ्खपद्मनिध्यादिनवनिधिसमाश्रिता भगवदुपासकानां
कामनयाऽकामनया वा भक्तियुक्ता नरं नित्यनैमित्तिककर्मभिरग्निहोत्रादिभिर्वा
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिभिर्वालमनष्वपि गोपुर-
प्राकारादिभिर्विमानादिभिः सह भगवद्विग्रहार्चापूजोपकरणैरर्चनैः स्नानादिभिर्वा
पितृपूजादिभिरन्नपानादिभिर्वा भगवत्प्रीत्यर्थमुक्त्वा सर्वं क्रियते ॥ ७ ॥
अथातो वीरशक्तिश्चतुर्भुजाऽभयवरदपद्मधरा किरीटाभरणयुता सर्वदेवैः परि-
वृता कल्पतरुमूले चतुर्भिर्गजै रत्नघटैरमृतजलैरभिषिच्यमाना सर्वदेवतैर्ब्रह्मा-
दिभिर्वन्द्यमाना अणिमाद्यष्टैश्वर्ययुता संमुखे कामधेनुना स्तूयमाना वेदशा-
स्त्रादिभिः स्तूयमाना जयाद्यप्सरःस्त्रीभिः परिचर्यमाणा आदित्यसोमाभ्यां
दीपाभ्यां प्रकाश्यमाना तुम्बुरुनारदादिभिर्गीयमाना राकासिनीवालीभ्यां
छत्रेण ह्लादिनीमायाभ्यां चामरेण स्वाहास्वधाभ्यां व्यजनेन भृगुपुण्यादिभि-
रभ्यर्च्यमाना देवी दिव्यसिंहासने पद्मासनारूढा सकलकारणकार्यकरी लक्ष्मी-
र्देवस्य पृथग्भवनकल्पना । अलङ्कार स्थिरा प्रसन्नलोचना सर्वदेवतैः
पूज्यमाना वीरलक्ष्मीरिति विज्ञायत इत्युपनिषत् ॥ ८ ॥

ॐ ॥ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीयसीतोपनिषत्समाप्ता ॥ ४७ ॥

योगचूडामण्युपनिषत् ॥ ४८ ॥

मूलाधारादिषट्चक्रं सहस्रारोपरि स्थितम् ।

योगज्ञानैकफलकं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

ॐ योगचूडामणिं वक्ष्ये योगिनां हितकाम्यया । कैवल्यसिद्धिदं गुरुं
सेवितं योगवित्तमैः ॥ १ ॥ आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं
समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥ २ ॥ एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं
कमलासनम् । षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ॥ ३ ॥ स्वदेहे
यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत् । चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च

षडदलम् ॥ ४ ॥ नाभौ दशदलं पञ्चं हृदये द्वादशारकम् । षोडशारं विंशु-
 द्वाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ॥ ५ ॥ सहस्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि ।
 आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ॥ ६ ॥ योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये
 कामरूपं निगद्यते । कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजं तु चतुर्दलम् ॥ ७ ॥
 तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता । तस्य मध्ये महालिङ्गं
 पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ॥ ८ ॥ नाभौ तु मणिवद्विम्बं यो जानाति स योग-
 वित् । तस्य चामीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ॥ ९ ॥ त्रिकोणं तत्पुरं
 वह्नेरधो मेढ्रात्प्रतिष्ठितम् । समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ १० ॥
 तस्मिन्दृष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते । स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं
 तदाश्रयः ॥ ११ ॥ स्वाधिष्ठानाश्रयादस्मान्मेढ्रमेवाभिधीयते । तन्तुना मणि-
 वत्प्रोतो योऽत्र कन्दः सुषुम्नया ॥ १२ ॥ तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते
 मणिपूरकम् । द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते ॥ १३ ॥ तावज्जीवो
 भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति । ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्ड-
 वत् ॥ १४ ॥ तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः । तेषु नाडीसह-
 स्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता ॥ १५ ॥ प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भ्रूयस्तासु दश
 स्मृताः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयगा ॥ १६ ॥ गान्धारी हस्ति-
 जिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी । अलम्बुसा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता
 ॥ १७ ॥ एतन्नाडीमहाचक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा । इडा वामे स्थिता
 भागे दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥ १८ ॥ सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वाम-
 चक्षुषि । दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ॥ १९ ॥ यशस्विनी
 वामकर्णे चानने चाप्यलम्बुसा । कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी
 ॥ २० ॥ एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ते नाडयः क्रमात् । इडापिङ्गलासौपुङ्गाः
 प्राणमार्गे च संस्थिताः ॥ २१ ॥ सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
 प्राणापानसमानाख्या व्यानोदानौ च वायवः ॥ २२ ॥ नागः कूर्मोऽथ कृकरो
 देवदत्तो धनंजयः । हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले ॥ २३ ॥
 समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः । व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः
 पञ्च वायवः ॥ २४ ॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तथा । कृकरः
 शुत्क्रो ज्यैषो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ २५ ॥ न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी
 धनंजयः । एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवजन्तवः ॥ २६ ॥ आक्षिप्तो
 भुजदण्डेन यथा चलति कन्दुकः । प्राणापानसमाक्षिसंस्तथा जीवो न

तिष्ठति ॥ २७ ॥ प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति । वामदक्षिण-
मार्गाभ्यां चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥ २८ ॥ रज्जुबद्धो यथा ज्ञेयो गतोऽप्याकृष्यते
पुनः । गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ॥ २९ ॥ प्राणापानवशो
जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च गच्छति । अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ।
ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ॥ ३० ॥ हकारेण बहि-
र्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ ३१ ॥
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः । एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो
जपति सर्वदा ॥ ३२ ॥ अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा । अस्याः
संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३३ ॥ अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो
जपः । अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ३४ ॥ कुण्डलिन्या
समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी । प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्
॥ ३५ ॥ कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः । ब्रह्मद्वारमुखं निधं
मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥ ३६ ॥ येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् । मुखे-
नाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥ ३७ ॥ प्रबुद्धा बह्मियोगेन मनसा मरुता
सह । सूचीवद्भान्नमादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुप्ताया ॥ ३८ ॥ उद्धाटयेत्कवाटं तु
यथा कुञ्चिकया गृहम् । कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रमेदयेत् ॥ ३९ ॥
कृत्वा संपुटितौ करौ दृढतरं बद्धा तु पद्मासनं गाढं वक्षसि संनिधाय चुबुर्कं
ध्यानं च तच्चेष्टितम् । वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयेत्पूरितं मुञ्चन्प्राण-
मुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः ॥ ४० ॥ अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रम-
संजातवारिणा । कट्फल्लवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचारी
मिताहारी योगी योगपरायणः । अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्या विचा-
रणा ॥ ४२ ॥ सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः । भुञ्जते शिवसंग्रीत्या
मिताहारी स उच्यते ॥ ४३ ॥ कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा ॥ ४४ ॥ महासुम्ना नमोसुम्ना
ओङ्घ्याणं च जलबन्धम् । मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनम्
॥ ४५ ॥ पार्ष्णिघातेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्दृढम् । अपानमूर्ध्वमाकृष्य
मूलबन्धो विधीयते ॥ ४६ ॥ अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः । युवा
भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ४७ ॥ ओङ्घ्याणं कुरुते यस्मादवि-
श्रान्तं महाखगः । ओङ्घ्रियाणं तदेव स्थान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ४८ ॥ उदरा-
त्पश्चिमं ताणमधो नामेर्निगद्यते । ओङ्घ्याणमुदरे बन्धस्तत्र बन्धो विधीयते

॥ ४९ ॥ बध्नाति हि शिरोजातमधोगामि नभोजलम् । ततो जालन्धरो बन्धः
 कष्टदुःखौघनाशनः ॥ ५० ॥ जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे । न
 पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥ ५१ ॥ कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा
 विपरीतगा । अचोरन्तर्गता दृष्टिमुद्रा भवति खेचरी ॥ ५२ ॥ न रोगो मरणं
 तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा । न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्
 ॥ ५३ ॥ पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न स कर्मभिः । बाध्यते न च केनापि
 यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ५४ ॥ चित्तं चरति खे यस्याजिह्वा चरति खे
 यतः । तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता ॥ ५५ ॥ बिन्दुमूलशरीराणि
 शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः । भावयन्ती शरीराणि आ पादतलमस्तकम् ॥ ५६ ॥
 खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः । न तस्य क्षीयते बिन्दुः कामि-
 न्यालिङ्गितस्य च ॥ ५७ ॥ यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
 यावद्वद्धा नभोमुद्रा तावद्विन्दुर्न गच्छति ॥ ५८ ॥ ज्वलितोऽपि यथा बिन्दुः
 संप्राप्तश्च हुताशनम् । व्रजत्यूर्ध्वं गतः शक्त्या निरुद्धो योनिमुद्रया ॥ ५९ ॥
 स पुनर्द्विविधो बिन्दुः पाण्डुरो लोहितस्तथा । पाण्डरं शुक्लमित्याहुर्लोहिताख्यं
 महारजः ॥ ६० ॥ सिन्दूरव्रातसंकाशं रविस्थानस्थितं रजः । शशिस्थान-
 स्थितं शुक्लं तयोरेक्यं सुदुर्लभम् ॥ ६१ ॥ बिन्दुर्ब्रह्मा रजः शक्तिर्विन्दुरिन्दू
 रजो रविः । उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥ ६२ ॥ वायुना
 शक्तिचालेन प्रेरितं च यथा रजः । याति बिन्दुः सदैवत्वं भवेद्विव्य-
 वपुस्तदा ॥ ६३ ॥ शुक्लं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्येण संगतम् ।
 तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित् ॥ ६४ ॥ शोधनं
 नाब्जजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः । रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते
 ॥ ६५ ॥ वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्घ्रिणा हस्ताभ्याम-
 नुधारयन्प्रसारितं पादं तथा दक्षिणम् । आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बद्ध्वा
 ज्ञानै रेचयेत्सेयं न्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते ॥ ६६ ॥ चन्द्रां-
 शेन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः । या तुल्या तु भवेत्संख्या ततो मुद्रां
 विसर्जयेत् ॥ ६७ ॥ नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः । अतिभुक्तं
 विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ६८ ॥ क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
 तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत् ॥ ६९ ॥ कथितेयं महा-
 मुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् । गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित्

॥ ७० ॥ पञ्चासनं समारुह्य समकायशिरोधरः । नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदो-
 ङ्कारमव्ययम् ॥ ७१ ॥ ॐ नित्यं शुद्धं शुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनं निराख्यात-
 मनादिनिधनमेकं तुरीयं यन्मृतं भवन्नविष्यत् परिवर्तमानं सर्वदाऽनवच्छिन्नं
 परब्रह्म तस्माज्जाता परा शक्तिः स्वयंज्योतिरात्मिका । आत्मन आकाशः
 संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अग्न्यः पृथिवी । एतेषां
 पञ्चभूतानां पतयः पञ्च सदाशिवेश्वररुद्रविष्णुब्रह्माणश्चेति । तेषां ब्रह्मविष्णु-
 रुद्राश्चोत्पत्तिस्थितिलयकर्तारः । राजसो ब्रह्मा सात्त्विको विष्णुस्तामसो रुद्र
 इत्येते त्रयो गुणयुक्ताः । ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव । धाता च सृष्टौ
 विष्णुश्च स्थितौ रुद्रश्च नाशे भोगाय चन्द्र इति प्रथमजा बभूवुः । एतेषां
 ब्रह्मणो लोका देवतित्यङ्गरस्थावराश्च जायन्ते । तेषां मनुष्यादीनां पञ्चभूतस-
 मवायः शरीरम् । ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिचि-
 त्ताहंकारैः स्थूलरूपतैः सोऽपि स्थूलप्रकृतिरित्युच्यते । ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्ज्ञा-
 नविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिभिश्च सूक्ष्मस्थोऽपि लिङ्गमेवेत्युच्यते ।
 गुणत्रययुक्तं कारणम् । सर्वेषामेवं त्रीणि शरीराणि वर्तन्ते । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-
 तुरीयाश्चेत्यवस्थाश्चतस्रः तासामवस्थानामधिपतयश्चत्वारः पुरुषा विश्वतैजस-
 प्राज्ञात्मानश्चेति । विश्वो हि स्थूलभुङ्क्षित्यं तैजसः प्रविचिक्तभुक् । आनन्द-
 भुक् तथा प्राज्ञः सर्वसाक्षीत्यतः परः ॥ ७२ ॥ प्रणतः सर्वदा तिष्ठेत्सर्वजीवेषु
 भोगतः । अभिरामस्तु सर्वान्मुह्यवस्थासु ह्यधोमुखः ॥ ७३ ॥ अकार उकारो
 मकारश्चेति त्रयो वर्णास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयो गुणास्त्रीण्यक्षराणि त्रयः
 स्वरा एवं प्रणवः प्रकाशते । अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु ।
 उकारः कण्ठतः स्वप्ने मकारो हृदि सुषुप्तिः ॥ ७४ ॥ विराड्विश्वः स्थूलश्चा-
 कारः । हिरण्यगर्भस्तैजसः सूक्ष्मश्च उकारः । कारणाव्याकृतप्राज्ञश्च मकारः ।
 अकारो राजसो रक्तो ब्रह्मा चेतन उच्यते । उकारः सात्त्विकः शुद्धो विष्णु-
 रित्यभिधीयते ॥ ७५ ॥ मकारस्तामसः कृष्णो रुद्रश्चेति तथोच्यते । प्रणवा-
 त्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः ॥ ७६ ॥ प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि
 परो भवेत् । अकारे लीयते ब्रह्मा ह्युकारे लीयते हरिः ॥ ७७ ॥ मकारे
 लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते । ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने स्यादधोमुखः
 ॥ ७८ ॥ एवं वै प्रणवस्तिष्ठेद्यस्तं वेद स वेदवित् । अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिना-
 मूर्ध्वगो भवेत् ॥ ७९ ॥ तैलधाराभिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् । प्रणवस्य

ध्वनिस्तद्वत्तदग्रं ब्रह्म चोच्यते ॥ ८० ॥ ज्योतिर्मयं तदग्रं स्यादवाच्यं बुद्धिसु-
 क्षमतः । ददृशुर्ये महात्मानो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ८१ ॥ जाग्रत्क्षेत्रद्वयो-
 र्मध्ये हंस एव प्रकाशते । सकारः खेचरी प्रोक्तस्त्वंपदं चेति निश्चितम् ॥ ८२ ॥
 हकारः परमेशः स्यात्तत्पदं चेति निश्चितम् । सकारो ध्यायते जन्तुर्हकारो
 हि भवेद्भुवम् ॥ ८३ ॥ इन्द्रियैर्बध्यते जीव आत्मा चैव न बध्यते । मम-
 त्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः ॥ ८४ ॥ भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोम-
 सूर्याग्निदेवताः । यस्य मात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८५ ॥
 क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी । त्रिधा मात्रास्थितिर्यत्र
 तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८६ ॥ वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा तत्समभ्यसेत् ।
 मनसा तज्जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८७ ॥ शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो
 जपेत्प्रणवं सदा । न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ८८ ॥ चले
 वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् । योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं
 निरुन्धयेत् ॥ ८९ ॥ यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवो न मुञ्चति । मरणं
 तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ ९० ॥ यावद्वायुः स्थितो देहे ताव-
 ज्जीवो न मुञ्चति । यावद्दृष्टिर्भुवोर्मध्ये तावत्कालं भयं कुतः ॥ ९१ ॥ अल्प-
 कालमया ब्रह्मन् प्राणायामपरो भवेत् (?) । योगिनो मुनयश्चैव ततः प्राणान्ति-
 रोधयेत् ॥ ९२ ॥ षाड्विंशदङ्गुलिर्हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः । वामदक्षिणमार्गेण
 प्राणायामो विधीयते ॥ ९३ ॥ शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।
 तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणक्षमः ॥ ९४ ॥ बद्धपद्मासनो योगी प्राणं
 चन्द्रेण पूरयेत् । धारयेद्वा यथाशक्त्या भूयः सूर्येण रेचयेत् ॥ ९५ ॥
 अमृतोदधिसंकाशं गोक्षीरधवलोपमम् । ध्यात्वा चन्द्रमसं त्रिस्रं प्राणायामे
 सुखी भवेत् ॥ ९६ ॥ स्फुरत्प्रज्वलसंज्वालापूज्यमादित्यमण्डलम् । ध्यात्वा
 हृदि स्थितं योगी प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ ९७ ॥ प्राणं चेदिडया पित्रे-
 न्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत्पीत्वा पिङ्गलया सनीरणमथो बद्धा त्यजेद्वा-
 मया । सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिन्दुद्वयं ध्यायतः शुद्धा नाडिगणा
 भवन्ति यमिनो मासद्वयादूर्ध्वतः ॥ ९८ ॥ यथेष्टधारणं वायोरनलस्य
 प्रदीपनम् । नादाभिन्नकिन्नारोग्यं जायते नादिशोधनात् ॥ ९९ ॥ प्राणो

देहस्थितो यावदपानं तु निरुन्धयेत् । एकश्वासमयी मात्रा ऊर्ध्वाधो गगने
 गतिः ॥ १०० ॥ रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः । प्राणायामो भवे-
 देवं मात्राद्वादशसंयुतः ॥ १०१ ॥ मात्राद्वादशसंयुक्तौ दिवाकरनिशाकरौ ।
 दोषजालमवध्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ॥ १०२ ॥ पूरकं द्वादशं कुर्या-
 त्कुम्भकं षोडशं भवेत् । रेचकं दश चोकारः प्राणायामः स उच्यते ॥ १०३ ॥
 अधमे द्वादश मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता । उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायाम-
 स्य निर्णयः ॥ १०४ ॥ अधमे स्वेदजननं कम्पो भवति मध्यमे । उत्तमे
 स्थानमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ १०५ ॥ बद्धपद्मासनो योगी नम-
 स्कृत्य गुरुं शिवम् । नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ १०६ ॥
 द्वाराणां नव संनिरुध्य मरुतं बद्ध्वा द्वां धारणां नीत्वा कालमपानवह्नि-
 हितं शक्त्या समं चालितम् । आत्मध्यानयुतस्वनेन विधिना विन्यस्य
 मूर्ध्नि स्थिरं यावत्तिष्ठति तावदेव महतां सङ्गो न संस्तूयते ॥ १०७ ॥
 प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः । भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगि-
 भिः सदा ॥ १०८ ॥ आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम् । विकारं
 मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति ॥ १०९ ॥ धारणाभिर्मनोधैर्यं याति
 चैतन्यमद्भुतम् । समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ॥ ११० ॥
 प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः । प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा
 शुभा ॥ १११ ॥ धारणाद्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः । ध्यानद्वादश-
 केनैव समाधिरभिधीयते ॥ ११२ ॥ यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतो-
 मुखम् । तस्मिन्दृष्टे क्रियाकर्म यातायातो न विद्यते ॥ ११३ ॥ संबद्धासनमे-
 दमद्भियुगलं कर्णाक्षिनासापुटद्वाराद्यङ्गलिभिर्नियम्य पवनं वक्त्रेण वा पूरितम् ।
 बद्ध्वा चक्षसि बह्वयानसहितं (?) मूर्ध्नि स्थिरं धारयेदेवं यान्ति विशेषतत्त्वस-
 मतां योगीश्वरास्तन्मनः ॥ ११४ ॥ गगनं पवने प्राप्ते ध्वनिरूपद्यते महान् ।
 घण्टादीनां प्रवाद्यानां नादसिद्धिरुदीरिता ॥ ११५ ॥ प्राणायामेन युक्तेन
 सर्वरोगक्षयो भवेत् । प्राणायामवियुक्तेभ्यः सर्वरोगसमुद्भवः ॥ ११६ ॥
 हिक्का कासस्तथा श्वासः शिरःकर्णाक्षिवेदनाः । भवन्ति विविधा रोगाः पव-
 नव्यत्ययक्रमात् ॥ ११७ ॥ यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः ।
 तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥ ११८ ॥ युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं

युक्तं युक्तं प्रपूरयेत् । युक्तं युक्तं प्रवक्षीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ११९ ॥
 चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् । यत्प्रत्याहारं तेषां प्रत्याहारः स
 उच्यते ॥ १२० ॥ यथा तृतीयकाले तु रविः प्रत्याहरेत्प्रभासम् । तृतीयाङ्गस्थितो
 योगी विकारं मानसं हरेदित्युपनिषत् ॥ १२१ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥
 इति योमचूडामण्युपनिषत्समाप्ता ॥ ४८ ॥

निर्वाणोपनिषत् ॥ ४९ ॥

निर्वाणोपनिषद्वेद्यं निर्वाणानन्दतुन्दिलम् ।

त्रैपदानन्दसाम्राज्यं स्वमात्रमिति चिन्तयेत् ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ।

अथ निर्वाणोपनिषदं व्याख्यास्यामः । परमहंसः सोऽहम् ॥ परिव्राजकाः
 पश्चिमलिङ्गाः । मन्मथक्षेत्रपालाः । गगनसिद्धान्तः अमृतकल्लोलनदी । अक्षयं
 निरञ्जनम् । तिःसंशय ऋषिः । निर्वाणो देवता । निष्कुलप्रवृत्तिः । निष्केवल-
 ज्ञानम् । ऊर्ध्वान्नायः । निरालम्बपीठः । संयोगदीक्षा । वियोगोपदेशः ।
 दीक्षासंतोषपानं च । द्वादशादित्यावलोकनम् । विवेकरक्षा । करुणैव केलिः ।
 आनन्दमाला एकान्तगुहायां मुक्तासनसुखगोष्ठी । अकल्पितभिक्षाशी ।
 हंसाचारः । सर्वभूतान्तर्वर्ती हंस इति प्रतिपादनम् । धैर्यकन्था । उदासीन-
 कौपीनम् । विचारदण्डः । ब्रह्मावलोकयोगपट्टः । श्रियां पादुका । परेच्छाच-
 रणम् । कुण्डलिनीबन्धः । परापवादमुक्तो जीवन्मुक्तः । शिवयोगनिद्रा च ।
 खेचरीमुद्रा च । परमानन्दी । निर्गतगुणत्रयम् । विवेकलभ्यम् । मनोवाग-
 गोचरम् । अनित्यं जगद्यज्जनितं स्वप्नजगदभ्रगजादितुल्यम् । तथा देहादिसंघातं
 मोहगुणजालकलितं तद्गजुसर्पवत्कल्पितम् । विष्णुविध्यादिशताभिधानल-
 क्ष्यम् । अङ्कुशो मार्गः । शून्यं न संकेतः परमेश्वरसत्ता । सत्यसिद्धयोगो
 मठः । अमरपदं तत्स्वरूपम् । आदिब्रह्मस्वसंविद् । अजपा गायत्री । विकार-
 दुर्गो ध्येयः । मनोनिरोधिनी कन्था । योगेन सदानन्दस्वरूपदर्शनम् । आन-
 न्दभिक्षाशी । महाश्मशानेऽप्यानन्दवने वासः । एकान्तस्थानम् । आनन्द-
 मठम् । उन्मन्यवस्था । शारदा चेष्टा । उन्मती गतिः । निर्मलगात्रम् । नि-

लम्बपीठम् । अमृतकलोलानन्दक्रिया । पाण्डुरगगनम् । महासिद्धान्तः ।
शमदमादिविद्यशक्त्याचरणे क्षेत्रपात्रपटुता । परावरसंयोगः । तारकोपदेशः ।
अद्वैतसदानन्दो देवता । नियमः स्वान्तरिन्द्रियनिग्रहः । भयमोहशोकक्रोधत्या-
गस्त्यागः । परावरैक्यरसास्वादनम् । अनियामकत्वनिर्मलशक्तिः । स्वप्रकाश-
ब्रह्मतत्त्वे शिवशक्तिसंपुटितप्रपञ्चच्छेदनम् । तथा पत्राक्षाक्षिकमण्डलुः ।
आवाभावदहनम् । विभ्रत्याकाशाधारम् । शिवं तुरीयं यज्ञोपवीतम् । तन्मया
शिखा । चिन्मयं चोत्सृष्टिदण्डम् । संतताक्षिकमण्डलुम् । कर्मनिर्मूलनं कन्या ।
मायाममताहंकारदहनम् । इमशाने अनाहताङ्गी निखैगुण्यस्वरूपानुसन्धानं
समयम् । भ्रान्तिहरणम् । कामादिवृत्तिदहनम् । काठिन्यदृढकौपीनम् ।
चीराजिनवासः । अनाहतमन्त्रः । अक्रिययैव जुष्टम् । स्वेच्छाचारस्वस्वभावो
भोक्षः परं ब्रह्म । प्लववदाचरणम् । ब्रह्मचर्यशान्तिसंग्रहणम् । ब्रह्मचर्याश्रमेऽ-
धीत्य वानप्रस्थाश्रमेऽधीत्य ससर्वसंविद्यासं संन्यासम् । अन्ते ब्रह्माखण्डाका-
रम् । नित्यं सर्वसंवेदनाशनम् । एतन्निर्वाणदर्शनं शिष्यं पुत्रं विना न देय-
मित्युपनिषत् ॥ ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥

इति निर्वाणोपनिषत्समाप्ता ॥ ४९ ॥

मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥ ५० ॥

ब्राह्मान्तस्तराकारं व्योमपञ्चकविग्रहम् ।

राजयोगैकसंसिद्धं रामचन्द्रमुपासहे ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ।

ॐ याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा भो
अगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति । स होवाच नारायणः । ज्ञानयुक्त्यमाद्यष्टाङ्ग-
योग उच्यते । शीतोष्णाहारनिद्राविजयः सर्वदा शान्तिर्निश्चलत्वं विषयेन्द्रि-
यनिग्रहश्चैते यमाः । गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः सुखागतवस्त्वनुभवश्च तद्व-
स्त्वनुभवेन तुष्टिर्निःसङ्गता एकान्तवासो मनोनिवृत्तिः फलानभिलाषो वैराग्य-
भावश्च नियमाः । सुखासनवृत्तिश्चीरवासाश्चैवमासननियमो भवति । पूरक-
कुम्भकरेचकैः षोडशचतुःषष्टिद्वात्रिंशत्संख्यया यथाक्रमं प्राणायामः । विषयेभ्य
इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः । सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम् ।
विषयव्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतःस्थापनं धारणं भवति । ध्यानविस्मृतिः

समाधिः । एवं सूक्ष्माङ्गानि । य एवं वेद स मुक्तिभागभवति ॥ १ ॥
 देहस्य पञ्च दोषा भवन्ति कामक्रोधनिःश्वासभयनिद्राः । तन्निरासस्तु निःसंक-
 ल्पक्षमालङ्घ्याहाराप्रमादतातत्त्वसेवनम् । निद्राभयसरीसृपं हिंसादितरङ्गं
 तृष्णावर्तं दारपङ्कं संसारवार्धिं तरीतुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादिगुणानतिक्र-
 म्य तारकमवलोकयेत् । भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म । तदु-
 पायं लक्ष्यत्रयावलोकनम् । मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा ।
 मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी । तत्र तमोनिवृत्तिः । तद्दर्शनात्सर्वपापनिवृत्तिः ।
 तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये फूत्कारशब्दो जायते । तत्र स्थिते मनसि
 चक्षुर्मध्यनीलज्योतिः पश्यति । एवं हृदयेऽपि । वहिर्लक्ष्यं तु नासाग्रे चतुः-
 षडष्टदशद्वादशाङ्गुलीभिः क्रमात्तीलद्युतिश्यामत्वसदग्रक्तभङ्गीस्फुरत्पीतवर्ण-
 द्वयोपेतं व्योमत्वं पश्यति स तु योगी चलनदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः
 पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मथूखा वर्तन्ते । तद्दृष्टिः स्थिरा भवति । शीर्षोपरि
 द्वादशाङ्गुलिमानं ज्योतिः पश्यति तदाऽमृतत्वमेति । मध्यलक्ष्यं तु प्रातश्चि-
 त्त्रादिवर्णसूर्यचन्द्रवह्निज्वालावलीवत्तद्विहीनान्तरिक्षवत्पश्यति । तदाकारा-
 कारी भवति । अभ्यासान्निर्विकारं गुणरहिताकाशं भवति । विस्फुरत्तारका-
 कारगाढतमोपमं पराकाशं भवति । कालानलसमं द्योतमानं महाकाशं
 भवति । सर्वौत्कृष्टपरमाद्वितीयप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति । कोटिसूर्यप्र-
 काशं सूर्याकाशं भवति । एवमभ्यासात्तन्मयो भवति य एवं वेद ॥ २ ॥
 तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविभागतः । पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं
 तदुत्तरमिति । तारकं द्विविधम्—मूर्तितारकममूर्तितारकमिति । यदिन्द्रि-
 यान्तं तन्मूर्तितारकम् । यद्भूयुगातीतं तदमूर्तितारकमिति । उभयमपि
 मनोयुक्तमभ्यसेत् । मनोयुक्तान्तरदृष्टिस्तारकप्रकाशाय भवति । भूयुगम-
 ध्यविले तेजस आविर्भावः । एतत्पूर्वतारकम् । उत्तरं त्वमनस्कम् । तालु-
 मूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते । तद्दर्शनादणिमादिसिद्धिः । लक्ष्येऽन्तर्वा-
 ह्यायां दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां चेयं शास्त्रभवी मुद्रा भवति । सर्वतन्त्रेषु
 गोप्यमहाविद्या भवति । यज्ज्ञानेन संसारनिवृत्तिः । तत्पूजनं मोक्षफलदम् ।
 अन्तर्लक्ष्यं जलज्योतिःस्वरूपं भवति । महर्षिवेद्यं अन्तर्वाह्येन्द्रियैरदृश्यम्
 ॥ ३ ॥ सहस्रारे जलज्योतिरन्तर्लक्ष्यम् । बुद्धिगुहायां सर्वाङ्गसुन्दरं पुरुष-
 रूपमन्तर्लक्ष्यमित्यपरे । शीर्षान्तर्गतमण्डलमध्यगं पञ्चवक्त्रमुमासहायं नील-

कण्ठं प्रशान्तमन्तर्लक्ष्यमिति केचित् । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तर्लक्ष्यमित्येके ।
उक्तविकल्पं सर्वमात्मैव । तल्लक्ष्यं शुद्धात्मदृष्ट्या वा यः पश्यति स एव
ब्रह्मनिष्ठो भवति जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य
षड्विंशः परमात्माहमिति निश्चयाजीवन्मुक्तो भवति । एवमन्तर्लक्ष्यदर्शनेन जीव-
न्मुक्तिदशायां स्वयमन्तर्लक्ष्यो भूत्वा परमाकाशाखण्डमण्डलो भवति ॥ ४ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ ह याज्ञवल्क्य आदित्यमण्डलपुरुषं पप्रच्छ । भगवन्नन्तर्लक्ष्यादिकं
बहुधोक्तम् । मया तन्न ज्ञातम् । तद्ब्रूहि मह्यम् । तदुहोवाच पञ्चभूतकारणं
तडित्कूटाभं तद्वचतुःपीठम् । तन्मध्ये तत्त्वप्रकाशो भवति । सोऽतिगूढ
अव्यक्तश्च । तज्ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेयम् । तद्वाह्याभ्यन्तर्लक्ष्यम् । तन्मध्ये
जगल्लीनम् । तन्नादविन्दुकलातीतमखण्डमण्डलम् । तत्सगुणनिर्गुणस्वरूपम् ।
तद्वेत्ता विमुक्तः । आदावग्निमण्डलम् । तदुपरि सूर्यमण्डलम् । तन्मध्ये
सुधाचन्द्रमण्डलम् । तन्मध्येऽखण्डब्रह्मतेजोमण्डलम् । तद्विद्युल्लेखावच्छुक्लभा-
स्वरम् । तदेव शाम्भवीलक्षणम् । तद्दर्शने तिष्ठो मूर्त्यः—अमा प्रतिपत् पूर्णिमा
चेति । निमीलितदर्शनममादृष्टिः । अर्धोन्मीलितं प्रतिपत् । सर्वोन्मीलनं
पूर्णिमा भवति । तासु पूर्णिमाभ्यासः कर्तव्यः । तल्लक्ष्यं नासाग्रम् । यदा
तालुमूले गाढतमो दृश्यते । तदभ्यासादखण्डमण्डलाकारज्योतिर्दृश्यते ।
तदेव सच्चिदानन्दं ब्रह्म भवति । एवं सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा
ज्ञान्तो भवी भवति । तामेव खेचरीमाहुः । तदभ्यासान्मनःस्थैर्यम् । ततो
वायुस्थैर्यम् । तच्चिह्नानि—आदौ तारकवद्दृश्यते । ततो वज्रदर्पणम् । तत
उपरि पूर्णचन्द्रमण्डलम् । ततो नवरत्नप्रभामण्डलम् । ततो मध्याह्नार्क-
मण्डलम् । ततो वह्निशिखामण्डलं क्रमाद्दृश्यते ॥ १ ॥ तदा पश्चिमाभि-
मुखप्रकाशः स्फटिकधून्नविन्दुनादकलानक्षत्रैश्चोत्तदीपनेत्रसवर्णनवरत्नादिप्रभा
दृश्यन्ते । तदेव प्रणवस्वरूपम् । प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृतकुम्भको नासाग्रद-
र्शनदृढभावनया द्विकराङ्गुलिभिः षण्मुखीकरणेन प्रणवध्वनिं निशम्य मन-
स्तत्र लीनं भवति । तस्य न कर्मलेपः । रवेरुदयास्तमययोः किल कर्म कर्त-
व्यम् । एवंविधश्चिदादित्यस्योदयास्तमयाभावात्सर्वकर्माभावः । शब्दकाल-
लयेन दिवारात्र्यतीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेनोन्मन्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं

भवति । उन्मन्या अमनस्कं भवति । तस्य निश्चिन्ता ध्यानम् । सर्वकर्मनि-
 राकरणमावाहनम् । निश्चयज्ञानमासनम् । उन्मनीभावः पाद्यम् । सदाऽम-
 नस्कमर्ध्यम् । सदादीप्तिरपाराभृतवृत्तिः स्नानम् । सर्वत्र भावना गन्धः ।
 दृक्स्वरूपावस्थानमक्षताः । चिदासिः पुष्पम् । चिदग्निस्वरूपं धूपः । चिदा-
 दित्यस्वरूपं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतरसस्यैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं
 प्रदक्षिणम् । सोऽहंभावो नमस्कारः । मौनं स्तुतिः । सर्वसंतोषो विसर्जनमिति
 य एवं वेद ॥ २ ॥ एवं त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गसमुद्रवन्निवातस्थितदीप-
 वदचलसंपूर्णभावाभावविहीनकैवल्यज्योतिर्भवति । जाग्रन्निन्दान्तःपरिज्ञानेन
 ब्रह्मविद्भवति । सुषुप्तिसमाध्योर्मैगोल्याविशेषेऽपि महदस्त्युभयोर्भेदस्तमसि
 लीनत्वान्मुक्तिहेतुत्वाभावाच्च । समाधौ मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारि-
 ताखण्डाकारवृत्त्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः संपद्यते प्रपञ्चस्य मनःकल्पि-
 तत्वात् । ततो भेदाभावात् कदाचिद्वह्निर्गतेऽपि मिथ्यात्वभानात् । सद्ब्रह्म-
 भातसदानन्दानुभवैकगोचरो ब्रह्मवित्तदैव भवति । यस्य संकल्पनाशः स्यात्तस्य
 मुक्तिः करे स्थिता । तस्माद्भावाभावौ परित्यज्य परमात्मध्यानेन मुक्तो
 भवति । पुनःपुनः सर्वावस्थासु ज्ञानज्ञेयौ ध्यानध्येयौ लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादृश्ये
 चोहापोहादि परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् । य एवं वेद ॥ ३ ॥ पञ्चावस्थाः
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयातीताः । जाग्रति प्रवृत्तो जीवः प्रवृत्तिमार्गासक्तः ।
 पापफलनरकादिमांस्तु शुभकर्मफलस्वर्गमस्त्विति काङ्क्षते । स एव स्वीकृतवैरा-
 ग्यात्कर्मफलजन्माऽलं संसारबन्धनमलमिति विमुक्त्यभिमुखो निवृत्तिमार्गप्र-
 वृत्तो भवति । स एव संसारतारणाय गुरुमाश्रित्य कामादि त्यक्त्वा विहितक-
 र्माचरन्साधनचतुष्टयसंपन्नो हृदयकमलमध्ये भगवत्सत्तामात्रान्तर्लक्ष्यरूप-
 मासाद्य सुषुप्त्यवस्थाया मुक्तब्रह्मानन्दस्मृतिं लब्ध्वा एक एवाहमद्वितीयः
 कंचित्कालमज्ञानवृत्त्या विस्मृतजाग्रद्भासनानुफलेन तैजसोऽस्मीति तदुभय-
 निवृत्त्या प्राज्ञ इदानीमस्मीत्यहमेक एव स्थानभेदादवस्थाभेदस्य परंतु नहि
 मदन्यदिति जातविवेकः शुद्धाद्वैतब्रह्माहमिति भिदागन्धं निरस्य स्वान्तर्विजृ-
 ष्मिन्तभानुमण्डलध्यानतदाकाराकारितपरंब्रह्माकारितमुक्तिमार्गमारूढः परि-
 पक्वो भवति । संकल्पादिकं मनो बन्धहेतु । तद्वियुक्तं मनो मोक्षाय भवति ।
 तद्वांश्चक्षुरादिबाह्यप्रपञ्चोपगन्तो विगतप्रपञ्चगन्धः सर्वजगदात्मत्वेन पश्यंस्त्य-

ब्राह्म० ४]

मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥ ५० ॥

३५३

काहंकारो ब्रह्माहमस्मीति चिन्तयन्निदं सर्वं यदयमात्मेति भावयन्कृतकृत्यो भवति ॥ ४ ॥ सर्वपरिपूर्णतुरीयातीतब्रह्मभूतो योगी भवति । तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति । सर्वलोकेस्तुतिपात्रः सर्वदेशसंचारशीलः परमात्मगगने विन्दुं निक्षिप्य शुद्धाद्वैताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्राखण्डानन्दपदानुवृत्त्या जीवन्मुक्तो भवति । तच्चानन्दसमुद्रमग्ना योगिनो भवन्ति । तदपेक्षया इन्द्रादयः स्वल्पानन्दाः । एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी भवतीत्युपनिषत् ॥ ५ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्यो महामुनिर्मण्डलपुरुषं पप्रच्छ स्वामिन्नमनस्कलक्षणमुक्तमपि विस्मृतं पुनस्तल्लक्षणं ब्रूहीति । तथेति मण्डलपुरुषोऽब्रवीत् । इदममनस्कमतिरहस्यम् । यज्ज्ञानेन कृतार्थो भवति तन्नित्यं शांभयीमुद्रान्वितम् । परमात्मदृष्ट्या तत्प्रत्ययलक्ष्याणि दृष्ट्वा तदनु सर्वेशमप्रमेयमजं शिवं परमाकाशं निरालम्बमद्वयं ब्रह्मविष्णुरुद्रादीनामेकलक्ष्यं सर्वकारणं परंब्रह्मात्मन्येव पश्यमानो गुहाविहरणमेव निश्चयेन ज्ञात्वा भावाभावादिद्वन्द्वतीतः संविदिः तमनोन्मन्यनुभवस्तदनन्तरमखिलेन्द्रियक्षयवशादमनस्कसुखब्रह्मानन्दसमुद्रे मनःप्रवाहयोगरूपनिवातस्थितदीपवदचलं परंब्रह्म प्राप्नोति । ततः शुष्कवृक्षचन्मूर्च्छानिद्रामयनिःश्वासोच्छ्वासाभावाद्ब्रह्मद्वन्द्वः सदाचञ्चलगात्रः परमशान्तिं स्वीकृत्य मनःप्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति । पयःस्त्रावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गो परिनष्टे मनोनाशो भवति तदेवामनस्कम् । तदनु नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेति तत्त्वमसीत्युपदेशेन त्वमेवाहमहमेव त्वमिति तारकयोगमार्गेणाखण्डानन्दपूर्णः कृतार्थो भवति ॥ १ ॥ परिपूर्णपराकाशमग्नमनाः प्राप्नोन्मन्यवस्थः संन्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गोऽनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपक्वैकैवत्यफलोऽखण्डानन्दनिरस्तसर्वैकेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति । त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात्परमात्मनः । इत्युचरन्समालिङ्ग्य शिष्यं ज्ञप्तिमनीनयत् ॥ २ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ ह याज्ञवल्क्यो मण्डलपुरुषं पप्रच्छ व्योमपञ्चकलक्षणं विस्तरेणानुब्रूहीति । स होवाचाकाशं पराकाशं महाकाशं सूर्याकाशं परामाकाशमिति पञ्च भवन्ति । बाह्याभ्यन्तरमन्धकारमयमाकाशम् । बाह्यस्याभ्यन्तरे कालानलसदृशं पराकाशम् । सबाह्याभ्यन्तरेऽपरिमितद्युतिनिभं तत्त्वं महाकाशम् ।

सबाह्याभ्यन्तरे सूर्यनिभं सूर्याकाशम् । अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं
निरतिशयानन्दलक्षणं परमाकाशम् । एवं तत्तल्लक्ष्यदर्शनात्तत्तद्रूपो भवति ।
नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् । सम्यगेतन्न जानाति स योगी
नामतो भवेत् ॥ १ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति । अतः सर्वं जगच्चित्तगो-
चरम् । तदेव चित्तं निराश्रयं मनोन्मन्यवस्थापरिपक्वं लययोग्यं भवति ।
तल्लयं परिपूर्णे मयि समभ्यसेत् । मनोऽल्यकारणमहमेव । अनाहतस्य
शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः । ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ।
यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् । तन्मनो त्रिलयं याति तद्विष्णोः
परमं पदम् । तल्लयाच्छुद्धाद्वैतसिद्धिर्भेदाभावात् । एतदेव परमतत्त्वम् ।
स तज्ज्ञो बालोन्मत्तपिशाचवज्जडवृत्त्या लोकमाचरेत् । एवममनस्काभ्यासे-
नैव नित्यतृप्तिरल्पमूत्रपुरीषमितभोजनदृढाङ्गाजाड्यनिद्रादृग्वायुचलनाभावब्र-
ह्मदर्शनाज्ज्ञातसुखस्वरूपसिद्धिर्भवति । एवं चिरसमाधिजनित्रब्रह्मासृतपान-
परायणोऽसौ संन्यासी परमहंस अवधूतो भवति । तद्दर्शनेन सकलं जगत्प-
वित्रं भवति । तत्सेवापरोऽज्ञोऽपि मुक्तो भवति । तत्कुलमेकोत्तरशतं तार-
यति । तन्मातृपितृजायापत्यवर्गं च मुक्तं भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥ ५० ॥

दक्षिणामूर्त्युपनिषत् ॥ ५१ ॥

यन्मौनव्याख्यया मौलिपटलं क्षणमात्रतः ।

महामौनपदं याति स हि मे परमा गतिः ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मावर्ते महाभाण्डीरवटमूले महासत्राय समेता महर्षयः शौनका-
दयस्ते ह समित्पाणयस्तत्त्वजिज्ञासवो मार्कण्डेयं चिरंजीविनमुपसमेत्य पप्रच्छुः
केन त्वं चिरं जीवसि केन वानन्दमनुभवसीति । परमरहस्यशिवतत्त्व-
ज्ञानेनेति स होवाच । किं तत्परमरहस्यशिवतत्त्वज्ञानम् । तत्र को देवः ।
के मन्त्राः । को जपः । का मुद्रा । का निष्ठा । किं तज्ज्ञानसाधनम् । ॐ

परिकरः को बलिः । कः कालः । किं तत्स्थानमिति । स होवाच । येन
 दक्षिणामुखः शिवोऽपरोक्षीकृतो भवति तत्परमरहस्यशिवतत्त्वज्ञानम् । यः
 सर्वोपरमे काले सर्वानात्मन्युपसंहृत्य स्वात्मानन्दमुखे मोदते प्रकाशते वा
 स देवः । अत्रैते मन्त्ररहस्यश्लोका भवन्ति । मेधा दक्षिणामूर्तिमन्त्रस्य ब्रह्मा
 ऋषिः । गायत्री छन्दः । देवता दक्षिणास्यः । मन्त्रेणाङ्गन्यासः । ॐ आदौ
 नम उच्चार्य ततो भगवते पदम् । दक्षिणेति पदं पश्चान्मूर्तये पदमुद्धरेत्
 ॥ १ ॥ अस्यच्छब्दं चतुर्थ्यन्तं मेधां प्रज्ञां पदं वदेत् । समुच्चार्य ततो वायु-
 बीजं छञ्च ततः पठेत् । अग्निजायां ततस्त्वेष चतुर्विंशक्षरो मनुः ॥ २ ॥
 ध्यानम् ॥ स्फटिकरजतवर्णं भौक्तिकीमक्षमालाममृतकलशविद्यां ज्ञानमुद्रां
 कराग्रे । दधत्सुरगकक्षं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं विष्टतविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे
 ॥ ३ ॥ मन्त्रेण न्यासः । आदौ वेदादिमुच्चार्य स्वराद्यं सविसर्गकम् । पञ्चार्णं
 तत उद्धृत्य अन्तरं सविसर्गकम् । अन्ते समुद्धरेत्तारं मनुरेष नवाक्षरः ॥ ४ ॥
 मुद्रां भद्रार्थदात्रीं स परशुहरिणं बाहुभिर्बाहुमेकं जान्वासक्तं दधानो भुजग-
 विलसमाबद्धकक्ष्यो वटाधः । आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटाक्षीरगौरस्त्रि-
 नेत्रो दद्यादाद्यः शुकाद्यैर्मुनिभिरभिवृत्तो भावशुद्धिं भवो नः ॥ ५ ॥ मन्त्रेण
 न्यासः ब्रह्मर्षिन्यासः—तारं ब्रूं नम उच्चार्य मायां वाग्भवमेव च । दक्षिणापद-
 मुच्चार्य ततः स्यान्मूर्तये पदम् ॥ ६ ॥ ज्ञानं देहि पदं पश्चाद्ब्रह्मिजायां ततो
 न्यसेत् । मनुरष्टादशाणोऽयं सर्वमन्त्रेषु गोपितः ॥ ७ ॥ भस्मन्यापाण्डुराङ्गः
 शशिशकलधरो ज्ञानमुद्राक्षमालावीणापुस्तैर्विराजत्करकमलधरो योगपट्टाभि-
 रामः । व्याख्यापीठे निषण्णो मुनिवरनिकरैः सेव्यमौनः प्रसन्नः सैव्यालः
 कृत्तित्रासाः सततमवतु नो दक्षिणामूर्तिरीशः ॥ ८ ॥ मन्त्रेण न्यासः ।
 (ब्रह्मर्षिन्यासः) । तारं परं रंमाबीजं वदेत्साम्बशिवाय च । तुभ्यं चानल-
 जायां च मनुर्द्वादशवर्णकः ॥ ९ ॥ बीणां करैः पुस्तकमक्षमालां बिभ्राणम-
 भ्राभगलं वराढ्यम् । फणीन्द्रकक्ष्यं मुनिभिः शुकाद्यैः सेव्यं वटाधः कृतनी-
 डमीडे ॥ १० ॥ विष्णुऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । देवता दक्षिणास्यः । मन्त्रेण
 न्यासः । तारं नमो भगवते तुभ्यं वटपदं ततः । मूलेति पदमुच्चार्य वासिने
 पदमुद्धरेत् ॥ ११ ॥ प्रज्ञामेधापदं पश्चादादिसिद्धिं ततो वदेत् । दायिने
 पदमुच्चार्य मायिने नम उद्धरेत् ॥ १२ ॥ वागीशाय ततः पश्चान्महा-

ज्ञानपदं ततः । वह्निजायां ततस्त्वेष द्वात्रिंशद्वर्णको मनुः । आनुष्टुभो
मन्त्रराजः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १३ ॥ ध्यानम् । मुद्रापुस्तकवह्नि-
नागविलसद्बाहुं प्रसन्नाननं मुक्ताहारविभूषणं शशिकलाभास्वत्किरीटोज्ज्व-
लम् । अज्ञानापहमादिमादिमगिरामर्थं भवानीपतिं न्यग्रोधान्तनिवासिनं
पेरगुहं ध्यायाम्यमीष्टास्ये ॥ १४ ॥ मौनमुद्रा । सोऽहमिति यावदास्थितिः
सनिष्ठा भवति । तदमेदेन मन्त्रान्नेडनं ज्ञानसाधनम् । चित्ते तदेकतानता
परिकरः । अङ्गचेष्टार्पणं बलिः । त्रीणि धामानि कालः । द्वादशान्तपदं
स्थानमिति । ते ह पुनः श्रद्धधानास्तं प्रत्युचुः । कथं वाऽस्योदयः ।
किं स्वरूपम् । को वाऽस्योपासक इति । स होवाच । वैराग्यतैलसंपूर्णे
भक्तिवर्तिसमन्विते । प्रबोधपूर्णपात्रे तु ज्ञसिदीपं विलोकयेत् ॥ १५ ॥
मोहान्धकारे निःसारे उदेति स्वयमेव हि । वैराग्यमरणिं कृत्वा ज्ञानं
कृत्वा तु चित्रगुम् ॥ १६ ॥ गाढतामिन्नसंशान्त्यै गूढमर्थं निवेदयेत् । मोह-
भानुजसंक्रान्तं विवेकाख्यं मृकण्डुजम् ॥ १७ ॥ तत्त्वाविचारपाशेन बद्धं
द्वैतभयातुरम् । उज्जीवयन्निजानन्दे स्वस्वरूपेण संस्थितः ॥ १८ ॥ शेमुषी
दक्षिणा प्रोक्ता सा यस्यामीक्षणे मुखम् । दक्षिणाभिमुखः प्रोक्तः शिवोऽसौ
ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ सर्गादिकाले भगवान्विरिञ्चिरुपास्यैनं सर्गसामर्थ्य-
माप्स्य । तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थाश्च लब्ध्वा धन्यः सोपास्योपासको भवति
धाता ॥ २० ॥ य इमां परमरहस्यशिवतत्त्वविद्यामधीते स सर्वपापेभ्यो मुक्तो
भवति । य एवं वेद स कैवल्यमनुभवतीत्युपनिषत् ॥ २१ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति दक्षिणामूर्त्युपनिषत्समाप्ता ॥ ५१ ॥

शरभोपनिषत् ॥ ५२ ॥

सर्वं संत्यज्य मुनयो यद्भजन्यात्मरूपतः ।

तच्छारभं त्रिपाद्ब्रह्म स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

अथ हैनं पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच भो भगवन् ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये को
वाऽधिकतरो ध्येयः स्यात्तत्त्वमेव नो ब्रूहीति । तस्मै स होवाच पितामहश्च

हे पैप्पलाद ऋणु वाक्यमेतत् । बहूनि पुण्यानि कृतानि येन तेनैव लभ्यः
 परमेश्वरोऽसौ । यस्याङ्गजोऽहं हरिरिन्द्रमुख्या मोहाच्च जानन्ति सुरेन्द्रमुख्याः
 ॥ १ ॥ प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्रह्माणं विदधाति तस्मै । वेदांश्च सर्वा-
 ण्ग्रहिणोति चाग्र्यं तं वै प्रभुं पितरं देवतानाम् ॥ २ ॥ ममापि विष्णोर्जनकं
 देवमीड्यं योऽन्तकाले सर्वलोकान्संजहार ॥ ३ ॥ स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स
 एव वरिष्ठश्च । यो घोरं वेषमास्थाय शरभाख्यं महेश्वरः । नृसिंहं लोकहन्तारं
 संजघान महाबलः ॥ ४ ॥ हरिं हरन्तं पादाभ्यामनुयान्ति सुरेश्वराः ।
 मा वधीः पुरुषं विष्णुं विक्रमस्व महानसि ॥ ५ ॥ कृपया भगवान्विष्णुं विद-
 दार नखैः खरैः । चर्माम्बरो महावीरो वीरभद्रो बभूव ह ॥ ६ ॥ स एको
 रुद्रो ध्येयः सर्वेषां सर्वसिद्धये । यो ब्रह्मणः पञ्चमवक्त्रहन्ता तस्मै रुद्राय नमो
 अस्तु ॥ ७ ॥ यो विस्फुलिङ्गेन ललाटजेन सर्वं जगद्भस्मात्संकरोति । पुनश्च
 सृष्ट्वा पुनरप्यरक्षदेवं स्वतंत्रं प्रकटीकरोति । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ ८ ॥
 यो वामपादेन जघान कालं घोरं पपेऽथो हालहलं दहन्तम् । तस्मै रुद्राय
 नमो अस्तु ॥ ९ ॥ यो वामपादार्चितविष्णुनेत्रस्तस्मै ददौ चक्रगतीव हृष्टः ।
 तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ १० ॥ यो दक्षयज्ञे सुरसङ्गान्विजित्य विष्णुं बव-
 न्धोरगपाशेन वीरः । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ ११ ॥ यो लीलयैव त्रिपुरं
 ददाह विष्णुं कविं सोमसूर्याग्निनेत्रः । सर्वे देवाः पशुतामवापुः स्वयं तस्मा-
 त्पशुपतिर्वभूव । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ १२ ॥ यो मत्स्यकूर्मादिवराहसि-
 हान्विष्णुं क्रमन्तं वामनमादिविष्णुम् । विविक्लवं पीड्यमानं सुरेशं भस्मीचकार
 मन्मथं यमं च । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ १३ ॥ एवं प्रकरणे बहुधा
 प्रतुष्ट्वा क्षमापयामासुर्नीलकण्ठं महेश्वरम् । तापत्रयसमुद्भूतजन्ममृत्युजरा-
 दिभिः । नानाविधानि दुःखानि जहार परमेश्वरः ॥ १४ ॥ एवं मन्त्रैः प्रार्थ्यमान
 आत्मा वै सर्वदेहिनाम् । शङ्करो भगवानाद्यो ररक्ष सकलाः प्रजाः ॥ १५ ॥
 यत्पादाभोरुहद्वन्द्वं मृग्यते विष्णुना सह । स्तुत्वा स्तुत्यं महेशानमवाहान-
 सगोचरम् ॥ १६ ॥ भक्त्या नम्रतनोर्विष्णोः प्रसादमकरोद्विभुः । यतो
 वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वाञ्च विभेति
 कदाचनेति ॥ १७ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहा-
 याम् । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ १८ ॥

वसिष्ठवैयासकिवामदेवविरिञ्चिमुख्यैर्हृदि भक्ष्यमानः । सन्तुजातादिसनात-
नचैरीड्यो महेशो भगवानादिदेवः ॥ १९ ॥ सत्यो नित्यः सर्वसाक्षी महेशो
नित्यानन्दो निर्विकल्पो निराख्यः । अचिन्त्यशक्तिर्भगवान्गिरीशः स्वाविद्यया
कल्पितमानभूमिः ॥ २० ॥ अतिमोहकरी माया मम विष्णोश्च सुव्रत । तस्य
पादाम्बुजध्यानाद्दुस्तरा सुतरा भवेत् ॥ २१ ॥ विष्णुर्विश्वजगद्योनिः स्वांश-
भूतैः स्वकैः सह । ममांशसंभवो भूत्वा पालयत्यखिलं जगत् ॥ २२ ॥
विनाशं कालतो याति ततोऽन्यत्सकलं सृष्ट्वा । ॐ तस्मै महाग्रासाय महा-
देवाय शूलिने । महेश्वराय मृडाय तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ २३ ॥ एको
विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रीँहो कान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्व-
भुगव्ययः ॥ २४ ॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । ह्रूयते च पुन-
र्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २५ ॥ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा
हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २६ ॥ शरा जीवास्तदङ्गेषु
भाति नित्यं हरिः स्वयम् । ब्रह्मैव शरभः साक्षान्मोक्षदोऽयं महामुने ॥ २७ ॥
मायावशादेन देवा मोहिता ममतादिभिः । तस्य माहात्म्यलशांशं वक्तुं केना-
प्यशक्यते ॥ २८ ॥ परात्परतरं ब्रह्म यत्परात्परतो हरिः । परात्परतो हीशस्त-
स्मात्तुल्योऽधिको न हि ॥ २९ ॥ एक एव शिवो नित्यस्ततोऽन्यत्सकलं सृष्ट्वा ।
तस्मात्सर्वान्परित्यज्य ध्येयान्विष्ण्वादिकान्सुरान् ॥ ३० ॥ शिव एव सदा
ध्येयः सर्वसंसारमोचकः । तस्मै महाग्रासाय महेश्वराय नमः ॥ ३१ ॥ पैप्पलादं
महाशाखं न देयं यस्यकस्यचित् । नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने
॥ ३२ ॥ दास्मिकाय नृशंसाय शठायानृतभापिणे । सुव्रताय सुभक्ताय सुवृत्ताय
सुशीलिने ॥ ३३ ॥ गुरुभक्ताय दान्ताय शान्ताय ऋजुचेतसे । शिवभक्ताय
दातव्यं ब्रह्मकर्मात्कीर्तयते ॥ ३४ ॥ स्वभक्त्यायैव दातव्यमकृतघ्नाय सुव्रत ।
न दातव्यं सदा गोप्यं यत्तेनैव द्विजोत्तम ॥ ३५ ॥ एतत्पैप्पलादं महाशाखं
योऽधीते श्रावयेद्विजः । स जन्ममरणेभ्यो मुक्तो भवति । यो जानीते सोऽमृ-
तत्वं च गच्छति । गर्भवासाद्विमुक्तो भवति । सुरापानात्पूतो भवति ।
स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति । ब्रह्महत्यात्पूतो भवति । गुरुतत्पगमनात्पूतो भवति ।
स सर्वान्वेदानधीतो भवति । स सर्वान्वेदान्ध्यातो भवति । स समस्त-
महापातकोपपातकात्पूतो भवति । तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति । स सततं

शिवप्रियो भवति । स शिवसायुज्यमेति । न स पुनरावर्तते न स पुनरा-
चर्तते । ब्रह्मैव भवति । इत्याह भगवान्ब्रह्मेत्युपनिषत् ॥ ३६ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

इति शरभोपनिषत्समाप्ता ॥ ५२ ॥

स्कन्दोपनिषत् ॥ ५३ ॥

यत्रासंभिन्नतां याति स्वातिरिक्तमिदाततिः ।

संविन्मात्रं परं ब्रह्म तत्स्वमात्रं विजृम्भते ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

अच्युतोऽस्मि महादेव तव कारुण्यलेशकः । विज्ञानघन एवास्मि शिवोऽस्मि
किमतः परम् ॥ १ ॥ न निजं निजवद्भात्यन्तःकरणजृम्भणात् । अन्तःकरणनाशेन
संविन्मात्रस्थितो हरिः ॥ २ ॥ संविन्मात्रस्थितश्चाहमजोऽस्मि किमतः परम् ।
व्यतिरिक्तं जडं सर्वं स्वप्नवच्च विनश्यति ॥ ३ ॥ चिज्जडानां तु यो द्रष्टा
सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः । स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः ॥ ४ ॥
स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः । स एव हि परं ब्रह्म तद्ब्रह्माहं
न संशयः ॥ ५ ॥ जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः । तुषेण
बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः ॥ ६ ॥ एवं बद्धस्तथा जीवः कर्मनाशे
सदाशिवः । पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ॥ ७ ॥ शिवाय
विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे । शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः
॥ ८ ॥ यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः । यथान्तरं न पश्यामि
तथा मे स्वस्तिरायुषि ॥ ९ ॥ यथान्तरं न मेदाः स्युः शिवकेशवयोस्तथा । देहो
देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः । त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन
पूजयेत् ॥ १० ॥ अमेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः । ज्ञानं मनोमल-
त्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ ११ ॥ ब्रह्मामृतं पिवेन्नैक्षमाचरेद्देहरक्षणे ।
वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते । इत्येवमाचरेद्दीमान्स एव
मुक्तिमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ श्रीपरमधाम्ने स्वस्ति चिरायुष्योन्नम इति । विरिञ्चिना-
रायणशंकरात्मकं नृसिंह देवेश तव प्रसादतः । अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमव्ययं
वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते ॥ १३ ॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति
सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ १४ ॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः

समिन्धते । विष्णोर्थत्परमं पदमित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासन-
मिति वेदानुशासनमित्युपनिषत् ॥ १५ ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥
इति स्कन्दोपनिषत्समाप्ता ॥ ५३ ॥

त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ ५४ ॥

यत्रापहवतां याति स्वाविद्यापदविभ्रमः ।

तन्निपाद्वारायणाख्यं स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

अथ परमतत्त्वरहस्यं जिज्ञासुः परमेष्ठी देवमानेन सहस्रसंवत्सरं तपश्चचार ।
सहस्रवर्षेऽतीतेऽत्युग्रतीव्रतपसा प्रसन्नं भगवन्तं महाविष्णुं ब्रह्मा परिपृच्छति
भगवन् परमतत्त्वरहस्यं मे ब्रूहीति । परमतत्त्वरहस्यवक्ता त्वमेव नान्यः कश्चि-
दस्ति तत्कथमिति । तदेवोच्यते । त्वमेव सर्वज्ञः । त्वमेव सर्वशक्तिः । त्वमेव
सर्वाधारः । त्वमेव सर्वस्वरूपः । त्वमेव सर्वेश्वरः । त्वमेव सर्वप्रवर्तकः ।
त्वमेव सर्वपालकः । त्वमेव सर्वनिवर्तकः । त्वमेव सदसद्विष्मकः । त्वमेव
सदसद्विलक्षणः । त्वमेवान्तर्बहिर्व्यापकः । त्वमेवातिसूक्ष्मतरः । त्वमेवाति-
महतो महीयान् । त्वमेव सर्वमूलाविद्यानिवर्तकः । त्वमेवाविद्याविहारः ।
त्वमेवाविद्याधारकः । त्वमेव विद्यावेद्यः । त्वमेव विद्यास्वरूपः । त्वमेव विद्या-
तीतः । त्वमेव सर्वकारणहेतुः । त्वमेव सर्वकारणसमष्टिः । त्वमेव सर्वकारण-
व्यष्टिः । त्वमेवाखण्डानन्दः । त्वमेव परिपूर्णानन्दः । त्वमेव निरतिशयानन्दः ।
त्वमेव तुरीयतुरीयः । त्वमेव तुरीयातीतः । त्वमेवानन्तोपनिषद्विमृग्यः ।
त्वमेवाखिलशास्त्रैर्विमृग्यः । त्वमेव ब्रह्मेशानपुरन्दरपुरोगैरखिलामरैरखिला-
गमैर्विमृग्यः । त्वमेव सर्वमुमुक्षुभिर्विमृग्यः । त्वमेवामृतमयैर्विमृग्यः । त्वमे-
वामृतमयस्त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयः । त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वं त्वमेव
सर्वम् । त्वमेव मोक्षस्त्वमेव मोक्षदस्त्वमेवाखिलमोक्षसाधनम् । न किञ्चिदस्ति
त्वद्व्यतिरिक्तम् । त्वद्व्यतिरिक्तं यत्किञ्चित्प्रतीयते तत्सर्वं बाधितमिति निश्चितम् ।
तस्मात्त्वमेव वक्ता त्वमेव गुरुस्त्वमेव पिता त्वमेव सर्वनियन्ता त्वमेव सर्वं
त्वमेव सदा ध्येय इति सुनिश्चितः । परमतत्त्वज्ञस्तुवात्र महाविष्णुरतिप्रसन्नो
भूत्वा साधु साध्विति साधुप्रशंसापूर्वं सर्वं परमतत्त्वरहस्यं ते कथयामि ।
सावधानेन शृणु । ब्रह्मन् देवदर्शीत्याख्याथर्वणशाखायां परमतत्त्वरहस्याख्या-

थर्वणमहानारायणोपनिषदि गुरुशिष्यसंवादः पुरातनः प्रसिद्धतया जागर्ति । पुरा तत्स्वरूपज्ञानेन महान्तः सर्वं ब्रह्मभावं गताः । यस्य श्रवणेन सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति । यस्य ज्ञानेन सर्वरहस्यं विदितं भवति । तत्स्वरूपं कथमिति । शान्तो दान्तोऽतिविरक्तः सुशुद्धो गुरुभक्तस्तपोनिष्ठः शिष्यो ब्रह्मनिष्ठं गुरुमासाद्य प्रदक्षिणपूर्वकं दण्डवत्प्रणम्य प्राञ्जलिभूत्वा विनयेनोपसङ्गम्य भगवन् गुरो मे परमतत्त्वरहस्यं विविच्य वक्तव्यमिति । अस्यादरपूर्वकमिति हर्षेण शिष्यं बहुकृत्य गुरुर्वदति । परमतत्त्वरहस्योपनिषत्क्रमः कथ्यते सावधानेन श्रूयताम् । कथं ब्रह्म । कालत्रयाबाधितं ब्रह्म । सर्वकालाबाधितं ब्रह्म । सगुण-निर्गुणस्वरूपं ब्रह्म । आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म । सर्वं खल्विदं ब्रह्म । मायातीतं गुणातीतं ब्रह्म । अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म । अद्वितीयपरमानन्दशुद्धबुद्ध-मुक्तसत्यस्वरूपव्यापकाभिज्ञापरिच्छिन्नं ब्रह्म । सच्चिदानन्दं स्वप्रकाशं ब्रह्म । मनोवाचामगोचरं ब्रह्म । अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म । अमितवेदान्तवेद्यं ब्रह्म । देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म । सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म । तुरीयं निराका-रमेकं ब्रह्म । अद्वैतमनिर्वाच्यं ब्रह्म । प्रणवात्मकं ब्रह्म । प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म । प्रणवाद्यखिलमन्त्रात्मकं ब्रह्म । पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म । किं तत्पादचतुष्टयं ब्रह्म भवति । अविद्यापादः सुविद्यापादश्चानन्दपादस्तुरीयपादश्चेति । तुरीयपादस्तु-रीयतुरीयं तुरीयातीतं च । कथं पादचतुष्टयस्य भेदः । अविद्यापादः प्रथमः पादो विद्यापादो द्वितीयः आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीयपादस्तुरीय इति । मूला-विद्या प्रथमपादे नान्यत्र । विद्यानन्दतुरीयांशः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्ठन्ति । एवं तर्हि विद्यादीनां भेदः कथमिति । तत्तत्प्राधान्येन तत्तद्व्यपदेशः । वस्तुत-स्त्वभेद एव । तत्राधस्तनमेकं पादमविद्याशबलं भवति । उपरितनपादत्रयं शुद्धबोधानन्दलक्षणममृतं भवति । तच्चालौकिकपरमानन्दलक्षणाखण्डामित-तेजोराशिर्ज्वलति । तच्चानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसात्मकं भवति । तत्र मध्यमपादमध्यप्रदेशोऽमिततेजःप्रवाहाकारतया नित्यवैकुण्ठं विभाति । तच्च निरतिशयानन्दाखण्डब्रह्मानन्दनिजमूर्त्याकारेण ज्वलति । अपरिच्छिन्नमण्ड-लानि यथा दृश्यन्ते तद्वदखण्डानन्दामितवैष्णवदिव्यतेजोराश्यन्तर्गतविलस-न्महाविष्णोः परमं पदं विराजते । दुरधोदधिमध्यस्थितामृतामृतकलशवद्वैष्णवं धाम परमं संदृश्यते । सुदर्शनदिव्यतेजोन्तर्गतः सुदर्शनपुरुषो यथा सूर्यमण्ड-लान्तर्गतः सूर्यनारायणोऽमितापरिच्छिन्नाद्वैतपरमानन्दलक्षणतेजोराश्यन्तर्गतः

आदिनारायणस्तथा संदृश्यते । स एव तुरीयं ब्रह्म स एव तुरीयातीतः स एव विष्णुः स एव समस्तब्रह्मवाचकवाच्यः स एव परंज्योतिः स एव मायातीतः स एव गुणातीतः स एव कालातीतः स एवाखिलकर्मातीतः स एव सत्योपाधिरहितः स एव परमेश्वरः स एव चिरंतनः पुरुषः प्रणवाद्यखिलमन्त्रवाचकवाच्य आद्यन्तशून्य आदिदेशकालवस्तुतुरीयसंज्ञानित्यपरिपूर्णः पूर्णः सत्यसंकल्प आत्मारामः कालत्रयाबाधितनिजस्वरूपः स्वयंज्योतिः स्वयंप्रकाशमयः स्वसमानाधिकरणशून्यः स्वसमानाधिकशून्यो न दिवान्निविभागो न संवत्सरादिकालविभागः स्वानन्दमयानन्ताचिन्त्यविभव आत्मान्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा तुरीयात्मेत्यादिवाचकवाच्योऽद्वैतपरमानन्दो विभुर्नित्यो निष्कलङ्को निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिदिति य एवं वेद स पुरुषस्सदीयोपासनया तस्य सायुज्यमेतीत्यसंशयमित्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्यार्थवर्णत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु पादचतुष्टयस्वरूपनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथेति होवाच ऋचात्रो गुरुं भगवन्तम् । भगवन्वैकुण्ठस्य नारायणस्य च नित्यत्वमुक्तम् । स एव तुरीयमित्युक्तमेव । वैकुण्ठः साकारो नारायणः साकारश्च । तुरीयं तु निराकारम् । साकारः सावयवो निरवयवं निराकारम् । तस्मात्साकारमनित्यं नित्यं निराकारमिति श्रुतेः । यद्यत्सावयवं तत्तदनित्यमित्यनुमानाच्चेति प्रत्यक्षेण दृष्टत्वाच्च । अतस्तयोरनित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति । कथमुक्तं नित्यत्वमिति । तुरीयमक्षरमिति श्रुतेः । तुरीयस्य नित्यत्वं प्रसिद्धम् । नित्यत्वानित्यत्वे परस्परविरुद्धधर्मौ । तयोरेकस्मिन्ब्रह्मण्यत्यन्तविरुद्धं भवति । तस्माद्वैकुण्ठस्य च नारायणस्य च नित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति । सत्यमेव भवतीति देशिकं परिहरति । साकारस्तु द्विविधः—सोपाधिको निरुपाधिकश्च । तत्र सोपाधिकः साकारः कथमिति । आदिद्यकमखिलकार्यकारणजालमविद्यापाद एव नान्यत्र । तस्मात्समस्ताविद्योपाधिः साकारः सावयव एव । सावयवत्वादवश्यमनित्यं भवत्येव । सोपाधिकसाकारो वर्णितः । तर्हि निरुपाधिकसाकारः कथमिति । निरुपाधिकसाकारस्त्रिविधः—ब्रह्मविद्यासाकारश्चानन्दसाकार उभयात्मकसाकारश्चेति । त्रिविधसाकारोऽपि पुनर्द्विविधो भवति—नित्यसाकारो मुक्तसाकारश्चेति । नित्यासाकारस्त्वाद्यन्तशून्यः शाश्वतः ।

उपासनया ये मुक्तिं गतास्तेषां साकारो मुक्तसाकारः । तस्याखण्डज्ञाने-
नाविर्भावो भवति । सोऽपि शाश्वतः । मुक्तसाकारस्त्वैच्छिक इति । अन्ये
चदन्ति शाश्वतत्वं कथमिति । अद्वैताखण्डपरिपूर्णनिरतिशयपरमानन्दशुद्ध-
शुद्धमुक्तसत्यात्मकब्रह्म चैतन्यसाकारत्वात् निरुपाधिकसाकारस्य नित्यत्वं सिद्ध-
मेव । तस्मादेव निरुपाधिकसाकारस्य निरवयवत्वात्स्वाधिकमपि दूरतो निर-
स्तमेव । निरवयवं ब्रह्मचैतन्यमिति सर्वोपनिषत्सु सर्वशास्त्रसिद्धान्तेषु श्रूयते ।
अथ च विद्यानन्दतुरीयाणामभेद एव श्रूयते । सर्वत्र विद्यादिसाकारभेदः
कथमिति । सत्यमेवोक्तमिति देशिकः परिहरति । विद्याप्राधान्येन विद्यासा-
कारः आनन्दप्राधान्येनानन्दसाकारः उभयप्राधान्येनोभयात्मकसाकार-
श्चेति । प्राधान्येनात्र भेद एव । स भेदो वस्तुतस्त्वभेद एव । भगव-
न्नाखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः साकारनिराकारौ विरुद्धधर्मौ । विरु-
द्धोभयात्मकत्वं कथमिति । सत्यमेवेति गुरुः परिहरति । यथा सर्वगतस्य
निराकारस्य महावायोश्च तदात्मकस्य त्वक्पतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य
महावायुदेवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र । यथा पृथिव्यादीनां व्यापकशरीराणां
देवविशेषाणां च तद्विलक्षणतदभिन्नव्यापकापरिच्छिन्ना निजमूर्त्यांकारदेवताः
श्रूयन्ते सर्वत्र तद्वत्परब्रह्मणः सर्वात्मकस्य साकारनिराकारभेदविरोधो नास्त्येव
विविधविविचित्रानन्तशक्तेः परब्रह्मणः स्वरूपज्ञानेन विरोधो न विद्यते ।
तदभावे सत्यनन्तविरोधो विभाति । अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वद्वैतपरमा-
नन्दलक्षणपरब्रह्मणः परमतत्त्वपरमविभवानुसंधानं स्वीयत्वेन श्रूयते सर्वत्र ।
सर्वपरिपूर्णस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम् । अन्यथा
सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं
यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत ।
तस्मात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ । तथाविधस्याद्वै-
तपरमानन्दलक्षणस्यादिनारायणस्योन्मेषनिमेषाभ्यां मूलाविद्योदयस्थितिलया
जायन्ते । कदाचिदात्मारामस्याखिलपरिपूर्णस्यादिनारायणस्य स्वेच्छानुसा-
रेणोन्मेषो जायते । तस्मात्परब्रह्मणोऽधस्तनपादे सर्वकारणे मूलकारणा-
व्यक्ताविर्भावो भवति । अव्यक्तान्मूलाविर्भावो मूलाविद्याविर्भावश्च ।
तस्मादेव सच्छब्दवाच्यं ब्रह्माविद्याशब्दं भवति । ततो महत् । महजोऽहं-
कारः । अहंकारात्पञ्चतन्मात्राणि । पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि ।

पञ्चमहाभूतेभ्यो ब्रह्मैकपादव्यासमेकमविद्याण्डं जायते । तत्र तत्त्वतो गुणातीतशुद्धसस्त्वमयो लीलागृहीतनिरतिशयानन्दलक्षणो मायोपाधिको नारायण आसीत् । स एव नित्यपरिपूर्णः पादविभूतिवैकुण्ठनारायणः । स चानन्तकोटिब्रह्माण्डानामुदयस्थितिलयाद्यखिलकार्यकारणजालपरमकारण-कारणभूतो महामायातीतस्तुरीयः परमेश्वरो जयति । तस्मात्स्थूलविराट्-स्वरूपो जायते । स सर्वकारणमूलं विराट्स्वरूपो भवति । स चानन्तशीर्षा पुरुष अनन्ताक्षिपाणिपादो भवति । अनन्तश्रवणः सर्वमावृत्त्य तिष्ठति । सर्वव्यापको भवति । सगुणनिर्गुणस्वरूपो भवति । ज्ञानबलैश्वर्यशक्तितेजः-स्वरूपो भवति । विविधविचित्रानन्तजगदाकारो भवति । निरतिशयानन्द-मयानन्तपरमविभूतिसमष्ट्या विश्वाकारो भवति । निरतिशयनिरङ्कुशसर्वज्ञ-सर्वशक्तिसर्वनियन्तृत्वाद्यनन्तकल्याणगुणाकारो भवति । वाचामगोचरान-न्तदिव्यतेजोराश्याकारो भवति । समस्ताविद्याण्डव्यापको भवति । स चानन्तमहामायाविलासानामधिष्ठानविशेषनिरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षण-परब्रह्मविलासविग्रहो भवति । अस्यैकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि स्थावराणि च जायन्ते । तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैकनारायणावतारो जायते । नारायणाद्धिरण्यगर्भो जायते । नारायणादण्डविराट्स्वरूपो जायते । नारा-यणादखिललोकस्रष्टृप्रजापतयो जायन्ते । नारायणादेकादशरुद्राश्च जायन्ते । नारायणादखिललोकाश्च जायन्ते । नारायणादिन्द्रो जायते । नारायणात्सर्वे देवाश्च जायन्ते । नारायणाद्वादशादित्याः सर्वे वसवः सर्वे ऋषयः सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते । नारा-यणात्प्रवर्तन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते । अथ नित्योऽक्षरः परमः स्वराट् । ब्रह्मा नारायणः । शिवश्च नारायणः । शक्रश्च नारायणः । दिशश्च नारा-यणः । विदिशश्च नारायणः । कालश्च नारायणः । कर्माखिलं च नारा-यणः । मृतामूर्तं च नारायणः । कारणात्मकं सर्वं कार्यात्मकं सकलं नारायणः । तदुभयविलक्षणो नारायणः । परंज्योतिः स्वप्रकाशमयो ब्रह्मानन्दमयो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् । न स समानाधिक इत्यसंशयं परमार्थतो य एवं वेद । सकलबन्धांदिहत्वा मृत्युं तीर्त्वा स मुक्तो भवति ।

स मुक्तो भवति । य एवं विदित्वा सदा तमुपास्ते पुरुषः स नारायणो भवति स नारायणो भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु परब्रह्मणः साकारनिराकार-
स्वरूपनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ छात्रस्तथेति होवाच । भगवन्देशिक परमतस्त्वज्ञ सविलासमहा-
मूलाऽविद्योदयक्रमः कथितः । तदु प्रपञ्चोत्पत्तिक्रमः कीदृशो भवति ।
विशेषेण कथनीयः । तस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि । तथेत्युक्त्वा गुरुरि-
त्युवाच । यथानादिसर्वप्रपञ्चो दृश्यते । नित्योऽनित्यो वेति संशयते ।
प्रपञ्चोऽपि द्विविधः—विद्याप्रपञ्चश्चाविद्याप्रपञ्चश्चेति । विद्याप्रपञ्चस्य
नित्यत्वं सिद्धमेव नित्यानन्दचिद्विलासात्मकत्वात् । अथ च शुद्धबुद्धमुक्त-
सत्यानन्दस्वरूपत्वाच्च । अविद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वमनित्यत्वं वा कथमिति ।
प्रवाहतो नित्यत्वं वदन्ति केचन । प्रलयादिकं श्रूयमाणत्वादनित्यत्वं
वदन्त्यन्ये । उभयं न भवति । पुनः कथमिति । संकोचविकासात्म-
कमहामायाविलासात्मक एव सर्वोऽप्यविद्याप्रपञ्चः । परमार्थतो न किं-
चिदस्ति क्षणशून्यानादिमूलाऽविद्याविलासत्वात् । तत्कथमिति । एकमे-
वाद्वितीयं ब्रह्म । नेह नानास्ति किञ्चन । तस्माद्ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधित-
मेव । सत्यमेव परंब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । ततः सविलासमूलाऽविद्यो-
पसंहारक्रमः कथमिति । अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण देशिक उपदिशति ।
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवा भवति । तावता कालेन पुनस्तस्य रात्रिर्भवति ।
द्वे अहोरात्रे एक दिनं भवति । तस्मिन्नेकस्मिन्दिने आ सत्यलोकान्तमुदय-
स्थितिलया जायन्ते । पञ्चदशदिनानि पक्षो भवति । पक्षद्वयं मासो भवति ।
मासद्वयमृतुर्भवति । ऋतुत्रयमयनं भवति । अयनद्वयं वत्सरो भवति । वत्सर-
शतं ब्रह्ममानेन ब्रह्मणः परमायुःप्रमाणम् । तावत्कालस्तस्य स्थितिरुच्यते ।
स्थित्यन्तेऽण्डविराट्पुरुषः स्वांशं हिरण्यगर्भमभ्येति । हिरण्यगर्भस्य कारणं
परमात्मानमण्डपरिपालकनारायणमभ्येति । पुनर्वत्सरशतं तस्य प्रलयो
भवति । तदा जीवाः सर्वे प्रकृतौ प्रलीयन्ते । प्रलये सर्वशून्यं भवति ।
तस्य ब्रह्मणः स्थितिप्रलयावादिनारायणस्यांशेनावतीर्णस्याण्डपरिपालकस्य म-
हाविष्णोरहोरात्रिसंज्ञकौ । ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । पुनं दिनपक्षमास-
संवत्सरादिभेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते ।

स्थित्यन्ते स्वांशं महाविराट्पुरुषमभ्येति । ततः सावरणं ब्रह्माण्डं विनाशमेति । ब्रह्माण्डावरणं विनश्यति तद्धि विष्णोः स्वरूपम् । तस्य तावत्प्रलयो भवति । प्रलये सर्वशून्यं भवति । अण्डपरिपालकमहाविष्णोः स्थितिप्रलयावादिविराट्पुरुषस्याहोरात्रिसंज्ञकौ ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिमेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते आदिविराट्पुरुषः स्वांशमायोपाधिकनारायणमभ्येति । तस्य विराट्पुरुषस्य यावत्स्थितिकालस्तावत्प्रलयो भवति । प्रलये सर्वशून्यं भवति । विराट्स्थितिप्रलयौ मूलाविद्याण्डपरिपालकस्यादिनारायणस्याहोरात्रिसंज्ञकौ । ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिमेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते त्रिपाद्भिभूतिनारायणस्येच्छावशास्त्रिमेवो जायते । तस्मान्मूलाविद्याण्डस्य सावरणस्य विलयो भवति । ततः सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणा-निर्वाच्या लक्षणशून्याविर्भावतिरोभावात्मिकानाद्यखिलकारणकारणानन्तमहामायाविशेषणविशेषिता परमसूक्ष्ममूलकारणमव्यक्तं विशति । अव्यक्तं विशेष-ब्रह्मणि निरिन्धनो वैश्वानरो यथा । तस्मान्मायोपाधिक आदिनारायणस्तथा स्वस्वरूपं भजति । सर्वे जीवाश्च स्वस्वरूपं भजन्ते । यथा जपाकुसुमसाक्षि-ध्यातृक्तस्फटिकप्रतीतिसदभावे शुद्धस्फटिकप्रतीतिः । ब्रह्मणोऽपि मायोपाधि-वशात्सगुणपरिच्छिन्नादिप्रतीतिरुपाधिविलयाच्चिगुणनिरवयवादिप्रतीतिरित्युप-निषत् ॥ १ ॥

इत्यार्यवर्णत्रिपाद्भिभूतिमहानारायणोपनिषत्सु मूलाविद्याप्रलयस्वरूपं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ ततस्तस्मान्निर्विशेषमतिनिर्मलं भवति । अविद्यापादमतिशुद्धं भवति । शुद्धबोधानन्दलक्षणकैवल्यं भवति । ब्रह्मणः पादचतुष्टयं निर्विशेषं भवति । अखण्डलक्षणाखण्डपरिपूर्णसच्चिदानन्दस्वप्रकाशं भवति । अद्वितीयमनीश्वरं भवति । अखिलकार्यकारणस्वरूपमखण्डचिद्धनानन्दस्वरूपमतिदिव्यमङ्गला-कारं निरतिशयानन्दतेजोराशिविशेषं सर्वपरिपूर्णानन्तचिन्मयस्तम्भाकारं शुद्धबोधानन्दविशेषाकारमनन्तचिद्विलासविभूतिसमष्ट्याकारमद्भुतानन्दाश्चर्य-विभूतिविशेषाकारमनन्तपरिपूर्णानन्ददिव्यसौदामिनीनिचयाकारम् । एव-माकारमद्वितीयाखण्डानन्दब्रह्मस्वरूपं निरूपितम् । अथ-छात्रो वदति ।

भगवन्पादभेदादिकं कथं कथमद्वैतस्वरूपमिति निरूपितम् । देशिकः परिहरति । विरोधो न विद्यते ब्रह्माद्वितीयमेव सत्यम् । तथैवोक्तं च । ब्रह्मभेदो न कथितो ब्रह्मव्यतिरिक्तं न किञ्चिदस्ति । पादभेदादिकथनं तु ब्रह्मस्वरूपकथनमेव । तदेवोच्यते पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म तत्रैकमविद्यापादं । पादत्रयममृतं भवति । शाखान्तरोपनिषत्स्वरूपमेव निरूपितम् । तमसस्तु परं ज्योतिः परमानन्दलक्षणम् । पादत्रयात्मकं ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परमिति । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेवंविद्भानमृत इह भवति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्त्वमसः परमुच्यते । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं परं ज्योतिस्त्वमस उपरि विभाति । यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् । तदेव ऋतं तद्गु सत्यमाहुस्तदेव सत्यं तदेव ब्रह्म परमं विशुद्धं कथ्यते । तमःशब्देनाविद्या । पादोऽस्य विश्वा भूतानि । त्रिपादस्यामृतं दिवि । त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः । पादोऽस्येहाभवत्पुनः । ततो विश्वं व्यक्रामत् । साशनाऽनशने अभि । विद्यानन्दतुरीयाख्यपादत्रयममृतं भवति । अघशिष्टमविद्याश्रयमिति । आत्मारामस्यानादिनारायणस्य कीदृशाद्गुण्मेषनिमेषौ तयोः स्वरूपं कथमिति । गुरुर्वदति । परागृष्टिर्गुण्मेषः । प्रत्यगृष्टिर्निमेषः । प्रत्यगृष्ट्या स्वरूपचिन्तनमेव निमेषः । परागृष्ट्या स्वरूपचिन्तनमेवोन्मेषः । यावदुन्मेषकालस्तावन्निमेषकालो भवति । अविद्यायाः स्थितिरुन्मेषकाले । निमेषकाले तस्याः प्रलयो भवति । यथा उन्मेषो जायते तथा चिरंतनातिसूक्ष्मवासनाबलात्पुनरविद्याया उदयो भवति । यथापूर्वमविद्याकार्याणि जायन्ते । कार्यकारणोपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेदोऽपि दृश्यते । कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरिश्चरः । ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी । तत्संस्कारानुसारिणी विविधानन्तमहामायाशक्तिसंसेवितानन्तमहामाया जालजननमन्दिरा महविष्णोः क्रीडाशरीररूपिणी ब्रह्मादीनामगोचरा । एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति नान्ये तरन्ति कदाचन । विविधोपायैरपि अविद्याकार्याण्यन्तःकरणान्यतीत्य कालाननु तानि जायन्ते । ब्रह्मचैतन्यं तेषु प्रतिबिम्बितं भवति । प्रतिबिम्बा एव जीवा इति कथ्यन्ते । अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति । गहाभूतोत्यसूक्ष्माङ्गो-

पाधिकाः सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति । बुद्धिप्रतिबिम्बितचैतन्यं जीवा इत्यपरे
मन्यन्ते । एतेषामुपाधीनामत्यन्तभेदो न विद्यते । सर्वपरिपूर्णो नारायणस्त्व-
नया निजया क्रीडति स्वेच्छया सदा । तद्वदविद्यमानफलगुविषयसुखाशयाः
सर्वे जीवाः प्रधावन्त्यसारसंसारचक्रे । एवमनादिपरम्परा वर्ततेऽनादिसंसार-
विपरीतअमादित्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु महामायातीताखण्डाद्वैत-

परमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परमतत्त्वस्वरूपनिरूपणं

नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इति पूर्वकाण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ शिष्यो वदति गुहं भगवन्तं नमस्कृत्य भगवन् सर्वात्मना नष्टाया
अविद्यायाः पुनरुदयः कथम् । सत्यमेवेति गुरुरिति होवाच । प्राबृ-
कालप्रारम्भे यथा मण्डूकादीनां प्रादुर्भावस्तद्वत्सर्वात्मना नष्टाया अवि-
द्याया उन्मेषकाले पुनरुदयो भवति । भगवन् कथं जीवानामनादि-
संसारभ्रमः । तन्निवृत्तिर्वा कथमिति । कथं मोक्षमार्गस्वरूपं च । मोक्ष-
साधनं कथमिति । को वा मोक्षोपायः । कीदृशं मोक्षस्वरूपम् । का वा
सायुज्यमुक्तिः । एतत्सर्वं तत्त्वतः कथनीयमिति । अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण
शिष्यं बहूकृत्य गुरुर्वदति श्रूयतां सावधानेन । कुत्सितानन्तजन्माभ्य-
स्तात्यन्तोऽकृष्टविविधविचित्रानन्तदुष्कर्मवासनाजालविशेषैर्देहात्मविवेको न
जायते । तस्मादेव दृढतरदेहात्मभ्रमो भवति । अहमज्ञः किञ्चिज्ज्ञोऽहमहं
जीवोऽहमत्यन्तदुःखाकारोऽहमनादिसंसारितीति भ्रमवासनावलात्संसार एव
प्रवृत्तिस्तन्निवृत्त्युपायः कदापि न विद्यते । मिथ्याभूतान्स्वप्नतुल्यान्विष-
यभोगाननुभूय विविधानसंख्यानतितुल्यभान्मनोरथाननवरतमाशास्यमानः
अतृप्तः सदा परिधावति । विविधविचित्रस्थूलसूक्ष्मोऽकृष्टनिरुष्टानन्तदे-
हान्परिगृह्य तत्तद्देहविहितविविधविचित्राऽनेकशुभाशुभप्रारब्धकर्मण्यनु-
भूय तत्तत्कर्मफलवासनाजालवासितान्तःकरणानां पुनःपुनस्तत्कर्मफल-
विषयप्रवृत्तिरेव जायते । संसारनिवृत्तिमार्गप्रवृत्तिः कदापि न जायते ।
तस्मात् निष्पन्नेऽपि भाति । इष्टमेवाऽतिष्ठमिव भात्यनादिसंसारविपरीतअ-

मात् । तस्मात्सर्वेषां जीवानामिष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिर्दुःखबुद्धिश्च भवति । परमार्थतत्त्वबाधितब्रह्मसुखविषये प्रवृत्तिरेव न जायते । तत्स्वरूपज्ञानाभावात् । तत्किमिति न विद्यते । कथं बन्धः कथं मोक्ष इति विचाराभावाच्च । तत्कथमिति । अज्ञानप्राबल्यात् । कस्मादज्ञानप्राबल्यमिति । भक्तिज्ञानवैराग्यवासनाभावाच्च । तदभावः कथमिति । अत्यन्तान्तःकरणमलिनविशेषात् । अतः संसारतरणोपायः कथमिति । देशिकस्तमेव कथयति । सकलवेदशास्त्रसिद्धान्तरहस्यजन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाकवशात्सद्भिः सङ्गो जायते । तस्माद्विधिलिषेधविवेको भवति । ततः सदाचारप्रवृत्तिर्जायते । सदाचारादखिलदुरितक्षयो भवति । तस्मादन्तःकरणमतिविमलं भवति । ततः सद्गुरुकटाक्षमन्तःकरणमाकाङ्क्षति । तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेण सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति । सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति । श्रेयोविज्ञाः सर्वे प्रलयं यान्ति । सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेवायान्ति । यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरुपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तरवज्ञानं न विद्यते । तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेणाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति । यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथाश्रवणध्यानादौ श्रद्धा जायते । तस्माद्बुद्धयस्थितानादिदुर्वासनाग्रन्थिविनाशो भवति । ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनश्यन्ति । तस्माद्बुद्धयपुण्डरीककर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति । ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते । ततो वैराग्यमुदेति । वैराग्याद्बुद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति । अभ्यासात्तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति । पक्कविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति । ततः शुभाशुभकर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति । ततो दृढतरशुद्धसात्त्विकवासनया भक्त्यतिशयो भवति । भक्त्यतिशयेन नारायणः सर्वमयः सर्वावस्थासु विभाति । सर्वाणि जगन्ति नारायणमयानि प्रविभान्ति । नारायणव्यतिरिक्तं न किञ्चिदस्ति । इत्येतद्बुद्ध्या विहरत्युपासकः सर्वत्र । निरन्तस्समाधिपरंपराभिर्जगदीश्वराकाराः सर्वत्र सर्वावस्थासु प्रविभान्ति । अस्य महापुरुषस्य क्वचित्क्वचिदीश्वरसाक्षात्कारो भवति । अस्य देहत्यागेच्छा यदा भवति तदा वैकुण्ठपार्यदाः सर्वे समायान्ति । ततो भगवद्भ्यानपूर्वकं हृदयंकमले व्यवस्थितमात्मानं स्वमन्तरात्मानं संचिन्त्य सम्यगुपचारैरभ्यर्च्य हंसमन्त्रमुच्चरन्सर्वाणि द्वाराणि संयम्य सम्यग्ज्ञानो निरुध्य चोर्ध्वगेन वायुना सह प्रणवेन प्रणवानुसंधानपूर्वकं शनैः शनैराब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गत्य सोऽहमिति मन्त्रेण द्वाद-

शान्तस्थितपरमात्मानमेकीकृत्य पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुनः सोऽहमिति मन्त्रेण
 षोडशान्तस्थितज्ञानात्मानमेकीकृत्य सभ्यगुपचारैरभ्यर्च्य प्राकृतपूर्वदेहं परि-
 त्यज्य पुनः कल्पितमन्त्रमयशुद्धब्रह्मतेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसारू-
 प्यविग्रहं परिगृह्य सूर्यमण्डलान्तर्गतानन्तदिव्यचरणारविन्दाङ्गुष्ठनिर्गतनिर-
 तिशयानन्दमयापरनदीप्रवाहमाकृष्य भावनयात्र स्नात्वा वस्त्राभरणाद्युप-
 चारैरात्मपूजां विधाय साक्षान्नारायणो भूत्वा ततो गुरुनमस्कारपूर्वकं
 प्रणवगरुडं ध्यात्वा ध्यानेनाविर्भूतमहाप्रणवगरुडं पञ्चोपचारैराराध्य गुर्वनु-
 ज्ञया प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः समस्तासाधार-
 णचिह्नचिह्नितो महाविष्णोः समस्तासाधारणदिव्यभूषणैर्भूषितः सुदर्शनपुरुषं
 पुरस्कृत्य विश्वक्सेनपरिपालितो वैकुण्ठपार्षदैः परिवेष्टितो नभोमार्गमाविश्य
 पार्श्वद्वयस्थितानेकपुण्यलोकानतिक्रम्य तत्रत्यैः पुण्यपुरुषैरभिपूजितः सत्य-
 लोकमाविश्य ब्रह्माणमभ्यर्च्य ब्रह्मणा च सत्यलोकवासिभिः सर्वैरभिपूजितः
 शैवमीशानकैवल्यमासाद्य शिवं ध्यात्वा शिवमभ्यर्च्य शिवगणैः सर्वैः शिवेन
 चाभिपूजितो महर्षिमण्डलान्यतिक्रम्य सूर्यसोममण्डले भित्त्वा कीलकनारायणं
 ध्यात्वा ध्रुवमण्डलस्य दर्शनं कृत्वा भगवन्तं ध्रुवमभिपूज्य ततः शिशुमार-
 चक्रं विमिष्य शिशुमारप्रजापतिमभ्यर्च्य चक्रमध्यगतं सर्वाधारं सनातनं
 महाविष्णुमाराध्य तेन पूजितस्तत उपर्युपरि गत्वा परमानन्दं प्राप्य प्रका-
 शते । ततो वैकुण्ठवासिनः सर्वे समायान्ति तान्सर्वान्मुसंपूज्य तैः सर्वै-
 रभिपूजितश्चोपर्युपरि गत्वा चिरजानदीं प्राप्य तत्र स्नात्वा भगवच्छानपूर्वकं
 पुनर्निमज्ज्य तत्रापञ्चीकृतभूतोऽयं सूक्ष्माङ्गभोगसाधनं सूक्ष्मशरीरमुत्सृज्य
 केवलमन्त्रमयदिव्यतेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसारूप्यविग्रहं परि-
 गृह्य तत उन्मज्ज्यात्मपूजां विधाय प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं ब्रह्ममयवैकुण्ठमा-
 विश्य तत्रत्यान्विशेषेण संपूज्य तन्मध्ये च ब्रह्मानन्दमयानन्तप्राकारप्रासा-
 दतोर्णविमानोपवनावलिभिर्ज्वलच्छिखरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवय-
 ननिरतिशयनिरवधिकब्रह्मानन्दाचलो विराजते । तदुपरि ज्वलति निरतिशया-
 नन्ददिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दलक्षणं विभाति ।
 तदन्तराले चिन्मयवेदिका आनन्दवेदिकानन्दवनविभूषिता । तदभ्यन्तरे
 अमिततेजोराशिस्तदुपरिज्वलति । परममङ्गलासनं विराजते । तत्पद्मकर्णि-
 कायां शुद्धशेषभोगासनं विराजते । तस्योपरि समासीनमानन्दपरिपाल-

कमादिनारायणं ध्यात्वा तमीश्वरं विविधौपचारैराराध्य प्रदक्षिणमस्कारा-
न्विधाय तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पञ्चवैकुण्ठानतीत्याण्डविरादकैवल्यं
प्राप्य तं समाराध्योपासकः परमानन्दं प्रापेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु संसारतरणोपायकथनद्वारा परम-

मोक्षमार्गस्वरूपनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यत उपासकः परमानन्दं प्राप सावरणं ब्रह्माण्डं च भित्त्वा परितः समञ्च-
कौच्य ब्रह्माण्डस्वरूपं निरीक्ष्य परमार्थतत्त्वस्वरूपं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य समस्त-
वेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे समक्षाः
परमर्षयश्चाण्डाभ्यन्तरप्रपञ्चैकदेशमेव वर्णयन्ति । अण्डस्वरूपं न जानन्ति ।
ब्रह्माण्डाद्वहिःप्रपञ्चज्ञानं न जानन्त्येव । कुतोऽण्डान्तरान्तर्वहिःप्रपञ्चज्ञानं
कूरतो मोक्षप्रपञ्चज्ञानमविद्याप्रपञ्चज्ञानं चेति कथं ब्रह्माण्डस्वरूपमिति ।
कुङ्कुटाण्डाकारं महदादिसमष्ट्याकारमण्डं तपनीयमयं तसज्जाम्वूनदप्रभमुख-
स्कोटिदिवाकरार्थं चतुर्विधसृष्ट्युपलक्षितं महाभूतैः पञ्चभिरावृतं महदहंकृति-
तमोभिश्च भूलग्रहृत्वा परिवेष्टितम् । अण्डभित्तिविशाकं सपादकोटियोजन-
प्रमाणम् । एकैसावरणं तथैव । अण्डप्रमाणं परितोऽयुतद्वयकोटियोजनप्रमाणं
महामण्डूकाद्यनन्तशक्तिभिरधिष्ठितं नारायणक्रीडाकन्तुकं परमाणुवद्विष्णुलो-
कसुसंलभमदृष्टाश्चतविधविचित्रानन्तविशेषैरुपलक्षितम् । अस्य ब्रह्माण्डस्य
समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति । चतु-
र्मुखपञ्चमुखषण्मुखसप्तमुखष्टमुखद्विंशत्युत्तरादिस्थित्याक्रमेण सहस्रावधिसुखान्तैर्नाराय-
णांशै रजोगुणप्रधानैरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः
सत्त्वतमोगुणप्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकर्तृभिरधिष्ठितानि महाजलौघमत्स्यबुद्बु-
दानन्तसङ्घवद्भ्रमन्ति । क्रीडासक्तजालककरतलामलकवृन्दवन्महाविष्णोः कर-
तले विलसन्त्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि । जलधन्त्रश्वटमालिकाजालवन्महावि-
ष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति । समस्त-
ब्रह्माण्डान्तर्वहिःप्रपञ्चरहस्यं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य विविधविचित्रानन्तपरमविभू-
तिसमष्टिविशेषान्त्वमवलोक्यात्माश्रयांमृतसागरे निमज्ज्य निरतिशयानन्द-
पारावारो भूत्वा समस्तब्रह्माण्डजालानि समुल्लङ्घयामितापरिच्छिन्नानन्ततमः-
सागरमुत्तीर्य मूलाविद्यापुरं दृष्ट्वा विविधविचित्रानन्तमहाभायाविशेषैः

परिवेष्टितामनन्तमहामायाशक्तिसमष्ट्याकारामनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरलं-
 कृतामनन्तमहामायाविलासानां परमाधिष्ठानविशेषाकारां शश्वदमितानन्दा-
 चलोपरिविहारिणीं मूलप्रकृतिजननीमविद्यालक्ष्मीमेवं ध्यात्वा विविधोपचा-
 रैराराध्य समस्तब्रह्माण्डसमष्टिजननीं वैष्णवीं महामायां नमस्कृत्य तथा
 चानुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा महाविराट्पदं प्राप । महाविराट्स्वरूपं कथमिति ।
 समस्ताविद्यापादको विराट् । विश्वतश्चक्षुरत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत
 विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्धावापृथिवी जनयन्देव एकः । न
 सं दृशेतिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसा-
 भिक्षुसो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति । मनोवाचामगोचरमादिविराट्स्वरूपं
 ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा विविधविधिभान-
 न्तमूलाविद्याविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं प्राप । अखण्डपरिपूर्ण-
 परमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः समस्तस्वरूपविरोधकारिण्यपरिच्छिन्नतिरस्कुरिण्या-
 कारा वैष्णवी महायोगमाया भूर्तिमक्षिरनन्तमहामायाजालविशेषैः परिवेष्टिता
 तस्याः पुरमतिकौतुकमत्याश्चर्यसागरानन्दलक्षणमभूतं भवति । अविद्यासागर-
 प्रतिविम्बितनित्यवैकुण्ठप्रतिवैकुण्ठमिव विभाति । उपासकस्तत्पुरं प्राप्य योग-
 लक्ष्मीमङ्गमायां ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य तथा संपूजितश्चातुज्ञातश्चोपर्युपरि
 गत्वाऽनन्तमायाविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं प्राप ॥ तत उपरि
 पादविभूतिवैकुण्ठपुरमाभाति । अत्याश्चर्यानन्तविभूतिसमष्ट्याकारामानन्दरस-
 प्रवाहैरलंकृतमभितस्तरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैरनन्त-
 ब्रह्मवनैरभितस्तमनन्तनित्यमुकैरभिव्यासमनन्तचिन्मयप्रासादजालसंकुलम-
 नादिपादविभूतिवैकुण्ठमेवमाभाति । तन्मध्ये च चिदानन्दाचलो विभाति ॥
 तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरे परमानन्द-
 विमानं विभाति । तदभ्यन्तरसंस्थाने चिन्मयासनं विराजते । तत्पद्म-
 कर्णिकायां निरतिशयदिव्यतेजोराश्यन्तरसमासीनमादिनारायणं ध्यात्वा
 विविधोपचारैस्सं समाराध्य तेनाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा सावरण-
 मविद्याण्डं च भिरवा विद्यापादमुल्लङ्घ्य विद्याविद्ययोः सन्धौ विश्वक्सेनवैकु-
 ण्ठपुरमाभाति ॥ अनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरभितोऽनीकं प्रज्वलन्तमनन्त-
 बोधान्तरबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं शुद्धबोधविमानावलिभिर्विराजितमनन्ता-
 नन्दपर्वतैः परमकौतुकमाभाति । तन्मध्ये च कल्याणाचलोपरि शुद्धानन्द-

विमानं विभाति । तदभ्यन्तरे दिव्यमङ्गलासनं विराजते । तत्पञ्चकर्णिकायां
 ब्रह्मतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं भगवदुत्तमविभूतिविधिनियेषपरिपालकं सर्व-
 प्रवृत्तिसर्वहेतुनिमित्तकं निरतिशयलक्षणमहाविष्णुस्वरूपमखिलापवर्गपरिपाल-
 कममितविक्रममेवंविधं विष्वक्सेनं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विवि-
 धोपचारैराराध्य तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा विद्याविभूतिं प्राप्य विद्याम-
 यानन्तवैकुण्ठान्परितोऽवस्थितान्ब्रह्मतेजोमयानवलोक्योपासकः परमानन्दं
 प्राप ॥ विद्यामयानन्तसमुद्रानतिक्रम्य ब्रह्मविद्यातरङ्गिणीमासाद्य तत्र
 स्नात्वा भगवद्भ्यानपूर्वकं पुनर्निमज्ज्य मन्त्रमयशरीरमुत्सृज्य विद्यानन्दमयामृत-
 दिव्यशरीरं परिगृह्य नारायणसारूप्यं प्राप्यात्मपूजां विधाय ब्रह्ममयवैकुण्ठ-
 वासिभिः सर्वैर्नित्यमुक्तैः सुपूजितस्ततो ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्दरसनिभैः क्रीडा-
 नन्तपर्वतैरनन्तैरभिध्यासं ब्रह्मविद्यामयैः सहस्रप्राकारैरानन्दामृतमयैर्दिव्य-
 गन्धस्वभावाैश्चिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमुपासकस्त्वेवंविधं ब्रह्मविद्या-
 वैकुण्ठमाविश्य तदभ्यन्तरस्थितात्यन्तोक्तबोधानन्दप्रासादाग्रस्थितप्रणववि-
 भानोपरिस्थितामपारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदेवताममोघनिजमन्दकटाक्षेणाना-
 दिमूलाविद्याप्रलयकरीमद्वितीयासेकामनन्तमोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीमेवं ध्यात्वा
 प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य पुष्पाञ्जलिं समर्प्य स्तुत्वा
 स्तोत्रविशेषैस्त्याभिपूजितस्तदनुगतश्चोपर्युपरि गत्वा ब्रह्मविद्यातीरे गत्वा बोधा-
 नन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य बोधानन्दमयाननन्त-
 समुद्रानतिक्रम्य गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु परममङ्गलाचलश्रेणीषु ततो बोधान-
 न्दविमानपरंपरासूपासकः परमानन्दं प्राप ॥ ततः श्रीतुलसीवैकुण्ठपुरमाभाति
 परमकल्याणमनन्तविभवममिततेजोराश्याकारमनन्तब्रह्मतेजोराशिसमध्या-
 कारं चिदानन्दमयानेकप्राकारविशेषैः परिवेष्टितममितबोधानन्दाचलोपरि-
 स्थितं बोधानन्दतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं निरतिशयानन्दैरनन्तवृन्दावनै-
 रतिशोभितमखिलपवित्राणां परमपवित्रं चिद्रूपैरनन्तनित्यमुक्तैरभिध्यासमा-
 नन्दमयानन्तविमानजालैरलङ्कृतममिततेजोराश्यन्तर्गतदिव्यतेजोराशिविशेष-
 मुपासकस्त्वेवमाकारं तुलसीवैकुण्ठं प्रविश्य तदन्तर्गतदिव्यविमानोपरिस्थितां
 सर्वपरिपूर्णस्य महाविष्णोः सर्वाङ्गेषु विहारिणीं निरतिशयसौन्दर्यलावण्या-
 धिदेवतां बोधानन्दमयैरनन्तनित्यपरिजनैः परिसेवितां श्रीसखीं तुलसीमेवं
 लक्ष्मीं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य स्तुत्वा

स्त्रोत्रविशेषैस्तथाभिपूजितस्तत्रत्यैश्चाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा परमा-
नन्दतरङ्गिण्यास्तीरे गत्वा तत्र परितोऽवस्थितान्शुद्धबोधानन्दमयाननन्त-
वैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य तत्रत्यैश्चिद्रूपैः पुराणपुरुषैश्चाभि-
पूजितस्ततो गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु दिव्यगन्धानन्दपुष्पवृष्टिभिः समन्वितेषु
दिव्यमङ्गलालयेषु निरतिशयानन्दामृतसागरेष्वभिततेजोराश्याकारेषु कल्लोल-
वनसंकुलेषु ततोऽनन्तशुद्धबोधविमानजालसंकुलानन्दाचलश्रोणीधूपालकस्तत-
उपर्युपरि गत्वा विमानपरम्परास्वनन्ततेजःपर्वतराजिष्वेवं क्रमेण प्राप्य
विद्यानन्दमययोः सन्धिं तत्रानन्दतरङ्गिण्याः प्रवाहेषु ज्ञात्वा बोधानन्दवनं
प्राप्य शुद्धबोधपरमानन्दानन्दाकारवनं संततामृतपुष्पवृष्टिभिः परिवेष्टितं
परमानन्दप्रवाहैरभिव्यासं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परमकौतुकमपरिच्छिन्ना-
नन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिशोभितं तन्मध्ये च शुद्धबोधानन्दवैकुण्ठं
यदेव ब्रह्मविद्यापादवैकुण्ठं सहस्रानन्दप्राकारैः समुज्ज्वलति । अनन्तानन्दवि-
मानजालसंकुलमनन्तबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तं क्रीडानन्तमण्ड-
पविशेषैर्विशेषितं बोधानन्दमयानन्तपरमच्छन्नध्वजचामरवितानतोरणैरलंकृतं
परमानन्दन्युहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्तदिव्यतेजःपर्वतसमष्टयाकारमपरिच्छि-
न्नानन्तशुद्धबोधानन्तमण्डलं वाचाभगोचरानन्दब्रह्मतेजोराशिमण्डलमाखण्ड-
लविशेषं शुद्धानन्दसमष्टिमण्डलविशेषमखण्डचिद्वनानन्दविशेषमेवं तेजोम-
ण्डलविधं बोधानन्दवैकुण्ठमुपासकः प्रविश्य तत्रत्यैः सर्वैरभिपूजितः परमान-
न्दाचलोपर्यखण्डबोधविमानं प्रज्वलति । तदभ्यन्तरे चिन्मयासनं विराजते ।
तदुपरि विभालखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तदभ्यन्तरे समासीनमादिनारायणं
ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैः सुसंपूज्य पुष्पाञ्जलिं
समर्प्य स्तुत्वा स्त्रोत्रविशेषैः स्वरूपेणावस्थितमुपासकमवलोक्य तमुपासकमा-
दिनारायणः स्वसिंहासने सुसंस्थाप्य तद्वैकुण्ठवासिभिः सर्वैः समन्वितः समस्त-
मोक्षसाम्राज्यपट्टाभिषेकमुद्दिश्य मन्त्रपूतैरुपासकमानन्दकलशैरभिविच्य दिव्य-
मङ्गलमहावाद्यपुरःसरं विविधोपचारैरभ्यर्च्य मूर्तिमद्भिः सर्वैः स्वचिह्नैरलंकृत्य
प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मासि आवयोरन्तरं न
विद्यते त्वमेवाहम् अहमेव त्वम् इत्यभिधायैत्युक्त्वादिनारायणस्तिरोदधे
तदेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणमहानारायणोपनिषत्सु परममोक्षमार्गस्वरूपनिरूपणं

नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथोपासकस्तदाज्ञया नित्यं गरुडमारुह्य वैकुण्ठवासिभिः सर्वैः परिवेष्टितो
महासुदर्शनं पुरस्कृत्य विष्वक्सेनपरिपालितश्चोपर्युपरि गत्वा ब्रह्मानन्दवि-
भूतिं प्राप्य सर्वत्रावस्थितान्ब्रह्मानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिश-
यानन्दसागरो भूत्वाऽऽभारामानानन्दविभूतिपुरुषाननन्तानवलोक्य तांस्स-
र्वाण्युपचारैः समभ्यर्च्य तैः सर्वैरभिपूजितश्चोपासकस्तत उपर्युपरि गत्वा
ब्रह्मानन्दविभूतिं प्राप्यानन्तदिव्यतेजःपर्वतैरलंकृतान्परमानन्दलहरीवनशो-
भितानसंख्याकानानन्दसमुद्रानतिक्रम्य विविधविचित्रानन्तपरमतत्त्वविभू-
तिसमष्टिविशेषान्परमकौतुकान्ब्रह्मानन्दविभूतिविशेषानतिक्रम्योपासकः परम-
कौतुकं प्राप ॥ ततः सुदर्शनवैकुण्ठपुरमाभाति नित्यमङ्गलमनन्तविभवं
सहस्रानन्दप्राकारपरिवेष्टितमयुतकुक्ष्युपलक्षितमनन्तोत्कटज्वलद्गरमण्डलं निर-
तिशयदिव्यतेजोमण्डलं वृन्दारकपरमानन्दं शुद्धबुद्धस्वरूपमनन्तानन्दसौ-
दामिनीपरमविलासं निरतिशयपरमानन्दपारावारमनन्तैरानन्दपुरुषैश्चिद्रूपै-
रधिष्ठितम् । तन्मध्ये च सुदर्शनं महाचक्रम् । चरणं पवित्रं विततं पुराणं
येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरार्तिं
तरेम । लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रं ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य
धारा बहुधा दोहमानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु । अयुतारं
ज्वलन्तमयुतारसमष्ट्याकारं निरतिशयविक्रमविलासमनन्तदिव्यायुधदिव्य-
शक्तिसमष्टिरूपं महाविष्णोरनर्गलप्रतापविग्रहमयुतायुतकोटियोजनविशाल-
मनन्तज्वालाजालैरलंकृतं समस्तदिव्यमङ्गलनिदानमनन्तदिव्यतीर्थानां निज-
मन्दिरमेवं सुदर्शनं महाचक्रं प्रज्वलति । तस्य नाभिमण्डलसंस्थाने उपलक्ष्यते
निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः । तन्मध्ये च सहस्रारचक्रं प्रज्वलति ।
तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं परमानन्दसौदामिनीनिचयोज्वलम् । तद-
भ्यन्तरसंस्थाने षट्शतारचक्रं प्रज्वलति । तस्यामितपरमतेजः परमविहार-
संस्थानविशेषं विज्ञानघनस्वरूपम् । तदन्तराले त्रिशतारचक्रं विभाति । तच्च
परमकल्याणविलासविशेषमनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकारम् । तदभ्यन्तरे शतार-
चक्रमाभाति । तच्च परमतेजोमण्डलविशेषम् । तन्मध्ये षष्ट्यारचक्रमाभाति ।
तच्च ब्रह्मतेजः परमविलासविशेषम् । तदभ्यन्तरसंस्थाने षड्कोणचक्रं प्रज्वलति ।
तच्चापरिच्छिन्नानन्तदिव्यतेजोराश्याकारम् । तदभ्यन्तरे महानन्दपदं विभाति ।
तत्कर्णिकायां सूर्येन्दुबह्निमण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति । तत्रोप-

लक्ष्यते निरतिशयदिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने युगपदुदितानन्तको
 रविप्रकाशः सुदर्शनपुरुषो विराजते । सुदर्शनपुरुषो महाविष्णुरेव । म
 विष्णोः समस्तासाधारणचिह्नचिह्नितः । एवमुपासकः सुदर्शनपुरुषं ध्या
 विविधोपचारैराध्य प्रदक्षिणमस्कारान्विधायोपासकस्तेनाभिपूजितस्
 जुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा परमानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्योपासकः परं
 नन्दं प्राप । तत उपरि विविधविचित्रानन्तचिद्विलासविभूतिविशेषानां
 क्रम्यानन्तपरमानन्दविभूतिसमष्टिविशेषाननन्तनिरतिशयानन्तसमुद्भूतानतीत्यं
 पासकः क्रमेणाद्वैतसंस्थानं प्राप ॥ कथमद्वैतसंस्थानम् । अखण्डानन्दस्
 रूपमनिर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुद्रं विजातीयविशेषविवर्जि
 सजातीयविशेषविशेषितं निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तब्रह्म
 नन्दसमष्टिकन्दं परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवयवं निराश्रयमिति
 र्मलानन्तकोटिरविप्रकाशैकस्फुलिङ्गमनन्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं
 मनोवाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपमनाधारमादिमध्यान्तशून्यं कैवल्यं पर
 शान्तं सूक्ष्मतरं महतो महत्तरमपरिमितानन्दविशेषं शुद्धबोधानन्दविभूति
 विशेषमनन्तानन्दविभूतिविशेषसमष्टिरूपमक्षरमनिर्देश्यं कूटस्थमचलं ध्रुव
 मदिग्देशकालमन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य परिपूर्णं परमयोगिभिर्विस्मृत्यं देशतः
 कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं निरन्तराभिनवं नित्यपरिपूर्णमखण्डानन्दाभू-
 तविशेषं शाश्वतं परमं पदं निरतिशयानन्दानन्ततडित्पर्वताकारमद्वितीयं
 स्वयंप्रकाशमनिशं ज्वलति । परमानन्दलक्षणापरिच्छिन्नानन्तपरंज्योतिः
 शाश्वतं शश्वद्विभाति । तदभ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्दचिद्रूपाचलमखण्डपरमा-
 नन्दविशेषं बोधानन्दमहोज्ज्वलं नित्यमङ्गलमन्दिरं चिन्मथनाविभूतं चित्सा-
 रमनन्तार्थ्यसागरममिततेजोराश्यन्तर्गततेजोविशेषमनन्तानन्दप्रवाहैरलंकृतं
 निरतिशयानन्दपारावाराकारं निरुपमनित्यनिरवय्वनिरतिशयनिरवधिकतेजो-
 राशिविशेषं निरतिशयानन्दसहस्रप्राकारैरलंकृतं शुद्धबोधसौधावलिविशेषैरलं-
 कृतं चिदानन्दमयानन्तदिव्यारामैः सुशोभितं शश्वदमितपुष्पवृष्टिभिः सम-
 न्ततः संततम् । तदेव त्रिपाद्विभूतिवैकुण्ठस्थानं तदेव परमकैवल्यम् । तदेवा-
 बाधितपरमतत्त्वम् । तदेवानन्तोपनिषद्विस्मृत्यम् । तदेव परमयोगिभिर्मुमुक्षुभिः
 सर्वैराशास्यमानम् । तदेव सद्भनम् । तदेव चिद्भनम् । तदेवानन्दधनम् ।
 तदेव शुद्धबोधनविशेषमखण्डानन्दब्रह्मचैतन्याधिदेवतास्वरूपम् । सर्वाधिष्ठा-

अध्या० ७] त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ ५३ ॥

३७५

नमद्वयपरब्रह्मविहारमण्डलं निरतिशयानन्दतेजोमण्डलमद्वैतपरमानन्दलक्षण-
 परब्रह्मणः परमाधिष्ठानमण्डलं निरतिशयपरमानन्दपरममूर्तिविशेषमण्डलमन-
 न्तपरममूर्तिसमष्टिमण्डलं निरतिशयपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परममूर्तिपरम-
 तत्त्वविलासविशेषमण्डलं बोधानन्दमथानन्तपरमविलासविभूतिविशेषसमष्टि-
 मण्डलमनन्तचिद्विलासविभूतिविशेषसमष्टिमण्डलमखण्डशुद्धचैतन्यनिजमूर्ति-
 विशेषविग्रहं वाचामगोचरानन्तशुद्धबोधविशेषविग्रहमनन्तानन्दसमुद्रस-
 मष्ट्याकारमनन्तबोधाचलैरनन्तबोधानन्दाचलैरधिष्ठितं निरतिशयानन्दपरम-
 मङ्गलविशेषसमष्ट्याकारमखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परममूर्तिपरम-
 तेजःपुष्पपिण्डविशेषं चिद्रूपादित्यमण्डलं द्वात्रिंशद्व्यूहभेदैरधिष्ठितम् । व्यूह-
 भेदाश्च केशवादिचतुर्विंशतिः । सुदर्शनादिन्यासमन्त्राः । (सुदर्शनादियन्त्रो-
 ऽद्वारः) । अनन्तगरुडविष्वक्सेनाश्च निरतिशयानन्दाश्च । आनन्दव्यूहमध्ये
 सहस्रकोटियोजनायतोत्ततचिन्मयप्रासादं ब्रह्मानन्दमयविमानकोटिभिरति-
 मङ्गलमनन्तोपनिषदर्थारामजालसंकुलं सामहंसकूजितैरतिशोभितमानन्दमया-
 नन्तशिखरैरलंकृतं चिदानन्दरसनिर्झरैरभिव्यासमखण्डानन्दतेजोराश्यन्तर-
 स्थितमनन्तानन्दाश्चर्यसागरं तदभ्यन्तरसंस्थानेऽनन्तकोटिरविप्रकाशातिशयप्रा-
 कारं निरतिशयानन्दलक्षणं प्रणवाख्यं विमानं विराजते । शतकोटिशिखरैरा-
 नन्दमयैः समुज्ज्वलति । तदन्तराले बोधानन्दाचलोपर्यष्टाक्षरीमण्डपो
 विभाति । तन्मध्ये च चिदानन्दमयवेदिकानन्दवनविभूषिता । तदुपरि-
 ज्वलति निरतिशयानन्दतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थानेऽष्टाक्षरीपद्मविभूषितं
 चिन्मयासनं विराजते । प्रणवकर्णिकायां सूर्येन्दुवह्निमण्डलानि चिन्मयानि
 ज्वलन्ति । तत्राखण्डानन्दतेजोराश्यन्तर्गतं परममङ्गलाकारमनन्तासनं विरा-
 जते । तस्योपरि च महायन्त्रं प्रज्वलति । निरतिशयब्रह्मानन्दपरममूर्तिमहा-
 यन्त्रं समस्तब्रह्मतेजोराशिसमष्टिरूपं चित्स्वरूपं निरञ्जनं परब्रह्मस्वरूपं पर-
 ब्रह्मणः परमरहस्यकैवल्यं महायन्त्रमयपरमवैकुण्ठनारायणयन्त्रं विजयते ।
 तत्स्वरूपं कथमिति । देशिकस्तथेति होवाच । आदौ षट्कोणचक्रम् । तन्मध्ये
 षट्दलपद्मम् । तत्कर्णिकायां प्रणव उमिति । प्रणवमध्ये नारायण-
 बीजमिति । तत्साध्यगर्भितं मम सर्वाभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहेति । तत्प-
 षडदलेषु विष्णुनृसिंहषडक्षरमन्त्रौ ॐ नमो विष्णवे ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं
 ह्रौं (क्षौं) फट् । तद्वलकपोलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ । रां रामाय नमः ।

ह्रीं कृष्णाय नमः । षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षरमन्त्रः । सहस्रारं हुं फटिति ।
 षट्कोणकपोलेषु प्रणवयुक्तशिषपञ्चाक्षरमन्त्रः । ॐ नमः शिवायेति । तद्वहिः
 प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिरष्टदलपद्मम् । तेषु दलेषु नारायणनृसिं-
 हाष्टाक्षरमन्त्रौ । ॐ नमो नारायणाय । जय जय नरसिंह । तद्वलसन्धिषु
 रामकृष्णश्रीकराष्टाक्षरमन्त्राः । ॐ रामाय हुं फट स्थाहा । ह्रीं दामोदराय
 नमः । उत्तिष्ठ श्रीकर स्थाहा । तद्वहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिनव-
 दलपद्मम् । तेषु दलेषु रामकृष्णहयग्रीवनवाक्षरमन्त्राः । ॐ रामचन्द्राय नमः
 ॐ ह्रीं कृष्णाय गोविन्दाय ह्रीम् । ह्रौं (ह्रसौं) हयग्रीवाय नमो ह्रौं
 (ह्रसौम्) । तद्वलकपोलेषु दक्षिणामूर्तिनवाक्षरमन्त्रः । ॐ दक्षिणामूर्तिरीश-
 रोम् । तद्वहिनारायणबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिर्द्वादशदलपद्मम् । तेषु दलेषु
 रामकृष्णदशाक्षरमन्त्रौ । हुं जानकीवल्लभाय स्थाहा । गोपीजनवल्लभाय
 स्थाहा । तद्वलसन्धिषु नृसिंहमालामन्त्रः । ॐ नमो भगवते श्रीमहानृसिंहाय
 करालदंष्ट्रवदनाय मम विघ्नान्पच पच स्थाहा । तद्वहिनृसिंहैकाक्षरयुक्तं वृत्तम् ।
 ह्र्यौ (क्षौ) मित्येकाक्षरम् । वृत्ताद्वहिर्द्वादशदलपद्मम् । तेषु दलेषु नारा-
 यणवासुदेवद्वादशाक्षरमन्त्रौ । ॐ नमो भगवते नारायणाय । ॐ नमो भग-
 वते वासुदेवाय । तद्वलकपोलेषु महाविष्णुरामकृष्णद्वादशाक्षरमन्त्राश्च ।
 ॐ नमो भगवते महाविष्णवे । ॐ ह्रीं भरताग्रज राम ह्रीं स्थाहा । श्रीं
 ह्रीं ह्रीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः । तद्वहिर्जगन्मोहनबीजयुक्तं वृत्तं ह्रीमि-
 ति । वृत्ताद्वहिश्चतुर्दशदलपद्मम् । तेषु दलेषु लक्ष्मीनारायणहयग्रीवगोपाल-
 दधिवासनमन्त्राश्च । ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः । ॐ नमः
 सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय ह्रीं कृष्णाय गोपालचूडामणये स्थाहा । ॐ नमो
 भगवते दधिवामनाय (ॐ) । तद्वलसन्धिष्वन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रः । ह्रीं पद्मा-
 वल्लभपूर्णं माहेश्वरि स्थाहा । तद्वहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिः
 षोडशदलपद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्णसुदर्शनषोडशाक्षरमन्त्रौ च । ॐ नमो
 भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्थाहा । ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं
 फट । तद्वलसन्धिषु स्वराः सुदर्शनमालामन्त्रश्च । अभाइईउऊऊऊलृपृपे
 ओऔअंअः । सुदर्शनमहाचक्राय दीसरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहस्रारं हुं
 फट स्थाहा । तद्वहिवैराहबीजयुक्तं वृत्तम् । तद्वृत्तमिति । वृत्ताद्वहिरष्टादशदल-
 पद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टादशाक्षरमन्त्रौ । ह्रीं कृष्णाय गोविन्दाय

अध्या० ७] त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ ५४ ॥

३७७

गोपीजनवल्लभाय स्वाहा । ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा ।
तद्वलकपोलेषु गरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रो गरुडमालामन्त्रश्च । क्षिप ॐ स्वाहा । ॐ नमः
पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षःकृत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा । तद्वहिर्मा-
याबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिः पुनरष्टद्वलपद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टा-
क्षरमन्त्रौ । ॐ नमो दामोदराय । ॐ वामनाय नमः ॥ तद्वलकपोलेषु नील-
कण्ठश्रीगुरुपञ्चाक्षरीमन्त्रौ च । प्रं रीं ठः (श्रीकण्ठः) । नमोऽण्डजाय ।
तद्वहिर्मन्मथबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिश्चतुर्विंशतिद्वलपद्मम् । तेषु दलेषु
शरणागतनारायणमन्त्रौ नारायणहयग्रीवगायत्रीमन्त्रौ च । श्रीमन्नारायण-
चरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः । नारायणाय विद्महे वासुदेवाय
धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि ।
तन्नो हंसः प्रचोदयात् । तद्वलकपोलेषु नृसिंहसुदर्शनब्रह्मगायत्रीमन्त्राश्च ।
वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् । सुदर्शनाय
विद्महे हेतिराजाय धीमहि । तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । तद्वहिर्हयग्रीवैकाक्षरयुक्तं वृत्तं ह्रौहसौ-
मिति । वृत्ताद्वहिर्द्वात्रिंशद्वलपद्मम् । तेषु दलेषु नृसिंहहयग्रीवानुष्टुभमन्त्रौ उग्रं
वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं सृष्ट्युष्ट्युं नमा-
म्यहम् । ऋग्गङ्गुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे । प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशि-
रसे नमः । तद्वलकपोलेषु रामकृष्णानुष्टुभमन्त्रौ । रामभद्र महेष्वास रघुवीर
नृपोत्तम । ओ दशास्यान्तकास्याकं रक्षां कुरु देहि श्रियं च मे । देवकीसुत
गोविन्द वासुदेव जगत्पते । देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः । तद्वहिः
अणवसंपुटिताग्निबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ रमोमिति । वृत्ताद्वहिः षट्त्रिंशद्व-
लपद्मम् । तेषु दलेषु हयग्रीवषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रः पुनरष्टात्रिंशदक्षरमन्त्रश्च ।
हंसः । विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे । तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्या-
राजाय विष्णवे । सोहम् । ह्रौ (ह्रौं) ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववा-
गीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा । तद्वलकपोलेषु
प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्विंशतिमन्त्राश्च । अवशिष्टद्वाद-
शस्थानेषु रामकृष्णगायत्रीद्वयवर्णचतुष्टयमेकैकस्थले । ॐ केशवाय नमः ।
ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः । ॐ गोविन्दाय नमः । ॐ विष्णवे
नमः । ॐ (श्री) मधुसूदनाय नमः । ॐ त्रिविक्रमाय नमः । ॐ वाम-

नाथ नमः । ॐ श्रीधराय नमः । ॐ हृषीकेशाय नमः । ॐ पद्मनाभाय
 नमः । ॐ दामोदराय नमः । ॐ संकर्षणाय नमः । ॐ वासुदेवाय नमः ।
 ॐ प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अनिरुद्धाय नमः । ॐ पुरुषोत्तमाय नमः । ॐ भोजोक्षजा-
 य नमः । ॐ नारसिंहाय नमः । ॐ अच्युताय नमः । ॐ जनार्दनाय नमः ।
 ॐ उपेन्द्राय नमः । ॐ हरये नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः । दाशरथाय विद्महे
 सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् । दामोदराय विद्महे वासु-
 देवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् । तद्वहिः प्रणवसंपुटिताङ्गुलीज-
 युक्तं वृत्तम् । ॐ क्रोमोमिति । तद्वहिः पुनर्वृत्तं तन्मध्ये द्वादशकुक्षिस्थानानि
 सान्तरालानि । तेषु कौस्तुभवनमालाश्रीवत्ससुदर्शनगरुडपद्मध्वजानन्त-
 शार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकमन्त्राः प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । ॐ कौस्तुभाय
 नमः । ॐ वनमालायै नमः । ॐ श्रीवत्साय नमः । ॐ सुदर्शनाय नमः ।
 ॐ गरुडाय नमः । ॐ पद्माय नमः । ॐ ध्वजाय नमः । ॐ अन-
 न्ताय नमः । ॐ शार्ङ्गाय नमः । ॐ गदायै नमः । ॐ शङ्खाय नमः । ॐ
 नन्दकाय नमः । तदन्तरालेषु—ॐ विश्वक्सेनाय नमः । ॐ माचक्राय
 स्वाहा । ॐ विचक्राय स्वाहा । ॐ सुचक्राय स्वाहा । ॐ धीचक्राय स्वाहा ।
 ॐ संचक्राय स्वाहा । ॐ ज्वालाचक्राय स्वाहा । ॐ क्रुद्धोत्क्राय स्वाहा ।
 ॐ महोत्क्राय स्वाहा । ॐ वीर्योत्क्राय स्वाहा । ॐ द्युत्क्राय स्वाहा । ॐ
 सहस्रोत्क्राय स्वाहा । इति प्रणवादिमन्त्राः । तद्वहिः प्रणवसंपुटितगरुडपद्माक्षर-
 युक्तं वृत्तम् । ॐ क्षिप ॐ स्वाहा । ॐ तच्च द्वादशवज्रैः सान्तरालैरलंकृतम् । तेषु
 वज्रेषु ॐ पद्मनिधये नमः । ॐ महापद्मनिधये नमः । ॐ गरुडनिधये नमः । ॐ
 शङ्खनिधये नमः । ॐ मकरनिधये नमः । ॐ कच्छपनिधये नमः । ॐ विद्यानिधये
 नमः । ॐ परमानन्दनिधये नमः । ॐ मोक्षनिधये नमः । ॐ लक्ष्मीनिधये
 नमः । ॐ ब्रह्मनिधये नमः । ॐ श्रीमुकुन्दनिधये नमः । ॐ वैकुण्ठनिधये
 नमः । तत्संधिस्थानेषु—ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः । ॐ भानन्दकल्पकतरवे
 नमः । ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः । ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः । ॐ अमृत-
 कल्पकतरवे नमः । ॐ बोधकल्पकतरवे नमः । ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः ।
 ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः । ॐ वेदकल्पकतरवे नमः । ॐ योग-
 कल्पकतरवे नमः । ॐ यज्ञकल्पकतरवे नमः । ॐ पद्मकल्पकतरवे

अध्या० ७] त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ ५४ ॥

३७९

नमः । तच्च शिवगायत्रीपरब्रह्ममन्त्राणां वर्णैर्वृत्ताकारेण संवेष्ट्य । तत्पुरुषाय
 विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । श्रीमन्नारायणो
 ज्योतिरात्मा नारायणः परः । नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते ।
 तद्वहिः प्रणवसंपुटितश्रीबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ श्रीमोमिति । वृत्ताद्वहिश्रत्वा-
 रिंशद्वलपञ्चम् । तेषु दलेषु व्याहृतिशिरःसंपुटितवेदगायत्रीपादचतुष्टय-
 सूर्याष्टाक्षरीमन्त्रौ । ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ सुवः । ॐ महः । ॐ जनः ।
 ॐ तपः । ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् । ॐ भर्गो देवस्य
 धीमहि । ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ परोरजसे सावदोम् ।
 ॐ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् । ॐ घृणिः सूर्य
 आदित्यः । तद्वलसंधिषु प्रणवश्रीबीजसंपुटितनारायणबीजं सर्वत्र । ॐ श्रीमं
 श्रीमोम् । तद्वहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम् । चक्रान्तश्चतुर्दिक्षु हंसःसोहंमन्त्रौ
 प्रणवसंपुटिता नारायणाक्षमन्त्राश्च । ॐ हंसः सोहम् । ॐ नमो नारायणाय
 हुं फह । तद्वहिः प्रणवमालासंयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिः पञ्चाशद्वलपञ्चम् ।
 तेषु दलेषु मातृकापञ्चाशदक्षरमाला लकारवर्ज्या । तद्वलसंधिषु प्रणवश्री-
 बीजसंपुटितरामकृष्णमालामन्त्रौ । ॐ श्रीमो नमो भगवते रघुनन्दनाय
 रक्षोन्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः ।
 श्रीं ॐ नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय निर्गलच्छेदनाय सर्वलोकाधि-
 पतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम् । तद्वहिर-
 ष्टशूलाङ्कितभूचक्रम् । तेषु प्रणवसंपुटितमहानीलकण्ठमन्त्रवर्णानि । ॐ श्रीं
 नमो नीलकण्ठाय । ॐ शूलग्रेषु लोकपालमन्त्राः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः
 क्रमेण । ॐ इन्द्राय नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ यमाय नमः । ॐ निर्वृ-
 तये नमः । ॐ वरुणाय नमः । ॐ वायवे नमः । ॐ सोमाय नमः ।
 ॐ ईशानाय नमः । तद्वहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तत्रयम् । तद्वहिर्भूपुरचतुष्टयं
 चतुर्द्वारयुतं चक्रकोणचतुष्टयमहावज्रविभूषितम् । तेषु वज्रेषु प्रणवश्रीबीज-
 संपुटितामृतबीजद्वयम् । ॐ श्रीं ठं वं श्रीमोमिति । बहिर्भूपुरवीथ्याम्—
 ॐ आधारशक्त्यै नमः । ॐ मूलप्रकृत्यै नमः । ॐ आदिकूर्माय नमः । ॐ अन-
 न्ताय नमः । ॐ पृथिव्यै नमः । मध्यभूपुरवीथ्याम्—ॐ क्षीरसमुद्राय
 नमः । ॐ रत्नद्वीपाय नमः । ॐ मणिमण्डपाय नमः । ॐ श्वेतच्छत्राय
 नमः । ॐ कल्पकवृक्षाय नमः । ॐ रत्नसिंहासनाय नमः । प्रथमभूपुर-

वीथ्याम्-ॐ धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यसत्त्वरजस्तमोमायावि-
 ज्ञानन्तपद्माः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । अन्तर्बृत्तवीथ्याम्-ॐ भु-
 ग्रहयै नमः । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसं-
 योगयोगपीठात्मने नमः । वृत्तावकाशेषु —बीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टिं चक्ष्या-
 दिदं तथा । मन्त्रयन्त्राख्यगायत्रीप्राणस्थापनमेव च । भूतदिव्यपालवीजानि
 यन्त्रस्याङ्गानि वै दश । मूलमन्त्रमालामन्त्रकवचदिव्यन्धनमन्त्राश्च । एवं-
 विधमेतद्यन्त्रं महामन्त्रमयं योगधीरान्तैः परममन्त्रैरलंकृतं षोडशोपचारैर-
 श्यर्चितं जपहोमादिना साधितमेतद्यन्त्रं शुद्धब्रह्मतेजोमयं सर्वाभयकरं समस्त-
 दुरितक्षयकरं सर्वाभीष्टसंपादकं सायुज्यमुक्तिप्रदमेतत्परमवैकुण्ठमहानारा-
 यणयन्त्रं प्रज्वलति । तस्योपरि च निरतिशयानन्दतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं
 वाचामगोचरानन्दतेजोराश्याकारं चित्तसाराविभूतानन्दविग्रहं बोधानन्दस्वरू-
 पं निरतिशयसौन्दर्यपारावारं तुरीयस्वरूपं तुरीयातीतं चाद्वैतपरमानन्दनिर-
 न्तरातितुरीयनिरतिशयसौन्दर्यानन्दपारावारं लावण्यवाहिनीकलोलतड्डिज्ञा-
 सुरं दिव्यमङ्गलविग्रहं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैरुपसेव्यमानं चिदानन्दमयैरनन्त-
 कोटिरविप्रकाशैरनन्तभूषणैरलंकृतं सुदर्शनपाञ्चजन्यपद्मगदासिंहाङ्गसुसल-
 परिघाद्यैश्चिन्मयैरनेकायुधगणैर्मूर्तिमद्भिः सुसेवितम् । बाह्यवृत्तवीथ्यां विम-
 लोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्येशाना प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः
 क्रमेण । श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाङ्कितवक्षसं ब्रह्मकल्पवनामृतपुष्पवृष्टिभिः
 सन्ततमानन्दं ब्रह्मानन्दरसनिर्भरैरसंख्यैरतिमङ्गलं शेषायुतफणाजालविपुल-
 च्छत्रशतेभितं तत्फणामण्डलोदूर्चिर्मणिद्योतितविग्रहं तदङ्गकान्तिनिर्झरैस्ततं नि-
 रतिशयब्रह्मगन्धस्वरूपं निरतिशयानन्दब्रह्मगन्धविशेषाकारमनन्तब्रह्मगन्धा-
 कारसमष्टिविशेषमनन्तानन्दतुलसीमाल्यैरभिभूतं चिदानन्दमयानन्तपुष्पमा-
 ल्यैर्विराजमानं तेजःप्रवाहतरङ्गतत्परम्पराभिर्ज्वलन्तं निरतिशयानन्दं कान्ति-
 विशेषावतैरभितोऽतिशं प्रज्वलन्तं बोधानन्दमयानन्तभूषदीपावलिभि-
 रतिशोभितं निरतिशयानन्दचामरविशेषैः परिसेवितं निरन्तरनिरुपमनि-
 रतिशयोत्कटज्ञानानन्दानन्तगुच्छफलैरलंकृतं चिन्मयानन्ददिव्यविमानच्छत्र-
 ध्वजराजिभिर्विराजमानं परममङ्गलानन्तदिव्यतेजोभिर्ज्वलन्तमतिशं वाचा-
 मगोचरमनन्ततेजोराश्यन्तर्गतमर्धमात्रात्मकं तुभ्यं ध्वन्यात्मकं तुरीयातीत-

मवाच्यं नादविन्दुकलाध्यात्मस्वरूपं चेत्याद्यनन्ताकारेणावस्थितं निर्गुणं
निष्क्रियं निर्मलं निरवद्यं निरञ्जनं निराकारं निराश्रयं निरतिशयाद्वैतपरमानन्द-
लक्षणमादिनारायणं ध्यायेदित्युपनिषत् ॥

इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु परममोक्षस्वरूपनिरूपणद्वारापरम-

वैकुण्ठमहानारायणयन्त्रस्वरूपनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ततः पितामहः परिपृच्छति भगवन्तं महाविष्णुं भगवन्बुद्धाद्वैतपरमानन्द-
लक्षणपरब्रह्मणस्तव कथं विरुद्धवैकुण्ठप्रासादप्राकारविमानाद्यनन्तवस्तुभेदः ।
सत्यमेवोक्तमिति भगवान्महाविष्णुः परिहरति । यथा शुद्धसुवर्णस्य कटकमुकु-
टाङ्गदादिभेदः । यथा समुद्रसलिलस्य स्थूलसूक्ष्मतरङ्गफेनबुद्बुदकरकलवणपा-
षाणाद्यनन्तवस्तुभेदः । यथा भूमेः पर्वतवृक्षतृणगुल्मलताद्यनन्तवस्तुभेदः ।
तथैवाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणो मम सर्वाद्वैतमुपपन्नं भवत्येव । मत्स्वरू-
पमेव सर्वं मम्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते । पुनः पितामहः परिपृच्छति ।
भगवन् परमवैकुण्ठ एव परममोक्षः । परममोक्षस्वेक एव श्रूयते
सर्वत्र । कथमनन्तवैकुण्ठाश्चानन्तानन्दसमुद्रादयश्चानन्तमूर्तयः सन्तीति ।
तथेति होवाच भगवान्महाविष्णुः । एकस्मिन्नविद्यापादेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डानि
सावरणानि श्रूयन्ते । तस्मिन्नेकस्मिन्नण्डे बहवो लोकाश्च बहवो वैकुण्ठाश्चान-
न्तविभूतयश्च सन्त्येव । सर्वाण्डेष्वनन्तलोकाश्चानन्तवैकुण्ठाः सन्तीति सर्वेषां
खल्वभिमतम् । पादत्रयेऽपि किं वक्तव्यं निरतिशयानन्दाविर्भावो मोक्ष इति
मोक्षलक्षणं पादत्रये वर्तते । तस्मात्पादत्रयं परममोक्षः । पादत्रयं परमवै-
कुण्ठः । पादत्रयं परमकैवल्यमिति । ततः शुद्धचिदानन्दब्रह्मविलासानन्दा-
श्चानन्तपरमानन्दविभूतयश्चानन्तवैकुण्ठाश्चानन्तपरमानन्दसमुद्रादयः स-
न्त्येव । उपासकस्ततोऽभ्येत्यैवंविधं नारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्वि-
धाय विविधोपचारैरभ्यर्च्य निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणो भूत्वा तदग्रे साव-
धानेनोपविश्याद्वैतयोगमास्थाय सर्वाद्वैतपरमानन्दलक्षणाखण्डामिततेजोराश्या-
कारं विभाव्योपासकः स्वयं शुद्धबोधानन्दमयामृतनिरतिशयानन्दतेजोराश्या-
कारो भूत्वा महावाक्यार्थमनुसरन् ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि
योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा । अहं ब्रह्मेति भावनया
यथा परमतेजोमहानदीप्रवाहपरमतेजःपारावारे प्रविशति । यथा परमतेजः-
पारावारतरङ्गाः परमतेजःपारावारे प्रविशन्ति । तथैव सच्चिदानन्दात्मोपासकः
सर्वपरिपूर्णद्वैतपरमानन्दलक्षणे परब्रह्मणि नारायणे मयि सच्चिदानन्दा-

त्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मीति प्रविवेश । तत उपासको निस्त-
 रङ्गद्वैतापारमिति रशयसच्चिदानन्दसमुद्रो बभूव । यस्त्वेनेन मार्गेण सम्य-
 गाचरति स नारायणो भवत्यसंशयमेव । अनेन मार्गेण सर्वे मुनयः सिद्धिं
 गताः । असंख्याताः परमयोगिनश्च सिद्धिं गताः । ततः शिष्यो गुरुं
 परिपृच्छति । भगवन्सालम्बनिरालम्बयोगौ कथमिति ब्रूहीति । सालम्बस्तु
 समस्तकर्मातिदूरतया करचरणादिमूर्तिविशिष्टं मण्डलाद्यालम्बनं सालम्ब-
 योगः । निरालम्बस्तु समस्तनामरूपकर्मातिदूरतया सर्वकामाद्यन्तःकरण-
 वृत्तिसाक्षितया तदालम्बनशून्यतया च भावनं निरालम्बयोगः । अथ
 च निरालम्बयोगाधिकारी कीदृशो भवति । अस्मिन्निष्ठादिप्रमाणोपलक्षितो
 यः पुरुषः स एव निरालम्बयोगाधिकारी कार्यः कश्चिदस्ति । तस्मात्सर्वेषाम-
 धिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते । भक्तियोगो निरुपद्रवः ।
 भक्तियोगान्मुक्तिः । बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति । तत्क-
 थमिति । भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्सर्वान्प-
 रिपालयति । सर्वाभीष्टान्प्रयच्छति । मोक्षं दापयति । चतुर्मुखादीनां सर्वे-
 षामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते । कारणेन विना
 कार्यं नोदेति । भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते । तस्मात्त्वमपि
 सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय । भक्तिनिष्ठो भव । भक्तिनिष्ठो भव ।
 भक्त्या सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति । भक्त्याऽसाध्यं न किञ्चिदस्ति । एवंविधं
 गुरुपदेशमाकर्ण्य सर्वं परमतत्त्वरहस्यमवबुध्य सर्वसंशयान्विधूय क्षिप्रमेव
 मोक्षं साधयामीति निश्चित्य ततः शिष्यः समुत्थाय प्रदक्षिणनमस्कारं कृत्वा
 गुरुभ्यो गुरुपूजां विधाय गुर्वनुज्ञया क्रमेण भक्तिनिष्ठो भूत्वा भक्त्यतिशयेन
 पक्वं विज्ञानं प्राप्य तस्मादनायासेन शिष्यः क्षिप्रमेव साक्षान्नारायणो बभू-
 वेत्युपनिषत् ॥ ततः प्रोवाच भगवान् महाविष्णुश्चतुर्मुखमवलोक्य ब्रह्मन्
 परमतत्त्वरहस्यं ते सर्वं कथितम् । तत्स्मरणमात्रेण मोक्षो भवति । तदनुष्ठा-
 नेन सर्वमविदितं विदितं भवति । यत्स्वरूपज्ञानिनः सर्वमविदितं विदितं
 भवति । तत्सर्वं परमरहस्यं कथितम् । गुरुः क इति । गुरुः साक्षादादिना-
 रायणः पुरुषः । स आदिनारायणोऽहमेव । तस्मान्मामेकं शरणं ब्रज । मद्भ-
 क्तिनिष्ठो भव । मदीयोपासनां कुरु । मामेव प्राप्स्यसि । मद्भक्तिरिक्तं सर्वं
 बाधितम् । मद्भक्तिरिक्तमबाधितं न किञ्चिदस्ति । निरतिशयानन्दाद्वितीयोऽ-
 हमेव । सर्वपरिपूर्णोऽहमेव । सर्वाश्रयोऽहमेव । वाचामगोचरनिराकारपरब्रह्म-

स्वरूपोऽहमेव । मद्भातिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते । इत्येवं महाविष्णोः परमि-
 ममुपदेशं लब्ध्वा पितामहः परमानन्दं प्राप । विष्णोः कराभिमर्शनेन
 दिव्यज्ञानं प्राप्य पितामहस्ततः समुत्थाय प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विवि-
 धोपचारैर्महाविष्णुं प्रपूज्य प्राञ्जलिभूत्वा विनयेनोपसंगम्य भगवन् भक्तिनिष्ठं
 मे प्रयच्छ । त्वदभिन्नं मां परिपालय कृपालय । तथैव साधुसाधिवति साधुप्र-
 शंसापूर्वकं महाविष्णुः प्रोवाच मधुपासकः सर्वोत्कृष्टः स भवति । मधुपा-
 सनया सर्वमङ्गलानि भवन्ति । मधुपासनया सर्वं जयति । मधुपासकः
 सर्ववन्द्यो भवति । मदीयोपासकस्यासाध्यं न किञ्चिदस्ति । सर्वे बन्धाः
 प्रविनश्यन्ति । सद्भुतमिव सर्वे देवास्तं सेवन्ते । महाश्रेयांसि च सेवन्ते ।
 मधुपासकस्तस्मान्निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणं परंब्रह्म भवति । यो वै मुमुक्षु-
 रनेन मार्गेण सम्यगाचरति स परमानन्दलक्षणं परंब्रह्म भवति । यस्तु
 परमतत्त्वरहस्याथर्वणमहानारायणोपनिषदमधीते स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो
 भवति । ज्ञानाज्ञानकृतेभ्यः पातकेभ्यो मुक्तो भवति । महापातकेभ्यः पूतो
 भवति । रहस्यकृतप्रकाशकृतचिरकालात्यन्तकृतेभ्यस्तेभ्यः सर्वेभ्यः पापेभ्यो
 मुक्तो भवति । स सकललोकाञ्जयति । स सकलमन्त्रजपनिष्ठो भवति । स
 सकलवेदान्तरहस्याधिगतपरमार्थज्ञो भवति । स सकलभोगभुरभवति । स
 सकलयोगविद्भवति । स सकलजगत्परिपालको भवति । सोऽद्वैतपरमानन्द-
 लक्षणं परंब्रह्म भवति । इदं परमतत्त्वरहस्यं न वाच्यं गुरुभक्तिविहीनाय ।
 न चाशुश्रूषवे वाच्यम् । न तपोविहीनाय नास्तिकाय । न दाम्भिकाय
 मङ्गक्तिविहीनाय । मात्सर्याङ्किततनये न वाच्यम् । न वाच्यं मदसूयापराय
 कृतघ्नाय । इदं परमरहस्यं यो मङ्गकेष्वभिधास्यति । मङ्गक्तिनिष्ठो भूत्वा
 मामेव प्राप्स्यति । आवयोर्य इमं संवादमध्येष्यति । स नरो ब्रह्मनिष्ठो
 भवति । श्रद्धावाननसूयुः शृणुयात्पठति वा य इमं संवादमावयोः स पुरुषो
 मत्सायुज्यमेति । ततो महाविष्णुस्तिरोद्धे । ततो ब्रह्मा स्वस्थानं जगामेत्यु-
 पनिषत् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु परमसायुज्यमुक्तिस्वरूपनिरूपणं
 नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इत्युत्तरकाण्डः समाप्तः ॥

इत्याथर्वणीयत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्समाप्ता ॥ ५४ ॥

अद्वयतारकोपनिषत् ॥ ५५ ॥

द्वैतासंभवविज्ञानसंसिद्धाद्वयतारकम् ।

तारकं ब्रह्मेति गीतं वन्दे श्रीराभवैभवम् ॥

ॐ पूर्णगद इति शान्तिः ॥

ॐ अथातोऽद्वयतारकोपनिषदं व्याख्यास्यामो यतये जितेन्द्रियाय शम-
दमादिषड्गुणपूर्णाय । चित्स्वरूपोऽहमिति सदा भावयन्त्सम्यङ्निमीलिताक्षः
किंचिदुन्मीलिताक्षो वाऽन्तर्दृष्ट्या भूदहरादुपरि सच्चिदानन्दतेजःकूटस्थं
परंब्रह्मावलोकयंस्तद्रूपो भवति । गर्भजन्मजरामरणसंसारमहन्मयात्संसार-
यति तस्मात्तारकमिति । जीवेश्वरौ मायिकौ विज्ञाय सर्वविशेषं नेति
नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म तत्सिद्धौ लक्ष्यत्रयानुसंधानः
कर्तव्यः । देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते । सा
तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति । तन्मध्ये तडित्कोटिसमानका-
न्या मृणालसूत्रवत्सूक्ष्माङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धास्ति । तां दृष्ट्वा मनसैव नरः
सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति । फालोर्ध्वगललाटविशेषमण्डले निरन्तरं
तेजस्तारकयोगविस्फुरणेन पश्यति चेत्सिद्धो भवति । तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्ण-
रन्ध्रद्वये तत्र फूत्कारशब्दो जायते । तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगतनील-
ज्योतिःस्थलं विलोकयान्तर्दृष्ट्या निरतिशयसुखं प्राप्नोति । एवं हृदये पश्यति ।
एवमन्तर्लक्ष्यलक्षणं मुमुक्षुभिरुपास्यम् ॥ अथ बहिर्लक्ष्यलक्षणं नासिकाग्रे
चतुर्भिः पद्भिरष्टभिर्दशभिर्द्वादशभिः क्रमादङ्गुलान्ते नीलद्युतिश्यामत्वसह-
ग्रक्तभङ्गीस्फुरत्पीतशुक्लवर्णद्वयोपेतव्योम यदि पश्यति स तु योगी भवति ।
चलदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते । तद्दर्श-
नेन योगी भवति । तप्तकाञ्चनसंकाशज्योतिर्मयूखा अपाङ्गान्ते भूमौ वा पश्यति
तद्दृष्टिः स्थिरा भवति । शीघ्रौपरि द्वादशाङ्गुलसमीक्षितुरमृतत्वं भवति ।
यत्र कुत्र स्थितस्य शिरसि व्योमज्योतिर्दृष्टं चेत्स तु योगी भवति ॥ अथ
मध्यलक्ष्यलक्षणं प्रातश्चित्रादिवर्णाखण्डसूर्यचक्रवद्वह्निज्वालावलीवत्तद्विहीना-
न्तरिक्षवत्पश्यति । तदाकाराकारितयाऽवतिष्ठति । तद्भूयोदर्शनेन गुणरहिता-
काशं भवति । विस्फुरत्तारकाकारसंदीप्यमानागाढतमोपमं परमाकाशं भवति ।
कालानलसमद्योतमानं महाकाशं भवति । सर्वोत्कृष्टपरमद्युतिप्रद्योतमानं

तत्त्वाकाशं भवति । कोटिसूर्यप्रकाशवैभवंसंकाशं सूर्याकाशं भवति । एवं बाह्याभ्यन्तरस्थग्योमपञ्चकं तारकलक्ष्यम् । तदृशीं विमुक्तफलस्ता-
दग्न्योमसमानो भवति । तस्मात्तारक एव लक्ष्यममनस्कफलप्रदं भवति ।
तत्तारकं द्विविधं पूर्वार्धतारकमुत्तरार्धममनस्कं चेति । तदेष श्लोको भवति—
तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविधानतः । पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं
तदुत्तरमिति । अक्षयन्तस्तारकयोश्चन्द्रसूर्यप्रतिफलनं भवति । तार-
काभ्यां सूर्यचन्द्रमण्डलदर्शनं ब्रह्माण्डमिव पिण्डाण्डशिरोमध्यस्थाकाशे रवी-
न्दुमण्डलद्वितयमस्तीति निश्चित्य तारकाभ्यां तद्दर्शनमात्राण्युभयैक्यदृष्ट्या
मनोयुक्तं ध्यायेत् । तद्योगाभावे इन्द्रियप्रवृत्तेरनवकाशात् । तस्मादन्तर्दृष्ट्या
तारक एवानुसंधेयः । तत्तारकं द्विविधं मूर्तितारकममूर्तितारकं चेति ।
यदिन्द्रियान्तं तन्मूर्तिमत् । यद्भूयुगातीतं तदमूर्तिमत् । सर्वत्रान्तः-
पदार्थविवेचने मनोयुक्ताभ्यास इष्यते । तारकाभ्यां सद्बुद्धस्थसत्त्वदर्शनान्म-
नोयुक्तेनान्तरीक्षणेन सच्चिदानन्दस्वरूपं ब्रह्मैव । तस्माच्छुक्लतेजोमयं ब्रह्मेति
सिद्धम् । तद्ब्रह्म मनःसहकारिचक्षुषान्तर्दृष्ट्या वेद्यं भवति । एवममूर्तितार-
कमपि मनोयुक्तेन चक्षुषैव दहरादिकं वेद्यं भवति रूपग्रहणप्रयोजनस्य
मनश्चक्षुरधीनत्वाद्वाह्यवदान्तरेऽप्यात्ममनश्चक्षुःसंयोगेनैव रूपग्रहणकायाद-
यात् । तस्मान्मनोयुक्तान्तर्दृष्टिस्तारकप्रकाशा भवति । अयुगमभ्यविले-
ष्टिं तद्धारोर्ध्वस्थिततेज आविर्भूतं तारकयोगो भवति । तेन सह मनोयुक्तं
तारकं सुसंयोज्य प्रयत्नेन भूयुग्मं सावधानतया किञ्चिदूर्ध्वमुत्क्षेपयेत् ।
इति पूर्वभागी तारकयोगः । उत्तरं त्वमूर्तिमदमनस्कमित्युच्यते । तालुमूलो-
र्ध्वभागे महान् ज्योतिर्मयूखो वर्तते । तद्योगिभिर्ध्येयम् । तस्मादणिमादि-
सिद्धिर्भवति । अन्तर्बाह्यलक्ष्ये दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां सत्यां शांभवी
मुद्रा भवति । तन्मुद्रारूढज्ञानिनिवासाद्भूमिः पवित्रा भवति । तद्दृष्ट्वां
सर्वे लोकाः पवित्रा भवन्ति । तादृशपरमयोगिपूजा यस्य लभ्यते सोऽपि
मुक्तो भवति । अन्तर्लक्ष्यजलज्योतिःस्वरूपं भवति । परमगुपदेशेन
सहस्रारे जलज्योतिर्वा बुद्धिगुहानिहितज्योतिर्वा षोडशान्तस्थतुरीयचैतन्यं
वान्तर्लक्ष्यं भवति । तद्दर्शनं सदाचार्यमूलम् । आचार्यो वेदसंपन्नो

विष्णुभक्तो विमत्सरः । योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः ॥
 गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः । एवंलक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
 गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्गुशब्दस्तन्निरोधकः । अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभि-
 धीयते ॥ गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः ॥ गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव
 परायणम् ॥ गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम् । यस्मात्तदुपदेष्टासौ
 तस्माद्गुरुतरो गुरुरिति । यः सकृदुच्चारयति तस्य संसारमोचनं भवति ।
 सर्वजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । सर्वान्कामानवाप्नोति । सर्वपुरु-
 षार्थसिद्धिर्भवति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमद इति ज्ञान्तिः ॥

इत्यद्वयतारकोपनिषत्समाप्ता ॥ ५५ ॥

रामरहस्योपनिषत् ॥ ५६ ॥

कैवल्यश्रीस्वरूपेण राजमानं महोऽव्ययम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं श्रीरामपदमाश्रये ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति ज्ञान्तिः ॥

ॐ रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम् । शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुं
 महच्छारीरकं शिखाम् ॥ १ ॥ सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा ।
 ब्रह्मादाद्या विष्णुभक्ता हनूमन्तमथानुवन् ॥ २ ॥ वायुपुत्र महाबाहो किं
 तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम् । पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि ॥ ३ ॥ चतुर्वेदेषु
 शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेऽपि च । सर्वेषु विद्यादानेषु विघ्नसूर्येशशक्तिषु ।
 एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथय त्वं महाबल ॥ ४ ॥ हनूमान्होवाच ॥ भो
 योगीन्द्राश्चैव ऋषयो विष्णुभक्तास्तथैव च ॥ शृणुध्वं मामकीं वाचं भव-
 बन्धविनाशिनीम् ॥ ५ ॥ एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्म तारकम् । राम एव
 परं ब्रह्म राम एव परं तपः ॥ राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्
 ॥ ६ ॥ वायुपुत्रेणोक्तास्ते योगीन्द्रा ऋषयो विष्णुभक्ता हनूमन्तं पप्रच्छुः
 रामस्याङ्गानि नो ब्रूहीति । हनूमान्होवाच । वायुपुत्रं विघ्नेशं वाणीं दुर्गा
 क्षेत्रपालकं सूर्यं चन्द्रं नारायणं नारसिंहं वायुदेवं वाराहं तत्सर्वान्त्समा-
 त्रान्सीतां लक्ष्मणं शत्रुघ्नं भरतं विभीषणं सुग्रीवमङ्गदं जाम्बवन्तं प्रणव-
 मेतानि रामस्याङ्गानि जानीथाः । तान्यङ्गानि विना रामो विघ्नकरो भवति ।

पुनर्वायुपुत्रेणोक्तास्ते हनूमन्तं पप्रच्छुः । आज्ञनेय महाबल विप्राणां गृह-
स्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति । स होवाच श्रीराम एवोवाचेति ।
येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येषाम् ।
केवलमकारोकारमकारार्धमात्रासहितं प्रणवमूहं यो राममन्त्रं जपति तस्य
शुभकरोऽहं स्याम् । तस्य प्रणवस्थाकारस्योकारस्य मकारस्यार्धमात्रायाश्च
ऋषिश्छन्दो देवता तत्तद्गर्णावर्णावस्थानं स्वरवेदाभिगुणानुचार्यान्वहं प्रणव-
मन्त्राद्विगुणं जप्त्वा पश्चाद्गाममन्त्रं यो जपेत् स रामो भवतीति रामेणोक्तास्त-
स्माद्गामाङ्गं प्रणवः कथित इति ॥ विभीषण उवाच ॥ सिंहासने समासीनं
रामं पौलस्त्यसूदनम् । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
रघुनाथ महाबाहो केवलं कथितं त्वया । अङ्गानां सुलभं चैव कथनीयं च सौ-
लभम् ॥ ८ ॥ श्रीराम उवाच । अथ पञ्च दण्डकानि पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्मघ्नो
गुरुहन्तः कोटियतिघ्नोऽनेककृतपाप्मो यो मम षण्णवतिकोटिनामानि जपति
स तेभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यते । स्वयमेव सच्चिदानन्दस्वरूपो भवेन्न किम् ।
पुनरुवाच विभीषणः । तत्राप्यशक्तोऽयं किं करोति । स होवाचेमम् ।
कैकसेय पुरश्चरणविधावशक्तो यो मम महोपनिषदं मम गीतां मन्त्रामसहस्रं
अद्विष्टरूपं ममाष्टोत्तरशतं रामशताभिधानं नारदोक्तस्त्वरारं हनूमत्प्रोक्तं
मन्त्रराजात्मकस्त्वं सीतास्त्वं च रामषडक्षरीत्यादिभिर्मन्त्रैर्यो मां नित्यं स्तौति
तत्सदृशो भवेन्न किं भवेन्न किम् ॥ ९ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सनकाद्या मुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः । आज्ञनेय महाबल तारकब्रह्मणो
रामचन्द्रस्य मन्त्रग्रामं नो ब्रूहीति । हनूमन्होवाच । वह्निस्थं शयनं विष्णो-
रर्धचन्द्रविभूषितम् । एकाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरदुमः ॥ १ ॥ ब्रह्मा
मुनिः स्याद्वायत्रं छन्दो रामोऽस्य देवता । दीर्घार्धेन्दुयुजाङ्गानि कुर्याद्ब्रह्मा-
त्मनो मनोः ॥ २ ॥ बीजशक्त्यादिबीजेन दृष्टार्थे विनियोजयेत् । सरयूतीर-
मन्दारवेदिकापङ्कजासने ॥ ३ ॥ इयामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ ४ ॥ अवक्षेमाणमात्मानमात्म-
न्यमिततेजसम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया ॥ ५ ॥ श्रित्तय-
न्परमात्मानं भानुलक्षं जपेन्मनुम् । वह्निर्नारायणो नाड्यो जाठरः केवलोऽपि
च ॥ ६ ॥ अक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वाभीष्टप्रदस्ततः । एकाक्षरोक्तमृच्छादि

३८८

ईशाद्युपनिषत्सु-

[अध्या० २]

स्यादाद्येन षडङ्गकम् ॥ ७ ॥ तारमायारमानङ्गवाक्स्वबीजैश्च षड्विधः ।
 त्र्यक्षरो मन्त्रराजः स्यात्सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ ८ ॥ द्व्यक्षरश्चन्द्रमन्त्रान्तो द्विवि-
 द्मन्त्ररक्षरः । ऋण्यादि पूर्ववज्ज्ञेयमेतयोश्च विचक्षणैः ॥ ९ ॥ सप्रतिष्ठौ
 रमौ वायौ हृत्पञ्चाणौ मनुर्मतः । विश्वामित्रऋषिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्दोऽस्य
 देवता ॥ १० ॥ रामभद्रो बीजशक्तिः प्रथमार्णमिति क्रमात् । भ्रूमध्ये हृदि
 नाभ्यूर्ध्वोः पादयोर्विन्यसेन्मनुम् ॥ ११ ॥ षडङ्गं पूर्ववद्विद्यान्मन्त्राणैर्मनुनास्त्र-
 कम् । मध्ये वनं कल्पतरोर्मूले पुष्पलतासने ॥ १२ ॥ लक्ष्मणेन प्रगुणितमक्षणः
 कोणेन सायकम् । अवक्षमाणं जानक्या कृतव्यजनमीश्वरम् ॥ १३ ॥
 जटाभारलसच्छीर्षं श्यामं मुनिगणावृतम् । लक्ष्मणेन धृतच्छत्रमथवा पुष्प-
 कोपरि ॥ १४ ॥ दशास्यमथनं शान्तं ससुग्रीवविभीषणम् । एवं लब्ध्वा
 जयार्थं तु वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥ १५ ॥ स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीस्तवाद्याः
 पञ्चवर्णकाः । षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १६ ॥ पञ्चाशन्मातृका-
 मन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकम् । लक्ष्मीवाङ्मन्मथादिश्च तारादिः स्यादनेकधा ॥ १७ ॥
 श्रीमायामन्मथैकैकं बीजाद्यन्तर्गतो मनुः । चतुर्वर्णः स एव स्यात्षड्वर्णो
 वाञ्छितप्रदः ॥ १८ ॥ स्वाहान्तो हुंफडन्तो वा नत्यन्तो वा भवेदयम् ।
 अष्टाविंशत्युत्तरशतभेदः षड्वर्ण ईरितः ॥ १९ ॥ ब्रह्मा संमोहनः शक्ति-
 र्दक्षिणामूर्तिरेव च । अगस्थश्च शिवः प्रोक्ता मुनयोऽनुक्रमदिमे ॥ २० ॥
 छन्दो गायत्रसंज्ञं च श्रीरामश्चैव देवता । अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो
 मुनिर्मनोः ॥ २१ ॥ छन्दो देव्यादिगायत्री रामभद्रोऽस्य देवता । बीज-
 शक्ती यथापूर्वं षड्वर्णान्विन्यसेत्क्रमात् ॥ २२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृन्ना-
 भ्यूरुपु पादयोः । बीजैः षड्दीर्घयुक्तैर्वा मन्त्राणैर्वा षडङ्गकम् ॥ २३ ॥
 कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं मुद्रां ज्ञानमूर्त्या दद्या-
 नमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि । सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युक्त्रिभां राघवं
 पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥ २४ ॥ श्रीरामश्चन्द्रमन्त्रान्तो
 हेन्तो नतियुतो द्विधा । सप्ताक्षरो मन्त्रराजः सर्वकामफलप्रदः ॥ २५ ॥
 तारादिसहितः सोऽपि द्विविधोऽष्टाक्षरो मतः । तारं रामश्चतुर्थतः क्रोडाखं
 बद्धितल्पगा ॥ २६ ॥ अष्टाणोऽयं परो मन्त्रो ऋण्यदेः स्यात्षड्वर्णवत् ।
 पुनरष्टाक्षरस्याथ राम एव ऋषिः स्मृतः ॥ २७ ॥ गायत्रं छन्द इत्यस्य

देवता राम एव च । तारं श्रीबीजयुग्मं च बीजशक्त्यादयो मताः ॥ २८ ॥
 षडङ्गं च ततः कुर्यान्मन्त्राणैरेव बुद्धिमान् । तारं श्रीबीजयुग्मं च रामाय नम
 उच्चेत् ॥ २९ ॥ ग्लौमौ बीजं वदेन्मायां हृद्रामाय पुनश्च ताम् । शिवो-
 माराममन्त्रोऽयं वस्वर्णस्तु वसुप्रदः ॥ ३० ॥ ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्रं
 छन्द उच्यते । शिवोमारामचन्द्रोऽत्र देवता परिकीर्तिता ॥ ३१ ॥ दीर्घया
 माययाङ्गानि तारपञ्चार्णयुक्तया । रामं त्रिनेत्रं सोमार्धधारिणं झुलिनं परम् ।
 अस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपासहे ॥ ३२ ॥ रामाभिरामां सौन्दर्यसीमां
 सोमावतंसिकाम् । पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां ध्यायेन्निलोचनाम् ॥ ३३ ॥ ध्याय-
 न्नेवं वर्णलक्षं जपतर्पणतत्परः । विल्वपत्रैः फलैः पुष्पैस्तिलाज्यैः पङ्कजै-
 र्हुनेत् ॥ ३४ ॥ स्वयमायान्ति निधयः सिद्धयश्च सुरेप्सिताः । पुनरष्टाक्षर-
 स्याथ ब्रह्मगायत्रराघवाः ॥ ३५ ॥ ऋष्यादयस्तु विज्ञेयाः श्रीबीजं मम
 शक्तिकम् । तत्प्रीत्यै विनियोगश्च मन्त्राणैरङ्गकल्पना ॥ ३६ ॥ केयूराङ्गद-
 कङ्कणैर्मणिगतैर्विद्योत्तमानं सदा रामं पार्वणचन्द्रकोटिसदृशच्छत्रेण वै राजितम् ।
 हेमस्तम्भसहस्रषोडशयुते मध्ये महामण्डपे देवेशं भरतादिभिः परिवृतं रामं
 भजे श्यामलम् ॥ ३७ ॥ किं मन्त्रैर्बहुभिर्विनश्वरफलैरायाससाधैर्वृथा किञ्चि-
 ल्लोभवितानमात्रविफलैः संसारदुःखावहैः । एकः सन्नपि सर्वमन्नफलदो
 लोभादिदोषोऽक्षितः श्रीरासः शरणं ममेति सततं मन्त्रोऽयमष्टाक्षरः ॥ ३८ ॥
 एवमष्टाक्षरः सम्यक् सप्तधा परिकीर्तितः । रामसप्ताक्षरो मन्त्र आद्यन्ते
 तारसंयुतः ॥ ३९ ॥ नवार्णो मन्त्रराजः स्याच्छेषं षड्वर्णवक्ष्यसेत् । जानकी-
 वल्लभं देवतं वहेर्जायाहुमादिकम् ॥ ४० ॥ दशाक्षरोऽयं मन्त्रः स्यात्सर्वाभीष्ट-
 फलप्रदः । दशाक्षरस्य मन्त्रस्य वसिष्ठेभ्यः ऋषिर्विराट् ॥ ४१ ॥ छन्दोऽस्य
 देवता रामः सीतापाणिपरिग्रहः । आद्यो बीजं द्विष्टः शक्तिः कामेनाङ्गक्रिया
 मता ॥ ४२ ॥ शिरोललाटभूमध्ये तालुकर्णेषु हृद्यपि । नाभ्यूरुजातुपादेषु
 दशार्णान्विन्यसेन्मनोः ॥ ४३ ॥ अयोध्यानगरे रत्नचित्रे सौवर्णमण्डपे ।
 मञ्ज्वाणपुष्पैरावद्धविताने तोरणाञ्जिते ॥ ४४ ॥ सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि
 राघवम् । रक्षोभिर्हूरिभिर्देवैर्दिव्ययानगतैः शुभैः ॥ ४५ ॥ संस्तूयमानं
 मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम् । सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपसेवितम् ॥ ४६ ॥
 श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् । ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रं वर्णलक्षमन-

न्यधीः ॥ ४७ ॥ रामं डेन्तं धनुष्पाणयेऽन्तः स्याद्द्विहिसुन्दरी । दशाक्षरोऽयं
मन्त्रः स्यान्मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतः ॥ ४८ ॥ छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो
राक्षसमर्दनः । शेषं तु पूर्ववत्कुर्याच्चापबाणधरं सरेत् ॥ ४९ ॥ तारमायार-
मानङ्गवाक्स्ववीजैश्च षड्विधः । दशाणो मन्त्रराजः स्याद्भुद्रवर्णात्मको मनुः
॥ ५० ॥ शेषं षडर्णवज्जेशं न्यासध्यानादिकं बुधैः । द्वादशाक्षरमन्त्रस्य
श्रीराम ऋषिरुच्यते ॥ ५१ ॥ जगती छन्द इत्युक्तं श्रीरामो देवता मतः ।
प्रणवो बीजमित्युक्तः क्लीं शक्तिर्ह्रीं च कीलकम् ॥ ५२ ॥ मन्त्रेणाङ्गानि
विन्यस्य शिष्टं पूर्ववदाचरेत् । तारं मायां समुच्चार्य भरताग्रज इत्यपि ॥ ५३ ॥
रामं क्लीं वह्निजायान्तं मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः । ॐ हृद्भगवते रामचन्द्रमद्भौ च
डेयुतौ ॥ ५४ ॥ अर्काणो द्विविधोऽप्यस्य ऋषिध्यानादिपूर्ववत् । छन्दस्तु
जगती चैव मन्त्राणैरङ्गकल्पना ॥ ५५ ॥ श्रीरामेति पदं चोक्त्वा जयराम
ततः परम् । जयद्वयं वदेत्प्राज्ञो रामेति मन्तराजकः ॥ ५६ ॥ त्रयोदशार्णं
ऋष्यादि पूर्ववत्सर्वकामदः । पदद्वयद्विरावृत्तेरङ्गं ध्यानं दशार्णवत् ॥ ५७ ॥
तारादिसहितः सोऽपि स चतुर्दशवर्णकः । त्रयोदशार्णमुच्चार्य पश्चाद्भामेति
योजयेत् ॥ ५८ ॥ स वै पञ्चदशार्णस्तु जपतां कल्पभूरुहः । नमश्च सीताप-
तये रामायेति हनद्वयम् ॥ ५९ ॥ ततस्तु कवचास्त्रान्तः षोडशाक्षर ईरितः ।
तस्यागस्त्यऋषिश्छन्दो बृहती देवता च सः ॥ ६० ॥ रां बीजं शक्तिरस्त्रं च
कीलकं हुमिलीरितम् । द्विपञ्चत्रिचतुर्वर्णैः सर्वैरङ्गं न्यसेत्क्रमात् ॥ ६१ ॥
तारादिसहितः सोऽपि मन्त्रः सप्तदशाक्षरः । तारं नमो भगवते रामं डेन्तं महा
ततः ॥ ६२ ॥ पुरुषाय पदं पश्चाद्भुदन्तोऽष्टादशाक्षरः । विश्वामित्रो मुनि-
श्छन्दो गायत्रं देवता च सः ॥ ६३ ॥ कामादिसहितः सोऽपि मन्त्र एकोन-
विंशकः । तारं नमो भगवते रामायेति पदं वदेत् ॥ ६४ ॥ सर्वशब्दं समुच्चार्य
सौभाग्यं देहि मे वदेत् । वह्निजायां तथोच्चार्य मन्त्रो विंशार्णको मतः ॥ ६५ ॥
तारं नमो भगवते रामाय सकलं वदेत् । आपञ्जिवारणायेति वह्निजायां ततो
वदेत् ॥ ६६ ॥ एकविंशार्णको मन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः । तारं रमा स्वबीजं
च ततो दाशरथाय च ॥ ६७ ॥ ततः सीतावल्लभाय सर्वाभीष्टपदं वदेत् ।
ततो दाय हृदन्तोऽयं मन्त्रो द्वाविंशदक्षरः ॥ ६८ ॥ तारं नमो भगवते वीर-
रामाय संवदेत् । कल शत्रून् हन द्वन्द्वं वह्निजायां ततो वदेत् ॥ ६९ ॥

त्रयोविंशाक्षरो मन्त्रः सर्वशत्रुनिबर्हणः । विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तो गायत्री
छन्द उच्यते ॥ ७० ॥ देवता वीररामोऽसौ बीजाद्याः पूर्ववन्मताः । मूल-
मन्त्रविभागेन न्यासान्कृत्वा विचक्षणः ॥ ७१ ॥ शरं धनुषि संधाय तिष्ठन्तं
रावणोन्मुखम् । वज्रपाणिं रथारूढं रामं ध्यात्वा जपेन्मनुम् ॥ ७२ ॥ तारं
नमो भगवते श्रीरामाय पदं वदेत् । तारकब्रह्मणे चोक्त्वा मां तारय पदं
वदेत् ॥ ७३ ॥ नमस्तारात्मको मन्त्रश्चतुर्विंशतिवर्णकः । बीजादिकं यथापूर्वं
सर्वं कुर्यात्षड्वर्णवत् ॥ ७४ ॥ कामस्तारो नतिश्चैव ततो भगवतेपदम् ।
रामचन्द्राय चोच्चार्य सकलेति पदं वदेत् ॥ ७५ ॥ जनवश्यकरायेति स्वाहा
कामात्मको मनुः । सर्ववश्यकरो मन्त्रः पञ्चविंशतिवर्णकः ॥ ७६ ॥ आदौ
तारेण संयुक्तो मन्त्रः षड्विंशदक्षरः । अन्तेऽपि तारसंयुक्तः सप्तविंशतिवर्णकः
॥ ७७ ॥ तारं नमो भगवते रक्षोघ्नविशदाय च । सर्वविघ्नान्तस्समुच्चार्य निवारय
पदद्वयम् ॥ ७८ ॥ स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयमष्टाविंशतिवर्णकः । अन्ते तारेण
संयुक्त एकोनत्रिंशदक्षरः ॥ ७९ ॥ आदौ स्वबीजसंयुक्तस्त्रिंशद्वर्णात्मको
मनुः । अन्तेऽपि तेन संयुक्त एकत्रिंशात्मकः स्मृतः ॥ ८० ॥ रामभद्रं महे-
ष्वास रघुवीरं नृपोत्तम । ओ दशास्यान्तकास्माकं श्रियं दापय देहि मे ॥ ८१ ॥
आनुष्टुभ ऋषी रामश्छन्दोऽनुष्टुप् देवता । रां बीजमस्य यं शक्तिरिष्टार्थे
विनियोजयेत् ॥ ८२ ॥ पादं हृदि च विन्यस्य पादं शिरसि विन्यसेत् ।
शिखायां पञ्चभिर्न्यस्य त्रिवर्णैः कवचं न्यसेत् ॥ ८३ ॥ नेत्रयोः पञ्चवर्णैश्च
दापयेत्यस्त्रमुच्यते । चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् ॥ ८४ ॥ हत्वा
रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् । रामभद्रं हृदि ध्यात्वा दशलक्षं जपेन्म-
नुम् ॥ ८५ ॥ वदेद्दशरथायेति विग्रहेति पदं ततः । सीतापदं समुद्धृत्य
वल्लभाय ततो वदेत् ॥ ८६ ॥ धीमहीति वदेत्तन्नो रामश्चापि प्रचोदयात् ।
तारादिरेषा गायत्री मुक्तिमेव प्रयच्छति ॥ ८७ ॥ मायादिरपि वैदुष्यं रामा-
दिश्च श्रियः पदम् । मदनेनापि संयुक्तः स मोहयति मेदिनीम् ॥ ८८ ॥
पञ्च त्रीणि षड्वर्णैश्च त्रीणि चत्वारि वर्णकैः । चत्वारि च चतुर्वर्णैरङ्ग-
न्यासं प्रकल्पयेत् ॥ ८९ ॥ बीजध्यानादिकं सर्वं कुर्यात्षड्वर्णवत्क्रममात् ।
तारं नमो भगवते चतुर्थ्या रघुनन्दनम् ॥ ९० ॥ रक्षोघ्नविशदं तद्वन्मधुरेति
वदेत्ततः । प्रसन्नवदनं हेन्तं वदेदमिततेजसे ॥ ९१ ॥ बलरामौ चतुर्थ्यन्तौ
विष्णुं हेन्तं नतिस्ततः । प्रोक्तो मालामनुः सप्तचत्वारिंशद्विंशतैः ॥ ९२ ॥

ऋषिश्छन्दो देवतादि ब्रह्मानुष्टुभराधवाः । सप्तर्षिसप्तदशषड्रसंख्यैः षडङ्ग-
कम् ॥ ९३ ॥ ध्यानं दशाक्षरं प्रोक्तं लक्ष्मिकं जपेन्मनुम् । श्रियं सीतं चतु-
र्थ्यन्तां स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः ॥ ९४ ॥ जनकोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री देवता
मनोः । सीता भगवती प्रोक्ता श्रीं बीजं नतिशक्तिकम् ॥ ९५ ॥ कीलं सीता
चतुर्थ्यन्तमिष्टार्थं विनियोजयेत् । दीर्घस्वरयुताद्येन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥
स्वर्णाभामम्बुजकरं रामालोकनतत्परम् । ध्यायेत्षट्कोणमध्यस्थरामाङ्कोपरि-
शोभिताम् ॥ ९७ ॥ लकारं तु समुद्धृत्य लवणासुरहन्तारं नमोन्तकः । अगस्त्य-
ऋषिरस्याथ गायत्रं छन्द उच्यते ॥ ९८ ॥ लवणासुरहन्ता प्रोक्तो लं बीजं
शक्तिरस्य हि । नमस्तु विनियोगो हि पुरुषार्थचतुष्टय ॥ ९९ ॥ दीर्घभाजा
स्वबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् । द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मभक्षणम् ॥ १०० ॥
धनुर्बाणधरं देवं रामाराधनतत्परम् । भकारं तु समुद्धृत्य भरताय नमोन्तकः
॥ १०१ ॥ अगस्त्यऋषिरस्याथ शेषं पूर्ववदाचरेत् । भरतं श्यामलं शान्तं
रामसेवापरायणम् ॥ १०२ ॥ धनुर्बाणधरं वीरं कैकेयीतनयं भजे । शं बीजं
तु समुद्धृत्य शत्रुघ्नाय नमोन्तकः । ऋग्यादयो यथापूर्वं विनियोगोऽस्तिग्रहे
॥ १०३ ॥ द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणम् । लवणासुरहन्तारं सुमित्रा-
तनयं भजे ॥ १०४ ॥ हं हनूमांश्चतुर्थ्यन्तं हृदन्तो मन्त्रराजकः । रामचन्द्र
ऋषिः प्रोक्तो योजयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥ १०५ ॥ द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवा-
परायणम् । मौञ्जीकौपीनसहितं मां ध्यायेद्भामसेवकम् ॥ इति ॥ १०६ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सनकाद्या मुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः । आज्ञनेय महाबल पूर्वोक्तमन्त्राणां
पूजापीठमनुब्रूहीति । हनूमान् होवाच । आदौ षड्कोणम् । तन्मध्ये रामबीजं
सग्रीकम् । तदधोभागे द्वितीयान्तं साध्यम् । बीजोर्ध्वभागे षष्ठ्यन्तं साध-
कम् । पार्श्वे दृष्टिबीजे तत्परितो जीवप्राणशक्तिवश्यबीजानि । तत्सर्वं सन्मु-
खोन्मुखाभ्यां प्रणवाभ्यां वेष्टनम् । अग्नीशासुरवायव्यपुरःपृष्ठेषु षड्कोणेषु
दीर्घभाजि । हृदयादिमन्त्राः क्रमेण । रां रीं रूं रैं रौं रः इति दीर्घभाजि
तद्युक्तहृदयाद्यन्तम् । षड्कोणपार्श्वे रमामायाबीजे । कोणाग्रे वाराहं हुमिति ।
तृद्धीजान्तराले कामबीजम् । परितो वाग्भवम् । ततो वृत्तत्रयं साष्टपत्रम् ।
तेषु दलेषु स्वरानष्टवर्गान्प्रतिदलं मालामनुवर्णषट्कम् । अन्ते पञ्चाक्षरम् ।
तद्वलकपोलेष्वष्टवर्णान् । पुनरष्टदलपत्रम् । तेषु दलेषु नारायणाष्टाक्षरो

मन्त्रः । तद्वलकपोलेषु श्रीबीजम् । ततो वृत्तम् । ततो द्वादशदलम् । तेषु दलेषु
वासुदेवद्वादशाक्षरो मन्त्रः । तद्वलकपोलेष्वेवादिक्षान्तान् (आदित्यान्) । ततो
वृत्तम् । ततः षोडशदलम् । तेषु दलेषु हुं फट् नतिसहितरामद्वादशाक्षरम् ।
तद्वलकपोलेषु मायाबीजम् । सर्वत्र प्रतिकपोलं द्विरावृत्त्या हं स्तं अं व्रं अमं
श्रुं अम् । ततो वृत्तम् । ततो द्वात्रिंशद्वलपञ्चम् । तेषु दलेषु नृसिंहमन्त्ररा-
जानुष्टुभमन्त्रः । तद्वलकपोलेष्वष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यमन्त्राः प्रणवा-
दिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । तद्वहिर्वषट्कारं परितः । ततो रेखात्रययुक्तं
श्रृपुरम् । द्वादशदिक्षु राश्यादिभूषितम् । अष्टनागैरधिष्ठितम् । चतुर्दिक्षु
चारसिंहबीजम् । विदिक्षु वाराहबीजम् । एतत्सर्वात्मकं यन्त्रं सर्वकामप्रदं
मोक्षप्रदं च । एकाक्षरादिनवाक्षरान्तानामेतद्यन्त्रं भवति । तद्वशावरणात्मकं
भवति । षड्कोणमध्ये साङ्गं राघवं यजेत् । षड्कोणेष्वाङ्गैः प्रथमा वृत्तिः ।
अष्टदलमूले आत्माद्यावरणम् । तदग्रे वासुदेवाद्यावरणम् । द्वितीयाष्ट-
दलमूले घृष्ट्याद्यावरणम् । तदग्रे हनूमदाद्यावरणम् । द्वादशदलेषु वसि-
ष्ठाद्यावरणम् । षोडशदलेषु नीलाद्यावरणम् । द्वात्रिंशदलेषु ध्रुवाद्यावरणम् ।
श्रृपुरान्तरिन्द्राद्यावरणम् । तद्वहिर्वज्राद्यावरणम् । एवमभ्यर्च्य मनुं जपेत् ॥
अथ दशाक्षरादिद्वात्रिंशदक्षरान्तानां मन्त्राणां पूजापीठमुच्यते । आदौ
षड्कोणम् । तन्मध्ये स्वबीजम् । तन्मध्ये साध्यनामानि । एवं कामबीज-
वेष्टनम् । ततः शिष्टेन नवार्णेन वेष्टनम् । षड्कोणेषु षडङ्गान्यग्नीशासुरवाय-
व्यपूर्वपृष्ठेषु । तत्कपोलेषु श्रीमाये । कोणाग्रे क्रोधम् । ततो वृत्तम् ।
ततोऽष्टदलम् । तेषु दलेषु षट्संख्यया मालामनुवर्णान् । तद्वलकपोलेषु
षोडश स्वराः । ततो वृत्तम् । तत्परित आदिक्षान्तम् । तद्वहिर्भूपुरं
साष्टशूलाग्रम् । दिक्षु विदिक्षु नारसिंहवाराहे । एतन्महायन्त्रम् ।
आधारशक्त्यादिवैष्णवपीठम् । अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः । मध्ये रामम् । वामभगो
सीताम् । तत्पुरतः शार्ङ्गं शरं च । अष्टदलमूले हनुमदादिद्वितीयावरणम् ।
घृष्ट्यादितृतीयावरणम् । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी । वज्रादिभिः पञ्चमी । एतद्यन्त्रा-
शधनपूर्वकं दशाक्षरादिमन्त्रं जपेत् ॥ १ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सनकाद्या मुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः । श्रीराममन्त्राणां पुरश्चरणविधिमनु-
ब्रूहीति । हनूमान्होवाच । त्वत्तं त्रिषवणस्त्राथी पयोमूलफलादिभुक् । अथवा
पायसाहारो हविष्यान्नाद एव वा ॥ १ ॥ षडसैश्च परित्यक्तः स्वाश्रमोक्त-
विधिं चरन् । वनितादिषु वाक्कर्ममनोभिर्निःस्पृहः शुचिः ॥ २ ॥ भूमिशाथी
ब्रह्मचारी निष्कामो गुरुभक्तिमान् । ज्ञानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ ३ ॥
गुरुपदिष्टमार्गेण ध्यायन्नाममनन्यधीः । सूयन्दुगुरुदीपादिगोब्राह्मणसम्प्रीपतः
॥ ४ ॥ श्रीरामसन्निधौ मौनी मन्त्रार्थमनुचिन्तयन् । व्याघ्रचर्मासने स्थित्वा
स्वस्तिकाद्यासनक्रमात् ॥ ५ ॥ तुलसीपारिजातश्रीवृक्षमूलदिकस्थले । पञ्चा-
क्षतुलसीकाष्ठरुद्राक्षकृतमालया ॥ ६ ॥ मातृकामालया मन्त्री मनसैव मन्त्रं
जपेत् । अभ्यर्च्य वैष्णवे पीठे जपेदक्षरलक्षकम् ॥ ७ ॥ तर्पयेत्तद्दशांशेन
पायसात्तद्दशांशतः । जुहुयाद्गोष्ठतेनैव भोजयेत्तद्दशांशतः ॥ ८ ॥ ततः
पुष्पाञ्जलिं मूलमन्त्रेण विधिवच्चरेत् । ततः सिद्धमनुभूत्वा जीवन्मुक्तो भवे-
न्मुनिः ॥ ९ ॥ अणिमादिर्भजत्येनं यूनां चरवधूरिव । ऐहिकेषु च कार्येषु
महापत्सु च सर्वदा ॥ १० ॥ नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः ।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद्रामसेवकम् ॥ ११ ॥ यो रामं संस्मरेन्नित्यं
भक्त्या मनुपरायणः । तस्माहमिष्टसंसिद्धौ दीक्षितोऽस्मि मुनीश्वराः ॥ १२ ॥
वाञ्छितार्थं प्रदास्यामि भक्तानां राघवस्य तु । सर्वथा जागरूकोऽस्मि राम-
कार्यधुरंधरः ॥ १३ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सनकाद्या मुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः । श्रीराममन्त्रार्थमनुब्रूहीति । हनूमा-
न्होवाच । सर्वेषु राममन्त्रेषु मन्त्रराजः षडक्षरः । एकधाथ द्विधा त्रैधा
चतुर्धा पञ्चधा तथा ॥ १ ॥ षडसस्रधाऽष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः ।
षडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्त्वतः ॥ २ ॥ श्रीराममन्त्रराजस्य
सम्यगर्थोऽयमुच्यते । नारायणाष्टाक्षरे च शिवपञ्चाक्षरे तथा । सार्थकार्णद्वयं
रामो रमन्ते यत्र योगिनः । रकारो वह्निवचनः प्रकाशः पर्यवस्यति ॥ ३ ॥
सच्चिदानन्दरूपोऽस्य परमात्मार्थ उच्यते । व्यञ्जनं निष्कलं ब्रह्म प्राणो
मायेति च स्वरः ॥ ४ ॥ व्यञ्जनैः स्वरसंयोगं विद्धि तत्प्राणयोजनम् । रेफो
ज्योतिर्मये तस्मात्कृतमाकारयोजनम् ॥ ५ ॥ मकारोऽभ्युदयार्थत्वात्स मायेति
च कीर्यते । सोऽयं बीजं स्वकं तस्मात्समायं ब्रह्म चोच्यते ॥ ६ ॥ सविन्दुः

सोऽपि पुरुषः शिवसूर्येन्दुरूपवान् । ज्योतिस्तस्य शिखा रूपं नादः
 सप्रकृतिर्मतः ॥ ७ ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ समायाद्ब्रह्मणः स्मृतौ ।
 बिन्दुनादात्मकं बीजं वह्निसोमकलात्मकम् ॥ ८ ॥ अग्नीषोमात्मकं रूपं
 रामबीजे प्रतिष्ठितम् । यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ॥ ९ ॥ तथैव
 रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् । बीजोक्तमुभयार्थत्वं रामनामनि दृश्यते
 ॥ १० ॥ बीजं मायाविनिर्मुक्तं परंब्रह्मेति कीर्त्यते । मुक्तिदं साधकानां च
 मकारो मुक्तिदो मतः ॥ ११ ॥ मारूपत्वादतो रामो मुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
 आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वंपदार्थवान् ॥ १२ ॥ तयोः संयोजनमसी-
 त्यर्थे तत्त्वविदो विदुः । नमस्त्यसर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते ॥ १३ ॥
 असीत्यर्थे चतुर्थी स्यादेवं मन्त्रेषु योजयेत् । तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु केवल
 मुक्तिदं यतः ॥ १४ ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते । मनुष्वेतेषु
 सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम् ॥ १५ ॥ मुमुक्षूणां विरक्तानां तथा चाश्रमवा-
 सिनाम् । प्रणवत्वात्सदा ध्येयो यतीनां च विशेषतः । राममन्त्रार्थविज्ञानी
 जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ १६ ॥ य इमामुपनिषदमधीते सोऽभिपूतो भवति ।
 स वायुपूतो भवति । सुरापानापूतो भवति । स्वर्णस्तेयापूतो भवति । ब्रह्म-
 हत्यायाः पूतो भवति । स राममन्त्राणां कृतपुरश्चरणो रामचन्द्रो भवति ।
 तदेतद्व्याभ्युक्तम्—सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते
 संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ १७ ॥

(सर्वसारादिरामरहस्यान्तग्रन्थः ३००० । ईशावास्यादिरामरहस्यान्त-
 ग्रन्थः ८३४८)

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

इति श्रीरामरहस्योपनिषत्समाप्ता ॥ ५६ ॥

श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ ५७ ॥

श्रीरामतापिनीयार्थं भक्तोध्येयकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं श्रीरामब्रह्म मे गतिः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

ॐ चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ । रघोः कुलेऽखिलं राति
 राजते यो महीस्थितः ॥ १ ॥ स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ।
 राक्षसा येन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा ॥ २ ॥ रामनाम भुवि ख्यातम-

भिरामेण वा पुनः । राक्षसान्मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा ॥ ३ ॥ प्रभाहीनां-
स्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीश्रुताम् । धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च
नामतः ॥ ४ ॥ तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात् । तथा रात्रस्य
रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः ॥ ५ ॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे
चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ ६ ॥ चिन्मयस्याद्विती-
यस्य निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ ७ ॥
रूपस्थानां देवतानां पुण्ड्यङ्गास्त्रादिकल्पना । द्वि चत्वारि षडष्टाऽऽसां दश
द्वादश षोडश ॥ ८ ॥ अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः । सह-
स्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना ॥ ९ ॥ शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवं हि
पञ्चधा । कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना ॥ १० ॥ ब्रह्मादीनां वाच-
कोऽयं मन्त्रोऽन्वयादिंसंज्ञकः । जप्तव्यो मन्त्रिणा नैवं विना देवः प्रसीदति
॥ ११ ॥ क्रिया कर्मेति कर्तृणामर्थं मन्त्रो वदत्यथ । मननाम्नाणनाम्नः सर्व-
वाच्यस्य वाचकः ॥ १२ ॥ सोभयस्यास्य देवस्य विग्रहो यन्नकल्पना । विना
यन्त्रेण चेत्पूजा देवता न प्रसीदति ॥ १३ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

स्वर्भूज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते । जीवत्वेनेदमो यस्य सृष्टि-
स्थितिलयस्य च ॥ १ ॥ कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजःसत्त्वतमोगुणैः । यथैव
वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ॥ २ ॥ तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।
रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिष्ठ एव चेति ॥ ३ ॥ सीतारामौ तन्मयावन्न
पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च प्रहृतान्येव तेषु ततो
रामो मानवो माययाध्यात् ॥ ४ ॥ जगत्प्राणायामनेऽस्मै नमः स्यान्नमस्त्वैक्यं
प्रवदेत्प्रागुणेनेति ॥ ५ ॥

इति श्रीरामतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

जीववाचि नमो नाम चात्मा रामेति गीयते । तद्विश्विका या चतुर्थी तथा
चाऽऽयेति गीयते ॥ १ ॥ मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः ।
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥ २ ॥ यथा नामी वाचकेन नाम्ना
योऽभिमुखो भवेत् । तथा बीजात्मको मन्त्रो मन्त्रिणोऽभिमुखो भवेत् ॥ ३ ॥
बीजशक्तिं न्यसेदक्षवामयोः स्तनयोरपि । कीलो मध्येऽविनाभाव्यः स्ववा-
च्छाविनियोगवान् ॥ ४ ॥ सर्वेषामेव मन्त्राणामेष साधारणः क्रमः । अत्र

उप० ५]

श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ ५७ ॥

३९७

रामोऽनन्तरूपस्तेजसा वह्निना समः ॥ ५ ॥ स त्वनुष्णगुर्विश्वश्चेदभीषोमात्मकं
जगत् । उत्पन्नः 'शीतया भाति चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥ ६ ॥ प्रकृत्या सहितः
इयामः पीतवासा जटाधरः । द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥ ७ ॥
प्रसन्नवदनो जेता धृष्ट्यष्टकविभूषितः । प्रकृत्या परमेश्वर्या जगद्योन्याऽङ्किताङ्गमृत्
॥ ८ ॥ हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता । श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः
कोसलजात्मजः ॥ ९ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः । हेमाभे नानुजेनैव तथा
कोणत्रयं भवेत् ॥ १ ॥ तथैव तस्य मन्त्रस्य यस्याणुश्च स्वङ्केन्तया । एवं
त्रिकोणरूपं स्यात्तं देवा ये समाययुः ॥ २ ॥ स्तुतिं चकुश्च जगतः पतिं
कल्पतरौ स्थितम् । कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥ ३ ॥ नमो
वेदादिरूपाय ओङ्काराय नमो नमः । रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये
॥ ४ ॥ जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने । भद्राय रघुवीराय दशास्या-
न्तकरूपिणे ॥ ५ ॥ रामभद्र महेश्वास रघुवीर नृपोत्तम ॥ ६ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४ ॥

भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥ १ ॥ त्वमैश्वर्यं दापयाथ
संप्रत्या खरमारणम् । कुर्वन्ति स्तुत्य देवाद्यास्तेन सार्धं सुखं स्थिताः ॥ २ ॥
स्तुवन्येयं हि ऋषयस्तदा रावण आसुरः । रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्य-
र्थमाददे ॥ ३ ॥ स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः । तद्व्याजेनेक्षितुं
सीतां रामो लक्ष्मण एव च ॥ ४ ॥ विचेरतुस्तदा भूमौ देवीं संदृश्य
चासुरम् । हत्वा कबन्धं शबरीं गत्वा तस्याज्ञया तथा ॥ ५ ॥ पूजितां-
वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम् । आहूय शंसतां सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणौ
॥ ६ ॥ स तु रामे शङ्कितः सन्प्रत्ययार्थं च दुन्दुभेः । विग्रहं दर्शयामास
यो रामस्तमविक्षिपत् ॥ ७ ॥ सप्त सालान्विभिद्याशु मोदते राघवस्तदा ।
तेन हृष्टः कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥ ८ ॥ जगामागर्जदनुजो
वालिनो वेगतो गृहात् । वाली तदा निर्जगाम तं वालिनमथाहवे ॥ ९ ॥
निहत्य राघवो राज्ये सुग्रीवं स्थापयेत्ततः ॥ १० ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु पञ्चमोपनिषत् ॥ ५ ॥

हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाज्ञाविदोऽधुना ॥ १ ॥ आदायं मैथिलीमद्य
 ददत श्वाशु गच्छत । ततस्ततार हनुमानर्द्धि लङ्कां समाययौ ॥ २ ॥ सीतां
 दृष्ट्वाऽसुरान्हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् । आगत्य रामेण सह न्यवेदयत
 तत्त्वतः ॥ ३ ॥ तदा रामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान् । तैः सार्धमा-
 दायाक्षांश्च पुरीं लङ्कां समाययौ ॥ ४ ॥ तां दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धम-
 कारयत् । घटश्रोत्रसहस्राक्षजिह्वां युक्तं तमाहवे ॥ ५ ॥ हत्वा विभीषणं तत्र
 स्थाप्याथ जनकात्मजाम् । आदायाङ्कस्थितां कृत्वा स्वपुरं तैर्जंगाम सः ॥ ६ ॥
 घृतः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः । धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरण-
 भूषितः ॥ ७ ॥ मुद्रां ज्ञानमयीं याम्ये वामे तेजःप्रकाशिनीम् । धृत्वा
 व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥ ८ ॥ उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ
 घृतः । हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यान्निकोणगम् ॥ ९ ॥ भरताधस्तु सुग्रीवं
 शत्रुघ्नाघो विभीषणम् । पश्चिमे लक्ष्मणं तस्य घृतच्छत्रं सचामरम् ॥ १० ॥
 तदधस्तौ तालवृन्तकरौ व्यस्रं पुनर्भवेत् । एवं षड्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गैरेष
 संयुतः ॥ ११ ॥ द्वितीयं वासुदेवाद्यैराभेद्यादिषु संयुतः । तृतीयं वायुसुतं
 च सुग्रीवं भरतं तथा ॥ १२ ॥ विभीषणं लक्ष्मणं चाङ्गदं चारिविमर्दनम् ।
 जाम्बवन्तं च तैर्युक्तस्ततो घृष्टिर्जयन्तकः ॥ १३ ॥ विजयश्च सुराङ्गश्च राष्ट्र-
 वर्धन एव च । अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रैरेभिरावृतः ॥ १४ ॥ सहस्रदृग्व-
 ह्निर्धर्मरक्षो वरुणोऽनिलः । इन्द्रीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्त्वेभिरावृतः ॥ १५ ॥
 बहिस्तदायुधैः पूज्यो नीलादिभिरलंकृतः । वसिष्ठवामदेवादिमुनिभिः समु-
 पासितः ॥ १६ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु षष्ठोपनिषत् ॥ ६ ॥

एवमुद्देशतः प्रोक्तं निर्देशस्तस्य चाधुना । त्रिरेखापुटमालिख्य मध्ये
 तारद्वयं लिखेत् ॥ १ ॥ तन्मध्ये बीजमालिख्य तदधः साध्यमालिखेत् ।
 द्वितीयान्तं च तस्योर्ध्वं षष्ठयन्तं साधकं तथा ॥ २ ॥ कुरुद्वयं च तत्पार्श्वे
 लिखेद्बीजान्तरे रमाम् । तत्सर्वं प्रणवाभ्यां च वेष्टितं बुद्धिबुद्धिमान् ॥ ३ ॥
 दीर्घभाजि षडक्षे तु लिखेद्बीजं हृदादिभिः । कोणपार्श्वे रमामाये तदग्रेऽनङ्ग-
 मालिखेत् ॥ ४ ॥ क्रोधं कोणाग्रान्तरेषु लिख्य मङ्गयमितो गिरम् । वृत्तत्रयं
 साष्टपत्रं सरोजे विलिखेत्स्वरान् ॥ ५ ॥ केसरेष्वष्टपत्रे च वर्गाष्टकमथा-
 लिखेत् । तेषु मालामनोर्वर्णान्विलिखेद्दूर्मिसंख्यया ॥ ६ ॥ अन्ते पञ्चाक्षरा-

नेवं पुनरष्टदलं लिखेत् । तेषु नारायणाष्टाणं लिखत्तत्केसरे रमाम् ॥ ७ ॥
तद्वह्निर्द्वादशदलं विलिखेद्द्वादशाक्षरम् । तथो नमो भगवते वासुदेवाय
इत्ययम् ॥ ८ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु सप्तमोपनिषत् ॥ ७ ॥

आदिक्षान्तान्केसरेषु वृत्ताकारेण संलिखेत् । तद्वहिः षोडशदलं लिख्य
तत्केसरे ह्रियम् ॥ १ ॥ वर्मास्त्रनतिसंयुक्तं दलेषु द्वादशाक्षरम् । तत्सन्धिप्वी-
रजादीनां मन्त्रान्मन्त्री समालिखेत् ॥ २ ॥ 'ह्रँ स्रँ म्रँ व्रँ ल्रँ श्रँ ज्रँ च लिखे-
त्सन्धिवत्ततो बहिः । द्वात्रिंशारं महापद्मं नादविन्दुसमायुतम् ॥ ३ ॥ विलि-
खेन्मन्त्रराजाणांस्तेषु पत्रेषु यत्नतः । ध्यायेदष्टवसूनेकादश रुद्रांश्च तत्र वै ॥ ४ ॥
द्वादशेनांश्च धातारं वषट्कारं ततो बहिः ॥ ५ ॥ भृगुहं वज्रशूलाब्जं रेखात्रय-
समन्वितम् । द्वारोपेतं च राक्षसादिभूयितं फणिसंयुतम् । अनन्तो वासुकिश्चैव
तक्षः कर्कोटपद्मकः ॥ ६ ॥ महापद्मश्च शङ्खश्च गुलिकोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सुष्टमोपनिषत् ॥ ८ ॥

एवं मण्डलमालिख्य तस्य दिक्षु विदिक्षु च ॥ १ ॥ नारसिंहं च वाराहं
लिखेन्मन्त्रद्वयं तथा । कूटो रेफानुग्रहेन्दुनादशक्त्यादिभिर्युतः ॥ २ ॥ यो
वृसिंहः समाख्यातो ग्रहमारणकर्मणि । अन्त्योऽर्धांशविद्यद्विन्दुनादबीजं च
सौकरम् ॥ ३ ॥ हुंकारं चात्र रामस्य मालामन्त्रोऽधुनेरितः । तारो नतिश्च
निद्रायाः स्मृतिर्मेदश्च कामिका ॥ ४ ॥ रुद्रेण संयुता वह्निर्मेधाऽमरविभूषिता ।
दीर्घाऽकूरयुता ह्लादिन्यथो दीर्घसमानदा ॥ ५ ॥ क्षुधा क्रोधिन्यमोघा च
विश्वमप्यथ मेधषा । युक्ता दीर्घा ज्वालिनी च सुसूक्ष्मा मृत्युरूपिणी ॥ ६ ॥
सप्रतिष्ठा ह्लादिनी त्वक्क्ष्वेलः प्रीतिश्च सामरा । ज्योतिस्तीक्ष्णाम्निसंयुक्ता
श्वेतानुस्वारसंयुता ॥ ७ ॥ कामिकापञ्च मोलान्तस्तान्तान्तो धान्त इत्यथ ।
स सानन्तो दीर्घयुतो वायुः सूक्ष्मयुतो विषः ॥ ८ ॥ कामिका कामिका
रुद्रयुक्ताथोऽथ स्थिरा स ए । तापिनी दीर्घयुक्ता भूरनलोऽनन्तगोऽनिलः ॥ ९ ॥
नारायणात्मकः कालः प्रानां भो विद्यया युतम् । पीता रतिस्तथा लान्तो
योन्या युक्तोऽन्ततो नतिः ॥ १० ॥ सप्तचत्वारिंशद्वर्णगुणान्तः सगुणः स्वयम् ।
राज्याभिषिक्तस्य तस्य रामस्योक्तक्रमालिखेत् ॥ ११ ॥ इदं सर्वात्मकं यत्नं
प्रागुक्तमृषिसेवितम् । सेवकाणां मोक्षकरमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ १२ ॥ अपुत्रिणां

पुत्रदं च बहुना किमनेन वै । प्रामुबन्ति क्षणात्सम्यगत्र धर्मादिकानपि ॥ १३ ॥
इदं रहस्यं परममीश्वरेणापि दुर्गमम् । इदं यत्र समाख्यातं न देयं प्राकृते
जने इति ॥ १४ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु नवमोपनिषत् ॥ ९ ॥

ॐ भूतादिकं शोधयेद्भारपूजां कृत्वा पद्माद्यासनस्थः प्रसन्नः । अर्चाविधा-
वस्य पीठाधरोर्ध्वं पार्श्वार्चनं मध्यपद्मार्चनं च ॥ १ ॥ कृत्वा मृदुश्लक्ष्णसुतूलि-
कायां रत्नासने देशिकमर्चयेत्त्वा । शक्तिं चाधाराख्यकां कूर्मनागौ पृथिव्यङ्गे
स्वासनाधः प्रकल्प्य ॥ २ ॥ विघ्नं दुर्गा क्षेत्रपालं च वाणीं बीजादिकांश्चा-
ग्निदेशादिकांश्च । पीठस्याङ्घ्रिष्वेव धर्मादिकांश्च नैऋत्पूर्वास्तांस्तस्य दिक्ष्वर्चयेच्च
॥ ३ ॥ मध्ये क्रमादकर्विध्वंसितेजांस्त्युपयुपयादिमैरर्चितानि । रजः सत्त्वं तम
एतानि वृत्तत्रयं बीजाङ्गं क्रमाद्भावयेच्च ॥ ४ ॥ आशाव्याशास्त्रप्यथात्मानम-
न्तरात्मानं वा परमात्मानमन्तः । ज्ञानात्मानं चार्चयेत्तस्य दिक्षु मायाविद्ये ये
कलापारतत्त्वे ॥ ५ ॥ संपूजयेद्विमलाद्याश्च शक्तीरभ्यर्चयेद्देवमावाहयेच्च । अङ्ग-
व्यूहानि जलाद्यैश्च पूज्य दृष्ट्यादिकैर्लोकपालैस्तदङ्गैः ॥ ६ ॥ वसिष्ठाद्यैर्मुनि-
भिर्नीलमुख्यैराराधयेद्वाघवं चन्दनाद्यैः । मुख्योपहारैर्विविधैश्च पूज्यैस्तस्यै
जपादींश्च सम्यक्समर्प्य ॥ ७ ॥ एवंभूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सच्चिदा-
नन्दरूपम् । गदारिशङ्खाब्जधरं भवारिं स यो ध्यायेन्मोक्षमाप्नोति सर्वः
॥ ८ ॥ विश्वव्यापी राघवोऽथो तदानीमन्तर्दधे शङ्खचक्रे गदाङ्गे । धृत्वा रमा-
सहितः सानुजश्च सपत्नजः सानुगः सर्वलोकी ॥ ९ ॥ तद्भक्ता ये लब्धकामाश्च
भुक्त्वा तथा पदं परमं यान्ति ते च । इमा ऋचः सर्वकामार्थदाश्च ये ते पठ-
न्त्यमला यान्ति मोक्षं येते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षमिति ॥ १० ॥

चिन्मयेऽस्मिन्त्रयोदश । स्वभूर्ज्योतिस्त्रिदशः । सीतारामावेका । जीववाची
षट्षष्टिः । भूतादिकमेतादश । पञ्चखण्डेषु त्रिनवतिः ।

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु दशमोपनिषत् ॥ १० ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ५७ ॥

श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ५८ ॥

ॐ बृहस्पतिस्वाच याज्ञवल्क्यम् । यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां
भूतानां ब्रह्मसदनमविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां
ब्रह्मसदनम् । तस्माद्यत्र कचन गच्छेत्तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां
देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् । अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु
रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासायमृती भूत्वा मोक्षी भवति । तस्मादविमुक्तमेव
निषेवेत । अविमुक्तं न विमुञ्जेत् । एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥ अथ हैनं
भरद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं किं तरतीति । स होवाच याज्ञ-
वल्क्यस्तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्मायां नमश्चन्द्राय नमो भद्राय
नम इत्येतद्ब्रह्मात्मिकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्याः । अकारः प्रथमा-
क्षरो भवति । उकारो द्वितीयाक्षरो भवति । मकारस्तृतीयाक्षरो भवति ।
अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति । बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति । नादः षष्ठाक्षरो
भवति । तारकत्वात्तारको भवति । तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवो-
पाख्यमिति ज्ञेयम् । गर्भजन्मजरामरणसंसारमहङ्गयाऽसंसारयतीति । तस्मा-
दुच्यते तारकमिति ॥ य एतत्तारकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते । स सर्वं
पाप्मानं तरति । स मृत्युं तरति । स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति ।
स वीरहत्यां तरति । स सर्वहत्यां तरति । स संसारं तरति सर्वं तरति ।
सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति । स महान्भवति । सोऽमृतत्वं च गच्छतीति
॥ २ ॥ अथैते श्लोका भवन्ति—अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्रैजसात्मकः ॥ १ ॥ प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकारा-
क्षरसंभवः । अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥ २ ॥ श्रीरामसंलि-
ध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥ ३ ॥
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता । प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति
ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥ इति ॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपन्याख्यानं भूतं
भवद्भविष्यदिति सर्वमोकार एव । यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योकार एव ।
सर्वं होतद्ब्रह्म । अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः
ससाङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुगवैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ स्वमस्थानो-
ऽन्तःप्रज्ञः ससाङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविचिक्तमुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥
यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुप्तम् । सुप्त-
अ. उ. २६

स्थान एकीभूतः प्रज्ञानधन एवानन्दमयो ह्यानन्दशुक्ल चेतोमुखः प्राज्ञ-
 स्तृतीयः पादः ॥ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य
 प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् । नान्तःप्रज्ञं न वहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं
 नाप्रज्ञं न प्रज्ञानधनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेका-
 त्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं अन्यन्ते । स आत्मा स
 विज्ञेयः सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित
 आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति संशान्या-
 हसिलो तत्सद्यत्परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः । सोऽहमो तद्रामभद्रपरंज्योतीः
 सोऽहमोमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकी कुर्यात् ॥ सदा रामोऽहमस्मीति
 तत्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥ इत्युपनि-
 षद्य एवं वेद स मुक्तो भवतीति याज्ञवल्क्यः ॥ अथ हैनमग्निः पप्रच्छ
 याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽव्यक्तपरिपूर्णानन्दैकचिदात्मा तं कथमहं विजा-
 नीयामिति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । सोऽविमुक्त उपास्यो य एषोऽन-
 न्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति । सोऽविमुक्तः कस्मिन्प्रतिष्ठित
 इति । वरणायां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति ॥ का वै वरणा का च
 नाशीति । जन्मान्तरकृतान्सर्वान्दोषान्वारयतीति तेन वरणा भवतीति ।
 सर्वानिन्द्रियकृतान्पापान्नाशयतीति तेन नाशी भवतीति । कतमयास्य
 स्थानं भवतीति । भुवोर्ग्राणस्य च यः सन्धिः स एष और्लोकस्य परस्य
 च सन्धिर्भवतीति । एतद्वै सन्धिं सन्ध्यां ब्रह्मविद् उपासत इति ॥
 सोऽविमुक्त उपास्य इति । सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वैतदेवं वेद स
 एषोऽक्षरोऽनन्तोऽव्यक्तः परिपूर्णानन्दैकचिदात्मा योऽयमविमुक्ते प्रतिष्ठित इति ।
 अथ तं प्रत्युवाच । श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः । मन्वन्तर-
 सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥ १ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्छीरामः प्राह
 शंकरम् । वृणीष्व यदभीष्टं तदास्यामि परमेश्वर ॥ २ ॥ इति ॥ अथ सच्चि-
 दानन्दात्मा श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ । मणिकर्ण्यां मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा राटे
 पुनः । त्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नास्तौ वरान्तरम् ॥ ३ ॥ इति ॥ अथ स
 होवाच श्रीरामः ॥ क्षेत्रेऽत्र तव देवेश यत्रकुत्रापि वा श्रुताः । कृमिकीटा-
 दयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥ ४ ॥ अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां
 मुक्तिसिद्धये । अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥ ५ ॥ क्षेत्रेऽस्मिन्यो-

ऽर्चयेन्नक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः
 ॥ ६ ॥ त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मग्नसिद्धाः
 स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥ ७ ॥ सुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्यकस्यापि वा
 स्वयम् । उपदेक्ष्यसि मन्मथं स मुक्तो भविता शिवेति ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रे-
 णोक्तं योऽविमुक्तं पश्यति स जन्मान्तरितान्दोषान्बारयतीति स जन्मान्तरि-
 तान्पापान्नाशयतीति । अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः
 स्तुतः श्रीरामः प्रीतो भवति । स्वात्मानं दर्शयति ताञ्चो ब्रूहि
 भगवन्निति । स होवाच याज्ञवल्क्यः श्रीरामचन्द्रेणैवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरै-
 तया गाथया नमस्करोति ॥ विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम् । परि-
 पूर्णानन्दविज्ञं परंब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ मनसा संस्मरन्ब्रह्म तुष्टाव परमेश्वरम् ।
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परं ब्रह्म
 भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १ ॥ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स
 भगवान्यश्चाखण्डैकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २ ॐ यो वै
 श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यच्च ब्रह्मानन्दामृतं भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यस्तारकं भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ४
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो ब्रह्मा विष्णुरीश्वरो यः सर्वदेवात्मा
 भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये सर्वे
 वेदाः साङ्गाः सशाखाः सपुराणा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ६ ॐ यो वै
 श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो जीवात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ७ ॐ यो
 वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः सर्वभूतान्तरात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो
 नमः ८ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये देवासुरमनुष्यादिभावा भूर्भुवः
 स्वस्तस्यै वै नमो नमः ९ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये मत्स्यकूर्माद्य-
 चतारा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः १० ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स
 भगवान्यश्च प्राणो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ११ ॐ यो वै श्रीराम-
 चन्द्रः स भगवान्योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः १२
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च यमो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः
 १३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्चान्तको भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो
 नमः १४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च सृष्ट्युर्भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै
 नमो नमः १५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्चामृतं भूर्भुवः स्वस्तस्यै
 वै नमो नमः १६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यानि पञ्च महाभूतानि

भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः १७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः
 स्थावरजङ्गमात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः १८ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः
 स भगवान्ये पञ्चाग्रयो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः १९ ॐ यो वै श्रीराम-
 चन्द्रः स भगवान्याः सप्त महाव्याहृतयो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २०
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या विद्या भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः
 २१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या सरस्वती भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो
 नमः २२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या लक्ष्मीर्भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो
 नमः २३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या गौरी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै
 नमो नमः २४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या जानकी भूर्भुवः स्वस्त-
 स्यै वै नमो नमः २५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यच्च त्रैलोक्यं
 भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च
 सूर्यो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स
 भगवान्यश्च सोमो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २८ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः
 स भगवान्यानि नक्षत्राणि भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः २९ ॐ यो वै
 श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये च नव ग्रहा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३०
 ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चाष्टौ लोकपाला भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै
 नमो नमः ३१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चाष्टौ वसवो भूर्भुवः
 स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चैकादश
 रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये
 च द्वादशादित्या भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः
 स भगवान्यच्च भूतं भवद्भविष्यद्भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३५ ॐ यो
 वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्च्याप्नोति यो विराड्भूर्भुवः
 स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो हिरण्य-
 गर्भो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भग-
 वान्या प्रकृतिर्भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३८ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः
 स भगवान्यश्चोकारो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ३९ ॐ यो वै
 श्रीरामचन्द्रः स भगवान्याश्चतस्रोऽमात्रा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः
 ४० ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः परमपुरुषो भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै
 नमो नमः ४१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च महेश्वरो भूर्भुवः

स्वस्तस्यै वै नमो नमः ४२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च महादेवो
भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ४३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्य
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुर्भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ४४
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः परमात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः
४५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो विज्ञानात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै
नमो नमः ४६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः सच्चिदानन्दैकरसात्मा
भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः ४७ इत्येतान्ब्रह्मवित्ससत्त्वारिंशन्मन्त्रैर्नित्यं देवं
स्तुवंस्ततो देवः प्रीतो भवति । तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं
प्रहयति सोऽमृतत्वं च गच्छति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति ॥ ५ ॥

ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया श्रीरामोत्तरतापिनीयोपनिषत्समाप्ता ॥ ५८ ॥

वासुदेवोपनिषत् ॥ ५९ ॥

यत्सर्वहृदयागारं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

वस्तुतो यन्निराधारं वासुदेवपदं भजे ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

ॐ नमस्कृत्य भगवान्नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ अधीहि भगवन्मूर्ध्व-
पुण्ड्रविधिं द्रव्यमन्नस्थानादिसहितं मे ब्रूहीति । तं होवाच भगवान्वासुदेवो
वैकुण्ठस्थानादुत्पन्नं मम प्रीतिकरं मङ्गलैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं
ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपीचन्दनमाख्यातं मदङ्गलेपनं
पुण्यं चक्रीथान्तःस्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं भवति । अथ
गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य । गोपीचन्दन पापघ्नं विष्णुदेहसमुद्भव । चक्रा-
ङ्कितं नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव । इमं मे गङ्गे इति जलमादाय विष्णो-
र्नुकमिति मर्दयेत् । अतो देवा अवन्तु न इत्येतन्मन्त्रैर्विष्णुगायत्र्या केशवा-
दिनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा ललाटहृदयकण्ठबाहुमूलेषु
वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिनामभिर्वा धारयेत् । इति त्रिवारमभिमन्त्र्य शङ्खचक्र-
गदापाणे द्वारकालिलयाच्युत । गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ।
इति ध्यात्वा गृहस्थो ललाटादिद्वादशस्थलेष्वनामिकाङ्गुल्या वैष्णवगायत्र्या

केशवादिनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ललाटहृदयकण्ठबाहु-
 मूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिनामभिर्वा धारयेत् । यतिस्तर्जन्या शिरोललाट-
 हृदयेषु प्रणवेनैव धारयेत् । ब्रह्मादयस्त्रयो सूर्ययस्त्रिंशो व्याहृतयस्त्रीणि
 छन्दांसि त्रयोऽग्नय इति ज्योतिष्मन्तस्त्रयः कालास्त्रिंशोऽवस्थास्त्रय आत्मानः
 पुण्ड्रास्त्रय ऊर्ध्वा अकार उकारो मकार एते प्रणवमयोर्ध्वपुण्ड्रास्तदात्मा सदे-
 सदोमिति । तानेकधा समभवत् । ऊर्ध्वमुन्नमयत इत्योकाराधिकारी । तस्या-
 दूर्ध्वपुण्ड्रं धारयेत् । परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत् ।
 तत्त्वप्रदीपप्रकाशं स्वात्मानं पश्यन्योगी मत्सायुज्यमवाप्नोति । अथवा
 न्यस्तहृदयपुण्ड्रमध्ये वा । हृदयकमलमध्ये वा तस्य मध्ये वह्निश्चिह्नं अणी-
 योर्ध्वा व्यवस्थिता । नीलतोयदमध्यस्थ्याद्विद्युल्लेखेव भास्वरा । नीवार-
 झुकवत्तन्वी विद्युल्लेखेव भास्वरा । तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा
 व्यवस्थित इति । अतः पुण्ड्रस्थं हृदयपुण्डरीकेषु तमभ्यसेत् । क्रमादेवं
 स्वात्मानं भावयेन्मां परं हरिम् । एकाग्रमनसा यो मां ध्यायते हरि-
 मव्ययम् । हृत्पङ्कजे च स्वात्मानं स युक्तो नात्र संशयः । मद्रूप-
 मद्रूपं ब्रह्म आदिमध्यान्तवर्जितम् । स्वप्नं सच्चिदानन्दं भक्त्या जानाति
 चाव्ययम् । एको विष्णुरनेकेषु जङ्गमस्थावरेषु च । अनुस्यूतो वसत्यात्मा
 भूतेष्वहमवस्थितः । तैलं तिलेषु काष्ठेषु वह्निः क्षीरे घृतं यथा । गन्धः पुष्पेषु
 शृतेषु तथात्माऽवस्थितो ह्यहम् । ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृदये चिद्विं हरिम् ।
 गोपीचन्दनमालिप्य तत्र ध्यात्वा मुयात्परम् । ऊर्ध्वदण्डोर्ध्वरेताश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रो-
 र्ध्वयोगवान् । ऊर्ध्वं पदमवाप्नोति यतिरूर्ध्वचतुष्कवान् । इत्येतस्त्रिंशतं
 ज्ञानं मज्जत्तया सिध्यति स्वयम् । नित्यमेकाग्रभक्तिः स्याद्गोपीचन्दनधार-
 णात् । ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम् । गोपीचन्दनवारिश्वाभ्य-
 र्ध्वपुण्ड्रं विधीयते । यो गोपीचन्दनाभावे तुलसीमूलमृत्तिकां । सुसुक्ष्मार्-
 रयेन्नित्यमपरोक्ष्वात्मसिद्धये । अतिरान्नाशिहोत्रभस्मनाग्नेर्भसितमिदं विष्णु-
 स्त्रीणि पदेति मन्त्रैर्वैष्णवगायत्र्या प्रणवेनोद्धूलनं कुर्यात् । एवं विधिना गोपी-
 चन्दनं च धारयेत् । यस्त्वधीते वा स सर्वपातकेभ्यः पृतो भवति । पाप-
 बुद्धिस्तस्य न जायते स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वैर्यज्ञैर्याजितो
 भवति । स सर्वैर्देवैः पूज्यो भवति । श्रीमन्नारायणे मय्यचञ्चला भक्तिश्च
 भवति । स सम्यग् ज्ञानं च लब्ध्वा विष्णुसायुज्यमवाप्नोति । न च पुनरा-

वर्तते न च पुनरावर्तते इत्याह भगवान्वासुदेवः । यस्त्वेतद्वाऽधीते सोऽप्ये-
वमेव भवतीत्यौ सत्यमित्युपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति वासुदेवोपनिषत्समाप्ता ॥ ५९ ॥

मुद्रलोपनिषत् ॥ ६० ॥

श्रीमत्पुरुषसूक्तार्थं पूर्णानन्दकलेवरम् ।

पुरुषोत्तमविख्यातं पूर्णं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥

ॐ वाञ्छो मनसीति शान्तिः ॥

ॐ पुरुषसूक्तार्थनिर्णयं व्याख्यास्यामः ॥ पुरुषसंहितायां पुरुषसूक्तार्थः
संग्रहेण प्रोच्यते । सहस्रशीर्षैलत्र सप्तद्वोऽनन्तवाचकः । अनन्तयोजनं ग्राह
दशाङ्गुलत्रयस्तथा ॥ १ ॥ तस्य प्रथमया विष्णोर्द्वैशतो व्याप्तिरिक्ता । द्विती-
यया चास्य विष्णोः कालतो व्याप्तिरुच्यते ॥ २ ॥ विष्णोर्मोक्षप्रदत्वं च
कथितं तु तृतीयया । एतावानिति मन्त्रेण वैभवं कथितं हरेः ॥ ३ ॥ एतेनैव
च मन्त्रेण चतुर्थ्यहो विभाषितः । त्रिपादित्यनया प्रोक्तमनिरुद्धस्य वैभवम्
॥ ४ ॥ तस्याद्विराडित्यनया पादुनारायणाद्वरेः । प्रकृतेः पुरुषस्यापि समुत्पत्तिः
प्रदर्शिता ॥ ५ ॥ यत्पुरुषेणेत्यनया सृष्टियज्ञः समीरितः । सप्तास्यासम्परिधयः
समिधश्च समीरिताः ॥ ६ ॥ तं यज्ञमिति मन्त्रेण सृष्टियज्ञः समीरितः । अनेनैव
च मन्त्रेण मोक्षश्च समुदीरितः ॥ ७ ॥ तस्यादिति च मन्त्रेण जगत्सृष्टिः समी-
रिता । वेदाहमिति मन्त्राभ्यां वैभवं कथितं हरेः ॥ ८ ॥ यज्ञेनेत्युपसंहारः
सृष्टेमोक्षश्च चेरितः । य एवमेतज्जानाति स हि मुक्तो भवेदिति ॥ ९ ॥ १ ॥
अथ तथा मुद्रलोपनिषदि पुरुषसूक्तस्य वैभवं विस्तरेण प्रतिपादितम् । वासु-
देव इन्द्राय भगवज्ज्ञानमुपदिश्य पुनरपि सूक्ष्मश्रवणाय प्रणतायेन्द्राय परम-
रहस्यभूतं पुरुषसूक्ताभ्यां खण्डद्वयाभ्यामुपादिशत् । द्वौ खण्डावुच्येते ।
योऽयमुक्तः स पुरुषो नामरूपज्ञानागोचरं संसारिणामतिदुर्ज्ञेयं विषयं विहाय
क्लेशादिभिः संछिद्यदेवादिजिहीर्षया सहस्रकलावयवकल्याणं दृष्टमात्रेण मोक्षदं
वेपभाद्वदे । तेन वेपेण भूत्यादिलोकं व्याप्यानन्तयोजनमत्यतिष्ठत् । पुरुषो
नारायणो भूतं भव्यं भविष्यच्चासीत् । स एव सर्वेषां मोक्षदश्चासीत् । स च

सर्वस्यान्महिम्नो ज्यायान् । तस्मान्न कोऽपि ज्यायान् । महापुरुष आत्मानं
चतुर्धा कृत्वा त्रिपादेन परमे व्योम्नि चासीत् । इतरेण चतुर्थेनानिरुद्धनारा-
यणेन विश्वान्यासत् । स च पादनारायणो जगत्स्रष्टुं प्रकृतिमजनयत् । स स्र-
ष्टृद्वकायः सन्सृष्टिकर्म न जज्ञिवान् । सोऽनिरुद्धनारायणस्तस्मै सृष्टिमुपादिशत् ।
ब्रह्मं स्ववेन्द्रियाणि याजकानि ध्यात्वा कोशभूतं दृढं ग्रन्थिकलेवरं हविर्ध्यात्वा
सां हविर्भुजं ध्यात्वा वसन्तकालमाज्यं ध्यात्वा ग्रीष्मसिध्मं ध्यात्वा शरदृतुं
रसं ध्यात्वैवमग्नौ हुत्वाङ्गस्पर्शात्कलेवरो वज्रं हीयते । ततः स्वकार्यान्सर्व-
प्राणिजीवान्सृष्ट्वा पश्चाद्याः प्रादुर्भविष्यन्ति । ततः स्थावरजङ्गमात्मकं जगत्स्र-
विष्यति । एतेन जीवात्मनोर्योगेन मोक्षप्रकारश्च कथित इत्यनुसंधेयम् । य इत्थं
सृष्टियज्ञं जानाति मोक्षप्रकारं च सर्वमायुरेति ॥ २ ॥ एको देवो बहुधा
निविष्ट अजायमानो बहुधा विजायते । तस्मै तस्मिन्निस्त्वध्वर्यव उपासते । यजु-
रित्येष हीदं सर्वं युनक्ति । सामेति छन्दोगाः । एतस्मिन्हीदं सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
विषमिति सर्पाः । सर्प इति सर्पविदः । ऊर्गिति देवाः । रयिरिति मनुष्याः ।
मायेत्यसुराः । स्वधेति पितरः । देवजन इति देवजनविदः । ऋषय इति
गन्धर्वाः । गन्धर्व इत्यप्सरसः । तं यथा यथोपासते तथैव भवति । तस्माद्वा-
ह्यणः पुरुषरूपं परंब्रह्मैवाहसिति भावयेत् । तद्रूपो भवति । य एवं वेद ॥ ३ ॥
तद्ब्रह्म तापत्रयातीतं पङ्क्तोऽश्विनिर्मुक्तं षड्भूमिर्वर्जितं पञ्चकोशातीतं षड्भाव-
विकारश्चून्यमेवमादिसर्वविलक्षणं भवति । तापत्रयं त्वाध्यात्मिकाधिभौतिका-
धिदैविकं कर्तृकर्मकार्यज्ञातृज्ञानज्ञेयभोक्तृभोगभोग्यमिति त्रिविधम् । त्वच्चा-
सशोणितस्थिराद्युसजाः षड्कोशाः । कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यमित्यरिष-
ड्वर्गः । अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया इति पञ्च कोशाः ।
प्रियात्मजननवर्धनपरिणामक्षयनाशाः षड्भावाः । अज्ञानायापिपासाशोकमो-
हजरामरणानीति षड्भूयः । कुलगोत्रजातिवर्णाश्रमरूपाणि षड् अमाः ।
एतद्योगेन परमपुरुषो जीवो भवति नान्यः । य एतदुपनिषदं नित्यमधीते
सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स आदित्यपूतो भवति । अरोगी
भवति । श्रीमांश्च भवति । पुत्रपौत्रादिभिः समृद्धो भवति । विद्वांश्च भवति ।
महापातकात्पूतो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । अमभ्यागमनात्पूतो
भवति । मातृगमनात्पूतो भवति । दुहितृस्त्रुषाभिगमनात्पूतो भवति । स्वर्ण-
स्तेयात्पूतो भवति । वेदिजन्महानात्पूतो भवति । गुरोरशुश्रूषणात्पूतो भवति ।
अयाज्ययाजनात्पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । उग्रप्रतिग्रहा-

स्पृतो भवति । परदारगमनात्पूतो भवति । कामक्रोधलोभमोहेर्ष्यादिभिरबा-
धितो भवति । सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो भवति । इह जन्मनि पुरुषो भवति ।
तस्मादेतत्पुरुषसूक्तार्थमतिरहस्यं राजगुह्यं देवगुह्यं गुह्यादपि गुह्यतरं नादी-
क्षितायोपदिशेत् । नानूचानाय नायज्ञशीलाय नावैष्णवाय नायोगिने न
बहुआयिणे नाप्रियवादिने नासंवत्सरवेदिने नानुष्टाय नानधीतवेदायोपदिशेत् ।
गुरुरप्येवंविच्छुचौ देशे पुण्यनक्षत्रे प्राणानायम्य पुरुषं ध्यायन्नुपसन्नाय
क्षिप्याय दक्षिणकर्णे पुरुषसूक्तार्थमुपदिशेद्विद्वान् । न बहुशो वदेत् । यात-
यामो भवति । असकृत्कर्णमुपदिशेत् । एतत्कुर्वाणोऽध्येताऽध्यापकश्च इह
जन्मनि पुरुषो भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

इति मुद्रलोपनिषत्समाप्ता ॥ ६० ॥

शाण्डिल्योपनिषत् ॥ ६१ ॥

शाण्डिल्योपनिषदोक्तयमाद्यष्टाङ्गयोगिनः ।

यद्वोधाद्यान्ति कैवल्यं स रामो मे परा गतिः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

शाण्डिल्यो ह वा अथर्वाणं पप्रच्छ-आत्मलाभोपायभूतमष्टाङ्गयोगमनु-
ब्रूहीति । स होवाचाथर्वा यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध-
योऽष्टाङ्गानि । तत्र दश यमाः । तथा नियमाः । आसनान्यष्टौ । त्रयः प्राणा-
यामाः । पञ्च प्रत्याहाराः । तथा धारणा । द्विप्रकारं ध्यानम् । समाधिस्त्वेक-
रूपः । तत्रार्हिसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यदयाजपक्षमाधृतिमिताहारशौचानि चेति
यमा दश । तत्र हिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वभूतेषु सर्वदा क्लेशज-
ननम् । सत्यं नाम मनोवाक्कायकर्मभिर्भूतहितयथार्थाभिभाषणम् । अस्तेयं नाम
मनोवाक्कायकर्मभिः परद्रव्येषु निःस्पृहता । ब्रह्मचर्यं नाम सर्वावस्थासु मनो-
वाक्कायकर्मभिः सर्वत्र मैथुनत्यागः । दया नाम सर्वभूतेषु सर्वत्रानुग्रहः ।
आर्जवं नाम मनोवाक्कायकर्मणां विहिताविहितेषु जनेषु प्रवृत्तौ निवृत्तौ वा
एकरूपत्वम् । क्षमा नाम प्रियाप्रियेषु सर्वेषु ताडनपूजनेषु सहनम् । धृति-

नामार्थहानौ स्त्रेष्टबन्धुवियोगे तत्प्राप्तौ सर्वत्र चेतःस्थापनम् । मिताहारो
 नाम चतुर्थांशवशेषकसुखिधमधुराहारः । शौचं नाम द्विविधं—नालामान्तरे
 चेति । तत्र मृजलाभ्यां बाह्यम् । मनःशुद्धिरान्तरम् । तदप्यारम्भविषया
 कर्म्यम् ॥ १ ॥ तपःसन्तोषास्तिक्यदानेश्वरपूजनसिद्धान्तश्रवणहीमतिजपो-
 व्रतानि दश नियमाः । तत्र तपो नाम विध्युक्तकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः क्षरीर-
 श्लोषणम् । संतोषो नाम यदृच्छालाभसंतुष्टिः । आस्तिक्यं नाम वेदोक्त-
 धर्माधर्मेषु विश्वासः । दानं नाम न्यायार्जितस्य धनधान्यादेः श्रद्धावार्थिभ्यः
 प्रदानम् । ईश्वरपूजनं नाम प्रसन्नस्वभावेन यथाशक्ति विष्णुरुद्धादिपूजनम् ।
 सिद्धान्तश्रवणं नाम वेदान्तार्थविचारः । हीनाम वेदलौकिकमार्गकुत्सित-
 कर्मणि लज्जा । मतिर्नाम वेदविहितकर्ममार्गेषु श्रद्धा । जपो नाम त्रिवि-
 दब्रुहस्पतिवेदानिरुद्धमन्त्राभ्यासः । तद्विविधं—वाचिकं मानसं चेति । मानसं
 तु मनसा ध्यानयुक्तम् । वाचिकं द्विविधमुच्चैरुपांशुभेदेन । उच्चैरुच्चारणं
 यथोक्तफलम् । उपांशु सहस्रगुणम् । मानसं कोटिगुणम् । व्रतं नाम वेदो-
 क्तविधिविवेधानुष्ठाननैयत्यम् ॥ २ ॥ स्वस्तिकगोमुखपद्माक्षरसिंहभद्रशुक्लम-
 यूरारुख्यान्यासनान्यष्टौ । स्वस्तिकं नाम—जानूरीरन्तरे सम्प्रकृत्वा पादतले
 उभे । ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ३ ॥ सत्ये दक्षिणगुल्फं
 तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् । दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखं यथा ॥ ४ ॥
 अङ्गुष्ठेन निवर्त्तनीयादस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण च । ऊर्वोरपरि हाण्डिलम् कृत्वा
 पादतले उभे । पद्मासनं भवेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् ॥ ५ ॥ एकं पादम-
 थैकस्मिन्निव्यस्योरुणि संस्थितः । इतरस्मिन्तथा चोरं वीरासनमुदीरितम्
 ॥ ६ ॥ दक्षिणं सव्यगुल्फेन दक्षिणेन तथेतरम् । हस्तौ च जान्वोः संस्थाप्य
 स्वाङ्गुलीश्च प्रसार्य च ॥ ७ ॥ व्यक्तवक्रौ निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ।
 सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिभिः सदा ॥ ८ ॥ योगिं वामेन संपीड्य
 मेढ्रादुपरि दक्षिणम् । भ्रूमध्ये च मनोर्लक्ष्यं सिंहासनमिदं भवेत् ॥ ९ ॥
 गुल्फौ तु वृषणस्याधः सीवण्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् । पादपार्श्वे तु पाणिभ्यां
 हठं बद्धा सुनिश्चलम् । अद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिषिषापहम् ॥ १० ॥
 संपीड्य सीविनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु सव्यतः । सव्यं दक्षिणगुल्फेन मुक्ता-
 सनमुदीरितम् ॥ ११ ॥ अवष्टभ्य धरां सम्यक्कलाभ्यां तु करद्वयोः । हस्तयोः
 कूर्परौ चापि स्थापयेन्नाभिपार्श्वयोः ॥ १२ ॥ समुन्नतिरःपादौ दण्डव-

ज्योति संस्थितः । मयूरासनमेतत्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥ शरीरान्त-
र्गताः सर्वे रोगा विनश्यन्ति । विषाणि जीर्यन्ते । तेन केनासनेन सुख-
धारणं अवलम्ब्य शक्तस्तत्समाचरेत् । येनासनं विजितं जगन्नयं तेन विजितं
भवति । यमनियमाभ्यां संयुक्तः पुरुषः प्राणायामं चरेत् । तेन नाड्यः
शुद्धा भवन्ति ॥ १४ ॥ अथ हैनमथर्वाणं ज्ञाण्डित्यः पप्रच्छ केनोपायेन
नाड्यः शुद्धाः स्युः । नाड्यः कतिसंख्याकाः । तासामुत्पत्तिः कीदृशी ।
तासु कति चायवस्तिष्ठन्ति । तेषां कानि स्थानानि । तत्कर्माणि कानि । देहे
यानि यानि विज्ञातव्यानि तत्सर्वं मे ब्रूहीति । स होवाचाथर्वा । अथेदं
शरीरं पणवल्कुलात्मकं भवति । शरीरात्प्राणो द्वादशाङ्गुलाधिको भवति ।
शरीरस्थं प्राणमग्निना सह योगाभ्यासेन समं न्यूनं वा यः करोति स
योगिपुङ्गवो भवति । देहमध्ये शिखिस्थानं त्रिकोणं तसज्जाम्बूनदप्रभं मनु-
ष्याणाम् । चतुष्पदां चतुरस्रम् । विहङ्गानां वृत्ताकारम् । तन्मध्ये शुभा
तन्वी पावकी शिखा तिष्ठति । गुदाद्वयङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्राद्वयङ्गुलादधो
देहमध्ये मनुष्याणां भवति । चतुष्पदां हन्मध्यम् । विहङ्गानां तुन्दमध्यम् ।
देहमध्ये नवाङ्गुलं चतुरङ्गुलमुत्सेधायतमण्डाकृति । तन्मध्ये नाभिः ।
तत्र द्वादशारयुतं चक्रम् । तच्चक्रमध्ये पुण्यपापप्रचोदितो जीवो भ्रमति ।
तन्तुपक्षरमध्यस्थलतिका यथा भ्रमति तथा चासौ तत्र प्राणश्चरति । देहेऽ-
स्त्रिंश्वीवः प्राणारूढो भवेत् । नाभेस्तिर्यग्ध ऊर्ध्वं कुण्डलिनीस्थानम् । अष्टप्रक-
तिरूपाऽष्टधा कुण्डलीकृता कुण्डलिनी शक्तिर्भवति । यथावद्रायुसंचारं जला-
ज्वादीनि परितः स्कन्धः पार्श्वेषु निरुध्येन मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योग-
काले चापानेनाग्निना च स्फुरति । हृदयाकौशे महोज्ज्वला ज्ञानरूपा भवति ।
मध्यस्थकुण्डलिनीमाश्रित्य मुख्या नाड्यश्चतुर्दश भवन्ति । इडा पिङ्गला
सुषुम्ना सरस्वती वारुणी पूषा हस्तिजिह्वा यशस्विनी विश्वोदरी कुहूः शङ्खिनी
पयस्विनी अलग्नुता गान्धारीति नाड्यश्चतुर्दश भवन्ति । तत्र सुषुम्ना विश्व-
धारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते । गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाधिता मूर्धपर्यन्तं
ब्रह्मरन्ध्रे विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति । सुषुम्नायाः सव्यभागे इडा
तिष्ठति । दक्षिणभागे पिङ्गला । इडायां चन्द्रश्चरति । पिङ्गलायां रविः । तमो-
रूपश्चन्द्रः । रजोरूपो रविः । विषभागो रविः । असृतभागश्चन्द्रमाः । तावेव

सर्वकालं धत्तः । सुपुत्रा कालभोक्त्री भवति । सुपुत्रा पृष्ठपार्श्वयोः सरस्वतीकुहू भवतः । यशस्विनीकुहूमध्ये वारुणी प्रतिष्ठिता भवति । पूषासरस्वतीमध्ये पयस्विनी भवति । गान्धारीसरस्वतीमध्ये यशस्विनी भवति । कन्दममध्येऽलम्बुसा भवति । सुपुत्रापूर्वभागे मेढ्रान्तं कुहू भवति । कुण्डलिन्या अधश्चोर्ध्वं वारुणी सर्वगामिनी भवति । यशस्विनी सौम्या च पादाङ्गुष्ठान्तस्थिते । पिङ्गला चोर्ध्वं गाम्यनासान्तं भवति । पिङ्गलायाः पृष्ठतो गाम्यनेत्रान्तं पूषा भवति । गाम्यकर्णान्तं यशस्विनी भवति । जिह्वाया ऊर्ध्वान्तं सरस्वती भवति । आसव्यकर्णान्तमूर्ध्वं गान्धारी भवति । इडापृष्ठभागात्सव्यनेत्रान्तगा गान्धारी भवति । पायुमूलादधोर्ध्वं गालम्बुसा भवति । एताश्च चतुर्दशसु नाडीष्वन्या नाड्यः संभवन्ति । तास्वन्यास्तास्वन्या भवन्तीति विज्ञेयाः ॥ यथाऽश्वत्थादिपत्रं शिराभिर्व्याप्तमेवं शरीरं नाडीभिर्व्याप्तम् । प्राणपानसमानोदानव्याना नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जया एते दश वायवः सर्वासु नाडीषु चरन्ति । आस्यनासिकाकण्ठनाभिपादाङ्गुष्ठद्वयकुण्डल्यधश्चोर्ध्वभागेषु प्राणः संचरति । श्रोत्राक्षिकटिगुल्फप्राणगलस्फिरदेशेषु व्यानः संचरति । गुदमेढ्रो रुजानूदरवृषणकटिजङ्घानाभिगुदाश्रयगारेष्वपानः संचरति । सर्वसंक्षिप्त उदानः । पादहस्तयोरपि सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी समानः । भुक्तान्नरसादिकं गात्रेऽग्निना सह व्यापयन्द्रिससतिसहस्रेषु नाडीमार्गेषु चरन्समानवायुरग्निना सह साङ्गोपाङ्गकलेवरं व्याप्नोति । नागादिवायवः पञ्चत्वगस्थ्यादिसंभवाः । तुन्दस्थं जलमन्नं च रसादिषु समीरितं तुन्दमध्यगतः प्रागस्तानि पृथक्कुर्यात् । अग्रेरुपरि जलं स्थाप्य जलोपर्यन्नादीनि संस्थाप्य स्वयमपानं संप्राप्य तेनैव सह मारुतः प्रयाति देहमध्यगतं ज्वलनम् । वायुना पालितो वह्निरपानेन शनैर्देहमध्ये ज्वलति । ज्वलनो ज्वालाभिः प्राणेन कोष्ठमभ्यागतं जलमत्युष्णमकरोत् । जलोपरि समर्पितव्यञ्जनसंयुक्तमन्नं वह्निसंयुक्तवारिणा पक्रमकरोत् । तेन स्वेदमूत्रजलरक्तवीर्यरूपरसपुरीषादिकं प्राणः पृथक्कुर्यात् । समानवायुना सह सर्वासु नाडीषु रसं व्यापयन्त्वासरूपेण देहे वायुश्चरति । नवभिर्व्योमरन्ध्रैः शरीरस्य वायवः कुर्वन्ति विण्मूत्रादिविसर्जनम् । निश्वासोच्छ्वासकासश्च प्राणकर्मोच्यते । विण्मूत्रादिविसर्जनमपानवायुकर्म । हानोपादानचेष्टादि व्यानकर्म । देहस्योन्नयनादिकमुदानकर्म । शरीरपोषणादिकं समानकर्म । उद्वारादि नागकर्म । निमीलनादि कूर्मकर्म । क्षुत्करणं कृकरकर्म । तन्द्रा देवदत्तकर्म ।

श्लेष्मादि धनञ्जयकर्म । एवं नाडीस्थानं वायुस्थानं तत्कर्म च सम्यग्ज्ञात्वा
 नाडीसंशोधनं कुर्यात् ॥ १५ ॥ यमनियमयुतः पुरुषः सर्वसङ्गविवर्जितः कृतविधः
 सत्यधर्मरतो जितक्रोधो गुरुशुश्रूषानिरतः पितृमातृविधेयः स्वाश्रमोक्तसदा-
 चारविद्वच्छिक्षितः फलमूलोदकान्वितं तपोवनं प्राप्य रम्यदेशे ब्रह्मघोषसम-
 न्विते स्वधर्मनिरतब्रह्मवित्समावृते फलमूलपुष्पवारिभिः सुसंपूर्णे देवायतने
 नदीतीरे ग्रामे नगरे वापि शुशोभनमठं नात्युच्चनीचायतमल्पद्वारं गोमया-
 दिलिसं सर्वरक्षासमन्वितं कृत्वा तत्र वेदान्तश्रवणं कुर्वन्योगं समारभेत् ।
 आदौ विनायकं संपूज्य स्वेष्टदेवतां नत्वा पूर्वोक्तासने स्थित्वा प्राञ्चुल उदञ्चुखौ
 वापि मृद्वासनेषु जितासनगतो विद्वान्समग्रीवशिरोनासाग्रद्वभूमध्ये शशभृ-
 द्विभ्रं पश्यन्नेत्राभ्याममृतं पिबेत् । द्वादशमात्रया इडया वायुमापूर्योदरे स्थितं
 ज्वालावलीयुतं रेफविन्दुयुक्तमग्निमण्डलयुतं ध्यायेद्रेचयेत्पिङ्गलया । पुनः
 पिङ्गलयाऽऽपूर्य कुम्भित्वा रेचयेदिडया । त्रिचतुस्त्रिचतुःसप्तत्रिचतुर्मासपर्यन्तं
 त्रिसंक्षिप्तं तदन्तरालेषु च पदकृत्व आचरेन्नाडीशुद्धिर्भवति । ततः शरीरे लघु-
 दीप्तिवह्निवृद्धिनादाभिव्यक्तिर्भवति ॥ १६ ॥ प्राणापानसमायोगः प्राणायामो
 भवति । रेचकपूरककुम्भकभेदेन स त्रिविधः । ते वर्णारमकाः । तस्मात्प्रणवं
 एव प्राणायामः पञ्चाद्यासनस्थः पुमान्नासाग्रे शशभृद्विभ्रज्योस्त्वाजाल-
 वितानिताकारमूर्ती रक्ताङ्गी हंसवाहिनी दण्डहस्ता वाला गायत्री भवति ।
 उकारमूर्तिः श्वेताङ्गी तार्क्ष्यवाहिनी युवती चक्रहस्ता सावित्री भवति ।
 मकारमूर्तिः कृष्णाङ्गी वृषभवाहिनी वृद्धा त्रिशूलधारिणी सरस्वती भवति ।
 अकारादित्रयाणां सर्वकारणमेकाक्षरं परं ज्योतिः प्रणवं भवतीति ध्यायेत् ।
 इडया बाह्याद्वायुमापूर्य षोडशमात्राभिरकारं चिन्तयन्पूरितं वायुं चतुः-
 षष्टिमात्राभिः कुम्भयित्वाकारं ध्यायन्पूरितं पिङ्गलया द्वात्रिंशन्मात्रया मकार-
 मूर्तिध्यानेनैवं क्रमेण पुनः पुनः कुर्यात् ॥ १७ ॥ अथासनद्वयो योगी वशी
 मितहितावनः सुषुप्तानाडीस्थमलशोषार्थं योगी बद्धपद्मासनो वायुं चन्द्रे-
 णापूर्य यथाशक्ति कुम्भयित्वा सूर्येण रेचयित्वा पुनः सूर्येणापूर्य कुम्भयित्वा
 चन्द्रेण विरेच्य यथा त्यजेत्तथा संपूर्य धारयेत् । तदेते श्लोका भवन्ति—प्राणं
 प्राणिदया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत्पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो
 बद्धा त्यजेद्दामया । सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तन्वतां शुद्धा
 नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥ १८ ॥ प्रातर्मध्यन्दिने

सायमर्धरात्रे तु कुम्भकात् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ १९ ॥
 कनीयसि भवेत्स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे । उत्तिष्ठत्युत्तमे प्राणरोधे
 पद्मासनं महत् ॥ २० ॥ जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् । इहता
 लघुता चापि तस्य गात्रस्य जायते ॥ २१ ॥ अभ्यासकाले प्रथमं शक्तं
 क्षीराज्यभोजनम् । ततोऽभ्यासे स्थिरीभूते न तावन्नियमग्रहः ॥ २२ ॥
 यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्भयः शनैः शनैः । तथैव सेवितो वायुरन्यथा
 हन्ति साधकम् ॥ २३ ॥ युक्तं युक्तं त्वजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत् । युक्तं
 युक्तं च बन्ध्यादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ यथेष्टधारणाद्वायोरनलस्य
 प्रदीपनम् । नादाभिव्यक्तिरोग्यं जायते नाडिशोधनात् ॥ २५ ॥ त्रिविध-
 त्प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते । सुषुम्नावदनं भित्वा सुखादिशक्तिं भासते
 ॥ २६ ॥ भासते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते । यो मनःसुस्थिरो भावः
 सैवावस्था मनोन्मनी ॥ २७ ॥ पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालक्षराभिधः ।
 कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तुड्डियाणकः ॥ २८ ॥ अधस्तात्कुम्भनेनाशु
 कण्ठसंकोचने कृते । मध्ये पश्चिमतानेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः ॥ २९ ॥
 अपानसूक्ष्मसुत्थाप्य प्राणं कण्ठादधो नयन् । योगी जरावितिशुक्तः षोडशौ
 वयसा भवेत् ॥ ३० ॥ सुखासनस्थो दक्षनाड्या बहिःस्थं पवनं समाकुण्ठ्या-
 केशमानखाग्रं कुम्भयित्वा सव्यनाड्या रेचयेत् । तेन कृपाळशोधनं
 वातनाडीगतसर्वरोगसर्वविनाशनं भवति । हृदयादिकण्ठपर्यन्तं सखनं
 नासाभ्यां शनैः पवनमाकुण्ठ्य यथाशक्ति कुम्भयित्वा हृदया निरेच्य गच्छंस्त्रि-
 ष्ण्कुर्यात् । तेन श्लेष्महरं जठराग्निवर्धनं भवति । चक्रेण सीत्कारपूर्वकं वायुं
 गृहीत्वा यथाशक्ति कुम्भयित्वा नासाभ्यां रेचयेत् । तेन क्षुत्तृणालसनिद्रा
 न जायते । जिह्वा वायुं गृहीत्वा यथाशक्ति कुम्भयित्वा नासाभ्यां रेच-
 येत् । तेन गुल्मप्लीहज्वरपित्तक्षुधादीनि नश्यन्ति ॥ अथ कुम्भकः । स
 द्विविधः संहितः । रेचकपूरकयुक्तः सहितः । तद्विवर्जितः केवलः ।
 केवलसिद्धिपर्यन्तं सहितमभ्यसेत् । केवलकुम्भके सिद्धे त्रिषु लोकेषु न
 तस्य दुर्लभं भवात् । केवलकुम्भकात्कुण्डलिनीबोधो जायते । ततः कृशवपुः
 प्रसन्नवदनो निर्मललोचनोऽभिव्यक्तनादो निर्मुक्तो रोगजालो जितबिन्दुः पद्मभि-
 र्भवति । अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निर्मेयोन्मेषवर्जिता । एषा सा वैष्णवी मुद्रा
 सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ३१ ॥ अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी सदा वर्तते

अध्या० लिख्यलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि । मुद्रेयं खलु खेचरी भवति
 सा लक्ष्यैकताना शिवा शून्याशून्यविवर्जितं स्फुरति सा तत्त्वं पदं वैष्णवी
 ॥ ३२ ॥ अर्थोन्मीलितलोचनः स्थिरमना नासाग्रदत्तेक्षणश्चन्द्रार्कावपि लीन-
 तालुपनयश्चिष्पन्दभावोत्तरम् । ज्योतीरूपमशेषबाह्यरहितं देदीप्यमानं परं
 तत्त्वं तत्परमस्ति वस्तुविषयं शाण्डिल्य विद्मीह तत् ॥ ३३ ॥ तारं ज्योतिषि
 संयोज्य किंचिदुभयमभ्युवौ । पूर्वाभ्यासस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारकः क्षणात्
 ॥ ३४ ॥ तस्यात्खेचरीमुद्रामभ्यसेत् । तत उन्मनी भवति । ततो योग-
 निद्रा भवति । लब्धयोगनिद्रस्य योगिनः कालो नास्ति । शक्तिमध्ये मनः
 कृत्वा शक्तिं मानसमध्यगात् । मनसा मन आलोक्य शाण्डिल्य त्वं सुखी
 भव ॥ ३५ ॥ खमध्ये कुरु चात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु । सर्वं च खमयं
 कृत्वा न किंचिदपि चिन्तय ॥ ३६ ॥ बाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तर-
 चिन्तिका । सर्वचिन्तां परित्यज्य चिन्मात्रपरमो भव ॥ ३७ ॥ कर्पूरमनले
 यद्ब्रह्मैतद्धवं ललिते यथा । तथा च लीयमानं सन्मनस्तत्त्वे विलीयते ॥ ३८ ॥
 ज्ञेयं सर्वप्रतीतं च तज्ज्ञानं मन उच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं समं नष्टं नान्यः पन्था
 द्वितीयकः ॥ ३९ ॥ ज्ञेयवस्तुपरित्यागाद्विलयं याति मानसम् । मानसं
 विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते ॥ ४० ॥ द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं
 सुनीश्वर । योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्निरोधिते
 नृनसुपशान्तं मनो भवेत् । मनःस्पन्दोपशान्त्याऽयं संसारः प्रविलीयते ।
 सूर्यालोकरिस्पन्दशान्तौ व्यवहृतिर्यथा । शास्त्रसज्जनसंपर्कनैराश्रयास्त-
 योगतः ॥ ४२ ॥ अनास्थायां कृतास्थायां पूर्वं संसारवृत्तिषु । यत्तद्विहित-
 ध्यानाचिरमेकतयोहितात् ॥ ४३ ॥ एकतत्त्वदृढाभ्यासात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते ।
 पुरकावलितायामादृढाभ्यासादखेदजात् ॥ ४४ ॥ एकान्तध्यानयोगाच्च मनःस्प-
 न्दो निरुध्यते । ओङ्कारोच्चारणप्रान्तशब्दतत्त्वानुभावेनात् । सुषुप्ते संविदा ज्ञाते
 प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ४५ ॥ तालुमूलगतां यत्ताज्जिह्वाक्रम्य घण्टिकाम् ।
 ऊर्ध्वैरन्ध्रगते प्राणे प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ४६ ॥ प्राणे गलितसंविता तालुर्ध्वं
 द्वादशान्तरो । अभ्यासादूर्ध्वैरन्ध्रे प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ४७ ॥ द्वादशा-
 ङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे । संविद्वृत्तिं प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो
 निरुध्यते ॥ ४८ ॥ भ्रूमध्ये तारकालोकशान्तावन्तमुपागते । त्रेनैकतने तन्ने

प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५० ॥ ओमित्येव यदुद्धृतं ज्ञानं ज्ञेयात्मकं शिवम् ।
 असंस्पृष्टविकल्पांशं प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५१ ॥ चिरकालं हृदेकान्तव्योम-
 संवेदनान्मुने । अवासनमनोध्यानात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५२ ॥ एभिः
 क्रमैस्तथाऽन्यैश्च नानासंकल्पकल्पितैः । नानादेशिकवक्रस्थैः प्राणस्पन्दो निरु-
 द्यते ॥ ५३ ॥ आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याः कवाटमुद्धात्य मोक्षद्वारं विभेदयेत् ।
 येन मार्गेण गन्तव्यं तद्वारं मुखेनाच्छाद्य प्रसृष्टा कुण्डलिनी कुटिलाकारा
 सर्पवद्वेष्टिता भवति । सा शक्तिर्येन चालिता स्यात्स्व तु मुक्तो भवति । सा
 कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चेद्योगिनां मुक्तये भवति । बन्धनायाधो
 मूढानाम् । इडादिमार्गद्वयं विहाय सुषुम्नामार्गेणागच्छेत्तद्विष्णोः परमं
 पदम् । मरुदभ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत् । इतरत्र न कर्तव्या मनोवृत्ति-
 र्मनीषिणा ॥ ५४ ॥ दिवा न पूजयेद्विष्णुं रात्रौ नैव प्रपूजयेत् । सततं पूजयेद्विष्णुं
 दिवारात्रं न पूजयेत् ॥ ५५ ॥ सुषिरो ज्ञानजनकः पञ्चस्रोतःसमन्वितः । तिष्ठत्ये
 खेचरी मुद्रा त्वं हि शाण्डिल्य तां भज ॥ ५६ ॥ सत्यदक्षिणनाडीस्थो मध्ये चरति
 मासुतः । तिष्ठतः खेचरी मुद्रा तस्मिन्स्थाने न संशयः ॥ ५७ ॥ इडापिङ्गल-
 योर्मध्ये शून्यं चैवानिलं प्रसेत् । तिष्ठन्ती खेचरी मुद्रा तत्र सत्यं प्रतिष्ठितम्
 ॥ ५८ ॥ सोमसूर्यद्वयोर्मध्ये निरालम्बतले पुनः । संस्थिता व्योमचक्रे सा
 मुद्रा नाश्ना च खेचरी ॥ ५९ ॥ छेदनचालनदाहैः फलां परां जिह्वां कृत्वा
 इष्टिं भ्रूमध्ये स्थाप्य कपालकुहरे जिह्वा विपरीतगा यदा भवति तदा
 खेचरी मुद्रा जायते । जिह्वा चित्तं च खे चरति तेनोर्ध्वजिह्वाः पुमानमृतो
 भवति । वामपादमूलेन योनिं संपीड्य दक्षिणपादं प्रसार्य तं कराभ्यां
 धृत्वा नासाभ्यां वायुमापूर्य कण्ठबन्धं समारोप्योर्णतो (?) वायुं धारयेत् ।
 तेन सर्वक्लेशहानिः । ततः पीयूषमिव विषं जीर्यते । क्षयगुल्मगुदावर्तजीर्णत्व-
 गादिदोषा नश्यन्ति । एष प्राणजयोपायः सर्वसृष्ट्युपघातकः । वामपादपार्श्वे
 योनिस्थाने नियोज्य दक्षिणचरणं वामोरूपरिं संस्थाप्य वायुमापूर्य हृदये चुबुकं
 निधाय योनिमाकुञ्च्य मनोमध्ये यथाशक्ति धारयित्वा स्वात्मानं आवयेत् ।
 तेनापरोक्षसिद्धिः । बाह्यात्प्राणं समाकृष्य पूरयित्वादरे स्थितम् । नाभिमध्ये
 च नासाग्रे पादाङ्गुष्ठे च यत्नतः ॥ ६० ॥ धारयेन्मनसा प्राणं सन्ध्याकालेषु
 वा सदा । सर्वरोगविनिर्मुक्तो भवेद्योगी गतक्लमः ॥ ६१ ॥ नासाग्रे वायुनि-

जयं भवति । नाभिमध्ये सर्वरोगविनाशः । पादाङ्गुष्ठधारणाच्छरीरलघुता
भवति । रसनाद्वायुमाकृष्य यः पिवेत्सततं नरः । श्रमदाहौ तु न स्यातां
नश्यन्ति व्याधयस्तथा ॥ ६२ ॥ सन्ध्योर्ब्राह्मणः काले वायुमाकृष्य यः
पिवेत् । त्रिमासात्तस्य कल्याणी जायते वाक् सरस्वती ॥ ६३ ॥ एवं पण्मासा-
भ्यासात्सर्वरोगनिवृत्तिः । जिह्वया वायुमानीय जिह्वामूले निरोधयेत् । यः
पिवेदमृतं विद्वान्सकलं भद्रमश्नुते ॥ ६४ ॥ आत्मन्यात्मानमिडया धारयित्वा
शुबोर्न्तरे विभेद्य त्रिदशाहारं व्याधिस्थोऽपि विमुच्यते ॥ ६५ ॥ नाडीभ्यां
वायुमारोप्य नाभौ तुन्दस्य पार्श्वयोः । घटिकैर्कां वहेद्यस्तु व्याधिभिः स
विमुच्यते ॥ ६६ ॥ मासमेकं त्रिसन्ध्यं तु जिह्वारोप्य मासतम् । विभेद्य
त्रिदशाहारं धारयेत्तुन्दमध्यमे ॥ ६७ ॥ ज्वराः सर्वेऽपि नश्यन्ति त्रिषाणि
त्रिविधानि च । सुहृत्तैर्मपि यो नित्यं नासाग्रे मनसा सह ॥ ६८ ॥ सर्वं
हरति पाप्मानं तस्य जन्मशतार्जितम् । तारसंयमात्सकलविषयज्ञानं भवति ।
वासाग्रे चित्तसंयमादिन्द्रलोकज्ञानम् । तदधश्चित्तसंयमादभिलोकज्ञानम् ।
चक्षुषि चित्तसंयमात्सर्वलोकज्ञानम् । श्रोत्रे चित्तस्य संयमाद्यमलोकज्ञानम् ।
तत्पार्श्वे संयमाज्जिह्वलोकज्ञानम् । पृष्ठभागे संयमाद्वरुणलोकज्ञानम् ।
वामकर्णे संयमाद्वायुलोकज्ञानम् । कण्ठे संयमात्सोमलोकज्ञानम् । वाम-
चक्षुषि संयमाच्छिवलोकज्ञानम् । मूर्ध्नि संयमाद्ब्रह्मलोकज्ञानम् । पादाधोभागे
संयमादतललोकज्ञानम् । पादे संयमाद्वितललोकज्ञानम् । पादसन्धौ संय-
मान्नितललोकज्ञानम् । जङ्घे संयमात्सुतललोकज्ञानम् । जानौ संयमान्महा-
तललोकज्ञानम् । ऊरौ चित्तसंयमाद्रसातललोकज्ञानम् । कटौ चित्तसंयमा-
त्तलातललोकज्ञानम् । नाभौ चित्तसंयमान्मूललोकज्ञानम् । कुक्षौ संयमाङ्गु-
ल्लोकज्ञानम् । हृदि चित्तस्य संयमात्स्वलोकज्ञानम् । हृदयोर्ध्वभागे चित्तसं-
यमान्महर्लोकज्ञानम् । कण्ठे चित्तसंयमाज्ज्वाललोकज्ञानम् । भ्रूमध्ये चित्त-
संयमात्तत्तपोलोकज्ञानम् । मूर्ध्नि चित्तसंयमात्सत्यलोकज्ञानम् । धर्माधर्म-
संयमादतीतानागतज्ञानम् । तत्तज्जन्तुध्वनौ चित्तसंयमात्सर्वजन्तुरुतज्ञानम् ।
संचितकर्मणि चित्तसंयमात्पूर्वजातिज्ञानम् । परचित्ते चित्तसंयमात्परचित्त-
ज्ञानम् । कायरूपे चित्तसंयमादन्याद्वय्यरूपम् । बले चित्तसंयमादनुमदादि-
बलम् । सूर्ये चित्तसंयमाद्भवनज्ञानम् । चन्द्रे चित्तसंयमात्ताराव्यूहज्ञानम् ।

ध्रुवे तद्गतदर्शनम् । स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् । नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।
 कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः । कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् । तारे सिद्धदर्शनम् ।
 कायाकाशसंयमादाकाशगमनम् । तत्तत्स्थाने संयमात्तत्तत्सिद्धयो भवन्ति ॥ ७॥
 अथ प्रत्याहारः । स पञ्चविधः विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां बलादाहरणं
 प्रत्याहारः । यद्यत्पश्यति तत्सर्वमात्मेति प्रत्याहारः । नित्यविहितकर्मफल-
 त्यागः प्रत्याहारः । सर्वविषयपराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः । अष्टादशसु मर्मस्थानेषु
 क्रमाद्धारणं प्रत्याहारः । पादाङ्गुष्ठगुल्फजङ्घाजानूरुपायुमेढूनाभिहृदयकण्ठ-
 कूपतालुनासाक्षिभ्रूमध्यललाटमूर्ध्ना स्थानानि । तेषु क्रमादारोहावरोहक्रमेण
 प्रत्याहरेत् ॥ ६९ ॥ अथ धारणा । सा त्रिविधा—आत्मनि मनोधारणं,
 दहराकाशे बाह्याकाशधारणं, पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेषु पञ्चमूर्तिधारणं चेति
 ॥ ७० ॥ अथ ध्यानम् । तद्विधं सगुणं निर्गुणं चेति । सगुणं मूर्तिध्यानम् ।
 निर्गुणमात्मयाथात्म्यम् ॥ ७१ ॥ अथ समाधिः । जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था
 त्रिपुटीरहिता परमानन्दस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका भवति ॥ ७२ ॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ शाण्डिल्यो ह वै ब्रह्मर्षिश्चतुर्षु वेदेषु ब्रह्मविद्यामलभमानः किं
 नामेत्यथर्वाणं भगवन्तमुपसन्नः पप्रच्छाधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां येन श्रेयो-
 ऽवाप्स्यामीति । स होवाचाऽथर्वा शाण्डिल्य सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म यस्मि-
 न्निदमोतं च प्रोतं च । यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं यस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं
 विज्ञातं भवति । तदपाणिपादमचक्षुःश्रोत्रमजिह्वमशरीरमग्राह्यमनिर्देश्यम् ।
 यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । यत्केवलं ज्ञानगम्यम् । प्रज्ञा
 च यस्मात्प्रसृता पुराणी । यदेकमद्वितीयम् । आकाशवत्सर्वगतं सुसुक्ष्मं
 निरञ्जनं निष्क्रियं सन्मात्रं चिदानन्दैकरसं शिवं प्रशान्तममृतं तत्परं च
 ब्रह्म । तं वमसि । तज्ज्ञानेन हि विजानीहि । य एको देव आत्मशक्तिप्रधानः
 सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वभूतान्तरात्मा सर्वभूताधिवासः सर्वभूतनिगूढो भूत-
 योनियोगैकगम्यः । यश्च विश्वं सृजति विश्वं विभर्ति विश्वं भुङ्क्ते स आत्मा ।
 आत्मनि तं तं लोकं विजानीहि । मा शोचीरात्मविज्ञानी शोकस्यान्तं
 गमिष्यति ॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथैनं शाण्डिल्योऽथर्वाणं पप्रच्छ यदेकमक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं परंब्रह्म । तस्मात्कथमिदं विश्वं जायते कथं स्थीयते कथमस्मिंल्लीयते । तन्मे संशयं छेत्तुमर्हसीति । स होवाचाथर्वा सत्यं शाण्डिल्य परंब्रह्म निष्क्रियमक्षरमिति । अथाप्यस्यारूपस्य ब्रह्मणस्त्रीणि रूपाणि भवन्ति-सकलं निष्कलं सकलनिष्कलं चेति । (?) यत्सत्यं विज्ञानमानन्दं निष्क्रियं निरञ्जनं सर्वगतं सुसूक्ष्मं सर्वतोमुखमनिर्देश्यममृतमस्ति तदिदं निष्कलं रूपम् । अथास्य या सहजा-स्त्वविद्या मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्लकृष्णा । तया सहायवान् देवः कृष्ण-पिङ्गलो ममेश्वर ईष्टे । तदिदमस्य सकलनिष्कलं रूपम् ॥ अथैष ज्ञानमयेन तपसा चीयमानोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति । अथैतस्मात्तप्यमानात्सत्य-कामाग्नीष्यक्षराण्यजायन्ते । तिस्रो व्याहृतयस्त्रिपदा गायत्री त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो वर्णास्त्रयोऽग्नयश्च जायन्ते । योऽसौ देवो भगवान्सर्वैश्वर्यसंपन्नः सर्वव्यापी सर्वभूतानां हृदये संनिविष्टो मायावी मायया क्रीडति स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स इन्द्रः स सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि स एव पुरस्तात्स एव पश्चात्स एवोत्तरतः स एव दक्षिणतः स एवाधस्तात्स एवोपरिष्ठात्स एव सर्वम् । अथास्य देवस्यात्मशक्तेरात्मक्रीडस्य भक्तानुकम्पिनो दत्तात्रेयरूपरूपस्य तनूरवासा इन्दीवरदलप्रख्या चतुर्बाहुरघोरापापकाशिनी । तदिदमस्य सकलं रूपम् ॥ १-॥ अथ हैनमथर्वाणं शाण्डिल्यः पप्रच्छ भगवन्सन्मात्रं चिदानन्दैकरसं कस्मादुच्यते परंब्रह्मेति । स होवाचाथर्वा यस्माच्च बृहति बृंहयति च सर्वं तस्मादुच्यते परंब्रह्मेति । अथ कस्मादुच्यते आत्मेति । यस्मात्सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमस्ति च तस्मादुच्यते आत्मेति । अथ कस्मादुच्यते महेश्वर इति । यस्मान्महत् ईशः शब्दध्वन्या चात्मशक्त्या च महत् ईशते तस्मादुच्यते महेश्वर इति । अथ कस्मादुच्यते दत्तात्रेय इति । यस्मात्सुदुश्चरं तपस्तप्यमानायात्रये पुत्रकामायातितरां तुष्टेन भगवता ज्योतिर्मयेनात्मैव दत्तो यस्माच्चानसूयायामत्रेक्षनयोऽभवत्तस्मादुच्यते दत्तात्रेय इति । अथ योऽस्य निरुक्तानि वेद स सर्वं वेद । अथ यो ह वै विद्ययैनं परमुपास्ते सोऽहमिति स ब्रह्मविद्भवति ॥ अत्रैते श्लोका भवन्ति— दत्तात्रेयं शिवं शान्तमिन्द्रनीलनिभं प्रभुम् । आत्ममायारतं देवमवधूतं दिगम्बरम् ॥ १ ॥ अस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं जटाजूटधरं विभुम् । चतुर्बाहुमुदा-

राङ्गं प्रफुल्लकमलैक्षणम् ॥ २ ॥ ज्ञानयोगनिधिं विश्वगुरुं योगिजनप्रियम् ।
अक्तानुकम्पिनं सर्वसाक्षिणं सिद्धसेवितम् ॥ ३ ॥ एवं यः सततं ध्यायेद्देव-
देवं सनातनम् । स मुक्तः सर्पपापेभ्यो निःश्रेयसमवामुयात् ॥ ४ ॥ इत्यो
सत्यमित्युपनिषत् ॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्समाप्ता ॥ ६१ ॥

पैङ्गलोपनिषत् ॥ ६२ ॥

पैङ्गलोपनिषद्वेद्यं परमानन्दविग्रहम् ।

परितः कलये रामं परमाक्षरवैभवम् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

अथ ह पैङ्गलो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्य द्वादशवर्षशुश्रूषापूर्वकं परमरहस्य-
कैवल्यमनुब्रूहीति प्रपच्छ । स होवाच याज्ञवल्क्यः सदेव सोम्येदमग्र आ-
सीत् । तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्यज्ञानानन्दं परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं
ब्रह्म । तस्मिन्महद्युक्तिकास्याणुस्फटिकादौ जलरौप्यपुरुषरेखादिवल्लोहित-
शुक्लकृष्णगुणमयी गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं
यत्तत्साक्षिचैतन्यमासीत् । सा पुनर्विकृतिं प्राप्य सत्त्वोद्विक्ताऽव्यक्ताख्यावरण-
शक्तिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं यत्तदीश्वरचैतन्यमासीत् । स स्वाधीनमायः
सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिलयानामादिकर्ता जगदङ्कुररूपो भवति स्वस्मिन्विलीनं
सकलं जगदाविर्भावयति । प्राणिकर्मवशादेष पटो यद्वत्प्रसारितः प्राणि-
कर्मक्षयात्पुनस्तिरोभावयति । तस्मिन्नेवाखिलं विश्वं संकोचितपटवद्वर्तते ।
ईशाधिष्ठितावरणशक्तितो रजोद्विक्ता महदाख्या विक्षेपशक्तिरासीत् । तत्प्र-
तिबिम्बितं यत्तद्विरण्यगर्भचैतन्यमासीत् । स महत्तत्त्वाभिमानि स्पष्टास्पष्ट-
वपुर्भवति । हिरण्यगर्भाधिष्ठितविक्षेपशक्तितस्तमोद्विक्ताहंकाराभिधा स्थूल-
शक्तिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं यत्तद्विराट्चैतन्यमासीत् । स तदभिमानि स्पष्ट-
वपुः सर्वस्थूलपालको विष्णुः प्रधानपुरुषो भवति । तस्मादात्मन आकाशः
संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अन्त्यः पृथिवी । त्वनि

पञ्च तन्मात्राणि त्रिगुणानि भवन्ति । ऋष्टुकामो जगद्योनिस्तमोगुणमधिष्ठाय
 सूक्ष्मतन्मात्राणि भूतानि स्थूलीकर्तुं सोऽकामयत् । सृष्टेः परिमितानि
 भूतान्येकमेकं द्विधा विधाय पुनश्चतुर्धा कृत्वा स्वस्वेतरद्वितीयांशैः पञ्चधा
 संयोज्य पञ्चीकृतभूतैरनन्तकोटिब्रह्माण्डानि तत्तदण्डोचितचतुर्दशभुवनानि
 तत्तद्भुवनोचितगोलकस्थूलशरीराण्यसृजत् । स पञ्चभूतानां रजोशांश्चतुर्धा
 कृत्वा भागत्रयात्पञ्चावृत्त्यात्मकं प्राणमसृजत् । स तेषां तुर्यभागेन कर्मेन्द्रि-
 याण्यसृजत् । स तेषां सत्त्वांशं चतुर्धा कृत्वा भागत्रयसमष्टितः पञ्चक्रिया-
 वृत्त्यात्मकमन्तःकरणमसृजत् । स तेषां सत्त्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रियाण्य-
 सृजत् । सत्त्वसमष्टित इन्द्रियपालकान्सृजत् । तानि सृष्टान्यण्डे प्राचिक्षि-
 पत् । तदाज्ञया समष्ट्यण्डं व्याप्य तान्यतिष्ठत् । तदाज्ञयाऽहंकारसमन्वितो
 विराट् स्थूलान्यरक्षत् । हिरण्यगर्भस्तदाज्ञया सूक्ष्माण्यपालयत् । अण्ड-
 स्थानि तानि तेन विना स्पन्दितुं चेष्टितुं वा न शक्नुः । तानि चेतनीकर्तुं
 सोऽकामयत् ब्रह्माण्डब्रह्मरन्ध्राणि समस्तव्यष्टिमस्तकान्विदार्य तदेवानु-
 प्राविशत् । तदा जडान्यपि तानि चेतनवत्स्वकर्माणि चक्रिरे । सर्वज्ञेशो
 मायालेशसमन्वितो व्यष्टिदेहं प्रविश्य तथा मोहितो जीवस्वमगमत् । शरीर-
 त्रयतादात्म्यात्कर्तृत्वभोक्तृत्वतामगमत् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छामरणधर्मयुक्तो
 घटीयन्नवदुद्धिमो जातो मृत इव कुलालचक्रन्यायेन परिभ्रमतीति ॥ १ ॥

इति पैङ्गलोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ पैङ्गलो याज्ञवल्क्यमुवाच सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकृद्भिभुरीशः
 कथं जीवस्वमगमदिति । स होवाच याज्ञवल्क्यः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहोद्भव-
 पूर्वकं जीवेश्वरस्वरूपं विविच्य कथयामीति सावधानेनैकाग्रतया श्रूयताम् ।
 ईशः पञ्चीकृतमहाभूतलेशानादाय व्यष्टिसमष्ट्यात्मकस्थूलशरीराणि यथाक्रम-
 मकरोत् । कपालचर्मांत्रास्थिमांसनखानि पृथिव्यंशः । रक्तमूत्रलालास्वेदादि-
 कम्बुंशः । क्षुत्तृष्णोष्णमोहमैथुनाद्या अग्न्यंशः । प्रचारणोत्तारणाश्वासादिका
 वाय्वंशः । कामक्रोधादयो व्योमांशः । एतत्संघातं कर्मणि संचितं
 त्वगादियुक्तं बाल्याद्यवस्थाभिमानास्पदं बहुदोषाश्रयं स्थूलशरीरं भवति ॥
 अथापञ्चीकृतमहाभूतरजोशभागत्रयसमष्टितः प्राणमसृजत् । प्राणापानव्यानो-
 दानसमानाः प्राणवृत्तयः । नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनंजया उपप्राणाः । हृदास-
 ननाभिकण्ठसर्वाङ्गानि स्थानानि । आकाशादिरजोगुणतुरीयभागेन कर्मेन्द्रिय-

मसृजत् । वाक्पाणिपादपायूपस्थास्तद्वृत्तयः । वचनादानगमनविसर्गानन्दास्तद्विषयाः ॥ एवं भूतसत्त्वांशभागत्रयसमष्टितोऽन्तःकरणमसृजत् । अन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकारास्तद्वृत्तयः । संकल्पनिश्चयस्मरणमिमानानुसंधानास्तद्विषयाः । गलवदननाभिहृदयभूमध्यं स्थानम् । भूतसत्त्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रियमसृजत् । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणास्तद्वृत्तयः । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्तद्विषयाः । दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विबह्वीन्द्रोपेन्द्रमृत्युकाः । चन्द्रो विष्णुश्चतुर्वक्त्रः शंभुश्च करणाधिपाः ॥ अथाज्ञमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयाः पञ्च कोशाः । अक्षरसेनैव भूत्वाऽक्षरसेनाभिवृद्धिं प्राप्याक्षरसमयपृथिव्यां यद्वितीयते सोऽज्ञमयकोशः । तदेव स्थूलशरीरम् । कर्मेन्द्रियैः सह प्राणादिपञ्चकं प्राणमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह मनो मनोमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयकोशः । एतत्कोशत्रयं लिङ्गशरीरम् । स्वरूपाज्ञानमानन्दमयकोशः । तत्कारणशरीरम् । अथ ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं प्राणादिपञ्चकं त्रियदादिपञ्चकमन्तःकरणचतुष्टयं कामकर्मतमांस्तद्विषयम् ॥ ईशाज्ञया विराजो व्यष्टिदेहं प्रविश्य बुद्धिमधिष्ठाय विश्वत्वमगमत् । विज्ञानात्मा विदाभासो विश्वो व्यावहारिको जाग्रत्स्थूलदेहाभिमानी कर्मभूरिति च विश्वस्य नाम भवति । ईशाज्ञया सूत्रात्मा व्यष्टिसूक्ष्मशरीरं प्रविश्य मन अधिष्ठाय तैजसत्वमगमत् । तैजसः प्रातिभासिकः स्वप्नकल्पित इति तैजसस्य नाम भवति । ईशाज्ञया मायोपाधिरव्यक्तसमन्वितो व्यष्टिकारणशरीरं प्रविश्य प्राज्ञत्वमगमत् । प्राज्ञोऽविच्छिन्नः पारमार्थिकः सुषुप्त्यभिमानीति प्राज्ञस्य नाम भवति । अव्यक्तलेशाज्ञानाच्छादितपारमार्थिकजीवस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यानि ब्रह्मणैकतां जगुर्नंतरयोर्व्यावहारिकप्रातिभासिकयोः । अन्तःकरणप्रतिबिम्बितचैतन्यं यत्तदेवावस्थानत्रयभागभवति । स जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः प्राप्य घटीयन्नवदुद्धिमो जातो मृत इव स्थितो भवति । अथ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छामरणाद्यवस्थाः पञ्च भवन्ति ॥ तत्तदेवताग्रहान्वितैः श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दाद्यर्थविषयग्रहणज्ञानं जाग्रदवस्था भवति । तत्र भूमध्यं गतो जीव आपादमस्तकं व्याप्य कृषिश्रवणाद्यखिलक्रियाकर्ता भवति । तत्तत्फलभुक् च भवति । लोकान्तरगतः कर्माजितफलं स एव भुङ्के । स सार्वभौमवद्यवहारच्छान्तोऽन्तर्भवनं प्रवेष्टुं मार्गमाश्रित्य तिष्ठति । करणोपरमे जाग्रत्संस्कारोत्पन्नबोधवद्वाह्यग्राहकरूपस्फुरणं स्वभावस्था भवति । तत्र विश्व एव

जाग्रदवहारलोपाक्षाडीमध्यं चरत्सैजसस्वमवाप्य वासनारूपकं जगद्वैश्वं
 लभासा भासयन्त्यथेष्टितं स्वयं भुङ्क्ते ॥ चित्तैककरणा सुषुप्त्यवस्था भवति ।
 अमविश्रान्तशकुनिः पक्षो संहृत्य नीडाभिमुखं यथा गच्छति तथा जीवोऽपि
 जाग्रत्स्वप्नप्रपञ्चे व्यवहृत्य श्रान्तोऽज्ञानं प्रविश्य स्वानन्दं भुङ्क्ते ॥ एकस्यान्मु-
 श्रदण्डाद्यैस्ताडितवद्भयाज्ञानाभ्यामिन्द्रियसंघतैः कम्पस्त्रिव मृतनुत्या
 मूर्च्छा भवति । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छावस्थानामन्याऽऽब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं
 सर्वजीवभयप्रदा स्थूलदेहविसर्जनी मरणावस्था भवति । कर्मेन्द्रियाणि
 ज्ञानेन्द्रियाणि तत्तद्विषयान्प्राणान्संहृत्य कामकर्मान्वित अविद्याभूतवेष्टितो
 षीवो देहान्तरं प्राप्य लोकान्तरं गच्छति । प्राक्कर्मफलपाकेनावर्तान्तरकीट-
 चद्विश्रान्ति नैव गच्छति । सत्कर्मपरिपाकतो बहूनां जन्मनामन्ते नृणां
 मोक्षेच्छा जायते । तदा सद्गुरुमाश्रित्य चिरकालसेवया बन्धं मोक्षं
 कश्चिद्विषयाति । अविचारकृतो बन्धो विचारान्मोक्षो भवति । तस्मात्सदा
 विचारयेत् । अध्यारोपापवादतः स्वरूपं निश्चयीकृतुं शक्यते । तस्मात्सदा
 विचारयेज्जगज्जीवपरमात्मनो जीवभावजगद्भावबाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवाव-
 शिष्यत इति ॥ १ ॥

इति पैङ्गलोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ हैनं पैङ्गलः प्रपञ्च याज्ञवल्क्यं महावाक्यविवरणमनुब्रूहीति ।
 स होवाच याज्ञवल्क्यस्तत्त्वमसि त्वं तदसि त्वं ब्रह्मास्यहं ब्रह्मास्मीत्यनुसंधानं
 कुर्यात् । तत्र पारोक्ष्यशबलः सर्वज्ञत्वादिलक्षणो मायोपाधिः सच्चिदानन्द-
 लक्षणो जगद्योलिखत्पदवाच्यो भवति । स एवान्तःकरणसंभिन्नबोधोऽस-
 त्प्रत्ययावलम्बनस्त्वंपदवाच्यो भवति । परजीवोपाधिमायाविधे विहाय तत्त्वं-
 पदलक्ष्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म । तत्त्वमसीत्यहं ब्रह्मास्मीति वाक्यार्थविचारः श्रवणं
 भवति । एकान्तेन श्रवणार्थानुसंधानं मननं भवति । श्रवणमनननिर्विचि-
 क्तिस्थेऽर्थे वस्तुन्येकतानवत्तया चेतःस्थापनं निदिध्यासनं भवति । ध्यातृध्याने
 विहाय निवातस्थितदीपवच्चैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति । तदानीमात्म-
 गोचरा नृत्तयः समुत्थिता अज्ञाता भवन्ति । ताः स्मरणादनुमीयन्ते ।
 इहानादिसंसारे संचिताः कर्मकोटयोऽनेनैव विलयं याति । ततोऽभ्यासपाट-
 वात्सहस्रशः सदाऽमृतधारा वर्षन्ति । ततो योगवित्तमाः समाधिं धर्मेमेघं
 प्राहुः । वासनाजाले निःशेषमुना प्रविलापिते कर्मसंचये पुण्यपापे समूलो-

न्मूलिते प्राक्परोक्षमपि करतलामलकवद्वाक्यमप्रतिबद्धापरौक्षसाक्षात्कारं
 प्रसूयते । तदा जीवन्मुक्तो भवति ॥ ईशः पञ्चीकृतभूतानामपञ्चीकरणं कर्तुं
 सोऽकामयत । ब्रह्माण्डतद्गतलोकाङ्कार्यरूपांश्च कारणत्वं प्रापयित्वा ततः
 सूक्ष्माङ्गं कर्मेन्द्रियाणि प्राणांश्च ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्टयं चैकीकृत्य
 सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयोज्य भूमिं जले जलं वह्नौ वह्निं
 वायौ वायुमाकाशे चाकाशमहंकारे चाहंकारं महति महदव्यक्तेऽव्यक्तं पुरुषे
 क्रमेण विलीयते । विराड्विरण्यगर्भेश्वरा उपाधिविलयात्परमात्मनि लीयन्ते ।
 पञ्चीकृतमहाभूतसंभवकर्मसंचितस्थूलदेहः कर्मक्षयात्सत्कर्मपरिपाकतोऽप-
 ञ्चीकरणं प्राप्य सूक्ष्मेणैकीभूत्वा कारणरूपत्वमासाद्य तत्कारणं कूटस्थे
 प्रत्यगात्मनि विलीयते । विश्वतैजसप्राज्ञाः स्वस्वोपाधिलयात्प्रत्यगात्मनि
 लीयन्ते । अण्डं ज्ञानाग्निना दग्धं कारणैः सह परमात्मनि लीनं भवति ।
 ततो ब्राह्मणः समाहितो भूत्वा तत्त्वंपदैक्यमेव सदा कुर्यात् । ततो
 मेधापायैऽशुभानिवात्माऽऽविर्भवति । ध्यात्वा मध्यस्थमात्मानं कलशान्तर-
 दीपवत् । अङ्गुष्ठमात्रमात्मानमधूमज्योतिरूपकम् ॥ १ ॥ प्रकाशयन्तमन्तःस्थं
 ध्यायेत्कूटस्थमव्ययम् । ध्यायन्नास्ते मुनिश्चैव चासुसेरामृतेस्तु यः ॥ २ ॥
 जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान् । जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा
 स्वदेहे कालसात्कृते । विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ३ ॥
 अशब्दमरूपशंखरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तं
 महत् परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमलं निरामयम् ॥ ४ ॥ इति ।

इति पैङ्गलोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ हेनं पैङ्गलः प्रपच्छ याज्ञवल्क्यं ज्ञानिनः किं कर्म का च स्थिति-
 रिति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । अमानित्वादिसंपन्नो मुमुक्षुरेकविंशतिकुलं
 तारयति । ब्रह्मविन्मात्रेण कुलमेकोत्तरशतं तारयति । आत्मानं रथिनं विद्धि
 शरीरं रथमेव च । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहेमेव च ॥ १ ॥ इन्द्रि-
 याणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । जङ्गमानि विमानानि हृदयानि मनी-
 षिणः ॥ २ ॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्त्याहुर्महर्षयः । ततो नारायणः
 साक्षाद्बुद्धये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥ प्रारब्धकर्मपर्यन्तमहिनिर्मोकवद्भवहरति ।
 चन्द्रवच्चरते देही स मुक्तश्चानिकेतनः ॥ ४ ॥ तीर्थे श्रपचगृहे वा तनुं
 विहाय याति कैवल्यम् । प्राणानवकीर्य याति कैवल्यम् ॥ तं पश्चाद्विबलिं

कुर्यादथवा खननं चरेत् । पुंसः प्रव्रजनं प्रोक्तं नेतराय कदाचन ॥ ५ ॥
 नाशौचं नाभिकार्यं च न पिण्डं नोदकक्रिया । न कुर्यात्पार्षणादीनि ब्रह्मभू-
 ताव भिक्षवे ॥ ६ ॥ दग्धस्य दहनं नास्ति पक्वस्य पचनं यथा । ज्ञानाग्नि-
 दग्धदेहस्य न च श्राद्धं न च क्रिया ॥ ७ ॥ यावच्चोपाधिपर्यन्तं तावच्छु-
 श्रूषयेद्गुरुम् । गुरुवद्गुरुभार्यायां तत्पुत्रेषु च वर्तनम् ॥ ८ ॥ शुद्धमानसः
 शुद्धचिद्रूपः सहिष्णुः सोऽहमस्मि सहिष्णुः सोऽहमस्मीति प्राप्ते ज्ञानेन
 विज्ञाने ज्ञेये परमात्मनि हृदि संस्थिते देहे लब्धशान्तिपदं गते तदा प्रभा-
 मनोबुद्धिश्च्युतं भवति । अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् । एवं स्वात्मानं
 ज्ञात्वा वेदैः प्रयोजनं किं भवति । ज्ञानामृततृप्तयोगिनो न किञ्चित्कर्तव्य-
 मस्ति तदस्ति चेन्न स तत्त्वविद्भवति । दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डवर्जितः
 पिण्डस्थोऽपि प्रत्यगात्मा सर्वव्यापी भवति । हृदयं निर्मलं कृत्वा चिन्तयित्वा-
 प्यनामयम् । अहमेव परं सर्वमिति पश्येत्परं सुखम् ॥ ९ ॥ यथा जले
 जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् । अविशेषो भवेत्तद्वज्जीवात्मपरमात्मनोः
 ॥ १० ॥ देहे ज्ञानेन दीपिते बुद्धिरखण्डाकाररूपा यदा भवति तदा
 विद्वाद्ब्रह्मज्ञानाग्निना कर्मबन्धं तिर्देहेत् । ततः पवित्रं परमेश्वराख्यमद्वैतरूपं
 विमलाम्बराभम् । यथोदके तोयमनुप्रविष्टं तथात्मरूपो निरुपाधिसंस्थितः
 ॥ ११ ॥ आकाशवत्सूक्ष्मशरीर आत्मा न दृश्यते वायुवदन्तरात्मा । स
 बाह्यमभ्यन्तरनिश्चलात्मा ज्ञानोत्कया पश्यति चान्तरात्मा ॥ १२ ॥ यत्र यत्र
 मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना । यथा सर्वगतं व्योम तत्र तत्र लयं गतः
 ॥ १३ ॥ घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः । स गच्छति निरालम्बं
 ज्ञानालोकं समन्ततः ॥ १४ ॥ तपेद्वर्षसहस्राणि एकपादस्थितो नरः । एतस्य
 ध्यानयोगस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १५ ॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं तत्सर्वं शातु-
 मिच्छति । अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥ १६ ॥ विज्ञेयोऽ-
 क्षरतन्मात्रो जीवितं वापि चञ्चलम् । विहाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदु-
 पास्यताम् ॥ १७ ॥ अनन्तकर्मशौचं च जपो यज्ञस्तथैव च । तीर्थयात्राभि-
 गमनं यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ १८ ॥ अहंब्रह्मेति नियतं मोक्षहेतुर्महात्म-
 नाम् । द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च ॥ १९ ॥ ममेति बध्यते जन्तु-
 निर्ममेति विमुच्यते । मनसो ह्युन्मनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ २० ॥ यदा
 यात्युन्मनीभावस्तदा तत्परमं पदम् । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्

॥ २१ ॥ तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् । हन्यान्मुष्टिभिराकाशं
क्षुधार्तः खण्डयेत्तुपम् ॥ २२ ॥ नाहंब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्न जायते ।
य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽभिपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स
आदित्यपूतो भवति । स ब्रह्मपूतो भवति । स विष्णुपूतो भवति । स रुद्र-
पूतो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेषु वेदेष्वधीतो
भवति । स सर्ववेदव्रतचर्यासु चरितो भवति । तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां
शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । दश
पूर्वान्दशोत्तरान्पुनाति । स पङ्क्तिपावनो भवति । स महान्भवति । ब्रह्महत्या-
सुरापानस्वर्णस्तेयगुरुतल्पगमनतत्संयोगिपातकेभ्यः पूतो भवति । तद्विष्णोः
परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ तद्विप्रासो विप-
न्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २३ ॥

ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥

ॐ पूर्णमद इति ज्ञान्तिः ॥

इति पैङ्गलोपनिषत्समाप्ता ॥ ६२ ॥

भिक्षुकोपनिषत् ॥ ६३ ॥

भिक्षूणां पटलं यत्र विश्रान्तिमगमत्सदा ।

तत्रैपदं ब्रह्मतत्त्वं ब्रह्ममात्रं करोतु माम् ॥

ॐ पूर्णमद इति ज्ञान्तिः ॥

ॐ अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकवहूदकहंसपरमहंसाश्चेति चत्वारः ।
कुटीचका नाम गौतमभरद्वाजयाज्ञवल्क्यवसिष्ठप्रभृतयोऽष्टौ आसांश्चरन्तो
योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ बहूदका नाम त्रिदण्डकमण्डलुशिखाय-
शोपवीतकाषायवस्त्रधारिणो ब्रह्मर्षिगृहे मधुमांसं वर्जयित्वाऽष्टौ आसान्भैक्षा-
चरणं कृत्वा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ हंसा नाम ग्राम एकरात्रं
नगरे पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रं तदुपरि न वसेयुः । गोमूत्रगोमयाहारिणो नित्यं
चान्द्रायणपरायणा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ परमहंसा नाम
संवर्तकारुणित्तकेतुजडभरतदत्तात्रेयशुकवामदेवहारीतकप्रभृतयोऽष्टौ आसां-
श्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । बृक्षमूले शून्यगृहे इमशानवासिनो

वा साम्बरा वा दिगम्बरा वा । न तेषां धर्माधर्मौ लाभालाभौ शुद्धाशुद्धौ
 द्वैतवर्जिता समलोष्टाश्मकाञ्चनाः सर्ववर्णेषु भैक्षचरणं कृत्वा सर्वत्रात्मैवेति
 वृश्यन्ति । अथ जातरूपधरा निर्द्वन्द्वानिष्परिग्रहाः शुद्धध्यानपरायणा आत्म-
 निष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्तः शून्यागारदेवगृहतृणकूट-
 चल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाभिहोत्रशालानदीपुलिनगिरिकन्दरकुहरकोटरनि-
 श्चरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन
 संन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति भिक्षुकोपनिषत्समाप्ता ॥ ६३ ॥

महोपनिषत् ॥ ६४ ॥

यन्महोपनिषद्वेद्यं चिदाकाशतया स्थितम् ।

परमाद्वैतसाम्राज्यं तद्रामब्रह्म मे गतिः ॥

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः ॥

अथातो महोपनिषदं व्याख्यास्यामस्तदाहुरेको ह वै नारायणः आसीन्न
 ब्रह्मा नेशानो नापो नाग्नीषोमौ नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न सूर्यो
 न चन्द्रमाः । स एकाकी न रमते । तस्य ध्यानान्तःस्थस्य यज्ञस्रोममुच्यते ।
 तस्मिन्पुरुषाश्चतुर्दश जायन्ते । एका कन्या । दशेन्द्रियाणि मन एकादशं
 तेजः । द्वादशोऽहंकारः । त्रयोदशकः प्राणः । चतुर्दश आत्मा । पञ्चदशी
 बुद्धिः । भूतानि पञ्च तन्मात्राणि । पञ्च महाभूतानि । स एकः पञ्चविंशतिः
 पुरुषः । तत्पुरुषं पुरुषो निवेदय नास्य प्रधानसंवत्सरा जायन्ते । संवत्सरा-
 दधिजायन्ते । अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसाऽध्यायत । तस्य
 ध्यानान्तःस्थस्य ललाटाङ्गयक्षः शूलपाणिः पुरुषो जायते । विभ्रच्छ्रूयं यशः
 सत्यं ब्रह्मचर्यं तपो वैराग्यं मन ऐश्वर्यं सप्रणवा व्याहृतय ऋग्यजुःसामाथर्वा-
 ङ्गिरसः सर्वाणि छन्दांसि तान्यङ्गे समाभितानि । तस्मादीशानो महादेवो
 महादेवः । अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसाऽध्यायत । तस्य
 ध्यानान्तःस्थस्य ललाटास्वेदोऽपतत् । ता इमाः प्रतता आपः ततस्तेजो
 हिरण्यममण्डम् । तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत । सोऽध्यायत् । पूर्वाभिमुखो

भूत्वा भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं छन्द ऋग्वेदोऽभिर्देवता । पश्चिमाभिमुखो भूत्वा
 भुवरिति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं छन्दो यजुर्वेदो वायुर्देवता । उत्तराभिमुखो भूत्वा
 स्वरिति व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः सूर्यो देवता । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा
 महरिति व्याहृतिरानुष्टुभं छन्दोऽथर्ववेदः सोमो देवता । सहस्रशीर्षं देवं
 सहस्राक्षं विश्वशंभुवम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् । विश्व-
 भेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति । पतिं विश्वेश्वरं देवं ससुद्रे विश्वरूपिणम् ।
 पञ्चकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसंनिभम् । हृदयं चाप्यधोमुखं संतत्यै (?)
 सीत्कराभिश्च । तस्य मध्ये महानार्चिर्विश्वार्चिर्विश्वतोमुखम् । तस्य मध्ये वह्नि-
 शिखा अणीयोध्वा व्यवस्थिता । तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।
 स ब्रह्मा स ईशानः सेन्द्रैः सोऽक्षरः परमः स्वरारुढि महोपनिषत् ॥ १ ॥

इति महोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

शुको नाम महातेजाः स्वरूपानन्दतत्परः । जातमात्रेण मुनिराह यत्सत्यं
 तदवासवान् ॥ १ ॥ तेनासौ स्वविवेकेन स्वयमेव महामनाः । प्रविचार्य चिरं
 साधु स्वात्मनिश्चयमाप्तवान् ॥ २ ॥ अनाख्यत्वादगम्यत्वान्मनःषष्ठेन्द्रिय-
 स्थितेः । चिन्मात्रमेवमात्मानुराकाशादपि सूक्ष्मकः ॥ ३ ॥ चिदणोः परम-
 स्यान्तःकोटिब्रह्माण्डरेणवः । उत्पत्तिस्थितिमभ्येत्य लीयन्ते शक्तिपर्यायात् ॥ ४ ॥
 आकाशं बाह्यशून्यत्वादनाकाशं तु चित्तवतः । न किञ्चिदनिर्देश्यं वस्तु सत्तेति
 किञ्चन ॥ ५ ॥ चेतनोऽसौ प्रकाशत्वाद्देद्याभावाच्छिलोपमः । स्वात्मनि व्योमनि
 स्वस्थे जगदुन्मेषचित्रकृत् ॥ ६ ॥ तद्ज्ञानमात्रमिदं विश्वमिति न स्यात्ततः पृथक् ।
 जगद्भेदोऽपि तद्ज्ञानमिति भेदोऽपि तन्मयः ॥ ७ ॥ सर्वगः सर्वसंबन्धो
 गत्यभावाच्च गच्छति । नास्त्यसावाश्रयाभावात्सद्रूपत्वादथास्ति च ॥ ८ ॥
 विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातेर्दानुः परायणम् । सर्वसंकल्पसंन्यासश्चेतसा यत्परि-
 ग्रहः ॥ ९ ॥ जाग्रतः प्रत्ययाभावं यस्याहुः प्रत्ययं बुधाः । यत्संकोचविका-
 साभ्यां जगत्प्रलयसृष्टयः ॥ १० ॥ निष्ठा वेदान्तवाक्यानामथ वाचामगोचरः ।
 अहं सच्चित्परानन्दब्रह्मैवास्मि न चेतः ॥ ११ ॥ स्वयैव सूक्ष्मया बुद्ध्या सर्वं
 विज्ञातवान्मुक्तः । स्वयं प्राप्ते परे वस्तुन्यविश्रान्तमनाः स्थितः ॥ १२ ॥ इदं
 वस्त्विति विश्वासं नासावात्मन्युपाययौ । केवलं विररामास्य चेतो विषय-
 चापलम् । भोगेभ्यो भूरिभङ्गेभ्यो धाराभ्य इव चातकः ॥ १३ ॥ एकदा

सोऽमलप्रज्ञो मेरावेकान्तसंस्थितः । पप्रच्छ पितरं भक्त्या कृष्णद्वैपायनं
 मुनिम् ॥ १४ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं मुने । कथं च प्रशम-
 याति किं यत्कस्य कदा वद ॥ १५ ॥ एवं पृष्टेन मुनिना व्यासेनाखिलमा-
 त्मजे । यथावदखिलं प्रोक्तं वक्तव्यं विदितात्मना ॥ १६ ॥ अज्ञासिपं पूर्वमे-
 वमहमित्यथ तत्पितुः । स शुक्रः स्वकया बुद्ध्या न वाक्यं बहु मन्यते ॥ १७ ॥
 व्यासोऽपि भगवान्बुद्ध्या पुत्राभिप्रायमीदृशम् । प्रत्युवाच पुनः पुत्रं नाहं
 जानामि तत्पुत्रतः ॥ १८ ॥ जनको नाम भूपालो विद्यते मिथिलापुरे ।
 यथावद्वेद्यसौ वेद्यं तस्मात्सर्वमवाप्त्यसि ॥ १९ ॥ पित्रेत्युक्तः शुक्रः प्राया-
 त्सुमेरोर्वसुधातलम् । विदेहनगरीं प्राप जनकेनाभिपालिताम् ॥ २० ॥
 आवेदितोऽसौ याष्टीकैर्जनकाय महात्मने । द्वारि व्याससुतो राजन्शुक्रोऽत्र
 स्थितवानिति ॥ २१ ॥ जिज्ञासार्थं शुक्रस्यासावास्तामेवेत्यवज्ञया । उक्त्वा
 बभूव जनकस्तूष्णीं सप्त दिनान्यथ ॥ २२ ॥ ततः प्रवेशयामास जनकः
 शुक्रमङ्गणे । तत्राहानि स सप्तैव तथैवावसदुन्मनाः ॥ २३ ॥ ततः प्रवेश-
 यामास जनकोऽन्तःपुराजिरे । राजा न दृश्यते तावदिति सप्त दिनानि तम्
 ॥ २४ ॥ तत्रोन्मदाभिः कान्ताभिर्भोजनैर्भोगसंचयैः । जनको लालयामास
 शुक्रं शशिनिभाननम् ॥ २५ ॥ ते भोगास्तानि भोज्यानि व्यासपुत्रस्य तन्मनः ।
 नाजहुर्मन्दपवनो बद्धपीठमिवाचलम् ॥ २६ ॥ केवलं सुप्तमः स्वच्छो मौनी
 मुदितमानसः । संपूर्णं ह्यव शीतांशुरतिष्ठदमलः शुक्रः ॥ २७ ॥ परिज्ञात-
 स्वभावं तं शुक्रं स जनको नृपः । आनीय मुदितात्मानमवलोक्य ननाम
 ह ॥ २८ ॥ निःशेषितजगत्कार्यः प्राप्ताखिलमनोरथः । किमीप्सितं तवेत्याह
 कृतस्वागत आह तम् ॥ २९ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो । कथं
 प्रशममायाति यथावत्कथयाशु मे ॥ ३० ॥ यथावदखिलं प्रोक्तं जनकेन
 महात्मना । तदेव तत्पुरा प्रोक्तं तस्य पित्रा महाधिया ॥ ३१ ॥ स्वयमेव
 मया पूर्वमभिज्ञातं विशेषतः । एतदेव हि पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥ ३२ ॥
 अवताप्येष एवार्थः कथितो वाग्विदां वर । एष एव हि वाक्यार्थः शास्त्रेषु
 परिदृश्यते ॥ ३३ ॥ मनोविकल्पसंजातं तद्विकल्पपरिक्षयात् । क्षीयते दग्ध-
 संसारो निःसार इति मिश्रितः ॥ ३४ ॥ तत्किमेतन्महाभाग सत्यं ब्रूहि
 ममाचलम् । त्वत्तो विश्रममामोमि चेतसा अमता जगत् ॥ ३५ ॥ शृणु
 तावदिदानीं त्वं कथ्यमानमिदं मया । श्रीशुक्रं ज्ञानविस्तारं बुद्धिसारान्तरा-

न्तरम् ॥ ३६ ॥ यद्विज्ञानात्पुमान्सद्यो जीवन्मुक्तत्वमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ इदं
 नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् । संपन्नं चेत्तदुपस्था परा निर्वाणनि-
 वृत्तिः ॥ ३८ ॥ अशेषेण परित्यागो वासनायां य उक्तमः । मोक्ष इत्युच्यते
 सद्भिः स एव विमलक्रमः ॥ ३९ ॥ ये शुद्धवासना भूयो न जन्मानर्थभा-
 गिनः । ज्ञातज्ञेयास्त उच्यन्ते जीवन्मुक्ता महाधियः ॥ ४० ॥ पदार्थभाव-
 नादाढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते । वासनातानवं ब्रह्मन्मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ ४१ ॥
 तपःप्रभृतिना यस्य हेतुनैव विना पुनः । भोगा इह न रोचन्ते स जीवन्मुक्त
 उच्यते ॥ ४२ ॥ आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतः । न हृष्यति
 ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४३ ॥ हर्षामर्षभयशोकामकार्पण्य-
 दृष्टिभिः । न परास्मृश्यते योऽन्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४४ ॥ अहंकारमयीं
 त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः । तिष्ठति ध्येयसंत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते
 ॥ ४५ ॥ ईप्सितानीप्सिते न स्तो यस्यान्तर्वर्तिदृष्टिषु । सुषुप्तिवद्यश्नरति स
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४६ ॥ अध्यात्मरतिरासीनः पूर्णः पावनमानसः ।
 प्रासानुत्तमविश्रान्तिर्न किञ्चिदिह बाण्डति । यो जीवति गतस्नेहः स जीव-
 न्मुक्त उच्यते ॥ ४७ ॥ संवेधेन हृदाकाशे मनागपि न लिप्यते । यस्यासा-
 वजडा संवित्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४८ ॥ रागद्वेषः सुखं दुःखं धर्माधर्मौ
 फलाफले । यः करोत्यनपेक्ष्यैव स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४९ ॥ मौनवाग्निरहं-
 भावो निर्मानो मुक्तमत्सरः । यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते
 ॥ ५० ॥ सर्वत्र विगतस्नेहो यः साक्षिवदवस्थितः । निरिच्छो वर्तते कार्ये स
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५१ ॥ येन धर्ममधर्मं च मनोमननमीहितम् । सर्व-
 मन्तःपरित्यक्तं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५२ ॥ यावती दृश्यकलना सकलेयं
 विलोक्यते । सा येन सुष्ठु संत्यक्ता स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५३ ॥ कदम्बलवणं
 तित्कममृष्टं मृष्टमेव च । सममेव च यो भुङ्क्ते स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५४ ॥
 जरा मरणमापन्नं राज्यं दारिद्र्यमेव च । रम्यमित्येव यो भुङ्क्ते स जीवन्मुक्त उच्यते
 ॥ ५५ ॥ धर्माधर्मौ सुखं दुःखं तथा मरणजन्मनी । धिन्ना येन सुसंत्यक्तं स
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५६ ॥ उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया । न
 शोचति न ज्वोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५७ ॥ सर्वेच्छाः सकलाः शङ्काः
 सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः । धिया येन परित्यक्ताः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५८ ॥
 जन्मस्थितिविनाशेषु सोदयास्तमयेषु च । सममेव मनो यस्य स जीवन्मुक्त

उच्यते ॥ ५९ ॥ न किंचन द्वेष्टि तथा न किंचिदपि काङ्क्षति । भुङ्क्ते यः
 प्रकृतान्भोगान्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६० ॥ शान्तसंसारकलनः कलावानपि
 जिष्कलः । यः सचित्तोऽपि निश्चितः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६१ ॥ यः
 समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि निःस्पृहः । परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त
 उच्यते ॥ ६२ ॥ जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसाकृते । विशत्यदेहमु-
 क्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ६३ ॥ विदेहमुक्तो नोदेति नास्तेति न
 प्राभ्यति । न सञ्जासद्य दूरस्थो न चाहं न च नेतरः ॥ ६४ ॥ ततः स्तिमि-
 तगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् । अनाख्यमनभिव्यक्तं साकिंचिदवशिष्यते
 ॥ ६५ ॥ न शून्यं नापि चाकारो न इदं नापि दर्शनम् । न च भूतपदा-
 र्थैवसदनन्ततया स्थितम् ॥ ६६ ॥ किमप्यव्यपदेशात्मा पूर्णोऽपूर्णतराकृतिः ।
 न सञ्जासद्य सदसद्य भावो भावनं न च ॥ ६७ ॥ चिन्मात्रं चैत्यरहितम-
 नन्तमजरं शिवम् । अनादिमध्यपर्यन्तं यदनादि निरामयम् ॥ ६८ ॥ द्रष्टृद-
 र्शनदृष्ट्यानां मध्ये यद्दर्शनं स्मृतम् । नातः परतरं किंचिन्निश्चयोऽस्त्यपरो
 मुने ॥ ६९ ॥ स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनः श्रुतम् । स्वसंकल्पवशा-
 द्बद्धो तिःसंकल्पाद्विमुच्यते ॥ ७० ॥ तेन स्वयं त्वया ज्ञातं ज्ञेयं यस्य महा-
 त्मनः । भोगेभ्यो ह्यरतिर्जाता इत्याद्या सकलादिह ॥ ७१ ॥ प्राप्तं प्राप्तव्यम-
 खिलं भवता पूर्णचेतसा । स्वरूपे तपसि ब्रह्मन्मुक्तस्त्वं आन्तिमुत्सृज ॥ ७२ ॥
 अतिबाह्यं तथो ब्रह्ममन्तराभ्यन्तरं धियः । शुक पश्यन्न पश्येस्त्वं साक्षी
 संपूर्णकैवलः ॥ ७३ ॥ विशश्राम शुकस्तूर्णीं स्वस्थे परमवस्तुनि । वीत-
 शोकभयायासो निरीहश्छिन्नसंशयः ॥ ७४ ॥ जगाम शिखरं मेरोः समाध्यर्थम-
 खण्डितम् ॥ ७५ ॥ तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना । देशे स्थित्वा
 शशामासावात्मन्यजेहदीपवत् ॥ ७६ ॥ व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः स्वयमम-
 लात्मनि पावने पदेऽसौ । सलिलकण इवाग्नुधौ महात्मा विगलितवासन-
 मेकतां जगाम ॥ ७७ ॥

इति महोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

निदाघो नाम मुनिराद प्राप्तविद्यश्च बालकः । विहृतस्तीर्थयात्रार्थं पित्रा-
 नुज्ञातवान्स्वयम् ॥ १ ॥ सार्धत्रिकोटितीर्थेषु ज्ञात्वा गृहमुपागतः । स्वोदन्तं
 कथयामास ऋभुं नत्वा महायशाः ॥ २ ॥ सार्धत्रिकोटितीर्थेषु ज्ञानपुण्यप्र-
 भावतः । प्रादुर्भूतो मनसि मे विचारः सोऽयमीदृशः ॥ ३ ॥ जायते ज्ञियते

लोको म्रियते जननाय च । अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचरचेष्टिताः । सर्वा-
 पदां पदं पापा भावा विभवभूमयः ॥ ४ ॥ अयःशलाकासदृशाः परस्परम-
 सङ्गिनः । शुष्यन्ते केवला भावा मनःकल्पनयानया ॥ ५ ॥ अवेष्वरतिरा-
 याता पथिकस्य मरुष्विव । शाम्यतीदं कथं दुःखमिति ततोऽस्मि चेतसा
 ॥ ६ ॥ विन्तानिचयचक्राणि नानन्दाय धनानि मे । संप्रसूतकलत्राणि गृहा-
 ण्युग्रापदामिव ॥ ७ ॥ इयमस्मि स्थितोदारा संसारे परिपेल्वा । श्रीर्मुने
 परिमोहाय सापि नूनं न शर्मदा ॥ ८ ॥ आयुः पल्लवकोणाग्रलम्बाम्बुकणभ-
 झुरम् । उन्मत्त इव संत्यज्य याम्यकाण्डे शरीरकम् ॥ ९ ॥ विषयाशीविषा-
 सङ्गपरिजर्जरचेतसाम् । अप्रौढात्मविवेकानामायुरायासकारणम् ॥ १० ॥
 युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम् । ग्रन्थनं च तरङ्गाणामास्थि
 नायुषि युज्यते ॥ ११ ॥ प्राप्यं संप्राप्यते येन भूयो येन न शोच्यते । पराया
 निर्वृतेः स्थानं यत्तज्जीवितमुच्यते ॥ १२ ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति
 मृगपक्षिणः । स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ १३ ॥ जातास्त
 एव जगति जन्तवः साधुजीविताः । ये पुनर्नेह जायन्ते शेषा जरठगर्दभाः
 ॥ १४ ॥ भारो विवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः । अशान्तस्य मनो
 भारो भारोऽनात्मविदो वपुः ॥ १५ ॥ अहंकारवशादापदहंकारोदुराधयः ।
 अहंकारवशादीहा नाहंकारात्परो रिपुः ॥ १६ ॥ अहंकारवशाद्यधनमया शुक्तं
 चराचरम् । तत्तत्सर्वमवस्त्वेव वस्त्वहंकाररिक्ता ॥ १७ ॥ इतश्चेतश्च सुव्यग्रं
 न्यर्थमेवाभिधावति । मनो दूरतरं याति ग्रामे कौलेयको यथा ॥ १८ ॥
 क्रूरेण जडतां याता तृष्णाभार्यानुगामिना । वशः कौलेयकेनेव ब्रह्मन्मुक्तोऽस्मि
 चेतसा ॥ १९ ॥ अप्यन्धिषानान्महतः सुमेरुन्मूलनादपि । अपि बह्वयश-
 नाद्ब्रह्मन्विषमश्चित्तिग्रहः ॥ २० ॥ चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगन्न-
 यम् । तस्मिन्क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥ २१ ॥ यां यामहं सुनि-
 श्रेष्ठ संश्रयामि गुणश्रियम् । तां तां कृन्तति मे तृष्णा तन्नीमिव कुमूषिका
 ॥ २२ ॥ पदं करोत्यलङ्घ्येऽपि तृसा विफलमीहते । चिरं तिष्ठति नैकत्र तृष्णा
 चपलमर्कटी ॥ २३ ॥ क्षणमायाति पातालं क्षणं याति नभःस्थलम् । क्षणं
 अमति दिक्कुञ्जे तृष्णा हृत्पद्मयदपदी ॥ २४ ॥ सर्वसंसारदुःखानां तृष्णैका
 दीर्घदुःखदा । अन्तःपुरस्थमपि या योजयत्यतिसंकटे ॥ २५ ॥ तृष्णाविषूचि-
 कामन्नश्चिन्तात्यागो हि स द्विज । स्तोकेनानन्दमायाति स्तोकेनायाति खेद-

ताम् ॥ २६ ॥ नास्ति देहसमः शोच्यो नीचो गुणविवर्जितः ॥ २७ ॥
 कलेवरमहंकारगृहस्थस्य महागृहम् । लुठत्वभ्येतु वा स्थैर्यं किमनेन गुरो
 मम ॥ २८ ॥ पङ्क्तिबद्धेन्द्रियपञ्चं बलात्तृष्णागृहाङ्गणम् । चित्तभृत्यजनाकीर्ण
 नेष्टं देहगृहं मम ॥ २९ ॥ जिह्वामर्कटिकाक्रान्तवदनद्वारभीषणम् । दृष्ट-
 दन्तास्थिशकलं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३० ॥ रक्तमांसमयस्यास्य सबाह्याभ्यन्तरे
 मुने । नाशैकधर्मिणो ब्रूहि कैव कायस्य रम्यता ॥ ३१ ॥ तडिस्तु शरदग्नेषु
 गन्धर्वनगरेषु च । स्थैर्यं येन विनिर्णीतं स विश्वसितु विग्रहे ॥ ३२ ॥ शैशवे
 गुरुतो भीतिर्मातृतः पितृतस्तथा । जनतो ज्येष्ठबालाच्च शैशवं भयमन्विरम्
 ॥ ३३ ॥ स्वचित्तविलसंस्थेन नानाधिभ्रमकारिणा । बलात्कामपिशाचेन
 विवशः परिभूयते ॥ ३४ ॥ दासाः पुत्राः स्त्रियश्चैव बान्धवाः सुहृदस्तथा ।
 हसन्युन्मत्तकमिव नरं वार्धककम्पितम् ॥ ३५ ॥ दैन्यदोषमयी दीर्घा वर्धते
 वार्धके स्पृहा । सर्वापदामेकसखी हृदि दाहप्रदायिनी ॥ ३६ ॥ कचिद्वा
 विद्यते यैषा संसारे सुखभावना । आयुः स्तम्बमिवासाद्य कालस्तामपि
 कुन्तति ॥ ३७ ॥ तृणं पाण्डुं महेन्द्रं च सुवर्णं मेरुसर्षपम् । आत्मभरितया
 सर्वमात्मसात्कर्तुमुद्यतः । कालोऽयं सर्वसंहारी तेनाक्रान्तं जगन्नयम् ॥ ३८ ॥
 मांसपाञ्चालिकायास्तु यन्नलोलेऽङ्गपञ्जरे । स्नाय्वस्थिग्रन्थिशालिन्याः स्त्रियः
 किमिव शोभनम् ॥ ३९ ॥ त्वज्जांसरक्तबाष्पांस्तु पृथक्त्वा विलोचने । समा-
 लोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि ॥ ४० ॥ मेरुशृङ्गतटोल्लासिगङ्गाचल-
 रयोपमा । दृष्ट्वा यस्मिन्मुने मुक्ताहारस्योल्लासशालिता ॥ ४१ ॥ इमशानेषु
 दिगन्तेषु स एव ललनास्तनः । श्वभिरास्त्रायते काले लघुपिण्ड इवान्धसः
 ॥ ४२ ॥ केशकजलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः । दुष्कृताग्निशिखा नार्यो
 दहन्ति तृणवन्नरम् ॥ ४३ ॥ ज्वलतामतिदूरेऽपि सरसा अपि नीरसाः ।
 स्त्रियो हि नरकाग्नीनामिन्धनं चारु दारुणम् ॥ ४४ ॥ कामनाज्ञा किरातेन
 विकीर्णा मुरधचेतसः । नार्यो नरविहङ्गानामङ्गबन्धनवागुराः ॥ ४५ ॥ जन्म-
 पल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् । पुंसां दुर्वासनारज्जुनारी बडिहा-
 पिण्डिका ॥ ४६ ॥ सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्रिकयानया । दुःखशृङ्खलया
 नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ ४७ ॥ यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क
 भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्पक्वं जगत्पक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ४८ ॥
 दिशोऽपि नहि दृश्यन्ते देशोऽप्यन्योपदेशकृद् । शैला अपि विशीर्यन्ते
 अ. उ. २८

जीर्यन्ते तारका अपि ॥ ४९ ॥ शुष्यन्त्यपि समुद्राश्च ध्रुवोऽप्यध्रुवजीवनः ।
 सिद्धा अपि विनश्यन्ति जीर्यन्ते दानवादयः ॥ ५० ॥ परमेष्ठ्यपि निष्ठावा-
 न्हीयते हरिरप्यजः । भावोऽप्यभावमायाति जीर्यन्ते वै दिगीश्वराः ॥ ५१ ॥
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातयः । नाशमेवानुधावन्ति सलिलानीव
 बाहवम् ॥ ५२ ॥ आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति संपदः । क्षणं
 जन्माथ मरणं सर्वं नश्वरमेव तत् ॥ ५३ ॥ अशूरेण हताः शूरा एकेनापि
 शतं हतम् । विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते ॥ ५४ ॥ जन्मान्तरघ्ना
 विषया एकजन्महरं विषम् । इति मे दोषदावाभिदग्धे संप्रति चेतसि
 ॥ ५५ ॥ स्फुरन्ति हि न भोगाशा मृगतृष्णासरःस्वपि । अतो मां बोधयाम्यु
 त्वं तत्त्वज्ञानेन वै गुरो ॥ ५६ ॥ नो चेन्मौनं समास्थाय निर्मानो गत-
 मत्सरः । भावयन्मनसा विष्णुं लिपिकर्मापि तोषमः ॥ ५७ ॥

इति महोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

निदाघ तव नास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतां वर । प्रज्ञया त्वं विजानासि ईश्वरा-
 नुगृहीतया । चित्तमालिन्यसंजातं मार्जयामि भ्रमं मुने ॥ १ ॥ मोक्षद्वारे
 द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः । शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसङ्गमः
 ॥ २ ॥ एकं वा सर्वयत्नेन सर्वमुत्सृज्य संश्रयेत् । एकस्मिन्वशगे यान्ति
 चत्वारोऽपि वशं गताः ॥ ३ ॥ शास्त्रैः सज्जनसंपर्कपूर्वकैश्च तपोधमैः । आदौ
 संसारमुत्तयर्थं प्रज्ञामेवाभिवर्धयेत् ॥ ४ ॥ स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैवैक-
 वाक्यता । यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते ॥ ५ ॥ संकल्पाशानु-
 संधानवर्जनं चेत्प्रतिक्षणम् । करोषि तदचित्त्वं प्राप्त एवासि पावनम्
 ॥ ६ ॥ चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमीरितम् । तदेव केवलीभावं सा
 शुभा निर्वृतिः परा ॥ ७ ॥ चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम् । यथा
 तिष्ठसि तिष्ठ त्वं मूकान्धबधिरोपमः ॥ ८ ॥ सर्वं प्रशान्तमजमेकमनादि-
 मध्यमाभास्वरं स्वदनमात्रमचैत्यचिह्नम् । सर्वं प्रशान्तमिति शब्दमयी च
 दृष्टिर्बाधार्थमेव हि मुपैव तदोमितीदम् ॥ ९ ॥ सर्वं किञ्चिदिदं दृश्यं दृश्यते
 विजगद्गतम् । चिन्धिष्ण्वन्दांशमात्रं तन्नान्यदस्तीति भावय ॥ १० ॥
 नित्यप्रबुद्धचित्तस्त्वं कुर्वन्वापि जगत्क्रियाम् । आत्मैकत्वं विदित्वा त्वं तिष्ठा-
 क्षुब्धमहाब्धिवत् ॥ ११ ॥ तत्त्वावबोध एवासौ वासनातृणपावकः । प्रोक्तः
 समाधिशब्देन नतु तूष्णीमवस्थितिः ॥ १२ ॥ निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा

लोकः प्रवर्तते । सत्तामात्रे परे तत्त्वे तथैवायं जगद्गुणः ॥ १३ ॥ अतश्चात्मनि कर्तृत्वमकर्तृत्वं च वै मुने । निरिच्छत्वादकर्ताऽसौ कर्ता संनिधिमात्रतः ॥ १४ ॥ ते द्वे ब्रह्मणि विन्देत् कर्तृताकर्तृते मुने । यत्रैवैष चमत्कारस्तमाश्रित्य स्थिरो भव ॥ १५ ॥ तस्मान्नित्यमकर्ताहमिति भावनयेद्ब्रह्मा । परमास्मृतनाम्नी सा समतैवावशिष्यते ॥ १६ ॥ निदाघ शृणु सत्त्वस्था जाता भुवि महागुणाः । ते नित्यमेवाभ्युदिता मुदिताः ख इवेन्दवः ॥ १७ ॥ नापदि ग्लानिमाथान्ति निशि हेमाम्बुजं यथा । नेहन्ते प्रकृतादन्यद्रमन्ते शिष्टवर्त्मनि ॥ १८ ॥ आकृत्यैव विराजन्ते मैत्र्यादिगुणवृत्तिभिः । समाः समरसाः सौम्य सततं साधुवृत्तयः ॥ १९ ॥ अविध्वज्जतमर्यादा भवन्ति विशदाशयाः । नियतिं न विमुञ्चन्ति महान्तो भास्करा इव ॥ २० ॥ कोऽहं कथमिदं चेति संसारमलमाततम् । अविचार्यं प्रयत्नेन प्राज्ञेन सहसाधुना ॥ २१ ॥ नाकर्मसु जियोक्तव्यं नानार्थेण सहावसेत् । द्रष्टव्यः सर्वसंहर्ता न मृत्युरत्रहेलथा ॥ २२ ॥ शरीरमस्थि मांसं च त्यक्त्वा रक्ताद्यशोभनम् । भूतमुक्तावलीतन्तुं चिन्मात्रमवलोकयेत् ॥ २३ ॥ उपादेयानुपतनं हैयैकान्तविसर्जनम् । यदेतन्मनसो रूपं तद्बाह्यं चिद्धि नेतरत् ॥ २४ ॥ गुरुशास्त्रोक्तमार्गेण स्वानुभूत्या च चिद्धने । ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा धीतशोको भवेन्मुनिः ॥ २५ ॥ यत्र निशितासिशतपातनमुत्पलताडनवत्सोढव्यमग्निना दाहो हिमसेचनमिवाङ्गारवर्तनं चन्दनचर्चैव निरवधिनाराचविकिरपातो निदाघविनोदनधारागृहशीकरवर्षणमिव स्वशिरश्छेदः सुखनिद्रेव मूकीकरणमाननमुदेव वाधिर्यं महानुपचय इवेदं नात्रहेलनया भवितव्यमेवं दृढवैराग्याद्बोधो भवति ॥ गुरुवाक्यसमुद्भूतस्वानुभूत्यादिशुद्धया । यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते ॥ २६ ॥ विनष्टदिग्भ्रमस्यापि यथापूर्वं विभाति दिक् । तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्नास्तीति भावय ॥ २७ ॥ न धनान्युपकुर्वन्ति न मित्राणि न बान्धवाः । न कायक्लेशवैधुर्यं न तीर्थयातनाश्रयः । केवलं तन्मनोमात्रमथेनासाद्यते पदम् ॥ २८ ॥ यानि दुःखानि या नृणां दुःसहा ये दुराधयः । शान्तचेतःसु तत्सर्वं तमोऽर्केष्विव नश्यति ॥ २९ ॥ मातरीव परं यान्ति विवमाणि मृदूनि च । विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमयान्ति ॥ ३० ॥ न रसायनपानेन न लक्ष्म्यालिङ्गितेन च । न तथा सुखमाप्नोति शमेनान्तर्यथा जनः ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा च दृष्ट्वा ज्ञात्वा शुभाशुभम् । न हृष्यति

ग्लायति यः स शान्त इति कथ्यते ॥ ३२ ॥ तुषारकरविम्बाच्छं मनो यस्य
 निराकुलम् । मरणोत्सवयुद्धेषु स शान्त इति कथ्यते ॥ ३३ ॥ तपस्विषु
 बहुश्रेषु याजकेषु नृपेषु च । बलवत्सु गुणाढ्येषु शमवानेव राजते ॥ ३४ ॥
 संतोषामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः । आत्मारामा महात्मानस्ते महा-
 पदमागताः ॥ ३५ ॥ अप्राप्तं हि परित्यज्य संप्राप्ते समतां गतः । अदृष्टखेदा-
 खेदो यः संतुष्ट इति कथ्यते ॥ ३६ ॥ नाभिनन्दत्यसंप्राप्तं प्राप्तं भुङ्क्ते यथेप्सि-
 तम् । यः स सौम्यसमाचारः संतुष्ट इति कथ्यते ॥ ३७ ॥ रमते धीर्यथाप्राप्ते
 साध्वीवाऽन्तःपुराजिरे । सा जीवन्मुक्ततोदेति स्वरूपानन्ददायिनी ॥ ३८ ॥
 यथाक्षणं यथाशास्त्रं यथादेशं यथासुखम् । यथासंभवस्तत्सङ्गमिमं मोक्षपथ-
 क्रमम् । तावद्विचारयेत्प्राज्ञो यावद्विश्रान्तिमात्मनि ॥ ३९ ॥ तुर्यविश्रान्ति-
 युक्तस्य निवृत्तस्य भवार्णवात् । जीवतोऽजीवतश्चैव गृहस्थस्याथवा यतेः
 ॥ ४० ॥ नाकृतेन कृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः । निर्मन्दर इवा-
 म्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितः ॥ ४१ ॥ सर्वात्मवेदनं शुद्धं यदोदेति
 तवात्मनम् । भाति प्रसृतिदिक्कालबाह्यं चिद्रूपदेहकम् ॥ ४२ ॥ एव-
 मात्मा यथा यत्र समुल्लासमुपागतः । तिष्ठत्याहु तथा तत्र तद्रूपश्च
 विराजते ॥ ४३ ॥ यदिदं दृश्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । तत्सुषुप्ताविव
 स्वप्नः कल्पान्ते प्रविणश्यति ॥ ४४ ॥ ऋतमात्मा परं ब्रह्म सत्यमित्यादिका
 बुधैः । कल्पिता व्यवहारार्थं यस्य संज्ञा महात्मनः ॥ ४५ ॥ यथा
 कटकशब्दार्थः पृथग्भावो न काञ्चनात् । न हेम कटकात्तद्वज्रगच्छ-
 द्दार्थता परा ॥ ४६ ॥ तेनेयमिन्द्रजालश्रीर्जगति प्रवितन्यते । द्रष्टुर्दृश्यस्य
 सत्तान्तर्बन्ध इत्यभिधीयते ॥ ४७ ॥ द्रष्टा दृश्यवशाद्बुद्धो दृश्याभावे विमु-
 च्यते । जगत्त्वमहमित्यादिसर्गात्मा दृश्यमुच्यते ॥ ४८ ॥ मनसैवेन्द्रजाल-
 श्रीर्जगति प्रवितन्यते । यावदेतत्संभवति तावन्मोक्षो न विद्यते ॥ ४९ ॥
 ब्रह्मणा तन्यते विश्वं मनसैव स्वयंभुवा । मनोमयमतो विश्वं यन्नाम परि-
 दृश्यते ॥ ५० ॥ न बाह्ये नापि हृदये सद्रूपं विद्यते मनः । यदर्थं प्रतिभानं
 तन्मन इत्यभिधीयते ॥ ५१ ॥ संकल्पनं मनो विद्धि संकल्पस्तत्र विद्यते ।
 यत्र संकल्पनं तत्र मनोऽस्तीत्यवगम्यताम् ॥ ५२ ॥ संकल्पमनसी भिन्ने न
 कदाचन केनचित् । संकल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ॥ ५३ ॥ अहं त्वं
 जगदित्यादौ प्रशान्ते दृश्यसंभ्रमे । स्यात्तादृशी केवलता दृश्ये सत्तामुपागते

॥ ५४ ॥ महाप्रलयसंपत्तौ ह्यसत्तां समुपागते । अशेषदृश्ये सर्गादौ शान्त-
मेवावशिष्यते ॥ ५५ ॥ अस्त्यनस्तमितो भास्वानजो देवो निरामयः । सर्वदा
सर्वकृत्सर्वः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ ५६ ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते यो मुक्तैरव-
गम्यते । यस्य चात्मादिकाः संज्ञाः कल्पिता न स्वभावतः ॥ ५७ ॥ चित्ता-
काशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम् । द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं
महामुने ॥ ५८ ॥ देशादेशान्तरप्राप्तौ संविदो मध्यमेव यत् । निमेषेण
चिदाकाशं तद्विद्धि मुनिपुङ्गव ॥ ५९ ॥ तस्मिन्निरस्तनिःशेषसंकल्पस्थितिमेधि
चेत् । सर्वात्मकं पदं ज्ञानं तदा प्राप्तोऽप्यसंशयः ॥ ६० ॥ उदितौदार्य-
सौन्दर्यवैराग्यरसगर्भिणी । आनन्दस्यन्दिनी येषा समाधिरभिधीयते ॥ ६१ ॥
दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे । रतिर्वलोदिता यासौ समाधिरभिधी-
यते ॥ ६२ ॥ दृश्यासंभवबोधो हि ज्ञानं ज्ञेयं चिदात्मकम् । तदेव केवली-
भावं ततोऽन्यत्सकलं शृषा ॥ ६३ ॥ मत्तं पुरावतो वद्धः सर्पपीकोणकोटरे ।
सशकेन कृतं युद्धं सिंहैषैरेणुकोटरे ॥ ६४ ॥ पद्माक्षे स्थापितो मेरुर्निगीर्णो
भृङ्गसूनुना । विद्राघ विद्धि तादृक्यं जगदेतच्छ्रमात्मकम् ॥ ६५ ॥ चित्तमेव
हि संसारो रागादिकेशदूषितम् । तदेव तैयिर्निर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते
॥ ६६ ॥ मनसा भाव्यमानो हि देहतां याति देहकः । देहवासनया मुक्तो
देहधर्मेन लिप्यते ॥ ६७ ॥ कल्पं क्षणिकरोत्यन्तः क्षणं नयति कल्पताम् ।
मनोविलाससंसार इति मे निश्चिता मतिः ॥ ६८ ॥ नाविरतो बुध्वरिताज्ञा-
ज्ञान्तो नासमाहितः । नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥
तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्विषयम् । विदित्वा स्वात्मनो रूपं न विभेति
कदाचन ॥ ७० ॥ परात्परं यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवम् ।
कविं पुराणं पुरुषं सनातनं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम् ॥ ७१ ॥ अहंब्रह्मेति
नियतं मोक्षहेतुर्महात्मनाम् । द्वे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममेति ममेति च ।
ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥ ७२ ॥ जीवेश्वरादिरूपेण चेतना-
चेतनात्मकम् । ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता । जाग्रदादिबिम्बो-
क्षान्तः संसारो जीवकल्पितः ॥ ७३ ॥ त्रिणाचिकादियोगान्ता ईश्वरभ्रान्ति-
माश्रिताः । लोकायतादिषां स्थान्ता जीवविभ्रान्तिमाश्रिताः ॥ ७४ ॥ तस्मा-
न्मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवादयोः । कार्या किंतु ब्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विचार्य-
ताम् ॥ ७५ ॥ अविशेषेण सर्वं तु यः पश्यति चिदन्वयात् । स एव साक्षा-

द्विजानी स शिवः स हरिर्विधिः ॥ ७६ ॥ दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्व-
दर्शनम् । दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ ७७ ॥ उत्पन्नशक्तिबोधस्य
त्यक्तनिःशेषकर्मणः । योगिनः सहजावस्था स्वयमेवोपजायते ॥ ७८ ॥ यदा
ह्येवैष एतस्मिन्नल्पमप्यन्तरं नरः । विजानाति तदा तस्य भयं स्यान्नात्र संशयः
॥ ७९ ॥ सर्वगतं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते । अज्ञानचक्षुर्नैक्षेत् भास्वन्तं
भानुमन्धवत् ॥ ८० ॥ प्रज्ञानमेव तद्ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् । एवं ब्रह्मपरि-
ज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत् ॥ ८१ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-
संशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८२ ॥ अनात्मतां परि-
त्यज्य निर्विकारो जगत्स्थितौ । एकनिष्ठतयान्तःस्थः संविन्मात्रपरो भव ॥ ८३ ॥
मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् । जगद्ययमिदं सर्वं चिन्मात्रं
स्वविचारतः ॥ ८४ ॥ लक्ष्यालक्ष्यमतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना । शिव
एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः ॥ ८५ ॥ अधिष्ठानमनौपम्यमवाङ्मनस-
गोचरम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदव्ययम् ॥ ८६ ॥ सर्वशक्तेर्महे-
शस्य विलासो हि मनो जगत् । संयमासंयमाभ्यां च संसारः शान्तिमन्त्र-
गात् ॥ ८७ ॥ मनोव्याधेश्चिकित्सार्थमुपायं कथयामि ते । यद्यत्स्वाभिमतं
वस्तु तस्य जन्मोक्षमश्नुते ॥ ८८ ॥ स्वायत्तमेकान्तहितं स्वेप्सितत्यागवेदनम् ।
यस्य दुष्करतां यातं धिक्तं पुरुषकीटकम् ॥ ८९ ॥ स्वपौरुषैकसाध्येन
स्वेप्सितत्यागरूपिणा । मनःप्रज्ञममात्रेण विना नास्ति शुभा गतिः ॥ ९० ॥
असंकल्पनशस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा । सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म संपद्यते
तदा ॥ ९१ ॥ भव भावनया मुक्तो मुक्तः परमया धिया । धारयात्मानम-
व्यग्रो ग्रस्तचित्तं चितः पदम् ॥ ९२ ॥ परं पौरुषमाश्रित्य नीत्वा चित्तमचि-
त्तताम् । ध्यानतो हृदयाकाशे चिति चिच्चक्रधारया ॥ ९३ ॥ मनो मारय
तिः शङ्कं त्वां प्रवधन्ति नारयः ॥ ९४ ॥ अयं सोऽहमिदं तन्म एतावन्मात्रकं
मनः । तदभावनमात्रेण दात्रेणेव विलीयते ॥ ९५ ॥ छिन्नाभ्रमण्डलं व्योम्नि
यथा शरादे धूयते । वातेन कल्पकेनैव तथाऽन्तर्धूयते मनः ॥ ९६ ॥ कल्पा-
न्तपत्रना वान्तु यान्तु चैकत्रमर्णवाः । तैपन्तु द्वादशादित्या नास्ति निर्मनसः
क्षतिः ॥ ९७ ॥ असंकल्पनमात्रैकसाध्ये सकलसिद्धिदे । असंकल्पातिसा-
म्नाज्ये तिष्ठायष्टव्रततपदः ॥ ९८ ॥ न हि चञ्चलताहीनं मनः कचन दृश्यते ।

चञ्चलत्वं मनोधर्मो बह्वेधर्मो यथोष्णता ॥ ९९ ॥ एषा हि चञ्चला स्पन्द-
शक्तिश्चित्तवसंस्थिता । तां विद्धि मानसीं शक्तिं जगदाडम्बरात्मिकाम् ॥ १०० ॥
यत्तु चञ्चलताहीनं तन्मनोऽमृतमुच्यते । तदेव च तपः शास्त्रसिद्धान्ते मोक्ष
उच्यते ॥ १०१ ॥ तस्य चञ्चलता यैषा त्वविद्या वासनात्मिका । वासना-
ऽपरनास्तीं तां विचारेण विनाशय ॥ १०२ ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन यस्मिन्नेव पदे
मनः । योज्यते तत्पदं प्राप्य निर्विकल्पो भवानघ ॥ १०३ ॥ अतः पौरुष-
माश्रित्य चित्तमाक्रम्य चेतसा । विशोकं पदमालम्ब्य निरातङ्कः स्थिरो भव
॥ १०४ ॥ मन एव समर्थं हि मनसो दृढनिग्रहे । अराजकः समर्थः स्याद्वाज्ञो
निग्रहकर्मणि ॥ १०५ ॥ तृष्णाग्राहगृहीतानां संसारार्णवपातिनाम् । आवर्तै-
रुह्यमानानां दूरं स्वमन एव नौः ॥ १०६ ॥ मनसैव मनश्छित्त्वा पाशं
परमबन्धनम् । भवादुत्तारयात्मानं नासावन्धेन तार्यते ॥ १०७ ॥ या
योदेति मनोनाम्नी वासना वासितान्तरा । तां तां परिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्या-
क्षयो भवेत् ॥ १०८ ॥ भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम् ।
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव ॥ १०९ ॥ एष एव मनोनाश-
स्त्वविद्यानाश एव च । यत्तत्संवेद्यते किञ्चित्तन्नास्थापरिवर्जनम् ॥ ११० ॥
अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः ॥ १११ ॥ अविद्या विद्यमानैव
नष्टप्रज्ञेषु दृश्यते । नास्त्रैवाङ्गीकृताकारा सम्यक्प्रज्ञस्य सा कुतः ॥ ११२ ॥
तावत्संसारभृगुषु स्वात्मना सह देहिनम् । आन्दोलयति नीरन्ध्रं दुःखकण्ट-
कशालिषु ॥ ११३ ॥ अविद्या यावदस्यास्तु नोत्पन्ना क्षयकारिणी । स्वयमा-
त्मावलोकेच्छा मोहसंक्षयकारिणी ॥ ११४ ॥ अस्याः परं प्रपश्यन्त्याः स्वात्म-
नाशः प्रजायते । दृष्टे सर्वगते बोधे स्वयं ह्येषा विलीयते ॥ ११५ ॥ इच्छा-
मात्रमविद्येयं तन्नाशो मोक्ष उच्यते । स चासंकल्पमात्रेण सिद्धो भवति वै
शुने ॥ ११६ ॥ मनागपि मनोव्योम्नि वासनारजनीक्षये । कलिका तनु-
तामेति चिदादित्यप्रकाशनात् ॥ ११७ ॥ चैत्यानुपातरहितं सामान्येन च
सर्वगम् । यश्चित्तत्वमनाख्येयं स आत्मा परमेश्वरः ॥ ११८ ॥ सर्वं च
खल्विदं ब्रह्म नित्यचिद्धनमक्षतम् । कल्पनाऽन्या मनोनाम्नी विद्यते नहि
क्वाचन ॥ ११९ ॥ न जायते न म्रियते किञ्चिदत्र जगद्भये । न च भाव-
त्रिकाराणां सत्ता कचन विद्यते ॥ १२० ॥ केवलं केवलाभासं सर्वसामान्यम-
क्षतम् । चैत्यानुपातरहितं चिन्मात्रमिदं विद्यते ॥ १२१ ॥ तस्मिन्नित्ये तते

शुद्धे चिन्मात्रे निरुपद्रवे । शान्ते शमसमाभोगे निर्विकारे चिदात्मनि ॥ १२२ ॥ यैषा स्वभावाभिमतं स्वयं संकल्प्य धावति । चिच्चैत्यं स्वयमम्लानं माननान्मन उच्यते । अतः संकल्पसिद्धेयं संकल्पेनैव नश्यति ॥ १२३ ॥ नाहं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदृढादध्यते मनः । सर्वं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदृढान्मुच्यते मनः ॥ १२४ ॥ कृशोऽहं दुःखबद्धोऽहं हस्तापादादिवानहम् । इति भावानुरूपेण व्यवहारेण बध्यते ॥ १२५ ॥ नाहं दुःखी न मे देहो बन्धः क्रोऽस्यात्मनि स्थितः । इति भावानुरूपेण व्यवहारेण मुच्यते ॥ १२६ ॥ नाहं मांसं न चास्थीनि देहादन्यः परोऽस्म्यहम् । इति निश्चितवानन्तः-क्षीणविद्यो विमुच्यते ॥ १२७ ॥ कल्पितेयमविद्येयमनात्मन्यात्मभावनात् । परं पौरुषमाश्रित्य यत्नात्परमया धिया । भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव ॥ १२८ ॥ मम पुत्रो मम धनमहं सोऽयमिदं मम । इतीयमिन्द्रजालेन वासनैव विवल्गति ॥ १२९ ॥ मा भवाज्ञो भव ज्ञस्त्वं जहि संसारभावनाम् । अनात्मन्यात्मभावेन किमज्ञ इव रोदिषि ॥ १३० ॥ कस्तवायं जडो मूको देहो मांसमयोऽशुचिः । यदर्थं सुखदुःखाभ्यामवशः परिभूयसे ॥ १३१ ॥ अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्म तद्विस्मृतं नृणाम् । तिष्ठतस्तव कार्येषु माऽस्तु रागानुरञ्जना ॥ १३२ ॥ अहो नु चित्रं पशोत्थैर्बद्धास्तनुभिरद्रयः । अविद्यमाना या विद्या तया विश्वं खिलीकृतम् ॥ १३३ ॥ इदं तद्वज्रतां यातं तृणमात्रं जगन्नयम् ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति महोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋभुः ॥ अधपरं प्रवक्ष्यामि शृणु तात यथैवाथम् । अज्ञानभूः सप्तपदा ज्ञभूः सप्तपदैव हि ॥ १ ॥ पदान्तराण्यसंख्यानि प्रभवन्त्यन्यथैतयोः । स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्गंशोऽहन्त्ववेदनम् ॥ २ ॥ शुद्धसन्मात्रसंचितेः स्वरूपाज्ञ चलन्ति ये । रागद्वेषादयो भावास्तेषां नाज्ञत्वसंभवः ॥ ३ ॥ यः स्वरूपपरि-अंशश्चेत्यर्थे चित्ति मज्जनम् । एतस्मादपरो मोहो न भूतो न भविष्यति ॥ ४ ॥ अर्थादर्थान्तरं चित्ते याति मध्ये नु या स्थितिः । सा ध्वंस्तमननाकारा स्वरूप-स्थितिरुच्यते ॥ ५ ॥ संशान्तसर्वसंकल्पा या क्षिलावदवस्थितिः । जाग्रद्विद्रा-विनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ ६ ॥ अहन्तांशे क्षते शान्ते भेदनि-ष्पन्दचित्तता । अजडा या प्रचलति तत्स्वरूपमितीरितम् ॥ ७ ॥ बीज-

जाग्रत्तथा जाग्रन्महाजाग्रत्तथैव च । जाग्रत्स्वप्नस्तथा स्वप्नः स्वप्नजा-
ग्रत्सुषुप्तिकम् ॥ ८ ॥ इति संस्रविधो मोहः पुनरेष परस्परम् । श्लिष्टो भव-
त्यनेकाग्र्यं शृणु लक्षणमस्य तु ॥ ९ ॥ प्रथमं चेतनं यस्यादनाख्यं निर्मलं
चित्तः । भविष्यच्चित्तजीवादिनामशब्दार्थभाजनम् ॥ १० ॥ बीजरूपस्थितं
जाग्रद्वीजजाग्रत्तदुच्यते । एषा ज्ञेर्नवावस्था त्वं जाग्रत्संस्थितिं शृणु ॥ ११ ॥
नवप्रसूतस्य परादयं चाहमिदं मम ॥ इति यः प्रत्ययः स्वस्थस्तज्जाग्रत्प्राग्भा-
वनात् ॥ १२ ॥ अयं सोऽहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः । पीवरः प्रत्ययः
प्रोक्तो महाजाग्रदिति स्फुटम् ॥ १३ ॥ अरूढमथवा रूढं सर्वथा तन्मयात्म-
कम् । यज्जाग्रतो मनोराज्यं यज्जाग्रत्स्वप्न उच्यते ॥ १४ ॥ द्विचन्द्रशुक्तिकारू-
प्यमृगतृष्णादिभेदतः । अभ्यासं प्राप्य जाग्रत्तत्स्वप्नो नानाविधो भवेत् ॥ १५ ॥
अल्पकालं मया दृष्टमेतन्नोदेति यत्र हि । परामर्शः प्रबुद्धस्य स स्वप्न
इति कथ्यते ॥ १६ ॥ चिरं संदर्शनाभावादप्रफुल्लं बृहद्वचः । चिरका-
लानुवृत्तिस्तु स्वप्नो जाग्रदिवोदितः ॥ १७ ॥ स्वप्नजाग्रदिति प्रोक्तं जाग्रत्पि
परिस्फुरत् । षडवस्थापरित्यागो जडा जीवस्य या स्थितिः ॥ १८ ॥
भविष्यद्दुःखबोधाढ्या सौषुप्तिः सोच्यते गतिः । जगत्तस्यामवस्थायामन्त-
स्तमसि लीयते ॥ १९ ॥ सप्तावस्था इमाः प्रोक्ता मया ज्ञानस्य वै द्विज ।
एकैका शतसंख्याऽत्र नानाविभवरूपिणी ॥ २० ॥ इमां ससंपदां ज्ञानभूमि-
माकर्णयानघ । नानया ज्ञातया भूयो मोहपङ्के निमज्जति ॥ २१ ॥ वदन्ति
बहुभेदेन वादिनो योगभूमिकाः ॥ मम त्वभिमता नूनमिमा एव शुभप्रदाः
॥ २२ ॥ अवबोधं विदुर्ज्ञानं तदिदं सासभूमिकम् । मुक्तिस्तु ज्ञेयमित्युक्ता
भूमिकासप्तकात्परम् ॥ २३ ॥ ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ २४ ॥ सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी
स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका । पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ २५ ॥
आसामन्तःस्थिता मुक्तिर्यस्यां भूयो न शोचति । एतासां भूमिकानां त्वमिदं
निर्वचनं शृणु ॥ २६ ॥ स्थितः किं मूढ एवासि प्रेक्षेऽहं शास्त्रसज्जनैः ।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥ २७ ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्क-
वैराग्याभ्यासपूर्वकम् । सदाचारप्रवृत्तिर्यां प्रोच्यते सा विचारणा ॥ २८ ॥
विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता । यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते

तनुमानसी ॥ २९ ॥ भूमिकान्नितयाभ्यासाच्चित्ते तु विरतेर्वशात् । सत्त्वा-
त्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ३० ॥ दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गकला
तु या । रुढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ता संसक्तिनामिका ॥ ३१ ॥ भूमिकापञ्चका-
भ्यासात्स्वात्मारामतया दृढम् । आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात्
॥ ३२ ॥ परप्रयुक्तेन चिरं प्रयत्नेनावबोधनम् । पदार्थभावना नाम पटी
भवति भूमिका ॥ ३३ ॥ भूमिषट्क्चिराभ्यासाज्ज्ञेदस्यानुपलम्भनात् । यत्स्व-
भावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥ ३४ ॥ एषा हि जीवन्मुक्तेषु तुर्याव-
स्थेति विद्यते । विदेहमुक्तिविषयं तुर्यातीतमतः परम् ॥ ३५ ॥ ये निदाव
महाभागाः सप्तमीं भूमिमाश्रिताः । आत्मारामा महात्मानस्ते महत्पद-
मागताः ॥ ३६ ॥ जीवन्मुक्ता न मज्जन्ति सुखदुःखरसस्थिते । प्रकृतेनाथ
कार्येण किञ्चित्कुर्वन्ति वा न वा ॥ ३७ ॥ पार्श्वस्थबोधिताः सन्तः पूर्वा-
चारक्रमागतम् । आचारमाचरन्त्येव सुसुबुद्धवदुत्थिताः ॥ ३८ ॥ भू-
मिकासप्तकं चैतद्धीमतामेव गोचरम् । प्राप्य ज्ञानदशामेतां पशुम्लेच्छाद-
योऽपि ये ॥ ३९ ॥ सदेहा वाप्यदेहा वा ते मुक्ता नात्र संशयः । ज्ञसिर्हि
ग्रन्थिनिच्छेदस्तस्मिन्सति विमुक्तता ॥ ४० ॥ मृगतृष्णास्बुद्ध्यादिशान्तिमात्रा-
त्मकस्त्वसौ । ये तु मोहार्णवात्तीर्णास्तैः प्राप्तं परमं पदम् ॥ ४१ ॥ ते स्थिता
भूमिकास्वासु स्वात्मलाभपरायणाः । मनःप्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते
॥ ४२ ॥ सप्तभूमिः स विज्ञेयः कथितास्ताश्च भूमिकाः । एतासां भूमिकानां तु
गम्यं ब्रह्माभिधं पदम् ॥ ४३ ॥ त्वत्ताऽहन्तात्मता यत्र परता नास्ति
काचन । न कचिद्भावकलना न भावाभावगोचरा ॥ ४४ ॥ सर्वं शान्तं
निरालम्बं व्योमस्थं शाश्वतं शिवम् । अनामयमनाभासमनामकमकारणम्
॥ ४५ ॥ न सन्नासन्न मध्यान्तं न सर्वं सर्वमेव च । मनोवचोभिरग्राह्यं
पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम् ॥ ४६ ॥ असंवेदनमाशान्तमात्मवेदनमाततम् ।
सत्ता सर्वपदार्थानां नान्या संवेदनादते ॥ ४७ ॥ संबन्धे द्रष्टृदृश्यानां
मध्ये दृष्टिर्हि यद्वपुः । द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम् ॥ ४८ ॥
देशादेशं गते चित्ते मध्ये यच्चैतसो वपुः । अजाढ्यसंविन्नमनं तन्मयो भव
सर्वदा ॥ ४९ ॥ अजाग्रत्स्वमनिद्रस्य यत्ते रूपं सनातनम् । अचेतनं
चाजडं च तन्मयो भव सर्वदा ॥ ५० ॥ जडतां वर्जयित्वैकां शिलाया
हृदयं हि तत् । अमनस्कस्वरूपं यत्तन्मयो भव सर्वदा । चित्तं दूरे परित्यज्य

योऽसि सोऽसि स्थिरो भव ॥ ५१ ॥ पूर्वं मनः समुदितं परमात्मतत्त्वा-
त्तेनाततं जगदिदं सविकल्पजालम् । शून्येन शून्यमपि विप्र यथाऽम्बरेण
नीलत्वमुल्लसति चारुतराभिधानम् ॥ ५२ ॥ संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते
तु चित्ते संसारमोहमिहिका गलिता भवन्ति । स्वच्छं विभाति
शरदीव खमागतायां चिन्मात्रमेकमजमाद्यमनन्तमन्तः ॥ ५३ ॥ अक-
र्तृकमरङ्गं च गगने चित्रमुत्थितम् । अद्रष्टृकं स्वानुभवमनिद्रस्वप्नदर्शनम्
॥ ५४ ॥ साक्षिभूते रमे स्वच्छे निर्विकल्पे चिदात्मनि । निरिच्छं प्रतिवि-
म्बन्ति जगन्ति मुकुरे यथा ॥ ५५ ॥ पुंस्कं ब्रह्म चिदाकाशं सर्वात्मकम-
खण्डितम् । इति भावय यत्नेन चेतश्चाञ्चत्यशान्तये ॥ ५६ ॥ रेखोप-
रेखावलिता यथैका पीवरी शिला । तथा त्रैलोक्यवलितं ब्रह्मैकमिह दृश्यताम्
॥ ५७ ॥ द्वितीयकारणाभावादनुत्पन्नमिदं जगत् । ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं
द्रष्टव्यमद्भुतम् ॥ ५८ ॥ विश्रान्तोऽस्मि चिरं श्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्ति किंचन ।
पश्य विश्रान्तसंदेहं विगताशेषकौतुकम् ॥ ५९ ॥ निरस्तकल्पनाजालम-
चित्त्वं परं पदम् । त एव भूमतां प्राप्ताः संश्रान्ताशेषकित्तिपाः ॥ ६० ॥
महाधियः शान्तधियो ये याता विमनस्कताम् । जन्तोः कृत-
विचारस्य विगलद्वृत्तिचेतसः ॥ ६१ ॥ मननं त्यजतो नित्यं किंचित्परिणतं
मनः । दृश्यं संत्यजतो हेयमुपादेयमुपेयुषः ॥ ६२ ॥ द्रष्टारं पश्यतो
नित्यमद्रष्टारमपश्यतः । विज्ञातव्ये परे तत्त्वे जागरूकस्य जीवतः ॥ ६३ ॥
सुप्तस्य घनसंमोहमये संसारवर्त्मनि । अत्यन्तपक्वैराग्यादरसेषु रसेष्वपि
॥ ६४ ॥ संसारवासनाजाले खगजाल इवाधुना । त्रोटिते हृदयग्रन्थौ
श्लथे चैराग्यरंहसा ॥ ६५ ॥ कातकं फलमासाद्य यथा वारिं प्रसीदति ।
तथा विज्ञानवशतः स्वभावः संप्रसीदति ॥ ६६ ॥ नीरागं निरुपासकं
निर्द्वन्द्वं निरुपाश्रयम् । विनिर्याति मनो मोहाद्विहङ्गः पञ्चरादिव ॥ ६७ ॥
शान्तसंदेहदौरात्म्यं गतकौतुकविभ्रमम् । परिपूर्णान्तरं चेतः पूर्णेन्दुरिव
राजते ॥ ६८ ॥ नाहं न चान्यदस्तीह ब्रह्मैवास्मि निरामयम् । इत्थं सद-
सतोर्मध्याद्यः पश्यति स पश्यति ॥ ६९ ॥ अयत्नोपनतेष्वक्षिप्तदृश्येषु
यथा मनः । नीरागमेव पतति तद्वत्कार्येषु धीरधीः ॥ ७० ॥ परिज्ञा-
योपभुक्तो हि भागो भवति तुष्टये ! विज्ञाय सेवितश्चारी भैरवीनेति

न चोरताम् ॥ ७१ ॥ अशङ्कितापि संप्राप्ता ग्रामयात्रा यथाऽध्वगैः ।
 प्रेक्ष्यते तद्भवेव ज्ञैर्भोगश्रीरवलोक्यते ॥ ७२ ॥ मनसो निगृहीतस्य लीला-
 भोगोऽल्पकोऽपि यः । तमेवालब्धविस्तारं क्षिप्तवाद्बहु मन्यते ॥ ७३ ॥
 बद्धमुक्तो महीपालो ग्रासमात्रेण तुष्यति । परैरबद्धो नाक्रान्तो न राष्ट्रं
 बहु मन्यते ॥ ७४ ॥ हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्ण्य च ।
 अङ्गान्यङ्गैरिवाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥ ७५ ॥ मनसो विजयान्नान्या
 गतिरस्ति भवार्णवे । महानरकसाम्राज्ये मत्तदुष्कृतवारणाः ॥ ७६ ॥
 आशाशरशलाकाढ्या दुर्जया हीन्द्रियारयः । प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीते-
 न्द्रियद्विवः ॥ ७७ ॥ पश्चिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः ।
 तावन्निशीव वेताला वसन्ति हृदि वासनाः । एकतत्त्वद्वढाभ्यासाथावन्न
 विजितं मनः ॥ ७८ ॥ शृत्योऽभिमतकर्तृत्वान्मग्नी सर्वार्थकारणात् ।
 सामन्तश्चेन्द्रियाक्रान्तेर्मनो मन्ये विवेकिनः ॥ ७९ ॥ लालनात्स्निग्धललना
 पालनात्पालकः पिता । सुहृदुत्तमविन्यासान्मनो मन्ये मनीषिणः ॥ ८० ॥
 स्वालोकतः शास्त्रदशा स्वबुद्ध्या स्वानुभावतः । प्रयच्छति परां सिद्धिं
 त्यक्त्वात्मानं मनःपिता ॥ ८१ ॥ सुहृष्टः सुहृदः स्वच्छः सुक्रान्तः सुप्रबो-
 धितः । स्वगुणेनोर्जितो भाति हृदि हृद्यो मनोमणिः ॥ ८२ ॥ एनं
 मनोमणिं ब्रह्मन्बहुपक्ककलङ्कितम् । विवेकवारिणा सिञ्च्यै प्रक्षाल्यालोकवान्भव
 ॥ ८३ ॥ विवेकं परमाश्रित्य बुद्ध्यां सत्यमवेक्ष्य च । इन्द्रियारीनलं
 छित्त्वा तीर्णो भव भवार्णवात् ॥ ८४ ॥ आस्थामात्रमनन्तानां दुःखानामाकर्
 विदुः । अनास्थामात्रमभितः सुखानामालयं विदुः ॥ ८५ ॥ वासना-
 तन्तुबद्धोऽयं लोको विपरिवर्तते । सा प्रसिद्धाऽतिदुःखाय सुखायोच्छेदमा-
 गता ॥ ८६ ॥ धीरोऽप्यतिबहुज्ञोऽपि कुलजोऽपि महानपि । नृष्ण्या
 बध्यते जन्तुः सिंहः शृङ्गलया यथा ॥ ८७ ॥ परमं पौरुषं यत्तमास्थायादाय
 सूक्ष्मम् । यथाशास्त्रमनुद्वेगमाचरन्को न सिद्धिभाक् ॥ ८८ ॥ अहं
 सर्वमिदं विश्वं परमात्माहमच्युतः । नाच्यदस्तीति संविच्या परमा सा
 ह्यहंकृतिः ॥ ८९ ॥ सर्वस्माद्यतिरिक्तोऽहं बालाग्रादप्यहं तनुः । इति
 या संविदो ब्रह्मन्निद्वितीयाऽहंकृतिः शुभा ॥ ९० ॥ मोक्षायैषा न बन्धाय
 जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥ ९१ ॥ पाणिपादादिमात्रोऽयमहमित्येव निश्चयः ।
 अहंकारस्तृतीयोऽसौ लौकिकस्तुच्छ एव सः ॥ ९२ ॥ जीव एव दुरा-

त्मासौ कन्दः संसारदुस्तरः । अनेनाभिहतो जन्तुरधोऽधः परिधावति ॥ ९३ ॥
 अनया दुरहंकृत्या भावाः संत्यक्त्याचिरम् । शिष्टाहंकारवाञ्छन्तुः शमवा-
 न्याति मुक्तताम् ॥ ९४ ॥ प्रथमौ द्वावहंकारावकीकृत्य त्वलौकिकौ ।
 तृतीयाऽहंकृतिस्त्याज्या लौकिकी दुःखदायिनी ॥ ९५ ॥ अथ ते अपि संत्यज्य
 सर्वाहंकृतिवर्जितः । स तिष्ठति तथात्युच्चैः परमेवाधिरोहति ॥ ९६ ॥
 भोगेच्छामात्रको बन्धस्तस्यागो मोक्ष उच्यते । मनसोऽभ्युदयो
 नाशो मनोनाशो महोदयः ॥ ९७ ॥ ज्ञमनो नाशमभ्येति मनो-
 ऽज्ञस्य हि शृङ्खला । नानन्दं न निरानन्दं न चलं नाचलं स्थिरम् । न सन्ना-
 सन्न चैतेषां मध्यं ज्ञानिमनो विदुः ॥ ९८ ॥ यथा सौक्ष्म्याच्चिदाभास्य
 आकाशो नोपलक्ष्यते । तथा निरंशश्चिदावः सर्वगोऽपि न लक्ष्यते ॥ ९९ ॥
 सर्वसंकल्पपरहिता सर्वसंज्ञाविवर्जिता । सैषा चिदविनाशात्मा स्वात्मत्यादि-
 कृताभिधा ॥ १०० ॥ आकाशशतभागाच्छा ज्ञेषु निष्कलरूपिणी । सकला-
 मलसंसारस्वरूपैकात्मदर्शिनी ॥ १०१ ॥ नास्तमेति न चोदेति नोत्तिष्ठति न
 तिष्ठति । न च याति न चायाति न च नेह न चेह चित् ॥ १०२ ॥ सैषा
 चिदमलाकारा निर्विकल्पा निरास्पदा ॥ १०३ ॥ आदौ शमदमप्रायैर्गुणैः
 शिष्यं विशोधयेत् । पश्चात्सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमिति बोधयेत् ॥ १०४ ॥
 अज्ञस्यार्धप्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् । महानरकजालेषु स तेन विनियो-
 जितः ॥ १०५ ॥ प्रबुद्धबुद्धेः प्रक्षीणभोगेच्छस्य निराशिषः । नास्त्यविद्याम-
 लमिति प्राज्ञस्तूपविशेदुरुः ॥ १०६ ॥ सति दीप इवा लोकः सत्यकं इव
 वासरः । सति पुष्प इवामोदश्चिति सत्यं जगत्तथा ॥ १०७ ॥ प्रतिभासत
 एवेदं न जगत्परमार्थतः । ज्ञानदृष्टौ प्रसन्नायां प्रबोधविततोदये ॥ १०८ ॥
 यथावज्ज्ञास्यसि स्वस्थो मद्वाग्वृष्टिबलावलम् । अविद्ययैवोत्तमया स्वार्थना-
 शोद्यमार्थया ॥ १०९ ॥ विद्या संप्राप्यते ब्रह्मन्सर्वदोषापहारिणी । शाम्यति
 हास्यमन्त्रेण मलेन क्षाल्यते मलम् ॥ ११० ॥ शमं विषं विषेणैति रिपुणा
 हन्यते रिपुः । ईदृशी भूतमायेयं या स्वनाशेन हर्षदा ॥ १११ ॥ न लक्ष्यते
 स्वभावोऽस्या वीक्ष्यमाणैव नश्यति । नास्त्येषा परमार्थेनेत्येवं भावनयेद्यया
 ॥ ११२ ॥ सर्वं ब्रह्मेति यस्यान्तर्भावना सा हि मुक्तिदा । भेददृष्टिरविशेष्यं
 सर्वथा तां विसर्जयेत् ॥ ११३ ॥ मुने नासाधते तद्धि पदमक्षयमुच्यते ।
 कुतो जातेयमिति ते द्विज मास्तु विचारणा ॥ ११४ ॥ इमां कथमहं हन्मी-

तेषां तेऽस्तु विचारणा । अस्तङ्गतायां क्षीणायामस्यां ज्ञास्यसि तत्पदम् ॥ ११५ ॥ यत एषा यथा चैषा यथा नष्टेत्यखण्डितम् । तदस्या रोगशालाया
 यतं कुरु चिकित्सने ॥ ११६ ॥ यथैषा जन्मदुःखेषु न भूयस्त्वां नियो-
 क्षयति । स्वात्मनि स्वपरिस्पन्दैः स्फुरत्यच्छैश्चिदर्णवः ॥ ११७ ॥ एकात्मकम-
 खण्डं तदित्यन्तर्भाव्यतां दृढम् । किञ्चित्क्षुभितरूपा सा चिच्छक्तिश्चिन्मया-
 र्णवे ॥ ११८ ॥ तन्मयैव स्फुरत्यच्छा तत्रैवोर्मिरिवारणवे । आत्मन्येवात्मना
 व्योम्नि यथा सरसि मारुतः ॥ ११९ ॥ तथैवात्माऽऽत्मशक्त्यैव स्वात्मन्येवैति
 लोलताम् । क्षणं स्फुरति सा दैवी सर्वशक्तितया तथा ॥ १२० ॥ देशकाल-
 क्रियाशक्तिर्न यस्याः संप्रकर्षणे । स्वस्वभावं विदित्वोच्चैरप्यनन्तपदे स्थिता
 ॥ १२१ ॥ रूपं परिमितेनासौ भावयत्यविभाविता । यदैवं भावितं रूपं
 तथा परमकान्तया ॥ १२२ ॥ तदैवैनामनुगता नामसंख्यादिका इशः ।
 विकल्पकलिताकारं देशकालक्रियास्पदम् ॥ १२३ ॥ चित्तो रूपमिदं ब्रह्म-
 न्क्षेत्रज्ञ इति कथ्यते । वासनाः कल्पयन्तोऽपि यात्यहंकारतां पुनः ॥ १२४ ॥
 अहंकारो विनिर्णेता कलङ्की बुद्धिरुच्यते । बुद्धिः संकल्पिताकारा प्रयाति
 मननास्पदम् ॥ १२५ ॥ मनो घनविकल्पं तु गच्छतीन्द्रियतां शनैः ।
 पाणिपादमयं देहमिन्द्रियाणि विदुर्बुधाः ॥ १२६ ॥ एवं जीवो हि
 संकल्पवासनारजुवेष्टितः । दुःखजालपरीतात्मा क्रमादायाति नीचताम्
 ॥ १२७ ॥ इति शक्तिमयं चेतो घनाहंकारतां गतम् । कोशकारकमिरिव
 स्वेच्छया याति बन्धनम् ॥ १२८ ॥ स्वयं कल्पिततन्मात्राजालाभ्यन्तरवर्ति
 च । परां विवशतामेति शृङ्खलाबद्धसिंहवत् ॥ १२९ ॥ कचिन्मनः कचिदुद्धिः
 कचिज्ज्ञानं कचित्क्रिया । कचिदेतदहंकारः कचिच्चित्तमिति स्मृतम् ॥ १३० ॥
 कचित्प्रकृतिरित्युक्तं कचिन्मागेति कल्पितम् । कचिन्मलमिति प्रोक्तं कचित्कर्मेति
 संस्मृतम् ॥ १३१ ॥ कचिद्वन्ध इति ख्यातं कचित्पुण्यं कचिदप्युक्तं स्मृतम् । प्रोक्तं कचि-
 दविद्येति कचिदिच्छेति संमतम् ॥ १३२ ॥ इमं संसारमखिलमाशापाशवि-
 धायकम् । दधदन्तःफलैर्हीनं वटधाना वटं यथा ॥ १३३ ॥ चिन्तानलशि-
 खादग्धं कोपाजगरचर्वितम् । कामाविधकल्लोलरतं विस्मृतात्मपितामहम्
 ॥ १३४ ॥ समुद्धर मनो ब्रह्ममातङ्गमिव कर्दमात् । एवं जीवाश्रिता भावा
 भवभावनयाहिताः ॥ १३५ ॥ ब्रह्मणा कल्पिताकारा लक्षशोऽप्यथ कोटिशः ।
 संख्यातीताः पुरा जाता जायन्तेऽद्यापि चाभितः ॥ १३६ ॥ उत्पत्त्यन्तेऽपि

चैवान्ये कणौघा इव निर्झरात् । केचित्प्रथमजन्मानः केचिजन्मशताधिकाः
 ॥ १३७ ॥ केचिच्चासंख्यजन्मानः केचिद्विन्निभवान्तराः । केचित्किन्नरगन्धर्व-
 विद्याधरमहोरगाः ॥ १३८ ॥ केचिदकैन्दुवरुणाख्यक्षाधोक्षजपद्मजाः । केचि-
 द्ब्राह्मणभूपालवैश्यशूद्रगणाः स्थिताः ॥ १३९ ॥ केचित्तृणौषधीवृक्षफल-
 मूलपतङ्गकाः । केचित्कदम्बजम्बीरसालतालतमालकाः ॥ १४० ॥ केचिन्महे-
 न्द्रमलयसह्यमन्दरमेरवः । केचित्क्षारोदधिक्षीरघृतक्षुजलराशयः ॥ १४१ ॥
 केचिद्विशालाः ककुभः केचिन्नद्यो महारथाः । विहायस्युच्चैः केचिन्निपत-
 न्त्युत्पतन्ति च ॥ १४२ ॥ कन्दुका इव हस्तेन मृत्पुनाऽविरतं हताः । भुक्त्वा
 जन्मसहस्राणि भूयः संसारसंकटे ॥ १४३ ॥ पतन्ति केचिदबुधाः संप्राप्त्यापि
 विवेकताम् । दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमात्मतत्त्वं स्वशक्तितः ॥ १४४ ॥ लीलैव
 यदादत्ते दिक्कालकलितं वपुः । तदेव जीवपर्यायवासनावेशतः परम् ॥ १४५ ॥
 मनः संपद्यते लोलं कलनाऽऽकलनोन्मुखम् । कलयन्ती मनःशक्तिरादौ भाव-
 यति क्षणात् ॥ १४६ ॥ आकाशभावनामच्छां शब्दबीजरसोन्मुखीम् ।
 ततस्तद्धनतां यातं घनस्पन्दकमान्मनः ॥ १४७ ॥ भावयत्यनिलस्पन्दं स्पर्श-
 बीजरसोन्मुखम् । ताभ्यामाकाशवाताभ्यां दृढाभ्यासवशात्ततः ॥ १४८ ॥
 शब्दस्पर्शस्वरूपाभ्यां संघर्षाज्जन्यतेऽनलः । रूपतन्मात्रसहितं त्रिभिस्त्रैः सह
 संमितम् ॥ १४९ ॥ मनस्तादृग्गुणगतं रसतन्मात्रवेदनम् । क्षणाच्चैतत्परां
 शैत्यं जलसंविन्नतो भवेत् ॥ १५० ॥ ततस्तादृग्गुणगतं मनो भावयति
 क्षणात् । गन्धतन्मात्रमेतस्माद्भूमिसंविन्नतो भवेत् ॥ १५१ ॥ अथेत्थंभूत-
 तन्मात्रवेष्टितं तनुतां जहत् । वपुर्वैद्विकणाकारं स्फुरितं व्योज्जि पश्यति
 ॥ १५२ ॥ अहंकारकलायुक्तं बुद्धिवीजसमन्वितम् । तत्पूर्यष्टकमित्युक्तं भूत-
 हृत्पद्मपद्मम् ॥ १५३ ॥ तस्मिंस्तु तीव्रसंवेगाद्भावयद्भासुरं वपुः । स्थूल-
 तामेति पाकेन मनो बिल्वफलं यथा ॥ १५४ ॥ सूक्ष्मस्थद्रुतहेमाभं स्फुरितं
 विमलाम्बरे । संनिवेशमथादत्ते तत्तेजः स्वस्वभावतः ॥ १५५ ॥ ऊर्ध्वं शिरः-
 पिण्डमयमधः पादमयं तथा । पार्श्वयोर्हस्तसंस्थानं मध्ये चोदरधर्मिणम्
 ॥ १५६ ॥ कालेन स्फुटतामेत्य भवत्यमलविग्रहम् । बुद्धिसत्त्वबलोत्साह-
 विज्ञानैश्वर्यसंस्थितः ॥ १५७ ॥ स एव भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
 अवलोक्य वपुर्ब्रह्मा कान्तमात्मीयमुत्तमम् ॥ १५८ ॥ चिन्तामभ्येत्य भग-
 वांश्चिकालामलदर्शनः । एतस्मिन्परमाकाशे चिन्मात्रैकात्मरूपिणि ॥ १५९ ॥

अदृष्टपारपर्यन्ते प्रथमं किं भवेदिति । इति चिन्तितवान्ब्रह्मा सद्योजाताम-
 लात्मदृक् ॥ १६० ॥ अपश्यत्स्वर्गवृन्दानि समतीतान्यनेकशः । स्मरत्यथो स
 सकलान्सर्वधर्मगुणक्रमात् ॥ १६१ ॥ लीलया कल्पयामास चित्राः संकल्पतः
 प्रजाः । नानाजारसमारम्भो गन्धर्वनगरं यथा ॥ १६२ ॥ तासां स्वर्गापव-
 गार्थं धर्मकामार्थसिद्धये । अनन्तानि विचित्राणि शास्त्राणि समकल्पयत्
 ॥ १६३ ॥ विरञ्चिरूपान्मनसः कल्पितत्वाजगत्स्थितेः । तावत्स्थितिरेथं
 प्रोक्ता तन्नाशो नाशमाप्नुयात् ॥ १६४ ॥ न जायते न म्रियते क्वचित्किञ्चित्क-
 दाचन । परमार्थेन विप्रेन्द्र मिथ्या सर्वं तु दृश्यते ॥ १६५ ॥ कोशमाशा-
 भुजङ्गानां संसाराडम्बरं त्यज । असदेतदिति ज्ञात्वा मातृभावं निवेशय
 ॥ १६६ ॥ गन्धर्वनगरस्यार्थं भूपितेऽभूपिते तथा । अविद्यांशे सुतादौ वा कः
 क्रमः सुखदुःखयोः ॥ १६७ ॥ धनदारेषु वृद्धेषु दुःखयुक्तं न तुष्टता ।
 वृद्ध्यां मोहमायायां कः समाश्वासवानिह ॥ १६८ ॥ यैरेव जायते रागो
 मूर्खस्याधिकतां गतैः । तैरेव भागैः प्राज्ञस्य विराग उपजायते ॥ १६९ ॥
 अतो निदाघ तत्तज्ज व्यवहारेषु संसृतेः । नष्टं नष्टमुपेक्षस्व प्राप्तं प्राप्तमुपाहर
 ॥ १७० ॥ अनागतानां भोगानामवान्छनमकृत्रिमम् । आगतानां च संभोग
 इति पण्डितलक्षणम् ॥ १७१ ॥ शुद्धं सदसतोर्मध्यं पदं शुक्लावलम्ब्य च ।
 सबाह्याभ्यन्तरं दृश्यं मा गृहाण विमुञ्च मा ॥ १७२ ॥ यस्य चेच्छा तथा-
 निच्छा ज्ञस्य कर्मणि तिष्ठतः । न तस्य लिप्यते प्रज्ञा पद्मपत्रमिवाम्बुभिः
 ॥ १७३ ॥ यदि ते नेन्द्रियार्थश्रीः स्पन्दते हृदि वै द्विज । तदा विज्ञातविज्ञेया
 सञ्जुत्तीर्णो भवार्णवात् ॥ १७४ ॥ उच्चैःपदाय परया प्रज्ञया वासनगणात् ।
 पुष्पाङ्गन्धमपोद्धारं चेतोवृत्तिं पृथक्कुरु ॥ १७५ ॥ संसाराम्बुनिधावसिन्ध्वासना-
 म्बुपरिभुते । ये प्रज्ञानावमारूढास्ते तीर्णाः पण्डिताः परे ॥ १७६ ॥ न त्यजन्ति
 न घाञ्छन्ति व्यवहारं जगद्गतम् । सर्वमेवानुवर्तन्ते पारावारविदो जनाः
 ॥ १७७ ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सत्तासामान्यरूपिणः । चित्तश्चेतोन्मुखत्वं
 यत्तत्संकल्पाङ्कुरं विदुः ॥ १७८ ॥ लेशैतः प्राप्तसत्ताकः स एव घनतां शनैः ।
 याति चित्तत्वमापूर्ये दृढं जौड्याय मेघवत् ॥ १७९ ॥ भावयन्ति चित्तिश्चैत्यं
 व्यतिरिक्तमिवात्मनः । संकल्पतामिवायाति बीजमङ्कुरतामिव ॥ १८० ॥
 संकल्पनं हि संकल्पः स्वयमेव प्रजायते । वर्धते स्वयमेवाशु दुःखाय न

सुखाय यत् ॥ १८१ ॥ मा संकल्पय संकल्पं मा भावं भावय स्थितौ ।
 संकल्पनाशने यत्तो न भूयोऽननुगच्छति ॥ १८२ ॥ भावनाभावमात्रेण
 संकल्पः क्षीयते स्वयम् । संकल्पेनैव संकल्पं मनसैव मनो मुने ॥ १८३ ॥
 छित्त्वा स्वात्मनि तिष्ठ त्वं किमेतावति दुष्करम् । यथैवेदं नभः शून्यं जग-
 च्छून्यं तथैव हि ॥ १८४ ॥ तण्डुलस्य यथा चर्म यथा ताम्रस्य कालिमा ।
 नश्यति क्रियया विप्र पुरुषस्य तथा मलम् ॥ १८५ ॥ जीवस्य तण्डुलस्येव
 मलं सहजमप्यलम् । नश्यत्येव न संदेहस्तस्मादुद्योगवान्भवेत् ॥ १८६ ॥

इति महोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अन्तरस्थां परित्यज्य भावश्रीं भावनामयीम् । योऽसि सोऽसि जगत्-
 सिँह्लीलया विहरानघ ॥ १ ॥ सर्वत्राहमकर्तेति दृढभावनयानया ।
 परमाश्रुतनाम्नी सा समतैवावशिष्यते ॥ २ ॥ खेदोल्लासविलासेषु स्वात्म-
 कर्तृत्वैकया । स्वसंकल्पे क्षयं याते समतैवावशिष्यते ॥ ३ ॥ समता
 सर्वभावेषु यासौ सत्यपरा स्थितिः । तस्यामवस्थितं चित्तं न भूयो जन्म-
 आगमवेत् ॥ ४ ॥ अथवा सर्वकर्तृत्वमकर्तृत्वं च वै मुने । सर्वं त्यक्त्वा
 मनः पीत्वा योऽसि सोऽसि स्थिरो भव ॥ ५ ॥ शेषस्थिरसमाधानो येन
 त्यजासि तत्त्यज । चिन्मनःकलनाकारं प्रकाशतिमिरादिकम् ॥ ६ ॥ वासनां
 वासितारं च प्राणस्पन्दनपूर्वकम् । समूलमखिलं त्यक्त्वा व्योमसान्धः
 प्रशान्तधीः ॥ ७ ॥ हृदयात्संपरित्यज्य सर्ववासनपङ्कजः । यस्तिष्ठति
 गतव्यग्रः स मुक्तः परमेश्वरः ॥ ८ ॥ दृष्टं द्रष्टव्यमखिलं आन्तं आन्त्या
 दिशो दश । युक्त्या वै चरतो ज्ञस्य संसारो गोष्पदाकृतिः ॥ ९ ॥ सबा-
 ह्याभ्यन्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्वं च दिक्षु च । इत आत्मा ततोऽप्यात्मा नास्त्य-
 नात्ममयं जगत् ॥ १० ॥ न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न तन्मयम् ।
 किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ॥ ११ ॥ समस्तं खल्विदं
 ब्रह्म सर्वमात्मेदमाततम् । अहमन्य इदं चान्यदिति आन्ति त्यजानघ
 ॥ १२ ॥ तते ब्रह्मघने नित्ये संभवन्ति न कल्पिताः । न शोकोऽस्ति न
 मोहोऽस्ति न जराऽस्ति न जन्म वा ॥ १३ ॥ यदस्तीह तदेवास्ति विज्वरो
 भव सर्वदा । यथाप्राप्तानुभवतः सर्वत्रानभिवाञ्छनात् ॥ १४ ॥ त्यागा-
 दानपरित्यागी विज्वरो भव सर्वदा । यस्येदं जन्म पाश्चात्त्यं तमाश्वेव

महामते ॥ १५ ॥ विशन्ति विद्या विमला मुक्ता वेणुमिवोत्तमम् । विरक्त-
मनसां सम्यक्स्वप्नसङ्गादुदाहृतम् ॥ १६ ॥ द्रष्टृदृश्यसमायोगात्प्रत्यया-
नन्दनिश्चयः । यस्तं स्वमात्मतत्त्वोत्थं निष्पन्दं समुपास्यहे ॥ १७ ॥
द्रष्टृदर्शनद्वयानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रत्ययाभासमात्मानं सञ्जु-
पास्यहे ॥ १८ ॥ द्वयोर्मध्यगतं नित्यमस्ति-नास्तीतिपक्षयोः । प्रकाशनं
प्रकाशानामात्मानं समुपास्यहे ॥ १९ ॥ संत्यज्य हृद्गुहेशानं देवमन्यं
प्रयान्ति ये । ते रत्नमभिवान्छन्ति त्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥ २० ॥ उत्थि-
तानुत्थितानेतानिन्द्रियारिन्पुनः पुनः । हन्याद्विवेकदण्डेन वज्रेणेव हरि-
र्गिरीन् ॥ २१ ॥ संसाररात्रिदुःस्वप्ने शून्ये देहमये अमे । सर्वमेवा-
पवित्रं तद्दृष्टं संसृतिविभ्रमम् ॥ २२ ॥ अज्ञानोपहतो बाल्ये यौवने वलित-
हतः । शेषे कलत्रचिन्तार्तः किं करोति नराधमः ॥ २३ ॥ सतोऽसत्ता
स्थिता मूर्ध्नि रम्याणां मूर्ध्वरम्यता । सुखानां मूर्ध्नि दुःखानि किमेकं संश्र-
याम्यहम् ॥ २४ ॥ येषां निमेषणोन्मेषौ जगतः प्रलयोदयौ । तादृशाः
पुरुषा यान्ति मादृशां गणनैव का ॥ २५ ॥ संसार एव दुःखानां सीमान्त
इति कथ्यते । तन्मध्ये पतिते देहे सुखमासाद्यते कथम् ॥ २६ ॥ प्रबु-
द्धोऽस्मि प्रबुद्धोऽस्मि दुष्टश्रोरोऽयमात्मनः । मनो नाम निहन्म्येनं मन-
साऽस्मि चिरं हृतः ॥ २७ ॥ मा खेदं भज हेयेषु नोपादेयपरो भव । हेयादेय-
दृशौ त्यक्त्वा शेषस्थः सुस्थिरो भव ॥ २८ ॥ निराशता निर्भयता
नित्यता समता ज्ञता । निरीहता निष्क्रियता सौम्यता निर्विकल्पता ॥ २९ ॥
धृतिमैत्री मनस्तुष्टिर्मृदुता मृदुभाषिता । हेयोपादेयनिर्मुक्ते ज्ञे तिष्ठन्त्यपवा-
सनम् ॥ ३० ॥ गृहीततृष्णाशबरीवासनाजालमाततम् । संसारवारि
प्रसृतं चिन्तातन्तुभिराततम् ॥ ३१ ॥ अनया तीक्ष्णया तात छिन्धि
बुद्धिशलाकया । वात्ययेवाम्बुदं जालं छित्त्वा तिष्ठ तते पदे ॥ ३२ ॥
मनसैव मनश्छित्त्वा कुठारेणेव पादपम् । पदं पावनमासाद्य सद्य एव
स्थिरो भव ॥ ३३ ॥ तिष्ठन्गच्छन्स्वपञ्जाग्रन्निवसन्न्युत्पतन्पतन् । असदेवेद-
मित्यन्तं निश्चित्यास्थां परित्यज ॥ ३४ ॥ दृश्यमाश्रयसीदं चेत्तत्सच्चित्तोऽसि
बन्धवान् । दृश्यं संत्यजसीदं चेत्तदाऽचित्तोऽसि मोक्षवान् ॥ ३५ ॥ नाहं
नेदमिति ध्यायैस्तिष्ठ त्वमचलाचलः । आत्मनो जगतश्चान्तर्द्रष्टृदृश्यदशान्तरे
॥ ३६ ॥ दर्शनाख्यं स्वमात्मानं सर्वदा भावयन्भव । स्वाद्यस्वादकमन्त्यक्तं

स्वाद्यस्वादकमध्यगम् ॥ ३७ ॥ स्वदनं केवलं ध्यायन्परमात्ममयो भव ।
 अवलम्ब्य निरालम्बं मध्ये मध्ये स्थिरो भव ॥ ३८ ॥ रज्जुबद्धा विमु-
 च्यन्ते तृष्णाबद्धा न केनचित् । तस्मान्निदाघ तृष्णां त्वं त्यज संकल्पवर्जनात्
 ॥ ३९ ॥ पुतामहंभावमयीमपुण्यां छित्त्वाऽनहंभावशलाकयैव । स्वभा-
 वजां अन्यभवान्नाभूमा भव प्रशान्ताखिलभूतभीतिः ॥ ४० ॥ अहमेषां
 पदार्थानामेते च मम जीवितम् । नाहमेभिर्विना किञ्चिन्न मयैते विना किल
 ॥ ४१ ॥ इत्यन्तर्निश्चयं त्यक्त्वा विचार्य मनसा सह । नाहं पदार्थस्य
 न मे पदार्थ इति भाविते ॥ ४२ ॥ अन्तःशीतलया बुद्ध्या कुर्वतो लीलया
 क्रियाम् । यो नूनं वासनात्यागो ध्येयो ब्रह्मन्प्रकीर्तितः ॥ ४३ ॥ सर्वं
 समतया बुद्ध्या यः कृत्वा वासनाक्षयम् । जहाति निर्ममो देहं नेयोऽसौ
 वासनाक्षयः ॥ ४४ ॥ अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः ।
 तिष्ठति ध्येयसंस्मानी स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४५ ॥ निर्मूलं कलनां
 त्यक्त्वा वासनां यः शमं गतः । ज्ञेयं त्यागमिमं विद्धि मुक्तं तं ब्राह्मणो-
 त्तमम् ॥ ४६ ॥ द्वावेतौ ब्रह्मतां यातौ द्वावेतौ विगतज्वरौ । आपतत्सु
 यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतौ । संन्यासियोगिनौ दान्तौ विद्धि शान्तौ
 मुनीश्वर ॥ ४७ ॥ ईप्सितानीप्सिते न स्तो यस्यान्तर्वर्तिदृष्टिषु । सुपुसवद्य-
 श्ररति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४८ ॥ हर्षमर्षमयक्रोधकामकार्पण्य-
 दृष्टिभिः । न हृष्यति ग्लायति यः परामर्शविवर्जितः ॥ ४९ ॥ बाह्यार्थवासनो-
 ऽद्वृता तृष्णा बद्धेति कथ्यते । सर्वार्थवासनोन्मुक्ता तृष्णा मुक्तेति भण्यते
 ॥ ५० ॥ इदमस्तु ममेत्यन्तमिच्छां प्रार्थनयान्विताम् । तां तीक्ष्ण-
 शृङ्खलां विद्धि दुःखजन्मभयप्रदाम् ॥ ५१ ॥ तामेतां सर्वभावेषु सत्स्व-
 सत्सु च सर्वदा । संत्यज्य परमोदारं पदमेति महामनाः ॥ ५२ ॥
 बन्धास्थामथ मोक्षास्थां सुखदुःखदशामपि । त्यक्त्वा सदसदास्थां त्वं तिष्ठा-
 ऽक्षुब्धमहाविधवत् ॥ ५३ ॥ जायते निश्चयः साधो पुरुषस्य चतुर्विधः
 ॥ ५४ ॥ आ पादमस्तकमहं मातापितृविनिर्मितः । इत्येको निश्चयो ब्रह्मन्बन्धा-
 यासविलोकनात् ॥ ५५ ॥ अतीतः सर्वभावेभ्यो बालाप्रादप्यहं तनुः ।
 इति द्वितीयो मोक्षाय निश्चयो जायते सताम् ॥ ५६ ॥ जगज्जालपदार्थात्मा
 सर्व एवाहमक्षयः । तृतीयो निश्चयश्चोक्तो मोक्षायैव द्विजोत्तम ॥ ५७ ॥

अहं जगद्वा सकलं शून्यं व्योम समं सदा । एवमेष चतुर्थोऽपि निश्चयो
 मोक्षसिद्धिदः ॥ ५८ ॥ एतेषां प्रथमः प्रोक्तस्तृष्णया बन्धयोग्यया ।
 शुद्धतृष्णास्त्रयः स्वच्छा जीवन्मुक्ता विलासिनः ॥ ५९ ॥ सर्वं चाप्यहमे-
 वेति निश्चयो यो महामते । तमादाय विषादाय न भूयो जायते मतिः
 ॥ ६० ॥ शून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि । शिवः पुरुष ईशानो
 नित्यमात्मेति कथ्यते ॥ ६१ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भूतैर्जगन्निर्माणलीलया ।
 परमात्ममयी शक्तिरद्वैतैव विजृम्भते ॥ ६२ ॥ सर्वातीतपदालम्बी परि-
 पूर्यैकचिन्मयः । नोद्वेगी न च तुष्टात्मा संसारे नावसीदति ॥ ६३ ॥
 प्रासकर्मकरो नित्यं शत्रुमित्रसमानदृक् । ईहितानीहितैर्मुक्तो न शोचति न
 काङ्क्षति ॥ ६४ ॥ सर्वस्याभिमतं वक्ता चोदितः पेशलोक्तिमान् । आहा-
 यज्ञश्च भूतानां संसारे नावसीदति ॥ ६५ ॥ पूर्वा दृष्टिमवष्टभ्य ध्येय-
 त्यागविलासिनीम् । जीवन्मुक्ततया स्वस्थो लोके विहर विज्वरः ॥ ६६ ॥
 अन्तःसंत्यक्तसर्वाशो वीतरागो विवासनः । बहिःसर्वसमाचारो लोके
 विहर विज्वरः ॥ ६७ ॥ बहिःकृत्रिमसंरम्भो हृदि संरम्भवर्जितः । कर्ता
 बहिरकर्ताऽन्तर्लोके विहर शुद्धधीः ॥ ६८ ॥ त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमतिराकाश-
 शोभनः । अगृहीतकलङ्काङ्को लोके विहर शुद्धधीः ॥ ६९ ॥ उदारः
 पेशलाचारः सर्वाचारानुवृत्तिमान् । अन्तःसङ्गपरित्यागी बहिःसंभार-
 वालिव । अन्तर्वैराग्यमादाय बहिराशोन्मुखेहितः ॥ ७० ॥ अयं बन्धु-
 रयं नेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्
 ॥ ७१ ॥ भावाभावविनिर्मुक्तं जरामरणवर्जितम् । प्रशान्तकलनारम्यं
 नीरागं पदमाश्रय ॥ ७२ ॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः स्वच्छा निष्कामा
 विगतामया । आदाय विहरन्नेवं संकटेषु न मुह्यति ॥ ७३ ॥ वैराग्येणाथ
 शास्त्रेण महत्त्वादिगुणैरपि । यत्संकल्पहरार्थं तत्स्वयमेवोन्नयन्मनः ॥ ७४ ॥
 वैराग्यात्पूर्णतामेति मनो नाशवशानुगम् । आशया रक्ततामेति शरदीव
 सरोऽमलम् ॥ ७५ ॥ तमेव मुक्तिविरसं व्यापारौघं पुनः पुनः । दिवसे
 दिवसे कुर्वन्प्राज्ञः कस्मान्न लज्जते ॥ ७६ ॥ विचैतलकलितो बन्धस्तन्मुक्तौ
 मुक्तिरुच्यते । चिदचैत्या किलात्मेति सर्वसिद्धान्तसंग्रहः ॥ ७७ ॥
 एतन्निश्चयमादाय विलोक्य धियेद्धया । स्वयमेवात्मनाऽस्मानमानन्दं

शरीरकोपनिषत् ॥ ६५ ॥

४५३

पदमाप्स्यसि ॥ ७८ ॥ चिदहं चिदिमे लोकाश्चिदाशाश्चिदिमाः प्रजाः ।
 इक्ष्यदर्शननिर्मुक्तः केवलमलरूपवान् ॥ ७९ ॥ नित्योदितो निराभासो
 द्रष्टा साक्षी चिदात्मकः ॥ ८० ॥ चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योतिःस्वरूप-
 कम् । संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत् ॥ ८१ ॥ संशान्त-
 सर्वसंकल्पः प्रशान्तसकलेशः । निर्विकल्पपदं गत्वा स्वस्थो भव
 सुनीश्वर ॥ ८२ ॥ इति । य इमां महोपनिषदं ब्राह्मणो नित्यमधीते ।
 अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । अनुपनीत उपनीतो भवति । सोऽग्निपूतो
 भवति । स वायुपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो
 भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वदैवैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेषु
 तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वदैवैरनुध्यातो भवति । स सर्वक्रतुभिरिष्ट-
 वान्भवति । गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । इतिहास-
 पुराणानां शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं
 भवति । आ चक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । आ सप्तमान्पुरुषयुगान्पुनाति । इत्याह
 भगवान्हिरण्यगर्भः । जप्येनामृतत्वं च गच्छतीत्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ ॐ तत्सत् ॥

इति महोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति महोपनिषत्समाप्ता ॥ ६४ ॥

शरीरकोपनिषत् ॥ ६५ ॥

तत्त्वग्रामोपायसिद्धं परतत्त्वस्वरूपकम् ।

शरीरोपनिषद्वेद्यं श्रीरामब्रह्म मे गतिः ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

ॐ अथातः पृथिव्यादिमहाभूतानां समवायं शरीरम् । यत्कठिनं सा
 पृथिवी यद्द्रवं तदापो यदुष्णं तत्तेजो यत्संचरति स वायुर्यत्सुषिरं तदाका-
 शम् । श्रोत्रादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि । श्रोत्रमाकाशे वायौ त्वगग्नौ चक्षुरप्सु
 जिह्वा पृथिव्यां घ्राणमिति । एवमिन्द्रियाणां यथाक्रमेण शब्दस्पर्शरूपरस-
 गन्धाश्चेति विषयाः पृथिव्यादिमहाभूतेषु क्रमेणोत्पन्नाः । वाक्पाणिपादपायूप-
 स्थास्थानि कर्मेन्द्रियाणि । तेषां क्रमेण वचनादानगमनविसर्गानन्दाश्चेते

विषयाः पृथिव्यादिमहाभूतेषु क्रमेणोत्पन्नाः । मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तः-
 करणचतुष्टयम् । तेषां क्रमेण संकल्पविकल्पाध्यवसायाभिमानावधारणास्वरूपा-
 श्रैते विषयाः । मनःस्थानं गलान्तं बुद्धेर्वदनमहंकारस्य हृदयं चित्तस्य
 नाभिरिति । अस्थिचर्मनाडीरोममांसाश्चेति पृथिव्यंशाः । मूत्रश्लेष्मरक्तशुक्र-
 स्वेदा अवंशाः । भ्रूतृष्णालस्यमोहमैथुनान्यग्नेः । प्रचारणविलेखनस्थूलाद्यु-
 न्मेषनिमेषादि वायोः । कामक्रोधलोभमोहभयान्याकाशस्य । शब्दस्पर्शरूप-
 रसगन्धाः पृथिवीगुणाः । शब्दस्पर्शरूपरसाश्चापां गुणाः । शब्दस्पर्शरूपाण्य-
 म्निगुणाः । शब्दस्पर्शाविति वायुगुणौ । शब्द एक आकाशस्य । सात्त्विकरा-
 जसतामसलक्षणानि त्रयो गुणाः ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ।
 अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं संतोष आर्जवम् ॥ १ ॥ अमानित्वमदम्भित्वमा-
 स्तिकत्वमहिंसा इति । एते सर्वे गुणा ज्ञेयाः सात्त्विकस्य विशेषतः ॥ २ ॥ अहं
 कर्ताऽस्म्यहं भोक्ताऽस्म्यहं वक्ताऽभिमानवान् । एते गुणा राजसस्य प्रोच्यन्ते
 ब्रह्मवित्तमैः ॥ ३ ॥ निद्रालस्ये मोहरागौ मैथुनं चौर्यमेव च । एते गुणा-
 स्तामसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वं सात्त्विको मध्ये राजसोऽध-
 स्तामस इति । सत्यज्ञानं सात्त्विकम् । धर्मज्ञानं राजसम् । तिमिरान्धं ताम-
 समिति । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरुरीयमिति चतुर्विधा अवस्थाः । ज्ञानेन्द्रियकर्मे-
 न्द्रियान्तःकरणचतुष्टयं चतुर्दशकरणयुक्तं जाग्रत् । अन्तःकरणचतुष्टयैरेव
 संयुक्तः स्वप्नः । चित्तैककरणा सुषुप्तिः । केवलजीवयुक्तमेव तुरीयमिति ।
 उन्मीलितनिमीलितमध्यस्थजीवपरमात्मनोर्मध्ये जीवात्मा क्षेत्रज्ञ इति
 विज्ञायते । बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया । शरीरं सप्तदशभिः सुसुक्ष्मं
 लिङ्गमुच्यते ॥ ५ ॥ मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाम्रिजलानि भूः । एताः प्रकृ-
 तयस्त्वष्टौ विकाराः षोडशापरे ॥ ६ ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैव तु
 पञ्चमम् । पायूपस्थौ करौ पादौ वाक्चैव दशमी मता ॥ ७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च
 रूपं च रसो गन्धस्तथैव च । त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्रकृतानि तु ॥ ८ ॥
 चतुर्विंशतिरव्यक्तं प्रधानं पुरुषः परः ॥ ९ ॥ इत्युपनिषत् ॥ ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति शरीरकोपनिषत्समाप्ता ॥ ६५ ॥

योगशिखोपनिषद् ॥ ६६ ॥

योगज्ञाने यत्पदासिसाधनत्वेन विश्रुते ।

तत्रैपदं ब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ स इ नाववत्विति शान्तिः ॥

सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः । तेषां मुक्तिः कथं देव कृपया वद शंकर ॥ १ ॥ सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् । जन्ममृत्यु-जराव्याधिनाशनं सुखदं वद ॥ २ ॥ इति हिरण्यगर्भः पप्रच्छ स होवाच महे-श्वरः । नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम् ॥ ३ ॥ सिद्धिमार्गेण लभते नान्यथा पद्मसंभव । पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥ ४ ॥ स्वात्मप्रकाशरूपं तत्किं शास्त्रेण प्रकाशयते । निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ॥ ५ ॥ तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् । परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम् ॥ ६ ॥ तत्त्वातीतं महादेव प्रसादात्कथयेश्वर । सर्व-भावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ॥ ७ ॥ वायुवत्स्फुरितं स्वस्मिन्तत्राहंकृति-रुत्थिता । पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम् ॥ ८ ॥ सुखदुःखैः समायुक्तं जीवभावनया कुरु । तेन जीवामिधा प्रोक्ता विशुद्धे परमात्मनि ॥ ९ ॥ कामक्रोधभयं चापि मोहलोभमथो रजः । जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा ॥ १० ॥ तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विपादो हर्ष एव च । एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः स जीवः शिव उच्यते ॥ ११ ॥ तस्माद्दोषविनाशार्थं-मुपायं कथयामि ते । ज्ञानं केचिद्वदन्त्यत्र केवलं तन्न सिद्ध्ये ॥ १२ ॥ योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः । योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् । ज्ञानस्व-रूपमेवादौ ज्ञेयं ज्ञानैकसाधनम् ॥ १४ ॥ अज्ञानं कीदृशं चेति प्रविचार्य मुमुक्षुणा । ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ॥ १५ ॥ असौ दोषैर्वि-निर्मुक्तः कामक्रोधभयादिभिः । सर्वदोषैर्वृतो जीवः कथं ज्ञानेन मुच्यते ॥ १६ ॥ स्वात्मरूपं यथा ज्ञानं पूर्णं तद्व्यापकं तथा । कामक्रोधादिदोषाणां स्वरूपाद्यासि भिन्नता ॥ १७ ॥ पश्चात्तस्य विधिः किंतु निषेधोऽपि कथं भवेत् । विवेकी सर्वदा मुक्तः संसारभ्रमवर्जितः ॥ १८ ॥ परिपूर्णस्वरूपं

तत्सत्यं कमलसंभव । सकलं निष्कलं चैव पूर्णत्वाच्च तदेव हि ॥ १९ ॥
 कलिना स्फूर्तिरूपेण संसारभ्रमतां गतम् । निष्कलं निर्मलं साक्षात्सकलं
 गगनोपमम् ॥ २० ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितम् । एतद्रूपं
 समायातः स कथं मोहसागरे ॥ २१ ॥ निमज्जति महाबाहो त्यक्त्वा विद्यां
 पुनः पुनः । सुखदुःखादिमोहेषु यथा संसारिणां स्थितिः ॥ २२ ॥ तथा-
 ज्ञानी यदातिष्ठेद्वासनावासितस्तदा । तयोर्नास्ति विशेषोऽत्र समा संसार-
 भावना ॥ २३ ॥ ज्ञानं चेदीदृशं ज्ञातमज्ञानं कीदृशं पुनः । ज्ञाननिष्ठो विर-
 क्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ २४ ॥ विना देहेन योगेन न मोक्षं लभते
 विधे । अपक्वाः परिपक्वाश्च देहिनो द्विविधाः स्मृताः ॥ २५ ॥ अपक्वा योग-
 हीनास्तु पक्वा योगेन देहिनः । सर्वो योगाग्निना देहो ह्यजडः शोकवर्जितः
 ॥ २६ ॥ जडस्तु पार्थिवो ज्ञेयो ह्यपक्वो दुःखदो भवेत् । ध्यानस्थोऽसौ तथा-
 प्येवमिन्द्रियैर्विशो भवेत् ॥ २७ ॥ तानि गाढं नियम्यापि तथाप्यन्यैः
 प्रबाध्यते । शीतोष्णसुखदुःखाद्यैर्व्याधिभिर्मानसैस्तथा ॥ २८ ॥ अन्यैर्नाना-
 विधैर्जीवैः शस्त्राभिजलमारुतैः । शरीरं पीड्यते तैस्तैश्चित्तं संक्षुभ्यते ततः
 ॥ २९ ॥ तथा प्राणविपत्तौ तु क्षोभमायाति मारुतः । ततो दुःखशतैर्व्याप्तं
 चित्तं क्षुब्धं भवेन्नृणाम् ॥ ३० ॥ देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत् ।
 तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम् ॥ ३१ ॥ देहान्ते किं भवेज्जन्म तन्न
 जानन्ति मानवाः । तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जीवस्य केवलं श्रमः ॥ ३२ ॥
 पिपीलिका यथा लग्ना देहे ध्यानाद्विमुच्यते । असौ किं वृश्चिकैर्दष्टो देहान्ते
 वा कथं सुखी ॥ ३३ ॥ तस्मान्मूढा न जानन्ति मिथ्यातर्केण वेष्टिताः ।
 अहंकृतिर्यदा यस्य नष्टा भवति तस्य वै ॥ ३४ ॥ देहस्त्वपि भवेन्नष्टो व्याध-
 यश्चास्य किं पुनः । जलाग्निशस्त्रखातादिबाधा कस्य भविष्यति ॥ ३५ ॥ यदा
 यदा परिक्षीणा पुष्टा चाहंकृतिर्भवेत् । तमनेनास्य नश्यन्ति प्रवर्तन्ते रूगा-
 दयः ॥ ३६ ॥ कारणेन विना कार्यं न कदाचन विद्यते । अहंकारं विना तद्व-
 देहे दुःखं कथं भवेत् ॥ ३७ ॥ शरीरेण जिताः सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम् ।
 तत्कथं कुरुते तेषां सुखदुःखादिकं फलम् ॥ ३८ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः
 कामक्रोधादिकं जितम् । तेनैव विजितं सर्वं नासौ केनापि बाध्यते ॥ ३९ ॥
 महाभूतानि तत्त्वानि संहतानि क्रमेण च । सप्तधातुमयो देहो दग्धो योगा-

शिना शनैः ॥ ४० ॥ देवैरपि न लक्ष्येत योगिदेहो महाबलः । मेदबन्ध-
 विनिर्मुक्तो नानाशक्तिधरः परः ॥ ४१ ॥ यथाऽऽकाशस्तथा देह आकाशादपि
 निर्मलः । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं दृश्यः स्थूलात्स्थूलो जडाजडः ॥ ४२ ॥ इच्छा-
 रूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्वजरामरः । क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र-
 कुत्रचित् ॥ ४३ ॥ अचिन्त्यशक्तिमान्योगी नानारूपाणि धारयेत् । संहरेच्च
 पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः ॥ ४४ ॥ नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग-
 बलेन तु । हृतेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः ॥ ४५ ॥ मरणं यत्र सर्वेषां
 तत्रासौ परिजीवति । यत्र जीवन्ति मृदास्तु तत्रासौ मृत एव वै ॥ ४६ ॥
 कर्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते । जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्व-
 दोषविवर्जितः ॥ ४७ ॥ विरक्ता ज्ञानिनश्चान्ये देहेन विजिताः सदा । ते
 कथं योगिभिस्तुल्या मांसपिण्डाः कुदेहिनः ॥ ४८ ॥ देहान्ते ज्ञानिभिः
 पुण्यात्पापाच्च फलमाप्यते । ईदृशं तु भवेत्तत्तद्वृत्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत् ॥ ४९ ॥
 पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेन सह सङ्गतिम् । ततः सिद्धस्य कृपया योगी
 भवति नान्यथा ॥ ५० ॥ ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम् ।
 योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे ॥ ५१ ॥ ज्ञानेनैव विना योगो न
 सिध्यति कदाचन । जन्मान्तरैश्च बहुभिर्योगो ज्ञानेन लभ्यते ॥ ५२ ॥ ज्ञानं
 तु जन्मनैकेन योगादेव प्रजायते । तस्माद्योगात्परतरो नास्ति मार्गस्तु
 मोक्षदः ॥ ५३ ॥ प्रविचार्य चिरं ज्ञानं मुक्तोऽहंमिति मन्यते । किमसौ मन-
 नादेव मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ५४ ॥ पश्चाज्जन्तन्तरशतैर्योगादेव विमु-
 च्यते । न तथा भवतो योगाज्जन्ममृत्यु पुनःपुनः ॥ ५५ ॥ प्राणापानसमा-
 योगाच्चन्द्रसूर्यैकता भवेत् । ससंघातुमयं देहमग्निना रजयेद्भवम् ॥ ५६ ॥
 व्याधयस्तस्य नश्यन्ति छेदखातादिकास्तथा । तदासौ परमाकाशरूपो देहव-
 तिष्ठति ॥ ५७ ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन मरणं नास्ति तस्य वै । देहीव दृश्यते
 लोके दग्धकर्पूरवत्स्वयम् ॥ ५८ ॥ चित्तं प्राणेन संबद्धं सर्वजीवेषु संस्थि-
 तम् । रज्ज्वा यद्वत्सुसंबद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः ॥ ५९ ॥ नानाविधैर्विचचारैस्तु
 न बाध्यं जायते मनः । तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा ॥ ६० ॥
 तर्कैर्जल्पैः शास्त्रजालैर्युक्तिभिर्मन्त्रमेषजैः । न वशो जायते प्राणः सिद्धोपायं
 विना विधे ॥ ६१ ॥ उपायं तमविज्ञाय योगमार्गे प्रवर्तते । खण्डज्ञानेन

सहसा जायते क्लेशवत्तरः ॥ ६२ ॥ यो जित्वा पवनं मोहाद्योगमिच्छति
 योगिनाम् । सोऽपक्वं कुम्भमारुह्य सागरं तर्तुमिच्छति ॥ ६३ ॥ यस्य प्राणो
 विलीनोऽन्तः साधके जीविते सति । पिण्डो न पतितस्तस्य चित्तं दोषैः
 प्रबाधते ॥ ६४ ॥ शुद्धे चेतसि तस्यैव स्वात्मज्ञानं प्रकाशते । तस्माज्ज्ञानं
 अवेद्योगाज्जन्मनैकेन पद्मज ॥ ६५ ॥ तस्माद्योगं तमेवादौ साधको नित्यम-
 भ्यसेत् । मुमुक्षुभिः प्राणजयः कर्तव्यो मोक्षहेतवे ॥ ६६ ॥ योगात्परतरं
 गुण्यं योगात्परतरं शिवम् । योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ॥ ६७ ॥
 योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा । सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपर-
 मात्मनोः ॥ ६८ ॥ एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते । अथ योग-
 शिखां वक्ष्ये सर्वज्ञानेषु चोत्तमा ॥ ६९ ॥ यदाबुध्यायते मन्त्रं गात्र-
 कम्पोऽथ जायते । आसनं पद्मकं बद्ध्वा यच्चान्यदपि रोचते ॥ ७० ॥ नासाग्रे
 ऽष्टिमारोप्य हस्तपादौ च संयतौ । मनः सर्वत्र संगृह्य ॐकारं तत्र चिन्त-
 येत् ॥ ७१ ॥ ध्यायते सततं प्राज्ञो हृत्कृत्वा परमेश्वरम् । एकस्तस्मै नवद्वारे
 त्रिस्थूणे पञ्चदेवते ॥ ७२ ॥ ईदृशे तु शरीरे वा मतिमान्नोपलक्षयेत् । आदि-
 त्यमण्डलाकारं रश्मिज्वालासमाकुलम् ॥ ७३ ॥ तस्य मध्यगतं वह्निं प्रज्वले-
 दीपवर्तिवत् । दीपशिखा तु या मात्रा सा मात्रा परमेश्वरे ॥ ७४ ॥
 भिन्दन्ति योगिनः सूर्यं योगाभ्यासेन वै पुनः । द्वितीयं सुपुञ्जाद्वारं परेशुञ्जं
 समर्पितम् ॥ ७५ ॥ कपालसंपुटं पीत्वा ततः पश्यति तत्पदम् । अथ न
 ध्यायते जन्तुरालस्याच्च प्रमादतः ॥ ७६ ॥ यदि त्रिकालमागच्छेत्स गच्छेत्पुण्य-
 संपदम् । पुण्यमेतत्समासाद्य संक्षिप्य कथितं मया ॥ ७७ ॥ लब्धयोगोऽथ
 बुध्येत प्रसन्नं परमेश्वरम् । जन्मान्तरसहस्रेषु यदा क्षीणं तु किल्बिषम् ॥ ७८ ॥
 तदा पश्यति योगेन संसारोच्छेदनं महत् । अधुना संप्रवक्ष्यामि योगा-
 भ्यासस्य लक्षणम् ॥ ७९ ॥ मरुज्जयो यस्य सिद्धः सेवयेत्तं गुरुं सदा । गुरुवस्त्र-
 प्रसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः ॥ ८० ॥ वितस्तिप्रमितं दैर्घ्यं चतुरङ्गुलविस्तृ-
 तम् । मृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥ ८१ ॥ निरुध्य मारुतं गाढं
 शक्तिचालनयुक्तितः । अष्टधा कुण्डलीभूतामृज्वीं कुर्यात् कुण्डलीम् ॥ ८२ ॥
 पायोरकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्तदा । मृत्युचक्रगतस्यापि तस्य मृत्युमर्थं
 ऽतः ॥ ८३ ॥ एतदेव परं गुह्यं कथितं तु मया तव । अत्रासनगतो नित्य-

मूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ॥ ८४ ॥ वायुना ज्वलितो वह्निः कुण्डलीमनिशं दहेत् ।
 संतप्ता सासिना जीवशक्तिश्चैलोक्यमोहिनी ॥ ८५ ॥ प्रविशेच्चन्द्रतुण्डे तु
 सुषुम्नावदनान्तरे । वायुना वह्निना सार्धं ब्रह्मग्रन्थिं भिनत्ति सा ॥ ८६ ॥
 विष्णुग्रन्थिं ततो भित्त्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति । ततस्तु कुम्भकैर्गाढं पूरयित्वा
 पुनः पुनः ॥ ८७ ॥ अथाभ्यसेत्सूर्यभेदमुज्ज्वलीं चापि शीतलीम् । भस्त्रां
 च सहितो नाम स्याच्चतुष्टयकुम्भकः ॥ ८८ ॥ बन्धत्रयेण संयुक्तः केवल-
 प्रासिकारकः । अथास्य लक्षणं सम्यक्कथयामि समासतः ॥ ८९ ॥ एका-
 किना समुपगम्य विविक्तदेशं प्राणादिरूपममृतं परमार्थतत्त्वम् । लघ्वाशिना
 द्युतिमता परिभावितव्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ९० ॥ सूर्यनाड्या
 समाकृष्य वायुमभ्यासयोगिना । विधिवत्कुम्भकं कृत्वा रेचयेच्छीतरश्मिना
 ॥ ९१ ॥ उदरे बहुरोगघ्नं किमिदोषं निहन्ति च । मुहुर्मुहुरिदं कार्यं
 सूर्यभेदमुदाहृतम् ॥ ९२ ॥ नाडीभ्यां वायुमाकृष्य कुण्डल्याः पार्श्वयोः
 क्षिपेत् । धारयेदुदरे पश्चाद्रेचयेदिदं सुधीः ॥ ९३ ॥ कण्ठे कफादि-
 दोषघ्नं शरीराग्निविवर्धनम् । नाडीजलापहं धातुगतदोषविनाशनम् ॥ ९४ ॥
 गच्छतस्तिष्ठतः कार्यमुज्ज्वल्याख्यं तु कुम्भकम् । मुखेन वायुं संगृह्य प्राण-
 रन्ध्रेण रेचयेत् ॥ ९५ ॥ शीतलीकरणं चेदं हन्ति पित्तं क्षुधां तृषाम् ।
 स्वनयोरथ भस्त्रेण लोहकारस्य वेगतः ॥ ९६ ॥ रेचयेत्पूरयेद्वायुमाश्रमं
 देहगं धिया । यथा श्रमो भवेद्देहे तथा सूर्येण पूरयेत् ॥ ९७ ॥ कण्ठसंकोचनं
 कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् । वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥ ९८ ॥
 कुण्डलीबोधकं वक्त्रदोषघ्नं शुभदं सुखम् । ब्रह्मनाडीमुखान्तःस्थकफाद्यर्गल-
 नाशनम् ॥ ९९ ॥ सम्यग्बन्धसमुद्भूतं ग्रन्थित्रयविभेदकम् । विशेषेणैव
 कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ १०० ॥ बन्धत्रयमभेदातीं प्रवक्ष्यामि
 यथाक्रमम् । नित्यं कृतेन तेनासौ वायोर्यमवाप्नुयात् ॥ १०१ ॥ चतु-
 र्नामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते । बन्धत्रयमिदं कार्यं वक्ष्यमाणं मया
 हि तत् ॥ १०२ ॥ प्रथमो मूलबन्धस्तु द्वितीयोऽङ्गीयनाभिधः । जालन्धर-
 स्तृतीयस्तु लक्षणं कथयाम्यहम् ॥ १०३ ॥ गुदं पाण्ड्यां तु संपीड्य
 पायुमाकुञ्चयेद्वलात् । वारंवारं यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः ॥ १०४ ॥
 प्राणापानौ नादविन्दू मूलबन्धेन चैकताम् । गत्वा योगस्य संसिद्धिं गच्छतो

नात्र संशयः ॥ १०५ ॥ कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तुडियानकः ।
 बन्धो येन सुपुन्नायां प्राणस्तूड्यते यतः ॥ १०६ ॥ तस्मादुड्ययानाख्योऽयं
 योगिभिः समुदाहृतः । उड्ययानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा ॥ १०७ ॥
 अभ्यसेत्तदतन्द्रस्तु वृद्धोऽपि तरुणो भवेत् । नामेरूध्वमधश्चापि तौणं
 कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १०८ ॥ षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः । पूर-
 कान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः ॥ १०९ ॥ कण्ठसंकोचरूपोऽसौ
 वायुमार्गनिरोधकः । कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद्दृढमिच्छया ॥ ११० ॥
 बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताप्यायकारकः । अधस्तात्कुञ्चनेनाशु कण्ठसंको-
 चने कृते ॥ १११ ॥ मध्ये पश्चिमतानेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः । वज्रा-
 संस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम् ॥ ११२ ॥ कुर्यादनन्तरं भस्मीं
 कुण्डलीमाशु बोधयेत् । भिद्यन्ते ग्रन्थयो वंशे तसलोहशलाकया ॥ ११३ ॥
 तथैव पृष्ठवंशः स्याद्ग्रन्थिभेदस्तु वायुना । पिपीलिकायां लग्नायां कण्डूस्तत्र
 प्रवर्तते ॥ ११४ ॥ सुपुन्नायां तथाऽभ्यासात्सततं वायुना भवेत् ।
 रुद्रग्रन्थि ततो भित्त्वा ततो याति शिवात्मकम् ॥ ११५ ॥ चन्द्रसूर्यौ
 समौ कृत्वा तयोर्योगः प्रवर्तते । गुणत्रयमतीतं स्याद्ग्रन्थित्रयवि-
 भेदनात् ॥ ११६ ॥ शिवशक्तिसमायोगे जायते परमा स्थितिः । यथा
 करी करेणैव पानीयं प्रपिबेत्सदा ॥ ११७ ॥ सुपुन्नावज्रनालेन पवमानं
 असेत्तथा । वज्रदण्डसमुद्भूता मणयश्चैकविंशतिः ॥ ११८ ॥ सुपुन्नायां
 स्थिताः सर्वे सूत्रे मणिगणा इव । मोक्षमार्गे प्रतिष्ठानात्सुपुन्ना विश्वरूपिणी
 ॥ ११९ ॥ यथैव निश्चितः कालश्चन्द्रसूर्यनिबन्धनात् । आपूर्य कुम्भितो
 वायुर्वहिर्नो याति साधके ॥ १२० ॥ पुनः पुनस्तद्देव पश्चिमद्वारलक्षणम् ।
 पूरितस्तु स तद्द्वारैरीषत्कुम्भकतां गतः ॥ १२१ ॥ प्रविशेत्सर्वगात्रेषु वायुः
 पश्चिममार्गतः । रेचितः क्षीणतां याति पूरितः पोषयेत्ततः ॥ १२२ ॥ यत्रैव
 जातं सकलेवरं मनस्तत्रैव लीनं कुरुते स योगात् । स एव मुक्तो निरहंकृतिः
 सुखी मूढा न जायन्ति हि पिण्डपातिनः ॥ १२३ ॥ चित्तं विनष्टं यदि
 भासितं स्यात्तत्र प्रतीतो मरुतोऽपि नाशः । न चेद्यदि स्यान्न तु तस्य शास्त्रं
 नात्मप्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्षः ॥ १२४ ॥ जलौका रुधिरं यद्ब्रह्मलादाकर्षति
 स्वयम् । ब्रह्मनाडी तथा धातुन्मन्तताभ्यासयोगतः ॥ १२५ ॥ अनेनाभ्यास-

योगेन नित्यमासनबन्धतः । चित्तं विलीनतामेति विन्दुर्नो यात्यधस्तथा ॥ १२६ ॥ रेचकं पूरकं मुक्त्वा वायुना स्थीयते स्थिरम् । नाना नादाः प्रवर्तन्ते संखवेच्चन्द्रमण्डलम् ॥ १२७ ॥ नश्यन्ति क्षुत्पिपासाद्याः सर्वदोषास्ततस्तदा । स्वरूपे सच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोति केवलम् ॥ १२८ ॥ कथितं तु तव ग्रीत्या ह्येतदभ्यासलक्षणम् । मन्त्रो लघो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात् ॥ १२९ ॥ एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते । हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ १३० ॥ हंसहंसेति मन्त्रोऽयं सर्वैर्जीवैश्च जप्यते । गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरितो भवेज्जपः ॥ १३१ ॥ सोऽहंसोऽहमिति प्रोक्तो मन्त्रयोगः स उच्यते । प्रतीतिर्मन्त्रयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि ॥ १३२ ॥ हकारेण तु सूर्यः स्यात्सकारेणेन्दुरुच्यते । सूर्याच्चन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते ॥ १३३ ॥ हठेन ग्रस्यते जाड्यं सर्वदोषसमुद्भवम् । क्षेत्रज्ञः परमात्मा च तयोरैक्यं यदा भवेत् ॥ १३४ ॥ तदैक्ये साधिते ब्रह्मंश्चित्तं याति विलीनताम् । पवनः सौर्यमायाति लययोगोदये सति ॥ १३५ ॥ लयात्संप्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दं परं पदम् । योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपावन्धूकसंतिभम् ॥ १३६ ॥ रजो वसति जन्तूनां देवीतत्त्वं सैमावृतम् । रजसो रेतसो योगाद्वाजयोग इति स्मृतः ॥ १३७ ॥ अणिमादिपदं प्राप्य राजते राजयोगतः । प्राणापानसमायोगो ज्ञेयं योगचतुष्टयम् ॥ १३८ ॥ संक्षेपात्कथितं ब्रह्मज्ञान्यथा शिवभाषितम् । क्रमेण प्राप्यते प्राप्यमभ्यासादेव नान्यथा ॥ १३९ ॥ एकेनैव शरीरेण योगाभ्यासाच्छनैःशनैः । चिरात्संप्राप्यते मुक्तिर्मर्कटक्रम एव सः ॥ १४० ॥ योगसिद्धिं विना देहः प्रमादाद्यदि नश्यति । पूर्ववासनया युक्तः शरीरं चान्यदाप्नुयात् ॥ १४१ ॥ ततः पुण्यवशात्सिद्धो गुरुणा सह संगतः । पश्चिमद्वारमार्गेण जायते त्वरितं फलम् ॥ १४२ ॥ पूर्वजन्म कृताभ्यासात्स्त्वरं फलमश्नुते । एतदेव हि विज्ञेयं तत्काकमतमुच्यते ॥ १४३ ॥ नास्ति काकमतादन्यदभ्यासाख्यमतः परम् । तेनैव प्राप्यते मुक्तिर्नान्यथा शिवभाषितम् ॥ १४४ ॥ हठयोगक्रमात्काष्ठासहजीवल्यादिकम् । प्राकृतं मोक्षमार्गं स्यात्प्रसिद्धं पश्चिमं विना ॥ १४५ ॥ आदौ रोगाः प्रणश्यन्ति पश्चाज्जाड्यं शरीरजम् । ततः समरसो भूत्वा चन्द्रो वर्षत्यनारतम् ॥ १४६ ॥ धातंश्च संग्रहेद्वह्निः पवनेन समन्ततः । नाना नादाः प्रवर्तन्ते मार्दवं स्यात्क-

छेत्रे ॥ १४७ ॥ जित्वा वृष्ट्यादिकं जाद्व्यं खेचरः स भवेन्नरः । सर्व-
 ज्ञोऽसौ भवेत्कामरूपः पवनवेगवान् ॥ १४८ ॥ कीडते त्रिषु लोकेषु जायन्ते
 सिद्धयोऽखिलाः । कर्पूरे लीयमाने किं काठिन्यं तत्र विद्यते ॥ १४९ ॥
 अहंकारक्षये तद्देहे कठिनता कुतः । सर्वकर्ता च योगीन्द्रः स्वतन्त्रोऽनन्त-
 रूपवान् ॥ १५० ॥ जीवन्मुक्तो महायोगी जायते नात्र संशयः । द्विधिधाः
 सिद्धयो लोके कल्पिताऽकल्पितास्तथा ॥ १५१ ॥ रसौषधिक्रियाजालमन्त्रा-
 म्यासादिसाधनात् । सिध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः
 ॥ १५२ ॥ अनित्या अल्पवीर्यास्ताः सिद्धयः साधनोद्भवाः । साधनेन विना-
 भ्येवं जायन्ते स्वत एव हि ॥ १५३ ॥ स्वात्मयोगैकनिष्ठेषु स्वातन्त्र्यादीश्वर-
 प्रियाः । प्रभूताः सिद्धयो यास्ताः कल्पनारहिताः स्मृताः ॥ १५४ ॥ सिद्धा
 नित्या महावीर्या इच्छारूपाः स्वयोगजाः । चिरकालात्प्रजायन्ते वासनारहि-
 तेषु च ॥ १५५ ॥ तास्तु गोप्या महायोगात्परमात्मपदेऽव्यये । विना कार्यं
 सदा गुप्तं योगसिद्धस्य लक्षणम् ॥ १५६ ॥ यथाकाशं समुद्दिश्य गच्छद्भिः
 पथिकैः पथि । नाना तीर्थानि दृश्यन्ते नानामार्गास्तु सिद्धयः ॥ १५७ ॥
 स्वयमेव प्रजायन्ते लाभालाभविजर्जिते । योगमार्गे तैथैवेदं सिद्धिजालं प्रव-
 र्त्तते ॥ १५८ ॥ परीक्षकैः स्वर्णकारैर्हेम संप्रोच्यते यथा । सिद्धिर्भिलक्ष्येत्सिद्धं
 जीवन्मुक्तं तथैव च ॥ १५९ ॥ अलौकिकगुणस्तस्य कदाचिद्दृश्यते ध्रुवम् ।
 सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्धं तु लक्षयेत् ॥ १६० ॥ अजरामरपिण्डो यो
 जीवन्मुक्तः स एव हि । पशुकुक्कुटकीटाद्या सृतिं संप्राप्नुवन्ति वै ॥ १६१ ॥
 तेषां किं पिण्डपातेन मुक्तिर्भवति पद्मज । न बहिः प्राण आयाति पिण्डस्य
 पतनं कुतः ॥ १६२ ॥ पिण्डपातेन या मुक्तिः सा मुक्तिर्न तु हन्यते । देहे
 ब्रह्मत्वमायाते जलानां सैन्धवं यथा ॥ १६३ ॥ अनन्यतां यदा याति तदा
 मुक्तः स उच्यते । विमलानि शरीराणि इन्द्रियाणि तथैव च ॥ १६४ ॥ ब्रह्म
 देहत्वमापन्नं वारि बुद्बुदतामिव । दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम्
 ॥ १६५ ॥ दशभिर्वायुभिर्व्यासं दशेन्द्रियपरिच्छदम् । षडाधारापवरकं षड-
 न्वयमहावनम् ॥ १६६ ॥ चतुःपीठसमाकीर्णं चतुराश्यायदीपकम् । बिन्दु-
 नादमहालिङ्गं शिवशक्तिलिकेतनम् ॥ १६७ ॥ देहं शिवाल्यं प्रोक्तं सिद्धिदं
 सर्वदेहिनाम् । गदमेढ्रान्तरालस्थं मलाधारं त्रिकोणकम् ॥ १६८ ॥ शिवस्य

जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते । यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता ॥ १६९ ॥ यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्ब्रह्मिः प्रवर्तते । यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मात्कादः प्रवर्तते ॥ १७० ॥ यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः । तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् ॥ १७१ ॥ स्वाधिष्ठानाख्यं चक्रं लिङ्गमूले बडस्रके । नाभिदेशे स्थितं चक्रं दशारं मणिपूरकम् ॥ १७२ ॥ द्वादशारं महाचक्रं हृदये चाप्यनाहतम् । तदेतत्पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमलसंभव ॥ १७३ ॥ कण्ठकूपे विशुद्धाख्यं यच्चक्रं षोडशाक्षकम् । पीठं जालन्धरं नाम तिष्ठत्यत्र सुरेश्वरः ॥ १७४ ॥ आज्ञा नाम भ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम् । उज्ज्वानाख्यं महापीठमुपरिष्ठात्प्रतिष्ठितम् ॥ १७५ ॥ चतुरस्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता । अर्धचन्द्राकृतिं चलं विष्णुस्तस्याधिदेवता ॥ १७६ ॥ त्रिकोणमण्डलं बह्वी रुद्रस्तस्याधिदेवता । वायोर्विन्दं तु पद्मकोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता ॥ १७७ ॥ आकाशमण्डलं वृत्तं देवताऽस्य सदाशिवः । नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये अनसो मण्डलं विदुः ॥ १७८ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुनर्योगस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शंकर । यस्य विज्ञानमात्रेण खेचरी-
लमतां व्रजेत् ॥ १ ॥ शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि गोपनीयं प्रयत्नतः । द्वादशाब्दं
तु शुश्रूषां यः कुर्यादप्रमादतः ॥ २ ॥ तस्मै वाच्यं यथातथ्यं दान्ताय ब्रह्म-
चारिणे । पाण्डित्यादर्थलोभाद्वा प्रमादाद्वा प्रयच्छति ॥ ३ ॥ तेनाधीतं श्रुतं
तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । मूलमन्त्रं विजानाति यो विद्वान्गुरुदर्शितम् ॥ ४ ॥
शिवशक्तिमयं मन्त्रं मूलाधारात्समुत्थितम् । तस्य मन्त्रस्य वै ब्रह्मन्छ्रोता वक्ता
च दुर्लभः ॥ ५ ॥ एतत्पीठमिति प्रोक्तं नादलिङ्गं चिदात्मकम् । तस्य विज्ञान-
मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेज्जनः ॥ ६ ॥ अणिमादिकमैश्वर्यमचिरादेव जायते ।
मननात्प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् ॥ ७ ॥ मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन्मदधि-
ष्ठानतोऽपि वा । मूलत्वात्सर्वमन्त्राणां मूलाधारसमुद्भवात् ॥ ८ ॥ मूलस्वरू-
पलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः । सूक्ष्मत्वात्कारणत्वाच्च लयनाद्ब्रह्मनादपि
॥ ९ ॥ लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते । संनिधानात्समस्तेषु जन्तु-
ष्वपि च संततम् ॥ १० ॥ सूचकत्वाच्च रूपस्य सूत्रमित्यभिधीयते । महामाया
महालक्ष्मीर्महादेवी सरस्वती ॥ ११ ॥ अघातशक्तिर्यत्रा यथा विश्वं प्रवर्तते ।

सूक्ष्माभा बिन्दुरूपेण पीठरूपेण वर्तते ॥ १२ ॥ बिन्दुपीठं विनिर्भिद्य नाद-
लिङ्गमुपस्थितम् । प्राणेनोच्चार्यते ब्रह्मन्पण्मुखीकरणेन च ॥ १३ ॥ गुरूपदेश-
मार्गेण सहसैव प्रकाशते । स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः
॥ १४ ॥ पञ्चब्रह्ममयं रूपं स्थूलं वैराजमुच्यते । हिरण्यगर्भं सूक्ष्मं तु नादं
बीजत्रयात्मकम् ॥ १५ ॥ परं ब्रह्म परं सत्यं सच्चिदानन्दलक्षणम् । अप्रमेय-
मनिर्देश्यमवाह्यनसगोचरम् ॥ १६ ॥ शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निर-
ञ्जनम् । अनन्तमपरिच्छेद्यमनूपममनामयम् ॥ १७ ॥ आत्ममन्त्रसदाभ्यासा-
त्परतत्त्वं प्रकाशते । तदभिभ्यक्तिचिह्नानि सिद्धिद्वाराणि मे शृणु ॥ १८ ॥
दीपज्वालेन्दुखद्योतविद्युन्नक्षत्रभास्वराः । दृश्यन्ते सूक्ष्मरूपेण सदा युक्तस्य
योगिनः ॥ १९ ॥ अणिमादिकमैश्वर्यमचिरात्तस्य जायते । नास्ति नादात्परो
मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः ॥ २० ॥ नानुसंधेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं
सुखम् । गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा सिद्धिमिच्छता । मन्त्रक एतद्विज्ञाय कृत-
कृत्यः सुखी भवेत् ॥ २१ ॥ यस्य देवे परा अक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २२ ॥ इति ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यज्ञमस्यं चिदाख्यातं यत्सिद्धीनां च कारणम् । येन विज्ञातमात्रेण जन्म-
बन्धात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते । मूलाधार-
गता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी ॥ २ ॥ तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजा-
दिवाङ्मुरः । तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः ॥ ३ ॥ हृदये
व्यज्यते घोषो गर्जत्पर्जन्यसंनिभः । तत्र स्थिता सुरेशान मध्यमेत्यभिधीयते
॥ ४ ॥ प्राणेन च स्वराख्येन प्रथिता वैखरी पुनः । शाखापल्लवरूपेण ताल्वा-
दिस्थानघट्टनात् ॥ ५ ॥ अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत् । अक्ष-
रेभ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्यसंभवः ॥ ६ ॥ सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा
वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः । पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि ॥ ७ ॥
सप्त स्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भवाः । एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहा-
श्रया ॥ ८ ॥ वायुना वह्नियुक्तेन प्रेर्यमाणा शनैः शनैः । तद्विवर्तपदैर्वाक्यै-
रित्येवं वर्तते सदा ॥ ९ ॥ य इमां वैखरीं शक्तिं योगी स्वात्मनि पश्यति ।
स वाक्सिद्धिमवाप्नोति सरम्बन्याः प्रसादतः ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानां

स्वयं कर्ता भविष्यति । यत्र बिन्दुश्च नादश्च सोमसूर्याग्निवायवः ॥ ११ ॥
 इन्द्रियाणि च सर्वाणि लयं गच्छन्ति सुव्रत । वायवो यत्र लीयन्ते मनो
 यत्र विलीयते ॥ १२ ॥ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
 यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचास्यते ॥ १३ ॥ यत्रोपरमते चित्तं
 निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ १४ ॥
 सुखमात्यन्तिकं यत्तद्वृद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् । एतत्क्षराक्षरातीतमनक्षरमिती-
 र्यते ॥ १५ ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि सूत्रात्माऽक्षर उच्यते । अक्षरं परमं
 ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥ १६ ॥ अलक्षणमलक्ष्यं तदप्रतर्क्यमनूपमम् ।
 अपारपारमच्छेद्यमचिन्त्यमतिनिर्मलम् ॥ १७ ॥ आधारं सर्वभूतानामनाधार-
 मनामयम् । अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम् ॥ १८ ॥ अस्थूलमनणु
 ह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् । अशब्दमस्पर्शरूपमचक्षुःश्रोत्रनामकम् ॥ १९ ॥
 सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वेषां हृदये स्थितम् । सुसंवेद्यं गुरुमतात्सुदुर्बोधमचेत-
 साम् ॥ २० ॥ निष्कलं निर्गुणं शान्तं निर्विकारं निराश्रयम् । निर्लेपकं निरा-
 यायं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ २१ ॥ ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्त्रमःपारे प्रति-
 ष्ठितम् । भावाभावविनिर्मुक्तं भावनामात्रगोचरम् ॥ २२ ॥ भक्तिगम्यं परं
 तत्त्वमन्तर्लीनेन चेतसा । भावनामात्रमेवात्र कारणं पदसंभव ॥ २३ ॥
 यथा देहान्तरप्राप्तेः कारणं भावना नृणाम् । विषयं ध्यायतः पुंसो विषये
 रमते मनः ॥ २४ ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मध्येवात्र विलीयते । सर्वज्ञत्वं
 परेशत्वं सर्वसंपूर्णशक्तिता । अनन्तशक्तिमत्त्वं च मदनुस्मरणाद्भवेत् ॥ २५ ॥ इति ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चैतन्यस्यैकरूपत्वाद्भेदो युक्तो न कर्हिचित् । जीवत्वं च तथा ज्ञेयं
 रज्ज्वां सर्पग्रहो यथा ॥ १ ॥ रज्ज्वज्जानात्क्षणेनैव यद्वद्भुङ्क्ष्वि सर्पिणी ।
 भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला ॥ २ ॥ उपादानं प्रपञ्चस्य
 ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरेत् ॥ ३ ॥
 व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात् । इति ज्ञाते परे तत्त्वे
 भेदस्यावसरः कुतः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः ।
 तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीति विचिन्तय ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मैव सर्वनामानि
 रूपाणि विविधानि च । कर्माण्यपि समग्राणि त्रिमूर्तीति विभावय ॥ ६ ॥

सुवर्णाजायमानस्य सुवर्णत्वं च ज्ञातव्यम् । ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च
 तथा भवेत् ॥ ७ ॥ स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः । यस्मिन्नस्ति
 विमूढात्मा अयं तस्यापि आपितम् ॥ ८ ॥ यदज्ञानान्नवेद्वैतमितर-
 त्तत्प्रपद्यति । आत्मत्वेन तदा सर्वं नेतरत्तन्न चाण्वयि ॥ ९ ॥ अजु-
 श्रूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन् । असङ्गो यथा स्वस उत्तरक्षण-
 बाधितः ॥ १० ॥ स्वप्ने जागरितं नास्ति जागरे स्वप्नता नहि । द्रव्यमेव
 लये नास्ति लयोऽपि ह्यनयोर्न च ॥ ११ ॥ नयमेव भवेन्मिथ्या गुण-
 त्रयविनिर्मितम् । अस्य द्वष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येष चिदात्मकः ॥ १२ ॥
 यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिः शुक्तौ हि रजतस्थितिः । तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं वीक्षमाणे
 विनश्यति ॥ १३ ॥ यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा । शुक्तौ
 हि रजतस्यातिर्जोवशब्दस्तथा परे ॥ १४ ॥ यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा
 नीरं मरुस्थले । पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि ॥ १५ ॥
 यथैव झूल्यो वेतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा । यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये
 जगत्स्थितिः ॥ १६ ॥ यथा तरङ्गकलोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम् । घटनाञ्चा यथा
 पृथ्वी पटनाञ्चा हि तन्तवः ॥ १७ ॥ जगन्नाञ्चा चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव
 केवलम् । यथा बन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्ति मरौ जलम् ॥ १८ ॥
 यथा नास्ति नभोवृक्षस्तथा नास्ति जगत्स्थितिः । गुह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका
 भाति वै बलात् ॥ १९ ॥ वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैवाभाति आसुरम् ।
 सदैवात्मा विशुद्धोऽस्मि ह्यशुद्धो भाति वै सदा ॥ २० ॥ यथैव द्विविधा
 रज्जुर्जालिनोऽज्ञानिनोऽतिशम् । यथैव मृन्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः
 ॥ २१ ॥ आत्मानात्मविवेकोऽयं मुधैव क्रियते बुधैः । सर्पत्वेन यथा
 रज्जु रजतत्वेन शुक्तिका ॥ २२ ॥ विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथा-
 ऽऽत्मता । घटत्वेन यथा पृथ्वी जलत्वेन मरीचिका ॥ २३ ॥ गृहत्वेन हि काष्ठानि
 खड्गत्वेनैव लोहता । तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ २४ ॥ इति ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पुनर्योगं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्मस्वरूपकम् । समाहितमना भूत्वा शृणु
 ब्रह्मन्यथाक्रमम् ॥ १ ॥ दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम् । दश-
 भिर्वायुभिर्ज्वांसं दशेन्द्रियपरिच्छदम् ॥ २ ॥ षडाधारावरकं गडन्वय-
 महावनम् । चतुःपीठसमाकीर्णं चतुराङ्गायदीपकम् ॥ ३ ॥ देन्दु-

जादमहालिङ्गविष्णुलक्ष्मीनिकेतनम् । देहं विष्णुबालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व-
 देहिनाम् ॥ ४ ॥ गुदमेढान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् । शिवस्य
 जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते ॥ ५ ॥ यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः
 प्रतिष्ठिता । यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते ॥ ६ ॥ यस्मादुत्पद्यते
 बिन्दुर्यस्माज्जादः प्रवर्तते । यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः ॥ ७ ॥
 तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् । स्वाधिष्ठानाह्वयं चक्रं लिङ्गमूले
 षडक्षकम् ॥ ८ ॥ नाभिदेशे स्थितं चक्रं दशाक्षं मणिपूरकम् । द्वादशारं
 महाचक्रं हृदये चाप्यनाहतम् ॥ ९ ॥ तदेतत्पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमल-
 संभव । कण्ठकूपे विष्णुदाख्यं यच्चक्रं षोडशाक्षकम् ॥ १० ॥ पीठं जाल-
 न्धरं नाम तिष्ठत्यत्र चतुर्मुख । आज्ञा नाम भ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम्
 ॥ ११ ॥ उड्यानाख्यं महापीठमुपरिष्ठात्प्रतिष्ठितम् । स्थानान्येतानि
 देहेऽस्मिन्लक्ष्मिरूपं प्रकाशते ॥ १२ ॥ चतुरस्रधरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधि-
 देवता । अर्धचन्द्राकृति जलं विष्णुस्तस्याधिदेवता ॥ १३ ॥ त्रिकोण-
 मण्डलं वह्नी रुद्रस्तस्याधिदेवता । वायोर्विम्बं तु पदकोणं संकर्पोऽत्राधिदेवता
 ॥ १४ ॥ आकाशमण्डलं वृत्तं श्रीमन्नारायणोऽत्राधिदेवता । नादरूपं
 भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ॥ १५ ॥ शांभवस्थानमेतत्ते वर्णितं
 पद्मसंभव । अतः परं प्रवक्ष्यामि नाडीचक्रस्य निर्णयम् ॥ १६ ॥ मूला-
 ध्वारत्रिकोणस्था सुषुम्ना द्वादशाङ्गुला । मूलार्धच्छिन्नवंशाभा ब्रह्मनाडीति
 सा स्मृता ॥ १७ ॥ इडा च पिङ्गला चैव तस्याः पार्श्वद्वये गते । विल-
 म्बिन्यामनुस्यूते नासिकान्तमुपागते ॥ १८ ॥ इडायां हेमरूपेण वायु-
 र्यामेन गच्छति । पिङ्गलायां तु सूर्यात्मा याति दक्षिणपार्श्वतः ॥ १९ ॥
 विलम्बिनीति या नाडी व्यक्ता नामौ प्रतिष्ठिता । तत्र नाड्यः समुत्पन्ना-
 स्तिर्यगूर्ध्वमधोमुखाः ॥ २० ॥ तन्नाभिचक्रमित्युक्तं कुक्कुटाण्डमिव स्थि-
 तम् । गान्धारी हस्तिजिह्वा च तस्मान्नेत्रद्वयं गते ॥ २१ ॥ पूषा चा-
 लम्बुषा चैव श्रोत्रद्वयमुपागते । शूरा नाम महानाडी तस्माद्भूमध्यमाश्रिता
 ॥ २२ ॥ विश्वोदरी तु या नाडी सा भुङ्क्तेऽन्नं चतुर्विधम् । सरस्वती तु
 या नाडी सा जिह्वान्तं प्रमर्पति ॥ २३ ॥ राकाङ्गया तु या नाडी पीत्वा

च सलिलं क्षणात् । क्षुतमुत्पादयेद् प्राणे श्लेष्माणं संविनोति च ॥ २४ ॥
 कण्ठकूपोज्जवा नाडी शङ्खिन्याख्या त्वधोमुखी । अन्नसारं समादाय मूर्ध्नि
 संविनुते सदा ॥ २५ ॥ नाभेरधोगताक्षिप्तो नाड्यः स्युरधोमुखाः ।
 मलं त्यजेत्कुह्वनाडी मूत्रं मुञ्चति वारुणी ॥ २६ ॥ चित्राख्या सीबिनी
 नाडी शुक्रमोचनकारणी । नाडीचक्रमिति प्रोक्तं बिन्दुरूपमतः शृणु
 ॥ २७ ॥ स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः । स्थूलं शुक्लात्मकं
 बिन्दुः सूक्ष्मं पञ्चाग्निरूपकम् ॥ २८ ॥ सोमात्मकः परः प्रोक्तः सदा
 साक्षी सदाच्युतः । पातालानामधोभारो कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः ॥ २९ ॥
 समूलाग्निः शरीरेऽग्निर्यस्माद्वादः प्रजायते । वडवाग्निः शरीरस्थो ह्यस्थिमध्ये
 प्रवर्तते ॥ ३० ॥ काष्ठपाषाणयोर्वह्निर्ह्यस्थिमध्ये प्रवर्तते । काष्ठपाषाणजो वह्निः
 पार्थिवो ग्रहणीगतः ॥ ३१ ॥ अन्तरिक्षगतो वह्निर्वैद्युतः स्वान्तरात्मकः ।
 नभःस्थः सूर्यरूपोऽग्निर्नाभिमण्डलमाश्रितः ॥ ३२ ॥ विषं वर्षति सूर्योऽसौ
 क्षवत्पृथुतमुत्सुखः । तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधां वर्षत्यधोमुखः ॥ ३३ ॥
 श्रूमध्यनिलयो बिन्दुः शुद्धस्फटिकसंनिभः । महाविष्णोश्च देवस्य तत्सूक्ष्मं
 रूपमुच्यते ॥ ३४ ॥ एतत्पञ्चाग्निरूपं यो भावयेद्बुद्धिमान्निधया । तेन शुक्तं च
 पीतं च हुतमेव न संशयः ॥ ३५ ॥ सुखसंसेवितं स्वप्नं सुजीर्णमितभोज-
 नम् । शरीरशुद्धिं कृत्वादौ सुखमासनमास्थितः ॥ ३६ ॥ प्राणस्य शोधये-
 न्मार्गं रेचपूरककुम्भकैः । गुदमाकुञ्च्य यत्नेन मूलशक्तिं प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥
 नाभौ लिङ्गस्य मध्ये तु उड्यानाख्यं च बन्धयेत् । उड्डीय याति तेनैव
 शक्तितोड्यानपीठकम् ॥ ३८ ॥ कण्ठं संकोचयेत्किञ्चिद्वन्धो जालन्धरो
 ह्ययम् । बन्धयेत्खेचरीमुद्रां दृढचित्तः समाहितः ॥ ३९ ॥ कपालदिवरे जिह्वा
 प्रविष्टा विपरीतगा । भुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ४० ॥ खेचर्या
 मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः । न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधा-
 वति ॥ ४१ ॥ न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रजायते । न च
 मृत्युर्भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ४२ ॥ ततः पूर्वापरे व्योम्नि द्वाद-
 शान्तेऽच्युतात्मके । उड्यानपीठे निर्द्वन्द्वे निरालम्बे निरञ्जने ॥ ४३ ॥ ततः
 पङ्कजमध्यस्थं चन्द्रमण्डलमध्यगम् । नारायणमनुष्यायेत्सर्ववन्तममृतं सदा
 ॥ ४४ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिदिच्छन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि

तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ४५ ॥ अथ सिद्धिं प्रवक्ष्यामि सुखोपायं सुरेश्वर ।
 जितेन्द्रियाणां शान्तानां जितश्वासविचेत साम् ॥ ४६ ॥ नादे मनोलयं प्रवक्ष्या-
 दूरश्रवणकारणम् । बिन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
 कालात्मनि मनो लीनं त्रिकालज्ञानकारणम् । परकायमनोयोगः परकाय-
 प्रवेशकृत् ॥ ४८ ॥ अमृतं चिन्तयेन्मूर्ध्नि क्षुत्तृषाविषशान्तये । पृथिव्यां धार-
 येच्चित्तं पातालगमनं भवेत् ॥ ४९ ॥ सलिले धारयेच्चित्तं नाभमसा परि-
 भ्रूयते । अग्नौ संधारयेच्चित्तमग्निना दह्यते न सः ॥ ५० ॥ वायौ मनोलयं
 कुर्यादाकाशगमनं भवेत् । आकाशे धारयेच्चित्तमणिमादिकमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
 विराड्रूपे मनो युञ्जन्महिमानमवाप्नुयात् । चतुर्मुखे मनो युञ्जन्महासृष्टिकरो
 भवेत् ॥ ५२ ॥ इन्द्ररूपिणमात्मानं भावयन्मर्त्यभोगवात् । विष्णुरूपे महायोगी
 पालयेदखिलं जगत् ॥ ५३ ॥ रुद्ररूपे महायोगी संहरत्येव तेजसा । नारायणे
 मनो युञ्जन्नारायणमयो भवेत् । वासुदेवे मनो युञ्जन्सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्
 ॥ ५४ ॥ यथा संकल्पयेद्योगी योगयुक्तो जितेन्द्रियः । तथा तत्तदवामोति
 भाव एवात्र कारणम् ॥ ५५ ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाशिवः । न
 गुरोरधिकः कश्चिन्निषु लोकेषु विद्यते ॥ ५६ ॥ दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं
 परमेश्वरम् । पूजयेत्परया भक्त्या तस्य ज्ञानफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ यथा गुरु-
 स्त्वयैवेशो ययैवेशस्तथा गुरुः । पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यते-
 ऽनयोः ॥ ५८ ॥ नाद्वैतवादं कुर्वीत गुरुणा सह कुत्रचित् । अद्वैतं भावये-
 ष्वक्त्या गुरोर्देवस्य चात्मनः ॥ ५९ ॥ योगैश्विखां महागुह्यं यो जानाति महा-
 मतिः । न तस्य किञ्चिदज्ञातं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ६० ॥ न पुण्यपापे
 नास्वस्थो न दुःखं न पराजयः । न चास्ति पुनरावृत्तिरस्मिन्संसारमण्डले
 ॥ ६१ ॥ सिद्धौ चित्तं न कुर्वीत चञ्चलत्वेन चेतसः । तथा विज्ञाततत्त्वोऽसौ
 मुक्त एव न संशयः ॥ ६२ ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उपासनाप्रकारं मे ब्रूहि त्वं परमेश्वर । येन विज्ञातमात्रेण मुक्तो भवति
 संसृतेः ॥ १ ॥ उपासनाप्रकारं ते रहस्यं श्रुतिसारकम् । हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि
 श्रुत्वा सम्यगुपासय ॥ २ ॥ सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात् ।
 मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने ॥ ३ ॥ शतं चैका च हृदयस्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वक्कृत्या
 उत्क्रमणे भवन्ति ॥ ४ ॥ एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये परा स्मृता ।
 सुषुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी ॥ ५ ॥ इडा तिष्ठति वामेन पिङ्गला
 दक्षिणेन तु । तयोर्मध्ये परं स्थानं यस्तद्वेद स वेदवित् ॥ ६ ॥ प्राणान्संधा-
 रयेत्तस्मिन्नासाभ्यन्तरचारिणः । भूत्वा तन्नायतप्राणः शनैरेव समभ्यसेत् ॥ ७ ॥
 गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन्वीणादण्डः स देहभृत् । दीर्घास्थिदेहपर्यन्तं ब्रह्म-
 नाडीति कथ्यते ॥ ८ ॥ तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं ब्रह्मनाडीति सूरिभिः । इडापिङ्गल-
 योर्मध्ये सुषुम्ना सूर्यरूपिणी ॥ ९ ॥ सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मिन्सर्वगं विश्वतोमुखम् ।
 तस्य मध्यगताः सूर्यसोमाग्निपरमेश्वराः ॥ १० ॥ भूतलोका दिशः क्षेत्राः ससुम्नाः
 पर्वताः शिलाः । द्वीपाश्च निम्नगा वेदाः शास्त्रविद्याकलाक्षराः ॥ ११ ॥ स्वर्गम-
 न्नपुराणानि गुणाश्चैते च सर्वशः । बीजं बीजात्मकस्तेषां क्षेत्रज्ञः प्राणवायवः
 ॥ १२ ॥ सुषुम्नान्तर्गतं विश्वं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् । नानानाडीप्रसवगं सर्व-
 भूतान्तरात्मनि ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखं वायुमार्गेण सर्वगम् । द्विसप्ततिसह-
 स्राणि नाड्यः स्युर्वायुगोचराः ॥ १४ ॥ सर्वमार्गेण सुषिरास्तिर्यञ्चः सुषिरा
 मताः । अधश्चोर्ध्वं च कुण्डल्याः सर्वद्वारनिरोधनात् ॥ १५ ॥ वायुना सह
 जीवो र्वज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् । ज्ञात्वा सुषुम्नां तज्ज्ञेदं कृत्वा पायुं च मध्य-
 गम् ॥ १६ ॥ कृत्वा तु चैन्दवस्थाने प्राणरन्ध्रे निरोधयेत् । द्विसप्ततिसहस्राणि
 नाडीद्वाराणि पञ्जरे ॥ १७ ॥ सुषुम्ना शाम्भवी शक्तिः शेषास्त्वन्ये निर-
 र्थकाः । हृल्लेखे परमानन्दे तालुमूले व्यवस्थिते ॥ १८ ॥ अत ऊर्ध्वं निरोधे
 तु मध्यमं मध्यमध्यमम् । उच्चारयेत्परां शक्तिं ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनीम् । यदि
 अमरसृष्टिः स्यात्संसारअमणं त्यजेत् ॥ १९ ॥ गमागमस्थं गमनादिशून्यं
 चिद्रूपदीपं तिमिरान्धनाशम् । पश्यामि तं सर्वजनान्तरस्थं नमामि हंसं पर-
 मात्मरूपम् ॥ २० ॥ अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ।
 ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिषोऽन्तर्गतं मनः । तन्मनो विलयं याति
 तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २१ ॥ केचिद्वदन्ति चाधारं सुषुम्ना च सरस्वती ।
 आधारज्जायते विश्वं विश्वं तत्रैव लीयते ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुपादं
 समाश्रयेत् । आधारशक्तिनिद्रायां विश्वं भवति निद्रया ॥ २३ ॥ तस्यां शक्ति-
 प्रबोधेन त्रैलोक्यं प्रतिबुध्यते । आधारं यो विजानाति तमसः परमशुते

॥ २४ ॥ तस्य निजानामात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥ आधारचक्र-
महसा विद्युत्पुञ्जसमप्रभा । तदा मुक्तिर्न संदेहो यदि तुष्टः स्वयं गुरुः ॥ २६ ॥
आधारचक्रमहसा पुण्यपापे निवृत्तयेत् । आधारवातरोधेन लीयते गगना-
न्तरे ॥ २७ ॥ आधारवातरोधेन शरीरं कम्पते यदा । आधारवातरोधेन
योगी नृत्सति सर्वदा ॥ २८ ॥ आधारवातरोधेन निश्चिं तन्नैव दृश्यते । सुष्टि-
राधारमाधारमाधारे सर्वदेवताः । आधारे सर्ववेदाश्च तस्मादाधारमाशयेत्
॥ २९ ॥ आधारे पश्चिमे आगे त्रिवेणीसङ्गमो भवेत् । तत्र ज्ञात्वा च पीत्वा
च नरः पापाश्चमुच्यते ॥ ३० ॥ आधारे पश्चिमं लिङ्गं कवाटं तत्र विद्यते ।
तस्योद्घाटनमात्रेण मुच्यते अवबन्धनात् ॥ ३१ ॥ आधारपश्चिमे आगे चन्द्र-
सूयौ स्थिरौ यदि । तत्र तिष्ठति विश्वेशो ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ३२ ॥
आधारपश्चिमे आगे मूर्तिस्तिष्ठति संज्ञया । षट् चक्राणि च निर्भिद्य ब्रह्म-
रन्ध्राद्बहिर्गतम् ॥ ३३ ॥ वामदक्षे निवृत्तन्ति प्रविशन्ति सुपुञ्जया । ब्रह्मरन्ध्रं
जैविद्वयान्तस्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ३४ ॥ सुपुञ्जायां यदा हंसस्त्वध ऊर्ध्वं
प्रधावति । सुपुञ्जायां यदा प्राणं आमयेद्यो निरन्तरम् ॥ ३५ ॥ सुपुञ्जायां
यदा प्राणः स्थिरो भवति धीमताम् । सुपुञ्जायां प्रवेशेन चन्द्रसूयौ लयं
यतौ ॥ ३६ ॥ तदा समरसं आवं यो जानाति स योगवित् । सुपुञ्जायां
यदा यत्नं त्रियते मनसो रयः ॥ ३७ ॥ सुपुञ्जायां यदा योगी क्षणैकमपि
तिष्ठति । सुपुञ्जायां यदा योगी क्षणार्धमपि तिष्ठति ॥ ३८ ॥ सुपुञ्जायां यदा
योगी सुलभो लवणाम्बुवत् । सुपुञ्जायां यदा योगी लीयते क्षीरनीरवत्
॥ ३९ ॥ भिद्यते च तदा अन्धिद्विद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते परमाकाशे ते
यान्ति परमां गतिम् ॥ ४० ॥ गङ्गायां सागरे ज्ञात्वा नत्वा च मणिकर्णि-
कात् । मध्यनाडीविचारस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४१ ॥ श्रीशैलदर्श-
नान्मुक्तिवाराणस्यां श्रुत्वा च । केदारोदकपानेन मध्यनाडीप्रदर्शनात् ॥ ४२ ॥
अधश्चक्षुःसहस्राणि वाजपेयव्रतानि च । सुपुञ्जाध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति
षोडशीम् ॥ ४३ ॥ सुपुञ्जायां सदा गोष्ठीं यः कश्चित्कुरुते नरः । स मुक्तेः
सर्वपापेभ्यो निःश्रेयसमवामुयात् ॥ ४४ ॥ सुषुप्तैव परं तीर्थं सुषुप्तैव परो
जपः । सुषुप्तैव परं ध्यानं सुषुप्तैव परा गतिः ॥ ४५ ॥ अनेकयज्ञदानानि
व्रतानि नियमास्तथा । सुपुञ्जाध्यानलेखाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४६ ॥

प्रह्वारन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं विवा । चिच्छक्तिः परमा देवी मध्यमे सुप्र-
 तिष्ठिता ॥ ४७ ॥ मायाशक्तिर्ललाटाग्रभागे व्योमान्मुखे तथा । नादरूपा
 परा शक्तिर्ललाटस्य तु मध्यमे ॥ ४८ ॥ आगे बिन्दुमयी शक्तिर्ललाटस्यापरा-
 शक्ते । बिन्दुमध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते ॥ ४९ ॥ हृदये स्थूल-
 रूपेण मध्यमेन तु मध्यमे ॥ ५० ॥ प्राणापानवहो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च
 धावति । वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलत्वाच्च दृश्यते ॥ ५१ ॥ आक्षिप्तो भुज-
 दण्डेन यथोच्चलति कन्दुकः । प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न विश्रमेत्
 ॥ ५२ ॥ अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति । हकारेण वहिर्याति
 सकारेण विशेत्पुनः ॥ ५३ ॥ हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा । तद्धि-
 द्वानक्षरं नित्यं यो जानाति स योगवित् ॥ ५४ ॥ कैन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्ति-
 मुंक्तिरूपा हि योगिनाम् । बन्धनाय च मूढानां यस्मां वेत्ति स योगवित्
 ॥ ५५ ॥ भूर्भुवःस्वरिमे लोकाश्चन्द्रसूर्याऽग्निदेवताः । यासु मात्रासु तिष्ठन्ति
 तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ५६ ॥ त्रयः कालास्त्रयो देवास्त्रयो लोकास्त्रयः स्वराः ।
 त्रयो वेदाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ५७ ॥ चित्ते चलति संसारो
 निश्चलं मोक्ष उच्यते । तस्माच्चित्तं स्थिरीकुर्यात्प्रज्ञया परया विधे ॥ ५८ ॥ चित्तं
 कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगन्नयम् । तस्मिन्क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं
 प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥ मनोऽहं गगनाकारं मनोऽहं सर्वतोमुखम् । मनोऽहं सर्व-
 मात्मा च न मनः केवलः परः ॥ ६० ॥ मनः कर्माणि जायन्ते मनो
 लिप्यति पातकैः । मनश्चेदुन्मनीभूयाच्च पुण्यं न च पातकम् ॥ ६१ ॥ मनसा
 मन आलोक्य वृत्तिशून्यं यदा भवेत् । ततः परं परब्रह्म दृश्यते च सुदुर्लभम्
 ॥ ६२ ॥ मनसा मन आलोक्य मुक्तो भवति योगवित् । मनसा मन
 आलोक्य उन्मन्यन्तं सदा स्मरेत् ॥ ६३ ॥ मनसा मन आलोक्य योगनिष्ठः
 सदा भवेत् । मनसा मन आलोक्य दृश्यन्ते प्रत्यया दश ॥ ६४ ॥ यदा
 प्रत्यया दृश्यन्ते तदा योगीश्वरो भवेत् ॥ ६५ ॥ बिन्दुनादकलाज्योतीरवीन्दु-
 ध्रुवतारकम् । शान्तं च तदतीतं च परं ब्रह्म तदुच्यते ॥ ६६ ॥ हसत्युल्लसति
 ग्रीत्या क्रीडते मोदते तदा । तनोति जीवनं बुद्ध्या बिभेति सर्वतोभयात् ॥ ६७ ॥
 रोध्यते बुद्ध्यते शोके मुह्यते न च संपदा । कम्पते क्षत्रुकार्येषु कामेन रमते
 हसन् ॥ ६८ ॥ स्मृत्वा कामरतं चित्तं विजानीयात्कलेबरे । यत्र देशे वसेद्वायु-

श्चित्तं तद्वसति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ मनश्चन्द्रो रविर्वायुर्दधिरभिरुदाहृतः । बिन्दुनाद-
कला ब्रह्मन् विष्णुब्रह्मेशदेवताः ॥ ७० ॥ सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना
अवेत् । निरक्षने विंकीयेत मरुन्मनसि पञ्चज ॥ ७१ ॥ यो वै नादः स वै
बिन्दुस्तद्वै चित्तं प्रकीर्तितम् । नादो बिन्दुश्च चित्तं च त्रिभिरैक्यं प्रसादयेत्
॥ ७२ ॥ मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्तिस्थितिकारणम् । मनसोत्पद्यते बिन्दु-
र्यथा क्षीरं गतात्मकम् ॥ ७३ ॥ षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्ड-
लम् । प्रविशेद्वायुमामाकृत्य तथैवोर्ध्वं नियोजयेत् ॥ ७४ ॥ वायुं बिन्दुं तथा
चक्रं चित्तं चैव समभ्यसेत् । समाधिमेकेन समममृतं यान्ति योगिनः ॥ ७५ ॥
यथाऽग्निर्दाहमध्यस्थो नोत्तिष्ठेन्मथनं विना । विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीप-
स्तथा नहि ॥ ७६ ॥ घटमध्ये यथा दीपो बाह्ये नैव प्रकाशते । भिन्ने तस्मिन्
घटे चैव दीपज्वाला च भासते ॥ ७७ ॥ स्वकायं घटमित्युक्तं यथा जीवो हि
तत्पदम् । गुरुवाक्यसैमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं प्रकाशते ॥ ७८ ॥ कर्णधारं गुरुं
प्राप्य तद्वाक्यं श्रुत्वबहुदम् । अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्
॥ ७९ ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ स ह नावचरिति शान्तिः ॥ ॐ तत्सत् ॥

इति योगशिखोपनिषत्समाप्ता ॥ ६६ ॥

तुरीयातीतोपनिषत् ॥ ६७ ॥

ॐ तुरीयातीतोपनिषद्वेद्यं यत्परमाक्षरम् ।

तत्तुरीयातीतचिन्मात्रं स्वमात्रं चिन्तयेन्ब्रह्मम् ॥ १ ॥

तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका ।

अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णं सूर्याक्षयध्यात्मकुण्डिका ॥ २ ॥

हरिः ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

अथ तुरीयातीतावधूतानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति पितामहो
भगवन्तं पितरमादिनारायणं परिसमेत्योवाच । तमाह भगवान्नारायणो

योऽयमवधूतमार्गस्थो लोके दुर्लभतरो ननु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव
 नित्यपूतः स एव वैराग्यमूर्तिः स एव ज्ञानाकारः स एव वेदगुरु इति
 ज्ञानिनो मन्यन्ते । महापुरुषो यस्तच्चित्तं मध्येवावतिष्ठते । अहं च तस्मिन्ने-
 वावस्थितः सोऽयमादौ तावत्क्रमेण कुटीचको बहुदकत्वं प्राप्य बहुदको हंस-
 त्वमवलम्ब्य हंसः परमहंसो भूत्वा स्वरूपानुसंधानेन सर्वप्रपञ्चं विदित्वा
 दण्डकमण्डलुकटिसूत्रकौपीनाच्छादनं स्वविध्युक्तक्रियादिकं सर्वमप्यु- संत्यज्य
 दिगम्बरो भूत्वा निवर्णजीर्णवल्कलाजिनपरिग्रहमपि संत्यज्य तदूर्ध्वमग्रा-
 वदाचरन्क्षौराभ्यङ्गज्ञानोर्ध्वपुण्ड्रादिकं विहाय लौकिकवैदिकमप्युपसंहृत्य सर्वत्र
 पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय श्रीतोष्णसुखदुःखमानावसानं
 निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दाऽनि-दागर्वमत्सरदम्भदर्पद्वेषकामक्रोधलोभ-
 मोहहर्षामर्षासूयात्मसंरक्षणादिकं दग्ध्वा स्ववपुः कुण्ठाकारमिव पश्यन्नयत्नेना-
 नियमेन लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृत्त्या प्राणसंधारणं कुर्वन्त्यत्प्राप्तं तेनैव
 निर्लोलुपः सर्वविद्यापाण्डित्यप्रपञ्चं भस्मीकृत्य स्वरूपं गोपयित्वा ज्येष्ठाऽज्येष्ठ-
 त्वानपलापकः सर्वोत्कृष्टत्वसर्वात्मकत्वाद्वैतं कल्पयित्वा मत्तो व्यतिरिक्तः
 कश्चित्तान्योऽस्तीति देवगुह्यादिधनमात्मन्युपसंहृत्य दुःखेन नोद्विग्नः सुखेन
 नानुमोदको रागे निःस्पृहः सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिज्ञोः सर्वेन्द्रियोपरमः
 स्वपूर्वापन्नाश्रमाचारविद्याधर्मप्राभवमननुस्मरंस्तत्त्ववर्णाश्रमाचारः सर्वदा
 दिवनक्तसमत्वेनास्मत्तः सर्वदा संचारशीलो देहभान्नावशिष्टो जलस्थलक-
 मण्डलुः सर्वदाऽनुन्मत्तो बालोन्मत्तपिशाचवदेकाकी संचरन्नसंभाषणपरः
 स्वरूपध्यानेन निरालम्बमवलम्ब्य स्वात्मनिष्ठानुकूलेन सर्वं निश्चल्य तुरीया-
 तीतावधूतवेपेणाद्वैतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः
 स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषत् ॥ ॐ तत्सत् ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

॥ इति तुरीयातीतोपनिषत्समाप्ता ॥ ६७ ॥

संन्यासोपनिषत् ॥ ६८ ॥

संन्यासोपनिषद्वेद्यं संन्यासिपटलाश्रयम् ।

सत्तासामान्यविभवं स्वमात्रमिति भावये ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ अथातः संन्यासोपनिषदं व्याख्यास्यामः । योऽनुक्रमेण संन्यस्यति स संन्यस्तो भवति । कोऽयं संन्यास उच्यते कथं वा संन्यस्तो भवति । य आत्मानं क्रियाभिर्गुणं करोति मातरं पितरं भार्यां पुत्रान्वन्धून्नुमोदयित्वा ये चास्यत्विजस्तान्सर्वांश्च पूर्ववत्प्राणित्वा वैश्वानरेष्टिं निर्वपेत्सर्वस्वं दद्याद्यज-
मानस्य गा ऋत्विजः सर्वैः पात्रैः समारोप्य यदाहवनीये गार्हपत्ये वाऽन्वाहा-
र्थपचने सभ्यावसथ्ययोश्च प्राणापानव्यानोदानसमानान्सर्वान्सर्वेषु समारोप-
येत् । सशिखान्केशान्विसृज्य यज्ञोपवीतं छित्त्वा पुत्रं दृष्ट्वा त्वं यज्ञस्त्वं सर्व-
मित्यनुमन्त्रयेत् । यद्यपुत्रो भवत्यात्मानमेवेमं ध्यात्वाऽनवेक्षमाणः प्राची-
सुदीर्चीं वा दिशं प्रवजेच्च । त्रिषु वर्णेषु भिक्षाचर्यं चरेत् । पाणिपात्रेणाशनं
कुर्यात् । औषधवदशनमाचरेत् । औषधवदशनं प्राश्नीयात् । यथालाभमश्नी-
यात्प्राणसंधारणार्थं यथा मेदोवृद्धिर्न जायते । कृशो भूत्वा ग्राम एकरात्रं
नगरे पञ्चरात्रं चतुरो मासान्वार्षिकान्ग्रामे वा नगरे वापि वसेत् । पक्षा वै
मासो इति द्वौ मासौ वा वसेत् । विशीर्णवस्त्रं चल्कलं वा प्रतिगृह्णीयाद्वा-
न्यत्प्रतिगृह्णीयाद्यद्यशक्तो भवति क्लेशतस्तप्यते तप इति । यो वा एवं क्रमेण
संन्यस्यति यो वा एवं पश्यति किमस्य यज्ञोपवीतं काऽस्य शिक्षा कथं वाऽस्यो-
पस्पर्शनमिति । तं होवाचेदमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं यदात्मध्यानं विद्या शिक्षा
नीरैः सर्वत्रावस्थितैः कार्यं निर्वर्तयन्नुदरपात्रेण जलतीरे निकेतनम् । ब्रह्म-
वादिनो वदन्त्यस्तमित आदित्ये कथं वाऽस्योपस्पर्शनमिति । तान्होवाच
यथाऽहनि तथा रात्रौ नास्य नक्तं न दिवा तदप्येतद्विणोक्तम् । संकृद्दिवा
हैवासौ भवति य एवं विद्वानेतेनात्मानं संधत्ते ॥ १ ॥

इति संन्यासोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ॐ चत्वारिंशत्संस्कारसंपन्नः सर्वतो विरक्तश्चित्तशुद्धिमेत्याशासूयेभ्यांहं-
कारं दग्ध्वा साधनचतुष्टयसंपन्न एव संन्यस्तुमर्हति । संन्यासे निश्चयं कृत्वा

पुनर्न च करोति यः । स कुर्यात्कुच्छमात्रं तु पुनः संन्यस्तुमर्हति ॥ १ ॥
 संन्यासं पातयेद्यस्तु पतितं न्यासयेत्तु यः । संन्यासविघ्नकर्ता च त्रीनेतान्
 पतितान्विदुः ॥ २ ॥ इति ॥ अथ षण्डः पतितोऽङ्गविकलः क्षेणो बधिरोऽ-
 र्भको मूकः पाषण्डश्चक्री लिङ्गी कुष्ठी वैखानसहरद्विजौ श्रुतकाध्यापकः
 क्षिपिविष्टोऽनक्षिको नास्तिको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्यासार्हाः । संन्यस्ता
 यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः ॥ आरूढपतितापस्यः कुनखी इयाव-
 दन्तकः । क्षीर्वस्तथाऽङ्गविकलो नैव संन्यस्तुमर्हति ॥ ३ ॥ संप्रत्यवसितानां च
 महापातकिनां तथा । ब्राह्मणानामभिशक्तानां संन्यासं नैव कारयेत् ॥ ४ ॥
 व्रतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायवर्जितम् । सत्यशौचपरिभ्रष्टं संन्यासं नैव का-
 रयेत् ॥ ५ ॥ एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम् । ॐ भूः स्वाहेति
 शिखामुत्पाठ्य यज्ञोपवीतं बहिर्न निवसेत् । यशो बलं ज्ञानं वैराग्यं मेधां
 प्रयच्छेति यज्ञोपवीतं छित्त्वा ॐ भूः स्वाहेत्यप्सु वस्त्रं कटिसूत्रं च विसृज्य सं-
 न्यस्तं मयेति त्रिवारमभिमन्त्रयेत् । संन्यासिनं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति आत्क-
 रः । एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६ ॥ षष्टिं कुलान्यतीतानि
 षष्टिमागमिकानि च । कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ॥ ७ ॥ ये च
 संतानजा दोषा ये दोषा देहसंभवाः । ग्रैषाग्निर्निर्दहेत्सर्वास्तुषाग्निरिव काञ्च-
 नम् ॥ ८ ॥ सखा मा गोपायेति दण्डं परिग्रहेत् । दण्डं तु वैणवं सौम्यं सत्वचं
 समपर्वकम् । पुण्यस्थलसमुत्पन्नं नानाकलमषशोधितम् ॥ ९ ॥ अदुग्धमहतं
 क्रीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम् । नासादग्नं शिरस्तुल्यं भ्रुवोर्वा बिभृयाद्यतिः
 ॥ १० ॥ दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्वथा तु विधीयते । न दण्डेन विना
 गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥ ११ ॥ जगज्जीवनं जीवनाधारभूतं माते मामन्नयस्त्र
 सर्वसौम्येति कमण्डलुं परिगृह्य योगपट्टाभिषिक्तो भूत्वा यथासुखं विहरेत् ॥
 त्यज धर्ममधर्मं च उमे सत्यानृते त्यज । उमे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि
 तत्त्यज ॥ १२ ॥ वैराग्यसंन्यासी ज्ञानसंन्यासी ज्ञानवैराग्यसंन्यासी कर्म-
 संन्यासीति चातुर्विध्यमुपागतः । तद्यथेति दृष्टानुश्रविकविषयवैतृष्ण्यमेल्य
 प्राक्पुण्यकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्यसंन्यासी । शास्त्रज्ञानात्पापपुण्यलोका-
 नुभवश्रवणात्प्रपञ्चोपरतो देहवासनां शास्त्रवासनां लोकावासनां त्यक्त्वा
 चमनाश्रमिव प्रवृत्तिं सर्वं हेयं मत्वा साधनचतुष्टयसंपन्नो यः संन्यस्यति स

एव ज्ञानसंन्यासी । क्रमेण सर्वमन्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपा-
नुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्य-
संन्यासी । ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भूत्वा चानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्याभावेऽ-
प्याश्रमक्रमानुसारेण यः संन्यस्यति स कर्मसंन्यासी । स संन्यासः पञ्चिधो
भवति—कुटीचकबहुदकहंसपरमहंसतुरीयातीतावधूताश्चेति । कुटीचकः शिखा-
यज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्याधरः पितृमातृगुर्वाराधनपरः
पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपर एकत्राज्ञादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी
त्रिदण्डः । बहुदकः शिखादिकन्याधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकर-
वृत्त्याष्टकवलाशी । हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असंकुसमाधुकरा-
द्याशी कौपीनखण्डतुण्डधारी । परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेषु
करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो वा भस्मो-
द्भूलनपरः सर्वत्यागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्या फलाहारी भन्नाहारी चैवृह-
त्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः । अवधूतस्त्वनियमः
पतितभिन्नस्तवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगरवृत्त्याऽऽहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः ।
जगत्तावदिदं नाहं सवृक्षतृणपर्वतम् । यद्वाह्यं जडमत्यन्तं तत्स्यां कथमहं
विभुः ॥ १३ ॥ कालेनाल्पेन विलयी देहो नाहमचेतनः । जडया कर्णशक्त्यार
कल्पमानक्षणस्थया ॥ १४ ॥ शून्याकृतिः शून्यभवः शब्दो नाहमचेतनः ।
त्वचा क्षणविनाशिन्या प्राप्योऽप्राप्योऽयमन्यथा ॥ १५ ॥ विप्रसादोप-
लब्धात्मा स्पर्शो नाहमचेतनः । लब्धात्मा जिह्वया तुच्छो लोलया लोलसत्तया
॥ १६ ॥ स्वल्पस्यन्दो द्रव्यनिष्ठो रसो नाहमचेतनः । इन्द्र्यदर्शनयोर्लीनं
क्षयिक्षणविनाशिनो ॥ १७ ॥ केवले द्रष्टरि क्षीणं रूपं नाहमचेतनम् ।
नासया गन्धजडया क्षयिण्या परिकल्पितः ॥ १८ ॥ पेलवो नियताकारो गन्धो
नाहमचेतनः । निर्ममोऽमननः शान्तो गतपञ्चेन्द्रियभ्रमः ॥ १९ ॥ शुद्धचेतन
एवाहं कलाकलनवर्जितः । चैत्यवर्जितविन्मात्रमहमेपोऽवभासकः ॥ २० ॥
सबाह्याभ्यन्तरव्यापी निष्कलोऽहं निरञ्जनः । निर्विकल्पविदाभास एक
आत्माऽस्मि सर्वगः ॥ २१ ॥ मयैव चेतनेनेमे सर्वे घटपटादयः । सूर्यान्ता
अवभास्यन्ते क्षीपेनेवात्मतेजसा ॥ २२ ॥ मयैवैताः स्फुरन्तीह विचित्रेन्द्रिय-
वृत्तयः । तेजसाऽन्तःप्रकाशेन यथाऽभिकणपङ्क्तयः ॥ २३ ॥ अनन्ताबन्धसंभोगा

परोपशमशालिनी । शुद्धेयं चिन्मयी इष्टिर्जयत्यखिलदृष्टिषु ॥ २४ ॥
 सर्थभावान्तरस्थाय चैत्यमुक्तचिदात्मने । प्रत्यक्चेतन्यरूपाय मह्यमेव नमो
 नमः ॥ २५ ॥ विचित्राः शक्तयः स्वच्छाः समा या निर्विकारया । चित्ता
 क्रियन्ते समया कलाकलनमुक्तया ॥ २६ ॥ कालत्रयमुपेक्षित्या हीनाया-
 श्रैत्यबन्धनैः । चित्तश्रैत्यमुपेक्षित्याः समतैवावशिष्यते ॥ २७ ॥ सा हि वाचा-
 मगन्धत्वादसत्तामिव शाश्वतीभू । नैरात्मसिद्धात्मदशासुपयातैव शिष्यते
 ॥ २८ ॥ ईहानीहामयैरन्तर्या चिदावलिता मलैः । सा चित्तोत्पादितुं शक्ता
 पाशबद्धेव पक्षिणी ॥ २९ ॥ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन जन्तवः । धरा-
 विवरमसानां क्रीटानां समतां गताः ॥ ३० ॥ आत्मनेऽस्तु नमो मह्यमवि-
 च्छिन्नचिदात्मने । परासृष्टोऽस्मि लब्धोऽस्मि प्रोदितोऽस्म्यचिरादहम् ।
 उद्धृतोऽस्मि विकल्पेभ्यो योऽस्मि सोऽस्मि नमोऽस्तु ते ॥ ३१ ॥ तुभ्यं मह्य-
 मनन्ताय मह्यं तुभ्यं चिदात्मने । नमस्तुभ्यं परेशाय नमो मह्यं शिवाय च
 ॥ ३२ ॥ तिष्ठन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति । शान्तोऽपि व्यवहार-
 स्थः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ३३ ॥ सुलभश्चायमत्यन्तं सुज्ञेयश्चासबन्धुवत् ।
 शरीरपद्मकुहरे सर्वेषामेव षट्पदः ॥ ३४ ॥ न मे ओगस्थितौ वाञ्छा न मे
 ओगविसर्जने । यदायाति तदायातु यत्प्रयाति प्रयातु तत् ॥ ३५ ॥ मनसा
 मनसि च्छिन्ने निरहंकारतां गते । भावेन गलिते भावे स्वस्थस्तिष्ठामि केवलः
 ॥ ३६ ॥ निर्भावं निरहंकारं निर्मनस्कमनीहितम् । केवलास्पन्दशुद्धात्मन्येव
 तिष्ठति मे रिपुः ॥ ३७ ॥ तृष्णारञ्जुगणं छित्त्वा मच्छरीरकपञ्जरात् । न
 जाने क्व गतोऽङ्गीय निरहंकारपक्षिणी ॥ ३८ ॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य
 न लिप्यते । यः समः सर्वभूतेषु जीवितं तस्य शोभते ॥ ३९ ॥ योऽन्तः-
 शीतत्वा बुद्ध्या रागद्वेषविमुक्तया । साक्षिवत्पश्यतीदं हि जीवितं तस्य
 शोभते ॥ ४० ॥ येन सम्यक्परिज्ञाय हेयोपादेयमुज्झता । चित्तस्यान्तेऽर्पितं
 चित्तं जीवितं तस्य शोभते ॥ ४१ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबन्धे क्षीणे शान्तिरुदे-
 त्यलम् । स्थिस्तिमभ्यागता शान्तिर्मोक्षनामभिधीयते ॥ ४२ ॥ अष्टवीजोपमा
 भूयो जन्माङ्कुरविवर्जिता । हृदि जीवद्विमुक्तानां शुद्धा भवति वासना ॥ ४३ ॥
 पावनी परमोदारा शुद्धसत्त्वानुपातिनी । आत्मध्यानमयी नित्या सुषुप्तिस्थेव
 तिष्ठति ॥ ४४ ॥ चेतनं चित्तरिकं हि प्रत्यक्चेतनमुच्यते । निर्मनस्कस्वभाव-

त्वाद्य तत्र कलनायकम् ॥ ४५ ॥ सा सत्यता सा शिवता साऽवस्था पारमा-
 त्मिकी । सर्वज्ञता सा संतुष्टिर्नतु यत्र मनः क्षतम् ॥ ४६ ॥ प्रलपन्विस्तृज-
 न्मुकुलमुन्मिषतिमिषजपि । निरस्तमननानन्दः संविन्मात्रपरोऽस्म्यहम् ॥ ४७ ॥
 मलं संवेद्यमुत्सृज्य मनो निर्मूलयन्परम् । आशापाशानलं छिरवा संविन्मात्रपरोऽ-
 स्म्यहम् ॥ ४८ ॥ अशुभाशुभसंकल्पः संशान्तोऽस्मि निरामयः । नष्टेष्टानिष्टकलनः
 संविन्मात्रपरोऽस्म्यहम् ॥ ४९ ॥ आत्मतापरते त्यक्त्वा निर्विभागो जगत्स्थितौ ।
 वज्रस्तम्भवदात्मानमवलम्ब्य स्थिरोऽस्म्यहम् ॥ ५० ॥ निर्मलायां निरा-
 शयां स्वसंयुतौ स्थितोऽस्म्यहम् । ईहितानीहितैर्मुक्तो हेयोपादेयवर्जितः
 ॥ ५१ ॥ कदाऽन्तस्तोषमेष्यामि स्वप्रकाशपदे स्थितः । कदोपशान्तमननो
 धरणीधरकन्दरे ॥ ५२ ॥ समेष्यामि शिलासाम्यं निर्विकल्पसमाधिना । निरंश-
 ध्यानविश्रान्तिमूकस्य मम मस्तके ॥ ५३ ॥ कदा तारुणं करिष्यन्ति कुलायं
 जनपुत्रिकाः । संकल्पपादपं तृष्णालतं छित्वा मनोवनम् ॥ ५४ ॥ विततां
 शुवमासाद्य विहरामि यथासुखम् । पदं तदनु यातोऽस्मि केवलोऽस्मि जपा-
 ष्यहम् ॥ ५५ ॥ निर्वाणोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीप्सितः ।
 श्रृङ्खलितोर्जितता सत्ता हृद्यता सत्यता ज्ञता ॥ ५६ ॥ आनन्दितोपशमता सदा
 प्रसुदितोदिता । पूर्णतोदारता सत्या कान्तिसत्ता सदैकता ॥ ५७ ॥ इत्येवं
 चिन्तयन्निभक्षुः स्वरूपस्थितिमञ्जसा । निर्विकल्पस्वरूपज्ञो निर्विकल्पो बभूव
 ह ॥ ५८ ॥ आतुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः कर्तव्यः । न शूद्रस्त्रीपतितो-
 दक्या संभाषणम् । न यतेर्देवपूजनोत्सवदर्शनम् । तस्मान्न संन्यासिन एष
 लोकः । आतुरकुटीचकयोर्भूलोकभुवर्लोकौ । बहूदकस्य स्वर्गलोकः । हंसस्य
 तपोलोकः । परमहंसस्य सत्यलोकः । तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव
 कैवल्यं स्वरूपानुसंधानेन अमरकीटन्यायवत् । स्वरूपानुसंधानव्यतिरिक्ता-
 न्यशास्त्राभ्यास उद्भूकुङ्कुमभारवच्चर्थः । न योगशास्त्रप्रवृत्तिः । न सांख्य-
 शास्त्राभ्यासः । न मन्त्रतन्त्रव्यापारः । नेतरशास्त्रप्रवृत्तिर्यतेरस्ति । अस्ति चेच्छवा-
 लंकारवत्कर्माचारविद्यादूरः । न परित्राणनामसंकीर्तनपरो यद्यत्कर्म करोति
 तत्तत्फलमनुभवति । परण्डतैलफेनवत्सर्वं परित्यजेत् । न देवताप्रसादग्रह-
 णम् । न बाह्यदेवाभ्यर्चनं कुर्यात् । स्वव्यतिरिक्तं सर्वं त्यक्त्वा मधुकरवृत्त्या-

ऽऽहारमाहरन्कृशी भूत्वा मेदोवृद्धिमकुर्वन्निहरेत् । माधुकरेण करपात्रेणास्य
 पात्रेण वा कालं नयेत् । आत्मसंमितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः । आहारस्य
 च भागौ द्वौ तृतीयमुदकस्य च । वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ ५९ ॥
 अक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकाक्ष्याशी भवेत्कचित् । निरीक्षन्ते त्वनुद्धिमास्तद्ब्रह्म यत्नतो
 ब्रजेत् ॥ ६० ॥ पञ्च सप्त गृहाणां तु भिक्षामिच्छेत्कियावताम् । गोदोहमात्रमाका-
 ङ्क्षेन्नैकान्तो न पुनर्ब्रजेत् ॥ ६१ ॥ नक्ताद्वरक्षोपवास उपवासादयाचितः । अया-
 चिताद्वरं भैक्षं तस्माद्वैक्षेण वर्तयेत् ॥ ६२ ॥ नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले
 विशेषहान् । नातिश्रमेद्ब्रह्मं मोहाद्यत्र दोषो न विद्यते ॥ ६३ ॥ श्रोत्रियाकं
 न भिक्षेत श्रद्धाभक्तिवहिष्कृतम् । ब्राह्मस्यापि गृहे भिक्षेच्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृते
 ॥ ६४ ॥ माधूकरमसंकुशं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं
 पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ६५ ॥ मनःसंकल्परहितांस्त्रीनृगान्पञ्च सप्त वा । मधु-
 मक्षिकवत्कृत्वा माधूकरमिति स्मृतम् ॥ ६६ ॥ प्रातःकाले च पूर्वैश्वर्यभक्तैः
 प्रार्थितं मुहुः । तन्नैक्षं प्राक्प्रणीतं स्यात्स्थितिं कुर्यात्तथापि वा ॥ ६७ ॥
 भिक्षाटनसमुद्योगाद्येन केन निमज्जितम् । अयाचितं तु तन्नैक्षं भोक्तव्यं च
 मुमुक्षुभिः ॥ ६८ ॥ उपस्थानेन यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन तत् । तात्कालिक-
 मिति ख्यातं भोक्तव्यं यतिभिः सदा ॥ ६९ ॥ सिद्धमन्नं यदानीतं ब्राह्मणेन
 मठं प्रति । उपपन्नमिति प्राहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ ७० ॥ चरेन्माधूकरं
 भैक्षं यतिर्भ्लेच्छकुलादपि । एकाग्रं नतु भुञ्जीत बृहस्पतिसमादपि । याचि-
 ताऽयाचिताभ्यां च भिक्षाभ्यां कल्पयेत्स्थितम् ॥ ७१ ॥ न वायुः स्पर्शदोषेण
 नाग्निर्दहनकर्मणा । नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाद्वादोषेण मत्सरी ॥ ७२ ॥
 विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे सुक्तवज्जने । कालेऽपराद्धे भूयिष्ठे भिक्षाचरणमा-
 चरेत् ॥ ७३ ॥ अभिशस्तं च पतितं पाषण्डं देवपूजकम् । वर्जयित्वा चरेन्नैक्षं
 सर्ववर्णेषु चापदि ॥ ७४ ॥ घृतं शमूत्रसदृशं मधु स्यात्सुरया समम् । तैलं सूकर-
 मूत्रं स्यात्सूपं लघुनसंमितम् ॥ ७५ ॥ माषापूपादि गोमांसं क्षीरं मूत्रसमं भवेत् ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घृतादीन्वर्जयेद्यतिः । घृतसूपादिसंयुक्तमन्नं नाद्यात्कदाचन
 ॥ ७६ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं स्थितिं नयेत् । पाणिपात्रश्चरन्योगी
 नासकृन्नैक्षमाचरेत् ॥ ७७ ॥ आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः । तदा
 समः स्यात्सर्वेषु सोऽस्मृतत्वाय कल्पते ॥ ७८ ॥ आज्यं रुधिरमिव त्यजेदेक-
 त्राग्रं पलकमिव गन्धलेपनमशुद्धलेपनमिव क्षारमन्यजमिव वस्त्रमुच्छिष्टपात्र-

मिवाभ्यङ्गं स्त्रीसङ्गमिव मित्राह्लादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांसमिव ज्ञातचर-
 देशं चण्डालवाटिकामिव स्त्रियमहिमिव सुवर्णं कालकूटमिव सभास्थलं
 इमशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्राज्ञं न देवतार्थ-
 नम् । प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् ॥ आसनं पात्रलोपश्च संचयः
 शिष्यसंचयः । दिवास्वापो वृथालापो यतेर्बन्धकराणि पद ॥ ७९ ॥ वर्षाभ्योऽन्यत्र
 यत्स्थानमासनं तदुदाहृतम् । उक्तालाब्वादिपात्राणामेकस्यापीह संग्रहः ॥ ८० ॥
 यतेः संन्यवहाराय पात्रलोपः स उच्यते । गृहीतस्य तु दण्डादेर्द्वितीयस्य
 परिग्रहः ॥ ८१ ॥ कालान्तरुपभोगार्थं संचयः परिकीर्तितः । शुश्रूषालाभ-
 पूजार्थं यशोर्थं वा परिग्रहः ॥ ८२ ॥ शिष्याणां नतु कारुण्याच्छिष्यसंग्रह
 ईरितः । विद्या दिवा प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते ॥ ८३ ॥ विद्याभ्यासे
 प्रमादो यः स दिवास्वाप उच्यते । आध्यात्मिकीं कथां मुक्त्वा भिक्षावार्तां
 विना तथा ॥ ८४ ॥ अनुग्रहं परिग्रहं वृथाजल्पोऽन्य उच्यते । एकान्नं मद-
 मात्सर्यं गन्धपुष्पविभूषणम् ॥ ८५ ॥ ताम्बूलाभ्यञ्जने क्रीडा भोगाकाङ्क्षा
 रसायनम् । कथनं कुत्सनं स्वस्ति ज्योतिश्च क्रयविक्रयम् ॥ ८६ ॥ क्रियाकर्म्म
 विवादश्च गुरुवाक्यविलङ्घनम् । संविश्च विग्रहो यानं मञ्चकं शुल्लवस्त्रम्
 ॥ ८७ ॥ शुक्रोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसम् । विपं चैवायुधं बीजं
 हिंसां तैक्ष्ण्यं च मैथुनम् ॥ ८८ ॥ त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम् ।
 गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमातृकुलं धनम् । प्रतिषिद्धानि चैतानि सेवमानो व्रजे-
 दधः ॥ ८९ ॥ सुजीर्णोऽपि सुजीर्णसु विद्वांस्त्रीषु न विश्वसेत् । सुजीर्ण-
 स्वपि कन्थासु सज्जते जीर्णमम्बरम् ॥ ९० ॥ स्थावरं जङ्गमं बीजं तैजसं
 विषमायुधम् । पडेताति न गृह्णीयाद्यतिर्मूर्खपुरीषवत् ॥ ९१ ॥ नैवाददीत
 पाथेयं यतिः किञ्चिदनापदि । पक्कमापत्सु गृह्णीयाद्यावदन्नं न लभ्यते ॥ ९२ ॥
 नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथे वसेत् । परार्थं न प्रतिग्राह्यं न दद्याच्च कथं-
 चन ॥ ९३ ॥ दैन्यभावात् भूतानां सौभगाय यतिश्चरेत् । पक्कं वा यदि
 वाऽपक्वं याचमानो व्रजेदधः ॥ ९४ ॥ अन्नपानपरो भिक्षुर्यस्त्रादीनां प्रति-
 ग्रही । आत्रिकं वाऽनात्रिकं वा तथा पटपटानपि ॥ ९५ ॥ प्रतिगृह्य यति-
 श्चैतान्नास्तत्वेन न मंशयः । अद्वैतं नावमाश्रित्य जीवन्मुक्तत्वमानुयात् ॥ ९६ ॥

चाग्दण्डे मौनमातिष्ठेत्कायदण्डे त्वभोजनम् । मानसे तु कृते दण्डे प्राणा-
यामो विधीयते ॥ ९७ ॥ कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते । तस्मा-
त्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥ ९८ ॥ रथ्यायां बहुवस्त्राणि भिक्षा
सर्वत्र लभ्यते । भूमिः शय्याऽस्ति विस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः ॥ ९९ ॥
प्रपञ्चमखिलं यस्तु ज्ञानामौ जुहुयाद्यतिः । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य सोऽग्नि-
होत्री महायतिः ॥ १०० ॥ प्रवृत्तिर्द्विविधा प्रोक्ता भार्जरी चैव वानरी ।
ज्ञानाभ्यासवतामोतुर्वानरीभाक्त्वमेव च ॥ १०१ ॥ नाष्टः कस्यचिद्भूयान्न
चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडबल्लोक आचरेत् ॥ १०२ ॥
सर्वेषामेव पापानां सङ्घाते समुपस्थिते । तारं द्वादशसाहस्रमभ्यसेच्छेदनं हि
तत् ॥ १०३ ॥ यस्तु द्वादशसाहस्रं प्रणवं जपतेऽन्वहम् । तस्य द्वादशभि-
र्मसैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥ १०४ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति संन्यासोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति संन्यासोपनिषत्समाप्ता ॥ ६८ ॥

परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् ॥ ६९ ॥

परिव्राज्यधर्मवन्तो यज्ज्ञानाद्ब्रह्मतां ययुः ।

तद्ब्रह्म प्रणवैकार्यं तुर्यतुर्यं हरिं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ पितामहः स्वपितरमादिनारायणमुपसमेत्य प्रणम्य प्रप्रच्छ
भगवंस्त्वन्मुखाद्गुणांशमधर्मंक्रमं सर्वं श्रुतं विदितमवगतम् । इदानीं परम-
हंसपरिव्राजकलक्षणं वेदितुमिच्छामि-कः परिव्रजनाधिकारी, कीदृशं परिव्राज-
कलक्षणं, कः परमहंसः, परिव्राजकत्वं कथं, तत्सर्वं मे ब्रूहीति । स होवाच
भगवन्नादिनारायणः । सद्गुरुसमीपे सकलविद्यापरिश्रमज्ञो भूत्वा विद्वान्सर्व-
मैहिकामुष्मिकसुखश्रमं ज्ञात्वैषणात्रयवासनात्रयममत्वाहंकारादिकं वमना-
न्नमिव हेयमधिगम्य मोक्षमार्गैकसाधनो ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् ।
गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेनरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा ।

अथ पुनरब्रवीत् वा ब्रवीत् वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा
यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रज्जेदिति बुद्ध्वा सर्वसंसारेषु विरक्तो ब्रह्मचारी गृही
वानप्रस्थो वा पितरं मातरं कलत्रपुत्रमासबन्धुवर्गं तदभावे शिष्यं सहवासिनं
वाऽनुमोदयित्वा तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति तदु तथा न कुर्यात् ।
आग्नेय्यामेव कुर्यात् । अग्निर्हि प्राणः प्राणमेवैतया करोति त्रैधातवीयामेव
कुर्यात् । एतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति । अयं ते योनिर्क-
त्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथानो वर्धया रयिमि-
त्यनेन मन्त्रेणाग्निमाजिघ्रेत् । एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ
स्वाहेत्येवमेवैतदाह । ग्रामाच्छ्रोत्रियागारादग्निमाहृत्य स्वविध्युक्तक्रमेण पूर्वव-
दग्निमाजिघ्रेत् । यद्यातुरो वाग्निं न विन्देदप्सु जुहुयात् । आपो वै सर्वा देवताः
सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य प्राश्नीयात् साज्यं हविरनाम-
यम् । एष विधिर्वीराध्वाने वाऽनाशके वा संप्रवेशे वाऽग्निप्रवेशे वा महाप्र-
स्थाने वा । यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेदेष पन्थाः । स्वस्थक्रमेणैव
चेदात्मश्राद्धं विरजाहोमं कृत्वाऽग्निमात्मन्यारोप्य लौकिकवैदिकसामर्थ्यं स्वच-
तुर्दशकरणप्रवृत्तिं च पुत्रे समारोप्य तदभावे शिष्ये वा तदभावे स्वात्मन्येव
वा ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वमित्यभिमन्त्र्य ब्रह्मभावनया ध्यात्वा सावित्रीप्रवेशपूर्वक-
मप्सु सर्वविद्यार्थस्वरूपां ब्राह्मण्याधारां वेदमातरं क्रमाद्व्याहृतिषु त्रिषु प्रविलाप्य
व्याहृतित्रयमकारोकारमकारेषु प्रविलाप्य तत्सावधानेनापः प्राश्य प्रणवेन
शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीतं छिन्वा वस्त्रमपि भूमौ वाऽप्सु वा विसृज्य ॐ भूः
स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्यनेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूपं
ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणवव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया संन्यस्तं
मया संन्यस्तं मयेति मन्त्रमध्यमतारध्वनिभिस्त्रिवारं त्रिगुणीकृतप्रेषोच्चारणं
कृत्वा प्रणवैकध्यानपरायणः सन्नभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यूर्ध्वबाहुभूत्वा
ब्रह्माऽहमस्मीति तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थस्वरूपानुसंधानं कुर्वन्नुदीचीं दिशं
गच्छेत् । जातरूपधरश्चरेत् । एष संन्यासः । तदधिकारी न भवेद्यदि गृह-
स्थप्रार्थनापूर्वकमभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते सखा मा गोपायौजः
सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वात्रैन्नः शर्म मे भव यत्पापं तज्जिवारयेत्यनेन
मन्त्रेण प्रणवपूर्वकं सलक्षणं वैणवं दण्डं कटिसूत्रं कौपीनं कमण्डलुं धिवर्ण-
वस्त्रमेकं परिगृह्य सद्गुरुमुपगम्य नत्वा गुरुमुखात्तत्त्वमसीति महावाक्यं प्रणव-

पूर्वकमुपलभ्याः । 'जीर्णवल्कलाजिनं धृत्वाथ जलावतरणमूर्ध्वगमनमेकभिक्षां
 परित्यज्य त्रिकालज्ञानमाचरन्वेदान्तश्रवणपूर्वकं प्रणवानुष्ठानं कुर्वन्ब्रह्ममार्गे
 सम्यक्संपन्नः स्वाभिमतमात्मनि गोपयित्वा निर्भमोऽध्यात्मनिष्ठः काम-
 क्रोधलोभमोहमदमात्सर्यदम्भदर्पाहंकारासूयागर्वेच्छाद्वेषहर्षामर्षममत्वादींश्च
 हित्वा ज्ञानवैराग्ययुक्तो वित्तस्त्रीपराश्रुखः शुद्धमानसः सर्वोपनिषदर्थमालोच्य
 ब्रह्मचर्यापरिग्रहाहिंसासत्यं यत्नेन रक्षयितेन्द्रियो बहिरन्तःस्रेहवर्जितः शरीर-
 संचारणार्थं वा 'त्रिषु वर्णेष्वभिज्ञस्तपतितवर्जितेषु पशुरद्रोही भैक्षमाणो
 ब्रह्मभूयाय भवति । सर्वेषु कालेषु लाभालाभौ समौ कृत्वा करपात्रमाधूकरे-
 णात्मभक्षन्मेदोवृद्धिमकुर्वन्कृशीभूत्वा ब्रह्माहमस्मीति भावयन्गुर्वर्थं ग्राममुपेत्य
 ध्रुवशीलोऽष्टौ मास्येकाकी चरेद्वावेवाचरेत् । यदाळंबुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको
 वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं
 कमण्डलुं सर्वमप्यु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् । ग्राम एकरात्रं तीर्थं त्रिरात्रं
 पत्तने पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रमनिकेतः स्थिरमतिरनग्निलेखी निर्विकारो नियमा-
 नियममुत्सृज्य प्राणसंचारणार्थमयमेव लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृथा भैक्ष-
 माचरन्बुदकस्थलकमण्डलुरवाधकरहस्यस्थलवासो न पुनर्लाभालाभरतः शुभा-
 शुभकर्मनिर्मूलनपरः सर्वत्र भूतलशयनः क्षौरकर्मपरित्यक्तो युक्तचातुर्मास्य-
 व्रतनियमः शुक्लध्यानपरायणोऽर्थस्त्रीपुत्रपराश्रुखोऽनुन्मत्तोऽप्युन्मत्तवदाचरन्
 व्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारो दिव्यानक्तसमत्वेनास्वप्नः स्वरूपानुसंधानब्रह्मप्राणवध्या-
 नमार्गेणावहितः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसपरिव्राजको भवति ।
 भगवन् ब्रह्मप्रणवः कीदृश इति ब्रह्मा पृच्छति । स होवाच नारायणः ।
 ब्रह्मप्रणवः षोडशमात्रात्मकः सोऽवस्थाचतुष्टयचतुष्टयगोचरः । जाग्रदवस्थायां
 जाग्रदादिचतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादिचतस्रोऽवस्थाः सुषुप्तौ सुषुप्त्यादिचत-
 स्रोऽवस्थास्तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्था भवन्तीति । जाग्रदवस्थायां विश्वस्य
 चातुर्विध्यं विश्वत्रिश्वो विश्वतैजसो विश्वप्राज्ञो विश्वतुरीय इति । स्वप्नावस्थायां
 तैजसस्य चातुर्विध्यं तैजसविश्वसैजसतैजससैजसप्राज्ञसैजसतुरीय इति । सुषु-
 प्त्यवस्थायां प्राज्ञस्य चातुर्विध्यं प्राज्ञविश्वः प्राज्ञतैजसः प्राज्ञप्राज्ञः प्राज्ञतुरीय
 इति । तुरीयावस्थायां तुरीयस्य चातुर्विध्यं तुरीयविश्वस्तुरीयतैजसस्तुरीयप्राज्ञस्तु-
 रीयतुरीय इति । ते क्रमेण षोडशमात्रारूढा अकारे जाग्रद्विश्व उकारे जाग्रदै-

जसो मकार जाग्रप्प्राज्ञ अर्धमात्रायां जाग्रत्तुरीयो बिन्दौ स्वप्नविश्वो नादे स्वप्न-
 तैजसः कलायां स्वप्नप्राज्ञः कलातीते स्वप्नतुरीयः शान्तौ सुषुप्तविश्वः शान्त्यतीते
 सुषुप्ततैजस उन्मन्यां सुषुप्तप्राज्ञो मनोन्मन्यां सुषुप्ततुरीयः तुया तुरीयविश्वो
 मध्यमायां तुरीयतैजसः पश्यन्त्यां तुरीयप्राज्ञः परायां तुरीयतुरीयः । जाग्र-
 न्मात्राचतुष्टयमकारांशं स्वप्नमात्राचतुष्टयमुकारांशं सुषुप्तिमात्राचतुष्टयं मका-
 रांशं तुरीयमात्राचतुष्टयमर्धमात्रांशम् । अयमेव ब्रह्मप्रणवः । स परमहंस-
 तुरीयातीतावधूतैरुपास्यः । तेनैव ब्रह्म प्रकाशते तेन विदेहमुक्तिः । भगवन्
 कथमयज्ञोपवीत्यशिखी सर्वकर्मपरित्यक्तः कथं ब्रह्मनिष्ठापरः कथं ब्राह्मण इति
 ब्रह्मा पृच्छति । स होवाच विष्णुर्भो भोऽर्भक यस्यास्त्यद्वैतमात्मज्ञानं तदेव
 यज्ञोपवीतम् । तस्य ध्याननिष्ठैव शिखा । तत्कर्म स पवित्रम् । स सर्वकर्म-
 कृत् । स ब्राह्मणः । स ब्रह्मनिष्ठापरः । स देवः । स ऋषिः । स तपस्वी । स
 श्रेष्ठः । स एव सर्वज्येष्ठः । स एव जगद्गुरुः । स एवाहं विद्धि । लोके परम-
 हंसपरिव्राजको दुर्लभतरो यद्येकोऽस्ति । स एव नित्यपूतः । स एव वेदगुरुषो
 महागुरुषो यस्तच्चित्तं मध्येवावतिष्ठते । अहं च तस्मिन्नेवावस्थितः । स एव
 नित्यतृप्तः । स श्रीतोष्णसुखदुःखमानावमानवर्जितः । स निन्दामर्षसहिष्णुः ।
 स षड्भिवर्जितः । षड्भावविकारशून्यः । स ज्येष्ठाज्येष्ठव्यवधानरहितः । स
 स्वव्यतिरेकेण नान्यद्रष्टा । आशाम्बरो ननमस्कारो नस्वाहाकारो नस्वधा-
 कारश्च नविसर्जनपरो निन्दास्तुतिव्यतिरिक्तो नमन्नतन्नोपासको देवान्तर-
 ध्यानशून्यो लक्ष्यालक्ष्यनिवर्तकः सर्वोपरतः स सच्चिदानन्दाद्वयचिद्धनः
 संपूर्णानन्दैकबोधो ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवानुसंधानेन यः कृतकृत्यो
 भवति स ह परमहंसपरिव्राडित्युपनिषत् ॥ १ ॥

हरिः ॐ तत्सत् ।

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्समाप्ता ॥ ६९ ॥

अक्षमालिकोपनिषत् ॥ ७० ॥

अकारादिक्षकारान्तवर्णजातकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ प्रजापतिर्गुहं पप्रच्छ भो ब्रह्मक्षमालामेदविधिं ब्रूहीति ।
 सा किंलक्षणा, कति भेदा अस्याः, कति सूत्राणि, कथं घटनाप्रकारः, के वर्णाः,

का प्रतिष्ठा, कैवास्याधिदेवता, किं फलं चेति । तं गुह्यः प्रत्युवाच प्रवालमौक्ति-
 कस्फटिकशङ्करजताष्टापदचन्दनपुत्रजीविकावजे रुद्राक्ष इति । आदिक्षान्तमूर्तिः
 सावधानभावा । सौवर्णं राजतं ताम्रं चेति सूत्रत्रयम् । तद्विवरे सौवर्णं तद्व-
 क्षपार्थं राजतं तद्वामे ताम्रं तन्मुखे मुखं तत्पुच्छे पुच्छं तदन्तरावर्तनक्रमेण
 योजयेत् । यदस्यान्तरं सूत्रं तद्ब्रह्म । यद्वक्षपार्थं तच्छैवम् । यद्वामे तद्वैष्णवम् ।
 यन्मुखं सा सरस्वती । यत्पुच्छं सा गायत्री । यत्सुषिरं सा विद्या । या
 ग्रन्थिः सा प्रकृतिः । ये स्वरास्ते धवलाः । ये स्पर्शास्ते पीताः । ये परास्ते
 रक्ताः । अथ तां पञ्चभिर्गन्धैरमृतैः पञ्चभिर्गन्धैस्तनुभिः शोधयित्वा पञ्चभिर्ग-
 न्धैर्गन्धोदकेन संक्षाल्य तस्मात्सोङ्कारेण पत्रकूर्चैर्न स्रपयित्वाऽष्टभिर्गन्धैरालिप्य
 सुमनःस्थले निवेद्याक्षतपुष्पैराराध्य प्रत्यक्षमादिक्षान्तैर्वर्णैर्भावयेत् । ओम-
 ङ्कार मृत्युञ्जय सर्वव्यापक प्रथमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमाङ्काराकर्षणात्मक सर्व-
 गत द्वितीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमिङ्कार पुष्टिदाक्षोभकर तृतीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ओमीङ्कार वाक्प्रसादकर निर्मल चतुर्थेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमुङ्कार सर्वबलप्रद
 सारतर पञ्चमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमूङ्कारोच्चाटनकर दुःसह षष्ठेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ओमृङ्कार संक्षोभकर चञ्चल सप्तमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमृङ्कार संमोहनकरोज्ज्व-
 लाष्टमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओम्लङ्कार विद्वेषणकर मोहक नवमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ओम्लङ्कार मोहकर दशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमेङ्कार सर्ववश्यकर शुद्धसत्त्वै-
 कादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमैङ्कार शुद्धसात्विक पुरुषवश्यकर द्वादशेऽक्षे प्रति-
 तिष्ठ । ओमोङ्काराखिलवाङ्माय नित्यशुद्ध त्रयोदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमौङ्कार
 सर्ववाङ्माय वश्यकर चतुर्दशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमङ्कार गजादिवश्यकर मोहन
 पञ्चदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमःकार मृत्युनाशनकर रौद्र षोडशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ कङ्कार सर्वविषहर कल्याणद सप्तदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ खङ्कार सर्व-
 क्षोभकर व्यापकाष्टादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ गङ्कार सर्वविघ्नशमन महत्तरैकोन-
 विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ घङ्कार सौभाग्यद स्तम्भनकर विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ ङङ्कार सर्वविषनाशकरोग्रैकविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ चङ्काराभिचारघ्न क्रूर
 द्वाविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ छङ्कार भूतनाशकर भीषण त्रयोविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ जङ्कार कृत्यादिनाशकर दुर्धर्ष चतुर्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ झङ्कार भूत-
 नाशकर पञ्चविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ ञङ्कार मृत्युप्रमथन षड्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।

ॐ ढङ्कार सर्वन्याधिहर सुभग ससर्विशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ ढङ्कार चन्द्र-
 रूपाष्टाविंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ ढङ्कार गरुडात्मक विषम शोभनैकोनत्रिंशोऽक्षे
 प्रतितिष्ठ । ॐ ढङ्कार सर्वसंपत्प्रद सुभग त्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ णङ्कार सर्व-
 सिद्धिप्रद मोहकरैकत्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ तङ्कार धनधान्यादिसंपत्प्रद प्रसन्न
 द्वात्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ थङ्कार धर्मप्राप्तिकर निर्मल त्रयस्त्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ दङ्कार पुष्टिवृद्धिकर प्रियदर्शन चतुस्त्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ धङ्कार
 विषज्वरनिघ्न विपुल पञ्चत्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ नङ्कार भुक्तिमुक्तिप्रद शान्त
 षट्त्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ पङ्कार विषविघ्ननाशन भव्य सप्तत्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ
 ॐ फङ्काराणिमादिसिद्धिप्रद ज्योतीरूपाष्टत्रिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ बङ्कार
 सर्वदोषहर शोभनैकोनचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ भङ्कार भूतप्रशान्तिकर
 भयानक चत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ मङ्कार विद्वेषिमोहनकरैकचत्वारिंशोऽक्षे
 प्रतितिष्ठ । ॐ यङ्कार सर्वन्यापक पावन द्विचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ रङ्कार दाहकर विकृत त्रिचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ लङ्कार विश्वभर
 भासुर चतुश्चत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ वङ्कार सर्वाप्यायनकर निर्मल
 पञ्चचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ शङ्कार सर्वफलप्रद पवित्र पदचत्वारिंशोऽक्षे
 प्रतितिष्ठ । ॐ षङ्कार धर्मार्थकामद धवल सप्तचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
 ॐ सङ्कार सर्वकारण सार्ववर्णिकाष्टचत्वारिंशोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ हङ्कार
 सर्ववाङ्मय निर्मलैकोनपञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ लङ्कार सर्वशक्तिप्रद प्रधान
 पञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ क्षङ्कार परापरतत्त्वज्ञापक परंज्योतीरूप शिखामणौ
 प्रतितिष्ठ । अथोवाच ये देवाः पृथिवीपदस्तेभ्यो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु
 शोभायै पितरोऽनुमदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् । अथोवाच ये
 देवा अन्तरिक्षसदस्तेभ्य ॐ नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभायै पितरोऽनु-
 मदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् । अथोवाच ये देवा दिविपदस्तेभ्यो
 नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्ष-
 मालिकाम् । अथोवाच ये मन्त्रा या विद्यास्तेभ्यो नमस्ताभ्यश्चोन्नमस्त-
 च्छक्तिरस्याः प्रतिष्ठापयति । अथोवाच ये ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तेभ्यः सगुणेभ्य
 ॐ नमस्तद्वीर्यमस्याः प्रतिष्ठापयति । अथोवाच ये सांख्यादितत्त्वभेदास्तेभ्यो
 नमो वर्तध्वं विरोधेऽनुवर्तध्वम् । अथोवाच ये शैवा वैष्णवाः शाक्ताः
 शतसहस्रशस्तेभ्यो नमो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु नुगृह्यन्तु । अथोवाच

याश्च मृत्योः प्राणवत्यस्ताभ्यो नमो नमस्तेनैतं मृडयत मृडयत । पुनरेतस्यां
 सर्वात्मकत्वं भावयित्वा भावेन पूर्वमालिकामुत्पाद्यारभ्य तन्मयीं महोपहारै-
 रूपहृत्यादिक्षान्तैरक्षरैरक्षमालामष्टोत्तरशतं स्पृशेत् । अथ पुनरुत्थाप्य
 प्रदक्षिणीकृत्यो नमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्षमाले सर्ववशंकृत्यो नमस्ते भगवति
 मन्त्रमातृकेऽक्षमालिके शेषस्तम्भिभ्यो नमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्षमाले
 उच्चाटन्यो नमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्षमाले विश्वामृत्यो मृत्युंजयस्वरूपिणि
 सकललोकोद्दीपिणि सकललोकरक्षाधिके सकललोकोज्जीविके सकललोको-
 त्पादिके दिवाप्रवर्तिके रात्रिप्रवर्तिके नद्यन्तरं यासि देशान्तरं यासि
 द्वीपान्तरं यासि लोकान्तरं यासि सर्वदा स्फुरसि सर्वहृदि वाससि । नमस्ते
 परारूपे नमस्ते पद्म्यन्तीरूपे नमस्ते मध्यमारूपे नमस्ते वैखरीरूपे सर्वतत्त्वा-
 त्तिके सर्वविद्यात्मिके सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके वसिष्ठेन मुनिनाराधिते
 विश्वामित्रेण मुनिनोपजीव्यमाने नमस्ते नमस्ते । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं
 नाशयति । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । तत्सायंप्रातः प्रयुञ्जानः
 पापोऽपापो भवति । एवमक्षमालिकया जप्तो मन्त्रः सद्यःसिद्धिकरो भवतीत्याह
 भगवान्गुहः प्रजापतिमित्युपनिषत् ॥ १ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥

इत्यक्षमालिकोपनिषत्समाप्ता ॥ ७० ॥

अन्यक्तोपनिषत् ॥ ७१ ॥

स्वाज्ञानासुरराट्प्रासस्वज्ञाननरकेसरी ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं ब्रह्ममात्रं करोतु माम् ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ पुरा किलेदं न किञ्चनासीन्न द्यौर्नान्तरिक्षं न पृथिवी केवलं
 ज्योतीरुपमनाद्यनन्तमनण्वस्थूलरूपमरूपं रूपवदविशेषं ज्ञानरूपमानन्दम-
 यमासीत् । तदनन्यत्तद्ब्रह्माऽभूद्धरितमेकं रक्तमपरम् । तत्र यद्रक्तं तत्पुंसो
 रूपमभूत् । यद्धरितं तन्मायायाः । तौ समगच्छतः । तयोर्वीर्यमेवमनन्दत् ।
 तदवर्धत । तदण्डमभूद्धैमम् । तत्परिणममानमभूत् । ततः परमेष्ठी व्यजा-
 यत । सोऽभिजिज्ञासत किं मे कुलं किं मे कृत्यमिति । तं ह वागदृश्यमाना
 ऽभ्युवाच-भो भो प्रजापते त्वमन्यक्तादुत्पन्नोऽसि व्यक्तं, ते कृत्यमिति । किम-

व्यक्तं यस्मादहमासिषम् । किं तद्व्यक्तं यन्मे कृत्यमिति । साऽब्रवीदविज्ञेयं हि तत्सौम्य तेजः । यदविज्ञेयं तदव्यक्तम् । तच्छेज्जिज्ञाससि माऽवगच्छेति । स होवाच कैषा त्वं ब्रह्मवाग्यदसि शंसात्मानमिति । सा त्वब्रवीत्तपसा मां विजिज्ञासस्वेति । स ह सहस्रं समा ब्रह्मचर्यमध्युवासाध्युवास ॥ १ ॥ अथापश्यद्वचमानुष्टुभीं परमां विद्यां यस्याङ्गान्यन्ये मन्त्राः । यत्र ब्रह्म प्रतिष्ठितम् । विश्वेदेवाः प्रतिष्ठिताः । यस्तां न वेद किमन्यैर्वेदैः करिष्यति । तां विदित्वा स च रक्तं जिज्ञासयामास । तामेवमनूचानां गायन्नासिष्ट । सहस्रं समा आद्यन्तनिहितोङ्करेण पदान्यगायत् । सहस्रं समास्तथैवाक्षरशः । ततोऽपश्यज्योतिर्मयं श्रियालिङ्गितं सुपर्णरथं शेषफणाच्छादितमौलिं मृगमुखं नरवपुषं शशिसूर्यहव्यवाहनात्मकनयनत्रयम् । ततः प्रजापतिः प्रणिपपात नमो नम इति । तथैवर्चाथ तमस्मैत् । उग्रमित्याह उग्रः खलु वा एष मृगरूपत्वात् । वीरमित्याह वीरो वा एष वीर्यवत्त्वात् । महाविष्णुमित्याह महतां वा अयं महाब्रोदसी व्याप्य स्थितः ज्वलन्तमित्याह ज्वलन्निव खल्वसाववस्थितः । सर्वतोमुखमित्याह सर्वतः खल्वयं मुखवान्विश्वरूपत्वात् । नृसिंहमित्याह यथा यजुरेवैतत् । भीषणमित्याह भीषा वा अस्मादादित्य उदेति भीतश्चन्द्रमा भीतो वायुर्वाति भीतोऽग्निर्दहति भीतः पर्जन्यो वर्षति । भद्रमित्याह भद्रः खल्वयं श्रिया जुष्टः । मृत्योर्मृत्युमित्याह मृत्योर्वा अयं मृत्युरमृतत्वं प्रजानामन्नादानाम् । नमामित्याह यथा यजुरेवैतत् । अहमित्याह यथा यजुरेवैतत् ॥ २ ॥ अथ भगवांस्तमब्रवीत्प्रजापते प्रीतोऽहं किं तवेप्सितं तदाशंसेति । स होवाच भगवन्नव्यक्तादुत्पन्नोऽस्मि व्यक्तं मम कृत्यमिति पुराऽश्रवि । तत्राव्यक्तं भवानित्यज्ञायि व्यक्तं मे कथयेति । व्यक्तं वै विश्वं चराचरात्मकम् । यद्व्यज्यते तद्व्यक्तस्य व्यक्तत्वमिति । स होवाच न शक्नोमि जगत्सद्गुमुपायं मे कथयेति । तमुवाच पुरुषः प्रजापते शृणु सृष्टेरुपायं परमं यं विदित्वा सर्वं ज्ञास्यसि । सर्वत्र शक्यसि सर्वं करिष्यसि । मध्यमोऽस्मात्मानं हविर्ध्यायेत्तथैवाऽनुष्टुभर्चा । ध्यानयज्ञोऽयमेव । एतद्वै महोपनिषद्देवानां गुह्यम् । न ह वा । एतस्य साम्ना नर्चा न यजुषाऽर्थो नु विद्यते । य इमा वेद स सर्वान्कामानवाप्य सर्वालोकाञ्जित्वा मामेवाभ्युपैति न स पुनरावर्तते य एवं वेदेति ॥ ३ ॥ प्रजापतिस्तं यज्ञाय वसीयांसमात्मानं मन्यमानो मनोयज्ञेनेजे । सप्रणवया तथैवर्चा

हविर्ध्यात्वाऽऽत्मानमात्मन्यभौ जुहुयात् । सर्वमजानात्सर्वत्राशक्तस्सर्वमकरोत् ।
य एवं विद्वानिमं ध्यानयज्ञमनुतिष्ठेत्स सर्वज्ञोऽनन्तशक्तिः सर्वकर्ता भवति । स
सर्वल्लोकाजित्वा ब्रह्म परं प्राप्नोति ॥ ४ ॥ अथ प्रजापतिर्लोकान्सिसृक्षमाण-
स्तस्या एव विद्याया यानि त्रिंशदक्षराणि तेभ्यस्त्रीं ल्लोकान् । अथ द्वे द्वे अक्षरे
ताभ्यामुभयतो दधार । तस्या एवर्चो द्वात्रिंशद्विंशदक्षरैस्तान्देवान्निर्ममे । सर्वै-
रेव स इन्द्रोऽभवत् । तस्मादिन्द्रो देवानामधिकोऽभवत् । य एवं वेद समा-
नानामधिको भवेत् । तस्या एकादशभिः पादैरेकादश रुद्रान्निर्ममे । तस्या
एकादशभिरेकादशादित्यान्निर्ममे । सर्वैरेव स विष्णुरभवत् । तस्माद्विष्णुरा-
दित्यानामधिकोऽभवत् । य एवं वेद समानानामधिको भवेत् । स चतु-
र्भिश्चतुर्भिरक्षरैरष्टौ वसूनजनयत् । स तस्या आद्यैर्द्वादशभिरक्षरैर्ब्राह्मणम-
जनयत् । दशभिर्दशभिर्विदक्षत्रे । तस्माद्ब्राह्मणो मुख्यो भवति । एवं
तन्मुख्यो भवति य एवं वेद । तूष्णीं ब्रूद्वमजनयत्तस्माच्छूद्रो निर्विघ्नो-
ऽभवत् । न वेदं दिवा न नक्तमासीदव्यावृत्तं । स प्रजापतिरानुष्टुभाभ्या-
मर्धर्चाभ्यामहोरात्रावकल्पयत् । ततो व्यैच्छत् व्येवासा उच्छति । अथो
तम एवापहते । ऋग्वेदमस्या आद्यात्पादादकल्पयत् । यजुर्द्वितीयात् । साम
तृतीयात् । अथर्वाङ्गिरसश्चतुर्थात् । यदष्टाक्षरपदा तेन गायत्री । यदेकादश-
पदा तेन त्रिष्टुप् । यच्चतुष्पदा तेन जगती । यद्द्वात्रिंशदक्षरा तेनानुष्टुप् । सां
वा एषा सर्वाणि छन्दांसि । य इमां सर्वाणि छन्दांसि वेद । सर्वं जगदानु-
ष्टुभ एवोत्पन्नमनुष्टुप्प्रतिष्ठितं प्रतितिष्ठति यश्चैवं वेद ॥ ५ ॥ अथ यदा प्रजाः
सृष्टा न जायन्ते प्रजापतिः कथं न्विमाः प्रजाः सृजेयमिति चिन्तयन्नुग्रसि-
तीमामृचं गातुमुपाक्रामत् । ततः प्रथमपादादुग्ररूपो देवः प्रादुरभूत् । एकः
श्यामः पुरतो रक्तः पिनाकी स्त्रीपुंसरूपस्तं विभज्य स्त्रीषु तस्य स्त्रीरूपं पुंसि
च पुंरूपं व्यधात् । स उभाभ्यामंशाभ्यां सर्वमादिष्टः । ततः प्रजाः प्रजा-
यन्ते । य एवं वेद प्रजापतेः सोऽपि त्र्यम्बक इमामृचमुद्गायन्बुद्धयितजटाक-
लापः प्रत्यग्योतिष्यात्मन्येव रन्तारमिति । इन्द्रो वै किल देवानामनुजावर
आसीत् । तं प्रजापतिरब्रवीद्ब्रूच्च देवानामधिपतिर्भवेति । सोऽगच्छत् । तं
देवा ऊचुरनुजावरोऽसि त्वमश्नाकं कुतस्तवाधिपत्यमिति । स प्रजापतिमभ्ये-

स्योवाचैवं देवा ऊचुरनुजावरस्य कुतस्तवाधिपत्यमिति । तं प्रजापतिरिन्द्रं
 त्रिकलशैरमृतपूर्णैरानुष्टुभाऽभिमन्त्रितैरभिषिच्य तं सुदर्शनेन दक्षिणतो ररक्ष
 पाञ्चजन्येन वामतो द्वयेनैव सुरक्षितोऽभवत् । रौक्मे फलके सूर्यवर्चसि
 मन्त्रमानुष्टुभं विन्यस्य तदस्य कण्ठे प्रत्यमुञ्चत् । ततः सुदुर्निरीक्षोऽभवत् । तस्मै
 विद्यामानुष्टुभीं प्रादात् । ततो देवास्तमाधिपत्यायानुमेनिरे । स स्वराडभूत् ।
 य एवं वेद स्वराड भवेत् । सोऽमन्यत पृथिवीमपि कथमपां जयेयमिति । स
 प्रजापतिमुपाधावत् । तस्मात्प्रजापतिः कमठाकारमिन्द्रनागभुजगेन्द्राधारं
 भद्रासनं प्रादात् । स पृथिवीमभ्यजयत् । ततः स उभयोर्लोकयोरधिपति-
 रभूत् । य एवं वेदोभयोर्लोकयोरधिपतिर्भवति । स पृथिवीं जयति यो वा
 नप्रतिष्ठितं शिथिलं भ्रातृव्येभ्यः परमात्मानं मन्यते । स एतमासीनमभिति-
 षेत् । प्रतिष्ठितोऽशिथिलो भ्रातृव्येभ्यो वसीयान्भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद
 ॥ ६ ॥ य इमां विद्यामधीते स सर्वान्वेदानधीति । स सर्वैः क्रतुभिर्यजते । स
 सर्वतीर्थेषु स्नाति । स महापातकोपपातकैः प्रमुच्यते । स ब्रह्मवर्चसं महदा-
 मुयात् । आ ब्रह्मणः पूर्वानाकल्पांश्चोत्तरांश्च वंश्यान्पुनीते । नैनमपस्मारादथो
 रोगा आदिधेयुः । स यक्षाः संप्रेतापिशाचा अन्येनं स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा श्रुत्वा वा
 पापिनः पुण्याल्लोकानवानुयुः । चिन्तितमात्रादस्य सर्वेऽर्धाः सिद्ध्येयुः । पितर-
 दिवैनं सर्वे मन्यन्ते । राजानश्चास्यादेशकारिणो भवन्ति । न चाचार्यज्यति-
 रिक्तं श्रेयांसं दृष्ट्वा नमस्कुर्यात् । न चास्मादुपाधरोहेत् । जीवन्मुक्तश्च भवति ।
 देहान्ते तमयः परं धाम प्राप्नुयात् ॥ यत्र विराण् नृसिंहोऽवभासते तत्र
 खट्वायते । तस्मिन्मन्त्रानमरा मुनय आकल्पन्ते तस्मिन्नेवात्मनि लीयन्ते ।
 न च पुनरायन्ते । न केन विद्यामश्नुमानाय मृयाद्यासूयायते नानूचा-
 नाय नाविष्णुभक्षाय नादृष्टिने नातपसे नामान्ताय नाशान्ताय नादीक्षि-
 ताय नाधर्मशीलाय न हिलकाय नामहाचारिण इत्येवैवमिति ॥ ७ ॥
 हरिः ॐ स्वस्त्यु ॥

ॐ आन्यथान्विते शान्तिः ॥

इत्यथ श्रीपद्मपुराणे ॥ ७१ ॥

एकाक्षरोपनिषत् ॥ ७२ ॥

एकाक्षरपदारूढं सर्वात्मकमखण्डितम् ।

सर्ववर्जितचिन्मात्रं त्रिपञ्चारायणं भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ एकाक्षरं त्वक्षरेऽत्रास्ति सोमे सुपुत्रायां चेह दृढी स एकः । त्वं विश्वभूर्भूतपतिः पुराणः पर्जन्य एको भुवनस्य गोप्ता ॥ १ ॥ विश्वे निमग्नः पदवीः कवीनां त्वं जातवेदो भुवनस्य नाथः । अजातमग्रे स हिरण्यरेता यज्ञस्त्वमेवैकविभुः पुराणः ॥ २ ॥ प्राणः प्रसृतिर्भुवनस्य योनिर्व्याप्तं त्वया एकपदेन विश्वम् । त्वं विश्वभूर्योनिपराः स्वर्गर्भे कुमार एको विशिखः सुधन्वा ॥ ३ ॥ वितत्य बाणं तरुणार्कवर्णं व्योमान्तरे भासि हिरण्यगर्भः । भासा त्वया व्योम्नि कृतः सुताक्षर्यस्त्वं वै कुमारस्त्वमरिष्टनेमिः ॥ ४ ॥ त्वं वज्रभृद्भूतपतिस्त्वमेव कामः प्रजानां निहितोऽसि सोमे । स्वाहा स्वधा यच्च वषट् करोति रुद्रः पशूनां गुह्या निमग्नः ॥ ५ ॥ धाता विधाता पवनः सुपर्णो विष्णुर्वराहो रजनी रैहश्च । भूतं भविष्यत्प्रभवः क्रियाश्च कालः क्रमस्त्वं परमाक्षरं च ॥ ६ ॥ ऋचो यजूंषि प्रसवन्ति वक्रात्सामानि सम्राड्सुरन्तरिक्षम् । त्वं यज्ञनेता हुतभुविभुश्च रुद्रास्तथा दैत्यगणा वसुश्च ॥ ७ ॥ स एष देवोऽम्बरगश्च चक्रे अन्येऽभ्यधिष्ठेत् तमो निरुन्ध्यः । हिरण्यमयं यस्य विभाति सर्वं व्योमान्तरे रश्मिभिर्वांशुनाभिः ॥ ८ ॥ स सर्ववेत्ता भुवनस्य गोप्ता ताभिः प्रजानां निहिता जनानाम् । प्रोता त्वमोता विचितिः क्रमाणां प्रजापतिश्छन्दमयो विगर्भः ॥ ९ ॥ सामैश्विदन्तो विरजश्च बाहु हिरण्यमयं वेदविदां वरिष्ठम् । यमध्वरे ब्रह्मविदः स्तुवन्ति सामैर्यजुर्भिः क्रतुभिस्त्वमेव ॥ १० ॥ त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च कुमार एकस्त्वं वै कुमारी ह्यथ भूस्त्वमेव । त्वमेव धाता वरुणश्च राजा त्वं वत्सरोऽइय्यम एव सर्वम् ॥ ११ ॥ मित्रः सुपर्णश्चन्द्र इन्द्रो वरुणो रुद्रस्त्वष्टा विष्णुः सविता गोपतिस्त्वम् । त्वं विष्णुर्भूतानि तु त्रासि दैत्यांस्त्वयाऽऽवृतां जगदुद्भवगर्भः ॥ १२ ॥ त्वं भूर्भुवः स्वस्त्वं

हि स्वयंभूरथ विश्वतोमुखः । य एवं नित्यं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं सर्व-
भूतं हिरण्मयम् ॥ १३ ॥ हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान्बुद्धि-
मतीत्य तिष्ठतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इत्येकाक्षरोपनिषत्समाप्ता ॥ ७२ ॥

अन्नपूर्णोपनिषत् ॥ ७३ ॥

सर्वापहवसंसिद्धब्रह्ममात्रतयोज्ज्वलम् ।

त्रैपदं श्रीरामतत्त्वं स्वमात्रमिति भावये ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ निदाघो नाम योगीन्द्र ऋभुं ब्रह्मविदां वरम् । प्रणम्य दण्डव-
ज्झमाबुत्थाय स पुनर्मुनिः ॥ १ ॥ आत्मतत्त्वमनुब्रूहीत्येवं पप्रच्छ सादरम् ।
कयोपासनया ब्रह्मशीदृशं प्राप्तवानसि ॥ २ ॥ तां मे ब्रूहि महाविद्यां मोक्ष-
साम्राज्यदायिनीम् । निदाघ त्वं कृतार्थोऽसि शृणु विद्यां सनातनीम् ॥ ३ ॥
यस्या विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भविष्यसि । मूलशृङ्गाटमध्यस्था बिन्दुनाद-
कलाश्रया ॥ ४ ॥ नित्यानन्दा निराधारा विख्याता विलसत्कचा । विष्टपेक्षी
महालक्ष्मीः कामस्तारो नतिस्तथा ॥ ५ ॥ भगवत्यन्नपूर्णैति ममाभिलषितं
ततः । अन्नं देहि ततः स्वाहा मन्त्रसारेति विश्रुता ॥ ६ ॥ सप्तविंशतिवर्णात्मा
योगिनीगणसेविता ॥ ७ ॥ ऐं ह्रीं सौं श्रीं ह्रीं ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णै
ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा । इति पित्रोपदिष्टोऽस्मि तदादिनियमः
स्थितः । कृतवान्स्वाश्रमाचरो मन्त्रानुष्ठानमन्वहम् ॥ ८ ॥ एवं गते बहुदिने
प्रादुरासीन्ममाग्रतः । अन्नपूर्णा विशालाक्षी स्मयमानमुखाम्बुजा ॥ ९ ॥ तां
दृष्ट्वा दण्डवज्झूमौ नत्वा प्राञ्जलिरास्थितः । अहो वत्स कृतार्थोऽसि वरं वरय
मा चिरम् ॥ १० ॥ एवमुक्तो विशालाक्षया मयोक्तं मुनिपुङ्गव । आत्मतत्त्वं
मनसि मे प्रादुर्भवतु पार्वति ॥ ११ ॥ तथैवास्त्विति मामुक्त्वा तत्रैवान्तर-
धीयत । तदा मे मतिरुत्पन्ना जगद्वैचित्र्यदर्शनात् ॥ १२ ॥ अमः पञ्चविधो
भानि तदेवेह सम्यग्गते ! जीवेश्वरौ भिन्नरूपाविति प्राथमिको अमः ॥ १३ ॥

आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा द्वितीयकः । शरीरत्रयसंयुक्तजीवः सङ्गी तृतीयकः ॥ १४ ॥ जगत्कारणरूपस्य विकारित्वं चतुर्थकः । कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वं पञ्चमो भ्रमः । पञ्चभ्रमनिवृत्तिश्च तदा स्फुरति चेतसि ॥ १५ ॥ विस्मयप्रतिविम्बदर्शनेन भेदभ्रमो निवृत्तः । स्फटिकलोहितदर्शनेन पारमार्थिककर्तृत्वभ्रमो निवृत्तः । घटमठाकाशदर्शनेन सङ्गीतिभ्रमो निवृत्तः । रज्जुसर्पदर्शनेन कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वभ्रमो निवृत्तः । कनकरुचकदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्तः । तदाप्रभृति मच्चित्तं ब्रह्माकारमभूत्स्वयम् । निदाघत्वमपीत्थं हि तत्त्वज्ञानमवामुहि ॥ १६ ॥ निदाघः प्रणतो भूत्वा ऋभुं पप्रच्छ सादरम् । ब्रूहि मे श्रद्धधानाय ब्रह्मविद्यामनुत्तमाम् ॥ १७ ॥ तथेत्याह ऋभुः प्रीतस्तत्त्वज्ञानं वदामि ते । महाकर्ता महाभोक्ता महात्यागी भवानघ । स्वस्वरूपानुसंधानमेवं कृत्वा सुखी भव ॥ १८ ॥ नित्योदितं विमलमाद्यमनन्तरूपं ब्रह्माऽसि नेतरकलाकलनं हि किञ्चित् । इत्येव भावय निरञ्जनतामुपेतो निर्वाणमेहि सकलामलशान्तवृत्तिः ॥ १९ ॥ यदिदं दृश्यते किञ्चित्तत्तन्नास्तीति भावय । यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुस्थले ॥ २० ॥ यत्तु नो दृश्यते किञ्चिद्यत्तु किञ्चिदिव स्थितम् । मनःपष्ठेन्द्रियातीतं तन्मयो भव वै मुने ॥ २१ ॥ अविनाशि चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम् । नीरन्ध्रभूरिवाशेषं तदस्तीति विभावय ॥ २२ ॥ यदा संक्षीयते चित्तमभावात्यन्तभावनात् । चित्तासामान्यस्वरूपस्य सत्तासामान्यता तदा ॥ २३ ॥ नूनं चैत्यांशरहिता विद्यदात्मनि लीयते । असद्रूपवदत्यच्छा सत्तासामान्यता तदा ॥ २४ ॥ इष्टिरेषा हि परमा सदेहादेहयोः समा । मुक्तयोः संभवत्येव तुर्यातीतपदाभिधा ॥ २५ ॥ व्युत्थितस्य भवत्येषा समाधिस्थस्य चानघ । ज्ञस्य केवलमज्ञस्य न भवत्येव बोधजा । अनानन्दसमानन्दमुग्धमुग्धमुखद्युतिः ॥ २६ ॥ चिरकालपरिक्षीणमननादिपरिभ्रमः । पदमासाद्यते पुण्यं प्रज्ञयैवैक्या तथा ॥ २७ ॥ इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः । अन्तःशीतलयायाऽसौ समाधिरिति कथ्यते ॥ २८ ॥ अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनोध्यानं तदेव च । तदेव केवलीभावं शान्ततैव च तत्सदा ॥ २९ ॥ तनुवासनमत्युच्चैः पद्माद्योद्यतमुच्यते । अवासनं मनोऽकर्तृपदं तस्मादवाप्यते ॥ ३० ॥ घनवासनमेतत्तु चेतःकर्तृत्वभावनम् । सर्वदुःखप्रदं तस्माद्वासनां तनुतां नयेत् ॥ ३१ ॥

चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम् । सर्वमाकाशतामेति नित्यमन्तर्मुख-
स्थितेः ॥ ३२ ॥ यथा विपणगा लोका विहरन्तोऽप्यसत्समाः । असंबन्धा-
त्तथा ज्ञस्य ग्रामोऽपि विमिनोपमः ॥ ३३ ॥ अन्तर्मुखतया नित्यं सुप्तो बुद्धो
ब्रजन्पठन् । पुरं जनपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति ॥ ३४ ॥ अन्तःशीतलतायां
तु लब्धायां शीतलं जगत् । अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत्
॥ ३५ ॥ भवत्यखिलजन्तूनां यदन्तस्तद्वहिः स्थितम् ॥ ३६ ॥ यस्त्वात्मरति-
रेवान्तः कुर्वन्कर्मेन्द्रियैः क्रियाः । न वशो हर्षशोकाभ्यां स समाहित उच्यते
॥ ३७ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि परद्रव्याणि लोष्टवत् । स्वभावादेव न भयाद्यः
पश्यति स पश्यति ॥ ३८ ॥ अद्यैव मृतिरायातु कल्पान्तनिचयेन वा ।
नासौ कलङ्कमाप्नोति हेम पङ्कगतं यथा ॥ ३९ ॥ कोऽहं कथमिदं किं वा
कथं मरणजन्मनी । विचारयान्तरे वेत्थं महत्तत्फलमेष्यसि ॥ ४० ॥ विचा-
रेण परिज्ञातस्वभावस्य सतस्तव । मनः स्वरूपमुत्सृज्य शममेष्यति विज्वरम्
॥ ४१ ॥ विज्वरत्वं गतं चेतस्तव संसारवृत्तिषु । न निमज्जति तद्ब्रह्मन्गोष्प-
देष्ट्विव चारणः ॥ ४२ ॥ कृपणं तु मनो ब्रह्मन्गोष्पदेऽपि निमज्जति । कार्यं
गोष्पदतोयेऽपि विशीर्णो मशको यथा ॥ ४३ ॥ यावद्यावन्मुनिश्रेष्ठ स्वयं
संलज्यतेऽखिलम् । तावत्तावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते ॥ ४४ ॥ याव-
त्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते । सर्ववस्तुपरित्यागे शेष आत्मेति
कथ्यते ॥ ४५ ॥ आत्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत् । सर्वं संलज्य
दूरेण यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ ४६ ॥ सर्वं किञ्चिदिदं दृश्यं दृश्यते यज्जगद्ग-
तम् । चिन्निष्पन्दांशमात्रं तन्नान्यत्किञ्चन शाश्वतम् ॥ ४७ ॥ समाहिता
नित्यतृसा यथाभूतार्थदर्शिनी । ब्रह्मन्समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः
॥ ४८ ॥ अध्रुवधा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी । प्रोक्ता समाधिशब्देन
मेरोः स्थिरतरा स्थितिः ॥ ४९ ॥ निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता ।
ब्रह्मन्समाधिशब्देन परिपूर्णा मनोगतिः ॥ ५० ॥ केवलं चित्प्रकाशांश-
कल्पिता स्थिरतां गता । तुर्या सा प्राप्यते इष्टिर्महद्भिर्वेदवित्तमैः ॥ ५१ ॥
अदूरगतसादृश्या सुषुप्तस्योपलक्ष्यते । मनोहंकारविलये सर्वभावान्तरस्थिता
॥ ५२ ॥ समुदेति परानन्दा या तनुः पारमेश्वरी । मनसैव मनश्चित्त्वा सा
स्वयं लभ्यते गतिः ॥ ५३ ॥ तदनु विषयवासनाविनाशस्तदनु शुभः परमः

स्फुटप्रकाशः । तदनु च समतावशात्स्वरूपे परिणमनं महतामचिन्त्यरूपम्
 ॥ ५४ ॥ अखिलमिदमनन्तमात्मतत्त्वं दृढपरिणामिनि चेतसि स्थितोऽन्तः ।
 बहिरूपशमिते चराचरात्मा स्वयमनुभूयत एव देवदेवः ॥ ५५ ॥ असक्तं
 निर्मलं चित्तं युक्तं संसार्यविस्फुटम् । सक्तं तु दीर्घतपसा मुक्तमप्यतिबद्धवत्
 ॥ ५६ ॥ अन्तःसंसक्तिनिर्मुक्तो जीवो मधुरवृत्तिमान् । बहिः कुर्वन्नकुर्वन्वा
 कर्ता भोक्ता न हि कचित् ॥ ५७ ॥

इत्यनपूर्णेपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

निदाघ उवाच ॥ सङ्गः कीदृश इत्युक्तः कश्च बन्धाय देहिनाम् । कश्च
 मोक्षाय कथितः कथं त्वेष चिकित्स्यते ॥ १ ॥ देहदेहिभिर्भागैकपरित्यागेन
 भावना । देहमात्रे हि विश्वासः सङ्गो बन्धाय कथ्यते ॥ २ ॥ सर्वमात्मेद-
 मत्राहं किं वाञ्छामि त्यजामि किम् । इत्यसङ्गस्थितिं विद्धि जीवन्मुक्ततनुस्थि-
 ताम् ॥ ३ ॥ नाहमस्मि न चान्योऽस्ति न चायं न च नेतरः । सोऽसङ्ग इति
 संप्रोक्तो ब्रह्मासीत्येव सर्वदा ॥ ४ ॥ नाभिनन्दति नैष्कर्म्यं न कर्मस्वनुषज्जते ।
 सुसमो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ५ ॥ सर्वकर्मफलादीनां मन-
 सैव न कर्मणा । निपुणो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ६ ॥ असं-
 ल्येन सकलाश्चेष्टा नाना विजृम्भिताः । चिकित्सिता भवन्तीह श्रेयः संपादयन्ति
 हि ॥ ७ ॥ न सक्तमिह चेष्टासु न चिन्तासु न वस्तुषु । न गमागमचेष्टासु
 न कालकलनासु च ॥ ८ ॥ केवलं चित्ति विश्रम्य किञ्चिच्चैत्यावलम्ब्यपि ।
 सर्वत्र नीरसमिह तिष्ठत्यात्मरसं मनः ॥ ९ ॥ व्यवहारमिदं सर्वं मा करोतु
 करोतु वा । अकुर्वन्वापि कुर्वन्वा जीवः स्वात्मरतिक्रियः ॥ १० ॥ अथवा
 तमपि त्यक्त्वा चैत्यांशं शान्तचिद्धनः । जीवस्तिष्ठति संशान्तो ज्वलन्मणि-
 रिवात्मनि ॥ ११ ॥ चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् । सोच्यते
 शान्तकलना जाग्रत्येव सुषुप्तता ॥ १२ ॥ एषा निदाघ सौषुप्तस्थितिर्भ्यास-
 योगतः । प्रौढा सती तुरीयेति कथिता तत्त्वकोविदैः ॥ १३ ॥ अस्यां तुरीया-
 वस्थायां स्थितिं प्राप्याविनाशिनीम् । आनन्दैकान्तशीलत्वादनानन्दपदं गतः
 ॥ १४ ॥ अनानन्दमहानन्दकालातीतस्ततोऽपि हि । मुक्त इत्युच्यते योगी
 तुर्यातीतपदं गतः ॥ १५ ॥ परिगलितसमस्तजन्मपाशः सकलविलीनतमो-
 मयाभिमानः । परमरसमयीं परात्मसत्तां जलगतसैन्धवखण्डवन्महात्मा

॥ १६ ॥ जडाजडदृशोर्मध्ये यत्तत्त्वं पारमार्थिकम् । अनुभूतिमयं तस्मात्सारं
 ब्रह्मेति कथ्यते ॥ १७ ॥ दृश्यसंवलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते । द्रव्य-
 दर्शनसंबन्धे याऽनुभूतिरनामया ॥ १८ ॥ तामवष्टभ्य तिष्ठ त्वं सौपुर्णी भजते
 स्थितिम् । सैव तुर्यत्वमाप्नोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु ॥ १९ ॥ आत्मा
 न्यूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतनः । न चेतनो न च जडो न चैवासन्न
 सन्मयः ॥ २० ॥ नाहं नान्यो न चैवैको न चानेकोऽद्वयोऽव्ययः । यदीदं
 दृश्यतां प्राप्तं मनः सर्वेन्द्रियास्पदम् ॥ २१ ॥ दृश्यदर्शनसंबन्धे यत्सुखं
 पारमार्थिकम् । तदतीतं पदं यस्मात्तन्न किञ्चिदिदं तत् ॥ २२ ॥ न मोक्षो
 न भस्मः पृष्ठे न पाताले न भूतले । सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीष्यते
 ॥ २३ ॥ मोक्षो मेऽस्त्विति चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः । मननोत्थे मन-
 स्येष बन्धः सांसारिको दृढः ॥ २४ ॥ आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वरूपेऽथ वा
 तते । को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥ २५ ॥ अध्यात्मरति-
 राशान्तः पूर्णपावनमानसः । प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिर्न किञ्चिदिह बाञ्छति
 ॥ २६ ॥ सर्वाधिष्ठानसन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि । यो जीवति गतस्नेहः
 स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २७ ॥ नापेक्षते भविष्यच्च वर्तमाने न तिष्ठति । न
 संस्मरत्यतीतं च सर्वमेव करोति च ॥ २८ ॥ अनुबन्धपरे जन्तावसंसर्ग-
 मनाः सदा । भक्ते भक्तसमाचारः शठे शठ इव स्थितः ॥ २९ ॥ बालो
 बालेषु वृद्धेषु वृद्धो धीरेषु धैर्यवान् । युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेषु सुदुःखधीः
 ॥ ३० ॥ धीरधीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः । प्राज्ञः प्रसन्नमधुरो
 दैन्यादपगताशयः ॥ ३१ ॥ अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते । मनः
 प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ॥ ३२ ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते विकल्प-
 कलनान्विताः । विकल्पसंक्षयाज्जन्तोः पदं तदवशिष्यते ॥ ३३ ॥ अनाद्यन्ता-
 वभासात्मा परमात्मैव विद्यते । इत्येतन्निश्चयं स्फारं सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः
 ॥ ३४ ॥ यथाभूतार्थदर्शित्वमेतावद्भुवनत्रये । यदात्मैव जगत्सर्वमिति
 निश्चित्य पूर्णता ॥ ३५ ॥ सर्वमात्मैव कौ इष्टौ भवाभावौ क्व वा स्थितौ ।
 क्व बन्धमोक्षकलने ब्रह्मैवेदं विजृम्भते ॥ ३६ ॥ सर्वमेकं परं व्योम को मोक्षः
 कस्य बन्धता । ब्रह्मेदं बृंहिताकारं बृहद्बृंहदवस्थितम् ॥ ३७ ॥ दूरादस्तमितः
 द्वित्वं भवात्मैव त्वमात्मना । सम्यगालोकिते रूपे काष्ठपापाणवाससाम्

॥ ३८ ॥ मनागपि न भेदोऽस्ति कासि संकल्पनोन्मुखः । आदावन्ते च संशान्तस्वरूपमविनाशि यत् ॥ ३९ ॥ वस्तूनामात्मनश्चैतत्तन्मयो भव सर्वदा । द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्जराभरणविभ्रमैः ॥ ४० ॥ स्फुरत्यात्मभिरात्मैव चित्तरब्धीव वीचिभिः । आपत्करञ्जपरशुं पराया निर्वृतेः पदम् ॥ ४१ ॥ शुद्धमात्मानमालिङ्ग्य नित्यमन्तःस्थया धिया । यः स्थितस्तं क आत्मेह भोगो बाधयितुं क्षमः ॥ ४२ ॥ कृतस्फारविचारस्य मनोभोगादयोऽरयः । मनागपि न भिन्दन्ति शैलं मन्दानिला इव ॥ ४३ ॥ नानात्वमस्ति कलनासु न वस्तुतोऽन्तर्नानाविधासु सरसीषु जलादिवान्यत् । इत्येकनिश्चयमयः पुरुषो विमुक्त इत्युच्यते समवलोकितसम्यगर्थः ॥ ४४ ॥

इत्यनपूर्णेपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

विदेहमुक्तेः किं रूपं तद्वान्को वा महामुनिः । कं योगं समुपस्थाय प्राप्तवान्परमं पदम् ॥ १ ॥ सुमेरोर्वसुधापीठे माण्डव्यो नाम वै मुनिः । कौण्डिन्यात्तत्त्वमास्थाय जीवन्मुक्तोऽभवत्पुरा ॥ २ ॥ जीवन्मुक्तिदशां प्राप्य कदाचिद्ब्रह्मवित्तमः । सर्वेन्द्रियाणि संहर्तुं मनश्चक्रे महामुनिः ॥ ३ ॥ बद्धपद्मासनस्तिष्ठन्नर्धोन्मीलितलोचनः । बाह्यानाभ्यन्तरांश्चैव स्पर्शान्परिहरञ्छनैः ॥ ४ ॥ ततः स्वमनसः स्थैर्यं मनसा विगतैनसा । अहो नु चञ्चलमिदं प्रत्याहृतमपि स्फुटम् ॥ ५ ॥ पटाद्वदमुपायाति घटाच्छकटमुत्कटम् । चित्तमर्थेषु चरति पादपेण्विव मर्कटः ॥ ६ ॥ पद्म द्वाराणि मनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम् । बुद्धीन्द्रियाभिधानानि तान्येवालोकयाम्यहम् ॥ ७ ॥ हन्तेन्द्रियगणा यूयं त्यजताकुलतां शनैः । चिदात्मा भगवान्सर्वसाक्षित्वेन स्थितोऽस्त्यहम् ॥ ८ ॥ तेनात्मना बहुजेन निर्ज्ञाताश्चक्षुरादयः । परिनिर्वामि शान्तोऽस्मि दिष्ट्यास्मि विगतज्वरः ॥ ९ ॥ स्वात्मन्येवावतिष्ठेऽहं तुर्यरूपपदेऽनिशम् । अन्तरेव शशामास्य क्रमेण प्राणसन्ततिः ॥ १० ॥ ज्वालाजालपरिस्पन्दो दग्धेन्धन इवानलः । उदितोऽस्तं गत इव ह्यस्तं गत इवोदितः ॥ ११ ॥ समः समरसामासस्तिष्ठामि स्वच्छतां गतः । प्रबुद्धोऽपि सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिस्थः प्रबुद्धवान् ॥ १२ ॥ तुर्यमालम्ब्य कायान्तस्तिष्ठामि स्तम्भितस्थितिः । सबाह्याभ्यन्तरान्भावान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यसंभवांस्यक्त्वा संकल्पैकविनिर्मितान् । सह प्रणवपर्यन्तदीर्घलिःस्वनतन्तुना ॥ १४ ॥ जहाविन्द्रियतन्मात्राजालं खग इवानिलः । ततोऽङ्गसंविदं स्वच्छां प्रतिभासमुपागताम्

॥ १५ ॥ सद्योजातशिशुज्ञानं प्राप्तवान्मुनिपुङ्गवः । जहौ चित्तं चैत्यदशां
स्पन्दशक्तिमिवानिलः ॥ १६ ॥ चित्सामान्यमथासाद्य सत्तामात्रात्मकं ततः ।
सुषुप्तपदमालम्ब्य तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १७ ॥ सुषुप्तस्थैर्यमासाद्य तुर्य-
रूपमुपाययौ । निरानन्दोऽपि सानन्दः सच्चासच्च बभूव सः ॥ १८ ॥ ततस्तु
संबभूवासौ यद्विरामप्यगोचरः । यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च
यत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलात्मकम् । पुरुषः सांख्यदृष्टी-
नामीश्वरो योगवादिनाम् ॥ २० ॥ शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवा-
दिनाम् । यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम् ॥ २१ ॥ यत्सर्वं सर्वगं
वस्तु यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः । यदनुक्तमनिष्पन्दं दीपकं तेजसामपि ॥ २२ ॥
स्वानुभूत्यैकमानं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः । यदेकं चाप्यनेकं च साक्षनं च
निरञ्जनम् । यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ २३ ॥ अजममर-
मनाद्यमाद्यमेकं पदममलं सकलं च निष्कलं च । स्थित इति स तदा नभः-
स्वरूपादपि विमलस्थितिरीश्वरः क्षणेन ॥ २४ ॥

इत्यन्नपूर्णापनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जीवन्मुक्तस्य किं लक्ष्म ह्याकाशगमनादिकम् । तथा चेन्मुनिशार्दूल तत्र
नैव प्रलक्ष्यते ॥ १ ॥ अनात्मविदमुक्तोऽपि नभोविहरणादिकम् । द्रव्यमन्त्र-
क्रियाकालशक्त्याऽऽप्नोत्येव स द्विजः ॥ २ ॥ नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो
ह्यात्ममात्रदृक् । आत्मनाऽऽत्मनि संतृप्तो नाविद्यामनुधावति ॥ ३ ॥ ये ये
भावाः स्थिता लोके तानविद्यामयान्विदुः । त्यक्ताविद्यो महायोगी कथं तेषु
निमज्जति ॥ ४ ॥ यस्तु मूढोऽल्पबुद्धिर्वा सिद्धिजालानि वान्छति । स सिद्धि-
साधनैर्योगैरतानि साधयति क्रमात् ॥ ५ ॥ द्रव्यमन्त्रक्रियाकालयुक्तयः साधु-
सिद्धिदाः । परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काश्चन ॥ ६ ॥ यस्येच्छा विद्यते
काचित्सा सिद्धिं साधयत्यहो । निरिच्छोः परिपूर्णस्य नेच्छा संभवति क्वचित्
॥ ७ ॥ सर्वेच्छाजालसंशान्तावात्मलाभो भवेन्मुने । स कथं सिद्धिजालानि
नूनं वान्छत्यचित्तकः ॥ ८ ॥ अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णोऽपीन्दुमण्डले ।
अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विसयी ॥ ९ ॥ अधिष्ठाने परे तत्त्वे
कल्पिता रज्जुसर्पवत् । कल्पिताश्चर्यजालेषु नाभ्युदेति कुतूहलम् ॥ १० ॥

ये हि विज्ञातविज्ञेया वीतरागा महाधियः । विच्छिन्नग्रन्थयः सर्वे ते स्वत-
 त्त्रास्तनौ स्थिताः ॥ ११ ॥ सुखदुःखदशाधीरं साम्यान् प्रोद्धरन्ति यम् ।
 निःश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदुः ॥ १२ ॥ आपत्कार्पण्यमुत्साहो
 मदो मान्द्यं महोत्सवः । यं नयन्ति न वैरूप्यं तस्य नष्टं मनो विदुः ॥ १३ ॥
 द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवन्मुक्तौ सरूपः स्यादरूपो
 देहमुक्तिगः ॥ १४ ॥ चित्तसत्तेह दुःखाय चित्तनाशः सुखाय च । चित्त-
 सत्तां क्षयं नीत्वा चित्तं नाशमुपानयेत् ॥ १५ ॥ मनस्तां मूढतां विद्धि यदा
 नश्यति सानघ । चित्तनाशाभिधानं हि तत्स्वरूपमितीरितम् ॥ १६ ॥
 मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं भवत्युत्तमवासनम् । भूयो जन्मविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तस्य
 तन्मनः ॥ १७ ॥ सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते । निदाघाऽरूप-
 नाशस्तु वर्तते देहमुक्तिके ॥ १८ ॥ विदेहमुक्त एवासौ विद्यते निष्कला-
 त्मकः । समग्राग्र्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते ॥ १९ ॥ विदेहमुक्तौ विमले
 पदे परमपावने । विदेहमुक्तिविषये तस्मिन्सत्त्वक्षयात्मके ॥ २० ॥ चित्त-
 नाशे विरूपाख्ये न किञ्चिदिह विद्यते । न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीर्न
 लोकता ॥ २१ ॥ न चोदयो नास्तमयो न हर्षामर्षसंविदः । न तेजो न
 तमः किञ्चिन्न संध्यादिनरात्रयः । न सत्तापि न चासत्ता न च मध्यं हि
 तत्पदम् ॥ २२ ॥ ये हि पारङ्गता बुद्धेः संसाराडम्बरस्य च । तेषां तदास्पद-
 स्फारं पवनानामिवाम्बरम् ॥ २३ ॥ संशान्तदुःखमजडात्मकमेकसुसमान-
 न्दमन्थरमपेतरजस्तमो यत् । आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन्पदे
 गलितचित्तलवा भवन्ति ॥ २४ ॥ हे निदाघ महाप्राज्ञ निर्वासनमना भव ।
 बलाच्चेतः समाधाय निर्विकल्पमना भव ॥ २५ ॥ यज्जगद्भासकं भानं नित्य
 भाति स्वतः स्फुरत् । स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः ॥ २६ ॥
 प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः । तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्भ-
 यम् ॥ २७ ॥ एकं ब्रह्माऽहमस्मीति कृतकृत्यो भवेन्मुनिः ॥ २८ ॥ सर्वाधिष्ठान-
 मद्ब्रह्म परं ब्रह्म सनातनम् । सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम् ॥ २९ ॥
 न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकलाश्च देवताः । स एव
 देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते ॥ ३० ॥ भिद्यते हृदय-
 ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्ष्टे परावरे ॥ ३१ ॥
 द्वौ सुपणौ शरीरेऽस्मिञ्जीवेशाख्यौ सह स्थितौ । तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते

कर्मणो न महेश्वरः ॥ ३२ ॥ केवलं साक्षिरूपेण विना भोगो महेश्वरः ।
 प्रकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः । चिद्धिदाकारतो भिन्ना न
 भिन्ना चित्त्वहानितः ॥ ३३ ॥ तर्कतश्च प्रमाणाच्च चिदेकत्वव्यवस्थितेः ।
 चिदेकत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति ॥ ३४ ॥ अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः
 सत्यचिद्धनम् । अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ स्वशरीरे
 स्वयंज्योतिःस्वरूपं सर्वसाक्षिणम् । क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे मायया-
 वृताः ॥ ३६ ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्याया-
 द्बहुञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ ३७ ॥ बाल्येनैव हि तिष्ठासे-
 त्तिर्विद्य ब्रह्मवेदनम् । ब्रह्मविद्यां च बाल्यं च निर्विद्य मुनिरात्मवान् ॥ ३८ ॥
 अन्तर्लानसमारम्भः शुभाशुभमहाङ्कुरम् । संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरं विद्धि
 भौतिकम् ॥ ३९ ॥ भावाभावदशाकोशं दुःखरत्नसमुद्रकम् । बीजमस्य शरी-
 रस्य चित्तमाशवशानुगम् ॥ ४० ॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः ।
 एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयो दृढभावनः ॥ ४१ ॥ यदा प्रस्पन्दते प्राणो नाडी-
 संस्पर्शनोद्यतः । तदा संवेदनमयं चित्तमाशु प्रजायते ॥ ४२ ॥ सा हि सर्व-
 गता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यते । संवित्संरोधनं श्रेयः प्राणादिस्पन्दनं वरम्
 ॥ ४३ ॥ योगिनश्चित्तज्ञानत्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम् । प्राणायामैस्तथा ध्यानैः
 प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥ ४४ ॥ चित्तोपशान्तिफलदं परमं विद्धि कारणम् ।
 सुखदं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसंरोधनं विदुः ॥ ४५ ॥ दृढभावनया त्यक्तपूर्वा-
 परविचारणम् । यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ ४६ ॥ यदा न
 भाग्यते किञ्चिद्देयोपादेयरूपि यत् । स्वीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न
 जायते ॥ ४७ ॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति
 परमोपशमप्रदा ॥ ४८ ॥ यदा न भाग्यते भावः क्वचिज्जगति वस्तुनि । तदा
 हृदम्बरे शून्ये कथं चित्तं प्रजायते ॥ ४९ ॥ यदभावनमास्थाय यदभावस्य
 भावनम् । यद्यथा वस्तुदर्शित्वं तदचित्तत्वमुच्यते ॥ ५० ॥ सर्वमन्तः परित्यज्य
 शीतलाशयवर्ति यत् । वृत्तिस्थमपि तच्चित्तमसद्रूपमुदाहृतम् ॥ ५१ ॥ शृष्टबी-
 जोपमा येषां पुनर्जननवर्जिता । वासनारसनाहीना जीवन्मुक्ता हि ते स्मृताः
 ॥ ५२ ॥ सत्यरूपपरिप्राप्तचित्तास्ते ज्ञानपारगाः । अचित्ता इति कथ्यन्ते
 देहान्ते व्योमरूपिणः ॥ ५३ ॥ संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पन्दनवासने ।

समूलं नश्यतः क्षिप्रं मूलच्छेदादिव द्रुमः ॥ ५४ ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टं वा
यदस्याः प्रतिभासते । संविदस्तत्प्रयत्नेन मार्जनीयं विजानता ॥ ५५ ॥ तद्-
मार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम् । तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यभि-
धीयते ॥ ५६ ॥ अजडो गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदनो भव ॥ ५७ ॥ संविद्वस्तुद-
शालम्बः सा यस्येह न विद्यते । सोऽसंविदजडः प्रोक्तः कुर्वन्कार्यशतान्यपि
॥ ५८ ॥ संवेद्येन हृदाकाशे मनागपि न लिप्यते । यस्यासावजडा संविज्जी-
वन्मुक्तः स कथ्यते ॥ ५९ ॥ यदा न भान्यते किञ्चिन्निर्वासनतयात्मनि ।
बालमूकादिविज्ञानमिव च स्थीयते स्थिरम् ॥ ६० ॥ तदा जाड्यविनिर्मुक्त-
मसंवेदनमाततम् । आश्रितं भवति प्राज्ञो यस्मान्द्रुयो न लिप्यते ॥ ६१ ॥
समस्ता वासनास्त्यक्त्वा निर्विकल्पसमाधितः । तन्मयत्वादनाद्यन्ते तदप्य-
न्तर्विलीयते ॥ ६२ ॥ तिष्ठन्नाच्छन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपि तलेपवर्जितः । अजडो
गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदनः सुखी ॥ ६३ ॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य कष्टचेष्टायु-
तोऽपि सन् । तरेहुःखाम्बुधेः पारमपारगुणसागरः ॥ ६४ ॥ विशेषं संपरि-
त्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम् । एकरूपं महारूपं सत्तायास्तत्पदं विदुः ॥ ६५ ॥
कालसत्ता कलासत्ता वस्तुसत्तेयमित्यपि । विभागकलनां त्यक्त्वा सन्मात्रैक-
परो भव ॥ ६६ ॥ सत्तासामान्यमेवैकं भावयन्केवलं विभुः । परिपूर्णः परा-
नन्दि तिष्ठापूरितदिग्भरः ॥ ६७ ॥ सत्तासामान्यपर्यन्ते यत्तत्कलनयोऽिज्ञ-
तम् । पदमाद्यमनाद्यन्तं तस्य बीजं न विद्यते ॥ ६८ ॥ तत्र संलीयते संवि-
न्निर्विकल्पं च तिष्ठति । भूयो न वर्तते दुःखे तत्र लब्धपदः पुमान् ॥ ६९ ॥
तद्धेतुः सर्वभूतानां तस्य हेतुर्न विद्यते । स सारः सर्वसारानां तस्मात्सारो
न विद्यते ॥ ७० ॥ तस्मिंश्चिद्वर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः । इमास्ताः
प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः ॥ ७१ ॥ तदमलमरजं तदात्मतत्त्वं तदव-
गतावुपशान्तिमेति चेतः । अवगतविगतैकतत्स्वरूपो भवभयमुक्तपदोऽसि
सम्यगेव ॥ ७२ ॥ एतेषां दुःखबीजानां प्रोक्तं यद्यन्मयोत्तरम् । तस्य तस्य
प्रयोगेण शीघ्रं तत्प्राप्यते पदम् ॥ ७३ ॥ सत्तासामान्यकोटिस्थे द्रागित्येव
पदे यदि । पौरुषेण प्रयत्नेन बलात्संलज्य वासनाम् ॥ ७४ ॥ स्थितिं वध्नासि
तत्त्वज्ञ क्षणमप्यक्षयात्मिकाम् । क्षणेऽस्मिन्नेव तत्साधु पदमासादयस्यलम्
॥ ७५ ॥ सत्तासामान्यरूपे वा करोषि स्थितिमादरात् । तत्किञ्चिदधिक्रेनेह

यत्नेनामोषि तत्पदम् ॥ ७६ ॥ संवित्तत्त्वे कृतध्यानो निदाय यदि तिष्ठसि ।
 तद्यत्नेनाधिकेनोच्चैरासादयसि तत्पदम् ॥ ७७ ॥ वासनासंपरित्यागो यदि
 यत्नं करोषि भोः । यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः ॥ ७८ ॥
 न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति । यावन्न तत्त्वविज्ञानं
 तावच्चित्तशमः कुतः ॥ ७९ ॥ यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम् ।
 यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः । यावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वा-
 सनाक्षयः ॥ ८० ॥ तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च । मिथः
 कारणतां गत्वा दुःसाधानि स्थितान्यतः ॥ ८१ ॥ भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा
 त्रयमेतत्समाचर ॥ ८२ ॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशो महामते । समकालं
 चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः ॥ ८३ ॥ त्रिभिरेभिः समभ्यस्तैर्हृदय-
 ग्रन्थयो दृढाः । निःशेषमेव शुद्ध्यन्ति विसच्छेदाद्गुणा इव ॥ ८४ ॥
 वासनासंपरित्यागसमं प्राणनिरोधनम् । विदुस्तत्त्वविदस्तस्मात्तदप्येवं समा-
 हरेत् ॥ ८५ ॥ वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् । प्राणस्पन्दनिरो-
 धाच्च यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ८६ ॥ प्राणायामदृढाभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया ।
 आसनाशनयोगेन प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ८७ ॥ निःसङ्गव्यवहारत्वाद्भ-
 भावनवर्जनात् । शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते ॥ ८८ ॥ यः प्राण-
 पवनस्पन्दश्चित्तस्पन्दः स एव हि । प्राणस्पन्दजये यत्नः कर्तव्यो धीमतोद्यकैः
 ॥ ८९ ॥ न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम् । शुद्धां संविदभा-
 श्रित्य वीतरागः स्थिरो भव ॥ ९० ॥ संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं संवि-
 त्पदं विकलनं कलयन्महात्मन् । हृद्येव तिष्ठ कलनारहितः क्रियां तु कुर्वन्न-
 कर्तृपदमेत्य शमोदितश्रीः ॥ ९१ ॥ मनागपि विचारेण चेतसः स्वस्य निग्रहः ।
 पुरुषेण कृतो येन तेनासं जन्मनः फलम् ॥ ९२ ॥

इत्यन्नपूर्णापनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा । न विचारपरं चेतो यस्यासौ
 मृत उच्यते ॥ १ ॥ सम्यग्ज्ञानसमालोकः पुमाञ्ज्ञेयसमः स्वयम् । न विभेति
 न चादत्ते वैवर्श्यं न च दीनताम् ॥ २ ॥ अपवित्रमपथ्यं च विषसंसर्गदूषि-
 तम् । भुक्तं जरयति ज्ञानी क्लिप्तं नष्टं च मृष्टवत् ॥ ३ ॥ सङ्गत्यागं विदुर्मोक्षं
 सङ्गत्यागादजन्मता । सङ्ग त्यजन् भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ ॥ ४ ॥

भावाभावे पदार्थानां हर्षोमर्षविकारदा । मलिना वासना येषा साऽसङ्ग इति
 कथ्यते ॥ ५ ॥ जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी । मुक्ता हर्षविषादाभ्यां
 शुद्धा भवति वासना ॥ ६ ॥ दुःखैर्न ग्लानिमायासि हृदि हृष्यसि नो सुखैः ।
 आशावैवश्यमुत्सृज्य निदाघाऽसङ्गतां व्रज ॥ ७ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमदृष्टो-
 भयकोटिकम् । चिन्मात्रमक्षयं शान्तमेकं ब्रह्मास्मि नेतरत् ॥ ८ ॥ इति
 मत्वाऽहमित्यन्तर्मुक्तामुक्तवपुः पुमान् । एकरूपः प्रशान्तात्मा मौनी स्वात्म-
 सुखो भव ॥ ९ ॥ नास्ति चित्तं न चादिद्या न मनो न च जीवकः । ब्रह्मैवै-
 कमनाद्यन्तमब्धिवत्प्रविजृम्भते ॥ १० ॥ देहे यावदहंभावो दृश्येऽस्मिन्याव-
 दात्मता । यावन्ममेदमित्यास्था तावच्चित्तादिविभ्रमः ॥ ११ ॥ अन्तर्मुखतया
 सर्वं चिद्ब्रह्मै त्रिजगत्तुणम् । जुह्वतोऽन्तर्निवर्तन्ते मुने चित्तादिविभ्रमाः ॥ १२ ॥
 चिदात्माऽस्मि निर्गोऽस्मि परापरविवर्जितः । रूपं स्वरञ्चिजं स्फारं मा स्मृत्या
 संमितो भव ॥ १३ ॥ अध्यात्मशास्त्रमन्त्रेण तृष्णाविषविषूचिका । क्षीयते
 भावितेनान्तः शरदा मिहिका यथा ॥ १४ ॥ परिज्ञाय परित्यागो वासनानां
 य उत्तमः । सत्तासामान्यरूपत्वात्तत्कैवल्यपदं विदुः ॥ १५ ॥ यत्रास्ति
 वासना लीना तत्सुपुसं न सिद्धये । निर्बीजा वासना यत्र तत्तुर्यं सिद्धिदं
 स्मृतम् ॥ १६ ॥ वासनायास्तथा बह्वैर्नग्न्याधिद्विषामपि । स्नेहवैरविषाणां
 च शेषः स्वरूपोऽपि बाधते ॥ १७ ॥ निर्दग्धवासनाबीजः सत्तासामान्यरूप-
 दान् । सदेहो वा विदेहो वा न भूयो दुःखभागभवेत् ॥ १८ ॥ एतावदेवा-
 विद्यात्वं नेदं ब्रह्मेति निश्चयः । एष एव क्षयस्तस्या ब्रह्मेदमिति निश्चयः ॥ १९ ॥
 ब्रह्म चिद्ब्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्परा । ब्रह्माहं ब्रह्म चिच्छत्रुब्रह्म चिन्मित्र-
 बान्धवाः ॥ २० ॥ ब्रह्मैव सर्वमित्येव भाविते ब्रह्म वै पुमान् । सर्वत्रावस्थितं
 शान्तं चिद्ब्रह्मेत्यनुभूयते ॥ २१ ॥ असंस्कृताध्वगालोके मनस्यन्यत्र संस्थिते ।
 या प्रतीतिरनागस्का तच्चिद्ब्रह्मास्मि सर्वगम् ॥ २२ ॥ प्रशान्तसर्वसंकल्पं विग-
 ताखिलकौतुकम् । विगताशेषसंरम्भं चिदात्मानं समाश्रय ॥ २३ ॥ एवं
 पूर्णधियो धीराः समा नीरागचेतसः । न नन्दन्ति न निन्दन्ति जीवितं मरणं
 तथा ॥ २४ ॥ प्राणोऽयमनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः सदागतिः । सबाह्याभ्यन्तरे
 देहे प्राणोऽसावूर्ध्वगः स्थितः ॥ २५ ॥ अपानोऽप्यनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः
 सदागतिः । सबाह्याभ्यन्तरे देहे अपानोऽयमवाक्स्थितः ॥ २६ ॥ जाग्रतः

स्वपतश्चैव प्राणायामोऽयमुत्तमः । प्रवर्तते ह्यभिज्ञस्य तं तावच्छ्रेयसे शृणु ॥ २७ ॥ द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं बाह्यमाक्रमतां ततः । प्राणाङ्गनामा संस्पृशो यः स पूरक उच्यते ॥ २८ ॥ अपानश्चन्द्रमा देहमाप्याययति सुव्रत । प्राणः सूर्योऽग्निरथवा पचत्यन्तरिदं वपुः ॥ २९ ॥ प्राणक्षयसमीपस्थमपानोदयकोटिगम् । अपानप्राणयोरैक्यं चिदात्मानं समाश्रय ॥ ३० ॥ अपानोऽस्तङ्गतो यत्र प्राणो नाभ्युदितः क्षणम् । कलाकलङ्करहितं तच्चित्तत्वं समाश्रय ॥ ३१ ॥ नापानोऽस्तङ्गतो यत्र प्राणश्चास्तमुपागतः । नासाग्रमनावर्तं तच्चित्तत्त्वमुपाश्रय ॥ ३२ ॥ आभासमात्रमेवेदं न सञ्जासज्जगन्नयम् । इत्यन्यकलनात्यागं सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः ॥ ३३ ॥ आभासमात्रकं ब्रह्मश्चित्तादर्शकलङ्कितम् । ततस्तदपि संत्यज्य निराभासो भवोत्तम ॥ ३४ ॥ भयप्रदमकल्याणं धैर्यसर्वस्वहारिणम् । मनःपिशाचमुत्सार्य योऽसि सोऽसि स्थिरो भव ॥ ३५ ॥ चिद्योमेव किलास्तीह परापरविवर्जितम् । सर्वत्रासंभवच्चैत्यं यत्कल्पान्तेऽवशिष्यते ॥ ३६ ॥ वाञ्छाक्षणे तु या तुष्टिस्तत्र वाञ्छैव कारणम् । तुष्टिस्त्वतुष्टिपर्यन्ता तस्माद्वाञ्छां परित्यज ॥ ३७ ॥ आशा यातु निराशात्वमभावं यातु भावना । अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः ॥ ३८ ॥ वासनारहितैरन्तरिन्द्रियैराहरन्क्रियाः । न विकारमवामोपि स्ववत्क्षोभशतैरपि ॥ ३९ ॥ चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यां संसारप्रलयोदयौ । वासनाप्राणसंरोधमनुन्मेषं मनः कुरु ॥ ४० ॥ प्राणोन्मेषनिमेषाभ्यां संसृतेः प्रलयोदयौ । तमभ्यासप्रयोगाभ्यामुन्मेषरहितं कुरु ॥ ४१ ॥ मौढ्योन्मेषनिमेषाभ्यां कर्मणां प्रलयोदयौ । तद्विलीनं कुरु बलाद्गुरुशास्त्रार्थसंगमैः ॥ ४२ ॥ असंवित्स्पन्दमात्रेण याति चित्तमचित्तात्मा । प्राणानां वा निरोधेन तदेव परमं पदम् ॥ ४३ ॥ इदयदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम् । तदन्तैकान्तसंविद्या ब्रह्मदृष्ट्याऽवलोक्य ॥ ४४ ॥ यत्र नाभ्युदितं चित्तं तद्वै सुखमकृत्रिमम् । क्षयातिशयनिर्मुक्तं नोदेति न च शाम्यति ॥ ४५ ॥ यस्य चित्तं न चित्ताख्यं चित्तं चित्तत्वमेव हि । तदेव तुर्यावस्थायां तुर्यातीतं भवत्यतः ॥ ४६ ॥ संन्यस्तसर्वसंकल्पः समः शान्तमना मुनिः । संन्यासयोगयुक्तात्मा ज्ञानवान्मोक्षवान्भव ॥ ४७ ॥ सर्वसंकल्पसंशान्तं प्रशान्तघनवासनम् । न किञ्चिद्भावनाकारं यत्तद्ब्रह्म परं विदुः ॥ ४८ ॥ सन्यग्ज्ञानावरोधेन नित्यमेकसमाधिना । सांख्य एवावबुद्धा ये ते सांख्या योगिनः परे ॥ ४९ ॥ प्राणायतिलसंशान्तौ युक्त्या ये पदमागताः । अना-

मयमनाद्यन्तं ते स्मृता योगयोगिनः ॥ ५० ॥ उपादेयं तु सर्वेषां शान्तं
 पदमकृत्रिमम् । एकार्थाभ्यसनं प्राणरोधश्चेतःपरिक्षयः ॥ ५१ ॥ एकस्मिन्नेव
 संसिद्धे संसिध्यन्ति परस्परम् । अविनाभाविनी नित्यं जन्तूनां प्राणचेतसी
 ॥ ५२ ॥ आधाराधेयवच्चैते एकभावे विनश्यतः । कुरुतः स्वविनाशेन कार्यं
 मोक्षाख्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ सर्वमेतद्विद्या त्यक्त्वा यदि तिष्ठसि निश्चलः ।
 तदाऽहङ्कारविक्रये त्वमेव परमं पदम् ॥ ५४ ॥ महाचिदेकैवेहास्ति महासत्तेति
 योच्यते । निष्कलङ्का समा शुद्धा निरहङ्काररूपिणी ॥ ५५ ॥ सकृद्विभाता
 विमला नित्योदयवती समा । सा ब्रह्म परमात्मेति नामभिः परिगीयते ॥ ५६ ॥
 सैवाहमिति निश्चित्य निदाघ कृतकृत्यवान् । न भूतं न भविष्यच्च चिन्तयासि
 कदाचन ॥ ५७ ॥ दृष्टिमालम्ब्य तिष्ठामि वर्तमानासिहात्मना । इदमद्य मया
 लब्धमिदं प्राप्स्यामि सुन्दरम् ॥ ५८ ॥ न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनो-
 ऽन्यन्नहि क्वचित् । न तुष्यामि शुभप्राप्तौ न खिद्याम्यशुभागमे ॥ ५९ ॥ प्रशा-
 न्तचापलं वीतशोकमस्तसमीहितम् । मनो मम मुने शान्तं तेन जीवाभ्य-
 नामयः ॥ ६० ॥ अयं बन्धुः परश्चायं ममायमयमन्यकः । इति ब्रह्मज्ञ
 जानामि संस्पृशं न ददाम्यहम् ॥ ६१ ॥ वासनामात्रसंत्यागाज्जरामरणवर्जि-
 तम् । सवासनं मनो ज्ञानं ज्ञेयं निर्वासनं मनः ॥ ६२ ॥ चित्ते त्यक्ते लयं
 याति द्वैतमेतच्च सर्वतः । क्षिप्यते परमं शान्तमेकमच्छमनामयम् ॥ ६३ ॥
 अनन्तमजमव्यक्तमजरं शान्तमच्युतम् । अद्वितीयमनाद्यन्तं यदाद्यमुपलम्भ-
 नम् ॥ ६४ ॥ एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलं ततम् । खादप्यतितरां सूक्ष्मं
 तद्ब्रह्मास्मि न संशयः ॥ ६५ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम् ।
 सर्वार्थमयमेकार्थं चिन्मात्रममलं भव ॥ ६६ ॥ सर्वमेकमिदं शान्तमादि-
 मध्यान्तवर्जितम् । भावाभावमजं सर्वमिति मत्वा सुखी भव ॥ ६७ ॥ न
 बद्धोऽस्मि न मुक्तोऽस्मि ब्रह्मैवास्मि निरामयम् । द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सच्चि-
 दानन्दलक्षणः । एवं भावय यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥ ६८ ॥ पदार्थ-
 वृन्दे देहादिधिया संत्यज्य दूरतः । आशीतलान्तःकरणो नित्यमात्मपरो भव
 ॥ ६९ ॥ इदं रम्यमिदं नेति बीजं ते दुःखसंतते । तस्मिन्साध्याग्निना दग्धे
 दुःखस्यावसरः कुतः ॥ ७० ॥ शास्त्रसृजनसंपर्कैः प्रशामादौ विवर्धयेत् ॥ ७१ ॥
 ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सर्वसंसारभेषजम् । अत्यर्थममलं नित्यमादिमध्यान्त-

वर्जितम् ॥ ७२ ॥ तथा स्थूलमनाकाशमसंस्पृश्यमचाक्षुषम् । न रसं न च
गन्धाख्यमप्रमेयमनूपमम् ॥ ७३ ॥ आत्मानं सच्चिदानन्दमनन्तं ब्रह्म सुव्रत ।
अहमस्मीत्यभिध्यायेच्चेयातीतं विमुक्तये ॥ ७४ ॥ समाधिः संविदुत्पत्तिः
परजीवैकतां प्रति । नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ॥ ७५ ॥
एकः सन्मिथ्यते आन्त्या मायया न स्वरूपतः । तस्मादद्वैत एवास्ति न प्रपञ्चो
न संसृतिः ॥ ७६ ॥ यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः । तथा
आन्तेर्द्विधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना ॥ ७७ ॥ यदा मनसि चैतन्यं
भाति सर्वत्रंगं सदा । योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ॥ ७८ ॥
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म
संपद्यते तदा ॥ ७९ ॥ यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकी-
भूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ॥ ८० ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यास-
रूपिणी । प्रथमा भूमिकैपोक्ता सुसुष्ठुत्वप्रदायिनी ॥ ८१ ॥ विचारणा
द्वितीया स्यात्तृतीया साङ्गभावना । विलापिनी चतुर्थी स्याद्वासना विलया-
त्मिका ॥ ८२ ॥ शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी । अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो
जीवन्मुक्तोऽत्र तिष्ठति ॥ ८३ ॥ असंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका ।
आनन्दैकघनाकारा सुसुप्तसदृशी स्थितिः ॥ ८४ ॥ तुर्यावस्थोपशान्ता सा
मुक्तिरेव हि केवला । समता स्वच्छता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत् ॥ ८५ ॥
तुर्यातीता तु याऽवस्था परा निर्वाणरूपिणी । सप्तमी सा परा प्रौढा विषयो
नैव जीवताम् ॥ ८६ ॥ पूर्वावस्थात्रयं तत्र जाग्रदित्येव संस्थितम् । चतुर्थी
स्वप्न इत्युक्ता स्वप्नामं यत्र वै जगत् ॥ ८७ ॥ आनन्दैकघनाकारा सुसुप्ताख्या
तु पञ्चमी । असंवेदनरूपा तु षष्ठी तुर्यपदाभिधा ॥ ८८ ॥ तुर्यातीतपदा-
वस्था सप्तमी भूमिकोत्तमा । मनोवचोभिरग्राह्या स्वप्रकाशसदात्मिका ॥ ८९ ॥
अन्तःप्रत्याहृतिवशाच्चैत्यं चेन्न विभावितम् । मुक्त एव न संदेहो महासम-
तया तया ॥ ९० ॥ न क्रिये न च जीवामि नाहं सन्नाप्यसन्मयः । अहं न
क्लिञ्चिदिति मत्वा धीरो न शोचति ॥ ९१ ॥ अलेपकोऽहमजरो नीरागः
ज्ञान्तवासनः । निरंशोऽस्मि विदाकाशमिति मत्वा न शोचति ॥ ९२ ॥
अहंमत्या विरहिता शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः । ज्ञान्तः शमसमाभास इति
मत्वा न शोचति ॥ ९३ ॥ तृणाग्नेष्वम्बरे भानौ नरनागामरेषु च । यत्ति-
ष्ठति तदेवाहमिति मत्वा न शोचति ॥ ९४ ॥ भावनां सर्वभावेभ्यः समु-

तस्य समुत्थितः । अवशिष्टं परं ब्रह्म केवलोऽस्मीति भावय ॥ ९५ ॥ वाचा-
 मतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः । परानन्दरसाधुब्धो रमते स्वात्मनात्मनि
 ॥ ९६ ॥ सर्वकर्मपरित्यागी नित्यवृत्तो निराश्रयः । न पुण्येन न पापेन नेत-
 रेण च लिप्यते ॥ ९७ ॥ स्फटिकः प्रतिबिम्बेन यथा नायाति रञ्जनम् ।
 तज्ज्ञः कर्मफलेनान्तस्तथा नायाति रञ्जनम् ॥ ९८ ॥ विहरञ्जनतावृन्दे देव-
 कीर्तनपूजनैः । खेदाह्लादौ न जानाति प्रतिबिम्बगतैरिव ॥ ९९ ॥ निःस्त्रोत्रो
 निर्विकारश्च पूज्यपूजाविवर्जितः । संयुक्तश्च वियुक्तश्च सर्वाचारनयक्रमैः
 ॥ १०० ॥ तनुं त्यजतु वा तीर्थे श्वपचस्य गृहेऽथ वा । ज्ञानसंपत्तिसमये
 मुक्तोऽसौ विगताश्रयः ॥ १०१ ॥ संकल्पत्वं हि बन्धस्य कारणं तत्परित्यज ।
 मोक्षो भवेदसंकल्पात्तदभ्यासं धिया कुरु ॥ १०२ ॥ सावधानो भव त्वं च
 ग्राह्यग्राहकसंगमे । अजस्रमेव संकल्पदशाः परिहरन्शनैः ॥ १०३ ॥ मा
 भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव । भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं
 तन्मयो भव ॥ १०४ ॥ किञ्चिद्भोचते तुभ्यं तद्बद्धोऽसि भवस्थितौ । न
 किञ्चिद्भोचते चेत्ते तन्मुक्तोऽसि भवस्थितौ ॥ १०५ ॥ अस्मात्पदार्थनिचयाद्या-
 वत्स्थावरजङ्गमात् । वृणादेर्देहपर्यन्तान्मा किञ्चित्तत्र रोचताम् ॥ १०६ ॥ अहंभा-
 वानहंभावौ त्यक्त्वा सदसती तथा । यदसक्तं समं स्वच्छं स्थितं तत्तुर्यमुच्यते
 ॥ १०७ ॥ या स्वच्छा समता शान्ता जीवन्मुक्तव्यवस्थितिः । साक्ष्यवस्था
 व्यवहृतौ सा तुर्या कलनोच्यते ॥ १०८ ॥ नैतज्जाग्रन्न च स्वप्नः संकल्पाना-
 मसंभवात् । सुषुप्तभावो नाऽप्येतदभावाज्जडतास्थितेः ॥ १०९ ॥ शान्त-
 सम्यक्प्रबुद्धानां यथास्थितमिदं जगत् । विलीनं तुर्यमित्याहुरबुद्धानां स्थितं
 स्थिरम् ॥ ११० ॥ अहंकारकलात्यागे समतायाः समुद्गमे । विशरारौ कृते
 चित्ते तुर्यावस्थोपतिष्ठते ॥ १११ ॥ सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव
 एव हि । नाविद्यास्त्रीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमकृमम् ॥ ११२ ॥ शान्त
 एव चिदाकाशे स्वच्छे शमसमात्मनि । समग्रशक्तिवचित्ते ब्रह्मेति कलिता-
 भिधे ॥ ११३ ॥ सर्वमेव परित्यज्य महामौनी भवानघ । निर्वाणवाग्निर्मननः
 क्षीणचित्तः प्रशान्तधीः ॥ ११४ ॥ आत्मन्येवास्य शान्तात्मा मूकान्धवधि-
 रोपमः । नित्यमन्तर्मुखः स्वच्छः स्वात्मनान्तःप्रपूर्णधीः ॥ ११५ ॥ जाग्र-
 त्वेव सुषुप्तस्थः कुरु कर्माणि वै द्विज । अन्तःसर्वपरित्यागी बहिः कुरु यथा-
 गतम् ॥ ११६ ॥ चित्तसत्ता परं दुःखं चित्तत्यागः परं सुखम् । अतश्चित्तं

विदाकाशे नय क्षयमवेदनात् ॥ ११७ ॥ इष्टा रम्यसरस्यं वा स्थेयं पापाण-
वत्सदा । एतावतात्मयत्वेन जिता भवति संसृतिः ॥ ११८ ॥ वेदान्ते परमं
गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम् । ज्ञाप्रज्ञान्ताय दातव्यं न चाक्षिष्याय वै पुनः
॥ ११९ ॥ अन्नपूर्णेपनिषदं योऽधीते गुर्वनुग्रहात् । स जीवन्मुक्ततां प्राप्य
ब्रह्मैव भवति स्वयम् ॥ १२० ॥ इत्युपनिषत् ॥

इत्यन्नपूर्णेपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इत्यन्नपूर्णेपनिषत्समाप्ता ॥ ७३ ॥

सूर्योपनिषत् ॥ ७४ ॥

सूदितस्वातिरिक्तारिसूरिनन्दात्मभावितम् ।

सूर्यनारायणाकारं नौमि चित्सूर्यवैभवम् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ सूर्यार्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री
छन्दः । आदित्यो देवता । हंसः सोऽहमग्निनारायणयुक्तं बीजम् । हृल्लेखा
शक्तिः । वियदादिसर्गसंयुक्तं कीलकम् । चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं विनियोगः ।
षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम् । सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतु-
र्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स
वै ब्राह्मणः ॐ भूर्भुवःसुवः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् । सूर्य आत्मा जगतस्तत्पुत्रश्च । सूर्याद्वै खल्विमानि
भूताणि जायन्ते । सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽन्नमात्मा नमस्त आदित्य । त्वमेव
प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि ।
त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि । त्वमेव प्रत्यक्षं यज्ञुरसि ।
त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि । त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि । त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि ।
आदित्याद्वायुर्जायते । आदित्यान्ध्रमिर्जायते । आदित्यादापो जायन्ते । आदि-
त्याज्योतिर्जायते । आदित्याद्भोम दिशो जायन्ते । आदित्याद्देवा जायन्ते ।
आदित्याद्देवा जायन्ते । आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । असावादित्यो
ब्रह्म । आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः । आदित्यो वै ज्ञानः समा-

नोदानोऽपानः प्राणः । आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाः । आदित्यो वै वाक्पाणिपादपायूपस्थाः । आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः । आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः । नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मां पाहि । आजिष्णवे विश्वहेतवे नमः । सूर्याङ्गवन्ति भूतानि सूर्येण पालिताणि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च । चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः । आदित्याय विश्वहे सहस्रकिरणाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् । सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतांति सविता नो रासतां दीर्घमायुः । ॐ मिलेकाक्षरं ब्रह्म । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इत्यक्षरद्वयम् । आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि । एतस्यैव सूर्यस्याष्टाक्षरो मनुः । यः सदाऽहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति स वै ब्राह्मणो भवति । सूर्याभिमुखो जह्वा महाव्याधिमयात्प्रमुच्यते । अलक्ष्मीर्नश्यति । अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसंभाषणात्पूतो भवति । असत्संभाषणात्पूतो भवति । मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत् । सद्योत्पन्नपञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते । सैषां सावित्रीं विद्यां न किञ्चिदपि न कस्यचित्प्रशंसयेत् । य एतां महाभागाः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्छायते । पञ्चान्विन्दति । वेदार्थं लभते । त्रिकालमेतज्जह्वा ऋतुशतफलमवाप्नोति । यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद ॥ १ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति सूर्योपनिषत्समाप्ता ॥ ७४ ॥

अक्ष्युपनिषत् ॥ ७५ ॥

यत्सप्तभूमिकाविद्यावेद्यानन्दकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नावचस्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ ह सांस्कृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत् ॥ ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ असतो मां सत् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मांमृतं गमय । हंसो भगवान्छुचिरूपः प्रतिरूपः । विश्वरूपं

शृणिनं जातवेदसं हिरण्यमयं ज्योतीरूपं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त-
 मानः पुरुषः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायदित्या-
 याक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति । एवं चाक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः
 श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीच्चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न
 तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुलेऽन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान्प्राहयि-
 त्वाऽथ विद्यासिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान्भवति ॥ १ ॥ अथ ह सांस्कृति-
 रादित्यं पप्रच्छ भगवन्ब्रह्मविद्यां मे ब्रूहीति । तमादित्यो होवाच । सांस्कृते
 शृणु वक्ष्यामि तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम् । येन विज्ञातमात्रेण जीवन्मुक्तो भवि-
 ष्यसि ॥ २ ॥ सर्वमेकमजं शान्तमनन्तं ध्रुवमव्ययम् । पश्यन्भूतार्थचिद्रूपं
 शान्त आस्व यथासुखम् ॥ ३ ॥ अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमकृत्रिमम् ।
 योगस्थः कुरु कर्माणि नीरसो वाऽथ मा कुरु ॥ ४ ॥ विरागमुपयात्यन्तवासना-
 स्वनुवासरम् । क्रियासूदाररूपासु क्रमते मोदतेऽन्वहम् ॥ ५ ॥ ग्राम्यासु जड-
 चेष्टासु सततं विचिकित्सते । नोदाहरति मर्माणि पुण्यकर्माणि सेवते ॥ ६ ॥
 अनन्योद्वेगकारीणि मृदुकर्माणि सेवते । पापादिभेति सततं न च भोगमपेक्षते
 ॥ ७ ॥ ज्ञेहप्रणयगर्भाणि पेशलान्युचितानि च । देशकालोपपन्नाणि वचना-
 न्यभिभाषते ॥ ८ ॥ मनसा कर्मणा वाचा सज्जनानुपसेवते । यतः कुतश्चि-
 दानीय नित्यं शास्त्राण्यवेक्षते ॥ ९ ॥ तदासौ प्रथमामेकां प्राप्नो भवति
 भूमिकाम् । एवं विचारवान्यः स्यात्संसारोत्तारणं प्रति ॥ १० ॥ स भूमिका-
 वानित्युक्तः शेषस्त्वार्य इति स्मृतः । विचारनास्त्रीमितरामागतो योगभूमि-
 काम् ॥ ११ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारधारणाध्यानकर्मणः । मुख्यया व्याख्यया
 ख्यातान्छ्रूयति श्रेष्ठपण्डितान् ॥ १२ ॥ पदार्थप्रविभागज्ञः कार्याकार्यविलि-
 ङ्गयम् । जानात्यधिगतश्चान्यो गृहं गृहपतिर्यथा ॥ १३ ॥ मदभिमानमात्सर्य-
 लोभमोहातिशायिताम् । बहिरप्यास्थितामीषत्यजत्यहिरिव त्वचम् ॥ १४ ॥
 इत्थंभूतमतिः शास्त्रगुरुसज्जनसेवया । सरहस्यमशेषेण यथावदधिगच्छति
 ॥ १५ ॥ असंसर्गमिधामन्यां तृतीयां योगभूमिकाम् । ततः पतत्यसौ कान्तः
 पुष्पशय्यामिधामलाम् ॥ १६ ॥ यथाऽच्छास्त्रवाक्यार्थे मतिमाधाय निश्च-
 लाम् । तापसाश्रमविश्रान्तैरध्यात्मकथनक्रमैः । शिलाशय्यासनासीनो जरय-
 त्यायुराततम् ॥ १७ ॥ वनावनिविहारेण चित्तोपशमशोभिना । असङ्गसुख-
 सौख्येन कालं नयति नीतिमान् ॥ १८ ॥ अग्न्यासात्साधुशास्त्राणां करणा-

पुण्यकर्मणाम् । जन्तोर्यथावदेवेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदति ॥ १९ ॥ तृतीयं
 भूमिकां प्राप्य बुद्धोऽनुभवति स्वयम् ॥ २० ॥ द्विप्रकारमसंसर्गं तस्य भेद-
 मितं शृणु । द्विविधोऽयमसंसर्गः सामान्यः श्रेष्ठ एव च ॥ २१ ॥ नाहं कर्ता
 न भोक्ता च न बाध्यो न च बाधकः । इत्यसंजनमर्थेषु सामान्यासंज्ञानाम-
 कम् ॥ २२ ॥ प्राकर्मलिभितं सर्वमीश्वराधीनमेव वा । सुखं वा यदि वा
 दुःखं कैवात्र तव कर्तृता ॥ २३ ॥ भोगाभोगा महारोगाः संपदः परमापदः ।
 वियोगायैव संयोगा आधयो व्याधयोऽधियाम् ॥ २४ ॥ कालश्च कलनोद्युक्तः
 सर्वभावाननारतम् । अनास्थयेति भावानां यदभावनमान्तरम् । वाक्यार्थ-
 लब्धमनसः सामान्योऽसावसंज्ञमः ॥ २५ ॥ अनेन क्रमयोगेन संयोगेन
 महात्मनाम् । नाहं कर्तेश्वरः कर्ता कर्म वा प्राक्तनं मम ॥ २६ ॥ कृत्वा
 दूरतरे नूनमिति शब्दार्थभावनम् । यन्मौनमासनं शान्तं तच्छ्रेष्ठासङ्ग उच्यते
 ॥ २७ ॥ संतोषामोदमधुरा प्रथमोदेति भूमिका । भूमिप्रोदितमात्रोऽन्तर-
 मृताङ्कुरिकेव सा ॥ २८ ॥ एषा हि परिमृष्टान्तःसंन्यासा प्रसवैकभूः ।
 द्वितीयां च तृतीयां च भूमिकां प्राप्नुयात्ततः ॥ २९ ॥ श्रेष्ठा सर्वगता ह्येषा
 तृतीया भूमिकाऽत्र हि । भवति प्रोज्झिताशेषसंकल्पकलनः पुमान् ॥ ३० ॥
 भूमिकात्रितयाभ्यासादज्ञाने क्षयमागते । समं सर्वत्र पश्यन्ति चतुर्थी
 भूमिकां गताः ॥ ३१ ॥ अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते । पश्यन्ति
 स्वप्नवलोकं चतुर्थीं भूमिकां गताः ॥ ३२ ॥ भूमिकात्रितयं जाग्रच्चतुर्थीं स्वप्न
 उच्यते ॥ ३३ ॥ चित्तं तु शरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते । सत्त्वावशेष एवास्ते
 पञ्चमीं भूमिकां गतः ॥ ३४ ॥ जगद्विकल्पो नोदेति चित्तस्यात्र विलापनात् ।
 पञ्चमीं भूमिकामेत्य सुषुप्तपदनामिकाम् । शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमा-
 त्रकः ॥ ३५ ॥ गलितद्वैतनिर्भासो मुदितोऽन्तःप्रबोधवान् । सुषुप्तमन एवास्ते
 पञ्चमीं भूमिकां गतः ॥ ३६ ॥ अन्तर्मुखतया तिष्ठन्बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् । परि-
 श्रान्ततया नित्यं सिद्धान्तुरिव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूमिकायां
 विवासनः । षष्ठीं तुर्याभिधामन्यां क्रमात्पतति भूमिकाम् ॥ ३८ ॥ यत्र नासन्न-
 सद्रूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः । केवलं क्षीणमननमास्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः ॥ ३९ ॥
 निर्ग्रन्थिः शान्तसंदेहो जीवन्मुक्तो विभावनः । अतिर्वाणोऽपि निर्वाण-
 श्रित्रदीप इव स्थितः ॥ ४० ॥ षष्ठ्यां भूमावसौ स्थित्वा सप्तमीं भूमि-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामुयात् ॥ ४१ ॥ विदेहमुक्तताऽत्रोक्ता सप्तमी योगभूमिका । अगम्या
वचसां शान्ता सा सीमा सर्वभूमिषु ॥ ४२ ॥ लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा
देहानुवर्तनम् । शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ ४३ ॥ ओंकार-
मात्रमखिलं विश्वप्राज्ञादिलक्षणम् । वाच्यवाचकताभेदाभेदानुपलब्धतः
॥ ४४ ॥ अकारमात्रं विश्वः स्यादुकारस्तैजसः स्मृतः । प्राज्ञो मकार इत्येवं
परिपश्येत्क्रमेण तु ॥ ४५ ॥ समाधिकालात्प्रागेव विचिन्त्यातिप्रयत्नतः ।
स्थूलसूक्ष्मकमात्सर्वं चिदात्मनि विलापयेत् ॥ ४६ ॥ चिदात्मानं नित्यशुद्ध-
बुद्धमुक्तसद्वयः । परमानन्दसंदेहो वासुदेवोऽहमिति ॥ ४७ ॥ आदिम-
ध्यावसानेषु दुःखं सर्वमिदं यतः । तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवानघ
॥ ४८ ॥ अविद्यातिमिरातीतं सर्वाभासविवर्जितम् । आनन्दममलं शुद्धं
मनोवाचामगोचरम् ॥ ४९ ॥ प्रज्ञानघनमानन्दं ब्रह्मास्मीति विभावयेत्
॥ ५० ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इत्यक्षुपनिषत्समाप्ता ॥ ७५ ॥

अध्यात्मोपनिषत् ॥ ७६ ॥

यत्रान्तर्याम्यादिभेदस्तत्त्वतो न हि युज्यते ।

निर्भेदं परमाद्वैतं स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अन्तःशरीरे निहितो गुहायामज एको नित्यमस्य पृथिवी शरीरं
यः पृथिवीमन्तरे संचरन्त्यं पृथिवी न वेद । यस्यापः शरीरं यो अपोऽन्तरे
संचरन्त्यमापो न विदुः । यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरे संचरन्त्यं तेजो न
वेद । यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरे संचरन्त्यं वायुर्न वेद । यस्याकाशः
शरीरं य आकाशमन्तरे संचरन्त्यमाकाशो न वेद । यस्य मनः शरीरं यो मनो-
ऽन्तरे संचरन्त्यं मनो न वेद । यस्य बुद्धिः शरीरं यो बुद्धिमन्तरे संचरन्त्यं
बुद्धिर्न वेद । यस्याहंकारः शरीरं योऽहंकारमन्तरे संचरन्त्यमहंकारो न वेद ।
यस्य चित्तं शरीरं यश्चित्तमन्तरे संचरन्त्यं चित्तं न वेद । यस्याव्यक्तं शरीरं
योऽव्यक्तमन्तरे संचरन्त्यमव्यक्तं न वेद । यस्याक्षरं शरीरं योऽक्षरमन्तरे
संचरन्त्यमक्षरं न वेद । यस्य मृत्युः शरीरं यो मृत्युमन्तरे संचरन्त्यं मृत्युर्न

अ. उ. ३३

वेद । स एष सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः । अहं-
ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि । अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा ब्रह्म-
निष्ठया ॥ १ ॥ ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्वृत्तिसाक्षिणम् । सोऽहमित्येव
तद्वृत्त्या स्वान्प्रत्रात्ममतिं त्यजेत् ॥ २ ॥ लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहा-
नुवर्तनम् । शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ ३ ॥ स्वात्मन्येव
सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः । युक्त्या श्रुत्वा स्वानुभूत्या ज्ञात्वा
सार्वभूतमात्मनः ॥ ४ ॥ निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरात्मविस्मृतेः ।
क्वचिन्नासुरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ ५ ॥ मातापित्रोर्मैलोज्झृतं मल-
मांसमयं वपुः । त्यक्त्वा चण्डालवद्दूरं ब्रह्मभूय कृती भव ॥ ६ ॥ घटाकाशं
महाकाश इवात्मानं परात्मनि । विलाप्याखण्डभावेन तूष्णीं भव सदा मुने
॥ ७ ॥ स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयं भूय सदात्मना । ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं
त्यज्यतां मलभाण्डवत् ॥ ८ ॥ चिदात्मनि सदानन्दे देहरूढामहं धियम् ।
निवेश्य लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा ॥ ९ ॥ यत्रैष जगदाभासो दर्पणा-
न्तःपुरं यथा । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भवानघ ॥ १० ॥ अहंकार-
ग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते । चन्द्रवद्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः ॥ ११ ॥
क्रियानाशान्नवेच्छिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः । वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा
जीवन्मुक्तिरिष्यते ॥ १२ ॥ सर्वत्र सर्वतः सर्वब्रह्मान्नावलोकनम् । सद्भाव-
भावनादाढ्याद्वासनालयमश्नुते ॥ १३ ॥ प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायाः कर्तव्यः
कदाचन । प्रमादो मृत्युरित्याहुर्विद्यायां ब्रह्मवादिनः ॥ १४ ॥ यथाऽपकृष्टं
शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति । आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम्
॥ १५ ॥ जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहोऽपि स केवलः । समाधिनिष्ठतामेत्य
निर्विकल्पो भवानघ ॥ १६ ॥ अज्ञानहृदयग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा । समा-
धिना विकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम् ॥ १७ ॥ अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु
संत्यजन् । उदासीनतया तेषु तिष्ठेद्वटपटादिवत् ॥ १८ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं
मृपामात्रा उपाधयः । ततः पूर्णं स्वमात्मानं पश्येदेकात्मना स्थितम् ॥ १९ ॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः । स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मा-
दन्यन्न किंचन ॥ २० ॥ स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः । स्वयमेव
परंब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ २१ ॥ अस्तकल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येक-
वस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ २२ ॥ द्रष्टृदर्शनद्वया-

दिभावंशून्ये निरामये । कल्पार्णव इवात्यन्तं परिपूर्णं चिदात्मनि ॥ २३ ॥
 तेजसीव तमो यत्र विलीनं आन्तिकारणम् । अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे
 भिदा कुतः ॥ २४ ॥ एकात्मके परे तत्त्वे भेदकर्ता कथं वसेत् । सुषुप्तौ
 सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः ॥ २५ ॥ चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ता-
 भावे न कश्चन । अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि ॥ २६ ॥ अखण्डानन्द-
 मात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः । बहिरन्तःसदानन्दरसास्वादनमात्मनि
 ॥ २७ ॥ वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम् । स्वानन्दानुभवाच्छा-
 न्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥ २८ ॥ यद्युत्तरोत्तराभावे पूर्वरूपं तु निष्फलम् ।
 निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः ॥ २९ ॥ मायोपाधिर्जगद्योनिः
 सर्वज्ञत्वादिलक्षणः । पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः ॥ ३० ॥
 आलम्बनतया भाति योऽसत्प्रत्ययशब्दयोः । अन्तःकरणसंभिन्नबोधः
 सत्त्वंपदाभिधः ॥ ३१ ॥ मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः । अखण्डं
 सच्चिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥ ३२ ॥ इत्थं वाक्यैस्तथाऽर्थानुसंधानं श्रवणं
 भवेत् । युक्त्या संभावितत्त्वानुसंधानं मननं तु तत् ॥ ३३ ॥ ताभ्यां निर्वि-
 चिकित्सेऽर्थं चेतसः स्थापितस्य यत् । एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते
 ॥ ३४ ॥ ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाज्ज्ञेयैकगोचरम् । निवातदीपवच्चित्तं
 समाधिरभिधीयते ॥ ३५ ॥ वृत्तयस्तु तदानीमप्यज्ञाता आत्मगोचराः ।
 स्मरणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थिताः ॥ ३६ ॥ अनादाविह संसारे
 संचिताः कर्मकोटयः । अनेन विलयं यान्ति शुद्धो धर्मो विवर्धते ॥ ३७ ॥
 धर्ममेधमिमं प्राहुः समार्थि योगवित्तमाः । वर्षत्येष यथा धर्माभृतधाराः
 सहस्रशः ॥ ३८ ॥ अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलायिते । समूलोन्मूलिते
 पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये ॥ ३९ ॥ वाक्यमप्रतिबद्धं सत्प्राक्परोक्षावभासिते ।
 करामलकवद्बोधमपरोक्षं प्रसूयते ॥ ४० ॥ वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य
 तदावधिः । अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः ॥ ४१ ॥ लीनवृत्तेरनु-
 त्पत्तिर्मयःोपरतेस्तु सा । स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते ॥ ४२ ॥
 ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः । ब्रह्मात्मनोः शोधितचोरेक-
 भावावगाहिति ॥ ४३ ॥ निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ।
 सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इत्यने ॥ ४४ ॥ नेहेनित्येत्वंहंभाव

इदंभावस्तदन्यके । यस्य नो भवतः कापि स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४५ ॥
 न प्रत्यग्रहणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः । प्रज्ञया यो विजानाति स जीव-
 न्मुक्त इष्यते ॥ ४६ ॥ साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः ।
 समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४७ ॥ विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य
 यथापूर्वं न संसृतिः । अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः ॥ ४८ ॥
 सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते । फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो
 नहि कुत्रचित् ॥ ४९ ॥ अहंब्रह्मेतिविज्ञानात् कल्पकोटिशतार्जितम् ॥
 संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्रकर्मवत् ॥ ५० ॥ स्वमसङ्गमुदासीनं परि-
 ज्ञाय नभो यथा । न श्लिष्यते यतिः किंचित्कदाचिन्नाविकर्मभिः ॥ ५१ ॥
 न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते । तथाऽऽत्मोपाधियोगेन तद्धर्मो नैव
 लिप्यते ॥ ५२ ॥ ज्ञानोदयात्पुराऽऽरब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति । अदत्त्वा
 स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत् ॥ ५३ ॥ व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः
 पश्चान्तु गोमतौ । न तिष्ठति भिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम् ॥ ५४ ॥ अ-
 जरोऽस्स्यमरोऽस्मीति य आत्मानं प्रपद्यते । तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः
 प्रारब्धकल्पना ॥ ५५ ॥ प्रारब्धं सिद्ध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः ।
 देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतामतः ॥ ५६ ॥ प्रारब्धकल्पनाप्यस्य
 देहस्य भ्रान्तिरेव हि ॥ ५७ ॥ अध्यस्तस्य कुतस्तत्त्वमसत्यस्य कुतो जनिः ।
 अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः ॥ ५८ ॥ ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य
 समूलस्य लयो यदि । तिष्ठत्ययं कथं देह इति शङ्कावतो जडान् । समाधातुं
 बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः ॥ ५९ ॥ न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय
 विपश्चिताम् । परिपूर्णमनाद्यन्तमग्रमेयमविक्रियम् ॥ ६० ॥ सद्भनं चिद्धनं
 नित्यमानन्दघनमव्ययम् । प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् ॥ ६१ ॥
 अहेयमनुपादेयमनाधेयमनाश्रयम् । निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं
 निरञ्जनम् ॥ ६२ ॥ अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम् । सत्समृद्धं
 स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनोदशम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन
 ॥ ६३ ॥ स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् । ससिद्धः ससुखं
 तिष्ठ निर्विकल्पात्मनात्मनि ॥ ६४ ॥ क गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं
 जगत् । अधुनैव मया द्रष्टुं नास्ति किं महद्भुतम् ॥ ६५ ॥ किं हेयं किमुपा-

देयं किमन्यत्किं विलक्षणम् । अखण्डानन्दपीयूषपूर्णब्रह्ममहार्णवे ॥ ६६ ॥ न
 किञ्चिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेदयाम् । स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि
 स्वलक्षणः ॥ ६७ ॥ असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलिङ्गोऽहमहं हरिः । प्रशान्तोऽह-
 मनन्तोऽहं परिपूर्णश्चिरन्तनः ॥ ६८ ॥ अकर्ताऽहमभोक्ताऽहमविकारोऽहम-
 व्ययः । शुद्धो बोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥ ६९ ॥ एतां विद्याम-
 यान्तरतमाय ददौ । अपान्तरतमो ब्रह्मणे ददौ । ब्रह्मा घोराङ्गिरसे ददौ ।
 घोराङ्गिरा रैकाय ददौ । रैको रामाय ददौ । रामः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ददा-
 वित्येतन्निर्वाणानुशासनं वेदानुशासनं वेदानुशासनमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ
 तत्सत् ॥ ७० ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्यध्यात्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ७६ ॥

कुण्डिकोपनिषत् ॥ ७७ ॥

कुण्डिकोपनिषत्ख्यातपरिव्राजकसंततिः ।

यत्र विश्रान्तिमगमत्तद्रामपदमाश्रये ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ ब्रह्मचर्याश्रमे क्षीणे गुरुशुश्रूषणे रतः । वेदानधीत्यानुज्ञात
 उच्यते गुरुणाश्रमी ॥ १ ॥ दारमाहृत्य सदशमग्निमाधाय शक्तिः । ब्राह्मीमिष्टिं
 यजेत्तासामहोरात्रेण निर्वपेत् ॥ २ ॥ संविभज्य सुतानर्थे ग्राम्यकामान्विसृज्य
 च । संचरन्वनमार्गेण शुचौ देशे परिभ्रमन् ॥ ३ ॥ वायुमक्षोऽम्बुमक्षो वा
 विहितैः कन्दमूलकैः । स्वशरीरे समाप्याथ पृथिव्यां नाशु पातयेत् ॥ ४ ॥
 सह तेनैव पुरुषः कथं संन्यस्त उच्यते । सनामधेयो यस्मिंस्तु कथं संन्यस्त
 उच्यते ॥ ५ ॥ तस्मात्फलविशुद्धाङ्गी संन्यासं संहितात्मनाम् । अग्निवर्णं
 विनिष्कम्य वानप्रस्थं प्रपद्यते ॥ ६ ॥ लोकवद्भार्ययाऽऽसक्तो वनं गच्छति
 संयतः । संत्यक्त्वा संसृतिसुखमनुतिष्ठति किं मुधा ॥ ७ ॥ किंवा दुःखमनु-
 स्मृत्य भोगांस्त्यजति चोच्छ्रितान् । गर्भवासभयाङ्गीतः शीतोष्णाभ्यां तथैव च
 ॥ ८ ॥ गुह्यं प्रवेष्टुमिच्छामि परं पदमनामयमिति । संन्यस्याग्निमपुनरावर्तनं
 यन्मृ-यर्जाय (?) सावहमिति ! अथाध्यात्ममन्त्राज्ञपेनः । दोक्षामुपेयाः कापाय-

बासाः । कक्षोपस्थलोमानि वर्जयेत् । ऊर्ध्वबाहुर्विमुक्तमार्गो भवति । अनि-
 केतश्चरेद्भिक्षाश्री । निदिध्यासनं दध्यात् । पवित्रं धारयेज्जन्तुसंरक्षणार्थम् ।
 तदपि श्लोका भवन्ति । कुण्डिकां चमसं शिष्यं त्रिविष्टपमुपानहौ । शीतो-
 पघातिनीं कन्थां कौपीनच्छादनं तथा ॥ ९ ॥ पवित्रं स्नानशार्दीं च उत्तरा-
 सङ्गमेव च । अतोऽतिरिक्तं यत्किञ्चित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ १० ॥ नदीपुलिन-
 शायी स्यादेवागारेषु बाह्यतः । नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत्
 ॥ ११ ॥ स्नानं पानं तथा शौचमग्निः पूताभिराचरेत् । स्तूयमानो न तुष्येत
 निन्दितो न शपेत्परान् ॥ १२ ॥ भिक्षादिवैदलं पात्रं स्नानद्रव्यमवारितम् ।
 एवंवृत्तिमुपासीनो यतेन्द्रियो जपेत्सदा ॥ १३ ॥ विश्वाय मनुसंयोगं मनसा
 भावयेत्सुधीः । आकाशाद्वायुर्वायोर्योतिर्योतिष आपोऽन्धः पृथिवी । एषां
 भूतानां ब्रह्म प्रपद्ये । अजरममरमक्षरमव्ययं प्रपद्ये । मय्यखण्डसुखात्मभोधौ
 बहुधा विश्ववीचयः । उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात् ॥ १४ ॥
 न मे देहेन संबन्धो मेघेनेव विहायसः । अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्स्वप्न-
 सुषुप्तिषु ॥ १५ ॥ आकाशवत्कल्पविदूरगोऽहमादित्यवद्भास्यविलक्षणोऽहम् ।
 अहार्यबन्धित्यविनिश्चलोऽहमम्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम् ॥ १६ ॥ नारायणो-
 ऽहं नरकान्तकोऽहं पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः । अखण्डबोधोऽहमशेष-
 साक्षी निरीश्वरोऽहं निरहं च निर्ममः ॥ १७ ॥ तदभ्यासेन प्राणापानौ संयम्य
 तन्त्रश्लोका भवन्ति ॥ वृषणापानयोर्मध्ये पाणी आस्थाय संश्रयेत् । संदश्य
 शनकैर्जिह्वां यवमात्रे विनिर्गताम् ॥ १८ ॥ माषमात्रां तथा दृष्टिं श्रोत्रे
 स्थाप्य तथा भुवि । श्रवणे नासिके गन्धा यतः स्वं न च संश्रयेत् ॥ १९ ॥
 अथ शैवपदं यत्र तद्ब्रह्म ब्रह्म तत्परम् । तदभ्यासेन लभ्येत पूर्वजन्मार्जितात्म-
 नाम् ॥ २० ॥ संभूतैर्वायुसंश्रावैर्हृदयं तप उच्यते । ऊर्ध्वं प्रपद्यते देहा-
 न्निश्चिन्ना मूर्धानमव्ययम् ॥ २१ ॥ स्वदेहस्य तु मूर्धानं ये प्राप्य परमां गतिम् ।
 भूयस्ते न निवर्तन्ते परावरविदो जनाः ॥ २२ ॥ न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः
 संस्पृशन्ति विलक्षणम् । अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ २३ ॥ जले
 वापि स्थले वापि लुठत्वेव जडात्मकः । नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा
 ॥ २४ ॥ निष्क्रान्तोऽस्म्यविकारोऽस्मि निष्कलोऽस्मि निराकृतिः । निर्विकल्पो-

ऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः ॥ २५ ॥ सर्वात्मकोऽहं सर्वो-
ऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः । केवलाखण्डबोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥ २६ ॥
स्वमेव सर्वतः पश्यन्मन्यमानः स्वमद्वयम् । स्वानन्दमनुभुञ्जानो निर्विकल्पो
भवाम्यहम् ॥ २७ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशन्छयानो वाऽन्यथापि वा । यथेच्छया
वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ २८ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति कुण्डिकोपनिषत्समाप्ता ॥ ७७ ॥

सावित्र्युपनिषत् ॥ ७८ ॥

सावित्र्युपनिषद्वेद्यचित्सावित्रपदोज्ज्वलम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

सावित्र्यात्मा पाशुपत परब्रह्मावधूतकम् ।

त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुरा कठभावना ॥ २ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ कः सविता का सावित्री अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री स
यत्राग्निस्तपृथिवी यत्र वै पृथिवी तत्राग्निस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ १ ॥
कः सविता का सावित्री वरुण एव सविताऽऽपः सावित्री स यत्र वरुणस्तदापो
यत्र वा आपस्तद्वरुणस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ २ ॥ कः सविता का
सावित्री वायुरेव सविताकाशः सावित्री स यत्र वायुस्तदाकाशो यत्र वा
आकाशस्तद्वायुस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ३ ॥ कः सविता का सावित्री
यज्ञ एव सविता छन्दांसि सावित्री स यत्र यज्ञस्तत्र छन्दांसि यत्र वा
छन्दांसि स यज्ञस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ४ ॥ कः सविता का सावित्री
स्तनयिबुरेव सविता विद्युत्सावित्री स यत्र स्तनयिबुस्तद्विद्युत् यत्र वा विद्युत्तत्र
स्तनयिबुस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ५ ॥ कः सविता का सावित्री आदित्य
एव सविता द्यौः सावित्री स यत्रादित्यस्तद्व्यौर्यत्र वा द्यौस्तदादित्यस्ते द्वे
योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ६ ॥ कः सविता का सावित्री चन्द्र एव सविता
नक्षत्राणि सावित्री स यत्र चन्द्रस्तन्नक्षत्राणि यत्र वा नक्षत्राणि स चन्द्रमास्ते
द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ७ ॥ कः सविता का सावित्री मन एव सविता

वाक् सावित्री स यत्र मनस्तद्वाक् यत्र वा वाक् तन्मनस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ८ ॥ कः सविता का सावित्री पुरुष एव सविता स्त्री सावित्री स यत्र पुरुषस्तस्त्री यत्र वा स्त्री स पुरुषस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ९ ॥ तस्या एव प्रथमः पादो भूस्तत्सवितुर्वरेण्यमित्यग्निर्वै वरेण्यमापो वरेण्यं चन्द्रमा वरेण्यम् । तस्या एव द्वितीयः पादो भर्गमयोऽपो भुवो भर्गो देवस्य धीमहीत्यग्निर्वै भर्ग आदित्यो वै भर्गश्चन्द्रमा वै भर्गः । तस्या एव तृतीयः पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति । स्त्री चैव पुरुषश्च प्रजनयतो यो वा एतां सावित्रीमेवं वेद स पुनर्मृत्युं जयति बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः । गायत्री छन्दः । गायत्री देवता । अकारोकारमकारा बीजाद्याः । क्षुधादिनिरसने विनियोगः । ह्रीमिल्यादिषडङ्गन्यासः । ध्यानम् । अमृतकरतलाद्रौ सर्वसंजीवनाढ्यावधहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे । प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ ॥ ॐ ह्रीं बले महादेवि ह्रीं महाबले ह्रीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले सर्वक्षुद्रमोपनाशिनि धीमाहे धियो यो नो जाते प्रचुर्यः यो प्रचोदयादात्मिके प्रणवशिरस्कारात्मिके हुं फट् स्वाहा । एवं विद्वान् कृतकृत्यो भवति सावित्र्या एव सलोकतां जयतीत्युपनिषत् ॥ १॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति सावित्र्युपनिषत्समाप्ता ॥ ७८ ॥

आत्मोपनिषत् ॥ ७९ ॥

यत्र नात्मप्रपञ्चोऽथमपह्नवपदं गतः ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तः परमात्माऽवशिष्यते ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथाङ्गिरास्त्रिविधः पुरुषस्तद्यथा-बाह्यात्माऽन्तरात्मा परमात्मा चेति । त्वक्चर्ममांसरोमाङ्गुष्ठाङ्गुल्यः पृष्ठवंशनखगुल्फोदरनाभिमेढ्रकट्यूरुक्पोलश्रोत्र भ्रूललाटबाहुपार्श्वशिरोधमनिकाऽक्षीणि भवन्ति जायते म्रियते इत्येष

बाह्यात्मा । अथान्तरात्मा नाम पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशेच्छाद्वेपसुख-
दुःखकाममोहविकल्पनादिभिः स्मृतिलिङ्ग उदात्तानुदात्तह्रस्वदीर्घभुतस्खलि-
तगर्जितस्फुटितमुदितनृत्तगीतवादित्रप्रलयविजृम्भितादिभिः श्रोता घ्राता
रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः पुराणन्यायमीमांसाधर्म-
शास्त्राणीति श्रवणप्राणार्कषणकर्मविशेषणं करोत्येपोऽन्तरात्मा नाम ।
अथ परमात्मा नाम यथाक्षर उपासनीयः । स च प्राणायामप्रत्याहार-
धारणाध्यानसमाधियोगानुमानाध्यात्मचिन्तकं वटकणिका वा ज्ञामा-
कतण्डुलो वा वालाग्रशतसहस्रविकल्पनाभिः स लभ्यते नोपलभ्यते
न जायते न म्रियते न शुष्यति न क्लियते न दह्यति न कम्पते न भिद्यते न
च्छिद्यते निर्गुणः साक्षीभूतः । शुद्धो निरवयवात्मा केवलः सूक्ष्मो निष्कलो
निरञ्जनो निर्विकारः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवर्जितो निर्विकल्पो निराकाङ्क्षः
सर्वव्यापी सोऽचिन्त्यो निर्वर्ण्यश्च पुनात्यशुद्धान्यपूतानि । निष्क्रियस्तस्य संसारो
नास्ति । आत्मसंज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः सदा । ब्रह्मरूपतया ब्रह्म
केवलं प्रतिभासते ॥ १ ॥ जगद्रूपतयाप्येतद्ब्रह्मैव प्रतिभासते । विद्याऽविद्या-
दिभेदेन भावाऽभावादिभेदतः ॥ २ ॥ गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ।
ब्रह्मैव केवलं शुद्धं विद्यते तत्त्वदर्शने ॥ ३ ॥ न च विद्या न चाविद्या न
जगच्च न चापरम् । सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥ असत्यत्वेन
भानं तु संसारस्य निवर्तकम् । घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः को न्वपेक्षते
॥ ५ ॥ विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन्सति पदार्थधीः । अयमात्मा नित्यसिद्धः
प्रमाणे सति भासते ॥ ६ ॥ न देशं नापि कालं वा न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ।
देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् ॥ ७ ॥ तद्ब्रह्मविदोऽप्यस्य ब्रह्माहमिति
वेदनम् । भानुनेव जगत्सर्वं भास्यते यस्य तेजसा ॥ ८ ॥ अनात्मकमसत्तुच्छं
किं नु तस्यावभासकम् । वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि ॥ ९ ॥
येनार्थवन्ति तं किं नु विज्ञातारं प्रकाशयेत् । क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः
क्रीडति वस्तुनि ॥ १० ॥ तथैव विद्वान्रमते निर्ममो निरहं सुखी । कामाग्नि-
ष्कामरूपी संचरत्येकचरो मुनिः ॥ ११ ॥ स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वा-
त्मना स्थितः । निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ॥ १२ ॥ नित्य-
तृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः । कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फल-

भोग्यपि ॥ १३ ॥ शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः । अशरीरं सदा सन्तमिदं
 ब्रह्मविदं कश्चित् ॥ १४ ॥ प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे । तमसा
 अस्तबन्नानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः ॥ १५ ॥ अस्त इत्युच्यते आन्त्या ह्यज्ञात्वा
 वस्तुलक्षणम् । तद्ब्रह्मादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १६ ॥ पश्यन्ति
 देहिवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात् । अहिनिर्व्वयनीवायं मुक्तदेहस्तु तिष्ठति
 ॥ १७ ॥ इतस्ततश्चात्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना । स्रोतसा नीयते दारु
 यथा निम्नोन्नतस्थलम् ॥ १८ ॥ दैवेन नीयते देहो तथा कालोपभुक्तिषु ।
 लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ॥ १९ ॥ शिव एव स्वयं
 साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः । जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥ २० ॥
 उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् । शैलूपो वेपसन्नावाभावयोश्च यथा
 युनात् ॥ २१ ॥ तथैव ब्रह्मविच्छेष्टः सदा ब्रह्मैव नापरः । घटे नष्टे यथा
 व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ॥ २२ ॥ तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ।
 क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ॥ २३ ॥ संयुक्तमेकतां याति तथा-
 ऽऽत्मन्यात्मविन्मुनिः । एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् ॥ २४ ॥
 ब्रह्मभावं प्रपद्येयं यतिर्नावर्तते पुनः । सदात्मकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्ष्मणः
 ॥ २५ ॥ अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद्ब्रह्मणः कुत उद्भवः । मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न
 स्तः स्वात्मनि वस्तुतः ॥ २६ ॥ यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ ।
 अवृत्तेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ॥ २७ ॥ नावृत्तिर्ब्रह्मणः काचिदन्या-
 भावादनावृत्तम् । अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि ॥ २८ ॥
 बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः । अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ
 न चात्मनि ॥ २९ ॥ निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने । अद्वितीये
 परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ३० ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न
 च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा रमार्थता ॥ ३१ ॥ इत्युपनिषत् ॥
 हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्यात्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ७९ ॥

पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥ ८० ॥

पाशुपतब्रह्मविद्यासंवेद्यं परमाक्षरम् ।

परमानन्दसंपूर्णं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ ह वै स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजाः सृजानीति कामकामो जायते कामेश्वरो वैश्रवणः । वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो वालखिल्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति जगतां का विद्या का देवता जाग्रदुरीययोरस्य को देवो यानि तस्य वशानि कालाः कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते कस्य महिमा गगनस्वरूप एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रूहि ब्रह्मन् । स्वयंभूरुवाच-कृत्स्नजगतां मातृका विद्या द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता । चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मिका देवता । अहमेव जगन्नयस्यैकः पतिः । मम वशानि सर्वाणि युगान्यपि । अहोरात्रादयो मत्संवर्धिताः कालाः । मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि च । गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपो नान्यो मदस्ति । तमोमायात्मको रुद्रः सात्त्विक-मायात्मको विष्णू राजसमायात्मको ब्रह्मा । इन्द्रादयस्तामसरजसात्मिका न सात्त्विकः कोऽपि । अघोरः सर्वसाधारणस्वरूपः । समस्तयागानां रुद्रः पशुपतिः कर्ता । रुद्रो यागदेवो विष्णुरध्वर्युर्होतेन्द्रो देवता यज्ञभुग् मानसं ब्रह्म माहेश्वरं ब्रह्म मानसं हंसः सोऽहं हंस इति । तन्मययज्ञो नादानुसंधानम् । तन्मयविकारो जीवः । परमात्मस्वरूपो हंसः । अन्तर्बहिश्चरति हंसः । अन्तर्गतोऽनवकाशान्तर्गतसुपर्णस्वरूपो हंसः । पणवतितत्त्वतन्नुवञ्चकं चित्सूत्रत्रयचिन्मयलक्षणं नवतत्त्वत्रिरावृतं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकमग्नित्रयकलोपेतं चिद्वन्थिवन्धनम् । अद्वैतग्रन्थिः यज्ञसाधारणाङ्गं बहिरन्तर्ज्वलनं यज्ञाङ्गलक्षणब्रह्मस्वरूपो हंसः । उपवीतलक्षणसूत्रब्रह्मगा यज्ञाः । ब्रह्माङ्गलक्षणयुक्तो यज्ञसूत्रम् । तद्ब्रह्मसूत्रम् । यज्ञसूत्रसंबन्धी ब्रह्मयज्ञः । तत्स्वरूपोऽङ्गानि मात्राणि । मनो यज्ञस्य हंसो यज्ञसूत्रम् । प्रणवं ब्रह्मसूत्रं ब्रह्मयज्ञमयम् । प्रणवान्तर्वर्ती हंसो ब्रह्मसूत्रम् । तदेव ब्रह्मयज्ञमयं मोक्षक्रमम् । ब्रह्मसंध्याक्रिया मनोयागः । संध्याक्रिया मनोयागस्य लक्षणम् । यज्ञसूत्रप्रणवब्रह्मयज्ञ-

क्रियायुक्तो ब्राह्मणः । ब्रह्मचर्येण चरन्ति देवाः । हंससूत्रचर्या यज्ञाः । हंस-
 प्रणवयोरभेदः । हंसस्य प्रार्थनास्त्रिकालाः । त्रिकालास्त्रिवर्णाः । त्रेताभ्यनु-
 संधानो यागः । त्रेताभ्यात्माकृतिवर्णोङ्कारहंसानुसंधानोऽन्तर्यागः । चित्सू-
 रूपवत्तन्मयं तुरीयस्वरूपम् । अन्तरादित्ये ज्योतिःस्वरूपो हंसः । यज्ञाङ्गं ब्रह्म-
 संपत्तिः । ब्रह्मप्रवृत्तौ तत्प्रणवहंससूत्रेणैव ध्यानमाचरन्ति । प्रोवाच पुनः
 स्वयंभुवं प्रतिजानीते ब्रह्मपुत्रो ऋषिर्वालखिल्यः । हंससूत्राणि कतिसंख्यानि
 कियद्वा प्रमाणम् । हृद्यादित्यमरीचीनां पदं षण्णवतिः । चित्सूत्रप्राणयोः
 स्वर्निर्गता प्रणवधारा षडङ्गुलदशाशीतिः । वामबाहुर्दक्षिणकट्योरन्तश्चरति
 हंसः परमात्मा ब्रह्मगुह्यप्रकारो नान्यत्र विदितः । जानन्ति तेऽमृतफलकाः ।
 सर्वकालं हंसं प्रकाशकम् । प्रणवहंसान्तर्ध्यानप्रकृतिं विना न मुक्तिः । नव-
 सूत्रान्परिचर्चितान् । तेऽपि यद्ब्रह्म चरन्ति । अन्तरादित्येन ज्ञातं मनुष्या-
 णाम् । जगदादित्यो रोचत इति ज्ञात्वा ते मर्त्या विबुधास्तपनप्रार्थनायुक्ता
 आचरन्ति । वाजपेयः पशुहर्ता अध्वर्युरिन्द्रो देवता अहिंसा धर्मयागः परम-
 हंसोऽध्वर्युः परमात्मा देवता पशुपतिर्ब्रह्मोपनिषदो ब्रह्म । स्वाध्याययुक्ता
 ब्राह्मणाश्चरन्ति । अश्वमेधो महायज्ञकथा । तद्वाज्ञा ब्रह्मचर्यमाचरन्ति ।
 सर्वेषां पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञक्रमं मुक्तिक्रममिति । ब्रह्मपुत्रः प्रोवाच । उदितो हंस
 ऋषिः । स्वयंभूस्तिरोदधे । रुद्रो ब्रह्मोपनिषदो हंसज्योतिः पशुपतिः प्रणव-
 स्तारकः स एवं वेद । हंसात्ममालिकावर्णब्रह्मकालप्रचोदिता । परमात्मा
 पुमानिति ब्रह्मसंपत्तिकारिणी ॥ १ ॥ अध्यात्मब्रह्मकल्पस्याकृतिः कीदृशी
 कथा । ब्रह्मज्ञानप्रभासन्ध्याकालो गच्छति धीमताम् । हंसाख्यो देवमात्मा-
 ख्यमात्मतत्त्वज्ञः कथम् ॥ २ ॥ अन्तःप्रणवनादाख्यो हंसः प्रत्ययबोधकः ।
 अन्तर्गतप्रमाणगूढं ज्ञाननालं विराजितम् ॥ ३ ॥ शिवशक्त्यात्मकं रूपं चिन्म-
 यानन्दवेदितम् । नादविन्दुकला त्रीणि नेत्रं विश्वविचेष्टितम् ॥ ४ ॥ त्रियज्ञानि
 शिखा त्रीणि द्वित्राणां सांख्यमाकृतिः । अन्तर्गूढप्रमा हंसः प्रमाणाभिर्गतं बहिः
 ॥ ५ ॥ ब्रह्मसूत्रपदं ज्ञेयं ब्राह्मं विध्युक्तलक्षणम् । हंसार्कप्रणवध्यानमित्युक्तो
 ज्ञानसागरे ॥ ६ ॥ एतद्विज्ञानमात्रेण ज्ञानसागरपारगः । स्वतः शिवः पशु-
 पतिः साक्षी सर्वस्य सर्वदा ॥ ७ ॥ सर्वेषां तु मनस्तेन प्रेरितं नियमेन तु ।

विषये गच्छति प्राणश्चेष्टते वाग्वदत्यपि ॥ ८ ॥ चक्षुः पश्यति रूपाणि श्रोत्रं
सर्वं शृणोत्यपि । अन्यानि खानि सर्वाणि तेनैव प्रेरितानि तु ॥ ९ ॥ स्वं स्वं
विषयमुद्दिश्य प्रवर्तन्ते निरन्तरम् । प्रवर्तकत्वं चाप्यस्य मायया न स्वभावतः
॥ १० ॥ श्रोत्रमात्मनि चाध्यस्तं स्वयं पशुपतिः पुमान् । अनुप्रविश्य श्रोत्रस्य
ददाति श्रोत्रतां शिवः ॥ ११ ॥ मनः स्वात्मनि चाध्यस्तं प्रविश्य परमेश्वरः ।
मनस्त्वं तस्य सत्त्वस्थो ददाति नियमेन तु ॥ १२ ॥ स एव विदितादन्यस्तथै-
वाविदितादपि । अन्येषामिन्द्रियाणां तु कल्पितानामपीश्वरः ॥ १३ ॥ तत्तद्रूप-
मनु प्राप्य ददाति नियमेन तु । ततश्चक्षुश्च वाक्चैव मनश्चान्यानि खानि च
॥ १४ ॥ न गच्छन्ति स्वयंज्योतिःस्वभावे परमात्मनि । अकर्तृविषयप्रत्यक्षप्र-
काशं स्वात्मनैव तु ॥ १५ ॥ विना तर्कप्रमाणाभ्यां ब्रह्म यो वेद वेद सः ।
प्रत्यगात्मा परंज्योतिर्माया सा तु महत्तमः ॥ १६ ॥ तथा सति कथं माया-
संभवः प्रत्यगात्मनि । तस्मात्तर्कप्रमाणाभ्यां स्वानुभूत्या च चिद्धने ॥ १७ ॥
स्वप्रकाशैकसंसिद्धे नास्ति माया परात्मनि । व्यवहारिकदृष्ट्यर्थं विद्याऽविद्या न
चान्यथा ॥ १८ ॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् । व्यावहारिक-
दृष्टिस्तु प्रकाशाव्यभिचारतः ॥ १९ ॥ प्रकाश एव सततं तस्मादद्वैत एव
हि । अद्वैतमिति चोक्तिश्च प्रकाशाव्यभिचारतः ॥ २० ॥ प्रकाश एव सततं
तस्मान्मौनं हि युज्यते । अयमर्थो महान्यस्य स्वयमेव प्रकाशितः ॥ २१ ॥
न स जीवो न च ब्रह्म न चान्यदपि किञ्चन । न तस्य वर्णा विद्यन्ते नाश्र-
माश्च तथैव च ॥ २२ ॥ न तस्य धर्मोऽधर्मश्च न निषेधो विधिर्न च । यदा
ब्रह्मात्मकं सर्वं विभाति तत एव तु ॥ २३ ॥ तदा दुःखादिभेदोऽयमाभा-
सोऽपि न भासते । जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥ २४ ॥ न
तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति । धर्मधर्मित्ववार्ता च भेदे सति हि
मिद्यते ॥ २५ ॥ भेदाभेदस्तथा भेदाभेदः साक्षात्परात्मनः । नास्ति स्वात्मा-
तिरेकेण स्वयमेवास्ति सर्वदा ॥ २६ ॥ ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्भस्तुतोऽवस्तु-
तोऽपि च । तथैव ब्रह्मविज्ञानी किं गृह्णाति जहाति किम् ॥ २७ ॥ अधिष्ठान-
मनौपम्यमवाङ्मानसगोचरम् । यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम् ॥ २८ ॥
अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तद-
व्ययम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मैवेदममृतं तत्पुरस्ताद्ब्रह्मानन्दं परमं चैव पश्चात् । ब्रह्मा-

नन्दं परमं दक्षिणे च ब्रह्मानन्दं परमं चोत्तरे च ॥ ३० ॥ स्वात्मन्येव स्वयं
 सर्वं सदा पश्यति निर्भयः । तदा मुक्तो न मुक्तश्च बद्धस्यैव विमुक्तता ॥ ३१ ॥
 एवंरूपा परा विद्या सत्येन तपसापि च । ब्रह्मचर्यादिभिर्धर्मैर्लभ्या वेदान्त-
 वर्त्मना ॥ ३२ ॥ स्वशरीरे स्वयंज्योतिःस्वरूपं पारमार्थिकम् । क्षीणदोषाः
 प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ॥ ३३ ॥ एवं स्वरूपविज्ञानं यस्य कस्यास्ति
 योगिनः । कुत्रचिद्भ्रमं नास्ति तस्य संपूर्णरूपिणः ॥ ३४ ॥ आकाशमेकं
 संपूर्णं कुत्रचिन्न हि गच्छति । तद्ब्रह्मात्मविच्छेद्यः कुत्रचिन्नैव गच्छति ॥ ३५ ॥
 अभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत् । आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धि-
 र्भवति स्वतः ॥ ३६ ॥ चित्तशुद्धौ क्रमाज्ज्ञानं ब्रुवन्ति ग्रन्थयः स्फुटम् ।
 अभक्ष्यं ब्रह्मविज्ञानविहीनस्यैव देहिनः ॥ ३७ ॥ न सम्यग्ज्ञानिनस्तद्वत्स्वरूपं
 सकलं खलु । अहमन्नं सदान्नाद इति हि ब्रह्मवेदनम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविद्वसति
 ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैव तु । ब्रह्मक्षत्रादिकं सर्वं यस्य स्यादोदनं सदा ॥ ३९ ॥
 यस्योपसेचनं मृत्युसुखं ज्ञानी तादृशः खलु । ब्रह्मस्वरूपविज्ञानाज्जगद्भोज्यं
 भवेत्खलु ॥ ४० ॥ जगदात्मतया भाति यदा भोज्यं भवेत्तदा । ब्रह्मस्वात्म-
 तया नित्यं भक्षितं सकलं तदा ॥ ४१ ॥ यदाभासेन रूपेण जगद्भोज्यं
 भवेत् तत् । मानतः स्वात्मना भातं भक्षितं भवति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ स्वस्व-
 रूपं स्वयं शुद्धे नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः । अस्ति चेदस्ति तारूपं ब्रह्मैवास्ति-
 त्वलक्षणम् ॥ ४३ ॥ अस्तितालक्षणा सत्तासत्ता ब्रह्म न चापरा । नास्ति
 सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः ॥ ४४ ॥ योगिनामात्मनिष्ठानां माया
 स्वात्मनि कल्पिता । साक्षिरूपतया भाति ब्रह्मज्ञानेन बाधिता ॥ ४५ ॥
 ब्रह्मविज्ञानसंपन्नः प्रतीतमखिलं जगत् । पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति
 स्वात्मनः पृथक् ॥ ४६ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति प्राशुपतब्रह्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ८० ॥

परब्रह्मोपनिषत् ॥ ८१ ॥

परब्रह्मोपनिषदि वेद्याखण्डमुक्ताकृति ।

परिवाजकहृद्रेयं परित्यजेपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ हैनं महाशालः शौनकोऽङ्गिरसं भगवन्तं पिप्पलादं विधि-
चदुपसन्नः पप्रच्छ दिव्ये ब्रह्मपुरे के संप्रतिष्ठिता भवन्ति । कथं सृज्यन्ते ।
नित्यात्मन एव महिमा । विभज्य एव महिमा विभुः । क एषः । तस्मै स
होवाच । एतत्सत्यं यत्प्रब्रवीमि ब्रह्मविद्यां चरिषां देवेभ्यः प्राणेभ्यः । परब्रह्म-
पुरे विरजं निष्कलं शुभमक्षरं विरजं विभाति । स नियच्छति मधुकरः श्वेव
विकर्मकः । अकर्मा स्वामीव स्थितः । कर्मतरः कर्षकवत्फलमनुभवति । कर्म-
मर्मज्ञाता कर्म करोति । कर्ममर्म ज्ञात्वा कर्म कुर्यात् । को जालं विक्षिपे-
देको नैनमपकर्षत्यपकर्षति । प्राणदेवताश्चत्वारः । ताः सर्वा नाड्यः सुपुस-
ज्येनाकाशावत् । यथा ज्येनः स्वमाश्रित्य याति स्वमालयं कुलायम् । एवं
सुपुसं ब्रूत । अयं च परश्च स सर्वत्र हिरण्यमये परे कोशे । अमृता ह्येषा
नाडी त्रयं संचरति । तस्य त्रिपादं ब्रह्म । एषात्रेभ्य ततोऽनुतिष्ठति । अन्यत्र
ब्रूत । अयं च परं च सर्वत्र हिरण्यमये परे कोशे । यथैष देवदत्तो यष्ट्या च
ताड्यमानो नैवैति । एवमिष्ट्यापुर्तकर्मा शुभाशुभैर्न लिप्यते । यथा कुमारको
निष्काम आनन्दमभियाति । तथैष देवः स्वप्न आनन्दमभियाति । वेद एव
परं ज्योतिः । ज्योतिषा मा ज्योतिरानन्दयत्येवमेव । तत्परं यच्चित्तं परमा-
त्मानमानन्दयति । शुभ्रवर्णमाजायतेश्वरात् । भूयस्तेनैव मार्गेण स्वप्नस्थानं
नित्यच्छति । जल्लकाभाववद्यथाकाममाजायतेश्वरात् । तावतात्मानमानन्दयति ।
परसंधि यदपरसन्धीति । तत्परं नापरं त्यजति । तदैव कपालाष्टकं संधाय
य एष स्तन इवावलम्बते सेन्द्रयोनिः स वेदयोनिरिति । अत्र जाग्रति ।
शुभाशुभातिरिक्तः शुभाशुभैरपि कर्मभिर्न लिप्यते । य एष देवोऽन्यदेवास्त्य
संप्रसादोऽन्तर्याम्यसङ्गचिद्रूपः पुरुषः । प्रणवहंसः परं ब्रह्म । न प्राणहंसः ।
प्रणवो जीवः । आद्या देवता निवेदयति । य एवं वेद तत्कथं निवेदयते :

जीवस्य ब्रह्मत्वमापादयति । सत्त्वमथास्य पुरुषस्यान्तःशिखोपवीतत्वं ब्राह्म-
णस्य । सुमुखोरन्तःशिखोपवीतधारणम् । बहिर्लक्ष्यमाणशिखायज्ञोपवीतधा-
रणं कर्मिणो गृहस्थस्य । अन्तरुपवीतलक्षणं तु बहिस्तन्तुवदव्यक्तमन्तस्तत्त्व-
मेलनम् । न सत्तासन्न सदसद्भिन्नाभिन्नं न चोभयम् । न सभागं न
निर्भागं न चाप्यभयरूपकम् ॥ ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं हेयं मिथ्यात्वकारणा-
दिति । पञ्चपादब्रह्मणो न किञ्चन । चतुष्पादन्तर्वर्तिनोऽन्तर्जोवब्रह्मणश्चत्वारि
स्थानानि । नाभिहृदयकण्ठमूर्धसु जाग्रत्स्वमसुषुप्तिरुरीयावस्थाः । आहवनी-
यगार्हपत्यदक्षिणसभ्याग्निषु । जागरिते ब्रह्मा स्वप्ने विष्णुः सुषुप्तौ रुद्रस्तुरीय-
मक्षरं चिन्मयम् । तस्माच्चतुरवस्था । चतुरङ्गुलवेष्टनमिव षण्णवतितत्त्वानि
तन्तुवद्विभज्य तदाहितं त्रिगुणीकृत्य द्वात्रिंशत्तत्त्वनिष्कर्षमापाद्य ज्ञानपूर्तं
त्रिगुणस्वरूपं त्रिमूर्तित्वं पृथग्विज्ञाय नवब्रह्माख्यनवगुणोपेतं ज्ञात्वा नवमा-
नमितस्त्रिगुणीकृत्य सूर्येन्द्रभिकलास्वरूपत्वेनैकीकृत्याद्यन्तरेकत्वमपि मध्ये
त्रिरावृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरत्वमनुसंधायाद्यन्तमेकीकृत्य चिद्वन्थावद्वैतग्रन्थि
कृत्वा नाभ्यादिबह्मबिलप्रमाणं पृथक् पृथक् सप्तविंशतितत्त्वसंबन्धं त्रिगुणो-
पेतं त्रिमूर्तिलक्षणलक्षितमप्येकत्वमापाद्य वामांसादिदक्षिणकव्यन्तं विभा-
ज्याद्यन्तग्रहसंमेलनमेकं ज्ञात्वा मूलमेकं सत्यं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचार-
म्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं । हंसेति वर्णद्वयेनान्तःशिखोपवी-
तित्वं निश्चित्य ब्राह्मणत्वं ब्रह्मध्यानाहृतं यतित्वमलक्षितान्तःशिखोपवीतित्व-
मेवं बहिर्लक्षितकर्मशिखा ज्ञानोपवीतं गृहस्थस्याभासब्राह्मणत्वस्य केशसमूह-
शिखाप्रत्यक्षकार्पासतन्तुकृतोपवीतत्वं चतुर्गुणीकृत्य चतुर्विंशतितत्त्वापादनतन्तु-
कृत्वं नवतत्त्वमेकमेव परंब्रह्म तत्प्रतिसरयोग्यत्वाद्वहुभार्गप्रवृत्तिं कल्पयन्ति ।
सर्वेषां ब्रह्मादीनां देवर्षीणां मनुष्याणां मूर्तिरेका । ब्रह्मैकमेव । ब्राह्मणत्वमेक-
मेव । वर्णाश्रमाचारविशेषाः पृथक्पृथक् शिखा वर्णाश्रमिणामेकैकैव । अपवर्गस्य
यतेः शिखायज्ञोपवीतमूलं प्रणवमेकमेव वदन्ति । हंसः शिखा । प्रणय उपवी-
तम् । नादः संधानम् । एष धर्मो नेतरो धर्मः । तत्कथमिति । प्रणवहंसो
नादस्त्रिवृत्सूत्रं स्वहृदि चैतन्ये तिष्ठति त्रिविधं ब्रह्म । तद्विद्धि प्रापञ्चिकशिखो-
पवीतं त्यजेत् । सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेद्बुधः । यदक्षरं परंब्रह्म
तत्सूत्रमिति आरभेत् ॥ १ ॥ पुनर्जन्मनिवृत्त्यर्थं मोक्षस्याहर्निशं सरेत् ।

सूचनात्सूत्रमित्युक्तं सूत्रं नाम परं पदम् ॥ २ ॥ तत्सूत्रं विदितं येन स
 अनुसुष्ठुः स भिक्षुकः । स वेदवित्सदाचारः स विप्रः पङ्क्तिपावनः ॥ ३ ॥ येन
 सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगविद्ब्राह्मणो यतिः
 ॥ ४ ॥ बहिःसूत्रं त्यजेद्विप्रो योगविज्ञानतत्परः । ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः
 स मुक्तिभाक् ॥ ५ ॥ नाशुचित्वं न चोच्छिष्टं तस्य सूत्रस्य धारणात् । सूत्र-
 मन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् ॥ ६ ॥ ये तु सूत्रविदो लोके ते च
 यज्ञोपवीतिनः । ज्ञानशिखिनो ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः । ज्ञानमेव परं
 तेषां पवित्रं ज्ञानमीरितम् ॥ ७ ॥ अग्रेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी
 शिखा । स शिखीत्युच्यते विद्वाग्नेतरे केशधारिणः ॥ ८ ॥ कर्मण्यधिकृता ये
 तु वैदिके लौकिकेऽपि वा । ब्राह्मणाभासमात्रेण जीवन्ते कुक्षिपूरकाः ।
 अजन्ते निरयं ते तु पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ ९ ॥ चामांसदक्षकण्ठ्यन्तं ब्रह्मसूत्रं
 तु सव्यतः । अन्तर्बहिरिवात्यर्थं तत्त्वतन्तुसमन्वितम् ॥ १० ॥ नाभ्यादिब्रह्म-
 रन्ध्रान्तप्रमाणं धारयेत्सुधीः । तेभिर्धार्यमिदं सूत्रं क्रियाङ्गं तन्तुनिर्मितम्
 ॥ ११ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् । ब्राह्मण्यं सकलं तस्य
 नेतरेषां तु किञ्चन ॥ १२ ॥ इदं यज्ञोपवीतं तु परमं यत्परायणम् । विद्वा-
 न्यज्ञोपवीती संधारयेद्यः स मुक्तिभाक् ॥ १३ ॥ बहिरन्तश्चोपवीती विप्रः
 संन्यस्तुमर्हति । एकयज्ञोपवीती तु नैव संन्यस्तुमर्हति ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रय-
 त्नेन मोक्षापेक्षी भवेद्यतिः । बहिःसूत्रं परित्यज्य स्वान्तःसूत्रं तु धारयेत् ॥ १५ ॥
 बहिःप्रपञ्चशिखोपवीतित्वमनादृत्य प्रणवहंसशिखोपवीतित्वमवलम्ब्य मोक्ष-
 साधनं कुर्यादित्याह भगवान्छौनक इत्युपनिषत् ॥ १६ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति परब्रह्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ८१ ॥

अवधूतोपनिषत् ॥ ८२ ॥

गौणमुख्यावधूतालिहृदयाम्बुजवर्ति यत् ।

तन्नैपदं ब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमवशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववस्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ ह सांक्रुतिर्भगवन्तमवधूतं दत्तात्रेयं परिसमेत्य पप्रच्छ भग-
 वन्कोऽवधूतस्तस्य का स्थितिः किं लक्ष्म किं संसरणमिति । तं ह्यवाच भगवो
 अ. उ. ३४

दत्तात्रेयः परमकारुणिकः ॥ अक्षरत्वाद्द्वरेण्यत्वाद्भूतसंसारबन्धनात् । तत्त्व-
 मस्यादिलक्ष्यत्वादवधूत इतीर्यते ॥ १ ॥ यो विलङ्घ्याश्रमान्वर्णानात्मन्येव
 स्थितः सदा । अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतः स कथ्यते ॥ २ ॥ तस्य प्रियं
 शिरः कृत्वा मोदो दक्षिणपक्षकः । प्रमोद उत्तरः पक्ष आनन्दो गोष्पदा-
 यते ॥ ३ ॥ गोपालसदृशं शीर्षं नापि मध्ये न चाप्यधः । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठेति
 पुच्छाकारेण कारयेत् ॥ ४ ॥ एवं चतुष्पथं कृत्वा ते यान्ति परमां गतिम् ।
 न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वसानजुः ॥ ५ ॥ स्वैरं स्वैरवि-
 हरणं तत्संसारणम् । साम्बरा वा दिगम्बरा वा । न तेषां धर्माधर्मौ न मेध्या-
 मेध्यौ । सदा सांग्रहण्येष्ट्याश्रमेधर्मन्तर्यागं यजते । स महामखो महा-
 योगः । कृत्स्नमेतच्चित्रं कर्म । स्वैरं न विगाथेत्तन्महाव्रतम् । न स मूढवह्नि-
 प्यते । यथा रविः सर्वैरसान्प्रभुक्ले हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः । तथैव योगी
 विषयान्भुक्ते न लिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ॥ ६ ॥ आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
 समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् । तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमा-
 मोति न कामकामी ॥ ७ ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
 न सुसुषुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ८ ॥ ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्धौ
 मुक्तेश्च सिद्धये । बहुकृत्यं पुरा त्यान्मे तत्सर्वमधुना कृतम् ॥ ९ ॥ तदेव
 कृतकृत्यात्वं प्रतियोगिपुरःसरम् । (अनुसंदधदेवायमेवं वृष्यति नित्यशः)
 ॥ १० ॥ दुःखिनोऽज्ञाः संसरन्तु कामं पुत्राद्यपेक्षया । परमानन्दपूर्णोऽहं
 संसरामि किमिच्छया ॥ ११ ॥ अनुतिष्ठन्तु कर्माणि परलोकैशियासवः । सर्व-
 लोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठामि किं कथम् ॥ १२ ॥ व्याचक्षतां ते शास्त्राणि
 वेदानध्यापयन्तु वा । येऽन्नाधिकारिणो मे तु नाधिकारोऽक्रियस्त्वतः ॥ १३ ॥
 निद्राभिक्षे स्नानशौचे नेच्छामि न करोमि च । द्रष्टारश्चेत्कल्पयन्तु किं मे
 स्वादन्यकल्पनात् ॥ १४ ॥ गुक्ष्मापुक्ष्मादि दहेत नान्यारोपितवह्निना । नान्या-
 रोपितसंसारधर्मा नैवमहं भजे ॥ १५ ॥ कृष्वन्तस्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्क-
 स्माच्छृणोम्यहम् । मन्यन्तां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः ॥ १६ ॥ विप-
 र्यस्तो निदिध्यासे किं ध्यानमविपर्यये । देहात्मत्वविपर्यासं न कदाचिज्ज्ञा-
 म्यहम् ॥ १७ ॥ अहं मनुष्य इत्यादिव्यवहारो विनाप्यमुम् । विपर्यासं चिरा-

अस्त्वत्प्राप्तनातोऽवकल्पते ॥ १८ ॥ आरब्धकर्मणि श्रीणे व्यवहारो निवर्तते ।
 कर्मक्षये त्वसौ नैव शान्त्येष्टानसहस्रतः ॥ १९ ॥ विरुद्धं व्यवहृतेरिदं
 चेष्टानमस्तु ते । वाधिकर्मव्यवहृतिं पश्यन्ध्यायाम्यहं कुतः ॥ २० ॥ विक्षेपो
 नास्ति यस्यान्ते न समाधिस्ततो मम । विक्षेपो वा समाधिर्वा भवतः स्वाद्वि-
 कारिणः । नित्यानुभवरूपस्य को मेऽन्नानुभवः पृथक् ॥ २१ ॥ कृतं कृत्यं
 प्रापणीयं प्राप्तमित्येव नित्यतः । व्यवहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वाऽन्यथापि
 वा । ममाकर्तुरलेपस्य यथारब्धं प्रवर्तताम् ॥ २२ ॥ अथवा कृतकृत्येऽपि
 कोकानुग्रहकाम्यथा । शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं मम का भक्तिः ॥ २३ ॥
 देवार्चनज्ञानशौचभिक्षादौ वर्ततां वपुः । तारं जपतु वाक्छट्पठत्वान्नायमस्त्व-
 कम् ॥ २४ ॥ विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् । साक्ष्यहं किञ्चि-
 द्ब्रह्म न कुर्वे नापि कारये ॥ २५ ॥ कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्त्यतया
 पुनः । तृप्त्येवं स्वमनसा मन्यतेऽसौ निरन्तरम् ॥ २६ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं
 नित्यं स्वात्मानमञ्जता वेष्टि । धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे
 रूपम् ॥ २७ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य । धन्योऽहं
 धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं कापि ॥ २८ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं
 मे न विद्यते किञ्चित् । धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमग्न संपन्नम् ॥ २९ ॥
 धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेच्छोके । धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो
 धन्यः पुनःपुनर्धन्यः ॥ ३० ॥ अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम् ।
 अत्य पुण्यस्य संपत्तेरहो वयमहो वयम् ॥ ३१ ॥ अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो
 सुखमहो सुखम् । अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ॥ ३२ ॥ इति
 य इदमधीते सोऽपि कृतकृत्यो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेया-
 त्पूतो भवति । ब्रह्महत्यात्पूतो भवति । कृत्याकृत्यात्पूतो भवति । एवं
 विदित्वा स्वेच्छाचारपरो भूयादौसत्यमित्युपनिबन् ॥ ३३ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

इत्यवधूतोपनिषत्समाप्ता ॥ ८२ ॥

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

त्रिपुरातापिनीविद्यावेद्यचिच्छक्तिविग्रहम् ।

वस्तुतश्चिन्मात्ररूपं परं तत्त्वं भजाम्यहम् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान्प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमा-
श्रित्य त्रिपुराभिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या भूर्भुवः स्वस्तीणि स्वर्गभूपाता-
लानि त्रिपुराणि हरमायात्मकेन हीङ्कारेण हल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटाव-
साने निलये विलये धान्नि महसा घोरेण प्राप्नोति । सैवेयं भगवती त्रिपु-
रेति व्यापक्यते । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचो-
दयात् परो रजसे सावदोम् । जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निद-
हाति वेदः । स नः पर्पदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।
व्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय
मांमृतात् । शताक्षरी परमा विद्या त्रयीमयी साष्टाङ्गा त्रिपुरा परमेश्वरी ।
आद्यानि चत्वारि पदानि परब्रह्मविकासीनि । द्वितीयानि शक्त्याख्यानि ।
तृतीयानि शैवानि । तत्र लोका वेदाः शास्त्राणि पुराणानि धर्माणि वै चिकि-
त्सितानि ज्योतीर्षि शिवशक्तियोगादित्येवं घटना व्यापक्यते । अथैतस्य परं
गह्वरं व्याख्यास्यामो महामनुसमुद्भवं तदिति । ब्रह्म शाश्वतम् । परो भगवा-
न्त्रिलक्षणो निरञ्जनो निरुपाधिराधिरहितो देवः । उन्मीलते पश्यति विका-
सते चैतन्यभावं कामयत इति । स एको देवः शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते
यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते । कामं जायते । स एष निरञ्जनोऽकामत्वे-
नोज्जृम्भते । अकचटतपयशान्सृजते । तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते । तत्प-
रिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति । काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते ।
तज्जातत्पदार्थ इति य एवं वेद । सवितुर्वरेण्यमिति पूङ्ग प्राणिप्रसवे सविता
प्राणिनः सूते प्रसूते शक्तिम् । सूते त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी
महाकुण्डलिनी देवी । जातवेदसमण्डलं योऽधीते सर्वं व्याप्यते । त्रिकोण-
शक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते । तस्मादेकार एव गृह्यते । वरेण्यं श्रेष्ठं भज-
नीयमक्षरं नमस्कार्यम् । तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरं गृह्यत इति य एवं वेद ।
भर्गो देवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्यामः । धकारो धारणा । धियैव धार्यते
भगवान्परमेश्वरः । भर्गो देवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वा-

न्तर्भूतम् । तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येवं व्याख्यातं भर्गोरूपं व्या-
चक्षते । तस्माद्भर्गो देवस्य धीमहीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते । महीत्यस्य
व्याख्यानं महत्त्वं जडत्वं काठिन्यं विद्यते यस्मिन्नक्षतेरेतन्महि लकारः परं
धाम । काठिन्याढ्यं ससागरं सपर्वतं ससद्वीपं सकाननमुज्ज्वलद्रूपं मण्डल-
मेवोक्तं लकारेण । पृथ्वी देवी महीत्यनेन व्याचक्षते । धियो यो नः प्रचो-
दयात् । परमात्मा सदाशिव आदिभूतः परः । स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योति-
र्लिङ्गमात्मानं धियो बुद्ध्यः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रचो-
दयात्प्रेरयेदित्युच्चारणरहितं चेतसैव चिन्तयित्वा भावयेदिति । परो रजसे
सावदोमिति तदवसाने परं ज्योतिरमलं हृदि दैवतं चैतन्यं चिल्लिङ्गं हृदया-
गारवासीति हल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वाग्भवकूटं पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चक-
लामयं व्यापद्यत इति । य एवं वेद । अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूट-
माहुः । तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादिद्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा तदिति परमात्मा
सदाशिवोऽक्षरं त्रिमलं निरुपाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपं निर-
क्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति । तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्तिं दर्शयति । तत्स-
वितुरिति पूर्वैणाध्वना सूर्याधश्चन्द्रिकां व्यालिख्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रं साक्षर-
मद्वितीयमाचक्षत इत्याह भगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम् । शिवोऽयं
परमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा । सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धंसस्तत्पदमुच्यते ॥१॥
तस्मादुज्जृम्भते कामः कामात्कामः परः शिवः । काणोऽयं कामदेवोऽयं
वरेण्यं भर्गो उच्यते ॥ २ ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः क्षीरं सेचनीयमक्षरं
स्वैमधुमक्षरं परमात्मजीवात्मनोर्योगात्तदिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव
सदाशिव एव निष्कल्मष आद्यो देवोऽन्यमक्षरं व्याक्रियते । परमं पदं धीति
धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकारः शिवाधस्तात् लकारार्थः स्पष्ट-
मैन्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो नः प्रचोदयात्परो रजसे सावदोमित्येवं
कूटं कामकलालयं पडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवांश्चैतस्माद्य
एवं वेद । अथैतस्मादपरं तृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते । द्वात्रिंशदक्षर्य
गायत्र्या तत्सवितुर्वरेण्यं तस्मादात्मन आकाश आकाशाद्वायुः स्फुरति
तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवस्त्वं
प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते । भर्गो देवस्य धीत्यनेनाधाररूप-

शिवात्माक्षरं गण्यते । महीत्यादिनादोषं काम्यं रमणीयं हृदयं शक्तिकूटं
 स्पष्टीकृतमिति । एवं पञ्चदशाक्षरं त्रैपुरं योऽधीते स सर्वान्कामानवाप्नोति ।
 स सर्वान्भोगानवाप्नोति । स सर्वांलोकान्वयति । स सर्वा वाचो विजृम्भ-
 यति । स रुद्रत्वं प्राप्नोति । स वैष्णवं धाम भित्त्वा परं ब्रह्म प्राप्नोति । य
 एवं वेद । इत्याद्यां विद्यामभिधायैतस्याः शक्तिकूटं शक्तिशिवाद्यं लोपासुद्रे-
 यम् । द्वितीये धामनि पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहृत्तेषां क्रोधमु-
 निनाऽधिष्ठिता । तृतीये धामनि पूर्वस्या एव विद्याया यद्वाग्भवकूटं तेनैव
 मानवीं चान्द्रीं कौबेरीं विद्यामाचक्षते । मदनाधः शिवं वाग्भवम् । तदूर्ध्वं
 कामकलामयम् । शक्त्यूर्ध्वं शक्तिमिति मानवीं विद्या । चतुर्थे धामनि शिव-
 शक्त्याख्यं वाग्भवम् । तदेवाधः शिवशक्त्याख्यमन्यतृतीयं क्षेत्रं चान्द्री
 विद्या । पञ्चमे धामनि ध्येयेयं चान्द्री कामाधः शिवाधकामा । सैव कौबेरी
 वष्टे धामनि व्याचक्षत इति । य एवं वेद । हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ
 सूर्याचन्द्रमस्केन कामेश्वर्येवागस्त्यसंज्ञा । सप्तमे धामनि तृतीयसेतस्या एव
 पूर्वोक्तायाः कामाद्यं द्विधाधः कं मदनकलाद्यं शक्तिवीजं वाग्भवाद्यं तयो-
 रर्षावशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयम् । अष्टमे धामनि वाग्भवमागस्त्यं वागर्थ-
 कलामयं कामकलाभिधं सकलमायाशक्तिः प्रभाकरी विद्येयम् । नवमे धामनि
 पुनरागरत्यं वाग्भवं शक्तिमन्मथशिवशक्तिमन्मथोर्वीमायाकामकलाख्यं चन्द्र-
 सूर्यानङ्गधूर्जटिमहिमालयं तृतीयं षण्मुखीयं विद्या । दशमे धामनि विद्याप्रका-
 शितया भूय एवागस्त्यविद्यां पठित्वा भूय एवेमामन्त्यमायां परमशिवविद्येय-
 सेकादशे धामनि भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्भजनं काम-
 कलालयं च तत्सहजं कृत्वा लोपासुद्रायाः शक्तिकूटराजं पठित्वा वैष्णवी विद्या
 द्वादशे धामनि व्याचक्षत इति ॥ ३ ॥ य एवं वेद । तान्होवाच भगवान्सर्वे
 यूयं श्रुत्वा पूर्वा कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कृतां सर्वसन्नासना-
 गतां पीठोपपीठदेवतापरिवृतां सकलकलाव्यापिनीं देवतां सामोदां सपरागां
 सहृदयां सासृतां सकलां सेन्द्रियां सदोदितां परां विद्यां स्पष्टीकृत्वा हृदये
 निधाय विज्ञायानिलयं गमयित्वा त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां
 वैष्णवीं संनिधाय हृदयकमलकर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां
 महावश्यकरीं मदनोन्मादनकारिणीं धनुर्बाणधारिणीं वाग्विजृम्भिणीं चन्द्र-

अण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां सप्तदशीं महानित्योपस्थितां पाशाङ्कुशमनोज्ञ-
पाणिपल्लवां समुद्यदकलिभां त्रिनेत्रां विचिन्त्य देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं
सर्वलक्षणसंपन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं
सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादि-
श्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेनेयमेवं
वेदेति महोपनिषत् ॥ ४ ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

अथातो जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा त्रैपुरी व्यक्तिलक्ष्यते ।
जातवेदस इत्येकर्वसूक्तस्याद्यमध्यमावसानेषु तत्र स्थानेषु विलीनं बीजसागर-
रूपं व्याचक्ष्वेत्युपय ऊचुः । तान्होवाच भगवाञ्जातवेदसे सुनवाम सोमं
तदन्त्यमवाणीं विलोमेन पठित्वा प्रथमस्याद्यं तदेवं दीर्घं द्वितीयस्याद्यं सुन-
वाम सोममित्यनेन कौलं वामं श्रेष्ठं सोमं महासौभाग्यमाचक्षते । स सर्व-
संपत्तिभूतं प्रथमं निवृत्तिकारणं द्वितीयं स्थितिकारणं तृतीयं सर्गकारणमित्य-
नेन करञ्जुद्धिं कृत्वा त्रिपुराविद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममि-
त्यादि पठित्वा महाविद्येश्वरीविद्यामाचक्षते त्रिपुरेश्वरीं जातवेदस इति । जाते
आद्याक्षरे मातृकायाः शिरसि वैन्दवममृतरूपिणीं कुण्डलिनीं त्रिकोणरूपिणीं
चेति वाक्यार्थः । एवं प्रथमस्याद्यं वाग्भवम् । द्वितीयं कामकलालयम् ।
जात इत्यनेन परमात्मनो जृम्भणम् । जात इत्यादिना परमात्मा शिव
उच्यते । जातमात्रेण कामी कामयते काममित्यादिना पूर्णं व्याचक्षते । तदेव
सुनवाम गोत्रारूढं मध्यवर्तिनाऽमृतमध्याहार्येण मन्त्राणां स्पष्टीकृत्वा । गोत्रेति
नामगोत्रायामित्यादिना स्पष्टं रामकलालयं शेषं वाममित्यादिना । पूर्वैणा-
ध्वना विद्येयं सर्वरक्षाकरी व्याचक्षते । एवमेतेन विद्यां त्रिपुरेशीं स्पष्टीकृत्वा
जातवेदस इत्यादिना जातो देव एक ईश्वरः परमो ज्योतिर्मन्त्रतो वेति तुरीयं
वरं दत्त्वा विन्दुपूर्णज्योतिःस्थानं कृत्वा प्रथमस्याद्यं द्वितीयं च तृतीयं च
सर्वरक्षाकरीसंबन्धं कृत्वा विद्यामात्मासनरूपिणीं स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे
सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा रक्षाकरीं विद्यां स्मृत्वाद्यन्तयोर्धाञ्जोः शक्ति-
शिवरूपिणीं वित्तियोज्य स इति शक्त्यात्मकं वर्णं सोममिति शैवात्मकं धाम
जानीयात् । यो जानीते स सुभगो भवति ॥ १ ॥ एवमेतां चक्रासनगतां
त्रिपुरवासिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममिति पठित्वा

त्रिपुरेश्वरीविद्यां सदोदितां शिवशक्त्यात्मिकामावेदितां जातवेदाः शिव इति
 सेति शक्त्यात्माक्षरमिति शिवादिशक्त्यन्तरालभूतां त्रिकूटादिचारिणीं सूर्या-
 चन्द्रमस्कां मन्नासनगतां त्रिपुरां महालक्ष्मीं सदोदितां स्पष्टीकृत्वा जात-
 वेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा पूर्वां सदात्मासनरूपां विद्यां स्पष्टत्वा
 वेद इत्यादिना विश्वाहसंततोदयबैन्दवमुपरि विन्यस्य सिद्धासनस्थां
 त्रिपुरां मालिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि
 पठित्वा त्रिपुरां सुन्दरीं श्रित्वा कले अक्षरे विन्यस्य मूर्तिभूतां मूर्तिरूपिणीं
 सर्वविद्येश्वरीं त्रिपुरां विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे इत्यादि पठित्वा त्रिपुरां
 लक्ष्मीं श्रित्वाऽग्निं निदहाति सैवेयमभ्यासने ज्वलतीति विन्यस्य त्रिज्योति-
 षमीश्वरीं त्रिपुरामम्बां विद्यां स्पष्टीकृत्यात् । एवमेतेन स नः पर्वदति दुर्गाणि
 विश्वेत्यादिपरप्रकाशिनी प्रत्यग्भूता कार्या । विद्येयमाह्वानकर्मणि सर्वतो
 धीरेति व्याचक्षते । एवमेतद्विद्याष्टकं महामायादेव्यङ्गभूतं व्याचक्षते । देवा
 ह वै भगवन्तमब्रुवन्महाचक्रनायकं नो ब्रूहीति सार्वकामिकं सर्वाराध्यं सर्व-
 रूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपविश्य परं ब्रह्म श्रित्वा निर्वाणमुप-
 विशन्ति ॥ २ ॥ तान्होवाच भगवान्श्रीचक्रं व्याख्यास्याम इति । त्रिकोणं त्र्यस्रं
 कृत्वा तदन्तर्मध्यवृत्तमानयष्टिरेखामाकृत्य विशालं नीत्वाग्रतो योनिं कृत्वा
 पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिं कृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिं कृत्वाद्यं त्रिकोणं
 चक्रं भवति । द्वितीयमन्तरालं भवति । तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति । अथा-
 ष्टारचक्राद्यन्तविदिकोणाग्रतो रेखां नीत्वा साध्याद्याकर्षणबद्धरेखां नीत्वेत्ये-
 वमथोर्ध्वसंपुटयोन्यङ्कितं कृत्वा कक्षाभ्य ऊर्ध्वगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण
 मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितं चक्रं भवति । अनेनैव प्रकारेण पुनर्दशारचक्रं
 भवति । मध्यत्रिकोणाग्रचतुष्टयाद्रेखाचराग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशारांशतोनीतां
 मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारं चक्रं भवति । ततोऽष्टपत्रसंवृतं चक्रं
 भवति । षोडशपत्रसंवृतं चक्रं चतुर्द्वारं भवति । ततः पार्थिवं चक्रं चतुर्द्वारं
 भवति । एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम् । नवात्मकं चक्रं प्रातिलोभ्येन
 वा वच्मि । प्रथमं चक्रं त्रैलोक्यमोहनं भवति । साणिमाद्यष्टकं भवति ।
 समात्रष्टकं भवति । ससर्वसंक्षोभिण्यादिदशकं भवति । सप्रकटं भवति ।
 त्रिपुरयाधिष्ठितं भवति ससर्वसंक्षोभिणीमुद्रया जुष्टं भवति । द्वितीयं सर्वाशा-

परिपूरकं चक्रं भवति सकामाद्याकर्षिणीषोडशकं भवति । सगुप्तं भवति । त्रिपुरेश्वर्याधिष्ठितं भवति । सर्वविद्राविणीमुद्रया जुष्टं भवति । तृतीयं सर्व-
संक्षोभणं चक्रं भवति । सानङ्गकुसुमाद्यष्टकं भवति । सगुप्ततरं भवति । त्रिपुरसुन्दर्याधिष्ठितं भवति । सर्वाकर्षिणीमुद्रया जुष्टं भवति । तुरीयं सर्व-
सौभाग्यदायकं चक्रं भवति । ससर्वसंक्षोभिण्यादिद्विसप्तकं भवति । ससंप्रदायं
भवति । त्रिपुरवासिन्याधिष्ठितं भवति । ससर्ववशंकरिणीमुद्रया जुष्टं भवति ।
तुरीयान्तं सर्वार्थसाधकं चक्रं भवति । ससर्वसिद्धिप्रदादिदशकं भवति । सङ्क-
लकौलं भवति । त्रिपुरामहालक्ष्म्याधिष्ठितं भवति । महोन्मादिनीमुद्रया जुष्टं
भवति । षष्ठं सर्वरक्षाकरं चक्रं भवति । ससर्वज्ञत्वादिदशकं भवति । सनिगर्म
भवति । त्रिपुरमालिन्याधिष्ठितं भवति । महाङ्कुशमुद्रया जुष्टं भवति ।
ससमं सर्वरोगहरं चक्रं भवति । सर्ववशिन्याद्याष्टकं भवति । सरहस्यं भवति ।
त्रिपुरसिद्ध्याधिष्ठितं भवति । सखेचरीमुद्रया जुष्टं भवति । अष्टमं सर्व-
सिद्धिप्रदं चक्रं भवति । सायुधचतुष्टयं भवति । सपरापररहस्यं भवति ।
त्रिपुरास्वयाधिष्ठितं भवति । बीजमुद्रयाधिष्ठितं भवति । नवमं चक्रनायकं
धर्मानन्दमयं चक्रं भवति । सकामेश्वर्यादित्रिकं भवति । सातिरहस्यं भवति ।
महात्रिपुरसुन्दर्याधिष्ठितं भवति । योनिमुद्रया जुष्टं भवति । संक्रामन्ति वै
सर्वाणि छदांसि चकाराणि । तदेव चक्रं श्रीचक्रम् । तस्य नाभ्यामग्नि-
मण्डले सूर्याचन्द्रमसौ । तत्रोत्कारपीठं पूजयित्वा तत्राक्षरं बिन्दुरूपं तद-
न्तर्गतज्योतिरूपिणीं विद्यां परमां स्मृत्वा महात्रिपुरसुन्दरीमावाह्य । क्षीरेण
स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रार्चिते देवि दुर्गेऽहं शरणं गतः ।
इत्येकयच्चां प्रार्थ्य मायालक्ष्मीतन्त्रेण पूजयेदिति भगवानब्रवीत् । एतैर्मन्त्रै-
र्भगवतीं यजेत् । ततो देवी प्रीता भवति । स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद्य
एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति । स सर्वं पश्यति । सोऽमृतत्वं च गच्छति ।
अ एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ ३ ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

देवा ह वै मुद्राः सृजेमेति भगवन्तमब्रुवन् । तान्होवाच भगवानवनि-
कृतजानुमण्डलं विस्तीर्य पद्मासनं कृत्वा मुद्राः सृजतेति । स सर्वानाकर्षयति
यो योनिमुद्रामधीते स सर्वं वेत्ति स सर्वफलमभुते स सर्वान्भक्ष-
यति स द्विवेपिणं स्तम्भयति । मध्यमे अनामिकोपरि विन्यस्य कनिष्ठिका-

जुष्टतोऽधीते मुक्तयोस्तर्जन्योर्दण्डवदधस्तादेवंविधा प्रथमा संपद्यते । सैव
 मिलितमध्यमा द्वितीया । तृतीयाङ्कुशाकृतिरिति । प्रातिलोभ्येन पाणी सङ्घर्ष-
 यित्वाङ्कुष्ठौ साग्रिमौ समाधाय तुरीया । परस्परं कनीयसेदं मध्यमावद्धे
 अनामिके दण्डिन्यौ तर्जन्यावालिङ्ग्यावष्टभ्य मध्यमानखमिलिताङ्कुष्ठौ पञ्चमी ।
 सैवाग्रेऽङ्कुशाकृतिः षष्ठी । दक्षिणशये वामबाहुं कृत्वाऽन्योन्यानामिके कनीय-
 सीमध्यगते मध्यमे तर्जन्याक्रान्ते सरलास्तङ्कुष्ठौ खेचरी सप्तमी । सर्वोर्ध्वे
 सर्वसंहति स्वमध्यमानामिकान्तरे कनीयसि पार्श्वयोस्तर्जन्यावङ्कुशाख्ये युक्ता
 साङ्कुष्ठयोगतोऽन्योन्यं सममङ्गलिं कृत्वाऽष्टमी । परस्परमध्यमापृष्ठवर्तिन्याव-
 नामिके तर्जन्याक्रान्ते समे मध्यमे आदायाङ्कुष्ठौ मध्यवर्तिनौ नवमी प्रति-
 पद्यत इति । सैवेयं कनीयसे समे अन्तरितेऽङ्कुष्ठौ समावन्तरितौ कृत्वा
 त्रिखण्डापद्यत इति । पञ्च बाणाः पञ्चाद्या मुद्राः स्पष्टाः । क्रोमङ्कुशा । हस-
 खूर्फं खेचरी । हस्तौ बीजाष्टमी चारुभवाद्या नवमी दशमी च संपद्यत इति ।
 य एवं वेद । अथातः कामकलाभूतं चक्रं व्याख्यास्यामो हीं क्लीमैं ब्लूं चौमेते
 पञ्च कामाः सर्वचक्रं व्यावर्तन्ते । मध्यमं कामं सर्वावसाने संपुटीकृत्य व्यूहका-
 रेण संपुटं व्यासं कृत्वा द्विरेन्दवेन मध्यवर्तिना साध्यं बद्ध्वा भूर्जपत्रे यजति ।
 तच्चक्रं यो वेत्ति स सर्वं वेत्ति । स सकललोकानाकर्षयति । सर्वं स्तम्भ-
 यति । नीलीयुक्तं चक्रं शत्रून्मारयति । गतिं स्तम्भयति । लाक्षायुक्तं कृत्वा
 सकललोकं वशीकरोति । नवलक्षजपं कृत्वा रुद्रत्वं प्राप्नोति । मातृकया
 वेष्टितं कृत्वा विजयी भवति । भगाङ्कुण्डं कृत्वाग्निमाधाय पुरुषो हविषा
 हुत्वा योषितो वशीकरोति । वस्तुले हुत्वा श्रियमतुलां प्राप्नोति । चतुरस्रे
 हुत्वा वृष्टिर्भवति । त्रिकोणे हुत्वा शत्रून्मारयति । गतिं स्तम्भयति ।
 पुष्पाणि हुत्वा विजयी भवति । महारसैर्हुत्वा परमानन्दनिर्भरो भवति ।
 गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् । ज्येष्ठ-
 राजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् । इत्ये-
 वमाद्यमक्षरं तदन्यविन्दुपूर्णमित्यनेनाङ्गं स्पृशति । गं गणेशाय नमं इति
 गणेशं नमस्कुर्वीत । ॐ नमो भगवते भस्माङ्गरागायोऽग्रतेजसे हन हन
 दह दह पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हलभञ्जन शूलमूले व्यञ्जन-
 सिद्धिं कुरु कुरु समुद्रं पूर्वप्रतिष्ठितं शोषय शोषय स्तम्भय स्तम्भय परमन्न-
 परयन्नपरतन्नपरदूतपरकटकपरच्छेदनकर विदारय विदारय च्छिन्धि च्छिन्धि

हीं फट् स्वाहा । अनेन क्षेत्राध्यक्षं पूजयेदिति । कुलकुमारि विग्रहे मन्त्रको-
टिषु धीमहि । तन्नः कौलिः प्रचोदयात् । इति । कुमार्यर्चनं कृत्वा यो वै साध-
कोऽभिलिखति सोऽमृतत्वं गच्छति । स यन्न आमोति । स परमायुष्यमथ-
वा परं ब्रह्म भित्वा तिष्ठति । य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्देव गायत्रं हृदयं नो व्याख्यातं त्रैपुरं सर्वोत्त-
मम् । जातवेदससूक्तेनाख्यातं नक्षैपुराष्टकम् । यदिष्टा मुच्यते योगी जन्म-
संसारबन्धनात् । अथ मृत्युंजयं नो ब्रूहीत्येवं ब्रुवतां सर्वेषां देवानां श्रुत्वेदं
वाक्यमथातच्छयम्बकेनानुष्टुभेन मृत्युंजयं दर्शयति । कस्माद्भयम्बकमिति ।
त्रयाणां पुराणामम्बकं त्र्यामिनं तस्मादुच्यते त्र्यम्बकमिति । अथ कस्मादुच्यते
यजामह इति । यजामहे सेवामहे वस्तु महेश्वक्षरद्वयेन कूटस्वेनाक्षरैकेण
मृत्युंजयमित्युच्यते तस्मादुच्यते यजामह इति । अथ कस्मादुच्यते सुगन्धि-
मिति । सर्वतो यन्न आमोति । तस्मादुच्यते सुगन्धिमिति । अथ कस्मादु-
च्यते पुष्टिवर्धनमिति । यत्सर्वाल्लोकान्मृजति यत्सर्वाल्लोकांस्तारयति यत्सर्वा-
ल्लोकान्मृशामोति तस्मादुच्यते पुष्टिवर्धनमिति । अथ कस्मादुच्यते उर्वारुक-
मिव बन्धनममृत्योर्मुक्षीयेति । संलभत्वादुर्वारुकमिव मृत्योः संसारबन्धना-
त्संलभत्वाद्वदत्त्वान्मोक्षीभवति मुक्तो भवति । अथ कस्मादुच्यते मामृता-
दिति अमृतत्वं प्राप्नोत्यक्षरं प्राप्नोति स्वयं रुद्रो भवति । देवा ह वै भगव-
न्तसूक्तः सर्वं नो व्याख्यातम् । अथ कैर्मन्त्रैः स्तुता भगवती स्वात्मानं दर्श-
यति तान्सर्वान्छैवान्छैषणवान्सौरान्नाणेशान्नो ब्रूहीति । स होवाच भगवां-
न्मृत्योः सर्वं नो व्याख्यातम् । पूर्वैणाध्वत व्यासमेकाक्षरमिति
स्मृतम् । ॐ नमः शिवायेति याजुषमग्नोपासको रुद्रस्यं प्राप्नोति । कल्याणं
प्राप्नोति । य एवं वेद । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीच
चक्षुरात्तत् । विष्णोः सर्वतोमुखस्य ज्ञेयो यथा पल्लपिण्डमोतप्रोतमनुव्यासं
व्यतिरिक्तं व्यामुत इति व्यामुवतो विष्णोस्तत्परमं पदं परं व्योमेति परमं पदं
पश्यन्ति वीक्षन्ते । सूरयो ब्रह्मादयो देवास इति सदा हृदय आदधते ।
तस्माद्विष्णोः स्वरूपं वसति तिष्ठति भूतेष्विति वासुदेव इति । ॐ नम इति
जीण्यक्षराणि । भगवत इति चत्वारि । वासुदेवायेति पञ्चाक्षराणि । एतद्वै

वासुदेवस्य द्वादशार्णमभ्येति । सोपह्वं तरति । स सर्वमायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं च तमश्नुते प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपमकार उकारो मकार इति । तानेकधा संभवति तदोमिति । हंसः शुचिषद्वसु-
रन्तरिक्षसद्गोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृपद्मरसद्वत्सद्योमसद्वज्रा गोजा
ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत् । हंस इत्येतन्मनोरक्षरद्वितीयेन प्रभापुञ्जेन
सौरेण धृतमब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं सत्या-प्रभा-पुञ्जि-न्युषा-संध्या-
प्रज्ञाभिः शक्तिभिः पूर्वं सौरमधीयानः सर्वं फलमश्नुते । स व्योम्नि परमे धामनि
सौरे निवसते । गणानां त्वेति त्रैष्टुमेन पूर्वैणाध्वना मनुनैकार्णेन गणाधिप-
मभ्यर्च्य गणेशत्वं प्राप्नोति । अथ गायत्री सावित्री सरस्वत्यजपा मातृका
प्रोक्ता तथा सर्वमिदं व्यासम् । ऐं वागीश्वरि विद्महे ह्रीं कामेश्वरि धीमहि ।
सौस्तन्नः शक्तिः प्रचोदयादिति । गायत्री प्रातः सावित्री मध्यन्दिने सरस्वती
सायमिति तिरन्तरमजपा । हंस इत्येव मातृका । पञ्चाशद्वर्णविग्रहेणाकारा-
दिशकारान्तेन व्यासानि भुवनानि शास्त्राणि छन्दांसीत्येवं भगवती सर्वं
व्याप्नोतीत्येव तस्यै वै नमो नम इति । तान्भगवानवत्रीदेतैर्मैत्रैर्नित्यं देवीं
यः स्मौति स सर्वं पश्यति । सोऽमृतत्वं च गच्छति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४ ॥

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्स्वामिन्नः कथितं स्फुटं क्रियाकाण्डं सविषयं
त्रैपुरमिति । अथ परमनिर्विशेषं कथयस्वेति । तान् होवाच भगवांस्तुरीयया
माययाऽन्त्यया निर्दिष्टं परमं ब्रह्मेति । परमपुरुषं चिद्रूपं परमात्मेति । ओता
मन्ता द्रष्टाऽऽदेष्टा स्पर्ष्टा घोष्टा विज्ञाता प्रज्ञाता सर्वेषां पुरुषाणामन्तःपुरुषः स
आत्मा स विज्ञेय इति । न तत्र लोका अलोका न तत्र देवा भदेवाः पश-
वोऽपशवस्तापसो न तापसः पौलकसो न पौलकसो विप्रा न विप्राः । स इत्ये-
कमेव परं ब्रह्म विभ्राजते निर्वाणम् । न तत्र देवा ऋषयः पितर ईशते प्रति-
बुद्धः सर्वविद्येति । तत्रैते श्लोका भवन्ति—अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं
सुसुक्ष्णम् । यतो निर्विषयो नाम मनसो मुक्तिरिष्यते ॥ १ ॥ मनो हि
द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जि-
तम् ॥ २ ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धनं विषयासक्तं
मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥ ३ ॥ निरस्तविषयासङ्गं संनिरुध्य मनो हृदि ।
यदा यात्यमनीभावस्तदा तत्परमं पदम् ॥ ४ ॥ तावदेव तिरोद्धव्यं यावद्ध-

दिगतं क्षयम् । एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ ५ ॥ नैव
चिन्त्यं न चाचिन्त्यं नाचिन्त्यं चिन्त्यमेव च । पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते
ध्रुवम् ॥ ६ ॥ स्वरेण संछयेद्योगी स्वरं संभावयेत्परम् । अस्वरेण तु
भावेन न भावो भाव इष्यते ॥ ७ ॥ तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्ज-
नम् । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते क्रमात् ॥ ८ ॥ निर्विकल्पमनन्तं
च हेतुदृष्टान्तवर्जितम् । अग्रमेयमनाद्यन्तं यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः ॥ ९ ॥ न
निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा पर-
मार्थता ॥ १० ॥ एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । स्थानत्रयव्यती-
तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११ ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १२ ॥ घटसंवृतमाकाशं नीयमाने
घटे यथा । घटो नीयेत नाकाशं तथा जीवो नभोपमः ॥-१३ ॥ घटवद्वि-
धाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः । तद्भेदे च न जानाति स जानाति च नित्यशः ।
॥ १४ ॥ शब्दमायावृतो यावत्तावत्तिष्ठति पुष्कले । भिन्ने तमसि चैकत्वमेक
एवानुपश्यति ॥ १५ ॥ शब्दार्णमपरं ब्रह्म तस्मिन्क्षीणे यदक्षरम् । तद्विद्वा-
नक्षरं ध्यायेद्यदीच्छेच्छान्तिमात्मनः ॥ १६ ॥ द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्द-
ब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १७ ॥ ग्रन्थ-
मभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थम-
शेषतः ॥ १८ ॥ गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता । क्षीरवत्प्रपद्यति ज्ञानी
लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥ १९ ॥ ज्ञाननेत्रं समाधाय स महत्परमं पदम् ।
निष्कलं निश्चलं शान्तं ब्रह्माहमिति संस्मरेत् ॥ २० ॥ इत्येकं परब्रह्मरूपं
सर्वभूताधिवासं तुरीयं जानीते सोऽक्षरे परमे व्योमन्यधिवसति । य एतां
विद्यां तुरीयां ब्रह्मयोनिस्वरूपां तामिहायुषे शरणमहं प्रपद्ये । आकाशाद्यनु-
क्रमेण सर्वेषां वा एतद्भूतानामाकाशः परायणम् । सर्वाणि ह वा इमानि
भूतान्याकाशादेव जायन्ते । आकाश एव लीयन्ते । तस्मादेव जातानि
जीवन्ति । तस्मादाकाशजं बीजं विन्द्यात् । तदेकाकाशपीठं स्पर्शनं पीठं
तेजःपीठममृतपीठं रत्नपीठं जानीयात् । यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति ।
तस्मादेतां तुरीयां श्रीकामराजीयामेकादशधा भिन्नामेकाक्षरं ब्रह्मेति यो
जानीते स तुरीयं पदं प्राप्नोति । य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु पञ्चमोपनिषत् ॥ ५ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति श्रीत्रिपुरातापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ८३ ॥

देव्युपनिषत् ॥ ८४ ॥

श्रीदेव्युपनिषद्विद्यावेद्यापारसुखाकृति ।

त्रैपदं ब्रह्मचेतन्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः । कासि त्वं महादेवि । सागवीदहं
 ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यं च अहमानन्दा-
 नानन्दाः विज्ञानाविज्ञाने अहम् । ब्रह्मा ब्रह्मणी चेदित्ये । इत्याहाथर्वणी
 श्रुतिः । अहं पञ्च भूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं जगत् । वेदोऽहमवेदोऽहम् ।
 विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् । अहं तद्रेशि-
 र्चसुभिश्चराम्यहमादित्यैस्त विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणाबुधौ विश्वमहस्मिन्द्राग्नी
 अहमश्विनावुभौ । अहं सोमं स्वष्टारं पूषणं अगं दधाम्यहम् ॥ १ ॥ विष्णुमुत्कर्षं
 ब्रह्माणमुत् प्रजापतिं दधामि । अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुग्राव्ये ३ यजमा-
 नाय सुन्वते ॥ २ ॥ अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनामहं सुवे पितरमस्य मूर्धनमस
 योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । एवं वेद स देवीपदमाप्नोति । ते देवा अमुचन् ।
 नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः
 प्रणताः स्म ताम् ॥ ३ ॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु
 जुष्टाम् । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशयते तमः ॥ ४ ॥ देवीं
 वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं
 दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतेतु ॥ ५ ॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्द-
 मातरम् । सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ६ ॥ महा-
 लक्ष्मीश्च विद्महे सर्वसिद्धिश्च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ ७ ॥ अदि-
 तिर्हजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव । तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः
 ॥ ८ ॥ कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा । मातरिश्वाभस्मिन्द्रः
 पुनर्गुहा सकला मायया च पुनः कोशा विश्वमाता दिवि द्योम् ॥ ९ ॥ एषा-
 ऽऽत्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा । एषा श्रीमहाविद्या ।
 य एवं वेद स शोकं तरति । नमस्ते अस्तु भगवति भवती मातरस्यान्पातु
 सर्वतः । सैषाऽष्टौ वसवः । सैषैकादश रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा
 विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाच-
 यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्त्वरजस्तमांसि । सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सैषा ग्रहा

नक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकारूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् । तापाप-
हारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां
शिवाम् ॥ १० ॥ वियदाकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् । अर्धेन्दुलसितं
देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ ११ ॥ एवमेकाक्षरं मन्त्रं यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १२ ॥ बाल्याया ब्रह्मभूतस्मा-
त्पृष्ठं वक्त्रसमन्वितम् । सूर्यो वामश्रोत्रविन्दुः संयुताष्टतृतीयकः ॥ १३ ॥
नारायणेन संयुक्तो वायुश्चाधरसंयुतः । विष्टे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदान-
न्ददायकः ॥ १४ ॥ हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् । पाशाङ्कुश-
धरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् । त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे
॥ १५ ॥ नमामि त्वामहं देवीं महाभयविनाशिनीम् । महादुर्गप्रशमनीं
महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ १६ ॥ यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मा-
दुच्यतेऽज्ञेया । यस्या अन्तो न विद्यते तस्मादुच्यतेऽनन्ता । यस्या ग्रहणं
नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽलक्ष्या । यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽजा ।
एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका । एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते
नैका । अत एवोच्यतेऽज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्याऽजैका नैकेति । मन्त्राणां मातृका देवी
शब्दानां ज्ञानरूपिणी । ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी
॥ १७ ॥ यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता [दुर्गात्संन्यायते
यस्याद्देवी दुर्गेति कथ्यते ॥ १८ ॥ प्रपद्ये शरणं देवीं दुर्दुर्गे दुरितं हर ॥]
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् । नमामि भवभीतोऽहं संसारा-
णवतारिणीम् ॥ १९ ॥ इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलम-
वाप्नोति । इदमथर्वशीर्षं ज्ञात्वा योऽर्चा स्थापयति । शतलक्षं प्रजस्वापि
सोऽर्चासिद्धिं च विन्दति । शतमष्टोत्तरं चास्याः पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ २० ॥
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते । महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसा-
दतः ॥ २१ ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानो
दिवसकृतं पापं नाशयति । तत्सार्यप्रातः प्रयुज्जानः पापोऽपापो भवति ।
निशीथे तुरीयसंध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति । नूतनप्रतिमायां जप्त्वा
देवतासांनिध्यं भवति । प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति ।
भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति । य एवं वेदेत्युप-
निषत् ॥ २२ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति देव्युपनिषत्समाप्ता ॥ ८४ ॥

त्रिपुरोपनिषत् ॥ ८५ ॥

त्रिपुरोपनिषद्वेद्यपारमैश्वर्यवैभवम् ।

अखण्डानन्दसाम्राज्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥

ॐ तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणा अत्राकथा अक्षराः संनिविष्टाः । अधि-
ष्टायैना अजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम् ॥ १ ॥ नवयोनीर्नव-
चक्राणि दधिरे नवैव योगा नव योगिन्धश्च । नवानां चक्रा अधिनाथा
स्योना नव भद्रा नव मुद्रा महीनाम् ॥ २ ॥ एका स आसीत्प्रथमा सा
नवासीदासोनविंशादासोनत्रिंशात् । चत्वारिंशादथ तिस्रः समिधा उशती-
रिव मातरो मा विशन्तु ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वज्वलज्वलनं ज्योतिरग्रे तमो वै तिर-
श्चीनमजरं तद्रजोऽभूत् । आनन्दनं मोदनं ज्योतिरिन्दोरेता उ वै मण्डला
मण्डयन्ति ॥ ४ ॥ यास्त्रिस्तो रेखाः सदनानि भूस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्र-
काराः । एतन्नयं पूरकं पूरकाणां मन्त्री प्रथते मदनो मदन्या ॥ ५ ॥ मद-
न्तिका मालिनी मङ्गला च सुभागा च सा सुन्दरी सिद्धिमत्ता । लज्जा
मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरूमा ललिता लालपन्ती ॥ ६ ॥ इमां विशाय
सुधिया मदन्ती परिस्रुता तर्पयन्तः स्वपीठम् । नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति
परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ॥ ७ ॥ कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा-
हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः । पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमा-
तादिविद्या ॥ ८ ॥ षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमादेशयन्तः ।
कथ्यं कविं कल्पकं काममीशं तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥ ९ ॥ पुरं हन्त्री-
मुखं विश्वमातृ रवे रेखा स्वरमध्यं तदेषा । बृहत्तिथिर्दश पञ्च च नित्या
सषोडशीकं पुरमध्यं विभर्ति ॥ १० ॥ यद्वा मण्डलाद्वा स्तनविम्बमेकं मुखं
चाधस्त्रीणि गुहासदनानि । कामी कलां कामरूपां चिकित्वा नरो जायते
कामरूपश्च कामः ॥ ११ ॥ परिस्रुतं झषमाजं फलं च भक्तानि योनीः सुप-
रिष्कृताश्च । निवेदयन्देवतायै महत्यै स्वात्मीकृते सुकृते सिद्धिमेति ॥ १२ ॥
सृण्वेव सितया विश्वचर्षणिः पाशेनैव प्रतिबध्नात्यभीकाम् । इषुभिः पञ्चभि-
र्धनुषा च विध्यत्यादिशक्तिररुणा विश्वजन्या ॥ १३ ॥ भगः शक्तिर्भगवा-
न्काम ईश उभा दाताराविह सौभगानाम् । समप्रधानौ समसत्त्वौ समोजौ

तयोः शक्तिरजरा विश्वयोनिः ॥ १४ ॥ परिस्रुता हविषा भावितेन प्रसंकोचे
गलिते वैमनस्कः । शर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति
॥ १५ ॥ इयं महोपनिषद्गौर्या यामक्षयं परमो गीर्भिरिष्टे । एषर्ग्यजुः पर-
मेतच्च सामायमथर्वेयमन्या च विद्या ॥ १६ ॥ ॐ हीमो हीमित्युपनिषत् ॥
हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः ॥

इति श्रीत्रिपुरोपनिषत्समाप्ता ॥ ८५ ॥

कठरुद्रोपनिषत् ॥ ८६ ॥

परिब्रज्याधर्मपूगालंकारा यत्पदं ययुः ।

तदहं कठविद्यार्थं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्नधीहि भगवन्ब्रह्मविद्याम् । स प्रजा-
पतिरब्रवीत्सशिखान्केशान्निष्कृष्य विसृज्य यज्ञोपवीतं निष्कृष्य पुत्रं दृष्ट्वा त्वं
ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोकारस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं धाता त्वं
विधाता त्वं प्रतिष्ठाऽसीति वदेत् । अथ पुत्रो वदत्यहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं वष-
ट्कारोऽहमोकारोऽहं स्वाहाहं स्वधाहं धाताहं विधाताहं त्वष्टाहं प्रतिष्ठासीति ।
तान्येतान्यनुब्रजन्नाश्रुमापातयेत् । यदश्रुमापातयेत्प्रजां विच्छिन्द्यात् । प्रद-
क्षिणमावृत्त्यैतच्चैतज्ज्ञानवेक्षमाणाः प्रत्यायन्ति । स स्वर्ग्यो भवति ब्रह्मचारी
वेदमधीत्य वेदोक्ताचरितब्रह्मचर्यो दारानाहत्य पुत्रानुत्पाद्य ताननुपाधिमिर्वि-
तत्येष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैः । तस्य संन्यासो गुरुभिरनुज्ञातस्य बान्धवैश्च ।
सोऽरण्यं परेत्य द्वादशरात्रं पयसाग्निहोत्रं जुहुयात् । द्वादशरात्रं पयोभक्षा
स्यात् । द्वादशरात्रस्यान्ते अग्नये वैश्वानराय प्रजापतये च प्राजापत्यं चरुं
वैष्णवं त्रिकपालमग्निं संस्थितानि पूर्वाणि दारुपान्नाण्यग्नौ जुहुयात् । मृण्म-
यान्यप्सु जुहुयात् । तैजसानि गुरुवे दद्यात् । मा त्वं मामपहाय परागाः ।
नाहं त्वामपहाय परागासिति । गार्हपत्यदक्षिणाभ्याहवनीयेष्वरणिदेशान्नस-
मुष्टिं पिबेदित्येके । सशिखान्केशान्निष्कृष्य विसृज्य यज्ञोपवीतं भूःस्वाहेत्यप्सु
जुहुयात् । अत ऊर्ध्वमन्नशनमपां प्रवेशमग्निप्रवेशं वीराध्वानं महाप्रस्थानं

वृद्धाश्रमं वा गच्छेत् । पयसा यं प्राश्नीयात्सोऽस्य सायंहोमः । यत्प्रातः सोऽयं
 प्रातः । यदृशे तद्दर्शनम् । यत्पौर्णमास्ये तत्पौर्णमास्यम् । यद्वसन्ते केशश्मश्रु-
 लोमनखानि वापयेत्सोऽस्याग्निष्टोमः । संन्यस्याग्निं न पुनरावर्तयेन्मृत्यु-
 र्जयमावहमित्यध्यात्ममन्त्रान्पठेत् । स्वस्ति सर्वजीवेभ्य इत्युक्त्वाऽऽत्मानमनन्यं
 ध्यायन् तदूर्ध्वबाहुर्विमुक्तमार्गो भवेत् । अनिकेतश्चरेत् । भिक्षाशी यत्किं-
 चिन्नाद्यात् । लवैकं न धावयेज्जन्तुसंरक्षणार्थं वर्षवर्जमिति । तदपि श्लोका
 भवन्ति — कुण्डिकां चमसं शिष्यं त्रिविष्टपमुपानहौ । शीतोपचातिनीं कन्थां
 कौपीनाच्छादनं तथा ॥ १ ॥ पवित्रं ज्ञानशार्दी च उत्तरासङ्गमेव च ।
 यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ २ ॥ ज्ञानं पानं तथा शौचमग्निः
 पूताभिराचरेत् । नदीपुलिनशायी स्याद्देवागारेषु वा स्वपेत् ॥ ३ ॥ नात्यर्थं
 सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत् । स्तूयमानो न तुष्येत निन्दितो न
 शपेत्परात् ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन मस्करी । दर्शनं स्पर्शनं
 केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ॥ ५ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव
 च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ६ ॥ विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं
 सुमुधुभिः । यज्जगन्नासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत् ॥ ७ ॥ स एव
 जातः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः । प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः
 ॥ ८ ॥ न कर्मणा न प्रजया न चान्येनापि केनचित् । ब्रह्मवेदनमात्रेण
 ब्रह्माभ्योत्येव मानयः ॥ ९ ॥ तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम् । संसारे
 च गुहावाच्ये नायाज्ञानादिसंज्ञके ॥ १० ॥ निहितं ब्रह्म यो वेद परमे-
 व्योमि संज्ञिते । सोऽश्नुते सकलान्कामान्कमेणैव द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥
 प्रत्यगात्मानमज्ञानमायाशक्तेश्च साक्षिणम् । एकं ब्रह्माहमस्मीति ब्रह्मैव
 भवति स्वयम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मभूतात्मनस्तस्यादेतस्याच्छक्तिमिश्रितात् ।
 अपञ्चीकृत आकाशसंभूतो रज्जुसर्पवत् ॥ १३ ॥ आकाशाद्वायुसंज्ञस्तु
 स्पर्शोऽपञ्चीकृतः पुनः । वायोरग्निस्तथा चाग्रेराप अग्नौ वसुन्धरा
 ॥ १४ ॥ तानि भूतानि सूक्ष्माणि पञ्चीकृत्येश्वरस्तदा । तेभ्य एव
 विसृष्टं तद्ब्रह्माण्डादि शिवेन ह ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डस्योदरे देवा दानवा
 यक्षकिन्नराः । मनुष्याः पशुपक्ष्याद्यास्तत्तत्कर्मानुसारतः ॥ १६ ॥ अस्थि-
 स्नाय्वादिरूपोऽयं शरीरं भाति देहिनाम् । योऽयमन्नमयो ह्यात्मा भाति सर्व-

शरीरिणः ॥ १७ ॥ ततः प्राणमयो ह्यात्मा विभिन्नश्चान्तरस्थितः । ततो
विज्ञान आत्मा तु ततोऽन्यश्चान्तरः स्वतः ॥ १८ ॥ आनन्दमय आत्मा तु
ततोऽन्यश्चान्तरस्थितः । योऽयमन्नमयः सोऽयं पूर्णः प्राणमयेन तु ॥ १९ ॥
मनोमयेन प्राणोऽपि तथा पूर्णः स्वभावतः । तथा मनोमयो ह्यात्मा पूर्णो
ज्ञानमयेन तु ॥ २० ॥ आनन्देन सदा पूर्णः सदा ज्ञानमयः सुखम् । तथा-
नन्दमयश्चापि ब्रह्मणोऽन्येन साक्षिणा ॥ २१ ॥ सर्वान्तरेण पूर्णश्च ब्रह्म
नान्येन केनचित् । यदिदं ब्रह्मपुच्छाख्यं सत्यज्ञानाद्वयात्मकम् ॥ २२ ॥
सारमेव रसं लब्ध्वा साक्षाद्देही सनातनम् । सुखी भवति सर्वत्र अन्यथा
सुखता कुतः ॥ २३ ॥ असत्यस्मिन्परानन्दे स्वात्मभूतेऽखिलात्मनाम् । को
जीवति नरो जन्तुः को वा नित्यं विचेष्टते ॥ २४ ॥ तस्मात्सर्वात्मना चित्ते
आसमानो ह्यसौ नरः । आनन्दयति दुःखाख्यं जीवात्मानं सदा जनः ॥ २५ ॥
यदा ह्येवैष एतस्मिन्नद्वयत्वादिलक्षणे । निर्मेदं परमाद्वैतं विन्दते च महा-
यतिः ॥ २६ ॥ तदेवाभयमत्यन्तकल्याणं परमाभूतम् । सद्रूपं परमं ब्रह्म
त्रिपरिच्छेदवर्जितम् ॥ २७ ॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नल्पमप्यन्तरं नरः । विजा-
नाति तदा तस्य भयं स्यान्नात्र संशयः ॥ २८ ॥ अस्यैवानन्दकोशेन स्तम्बान्ता
विष्णुपूर्वकाः । भवन्ति सुखिनो नित्यं तारतम्यक्रमेण तु ॥ २९ ॥ तत्तत्पद-
विरक्तस्य श्रोत्रियस्य प्रसादिनः । स्वरूपभूत आनन्दः स्वयं भाति परे यथा
॥ ३० ॥ निमित्तं किञ्चिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते । यतो वाचो निवर्तन्ते
निमित्तानामभावतः ॥ ३१ ॥ निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते ।
तस्मादेतन्मनः सूक्ष्मं व्यावृत्तं सर्वगोचरम् ॥ ३२ ॥ यस्माच्छ्रोत्रत्वगाद्व्यादि-
खादिकर्मैन्द्रियाणि च । व्यावृत्तानि परं प्राप्तुं न समर्थाणि तानि तु ॥ ३३ ॥
तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्धनम् । विदित्वा स्वात्मरूपेण न विभेति
कुतश्चन ॥ ३४ ॥ एवं यस्तु विजानाति स्वगुरोरुपदेशतः । स साध्वसाधु-
कर्मभ्यां सदा न तपति प्रभुः ॥ ३५ ॥ ताप्यतापकरूपेण विभातमखिलं जगत् ।
प्रत्यगात्मतया भाति ज्ञानाद्वैदान्तवाक्यजात् ॥ ३६ ॥ शुद्धमीश्वरचैतन्यं जीव-
चैतन्यमेव च । प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा ॥ ३७ ॥ इति
सप्तविधं प्रोक्तं मिथ्यते व्यवहारतः । मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते
॥ ३८ ॥ मायासंबन्धतश्चेतो जीवोऽविद्यावशस्तथा । अन्तःकरणसंबन्धात्प्रमाते-

त्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ तथातद्वृत्तिसंबन्धात्प्रमाणमिति कथ्यते । अज्ञातमपि
चैतन्यं प्रमेयमिति कथ्यते ॥ ४० ॥ तथा ज्ञातं च चैतन्यं फलमित्यभि-
धीयते । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः ॥ ४१ ॥ एवं यो वेद
तत्त्वेन ब्रह्मभूयाय कल्पते । सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः ॥ ४२ ॥
स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति कठरुद्रोपनिषत्समाप्ता ॥ ८६ ॥

भावनोपनिषत् ॥ ८७ ॥

स्वाविद्यापदतत्कार्यं श्रीचक्रोपरि भासुरम् ।

बिन्दुरूपशिवाकारं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ आत्मानमखण्डमण्डलाकारमावृत्य सकलब्रह्माण्डमण्डलं स्वप्न-
काशं ध्यायेत् । ॐ श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः । तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ।
नवशक्तिरूपं श्रीचक्रम् । वाराही पितृरूपा । कुरुकुला बलिदेवता माता ।
पुरुषार्थाः सागराः । देहो नवरत्नद्वीपः । आधारनवकमुद्राः शक्तयः । त्वगा-
दिसप्तधातुभिरनेकैः संयुक्ताः कल्पाः कल्पतरवः । तेजः कल्पकोद्यानम् ।
रसनया भाग्यमाना मधुराम्लतत्तकटुकपायलवणभेदाः षड्रसाः षडृतवः
क्रियाशक्तिः पीठम् । कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम् । इच्छाशक्तिर्महात्रिपुर-
सुन्दरी । ज्ञाता होता ज्ञानमग्निः ज्ञेयं हविः । ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं
श्रीचक्रपूजनम् । नियतिसहिताः शृङ्गारादयो नव रसा अणिमादयः ।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्म्याद्यष्ट शक्तयः । पृथिव्य-
सेजोवायवाकाशश्चोन्नतत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनोविकाराः
षोडश शक्तयः । वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपेक्षाबुद्धयोऽनङ्गकुसुमादिश-
क्तयोऽष्टौ । अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरी वरुणा हस्तिजिह्वा यशस्त्रयस्त्रिनी
गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वतीडा पिङ्गला सुपुत्रा चेति चतुर्दश नाड्यः ।
सर्वसंक्षौभिण्यादिचतुर्दशारगा देवताः । प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्म-
कृकरदेवदत्तचर्नजया इति दश वायवः । सर्वसिद्धिप्रदा देव्यो ब्रह्मिणीरगा

देवताः । एतद्वायुदशकसंसर्गोपाधिभेदेन रेचकपूरकशोषकदाहप्लावका अमृत-
 मिति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चविधोऽस्ति । क्षारको दारकः क्षोभको मोहको
 जृम्भक इत्यपालनमुख्यत्वेन पञ्चविधोऽस्ति । तेन मनुष्याणां मोहको दाहको
 भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यपेयात्मकं चतुर्विधमन्नं पाचयति । एता दश बह्विकलाः
 सर्वज्ञत्वाद्यन्तर्दशारगा देवताः । शीतोष्णसुखदुःखेच्छासत्त्वरजस्तमोगुणा
 वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चतन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणा
 मन इक्षुधनुः । वज्रो बाणो रागः पाशः । द्वेषोऽङ्कुशः । अव्यक्तमहत्तत्त्व-
 महदहंकार इति कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणाग्रगा देवताः ।
 पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनस्थितिः पञ्चदश नित्याः । श्रद्धा-
 नुरूपा धीर्देवता । तयोः कामेश्वरी सदानन्दधना परिपूर्णस्वात्मैकरूपा
 देवता । सलिलमिति लौहित्यकारणं सत्त्वम् । कर्तव्यमकर्तव्यमिति भावना-
 युक्त उपचारः । अस्तिनास्तीति कर्तव्यतानूपचारः । बाह्याभ्यन्तःकरणानां
 रूपग्रहणयोग्यतास्त्वित्यावाहनम् । तस्य बाह्याभ्यन्तःकरणानामेकरूपविषय-
 ग्रहणमासनम् । रक्तशुक्लपदैकीकरणं पाद्यम् । उज्ज्वलदामोदानन्दासनदान-
 मर्ध्यम् । स्वच्छं स्वतःसिद्धमित्याचमनीयम् । चिच्चन्द्रमयीति सर्वाङ्गस्रवणं
 स्नानम् । चिदैश्वर्यरूपपरमानन्दशक्तिस्फुरणं वस्त्रम् । प्रत्येकं सप्तविंशतिधा
 भिन्नत्वेनेच्छाज्ञानक्रियात्मकब्रह्मग्रन्थिमद्रसतन्तुब्रह्मनाडी ब्रह्मसूत्रम् । स्वव्य-
 तिरिक्तवस्तुसङ्गरहितस्मरणं विभूषणम् । सच्चित्सुखपरिपूर्णतास्मरणं गन्धः ।
 समस्तविषयाणां मनसः स्थैर्येणानुसंधानं कुसुमम् । तेषामेव सर्वदा स्वीक-
 रणं धूपः । पवनावच्छिन्नोर्ध्वज्वलनसच्चिदुल्काकाशदेहो दीपः । संमस्तया-
 तायातवर्ज्यं नैवेद्यम् । अर्वस्थात्रयाणामेकीकरणं ताम्बूलम् । मूलाधारादा
 ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादा मूलाधारपर्यन्तं गतागतरूपेण प्रादक्षिण्यम् ।
 नुर्यावस्था नमस्कारः । देहशून्यप्रमातृतानिमज्जनं बलिहरणम् । संत्यमस्ति
 कर्तव्यमकर्तव्यमौदसीन्यनित्यात्मविलापनं होमः । स्वयं तत्पादुकानिमज्जनं
 परिपूर्णध्यानम् । एवं मुहूर्तत्रयं भावनोपरो जीवन्मुक्तो भवति । तस्य

देवतात्मैक्यसिद्धिः । चिन्तितकार्याण्ययत्नेन सिद्ध्यन्ति । स एव शिवयोगीति
कैथ्यते । कादिहादिमतोक्तेन भावना प्रतिपादिता । जीवन्मुक्तो भवति ।
य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया भावनोपनिषत्संपूर्णा ॥ ८७ ॥

रुद्रहृदयोपनिषत् ॥ ८८ ॥

यद्ब्रह्म रुद्रहृदयमहाविद्याप्रकाशितम् ।

तद्ब्रह्ममात्रावस्थानपदवीमधुना भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ हृदयं कुण्डली भस्मरुद्राक्षगणदर्शनम् । तारसारं महावाक्यं
पञ्चब्रह्माभिहोत्रकम् ॥ १ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ शुको व्यासमुवाच ह ।
को देवः सर्वदेवेषु कस्मिन्देवाश्च सर्वशः ॥ २ ॥ कस्य शुश्रूषणाश्रित्यं प्रीता
देवा भवन्ति मे । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पिता शुक्रम् ॥ ३ ॥ सर्व-
देवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः । रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रविर्ब्रह्मा
त्रयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ वामपार्श्वे उमा देवी विष्णुः सोमोऽपि ते त्रयः । या उमा
सा स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स हि चन्द्रमाः ॥ ५ ॥ ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते
नमस्यन्ति शंकरम् । येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ॥ ६ ॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम् । ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न
जानन्ति केशवम् ॥ ७ ॥ रुद्रात्प्रवर्तते बीजं बीजयोर्निर्जनार्दनः । यो रुद्रः स
स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मकं
जगत् । पुंलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा ॥ ९ ॥ उमारुद्रात्मिकाः
सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः । व्यक्तं सर्वसुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम् ॥ १० ॥
उमाशंकरयोगो यः स योगो विष्णुरूच्यते । यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याद्भक्ति-
समन्वितः ॥ ११ ॥ आत्मानं परमात्मानमन्तरात्मानमेव च । ज्ञात्वा
त्रिविधमात्मानं परमात्मानमाश्रयेत् ॥ १२ ॥ अन्तरात्मा भवेद्ब्रह्मा परमात्मा
महेश्वरः । सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ॥ १३ ॥ अस्य त्रैलोक्य-
वृक्षस्य भूमौ विटपशास्त्रिनः । अग्रं मध्यं तथा मूलं विष्णुब्रह्ममहेश्वराः

॥ १४ ॥ कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः । प्रयोजनार्थं
रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता ॥ १५ ॥ धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्व-
ज्ञानं पितामहः । श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यत्नं त्रयाद्विचक्षणः ॥ १६ ॥
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । रुद्रो नर उमा नारी तस्यै तस्यै
नमो नमः ॥ १७ ॥ रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्यै तस्यै नमो नमः । रुद्रो
विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्यै तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥ रुद्रः सूर्य उमा छाया
तस्यै तस्यै नमो नमः । रुद्रः सोम उमा तारा तस्यै तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्यै तस्यै नमो नमः । रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्यै
तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥ रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्यै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्यै तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥ रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली
तस्यै तस्यै नमो नमः । रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तस्यै तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
रुद्रोऽर्थ अक्षरः सोमा तस्यै तस्यै नमो नमः । रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्यै
तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥ सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथक्पृथक् । एभि-
र्मन्त्रपदैरेव नमस्यार्चनापार्वतीम् ॥ २४ ॥ यत्र यत्र भवेत्सार्धमिमं मन्त्रमु-
दीरयेत् । ब्रह्महा जलमध्ये तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥ सर्वाधिष्ठानम-
द्भन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् । सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम् ॥ २६ ॥
तस्मिन्सुविदिते सर्वं वैज्ञातं स्यादिदं शुक् । तदात्मकत्वात्सर्वस्य तस्मान्निर्भ-
नहि क्वचित् ॥ २७ ॥ द्वे विधे वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते । तत्रापरा
तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च ॥ २८ ॥ सामवेदस्तथाऽथर्ववेदः शिक्षा मुनी-
श्वर । कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्तं छन्द एव च ॥ २९ ॥ ज्योतिषं च यथा
नात्मविषया अपि बुध्यः । अथैषा परमा विद्या ययात्मा परमाक्षरम् ॥ ३० ॥
यत्तद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम् । अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा
॥ ३१ ॥ नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदव्ययम् । तद्भूतयोर्नि पश्यन्ति
धीरा आत्मानमात्मार्ता ॥ ३२ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यो यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादब्रान्तरूपेण जयते जगदावलिः ॥ ३३ ॥ सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्प-
वदास्थितम् । तदेतत्क्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ ज्ञानेनैव हि
संसारविनाशो नैव र्मणा । श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथाविधि ॥ ३५ ॥

गुरुस्तस्यै परां विद्यां दद्याद्ब्रह्मात्मबोधिनीम् । गुहायां निहितं साक्षादक्षरं
वेद चेन्नरः ॥ ३६ ॥ छित्त्वाऽविद्यामहाप्रस्थं शिवं गच्छेत्सनातनम् । तदे-
तदमृतं सत्यं तदबोद्धव्यं सुमुमुक्षुभिः ॥ ३७ ॥ धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म
तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्व्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ३८ ॥ लक्ष्यं सर्व-
गतं चैव शरः सर्वगतो मुखः । वेद्धा सर्वगतश्चैव शिवलक्ष्यं न संशयः
॥ ३९ ॥ न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकला देवताश्च ।
स एष देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते ॥ ४० ॥ द्वौ
सुपर्णौ शरीरेऽसिञ्जीवेशाख्यौ सह स्थितौ । तयोर्जीवः फलं मुञ्जे कर्मणो
न महेश्वरः ॥ ४१ ॥ केवलं साक्षिरूपेण विना भोगं महेश्वरः । प्रकाशते
स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः ॥ ४२ ॥ घटाकाशमठाकाशौ यथाकाश-
प्रमेदतः । कल्पितो परमौ जीवशिवरूपेण कल्पितौ ॥ ४३ ॥ तत्त्वतश्च शिवः
साक्षाच्चिजीवश्च स्वतः सदा । विच्छिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः
॥ ४४ ॥ चितश्चिन्नं चिदाकाराद्भिद्यते जडरूपतः । भिद्यते चेज्जडो भेदश्चि-
देका सर्वदा खलु ॥ ४५ ॥ तर्कतश्च प्रमाणाच्च चिदेकत्वव्यवस्थितः । चिदे-
कत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति ॥ ४६ ॥ अद्वैतं परमानन्दं शिवं याति
तु केवलम् ॥ ४७ ॥ अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यविद्भनम् । अहम-
स्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः ॥ ४८ ॥ स्वशरीरे त्रयं ज्योतिःस्वरूपं
सर्वसाक्षिणम् । क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृता ॥ ४९ ॥ एवं
रूपपरिज्ञानं यस्यास्ति परयोगिनः । कुत्रचिद्भनं नास्ति तस्य पूर्णस्वरू-
पिणः ॥ ५० ॥ आकाशमेकं संपूर्णं कुत्रचिन्नैव गच्छति । तात्स्नात्मपरिज्ञानी
कुत्रचिन्नैव गच्छति ॥ ५१ ॥ स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म यं वेद वै मुनिः ।
ब्रह्मैव भवति स्वस्थः सच्चिदानन्दमातृकः ॥ ५२ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ
तत्सत् ॥

ॐ स ह नावचत्त्विति शान्तिः ॥

इति रुद्रहृदयोपनिषत्संमाप्ता ॥ ८८ ॥

योगकुण्डल्युपनिषत् ॥ ८९ ॥

योगकुण्डल्युपनिषद्योगसिद्धिहृदासनम् ।

निर्विशेषब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः । तयोर्विनष्ट एक-
स्मिंस्तद्वावपि विनश्यतः ॥ १ ॥ तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा ।
मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः ॥ २ ॥ एतेषां लक्षणं वक्ष्ये शृणु
गौतम सादरम् । सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ॥ ३ ॥ भुज्यते शिव-
संप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते । आसनं द्विविधं प्रोक्तं पद्मं वज्रासनं तथा
॥ ४ ॥ ऊर्वोरुपरि चेद्धत्ते उभे पादतले यथा । पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपाप-
प्रणाशनम् ॥ ५ ॥ वामाङ्घ्रिमूलकन्दाधो ह्यन्यं तदुपरि क्षिपेत् । समग्रीवशिरः-
कायो वज्रासनमितीरितम् ॥ ६ ॥ कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तं तु संचालयेद्बुधः ।
स्वस्थानादाधुवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते ॥ ७ ॥ तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्व-
त्यास्तु चालनम् । प्राणरोधमथाम्यासादज्जी कुण्डलिनी भवेत् ॥ ८ ॥ तयो-
रादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते । अरुन्धत्येव कथिता पुराविद्धिः सर-
स्वती ॥ ९ ॥ यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली । इडायां
वहति प्राणे बद्धा पद्मासनं दृढम् ॥ १० ॥ द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यं च
अम्बरं चतुरङ्गुलम् । विस्तीर्य तेन तन्नाडीं वेष्टयित्वा ततः सुधीः
॥ ११ ॥ अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु हस्ताभ्यां धारयेद्दृढम् । स्वशक्त्या चाल-
येद्दामे दक्षिणेन पुनः पुनः ॥ १२ ॥ मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाश्चालये-
त्सुधीः । ऊर्ध्वमाकर्षयेत्किञ्चित्सुपुष्पां कुण्डलीगताम् ॥ १३ ॥ तेन कुण्डलिनी
तस्याः सुपुष्पाया मुखं व्रजेत् । जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुपुष्पां व्रजति
स्वतः ॥ १४ ॥ तुन्दे तु ताणं कुर्याच्च कण्ठसंकोचनेव कृते । सरस्वत्यां चाल-
नेन वक्षसश्चोर्ध्वगो मरुत् ॥ १५ ॥ सूर्येण रेचयेद्वायुं सरस्वत्यास्तु चालने ।
कण्ठसंकोचनं कृत्वा वैक्षसश्चोर्ध्वगो मरुत् ॥ १६ ॥ तस्मात्संचालयेन्नित्यं
सन्दर्गमां सरस्वतीम् । यस्याः संचालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते ॥ १७ ॥ गुल्मं
जलोदरः श्लीहा ये चान्ये तुन्दमध्यगाः । सर्वे तु शक्तिचालेन रोगा नश्यन्ति

निश्चयम् ॥ १८ ॥ प्राणरोधमथेदानीं प्रवक्ष्यामि समासतः । प्राणश्च देहगो
 वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः ॥ १९ ॥ स एव द्विविधः प्रोक्तः सहितः केवल-
 स्तथा । यावत्केवलसिद्धिः स्यात्तावत्सहितमभ्यसेत् ॥ २० ॥ सूर्योज्जायी
 शीतली च भस्त्री चैव चतुर्थिका । भेदैरेव समं कुम्भो यः स्यात्सहित-
 कुम्भकः ॥ २१ ॥ पवित्रे निर्जने देशे शर्करादिविवर्जिते । धनुःप्रमाणपर्यन्ते
 शीताग्निजलवर्जिते ॥ २२ ॥ पवित्रे नात्युच्चनीचे ह्यासने सुखदे सुखे ।
 बद्धपद्मासनं कृत्वा सरस्वत्यास्तु चालनम् ॥ २३ ॥ दक्षनाड्या समाकृष्य
 बहिष्ठं पवनं शनैः । यथेष्टं पूरयेद्वायुं रेचयेदिडया ततः ॥ २४ ॥ कपाल-
 शोधने वापि रेचयेत्पवनं शनैः । चतुष्कं वातदोषं तु कृमिदोषं निहन्ति च
 ॥ २५ ॥ पुनःपुनरिदं कार्यं सूर्यभेदमुदाहृतम् । मुखं संयम्य नाड्यभ्या-
 माकृष्य पवनं शनैः ॥ २६ ॥ यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ।
 पूर्ववत्कुम्भयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः ॥ २७ ॥ शीर्षोदितानलहरं गलश्लेष्म-
 हरं परम् । सर्वरोगहरं पुण्यं देहानलविवर्धनम् ॥ २८ ॥ नाडीजलोदरं
 धातुगतदोषविनाशनम् । गच्छतस्तिष्ठतः कार्यमुज्जायाख्यं तु कुम्भकम् ॥ २९ ॥
 जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुम्भकादनु । शनैस्तु प्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेदनि-
 लं सुधीः ॥ ३० ॥ गुल्मस्त्रीहादिकान्दोषान्क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम् । विषाणि
 शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति च ॥ ३१ ॥ ततः पद्मासनं बद्धा सम-
 ग्रीवोदरः सुधीः । मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं प्राणेन रेचयेत् ॥ ३२ ॥ यथा
 लगति कण्ठात्तु कपाले सस्वनं ततः । वेगेन पूरयेत् किञ्चिदुत्पन्नावधि मारु-
 तम् ॥ ३३ ॥ पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः । यथैव लोहकाराणां भस्मा
 वेगेन चाल्यते ॥ ३४ ॥ तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं शनैः । यथा श्रमो
 भवेद्देहे तथा सूर्येण पूरयेत् ॥ ३५ ॥ यथोदरं भवेत्पूर्णं पवनेन तथा लघु ।
 धारयन्नासिकामध्यं तर्जनीभ्यां विना दृढम् ॥ ३६ ॥ कुम्भकं पूर्ववत्कृत्वा
 रेचयेदिडयानिलम् । कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥ ३७ ॥ कुण्डली-
 बोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम् । ब्रह्मनाडीमुखान्तस्थकफार्धगलनाश-
 नम् ॥ ३८ ॥ गुणत्रयसमुद्भूतग्रन्थित्रयविभेदकम् । विशेषेणैव कर्तव्यं
 भस्माख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ ३९ ॥ चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते ।
 बन्धत्रयमिदं कार्यं योतिभिर्वीतकल्मषैः ॥ ४० ॥ प्रथमो मूलबन्धस्तु

द्वितीयोद्गीयणाभिधः । जालन्धरस्तृतीयस्तु तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ४१ ॥
 अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वं कुरुते बलात् । आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूल-
 बन्धोऽयमुच्यते ॥ ४२ ॥ अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वह्निमण्डले ।
 ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुनाहता ॥ ४३ ॥ ततो यातौ बह्व्यमानौ
 प्राणमुष्णस्वरूपकम् । तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा ॥ ४४ ॥ तेन
 कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता संप्रबुध्यते । दण्डाहतमुजङ्गीव निःश्वस्य क्रजुतां
 ब्रजेत् ॥ ४५ ॥ विलप्रवेशतो यत्र ब्रह्मनाड्यन्तरं ब्रजेत् । तस्मान्निलं मूलबन्धः
 कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ ४६ ॥ कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तुड्डियाणकः ।
 बन्धो येन सुपुत्रायां प्राणस्तुड्डियते यतः ॥ ४७ ॥ तस्मादुद्गीयणाख्योऽयं
 योगिभिः समुदाहृतः । सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्बृहत् ॥ ४८ ॥
 गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् । पश्चिमं ताणमुदरे धारयेद्बृहदये गले
 ॥ ४९ ॥ शनैः शनैर्यदा प्राणस्तुन्दसन्धिं निगच्छति । तुन्ददोषं विनिर्धूय कर्तव्यं
 सततं शनैः ॥ ५० ॥ पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः । कण्ठ-
 संकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः ॥ ५१ ॥ अधस्तात्कुञ्चनेनाशु कण्ठसं-
 कोचने कृते । मध्ये पश्चिमताणेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः ॥ ५२ ॥
 पूर्वोक्तेन क्रमेणैव सम्यगासनमास्थितः । चालनं तु सरस्वत्याः कृत्वा
 प्राणं निरोधयेत् ॥ ५३ ॥ प्रथमे दिवसे कार्यं कुम्भकानां चतुष्टयम् ।
 प्रत्येकं दशसंख्याकं द्वितीये पञ्चभिस्तथा ॥ ५४ ॥ विशत्यलं तृतीयेऽह्नि
 पञ्चवृद्ध्या दिने दिने । कर्तव्यः कुम्भको नित्यं बन्धत्रयसमन्वितः ॥ ५५ ॥
 दिवा सुसिर्निशायां तु जागरादतिमैथुनात् । बहुसंक्रमणं नित्यं रोधान्मूत्र-
 पुरीषयोः ॥ ५६ ॥ विषमाशनदोषाच्च प्रयासप्राणचिन्तनात् । शीघ्रमुत्पद्यते
 रोगः स्तम्भयेद्यदि संयमी ॥ ५७ ॥ योगाभ्यासेन मे रोग उत्पन्न इति
 कथ्यते । ततोऽभ्यासं त्यजेदेवं प्रथमं विघ्नमुच्यते ॥ ५८ ॥ द्वितीयं संशयाख्यं
 च तृतीयं च प्रमत्तता । आलस्याख्यं चतुर्थं च निद्रारूपं तु पञ्चमम् ॥ ५९ ॥
 षष्ठं तु विरतिर्भ्रान्तिः सप्तमं परिकीर्तितम् । विषमं चाष्टमं चैव अनाख्यं
 नवमं स्मृतम् ॥ ६० ॥ अलविधर्योगतत्त्वस्य दशमं प्रोच्यते बुधैः । इत्येत-
 द्विघ्नदशकं विचारेण त्यजेद्बुधः ॥ ६१ ॥ प्राणाभ्यासस्ततः कार्यो नित्यं सत्त्व-
 स्थया धिया । सुपुत्रा लीयते चित्तं तथा वायुः प्रधावति ॥ ६२ ॥ शुष्के
 मले तु योगी च स्याद्गतिश्चलिता ततः । अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वं कुरुते

बलात् ॥ ६३ ॥ आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धोऽयमुच्यते । अपानश्चोर्ध्वगो
भूत्वा वह्निना सह गच्छति ॥ ६४ ॥ प्राणस्थानं ततो वह्निः प्राणापानौ च
सत्त्वरम् । मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः ॥ ६५ ॥ तेना-
ग्निना च संतप्ता पवनेनैव चालिता । प्रसार्य स्वशरीरं तु सुषुप्ता वदनान्तरे
॥ ६६ ॥ ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा रजोगुणसमुद्भवम् । सुषुप्ता वदने शीघ्रं
विद्युल्लेखेव संस्फुरेत् ॥ ६७ ॥ विष्णुग्रन्थि प्रयात्युच्चैः सत्त्वरं हृदि संस्थिता ।
ऊर्ध्वं गच्छति यन्नास्ते रुद्रग्रन्थि तदुद्भवम् ॥ ६८ ॥ भ्रुवोर्मध्यं तु संभिद्य
याति शीतांशुमण्डलम् । अनाहताख्यं यच्चक्रं दलैः पोडशभिर्युतम् ॥ ६९ ॥
तत्र शीतांशुसंजातं द्रवं शोषयति स्वयम् । चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं
रवेर्ग्रहात् ॥ ७० ॥ यातेन्दुचक्रं यन्नास्ते शुद्धश्लेष्मद्रवात्मकम् । तत्र सिक्तं
असत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम् ॥ ७१ ॥ तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि
तप्यते । ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम् ॥ ७२ ॥ तस्यास्वादवशा-
च्चित्तं वहिष्ठं विषयेषु यत् । तदेव परमं भुक्त्वा स्वस्थः स्वात्मरतो युवा
॥ ७३ ॥ प्रकृत्यष्टकरूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली । क्रोडीकृत्य शिवं याति
क्रोडीकृत्य विलीयते ॥ ७४ ॥ इत्यधोर्ध्वरजः शुक्लं शिवे तदनु मारुतः ।
प्राणापानौ समौ याति सदा जातौ तथैव च ॥ ७५ ॥ भूतेऽल्पे चाप्यनल्पे
वा वाचके त्वतिवर्धते । धावयत्यखिला वाता अग्निमूपाहिरण्यवत् ॥ ७६ ॥
आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे । देहोऽतिविमलं याति चातिवाहि-
कतामियात् ॥ ७७ ॥ जाड्यभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम् । तस्याति-
वाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकम् ॥ ७८ ॥ जायाभवविनिर्मुक्तिः काल-
रूपस्य विग्रहः । इति तं स्वस्वरूपा हि मती रज्जुभुजङ्गवत् ॥ ७९ ॥
मृपैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते । रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्त्रीपुंसो-
र्भ्रमतो यथा ॥ ८० ॥ पिण्डग्रहाण्डयोरैक्यं लिङ्गसुत्रात्मनोरपि । स्वापाव्या-
कृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः ॥ ८१ ॥ शक्तिः कुण्डलिनी नाम विस-
तन्तुनिभा शुभा । मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत् ॥ ८२ ॥ मुखेन
पुच्छं संगृह्य भस्वरन्ध्रसमन्विता । पश्चात्सनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः
॥ ८३ ॥ त्रायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः । वायवाघातवशादग्निः
प्राधिष्ठानगतो ज्वलन् ॥ ८४ ॥ ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराद ।

ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थि भिनत्यतः ॥ ८५ ॥ रुद्रग्रन्थि च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति पद । सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ॥ ८६ ॥ सैवावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारिणी इति ॥

इति योगकुण्डल्युपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथाहं संप्रवक्ष्यामि विद्यां खेचरिसंज्ञिकाम् । यथा विज्ञानवानस्या लोकेऽस्मिन्नजरोऽमरः ॥ १ ॥ मृत्युव्याधिजराप्रसूतो ह्येषा विद्यामिमां मुने । बुद्धिं दृढतरां कृत्वा खेचरीं तु समभ्यसेत् ॥ २ ॥ जरामृत्युगदघ्नो यः खेचरीं वेत्ति भूतले । ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव तदभ्यासप्रयोगतः ॥ ३ ॥ तं मुने सर्वभावेन गुरुं मत्वा समाश्रयेत् । दुर्लभा खेचरी विद्या तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥ ४ ॥ अभ्यासं मेलनं चैव युगपन्नैव सिध्यति । अभ्यासमात्रनिरता न विन्दन्ते ह मेलनम् ॥ ५ ॥ अभ्यासं लभते ब्रह्मजन्मजन्मान्तरे क्वचित् । मेलनं तत्तु जन्मानां शतान्तेऽपि न लभ्यते ॥ ६ ॥ अभ्यासं बहुजन्मान्ते कृत्वा तद्भावसाधितम् । मेलनं लभते कश्चिद्योगी जन्मान्तरे क्वचित् ॥ ७ ॥ यदा तु मेलनं योगी लभते गुरुवक्त्रतः । तदा तत्सिद्धिमाप्नोति यदुक्ता शास्त्रसंततौ ॥ ८ ॥ ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव मेलनं लभते यदा । तदा शिवत्वमाप्नोति निर्मुक्तः सर्वसंसृतेः ॥ ९ ॥ शास्त्रं विनापि संबोद्धुं गुरवोऽपि न शक्नुयुः । तस्मात्सुदुर्लभतरं लभ्यं शास्त्रमिदं मुने ॥ १० ॥ यावन्न लभ्यते शास्त्रं तावद्वां पर्यटेद्यतिः । यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थिता ॥ ११ ॥ न शास्त्रेण विना सिद्धिर्दृष्टा चैव जगद्भये । तस्मान्मेलनदातारं शास्त्रदातारमच्युतम् ॥ १२ ॥ तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्वा समाश्रयेत् । लब्ध्वा शास्त्रमिदं मह्यमन्येषां न प्रकाशयेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं विजानता । यत्रास्ते च गुरुर्ब्रह्मन्दिव्ययोगप्रदायकः ॥ १४ ॥ तत्र गत्वा च तेनोक्तविद्यां संगृह्य खेचरीम् । तेनोक्तः सम्यगभ्यासं कुर्यादादावतन्निद्रतः ॥ १५ ॥ अनया विद्यया योगी खेचरीसिद्धिभागभवेत् । खेचर्यां खेचरीं युञ्जन्खेचरीबीजपूरया ॥ १६ ॥ खेचराधिपतिर्भूत्वा खेचरेषु सदा वसेत् । खेचरावसथं बह्निमम्बुमण्डलभूषितम् ॥ १७ ॥ आख्यातं खेचरीबीजं तेन योगः प्रसिध्यति । सोमांशनवकं वर्णं प्रतिलोमेन चोद्धरेत् ॥ १८ ॥ तस्माद्व्यंशकमाख्यातमक्षरं चन्द्ररूपकम् । तस्मादप्यष्टमं वर्णं विलोमेन परं मुने ॥ १९ ॥ तथा तत्परमं विद्धि तदादिरपि पञ्चमी । इन्द्रोश्च बहुभिन्ने च

कूटोऽयं परिकीर्तितः ॥ २० ॥ गुरूपदेशलभ्यं च सर्वयोगप्रसिद्धिदम् । यत्तस्य
 देहजा माया निरुद्धकरणाश्रया ॥ २१ ॥ स्वप्नेऽपि न लभेत्तस्य नित्यं द्वादश-
 जन्मतः । य इमां पञ्च लक्षाणि जपेदपि सुयत्नितः ॥ २२ ॥ तस्य श्रीखेचरी-
 सिद्धिः स्वयमेव प्रवर्तते । नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्रसीदन्ति च देवताः
 ॥ २३ ॥ बलीपलितनाशश्च भविष्यति न संशयः । एवं लब्ध्वा महाविद्या-
 मभ्यासं कारयेत्ततः ॥ २४ ॥ अन्यथा क्लिश्यते ब्रह्मज्ञ सिद्धिः खेचरीपथे ।
 यदभ्यासविधौ विद्यां न लभेद्यः सुधामयीम् ॥ २५ ॥ ततः संमेलकादौ च
 लब्ध्वा विद्यां सदा जपेत् । नान्यथा रहितो ब्रह्मज्ञ किंचित्सिद्धिभागभवेत्
 ॥ २६ ॥ यदिदं लभ्यते शास्त्रं तदा विद्यां समाश्रयेत् । ततस्तदोदितां सिद्धि-
 माशु तां लभते मुनिः ॥ २७ ॥ तालुमूलं समुत्कृष्य सप्तवासरमात्मवित् ।
 स्वगुरुक्तप्रकारेण मलं सर्वं विशोधयेत् ॥ २८ ॥ क्षुहिपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं
 क्षिप्रधनिर्मलम् । समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥ २९ ॥ हित्वा
 सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रकर्षयेत् । पुनः ससदिने प्राप्ते रोममात्रं समु-
 च्छिनेत् ॥ ३० ॥ एवं क्रमेण षण्मासं नित्योद्युक्तः समाचरेत् । षण्मासा-
 द्रसनामूलं सिराबद्धं प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ अथ वागीश्वरीधाम शिरो वस्त्रेण वेष्ट-
 येत् । शनैरुत्कर्षयेद्योगी कालवेलाविधानवित् ॥ ३२ ॥ पुनः षण्मासमात्रेण
 नित्यं संघर्षणान्मुने । अमूध्यावधि चाप्येति तिर्यक्कणविलावधिः ॥ ३३ ॥
 अधश्च चुबुकं मूलं प्रयाति क्रमचारिता । पुनः संवत्सराणां तु तृतीयादेव
 लीलया ॥ ३४ ॥ केशान्तमूर्ध्वं क्रमति तिर्यक्शाखावधिर्मुने । अधस्तात्कण्ठ-
 कृपान्तं पुनर्वर्षत्रयेण तु ॥ ३५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं समावृत्य तिष्ठेदेव न संशयः ।
 तिर्यक् चूलितलं याति अधः कण्ठविलावधि ॥ ३६ ॥ शनैः शनैर्मस्तकाच्च
 महावज्रकपादभित् । पूर्वं बीजयुता विद्या ह्याख्याता याऽतिदुर्लभा ॥ ३७ ॥
 तस्याः पङ्क्तं कुर्वीत तथा षट्स्वरभिन्नया । कुर्यादेवं करन्यासं सर्वसिद्ध्या-
 दिहेतवे ॥ ३८ ॥ शनैरेवं प्रकर्तव्यमभ्यासं युगपन्नहि । युगपद्भर्तते यस्य
 शरीरं विलयं व्रजेत् ॥ ३९ ॥ तस्माच्छनैः शनैः कार्यमभ्यासं मुनिपुङ्गव । यदा
 च बाह्यमार्गेण जिह्वा ब्रह्मविलं व्रजेत् ॥ ४० ॥ तदा ब्रह्मार्गलं ब्रह्मन्दुर्भेद्यं
 त्रिदशैरपि । अनुत्प्रेष्य जिह्वामात्रं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥ एवं प्रविश्य
 कृत्वा ब्रह्मद्वारं प्रविश्यति । ब्रह्मद्वारे प्रविष्टः पुनरप्यज्ञानमाचरेत् ॥ ४२ ॥

भस्मजावालोपनिषत् ॥ ९० ॥

यस्मान्मयज्ञानकालाग्निस्वातिरिकास्तिताभ्रमम् ।

करोति भस्म निःशेषं तद्ब्रह्मैवास्मि केवलम् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ जावालो भुसुण्डः कैलासशिखरावासमोकारस्वरूपिणं
महादेवमुमार्थकृतशेखरं सोमसूर्याग्निनयनमनन्तेन्दुरविप्रभं व्याघ्रचर्माभ्वरधरं
मृगहस्तं भस्मोद्बलितविग्रहं तिर्यक्त्रिपुण्ड्रेखाविराजमानभालप्रदेशं स्मित-
संपूर्णपञ्चविधपञ्चाननं वीरासनारूढमप्रमेयमनाद्यनन्तं निष्कलं निर्गुणं शान्तं
निरक्षुण्णमनामयं हुम्फदकुर्वाणं शिवनामान्यनिशमुच्चरन्तं हिरण्यबाहुं हि-
रण्यरूपं हिरण्यवर्णं हिरण्यनिधिमद्वैतं चतुर्थं ब्रह्मविष्णुरुद्रातीतमेकमाशास्यं
अगवन्तं शिवं प्रणम्य मुहुर्मुहुरभ्यर्च्य श्रीफलदलैस्तेन भस्मना च नतोत्तमाङ्गः
कृताञ्जलिपुटः पप्रच्छाधीहि भगवन्वेदसारमुद्धृत्य त्रिपुण्ड्रविधिं यस्मादन्या-
नपेक्षमेव मोक्षोपलब्धिः । किं भस्मनो द्रव्यम् । कति स्थानानि । मनवोऽ-
प्यत्र के वा । कति वा तस्य धारणम् । के वात्राधिकारिणः । नियमस्तेषां
को वा । मामन्तेवासिनमनुशासयामोक्षमिति । अथ स होवाच भगवान्प-
रमेश्वरः परमकारुणिकः प्रमथान्सुरानपि सोऽन्वीक्ष्य पूतं प्रातरुदचाद्रोमयं
ब्रह्मपर्णे निधाय त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण शोषयेत् । येन केनापि तेजसा तस्मिन्-
गृह्योक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्य वह्निं तत्र तद्रोमयद्रव्यं निधाय सोमाय स्वाहेति
मन्त्रेण ततस्त्रिलोकीभिः साज्यैर्जुहुयात् । अयं तेनाष्टोत्तरसहस्रं सार्धमेतद्वा ।
तत्राज्यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति । तेन न पापं शृणोति । तद्धोममन्त्रस्यम्ब-
कमित्येव अन्ते स्विष्टकृत्पूर्णहुतिस्तेनैवाष्टदिक्षु बलिप्रदानम् । तद्भस्म
गायत्र्या संप्रोक्ष्य तद्वैसे राजते तात्रे मृण्मये वा पात्रे निधाय रुद्रमन्त्रैः पुनर-
भ्युक्ष्य शुद्धदेशे संस्थापयेत् । ततो भोजयेद्ब्राह्मणान् । ततः स्वयं पूतो
भवति । मानसोक इति सद्यो जातमित्यादि पञ्चब्रह्ममन्त्रैर्भस्म संगृह्या-
ग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म
देवा भस्म ऋषयो भस्म । सर्वं ह ॥ पूतोऽयं भस्म पूतं पावनं नमामि सद्यः
समस्तावशासकमिति शिरसाभिनम्य । पूते वामहस्ते वामदेवायेति निधाय

द्यम्बकमिति संप्रोक्ष्य शुद्धं शुद्धेनेति संमृज्य संशोध्य तेनैवापादशीर्षमुद्ध-
 लनमाचरेत् । तत्र ब्रह्ममन्त्राः पञ्च । ततः शेषस्य भस्सनो विनियोगः ।
 तर्जनीमध्यमानामिकाभि रग्नेर्भस्मासीति भस्म संगृह्य मूर्धानमिति मूर्धन्यग्ने
 न्यसेत् । द्यम्बकमिति ललाटे नीलग्रीवायेति कण्ठे कण्ठस्य दक्षिणे पार्श्वे
 द्यायुषमिति वामेति कपोलयोः कालायेति नेत्रयोस्त्रिलोचनायेति श्रोत्रयोः
 शृण्वामेति वक्त्रे प्रव्रवामेति हृदये आत्मन इति नाभौ नाभिरिति मन्त्रेण
 दक्षिणभुजमूले भवायेति तन्मध्ये रुद्रायेति तन्मणिवन्धे शर्वायेति तत्कर-
 पृष्ठे पशुपतय इति वामबाहुमूले उग्रायेति तन्मध्ये अग्नेवधायेति तन्म-
 णिवन्धे दूरेवधायेति तत्करपृष्ठे नमो हव्य इति अंसे शंकरायेति यथाक्रमं
 भस्म धृत्वा सोमायेति शिवं नत्वा ततः प्रक्षाल्य तद्गन्धपापः पुनन्विति
 पिबेत् । नाधो त्याज्यं नाधो त्याज्यम् । एतन्मध्याह्नसायाह्नेषु त्रिकालेषु
 विधिवद्भस्मधारणमप्रमादेन कार्यम् । प्रमादात्पतितो भवति । ब्राह्मणानाम-
 यमेव धर्मोऽयमेव धर्मः । एवं भस्मधारणमकृत्वा नाक्षीयादापोऽज्ञमन्यद्वा ।
 प्रमादात्पृथक् भस्मधारणं न गायत्रीं जपेत् । न जुहुयादग्नौ तर्पयेद्देवानृ-
 षीन्पित्रादीन् । अयमेव धर्मः सनातनः सर्वपापनाशको मोक्षहेतुः ।
 नित्योऽयं धर्मो ब्राह्मणानां ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थयतीनाम् । एतदकरणे प्रत्य-
 वैति ब्राह्मणः । अकृत्वा प्रमादेनैतदष्टोत्तरशतं जलमध्ये स्थित्वा गायत्रीं
 जप्तुवोपोषणेनैकेन शुद्धो भवति । यतिर्भस्मधारणं त्यक्त्यैकदोषोप्य द्वादश-
 सहस्रप्रणवं जप्त्वा शुद्धो भवति । अन्यथेन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः पात-
 यति । भस्सनो यद्यभावस्तदा नर्यभस्मदाहनजन्यमन्यद्वावश्यं मन्त्रपूतं
 धार्यम् । एतत्प्रातः प्रयुञ्जानो रात्रिकृतात्पापात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात्प्र-
 मुच्यते । मध्यन्दिने माध्यन्दिनं कृत्वोपस्थानान्तं ध्यायमान आदित्याभि-
 मुखोऽधीयानः सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति । ब्राह्मण-
 वधात्पूतो भवति । गोवधात्पूतो भवति । अश्ववधात्पूतो भवति । गुरुवधा-
 त्पूतो भवति । मातृवधात्पूतो भवति । पितृवधात्पूतो भवति । त्रिकाल-
 मेतत्प्रयुञ्जानः सर्ववेदपारायणफलमवाप्नोति । सर्वतीर्थफलमश्नुते । अनप-
 शुबः सर्वमायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यम् । एवमावर्तये-
 दुपनिषदमित्याह भगवान्सदाशिवः साम्बः सदाशिवः साम्बः ॥
 इति भस्मजावालोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ भुसुण्डो जाबालो महादेवं साम्बं प्रणम्य पुनः प्रपच्छ किं नित्यं
ब्राह्मणानां कर्तव्यं यदकरणे प्रत्यवेति ब्राह्मणः । कः पूजनीयः । को वा
ध्येयः । कः स्तुतेयः । कथं ध्येयः । कः स्थातव्यमेतद्ब्रूहीति । सामासेन तं
होवाच । प्रागुदयाधिर्वर्त्य शौचादिकं ततः स्नायात् । मार्जनं रुद्रसूक्तैः ।
ततश्चाहतं वासः परिधत्ते पाप्मनोपहृत्यै । उच्यन्तमादित्यमभिध्यायभुङ्क्षुलि-
ताङ्गं कृत्वा यथास्थानं भस्मना त्रिपुण्ड्रं श्वेतेनैव रुद्राक्षान्कृतान्निभृयात् ।
नैतत् संमर्शः । तथान्ये । मूर्ध्नि चत्वारिंशत् । शिखायामेकं त्रयं वा । श्रोत्र-
योर्द्वादश । कण्ठे द्वात्रिंशत् । बाह्वोः षोडश षोडश । द्वादश द्वादश मणिब-
न्धयोः षट्षष्ट्यष्टयोः । ततः संध्यां सकुशोऽहरहरुपासीत । अग्निर्ज्योति-
रित्यादिभिरग्नौ जुहुयात् । शिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्य कुशोऽवासीनो ध्यात्वा
साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं हिरण्यवर्णं हिरण्यरूपं पशुपाशविमोचकं
पुरुषं कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतसं विरूपाक्षं विश्वरूपं सहस्राक्षं सहस्रशीर्षं प्रहस्रचरणं
विश्वतोबाहुं विश्वात्मानमेकमद्वैतं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं शिवमक्षरमव्ययं
हरिहरहिरण्यगर्भं स्रष्टारमप्रमेयमनाद्यन्तं रुद्रसूक्तैरभिषिच्य सितेन भस्मना
श्रीफलदलैश्च त्रिशालैराद्रैरनाद्रैर्वा । न तत्र संस्पर्शः । तत्पूजासाधनं कल्प-
येच्च नैवेद्यं । ततश्चैकादशगुणरुद्रो जपनीयः । एकगुणोऽनन्तः । षडक्षरो-
ऽष्टाक्षरो वा शैवो मन्त्रो जपनीयः । ओमित्यग्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात् ।
ततः शिवायेत्यक्षरत्रयम् । ओमित्यग्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात् । ततो
महादेवायेति पञ्चाक्षराणि । नातस्तारकः परमो मन्त्रः । तारकोऽयं पञ्चा-
क्षरः । कोऽयं शैवो मनुः । शैवस्तारकोऽयमुपदिश्यते मनुर्विमुक्ते शैवेभ्यो
जीवेभ्यः । शैवोऽयमेव मन्त्रस्तारयति । स एव ब्रह्मोपदेशः । ब्रह्म सोमोऽहं
पवनः सोमोऽहं पवते सोमोऽहं अनिता मतीनां सोमोऽहं जनिता पृथिव्याः
सोमोऽहं जनिताऽग्नेः सोमोऽहं जनिता सूर्यस्य सोमोऽहं जनितेन्द्रस्य
सोमोऽहं जनितो विष्णोः सोमोऽहमेव जनिता स यश्चन्द्रमसो देवानां
भूर्भुवःस्वरादीनां सर्वेषां लोकानां च विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं
जायमानं च यत्सर्वस्य सोमोऽहमेव जनिता विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः हिर-
ण्यगर्भादीनहं जायमानान्पश्यामि । यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु
यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेशैवमेव । अयमेवात्मान्तरात्मा ब्रह्मज्योतिर्व्य-
स्मान्न मत्तोऽन्यः परः । अहमेव परो विश्वाधिकः । मामेव विदित्वाऽमृतत्व-
मेति । तरति शोकम् । मामेव विदित्वा सांसृतिर्की रुजं द्वावयति । तस्मा-

दृढं रुद्रो यः सर्वेषां परमा गतिः । सोऽहं सर्वाकारः । यतो वा इमानि
 भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यमयन्त्यभिसंविशन्ति । तं
 मामेव विदित्वोपासीत । भूतेभिर्देवेभिरभिष्टुतोऽहमेव । भीषासाद्वातः पवते ।
 भीषोदेति सूर्यः भीषासादग्निश्चेन्द्रश्च । सोमोऽस्त एव योऽहं सर्वेषामधि-
 क्षाता सर्वेषां च भूतानां पालकः । सोऽहं पृथिवी । सोऽहमापः । सोऽहं तेजः ।
 सोऽहं वायुः । सोऽहं कालः । सोऽहं दिशः । सोऽहमात्मा । मयि सर्वं प्रति-
 ष्ठितम् । ब्रह्मविदामोति परम् । ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् । अचक्षु-
 र्विश्वतश्चक्षुरकणौ विश्वतः कणौऽपादो विश्वतः पादोऽपाणिर्विश्वतः पाणिर्हमशिरा
 विश्वतः शिरा विद्यामन्नैकसंश्रयो विद्यारूपो विद्यामयो विश्वेश्वरोऽहमजरो-
 ऽहम् । मामेवं विदित्वा संसृतिपाशात्प्रमुच्यते । तस्मादहं पशुपाशवि-
 मोचकः । पशवश्चामानवान्तं मध्यवर्तिनश्च युक्तात्मानो यतन्ते मामेव
 प्राप्नुम् । प्राप्यन्ते मां न पुनरावर्तन्ते । त्रिशूलगां काशीमधिश्रित्य त्यक्ता-
 सवोऽपि मध्येव संविशन्ति । प्रज्वलद्ब्रह्मिणं हविर्यथा न यजमानमा-
 खादयति तथासौ त्यक्त्वा कुणपं न तत्तादृशं पुरा प्राप्नुवन्ति । एष एवा-
 देशः एष उपदेशः । एष एव परमो धर्मः । सत्यात्तत्र कदाचिन्न प्रमदि-
 त्तथं तन्नोद्धूलनत्रिपुण्ड्राभ्याम् । तथा रुद्राक्षाद्यधारणात्तथा मद्दर्चनाच्च । प्रमा-
 देनापि नान्तर्देवसदने पुरीषं कुर्यात् । व्रतान्न प्रमदितव्यम् तद्धि तपस्तद्धि
 तपः काश्यामेव मुक्तिकामानाम् । न तत्त्याज्यं न तत्त्याज्यं मोचकोऽहमत्रिमुक्ते
 निवसताम् । नाविमुक्तात्परमं स्थानम् । नाविमुक्तात्परमं स्थानम् । काश्यां
 स्थानानि चत्वारि । तेषामभ्यर्हितमन्तर्गृहम् । तत्राप्यविमुक्तमभ्यर्हितम् ।
 तत्र स्थानानि पञ्च । तन्मध्ये शिवागारमभ्यर्हितम् । तत्र प्राच्यामैश्वर्यस्था-
 नम् । दक्षिणायां विचालनस्थानम् । पश्चिमायां वैराग्यस्थानम् । उत्तरायां
 ज्ञानस्थानम् । तस्मिन्त्यदन्तर्निर्लिप्तमव्ययमनाद्यन्तमशेषवेदेदान्तवेद्यमलि-
 र्देइयमनिरुक्तमप्रच्यवमाशास्यमद्वैतं सर्वाधारमनाधारमनिरीक्ष्यमहरहर्ब्रह्मवि-
 ष्णुपुरन्दराद्यमरवरसेवितं मामेव ज्योतिःस्वरूपं लिङ्गं मामेवोपासितव्यं
 तदेवोपासितव्यम् । नैव भावयन्ति तल्लिङ्गं भानुश्चन्द्रोऽग्निर्वायुः । स्वप्रकाशं
 विश्वेश्वराभिधं पातालमधितिष्ठति । तदेवाहम् । तत्रार्चितोऽहम् । साक्षाद-
 र्चितः त्रिशाखैर्बिल्वदलैर्दीप्तैर्वा योऽभिसंपूजयेन्मन्मना मय्याहितासुरमर्ये-
 वार्षिताखिलकर्मा भस्मदिग्घातो रुद्राक्षभूषणो मामेव सर्वभावेन प्रपन्नो मदे-

कपूजानिरतः संपूजयेत् । तदहमस्मि । तं मोक्षयामि संसृतिपाशात् । गहर-
 हरभ्यर्च्य विश्वेश्वरं लिङ्गं तत्र रुद्रसूक्तैरभिषिच्य तदेव स्नपनपयस्त्रिः पीत्वा
 अहापातकेभ्यो मुच्यते । न शोकमामोति । मुच्यते संसारबन्धनात् । तदन-
 भ्यर्च्य नाक्षीयात्फलमन्नमन्यद्वा । यदक्षीयाद्वेतोभक्षीभवेत् । नापः पिबेत् ।
 यदि पिबेत्पूयपो भवेत् । प्रमादेनैकदा त्वनभ्यर्च्य मां भुक्त्वा भोजयित्वा
 केशान्वापयित्वा गव्यानां पञ्च संगृह्योपोष्य जले रुद्रस्नानम् । जपेन्निवारं
 रुद्रानुवाकम् । आवित्यं पश्यन्नभिधायन्स्वकृतकर्मकृद्भैरवेव मन्त्रैः कुर्यान्मा-
 र्जनम् । ततो भोजयित्वा ब्राह्मणान्पूतो भवति । अन्यथा परेतो यातनाम-
 श्रुते । पत्रैः फलैर्वा जलैर्वान्यैर्वाभिपूज्य विश्वेश्वरं मां ततोऽक्षीयात् ।
 कापिलेन पथसाभिषिच्य रुद्रसूक्तेन मामेव शिवलिङ्गरूपिणं ब्रह्महत्यायाः
 पूतो भवति । कापिलेन दक्षामिषिच्य सुरापानात्पूतो भवति । कापिलेना-
 ज्येनाभिषिच्य स्वर्णस्त्रेयात्पूतो भवति । मधुनाभिषिच्य गुरुदारगमनात्पूतो
 भवति । सितया शर्करयाभिषिच्य सर्वजीववधात्पूतो भवति । क्षीरादिभि-
 रेतैरभिषिच्य सर्वानवामोति कामान् । इत्येकैकं महान्प्रस्थशतं महान्प्रस्थश-
 तमानैः शतैरभिपूज्य मुक्तो भवति संसारबन्धनात् । मामेव शिवलिङ्गरूपि-
 णमाद्र्यां पौर्णमास्यां वाऽमावास्यायां वा महाव्यतीपाते ग्रहणे संक्रान्तावभि-
 षिच्य तिलैः सतण्डुलैः सयवैः संपूज्य वित्तदलैरभ्यर्च्य कापिलेनाज्यान्वित-
 गन्धसारधूपैः परिकल्प्य दीपं नैवेद्यं साज्यमुपहारं कल्पयित्वा दद्यात्पुष्पा-
 ञ्जलिम् । एवं प्रयतोऽभ्यर्च्य मम सायुज्यमेति । शतैर्महाप्रस्थैरखण्डैस्तण्डु-
 लैरभिषिच्य चन्द्रलोककामश्चन्द्रलोकमवामोति । तिलैरेतावद्भिरभिषिच्य वा-
 युलोककामो वायुलोकमवामोति । माषैरेतावद्भिरभिषिच्य वरुणलोककामो व-
 रुणलोकमवामोति । यवैरेतावद्भिरभिषिच्य सूर्यलोककामः सूर्यलोकमवामोति ।
 घृतैरेतावद्भिर्द्विगुणैरभिषिच्य स्वर्गलोककामः स्वर्गलोकमवामोति । पृतैरेताव-
 द्भिश्चतुर्गुणैरभिषिच्य ब्रह्मलोककामो ब्रह्मलोकमवामोति । पृतैरेतावद्भिः शत-
 गुणैरभिषिच्य चतुर्जालं ब्रह्मकोशं यन्मृश्यानां पश्यति । तमतीत्य सल्लोककामो
 मल्लोकमवामोति नान्यं मल्लोकात्परम् । यमवाप्य न शोचति । न स पुनरा-
 वर्तते न स पुनरावर्तते । लिङ्गरूपिणं मां संपूज्य चिन्तयन्ति योगिनः सिद्धाः
 सिद्धिं गताः । यजन्ति यज्वानः । मामेव स्तुवन्ति वेदाः साङ्गाः सोपतिषद्ः
 सेतिहासाः । न मत्तोऽन्यदहमेव सर्वम् । मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । ततः कादर्या

प्रयत्नेरेवाहमन्वहं पूज्यः । तत्र गणा रौद्रानना नानामुखा नानाशस्त्रधारिणो
 नानारूपधरा नानाचिह्निताः । ते सर्वे भस्मादिग्धाङ्गा रुद्राक्षभरणाः कृताञ्ज-
 लयो नित्यमभिधायन्ति । तत्र पूर्वस्यां दिशि ब्रह्मा कृताञ्जलिहर्निशं मासु-
 पास्ते । दक्षिणस्यां दिशि विष्णुः कृत्वैव मूर्धाञ्जलिं मासुपास्ते । प्रती-
 च्यामिन्द्रः सन्नताङ्ग उपास्ते । उदीच्यामग्निकायमुमानुरक्ता हेमाङ्गवि-
 भूषणा हेमवस्त्रा मासुपासते मामेव वेदाश्चतुर्मूर्तिधराः । दक्षिणायामं
 दिशि मुक्तिस्थानं तन्मुक्तिमण्डपसंज्ञितम् । तत्रानेकगणाः पालकाः
 सायुधाः पापघातकाः । तत्र ऋषयः शांभवाः पाशुपता महाशैवा वेदावतंसं
 शैवं पञ्चाक्षरं जपन्तस्त्वारकं सप्रणवं मोदमानास्तिष्ठन्ति । तत्रैका रत्नवेदिका ।
 तत्राहमासीनः काश्यां त्यक्तकुणपाण्ड्यवानानीय स्वस्याङ्के संनिवेश्य भसित-
 रुद्राक्षभूषितानुपस्पृश्य मा भूदेतेषां जन्म मृतिश्चेति तारकं शैवं मनुमुपदि-
 शामि । ततस्ते मुक्ता मामनुविशन्ति विज्ञानमयेनाङ्गेन । न पुनरावर्तन्ते
 दुताशनप्रतिष्ठं हविरिव तत्रैव मुक्त्यर्थमुपदिश्यते शैवोऽयं मन्त्रः पञ्चाक्षरः ।
 तन्मुक्तिस्थानम् । तत ओंकाररूपम् । ततो मदर्पितकर्मणां मदाविष्टचेतसां मद्रू-
 पता भवति । नान्येषामियं ब्रह्मविद्येयं ब्रह्मविद्या । मुमुक्षवः काश्यामेवासीना
 वीर्यवन्तो विद्यावन्तः । विज्ञानमयं ब्रह्मकोशम् । चतुर्जालं ब्रह्मकोशम् ।
 यन्मृत्युर्नावपश्यति । यं ब्रह्मा नावपश्यति । यं विष्णुर्नावपश्यति । यमि-
 न्द्राग्नी नावपश्येताम् । यं वरुणादयो नावपश्यन्ति । तमेव तत्तेजःशुष्ट-
 विदभावं हैममुमां संश्लिष्य वसन्तं चन्द्रकोटिसमग्रं चन्द्रकिरीटं सोम-
 सूर्याग्निनयनं भूतिभूषितविग्रहं शिवं मामेवमभिधायन्तो मुक्तकिल्बिषा-
 रत्यक्तबन्धा मर्येव लीना भवन्ति । ये चान्ये काश्यां पुरीषकारिणः प्रति-
 ग्रहरतास्त्यक्तभस्माधारणास्त्यक्तरुद्राक्षधारणास्त्यक्तसोमवारव्रतास्त्यक्तग्रहयागा-
 रत्यक्तविश्वेश्वरार्चनास्त्यक्तपञ्चाक्षरजपास्त्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरादियातनां
 नानाविधां काश्यां परेता भुक्त्वा ततः शुद्धा मां प्रपद्यन्ते च । अन्तर्गृहे
 रेतो मूत्रं पुरीषं वा विसृजन्ति तदा तेन सिञ्चन्ते पितृन् । तमेव पापकारिणं
 मृतं पश्यन्नीललोहितो भैरवस्त्रं पातयत्यस्त्रमण्डले ज्वलज्वलनकुण्डेष्वन्ये-
 ण्वपि । ततश्चाप्रमादेन निवसेदप्रमादेन निवसेत्काश्यां लिङ्गरूपिण्यामित्यु-
 पनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति भस्मजाबालोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ मद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति भस्मजाबालोपनिषत्समाप्ता ॥ १० ॥

रुद्राक्षजाबालोपनिषत् ॥ ९१ ॥

रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्यबलम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ हैनं कालाग्निरुद्रं भुमुण्डः पप्रच्छ कथं रुद्राक्षोत्पत्तिः । तद्धारणात्किं फलमिति । तं होवाच भगवान्कालाग्निरुद्रः । त्रिपुरवधार्थमहं विमीलिताक्षोऽभवम् । तेभ्यो जलबिन्दवो भूमौ पतितास्ते रुद्राक्षा जाताः । सर्वानुग्रहार्थाय तेषां नामोच्चारमात्रेण दशगोप्रदानफलं दर्शनस्पर्शनाभ्यां द्विगुणं फलमत ऊर्ध्वं वक्तुं न शक्नोमि । तत्रैते श्लोका भवन्ति । कस्मिंस्थितं तु किं नाम कथं वा धार्यते नरैः । कतिमेदमुखान्यत्र कर्मत्रैर्धार्यते कथम् ॥ १ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरुन्मीलितं मया । भूमावक्षिपुटाभ्यां तु पतिता जलबिन्दवः ॥ २ ॥ तत्राश्रुबिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः । स्थावर-त्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात् ॥ ३ ॥ भक्तानां धारणात्पापं दिवारात्रि-कृतं हरेत् । लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तद्धारणान्नवेत् ॥ ४ ॥ तस्य कोटिशतं पुण्यं लभते धारणात्तरः । लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ ५ ॥ तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् । धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठ-मेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥ बदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः । अधमं चण-मात्रं स्यात्प्रक्रियैषा मयोच्यते ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया । वृथा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ८ ॥ श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः । पीतास्तु वैश्या विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्रा उदाहृताः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणो विभृत्याच्छ्वेतान्नक्तात्राजा तु धारयेत् । पीतान्श्वै-श्यस्तु विभृत्यात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥ १० ॥ समाः स्त्रिधा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः । कृमिदष्टं मिश्रमिन्नं कण्टकैर्हनिमेव च ॥ ११ ॥ व्रणयुक्तमयुक्तं च पद्मरुद्राक्षा विवर्जयेत् । स्वयमेव कृतं द्वारं रुद्राक्षं स्यादि-होत्तमम् ॥ १२ ॥ यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् । समान्निष्ठरधान्द-वान्स्थूलान्क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥ १३ ॥ सर्वगात्रेण सौम्येन सामान्यानि विचक्षणः । निकषे हेमरेखाभा यस्य रेखा प्रदृश्यते ॥ १४ ॥ तदक्षमुत्तमं विद्यात्तद्वार्यं शिवपूजकैः । शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिद्यतं शिरसा वहेत् ॥ १५ ॥

षट्त्रिंशत् गले दध्याद्वाहोः षोडश षोडश । मणियन्त्रे द्वादशैव स्कन्धे पञ्च-
 शतं वहेत् ॥ १६ ॥ अष्टोत्तरशतैर्मालामुपवीतं प्रकल्पयेत् । द्विस्रं त्रिस्रं
 चापि सराणां पञ्चकं तथा ॥ १७ ॥ सराणां सप्तकं वापि विभृथास्कण्ठ-
 देशतः । मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेऽपि वा ॥ १८ ॥ केयूरकटके सूत्रं
 कुक्षिवन्धे विशेषतः । सुस्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥ १९ ॥
 त्रिंशत् त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते । सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं मेदेन धारयेत्
 ॥ २० ॥ शिरसीशानमंत्रेण कण्ठे तत्पुरुषेण तु । अघोरेण गले धार्यं तेनैव
 हृदयेऽपि च ॥ २१ ॥ अघोरबीजमंत्रेण करयोर्धारयेत्सुधीः । पञ्चाशदक्ष-
 ग्रथितान्व्योमव्याप्यपि चोदरे ॥ २२ ॥ पञ्च ब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमाला पञ्च सप्त
 च । ग्रथित्वा मूलमंत्रेण सर्वाण्यक्षाणि धारयेत् ॥ २३ ॥ अथ हैनं भग-
 वन्तं कालाभिरुद्रं सुसुण्डः पप्रच्छ रुद्राक्षाणां मेदेन यदक्षं यत्स्वरूपं यत्फा-
 लमिति । तत्स्वरूपं मुखयुक्तमरिष्टनिरसनं कामाभीष्टफलं ब्रूहीति होवाच ।
 तत्रैते श्लोका भवन्ति—एकवक्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् । तद्धारणा-
 त्तरे तत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ द्विवक्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरा-
 त्मकम् । धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥ २ ॥ त्रिमुखं चैव रुद्रा-
 क्षमग्नित्रयस्वरूपकम् । तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुभ्यति नित्यदा ॥ ३ ॥ चतु-
 मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्रस्वरूपकम् । तद्धारणाच्चतुर्वक्रः प्रीयते तस्य नित्यद-
 ॥ ४ ॥ पञ्चवक्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम् । पञ्चवक्रः स्वयं ब्रह्म पुंहत्या
 च व्यपोहति ॥ ५ ॥ षड्वक्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम् । तद्धारणा-
 न्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ६ ॥ मतिविज्ञानसंपत्तिशुद्धये धारये-
 त्सुधीः । जिनायकाधिदैवं च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७ ॥ सप्तवक्रं तु रुद्राक्षं
 सप्तमालाधिदैवतम् । तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥
 महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्धारणतः सदा । अष्टवक्रं तु रुद्राक्षमष्टमान्नाधि-
 दैवतम् ॥ ९ ॥ नववक्रप्रियं चैव गङ्गाप्रीतिकरं तथा । तद्धारणादिमे प्रीता
 भवेयुः सप्तवादिनः ॥ १० ॥ नववक्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम् । तस्य
 धारणामात्रेण प्रीयन्ते नव शक्तयः ॥ ११ ॥ दशवक्रं तु रुद्राक्षं दशदैवत्य-
 मीरितम् । देशाप्रशान्तिजनकं धारणाज्ञान संशयः ॥ १२ ॥ एकादशमुखं
 त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम् । तदिदं दैवतं प्राहुः सदा सौभाग्यवर्धनम् ॥ १३ ॥

रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम् । द्वादशादित्यरूपं च विभर्त्येव हि
तत्परम् ॥ १४ ॥ त्रयोदशमुखं त्वक्षं कामदं सिद्धिदं शुभम् । तस्या धारण-
मात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥ १५ ॥ चतुर्दशमुखं वाक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदारोपयमाप्नुयात् ॥ १६ ॥ मध्यं मांसं च लघु-
पलाण्डं शिशुमेव च । श्लेष्मातकं विद्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः ॥ १७ ॥ ग्रहणे
विपुचे चैवमयने संक्रमेऽपि च । दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च । रुद्रा-
क्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥ रुद्राक्षमूलं तद्ब्रह्मा तन्नालं विष्णुरेव
च । तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्तद्धिन्दुः सर्वदेवताः ॥ १९ ॥ इति । अथ कालाग्निरुद्रं
भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छाधीहि भगवन्न्रुद्राक्षधारणविधिम् । तस्मि-
न्समये निदाघजडभरतदत्तात्रेयकात्यायनभरद्वाजंकपिलवसिष्ठपिप्पलादादयश्च
कालाग्निरुद्रं परिसमेलोचुः । अथ कालाग्निरुद्रः किमर्थं भवतामागमनमिति
होवाच । रुद्राक्षधारणविधिं वै सर्वे श्रोतुमिच्छामह इति । अथ कालाग्नि-
रुद्रः प्रोवाच । रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते । अथ
सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुलीकरोति । तन्नयनाज्जाता
रुद्राक्षा इति होवाच । तस्माद्ब्रुद्राक्षत्वमिति कालाग्निरुद्रः प्रोवाच । तद्ब्रुद्राक्षे
त्राग्विषये कृते दशगोप्रदानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते । स एष भस्म-
ज्योती रुद्राक्ष इति । तद्ब्रुद्राक्षं करेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदान-
फलं भवति । तद्ब्रुद्राक्षे कर्णयोर्धार्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति ।
एकादशरुद्रत्वं च गच्छति । तद्ब्रुद्राक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदान-
फलं भवति । एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच ।
य इमां रुद्राक्षजाबालोपनिषदं नित्यमधीते बालो वा युवा वा वेद स महा-
न्भवति । स गुरुः सर्वेषां मन्त्राणामुपदेष्टा भवति एतैरेव होमं कुर्यात् ।
एतैरेवार्चनम् । तथा रक्षोघ्नं मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां
वा बध्नीत । ससद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते । तस्माच्छूद्रया यां
कांचिद्वां दद्यात्सा दक्षिणा भवति । य इमामुपनिषदं ब्राह्मणः सायमधी-
यानो दिवसकृतं पापं नाशयति । मध्याह्नेऽधीयानः षड्जन्मकृतं पापं
नाशयति । सायं प्रातः प्रयुज्जानोऽनेकजन्मकृतं पापं नाशयति । षट्सहस्र-
लक्षगायत्रीजपफलमवाप्नोति । ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयगुरुदारगमनतत्सं-
योगपातकेभ्यः पूतो भवति । सर्वतीर्थफलमश्नुते । पतितसंभाषणात्पूतो

भवति । पङ्क्तिस्तसहस्रपावनो भवति । शिवसायुज्यमवाप्नोति । न च पुन-
रावर्तते न च पुनरावर्तत इत्योसत्यमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इति रुद्राक्षजाबालोपनिषत्समाप्ता ॥ ९१ ॥

गणपत्युपनिषत् ॥ ९२ ॥

यं नत्वा मुनयः सर्वे निर्विघ्नं यान्ति तत्पदम् ।

गणेशोपनिषद्वेद्यं तद्ब्रह्मैवास्मि सर्वगम् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ नमस्ते गणपतये । त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि । त्वमेव
केवलं कर्तासि । त्वमेव केवलं धर्तासि । त्वमेव केवलं हर्तासि ।
त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि । त्वं साक्षादात्मासि नित्यं । ऋतं वच्मि ।
सत्यं वच्मि । अव त्वं माम् । अव वक्तारम् । अव श्रोतारम् । अव
दातारम् । अव धातारम् । अवानूचानमव शिष्यम् । अव पश्चात्तात् । अव
पुरस्तात् । अव चोत्तरात्तात् । अव दक्षिणात्तात् । अव चोर्ध्वात्तात् । अवा-
धरात्तात् । सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात् । त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः ।
त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः । त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि । त्वं प्रत्यक्षं
ब्रह्मासि । त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि । सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते ।
सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति । सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेप्यति । सर्वं जगदिदं
त्वयि प्रत्येति । त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः । त्वं चत्वारि वाक्पदाणि ।
त्वं गुणत्रयातीतः । त्वं कालत्रयातीतः । त्वं देहत्रयातीतः । त्वं मूलाधार-
स्थितोऽसि नित्यम् । त्वं शक्तित्रयात्मकः । त्वां योगिनो ध्यायन्ति
नित्यम् । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं
सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवःसुवरोम् । गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं
तदनन्तरम् । अनुस्वारः परतरः । अर्धेन्दुलसितम् ॥ १ ॥ तारेण रुद्रम् । एत-

चव मनुस्वरूपम् । गकारः पूर्वरूपम् । अकारे मध्यमरूपम् । अनुस्वारश्चा-
 न्यरूपम् । बिन्दुरुत्तररूपम् । नादः संधानम् । संहिता संधिः । सैषा गणेश-
 विद्या । गणक ऋषिः निचृद्वायत्री छन्दः । श्रीमहागणपतिर्देवता । ॐ गम् ।
 (गणपतये नमः) । एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो देवन्ती
 प्रचोदयात् ॥ एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम् । अभयं वरदं हस्तै-
 र्विभ्राणं मूषकध्वजम् ॥ रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम् । रक्तगन्धा-
 नुलिसाङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥ भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम् ।
 आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ॥ एवं ध्यायति यो नित्यं स
 योगी योगिनां वरः । नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये
 नमस्तोस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये
 नमो नमः ॥ एतदथर्वशिरो योऽधीते स ब्रह्मभूयाय कल्पते । सर्वविघ्नैर्न
 बाध्यते । स सर्वतः सुखमेधते । स पञ्च महापातकोपपातकात्प्रमु-
 च्यते । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रि-
 कृतं पापं नाशयति । सायंप्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति । धर्मार्थ-
 काममोक्षं च विन्दति । इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम् । यो यदि
 मोहाद्वाहस्यति स पापीयान्भवति । सहस्रावर्तनाद्यं यं काममधीते तं
 तमनेन साधयेत् । अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति । चतुर्ध्या-
 मनश्चक्षुपति स विद्यावान्भवति । इत्यथर्वणवाक्यम् । ब्रह्माद्याचरणं विद्यात् ।
 न बिभेति कदाचनेति । यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति । यो
 लाजैर्यजति स यशोवान्भवति । स मेधावान्भवति । यो मोदकसहस्रेण
 यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति । यः साज्यसमिद्धिर्यजति स सर्वं लभते
 स सर्वं लभते । अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति । सूर्यग्रहे
 महानद्यां प्रतिमासं निधौ वा जठ्वा सिद्धमन्त्रो भवति । महाविघ्नात्प्रमुच्यते ।
 महापापात्प्रमुच्यते । महादोषात्प्रमुच्यते । स सर्वविघ्नवति स सर्वविघ्नवति ।
 य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति गणपत्युपनिषत्समाप्ता ॥ १२ ॥

श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् ॥ ९३ ॥

यमाद्यष्टाङ्गयोगेद्धं ब्रह्ममात्रप्रबोधतः ।

योगिनो यत्पदं यान्ति तत्कैवल्यपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ दत्तात्रेयो महायोगी भगवान्भूतभावनः । चतुर्भुजो महाविष्णु-
योगसाम्राज्यदीक्षितः ॥ १ ॥ तस्य शिष्यो मुनिकरः सांकृतिर्नाम भक्तिमान् ।
प्रच्छ गुरुमेकान्ते प्राञ्जलिर्विनयान्वितः ॥ २ ॥ भगवन्मूहि मे योगं साष्टाङ्गं
संप्रपञ्चकम् । येन विज्ञातमात्रेण जीवन्मुक्तो भवाम्यहम् ॥ ३ ॥ सांक्रुते
शृणु वक्ष्यामि योगं साष्टाङ्गदर्शनम् । यमश्च नियमश्चैव तथैवासनमेव च
॥ ४ ॥ प्राणायामस्तथा ब्रह्मन्प्रत्याहारस्ततः परम् । धारणा च तथा ध्यानं
समाधिश्चाष्टमं मुने ॥ ५ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् । क्षमा
दृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥ ६ ॥ वेदोक्तेन प्रकारेण विना सत्यं
तपोधन । कायेन मनसा वाचा हिंसाऽहिंसा न चान्यथा ॥ ७ ॥ आत्मा
सर्वगतोऽच्छेद्यो न ग्राह्य इति मे मतिः । सा चाहिंसा वरा प्रोक्ता मुने
वेदान्तवेदिभिः ॥ ८ ॥ चक्षुरादीन्निग्रयैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर । तस्यैवोक्ति-
र्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ॥ ९ ॥ सर्वं सत्यं परं ब्रह्म न चान्यदिति
या मतिः । तच्च सत्यं वरं प्रोक्तं वेदान्तज्ञानपारगैः ॥ १० ॥ अन्यदीये तृणे
रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपि च । मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेयं विदुर्बुधाः ॥ ११ ॥
आत्मन्यनात्मभावेन व्यवहारविवर्जितम् । यत्तदस्तेयमित्युक्तमात्मविद्धिर्म-
हामते ॥ १२ ॥ कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम् । ऋतौ भार्या
तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥ १३ ॥ ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परन्तप
॥ १४ ॥ स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा । अनुज्ञा या दया सैव
प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः ॥ १५ ॥ पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम् ।
एकरूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥ कायेन मनसा वाचा शत्रुभिः
परिपीडिते । बुद्धिक्षोभनिवृत्तिर्या क्षमा सा मुनिपुङ्गव ॥ १७ ॥ वेदादेव
विनिर्मोक्षः संसारस्य न चान्यथा । इति विज्ञाननिष्पत्तिर्द्युतिः प्रोक्ता हि
वैदिकैः । अहमात्मा न चान्योऽस्मीत्येवमप्रच्युता मतिः ॥ १८ ॥ अल्पमृष्टा-

शनाभ्यां च चतुर्थांशशेषकम् । तस्माद्योगानुगुण्येन भोजनं मित-
भोजनम् ॥ १९ ॥ स्वदेहमलनिर्मोक्षो मृज्जलाभ्यां महामुने । यत्तच्छौचं भवे-
द्वाह्यं मानसं मननं विदुः । अहं शुद्ध इति ज्ञानं शौचमाहुर्मनीषिणः ॥ २० ॥
अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः । उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं
विधीयते ॥ २१ ॥ ज्ञानशौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः । स मूढः
काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्णाति सुव्रत ॥ २२ ॥ ज्ञानामृतेन वृषस्य कृतकृत्यस्य
योगिनः । न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ २३ ॥ लोकत्र-
येऽपि कर्तव्यं किञ्चिन्नास्त्यात्मवेदिनाम् ॥ २४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुनेऽहिं-
सादिसाधनैः । आत्मानमक्षरं ब्रह्म विद्धि ज्ञानात्तु वेदनात् ॥ २५ ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तपः संतोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् । सिद्धान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च
जपो व्रतम् ॥ १ ॥ एते च नियमाः प्रोक्तास्तान्वक्ष्यामि क्रमाच्छृणु ॥ २ ॥
वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते
बुधैः ॥ ३ ॥ को वा मोक्षः कथं तेन संसारं प्रतिपन्नवान् । इत्यालोकनमर्थ-
ज्ञातृपः शंसन्ति पण्डिताः ॥ ४ ॥ यदृच्छालाभतो नित्यं प्रीतिर्यां जायते
नृणाम् । तत्संतोषं विदुः प्राज्ञाः परिज्ञानैकतत्पराः ॥ ५ ॥ ब्रह्मादिलोकपर्य-
न्ताद्विरक्त्या यल्लभेत्प्रियम् । सर्वत्र विगतस्नेहः संतोषं परमं विदुः । श्रौते
स्मार्ते च विश्वासो यत्तदास्तिक्यमुच्यते ॥ ६ ॥ न्यायार्जितधनं श्रान्ते श्रद्धया
वैदिके जने । अन्यद्वा यत्प्रदीयन्ते तद्दानं प्रोच्यते मया ॥ ७ ॥ रागाद्यपेतं
हृदयं वागदुष्टानृतादिना । हिंसादिरहितं कर्म यत्तदीश्वरपूजनम् ॥ ८ ॥ सत्यं
ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं ध्रुवम् । प्रत्यगित्यवगन्तव्यं वेदान्तश्रवणं बुधाः
॥ ९ ॥ वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यन्नवेत् । तस्मिन्भवति या लज्जा
हीः सैवेति प्रकीर्तिता । वैदिकेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥ १० ॥
गुरुणा चोपदिष्टोऽपि तत्र संबन्धवर्जितः । वेदोक्तेनैव मार्गेण मन्त्राभ्यासो
त्तपः स्मृतः ॥ ११ ॥ कल्पसूत्रे तथा वेदे धर्मशास्त्रे पुराणके । इतिहासे च
वृत्तिर्यां स जपः प्रोच्यते मया ॥ १२ ॥ जपस्तु द्विविधः प्रोक्तो वाचिको
मानसस्तथा ॥ १३ ॥ वाचिकोपांशुरुच्चैश्च द्विविधः परिकीर्तितः । मानसो

मननध्यानमेदाद्वैविध्यमाश्रितः ॥ १४ ॥ उच्चैर्जपादुपांशुश्च सहस्रगुणमुच्यते ।
मानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुणमुच्यते ॥ १५ ॥ उच्चैर्जपश्च सर्वेषां यथोक्त-
फलदो भवेत् । नीचैः श्रोत्रेण चेन्मन्त्रः श्रुतश्चेन्निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरसिंहासने तथा । अद्रं मुक्तासनं चैव मयूरास-
नमेव च ॥ १ ॥ सुखासनसमाख्यं च नवमं मुनिपुङ्गव । जानूर्वोरन्तरे
कृत्वा सम्यक् पादतले उभे ॥ २ ॥ समग्रीवशिरःकायः स्वस्तिकं नित्यमभ्य-
सेत् । सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् ॥ ३ ॥ दक्षिणेऽपि तथा
सव्यं गोमुखं तत्प्रचक्षते । अङ्गुष्ठावधि गृहीयाद्वस्त्राभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥ ४ ॥
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतलद्वयम् । पद्मासनं भवेत्प्राज्ञ सर्वरोगभया-
पहम् ॥ ५ ॥ दक्षिणेतरपादं तु दक्षिणोरुणि विन्यसेत् । ऋजुकायः समा-
सीनो वीरासनमुदाहृतम् ॥ ६ ॥ गुल्फौ तु वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः
क्षिपेत् । पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम् । अद्रासनं भवेदेत-
द्विषरोगविनाशनम् ॥ ७ ॥ निपीड्य सीवनीं सूक्ष्मं दक्षिणेतरगुल्फतः । वामं
ग्राम्येन गुल्फेन मुक्तासनमिदं भवेत् ॥ ८ ॥ मेढ्रादुपरि निक्षिप्य सव्यं
गुल्फं तथोपरि । गुल्फान्तरं च संक्षिप्य मुक्तासनमिदं मुने ॥ ९ ॥ कूर्परग्रे
मुनिश्रेष्ठ निक्षिपेन्नाभिपार्श्वयोः । भूम्यां पाणितलद्वन्द्वं निक्षिप्यैकाग्रमानसः
॥ १० ॥ समुन्नतशिरःपादो दण्डवद्बोद्धि संस्थितः । मयूरासनमेतत्स्वात्स-
र्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ येन केन प्रकारेण सुखं धैर्यं च जायते । तत्सु-
खासनमित्युक्तमशक्तस्तत्समाश्रयेत् ॥ १२ ॥ आसनं विजितं येन जितं तेन
जगन्नयम् । अनेन विधिना युक्तः प्राणायामं सदा कुरु ॥ १३ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

शरीरं तावदेव स्यात्षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् । देहमध्ये शिखिस्थानं तसजा-
म्बूनदग्रभम् ॥ १ ॥ त्रिकोणं मनुजानां तु सत्यमुक्तं हि सांक्रुते । गुदासु
अङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रासु अङ्गुलादधः ॥ २ ॥ देहमध्ये मुनिप्रोक्तमनुजानीहि
सांक्रुते । कन्दस्थानं मुनिश्रेष्ठ मूलाधारात्त्रयाङ्गुलम् ॥ ३ ॥ चतुरङ्गुलमाया-
मविस्तारं मुनिपुङ्गव । कुकुटाण्डसमाकारं भूपितं तु त्वगादिभिः ॥ ४ ॥
वन्मध्ये नाभिरित्युक्तं योगज्ञैर्मुनिपुङ्गव । कन्दमध्यस्थिता नाडी सुपुन्नेनि
प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥ तिष्ठन्ति परितस्तस्या नाड्यो हि मुनिपुङ्गव । द्विसप्ततिस-

हस्ताणि तासां मुख्याश्चतुर्दश ॥ ६ ॥ सुपुन्ना पिङ्गला तद्वदिडा चैव सर-
स्वती । पूषा च वरुणा चैव हस्तिजिह्वा यशस्विनी ॥ ७ ॥ अलम्बुसा कुहू-
श्चैव विश्वोदरी तपस्विनी । शङ्खिनी चैव गान्धारा इति मुख्याश्चतुर्दश ॥ ८ ॥
आसां मुख्यतमास्तिज्ञस्तिष्वेकोत्तमोत्तमा । ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता मुने
वेदान्तवेदिभिः ॥ ९ ॥ पृष्ठमध्यस्थितेनास्त्रा वीणादण्डेन सुव्रत । सह
अस्तकपर्यन्तं सुपुन्ना सुप्रतिष्ठिता ॥ १० ॥ नाभिकन्दादधः स्थानं कुण्डल्या
व्यङ्गुलं मुने । अष्टप्रकृतिरूपा सा कुण्डली मुनिसत्तम ॥ ११ ॥ यथावद्वायु-
चेष्टां च जलान्नादीनि नित्यशः । परितः कन्दपार्श्वेषु निरुध्यैव सदा स्थिता
॥ १२ ॥ स्वमुखेन संमावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं मुने । सुपुन्नाया इडा सव्ये
दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥ १३ ॥ सरस्वती कुहूश्चैव सुपुन्नापार्श्वयोः स्थिते ।
गान्धारा हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपार्श्वयोः ॥ १४ ॥ पूषा यशस्विनी चैव
पिङ्गला पृष्ठपूर्वयोः । कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरी स्थिता ॥ १५ ॥
यशस्विन्याः कुहोर्मध्ये वरुणा सुप्रतिष्ठिता । पूषायाश्च सरस्वत्या मध्ये
प्रोक्ता यशस्विनी ॥ १६ ॥ गान्धारायाः सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता च शङ्खिनी ।
अलम्बुसा स्थिता पायुपर्यन्तं कन्दमध्यगा ॥ १७ ॥ पूर्वभागे सुपुन्नाया
राकायाः संस्थिता कुहूः । अधश्चोर्ध्वं स्थिता नाडी याम्यनासान्तमिष्यते
॥ १८ ॥ इडा तु सव्यनासान्तं संस्थिता मुनिपुङ्गव । यशस्विनी च वामस्य
पादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते ॥ १९ ॥ पूषा वामाक्षिपर्यन्ता पिङ्गलायास्तु पृष्ठतः ।
प्रयस्विनी च याम्यस्य कर्णान्तं प्रोच्यते ब्रुधैः ॥ २० ॥ सरस्वती तथा चोर्ध्व-
गता जिह्वा तथा मुने । हस्तिजिह्वा तथा सव्यपादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते ॥ २१ ॥
शङ्खिनी नाम या नाडी सव्यकर्णान्तमिष्यते । गान्धारा सव्यनेत्रान्ता प्रोक्ता
वेदान्तवेदिभिः ॥ २२ ॥ विश्वोदराभिघ्ना नाडी कन्दमध्ये व्यवस्थिता ।
प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च ॥ २३ ॥ नागः कूर्मश्च कृकरो
देवदत्तो धनंजयः । एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवः ॥ २४ ॥ तेषु
प्राणादयः पञ्च मुख्याः पञ्चसु सुव्रत । प्राणसंज्ञस्तथापानः पूज्यः प्राणस्त-
योर्मुने ॥ २५ ॥ आस्यनासिकयोर्मध्ये नाभिमध्ये तथा हृदि । प्राणसंज्ञो-
ऽनिलो नित्यं वर्तते मुनिसत्तम ॥ २६ ॥ अपानो वर्तते नित्यं रुदमध्योरु-
जानुषु । उदरे सकले कठ्यां नाभौ जङ्घे च सुव्रत ॥ २७ ॥ व्यानः श्रोत्रा-

क्षिमध्ये च ककुब्धां गुल्फयोरपि । प्राणस्थाने गले चैव वर्तते मुनिपुङ्गव ॥ २८ ॥ उदानसंज्ञो विज्ञेयः पादयोर्हस्तयोरपि । समानः सर्वदेहेषु व्याप्य तिष्ठत्यसंशयः ॥ २९ ॥ नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः । निःश्वासोच्छ्वासकासाश्च प्राणकर्म हि सांकृते ॥ ३० ॥ अपानाख्यस्य वायोस्तु विष्णुमूत्रादिविसर्जनम् । समानः सर्वसामीप्यं करोति मुनिपुङ्गव ॥ ३१ ॥ उदान ऊर्ध्वगमनं करोत्येव न संशयः । व्यानो विवादकृतप्रोक्तो मुने वेदान्तवेदिभिः ॥ ३२ ॥ उद्गारादिगुणः प्रोक्तो व्यानाख्यस्य महामुने । धनं जयस्य शोभादि कर्म प्रोक्तं हि सांकृते ॥ ३३ ॥ निमीलनादि कर्मस्य क्षुधा तु कृकरस्य च । देवदत्तस्य विप्रेन्द्र तन्द्रीकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ३४ ॥ सुपुञ्जायाः शिवो देव इडाया देवता हरिः । पिङ्गलाया विरञ्चिः स्यात्सरस्वत्या विराणमुने ॥ ३५ ॥ पूषाधिदेवता प्रोक्ता वरुणा वायुदेवता । हस्तिजिह्वाभिधायस्तु वरुणो देवता भवेत् ॥ ३६ ॥ यशस्विन्या मुनिश्रेष्ठ भगवान्भास्करस्तथा । अलम्बुसाया अम्बवात्मा वरुणः परिकीर्तितः ॥ ३७ ॥ कुहोः क्षुदेवता प्रोक्ता गान्धारी चन्द्रदेवता । शङ्खिन्याश्चन्द्रमास्तद्वत्पयस्विन्याः प्रजापतिः ॥ ३८ ॥ विश्वोदराभिधायस्तु भगवान्पावकः पतिः । इडायां चन्द्रमा नित्यं चरत्येव महामुने ॥ ३९ ॥ पिङ्गलायां रविस्तद्वन्मुने वेदविदां वर । पिङ्गलायामिडायां तु वायोः संक्रमणं तु यत् ॥ ४० ॥ तदुत्तरायणं प्रोक्तं मुने वेदान्तवेदिभिः । इडायां पिङ्गलायां तु प्राणसंक्रमणं मुने ॥ ४१ ॥ दक्षिणायनमित्युक्तं पिङ्गलायामिति श्रुतिः । इडापिङ्गलयोः संधिं यदा प्राणः समागतः ॥ ४२ ॥ अमावास्या तदा प्रोक्ता देहे देहभृतां वर । मूलाधारं यदा प्राणः प्रविष्टः पण्डितोत्तम ॥ ४३ ॥ तदाद्यं विषुवं प्रोक्तं तापसैस्तापसोत्तम । प्राणसंज्ञो मुनिश्रेष्ठ मूर्धानं प्राविशद्यदा ॥ ४४ ॥ तदन्त्यं विषुवं प्रोक्तं तापसैस्तत्त्वचिन्तकैः । निःश्वासोच्छ्वासनं सर्वं मासानां संक्रमो भवेत् ॥ ४५ ॥ इडायाः कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समागतः । सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वर ॥ ४६ ॥ यदा पिङ्गलाया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः । तदा तदा भवेत्सूर्यग्रहणं मुनिपुङ्गव ॥ ४७ ॥ श्रीपर्वतं शिरःस्थाने केदारं तु ललाटे । वाराणसी महाप्राज्ञ भ्रुवोर्ग्राणस्य मध्यमे ॥ ४८ ॥ कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हृत्सरोरुहे । चिदम्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम्

॥ ४९ ॥ आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत् । करस्थं स महारं-
त्यक्त्वा काचं विमार्गेते ॥ ५० ॥ भावतीर्थं परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु ।
अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता अन्यथालिङ्ग्यते सुता ॥ ५१ ॥ तीर्थानि तोयपूर्णानि
देवान्काष्ठादिनिर्मितान् । योगिनो न प्रपूज्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ॥ ५२ ॥
बहिस्तीर्थात्परं तीर्थमन्तस्तीर्थं महामुने । आत्मतीर्थं महातीर्थमन्यत्तीर्थं निर-
र्थकम् ॥ ५३ ॥ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति । शतशोऽपि जलै-
र्घौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ ५४ ॥ विपुवायनकालेषु ग्रहणे चान्तरे सदा ।
वाराणस्यादिके स्थाने स्नात्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥ ५५ ॥ ज्ञानयोगपराणां तु
पादप्रक्षालितं जलम् । भावशुद्ध्यर्थमज्ञानां तत्तीर्थं मुनिपुङ्गव ॥ ५६ ॥
तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पापाणके सदा । शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे
प्रतिष्ठिते ॥ ५७ ॥ अन्तःस्थं मां परित्यज्य बहिष्टं यस्तु सेवते । हस्तस्थं पिण्ड-
मुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः ॥ ५८ ॥ शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु
न योगिनः । अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः ॥ ५९ ॥ अपूर्व-
मपरं ब्रह्म स्वात्मानं सत्यमद्वयम् । प्रज्ञानघनमानन्दं यः पश्यति स पश्यति
॥ ६० ॥ नाडीपुञ्जं सदा सारं नरभावं महामुने । समुत्सृज्यात्मनाऽऽत्मानम-
हमित्येव धारय ॥ ६१ ॥ अक्षरीं शरीरेषु महान्तं विभुमीश्वरम् । आन-
न्दमक्षरं साक्षान्मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६२ ॥ विभेदजनके ज्ञाने नष्टे
ज्ञानबलान्मुने । आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं किं करिष्यति ॥ ६३ ॥ इति ॥
इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

सम्यक्कथय मे ब्रह्मन्नाडीशुद्धिं समासतः । यथा शुद्धा सदा ध्यायन्नीवन्मु-
क्तो भवाम्यहम् ॥ १ ॥ सांक्रुते शृणु वक्ष्यामि नाडीशुद्धिं समासतः । विध्युक्त-
कर्मसंयुक्तः कामसंकल्पवर्जितः ॥ २ ॥ यमाद्यष्टाङ्गसंयुक्तः शान्तः सत्यपरा-
यणः । स्वात्मन्यवस्थितः सम्यग्ज्ञानिभिश्च सुशिक्षितः ॥ ३ ॥ पर्वताग्रे नदी-
तीरे बिल्वमूले वनेऽथवा । मनोरमे शुचौ देशे मठं कृत्वा समाहितः
॥ ४ ॥ आरभ्य चासनं पश्चात्प्राञ्छुखोदञ्छुखोऽपि वा । समग्रीवशिरःकायः
संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥ ५ ॥ नासाग्रे शशभृद्विभ्रे बिन्दुमध्ये तुरीयकम् ।
स्रवन्तममृतं पश्येन्नैत्राभ्यां सुसमाहितः ॥ ६ ॥ इडया प्राणमाकृष्य पूरयि-
त्वोदरे स्थितम् । ततोऽग्निं देहमध्यस्थं ध्यायन्नावालीयुतम् ॥ ७ ॥

विष्णुनादसमायुक्तमग्निबीजं धिचिन्तयेत् । पश्चाद्विरेचयेत्सम्यक्प्राणं पिङ्ग-
लया बुधः ॥ ८ ॥ पुनः पिङ्गलयापूर्य वह्निबीजमनुसरेत् । पुनर्विरेचये-
द्दीप्मानिडयैव शनैः शनैः ॥ ९ ॥ त्रिचतुर्वासरं वाथ त्रिचतुर्वासरेव च । षड-
हृत्वा विचरेद्विलं रघुत्येवं त्रिसंधिषु ॥ १० ॥ नाडीशुद्धिमवाप्नोति पृथक्-
शिक्षोपलक्षितः । शरीरलघुता दीर्घिर्वहेर्जाठरवर्तिनः ॥ ११ ॥ नादाभिव्य-
क्तिरित्येतच्चिह्नं तत्सिद्धिसूचकम् । यावदेतानि संपश्येत्तावदेवं समाचरेत्
॥ १२ ॥ अथवैतत्परित्यज्य स्वात्मशुद्धिं समाचरेत् । आत्मा बुधः सदा
विलयः सुखरूपः स्वयम्प्रभः ॥ १३ ॥ अज्ञानान्मलिनो भाति ज्ञानाच्छुद्धो
भवत्ययम् । अज्ञानमलपङ्क्तं यः क्षालयेज्ज्ञानतो यतः । स एव सर्वदा शुद्धो
नान्यः कर्मरतो हि सः ॥ १४ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

प्राणायामकर्म वक्ष्ये सांक्रुते शृणु सादरम् । प्राणायाम इति प्रोक्तो रेच-
पूरककुम्भकैः ॥ १ ॥ वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचपूरककुम्भकाः । स एव
अणवः प्रोक्तः प्राणायामस्तु तन्मयः ॥ २ ॥ इडया वायुमाकृष्य पूरत्रि-
स्थोदरे स्थितम् । शनैः षोडशभिर्मात्रैरकारं तत्र संशरेत् ॥ ३ ॥ पूरितं
धारयेत्पश्चाच्चतुःषष्ट्या तु मात्रया । उकारमूर्तिमत्रापि संशरन्प्रणवं जपेत् ॥ ४ ॥
यावद्वा शक्यते तावद्धारयेज्जपतत्परः । पूरितं रेचयेत्पश्चात्प्रणवान्मकारेणानिलं
बुधः ॥ ५ ॥ शनैः पिङ्गलया तत्र द्वान्निशन्मात्रया पुनः । प्राणायामो अवे-
देवं ततश्चैवं समभ्यसेत् ॥ ६ ॥ पुनः पिङ्गलयपूर्य मात्रैः षोडशमित्तथा ।
अकारमूर्तिमत्रापि स्मरेदेकाग्रमानसः ॥ ७ ॥ धारयेत्पूरितं विद्वान्प्रणवं
संजपन्वशी । उकारमूर्तिं स ध्यायंश्चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ ८ ॥ मकारं
तु स्मरन्पश्चाद्विरेचयेद्विडयाऽनिलम् । एवमेव पुनः कुर्याद्विडयापूर्य बुद्धिमान्
॥ ९ ॥ एवं समभ्यसेन्नित्यं प्राणायामं मुनीश्वर । एवमभ्यासतो नित्यं
षण्मासाद्यत्तवान्भवेत् ॥ १० ॥ वत्सराद्ब्रह्मविद्वान्प्राप्त्याप्त्याजित्यं समभ्यसेत् ।
योगाभ्यासरतो नित्यं स्वधर्मनिरतश्च यः ॥ ११ ॥ प्राणसंयमनेनैव
ज्ञानान्मुक्तो भविष्यति । बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको हि सः ॥ १२ ॥
संपूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत् । वह्निर्विरेचनं वायोरुदराद्विचकः
स्मृतः ॥ १३ ॥ प्रस्वेदजनको यस्तु प्राणायामेन । कम्पनं मध्यमं
विद्यादुत्थानं चोत्तमं विदुः ॥ १४ ॥

उत्थानसंभवः ।

संभवत्युत्तमे प्राज्ञः प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ १५ ॥ प्राणायामेन
चित्तं तु शुद्धं भवति सुव्रत । चित्ते शुद्धे शुचिः साक्षात्प्रत्यग्योतिर्व्यव-
स्थितः ॥ १६ ॥ प्राणश्चित्तेन संयुक्तः परमात्मनि तिष्ठति । प्राणायामपर-
स्यास्य पुरुषस्य महात्मनः ॥ १७ ॥ देहश्चोत्तिष्ठते तेन किञ्चिज्ज्ञानाद्वि-
मुक्तता । रेचकं पूरकं सुक्त्वा कुम्भकं नित्यमभ्यसेत् ॥ १८ ॥ सर्व-
पापजिह्मिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् । मनोजवत्वमाप्नोति पलितादि च
नश्यति ॥ १९ ॥ प्राणायामैकनिष्ठस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम् । तस्मात्सर्व-
प्रयत्नेन प्राणायामाभ्यासमभ्यसेत् ॥ २० ॥ विनियोगान्प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य
सुव्रत । संध्यबोर्प्राणकालेऽपि मध्याह्ने वाऽथवा सदा ॥ २१ ॥ बाह्यं
प्राणं समाकृष्य पूरयित्वा दोरेण च । नासाग्रे नाभिमध्ये च पादाङ्गुष्ठे
च धारयेत् ॥ २२ ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो जीवेद्द्वर्षशतं नरः । नासाग्र-
धारणाद्वापि जितो भवति सुव्रत ॥ २३ ॥ सर्वरोगनिवृत्तिः स्यान्नाभिमध्ये
तु धारणात् । शरीरलघुता विप्र पादाङ्गुष्ठनिरोधनात् ॥ २४ ॥ जिह्वया वायुमा-
कृष्य यः पिबेत्सततं नरः । श्रमदाहविनिर्मुक्तो योगी नीरोगतामियात् ॥ २५ ॥
जिह्वया वायुमाकृष्य जिह्वामूले निरोधयेत् । पिबेदमृतमव्ययं सकलं सुखमा-
प्नुयात् ॥ २६ ॥ इड्या वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत् । यः पिबेदमृतं
शुद्धं व्याधिभिर्मुच्यते हि सः ॥ २७ ॥ इड्या वेदतत्त्वज्ञस्तथा पिङ्गलयैव च ।
नाभौ निरोधयेत्तेन व्याधिभिर्मुच्यते नरः ॥ २८ ॥ मासमात्रं त्रिसन्ध्यायां
जिह्वारोप्य मारुतम् । अमृतं च पिबेन्नाभौ मन्दं मन्दं निरोधयेत् ॥ २९ ॥
वातजाः पित्तजा दोषा नश्यन्त्येव न संशयः । नासाभ्यां वायुमाकृष्य नेत्र-
द्वन्द्वे निरोधयेत् ॥ ३० ॥ नेत्ररोगा विनश्यन्ति तथा श्रोत्रनिरोधनात् । तथा
वायुं समारोप्य धारयेच्छिरसि स्थितम् ॥ ३१ ॥ क्षिरोरोगा विनश्यन्ति
सत्यमुक्तं हि सांक्रुते । स्वस्तिकासनमास्थाय समाहितमनास्तथा ॥ ३२ ॥
अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्रणवेन शनैः शनैः । हस्ताभ्यां धारयेत्सम्यक्कर्णादिकर-
णानि च ॥ ३३ ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां मुने श्रोत्रे तर्जनीभ्यां तु चक्षुषी । नासापुटा-
वधानाभ्यां प्रच्छाद्य करणानि वै ॥ ३४ ॥ आनन्दाविर्भवो यावत्तावन्मूर्धनि
धारणात् । प्राणः प्रयात्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्रं महामुने ॥ ३५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं गते
वायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनघ । शङ्खध्वनिनिभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥ ३६ ॥
शिरोमध्यगते वायौ गिरिप्रस्रवणं यथा । पश्चात्प्रीतो महाप्राज्ञः साक्षादात्मो-

म्मुखो भवेत् ॥ ३७ ॥ पुनस्तज्ज्ञाननिष्पत्तिर्योगात्संसारनिवृत्तिः । दक्षिणोत्तर-
 गुल्फेन सीवर्नी पीडयेत्स्थिरम् ॥ ३८ ॥ सन्ध्येतरेण गुल्फेन पीडयेद्बुद्धि-
 मात्ररः । ज्ञान्वोरधःस्थितां सन्धिं स्मृत्वा देवं त्रियम्बकम् ॥ ३९ ॥ विना-
 यकं च संस्मृत्य तथा वागीश्वरीं पुनः । लिङ्गनालात्समाकृष्य वायुमप्यग्रतो
 मुने ॥ ४० ॥ प्रणवेन नियुक्तेन बिन्दुयुक्तेन बुद्धिमान् । मूलाधारस्य विप्रेन्द्र
 मध्ये तं तु निरोधयेत् ॥ ४१ ॥ निरुध्य वायुना दीप्तो वह्निरुहति कुण्ड-
 लीम् । पुनः सुपुत्रया वायुर्वह्निना सह गच्छति ॥ ४२ ॥ एवमभ्यसतस्तस्य
 जितो वायुर्मवेन्दृशम् । प्रस्वेदः प्रथमः पश्चात्कम्पनं मुनिपुङ्गव ॥ ४३ ॥
 उत्थानं च शरीरस्य चिह्नमेतज्जितेऽनिले । एवमभ्यसतस्तस्य मूलरोगो विन-
 श्यति ॥ ४४ ॥ भगन्दरं च नष्टं स्यात्सर्वरोगाश्च सांक्रुते । पातकानि विन-
 श्यन्ति क्षुद्राणि च महान्ति च ॥ ४५ ॥ नष्टे पापे विशुद्धं स्याच्चित्तदर्पणम-
 ऋतम् । पुनर्ब्रह्मादिभोगेभ्यो वैराग्यं जायते हृदि ॥ ४६ ॥ विरक्तस्य तु
 संसारज्ज्ञानं कैवल्यसाधनम् । तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम्
 ॥ ४७ ॥ ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत् । स सर्वकार्यमुत्सृज्य
 सन्नैव परिधावति ॥ ४८ ॥ ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विलक्षणम् । अर्थस्वरूप-
 मज्ञानात्पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ॥ ४९ ॥ आत्मस्वरूपविज्ञानादज्ञानस्य परिक्षयः ।
 क्षीणेऽज्ञाने महाप्राज्ञ रागादीनां परिक्षयः ॥ ५० ॥ रागाद्यसंभवे प्राज्ञ
 पुण्यपापविमर्दनम् । तयोर्नाशे शरीरेण न पुनः संप्रयुज्यते ॥ ५१ ॥ इति ॥
 इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारं महामुने । इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु
 स्वभावतः ॥ १ ॥ बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते । यत्पश्यति तु
 तत्सर्वं ब्रह्म पश्यन्समाहितः ॥ २ ॥ प्रत्याहारो भवेदेष ब्रह्मविद्धिः पुरो-
 दितः । यद्यच्छुद्धमशुद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम् ॥ ३ ॥ तत्सर्वं ब्रह्मणे
 कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते । अथवा नित्यकर्माणि ब्रह्माराधनबुद्धितः ॥ ४ ॥
 काम्यानि च तथा कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते । अथवा वायुमाकृष्य स्थाना-
 त्स्थानं निरोधयेत् ॥ ५ ॥ दन्तमूलात्तथा कण्ठे कण्ठादुरसि मारुतम् । उरो-
 देशात्समाकृष्य नाभिदेशे निरोधयेत् ॥ ६ ॥ नाभिदेशात्समाकृष्य कुण्डल्यां
 तु निरोधयेत् । कुण्डलीदेशतो विद्वान्मूलाधारे निरोधयेत् ॥ ७ ॥ अथा-

पानात्कटिद्वन्द्वे तथोरौ च सुमध्यमे । तस्माज्जानुद्वये जङ्घे पादाङ्गुष्ठे निरो-
धयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारस्तरैः पुरा । एवमभ्यासयुक्तस्य
पुरुषस्य महात्मनः ॥ ९ ॥ सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुव्रत । ना-
साभ्यां वायुमाकृष्य निश्चलः स्वस्तिकासनः ॥ १० ॥ पूरयेदनिलं विद्वाना-
पादतलमस्तकम् । पश्चात्पादद्वये तद्वन्मूलाधारे तथैव च ॥ ११ ॥ नाभि-
कन्दे च हन्मध्ये कण्ठमूले च तालुके । भ्रुवोर्मध्ये ललाटे च तथा मूर्धनि
धारयेत् ॥ १२ ॥ देहे स्वात्ममतिं विद्वान्समाकृष्य समाहितः । आत्मना-
ऽऽत्मनि निर्द्वन्द्वे निर्विकल्पे निरोधयेत् ॥ १३ ॥ प्रत्याहारः समाख्यः साक्षा-
द्वेदान्तवेदिभिः । एवमभ्यसतस्तस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥ १४ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि धारणाः पञ्च सुव्रत । देहमध्यगते ज्योम्नि बाह्या-
ऽऽकाशं तु धारयेत् ॥ १ ॥ प्राणे बाह्यानिलं तद्वज्रवलेन चाग्निमौदरे । तोयं
तोयांशके भूमिं भूमिभागे महामुने ॥ २ ॥ हयवरलकाराख्यं मन्त्रमुच्चारये-
त्क्रमात् । धारणैषा परा प्रोक्ता सर्वपापविशोधिनी ॥ ३ ॥ जान्वन्तं पृथिवीं
हंशो ह्यपां पाठ्यन्तमुच्यते । हृदयांशस्तथाङ्ग्यंशो भ्रूमध्यान्तोऽनिलांशकः
॥ ४ ॥ आकाशांशस्तथा प्राज्ञ मूर्धांशः परिकीर्तितः । ब्रह्माणं पृथिवीभागे
विष्णुं तोयांशके तथा ॥ ५ ॥ अङ्ग्यंशे च महेशानमीश्वरं चानिलांशके ।
आकाशांशे महाप्राज्ञ धारयेत्तु सदाशिवम् ॥ ६ ॥ अथवा तव वक्ष्यामि
धारणां मुनिपुङ्गव । पुरुषे सर्वशास्तरं बोधानन्दमयं शिवम् ॥ ७ ॥ धारये-
द्बुद्धिमान्नित्यं सर्वपापविशुद्धये । ब्रह्मादिकार्यरूपाणि स्वे स्वे संहृत्य कारणे
॥ ८ ॥ सर्वकारणमन्यत्तमनिरूप्यमचेतनम् । साक्षादात्मनि संपूर्णे धारये-
त्प्रणवेन तु । इन्द्रियाणि समाहृत्य मनसात्मनि योजयेत् ॥ ९ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सुष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि ध्यानं संसारनाशनम् । ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सर्व-
संसारमेषजम् ॥ १ ॥ ऊर्ध्वरेतं विश्वरूपं विरूपाक्षं महेश्वरम् । सोऽहमित्या-
दरेणैव ध्यायेद्योगीश्वरेश्वरम् ॥ २ ॥ अथवा सत्यमीशानं ज्ञानमानन्दमद्वयम् ।
अत्यर्थमचलं नित्यमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ३ ॥ तथाऽस्थूलमनाकाशमसं-

स्पृश्यमचाक्षुषम् । न रसं न च गन्धाख्यमप्रमेयमनूपमम् ॥ ४ ॥ आत्मानं
सच्चिदानन्दमनन्तं ब्रह्म सुव्रत । अहमस्मीत्यभिधायिच्छेयातीतं विमुक्तये
॥ ५ ॥ एवमभ्यासयुक्तस्य पुरुषस्य महात्मनः । क्रमाद्वेदान्तविज्ञानं विजा-
वेत न संशयः ॥ ६ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि समाधिं भवनाशनम् । समाधिः संविदुत्पत्तिः पर-
ब्रह्मैकतां प्रति ॥ १ ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः । एकः
संभिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः ॥ २ ॥ तस्मादद्वैतमेवास्ति न प्रपञ्चो
न संसृतिः । यथाकाशो घटाकाशो मठाकाश इतीरितः ॥ ३ ॥ तथा भ्रान्तै-
र्द्विधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना । नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि
मनो नहि ॥ ४ ॥ सदा साक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्ति केवलः । इति धीर्या
मुनिश्रेष्ठ सा समाधिरिहोच्यते ॥ ५ ॥ साहं ब्रह्म न संसारी न मत्तोऽन्यः
कदाचन । यथा केनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ॥ ६ ॥ समुद्रे लीयते तद्व-
ज्जन्मन्मय्यनुलीयते । तस्मान्मनः पृथङ् नास्ति जगन्माया च नास्ति हि ॥ ७ ॥
यस्यैवं परमात्माऽयं प्रत्यग्भूतः प्रकाशितः । स तु याति च पुंभावं स्वयं
साक्षात्परावृतम् ॥ ८ ॥ यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वन्नं सदा । योगि-
नोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ॥ ९ ॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्म-
न्येव हि पश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ १० ॥ यदा
सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकीभूतः परेणाऽसौ तदा भवति
केवलः ॥ ११ ॥ यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः । मायामात्रं जग-
त्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतिः ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्दत्तात्रेयो महा-
मुनिः । सांक्रुतिः स्वस्वरूपेण सुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥ १३ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु दशमः खण्डः ॥ १० ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीजाबालदर्शनोपनिषत्सामाप्ता ॥ १३ ॥

तारक्योपनिषत् ॥ ९४ ॥

अक्षराक्षरतारायसत्यज्ञानसुखाकृति ।

त्रिपाक्षराक्षरकारं तद्वह्नौवाप्सि केवलम् ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ ब्रह्मरूपतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनु ब्रह्मक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं तस्माद्यत्र क्वचन गच्छेत्तदेव मन्येतेति । इदं वै ब्रह्मक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनमविमुक्तं वै ब्रह्मक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् । अत्र हि जन्तोः प्राणेषु त्कमप्राणेषु कश्चिद्वारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति । तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत् । अविमुक्तं न विमुञ्चेत् । एवमेवैव भगवन्निति वै याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥ अथ हैनं आरद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकम् । किं तारयतीति स होवाच याज्ञवल्क्यः । ॐ नमो नारायणायेति तारकं चिदात्मकमित्युपासितव्यम् । ओमित्येकाक्षरमात्मस्वरूपम् । नम इति व्याक्षरं प्रकृतिस्वरूपम् । नारायणायेति पञ्चाक्षरं परंब्रह्मस्वरूपम् इति । य एवं वेद सोऽमृतो भवति । ओमिति ब्रह्म भवति । नकारो निष्णुमेवति । मकारो रुद्रो भवति । नकार ईश्वरो भवति । रकारोऽण्डं विराड् भवति । यकारः पुत्रपो भवति । णकारो अगवान्भवति । यकारः परमात्मा भवति । एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं वेद परमपुरुषो भवति ॥

तारसारोपनिषत्सु ऋग्वेदः प्रथमः पादः ॥ १ ॥

ॐमित्येतदक्षरं परं ब्रह्म । तदेवोपासितव्यम् । एतदेव सूक्ष्माष्टाक्षरं भवति । तदेतदष्टात्मकोऽष्टधा भवति । अकारः प्रथमाक्षरो भवति । उकारो द्वितीयाक्षरो भवति । मकारस्तृतीयाक्षरो भवति । निन्दुस्तुरीयाक्षरो भवति । नादः पञ्चमाक्षरो भवति । कला षष्ठाक्षरो भवति । कलातीता सप्तमाक्षरो भवति । सत्परश्चाष्टमाक्षरो भवति । तारकत्वात्तारको भवति । तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवोपासितव्यम् ॥ अत्रैते श्लोका भवन्ति—अकारादभव-
इत्या जायमानितिसंज्ञकः । उकाराक्षरसंभूत उपेन्द्रो हरिनायकः ॥ १ ॥ मकाराक्षरसंभूतः शिवस्तु हनुमान्स्थितः । निन्दुरीश्वरसंज्ञस्तु वायुब्रह्मकाराद

स्त्र्यम् ॥ २ ॥ नादो महाप्रभुर्ज्ञेयो भरतः कृष्णनामकः । कलायाः पुरुषः
साक्षाच्छ्वमणो धरणीधरः ॥ ३ ॥ कलातीता पराशक्तः स्वयं सीतेति संज्ञिता ।
तत्परः परमात्मा च श्रीरामः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ ओमित्येतदक्षरमिदं
सर्वम् । तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यद्यत्नान्यत्तत्त्वमन्त्रवर्णदेवताछन्दो-
ऋक्कलाशक्तिसृष्ट्यात्मकमिति । य एवं वेद ॥

तारसारोपनिषत्सु यजुर्वेदो द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः परमात्मा प्रीतो भवति
स्वात्मानं दर्शयति तन्नो ब्रूहि भगव इति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । ॐ यो
ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवानकारवाच्यो जाम्बवान्भूर्भुवः सुव-
स्तस्यै वै नमो नमः ॥ १ ॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स
भगवानुकारवाच्य उपेन्द्रस्वरूपो हरिनायको भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो
नमः ॥ २ ॥ ॐ यो ह वै परमात्मा नारायणः स भगवान्मकारवाच्यः
शिवस्वरूपो हनुमान्भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ३ ॥ ॐ यो ह वै
श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्विन्दुस्वरूपः शत्रुघ्नो भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै
नमो नमः ॥ ४ ॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्नादस्वरूपो
भरतो भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ५ ॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा
नारायणः स भगवान्कलास्वरूपो लक्ष्मणो भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो नमः
॥ ६ ॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्कलातीता
भगवती सीता चित्स्वरूपा भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७ ॥
यथा प्रथममन्त्रोक्तावाद्यन्तौ तथा सर्वमन्त्रेषु द्रष्टव्यम् । उकारवाच्य
उपेन्द्रस्वरूपो हरिनायकः २ मकारवाच्यः शिवस्वरूपो हनुमान् ३ विन्दु-
स्वरूपः शत्रुघ्नः ४ नादस्वरूपो भरतः ५ कलास्वरूपो लक्ष्मणः ६ कला-
तीता भगवती सीता चित्स्वरूपा ७ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारा-
यणः स भगवांस्तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो नित्यशुद्धबुद्धमुक्त-
सत्यपरमानन्ताद्वयपरिपूर्णः परमात्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि भूर्भुवः सुव-
स्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥ एतदष्टविधमन्त्रं योऽधीते सोऽग्निपूतो भवति ।
स वायुपूतो भवति । स आदित्यपूतो भवति । स स्याणुपूतो भवति ।
स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि
जज्ञानि फलाणि भवति : श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरानुस्मरणेन गायत्र्याः शत-

सहस्रं जहं भवति । प्रणवानामयुतं जहं भवति । दशपूर्वाब्दशोत्तरान्यु-
नाति । नारायणपदमवाप्नोति य एवं वेद । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति
सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

तारसारोपनिषत्सु सामवेदस्तृतीयः पादः ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति तारसारोपनिषत्समाप्ता ॥ ९४ ॥

महावाक्योपनिषत् ॥ ९५ ॥

यन्महावाक्यसिद्धान्तमहाविद्याकलेवरम् ।

विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ होवाच भगवान्ब्रह्मापरोक्षानुभवपरोपनिषदं व्याख्या-
स्यामः । गुह्याद्गुह्यपरमेया न प्राकृतायोपदेष्टव्या । सात्त्विकायान्तर्मुखाय परिशु-
श्रूपवे अथ संसृतिबन्धमोक्षयोर्विद्याविद्ये चक्षुषी उपसंहृत्य विज्ञायाविद्यालो-
काण्डस्तमोदक् । तमो हि शारीरप्रपञ्चमाग्रहस्थायारान्तमनन्ताखिलाजाण्ड-
भूतम् । निखिलनिगमोदितसकामकर्मव्यवहारो लोकः । नैपोऽन्धकारोऽय-
मात्मा । विद्या हि काण्डान्तरादित्यो ज्योतिर्मण्डलं ग्राह्यं नापरम् । असावादित्यो
ब्रह्मेत्यजपयोपहितं हंसः सोऽहम् । प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां
समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सन्निदानन्दः
परमात्माविर्भवति । सहस्रभानुमञ्जुरितापरितत्वादलिप्या पारावारपूर इव ।
नैषा समाधिः । नैषा योगसिद्धिः । नैषा मनोलयः । ब्रह्मैक्यं तत् । आदित्य-
वर्णं तमसस्तु पारे सर्वाणि रूपाणि विचित्रा घोरः । नामानि कृत्वाऽभिवद-
न्यदास्ते धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार । शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः तमेवं
विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते । यज्ञेन यज्ञमयजन्त
देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र
पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः । सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः । आत्म-
ज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम् । य एतदयर्बशिरोऽधीते । पातरधी-

यानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीवानो दिवसकृतं पापं नाशयति ।
तस्मात् प्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो भवति । मध्यन्दिनसादित्याभिमुखो-
ऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते । सर्ववेदपातवर्णमुच्यं कर्मते ।
श्रीमहाविष्णुसायुज्यमवामोतीत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ मद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

इति महावाक्योपनिषत्समाप्ता ॥ ९५ ॥

पञ्चब्रह्मोपनिषत् ॥ ९६ ॥

ब्रह्मादिपञ्चब्रह्माणो यत्र विश्रान्तिमाप्नुयुः ।

तदखण्डसुखाकारं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ पैपलादो भगवान्भो किमादौ किं जातमिति । सद्यो
जातमिति । किं भगव इति । भगोर इति । किं भगव इति । वामदेव इति ।
किं वा पुनरिमे भगव इति । तत्पुरुष इति । किं वा पुनरिमे भगव इति ।
सर्वेषां दिव्यानां प्रेरयिता ईशान इति । ईशानो मृतमव्यस्य सर्वेषां देव-
योगिनाम् । कति वर्णाः । कति भेदाः । कति शक्तयः । तत्सर्वं तद्ब्रह्मम् ।
तस्मै नमो महादेवाय महारुद्राय प्रोवाच तस्मै भगवान्महेशः । गोप्या-
ज्ञोप्यतरं लोके यद्यस्ति शृणु शाकल । सद्यो जातं मही पूषा रमा ब्रह्मा
त्रिपुरस्वरः ॥ १ ॥ ऋग्वेदो गार्हपत्यं च मज्जाः सप्त स्वरास्तथा । वर्णं पीतं
क्रिया शक्तिः सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ २ ॥ अघोरं सलिलं चन्द्रं गौरी वेद
द्वितीयकम् । नीरदामं स्वरं सान्द्रं दक्षिणाभिरुदाहृतम् ॥ ३ ॥ पञ्चाशद्दर्शनसं-
युक्तं स्थितिरिच्छाक्रियान्वितम् । शक्तिरक्षणसंयुक्तं सर्वावौषधिनाशनम् ॥ ४ ॥
सर्वदुष्टप्रशमनं सर्वैश्वर्यफलप्रदम् । वामदेवं महाबोधदायकं पावकात्मकम्
॥ ५ ॥ विद्यालोकसमायुक्तं भानुकोटिसमप्रभम् । प्रसन्नं सामवेदाख्यं
नानाष्टकसमन्वितम् ॥ ६ ॥ धीरस्वरमधीनं चाहवनीयमनुत्तमम् । ज्ञानसंहार-
संयुक्तं शक्तिद्वयसमन्वितम् ॥ ७ ॥ वर्णं शुक्लं तमोमिश्रं पूर्णबोधकरं
खयम् । धामत्रयनियन्तारं धामत्रयसमन्वितम् ॥ ८ ॥ सर्वसौभाग्यदं नृणां

सर्वकर्मफलप्रदम् । अष्टाक्षरसमायुक्तमष्टपत्रान्तरस्थितम् ॥ ९ ॥ यत्तत्सप्त-
 दशं श्रोत्रं वायुमण्डलसंवृतम् । पञ्चाक्षिना समायुक्तं भग्नशक्तिलियामकम्
 ॥ १० ॥ पञ्चाक्षरस्वरवर्णालयमथर्ववेदस्वरूपकम् । कोटिकोटिगणाध्यक्षं
 ब्रह्माण्डाखण्डविग्रहम् ॥ ११ ॥ वर्णं रक्तं कामदं च सर्वाधिव्याधिभेष-
 जम् । सृष्टिस्थितिलयादीनां कारणं सर्वशक्तिधरम् ॥ १२ ॥ अवस्थात्रि-
 तयातीतं तुरीयं ब्रह्मसंज्ञितम् । ब्रह्मविष्णवादिभिः सेव्यं सर्वेषां जनकं परम्
 ॥ १३ ॥ ईशानं परमं विद्याश्रेयरं बुद्धिसाक्षिणम् । आकाशात्मकमव्यक्तमोक्षार-
 खरभूषितम् ॥ १४ ॥ सर्वदेवमयं ज्ञान्तं ज्ञान्यतीतं स्वरार्द्रहिः । अकारादि-
 स्वरार्द्रक्षमाकाशमयविग्रहम् ॥ १५ ॥ पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चब्रह्मात्मकं बृहत् ।
 पञ्चब्रह्मोपसंहारं कृत्वा स्वात्मनि संस्थितः ॥ १६ ॥ स्वमायावैभवान्सर्वान्सं-
 हृत्य स्वात्मनि स्थितः । पञ्चब्रह्मात्मकातीतो भासते स्वस्वतेजसा ॥ १७ ॥
 आदावन्ते च मध्ये च भाससे नान्यहेतुना । मायया मोहिताः शंभोर्महादेवं
 जगद्गुरुम् ॥ १८ ॥ न जानन्ति सुराः सर्वं सर्वकारणकारणम् । न संदृशो
 तिष्ठति रूपमस्य परात्परं पुरुषं विश्वधाम ॥ १९ ॥ येन प्रकाशते विश्वं
 यत्रैव प्रविलीयते । तद्ब्रह्म परमं ज्ञान्तं तद्ब्रह्मास्मि परं पदम् ॥ २० ॥ पञ्च-
 ब्रह्म परं विद्यास्सद्यो जातादिपूर्वकम् । दृश्यते श्रूयते यच्च पञ्चब्रह्मात्मकं स्वयम्
 ॥ २१ ॥ पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम् । ब्रह्मकार्यमिति ज्ञात्वा
 ईशानं प्रतिपद्यते ॥ २२ ॥ पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं स्वात्मनि प्रविलाप्य च ।
 सोऽहमस्मीति जानीयाद्विद्वान्ब्रह्माऽस्मृतो भवेत् ॥ २३ ॥ इत्येतद्ब्रह्म जानी-
 याद्यः स मुक्तो न संशयः । पञ्चाक्षरमयं शंभुं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ २४ ॥
 नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरं जपेत् । सर्वं पञ्चात्मकं विद्यास्पृश्य-
 ब्रह्मात्मतत्त्वतः ॥ २५ ॥ पञ्चब्रह्मात्मिकीं विद्यां योऽधीते भक्तिभावितः । स
 पञ्चात्मकतामेव भासते पञ्चधा स्वयम् ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा महादेवो
 गालवस्य महात्मनः । कृपां चकार तत्रैव स्वान्तर्धिमगमत्स्वयम् ॥ २७ ॥ यस्य
 श्रवणमात्रेणाश्रुतमेव श्रुतं भवेत् । अमृतं च मतं ज्ञातमविज्ञातं च शाकल
 ॥ २८ ॥ एकेनैव तु पिण्डेन सृत्तिकायाश्च गौतम । विज्ञातं सृष्टमयं सर्वं
 सृष्टुमिच्छं हि कार्यकम् ॥ २९ ॥ एकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं यथा ।
 विज्ञातं स्यादथैकेन नखानां कृन्तनेन च ॥ ३० ॥ सर्वं कार्णायसं ज्ञातं तद-

भिन्नं स्वभावतः । कारणाभिन्नरूपेण कार्यकारणमेव हि ॥ ३१ ॥ तद्रूपेण सदा सत्यं मेदेनोक्तिर्मृषा खलु । तच्च कारणमेकं हि न भिन्नं नोभयात्मकम् ॥ ३२ ॥ मेदः सर्वत्र मिथ्यैव धर्मादेरनिरूपणात् । अतश्च कारणं नित्यमेकमेवाद्वयं खलु ॥ ३३ ॥ अत्र कारणमद्वैतं शुद्धचैतन्यमेव हि । अस्मिन्ब्रह्मापुरे वेदम दहरं यदिदं मुने ॥ ३४ ॥ पुण्डरीकं तु तन्मध्ये आकाशो दहरोऽस्ति तत् । स शिवः सच्चिदानन्दः सोऽन्वेष्टव्यो मुमुक्षुभिः ॥ ३५ ॥ जयं हृदि स्थितः साक्षी सर्वेषामविशेषतः । तेनायं हृदयं प्रोक्तः शिवः संसारमोचकः ॥ ३६ ॥ हस्त्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

इति पञ्चब्रह्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ९६ ॥

प्राणाग्निहोत्रोपनिषत् ॥ ९७ ॥

शरीरयज्ञसंशुद्धचित्तसंजातबोधतः ।

मुनयो यत्पदं यान्ति तद्रामपदमाश्रये ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथातः सर्वोपनिषत्सारं संसारज्ञानातीतमग्निसूत्रं शरीरं यज्ञं व्याख्यास्यामः । अस्मिन्नेव पुरुषशरीरे विनाप्यग्निहोत्रेण विनापि सांख्ययोगेन संसारविमुक्तिर्भवतीति । स्वेन विधिनाऽन्नं भूमौ निक्षिप्य या ओषधीः सोमराजीरिति तिसृभिरन्नपत इति द्वाभ्यामनुमन्त्रयते । या ओषधयः सोमराजीर्बद्धीः शतविचक्षणाः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥ जीवलां नवारिषां माते बभ्राभ्योषधिम् । या त आयु रूपहरादप रक्षांसि चातयात् ॥ ३ ॥ अन्नपतेऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ४ ॥ यदन्नमग्नि बहुधा विराद्धम् । रुद्रैः प्रजरघं यदि वा पिशाचैः । सर्वतदीशानो अभयं कृणोतु शिवमीशानाय स्वाहा ॥ ५ ॥ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।

त्वं यज्ञस्त्वं ब्रह्मा त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म
 भूर्भुवः सुखरौ नमः । आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम् ।
 पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं
 मम । सर्वं पुनन्तु तं ह्यापोऽसतां च प्रतिग्रहं । अमृतमस्यमृतोपस्तरणमस्य-
 मृतं प्राणे जुहोम्यमा शिष्यान्तोऽसि । प्राणाय स्वाहा । अपानाय स्वाहा ।
 व्यानाय स्वाहा । समानाय स्वाहा । उदानाय स्वाहा इति कनिष्ठिकाङ्गुल्या-
 ङ्गुष्ठेन च प्राणे जुहोमि । अनामिकायाऽपाने । मध्यमया व्याने । सर्वाभिरुदाने ।
 प्रदेक्षिन्या समाने । तूष्णीमेकामेकक्रपौ जुहोति । द्वे आहवनीये । एकां
 दक्षिणाग्नौ । एकां गार्हपत्ये । एकां सर्वप्रायश्चित्तीये ॥ अथापिधानमस्यमृत-
 त्वायोपस्पृश्य पुनरादाय पुनरुपस्पृशेत् । सव्ये प्राणावापो गृहीत्वा
 हृदयमन्वालय जपेत् । प्राणोऽग्निः परमात्मा पञ्चवायुभिरावृतः । अभयं
 सर्वभूतेभ्यो न भवेदहं कदाचनेति ॥ १ ॥

इत्याथर्वणीयप्राणामिहोत्रोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

विश्वोऽस्ति वैश्वानरो विश्वरूपं त्वया धार्यते जायमानम् । विश्वं त्वाहुतयः
 सर्वा यत्र ब्रह्माऽमृतोऽस्ति । महानवोऽयं पुरुषो योऽङ्गुष्ठाग्रे प्रतिष्ठितः । तमग्निः
 प्रतिषिञ्चामि सोऽस्यान्ते अमृतायामृतयोनाविलेप एवात्मा । ध्यायेताग्नि-
 द्रोत्रं जुहोमीति सर्वेषामेव सूनुर्भवते । अथ यज्ञपरिवृत आहुतीर्होम-
 यति । स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामीति । चत्वारोऽग्नयस्ते किं नामधेयाः । तत्र
 सूर्योऽग्निर्नाम सूर्यमण्डलाकृतिः सहस्ररश्मिपरिवृत एकर्षिभूत्वा मूर्ध्नि
 तिष्ठति यस्मादुक्तः । दर्शनाग्निर्नाम चतुराकृतिराहवनीयो भूत्वा मुखे तिष्ठति ।
 शारीरोऽग्निर्नाम जराप्रणुदा हविरवस्कन्दति । अर्धचन्द्राकृतिर्दक्षिणाग्निर्भूत्वा
 हृदये तिष्ठति तत्र कोष्ठाग्निर्नामाक्षितपीतलीढखादितानि सम्यग् व्यष्ट्यां
 अपयित्वा गार्हपत्यो भूत्वा नाभ्यां तिष्ठति । प्रायश्चित्तयस्त्वधस्तात्तिर्यक्
 तिज्जो हिमांशुर्ग्रन्थिभिः प्रजननकर्मा ॥

इत्याथर्वणीयप्राणामिहोत्रोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अस्य शरीरयज्ञस्य यूपरक्षणाशोभितस्य को यजमानः । का पत्नी । के
महर्षिजः । के सदस्याः । कानि यज्ञपात्राणि । कानि हवींषि । का वेदिः ।
कोत्तरवेदिः । को द्रोणकलशः । को रथः । कः पशुः । कोऽध्वर्युः । को
होता । को ब्राह्मणाच्छंसी । कः प्रतिप्रस्थाता । कः प्रस्तोता । को मैत्रावरुणः ।
क उद्गाता । का धारापोता । के दर्भाः । कः जुवः । काज्यस्थाली ।
कावाधारौ । कावाज्यभागौ । के प्रयाजाः । के अनुयाजाः । केडा । कः
सूक्तवाकः । कः शंयुवाकः । काऽर्हिसा । के पत्नीसंयाजाः । को यूपः । का
रक्षणा । का इष्टयः । का दक्षिणा । किमवभृथमिति ॥

इत्याथर्वणीयप्राणामिहोत्रोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अस्य शरीरयज्ञस्य यूपरक्षणाशोभितस्यात्मा यजमानः । बुद्धिः पत्नी ।
वेदा महर्षिजः । अहंकारोऽध्वर्युः । चित्तं होता । प्राणो ब्राह्मणाच्छंसी ।
अपानः प्रतिप्रस्थाता । व्यानः प्रस्तोता । समानो मैत्रावरुणः । उद्गान
उद्गाता । शरीरं वेदिः । नासिकोत्तरवेदिः । मूर्धा द्रोणकलशः । पादो रथः ।
दक्षिणहस्तः जुवः । सव्यहस्त आज्यस्थाली । श्रोत्रे आधारौ । चक्षुषी आज्य-
भागौ । ग्रीवा धारापोता । तन्मात्राणि सदस्याः । महाभूतानि प्रयाजाः ।
श्रुतान्यनुयाजाः । जिह्वेडा । दन्तोष्ठौ सूक्तवाकः । तालुः शंयुवाकः ।
स्थितिर्दया क्षान्तिरर्हिसा पत्नीसंयाजाः । ओंकारो यूपः । आशा रक्षणा ।
मनो रथः । कामः पशुः । केशा दर्भाः । बुद्धीनिद्रयाणि यज्ञपात्राणि ।
कर्मेन्द्रियाणि हवींषि । अर्हिसा इष्टयः । त्यागो दक्षिणा । अवभृथं मरणात् ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवताः शरीरेऽधिसमाहिताः । वाराणस्यां मृतो वापि इदं वा
ग्रह यः पठेत् । एकेन जन्मना जन्तुर्मोक्षं च प्राप्नुयादिति मोक्षं च प्राप्नुया-
दित्युपनिषत् ॥ ३ ॥ ॐ सह नाववस्विति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इत्याथर्वणीया प्राणामिहोत्रोपनिषत्समाप्ता ॥ ९७ ॥

गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ ९८ ॥

श्रीमत्पञ्चपदागारं सविशेषतयोजकम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं निर्विशेषं हरिं भजे ॥ १ ॥

ॐ अद्भुतं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

गोपाक्षसापनं कृष्णं चाक्षवल्क्यं वराहकम् ।

शाक्यायनीं हृषीकेशं दृष्ट्वाभयं च गारुडम् ॥ २ ॥

ॐ कृषिर्भूवाचकः शब्दो नञ् निर्द्वैतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्णं
ब्रह्मविधीयते ॥ १ ॥ ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाद्विष्टकारिणे । नमो
वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥ ॐ मुनयो ह वै ब्राह्मणमूढुः कः
परमो देवः कुतो मृत्युर्विभेति कस्य विज्ञानेनाखिलं भाति केनेदं विश्वं
संसरतीति । तदु होवाच ब्राह्मणः श्रीकृष्णो वै परमं दैवतं गोविन्दान्मृत्यु-
र्विभेति गोपीजनवल्लभज्ञानेन तज्ज्ञातं भवति स्वाहेदं संसरतीति । तदु
मूढुः कः कृष्णो गोविन्दश्च कोऽसाविति गोपीजनवल्लभः कः का स्वाहेति
तान्नुवाच ब्राह्मणः पापकर्षणो गोभूमिवेदविदितो वेदिता गोपीजनविद्या-
कलाप्रेरकः । तन्माया चेति सकलं परं ब्रह्मतयो ध्यायति रसति भजति
सोऽमृतो भवति सोऽमृतो भवतीति ॥ १ ॥ ते रोषुः किं तद्रूपं किं रसनं
कथं वाऽहो तज्जजनं तत्सर्वं विविदिषतामाख्याहीति । तदु होवाच हैरण्यो
गोपवेषमभ्राभं तस्मिन् कल्पद्रुमाश्रितम् । तदिह श्लोका भवन्ति—सत्पुण्डरीक-
नयनं मेधाभं वैद्युताम्बरम् । द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
गोपगोपाङ्गनावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् । दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपङ्कजम-
ध्यगम् ॥ कालिन्दीजलकल्लोलासङ्गिमारुतसेवितम् । चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं
मुक्तो भवति संवृतेः ॥ इति । तस्य पुनः रसनभजनभूमीन्दुसंपातः कामादि
कृष्णायैत्येकं पदं गोविन्दायेति द्वितीयं गोपीजनेति तृतीयं वल्लभायेति
तुरीयं स्वाहेति पञ्चममिति पञ्चपदीं प्रजपन् पञ्चाङ्गं ध्यावाभूमी सूर्याचन्द्रमसौ
साक्षी तद्रूपतया ब्रह्म संपद्यते ब्रह्म संपद्यत इति ॥ २ ॥ तदेष श्लोकः—
क्षीमिस्वेवादावादाय कृष्णाय योगं गोविन्दायोत च । गोपीजनवल्लभाय

बृहद्वचनं श्यामं तदप्युत्तरेद्यो गतिस्तस्यास्ति मङ्गलं नान्या गतिः स्यादिति
 अक्रियस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैराशयेनैवापुष्मिन्मनःकल्पनमेतदेव च
 नैष्कर्म्यं कृष्णं सन्तं विप्रा बहुधा यजन्ति गोविन्दं सन्तं बहुधा रसन्ति गोपी-
 जनवल्लीभो भुवनानि दध्रे स्वाहाश्रितो जगदैजयत्सुरेताः, वायुर्यथैको भुवनं
 प्रतिष्ठो जन्ये जन्ये पञ्चरूपो बभूव । कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ
 पञ्चपदो विभातीति ॥ ३ ॥ ते होचुरुपासनमेतस्य परमात्मनो गोविन्दस्या-
 खिलाधारिणो ब्रूहीति । तानुवाच ब्रह्मा यत्तस्य पीठं हैरण्यमष्टपलाशमम्बुजं
 तदन्तरालिकानलाक्षयुगं तदन्तराद्याणं त्रिलिखितं कृष्णाय । नम इति
 बीजाढ्यं स ब्राह्मणमाध्यायानङ्गमनु गायत्रीं यथावद्व्यासज्य भूमण्डलं
 मूलवेष्टितं कृत्वाऽङ्गवासुदेवादिरुविमण्यादिस्वशक्तीन्द्रादिवसुदेवादिपार्थादिनि-
 ध्यावीतं यजेत्संध्यासु प्रतिपत्तिभिरुपचारैस्तेनास्याखिलं भवत्यखिलं भवतीति
 ॥ ४ ॥ तदिह श्लोका भवन्ति—एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि
 सन्बहुधा यो विभाति । तं पीठस्थं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं
 नेतरेषाम् ॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामात् ।
 तं पीठगं येऽनुयजन्ति विप्रास्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ एतद्विष्णोः
 परमं पदं ये नित्योद्युक्ताः संयजन्ते न कामात् । तेषामसौ गोपरूपः
 प्रयत्नात्प्रकाशयेदात्मपदं तदैव ॥ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यास्तस्यै
 गापयति स्य कृष्णः । तं ह देवमात्मवृत्तिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै कारणममुं ब्रजेत् ॥
 ओंकारेणान्तरितं यो जपति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुं तम् । तस्यैवासौ
 दशयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै ॥ एतस्मादन्ये पञ्चपदाद-
 भूवन्गोविन्दस्य मनवो मानवानाम् । दशार्णाद्यास्तेऽपि संक्रन्दनाद्यैरभ्यस्यन्ते
 भूतिकामैर्यथावत् ॥ तदेतस्य स्वरूपार्थं वाचा वेदयेति ते प्रपञ्चुस्तदु
 होवाच ब्राह्मणः, अनवरतं मया ध्यातस्ततः परार्धान्ते सोऽबुध्यत गोपवेषो
 मे पुरस्तादाविर्बभूव ततः प्रणतो मया, अनुकूलेन हृदा मह्यमष्टादशार्णं
 स्वरूपं सृष्ट्ये दत्त्वाऽन्तर्हितः पुनः सिसृक्षा मे प्रादुरभूत्तेष्वक्षरेषु भविष्य-
 जगद्रूपं प्रकाशयंस्तदाह तदाह ॥ ५ ॥ अनुकूलेन हृदा मह्यमष्टादशार्णं
 स्वरूपं सृष्ट्ये दत्त्वाऽन्तर्हित इति । आकाशादापो जलात्पृथ्वी ततोऽग्निर्बि-
 न्दोरिन्दुः, तत्संपात्तदर्कः । इति क्लींकारादसृजं कृष्णादाकाशं खाद्यायुरि-
 त्युत्तरासुरभिविद्याः प्रादुरकापं तदुत्तरात्तु स्त्रीपुमादि च, इदं सकलमिदं

सकलमिति ॥ ६ ॥ एतस्यैव यजनेन चन्द्रध्वजो गतमोहमात्मानं
वेदयित्वाकारान्तरालिकं मनुमावर्तयन्, सङ्गरहितोऽस्यापतत् । तद्विष्णोः
परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तस्मादेतन्नित्यमभ्य-
सेन्नित्यमभ्यसेदिति ॥ ७ ॥ तदाहुरेके यस्य प्रथमपदान्मिर्द्वितीयपदाज्जलं
तृतीयपदात्तेजश्चतुर्थाद्याश्वरमाद्योमेति वैष्णवं पञ्चव्याहृतमयं मन्त्रं
कृष्णावभासं कैवल्यसूत्रे सततमावर्तयेदिति । तदत्र गाथाः—यस्य
पूर्वपदान्मिर्द्वितीयात्सलिलोद्भवः । तृतीयात्तेज उद्भूतं चतुर्थाद्ब्रह्मवाहनः ॥
पञ्चमादम्बरोत्पत्तिस्त्रमेवैकं समभ्यसेत् । चन्द्रध्वजोऽगमद्विष्णोः परमं
पदमज्ययम् ॥ ततो विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् ।
यत्तत्पदं पञ्चपदं तदेव स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥ तमेकं गोविन्दं
लब्धिदानन्दविग्रहं पञ्चपदं वृन्दावने सुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्रणोऽहं
परमया स्तुत्या तोषयामि ॥ ८ ॥

इति गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतये ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय
नमो नमः ॥ १ ॥ नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ॥ कृष्णाय
गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥ नमः कमलनेत्राय नमः कमल-
मालिने ॥ नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ ३ ॥ बर्हापीडाभिरामाय
रामायाकुण्ठमेधसे ॥ रामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥
कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ॥ वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः
॥ ५ ॥ वेणुवादनशीलाय गोपाकायाहिमर्दिने ॥ कालिन्दीकूललोलाय लोल-
कुण्डलधारिणे ॥ ६ ॥ बल्लवीनयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ॥ नमः
प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥ नमः पापप्रणाशाय गोवर्धन-
धराय च ॥ पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥ ८ ॥ निष्कलाय
विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ॥ अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः
॥ ९ ॥ प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ॥ आधिप्याधिभुजगेन दृष्टं
मामुद्धर प्रभो ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ॥ संसार-
सागरे ममं मामुद्धर जगद्गुरो ॥ ११ ॥ केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ॥
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥ १२ ॥ अथ हैवं स्तुतिभिराराधयामि
ते यूयं तथा पञ्चपदं जपन्तः श्रीकृष्णं ध्यायन्तः संसृतिं तरिष्यथेति स
होवाच हैरपयः । अमुं पञ्चपदं मन्त्रमावर्तयेद्यः स यात्यनायासतः कैवलं
अ. उ. ३८

तत् । अनेजदेकं मनसो जवीयो नैतद्देवा आमुवन्पूर्वमर्षदिति । तस्मात्कृष्ण
पुत्र परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं भजेत्तं भजेदित्यो तत्सदिति ॥ १३ ॥

इति गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ९८ ॥

गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ९९ ॥

ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाह्निष्टकर्मणे ।

नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ एकदा हि ब्रजस्त्रियः सकामाः शर्वरीमुपित्वा सर्वेश्वरं गोपालं कृष्णं
हि ता ऊचिरे । उवाच ताः कृष्णमनुः कस्मै ब्राह्मणाय भैक्षं दातव्यं भवति
दुर्वाससेति । कथं यास्यामोऽतीर्त्वा जलं यमुनायाः, यतः श्रेयो भवति
कृष्णेति कृष्णो ब्रह्मचारीत्युक्त्वा मार्गं वो दास्यत्युत्ताना भवति यं मां
स्मृत्वा, अगाधा गाधा भवति यं मां स्मृत्वा, अपूतः पूतो भवति यं मां
स्मृत्वाऽन्नती व्रती भवति यं मां स्मृत्वा, निष्कामः सकामो भवति यं मां
स्मृत्वा, अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति यं मां स्मृत्वा श्रुत्वा तद्वाचं ह वै
स्मृत्वा तद्वाक्येन तीर्त्वा तां सौर्या हि वै गत्वाश्रमं पुण्यतमं नत्वा
मुनिश्रेष्ठतमं हि रौद्रं चेति दत्त्वाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षीरमयं घृतमयं मिष्टतमं हि
वा इष्टतमः स तुष्टः स्नात्वा भुक्त्वाऽऽशिषं प्रयोज्याज्ञामदात्कथं यास्यामो-
ऽतीर्त्वा सौर्याम्, स होवाच मुनिर्दुर्वासिनं मां स्मृत्वा वो दास्यतीति मार्गम् ।
तासां मध्ये श्रेष्ठा गान्धर्वी होवाच सहैवेताभिरेवं विचार्य कथं कृष्णो
ब्रह्मचारी, कथं दुर्वासिनो मुनिस्तां हि मुख्यां विधाय पूर्वमनु कृत्वा तूष्णी-
मासुः । शब्दवानाकाशः शब्दाकाशाभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नाकाशे तिष्ठत्याकाशस्तं
न वेद स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ १ ॥ स्पर्शवान्वायुः स्पर्शवा-
युभ्यां भिन्नस्तस्मिन्वायौ तिष्ठति वायुर्न वेद तं स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता
भवामि रूपवदिदं तेजो रूपाग्निभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नग्नौ तिष्ठत्यग्निर्न वेद तं हि
स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ २ ॥ रसवत्य आपो रसान्यो भिन्नास्ता-
स्त्वप्सु तिष्ठति । आपो न विदुस्तं हि स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ ३ ॥
गन्धवती भूमिर्गन्धभूमिभ्यां भिन्नस्तस्यां भूमौ तिष्ठति भूमिर्न वेद तं हि स

ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ ४ ॥ इदं हि मनस्वेवेवं हि मनुते तानिर्दं
 गृह्णाति । यत्र हि सर्वमात्मैवाभूत्तत्र वा कुत्र मनुते क्व वा गच्छतीति स
 ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ ५ ॥ अयं हि कृष्णो यो वो हि प्रेष्ठः
 शरीरद्वयकारणं भवति द्वौ सुपर्णौ भवतो ब्रह्मणोऽशभूतस्तथेतरो भोक्ता
 भवति । अन्यो हि साक्षी भवतीति ॥ ६ ॥ वृक्षधर्मे तौ तिष्ठतोऽभोक्तृभोक्तारौ
 पूर्वो हि भोक्ता भवति । तथेतरोऽभोक्ता कृष्णो भवतीति यत्र विद्याविद्ये न
 विदामो विद्याविद्याभ्यां भिन्नो विद्यामयो यः स कथं विषयी भवतीति
 ॥ ७ ॥ यो हि वै कामेन कामान्कामयते स कामी भवति यो हि वै त्वकामेन
 कामान्न कामयते सोऽकामी भवतीति । जन्मजराम्यां भिन्नः स्थाणुरयम-
 च्छेद्योऽयम् । योऽसौ सूर्यं तिष्ठति योऽसौ गोपु तिष्ठति योऽसौ
 गोपान्पालयति योऽसौ गोपेषु तिष्ठति योऽसौ सर्वेषु देवेषु तिष्ठति
 योऽसौ सर्वैर्वैर्देर्गायते योऽसौ सर्वेषु भूतेष्वविश्य तिष्ठति भूतास्मि
 च विदधाति स वो हि स्वामी भवतीति ॥ ८ ॥ सा होवाच गान्धर्वी
 कथं वाऽस्यासु जातोऽसौ गोपालः कथं वा ज्ञातोऽसौ त्वया मुने
 कृष्णः, को वाऽस्य मन्त्रः, किं वाऽस्य स्थानं, कथं वा देवक्यां जातः, को
 वाऽस्य ज्यायान्नामो भवति, कीदृशी पूजाऽस्य गोपालस्य भवति, साक्षा-
 त्प्रकृतिपरयोरयमात्मा गोपालः कथमवतीर्णो भूम्यां हि वै ॥ ९ ॥ स
 होवाच तां हि वा एको हि वै, पूर्वं नारायणो देवो यस्मिँल्लोका ओताश्च
 प्रोताश्च तस्य हृत्पद्माज्जातोऽब्जयोनिः । स पिता तस्मै ह वरं ददौ । स कामप्र-
 शमेव वने । तं हास्यै ददौ स होवाचाब्जयोनिरवताराणां मध्ये श्रेष्ठोऽवतारः
 को भवति येन लोकास्तुष्टा देवास्तुष्टा भवन्ति यं स्पृत्वा वा मुक्ता अस्मा-
 त्संसाराद्भवन्ति कथं वाऽस्यावतारस्य ब्रह्मता भवति ॥ १० ॥ स होवाच तं
 हि नारायणो देवः सकाम्या मेरोः शृङ्गे यथा सप्त पुर्यो भवन्ति तथा हि
 लिङ्काभ्याः सकाम्याश्च भूलोकचक्रे सप्त पुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षा-
 द्ब्रह्मगोपालपुरी हीति सकाम्या लिङ्काभ्यां च देवानां सर्वेषां भूतानां च
 भवति ॥ ११ ॥ यथा हि वै सरस्ति पद्मं तिष्ठति तथा भूम्यां हि तिष्ठतीति ।
 चक्रेण रक्षिता हि वै मथुरा तस्माद्गोपालपुरी हि भवतीति । बृहद्बृहद्वनं
 मधोर्मधुवनं तालस्तालवनं काम्यः कामवनं बहुलो बहुलवनं कुमुदः कुमुद-
 वनं खदिरः खदिरवनं भद्रो भद्रवनं आण्डीर इति आण्डीरवनं श्रीवनं
 लोहवनं वृन्दया वृन्दावनमेवैरावृता पुरी भवति ॥ १२ ॥ तत्र तेवेवं

गहनेष्वेव देवा मनुष्या गन्धर्वा नागाः किंनरा गायन्तीति नृत्यन्तीति तञ्ज
द्वादशादित्या एकादश रुद्रा अष्टौ वसवः सप्त मुनयो ब्रह्मा नारदश्च पञ्च
विनायका वीरेश्वरो रुद्रेश्वरोऽम्बिकेश्वरो गणेश्वरो नीलकण्ठविश्वेश्वरो गोपाले-
श्वरो भद्रेश्वर एतदाद्यानि लिङ्गानि चतुर्विंशतिर्भवन्ति । द्वे वने स्तः कृष्णवनं
भद्रवनं तयोरन्तर्द्वादश वनानि पुण्यानि पुण्यतमानि तेष्वेव देवास्त्रिष्टन्ति
सिद्धाः सिद्धिं प्राप्तास्तत्र हि रामस्य रामा मूर्तिः प्रद्युम्नस्य प्रद्युम्नमूर्तिरनिरु-
द्धस्यानिरुद्धमूर्तिः कृष्णस्य कृष्णमूर्तिर्वनेष्वेव मधुरास्वेव द्वादश मूर्तयो भवन्ति
॥ १३ ॥ एकां हि रुद्रा यजन्ति द्वितीयां हि ब्रह्मा यजति तृतीयां हि ब्रह्मजा
यजन्ति चतुर्थीं मरुतो यजन्ति पञ्चमीं विनायका यजन्ति षष्ठीं वसवो यजन्ति
सप्तमीं मृषयो यजन्त्यष्टमीं गन्धर्वा यजन्ति नवमीं मत्सरसो यजन्ति दशमीं
हि दिवोऽन्तर्धाने तिष्ठत्येकादशयन्तरिक्षपदं गत्वा द्वादशीं तु भूम्यां तिष्ठति ता
हि ये जयन्ति ते मृत्युं तरन्ति मुक्तिं लभन्ते गर्भजन्मजरामरणतापप्रयात्मकं
दुःखं तरन्ति ॥ १४ ॥ प्रथमां मधुरां रम्यां सदा ब्रह्मादिसेविताम् । शङ्ख-
चक्रगदाशार्ङ्गरक्षितां मुशलादिभिः ॥ अत्रासौ संस्थितः कृष्णस्त्रिभिः शक्त्या
समाहितः । रामानिरुद्धप्रद्युम्नै रुक्मिण्या सहितो विभुः ॥ चतुःशब्दो
अवेदेको ह्योकारः समुदाहृतः । तस्मादेव परो रजस इति सोऽहमित्यवधार्य
गोपालोऽहमिति भावयेत् । स मोक्षमश्नुते स ब्रह्मत्वमधिगच्छति स ब्रह्मवि-
द्भवति गोपाक्षीवान्वा आत्मत्वेनासृष्टिपर्यन्तमालाति स गोपालो भवति
ह्यो तद्यत्तरत्सत्परं ब्रह्म कृष्णात्मको नित्यानन्दैकरूपः सोऽहम् । ॐ तद्रूपाल-
देव एव परं सत्यमबाधितं सोऽहमित्यात्मानमादाय मनसैक्यं कुर्यात्,
आत्मनो गोपालोऽहमिति भावयेत्स एवाव्यक्तोऽनन्तो नित्यो गोपालः ।
मधुरायां स्थितिर्ब्रह्मन्सर्वदा मे भविष्यति । शङ्खचक्रगदापद्मवनमालावृतस्तु
वै ॥ चित्स्वरूपं परं ज्योतिःस्वरूपं रूपवर्जितम् । सदा मां संस्मरन्ब्रह्मन्स्पर्द-
याति निश्चितम् ॥ मधुरामण्डले यस्तु जम्बुद्वीपस्थितोऽपि वा । योऽर्चयेत्प्र-
तिमां प्रीत्या स मे प्रियतरो भुवि ॥ १५ ॥ तस्यामधिष्ठितः कृष्णरूपी
पूज्यस्त्वया सदा । चतुर्धा चास्याधिकारिभेदत्वेन यजन्ति माम् ॥ युगावु-
वर्तिनो लोका यजन्तीह सुमेधसः ॥ गोपालं सानुजं रामं रुक्मिण्या सह
तत्परम् ॥ गोपालोऽहमजो नित्यः प्रद्युम्नोऽहं सनातनः । रामोऽहं ह्यनिरुद्धो-
ऽहमात्मानमर्चयेद्बुधः ॥ मयोक्तेन स्वधर्मेण निष्कामेण विभागशः ।

तैरयं पूजनीयो वै भद्रकृष्णो निवासिभिः ॥ तद्धर्मगतिहीना ये तस्यां मयि
 परायणाः । कलिना असिता ये वै तेषां तस्यामवस्थितिः ॥ यथा त्वं सह
 पुत्रैस्तु यथा रुद्रो गणैः सह । यथा श्रियाऽभियुक्तोऽहं तथा भक्तो मम
 प्रियः ॥ १६ ॥ स होवाचाब्जयोनिश्चतुर्भिर्देवैः कथमेको देवः स्यात् ।
 एकमक्षरं यद्विश्रुतं ह्यनेकाक्षरं कथं भूतं स होवाच । तं हि वै पूर्वं ह्येकमे-
 वाद्वितीयं ब्रह्मासीत्तस्मादव्यक्तं व्यक्तमेवाक्षरं तस्मादक्षरान्महान्महतो वा
 अहंकारस्तस्मादेवाहंकारात्पञ्च तन्मात्राणि तेभ्यो भूतानि तैरावृतमक्षरं भवति ।
 अक्षरोऽहमोकारोऽहमजरोऽभयोऽमृतो ब्रह्माभयं हि वै स मुक्तोऽह-
 मस्म्यक्षरोऽहमस्मि । सत्तामात्रं विश्वरूपं प्रकाशं व्यापकं तथा । एकमेवा-
 द्वयं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम् ॥ रोहिणीतनयो रामो अकाराक्षरसंभवः ।
 तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसंभवः ॥ प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धो वै मकाराक्षर-
 संभवः । अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ कृष्णात्मिका
 जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरुक्मिणी ॥ ब्रजस्त्रीजनसंभूतः श्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगतः ।
 प्रणवेन प्रकृतित्वं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ तस्मादोकारसंभूतो गोपालो विश्व-
 संस्थितिः । क्लीमोकारं च एकत्वं पठ्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ मधुरायां विशेषेण
 मां ध्यायन्मोक्षमश्नुते ॥ अष्टपत्रं विकसितं हृत्पद्मं तत्र संस्थितम् । दिव्यध्व-
 जातपत्रैस्तु चिह्नितं चरणद्वयम् । श्रीवत्सलान्धनं हृत्स्थं कौस्तुभं प्रभया
 युतम् ॥ चतुर्भुजं शङ्खचक्रशार्ङ्गपद्मगदान्वितम् । सुकेयूरान्वितं बाहुं कण्ठं
 मालासुशोभितम् ॥ द्युमकिरीटमभयं स्फुरन्मकरकुण्डलम् । हिरण्मयं
 सौम्यतनुं स्वभक्तायाभयप्रदम् ॥ ध्यायेन्मनसि मां नित्यं वेणुशृङ्गधरं तु वा ॥
 मध्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा । तत्सारभूतं यद्यस्यां मधुरा सा
 निगद्यते । अष्टदिक्पालिभिरभूमिपद्मं विकसितं जगत् ॥ संसारार्णवसंजातं
 सेवितं सममानसैः । चन्द्रसूर्याम्बरौचित्या ध्वजो मेरुर्हिरण्मयः ॥ आतपत्रं
 ब्रह्मलोकं ममोर्ध्वचरणः स्मृतम् । श्रीवत्सं च स्वरूपं च वर्तते लान्धनैः
 सह । श्रीवत्सलान्धनं तस्मात्कथ्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ येन सूर्याग्निवाक्चन्द्र-
 तेजसा स्वस्वरूपिणा । वर्तते कौस्तुभमणिं तं वदन्तीशमानिनः ॥ सत्त्वं
 रजस्तम इति अहंकारश्चतुर्विधः । पञ्चभूतात्मकः बाह्यः परो रजसि
 संस्थितः ॥ चलस्वरूपमत्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते । आद्या माया भवेच्छार्ङ्गं
 पद्मं विश्वं करे स्थितम् । आद्या त्रिधा गदा वेषा सर्वदा मे करे

अत्रा । धर्मार्थकामकेयूरौर्दिव्यैर्नित्यमवारितैः । कण्ठं तु निर्गुणं प्रोक्तं
 मात्यते माययाऽजया । माला निगद्यते ब्रह्मंस्त्व पुत्रैस्तु मानसैः ॥
 कूटस्थस्य स्वरूपं च किरीटं प्रवदन्ति माम् । अक्षरोत्तमं प्रस्फुर-
 त्तकुण्डलं युगुलं स्मृतम् ॥ ध्यायेन्मम प्रियो नित्यं स मोक्षमधि-
 गच्छति । स मुक्तो भवति तस्मै च आत्मानं ददामीति ॥ एतत्सर्वं
 अविष्यति मया प्रोक्तं विधे तव । स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणं तथा
 ॥ १७ ॥ स होवाचाब्जयोनिर्व्यक्तानां मूर्तीनां प्रोक्तानां कथं वाऽवधारणा
 भवन्ति कथं वा देवा यजन्ति रुद्रा यजन्ति ब्रह्मा यजति विनायका
 यजन्ति द्वादशादित्या यजन्ति वसवो यजन्त्यप्सरसो यजन्ति गन्धर्वा
 यजन्ति स्वपदं गताऽन्तर्धाने तिष्ठति कां मनुष्या यजन्ति । स होवाच तं तु
 ह वै नारायणो देवः । आद्या अव्यक्ता द्वादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु
 देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठति रुद्रेषु रौद्री ब्रह्मण्येव ब्राह्मी देवेषु दैवी
 मानसेषु मानसी विनायके विघ्ननाशिन्यादित्येषु ज्योतिर्गन्धर्वेषु गान्धर्व्य-
 प्सरःस्वेवं गौर्वसुष्वेवं काम्यान्तर्धाने प्रकाशन आदिर्भावा तिरोभावा
 केवला तु स्वपदे तिष्ठति तामसी सात्त्विकी राजसी मानुषी विज्ञानघन
 आनन्दघनः सच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति ॥ १८ ॥ ॐ टां प्राणात्मने
 टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै प्राणात्मने नमो नमः ॥ १ ॥ ॐ टां कृष्णाय
 गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै वै नमो नमः ॥ २ ॥
 ॐ टामपानात्मने टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै अपानात्मने नमो नमः ॥ ३ ॥
 ॐ टां कृष्णाय प्रद्युम्नायानिरुद्धाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै वै नमो नमः
 ॥ ४ ॥ ॐ टां व्यानात्मने टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै व्यानात्मने नमो नमः
 ॥ ५ ॥ ॐ टां कृष्णाय रामाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै वै नमो नमः
 ॥ ६ ॥ ॐ टामुदानात्मने टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै उदानात्मने नमो
 नमः ॥ ७ ॥ ॐ टां कृष्णाय देवकीनन्दनाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै वै
 नमो नमः ॥ ८ ॥ ॐ टां समानात्मने टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै समानात्मने
 नमो नमः ॥ ९ ॥ ॐ टां गोपालाय निजस्वरूपाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै
 वै नमो नमः ॥ १० ॥ ॐ टां योऽसौ प्रेयानात्मा गोपालः टां तत्सद्भूर्भुवः
 स्वस्त्यस्यै वै नमो नमः ॥ ११ ॥ ॐ टां योऽसाविन्द्रियात्मा गोपालः टां
 तत्सद्भूर्भुवः स्वस्त्यस्यै वै नमो नमः ॥ १२ ॥ ॐ टां योऽसौ भूनात्मा

गोपालः टां तत्सद्भुवः स्वस्त्यै वै नमो नमः ॥ १३ ॥ ॐ टां योऽसा-
 बुत्तमपुरुषो गोपालः टां तत्सद्भुवः स्वस्त्यै वै नमो नमः ॥ १४ ॥
 ॐ टां योऽसौ परब्रह्मगोपालः टां तत्सद्भुवः स्वस्त्यै वै नमो नमः
 ॥ १५ ॥ ॐ टां योऽसौ सर्वभूतात्मा गोपालः टां तत्सद्भुवः स्वस्त्यै वै
 नमो नमः ॥ १६ ॥ ॐ टां योऽसौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमतीत्य तुर्यातीतो
 गोपालः टां तत्सद्भुवः स्वस्त्यै वै नमो नमः ॥ १७ ॥ एको देवः
 सर्वभूतेषु गृहः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
 साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ रुद्राय नम आदित्याय नमो विनायकाय
 नमः सूर्याय नमो विद्यायै नमः । इन्द्राय नमोऽग्नये नमः पित्रे नमो निर्ऋ-
 तये नमो वरुणाय नमो मरुते नमः कुबेराय नम ईशानाय नमो ब्रह्मणे
 नमः सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । दत्त्वा स्तुतिं पुण्यतमां ब्रह्मणे स्वस्वरूपिणे ।
 कर्तृत्वं सर्वलोकानामन्तर्धाने बभूव सः ॥ ब्रह्मणो ब्रह्मपुत्रेभ्यो नारदास्तु श्रुतं
 यथा । तथा प्रोक्तं तु गान्धर्वि गच्छ त्वं स्वालयान्तिकं गच्छ त्वं
 स्वालयान्तिकमिति ॥ १९ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ १९ ॥

कृष्णोपनिषत् ॥ १०० ॥

यो रामः कृष्णतामेत्य सार्वार्त्म्यं प्राप्य लीलया ।

अतोषयद्देवमौनिपटलं तं नतोऽस्त्यहम् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

हरिः ॐ ॥ श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं
 मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः । तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान्वै गण्यन्ते
 आलिङ्गामो भवन्तमिति । भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ
 अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपा न स्त्रीश्च नो कुंरु । अन्योन्यविग्रहं धार्य तवाङ्गस्प-
 र्शनादिह । शश्वत्स्पर्शयिताऽस्माकं गृह्णीमोऽवतारान्वयम् ॥ १ ॥ रुद्रादीनां वचः
 श्रुत्वा प्रोवाच भगवान्स्थयम् । अङ्गसङ्गं करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम् ॥ २ ॥
 मोदितास्ते सुराः सर्वे कृतकृत्यार्थुना वयम् । यो नन्दः परमानन्दो यशोदा

मुक्तिगेहिनी ॥ ३ ॥ माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्त्वराजसतामसी । प्रोक्ता
 च सात्त्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी ॥ ४ ॥ तामसी दैत्यपक्षेषु माया
 त्रेधा ह्युदाहृता । अजेया वैष्णवी माया जप्येन च सुता पुरा ॥ ५ ॥ देवकी
 ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरूपगीयते । निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः
 ॥ ६ ॥ स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले । वने वृन्दावने क्रीडन्नोप-
 गोपीसुरैः सह ॥ ७ ॥ गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः ।
 वंशस्तु भगवान्नुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः ॥ ८ ॥ गोकुलं वनवैकुण्ठं ताप-
 सास्तत्र ते द्रुमाः । लोभक्रोधादयो दैत्याः कलिकालस्त्रिरस्कृतः ॥ ९ ॥
 गोपरूपो हरिः साक्षान्मायाविग्रहधारणः । दुर्बोधं कुहकं तस्य मायया
 मोहितं जगत् ॥ १० ॥ दुर्जया सा सुरैः सर्वैर्दृष्टिरूपो भवेद्विजः । रुद्रो
 येन कृतो वंशस्तस्य माया जगत्कथम् ॥ ११ ॥ बलं ज्ञानं सुराणां वै तेषां
 ज्ञानं हतं क्षणात् । शेषनागो भवेद्रामः कृष्णो ब्रह्मेन शाश्वतम् ॥ १२ ॥
 अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा । ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः
 स्त्रियः ॥ १३ ॥ द्वेषश्चाणूरमल्लोऽयं मत्सरो मुष्टिको जयः । दर्पः कुवल्या-
 पीडो गर्वो रक्षः खगो बकः ॥ १४ ॥ दया सा रोहिणी माता सत्यभामा
 धरेति वै । अघासुरो महान्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः ॥ १५ ॥ शमो
 मित्रः सुदामा च सत्याकूरोद्धवो दमः । यः शङ्खः स स्वयं विष्णुर्लक्ष्मीरूपो
 व्यवस्थितः ॥ १६ ॥ दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नो मेघघोषस्तु संस्मृतः । दुग्धो-
 दधिः कृतस्तेन भग्नभाण्डो दधिग्रहे ॥ १७ ॥ क्रीडते बालको भूत्वा पूर्वव-
 त्सुमहोदयौ । संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणाय च संस्थितः ॥ १८ ॥ कृपार्थं
 सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् । यत्तत्पृथुमीश्वरेणासीत्तच्चक्रं ब्रह्मरूपधृक्
 ॥ १९ ॥ जयन्तीसंभवो वायुश्चमरो धर्मसंशितः । यस्यासौ ज्वलनाभासः
 खड्गरूपो महेश्वरः ॥ २० ॥ कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा ।
 चक्रं शङ्खं च संसिद्धिं विन्दुं च सर्वमूर्धनि ॥ २१ ॥ यावन्ति देवरूपाणि
 वदन्ति विबुधा जनाः । नमन्ति देवरूपेभ्य एवमादि न संशयः ॥ २२ ॥
 गदा च कालिका साक्षात्सर्वशत्रुनिबर्हिणी । धनुः शार्ङ्गं स्वमाया च शर-
 त्कालः सुभोजनः ॥ २३ ॥ अढकाण्डं जगद्बीजं धृतं पाणौ खलीलया ।
 गरुडो वटभाण्डीरः सुदामा नारदो मुनिः ॥ २४ ॥ वृन्दा भक्तिः क्रिया
 बुद्धिः सर्वजन्तुप्रकाशिनी । तस्मान्न भिन्नं नाभिन्नमाभिर्भिन्नो न वै विभुः ॥

भूमावुत्तारितं सर्वं वैकुण्ठं स्वर्गवासिनाम् ॥ २५ ॥ सर्वतीर्थफलं लभते य
एवं वेद । देहवन्धाद्विमुच्यते इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरेति शान्तिः ॥

इति कृष्णोपनिषत्समाप्ता ॥ १०० ॥

याज्ञवल्क्योपनिषत् ॥ १०१ ॥

संन्यासज्ञानसंपन्ना यान्ति यद्वैष्णवं पदम् ।

तद्वै पदं ब्रह्मतत्त्वं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन्संन्यास-
मनुब्रूहीति कथं संन्यासलक्षणम् । स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं समाप्य
गृही भवेत् । गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव-
जेद्गृहाद्वा वनाद्वा । अथ पुनर्व्रती वाऽव्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा
उत्सन्नाग्निरनग्निः वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् । तदेके प्राजाप-
त्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति । अथवा न कुर्यादाग्नेय्यामेव कुर्यात् । अग्निर्हि
प्राणः । प्राणमेवैतया करोति । त्रैधातवीयामेव कुर्यात् । एतयैव त्रयो
धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति । अयं ते योनिर्ऋत्विजो यतो जातो
अरोचथाः । तं जानन्नश्न आरोहाथानो वर्धया रयिमित्यनेन मन्त्रेणा-
ग्निमाजिघ्रेत् । एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहे-
त्येवमेवैतदाग्रामादग्निमाहृत्य पूर्ववदग्निमाजिघ्रेत् । यदग्निं न विन्देदप्सु
शुहुयाद्वापो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति साज्यं
हविरनामयम् । मोक्षमन्नन्नय्येवं वेद तद्ब्रह्म तदुपासितव्यम् । शिक्षां यज्ञो-
पवीतं छित्त्वा संन्यस्तं मयेति त्रिवारमुच्चरेत् । एवमेवैतद्भगवन्निति वै याज्ञ-
वल्क्यः ॥ १ ॥ अथ हैममग्निः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं यज्ञोपवीती कथं ब्राह्मण इति ।
स होवाच याज्ञवल्क्य इदं प्रणवमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं य आत्मा । प्राश्याच-
म्यायं विधिरथ वा परिघ्राद्विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोही भैक्षमाणो
ब्रह्मभूयाय भवति । एष पन्थाः परिघ्राजकानां वीराध्वनि वाऽनाशके वापां
प्रवेशो वाग्निप्रवेशो वा महाप्रस्थाने वा । एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनेति

स संन्यासी ब्रह्मविदिति । एवमेवैष भगवन्निति वै याज्ञवल्क्य । तत्र परम-
 हंसा नाम संवर्तकारुण्येतेकेतुर्दूर्वासक्तभुनिदाधदत्तात्रेयशुक्लामदेवहारी-
 तकप्रभृतयोऽन्यक्तलिङ्गाऽन्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तः परस्त्रीपुर-
 पराञ्जुखास्त्रिदण्डं कमण्डलुं भुक्तपात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं बहिरन्त-
 श्रेत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् । यथा जातरूपधरा
 निर्द्वन्द्वा निम्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः प्राणसंधार-
 णार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समौ भूत्वा
 करपात्रेण वा कमण्डलुद्वकपो भैक्षमाचरन्नुदरमात्रसंग्रहः पात्रान्तरशून्यो
 जलस्थलकमण्डलुरवाधकरहःस्थलनिकेतनो लाभालाभौ समौ भूत्वा शून्या-
 गारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाभिहोत्रशालानदीपुलिनगिरिकु-
 हरकोटरकन्दरनिर्झरस्थण्डिलेऽप्वनिकेतनिवास्यप्रयत्नः शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः
 संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो नामेति । आशाम्बरो ननमस्कारो
 नदारपुत्राभिलापी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तकः परित्राद परमेश्वरो भवति । अत्रैते
 श्लोका भवन्ति—यो भवेत्पूर्वसंन्यासी तुल्यो वै धर्मतो यदि । तस्मै प्रणामः
 कर्तव्यो नेतराय कदाचन ॥ १ ॥ प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहो-
 त्सुकाः । संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते देवसंदूषिताशयाः ॥ २ ॥ नामादिभ्यः
 परे भूम्नि स्वाराज्ये चेत्स्थितोऽद्वये । प्रणमेत्कं तदात्मज्ञो न कार्यं कर्मणा
 तदा ॥ ३ ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति । प्रणमेद्दण्डवद्भूमावा-
 श्चण्डालगोखरम् ॥ ४ ॥ मांसपाञ्चालिकायास्तु यन्नलोकेऽङ्गपञ्जरे । स्नाय्व-
 स्थिग्रन्थिशालिन्यः स्त्रियः किमिव शोभनम् ॥ ५ ॥ त्वज्ज्ञांसरक्तवाष्पाभ्जु पृथक्कृ-
 त्वा विलोचने । समालोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि ॥ ६ ॥ मेरुशृङ्गतटो-
 ह्लासिगङ्गाजलरयोपमा । दृष्टा यस्मिन्मुने मुक्ताहारस्योह्लासशालिता ॥ ७ ॥
 श्मशानेषु दिगन्तेषु स एव ललनास्तनः । श्वभिरास्त्राद्यते काले लघुपिण्ड
 इवान्धसः ॥ ८ ॥ केशकजलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः । दुष्कृता-
 मिशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरम् ॥ ९ ॥ ज्वलना अतिदूरेऽपि सरसा अपि
 नीरसाः । स्त्रियो हि नरकामीनामिन्धनं चारु दारुणम् ॥ १० ॥ कामनाम्ना
 किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसः । नार्यो नरविहङ्गानामङ्गवन्धनवागुराः ॥ ११ ॥
 जन्मपह्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् । पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारीवडिश-

पिण्डिका ॥ १२ ॥ सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्रिकयानया । दुःखशृङ्खलया
 नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ १३ ॥ यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्व
 भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ १४ ॥ अल-
 भ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् । लब्धो हे गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते
 ॥ १५ ॥ जातस्य ग्रहरोगादि कुमारस्य च धूर्तता । उपनीतेऽप्यविद्यत्वमनु-
 द्राहश्च पण्डिते ॥ १६ ॥ यूनुश्च परदारादि दारिद्र्यं च कुटुम्बिनः । पुत्रदुःखस्य
 नास्त्यन्तो धनी चेन्म्रियते तदा ॥ १७ ॥ न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो
 यतिः । न च वाक्चपलश्चैव ब्रह्मभूतो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ रिपौ बद्धे स्वदेहे
 च समैकात्म्यं प्रपश्यतः । विवेकिनुः कुतः कोपः स्वदेहावयवेष्विव ॥ १९ ॥
 अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसङ्ग
 परिपन्थिनि ॥ २० ॥ नमोऽस्तु मम कोपाय स्वाश्रयज्वालिते भृशम् ।
 कोपस्य मम वैराग्यदायिने दोषबोधिने ॥ २१ ॥ यत्र सुप्ता जना नित्यं
 प्रबुद्धस्तत्र संयमी । प्रबुद्धा यत्र ते विद्वान्सुषुप्तिं याति योगिराद ॥ २२ ॥
 चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च । चित्तं चिदहमेते च लोका-
 श्चिदिति भावय ॥ २३ ॥ यतीनां तदुपादेयं पारहंस्यं परं पदम् । नातः
 परतरं किञ्चिद्विद्यते मुनिपुङ्गव ॥ २४ ॥ इत्युपनिषद् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति याज्ञवल्क्योपनिषत्समाप्ता ॥ १०१ ॥

वराहोपनिषद् ॥ १०२ ॥

श्रीमद्वराहोपनिषद्वेद्याखण्डसुखाकृति ।

त्रिपान्चारायणाख्यं तद्रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ ऋभुर्वै महामुनिर्देवमानेन द्वादशवत्सरं तपश्चचार । तद-
 वसाने वराहरूपी भगवान्प्रादुरभूत् । स होवाचोत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति ।
 सोदतिष्ठत् । तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्कामिभिर्यद्यत्कामितं तत्तत्त्वत्सका-
 शात्स्वप्नेऽपि न याचे । समस्तवेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि
 ब्रह्मादयः सुराः सर्वे त्वद्रूपज्ञानान्मुक्तिमाहुः । अतस्त्वद्रूपप्रतिपादिकां ब्रह्म-
 विद्यां ब्रूहीति होवाच । तथेति स होवाच वराहरूपी भगवान् । चतुर्विंशति-

तत्त्वानि केचिदिच्छन्ति वादिनः । केचित्पदत्रिंशत्तत्त्वानि केचित्पणवतीनि च ॥ १ ॥ तेषां क्रमं प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु । ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव श्रोत्रत्वग्लोचनादयः ॥ २ ॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव वाक्पाण्यङ्गयादयः क्रमात् । प्राणादयस्तु पञ्चैव पञ्च शब्दादयस्तथा ॥ ३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् । चतुर्विंशतितत्त्वानि तानि ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४ ॥ एतैस्तत्त्वैः समं पञ्चीकृतभूतानि पञ्च च । पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥ ५ ॥ देहत्रयं स्थूलसूक्ष्मकारणानि विदुर्बुधाः । अवस्थान्त्रितयं चैव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः ॥ ६ ॥ आहत्य तत्त्वजातानां षट्त्रिंशन्मुनयो विदुः । पूर्वोक्तैस्तत्त्वजातैस्तु समं तत्त्वानि योजयेत् ॥ ७ ॥ षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च । परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः ॥ ८ ॥ अशना च पिपासा च शोकमोहौ जरा मृतिः । एते षड्भूयः प्रोक्ताः षट्कोशानथ वच्मि ते ॥ ९ ॥ त्वक्च रक्तं मांसमेदोमज्जास्थीनि निबोधत । कामक्रोधौ लोभमोहौ मदो मांसस्यमेव च ॥ १० ॥ एतेऽरिषड्भा विश्वश्च तैजसः प्राज्ञ एव च । जीवत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि च गुणत्रयम् ॥ ११ ॥ प्रारब्धागाम्यर्जितानि कर्मत्रयमितीरितम् । वचनादानगमनविसर्गानन्दपञ्चकम् ॥ १२ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च अभिमानोऽवधारणा । मुदिता करुणा मैत्री उपेक्षा च चतुष्टयम् ॥ १३ ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रोऽमृत्युकाः । तथा चन्द्रश्चतुर्वक्त्रो रुद्रः क्षेत्रज्ञ ईश्वरः ॥ १४ ॥ आहत्य तत्त्वजातानां षण्णवत्यस्तु कीर्तिताः । पूर्वोक्ततत्त्वजातानां वैलक्षण्यमनामयम् ॥ १५ ॥ वराहरूपिणं मां ये भजन्ति मयि भक्तिः । विमुक्ताज्ञानतत्कार्या जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥ १६ ॥ ये षण्णवतितत्त्वज्ञा यत्र कुत्राश्रमे रताः । जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋमुर्नाम महायोगी क्रोडरूपं रमापतिम् । वरिष्ठां ब्रह्मविद्यां त्वमधीहि भगवन्मम ॥ १ ॥ एवं स पृष्टो भगवान्प्राह भक्तार्तिभञ्जनः । स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा गुरुतोषणात् ॥ २ ॥ साधनं प्रभवत्युत्सां वैराग्यादिचतुष्टयम् । नित्यानित्यविवेकश्च इहामुत्र विरागता ॥ ३ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्मुमुक्षा तां समभ्यसेत् । एवं जितेन्द्रियो भूत्वा सर्वत्र ममतामिति ॥ ४ ॥ विहाय साक्षिचैत्रन्ये मयि कुर्याद्दहंमिति । दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं तत्रापि नरदिग्रहम्

॥५॥ ब्राह्मण्यं च महाविष्णोर्वेदान्तश्रवणादिना । अतिवर्णाश्रमं रूपं सच्चिदा-
नन्दलक्षणम् ॥६॥ यो न जानाति सोऽविद्वान्कदा मुक्तो भविष्यति । अहमेव
सुखं नान्यदन्यच्चैत्रैव तत्सुखम् ॥७॥ अमदर्थं न हि प्रेयो मदर्थं न स्वतः प्रियम् ।
परप्रेमास्पदतया मा न भूवमहं सदा ॥ ८ ॥ भूयासमिति यो द्रष्टा सोऽहं
विष्णुर्मुनीश्वर । न प्रकाशोऽहमित्युक्तिर्यत्प्रकाशैकबन्धना ॥ ९ ॥ स्वप्रकाशं
तमात्मानमप्रकाशः कथं स्पृशेत् । स्वयं भातं निराधारं ये जानन्ति सुनि-
श्चितम् ॥ १० ॥ ते हि विज्ञानसंपन्ना इति मे निश्चिता मतिः । स्वपूर्णात्मा-
तिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ॥ ११ ॥ न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं
विलक्षणः । अज्ञानान्धतमोरूपं कूर्मधर्मादिलक्षणम् ॥ १२ ॥ स्वयंप्रकाश-
मात्मानं नैव मां स्पृष्टुमर्हति । सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम्
॥ १३ ॥ ब्रह्मरूपतया पश्यन्ब्रह्मैव भवति स्वयम् । आसमानमिदं सर्वं मान-
रूपं परं पदम् ॥ १४ ॥ पश्यन्वेदान्तमानेन सद्य एव विमुच्यते । देहात्म-
ज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् ॥ १५ ॥ आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छ-
न्नपि मुच्यते । सत्यज्ञानानन्दपूर्णलक्षणं तमसः परम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मानन्दं
सदा पश्यन्कथं बध्येत कर्मणः । त्रिधामसाक्षिणं सत्यज्ञानानन्दादिलक्षणम्
॥ १७ ॥ त्वमहंशब्दलक्ष्यार्थमसक्तं सर्वदोषतः । सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञान-
चक्षुर्निरीक्षते ॥ १८ ॥ अज्ञानचक्षुर्नैक्षेत भास्वन्तं आनुमन्धवत् । प्रज्ञानमेव
तद्ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् ॥ १९ ॥ एवं ब्रह्मपरिज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत् ।
तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्धनम् ॥ २० ॥ विदित्वा स्वात्मनो रूपं न
विभेति कुतश्चन । चिन्मात्रं सर्वगं नित्यं संपूर्णं सुखमद्वयम् ॥ २१ ॥ साक्षाद्ब्रह्मैव
नान्योऽस्तीत्येवं ब्रह्मविदां स्थितिः । अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं
जगत् ॥ २२ ॥ अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम् । अनन्ते
सच्चिदानन्दे मयि वाराहरूपिणि ॥ २३ ॥ स्थितेऽद्वितीयभावेः स्यात्को बद्धः
कश्च मुच्यते । स्वस्वरूपं तु चिन्मात्रं सर्वदा सर्वदेहिनाम् ॥ २४ ॥ नैव
देहादिसंघातो घटवदृशिगोचरः । स्वात्मनोऽन्यदिवाभातं चराचरमिदं
जगत् ॥ २५ ॥ स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा तदस्मीति विभावय । स्वस्वरूपं स्वयं
अङ्गे नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः ॥ २६ ॥ अस्ति चेदस्ति तारूपं ब्रह्मैवास्तित्व-
लक्षणम् । ब्रह्मविज्ञानसंपन्नः प्रतीतमखिलं जगत् ॥ २७ ॥ पश्यन्नपि सदा
नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक् । मत्स्वरूपपरिज्ञानात्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥

यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विहीनं सर्वसाक्षिणम् । परमार्थैकविज्ञानं सुखात्मानं
 स्वयंप्रभम् ॥ २९ ॥ स्वस्वरूपतया सर्वं वेदं स्वानुभवेन यः । स धीरः स तु
 विज्ञेयः सोऽहंतत्त्वं ऋभो भव ॥ ३० ॥ अतः प्रपञ्चानुभवः सदा न हि
 स्वरूपबोधानुभवः सदा खलु । इति प्रपञ्चानुपरिपूर्णवेदनो न बन्धमुक्तो न च
 बद्ध एव तु ॥ ३१ ॥ स्वस्वरूपानुसंधानादृत्यन्तं सर्वसाक्षिणम् । सुहूर्तं
 चिन्तयेन्मां यः सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ सर्वभूतान्तरस्थाय नित्यमुक्त-
 चिदात्मने । प्रत्यक्चैतन्यरूपाय मह्यमेव नमो नमः ॥ ३३ ॥ त्वं वाऽहमस्मि
 भगवो देव तेऽहं वै त्वमसि । तुभ्यं मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं चिदात्मने
 ॥ ३४ ॥ नमो मह्यं परेशाय नमस्तुभ्यं शिवाय च । किं करोमि क्व गच्छामि
 किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ ३५ ॥ यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुजा
 यथा । अन्तःसङ्गं बहिःसङ्गमात्मसङ्गं च यस्त्यजेत् । सर्वसङ्गनिवृत्तात्मा स
 मामेति न संशयः ॥ ३६ ॥ अहिरिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः कुणपमिव
 सुनारीं त्यक्तुकामो विरागी । विषमिव विषयादीन्मन्यमानो दुरन्ताङ्गगति
 परमहंसो वासुदेवोऽहमेव ॥ ३७ ॥ इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते ।
 अहं सत्यं परं ब्रह्म मत्तः किञ्चिन्न विद्यते ॥ ३८ ॥ उप ससीपे यो वासो
 जीवात्मपरमात्मनोः । उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम् ॥ ३९ ॥
 कायशोषणमात्रेण का तत्र ह्यविवेकिनाम् । बल्मीकताडनादेव मृतः किं नु
 महोरगः ॥ ४० ॥ अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेदं परोक्षज्ञानमेव तत् । अहंब्रह्मेति
 चेद्वेदं साक्षात्कारः स उच्यते ॥ ४१ ॥ यस्मिन्काले स्वमात्मानं योगी जानाति
 केवलम् । तस्मात्कालात्समाारभ्य जीवन्मुक्तो भवेदसौ ॥ ४२ ॥ अहंब्रह्मेति
 नियतं मोक्षहेतुर्महात्मनाम् । द्वे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममेति ममेति च
 ॥ ४३ ॥ ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते । बाह्यचिन्ता न कर्तव्या
 तथैवान्तरचिन्तिका । सर्वचिन्तां समुत्सृज्य स्वस्थो भव सदा ऋभो ॥ ४४ ॥
 संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रं संकल्पमात्रकलने हि जगद्विलासः । संकल्प-
 मात्रमिदमुत्सृज्य निर्विकल्पमाश्रित्य मामकपदं हृदि भावयस्व ॥ ४५ ॥ मच्चि-
 न्तनं मत्कथनमन्योन्यं मत्प्रभाषणम् । मदेकपरमो भूत्वा कालं नय महा-
 मते ॥ ४६ ॥ चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च । चित्त्वं चिदहमेते
 च लोकाश्चिदिति भावय ॥ ४७ ॥ रागं नीरागतां नीत्वा निर्लेपो भव
 सर्वदा । अज्ञानजन्यकर्त्रादिकारकोत्पन्नकर्मणा ॥ ४८ ॥ श्रुत्युत्पन्नात्मविज्ञान-

प्रदीपो बाध्यते कथम् । अनात्मतां परित्यज्य निर्विकारो जगत्स्थितौ ॥ ४९ ॥
 एकनिष्ठतयान्तःस्थसंविन्मात्रपरो भव । घटाकाशमठाकाशौ महाकाशे प्रतिष्ठितौ
 ॥ ५० ॥ एवं मयि चिदाकाशे जीवेशौ परिकल्पितौ । या च प्रागात्मनो माया
 तथान्ते च तिरस्कृता ॥ ५१ ॥ ब्रह्मवादिभिरुद्धीता सा मायेति विवेकतः । माया-
 तत्कार्यविलये नेश्वरत्वं न जीवता ॥ ५२ ॥ ततः शुद्धश्चिदेवाहं न्योमवशिरूपा-
 धिकः । जीवेश्वरादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम् ॥ ५३ ॥ ईक्षणादिप्रवेशान्ता
 सृष्टिरीशेन कल्पिता । जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारो जीवकल्पितः ॥ ५४ ॥
 त्रिणाचिकादियोगान्ता ईश्वरभ्रान्तिमाश्रिताः । लोकायतादिसांख्यान्ता
 जीवविभ्रान्तिमाश्रिताः ॥ ५५ ॥ तस्मान्मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवाद्योः ।
 कार्या किंतु ब्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विचार्यताम् ॥ ५६ ॥ अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न
 जानन्ति यथा तथा । भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क मुक्तिः केह वा सुखम्
 ॥ ५७ ॥ उत्तमाधमभावश्चेत्तेषां स्यादस्ति तेन किम् । स्वप्नस्थराज्यभिक्षाभ्यां
 प्रबुद्धः स्पृशते खलु ॥ ५८ ॥ अज्ञाने बुद्धिविलये निद्रा सा भण्यते बुधैः ।
 विलीनाज्ञानतत्कार्ये मयि निद्रा कथं भवेत् ॥ ५९ ॥ बुद्धेः पूर्णविकासोऽयं
 जागरः परिकीर्त्यते । विकारादिविहीनत्वाज्जागरो मे न विद्यते ॥ ६० ॥
 सूक्ष्मनाडिषु संचारो बुद्धेः स्वप्नः प्रजायते । संचारधर्मरहिते मयि स्वप्नो
 न विद्यते ॥ ६१ ॥ सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृते । स्वरूपं महदा-
 नन्दं भुङ्क्ते विश्वविवर्जितः ॥ ६२ ॥ अविशेषेण सर्वं तु यः पश्यति चिदन्व-
 यात् । स एव साक्षाद्विज्ञानी स शिवः स हरिर्विधिः ॥ ६३ ॥ दीर्घस्वप्नमिदं
 यत्तदीर्घं वा चित्तविभ्रमम् । दीर्घं वापि मनोराज्यं संसारं दुःखसागरम् ।
 सुप्तेरुत्थाय सुष्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम् ॥ ६४ ॥ आरोपितस्य जगतः
 प्रविलापनेन चित्तं मदात्मकतया परिकल्पितं नः । शत्रून्निहत्य गुरुष्वङ्गणा-
 न्निपाताद्बन्धद्विपो भवति केवलमद्वितीयः ॥ ६५ ॥ अद्यात्समेतु वपुराशशि-
 तारमास्तां कस्तावतापि मम चिद्वपुषो विशेषः । कुम्भे विनश्यति चिरं सम-
 चस्थिते वा कुम्भाम्बरस्य नहि कोऽपि विशेषलेशः ॥ ६६ ॥ अहिनित्व्वयनी
 सर्पनिर्मोको जीववर्जितः । वल्मीके पतितस्तिष्ठेत्तं सर्पो नाभिमन्यते ॥ ६७ ॥
 एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभिमन्यते । प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्या-
 ज्ञाने सहेतुके । नेति नेतीति रूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ॥ ६८ ॥ शास्त्रेण

न स्यात्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं पश्यति चापरोक्षम् । प्रारब्धनाशात्प्रतिभान-
नाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया ॥ ६९ ॥ ब्रह्मत्वे योजिते स्वामिजीव-
भावो न गच्छति । अद्वैते बोधिते तत्त्वे वासना विनिवर्तते ॥ ७० ॥ प्रार-
ब्धान्ते देहहानिर्मायेति क्षीयतेऽखिला । अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रूपं ब्रह्म
तद्भवेत् ॥ ७१ ॥ भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम् । मरुभूमौ जलं
सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् । जगन्नयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥ ७२ ॥
अज्ञानमेव न कुतो जगतः प्रसङ्गो जीवेशदेक्षिकविकल्पकथातिदूरे । एकान्त-
केवलचिदेकरसस्वभावे ब्रह्मैव केवलमहं परिपूर्णमस्मि ॥ ७३ ॥ बोधचन्द्रमसि
पूर्णविग्रहे मोहराहुमुपितात्मतेजसि । ज्ञानदानयजनादिकाः क्रिया मोचना-
वधि बृथैव तिष्ठते ॥ ७४ ॥ सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः ।
तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरिति कथ्यते ॥ ७५ ॥ दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं
तत्त्वदर्शनम् । दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ ७६ ॥ उत्पन्न-
शक्तिबोधस्य त्यक्तनिःशेषकर्मणः । योगिनः सहजावस्था स्वयमेव प्रकाशते
॥ ७७ ॥ रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः । रसो बद्धो मनो बद्धं किं न
सिञ्छति भूतले ॥ ७८ ॥ मूर्च्छितो हरति व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां धत्ते ब्रह्मत्वं रसचेतसि ॥ ७९ ॥ इन्द्रियाणां मनो नाथो
मनोनाथस्तु मारुतः । मारुतस्य लयो नाथस्तन्नाथं लयमाश्रय ॥ ८० ॥
निश्चेष्टो निर्विकारश्च लयो जीवति योगिनाम् । उच्छिन्नसर्वसंकल्पो निःशे-
षाशेषचेष्टितः । स्वावगम्यो लयः कोऽपि मनसां वागगोचरः ॥ ८१ ॥
पुद्गलानुपुद्गलविषयेक्षणतत्परोऽपि ब्रह्मावलोकनधियं न जहाति योगी । सङ्गीत-
ताललयवाद्यवशं गतापि मौलिस्थकुम्भपरिरक्षणधीर्नटीव ॥ ८२ ॥ सर्व-
चिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा । नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमि-
च्छता ॥ ८३ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नहि नानास्वरूपं स्यादेकं वस्तु कदाचन । तस्मादखण्ड एवास्मि यन्मद-
न्यन्न किंचन ॥ १ ॥ दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्नं तद्भवेत् । नित्यशुद्धवि-
सृक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् । सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ २ ॥
आनन्दरूपोऽहमखण्डबोधः परात्परोऽहं घनचित्प्रकाशः । मेधा यथा व्योम
न च स्पृशन्ति संसारदुःखानि न मां स्पृशन्ति ॥ ३ ॥ सर्वं सुखं विद्धि

सुदुःखनाशात्सर्वं च सद्रूपमसत्यनाशात् । चिद्रूपमेव प्रतिभानयुक्तं तस्माद-
खण्डं मम रूपमेतत् ॥ ४ ॥ न हि जनिर्मरणं गमनागमौ न च मलं विमलं
न च वेदनम् । चिन्मयं हि सकलं विराजते स्फुटतरं परमस्य तु योगिनः
॥ ५ ॥ सत्यचिद्धनमखण्डमद्वयं सर्वदृश्यरहितं निरामयम् । यत्पदं विमलम-
द्वयं शिवं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय ॥ ६ ॥ जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं
जातिनीतिकुलगोत्रदूरगम् । चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणं तत्सदाऽहमिति मौन-
माश्रय ॥ ७ ॥ पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम् । अद्वितीय-
परसंविदंशकं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय ॥ ८ ॥ केनाप्यबाधितत्वेन त्रिकाले-
ऽप्येकरूपतः । विद्यमानत्वमस्येतत्सद्रूपत्वं सदा मम ॥ ९ ॥ निरुपाधि-
कनित्यं यत्सुप्तौ सर्वसुखात्परम् । सुखरूपत्वमस्येतदानन्दत्वं सदा मम
॥ १० ॥ दिनकरकिरणैर्हि शार्वरं तमो निविडतरं झटिति प्रणाशमेति ।
घनतरभवकारणं तमो यद्धरिदिनकृत्प्रभया न चान्तरेण ॥ ११ ॥ मम चरण-
स्पर्शेन पूजया च स्वकृतमसः परिमुच्यते हि जन्तुः । न हि मरणप्रभव-
प्रणाशहेतुर्मम चरणस्पर्शनादितेऽस्ति किञ्चित् ॥ १२ ॥ आदरेण यथा स्तौति
धनवन्तं धनेच्छया । तथा चेद्विश्वकर्तारं को न मुच्येत बन्धनात् ॥ १३ ॥
आदित्यसंनिधौ लोकश्चेष्टते स्वयमेव तु । तथा मत्संनिधावेव समस्तं चेष्टते
जगत् ॥ १४ ॥ शुक्तिकाया यथा तारं कल्पितं मायया तथा । महदादि-
जगन्मायामयं मय्येव केवलम् ॥ १५ ॥ चण्डालदेहे पश्चादिस्थावरे ब्रह्म-
विग्रहे । अन्येषु तारतम्येन स्थितेषु न तथा ह्यहम् ॥ १६ ॥ विनष्टदिग्भ्रमस्या-
पि यथापूर्वं विभाति दिक् । तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्मे भाति तन्न हि
॥ १७ ॥ न देहो नेन्द्रियप्राणो न मनोबुद्ध्यहंकृति । न चित्तं नैव माया च
न च व्योमादिकं जगत् ॥ १८ ॥ न कर्ता नैव भोक्ता च न च भोजयिता
तथा । केवलं चित्सदानन्दब्रह्मैवाहं जनार्दनः ॥ १९ ॥ जलस्य चलनादेव
चञ्चलत्वं यथा रवेः । तथाऽहंकारसंबन्धादेव संसार आत्मनः ॥ २० ॥
चित्तमूलं हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् । हन्त चित्तमहत्तायां कैषा विश्वासता
तव ॥ २१ ॥ क धनानि महीपानां ब्राह्मणः क जगन्ति वा । प्राक्तनानि
प्रयातानि गताः सर्गपरम्पराः । कोटयो ब्रह्मणां याता भूपा नष्टाः पराग-
वत् ॥ २२ ॥ स चाध्यात्माभिमानोऽपि विदुषोऽप्यासुरत्वतः । विदुषोऽप्यासुर-

श्रेत्स्यान्निष्फलं तत्त्वदर्शनम् ॥ २३ ॥ उत्पाद्यमाना रागाद्यः विवेकज्ञान-
वह्निना । यदा तदैव दह्यन्ते कुतस्तेषां प्ररोहणम् ॥ २४ ॥ यथा सुनिपुणः
सम्यक् परदोषेक्षणे रतः । तथा चेन्निपुणः स्वेपु को न मुच्येत बन्धनान्
॥ २५ ॥ अनात्मविदमुक्तोऽपि सिद्धिजालानि वान्छति । द्रव्यमन्नक्रियाकाल-
युक्त्याप्नोति मुनीश्वर ॥ २६ ॥ नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो ह्यात्ममात्रदृक् ।
आत्मनाऽऽत्मनि संतुष्टो नाविद्यामनुधावति ॥ २७ ॥ ये केचन जगन्नावास्ता-
नविद्यामयान्विदुः । कथं तेषु किलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्यो निमज्जति ॥ २८ ॥
द्रव्यमन्नक्रियाकालयुक्तयः साधुसिद्धिदाः । परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति
काश्चन ॥ २९ ॥ सर्वेच्छाकलनाशान्तावात्मलाभोदयाभिधः । स पुनःसिद्धि-
वान्छायां कथमर्हस्यचित्ततः ॥ ३० ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ ह ऋषेः भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ जीवन्मुक्तिलक्षणमनुब्रूहीति ।
तथेति स होवाच । सप्तभूमिषु जीवन्मुक्ताश्चत्वारः । शुभेच्छा प्रथमा भूमिका
भवति । विचारणा द्वितीया । तनुमानसी तृतीया । सत्त्वापत्तिस्तुरीया ।
असंसक्तिः पञ्चमी । पदार्थभावना षष्ठी । तुरीयया सप्तमी । प्रणवात्मिका
भूमिकाऽकारोकारमकारार्धमात्रात्मिका । स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभेदेनाकारा-
दयश्चतुर्विधाः । तदवस्था जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयाः । अकारस्थूलांशे जाग्र-
द्विश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तैजसः । बीजांशे तत्प्राज्ञः । साक्ष्यंशे तत्तुरीयः । उकार-
स्थूलांशे स्वप्नविश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तैजसः । बीजांशे तत्प्राज्ञः । साक्ष्यंशे तत्तु-
रीयः । मकारस्थूलांशे सुषुप्तविश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तैजसः । बीजांशे तत्प्राज्ञः ।
साक्ष्यंशे तत्तुरीयः । अर्धमात्रास्थूलांशे तुरीयविश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तैजसः ।
बीजांशे तत्प्राज्ञः । साक्ष्यंशे तुरीयतुरीयः । अकारतुरीयांशाः प्रथमद्वितीय-
तृतीयभूमिकाः । उकारतुरीयांशा चतुर्थी भूमिका । मकारतुरीयांशा पञ्चमी ।
अर्धमात्रातुरीयांशा षष्ठी । तदतीता सप्तमी । भूमित्रयेषु विहरन्मुमुक्षुर्भवति ।
तुरीयभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्भवति । पञ्चमभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्विरो भवति ।
षष्ठभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरीयान्भवति । सप्तमभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरिष्ठो
भवति । तत्रैते श्लोका भवन्ति—ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ १ ॥ सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततो-

ऽसंसक्तिनामिका । पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ २ ॥
 स्थितः किंमूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः । वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभे-
 च्छेत्युच्यते बुधैः ॥ ३ ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् । सदाचार-
 प्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ ४ ॥ विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु
 रक्तता । यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी ॥ ५ ॥ भूमिकात्रितया-
 भ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्धशात् । सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ६ ॥
 दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या । रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ता संसक्ति-
 नामिका ॥ ७ ॥ भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम् । आभ्यन्त-
 राणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ८ ॥ परप्रयुक्तेन चिरं प्रत्ययेनावबो-
 धनम् । पदार्थभावना नाम षष्ठी भवति भूमिका ॥ ९ ॥ षड्भूमिकाचिरा-
 भ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात् । यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥ १० ॥
 शुभेच्छादित्रयं भूमिभेदाभेदयुतं स्मृतम् । तथावद्वेद बुद्धेदं जगज्जाग्रति
 दृश्यते ॥ ११ ॥ अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते । पश्यन्ति स्वप्नव-
 ल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः ॥ १२ ॥ विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते ।
 सत्त्वावशेष एवास्ते हे निदाघ दढीकुरु ॥ १३ ॥ पञ्चभूमिं समारूढ सुपुसि-
 पदनामिकाम् । शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके ॥ १४ ॥ अन्तर्मुखतया
 नित्यं बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् । परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥ १५ ॥
 कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग्विवासनः । सप्तमी गाढसुखाख्या क्रम-
 प्राप्ता पुरातनी ॥ १६ ॥ यत्र नासन्न सद्रूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः । केवलं
 क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः ॥ १७ ॥ अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्य-
 कुम्भ इवाम्बरे । अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ॥ १८ ॥ मा भव
 ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव । भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं
 तन्मयो भव ॥ १९ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रथ-
 माभासमात्मानं केवलं भज ॥ २० ॥ यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि
 च । अस्तङ्गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २१ ॥ नोदेति नास्तमा-
 याति सुखे दुःखे मनःप्रभा । यथाप्राप्तस्थितिर्वस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २२ ॥
 यो जागर्ति सुपुसिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते । यस्य निर्वासनो बोधः स
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २३ ॥ रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि । योऽन्तर्व्यो-
 मवदच्छन्नः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २४ ॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य
 न लिप्यते । कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २५ ॥ यस्माब्धो-

द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २६ ॥ यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः । परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २७ ॥ प्रजहाति यदा कामान्सर्वाश्चित्तगतान्मुने । मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २८ ॥ चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने । अक्षुब्धचित्तो विश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २९ ॥ इदं जगदहं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् । यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३० ॥ सद्ब्रह्मणि स्थिरे स्फारे पूर्णे विषयवर्जिते । आचार्यशास्त्रमार्गेण प्रविश्याशु स्थिरो भव ॥ ३१ ॥ शिवो गुरुः शिवो वेदः शिवो देवः शिवः प्रभुः । शिवोऽस्म्यहं शिवः सर्वं शिवादन्यन्न किंचन ॥ ३२ ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्यायाद्बहुञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ ३३ ॥ शुको मुक्तो वामदेवोऽपि मुक्तस्ताभ्यां विना मुक्तिभाजो न सन्ति । शुक्रमार्गं येऽनुसरन्ति धीराः सद्यो मुक्तास्ते भवन्तीह लोके ॥ ३४ ॥ वामदेवं येऽनुसरन्ति नित्यं मृत्वा जनित्वा च पुनःपुनस्तत् । ते वै लोके क्रममुक्ता भवन्ति योगैः सांख्यैः कर्मभिः सत्त्वयुक्तैः ॥ ३५ ॥ शुक्रश्च वामदेवश्च द्वे सृती देवनिर्मिते । शुको विहङ्गमः प्रोक्तो वामदेवः पिपीलिका ॥ ३६ ॥ अतद्वावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन वा । महावाक्यविचारेण सांख्ययोगसमाधिना ॥ ३७ ॥ विदित्वा स्वात्मनो रूपं संप्रज्ञातसमाधितः । शुक्रमार्गेण विरजाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ३८ ॥ यमाद्यासनजायासहठाभ्यासात्पुनःपुनः । विघ्नबाहुल्यसंजात अणिमादिवशादिह ॥ ३९ ॥ अलब्ध्वापि फलं सम्यक्पुनर्भूत्वा महाकुले । पुनर्वासनयैवायं योगाभ्यासं पुनश्चरन् ॥ ४० ॥ अनेकजन्माभ्यासेन वामदेवेन वै पथा । सोऽपि मुक्तिं समाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४१ ॥ द्वाविमावपि पन्थानौ ब्रह्मप्राप्तिकरौ शिवौ । सद्योमुक्तिप्रदश्चैकः क्रममुक्तिप्रदः परः । अत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४२ ॥ यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते । तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४३ ॥ खेचरा भूचराः सर्वे ब्रह्मविहृष्टिगोचराः । सद्य एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरधैः ॥ ४४ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ हैनं ऋभुं भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ योगाभ्यासविधिमनुब्रूहीति । तथेति स होवाच । पञ्चभूतात्मको देहः पञ्चमण्डलपूरितः । काठिन्यं

पृथिवीमेका पानीयं तद्भवाकृति ॥ १ ॥ दीपनं च भवेत्तेजः प्रचारो वायु-
लक्षणम् । आकाशः सत्त्वतः सर्वं ज्ञातव्यं योगमिच्छता ॥ २ ॥ षट्शतान्यधि-
कान्यत्र सहस्राण्येकविंशतिः । अहोरात्रवहैः श्वासैर्वायुमण्डलघाततः ॥ ३ ॥
तत्पृथ्वीमण्डले क्षीणे बलिरायाति देहिनाम् । तद्भवापो गणापाये केशाः
स्युः पाण्डुराः क्रमात् ॥ ४ ॥ तेजःक्षये क्षुधा कान्तिर्नश्यते मारुतक्षये ।
वेषथुः संभवेन्नित्यं नाम्भसेनैव जीवति ॥ ५ ॥ इत्थंभूतं क्षयान्नित्यं
जीवितं भूतधारणम् । उड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखराः ॥ ६ ॥
उड्डियाणं तदेव स्यात्तत्र बन्धोऽभिधीयते । उड्डियाणो ह्यसौ बन्धो मृत्यु-
मातङ्गकेसरी ॥ ७ ॥ तस्य मुक्तिस्तनोः कायात्तस्य बन्धो हि दुष्करः ।
असौ तु चालते कुक्षौ वेदना जायते शृशम् ॥ ८ ॥ न कार्या क्षुधि-
तेनापि नापि विण्मूत्रवेगिना । हितं सितं च भोक्तव्यं स्तोकं स्तोकमनेकधा
॥ ९ ॥ मृदुमध्यममन्त्रेषु क्रमान्मन्त्रं लयं हठम् । लयमन्त्रहठा योगा योगो
ह्यष्टाङ्गसंयुतः ॥ १० ॥ यमश्च नियमश्चैव तथा चासनमेव च । प्राणायाम-
स्तथा पश्चात्प्रत्याहारस्तथा परम् ॥ ११ ॥ धारणा च तथा ध्यानं समाधि-
श्चाष्टमो भवेत् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ॥ १२ ॥ क्षमा
धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश । तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वर-
पूजनम् ॥ १३ ॥ सिद्धान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च जपो व्रतम् । एते हि नियमाः
प्रोक्ता दशधैव महामते ॥ १४ ॥ एकादशासनानि स्युश्चक्रादि मुनिसत्तम । चक्रं
पद्मासनं कूर्मं मयूरं कुकुटं तथा ॥ १५ ॥ वीरासनं स्वस्तिकं च भद्रं सिंहासनं
तथा । मुक्तासनं गोमुखं च कीर्तितं योगवित्तमैः ॥ १६ ॥ सव्योरु दक्षिणे
गुल्फे दक्षिणं दक्षिणेतरे । निदध्यादङ्गुकायस्तु चक्रासनमिदं मतम् ॥ १७ ॥
पूरकः कुम्भकस्तद्वद्वेचकः पूरकः पुनः । प्राणायामः स्वनाडीभिस्तस्मान्नाडीः
प्रचक्षते ॥ १८ ॥ शरीरं सर्वजन्तूनां षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् । तन्मध्ये पायु-
देशात्तु द्वाङ्गुलात्परतः परम् ॥ १९ ॥ मेढ्रदेशादधस्तात्तु द्वाङ्गुलान्मध्यमुच्यते ।
मेढ्राक्षताङ्गुलादूर्ध्वं नाडीनां कन्दमुच्यते ॥ २० ॥ चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुल-
मायतम् । अण्डाकारं परिवृतं मेदोमज्जास्थिशोणितैः ॥ २१ ॥ तत्रैव
नाडीचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम् । शरीरं त्रियते येन वर्तते तत्र कुण्डली
॥ २२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्ना या वदनेन पिधाय सा । अलम्बुता सुषुम्नायाः
कुहूर्नाडो वसत्यसौ ॥ २३ ॥ अनन्तरारयुग्मे तु वारुणा च यशस्विनी ।

दक्षिणारे सुपुन्नायाः पिङ्गला वर्तते क्रमात् ॥ २४ ॥ तदन्तरारयोः पूषा
वर्तते च पयस्विनी । सुपुन्ना पश्चिमे चारे स्थिता नाडी सरस्वती ॥ २५ ॥
शङ्खिनी चैव गान्धारी तदनन्तरयोः स्थिते । उत्तरे तु सुपुन्नाया इडाख्या
निवसत्यसौ ॥ २६ ॥ अनन्तरं हस्तिजिह्वा ततो विश्वोदरी स्थिता । प्रदक्षिण-
क्रमेणैव चक्रस्यारेषु नाड्यः ॥ २७ ॥ वर्तन्ते द्वादश ह्येता द्वादशानिल-
वाहकाः । पटवत्संस्थिता नाड्यो नानावर्णाः समीरिताः ॥ २८ ॥ पटमध्यं तु
यत्स्थानं नाभिचक्रं तदुच्यते । नादाधारा समाख्याता ज्वलन्ती नादरूपिणी
॥ २९ ॥ पररन्ध्रा सुपुन्ना च चत्वारो रत्नपूरिताः । कुण्डल्या पिहितं शश्व-
द्भ्रमरन्ध्रस्य मध्यमम् ॥ ३० ॥ एवमेतासु नाडीषु धरन्ति दश वायवः ।
एवं नाडीगतिं वायुगतिं ज्ञात्वा विचक्षणः ॥ ३१ ॥ समग्रीवशिरः कायः
संवृतास्यः सुनिश्चलः । नासाग्रे चैव हृन्मध्ये बिन्दुमध्ये तुरीयकम् ॥ ३२ ॥
स्रवन्तममृतं पश्येन्नेत्राभ्यां सुसमाहितः । अपानं मुकुलीकृत्य पायुमाकृष्य
चोन्मुखम् ॥ ३३ ॥ प्रणवेन समुत्थाप्य श्रीबीजेन निवर्तयेत् । स्वात्मानं च
श्रियं ध्यायेदमृतप्लावनं ततः ॥ ३४ ॥ कालवञ्चनमेतद्धि सर्वमुख्यं प्रचक्षते ।
मनसा चिन्तितं कार्यं मनसा येन सिध्यति ॥ ३५ ॥ जलेऽग्निज्वलनाच्छा-
खापल्लवानि भवन्ति हि । नाधन्यं जागतं वाक्यं विपरीता भवेत्क्रिया ॥ ३६ ॥
मार्गे बिन्दुं समाबध्य वह्निं प्रज्वालय जीवने । शोषयित्वा तु सलिलं तेन
कार्यं दृढं भवेत् ॥ ३७ ॥ गुदयोनिसमायुक्त आकुञ्चलेककालतः । अपान-
मूर्ध्वगं कृत्वा समानोऽन्ने नियोजयेत् ॥ ३८ ॥ स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेदमृत-
प्लावनं ततः । बलं समारमेधोगं मध्यमद्वारभागतः ॥ ३९ ॥ भावयेदूर्ध्व-
गत्यर्थं प्राणापानसुयोगतः । एष योगो वरो देहे सिद्धिमार्गप्रकाशकः ॥ ४० ॥
यथैवापां गतः सेतुः प्रवाहस्य निरोधकः । तथा शरीरगा च्छाया ज्ञातव्या
योगिभिः सदा ॥ ४१ ॥ सर्वासामेव नाडीनामेव बन्धः प्रकीर्तितः । बन्ध-
स्यास्य प्रसादेन स्फुटीभवति देवता ॥ ४२ ॥ एवं चतुष्पथो बन्धो मार्गत्रय-
निरोधकः । एकं विकासयन्मार्गं येन सिद्धाः सुसङ्गताः ॥ ४३ ॥ उदानमूर्ध्व-
गं कृत्वा प्राणेन सह वेगतः । बन्धोऽयं सर्वनाडीनामूर्ध्वं याति निरोधकः
॥ ४४ ॥ अयं च संपुटो योगो मूलबन्धोऽप्ययं मतः । बन्धत्रयमनेनैव
सिध्यत्यभ्यासयोगतः ॥ ४५ ॥ दिवारान्नमविच्छिन्नं यामे यामे यदा यदा । अने-
नाभ्यासयोगेन वायुरभ्यसितो भवेत् ॥ ४६ ॥ वायावभ्यसिते वह्निः प्रत्यहं

वर्धते तनौ । बहौ विवर्धमाने तु सुखमन्नादि जीर्यते ॥ ४७ ॥ अन्नस्य परि-
पाकेन रसवृद्धिः प्रजायते । रसे वृद्धिङ्गते नित्यं वर्धन्ते धातवस्तथा ॥ ४८ ॥
धातूनां वर्धनेनैव प्रबोधो वर्धते तनौ । दहन्ते सर्वपापानि जन्मकोट्यजि-
तानि च ॥ ४९ ॥ गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् । शिवस्य बिन्दु-
रूपस्य स्थानं तद्धि प्रकाशकम् ॥ ५० ॥ यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः
प्रतिष्ठिता । यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्धते ॥ ५१ ॥ यस्मादुत्पद्यते
विन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्धते । यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः ॥ ५२ ॥
मूलाधारादिपदचक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम् । कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शांभवं
स्थानमुच्यते ॥ ५३ ॥ नाडीनामाश्रयः पिण्डो नाड्यः प्राणस्य चाश्रयः ।
जीवस्य निलयः प्राणो जीवो हंसस्य चाश्रयः ॥ ५४ ॥ हंसः शक्तेरधिष्ठानं
चराचरमिदं जगत् । निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ५५ ॥
सम्यग्बन्धत्रयस्थोऽपि लक्ष्यलक्षणकारणम् । वेद्यं समुद्धरेन्नित्यं सत्यसंधान-
मानसः ॥ ५६ ॥ रेचकं पूरकं चैव कुम्भमध्ये निरोधयेत् । दृश्यमाने परे
लक्ष्ये ब्रह्मणि स्वयमाश्रितः ॥ ५७ ॥ बाह्यस्थविषयं सर्वं रेचकः समुदाहृतः ।
पूरकं शास्त्रविज्ञानं कुम्भकं स्वगतं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ एवमभ्यासचित्तश्चेत्स
मुक्तो नात्र संशयः । कुम्भकेन समारोप्य कुम्भकेनैव पूरयेत् ॥ ५९ ॥
कुम्भेन कुम्भयेत्कुम्भं तदन्तःस्थः परं शिवम् । पुनरास्फालयेदद्य सुस्थिरं
कण्ठमुद्रया ॥ ६० ॥ वायूनां गतिमावृत्य धृत्वा पूरककुम्भकौ । समहस्तयुगं
भूमौ समं पादयुगं तथा ॥ ६१ ॥ वेधकक्रमयोगेन चतुष्पीठं तु वायुना ।
आस्फालयेन्महामेरुं वायुवक्त्रे प्रकोटिभिः ॥ ६२ ॥ पुटद्वयं समाकृष्य वायुः
स्फुरति सत्वरम् । सोमसूर्याग्निसंवन्धाज्जानीयादमृताय वै ॥ ६३ ॥ मेरु-
मध्यगता देवाश्चलन्ते मेरुचालनात् । आदौ संजायते क्षिप्रं वेधोऽस्य ब्रह्म-
ग्रन्थितः ॥ ६४ ॥ ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थि भिनत्त्यसौ । विष्णु-
ग्रन्थि ततो भित्त्वा रुद्रग्रन्थि भिनत्त्यसौ ॥ ६५ ॥ रुद्रग्रन्थि ततो भित्त्वा
छित्त्वा मोहमलं तथा । अनेकजन्मसंस्कारगुरुदेवप्रसादतः ॥ ६६ ॥ योगाद-
भ्यासात्ततो वेधो जायते तस्य योगिनः । इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुपुष्पानाडि-
मण्डले ॥ ६७ ॥ मुद्राबन्धविशेषेण वायुमूर्ध्वं च कारयेत् । ह्रस्वो दहति
पापानि दीर्घो मोक्षप्रदायकः ॥ ६८ ॥ आप्यायनः क्षुतो वापि त्रिविधोच्चा-

रणेन तु । तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ॥ ६९ ॥ अवाच्यं प्रणव-
स्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् । ह्रस्वं बिन्दुगतं दैर्घ्यं ब्रह्मरन्ध्रगतं द्रुतम् । द्वाद-
शान्तगतं मन्त्रं प्रसादं मन्त्रसिद्धये ॥ ७० ॥ सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणवः सर्व-
दोषहा । आरम्भश्च घटश्चैव पुनः परिचयस्तथा ॥ ७१ ॥ निष्पत्तिश्चेति कथिता-
श्चतस्रस्तस्य भूमिकाः । कारणत्रयसंभूतं बाह्यं कर्म परित्यजन् ॥ ७२ ॥ आन्तरं
कर्म कुरुते यत्रारम्भः स उच्यते । वायुः पश्चिमतो वेधं कुर्वन्नापूर्य सुस्थिरम्
॥ ७३ ॥ यत्र तिष्ठति सा प्रोक्ता वटाख्या भूमिका बुधैः । न सजीवो न
निर्जीवः काये तिष्ठति निश्चलम् । यत्र वायुः स्थिरः खे स्यात्सेयं प्रथम-
भूमिका ॥ ७४ ॥ यत्रात्मना सृष्टिलयौ जीवन्मुक्तिदशागतः । सहजः कुरुते
योगं सेयं निष्पत्तिभूमिका ॥ ७५ ॥ इत्येतदुपनिषदं योऽधीते सोऽग्नि-
पूतो भवति । स वायुपूतो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात्पूतो
भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । तदेतदचाभ्युक्तम्—तद्विष्णोः परमं पदं सदा
पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः
समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति वराहोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति वराहोपनिषत्समाप्ता ॥ १०२ ॥

शाठ्यायनीयोपनिषत् ॥ १०३ ॥

शाठ्यायनीब्रह्मविद्याखण्डाकारसुखाकृति ।

यतिवृन्दहृदागारं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषया-
सक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ १ ॥ समासक्तं सदा चित्तं जन्तोर्विषयगो-
चरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥ २ ॥ चित्तमेव हि
संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् । यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ ३ ॥
नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं नाब्रह्मवित्परमं प्रैति धाम । विष्णुकान्तं वासुदेवं
विजानन्विप्रो विप्रत्वं गच्छन्ते तत्त्वदर्शी ॥ ४ ॥ अथाह यत्परं ब्रह्म सनातनं

ये श्रोत्रिया अकामहता अधीयुः । शान्तो दान्त उपरंतस्तिष्ठुर्योऽनूचानो
ह्यभिजज्ञौ समानः ॥ ५ ॥ त्यक्तेषणो ह्यनृणस्तं विदित्वा मौनी वसेदाश्रमे
यत्र कुत्र । अथाश्रमं चरमं संप्रविश्य यथोपपत्तिं पञ्चमात्रां दधानः ॥ ६ ॥
त्रिदण्डमुपवीतं च वासःकौपीनवेष्टनम् । शिष्यं पवित्रमित्येतद्विभृत्याद्याव-
दायुषम् ॥ ७ ॥ पञ्चेतास्तु यतेर्मात्रास्ता मात्रा ब्रह्मणे श्रुताः । न त्यजेद्याव-
दुत्क्रान्तिरन्तेऽपि निखनेत्सह ॥ ८ ॥ विष्णुलिङ्गं द्विधा प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तमेव
च । तयोरेकमपि लक्ष्त्वा पतत्येव न संशयः ॥ ९ ॥ त्रिदण्डं वैष्णवं लिङ्गं
विप्राणां मुक्तिसाधनम् । निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनम् ॥ १० ॥ अथ
खलु सोम्य कुटीचको बहूदको हंसः परमहंस इत्येते परिवाजकाश्चतुर्विधा
भवन्ति । सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः शुद्धचित्ता आत्मानमा-
त्मना ब्रह्म भावयन्तः शुद्धचिद्रूपोपासनरता जपयमवन्तो नियमवन्तः
सुशीलिनः पुण्यश्लोका भवन्ति । तदेतदद्याभ्युक्तम्—कुटीचको बहूदकश्चापि
हंसः परमहंस इति वृत्त्या च भिन्नाः । सर्व एते विष्णुलिङ्गं दधाना वृत्त्या
व्यक्तं बहिरन्तश्च नित्यम् । पञ्चयज्ञा वेदशिरःप्रविष्टाः क्रियावन्तोऽमी संगता
ब्रह्मविद्याम् । त्यक्त्वा वृक्षं वृक्षमूलं श्रितासः संन्यस्तपुष्पा रसमेवाशुवानाः ।
विष्णुक्रीडा विष्णुरतयो विमुक्ता विष्ण्वात्मका विष्णुमेवापियन्ति ॥ ११ ॥
त्रिसंध्यं शक्तितः स्नानं तर्पणं मार्जनं तथा । उपस्थानं पञ्चयज्ञान्कुर्यादामर-
णान्तिकम् ॥ १२ ॥ दशभिः प्रणवैः सप्तग्याहृतिभिश्चतुष्पदा । गायत्रीजप-
यज्ञश्च त्रिसंध्यं शिरसा सह ॥ १३ ॥ योगयज्ञः सदैकाग्र्यभक्त्या सेवा हरे-
र्गुरोः । अहिंसा तु तपोयज्ञो बाह्यजनःकायकर्मभिः ॥ १४ ॥ नानोपनिषद-
भ्यासः स्वाध्यायो यज्ञ ईरितः । अमित्यात्मानमव्यग्रो ब्रह्मण्यग्रौ जुहोति
यत् ॥ १५ ॥ ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः । ज्ञानदण्डा ज्ञान-
शिखा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ॥ १६ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्म-
यम् । ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति वेदानुशासनम् ॥ १७ ॥ अथ खलु सोम्येते
परिवाजका यथा प्रादुर्भवन्ति तथा भवन्ति । कामग्रोधलोभमोहदम्भदर्पा-
सूयाममत्वाहंकारादींस्तिर्तीयं मानावमानौ निन्दास्तुती च वर्जयित्वा वृक्ष
इव तिष्ठसेत् । छिद्यमानो न घूयात् । तदैवं विद्वांस इहेवामृता भवन्ति ।
तदेतदद्याभ्युक्तम्—यन्धुपुत्रमनुमोदयित्वानवेक्ष्यमाणो द्वन्द्वसहः प्रशान्तः ।
प्राचीमुदीचीं वा निर्वर्तयंश्चरेत् पात्री दण्डी युगमात्रावलोकी शिखां मुण्डी

चोपवीती कुटुम्बी यात्रामात्रं प्रतिगृह्णन्मुन्य्यात् ॥ १८ ॥ अयाचितं याचितं
 वोत भैक्षं मृदार्वावृक्षफलपर्णपात्रम् । क्षीणं क्षौमं तृणं कन्थाजिने च पर्ण-
 माच्छादनं स्यादहतं वा विमुक्तः ॥ १९ ॥ ऋतुसन्धौ मुण्डयेन्मुण्डमात्रं नाधो
 नाक्षं जातु शिखं न वापयेत् । चतुरो मासान्ध्रुवशीलतः स्यात्स यावत्सुतो-
 ऽन्तरात्मा पुरुषो विश्वरूपः । अन्यानथाष्टौ पुनरुत्थितेऽस्मिन्स्वकर्मलिप्सुर्वि-
 हरेद्वा वसेद्वा ॥ २० ॥ देवाभ्यगारे तरुमूले गुहायां वसेदसङ्गोऽलक्षित-
 शीलवृत्तः । अनिन्धनो ज्योतिरिवोपशान्तो न चोद्विजेदुद्विजेद्यत्र कुत्र ॥ २१ ॥
 आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनु-
 संज्वरेत् ॥ २२ ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्या-
 याद्ब्रह्मच्छेद्वान्वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ २३ ॥ बाल्येनैव हि तिष्ठासेन्नि-
 र्विद्य ब्रह्मवेदनम् । ब्रह्मविद्या च बाल्यं च निर्विद्य मुनिरात्मवान् ॥ २४ ॥
 यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्योऽमृतो भवत्यत्र
 ब्रह्म समश्नुते ॥ २५ ॥ अथ खलु सोम्येदं पारिव्राज्यं नैष्ठिकमात्मधर्मं यो
 विजहाति स धीरहा भवति । स ब्रह्महा भवति । स भ्रूणहा भवति । स महा-
 पातकी भवति । य इमां वैष्णवीं निष्ठां परित्यजति स स्तेनो भवति । स
 गुरुतल्पगो भवति । स मित्रध्रुगभवति । स कृतघ्नो भवति । स सर्वस्वालो-
 कात्प्रच्युतो भवति । तदेतदचाभ्युक्तम्—स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगामी मित्रध्रु-
 गेते निष्कृतेर्यान्ति शुद्धिम् । व्यक्तमव्यक्तं वा विधृतं विष्णुलिङ्गं त्यजन्न
 शुध्येदखिलैरात्मभासा ॥ २६ ॥ त्यक्त्वा विष्णोर्लिङ्गमन्तर्बहिर्वा यः स्वाश्रमं
 सेवते नाश्रमं वा । प्रत्यापत्तिं भजते वाऽतिमूढो नैषां गतिः कल्पकोट्यापि
 दृष्टा ॥ २७ ॥ त्यक्त्वा सर्वाश्रमान्धीरो वसेन्मोक्षाश्च चिरम् । मोक्षाश्रमा-
 त्परिभ्रष्टो न गतिस्तस्य विद्यते ॥ २८ ॥ पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः न
 तिष्ठति । तमारूढच्युतं विद्यादिति वेदानुशासनम् ॥ २९ ॥ अथ खलु
 सोम्येदं सनातनमात्मधर्मं वैष्णवीं निष्ठां लब्ध्वा यत्तामदूपयन्वर्तते स वशी
 भवति । स पुण्यश्लोको भवति । स लोकज्ञो भवति । स वेदान्तज्ञो भवति ।
 स ब्रह्मज्ञो भवति । स सर्वज्ञो भवति । स स्वराट् भवति । स परं ब्रह्म
 भगवन्तमाप्नोति । स पितृन्संवन्धितो बान्धवान्सुहृदो मित्राणि च भवादु-
 त्तरयति । तदेतदचाभ्युक्तम्—ज्ञानं कुलानां प्रथमं बभूव तथा पराणां

त्रिशतं समग्रम् । एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विद्वान्
॥ ३० ॥ त्रिशत्पराँल्लिशदपराँल्लिशच्च परतः परान् । उत्तारयति धर्मिष्ठः
परिग्राहिति वै श्रुतिः ॥ ३१ ॥ संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्कण्ठस्थप्राणवानपि ।
तारिताः पितरस्तेन इति वेदानुशासनम् ॥ ३२ ॥ अथ खलु सोम्येयं सना-
तनमात्मधर्मं वैष्णवीं निष्ठां नासमाप्य प्रब्रूयात् । नानुचानाय नानात्मविदे
नावीतरागाय नाविशुद्धाय नानुपसन्नाय नाप्रयतमानसायेति ह स्माहुः ।
तदेतद्वचामुक्तम्—विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवधिष्टेऽह-
मस्मि । असूयकायानृजवे शठाय मा मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥ ३३ ॥
यमेव विद्याश्रुतमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । अस्मा इमा मुपसन्नाय
सम्यक् परीक्ष्य दद्याद्वैष्णवीमात्मनिष्ठां ॥ ३४ ॥ अध्यापिता ये गुरुं नाद्रि-
यन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यथैव तेन न गुरुर्मोजनीयस्तथैव
चाक्षं न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥ ३५ ॥ गुरुरेव परो धर्मो गुरुरेव परा गतिः ।
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति । तस्य श्रुतं तथा ज्ञानं स्रवत्यामघटा-
म्बुवत् ॥ ३६ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । स ब्रह्मविस्परं
प्रेयादिति वेदानुशासनम् ॥ ३७ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति शाठ्यायनीयोपनिषत्समाप्ता ॥ १०३ ॥

हयग्रीवोपनिषत् ॥ १०४ ॥

स्वज्ञोऽपि यत्प्रसादेन ज्ञानं तत्फलमाप्नुयात् ।

सोऽयं हयास्यो भगवान्हृदि मे भातु सर्वदा ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ नारदो ब्रह्माणमुपसमेत्योवाचाधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां
यया चिरात्सर्वफापं व्यपोह्य ब्रह्मविद्यां लब्ध्वैश्वर्यवान्भवति । ब्रह्मोवाच हय-
ग्रीवदेवत्यान्मन्त्रान्यो वेद स श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणानि वेद । स सर्वैश्वर्य-
वान्भवति । त एते मन्त्राः—विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे । तुभ्यं
नमो हयग्रीव विद्याराजस्य स्वाहा स्वाहा नमः ॥ १ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय वेदा-

हरणकर्मणे । प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः स्वाहा स्वाहा नमः ॥ २ ॥
 उद्गीथ प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर । सर्ववेदमयाचिन्त्य सर्व बोधय बोधय
 स्वाहा स्वाहा नमः ॥ ३ ॥ ब्रह्मात्रिरधिसवितृभार्गवा ऋषयः । गायत्रीत्रिष्टुबनुष्टुप्-
 छन्दांसि । श्रीमान्हयग्रीवः परमात्मा देवतेति । ल्हौ (ह्रसौ) मिति बीजम् ।
 सोऽहमिति शक्तिः । ल्हू (ह्रसौ) मिति कीलकम् । भोगमोक्षयोर्विनियोगः ।
 अकारोकारमकारैरङ्गन्यासः । ध्यानम् । शङ्खचक्रमहामुद्रापुस्तकाढ्यं चतु-
 र्भुजम् । संपूर्णचन्द्रसंकाशं हयग्रीवमुपास्महे ॥ ॐ श्रीमिति द्वे अक्षरे । ल्हौ-
 (ह्रसौ) मित्येकाक्षरम् । ॐ नमो भगवत इति सप्ताक्षराणि । हयग्रीवायेति
 पञ्चाक्षराणि । विष्णव इति त्र्यक्षराणि । मह्यं मेधां प्रज्ञामिति षडक्षराणि ।
 प्रयच्छ स्वाहेति पञ्चाक्षराणि । हयग्रीवस्य तुरीयो भवति ॥ ४ ॥ ॐ श्रीमिति
 द्वे अक्षरे । ल्हौ (ह्रसौ) मित्येकाक्षरम् । ऐभैमैमिति त्रीण्यक्षराणि । क्लीं
 क्लीमिति द्वे अक्षरे । सौः सौरिति द्वे अक्षरे । ह्रीमित्येकाक्षरम् । ॐ नमो
 भगवत इति सप्ताक्षराणि । मह्यं मेधां प्रज्ञामिति षडक्षराणि । प्रयच्छ
 स्वाहेति पञ्चाक्षराणि । पञ्चमो मनुर्भवति ॥ ५ ॥

इति हयग्रीवोपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

हयग्रीवैकाक्षरेण ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि । ब्रह्मा महेश्वराय महेश्वरः
 संकर्षणाय संकर्षणो नारदाय नारदो व्यासाय व्यासो लोकेभ्यः प्रायच्छ-
 दिति हकारोऽसकारोमकारो त्रयमेकस्वरूपं भवति । ल्हौ (ह्रसौ) बीजाक्षरं
 भवति । बीजाक्षरेण ल्हौ (ह्रसौ) रूपेण तज्जापकानां संपत्सारस्वतौ
 भवतः । तत्स्वरूपज्ञानां वैदेही मुक्तिश्च भवति । दिक्पालानां राज्ञां
 नागानां किन्नराणामधिपतिर्भवति । हयग्रीवैकाक्षरजपशीलाज्ञया सूर्यादयः
 स्वतः स्वस्वकर्मणि प्रवर्तन्ते । सर्वेषां बीजानां हयग्रीवैकाक्षरबीजमनुत्तमं
 मन्त्रराजात्मकं भवति । ल्हौ (ह्रसौ) हयग्रीवस्वरूपो भवति । अमृतं
 कुरु कुरु स्वाहा । तज्जापकानां वाक्सिद्धिः श्रीसिद्धिरष्टाङ्गयोगसिद्धिश्च
 भवति । ल्हौ (ह्रसौ) सकलसाम्राज्येन सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।
 तानेतान्मन्त्रान्यो वेद अपवित्रः पवित्रो भवति । अग्रह्यचारी सुग्रह्यचारी
 भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसंभाषणात्पूतो भवति । ब्रह्म-
 हत्यादिपातकैर्मुक्तो भवति । गृहं गृहपतिरिव देही देहान्ते परमात्मानं प्रवि-
 शति । प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मीति महा-
 वाक्यैः प्रतिपादितमर्थं त एते मन्त्राः प्रतिपादयन्ति । स्वरव्यञ्जनमेदेन द्विधा

एते । अथानुमन्नाञ्जपति । यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निपसाद
मन्द्रा । चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क स्वदस्याः परमं जगाम ॥ १ ॥ गौरी-
र्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी
वभूवुपी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ २ ॥ ओष्ठापिधाना नकुली दन्तैः
परिवृता पविः । सर्वस्यै वाच ईशाना चारु मामिह वादयेति च वाग्रसः
॥ ३ ॥ ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता । आसूर्यस्य
दुरिता तनान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्थम् ॥ ४ ॥ य इमां ब्रह्मविद्यामेकादश्यां
पठेद्भयग्रीवप्रभावेन महापुरुषो भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । ॐ नमो
ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासं कर्णयोः श्रुतं भाच्योद्वं
ममामुष्य ओमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति हयग्रीवोपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

इति हयग्रीवोपनिषत्समाप्ता ॥ १०४ ॥

दत्तात्रेयोपनिषत् ॥ १०५ ॥

दत्तात्रेयीब्रह्मविद्यासंवेद्यानन्दविग्रहम् ।

त्रिपाञ्चारायणाकारं दत्तात्रेयमुपासहे ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ सत्यक्षेत्रे ब्रह्मा नारायणं महासाम्राज्यं किं तारकं तन्नो ब्रूहि
भगवन्नित्युक्तः सत्यानन्दचिदात्मकं सात्त्विकं मामकं धामोपास्वेत्याह । सदा
दत्तोऽहमस्मीति प्रत्येतत्संबदन्ति येन ते संसारिणो भवन्ति नारायणेनैवं
विवक्षितो ब्रह्मा विश्वरूपधरं विष्णुं नारायणं दत्तात्रेयं ध्यात्वा सद्ब्रूदति ।
दमिति हंसः । दमिति दीर्घं तद्बीजं नाम बीजस्थम् । दामित्येकाक्षरं भवति ।
तदेतत्तारकं भवति । तदेवोपासितव्यं विज्ञेयं गर्भादितारणम् । गायत्री
छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । षट्बीजस्थमिव दत्तबीजस्थं
सर्वं जगत् । एतदेवैकाक्षरं व्याख्यातम् । व्याख्यास्ये षडक्षरम् । ओमिति
द्वितीयम् । हीमिति तृतीयम् । ह्रीमिति चतुर्थम् । ग्लौमिति पञ्चमम् ।
द्रामिति षड्मम् । षडक्षरोऽयं भवति । योगानुभवो भवति । गायत्री छन्दः ।
सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । द्रमित्युक्त्वा द्रामित्युक्त्वा वा दत्तात्रे-

याय नम इत्यष्टाक्षरः । दत्तात्रेयायेति सत्यानन्दचिदात्मकम् । नम इति पूर्णानन्दकविग्रहम् । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । दत्तात्रेयायेति कीलकम् । तदेव बीजम् । नमः शक्तिर्भवति । ओमिति प्रथमम् । आमिति द्वितीयम् । ह्रीमिति तृतीयम् । क्रोमिति चतुर्थम् । एहीति तदेव वदेत् । दत्तात्रेयेति स्वाहेति मन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः । जगती छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । ओमिति बीजम् । स्वाहेति शक्तिः । संबुद्धिरिति कीलकम् । द्रमिति हृदये । ह्रीं क्लीमिति शीर्षे । एहीति शिखायाम् । दत्तेति कवचे आत्रेयेति चक्षुषि । स्वाहेत्यस्त्रे । तन्मयो भवति । य एवं वेद । षोडशाक्षरं व्याख्यास्ये । प्राणं देयम् । मानं देयम् । चक्षुर्देयम् । श्रोत्रं देयम् । पद्दशशिरश्छिनत्ति षोडशाक्षरमन्त्रो न देयो भवति । अतिसेवापरभक्तगुणवच्छिष्याय वदेत् । ओमिति प्रथमं भवति । एमिति द्वितीयम् । क्रोमिति तृतीयम् । क्लीमिति चतुर्थम् । क्लमिति पञ्चमम् । हामिति षष्ठम् । ह्रीमिति सप्तमम् । हूमित्यष्टमम् । सौरिति नवमम् । दत्तात्रेयायेति चतुर्दशम् । स्वाहेति षोडशम् । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । ॐ बीजम् । स्वाहा शक्तिः । चतुर्थ्यन्तं कीलकम् । ओमिति हृदये । क्लं क्लीं क्लमिति शिखायाम् । सौरिति कवचे । चतुर्थ्यन्तं चक्षुषि । स्वाहेत्यस्त्रे । यो नित्यमधीयानः सच्चिदानन्दसुखी मोक्षी भवति । सौरित्यन्ते श्रीवैष्णव इत्युच्यते । तज्जापी विष्णुरूपी भवति । अनुष्टुप् छन्दो व्याख्यास्ये । सर्वत्र संबुद्धिरिमान्तीत्युच्यन्ते । दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्ददायक । दिगम्बर मुने वालपिशाच ज्ञानसागर ॥ १ ॥ इत्युपनिषत् । अनुष्टुप् छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता दत्तात्रेयेति हृदये । हरे कृष्णेति शीर्षे । उन्मत्तानन्देति शिखायाम् । दायक मुन इति कवचे । दिगम्बरेति चक्षुषि । पिशाचज्ञानसागरेत्यस्त्रे । अनुष्टुभोऽयं मयाधीतः । अब्रह्मजन्मदोषाश्च प्रणश्यन्ति । सर्वोपकारी मोक्षी भवति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ दत्तात्रेयोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

ओमिति व्याहरेत् । ॐ नमो भगवते दत्तात्रेयाय स्मरणमात्रसंतुष्टाय महाभयनिवारणाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दान्मने ब्रालोन्मत्तपिशाचवेषायेति महायोगिनेऽवधूतायेति अनसृयानन्ददधेनायात्रिपुत्रायेति सर्वकाम-

फलप्रदाय ओमिति व्याहरेत् । भवबन्धमोचनायेति ह्रीमिति व्याहरेत् । सकलविभूतिदायेति क्रोमिति व्याहरेत् । साध्याकर्षणायेति सौरिति व्याहरेत् । सर्वमनःक्षोभनायेति श्रीमिति व्याहरेत् । महोमिति व्याहरेत् । चिरंजीविने वषडिति व्याहरेत् । वशीकुरु वशीकुरु वौषडिति व्याहरेत् । आकर्षयाकर्षय हुमिति व्याहरेत् । विद्वेषय विद्वेषय फडिति व्याहरेत् । उच्चाटयोच्चाटय ठटेति व्याहरेत् । स्तम्भय स्तम्भय खखेति व्याहरेत् । मारय मारय नमः संपन्नाय नमः संपन्नाय स्वाहा पोषय पोषय परमन्नपरयन्नपरतन्नांश्छिन्धि छिन्धि ग्रहान्निवारय निवारय व्याधीन्निवारय निवारय दुःखं हरय हरय दारिद्र्यं विद्रावय विद्रावय देहं पोषय पोषय चित्तं तोषय तोषयेति सर्वमन्नसर्वयन्न-सर्वतन्नासर्वपल्लवस्वरूपायेति ॐ नमः शिवायेत्युपनिषत् ॥ २ ॥

इति दत्तात्रेयोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

य एवं वेद । अनुष्टुप् छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । ओमिति बीजम् । स्वाहेति शक्तिः । द्रामिति कीलकम् । अष्टमूर्त्यष्टमन्त्रा भवन्ति । यो नित्यमधीते वायव्यमितोनादित्यब्रह्मविष्णुरुद्रैः पूतो भवति । गायत्र्या शतसहस्रं जप्तं भवति । महारुद्रशतसहस्रजापी भवति । प्रणवायुत-कोटिजप्तो भवति । शतपूर्वाञ्छतःपरान्पुनति । स पङ्क्तिपावनो भवति । ब्रह्महत्यादिपातकैर्मुक्तो भवति । गोहत्यादिपातकैर्मुक्तो भवति । तुलापुरु-षादिदानैः प्रपापानतः पूतो भवति । अक्षोषपापान्मुक्तो भवति । भक्ष्या-भक्ष्यपापैर्मुक्तो भवति । सर्वमन्त्रयोगपारीणो भवति । स एव ब्राह्मणो भवति । तस्माच्छिष्यं भक्तं प्रतिगृह्णीयात् । सोऽनन्तफलमश्नुते । स जीव-न्मुक्तो भवतीत्याह भगवान्भारतीयणो ब्रह्माणमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति दत्तात्रेयोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

इति दत्तात्रेयोपनिषत्समाप्ता ॥ १०५ ॥

गारुडोपनिषत् ॥ १०६ ॥

विषं ब्रह्मातिरिक्तं स्यादनृतं ब्रह्ममात्रकम् ।

ब्रह्मातिरिक्तं विषवद्ब्रह्ममात्रं खगेडहम् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

हरिः ॐ ॥ गारुडब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि यां ब्रह्मा विद्यां नारदाय प्रोवाच नारदो बृहत्सेनाय बृहत्सेन इन्द्राय इन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाजो जीवत्का-

मेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् । अस्याः श्रीमहागरुडब्रह्मविद्याया ब्रह्मा ऋषिः ।
 गायत्री छन्दः । श्रीभगवान्महागरुडो देवता । श्रीमहागरुडग्रीत्यर्थं मम
 सकलविषविनाशनार्थं जपे विनियोगः । ॐ नमो भगवते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
 श्रीमहागरुडाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । पक्षीन्द्राय मध्यमाभ्यां वषट् । श्रीवि-
 ण्णुवल्गुभाय अनामिकाभ्यां हुम् । त्रैलोक्यपरिपूजिताय कनिष्ठिकाभ्यां
 वौषट् । उग्रभयंकरकालानलरूपाय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदया-
 दिन्यासः । भूर्भुवः सुवरोमिति दिग्बन्धः । ध्यानम् । स्वस्तिको दक्षिणं पादं
 वामपादं तु कुञ्चितम् । प्राञ्जलीकृतदोर्युग्मं गरुडं हरिवल्लभम् ॥ १ ॥
 अनन्तो वामकटको यज्ञसूत्रं तु वासुकिः । तक्षकाः कटिसूत्रं तु हारः
 कार्कोट उच्यते ॥ २ ॥ पद्मो दक्षिणकर्णे तु महापद्मस्तु वामके । शङ्खः शिरः-
 प्रदेशे तु गुलिकस्तु भुजान्तरे ॥ ३ ॥ पौण्ड्रकालिकनागाभ्यां चामराभ्यां
 सुवीजितम् । एलापुत्रकनागाद्यैः सेव्यमानं मुदान्वितम् ॥ ४ ॥ कपिलाक्षं
 गरुत्मन्तं सुवर्णसदृशप्रभम् । दीर्घबाहुं बृहत्स्कन्धं नादाभरणभूषितम् ॥ ५ ॥
 आजानुतः सुवर्णाभमाकण्ठोस्तुहिनप्रभम् । कुङ्कुमारुणमाकण्ठं शतचन्द्र-
 निभाननम् ॥ ६ ॥ नीलाग्रनासिकावक्त्रं सुमहच्चारुकुण्डलम् । दंष्ट्राकराल-
 वदनं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ७ ॥ कुङ्कुमारुणसर्वाङ्गं कुन्देन्दुधवलाननम् ।
 विष्णुबाह नमस्तुभ्यं क्षेमं कुरु सदा मम ॥ ८ ॥ एवं ध्यायेद्विसंध्यासु
 गरुडं नागभूषणम् । विषं नाशयते शीघ्रं तूलराशिमिवानलः ॥ ९ ॥ ओ-
 मीमों नमो भगवते श्रीमहागरुडाय पक्षीन्द्राय विष्णुवल्गुभाय त्रैलोक्य-
 परिपूजिताय उग्रभयंकरकालानलरूपाय वज्रनखाय वज्रतुण्डाय वज्र-
 दन्ताय वज्रदंष्ट्राय वज्रपुच्छाय वज्रपक्षालक्षितशरीराय ओमीकेहोहि श्रीम-
 हागरुडाप्रतिशासनास्मिन्नाविशाविश दुष्टानां विषं दूषय दूषय स्पृष्टानां
 नाशय नाशय दन्दशूकानां विषं दारय दारय प्रलीनं विषं प्रणाशय प्रणाशय
 सर्वविषं नाशय नाशय हन हन दह दह पच पच भस्मीकुरु भस्मीकुरु हुं फट्
 स्वाहा ॥ चन्द्रमण्डलसंकाश सूर्यमण्डलमुष्टिक । पृथ्वीमण्डलमुद्राङ्ग श्रीम-
 हागरुडाय विषं हर हर हुं फट् स्वाहा ॥ ॐ क्षिप स्वाहा ॥ ओमीं सच-
 रति सचरति तत्कारी मत्कारी विषाणां च विषरूपिणी विषद्रूपिणी विष-
 शोषणी विषनाशिनी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषमन्तःप्रलीनं विषं
 प्रनष्टं विषं हतं ते ब्रह्मणा विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ ॐ नमो

भगवते महागरुडाय विष्णुवाहनाय त्रैलोक्यपरिपूजिताय वज्रनखवज्र-
 लुण्ठाय वज्रपक्षालंकृतशरीराय एद्येहि महागरुड विषं छिन्धि छिन्धि आवे-
 शयावेशय हुं फट् स्वाहा ॥ सुपर्णोऽसि गरुत्मान्निवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः
 स्तोम आत्मा साम ते तनूर्वामदेव्यं बृहद्रथन्तरे पक्षौ यज्ञायश्चिं पुच्छं
 छन्दास्यङ्गानि धिष्णिष्या शफा यजूंषि नाम ॥ सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ
 सुवः पत ओमीं ब्रह्मविद्याममावास्यायां पौर्णमास्यायां पुरोवाच सचरति सच-
 रति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं
 विषं प्रनष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य
 वज्रेण स्वाहा ॥ ततस्त्रयम् । यद्यनन्तकदूतोऽसि यदि वानन्तकः स्वयम् ।
 सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं
 विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ।
 यदि वासुकिदूतोऽसि यदि वा वासुकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी
 मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं
 ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा यदि वा तक्षकः स्वयम् । सचरति सचरति
 तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य
 वज्रेण विषं हतं ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि कर्कोटकदूतोऽसि
 यदि वा कर्कोटकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी
 विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमि-
 न्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि पद्मकदूतोऽसि यदि वा पद्मकः स्वयम् । सचरति सच-
 रति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य
 वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि महापद्मक-
 दूतोऽसि यदि वा महापद्मकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी
 विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते
 ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि शङ्खकदूतोऽसि यदि वा शङ्खकः
 स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं
 नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥
 यदि गुलिकदूतोऽसि यदि वा गुलिकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी
 मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य
 वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि पौण्ड्रकालिक-

दूतोऽसि यदि वा पौण्ड्रकालिकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्करी मर्करी
विषनाशिनी विषदूषिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण
विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि नागकदूतोऽसि यदि
वा नागकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्करी मर्करी विषनाशिनी विषदूषिणी
विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमि-
न्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि लूतानां प्रलूतानां यदि वृश्चिकानां यदि घोटकानां
यदि स्थावरजङ्गमानां सचरति सचरति तर्करी मर्करी विषनाशिनी विष-
दूषिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते
ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा । अतन्तवासुकितक्षककर्कोटकपद्मकमहा-
पद्मकशङ्खकगुलिकपौण्ड्रकालिकनागक इत्येषां दिव्यानां महानागानां महा-
नागादिरूपाणां विषतुण्डानां विषदन्तानां विषदंष्ट्राणां विषाङ्गानां विष-
पुच्छानां विश्वचाराणां वृश्चिकानां लूतानां प्रलूतानां मूषिकाणां गृहगौलिकानां
गृहगोधिकानां घ्रणसानां गृहगिरिगह्वरकालानलवल्मीकोद्भूतानां तार्णानां
पर्णानां काष्ठदारुवृक्षकोटरस्थानां मूलत्वग्दारुनिर्यासपत्रपुष्पफलोद्भूतानां
दुष्टकीटकपिश्चानमार्जारजम्बुकव्याघ्रवराहाणां जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजानां
शस्त्रबाणक्षतस्फोटघ्नमहाघ्नकृतानां कृत्रिमाणामन्येषां भूतवेतालकूष्माण्ड-
पिशाचप्रेतराक्षसयक्षभयप्रदानां विषतुण्डदंष्ट्राणां विषाङ्गानां विषपुच्छानां
विषाणां विषरूपिणी विषदूषिणी विषशोषिणी विषनाशिनी विषहारिणी हतं
विषं नष्टं विषमन्तःप्रलीनं विप्रनष्टं विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य
वज्रेण स्वाहा । य इमां ब्रह्मविद्याममावास्यायां पठेच्छृणुयाद्वा यावज्जीवं न
हिंसन्ति सर्पाः । अष्टौ ब्राह्मणान्ग्राहयित्वा तृणेन मोचयेत् । शतं ब्राह्मणान्
ग्राहयित्वा चक्षुषा मोचयेत् । सहस्रं ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा मनसा मोचयेत् ।
सर्पाञ्जले न मुञ्चन्ति । तृणे न मुञ्चन्ति । काष्ठे न मुञ्चन्तीत्याह भगवान्ब्रह्मे-
त्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इति श्रीगरुडोपनिषत्समाप्ता ॥ १०६ ॥

कलिसंतरणोपनिषत् ॥ १०७ ॥

यद्विव्यनाम स्वरतां संसारो गोष्पदायते ।

सा नव्यभक्तिर्भवति तद्गामपदमाश्रये ॥ १ ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटनकलि
संतरेयमिति । स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु
येन कलिसंसारं तरिष्यसि । भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारण-
मात्रेण निर्धूतकलिर्भवति । नारदः पुनः प्रपच्छ तन्नाम किमिति । स होवाच
हिरण्यगर्भः । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण
कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥ इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् ।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥ २ ॥ इति षोडशकलावृतस्य जीव-
स्यावरणविनाशनम् । ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरदिममण्डली-
वेति । पुनर्नारदः प्रपच्छ भगवन्कोऽस्य विधिरिति । तं होवाच नास्य विधि-
रिति । सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन्ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायु-
ज्यतामेति । यदाऽस्य षोडशीकस्य सार्धत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति ।
तरति वीरहत्याम् । स्वर्णस्त्रेयात्पूतो भवति । पितृदेवमनुष्याणामपकारात्पूतो
भवति । सर्वधर्मपरित्यागपापास्तद्यः शुचितामाप्नुयात् । सद्यो मुच्यते सद्यो
मुच्यते इत्युपनिषत् ॥ ३ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति श्रीकलिसंतरणोपनिषत्समाप्ता ॥ १०७ ॥

जाबाल्युपनिषत् ॥ १०८ ॥

जाबाल्युपनिषद्वेद्यपदतत्त्वस्वरूपकम् ।

पारमैश्वर्यविभवं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ हेनं भगवन्तं जाबालिं पैप्पलादिः प्रपच्छ भगवन्मे ब्रूहि
परमतत्त्वरहस्यम् । किं तत्त्वं को जीवः कः पशुः क ईशः को मोक्षोपाय इति ।
स तं होवाच साधु पृष्टं सर्वं निवेदयामि यथाज्ञातमिति । पुनः स तमुवाच

कुतस्त्वया ज्ञातमिति । पुनः स तमुवाच पडाननादिति । पुनः स तमुवाच
तेनाथ कुतो ज्ञातमिति । पुनः स तमुवाच तेनेशानादिति । पुनः स तमुवाच
कथं तस्मात्तेन ज्ञातमिति । पुनः स तमुवाच तदुपासनादिति । पुनः स
तमुवाच भगवन्कृपया मे सरहस्यं सर्वं निवेदयेति । स तेन पृष्टः सर्वं
निवेदयामास तत्त्वम् । पशुपतिरहंकाराविष्टः संसारी जीवः स एव पशुः ।
सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसंपन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः । के पशव इति पुनः स
तमुवाच जीवाः पशव उक्ताः । तत्पतित्वात्पशुपतिः । स पुनस्तं होवाच
कथं जीवाः पशव इति । कथं तत्पतिरिति । स तमुवाच यथा तृणादिनो
विवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकर्मसु नियुक्ताः सकलदुःखलदाः स्वस्वामि-
बध्यमाना गवादयः पशवः । यथा तस्वामिन इव सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः ।
तज्ज्ञानं केनोपायेन जायते । पुनः स तमुवाच विभूतिधारणादेव । तत्प्रकारः
कथमिति । कुत्र कुत्र धार्यम् । पुनः स तमुवाच सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममग्नैर्भस्म
संगृह्याग्निरिति भस्मेत्यनेनाभिमन्त्र्य मानस्तोक इति समुद्धृत्य जलेन संसृज्य
ज्यायुषमिति शिरोललाटवक्षःस्कन्धेऽपि तिसृभिश्चयायुषैश्चियन्मैस्त्रिंशो
रेखाः प्रकुर्वीत । व्रतमेतच्छास्त्रं सर्वेषु वेदेषु वेदवादिभिरुक्तं भवति ।
तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय । अथ सनत्कुमारः प्रमाणं पृच्छति ।
त्रिपुण्ड्रधारणस्य त्रिधा रेखा आललाटादाचक्षुषोराश्रुवोर्मध्यतश्च । यास्य
प्रथमा रेखा सा गार्हपत्यश्वाकारो रजो भूलोकः स्वात्मा क्रियाशक्तिः
ऋग्वेदः प्रातःसवनं प्रजापतिर्देवो देवतेति । यास्य द्वितीया रेखा सा दक्षि-
णाग्निरुकारः सत्त्वमन्तरिक्षमन्तरात्मा चेच्छाशक्तिर्यजुर्वेदो माध्यन्दिनसवनं
विष्णुर्देवो देवतेति । यास्य तृतीया रेखा साऽऽहवनीयो मकारस्तमो द्यौलोकः
परमात्मा ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं महादेवो देवतेति त्रिपुण्ड्रं
भस्मना करोति । यो विद्वान्ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा स महापात-
कोपपातकेभ्यः पूतो भवति । स सर्वान्देवान्ध्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु
स्नातो भवति । स सकलरुद्रमन्त्रजानी भवति । न स पुनरावर्तते न स
पुनरावर्तते ॥ इति । ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः ॥

इति श्रीजाबाल्युपनिषत्समाप्ता ॥ १०८ ॥

गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ १०९ ॥

गणेशं प्रमथावीक्षं निर्गुणं सगुणं विभुम् ।

योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे ॥ १ ॥

ॐ नमो वरदाय विघ्नहर्त्रे ॥ अथातो ब्रह्मोपनिषदं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मा देवानां सवितुः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो ऋषाणाम् । धाता वसूनां सुरभिः सृजानां नमो ब्रह्मणेऽथर्वपुत्राय मीढुये ॥ धाता देवानां प्रथमं हि चेतो मनो वनानीव मनसाऽकल्पयद्यः । नमो ब्रह्मणे ब्रह्मपुत्राय तुभ्यं ज्येष्ठायाथर्व-पुत्राय धन्विने ॥ १ ॥ ॐ प्रजापतिः प्रजा असृजत । ताः सृष्टा अब्रुवन् कथमज्ञाया अभवन्निति । स त्रेधा व्यभजद्भूर्भुवःस्वरिति । स तपोऽतप्यत । स ब्रह्मा स विष्णुः स शिवः स प्रजापतिः सेन्द्रः सोऽग्निः समभवत् । स तूष्णीं मनसा ध्यायन् कथमिमेऽज्ञायाः स्युरिति । सोऽपश्यदात्मनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं त्रिशिवर्णं चतुर्भुजं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतो वायन्ति यत्रैव यन्ति च । तदेतदक्षरं परं ब्रह्म । एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी । पुरुष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म पराकृतमिति ॥ २ ॥ सोऽस्तुवत नमो ब्रह्मणे नमो ब्राह्मणेभ्यो नमो वेदेभ्यो नमो देवेभ्यो नम ऋषिभ्यो नमः कुल्येभ्यः प्रकुल्येभ्यो नमः सवित्रे प्रसवित्रे नमो भोज्याय प्रकृष्टाय कपर्दिने चक्राय चक्रधरायान्नायाज्ञपतये शिवाय सदाशिवाय तुर्याय तुरीयाय भूर्भुवःस्वःपते रायस्वते वाजिपते गोपते ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरःपते नमो ब्रह्मपुत्रायेति ॥ ३ ॥ सोऽब्रवीद्भरदोऽस्म्यहमिति । स प्रजापतिरब्रवीत्कथमिमेऽज्ञायाः स्युरिति । स होवाच ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सिद्धक्षेत्रे महायशाः । स सर्वस्य वक्ता सर्वस्य ज्ञातासीति । स होवाच तपस्यन्तं सिद्धारण्ये शृगुपुत्रं पृच्छध्वमिति । ते प्रत्याययुः । स होवाच किमेतदिति । ते होतुः कथं वयमज्ञाया भवाम इति । स तूष्णीं मनसा ध्यायन् कथमिमेऽज्ञायाः स्युरिति । स एतमानुष्टुभं मन्त्रराजमपश्यत् । यदिदं किञ्च सर्वमसृजत । तस्मात्सर्वमानुष्टुभमित्याचक्षते यदिदं किञ्च । अनुष्टुभा वा इमानि भूतानि जायन्ते । अनुष्टुभा जातानि जीवन्त्यनुष्टुभं प्रयन्त्यभिसंविदन्ति । तस्यां भवति—अनुष्टुभाभमा भवत्यनुष्टु-

तमा भवति । वाग्वा अनुष्टुप्वाचैव प्रयन्ति वाचैवोद्यन्ति । परमा वा एषा
छन्दसां यदनुष्टुप् । सर्वमनुष्टुप् । एतं मन्त्रराजं यः पश्यति स पश्यति ।
स मुक्तिं मुक्तिं च विन्दति । तेन सर्वज्ञानं भवति । तदेतन्निर्दर्शनं भवति—
एको देवः प्रापको यो वसूनां श्रिया जुष्टः सर्वतोभद्र एषः । मायादेवो
बलगहनो ब्रह्मारातीस्तं देवमीडे दक्षिणास्यम् ॥ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं
चित्रं ग्रामं सङ्गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ इति सहस्रकृत्वस्तुष्टाव ॥ ४ ॥
अथापश्यन्महादेवं श्रिया जुष्टं मदोत्कटम् । सनकादिमहायोगिवेदविद्विहृपा-
सितम् ॥ द्रुहिणादिमदेवेशपद्मदालिविराजितम् । लसत्कर्णं महादेवं
गजरूपधरं शिवम् ॥ स होवाच वरदोऽस्मीति । स तूर्णीं मनसा वव्रे । स
तथेति होवाच । तदेष श्लोकः—स संस्तुतो देवतदेवसूनुः सुतं शृगोर्वाक्य-
मुवाच तृष्टः । अवेहि मां भार्गव वक्रतुण्डमनाथनाथं त्रिगुणात्मकं शिवम् ॥
अथ तस्य षडङ्गानि प्रादुर्बभूवुः । स होवाच जपध्वमानुष्टुभं मन्त्रराज पद-
पदं षडक्षरम् । इति यो जपति स भूतिमान् भवतीति यूयमज्ञाद्या
भवेयुरिति । तदेतन्निर्दर्शनम्—गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनाम-
तिमेधविग्रहम् । ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं सा नः शृण्वन्नूतिभिः सीद शश्वत्
॥ ५ ॥ ते होचुः कथमानुष्टुभं मन्त्रराजमभिजानीम इति । स एतमानुष्टुभं
षट्पदं मन्त्रराज कथयाञ्चके । स साम भवति । ऋग्वै गायत्री यजुर्दक्षिणग-
नुष्टुप् साम । स आदित्यो भवति । ऋग्वै वसुर्यजू रुद्राः सामादित्या इति ।
स षट्पदो भवति । साम वै षट्पदः । ससागरो ससद्वीपां सपर्वतां वसु-
न्धरां तत्सान्नः प्रथमं पादं जानीयाद्वायस्पोषस्य दातेति । तेन ससद्वीपा-
धिपो भवति भूःपतित्वं च गच्छति । यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितमन्तरिक्षं
द्वितीयं पादं जानीयादधिदातेति । तेन धनदादिकाष्ठापतिर्भवति भुवःप-
तित्वं च गच्छति । वसुरुद्रादित्यैः सर्वैर्देवैः सेवितं दिवं तत्सान्नस्तृतीयं पादं
जानीयादन्नदो मत इति । तेन देवाधिपत्यं स्वःपतित्वं च गच्छति । ऋग्य-
जुःसामाथर्वाङ्गिरोगणसेवितं ब्रह्मलोकं तुर्यं पादं जानीयाद्रक्षोहण इति ।
तेन देवाधिपत्यं ब्रह्माधिपत्यं च गच्छति । वासुदेवादिचतुर्व्यूहसेवितं विष्णु-
लोकं तत्सान्नः पञ्चमं पादं जानीयाद्वलगहन इति । तेन सर्वदेवाधिपत्यं
त्रिष्णुलोकाधिपत्यं च गच्छति । ब्रह्मस्वरूपं निरञ्जनं परमव्योम्निकं तत्सान्नः
षष्ठं पादं जानीयात् । तेन वक्रतुण्डाय इमिति यो जानीयात्सोऽमृतत्वं च

गच्छति । सत्यलोकाधिपत्यं च गच्छति ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाश्चत्वारः पादा
भवन्ति । रायस्योपस्य दाता चेति प्रथमः पादो भवति, ऋग्वै प्रथमः पादः ।
निधिदाताऽन्नदो मत इति द्वितीयः पादः, यजुर्वै द्वितीयः पादः । रक्षोहणो
वो बलगहन इति तृतीयः पादः, साम वै तृतीयः पादः । वक्रतुण्डाय हुमिति
चतुर्थः पादः अथर्वश्चतुर्थः पादोऽथर्वश्चतुर्थः पाद इति ॥ ७ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

स होवाच प्रजापतिरग्निर्वै वेदा इदं सर्वं विश्वानि भूतानि विराट् स्वराद्
सन्नाद तत्सान्नः प्रथमं पादं जानीयात् । ऋग्यजुःसामाथर्वरूपः सूर्योऽन्त-
रादित्ये हिरण्मयः पुरुषस्तत्सान्नो द्वितीयं पादं जानीयात् । य ओषधीनां
प्रभविता तारापतिः सोमस्तत्सान्नश्चतुर्थं पादं जानीयात् । यो ब्रह्मा
तत्सान्नश्चतुर्थं पादं जानीयात् । यो हरिस्तत्सान्नः पञ्चमं पादं जानीयात् ।
यः शिवः स परं ब्रह्म तत्सान्नोऽन्त्यं पादं जानीयात् । यो जानीते सोऽमृतत्वं
च गच्छति परं ब्रह्मैव भवति । तस्मादिदमानुष्टुभं साम यत्र क्वचिन्नाचष्टे ।
यदि दातुमपेक्षते पुत्राय शुश्रूषवे दास्यत्यन्यस्मै शिष्याय वेति ॥ १ ॥ तस्य
हि षडङ्गानि भवन्ति—ॐ हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्,
क्वचाय हुं । नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फडिति प्रथमं प्रथमेन द्वितीयं द्वितीयेन
तृतीयं तृतीयेन चतुर्थं चतुर्थेन पञ्चमं पञ्चमेन षष्ठं षष्ठेन प्रत्यक्षरमुभयतो
माया लक्ष्मीश्च भवति । माया वा एषा वैनायकी सर्वमिदं सृजति,
सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति, तस्मान्मायामेतां शक्तिं वेद । स मृत्युं जयति ।
स पाप्मानं तरति । स महतीं श्रियमश्नुते । सोऽभिवादी पदकर्मसंस्मिद्धो
भवत्यमृतत्वं च गच्छति । मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनो हस्त्वा वा दीर्घा वा झुता
वेति । यदि हस्त्वा भवति सर्वपाप्मानं तरत्यमृतत्वं च गच्छति । यदि दीर्घा
भवति महतीं श्रियमाप्नुयादमृतत्वं च गच्छति । यदि झुता भवति ज्ञानवान्
भवत्यमृतत्वं च गच्छति । तदेतदपिणोक्तं निदर्शनम्—स ईं पाहि य
ऋजीपी तरुद्रः स श्रियं लक्ष्मीमौपलम्बिकां गाम् । पृथीं च यामिन्द्रसेनेत्युत
आहुस्तां विद्यां ब्रह्मयोनिस्वरूपाम् ॥ तामिहायुपे शरणं प्रपद्ये । क्षीरोदार्णव-
शायिनं कल्पद्रुमाधःस्थितं वरदं व्योमरूपिणं प्रचण्डदण्डदोर्दण्डं वक्रतुण्ड-
स्वरूपिणं पार्श्वधःस्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम् । रुक्माभ्यरत्निभा-
काशं रक्तवर्णं चतुर्भुजम् । कपर्दिनं शिवं शान्तं भक्तानामभयप्रदम् ॥

उन्नतप्रपदाङ्गुष्ठं गूढगुल्फं सपार्णिकम् । पीनजंघं गूढजानुं स्थूलोरं प्रोक्ष्म-
त्कटिम् ॥ निम्ननाभिं कम्बुकण्ठं लम्बोष्ठं लम्बनासिकम् । सिद्धिबुद्धयुभया-
श्लिष्टं प्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ इति संसर्गः ॥ २ ॥ अथ छन्दोदैवतम् ।
अनुष्टुप्छन्दो भवति, द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुभ भवति । अनुष्टुभा सर्वमिदं
सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहृतम् । शिवोमायुतः परमार्त्ता वरदो देवता । ते
होचुः कथं शिवोमायुत इति । स होवाच भृगुपुत्रः प्रकृतिपुरुषमयो हि स
धनद इति, प्रकृतिर्माया पुरुषः शिव इति । सोऽयं विश्वात्मा देवतेति ।
तदेतन्निर्दर्शनम्—इन्द्रो मायाभिः पुरुहूत ईडे शर्वो विश्वं मायया
स्विद्वधार । सोऽजः शेते मायया स्विद्वहायां विश्वं न्यस्तं विष्णुरेको विजज्ञे ॥
तदेतन्माया हंसमयी देवानाम् ॥ सर्वेषां वा एतद्भूतानामाकाशः परायणम् ।
सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते जातानि जीवन्त्याकाशं
प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तस्मादाकाशवीजं शिवो विद्यात् । तदेतन्निर्दर्शनम्—
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृपद्वरसहस्रसङ्घो-
मसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदिति ॥ ३ ॥ अथाधिष्ठानम्—
मध्ये विन्दुं त्रिकोणं तदनु ऋतुगणं वसुदलं द्वादशारं षोडशकर्णिकेति ।
मध्ये बीजात्मकं देवं यजेत् । वामदक्षिणे सिद्धिर्बुद्धिः । अग्रे कामदुधा
पदकोणे सुमुखादयः पङ्क्तिनायकाः । वसुदले वक्रतुण्डाद्यष्टविनायकाः ।
द्वादशारे बटुको वामनो महादशकमहोदरौ सुभद्रो माली वरो राम उमा
शिवः स्कन्दो नन्दी । तद्बाह्येऽणिमादिसिद्धयः । षोडशारे दिक्पालाः
सायुधा इति ॥ ४ ॥ अथ प्रसारः—य एतेन चतुर्थीषु पक्षयोरुभयोरपि ।
लक्षं जुहुयादपूपानां तत्क्षणाद्धनदो भवेत् ॥ सिद्धौदनं त्रिमासं तु ब्रह्मदमा-
वनन्यधीः । तावज्जुह्वत्पृथुकान्हि साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥ उच्चाटयेद्विभीतैश्च
मारयेद्विषवृक्षजैः । वश्याय पङ्कजैर्विद्वान्धनार्थं मोदकैर्हुनेत् ॥ एवं ज्ञात्वा
कृतकर्मा भवति कृतकर्मा भवतीति ॥ ५ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

अथ होवाच भृगुपुत्रस्तत्रं विजिज्ञासितव्यमिति । मूले शून्यं
विजानीयात् । शून्यं वै परं ब्रह्म । तत्र सत्तारं समायं साम न्यसेन्निरेखं भवति,
त्रयो हीमे लोकास्त्रयो हीमे वेदाः । ऋग्वै भूः सा माया भवति । यजुर्वै
भुवः स शिवो भवति । साम वै स्वः स हिरण्यगर्भो भवति । षट्कोणं

भवति पङ्क्तीमे लोकाः पङ्क्ता ऋतवो भवन्ति । तत्र तारमायारमामारविशेष-
धरणीकमाद्यसेत् । अष्टपत्रं भवत्यष्टाक्षरा गायत्री भवति ब्रह्मगायत्री
न्यसेत् । द्वादशपत्रं भवति द्वादशादित्या भवन्ति ते स्वरा भवन्ति । स्वरान्
ज्ञात्वादित्यलोकमश्नुते । षोडशपत्रं भवति षोडशकलो वै पुरुषो वर्णो ह वै
पुरुषः स लोकाधिष्ठितो भवत्यनुष्टुप् वै पुरुषः ॥ १ ॥ स होवाच ऋगुपुत्र
एतमानुष्टुभं सन्नराजं साङ्गं सप्रसृतिकं समायं साधिष्ठानं सतन्त्रं यो जानाति
स भूतिमान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति ॥ २ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

इत्याथर्वणीया गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ १०९ ॥

गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ११० ॥

ॐ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम् । तस्योपव्याख्यानम् । सर्वं भूतं भव्यं
अविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । एतच्चान्यच्च त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।
सर्वं ह्येतद्गणेशोऽयमात्मा ब्रह्मेति । सोऽयमात्मा चतुष्पात् । जागरितस्थानो
बहिःप्रज्ञः ससाङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।
स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः ससाङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः
पादः । यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति
तत्सुप्तम् । सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दभुक् चेतोमुखः
प्राज्ञस्तृतीयः पादः । एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य
प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् । नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं
नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमैका-
त्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स गणेश आत्मा
विज्ञेयः । सद्गोचरलो विद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धरहितः सर्वदोषरहित
आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहमेवेति सम्भाव्या-
हर्मो तत्सत्परं ब्रह्म विघ्नराजश्चिदात्मकः सोऽहर्मो तद्विनायकं परं ज्योती
रसोऽहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकीकुर्यात् । विनायकोऽहमित्येतत्त-
त्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नूनं प्रमोदो वै न संशयः ॥
इत्युपनिषत् । य एवं वेद स मुख्यो भवतीति याज्ञवल्क्य इति याज्ञवल्क्य

इति । एतदेव परं ध्यानमेतदेव परं तपः । विनायकस्य यज्ज्ञानं पूजनं
भवमोचनम् ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । एकस्य ध्यानयोगस्य
कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ ॥ स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेन्द्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः
सोऽग्निः स ब्रह्मायमात्मने सर्वदेवाय आत्मने भूताय आत्मन इति मन्यन्ते ।
ॐ सोऽहं ॐ सोऽहं ॐ सोऽहमिति । ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मन्निति ।
ॐ शिवं ॐ शिवं ॐ शिवमिति । तं गणेशं तं गणेशमिदं श्रेष्ठम् ।
ॐ गणानां त्वा गणपतिः । सप्रियाणां त्वा प्रियपतिः । सनिधीनां त्वा निधि-
पतिः । ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोद-
यात् । ॐ तद्गणेशः । ॐ सद्गणेशः । ॐ परं गणेशः । ॐ ब्रह्म गणेशः ।
गणनाकारो नादः । एतत्सर्वो नादः । सर्वाकारो नादः । एतदाकारो नादः ।
महान्नादः । स गणेशो महान् भवति । सोऽणुर्भवति । स वन्द्यो भवति ।
स मुख्यो भवति । स पूज्यो भवति । रूपवान् भवति । अरूपवान्
भवति । द्वैतो भवति । अद्वैतो भवति । स्थावरस्वरूपवान् भवति । जङ्गम-
स्वरूपवान् भवति । सचेतनविचेतनो भवति । सर्वं भवति । स गणेशोऽ-
व्यक्तो योऽणुर्यः श्रेष्ठः स वै वेगवत्तरः । अहस्त्राहस्त्रश्च । अतिहस्त्रातिहस्त्रा-
तिहस्त्रश्च । अस्थूलास्थूलास्थूलश्च । ॐ न वायुर्नाग्निर्नाकाशो नापः पृथिवी
न च । न दृश्यं न दृश्यं न दृश्यम् । न शीतं नोष्णं न वर्षं च । न पीतं न
पीतं न पीतम् । न श्वेतं न श्वेतं न श्वेतम् । न रक्तं न रक्तं न रक्तम् । न कृष्णं
न कृष्णं न कृष्णम् । न रूपं न नाम न गुणम् । न प्राप्तं गणेशं मन्यन्ते ।
स शुद्धः स शुद्धः स शुद्धो गणेशः । स ब्रह्म स ब्रह्म स ब्रह्म गणेशः । स
शिवः स शिवः स शिवो गणेशः । इन्द्रो गणेशो विष्णुर्गणेशः सूर्यो गणेश
एतत्सर्वं गणेशः । स निर्गुणः स निरहङ्कारः स निर्विकल्पः स निरीहः स
निराकार आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेयः पुरातनो गणेशो निगद्यते ।
स आद्यः सोऽक्षरः सोऽनन्तः सोऽच्ययो महान्पुरुषः । तच्छुद्धं तच्छुद्धं
ततः प्रकृतिमहत्तत्त्वानि जायन्ते । ततश्चाहङ्कारादिपञ्चतन्मात्राणि जायन्ते ।
ततः पृथ्व्यसेजोवाय्वाकाशपञ्चमहद्भूतानि जायन्ते । पृथिव्या ओषधय
ओषधीभ्योऽन्नमन्नाद्देतस्ततः पुरुषस्ततः सर्वं ततः सर्वं ततः सर्वं जगत् ।

उप० ३]

गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ११० ॥

६३५

सर्वाणि भूतानि जायन्ते । देवा नु जायन्ते । तरुश्च जीवन्ति । देवा नु जीवन्ति । यज्ञा नु जीवन्ति । सर्वं जीवति । स गणेश आत्मा विज्ञेयः । इत्युपनिषत् । य एवं वेद स मुख्यो भवतीति याज्ञवल्क्य इति याज्ञवल्क्य इति ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ ॥ गणेशो वै ब्रह्म तद्विधात् । यदिदं किञ्च सर्वं भूतं भव्यं जायमानं च तत्सर्वमित्याचक्षते । अस्मान्नातः परं किञ्चित् । यो वै वेद स वेद ब्रह्म ब्रह्मैवोपाप्मोति । तत्सर्वमित्याचक्षते । ब्रह्मविष्णवादिगणानामीशभूतमित्याह तद्गणेश इति । तत्परमित्याह यमेते नामुवन्ति पृथिवी सुवर्चा युवतिः सजोपाः । यद्वै वाङ् नाक्रामति मनसा सह नाग्निर्न पृथ्वी न तेजो न वायुर्न व्योम न जलमित्याह । नेन्द्रियं न शरीरं न नाम न रूपम् । न शुक्लं न रक्तं न पीतं न कृष्णमिति । न जाग्रन्न स्वप्नो न सुषुप्तिर्न वै तुरीया । तच्छुद्धमप्राप्यमप्राप्यं च । अज्ञेयं चाज्ञेयं च । विकल्पासहिष्णु तत्सशक्तिकं गजवक्त्रं गजाकारं जगदेवावरुन्धे । दिवमनन्तशीर्षैर्दिशमनन्तकरैर्व्योमानन्तजठरैर्महीमनन्तपादैः स्वतेजसा बाह्यान्तरीयान्व्याप्य तिष्ठतीत्याह । तद्वै परं ब्रह्म गणेश इत्यात्मानं मन्यन्ते । तद्वै सर्वतः पश्यति स्म न किञ्चिद्दर्श । ततो वै सोऽहमभूत् । नैकाकिता युक्तेति गुणाक्षिर्ममे । नामे रजः स वै ब्रह्मा । सुखात्सर्वं स वै विष्णुः । नयनात्तमः स वै हरः । ब्रह्माणुपदिशति स्म ब्रह्मन् कुरु सृष्टिम् । ब्रह्मावाच नाहं वेक्षि । गणेश उवाच महदेह ब्रह्माण्डान्तर्गतं विलोकय तथाविधामेव कुरु सृष्टिम् । अथ ब्रह्मा जन्मद्वारेण ब्रह्माण्डान्तर्गतं विलोकयति स्म । समुद्रान् सरितः पर्वतान् वनानि महीं दिवं पातालं च नरान् पशून्सृगाङ्गागान् हयान् गोब्रजान् सूर्याचन्द्रमसो नक्षत्राण्यग्नीन् वायून्दिशस्ततो वै सृष्टिमचीकरत् । ततश्चात्मानमिति मन्यते स्म । न वै मत्तः परं किञ्चिद्दहमेव सर्वस्येश इति यावद्वदति तावत्क्रूरा अजायेरन् । महदेहा जिह्वया भुवं लिहाना दंष्ट्राव्यासाकाशा महच्छब्दा ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्ताः । तान्दृष्ट्वाविभ्यत्तत्संसार । ततश्चाग्रे कोटिसूर्यप्रतीकाशमानन्दरूपं गजवक्त्रं विलोकयति स्म । तुष्टावाथ गणेश्वरम् । त्वं निर्माता क्षमाभृतां सरितां सागराणां स्थावराणां जङ्गमानां च । त्वत्तः परतः किञ्चिन्नैवास्ति जगतः प्रभो । कर्ता सर्वस्य विश्वस्य पात-

संहारकारकः । भवानिदं जगत्सर्वं व्याप्यैव परितिष्ठति ॥ इति स्तुत्वा
ब्रह्माणं तदुवाच ब्रह्मांस्तपस्व तपस्वेत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन् ब्रह्मा तपश्चचार ।
कियत्स्वतीतेष्वनेहःसु तपसि स्थिते ब्रह्मणि पुरो भूत्वोवाच । प्रसन्नोऽहं
प्रसन्नोऽहं वरान् वरय । श्रुत्यैवं वचोन्मील्य नयने यावत्पुरः पश्यति
वाचद्गणेशं ददर्श । स्तौति स्म । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं हरस्त्वं प्रजापतिस्त्व-
भिन्द्रस्त्वं सूर्यस्त्वं सोमस्त्वं गणेशः । त्वया व्याप्तं चराचरं त्वदत्ते न हि
किञ्चन । ततश्च गणेश उवाच । त्वं चाहं च न वै भिन्नौ कुरु सृष्टिं
प्रजापते । शक्तिं गृहाण महत्तां जगत्सर्जनकर्मणि ॥ ततो वै गृहीतायां
शक्त्वा ब्रह्मणः सृष्टिरजायत । ब्राह्मणो वै सुखाज्ज्ञे बाह्योः क्षत्रभूयोर्वैश्यः
पक्षां शूद्रश्चक्षुपो वै सूर्यो मनसश्चन्द्रमा अग्निर्वै सुखात्प्राणाद्वायुर्नाभेर्व्योम
शीर्ष्णो द्यौः पक्षां भूमिर्दिशः श्रोत्राद् । तथा लोकानकल्पयन्ति । ततो वै
सत्त्वमुवाच त्वं वै विष्णुः पाहि पाहि जगत्सर्वम् । विष्णुरुवाच न मे
शक्तिः । सोवाच गृहाणेमां विद्याम् । ततो वै सत्त्वं तामादाय जगत्पाति
स्म । हरमुवाच कुरु हर संहारम् । जगद्धरणाद्धरो भव । हरश्चात्मान-
मित्यत्रैति स्म न वै मत्परं किञ्चिद्विश्वस्यादिरहं हर इति गर्वं दधौ यावत्ता-
वद्व्याप्तं व्योम गजवक्त्रैर्महच्छब्दैर्हरं हर्तुमुद्युक्तैः । हरो वै विलोक्य रुदति
स्म । रोदनाद्गुद्रसंज्ञः । ततस्त्वं पुरुषं स्मृत्वा तुष्टाव त्वं ब्रह्मा त्वं कर्ता त्वं
प्रधानं त्वं लोकान् सृजसि रक्षसि हरसि । विश्वाधारस्त्वमनाधारोऽनाधेयो
ऽनिर्देश्योऽप्रतक्यो व्याप्येदं सर्वं तिष्ठसीति । स्तवनाद्विनायकं ददर्श । ततश्च
तं ननाम । गणेश उवाच कुरु हर हरणम् । तद्वै संहर्ताऽभूद्गुद्रः । य एवं
वेद स गणेशो भवति । इत्युपनिषत् ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

ॐ ॥ गणेशो वै सदजायत तद्वै परं ब्रह्म । तद्विदामोति परम् । तदेषा-
भ्युक्ता यदनादिभूतं यदनन्तरूपं यद्विज्ञानरूपं यद्देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते
न वै कार्यं करणं न तत्समश्चाधिकश्च दृश्यः । सूर्योऽस्माङ्गीत उदेति । वातो-
ऽस्माङ्गीतः पवरो । अग्निर्वै भीतस्तिष्ठति । तच्चित्स्वरूपं निर्धिकारमद्वैतं च ।
तन्मायाशबलमजनीत्याह । अनेन यथा तमस्ततश्चोमिति ध्वनिरभूत् । स
वै गजाकारः । अनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह । सैव प्रकृतिरिति
गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च । एतस्माद्वै महत्तत्त्वमजा-

उप० ३]

गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ११० ॥

६३७

यत् । ततः कराग्रेणाहङ्कारं सृष्टवान् । स वै त्रिविधः सात्त्विको राजसक्ताम-
 सश्चेति । सात्त्विकी ज्ञानशक्तिः । राजसी क्रियाशक्तिः । तामसी द्रव्य-
 शक्तिः । तामस्याः पञ्चतन्मात्रा अजायन्त पञ्चभूतान्यजायन्त । राजस्याः
 पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च वायवश्चाजायन्त । सात्त्विक्या
 दिशो वायुः सूर्यो वरुणोऽश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवता अभिरिन्द्रो विष्णुः
 प्रजापतिर्मित्र इति कर्मेन्द्रियदेवताः । इदमादिपुरुषरूपम् । परमात्मनः
 सूक्ष्मशरीरमिदमेवोच्यते । अथ द्वितीयम् । पञ्चतन्मात्राः पञ्चसूक्ष्मभूतान्यु-
 पादाय पञ्चीकरणे कृते पञ्चमहाभूतान्यजायन्त । अवशिष्टानां पञ्चपञ्चाशानां
 कल्पारम्भसमये भूतविभागे चैतन्यप्रवेशादहमित्यभिमानः । तस्मादादि-
 गणेशो अवावुच्यते । ततो वै भूतेभ्यश्चतुर्दश लोका अजायेरन् । तदन्तर्गत-
 जीवराशयः स्थूलशरीरैः सह विराडित्युच्यते । इति द्वितीयम् । राजसो
 ब्रह्मा सात्त्विको विष्णुस्तामसो वै हरः । त्रयं मिलित्वा परस्परमुवाच अह-
 मेव सर्वस्येश इति । ततो वै परस्परमसहमानाश्चोर्ध्वं जग्मुः । तत्र न
 किञ्चिद्दृष्टुः । ततश्चाधःप्रदेशे दशदिक्षु अमन्तो न किञ्चित्पश्यन्ति स्म ।
 ततो वै ध्यानस्थिता अभूवन् । ततश्च हृद्देशे महान्तं पुरुषं गजवक्त्रमसंख्य-
 शीर्षमसंख्यपादमनन्तकरं तेजसा व्यासाखिललोकं ब्रह्ममूर्धानं दिक्श्रवणं
 ब्रह्माण्डगण्डं चिद्बोमतालुकं सत्यजननं च जगदुत्पत्त्यपायोन्मेषनिमेषं सोमा-
 कांभिनेत्रं पर्वतेशरदं पुण्यापुण्योष्ठं ग्रहोद्भुदशनं भारतीजिह्वं शक्रघ्राणं
 कुलगोत्रांसं सोमेन कण्ठं हरशिरोरुहं सरिन्नदभुजमुरगाङ्गुलिकमृक्षनखं श्रीह-
 त्कमाकाशनाभिकं सागरोदरं महीकटिदेशं सृष्टिलिङ्गकं पर्वतेशोरुहं दक्षजा-
 नुकं जठरान्तःस्थितयक्षगन्धर्वरक्षःकिन्नरसानुषं पातालजंघकं मुनिचरणं
 कालाङ्गुष्ठकं तारकाजाललाङ्गुलं दृष्ट्वा स्तुवन्ति स्म । यतो वा इमानि भूतानि
 जायन्ते यतोऽग्निः पृथिव्यसेजो वायुर्यत्कराग्राद्ब्रह्मविष्णुरुद्रा अजायन्त यतो
 वै समुद्राः सरितः पर्वताश्च यतो वै चराचरमिति स्तवनात्प्रसन्नो भूत्वो-
 वाचाऽहं सर्वस्येशो मत्तः सर्वाणि भूतानि मत्तः सर्वं चराचरं भवन्तो वै न
 मन्निच्चा गुणा मे वै न संशयः । गुणेशं मां हृदि संचिन्त्य राजस त्वं
 जगत्कुरु सात्त्विक त्वं पालय तामस त्वं हरेत्युक्तवान्तर्हितः । स वै गणेशः
 सर्वात्मा विज्ञेयः सर्वदेवात्मा वै स एकः । य एवं वेद स गणेशो
 भवति । इत्युपनिषत् ।

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४ ॥

ॐ ॥ देवा ह वै रुद्रमब्रुवन् कथमेतस्योपासनम् । स होवाच रुद्रो गणको
 निचुद्गायत्री श्रीगणपतेरेनं मन्त्रराजमन्योन्याभावात्प्रणवस्वरूपस्यास्य परमा-
 त्मनोऽङ्गानि जानीते स जानाति सोऽमृतत्वं च गच्छति । योऽधीते स सर्व-
 तरति । य एनं मन्त्रराजं गणपतेः सर्वदं नित्यं जपति सोऽग्निं स्तम्भयति स
 उदकं स्तम्भयति स वायुं स्तम्भयति स सूर्यं स्तम्भयति स सर्वान्देवान्स्तम्भ-
 यति स विषं स्तम्भयति स सर्वोपद्रवान्स्तम्भयति । इत्युपनिषत् । य एनं
 मन्त्रराजं नित्यमधीते स विज्ञानाकर्षयति देवान्यक्षान् रोगान् ग्रहान्भुष्यान्
 सर्वानाकर्षयति । स भूर्लोकं जयति स भुवर्लोकं जयति स स्वर्लोकं स
 महर्लोकं स जनोलोकं स तपोलोकं स सत्यलोकं स ससलोकं स सर्वलोकं
 जयति । सोऽग्निष्टोमेन यजते सोऽत्यग्निष्टोमेन स उक्थ्येन स षोडशीयेन
 स वाजपेयेन सोऽतिरात्रेण सोऽसौर्यासेन स सर्वैः ऋतुभिर्यजते । य एनं
 मन्त्रराजं वैश्वराजं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते
 सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स पुराणान्यधीते स
 कल्हानधीते स गाथा अधीते स नाराशंसीरधीते स प्रणवमधीते । य एनं
 मन्त्रराजं गाणेशं वेद स सर्वं वेद स सर्वं वेद । स वेदसमः स मुनिसमः स
 नागसमः स सूर्यसमः सोऽग्निसम इति । उपनीतैकाधिकशतं गृहस्थैकाधि-
 कशतं वानप्रस्थैकाधिकशतं रुद्रजापकसमम् । यतीनामेकाधिकशतमथर्व-
 शिरःशिखाध्यापकसमम् । रुद्रजापकैकाधिकशतमथर्वशिरःशिखाध्यापकैकाधि-
 कशतं गाणेशतापिनीयोपनिषदध्यापकसमम् । मन्त्रराजजापकस्य यत्र रवि-
 सोमौ न तपतो यत्र वायुर्नक्षत्राणि न वाति भान्ति यत्राग्निर्मृत्युर्न दहति
 प्रविशति यत्र मोहो न दुःखं सदानन्दं परानन्दं समं शाश्वतं सदाशिवं परं
 ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमं पदं चिन्मात्रं ब्रह्मणस्पतिमेकाक्षरमेवं पर-
 मात्मानं बाह्यान्ते लब्धांशं हृदि समावेश्य किञ्चिज्जह्वा ततो न जपो न
 माला नासनं न ध्यानावाहनादि । स्वयमवतीर्णो ह्ययमात्मा ब्रह्म सोऽहमात्मा
 चतुष्पात् । बहिःप्रज्ञः प्रविविक्तभुक् तैजसः । यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं
 कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । तत्रैकीभूतः प्रज्ञानघन एवा-
 नन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञः । एष सर्वेश्वरः सर्वान्तर्यामी एष योनिः सर्व-
 भूतानाम् । न बहिःप्रज्ञं नान्तःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमव्यपदेश्यम-
 व्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमैकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतमेवं

चतुष्पादं ध्यायन् स एवात्मा भवति । स आत्मा विज्ञेयः सदोज्ज्वलोऽविद्या-
तत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धरहितो द्वैतरहितो निरस्ताविद्यातमोमोहाहङ्कार-
प्रधानमहमेव सर्वमिति सम्भाव्य विघ्नराजब्रह्मण्यमृते तेजोमये परंज्योतिर्मये
सदानन्दमये स्वप्रकाशे सदोदिते नित्ये शुद्धे मुक्ते ज्ञेश्वरे परे ब्रह्मणि रमते
रमते रमते रमते । य एवं गणेशतापनीयोपनिषदं वेद स संसारं तरति घोरं
तरति दुःखं तरति विघ्नांस्तरति महोपसर्गं तरति । आनन्दो भवति स नित्यो
भवति स शुद्धो भवति स मुक्तो भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो
भवति स मुख्यो भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो
भवति स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वो भवतीति ।
इत्युपनिषत् । ॐ स ह नाववतु ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु पञ्चमोपनिषत् ॥ ५ ॥

ॐ ॥ अथोवाच भगवती गौरी ह वै रुद्रमेतस्य मन्त्रराजस्यानुष्ठानविधिं मे
ब्रूहीति । स होवाच रुद्रो विधिं लब्धांशं गुरुदेवतयोरालम्ब्य मनसा पुष्पं
निवेद्योपक्रम्य भूतोत्सारणमासनबन्धाद्यात्मरक्षासुनियमभूतशुद्धिप्राणस्थापन-
प्रणवावर्तनमातृपूजनान्तर्मातृकान्तर्यागादि सम्पाद्यात्र केचन समग्रं मूलवै-
दिककल्पैरुपक्रमं ग्रहणसमर्पणनिवेदनानि बाह्येऽन्यथेति महार्घ्यं शंखं त्रिपा-
द्योर्गन्धादिना पूजितयोः स्थाप्य पात्रासादनं दक्षिणोपक्रमेण पाद्यार्घ्याचमन-
मधुपर्कपुनराचमननिवेदनपात्राणि संस्थासु यथोपदिष्टं चतुर्थ्योः पर्वणि संस्थासु
अथाविधि स्थाप्य निवेदने प्रक्षालनमेव ततोऽर्वाक् पञ्चामृतपात्राणि रिक्तं च
मूलेनालम्ब्य निवेदिन्यार्घ्योदकेनात्मानं पात्राणि सम्भारं च प्रोक्ष्य पात्राति-
रिक्तानि महार्घ्योदकेन सर्वनिवेदनं करशुद्धिं मूलासुनियमं यथोक्तर्षिच्छन्दो-
दैवतं स्मृत्वा विनियोगश्च नित्ये पूजाङ्गो जपो जपाङ्गा पूजा जप इत्यष्टुष्टन्याप-
कस्वान्ताष्टाङ्गदण्डगुण्डिन्यासादि कृत्वा मुखमवेक्ष्यात्मानं देवरूपिणं सम्भाव्य
मूर्ध्नि पुष्पं दत्त्वा पीठं सम्पूज्यासनं दत्त्वा ऋष्यादि कृत्वा ध्यात्वा हृदया-
म्भोजे योगिनोऽत्र जपन्ति । स्वान्ताम्भोजाद्देवमावाह्य मुद्रां दर्शयित्वा
देवस्य सकलीकरणान्नुष्टहृदयार्पिन्या स्वान्ते मुद्रां निवेद्य पात्राणि च मूलेन
दत्त्वा रिक्ते पञ्चामृतं संयोज्य तेन पञ्चवारं सकृद्वाऽभिषिच्य नित्येन संतर्प्य
कल्पस्तवनादिपुरुषसूक्तखड्गाध्यायघोषशान्त्यादिना मूलेन चाभिषिच्य सर्वपूजां
निवेद्य दीपं त्रिभ्राम्य सव्येनाप्लाव्य महानैवेद्यपीठावरणान्युपसंहस्य दर्शयेत् ।

ताम्बूलान्ते किञ्चिन्मूलमावर्त्य पुनर्धूपादित्रयभक्ष्यादि निवेद्य मुद्राः सर्वोप-
चारस्य दर्शयित्वा निवेदनमिदमासनं नमः पाद्ये एषोऽर्घ्यः स्वाहेति दक्षिण-
करेऽर्घ्ये इदं स्वधेति पुरस्त्रिके मुखे नम इति स्नानेष्वेव गन्धो नमोऽक्षतेषु
ॐ पुष्पाणि नमः पुष्पेष्वेष धूपो दीपो नमो धूपदीपयोः समर्पयामीति नैवे-
द्यफलताम्बूलेषु निवेदयामि नमो हिरण्ये एष पुष्पाञ्जलिर्नम इति मालाया-
मिति परमं रहस्यमप्रकाश्यं बीजं य एवं वेद स सर्वं वेद स सर्वं वेद ।
वर्णार्थं लब्धांशेन मन्त्रार्थेन च पीठावरणदेवतावधानेन वा जपति स जपति ।
मुख्यं लब्धांशमासनं मृदुलं भुक्तरिक्तवासःकौसुम्भमाञ्जिष्टरक्तकम्बलचित्रमृ-
गव्याम्राजिनं वा यथोक्तमुक्तान्यतरैरासनान्तरयोजनास्फटिककमलभद्राक्षमणि-
मुक्ताप्रवालरुद्राक्षकुशग्रन्थिषु वा जपति स जपति । कुशमयी नित्याक्षालनं
चन्दनालेपो धूपेनासिमन्त्रय पृथगभिमन्त्रणं सद्योजातैः पञ्चभिः प्राणस्थापन-
जीवनतर्पणगुप्तानि च स्वमूले गुह्यं वामेन स्पृशेन्न दर्शयेत् । एवं श्रावणे पवि-
त्रेण मधौ दमनेन जपमालया महानवम्यां तापस्यां चतुर्थ्यां तिललङ्घुकैः
सप्तम्यां शीतलचन्दनेन शिवरान्यां विल्वदलमालयाऽन्यस्मिन्पर्वणि महत्यार्च-
यन्ति तेऽर्चयन्ति । मोदकपृथुकलाजसक्तुरम्भाफलेक्षुनारीकेलापूपानन्यानि च
यथोपदिष्टमाहुतिभिर्जुहोति । जपश्च प्राक्प्रवणे होमोऽन्यथोपास्यः । एवं यः
करोति सोऽमृतत्वं विन्दति स प्रतिष्ठां प्राप्नोति मुक्तिं विन्दति भुक्तिं भुनक्ति
वाचं वदति यशो लभते । इदं रहस्यं यो जानाति स जानाति योऽधीते
सोऽधीते स आनन्दो भवति स नित्यो भवति स विशुद्धो भवति स मुक्तो
भवति स प्रकाशो भवति स दयावान्भवति ज्ञानवान्भवत्यनन्दवान्भवति
विज्ञानवान्भवति विज्ञानानन्दो भवति सोऽमृतत्वं भवत्यमृतत्वं भवतीति ।

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु षष्ठोपनिषत् ॥ ६ ॥

इत्याथर्वणीया गणेशतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ११० ॥

संन्यासोपनिषत् ॥ १११ ॥

देही संन्यसनाद्याति परां सालोक्यतां पराम् ।

ॐ तत्सच्चिन्मयं ब्रह्म सर्वातीतं समाश्रये ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथाहिताभिर्निधियेत प्रेतस्य मन्त्रैः संस्कारोपतिष्ठते । स्वस्थो वाश्रमपारं गच्छेयमिति । एतान्पितृमेधिकानोपधिसंभारान्संभृत्यारण्ये गत्वाऽमावास्यायां प्रातरेवाग्नीनुपसमाधाय पितृभ्यः श्राद्धतर्पणं कृत्वा ब्रह्मेष्टिं निर्वपेत् । स सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्यैषाहुतिर्दिव्याऽमृतत्वाय कल्पतामित्येवमत ऊर्ध्वं यद्ब्रह्माभ्युदयदिवं च लोकमिदममुं च सर्वं सर्वमभिजन्युः । सर्वश्रियं दधतु सुमनस्यमाना ब्रह्मजज्ञानमिति ब्रह्मणेऽथर्वणे प्रजापतयेऽनुमतयेऽभ्यये स्विष्टकृत इति हुत्वा यज्ञं यज्ञं गच्छेत्यन्नावरणीं हुत्वोचित्सखायमिति चतुर्भिरनुवाकैराज्याहुतीर्शुहुयात्तैरेवोपतिष्ठते । मध्यमेऽग्निमिति चाथो अग्नीन्समारोपयेद्ब्रतवान्स्यादतन्निव्रत इति ॥ १ ॥ तत्र श्लोकाः—ब्रह्मचर्याश्रमे खिन्नो गुरुशुश्रूषणे रतः । वेदानधीत्यानुज्ञात उच्यते गुरुणाश्रमी ॥ दारमाहृत्य सदशमग्निमाधाय शक्तितः । ब्राह्मीमिष्टिं यजेत्तासामहोरात्रेण निर्वपेत् ॥ संविभज्य सुतानर्थैर्ग्राम्यकामान्विसृज्य च । चरेत वनमार्गेण शुचौ देशे परिभ्रमः ॥ वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा विहिता-नोत्तरः फलैः । स्वशरीरे समारोपः पृथिव्यां नाश्रुपातकाः । सह तेनैव पुरुषः कथं संन्यस्त उच्यते ॥ २ ॥ सनामधेयस्तु स किं यस्मिन्संन्यस्त उच्यते । तस्मात्फलविशुद्धाङ्गी संन्यासं सहतेऽर्चिमान् ॥ अग्निवर्णं निष्कामति वानप्रस्थं प्रपद्यते । लोकाद्भार्यया सहितो वनं गच्छति संयतः ॥ त्यक्त्वा कामान्संन्य-सति भयं किमनुपश्यति । किंवा दुःखं समुद्दिश्य भोगांस्त्यजति सुस्थितान् ॥ गर्भवासभयाङ्गीतः शीतोष्णाभ्यां तथैव च । गुहां प्रवेष्टुमिच्छामि परं पदमनामयमिति ॥ ३ ॥ संन्यस्याग्निं न पुनरावर्तनं यन्मन्युर्जायामावहदि-त्यथाध्यात्ममन्त्राक्षपेदीक्षामुपेयात् । काषायवासाः कक्षोपस्थलोमानि वर्जये-दूर्ध्वगोपायुर्विमुक्तमार्गो भवत्यनयैव चेन्निक्षाशनं दध्यात्पवित्रं धारयेज्जन्तु-संरक्षणार्थम् । तत्र श्लोकाः—कुण्डिकां चमसं दिक्यं त्रिविष्टपमुपानहम् । शीतोपघातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं तथा ॥ पवित्रं ज्ञानशार्दीं चोत्तरा-सङ्गस्त्रिदण्डकम् । अतोऽतिरिक्तं यत्किञ्चित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ ३ ॥ नदीपुलिन-

शायी स्याद्देवागारेषु वाऽप्युत । नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत् ॥
 ज्ञानं दानं तथा शौचमग्निः पूताभिराचरेत् । स्तूयमानो न तुष्येत निन्दितो
 न शपेत्परान् ॥ भिक्षादि वैदलं पात्रं ज्ञानद्रव्यमचारितम् । एतां वृत्ति-
 मुपासीना घातयन्तीन्द्रियाणि च ॥ विद्याया मनसि संयोगो मनसाकाशश्चा-
 काशाद्वायुर्वायोर्योतिर्योतिष आपोऽद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या इत्येषा भूतानां
 ब्रह्म प्रपद्यते ॥ ४ ॥ अजरममरमक्षरमव्ययं प्रपद्यते तदभ्यासेन प्राणापानौ
 संयम्य तत्र श्लोकाः—वृषणापानयोर्मध्ये पाणी आस्थाय संश्रयेत् । संदश्य
 दशनैर्जिह्वां यवमात्रे विनिर्गताम् ॥ माषमात्रां तथा दृष्टिं श्रोत्रे स्थाप्य तथा
 भ्रुवि । श्रवणे नासिके न गन्धाय न त्वचं न स्पर्शयेत् ॥ अथ शैवं पदं यत्र
 तद्ब्रह्म तत्परायणम् । तदभ्यासेन लभ्यते पूर्वजन्मार्चितात्मनः ॥ अथ तैः
 संभूतैर्वायुः संस्थाप्य हृदयं तपः । ऊर्ध्वं प्रपद्यते देहान्निष्ठा मूर्धानम-
 व्ययम् ॥ अथाऽयं मूर्धानमस्य देहैषा गतिर्गतिमताम् । ये प्राप्य परमां
 गतिं भूयस्ते न निवर्तन्ते परात्परमवस्थात्परात्परमवस्थादिति ॥ ५ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया संन्यासोपनिषत्समाप्ता ॥ १११ ॥

गोपीचन्दनोपनिषत् ॥ ११२ ॥

गोपिकास्वान्तसंलीनं श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।

ब्रह्मानन्दस्वरूपं तत्स्वमात्रमिति चिन्तये ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ गोपी का नाम । संरक्षणी । कुतः संरक्षणी । लोकस्य नरकान्मृत्योर्भ-
 याच्च संरक्षणी । चन्दनं तुष्टिकारणं च । किं तुष्टिकारणम् । ब्रह्मानन्दकार-
 णम् । य एवंविद्वानेतदाख्यापयेद्य एतच्च धारयेद्गोपीचन्दनमृत्तिकाया निरुक्त्या
 धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति ॥ १ ॥ गोप्यो
 नाम विष्णुपत्न्यः स्युस्तासां चन्दनमाह्लादनम् । कश्चाह्लादः । एष ब्रह्मानन्द-
 रूपः । काश्च विष्णुपत्न्यो गोप्यो नाम । या आत्मना ब्रह्मानन्दैकरूपं
 कृष्णाख्यं परं धामाजयंस्ता जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहदहमाद्या
 महामायाः । कश्च विष्णुः । परं ब्रह्मैव विष्णुः । कश्चाह्लादः । गोपीचन्दन-
 संसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्मज्ञानप्राप्तिश्च । य एवं

वेदेत्युपनिषत् ॥ २ ॥ गोपीत्यग्र उच्यतां चन्दनं तु ततः पश्चात् । गोपी-
 त्यक्षरद्वयं चन्दनं तु त्रियक्षरं तस्मादक्षरपञ्चकम् । य एवविद्वान् गोपीचन्दनं
 धारयेदक्षयं पदमाप्नोति, पञ्चत्वं न स पश्यति, ततोऽमृतत्वमश्नुते, ततोऽमृत-
 त्वमश्नुत इति ॥ ३ ॥ अथ मायाशबलितं ब्रह्मासीत्ततश्च महदाद्या ब्रह्मणो
 महामायासम्मिलितात् । पञ्चभूतेषु गन्धवतीयं पृथिव्यासीत् । पृथिव्याश्च
 वैभवाद्गर्णभेदाः । पीतवर्णां मृदो जायन्ते लोकानुग्रहार्थम् । मायासहित-
 ब्रह्मसम्भोगवशादस्य चन्दनस्य वैभवम् । य एवंविद्वान्यतिहस्ते दद्या-
 दनुपप्लवः सर्वमायुरेति । ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौष्पत्यं च । य
 एतद्रहस्यं सायंप्रातर्ध्यायेद्दहोरात्रकृतं पापं नाशयति, मृतो मोक्षमश्नुत
 इति ॥ ४ ॥ गोपीचन्दनपङ्केन ललाटं यस्तु लेपयेत् । एकदण्डी त्रिदण्डी
 वा स वै मोक्षं समश्नुते ॥ १ ॥ गोपीचन्दनलिसाङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा ।
 तं तं पूतं विजानीयाद्राजभिः सत्कृतो भवेत् ॥ २ ॥ ब्रह्महन्ता कृतघ्नश्च
 गोघ्नश्च गुरुतल्पगः । तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ३ ॥
 गोपीचन्दनलिसाङ्गो त्रियते यत्र कुत्रचित् । अभिव्याप्यायतो भूत्वा देवेन्द्र-
 पदमश्नुते ॥ ४ ॥ गोपीचन्दनलिसाङ्गं पुरुषं य उपासते । एवं ब्रह्मादयो
 देवास्तन्मुखास्तानुपासते ॥ ५ ॥ गोपीचन्दनलिसाङ्गः पुरुषो येन पूज्यते ।
 विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥ सदाचारः शुभाकल्पो
 मिताहारो जितेन्द्रियः । गोपीचन्दनलिसाङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत् ॥ ७ ॥
 गोपीचन्दनलिसाङ्गो व्रतं यस्तु समाचरेत् । ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं
 मुनिरब्रवीत् ॥ ८ ॥ गोपीचन्दनलिसाङ्गैर्जपदानादि यत्कृतम् । न्यूनं संपूर्णतः
 याति विधानेन विशेषतः ॥ ९ ॥ गोपीचन्दनसायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम् ।
 कामदं मोक्षदं चैव इत्येवं मुनयोऽब्रुवन् ॥ १० ॥ अग्निष्टोमसहस्राणि
 वाजपेयशतानि च । तेषां पुण्यमवाप्नोति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ११ ॥
 गोपीचन्दनदानस्य नाशमेधकृतः फलम् । न गङ्गाया समं तीर्थं न शुद्धिर्गोपि-
 चन्दनात् ॥ १२ ॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन गोपीचन्दनमण्डनम् । न तत्तुल्यं
 भवेल्लोके नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥ चन्दनं चापि गोपीनां केलिकुङ्कुम-
 सम्भवम् । मण्डनात्पावनं नृणां मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १४ ॥ कृष्णगोपी-
 रतोद्भूतं पापघ्नं गोपिचन्दनम् । तत्प्रसादात्सर्वदैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
 तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनाद्रिसमं फलम् ॥ १५ ॥ कुङ्कुमं कृष्णगोपीनां

जलक्रीडासु सम्भृतम् । गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः ॥ १६ ॥
 कृष्णगोपीजलक्रीडाकुङ्कुमं चन्दनैर्युतम् । तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्या दशमं
 कुलम् ॥ १७ ॥ गोपीचन्दनखण्डं तु चक्राकारं सुलक्षणम् । विष्णुरूपमिदं
 पुण्यं पावनं पीतवर्णकम् ॥ १८ ॥ आपो वा अग्र आसन् । तत्र प्रजापतिर्वा-
 युर्भूत्वाऽश्राम्यतेदं सृजेयमिति । स तपोऽतप्यत । तत ओङ्कारमपश्यत् ।
 ततो व्याहृतीस्ततो गायत्रीम् । गायत्र्या वेदास्तैरिदमसृजत । धूममार्गविस्तृतं
 हि वेदार्थमभिसन्धाय चतुर्दश लोकानसृजत । तत उपनिषदः श्रुतय
 आविर्बभूवुः । अर्चिमार्गविस्तृतं वेदार्थमभिसन्धाय सर्वान्वेदान्स-
 रहस्योपनिषदङ्गान्ब्रह्मलोके स्थापयामास । ताश्चोपादिशद्वैवस्वतेऽन्तरे
 सगुणं ब्रह्म चिद्वनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां वसुदेवसन्नन्यावि-
 र्भविष्यति । तत्र भवत्यः सर्वलोकोत्कृष्टसौन्दर्यक्रीडाभोगा गोपिकास्वरूपैः
 परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भजिष्यथ । तत्र श्लोकाः—इति ब्रह्मवरं लब्ध्वा श्रुतयो
 ब्रह्मश्लोकगाः । कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसङ्कुले ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णाख्यं
 परं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन् । एतत्सम्भोगसम्भूतं चन्दनं गोपीचन्दनं
 चन्दनं गोपीचन्दनमित्युपनिषत् ॥ २० ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया गोपीचन्दनोपनिषत्समाप्ता ॥ ११२ ॥

सरस्वतीरहस्योपनिषत् ॥ ११३ ॥

प्रतियोगिविनिर्मुक्तब्रह्मविद्यैकगोचरम् ।

अखण्डनिर्विकल्पं तद्रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ ऋषयो ह वै भगवन्तमाश्वलायनं संपूज्य प्रपञ्चुः केनोपायेन
 तज्ज्ञानं तत्पदार्थावभासकम् । यदुपासनया तत्त्वं जानासि भगवन्वद ॥ १ ॥
 सरस्वतीदशश्लोक्या सऋचा बीजमिश्रया । स्तुत्वा जप्त्वा परां सिद्धिमलभं
 मुनिपुङ्गवाः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं सारस्वतप्राप्तिः केन ध्यानेन सुव्रत ।
 महासरस्वती येन तुष्टा भगवती वद ॥ ३ ॥ स होवाचाश्वलायनः । अस्य
 श्रीसरस्वतीदशश्लोकीमहामन्त्रस्य । अहमाश्वलायन ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः ।
 श्रीवागीश्वरी देवता । यद्वागिति बीजम् । देवीं वाचमिति शक्तिः । प्रणो

देवीति कीलकम् । विनियोगस्तत्प्रीत्यर्थे । श्रद्धा मेधा प्रज्ञा धारणा वाग्देवता
महासरस्वतीत्येतैरङ्गन्यासः ॥ नीहारहारघनसारसुधाकराभां कल्याणदां
कनकचम्पकदामभूषाम् । उत्तुङ्गपीनकुचकुम्भमनोहराङ्गीं वाणीं नमामि मनसा
वचसा विभूत्यै ॥ १ ॥ ॐ प्रणो देवीत्यस्य मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिः । गायत्री
छन्दः । श्रीसरस्वती देवता । प्रणवेन बीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे विनि-
योगः । मन्त्रेण न्यासः ॥ या वेदान्तार्थतत्त्वैकस्वरूपा परमार्थतः । नान्तरा-
त्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ ॐ प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वा-
जिनीवती । धीनामविन्ध्यवतु ॥ १ ॥ आ नो दिव इति मन्त्रस्य अत्रिर्ऋषिः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । ह्रीमिति बीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे
विनियोगः । मन्त्रेण न्यासः ॥ या साङ्गोपाङ्गवेदेषु चतुर्ष्वेकैव गीयते । अद्वैता
ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती ॥ ह्रीं आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा
सरस्वती यजताङ्गु यज्ञम् । हवं देवी जुजुषाणा धृताची शग्मां नो वाचा
मुशन्ती शृणोतु ॥ २ ॥ पावका न इति मन्त्रस्य । मधुच्छन्द ऋषिः । गायत्री
छन्दः । सरस्वती देवता । श्रीमिति बीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे विनि-
योगः । मन्त्रेण न्यासः ॥ या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्तते । अनादिनिध-
नानन्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ श्रीं पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजि-
नीवती । यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ३ ॥ चोदयित्रीति मन्त्रस्य मधुच्छन्द
ऋषिः । गायत्री छन्दः । सरस्वती देवता । ब्रह्ममिति बीजशक्तिः कीलकम् ।
मन्त्रेण न्यासः ॥ अध्यात्ममधिदैवं च देवानां सम्यगीश्वरी । प्रत्यगास्ते वदन्ती
या सा मां पातु सरस्वती ॥ ब्रह्मं चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ४ ॥ महो अणं इति मन्त्रस्य मधुच्छन्द ऋषिः । गायत्री
छन्दः । सरस्वती देवता । सौरिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः ।
अन्तर्याम्यात्मना विश्वं त्रैलोक्यं या नियच्छति । रुद्रदित्यादिरूपस्था यस्या-
मावेदय तां पुनः । ध्यायन्ति सर्वरूपैका सा मां पातु सरस्वती । सौः महो
अणः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ॥ ५ ॥ चत्वारि
वागिति मन्त्रस्य उचध्यपुत्रं ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । ऐमिति
बीजशक्तिः कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः । या प्रत्यगदृष्टिभिर्जीवैर्व्यज्यमानाऽनुभूयते ।
व्याप्तिर्नास्तिरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥ ऐं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि

तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो
मनुष्या वदन्ति ॥ ६ ॥ यद्वाग्वदन्तीति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिः । त्रिष्टुप्
छन्दः । सरस्वती देवता । ह्रीमिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः ।
नामजात्यादिभिर्मेदैरष्टधा या विकल्पिता । निर्विकल्पात्मना व्यक्ता सा मां
पातु सरस्वती ॥ ह्रीं यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पर्याप्तिं क्व स्वित्स्याः परमं जगाम ॥ ७ ॥ देवीं वाचमिति
मन्त्रस्य भार्गव ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । सौरिति बीजशक्तिः
कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः ॥ व्यक्ताव्यक्तगिरः सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम् ।
सर्वकामदुघा धेनुः सा मां पातु सरस्वती ॥ सौः देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां
विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्त्रेपमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्यानुप
सुष्टुतैतु ॥ ८ ॥ उत त्व इति मन्त्रस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती
देवता । समिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः । यां विदित्वाऽखिलं
बन्धं निर्मथ्याखिलवर्त्मना । योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सर-
स्वती ॥ सं उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् । उतो
त्वस्यै तन्वं १ विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ९ ॥ अम्बितम इति
मन्त्रस्य गृत्समद ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । ऐमिति
बीजशक्तिः कीलकम् । मन्त्रेण न्यासः । नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेक्ष्य तां
पुनः । ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥ ऐं अम्बितमे नदी-
तमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्यसि प्रशस्तिमस्य नस्कृधि ॥ १० ॥
चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्सम । मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती
॥ १ ॥ नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनि । त्वामहं प्रार्थये नित्यं
विद्यादानं च देहि मे ॥ २ ॥ अक्षसूत्राङ्कुशधरा पाशपुस्तकधारिणी ।
मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ॥ ३ ॥ कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वा-
भरणभूषिता । महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ॥ ४ ॥ या श्रद्धा
धारणा मेधा वाग्देवी विधिवद्भूता । भक्तजिह्वाग्रसदना शमादिगुणदायिनी
॥ ५ ॥ नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम् । भवानीं भवसंताप-
निर्वापणसुधानदीम् ॥ ६ ॥ यः कवित्वं निरातङ्गं भुक्तिमुक्ती च वाञ्छति ।
सोऽभ्यर्च्यैतां दृग्भ्योऽप्या नित्यं स्तौति सरस्वतीम् ॥ ७ ॥ तस्यैव स्तुवतो

नित्यं समभ्यर्च्य सरस्वतीम् । भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्य षण्मासात्प्रत्ययो भवेत् ॥ ८ ॥ ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा । गद्यपद्यात्मकैः शब्दै-
 रप्रमेयैर्विवक्षितैः ॥ ९ ॥ अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः प्रायः सारस्वतः कविः ।
 इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वती ॥ १० ॥ आत्मविद्या मया लब्धा
 ब्रह्मणैव सनातनी । ब्रह्मत्वं मे सदा नित्यं सच्चिदानन्दरूपतः ॥ ११ ॥
 प्रकृतित्वं ततः सृष्टं सत्त्वादिगुणसाम्यतः । सत्यमाभाति चिच्छाया दर्पणे
 प्रतिनिम्बवत् ॥ १२ ॥ तेन चित्प्रतिबिम्बेन त्रिविधा भाति सा पुनः ।
 प्रकृत्यवच्छिन्नतया पुरुषत्वं पुनश्च ते ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वप्रधानायां मायायां
 विम्बितो ह्यजः । सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥ सा माया
 स्ववशोपाधिः सर्वज्ञस्येश्वरस्य हि । वश्यमायत्वमेकत्वं सर्वज्ञत्वं च तस्य तु
 ॥ १५ ॥ सात्त्विकत्वात्समष्टित्वात्साक्षित्वाज्जगतामपि । जगत्कर्तुमकर्तुं वा
 चान्यथा कर्तुमीशते ॥ १६ ॥ यः स ईश्वर इत्युक्तः सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः ।
 शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम् ॥ १७ ॥ विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि
 ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् । अन्तर्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः ॥ १८ ॥
 आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् । साक्षिणः पुरतो भातं लिङ्ग-
 देहेन संयुतम् ॥ १९ ॥ चित्तिच्छायासमावेशाज्जीवः स्याद्वायवहारिकः । अस्य
 जीवत्वमारोपात्साक्षिण्यवभासते ॥ २० ॥ आवृतौ तु विनष्टायां भेदे
 भातेऽपयाति तत् । तथा सर्गब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ॥ २१ ॥ या
 शक्तिस्तद्वशाद्ब्रह्म विकृतत्वेन भासते । अत्राप्यावृतिनाशेन विभाति ब्रह्म-
 सर्गयोः ॥ २२ ॥ भेदस्तयोर्विकारः स्यात्सर्गे न ब्रह्मणि क्वचित् । अस्ति भाति
 प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ॥ २३ ॥ आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो
 द्वयम् । अपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः ॥ २४ ॥ समाधिं सर्वदा
 कुर्याद्धृदये वाथ वा बहिः । सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि
 ॥ २५ ॥ दृश्यशब्दानुभेदेन स विकल्पः पुनर्द्विधा । कामाद्याश्चित्ता दृश्या-
 न्तत्साक्षित्वेन चेतनस्य ॥ २६ ॥ ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सवि-
 कल्पकः । असङ्गः सच्चिदानन्दः स्वप्नभो द्वैतवर्जितः ॥ २७ ॥ अस्मीतिशब्द-
 विद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः । स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दाद्यपेक्षितुः
 ॥ २८ ॥ निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् । हृदीव बाह्य-
 देशेऽपि यस्मिन्कास्मिन् वस्तुनि ॥ २९ ॥ समाधिरौघसन्मात्राज्ञानरूपपृथ-

कृतिः । स्रग्धीभावो रसास्वादात्तृतीयः पूर्ववन्मतः ॥ ३० ॥ एतैः समा-
धिभिः षडभिर्नयेत्कालं निरन्तरम् । देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ॥ ३१ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छि-
द्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ३२ ॥
मयि जीवत्वमीशत्वं कल्पितं वस्तुतो नहि । इति यस्तु विजानाति स मुक्तो
नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

इति सरस्वतीरहस्योपनिषत्समाप्ता ॥ ११३ ॥

पिण्डोपनिषत् ॥ ११४ ॥

पितृणां हंसरूपाणां यन्ता श्रीमज्जनार्दनः ।

भवतापप्रणुत्यर्थं सततं तमहं श्रये ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमदमिति शान्तिः ॥

ॐ ॥ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणमिदमश्रुवन् । मृतस्य दीयते पिण्डः कथं
गृह्णन्त्यचेतसः ॥ १ ॥ भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा । हंसस्त्वाक्त्वा
गतो देहं कस्मिँस्थाने व्यवस्थितः ॥ २ ॥ ज्यहं वसति तोयेषु ज्यहं वसति
चाग्निषु ॥ ज्यहमाकाशगो भूत्वा दिनमेकं तु वायुगः ॥ ३ ॥ प्रथमेन तु
पिण्डेन कलानां तस्य संभवः । द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्शोणितोद्भवः
॥ ४ ॥ तृतीयेन तु पिण्डेन मतिस्तस्याभिजायते । चतुर्थेन तु पिण्डेन
अस्थि मज्जा प्रजायते ॥ ५ ॥ पञ्चमेन तु पिण्डेन हस्ताङ्गुल्यः शिरो मुखम् ।
षष्ठेन कृतपिण्डेन हृत्कण्ठं तालु जायते ॥ ६ ॥ सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः
प्रजायते । अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुण्यति वीर्यवान् ॥ ७ ॥ नवमेन तु
पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः । दशमेन तु पिण्डेन आवानां प्लवनं तथा ।
पिण्डे पिण्डशरीरस्य पिण्डदानेन संभवः ॥ ८ ॥ हरिः ॐ तत्सदित्युपनिषत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया पिण्डोपनिषत्समाप्ता ॥ ११४ ॥

महोपनिषद् ॥ ११५ ॥

नारायणः परंब्रह्म सर्वेषां महतां महः ।

अभ्यासाद्यद्विपश्यन्ति सन्तः संसारभेषजम् ॥ १ ॥

अथातो महोपनिषदमेव । तदाहुरेको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्नीपोमौ नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न सूर्यः स एकाकी नर एव । तस्य ध्यानान्तःस्थस्य यज्ञः स्तोममुच्यते । तस्मिन् पुरुषाश्चतुर्दशा-
जायन्त एका कन्या । दशेन्द्रियाणि मन एकादशम् । तेजो द्वादशम् । अह-
ङ्कारश्चोदशः । प्राणाश्चतुर्दश आत्मा । पञ्चदशी बुद्धिः । पञ्चतन्मान्नाणि
पञ्चमहाभूतानि । स एष पञ्चविंशकः पुरुषः । तं पुरुषं पुरुषो निवेदय । नास्य
प्रजा नसंवत्सरा जायन्ते संवत्सरादधि जायन्ते ॥ १ ॥

इत्यथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत तस्य ध्यानान्तः-
स्थस्य ललाटाक्षयक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायन्न विभ्रच्छ्रियं सत्यं ब्रह्मचर्यं
तपो वैराग्यं मन ऐश्वर्यं सप्रणवा व्याहृतय ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसः सर्वाणि
छन्दांसि तान्यङ्गेष्वभिमतानि ॥ २ ॥

अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत । तस्य ध्यानान्तः-
स्थस्य ललाटास्वेदोऽपतत् । ता इमाः प्रतता आपस्तासु तेजो हिरण्मय-
मण्डं तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत । सोऽध्यायत पूर्वामुखो भूत्वा भूरिति
व्याहृतिर्गायत्रं छन्द ऋग्वेदः । पश्चिमामुखो भूत्वा भुव इति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं
छन्दो यजुर्वेदः । उत्तरामुखो भूत्वा स्वरिति व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः ।
दक्षिणामुखो भूत्वा जनदिति व्याहृत्यानुष्टुभं छन्दोऽथर्ववेदः । ॐ सहस्रशीर्षं
देवं सहस्राक्षं विश्वशम्भुवम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ।
विश्वमेवेदं पुरुषं तं विश्वमुपजीवति । ऋषिं विश्वेश्वरं देवं समुद्रेतं विश्वरूपि-
णम् । पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसन्निभम् । हृदये चाप्यधोमुखं सन्तते
शीकराभिश्च । तस्य मध्ये महानर्चिर्विश्वार्चिविश्वतोमुखम् । तस्य मध्ये
वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता । तस्यै शिखायै मध्ये पुरुषः परमात्मा
व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराद ॥ ३ ॥

य इदं महोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवत्यनुपनीत उप-
नीतो भवति । सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स सूर्यपूतो भवति ।

स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वैर्देवै-
र्ज्ञातो भवति । स सर्वैर्देवैरनुध्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु ज्ञातो भवति ।
तेन सर्वैः क्रतुभिरिष्टं भवति । गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति ।
इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं
जप्तं भवति । आ चक्षुषः पङ्क्तिं पुनात्यासप्तमात्पुरुषयुगात्पुनातीत्याह भगवान्
हिरण्यगर्भः । जाप्येनामृतत्वं गच्छत्यमृतत्वं गच्छतीति ॥ ४ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया महोपनिषत्समाप्ता ॥ ११५ ॥

बृहचोपनिषत् ॥ ११६ ॥

बृहचाख्यब्रह्मविद्यामहाखण्डार्थवैभवम् ।

अखण्डानन्दसाम्राज्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत् । कामकलेति
विज्ञायते । शृङ्गारकलेति विज्ञायते तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् । विष्णुर-
जीजनत् । रुद्रोऽजीजनत् । सर्वे मरुद्गणा अजीजनन् । गन्धर्वाप्सरसः
किंनरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन् । भोग्यमजीजनत् । सर्वमजीजनत् ।
सर्वं शाक्तमजीजनत् । अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किंचैतत्प्राणि स्थावर-
जङ्गमं मनुष्यमजीजनत् ॥ सैषाऽपरा शक्तिः । सैषा शांभवी विद्या कादि-
विद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यम् । ओमो वाचि प्रतिष्ठा
सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्त-
रसङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः । सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा
अत एव ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिदाद्याद्वितीयब्रह्मसंवित्तिः
सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति ।
यदस्ति सन्मात्रम् । यद्विभाति चिन्मात्रम् । यत्प्रियमानन्दं तदेतत्सर्वाकारा
महात्रिपुरसुन्दरी । त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता । इतरत्सर्वं महात्रिपुर-

सुन्दरी । सत्यमेकं ललिताख्यं वस्तु तद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म । पञ्जरूप-
परित्यागादस्वरूपग्रहाणतः । अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत् ॥
इति । प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मीति वा भाष्यते । तत्त्वमसीत्येव संभा-
ष्यते । अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा योऽहमस्मि वा सोऽह-
मस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाष्यते सैषा षोडशी श्रीविद्या
पञ्चदशक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी वालाम्बिकेति वगलेति वा मातङ्गीति
स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चासुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करी-
णीति राजमातङ्गीति वा शुक्रश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति
वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सारस्वती ब्रह्मानन्दकलेति । ऋचो अक्षरे
परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमुचा करि-
ष्यति । य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

इति बह्वचोपनिषत्सभासा ॥ ११६ ॥

आश्रमोपनिषत् ॥ ११७ ॥

सर्वाश्रमाः समभवन् यस्मात्सोऽयं जनार्दनः ।

कैवल्यावासये भूयात्सदाचाररतान्हि तान् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथातश्चत्वार आश्रमाः षोडशमेदा भवन्ति । तत्र ब्रह्मचारिण-
श्चतुर्विधा भवन्ति गायत्रो ब्राह्मणः प्राजापत्यो बृहन्निति । य उपनयनादूर्ध्वं
त्रिरात्रमक्षारलवणाक्षी गायत्रीमन्त्रे स गायत्रः । योऽष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि
वेदब्रह्मचर्यं चरेत्प्रातिवेदं द्वादश वा यावद्ब्रह्मणान्तं वा वेदस्य स ब्राह्मणः ।
स्वदारनिरत ऋतुकालाभिगामी सदा परदारवर्जो प्राजापत्यः । अथवा
चतुर्विंशतिवर्षाणि गुरुकुलवासी ब्राह्मणोऽष्टाचत्वारिंशद्वर्षवासी च प्राजा-
पत्यः । आ प्रायणाद्गुरोरपरित्यागी नैष्ठिको बृहन्निति ॥ १ ॥ गृहस्था अपि
चतुर्विधा भवन्ति—वार्ताकवृत्तयः शालीनवृत्तयो यायावरा घोरसंन्यासिका-
श्चेति । तत्र वार्ताकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगर्हितमुपयुज्जानाः शत-
संवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । शालीनवृत्तयो यजन्तो न

याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । घोरसंन्यासिका उद्धृतपरिपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्वन्तः प्रतिदिव-
समाहृतोच्छृत्तिमुपयुञ्जानाः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥ वानप्रस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति वैखानसा उदुम्बरा बालखिल्याः फेनपाश्चेति । तत्र वैखानसा अकृष्टपच्यौषधिवनस्पतिभिर्ग्रीम-
बहिष्कृताभिरग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञक्रियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । उदुम्बराः प्रातरुत्थाय यां दिशमभिप्रेक्षन्ते तदाहृतोदुम्बरवदर-
नीवारश्यामकैरग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञक्रियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । बालखिल्या जटाधराश्चरिर्मवल्कलपरिवृताः कार्तिक्यां पौर्णमास्यां पुष्पफलमुत्सृजन्तः शेषानष्टौ मासान् वृत्त्युपार्जनं कृत्वाऽग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञक्रियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । फेनपा उन्मत्तकाः क्षीर्णपर्णफलभोजिनो यत्र यत्र वसन्तोऽग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञक्रियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते ॥ ३ ॥ परिव्राजका अपि चतुर्विधा भवन्ति—
कुटीचरा बहूदका हंसाः परमहंसाश्चेति । तत्र कुटीचराः स्वपुत्रगृहेषु भिक्षाचर्यं चरन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । बहूदकास्त्रिदण्डकमण्डलुशिक्यपक्ष-
जलपवित्रपात्रपादुकासनशिखायज्ञोपवीतकौपीनकाषायवेषधारिणः साधुवृत्तेषु ब्राह्मणकुलेषु भैक्षाचर्यं चरन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । हंसा एकदण्डधराः शिखावर्जिता यज्ञोपवीतधारिणः शिक्यकमण्डलुहस्ता ग्रामैकरात्रवासिनो नगरे तीर्थेषु पञ्चरात्रं वसन्त एकरात्रद्विरात्रकृच्छ्रचान्द्रायणादि चरन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । परमहंसा नदण्डधरा मुण्डाः कन्याकौपीनवासिनो-
ऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डकमण्डलु-
शिक्यपक्षजलपवित्रपात्रपादुकासनशिखायज्ञोपवीतानां त्यागिनः शून्यागार-
देवगृहवासिनो न तेषां धर्मो नाधर्मो न चानृतं सर्वसहाः सर्वसमाः सम-
लोष्टाश्मकाञ्चना यथोपपन्नचातुर्वर्ण्यभैक्षाचर्यं चरन्त आत्मानं मोक्षयन्त आत्मानं मोक्षयन्त इति ॥ ४ ॥ ॐ तत्सदिद्युपनिषत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीयाश्रमोपनिषत्समाप्ता ॥ ११७ ॥

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् ॥ ११८ ॥

सौभाग्यलक्ष्मीकैवल्यविद्यावेद्यसुखाकृति ।

त्रिपञ्चारायणानन्दरामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ भगवन्तं देवा ऊचुर्हे भगवन्नः कथय सौभाग्यलक्ष्मी-
विद्याम् । तथेत्यवोचद्भगवानादिनारायणः सर्वे देवा यूयं सावधानमनसो भूत्वा
शृणुत तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्त्रासनगतां पीठोपपीठ-
देवतापरिवृतां चतुर्भुजां श्रियं हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्गिभर्ध्यायेत् । अथ
पञ्चदश ऋगात्मकस्य श्रीसूक्तस्यानन्दकर्मचिह्नीतेन्द्रिरासुता ऋषयः । श्री-
रिण्याद्या ऋचः चतुर्दशानामृचामानन्दाऋषयः । हिरण्यवर्णाद्याद्यत्रयस्यानुष्टुप्
छन्दः । कांसोऽस्मीत्यस्य वृहती छन्दः । तदन्यथोर्द्वयोश्चिष्टुप् । पुनरष्टकस्यानु-
ष्टुप् । शेषस्य प्रस्तारपङ्क्तिः । श्रियमिदं देवता । हिरण्यवर्णामिति बीजम् । कांसोऽ-
स्मीति शक्तिः । हिरण्यमया चन्द्रा रजतस्रजा हिरण्या हिरण्यवर्णेति प्रणवादि-
नमोऽन्तैश्चतुर्थ्यन्तैरङ्गन्यासः । अथ वक्रत्रयैरङ्गन्यासः । मस्तकलोचनाशुभ्राण-
वदनकण्ठबाहुद्वयहृदयनाभिगुह्यपायूरुजानुजङ्घेयु श्रीसूक्तैरेव क्रमशो न्यसेत् ।
अरुणकमलसंस्था तद्वज्रः पुञ्जवर्णा करकमलधृतेष्टाऽभीतियुग्मास्तुजा च । मणि-
कटकविचित्रालङ्कृताकल्पजालैः सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः
॥ १ ॥ तत्पीठकर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् । वस्वादित्यकलापद्मेषु श्रीसू-
क्तगतार्धाध्वर्चा तद्वहिर्यः शुचिरिति मातृकया च श्रियं यद्वाङ्मोदशकं च
विलिख्य श्रियमावाहयेत् । अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः । पद्मादिभिर्द्वितीया । लोके-
शैस्तृतीया । तदायुधैस्तुरीया वृत्तिर्भवति । श्रीसूक्तैराहनादि । षोडशस-
हस्रजपः । सौभाग्यरमैकाक्षर्या भृगुनिचृद्वायत्री । श्रिय ऋग्यादयः । शमिति
बीजशक्तिः । श्रीमित्यादि पङ्क्तम् । भूयान्द्वयो द्विपद्माभयवरदकरा तस-
कार्तेस्वराभा शुभ्राभ्राभेभयुग्मद्वयकरधृतकुन्भाद्भिरासिच्यमाना । रक्तौघा-
वद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवालेपनाढ्या पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः
पद्मगा श्रीः श्रियै नः ॥ १ ॥ तत्पीठम् । अष्टपत्रं वृत्तत्रयं द्वादशराशिखण्डं
चतुरस्रं रमापीठं भवति । कर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् । विभूतिरुहतिः
कान्तिः सृष्टिः कीर्तिः सन्नतिर्व्युष्टिः सत्कृष्टिर्ऋदिरिति प्रणवादिनमोन्तै-
श्चतुर्थ्यन्तैर्नवशक्तिः यजेत् । अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः । पद्मादिभिर्द्वितीया ।

वालाक्यादिभिस्तृतीया । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षजपः
 श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपत्नी वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्णमालिनी रजतस्रज
 स्वर्णप्रभा स्वर्णप्राकारा पद्मवासिनी पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालंकार
 चन्द्रसूर्या विष्वक्प्रिया ईश्वरी भुक्तिमुक्तिर्विभूतिर्कण्डिः समृद्धिः कृष्टि
 पुष्टिर्धनदा धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा सावित्री धात्री विधा
 त्रीत्यादिप्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ता मन्त्राः । एकाक्षरवदङ्गादिपीठम्
 लक्षजपः । दशांशं तर्पणम् । दशांशं हवनम् । द्विजतृप्तिः । निष्का-
 मानामेव श्रीविद्यासिद्धिः । न कदापि सकामानामिति ॥ १ ॥ अथ हैनं
 देवा ऊचुस्तुरीयया मायया निर्दिष्टं तत्त्वं ब्रूहीति । तथेति स होवाच ।
 योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्धते । योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी
 रमते चिरम् ॥ १ ॥ समापश्य निद्रां सुजीर्णैस्त्वभोजी श्रमत्याज्यवाधे
 विविक्ते प्रदेशे । सदा शीतनिस्तृष्ण एष प्रयत्नोऽथ वा प्रणरोधो निजाभ्या-
 समार्गात् ॥ २ ॥ वक्त्रेणार्प्य वायुं हुतवह्निलयेऽपानमाकृष्य धृत्वा स्वाङ्गुष्ठा-
 दङ्गुलीभिर्वरकरतलयोः षड्भिरिव निरुध्य । श्रोत्रे नेत्रे च नासापुटयुग-
 लमथोऽनेन मार्गेण सम्यक्पश्यन्ति प्रत्यक्षांशं प्रणवबहुविधध्यानसंलीन-
 चित्ताः ॥ ३ ॥ श्रवणमुखनयननासानिरोधेनैव कर्तव्यम् । शुद्धसुषुम्ना-
 सरणौ स्फुटममलं श्रूयते नादः ॥ ४ ॥ विचित्रघोषसंयुक्तानाहते श्रूयते
 ध्वनिः । दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धोऽप्यरोगवान् ॥ ५ ॥ संपूर्णहृदयः
 शून्ये त्वारम्भे योगवान्भवेत् । द्वितीया विघटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः
 ॥ ६ ॥ दृढासनो भवेद्योगी पद्माद्यासनसंस्थितः । विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमा-
 नन्दसंभवः ॥ ७ ॥ अतिशून्यो विमर्दश्च भेरीशब्दस्ततो भवेत् । तृतीयां
 यत्नतो भित्त्वा निनादो मर्दनध्वनिः ॥ ८ ॥ महाशून्यं ततो धाति सर्वसिद्धि-
 समाश्रयम् । चित्तानन्दं ततो भित्त्वा सर्वपीठगतानिलः ॥ ९ ॥ निष्पत्तौ
 वैष्णवः शब्दः कणतीति कणो भवेत् । एकीभूतं तदा चित्तं सनकादिमुनी-
 ङितम् ॥ १० ॥ अन्तेऽनन्तं समारोप्य खण्डेऽखण्डं समर्पयन् । भूमानं
 प्रकृतिं ध्यात्वा कृतकृत्योऽमृतो भवेत् ॥ ११ ॥ योगेन योगं संरोध्य भावं
 भावेन चाक्षसा । निर्विकल्पं परं तत्त्वं सदा भूत्वा परं भवेत् ॥ १२ ॥ अहं
 भावं परित्यज्य जगद्भावमनीदृशम् । निर्विकल्पे स्थितो विद्वान्भूयो नाप्य
 नुशोचति ॥ १३ ॥ सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः । तथात्ममन
 सोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ १४ ॥ यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रली-
 यते । तदा समरसत्वं यत्समाधिरभिधीयते ॥ १५ ॥ यत्समत्वं तथोरः

जीवात्मपरमात्मनोः । समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥ १६ ॥ प्रभा-
 शून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम् । सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभि-
 धीयते ॥ १७ ॥ स्वयमुचलिते देहे देही नित्यसमाधिना । निश्चलं तं विजा-
 नीयात्समाधिरभिधीयते ॥ १८ ॥ यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम् ।
 तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् ॥ १९ ॥ इति ॥ २ ॥ अथ हैनं देवा
 ऊर्चुर्नवचक्रविवेकमनुब्रूहीति । तथेति स होवाच आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिरावृत्तं
 भगमण्डलाकारम् । तत्र मूलकन्दे शक्तिः पावकाकारं ध्यायेत् । तत्रैव काम-
 रूपपीठं सर्वकामप्रदं भवति । इत्याधारचक्रम् । द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं पद्म-
 दलम् । तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत् । तत्रैवो-
 ऽध्याणपीठं जगदाकर्षणसिद्धिदं भवति । तृतीयं नाभिचक्रं पञ्चावर्तं सर्पकुटि-
 लाकारम् । तन्मध्ये कुण्डलिनीं बालार्ककोटिप्रभां तडित्प्रभां (तनुमध्यां)
 ध्यायेत् । सामर्थ्यशक्तिः सर्वसिद्धिप्रदा भवति । मणिपूरकचक्रं हृदयचक्रम् ।
 अष्टदलमधोमुखम् । तन्मध्ये ज्योतिर्मयलिङ्गाकारं ध्यायेत् । सैव हंसकला
 सर्वप्रिया सर्वलोकवश्यकरी भवति । कण्ठचक्रं चतुरङ्गुलम् । तत्र वामे इडा
 चन्द्रनाडी दक्षिणे पिङ्गला सूर्यनाडी तन्मध्ये सुपुष्पां श्वेतवर्णां ध्यायेत् । य
 एवं वेदानाहता सिद्धिदा भवति । तालुचक्रम् । तत्रामृतधाराप्रवाहः । घण्टि-
 कालिङ्गमूलचक्ररन्ध्रे राजदन्तावलम्बिनीविवरं दशद्वादशारम् । तत्र शून्यं
 ध्यायेत् । चित्तलयो भवति । सप्तमं भ्रूचक्रमङ्गुष्ठमात्रम् । तत्र ज्ञाननेत्रं
 दीपशिखाकारं ध्यायेत् । तदेव कपालकन्दवाक्सिद्धिदं भवति । आज्ञाचक्र-
 मष्टमम् । ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाणचक्रम् । तत्र सूचिकागृहेतरं धूम्रशिखाकारं
 ध्यायेत् । तत्र जालन्धरपीठं मोक्षप्रदं भवतीति परब्रह्मचक्रम् । नवममाकाश-
 चक्रम् । तत्र षोडशदलपद्ममूर्ध्वमुखं तन्मध्यकर्णिकात्रिकूटाकारम् ।
 तन्मध्ये ऊर्ध्वशक्तिः । तां पश्यन्ध्यायेत् । तत्रैव पूर्णगिरिपीठं सर्वेच्छालिङ्गि-
 साधनं भवति । सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति । स
 वायुपूतो भवति । स सकलधनधान्यसत्पुत्रकलत्रहयभूगजपशुमहिषीदासी-
 दासयोगज्ञानवान्भवति । न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत इत्युपनिषत् ॥
 ॐ वाञ्छे मनसीति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीसौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्समाप्ता ॥ ११८ ॥

योगशिखोपनिषत् ॥ ११९ ॥

योगीश्वरं रमानाथं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

योगशास्त्रप्रवक्तारं नौमि कैवल्यप्राप्तये ॥ १ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ योगशिखां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानेषु चोत्तमां । यदा तु ध्यायते मन्त्रं
गात्रकम्पोऽभिजायते ॥ १ ॥ आसनं पद्मकं बद्ध्वा यच्चान्यद्वापि रोचते ।
कुर्यान्नासाग्रदष्टिं च हस्तौ पादौ च संयतौ ॥ २ ॥ मनः सर्वत्र संयम्य ओंकारं
तत्र चिन्तयेत् । ध्यायेत् सततं प्राज्ञो हृत्कृत्वा परमेष्ठिनम् ॥ ३ ॥ एक-
स्त्वस्मै नवद्वारे त्रिस्थूणे पञ्चदैवते । ईदृशे तु शरीरे वा मतिमानुपलक्षयेत्
॥ ४ ॥ आदित्यमण्डलं दिव्यं रश्मिज्वालासमाकुलम् । तस्य मध्यगतो वह्निः
प्रज्वलेद्दीपवर्तिवत् ॥ ५ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

दीपशिखायां या मात्रा सा मात्रा परमेष्ठिनः ॥ १ ॥ भिन्दन्ति योगिनः
सूर्यं योगाभ्यासेन वै पुनः ॥ २ ॥ द्वितीयं सुषुम्नाद्वारं परिशुद्धं विसर्पति ।
कपालसंपुटं भित्त्वा ततः पश्यन्ति तत्परम् ॥ ३ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ न ध्यायेज्जन्तुरालस्याच्च प्रमादतः । यदि त्रिकालमावर्तेत्स गच्छे-
त्परमं पदम् ॥ १ ॥ पुण्यमेतत्समासाद्य संक्षेपात्कथितं मया । लब्धयोगेन
बोद्धव्यं प्रसन्नं परमेष्ठिनम् ॥ २ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु यदा नाश्नाति किल्बि-
षम् । तदा पश्यन्ति योगेन संसारच्छेदनं परं संसारच्छेदनं परमिति ॥ ३ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्याथर्वणीया योगशिखोपनिषत्समाप्ता ॥ ११९ ॥

मुक्तिकोपनिषद् ॥ १२० ॥

ईशाद्यष्टोत्तरशतवेदान्तपटलाशयम् ।

मुक्तिकोपनिषद्वेद्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

हरिः ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यसे । सीताभरतसौमित्रिशत्रु-
घ्नाद्यैः समन्वितम् ॥ १ ॥ सनकाद्यैर्मुनिगणैर्वसिष्ठाद्यैः शुकादिभिः । अन्यै-
र्भागवतैश्चापि स्तूयमानमहर्निशम् ॥ २ ॥ धीविक्रियासहस्राणां साक्षिणं निर्वि-
कारिणम् । स्वरूपध्याननिरतं समाधिविरमे हरिम् ॥ ३ ॥ भक्त्या शुश्रूषया
रामं स्तुवन्पप्रच्छ मारुतिः । राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४ ॥
इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः । त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम
मुक्तये ॥ ५ ॥ अनायासेन येनाहं मुच्येयं भवबन्धनात् । कृपया वद मे
राम यंन मुक्तो भवाम्यहम् ॥ ६ ॥ साधु पृष्टं महाबाहो वदामि शृणु
तत्त्वतः । वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं समुपाश्रय ॥ ७ ॥ वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ
वर्तन्ते कुत्र ते वद । हनूमन्मृगं वक्ष्यामि वेदान्तस्थितिमजसा ॥ ८ ॥
निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः । तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः
सुप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ राम वेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव । तासूपनि-
षदः काः स्युः कृपया वद तत्त्वतः ॥ १० ॥ श्रीराम उवाच । ऋग्वेदादि-
विभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः । तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा
॥ ११ ॥ ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः । नवाधिकशतं शाखा
यजुषो मारुतात्मज ॥ १२ ॥ सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे ॥ १३ ॥ एकैकस्यास्तु शाखाया
एकैकोपनिषन्मता । तासामेकामृचं यश्च पठते भक्तितो मयि ॥ १४ ॥ स
मत्सायुज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिदुर्लभाम् । राम केचिन्मुनिश्रेष्ठ मुक्तिरेकेति
चक्षिरे ॥ १५ ॥ केचित्त्वज्रामभजनत्काश्यां तारोपदेशतः । अन्ये तु सांख्ययोगेन
भक्तियोगेन चापरे ॥ १६ ॥ अन्ये वेदान्तवाक्यार्थविचारात्परमर्षयः । सांख्यो-
क्त्यादिविभागेन चतुर्धा मुक्तिरीरिता ॥ १७ ॥ स होवाच श्रीरामः । कैवल्य-
मुक्तिरेकैव पारमार्थिकरूपिणी । दुराचाररतो वापि मज्जामभजनत्कपे ॥ १८ ॥

सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम् । काश्यां तु ब्रह्मनालेऽस्मि-
 न्मृतो मत्तारमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ।
 यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः ॥ २० ॥ जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु
 मत्तारं समुपादिशेत् । निर्धृताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम् ॥ २१ ॥
 सैव सालोक्यसारूप्यमुक्तिरित्यभिधीयते । सदाचाररतो भूत्वा द्विजो नित्य-
 मनन्यधीः ॥ २२ ॥ मयि सर्वात्मके भावो मत्सामीप्यं भजत्ययम् । सैवं
 सालोक्यसारूप्यसामीप्या मुक्तिरिष्यते ॥ २३ ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यायन्म-
 द्गुणमव्ययम् । मत्सायुज्यं द्विजः सम्यग्भजेन्द्रमरकोटवत् ॥ २४ ॥ सैव
 सायुज्यमुक्तिः स्याद्ब्रह्मानन्दकरी शिवा । चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया
 भवेत् ॥ २५ ॥ इयं कैवल्यमुक्तिस्तु केनोपायेन सिध्यति । माण्डूक्यमेकमे-
 वालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ॥ २६ ॥ तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिषदं पठ ।
 ज्ञानं लब्ध्वाऽचिरादेव मामकं धाम यास्यसि ॥ २७ ॥ तथापि दृढता नो
 चेद्विज्ञानस्याक्षनासुतं । द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय ॥ २८ ॥
 विदेहमुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ । तासां क्रमं सशान्तिं च शृणु वक्ष्यामि
 तत्त्वतः ॥ २९ ॥ ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः । ऐतरेयं च छान्दोग्यं
 बृहदारण्यकं तथा ॥ ३० ॥ ब्रह्मकैवल्यजाबालश्वेताश्वो हंस आरुणिः । गर्भो
 नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरःशिखा ॥ ३१ ॥ मैत्रायणी कौपीतकी बृहज्जाबा-
 लतापनी । कालामिरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरिमत्रिका ॥ ३२ ॥ सर्वसारं निरा-
 लम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् । तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥ ३३ ॥
 परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडा निर्वाणमण्डलम् । दक्षिणा शरभं स्कन्दं
 महानारायणाङ्गयम् ॥ ३४ ॥ रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च सुब्रह्मम् ।
 शाण्डिल्यं पैङ्गलं मिश्रमहच्छारीरकं शिखा ॥ ३५ ॥ तुरीयातीतसंन्यासपरि-
 ब्राजाक्षमालिका । अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्षयध्यात्मकुण्डिका ॥ ३६ ॥
 सावित्र्यास्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम् । त्रिपुरातपनं देवीत्रिपुरा कठ-
 भावना । हृदयं कुण्डली भस्म रुद्राक्षगणदर्शनम् ॥ ३७ ॥ तारसारमहावा-
 क्यपञ्चब्रह्माभिहोत्रकम् । गोपालतपनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम् ॥ ३८ ॥
 शाठ्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम् । कलिजाबालिसौभाग्यरहस्यऋच-
 मुक्तिका ॥ ३९ ॥ एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् । ज्ञानवैराग्यदं पुंसां
 वासनात्रयनाशनम् ॥ ४० ॥ पूर्वोत्तरेषु विहिततत्तच्छान्तिपुरःसरम् । वेद-

विद्याव्रतज्ञातदेशिकस्य सुखास्त्रयम् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाऽष्टोत्तरशतं ये पठन्ति
द्विजोत्तमाः । प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥ ४२ ॥ ततः
कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते । वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्र
संशयः ॥ ४३ ॥ सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम् । सकृच्छ्रवणमात्रेण
सर्वाघौघनिवृत्तनम् ॥ ४४ ॥ मयोपदिष्टं शिष्याय तुभ्यं पवननन्दन । इदं
शास्त्रं मयादिष्टं गुह्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ४५ ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पठतां
बन्धमोचकम् । राज्यं देयं धनं देयं याचतः कामपूरणम् ॥ ४६ ॥ इद-
मष्टोत्तरशतं न देयं यस्य कस्यचित् । नास्तिकाय कृतघ्नाय दुराचाररताय वै
॥ ४७ ॥ मद्भक्तिविमुखार्थापि शास्त्रगतेषु मुह्यते । गुरुभक्तिविहीनाय दातव्यं
न कदाचन ॥ ४८ ॥ सेवापराय शिष्याय हितपुत्राय मारुते । मद्भक्ताय
सुखीलाय कुलीनाय सुमेधसे ॥ ४९ ॥ सम्यक् परीक्ष्य दातव्यमेवमष्टोत्तरं
शतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स मासेति न संशयः । तदेतद्व्याख्युक्तम्—
विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेषधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृ-
जवे शठाय मा मा ब्रूया दीर्यवती तथा स्यात् । यमेव विद्याश्रुतमग्रमत्तं
मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । तस्मा इमामुपसन्नाय सम्यक् परीक्ष्य दद्याद्वैष्ण-
वीमात्मनिष्ठा ॥ इति ॥ १ ॥ अथ हैनं श्रीरामचन्द्रं मारुतिः पप्रच्छ
ऋग्वेदादिविभागैर्न पृथक् शान्तिमनुब्रूहीति । स होवाच श्रीरामः । ऐतरेय-
कौपीतकीनाद्विन्द्वात्मप्रबोधनिर्वाणमुद्गलक्षमालिकात्रिपुरासौभाग्यबहुचा-
नाष्टृग्वेदगतानां दशसंख्याकानामुपनिषदां बाधो मनसीति शान्तिः ॥ १ ॥
इतिवात्यबृहदारण्यकाबालहंसपरमहंससुवालमन्निकानिरालम्बत्रिशिखीब्राह्म-
णमण्डलब्राह्मणाद्वयतालकपैङ्गलभिक्षुतुरीयातीताध्यात्मतारसारयाज्ञवल्क्यशा-
ध्यायनीमुक्तिकानां शुक्लयजुर्वेदगतानामेकोनविंशतिसंख्याकानामुपनिषदां
पूर्णमद इति शान्तिः ॥ २ ॥ कठवल्लीतैत्तिरीयकब्रह्मकैवल्यश्वेताश्वतरगर्भना-
रायणाश्रुतविन्दुश्रुतनादकालाग्निरुद्रक्षुरिकासर्वसारशुक्रहस्यतेजोविन्दुध्यान-
विन्दुब्रह्मविद्यायोगतत्त्वदक्षिणामूर्तिरुन्दशारीरकयोगशिल्पैकाक्षराक्षयवधूत-
कठरुद्रहृदययोगकुण्डलिनीपञ्चब्रह्मप्राणाग्निहोत्रचराहकलिसंतरणसरस्वतीरह-
स्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां स ह नाववत्त्विति
शान्तिः ॥ ३ ॥ केनच्छान्दोग्यारुणिमैत्रायणिमैत्रेयीवज्रसूचिकावोगचूडामणि-

वासुदेवमहत्संन्यासाभ्यक्तकुण्डिकासवित्रीरुद्राक्षजाबालदर्शनजाबालीनां सामवेदगतानां षोडशसंख्याकानामुपनिषदामाप्यात्यन्त्विति शान्तिः ॥ ४ ॥
 प्रश्नमुण्डकमाण्डूक्याथर्वशिरोऽथर्वशिखाबृहज्जाबालनृसिंहतापनीनारदपरिव्राजकसीताशरभमहानारायणरामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिव्राजकाक्षपूर्णसूर्यात्मपाशुपतपरब्रह्मत्रिपुरातपनदेवीभावनाब्रह्मजाबालगणपतिमहावाक्यगोपालतपनकृष्णहयग्रीवदत्तात्रेयगारुडानामथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ ५ ॥
 मुमुक्षवः पुरुषाः साधनचतुष्टयसंपन्नाः श्रद्धावन्तः सुकुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्यगुणवन्तमकुटिलं सर्वभूतहिते रतं दयासमुद्रं सद्गुरुं विधिवदुपसंगम्योपहारपाणयोऽष्टोत्तरशतोपनिषदं विधिवदधीत्य श्रवणमनननिदिध्यासनानि नैरन्तर्येण कृत्वा प्रारब्धक्षयाद्देहत्रयभङ्गं प्राप्योपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्परिपूर्णतां विदेहमुक्तिः । सैव कैवल्यमुक्तिरिति । अत एव ब्रह्मलोकस्था अपि ब्रह्मसुखाद्देवान्तश्रवणादि कृत्वा तेन सह कैवल्यं लभन्ते । अतः सर्वेषां कैवल्यमुक्तिर्ज्ञानमात्रेणोक्ता । न कर्मसांख्ययोगोपासनादिभिरित्युपनिषत् ॥

इति मुक्तिकोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तथा हैनं श्रीरामचन्द्रं मारुतिः पप्रच्छ । केयं वा तत्सिद्धिः सिद्ध्या वा किं प्रयोजनमिति । स होवाच श्रीरामः । पुरुषस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिलक्षणश्चित्तधर्मः क्लेशरूपत्वाद्बन्धो भवति । तन्निरोधनं जीवनमुक्तिः । उपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्प्रारब्धक्षयाद्देहमुक्तिः । जीवनमुक्तिविदेहमुक्त्योरष्टोत्तरशतोपनिषदः प्रमाणम् । कर्तृत्वाद्विदुःखनिवृत्तिद्वारा नित्यानन्दावासिः प्रयोजनं भवति । तत्पुरुषप्रयत्नसाध्यं भवति । यथा पुत्रकामेष्टिना पुत्रं वाणिज्यादिना वित्तं ज्योतिष्टोमेन स्वर्गं तथा पुरुषप्रयत्नसाध्यवेदान्तश्रवणादिजनितसमाधिना जीवनमुक्त्यादिलाभो भवति । सर्ववासनाक्षयात्तल्लभः । अत्र श्लोका भवन्ति—उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं मतम् । तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ १ ॥ लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च । देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥ २ ॥ द्विविधो वासनान्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च तौ । वासनौघेन शुद्धेन तत्र चेदनुनीयसे ॥ ३ ॥

तत्कमेणाशु तेनैव मामकं पदमाप्नुहि । अथ चेदशुभो भावस्त्वां
 योजयति संकटे ॥ ४ ॥ प्राक्तनस्तदसौ यत्ताज्जेतव्यो भवता कपे । शुभाशुभाभ्यां
 मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित् ॥ ५ ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे
 पथि । अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत् ॥ ६ ॥ अशुभाच्चालितं याति
 शुभं तस्मादपीतरत् । पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेच्चित्तवालकम् ॥ ७ ॥ द्राग-
 भ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम् । तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमम-
 रिमर्दन ॥ ८ ॥ संदिग्धायामपि श्रुशं शुभामेव समाचर । शुभायां
 वासनावृद्धौ न दोषाय मरुत्सुत ॥ ९ ॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महा-
 मते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः ॥ १० ॥ त्रय एवं समं
 यावन्नाभ्यस्ताश्च पुनः पुनः । तावन्न पदसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाश्रितैः ॥ ११ ॥
 एकैकशो निषेव्यन्ते यद्येते चिरमप्यलम् । तन्न सिद्धिं प्रयच्छन्ति मन्त्राः
 संकीर्तिता इव ॥ १२ ॥ त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढाः । निःश-
 क्कमेव श्रुत्यन्ति विसच्छेदावृणा इव ॥ १३ ॥ जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या
 संसारवासना । सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥ १४ ॥
 तस्मात्सौम्य प्रयत्नेन पौरुषेण विवेकिना । भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेव
 समाश्रय ॥ १५ ॥ तस्माद्वासनया युक्तं मनो बद्धं विदुर्बुधाः । सम्यग्वास-
 नया त्यक्तं मुक्तमित्यभिधीयते । मनोनिर्वासनीभावमाचराशु महाकपे ॥ १६ ॥
 सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते । वासनाविलये चेतः शममायाति
 दीपवत् ॥ १७ ॥ वासनां संपरित्यज्य मयि चिन्मात्रविग्रहे । यस्तिष्ठति गत-
 व्यग्रः सोऽहं सच्चित्सुखात्मकः ॥ १८ ॥ समाधिमय कार्याणि मा करोतु करोतु
 वा । हृदयेनात्तसर्वेहो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥ १९ ॥ नैष्कर्म्येण न तत्कार्य-
 स्तत्कार्योऽस्ति न कर्मभिः । न ससाधनजाप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः
 ॥ २० ॥ संत्यक्तवासनान्मौनादृते नास्त्युत्तमं पदम् ॥ २१ ॥ वासनाहीनम-
 प्येतच्चक्षुरादीन्द्रियं स्वतः । प्रवर्तते बहिः स्वार्थे वासनामात्रकारणम्
 ॥ २२ ॥ अयत्नोपनतेष्वक्षि दृग्द्रव्येषु यथा पुनः । नीरागमेव पतति
 तद्वत्कार्येषु धीरधीः ॥ २३ ॥ भावसंविप्रकटितामनुरूपा च मारुते । चित्त-
 स्योत्पत्त्युपरमा वासनां मुनयो विदुः ॥ २४ ॥ दृढाभ्यस्तपदार्यैकभावना-
 दृतिचञ्चलम् । चित्तं संजायते जन्मजराभरणकारणम् ॥ २५ ॥ वासना-

वशतः प्राणस्पन्दस्तेन च वासना । क्रियते चित्तबीजस्य तेन बीजाङ्कुरक्रमः ॥ २६ ॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दनवासने । एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ॥ २७ ॥ असङ्गव्यवहारत्वाद्भवभावनवर्जनात् । शरीर-
नाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते । वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् ॥ २८ ॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा ॥ २९ ॥ अभ्युत्पन्नमना यावज्जवानज्ञाततत्पदः । गुरुशास्त्र-
प्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥ ३० ॥ ततः पक्कव्याघ्रेण जूनं विज्ञात-
वस्तुना । शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौधो निराधिना ॥ ३१ ॥
द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवनमुक्तः सरूपः स्यादरूपो
देहमुक्तिगः ॥ ३२ ॥ अस्य नाशमिदानीं त्वं पावने शृणु सादरम् ॥ ३३ ॥
चित्तनाशाभिधानं हि यदा ते विद्यते पुनः । मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं आन्ति-
मेति न संशयः । भूयोजनमविनिर्मुक्तं जीवनमुक्तस्य तन्मनः ॥ ३४ ॥
सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवनमुक्तस्य विद्यते । अरूपस्तु मनोनाशो वैदेही-
मुक्तिगो भवेत् ॥ ३५ ॥ सहस्राङ्कुरशाखात्मफलपल्लवशात्लिनः ॥ ३६ ॥
अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिदं स्थितम् । संकल्प एव तन्मन्ये संकल्पो-
पशमेन तत् ॥ ३७ ॥ शोषयाञ्च यथा शोषमेति संसारपादपः । उपाय एक
एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहे ॥ ३८ ॥ मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो
महोदयः । जमनो नाशमभ्येति मनो जस्य हि शृङ्खला ॥ ३९ ॥ ताव-
न्निशीव वेताला बलान्ति हृदि वासनाः । एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं
मनः ॥ ४० ॥ प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विपः । पश्मिन् इव हेमन्ते
क्षीयन्ते भोगवासनाः ॥ ४१ ॥ हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्ण्य
च । अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥ ४२ ॥ उपविश्योपवि-
श्यैकां चिन्तकेन मुहुर्मुहुः । न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम्
॥ ४३ ॥ अङ्कुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः । अध्यात्मविद्याधिगमः
साधुसंगतिरेव च ॥ ४४ ॥ वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
एतास्ता युक्तयः पुष्टा सन्ति चित्तजये किल ॥ ४५ ॥ सतीषु युक्तिष्वेतासु
हठान्नियमयन्ति ये । चेतसो दीपमुत्सृज्य विचिन्वन्ति नमोऽङ्गनैः ॥ ४६ ॥
विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाचेतसो जयम् । ते निबद्धान्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं

विसतन्तुभिः ॥ ४७ ॥ द्वे वीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः । एकं
 प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना ॥ ४८ ॥ सा हि सर्वगता संवित्प्राण-
 स्पन्देन चाल्यते । चित्तैकाग्र्याद्यतो ज्ञानमुक्तं समुपजायते ॥ ४९ ॥ तत्सा-
 धनमथो ध्यानं यथावदुपदिश्यते । विनाप्यविकृतिं कृत्स्नां संभवस्यत्य-
 यक्तमात् । यशोऽरिष्टं च चिन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तय ॥ ५० ॥ अपा-
 नेऽस्त्रंगते प्राणो यावन्नाभ्युदितो हृदि । तावत्सा कुम्भकावस्था योगिभि-
 र्याऽनुभूयते ॥ ५१ ॥ बहिरस्त्रंगते प्राणे यावन्नापान उन्नतः । तावत्पूर्णा
 समावस्थां बहिष्ठं कुम्भकं विदुः ॥ ५२ ॥ ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं
 विना । संप्रज्ञातसमाधिः स्याच्चानाभ्यासप्रकर्षतः ॥ ५३ ॥ प्रशान्तवृत्तिकं
 चित्तं परमानन्ददायकम् । असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः ॥ ५४ ॥
 प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् । अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मु-
 निभावितः ॥ ५५ ॥ ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् । साक्षा-
 द्विधिमुखो ह्येष समाधिः परमार्धिकः ॥ ५६ ॥ दृढभावनया
 त्यक्तपूर्वापरविचारणम् । यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ ५७ ॥
 भावितं तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः । भवत्याशु कपिश्रेष्ठ विंगते-
 तरवासनः ॥ ५८ ॥ तादृग्गो हि पुरुषो वासनाविवशीकृतः । संपश्यति
 यदैवैतत्सद्वस्त्विति विमुह्यति ॥ ५९ ॥ वासनावेगवैचित्र्यात्स्वरूपं न जहाति
 तत् । आन्तं पश्यति दुर्दृष्टिः सर्वं मदवशादिव ॥ ६० ॥ वासना द्विविधा
 प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा । मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी
 ॥ ६१ ॥ अज्ञानसुघनाकारा घनाहंकारशालिनी । पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता
 मलिना वासना बुधैः । पुनर्जन्माङ्कुरं त्यक्त्वा स्थितिः संमृष्टबीजवत् ॥ ६२ ॥
 बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम् । अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योति-
 रान्तरम् ॥ ६३ ॥ दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः । य आस्ते कपि-
 शार्दूल ब्रह्म स ब्रह्मविस्त्रयम् ॥ ६४ ॥ अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यने-
 कशः । ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दूर्वो पाकरसं यथा ॥ ६५ ॥ स्वदेहाशुचिगन्धेन
 न विरज्येत यः पुमान् । विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥ ६६ ॥
 अत्यन्तमलिनो देहो देही चाल्यन्तनिर्मलः । उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं
 विधीयते ॥ ६७ ॥ बद्धो हि वासनाबद्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः । वासनां

संपरित्यज्य मोक्षार्थित्वमपि त्यज ॥ ६८ ॥ मानसीर्वासनाः पूर्वं त्यक्त्वा
 विषयवासनाः । मैत्र्यादिवासनानाग्नीर्गुहाणामलवासनाः ॥ ६९ ॥ ता
 अप्यतः परित्यज्य ताभिर्व्यवहरन्नपि । अन्तःशान्तः समचेहो भव चिन्मात्र-
 वासनः ॥ ७० ॥ तामप्यथ परित्यज्य मनोबुद्धिसमन्विताम् । शेषस्थिर-
 समाधानो मयि त्वं भव माहते ॥ ७१ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं
 नित्यमगन्धवच्च यत् । अनामगोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजा-
 तिहन् ॥ ७२ ॥ दक्षिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
 अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सकलं विमुक्त ॐ ॥ ७३ ॥ दक्षिस्तु
 शुद्धोऽहमविक्रियात्मको न मेऽस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः । पुरस्तिरश्रोर्ध्व-
 मधश्च सर्वतः सुपूर्णभूमाहमितीह भावय ॥ ७४ ॥ अजोऽमरश्चैव तथाऽजरो-
 ऽमृतः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽहमव्ययः । न कारणं कार्यमतीत्य निर्मलः सदैव
 तृप्तोऽहमितीह भावय ॥ ७५ ॥ जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।
 विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ७६ ॥ तदेतदवाभ्युक्तम्—तद्विष्णोः
 परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ तद्विप्रासो विपन्यवो
 जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत् ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इति मुक्तिकोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति शुक्लयजुर्वेदगता मुक्तिकोपनिषत्समाप्ता ॥ १२० ॥

संपूर्णोऽयमुपनिषत्समुच्चयः ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

ॐ

१. योग-उपनिषदः

योगराजोपनिषत्

योगराजं प्रवक्ष्यामि योगिनां योगसिद्धये ।
मन्त्रयोगो ल्यश्चैव राजयोगो हठस्तथा ॥ १ ॥
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
आसनं प्राणसंरोधो ध्यानं चैव समाधिकः ॥ २ ॥
एतच्चतुष्टयं विद्धि सर्वयोगेषु सम्मतम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मन्त्रं जाप्यं विशारदैः ॥ ३ ॥
साध्यते मन्त्रयोगस्तु वत्सराजादिभिर्यथा ।
कृष्णद्वैपायनाद्यैस्तु साधितो ल्यसंज्ञितः ॥ ४ ॥
नवस्वेव हि चक्रेषु ल्यं कृत्वा महात्मभिः ।
प्रथमं ब्रह्मचक्रं स्यात् त्रिरावृत्तं भगाकृति ॥ ५ ॥
अपाने मूलकन्दाख्यं कामरूपं च तज्जगुः ।
तदेव वह्निकुण्डं स्यात् तत्त्वकुण्डलिनी तथा ॥ ६ ॥

तां जीवरूपिणीं ध्यायेज्ज्योतिष्ठं मुक्तिहेतवे ।
 स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्याच्चक्रं तन्मध्यगं विदुः ॥ ७ ॥
 पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसन्निभम् ।
 तत्रोद्रीयाणपीठेषु तं ध्यात्वाकर्षयेज्जगत् ॥ ८ ॥
 तृतीयं नाभिचक्रं स्यात्तन्मध्ये तु जगत् स्थितम् ।
 पञ्चावर्तो मध्यशक्तिं चिन्तयेद्विद्युदाकृति ॥ ९ ॥
 तां ध्यात्वा सर्वसिद्धीनां भाजनं जायते बुधः ।
 चतुर्थं हृदये चक्रं विज्ञेयं तदधोमुखम् ॥ १० ॥
 ज्योतीरूपं च तन्मध्ये हंसं ध्यायेत् प्रयत्नतः ।
 तं ध्यायतो जगत् सर्वं वश्यं स्यान्नात्र संशयः ॥ ११ ॥
 पञ्चमं कण्ठचक्रं स्यात् तत्र वामे इडा भवेत् ।
 दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया सुषुम्णा मध्यतः स्थिता ॥ १२ ॥
 तत्र ध्यात्वा शुचि ज्योतिः सिद्धीनां भाजनं भवेत् ।
 षष्ठं च तालुकाचक्रं घण्टिकास्थानमुच्यते ॥ १३ ॥
 दशमद्वारमार्गं तद्राजदन्तं च तज्जगुः ।
 तत्र शून्ये लयं कृत्वा मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ १४ ॥
 अचक्रं सप्तमं विद्याद्धिन्दुस्थानं च तद्विदुः ।
 भुवोर्मध्ये वर्तुलं च ध्यात्वा ज्योतिः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥
 अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं स्यात् परं निर्वाणसूचकम् ।
 तं ध्यात्वा सूतिकाग्रामं धूमाकारं विमुच्यते ॥ १६ ॥
 तच्च जालन्धरं ज्ञेयं मोक्षदं नीलचेतसम् ।
 नवमं व्योमचक्रं स्यादत्रैः षोडशभिर्युतम् ॥ १७ ॥

संविद्ब्रूयाच्च तन्मध्ये शक्तिरुद्धा स्थिता परा ।
 तत् पूर्णं गिरौ पीठे शक्तिं ध्यात्वा विमुच्यते ॥ १८ ॥
 एतेषां नवचक्राणामेकैकं ध्यायतो मुनेः ।
 सिद्धयो मुक्तिसहिताः करम्याः स्युर्दिने दिने ॥ १९ ॥
 एको दण्डद्वयं मध्ये पश्यति ज्ञानचक्षुषा ।
 कदम्बगोलकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ २० ॥
 ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्तेर्निकुञ्चनात् ।
 मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखं
 जायते परमं सुखम् । इति ॥ २१ ॥

इति योगराजोपनिषत् समाप्ता

२. सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

अद्वैतोपनिषत्

ॐ अद्वैतपुरुषस्य न द्वितीयो भेदोऽस्ति । स्थिरजंगममध्ये अद्वैतं ब्रह्म प्रकाशितम् । सर्वलोकमध्ये ब्रह्म द्विधारूपं विचरति । चैतन्यचित्तेजसः अन्तरात्मा । मध्ये कैवल्यात्मा । एकैकं यथा रवितेजः रविर्भवेत् तथा अखण्डितब्रह्म मायाजगत्त्रयं अवस्थान्तरं परमात्मनः एकं भवति । या बुद्धिर्गर्भमध्ये सा बुद्धिर्बाल्यावस्था न भवति । या बुद्धिर्बाल्यावस्था भवति सा बुद्धिर्यौवनावस्था न भवति । या बुद्धिर्यौवनावस्था सा बुद्धिर्यूनावस्था न भवति । जरावस्था कालसंप्रीकामेवधर्मक्रीयते कारणं तत्त्वज्ञानं भवति । ज्ञानप्रबोधो यस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यज्य सर्वकर्मविनिर्मुक्तः स शब्दातीतोऽपि जायते । अथेतोऽपि अद्वैतपुरुषस्य पूर्णं ब्रह्म प्रतिभासितम् । यथा नदी जायते सागर एकोऽपि सागरप्रतिभासितः तथा ब्रह्म सर्वान्तरान्मा मध्ये प्रकाशितम् । नाप्रसं संपुटं सत्त्वरजस्तमोगुणरहितं तत्त्वं चेति । यथा योगी वायुनिरोधनं उक्ताचरणगुरुराछिनोति किल्बिषम् । सर्वदिव्यदेहमध्ये परमात्मा प्रकाशितः विनिर्मुक्तभवसागरः स्वर्गे देवमध्ये उत्तमस्वल्पस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यजेत् । प्रकाशमध्ये

माया करोति । तैलमध्ये यथा यथा मक्षिका एकदेहिमध्ये ब्रह्म दशधा रूपं विचरति । चक्षुःप्राणमनोबुद्धिपञ्चेन्द्रियाणि पञ्चतत्त्वानि तथा घटघट-मध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते प्रकाशितः सर्वलोकमध्ये ब्रह्मणो रूपं विचरति तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते । अद्वैतं कथितं येन पुरुषोऽमूढो भवति । देवासुरमुनिमनुष्याणां अधः ऊर्ध्वं चतुर्दिशम् । भुवर्णोयुदेवादाव्य-देहितेरसकारो दृश्यते रसकाराकारमध्ये भवति निराकारः अकारउकार-मध्ये ब्रह्म परिपूर्णं सत्यसत्यं वेदवाक्यं वेदशास्त्रप्रतिभासितं कैवल्यं द्वैताद्वैतरहितं मनोमय आनन्दमयतत्त्वमयतेजोमयसर्वमयः विष्णुवृक्ष-फलं उत्पन्नं परमहंसपूर्णोऽपि जायते । ज्ञानं माता विज्ञानं पिता सगुणब्रह्म निर्गुणब्रह्मार्पितं अष्टमी च निर्गुणावस्था ब्रह्म शरीरज्ञानलहरी ब्रह्मणः । ब्रह्मणो यज्ञोपवीतमनिष्टं गंभीरग्रहे क्षेमसर्ववैराग्यप्रभावेन सन्तोषलभ-समस्तगुणोऽपि जायते । परमहंसपुरुषस्य द्वितीयं मेदं यथा जलरहिते मित्रं प्राणप्रीतेयन् । द्वितीयवस्तुरहितः अखण्डितं वस्तु मध्ये प्रविष्टं अर्धस्थाने अर्धमृचस्थाने आत्मा दृश्यते आत्मव्यापकं ब्रह्मज्ञानविज्ञानम् ॥

इति अद्वैतोपनिषत् संपूर्णा

आचमनोपनिषत्

ॐ आचमनविधिं व्याख्यास्यामः । जङ्घे पाणिपादौ प्रक्षाल्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा नद्धशिखो यज्ञोपवीती । ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते पञ्च तीर्थानि भवन्ति । अङ्गुल्यग्रे देवतीर्थं कनिष्ठिकामूले आर्षिकं तीर्थं

६

सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

[अङ्गुष्ठतर्जन्योर्मध्ये] पैतृकं तीर्थं अङ्गुष्ठमूले ब्रह्मतीर्थं मध्ये अग्नितीर्थम् ।
 न तिष्ठन्न हसन् न बुद्बुदैर्न च लोमैः गोकर्णाकृतितवत् कृत्वा माषमग्नजलं
 पिबेत् । तेन त्रिराचामेत् । प्रथमं यः पिबेद्द्वेदः प्रीणातु । द्वितीयं यः
 पिबेद्यजुर्वेदः प्रीणातु । तृतीयं यः पिबेत् सामवेदः प्रीणातु । लोमाधरोष्ठमथर्व-
 वेदः प्रीणातु । मुखमग्निवृत्तं सर्वं प्रोक्षति । यः पादौ प्रोक्षति यश्चक्षुषी
 यश्चन्द्रमादित्यौ यच्चाग्निं तेन पृथिवी यस्ततस्तेन विष्णुः । यच्छिरस्तेन रुद्रः ।
 मूर्ध्नि शतकुबेरः । सर्वदेवत्यास्ते प्रीणन्तु । यं एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याचमनोपनिषत् समाप्ता

आत्मपूजोपनिषत्

ॐ तस्य निश्चिन्तनं ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम् ।
 निश्चलज्ञानमासन्नम् । समुन्मनीभावः पाद्यम् । सदासनस्कर्मध्यम् । सदा-
 दीप्तिराचमनीयम् । वराकृतप्राप्तिः स्नानम् । सर्वात्मकत्वं दृश्यविलयो गन्धः ।
 दृग्विशिष्टात्मानः अक्षताः । चिदादीप्तिः पुष्पम् । सूर्यात्मकत्वं दीपः ।
 परिपूर्णचन्द्रामृततरसैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहंभावो
 नमस्कारः । परमेश्वरस्तुतिर्मौनम् । सदासन्तोषो विसर्जनम् । एवं परिपूर्ण-
 राजयोगिनः सर्वात्मकपूजोपचारः स्यात् । सर्वात्मकत्वं आत्माधारो भवति ।
 सर्वनिरामयपरिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षूणां मोक्षैकसिद्धिर्भवति ॥ इत्युपनिषत् ॥

इत्यात्मपूजोपनिषत् समाप्ता

आर्षेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै ब्रह्मोद्यमाह्वयितवा ऊचुः परस्परमिवानुब्रुवाणाः । तेषां विश्वामितो विजितीयमिव मन्यमान उवाच । यदेतदन्तरे द्यावापृथिवी अनश्नुवदिव सर्वमश्वद्यदिदमाकाशमिवेतश्चेतश्च स्तनयन्ति विद्योतमाना इवावस्फूर्जयमाना इव तद्ब्रह्मेति । तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमग्निमिज्ज्वलयन्ति पोप्ल्ययन्त्यद्विरभिषीवयन्ति वद्ध्रीभिरभिग्रथन्ति वरत्राभिरभिग्रन्त्ययोधनैर्वि-
ध्यन्ति सूचीभिः निखानयन्ति शंकुभिरभितृन्दन्ति पट्टीशिकाभिरभिलिम्पन्ति मृत्स्रया तक्ष्णुवंति वासीभिः कृष्णन्ति फलिभिर्नैव शक्नुवत इति नास्ये-
शीमहि नैनमतीयीमहि ॥

तदु ह जमदग्निर्नानुमेने आर्तमिव वा एष तन्मेने यदिदमन्तरेणै-
दुपयन्ति पर्याप्त इवैष दिवस्पृथिव्योरिति । स होवाच अन्तरिक्षं वा
एतद्यदिदमित्येत्योपव्याख्ये इति । महिमानं त्वमुष्येह पश्यामीति यदिद-
मस्मिन्नन्वायत्तमिति । स यदिदमेतस्मिन्नन्वायत्तं वेदाथ तथोपास्तेऽन्वायत्तो
हैवास्मिन् भवति । तदेतदविद्वानेवास्मिन्नन्वायत्तमुपास्ते वीवपद्यत् आर्ति-
मृच्छेत् । तस्मादेवमेवोपासीत ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । तं होवाच ।
यदिदमिति द्यावापृथिव्योरनारंभमिव नोपयन्ति नाभिचक्षते नाश्नुवन्ति ।
तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमितश्चेतश्चाण्डकोशा उदयन्ति नापद्यन्त इव न
विस्रंसन्त इव न स्वलंतीव न पर्यावर्तन्त इव । न ह वा एनत्केचिदु-
पधावन्तो विन्दन्ति नाभिपश्यन्ति । यदिदमेक इदप एवाहुस्तम एके ज्योति-
रेकेऽवकाशमेके परमं व्योमैक आत्मानमेक इति ॥

तदु ह भरद्वाजो नानुमेने । यदिह सर्वे वेत्येत्येति द्युदिरे नास्य
तद्रूपं पर्याप्तमिति । स होवाच । आर्तमिवेदं ते विज्ञानमपि स्वित्तेनद्रोद-

स्योरेव पर्यायेणोपवन्वीमहि यदिदमित्येत्योपव्याख्यास्याम इति । महिमानं त्वेवास्योपासे । यदिदमलान्वायत्तमिति । स यदिदमलान्वायत्तं वेदाथ तथैवोपास्तेऽत्रैवान्वायत्तो भवति । स य इहान्वायत्तमिदमविद्वानेवैतदुपास्ते पापीयान् भवत्यार्तिमाच्छ्रित्यवभ्रियते यदेवमेतदन्वायत्तमुपास्ते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एतदेनमुपास्ते ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । स होवाच । यदेतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते ब्रंश्रम्यमाणमिव चाकश्यमानमिव जाज्वल्यमानमिव देदीप्यमानमिव लेलिहानं तदेव मे ब्रह्म । तस्योपव्याख्यानं यदिदमद्वैव पराः परावतोऽभिपद्यन्ते संपन्नमेवैतत् संमितमेव यथोपयातमात्मैवाभिचक्षत इति । य एतदभिपद्येव गृहीयादथो विस्फुरन्तीव धावन्तीवोत्प्लवन्तीवोपश्लिष्यन्तीव न हैवामिपद्यन्ते । तदिदमन्तिके दवीयो नेदीय इव दूरतो न वा अस्य महिमानं कश्चिदेतीति ॥

तदु ह न मेने गौतमो यदिदमार्तमिव स्तिमितमिव पर्यायेण पश्यन्तीवेमं मोघं संविदाना इति । य इमे पुण्ड्राः सुह्माः कुलुम्भा दरदा बर्बरा इति । न ह वा असंविदाना एव द्रागिवाभि तत्पद्यन्त इति । महिमानं त्वेवास्योपासे । य एतदस्मिन्नन्तरे हिरण्मयः पुरुषो हिरण्यवर्णो हिरण्यश्मश्रुरानखाग्रेभ्यो दीप्यमान इव । स य एवमेनमुपास्तेऽस्तीव सर्वभूतानि तिष्ठन्ति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । न ह वा एष परमतीवोदेति । यस्त्वेनं परमतीवोद्यन्तं पश्यन्मुपास्ते पापीयान् भवति वीवपद्यत आर्तिमृच्छति । यस्त्वेनं परमनूद्यन्तं वेदाथ तथोपास्ते परं ज्योतिरूपसंपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एवमेनमुपास्ते ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । तं होवाच । विस्फुरन्तीरेवेमा लेलायन्तीरिव संजिहाना इव नेदीयसितमा इव दवीय

सितमा एव दवीयसितमा इव नेदीयसितमा एवेति । यदपि बहुधाचक्षीरन्न किञ्च प्रतिपद्यत इति तन्मे ब्रह्मेति ॥

तदु ह वसिष्ठो नानुमेने । यदिमा विस्फूर्जयत एवाभिपद्यन्ते वीवयन्ति मिथु चेति विचक्षतेऽकाण्ड इवेमा न ह वै परमित्था कश्चनाश्रित्य-
संविदान इव । अप ये संविद्व्रते तदेतदन्तर्विचक्षत इति । महिम्नः पश्येमा
विज्ञान इति । स य एवमिमा महिम्न एवास्य पश्यन्नुपास्ते महिम्न एवाश्रोति
सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । यस्त्विमा अवयतीरिवोपास्ते न परा
संपद्यमाना नो एव परेति पापीयान् भवति वीवपद्यते प्रमीयते । अथ य
इमाः परा संपद्यमाना एवोपास्ते परैव संपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । महाविज्ञानमिव
प्रतिपदेनाध्यवसायमिव यत्नैतदित्येत्येत्यभिपश्यति । अथ नेति नेत्येतदित्ये-
त्येति । स वा अयमात्मा अनन्तोऽजरोऽपारो न वा अरे बाह्यो नान्तरः
सर्वविद्भारूपो विधसः प्रसरणोऽन्तर्ज्योतिर्विश्वभुक् सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः
सर्वमभिक्षिपन्न तमश्नोति कश्चन ॥

परोवरीयांसमभिप्रणुत्यमन्तर्जुषाणं भुवनानि विश्वा ।

यमश्रवन्न कुशिकासो अग्निं वैश्वानरमृतजातं गमध्ययी ॥ १ ॥

भरेभरेषु तमुपह्वयाम प्रसासहिं युध्ममिन्द्रं वरेण्यम् ।

सत्तासा [ह] मवसे जनानां पुरुहूतमृग्मिणं विश्ववेदसम् ॥ २ ॥

अहिम्नं तमर्णवे शयानं वावृहणं तवसा परेण ॥ ३ ॥

तदु ह प्रतिपेदिरे । ते वाभिवाचैवोपसमीयुः । नमोऽग्नये । नम
इन्द्राय । नमः प्रजापतये । नमो ब्रह्मणे । नमो ब्रह्मणे ॥

इत्यार्षेयोपनिषत् समाप्ता

इतिहासोपनिषत्

ॐ वृषादर्विकुलं ह वै शिविकुलं बभूव । तस्यायमितिहासः कुल-
विद्या बभूव । तद्यो ह स्मेममधीते स ह स्मै राजा भवति । स
किञ्चित्प्राप्यान्तर्हितः । सोऽब्रवीत् । यो मामितिहासं ग्राहयेत् । वरमस्मै
दद्यामिति । ततो ब्राह्मणः संयोगं संयुयुजे । तमादित्यात् पुरुषो भास्करवर्णो
निष्क्रम्य स एनं ग्राहयाञ्चकार । तमपृच्छत् । कोऽसीति वा वृषादर्विरिति ।
तस्माद्य इममितिहासमधीते । आदित्यलोके स कामचारो भवति । तस्माद्य
इममितिहासमुपनीतो माणवको गृहीयात् । गृहीत्वाऽथ ब्राह्मणाञ्छावयेत् ।
मेधावी भवेत् । वर्षशतं च जीवेत् । षडङ्गं च वेदमवाप्नुयात् । तस्माद्य
इममितिहासं पठन् पितृभ्य उदकाञ्जलिं दद्यात् । अपूपकूला नद्यः
सर्पिण्यायसकर्दमा उपतिष्ठेरन् । तस्माद्य इममितिहासं पठन् पितृभ्यः श्राद्धं
दद्यात् । तद्यथा स्थूलया गयाश्राद्धं कृतं भवेत् । स्वधा सह पितृणाम् ।
एवमस्य पितृणामनन्ता तृप्तिर्भवति । य एवं वेद । सोऽयमितिहासः
धन्यः पुण्यः पुत्रीयः पशव्य आयुष्यः स्वर्ग्यः । सार्वकालिकसर्वभय-
प्रमोक्षणः । नाधिभ्यो भयं भवति । न चौरैभ्यः । न रक्षोभ्यः । नाध्वनि
प्रमीयते । नाप्सु प्रमीयते । नाग्नौ प्रमीयते । नाप्सु न शस्त्रेण वध्यते ।
नानपत्यः प्रमीयते । सायं प्रयुञ्जानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातः
प्रयुञ्जानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायंप्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो
भवति । पापभाजो हि श्रोतृणामनसूयावतां पापाश्चापक्रामन्ति । एकशतं
चान्ये साधव आगमाः । एतावती परिभाषा । अत ऊर्ध्वं विद्यात् ।

जिह्वा रसं विजानाति हृदयं वेदयत् प्रियम् ।

चक्षुर्दिष्टः साक्षिभागो मनसा साधु पश्यति ॥

इतिहासोपनिषत्

११

मनसा वाचं नमति चक्षुषा मीयते जगत् ।
 भूतस्य कर्णौ श्रोतारावृक्षं प्राणेन संमितम् ॥
 अक्षं प्राणो वृषादर्विः पर्जन्यो दत्तवान्महत् ।
 अग्निश्च हव्यवाहनस्तदिदं गाव इन्द्रविः ॥
 वित्तं बन्धुः प्रजातन्तुः कर्मरूपं बृहत्सखा ।
 प्रज्ञा प्रतिष्ठा तन्तूनामिष्टापूर्तेः परायणम् ॥
 सत्यं वदन्त्यनृतमुद्रहन्ति क्षीरं पिबन्ति मधु ते पिबन्ति ।
 सोमं पिबन्त्यमृतेन सार्धं मृत्योः परस्तादमृता भवन्ति ॥
 ये ब्राह्मणा ब्रह्मचर्यं चरन्त्यथो खल्वाहुर्वेदसंमितोऽयमितिहासः ॥
 धर्मं चरति नाधर्मं सत्यं वदति नानृतम् ।
 दीर्घं पश्यति मा ह्रस्वं परं पश्यति माऽपरम् ॥
 ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ।
 सामानि यो वेद स वेद सर्वं यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म ॥
 यः क्रौद्धव्येन क्रुद्धस्तिष्ठति सोऽतिवाचं च दीक्षयति । योऽतिवाचं
 नयति स वै सर्वं द्विजः खलु मानसं वेदेति नः श्रुतम् ॥
 तपोऽवधिः परमा ब्राह्मणस्य श्रद्धा माता पितरंसत्यमाहुः ।
 योग आत्मा चरणमस्य बन्धुर्दमः प्रतिष्ठा विदुषो न भूमिम् ॥
 दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्युः पुनः पुनः ।
 संसारमण्डलं दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः ॥
 यो ब्राह्मणः पापकृत् मन्त्रकृच्च स जीवति ।
 ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृच्छश्चत् ब्रह्मलोके महीयते ॥
 तृणानि हीच्छन्ति कुशत्वमेव वृक्षा यूपत्वं पशवश्च गोत्वम् ।
 सर्वाः प्रजा ब्राह्मणत्वं नरेन्द्र न ब्राह्मणत्वात् परमस्ति किञ्चित् ॥

शताहावसतशरः शतशक्रः शशीषिणाम् ।
 शतं ब्रह्म तपस्विनां कूपोऽरण्यास्य तिष्ठति ॥
 ऋतेनापिहिता गुहा श्रुतेनापिहिता गुहा ।
 स्मृतेनापिहिता गुहा शमेनापिहिता गुहा ॥
 दमेनापिहिता गुहा सत्येनापिहिता गुहा ।
 आत्मनापिहिता गुहा ब्रह्मणापिहिता गुहा ॥
 ब्रह्मभिर्धि मनसा वेदयन्तः पश्यन्तो गुह्यमपरं परं च ।
 अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः ब्राह्मणास्तु सदृशाः सूर्येण ॥
 यः च्छाद्धानि कुरुतेऽसंगतानि न देवयानेन पथा स याति ।
 परिमुक्तं पिप्पलं बन्धनादिव स्वर्गाल्लोकाच्च्यवतेऽश्राद्धमित्रः ॥
 यो यज्ञस्य प्रसाधनः तन्तुदेवैष्वाहुतः । तमाहुतमशीमहि ।
 नावेदविन्मनुतेदं बृहन्तम् । सर्वानुमुमात्मानः संपराये । एष नित्यो महिमा
 ब्राह्मणस्य । न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् । तस्यैवात्मा पदवित्तं विदित्वा ।
 न कर्मणा लिप्यते पापकेन ॥

अग्निहोत्रं वलीवृद्धाः काले चातिथिरागतः ।
 बालाश्च कुलवृद्धाश्च निर्दहन्त्यवमानिताः ॥
 संभोजनी नाम पिशाचमिक्षा नैषा पितृन् गच्छति नोत देवान् ।
 इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥
 शूद्रायां सृजते रेतः श्राद्धं भुक्त्वाऽथ यो द्विजः ।
 स शूद्रयोनिः सञ्छिन्नं रेतसा सिञ्चते पितृन् ॥
 यः काममोहितः शूद्रायां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः ।
 यावदुत्पाद्यते भूमौ तावच्छिष्टेत् सुदारुणे ॥

अश्रोत्रियं ब्राह्मणं भोजयानस्य षोडश आद्यानि पितरो न भुञ्जते ।
 ततो निराशाः पितरो भवन्ति सेन्द्राः स्म देवाः प्रहरन्ति वज्रम् ॥
 यावतः खलु पिण्डान् स प्राशन्ति हविषो नृचः ।
 तावतः शूलान् ग्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम् ॥
 छिन्दन्ति दातृहस्तं च जिह्वाग्रमितरस्य च ।
 मन्त्रपूतं तु यच्छ्राद्धममन्त्राय प्रयच्छति ॥
 नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धं देवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
 यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥
 यथेरिणे बीजमुप्तं नरेन्द्र नास्य वप्ता लभते बीजभागम् ।
 एवं श्राद्धमप्रतिष्ठितं विनश्यति ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सङ्गमं न समाचरेत् ।
 पितरस्तस्य तन्मांसं भवन्ते रेतभोजनाः ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सपङ्क्तिः सहभोजनम् ।
 षण्मासान् पितरोऽभ्रन्ति कर्तुरुच्छिष्टभोजनम् ॥
 श्राद्धं भुक्त्वा पुनः श्राद्धं भुङ्जीयाल्लोभमोहितः ।
 नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च भारमुद्वहते द्विजः ।
 पितरस्तस्य तन्मांसं भवन्ते भारपीडिताः ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं वीऽधिगच्छति ।
 पितरस्तस्य तन्मांसं भवन्ते पांडुभोजनाः ॥
 अनग्निस्तस्य वेदोऽग्निर्वेदहीनोऽप्यनग्निः ।
 सामिकोऽप्यनधीतः स्यात् स एषोऽग्निः स्मृतः ॥

स्त्रीशूद्रबालिशादिभ्य उच्छिष्टं न प्रदापयेत् ।
 यदि दद्यात् प्रमादेन न तद्गच्छति तान् पितृन् ॥
 आहिताग्निः सदा पात्रं सदा पणं तु वेदवित् ।
 पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रानं यस्य नोदरे ॥
 पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनसङ्गमम् ।
 दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धमुक्त्वाष्ट वर्जयेत् ॥
 दन्तधावनताम्बूलं नस्वकेशनिकृन्तनम् ।
 कर्ता चैव तु पूर्वद्युर्मोक्षा चैव परेऽहनि ॥
 दन्तधावनताम्बूलं क्षौराभ्यङ्गनभोजनम् ।
 रत्नौषधपराङ्गं च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥
 श्राद्धकर्ता परश्राद्धं यस्तु मुञ्जीत लोलुपः ।
 नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
 निमन्त्रितेऽध्वानगते पुनर्मुक्त्वा तु वायसम् ।
 करोति कर्म यत् गृध्रः ग्रामसूकरसङ्गमात् ॥
 प्रतिग्रहेषु दारिद्र्यं दानं निष्फलमेव च ।
 होमे तु कुष्ठरोगी स्यात् स्वाध्यायैर्मृत्युमाप्नुयात् ॥
 यस्यानृचस्तु भुङ्क्ते तस्य विद्धि ब्रह्मैव वित्तं पुरुषस्य केवलम् ।
 धर्मः स्वधायां चरते ददाति च सत्यं रसः स्वादुत्तमो रसानाम् ।
 सत्यं श्रेष्ठ्यं व्याहृतीनां तथैव प्रज्ञानं सप्तमं जीवनानाम् ॥
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खो मन्त्रं विवर्जयेत् ।
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥
 यः शतं च सहस्राणां सहस्रं श्राद्ध आचरेत् ।
 एकस्मान्मन्त्रवित् पूतः सर्वमर्हति ब्राह्मणः ॥

ब्राह्मणानां सहस्रेषु भुक्त्वा तु नव सप्त च ।

भवन्ति शायिके भूत्वा ध्यायिके च न संशयेत् ॥

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते ।

कुलं तारयते तेषां दशपूर्वा दशापराम् ॥

ब्राह्मणो द्विपदां वरः । चतुष्पदां गौरुत्तमा । लोहानां काञ्चनं वरम् ।

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिः । यदापस्त्रोतस्सरण्योरिवाग्निः । एवमात्मात्मनि जायते ॥

सत्येनैनं मनसा साधु पश्यति सत्येनैनं मनसा वाचं नयति ॥

प्राङ्मुखाश्च सुरा हव्यं पितरश्चाप्युदङ्मुखाः ।

प्रतिगृह्णन्ति संबाधमग्निना ब्राह्मणेन च ॥

वेदाध्यायीति यो विप्रः सततं ब्राह्मणः स्थितः ।

साचारः सामिहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः ॥

विकिरं प्रकिरं दद्याद्विकिरं ह वै प्रकिरं भुञ्जीत । तृप्तिरूपाणि दर्शयन् ॥

परिश्रिते त्वेव दद्यादध्वलीका हि पितरः स्मृताः ।

कव्यादाः पितरस्सर्वे तिलज्योतिर्धृतप्रियाः ॥

देशकालपात्रमन्त्राष्टशौचेप्साः कृष्णपक्षक्षयोत्सवाः ॥

उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं मृतकर्पटम् ।

श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।

त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्सराः ॥

दिवसस्याष्टमे भागे यदा मन्दायते रविः ।

स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

आरभ्य कुत्तपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः ।
 विधिज्ञा विधिमास्थाय रौहिणीं नैव लङ्घयेत् ॥
 रौहिणीं लङ्घयेद्यस्तु ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ।
 आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥
 यातुधानाश्च रक्षांसि पिशाचा असुरास्तथा ।
 एते हरन्ति वै श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत् ॥
 राक्षसं भवति श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत् ।
 तत्र रक्षांसि पैशाचा न च विद्वेष्टि यो जनः ॥
 पुरो देवाः प्रपद्यन्ते पश्चाद्दैवं विसर्जयेत् ।
 पक्षैस्तु कुक्कुटो हन्ति निकर्षेण तु सूकरः ।
 आगतं गतया श्वानं चक्षुषा वृषळीपतिः ॥
 यस्य देशं न जानाति नामगोत्रे त्रिपूरुषम् ।
 कन्यादानं पितृश्राद्धं नमस्कारं च वर्जयेत् ॥
 यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।
 स वै दुर्ब्राह्मणो नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥
 अष्टवर्षा भवेत् कन्या नववर्षा तु रोहिणी ।
 दशवर्षा भवेत् गौरी ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
 पितृगेहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
 सा कन्या वृषळी नाम तत्पतिर्वृषळीपतिः ॥
 वृषळीपतिभुक्तानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
 पितरो न प्रतिगृह्णन्ति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥
 माहिषीत्युच्यते भार्या भगोनोपार्जितं धनम् ।
 तद्द्रव्यमुपजीवन् यः स वै माहिषिकः स्मृतः ॥

समर्धं धनमुद्धृत्य महार्धं यः प्रयच्छति ।
 स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥
 अग्रे माहिषिकं दृष्ट्वा मध्ये तु वृषळीपतिम् ।
 अन्ते वार्धुषिकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥
 श्वित्रि कुष्ठी तथा चैव कुनखी श्यावदन्तकः ।
 रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पंगुः पुनर्भवः ॥
 अवकीर्णी कुण्डगोळावायुधी परदारगः ।
 भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः ॥
 मित्रघ्नृक् पिशुनश्चैव विक्रयी वेदनिन्दकः ।
 मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषळात्मजः ॥
 परपूर्वापरस्तेन शूद्रजः श्राद्धकर्मणि ।
 रजस्वीसंगमी चैव परोपद्रवकारिणः ॥
 देवब्राह्मणघाती च तेषां द्रव्यापहारिणः ।
 एते गुणा न वक्तव्याः श्राद्धकर्मवहिष्कृताः ॥
 आतन्वा भोजयेच्छ्राद्धं पुत्रं वाऽपि गुणान्वितम् ।
 आत्मा च वाऽपि भुङ्गीत न विप्रं वेदवर्जितम् ॥
 तेभ्यः श्राद्धं तु दत्तं चेत्तच्छ्राद्धं निष्फलं भवेत् ।
 निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः ॥
 मदमोहेन यः शूद्राणां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः ।
 यावत्तिष्ठेत् स वै भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे ॥
 क्षीरं वा दधि वा तैलं तक्रमाज्यं मधूनि च ।
 एतेषां विक्रयी विप्रो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं तावद्भुञ्जीत वाग्यतः ।

पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥

हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यावदर्पिताः ।

तृप्तैस्तु पितृभिः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥

य इमां देवीमिह वेद सर्वं

सर्वेषु भूतेषु प्रतिष्ठितानाम् ।

सती नैनं पश्यन्ति हृदयं न शोकाः

न पुत्रदाराः पशुचोदमाहितम् ॥

अपां रसो मधुनस्सर्पिषश्च क्षीरस्य चान्नस्य च संस्थितस्य ।

एते रसानां सरसेन श्राद्धं प्राप्नुवन्ति वाग्यतानां संयुतानाम् ।

उदेहि सूर्यं वरं वृणीष्वेति राजोवाच पञ्चेमानि रत्नानि गौर्मेऽज्जरं
दुहति । हविर्मेऽज्जरं विह्वति । त्विषिर्मेऽज्जरं पिनष्टि । रथो मे सर्वान्
समुद्रान् संयाति । आदित्यवर्णे इमे मणिकुण्डले इति । अथो ह्येवमेवैषामेकं
वृणीष्वेति । ब्राह्मण उवाच । यावत्संपृच्छसीति भार्यो समपृच्छत् ।
हविर्गृहाणेति भार्योवाच । पुत्रं समपृच्छत् । रथं गृहाणेति पुत्र उवाच ।
कन्यां समपृच्छत् । मणिकुण्डले इति कन्योवाच । दासीं समपृच्छत् । दृषदं
गृहाणेति दास्युवाच । अनुपेत्योवाच हविर्भार्या रथं पुत्रः कन्या मणिकुण्डले
दासी दृषदमिच्छति । गामहं शिविसप्तमे इति । सर्वाण्येवमेवैनं ददामीति
होवाच वृषादर्विस्तदिदमितिहासो ब्रह्मादित्यः पुरोगाय । पुरोगः काश्यपाय ।
काश्यपो भरद्वाजाय । भरद्वाजः बहुभिः अनेकमहाराजाय । ततः प्रच्य . .

धनपतेर्द्विजः ब्राह्मणकुले जातस्म भवति ॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते यस्तु पर्वभिः ।

कन्यागते यदा सूर्ये तिष्ठन्ति पितरो गृहे ॥

दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपञ्चके ।
 दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये तु विंशतिः ॥
 द्वादश्यां शतमित्याहुरमावास्यां सहस्रकम् ।
 आश्वयुक्कुक्षपक्षस्य द्वितीयामयुतं फलम् ॥
 अन्नेन वाऽथवा येन शाकमूलफलेन वा ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्याच्छ्राद्धं महालयम् ॥
 शून्या प्रेतपुरी तत्र यावद्वृश्चिकदर्शनात् ।
 वृश्चिका दर्शनं यान्ति निराशाः पितरो गताः ॥
 ततः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
 अहोवन्नवाच्यमिति केचित् पितरो वदन्ति ॥
 अपुत्राश्चैवापशवो लोके सन्ति च निन्दिताः ।
 रौरवे नरके घोरे यावदाभूतसंज्ञात् ॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
 यजेत वाऽश्वमेधं वा लीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥
 श्वेतः खुरविषाणाभ्यां मुखे पुच्छे च पाण्डुरम् ।
 रोहितो यस्तु वणं स लीलो वृष उच्यते ॥
 गौरी वा वरयेत् कन्यां चरेद्वा श्रवणे न्ति जपति ॥

अथ संहितायां फलमवाप्नोतीत्याह भगवान् ब्रह्मा । अष्टौ
 ब्राह्मणान् सम्यक् ग्राहयेन्मेधावी भवेत् । वर्षशतं च जीवेत् । षडङ्गं च
 वेदमवाप्नुयात् ॥

वृद्धो वसूनि पुरोवाच पुत्रेभ्यः परमं निधिम् ।
 एतद्धो धनमार्याणां मन्त्राश्चैव व्रतानि च ॥

नमो नमश्च मन्त्राश्च व्रतानि च नमो नमः ।
एतत् सकलं ब्रह्मप्रणवस्तुतिः काण्वशाखे पारयेति ॥

इति इतिहासोपनिषत् संपूर्ण

भ्रातृकाले विशेषेण पितृणां दत्तमक्षयम् ।
मनोजव आयमानो आया तत्परम् ॥
दिवं सुपर्णं गत्वा या सोमं व महत् ।
सुपर्णोऽसि गह्मन् दिवं गच्छ सुवः पत ॥
यस्तिरुज्योतिस्त्रिशत् वृषादर्विसुवः पत ॥

चतुर्वेदोपनिषत्

ॐ अथातो महोपनिषदमेव तदाहुः । एको ह वै नारायण आसीत् ।
न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्निः न वायुः नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न
सूर्यः । स एकाकी नर एव । तस्य ध्यानान्तस्स्थस्य ललाटात् स्वेदोऽपतत् । ता
इमा आपः । ता एते नो हिरण्यमयमन्नम् । तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत । स
ध्यातपूर्वामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिः गायत्रं छन्द ऋग्वेदः । पश्चिमामुखो
भूत्वा भूरिति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं छन्दः यजुर्वेदः । उत्तरामुखो भूत्वा भुवरिति
व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः । दक्षिणामुखो भूत्वा जनदिति व्याहृतिरानुष्टुभं
छन्दोऽथर्ववेदः ॥

सहस्रशीर्षं देवं सहस्राक्षं विश्वसंभवम् ।
विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ॥
विश्वमेवेदं पुरुषं तं विश्वमुपजीवति ।
ऋषिं विश्वेश्वरं देवं समुद्रे तं विश्वरूपिणम् ॥

पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसन्निभम् ।

हृदये चाप्यधोमुखं सतस्यत्यैशीत्करामिश्च ॥

तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वाग्निर्विधतोमुखः ।

तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ॥

तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।

स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥

य इमां महोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीते अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति ।

अनुपनीतः उपनीतो भवति । सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स सूर्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । तेन सर्वैः ऋतुभिरिष्टं भवति । गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति । इतिहासपुराणानां सहस्राणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । आसप्तमात् पुरुषं पुनाति । जाप्येन अमृतत्वं च गच्छति अमृतत्वं च गच्छति इत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः ॥

देवा ह वै स्वर्गं लोकमायस्ते देवा रुद्रमपृच्छंस्ते देवा ऊर्ध्वबाहवो रुद्रं स्तुवन्ति । भूस्त्वादिर्मध्यं भुवस्ते स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा शान्तिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवा नमस्याम धूर्तेरमृतं मृतं मर्त्यं च सोमसूर्यपूर्वजगदधीतं वा यदक्षरं प्राजापत्यं सौम्यं सूक्ष्मं ग्राहं ग्राहेण भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण असति तस्मै महाप्रासाय नमः ॥

इति ऋग्वेदोपनिषत् संपूर्ण

चाक्षुषोपनिषत्

ॐ अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षुरोगहरां व्याख्यास्यामः ।
यच्चक्षुरोगाः सर्वतो नश्यन्ति । चाक्षुषी दीप्तिर्भविष्यतीति । तस्याश्चाक्षुषी-
विद्याया अहर्बुध्न्य ऋषिः । गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । चक्षुरोगनिवृत्तये
जपे विनियोगः । ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि ।
त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय । मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाऽहं
अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम
पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूल्य निर्मूल्य ।
ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकराया-
मृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः ।
खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा
सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो
भगवान्छुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुष्मतीविद्यां
ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति ।
अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं

हिरण्मयं पुरुषं ज्योतिरूपं तपन्तम् ।

विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं

पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिन्यहोवाहिनी स्वाहा । ॐ
वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अपध्वान्तमूर्णहि
पूडि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् । पुण्डरीकाक्षाय नमः । पुष्करेक्षणाय

नमः । अमलेक्षणाय नमः । कमलेक्षणाय नमः । विश्वरूपाय नमः ।
महाविष्णवे नमः ॥

इति चाक्षुषोपनिषत् संपूर्णा

[अस्या उपनिषदः “चक्षुस्सुपनिषत्, चक्षुरोगोपनिषत्, नेत्रोपनिषत्” इति नामान्तराणि वर्तन्ते ।]

छागलेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । तेऽथ कवषमैल्लषं दास्याः पुत्र
इति दीक्षाया आच्छिदन् । ते होचुः । अप वा एतद्व्यजुषादप साम्न इति ।
स होवाच । भगवन्तो यदिदं सत्रमाध्वै यदृचोऽधीध्वै यद्यजूषि यत्सामानि
कस्यायं महिमेति । ते होचुर्ब्राह्मणा वाव स्मत्तेषामेवमिति ॥

स होवाच । यदिदमिच्छाचिदिच्छाचिदीक्षध्वै किं तद्येन ब्राह्मण इति ।
ते होचुर्यदिदमृग्यजुषैरेवोपवत्त्वन्नो जुहुवुर्यद्वैनमुपाग्रासिषुर्यदुपानेषतैतद्ब्राह्मणा
इति । स हाविदूर एव शवशमिन्नात्रेयमच्छावदमुपदर्शयन्नुवाच । यदिद-
मृग्यजुषैरुपवत्त्वं जुहोपाग्रासीदथोपानेष्ट नैतदत्यगादिति । किं तदिति होचुः ॥

स होवाच । नैमिषेऽग्नी शुनकाः सत्रमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः
सर्वाण्येवावर्तयद्यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं
यन्मरुत्वतीषमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिर्वर्तनानि यद्राजामि-
क्रयणानि यदभिषावित्ताणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पञ्चदशः
सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगादिति । तेहामुहुन् । अथैते सर्वे
एवोपसमेत्योचुरूप नो नयस्वेम एव त इति । स ह समयमान उवाच ।

संपश्यध्वा एव मा प्रमदत । न होत्तमानधम उपनेतेति । ते होचुमैव स्मोपनथा गतिस्तु त्वमिदिति ॥

स होवाच । कुरुक्षेत्र एवोपसमेत्य ये बालिशस्तानुपाध्वै । ते व इदं प्रवक्ष्यन्तीति । ते ह तत एवोपसमेत्य कुरुक्षेत्रमुपजग्मुः । ते ह बालिशानेवोपासदन् । तानिम उपसीदत एव विदांचक्रुरिति कामुका इति । ते होचुर्यत्किमिव बालिशानुपासदत महाशाला वै महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः सन्तः यन्महाशाला महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः कुरुक्षेत्रमध्यासत इति । ते हान्योन्यस्याभिसमीक्षामासुः । ते हापश्यन्न हास्मान्मिथुचिदेवासावबोचद्वालिशानेव चैतान्विचक्षतेति । ते होचुर्नमस्यानतीव वचो रेचयिष्यथ यदन्तर्नोऽसाविह प्राहैयात् । यथैव तु स्मोपसन्ना अथानसूयवो यथोपश्रद्धिन इति ॥

ते होचुः । किं वा अस्मत्प्रतीच्छथेति । ते होचुः । नैमिषेऽग्नी शुनकाः सत्रमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः सर्वाण्येवावर्तयत् । यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिवर्तनानि यद्राजाभिक्रयणानि यदभिषावित्राणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्यं च दशः सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगाधदयं शवशयितमशयिष्टेति । ते होचुर्नहासंवत्सरवासिनामनुब्रूयादिति खलु नः पूर्वेऽन्वशिषन् । यत्संवत्सरं वत्स्यथाथ वेदिष्यथेति । ते ह संवत्सरमूषुः ॥

ततो ह बालिश ऊचुरवात्त वा संवत्सरमिमे ब्राह्मणाः । हन्तैषामनुब्रवामेति । ते ह गृहीत्वैवैनान् पथोऽभिसमीयुः । ते ह संक्रीडत एव कूबरिणो रथकत्र्यामविन्दन् । ते होचुः संपश्यध्वमिति । किं हीति । कूबरिणमेव सौम्या इति । तथेति । कथमिवेति । यथैवोपसृत्वरो वार्धित्तिर्यगुल्लन्तीभिरिव वीचिभिः शफाभिरेवोपस्कन्दन्नुत्सवेदेवं हैवैषोभिसृत्तराणामेव धुर्याणां चक्रमतामरीणामुत्सवतीति । यथैवासौ प्रतिसृत्वरेण

समः समेव क्रीडेदेवं हैष संक्रीडतीति । यथैवासावितश्चेतोऽमुतश्चामुतश्च
संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्वात्यभिपातयेदेवं हैष इतश्चेतश्चा-
मुतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्वात्यभिपातयति । यथैवासौ
राजानं वा राजपुरुषं वा निलयनं प्रायेदेवं हैवैष यन्ता निलयनं प्रापयतीति ।
ते होचुरपीदं साधीय इति । साधीय इति होचुः । ते ह तस्यैव
पन्थानमनुप्रातिष्ठन्नन्तं ह सायाहन्येवोपसंपादयामासुः ॥

तं यदावसायाश्वांस्तक्षापोह्यापागादथ बालिशा व्यलिष्ट । अहीदृशत् ।
कथमिवेति । ते होचुर्यथैतं काष्ठभारमानद्धमनुपश्यामस्तथैवावशो भूस्थः
स्पन्दते । नेङ्गते न विवर्तते न च वीत इति । ते ह बालिशा ऊचुर्यदयमी-
दृग्भूत् किमस्यापागादिति । तक्षैवेति । तथैवैतत् सौम्या इति । आत्मा वा
अस्य प्रचोदयिता करणान्यश्वाः शिरा नद्धयोऽस्थीन्युपग्रहा असृगाञ्जनं कर्म
प्रतोदो वाक्यं क्राणनं त्वगुपानह इति । स यथा प्रचोदयित्रापोज्झितो
नेङ्गेन्न रुरुवीतैवं हैष प्राज्ञेनात्मनापोज्झितो न ब्रूते न चैत्यपि न श्वसत्यपि
पूयत्यपि श्वान उपधावन्त्यपि काकाः पतन्त्यपि गृध्रा आस्कन्दन्नपि शिवा
जिघत्सन्निति । ते तत एव द्रागिव व्यज्ञासिषुः । ते ह पादयोरेवाभिमर्श्य
बालिशानूचुः । न ह वाव नस्तद्येन निष्कुर्म इममेवेत्यञ्जलिं कृत्वोपास्थिष-
तेत्याह भगवान् छागलेयस्त इमे श्लोकाः —

यथैतत्कूबरस्तक्षापोज्झितो नेङ्गते मनाक् ।

परित्यक्तोऽयमात्मा नस्तद्वदेहो विरोचते ॥ १ ॥

यदस्य प्रधयश्चक्रा युगमक्षो वरत्रिका ।

प्रतोदश्चर्मकील ॥ २ ॥

एतावानेवोपलब्धः

तुरीयोपनिषत्

* * * * *

कलातीतश्चेति । तत्र चत्वारः । अकारश्चायुतावयवान्वितः । उकारः
 शतावयवान्वितः । मकारः सहस्रावयवान्वितः । अर्धमात्रप्रणवोऽनन्तावय-
 वान्वितः । सगुणो विराट्प्रणवः । संहारो निर्गुणप्रणवः । उभयात्मक
 उत्पत्तिप्रणवः । यथार्थकथनोमित्युच्चार्याभिमानोत्पत्तिप्रणवः । सर्वोपसंहारेण
 संहारप्रणवः । उभयात्मकत्वात् विराट्प्रणवः । उत्पत्तिप्रणवो दीर्घप्लुत-
 विराट् । प्लुतप्लुत्युपसंहारः । विराट्प्रणवः षोडशमात्रान्वितः । षट्त्रिंशत्त-
 त्वायुतः । षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते । अकारः प्रथमः । द्वितीय
 उकारः । मकारस्तृतीयः । अर्धमात्रा चतुर्थः । नादः पञ्चमः । बिन्दुः
 षष्ठः । कला सप्तमः । शक्तिरष्टमी । शान्तिर्नवमी । समाना दशमी ।
 आत्मनैकादश । मनोन्मना द्वादश । वैखरी त्रयोदश मध्यमा चतुर्दश ।
 पश्यन्ती पञ्चदश । परा षोडश । इति षोडशमात्रात्मकः प्रणवः । षोडश-
 मात्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिपुरीयावस्थाभेदैरैकमात्राचातुर्विध्यमेत्य । षोडश-
 मात्राश्चतुष्पष्टिभेदमेत्य । पुनश्चतुष्पष्टिमात्राः प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमापाद्याष्टा-
 विशत्युत्तरभेदमात्रास्वरूपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्वमेत्य एकोपि ब्रह्म प्रणवः ॥

सर्वाधारः परं ज्योतिरेष सर्वेश्वरो विभुः ।

सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः ।

सर्वाक्षरमयः कालः सदसद्भक्तिवर्जितः ॥ इति ।

य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति तुरीयोपनिषत् समाप्ता

द्वयोपनिषत्

ॐ अथातः श्रीमद्द्वयोत्पत्तिः । वाक्यो द्वितीयः । षट्पदान्यष्टादश ।
पञ्चविंशत्यक्षराणि । पञ्चदशाक्षरं पूर्वम् । दशाक्षरं परम् । पूर्वो नारायणः
प्रोक्तोऽनादिसिद्धो मन्त्ररत्नः सदाचार्यमूलः ।

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषवित् ।
एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारस्थापनादपि ।
स्वयमाचरते यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुरेव परं विद्या गुरुरेव परं धनम् ॥
गुरुरेव परः कामः गुरुरेव परायणः ।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुरो गुरुः ॥

यत्सकृदुच्चारणः संसारविमोचनो भवति । सर्वपुरुषार्थसिद्धिर्भवति ।
न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तत इति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति द्वयोपनिषत् समाप्ता

निरुक्तोपनिषत्

* * * * *

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति । यदि धर्मोऽनुरुध्यते तदेवोद्भवति ।
 यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति । यदि काममनुरुध्यते संचरतां इमां
 योनिं संदध्यात्तदिदमल मनः श्लेष्मरेतसः संभवति । श्लेष्मणो रसः ।
 रसाच्छोणितम् । शोणितान्मांसम् । मांसान्मेदः । मेदसः स्नावा ।
 स्नावोऽस्थीनि । अस्थिभ्यो मज्जा । मज्जातो रेतः । तदिदं योनौ रेतः सिक्तं
 पुरुषः संभवति । शुक्रातिरेके पुमान् भवति । शोणितातिरेके स्त्री भवति ।
 द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति । शुक्रभिन्नेन यमो भवति । शुक्रशोणित-
 संयोगान्मातृपितृसंयोगाच्च कथमिदं शरीरं परं संयम्यते । सौम्यो
 भवत्येकरात्रोषितं कललं भवति । पञ्चरात्राद्बुधः । सप्तरात्रात् पेशी ।
 द्विसप्तरात्रादर्बुदः । पंचविंशतिरात्रस्थितो योनौ धनो भवति । मास-
 मात्रात् कठिनो भवति । द्विमासाभ्यन्तरे शिरः संपद्यते । मासत्रयेण
 ग्रीवाव्यादेशः । मासचतुष्केण त्वग्व्यादेशः । पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः ।
 षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रं च संभवति । सप्तमे चलनसमर्थो भवति । अष्टमे
 बुद्ध्याध्यवस्यते । नवमे सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति ॥

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।

नानायोनिसहस्राणि मया यान्युषितानि वै ॥

आहारा विविधा मुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।

मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥

अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ।

सांख्यं योगं समभ्यस्ये पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥ इति ॥

ततश्च दशमे मासे प्रजायते । जातश्च वायुना स्पृष्टो न स्मरति जन्म
मरणम् । अन्ते च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् ॥

इति निरुक्तोपनिषदि विंशतितमोऽध्यायः

अष्टोत्तरं सन्धिश्चतस्रः कपालं शिरः संपद्यते । षोडश वपापलानि ।
नव स्नायुशतानि । सप्तशतं पुरुषस्य मर्माणि । अर्धचतस्रो रोमाणि कोटयः ।
हृदयं द्वादशकपालानि । द्वादशकपालानि जिह्वा । वृषणो दृष्टसुपर्णौ । तत उपस्थ-
गुदयोऽन्ये तन्मूलपुरीषं कस्मादाहारापानसिक्तत्वादनुपचति । कर्मणा अन्योन्यं
जायत इति । तं विद्याकर्मणी समन्वारमेते पूर्वप्रज्ञां च । महत्यज्ञानतमसि
मग्नो जरामरणक्षुत्पिपासाशोकक्रोधद्रोहलोभमोहमदभयमत्सरहर्षविषादेर्ष्या-
सूयात्मकैर्द्वन्द्वैरभिभूयमानः सोऽस्मादार्जवं जवीभावनान्तं निर्मुच्यते । सोऽस्मा-
दान्तं महाभूमिकावत् शरीरान्निमेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिभिरभिपरीत्य तैजसं
शरीरं कृत्वा कर्मणानुरूपं फलमनुभूय तस्य संक्षये पुनरिमं लोकं प्रतिपद्यते ॥

इति निरुक्तोपनिषदि एकविंशोऽध्यायः

इति निरुक्तोपनिषत् समाप्ता

पिण्डोपनिषत्

ॐ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ।

मृतस्य दीयते पिण्डं कथं गृह्णन्त्यचेतसः ॥

भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा ।

हंसस्त्यक्त्वा गतो देहं कस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः ॥

सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

त्र्यहं वसति तोयेषु त्र्यहं वसति चाग्निषु ।
 त्र्यहमाकाशगो भूत्वा दिनमेकन्तु वायुगः ॥
 प्रथमेन तु पिण्डेन कलानां तस्य सम्भवः ।
 द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्छोणितोद्भवः ॥
 तृतीयेन तु पिण्डेन मतिस्तस्याभिजायते ।
 चतुर्थेन तु पिण्डेन अस्थि मज्जा प्रजायते ॥
 पञ्चमेन तु पिण्डेन हस्ताङ्गुल्यः शिरो मुखम् ।
 षष्ठेन कृत्तपिण्डेन हृत्कण्ठं तालु जायते ॥
 सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः प्रजायते ।
 अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुष्यति वीर्यवान् ॥
 नवमेन तु पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः ।
 दशमेन तु पिण्डेन भावनं प्लावनं तथा ।
 पिण्डे पिण्डे शरीरस्य पिण्डदानेन सम्भवः ॥

इति पिण्डोपनिषत् समाप्ता

 प्रणवोपनिषत्

ॐ सह नाववतु । सह नौ मुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
 तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
 पुरस्ताद्ब्रह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
 रहस्यं ब्रह्मविद्याया धृताग्निं संप्रचक्षते ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
 शरीरं तस्य ब्रूयामि स्थानकालत्रयं तथा ॥
 तत्र देवास्ययः प्रोक्ता लोका वेदास्योऽग्रयः ।
 तिस्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत् ॥
 ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च ।
 अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥
 यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाभिस्तथैव च ।
 विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः ॥
 सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च ।
 ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥
 सूर्यमण्डलमाभाति ह्यकारश्चन्द्रमध्यगः ।
 उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥
 मकारश्चाभिसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः ।
 तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याभितेजसः ॥
 शिल्पा च दीपसंकाशा यस्मिन्नु परिवर्तते ।
 अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥
 पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिल्पाभा दृश्यते परा ।
 नासादिसूर्यसंकाशा सूर्यं हित्वा तथापरम् ॥
 द्विसप्ततिसहस्राणि नाडिभिस्त्वा तु मूर्धनि ।
 करदं सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति ॥
 कांस्वधष्टान्निनादः स्वाब्दा लिप्यति शान्तये ।
 ओङ्कारस्तु तथा योज्यः श्रुतये सर्वमिच्छति ॥

यस्मिन् स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते ।
सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ इति ॥

इति प्रणवोपनिषत् समाप्ता

प्रणवोपनिषत्

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे पुष्करे ससृजे । स खलु ब्रह्मा सृष्ट-
श्चिन्तामापेदे । केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वोश्च कामान् सर्वोश्च लोकान् सर्वोश्च
देवान् सर्वोश्च वेदान् सर्वोश्च यज्ञान् सर्वोश्च शब्दान् सर्वोश्च व्युष्टीः
सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यनुभवेयमिति । स ब्रह्मचर्यमचरत् । स
ओमित्येतदक्षरमपश्यत् । विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविश्वयातयाम-
ब्रह्म ब्राह्मी व्याहृतिं ब्रह्मदैवतं तथा सर्वोश्च कामान् सर्वोश्च लोकान्
सर्वोश्च देवान् सर्वोश्च वेदान् सर्वोश्च यज्ञान् सर्वोश्च शब्दान् सर्वोश्च
व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यन्वभवत् । तस्य प्रथमेन
वर्णेनापस्वेहश्चान्वभवत् । तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतीष्यन्वभवत् । तस्य
प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीमग्निमोषधिवनस्पतीनृग्वेदं भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं
छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तमृतुं वाचमध्यात्मं जिह्वां रसमितीन्द्रि-
याण्यन्वभवत् । तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव
इति व्याहृतिं त्रैष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीचीं दिशं ग्रीष्ममृतुं
प्राणमध्यात्मं नासिके गन्धघ्राणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य तृतीयया
स्वरमात्रया दिवमादित्यं सामवेदं स्वरितिव्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं

स्तोमशुदीर्घं दिशं वर्षतुं ज्योतिरध्यात्मं चक्षुषी दर्शनमितीन्द्रियाण्यन्व-
भवत् । तस्य वकारमात्रया यश्चन्द्रमसमथर्ववेदं नक्षत्राण्योमिति स्वमात्मानं
जनदित्यंगिरसामानुष्टुभं छन्दः एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदमृतं
मनोऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य मकारश्रुत्येति-
हासपुराणं वाकोवाक्यगाथानाराशंसीरूपनिषदोनुशासमानानामिति वृधत्कर-
द्रुहन्महत्तच्छमोमिति व्याहृतीः स्वरशम्यनानातन्त्रीस्वरनृत्यगीतवादित्राण्य-
न्वभवच्चैत्रयं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर्बाहृतं छन्दस्तृणवत्त्रयस्त्रिंशस्तोमौ ध्रुवामूर्ध्वौ
दिशं हेमन्तशिशिरावृत्तौ श्रोत्रमध्यात्मं शब्दश्रवणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् ।
सैवैकाक्षर ऋगब्रह्मणस्तपसोऽग्ने प्रादुर्बभूव । ब्रह्म वेदस्याथर्वणं शुक्रमत एव
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुः । स तु खलु मन्त्राणां तपसा शुश्रूषानध्यायाध्ययनेन
यदूनं च वरिष्ठं च यातयामं च करोति । तथाप्यथर्वणं तेजसा
प्रत्याप्याययेन्मन्त्राश्च मामभिमुखीभवेयुर्गर्भा इव मातरमभिजिघांसुः परस्ता-
दोङ्कारप्रयुक्तयैतयैव तदृचा प्रत्याप्याययेदेष यज्ञस्य पुरस्ताद्युज्यत एषा
पश्चात् सर्वत एतया यज्ञस्तपते तदप्येतदृचोक्तं—“या पुरस्ताद्युजत
ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति” । तदेतदक्षरं ब्राह्मणो यं काममिच्छेत्
त्रिरात्रोपोषितः प्राङ्मुखो वाग्यतो बहिष्युपविश्यं सहस्रं ऋच आवर्तयेत्
सिध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि चेति ब्राह्मणम् ॥

वसोद्वाराणामिन्द्रनगरं तदसुराः पर्यवारयन्त । ते देवा भीता
आसन् । क इमानसुरान् हनिष्यतीति । तमोङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं
ददृशुस्ते तमब्रुवन् । भवता मुख्येनेमानसुरान् जयेमेति । स होवाच किं
मे प्रतीवाहो भविष्यतीति । वरं वृणीष्वेति । वृण इति । स वरमवृणीत ।
“न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत्स्यात्” इति ।
तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धेऽसुरैः संयत्ता आसंस्तानोङ्कारेणामीध्रीया

देवा असुरान् परामावयन्त । तद्यत्पराभावयन्त तस्मादोङ्कारः पूर्वमुच्चार्यते ।
 यो ह वा एतमोङ्कारं न वेदावश्यः स्यादित्यथ य एवं वेद ब्रह्मवशः स्यादिति
 तस्मादोङ्कार ऋभवति यजुषि यजुः साम्नि साम सूत्रे सूत्रं ब्राह्मणे ब्राह्मणं
 श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम् ॥

ओंकारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं किं नामाख्यातं
 किं लिङ्गं किं च वचनं का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वरः उपसर्गो
 निपातः किं वै व्याकरणं को विकारः को विकारी कतिमात्रः
 कतिवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं
 शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वं प्रश्नाः । अथोत्तरे
 मन्त्राः । कल्पो ब्राह्मणं ऋग् यजुः साम । कस्माद्ब्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः
 कुर्वन्ति । किं दैवतं किं ज्योतिषं किं निरुक्तं किं स्थानं का प्रकृतिः
 किमध्यात्ममिति षट्तिशत्यश्नाः पूर्वोत्तराणां तयो वर्गा द्वादश एकाशतैरोङ्कारं
 व्याख्यास्यामः ॥

इन्द्रः प्रजापतिमपृच्छत् भगवन्नभ्यस्तूय पृच्छामीति । पृच्छ
 वत्सेत्यब्रवीत् । किमयमोङ्कारः कस्य पुत्रः किं चैतच्छन्दः किं चैतद्वर्णः
 किं चैतद्ब्रह्मा ब्रह्म संपद्यते । तस्माद्वैतमोङ्कारं पूर्वमालोमस्वरितोदात्त एकाक्षर
 ओङ्कार ऋग्वेदे लैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओङ्कारो यजुर्वेदे दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर
 ओङ्कारः सामवेदे ह्रस्वोदात्त एकाक्षरः उकारोऽथर्ववेदेऽनुदात्तोदात्तद्विपद
 अ उ इत्यर्धचतस्रो मात्रा मकारे व्यञ्जनमित्याहुः । या सा प्रथमा मात्रा
 ब्रह्मदैवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्ब्राह्मं पदम् । या सा
 द्वितीया मात्रा विष्णुदैवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स
 गच्छेद्वैष्णवं पदम् । या सा तृतीया मात्रा ईशानदैवत्या कपिला वर्णेन
 यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम् । या सार्धचतुर्थी मात्रा

सर्वदैवत्या व्यक्तीभूता स्वं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते
नित्यं स गच्छेत् पदमनामकम् । ओङ्कारस्योत्पत्तिं विप्रो यो न जानाति
तत्पुनरुपनयनं तस्माद्ब्राह्मणवचनमादर्तव्यम् । यथा लतव्यो गोत्रो ब्राह्मणः ।
पुत्रो गायत्रं छन्दः शुक्लो वर्णः । पुंसो वत्सो रुद्रो देवता । ओङ्कारो
वेदानां उत्तरोपनिषदं व्याख्यास्यामः । को धातुरित्यासेर्धातुरवति-
मप्येके । रूपसामान्याद्यर्थसामान्यान्यन्यदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नो-
तीत्यर्थः । कृदन्तमर्थवत्प्रातिपदिकमदर्शनं प्रत्ययस्य नाम संपद्यते । निपातेषु
चैनं वैय्याकरणा उक्षत्तं समामनन्ति । तदव्ययीभूतमन्वर्थवाची शब्दो न
व्येति कदाचनेति ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

को विकारी च्यवते प्रकारणमाप्नोतिराकारपकारौ विकार्यौ
आदितः ओकारो विक्रियते । द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर
ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः । कतिमाल इत्यादेस्तिस्त्रो मालाः अभ्याधाने हि
प्लवते । मकारश्चतुर्थी किं स्थानमित्युभावोष्ठौ स्थानमाधानकरणी च
द्विःस्थानं सन्ध्यक्षरमवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृत्तकरणस्थितश्च
द्वितीयः स्पृष्टकरणस्थितश्च । नायं योगे विद्युत आख्यातोपसर्गानुदात्तः
स्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च संच्छिन्नाध्यायिन आचार्याः पूर्वं बभूवुः ।
श्रवणादेवं प्रतिपद्यन्ते । न कारणं प्रयच्छन्त्यथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चाल-
चण्डः परिपृच्छको बभूवांबुः पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्विति ।
तद्वाच्युपलक्षयेत् वर्णाक्षरपदाङ्कशो विभक्त्यामृषिनिपेवितामिति वाचं
स्तुवन्ति । तस्मात् कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्ग-
विदस्तत्तथाधीमहि । किं छन्द इति । गायत्रं हि छन्दो गायत्री वै

देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता । द्वौ द्वादशकौ वर्गावेतद्वै व्याकरणं
धात्वर्थवचनं श्लेषं छन्दो वचनं चाथोत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गौ वेदरहसिकी (?)
व्याख्याता । मन्त्रकल्पो ब्राह्मणमृग्यजुःसामाथर्वाण्येषा व्याहृतिश्चतुर्णां
वेदानामानुपूर्व्येण । ३० भूर्भुवस्सुवरिति व्याहृतयः ॥

असमीक्ष्य प्रवर्हितानि श्रूयन्ते द्वापरादावृषीणामेकदेशो दोषयतीह
चिन्तामापेदे । त्रिभिः सोमः पातव्यः समासमिव भवति । तस्मादृग्य-
जुस्सामान्यपक्रान्ततेजास्यासंस्तत्र महर्षयः परिदेवयाञ्चक्रिरे । महच्छोकमयं
प्राप्ताः स्मो न चैतत्सर्वैः समभिहितं ते वयं भगवन्तमेवोपधावाम । सर्वेषामेव
शर्म भवानिति । ते तथेत्युक्त्वा तूष्णीमतिष्ठन्नानुपसन्नेभ्य इत्युपोपसीदामेति
नीचैर्बभूवुः । स एभ्य उपनीय प्रोवाच । मामिकामेव व्याहृतिमादितः
कृणुध्वमित्येवं मामका अधीयन्ते । नर्ते भृग्वङ्गिरोविद्वद्यः सोमः पातव्य
ऋत्विजः पराभवन्ति । यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश्चापध्वस्तापतिष्ठ-
तीत्येवमेवोत्तरोत्तराद्योगाल्लोकं लोकं प्रशाध्वमित्येवं प्रतापो न पराभविष्य-
तीति । तथाह भगवन्निति प्रतिपेदिरे आप्याययंस्ते तथा वीतशोकसया
बभूवुः । तस्माद्ब्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः कुर्वन्ति ॥

किं दैवतमित्युचामभिर्दैवतं तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानं
“अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।” इत्येवमादिं
कृत्वा ऋग्वेदमधीयते । यजुषां वायुर्दैवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं
स्थानं “इषे त्वोजे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु
श्रेष्ठतमाय कर्मणे” इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । साम्नामादित्यो
दैवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो बौः स्थानं “अग्न आयाहि वीतये गृणानो
हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ।” इत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते ।
अथर्वणां चन्द्रमा दैवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दास्यापः स्थानं “शन्नो

देवीरभिष्टये” इत्येवमार्दि कृत्वा अथर्ववेदमधीयते । अद्भ्यः स्थावरजङ्गमो
भूतग्रामः संभवति । तस्मात् सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयं अन्तरैते
त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिता इत्यविति प्रकृतिरपामोक्कारेण चैतस्माद्व्यासः ॥

इति प्रणवोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपनिषत्

मेधातिथिं काण्वमिन्द्रो जहार द्या मेघभूयोपगतो विदानः ।
तमन्य इत्तमनं परिप्राट् पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥
को ह स्पैष भवसि व्यवायो नावायो म इह शश्वदस्ति ।
सुशेवमिच्चक्रमसि प्रपश्यन्नित्था न कश्चोरणमाचक्षे ॥ २ ॥
नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः को अद्धामूमभिचङ्कमीति ।
तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमो न त्वाश्ववद्भृश रिषा मयस्वि ॥
इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाट् प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे ।
स इदेवो ऋतमन्वयन्तं प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥
कुहेव मावशमितो नयातै कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा ।
कुहाचिदेष स्वपिता पिता नो यो न वेद न हतं हरन्तम् ॥ ५ ॥
प्रत्यङ्ङवाङ्प्राडितरौ च नेह नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा ।
न मामिमे नूनमित्था पथो विदुर्ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥
परः स्मियानो अविवरस्य शूकं किं सीमिच्छरणं मन्यमानः ।
न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्ठामित्था जहामि शपमानमिन्नु ॥ ७ ॥
अहमस्मि जरितृणामु दावा अहमाशिरमहमिदं दधम्बान् ।
अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽदः ॥ ८ ॥

मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशा वि चैमि सं च हि नु यो विरक्षी ।

अहं न्वर्हि पर्वते शिश्रियाणमुग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥

प्रवङ्क्षणा अभिदं पर्वतानां यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः ।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् को अश्ववदभिमातिं विजघ्नुषः ॥

को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्था ददश्रे भुवनाधि विश्वा ।

रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥ ११ ॥

विश्वं विचक्षे यमयन्नभीको नेशे मे कश्च महिमानमन्यः ।

अहं द्यावापृथिवी आततानो बिभर्मि धर्ममवसे जनानाम् ॥ १२ ॥

अहमु ह प्रवर्ति यज्ञियामियां

अहं वेद भुवनस्य नाभिम् ।

आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ्

अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहम् ॥ १३ ॥

अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम् ।

अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये ॥ १४ ॥

अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरभिलोकं पृणैधीत् ।

यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च ॥ १५ ॥

अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः ।

अहमिन्नु दिद्युतानो दिवे दिवे तन्वं पुपुष्यानमृतं वहामि ॥ १६ ॥

अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् ।

अहं विश्वा ओषधीर्गर्भं आधां याभिरिदं धिनुर्युर्दाशुषः प्रजाः ॥

अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं व्यश्नुवानः ।

यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशय्यै ॥ १८ ॥

अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमृत् ।
 मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि मे असद्विदुः ॥ १९ ॥
 न मामश्नोति जरिता न कश्चन न मामश्नोति परि गोभिराभिः ।
 न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्रभीत् सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः ॥
 क शरारुः क सृमरः क नूरुणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो वहामि ।
 यन्मदिमे बिभ्यति तन्म एकं ते मे अक्षन्नहमु ताननुक्षम् ॥ २१ ॥
 यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित्तन्नु भुवेऽहमुरणो बोभुवे ।
 ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि ॥ २२ ॥
 अहं ज्योतिरहमृतं विनद्धिरहं जातं जनि जनिष्यमाणम् ।
 अहं त्वमहमहं त्वमिच्छु त्वमहं चक्ष्व विचिकित्सीर्म ऋज्वा ॥ २३ ॥
 विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापतिः
 हंसो विशोको अजरः पुराण ऋतीयमानो अहमस्मि नाम ॥ २४ ॥
 अहमस्मि जरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः ।
 अहं विष्वङ्ङहमस्मि प्रसत्वानहमेकोऽस्मि यदिदं नु किं च ॥

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपनिषत्

(सवृत्तिका)

मेधातिथिं काष्कमिन्द्रो जहार इत्याद्या बाष्कलानां मन्त्रोपनिषत्
 तस्याश्चेयमल्पाक्षरा वृत्तिरारभ्यते । मेधातिथिनामानमृषिं कष्वस्य

सामवेदब्राह्मणप्रसिद्धमिन्द्रः जहार । द्या मेषभूयोपगतो विदानः । मेषभूयं
 मेषभावम् । सुवः क्यप् । उपगतः प्राप्तः । सामवेदब्राह्मणप्रसिद्धाख्यायिकः ।
 द्याः स्वर्गलोकान् प्रतीति विवक्षितं जहार हृतवान् । विदानः ज्ञानी ॥
 तमन्य इत्तमनं परिप्राद् । तं इन्द्रं अन्यः मेधातिथिः इदिति निरर्थको
 निपातः । तमनं हरणेन ग्लानिपदम् । परिपृच्छतीति परिप्राद् । मेधातिथिः
 पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥ परस्मिन् पदे ज्ञेये तत्स्वरूपे पदार्थे
 नियुयुजे नियुक्तवान् । विलक्षणमेषीभूतेन्द्रकर्तृकविलक्षणक्रियादर्शनात्
 आपाततो विलक्षणः परो देवः कश्चिन्न तु मेष इति तात्त्विकतत्स्वरूपज्ञानाय
 वक्ष्यमाणप्रश्नेन परं पदं ज्ञेयं स्वस्वरूपं कथयेति प्रश्नेन नियोजितवानित्यर्थः ।
 प्रश्नमेवाह श्रुतिः । को ह स्मैष भवसि व्यवायः । ह इति पूर्ववृत्तावद्योतको
 निपातः । स्मेति निरर्थकम् । एष प्रत्यक्षः । व्यवायो ज्ञेयः । व्यवपूर्व-
 स्यैतेर्षजि रूपम् । कश्चित् ज्ञातुं योग्यस्त्वमसि । नावायो म इह शश्वदस्ति ।
 मे मम शश्वदिति ध्रुवार्थं आवायो ज्ञानं नास्ति कस्त्वमिति । दृश्यमाने
 मेषस्वरूपे कथमेवं संशय इति चेत् । तत्राह । सुशेवमिच्चक्रमसि ।
 शोभनमेव चंक्रमणं करोषि । प्रपश्यन् इत्था न कश्चोरणमाचक्षे ॥ २ ॥
 इत्था न । इत्थमिव । नकार इवार्थः । को वा इत्थं क्रममाणं प्रपश्यन्
 उरणं मेषं आचक्षे । उक्तवान् । दृष्टवान् वा । इत्थं क्रममाण उरणो न
 केनचिद्दृष्ट इति भावः क्रमेण वैलक्षण्यमेवाह । नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः ।
 इमां पृथिवीं उदस्यमानः । इत् एवार्थे । कूर्दन्नेव न अस्पृक्षत् न स्पृशतीति
 लकारव्यत्ययः । नैतावता वैलक्षण्यमत आह । को अद्धामूमभिचङ्कमीति ।
 अद्धा साक्षात् । अनेनैव शरीरेण । अमूं द्याम् । कः अभिचङ्कमीति
 अभिक्रामति । प्रश्नमुपसंहरति । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः । तत्
 तस्मात् शाधि । इदित्यनर्थकम् । शिक्षय यस्त्वं सर्ववित्तमः सर्वज्ञतमः

असि तत्स्वरूपं कथयेति भावः । अकथनेऽनिष्टं संभाव्यते । तन्मा भवत्वित्याह । न त्वाश्ववद्ब्रह्म रिषा मयस्वि ॥ ३ ॥ मयस्वि तेजस्वि ब्रह्म ब्राह्मण्यं रिषा क्रोधेन त्वा त्वां न अश्ववत् न अशोति न व्याप्नोत् । अस्मदीय-क्रोधव्यापारविषयो मा भूदित्यभिप्रायः । कुतस्तवैवं बलमत आह । इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाद् । इन्द्रः परमेश्वरः नृचक्षा सर्वजगत्कर्मसाक्षी वृषभः कामप्रदस्तुराषाद् तुरः परवलं सहते अभिभवतीति सहेः छन्दसीति ष्विः । प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे । प्रसासहिः प्रसहनशीलः । तपसा उपलक्षणो तृतीया । मा मां विचक्षे पश्यति । अतः सत्यमकथयत ईश्वराद्वयमप्याह । स इहेवो ऋतमन्वयन्तम् । इत् एवार्थे । स इत् स एव देवः ऋतं सत्यं अनु लक्ष्यीकृत्य अयन्तं अगच्छन्तं सत्येन पथा अगच्छन्तं सत्यमब्रुवाणमिति यावत् । प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥ अपविद्धात् क्षितात् तवसो वज्रात् प्रभीं प्रकृष्टं मयं मा अकः कार्पीत् । प्रष्टव्यमाह । कुहेव मावशमितो नयातै । कुहेव कुत्रेव मा मां अवशं इतः अस्मात् स्थानात् नयातै नेप्यसि । किं च । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा । स्पष्टम् । ईदृक्कष्टे कायवाङ्मनोनिर्निपेवितमीश्वरं स्मरति । कुहाचिदेष स्वपिता पिता नः । एष मानसप्रत्यक्षो नः पिता ईश्वरः कुहाचित् कुत्र स्वपिता स्वपिति । यो न वेद न हृतं हरन्तम् ॥ ५ ॥ यः हृतं मां न वेद न वा हरन्तं वेदेत्यन्वयः । किं च — इतरेऽप्याजन्मनिपेविता देवा न मत्सहाया इत्याह । प्रत्यङ्मुखाद्वाङ्मोहादितरौ च नेह । पञ्चसु दिक्षु तत्र तत्र वर्तमानाः प्राणपञ्चकाधिष्ठातारो देवा लक्ष्यन्ते । इतरौ चेत्यन्तेषु । सर्वत्र सप्तम्यर्थो बोध्यः । वर्तमाना इति च शेषः । तेऽत्र देवा अपि किं नेह सन्ति । पक्षान्तरमाह । नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा । एनान् देवान् । अद्धा सत्येन । अहं नोपतस्थिः नोपस्थाता इति न । अपि तु उपस्थातैव । किं च । न मामिमे नूनमित्या

पथो विदुः । नूनं निश्चितोऽयमर्थः । इमे देवाः मां इत्था इत्थंभूतं न विदुः । ये मां न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥ ६ ॥ ये पथो मार्गात् मां मां न नयन्ति । कीदृशः मिथु मिथः चाकशानाः भासमानाः । अतः परमिन्द्रस्य मेषवेषधारिणः प्रतिवचनमुपक्रमते । परः स्मियानो अविवरस्य शूकम् । परः इन्द्रः स्मियानः हसन् अस्य मेघातिथेः शूकं शङ्कां अविवरः विवृतवान् । किं सीमिच्छरणं मन्यमानः । सीमिति निरर्थको निपातः । इत् प्रश्ने । किं शरणं रक्षकं मन्यमानः असीति शेषः । इत्थंभूतस्त्व किं शरणं मन्यस इत्यर्थः । पुनरिन्द्र आह—न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्टामित्था जहामि शपमानमिन्नु ॥ ७ ॥ हेत्यैतिह्यार्थः । त्वा त्वां स्वविष्टां स्वस्थानं अप्रणीय अप्रापय्य इत्था इत्थंभूतं अज्ञानपङ्कनिमग्नं न जहामि शपमानमिन्नु शपमानमपि । तथा च त्वामज्ञानपङ्कादुद्धृत्य स्वस्थानमात्मस्वरूपं यावन्न प्रापयामि तावन्न त्वां मुञ्चामीति फलितोऽर्थः । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः इत्यस्योत्तरमाह । अहमस्मि जरितृणामु दावा । अहं उ इति निश्चये । जरितृणां यजमानानां “जरिता वै यजमानः” इति श्रुतेः । दावा दाता फलस्येति शेषः । अस्मि भवामि । यागादिफलप्रदोऽहमेव । अहमाशिरम् । सोमसंस्कारकं पयः तदप्यहमेव । अहमिदं दधग्वान् । इदं हविः दधग्वान् दाहकः । एतस्य हविषो दाहकश्चाहमेवेत्यर्थः । किं च । अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽदः ॥ ८ ॥ विश्वा भुवनानि विश्वेषां भुवनानां विचक्षन् साक्षी सन्नहं देवानां आसन् आस्ये अवः अन्नाद्यं अदः ददामि । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा इत्यस्योत्तरमाह । मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशाः । भुव उत्पादकस्य मम आण्डकोशाः ब्रह्माण्डानि प्रतिष्ठा “तत्सृष्ट्वा” इति श्रुतेः । वि चैमि सं च हि नु यो विरशी । योऽहं व्येमि वियुक्तो भवामि समेमि सङ्गतश्च भवामि

संसारेऽस्मिन् विरक्षी विविधं रपति शब्दं करोतीति विरक्षी रपधातोः
 शिनिन् । शब्दवान् वेदप्रवक्तेति यावत् । अहं न्वहिं पर्वते शिश्रियाणम् । नु
 इति निश्चये । अहमेव नान्यः । अहिं वृत्रासुरं पर्वते शिश्रियाणं पर्वताश्रितं
 अहनम् । उग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥ उग्रः क्रूरकर्मा नु निश्चितं
 अहमेव । तवसा वज्रेण अद्धा निश्चितम् । अवस्युः अनेच्छुः । ऐश्वर्येच्छुरिति
 यावत् । सोऽप्यहमेव । प्रवङ्क्षणानभिदं पर्वतानाम् । प्रवङ्क्षणान् पक्षान्
 पर्वतानां अभिदं भेदितवानस्मि । यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः । यत्
 पुरुषसाध्यं कर्मेन्द्रः अनीकैः अकरोत्तत् अहमेवाकरवमिति वाक्यशेषः ।
 सीमिति निरर्थको निपातः । को अद्धा वेदं क इह प्रवोचत् । अद्धा सत्यं
 मम स्वरूपमिति शेषः । को वेदं कः वेत्ता । को वा प्रवक्ता । को अश्वव-
 दभिमार्तिं विजघ्नुषः ॥ १० ॥ किं च अभिमार्तिं अरिसैन्यं विजघ्नुषः
 हतवतो मम मामित्यर्थः । कः अश्ववत् कः अश्वोत् । मयि व्यापकतां कर्तुं
 न कोऽपि समर्थ इत्यर्थः । को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्या ददश्रे
 भुवनाधि विश्वा । अवोऽन्नं दाशुषो दत्तवतः मे ऊतीः शक्तीः विश्वा
 भुवनान्यधि । अधिरीश्वर इति कर्मप्रवचनीयता । सर्वेषु भुवनेषु कः ददश्रे
 कः ददर्श । किं च । रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि । जनुषा शरीरग्रहणेन
 रूपं रूपं अनेकरूपः बोभवीमि भवामि शुद्धस्य तव कथं शरीरग्रहणमत
 आह । मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥ ११ ॥ अनेकाभिर्विचित्रशक्ति-
 भिरमायाभिः एकोऽपि अभितः चाकशानः भासमानः मायाप्रतिबिम्बित इति
 यावत् । किं च । विश्वं विचक्षे यमयन्नभीकः । अभीको निर्भयः विश्वं
 यमयन् । अन्तर्यामिस्वरूपेण अधितिष्ठन् । विचक्षे पश्यामि । किं च ।
 नेशे मे कश्च महिमानमन्यः । महिमानं प्राप्तुमिति शेषः । स्पष्टम् । किं
 च । अहं द्यावापृथिवी आततानो विभर्मि धर्ममवसे जनानाम् ॥ १२ ॥

द्यावापृथिवी आततानस्तन्वन्नहं जनानां अवसे जनानां अवितुं धर्मं महावीरं
यज्ञशिरो विभर्मि । इदमुपलक्षणम् । कर्ममार्गप्रवर्तनेनापि लोकरक्षक इति
फलितोऽर्थः । “आहुत्याप्यायते सोमः” इत्यादिस्मृतेः । अहमु ह प्रवर्ति
यज्ञियाभियाम् । अहं उ ह यज्ञियां प्रवर्ति यज्ञसंवन्धिनं काममहमियाम् ।
कर्मफलप्रदोऽप्यहमेवेति भावः । अहं वेद भुवनस्य नाभिम् । त्रैलोक्य-
वर्तिपदार्थमात्रं नाभिपदेनोपलक्ष्यते । आपिः पिता सूरहस्य विश्वङ् ।
आपिः पितामहः पिता जनकः सूर्माता अहमेव अस्य विश्वस्य । किं च ।
अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहं ॥ १३ ॥ दिव्या आन्तरिक्ष्याश्च तुकाः
बिन्दून् अहं वहं वहामि । लकारव्यत्ययः अडागमाभावश्च छान्दसः ।
वृष्टिकर्ताप्यहमेवेत्यर्थः । अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम् ।
सर्वत्र कर्मणि षष्ठी अविदं वेद्मि । अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव
सरिरस्य मध्ये ॥ १४ ॥ परस्य सरसः समुद्रस्य मध्यं यत् इत् उदर्थे ।
उदेतीव । उदयं बडबानलस्वरूपेण उदयं प्राप्नोतीति यावत् । तत्
बडबानलस्वरूपं तेजः अहमेव सन् सरिरस्य सलिलस्य कर्मणि षष्ठी सलिल-
महमेव पचामि । अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरभिलोकम्पृणैधीत् ।
अहमिन्नु परमः पवित्रतमो जातवेदा अग्निः यं जातवेदसं अध्वर्युः अभिलोकं-
पृणा लोकम्पृणामिष्टकामभि लक्ष्मीकृत्य अध्वर्युः ऐधीत् समिद्धं चक्रात् ।
यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च ॥ १५ ॥
यमध्वर्युमनु लक्ष्मीकृत्य नभसो न पक्षी नभसः पक्षीव नकार इवार्थे
गोभिर्वाग्भिः । इतः अमुतश्च काष्ठाः दिशं भिन्दन् अन्वाह शंसति ।
होतेति शेषः । अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः । अहं उ ।
द्विषडारेण द्वादशारेण द्वादशमासात्मकेन संवत्सररूपेण अन्तरिक्षेऽपि अपतता
रथेन प्रधिना चक्रधारया उपलक्षितेन यन् गच्छन् यः सोऽहमेवेत्यन्वयः ।

कीदृशोऽहं एकचक्रः । न खल्वन्योऽहमिव एकेन चक्रेण याति । एवं
 सूर्यरूपेण प्रस्तूय चन्द्ररूपेण स्तौति । अहमिन्नु दिद्युतानो दिवेदिवे तन्वं
 पुपुष्यान्मृतं वहामि ॥ १६ ॥ अहमेव दिवेदिवे प्रतिदिनं तन्वं शरीरं
 पुपुष्यान् पोषयन् अमृतं वहामि प्रापयामि प्रजाम्य इति शेषः । कीदृशः
 दिद्युतानः प्रकाशमानः । अथ वायुरूपेण स्तौति । अहं दिशः प्रदिश
 आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् । स्पष्टम् । अथ पृथिवीरूपेण
 स्तौति । अहं विश्वा ओषधीर्गर्भ आधां याभिरिदं धिन्युर्दाशुषः
 प्रजाः ॥ १७ ॥ विश्वाः सर्वा ओषधीः अन्नानि । आधां दधे ।
 दाशुषः यजमानस्य प्रजा याभिरौषधीभिः इदं विश्वं धिन्युः प्रीणयन्ति ।
 अथ सकलजीवरूपतामाह । अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं
 व्यञ्जुवानः । उच्चावचं ऊर्ध्वमधश्च । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तजीवरूपोऽहमेवेति
 भावः । यो मा वेद निहितं गुहा चित्स इदित्या बोभवीदाशयधै ॥ १८ ॥
 यो मा मां गुहा गुहायामन्तःकरणे निहितं हृत्कमलान्तर्वर्तिनमेतदुक्तरूपाभेदेन
 वेदं उपास्ते स इत्या इत्थं आशयधै आशयितुं आशयं कर्तुं बोभवीति
 भवति । इत्थमाशयो ब्रह्मज्ञानी मत्तुल्यो भवतीति यावत् । चिदिति
 निरर्थकम् । अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र ।
 अत्र विश्वस्मिन् । शेषं स्पष्टम् । मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि
 मे असद्विदुः ॥ १९ ॥ मया ततमिदं विश्वमिति । (अमुं अमुं प्रकारं)
 अश्नुते प्राप्नोति । तत् तदेतत् मदुक्तम् । अन्यथा असत् अन्यथा
 स्यात् । यदि एवं केऽपि ब्रूयुरिति शेषः । तर्हि ते असद्विदुः । स्पष्टम् ।
 न मामश्नोति जरिता कश्चन न मामश्नोति परि गोभिराभिः । कश्चित् जरिता
 यजमानः मां न अश्नोति न प्राप्नोति । “न कर्मणा न प्रजया
 धनेन” इति श्रुतेः । आभिर्गोभिर्वाभिः वेदैरिति यावत् । न मां परि

अश्नोति परिप्राप्नोति । परीति सामस्त्यार्थम् । तथा च “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः ” इति श्रुतिसमानार्थमेतत् । न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्रभीत् सर्व इन्माप्नुयन्ति विश्वतः ॥ २० ॥ मे मां कर्मणि षष्ठी । अनाश्वान् अनशनव्रती न अजग्रभीत् । न गृह्णाति । दाश्वान् दाता । दानानाशकयोरपि “यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन ” इति श्रुत्या लोकप्राप्तिहेतुत्वस्यैवोक्तेः । न चाहमेकस्मिन्नेव लोके नियतः । अतो ज्ञानिनः सर्व एव इदेवार्थं मां विश्वतः विश्वस्मिन्नुपयन्ति उपगच्छन्ति । क शरारुः क सुमरः क नूरणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो बहामि । शरारुः व्याघ्रादिः सुमरः वृकश्च केति कचित् प्रत्येकं उरणः मेषः सर्वमिदं त्वत् त्वत् त्वच्छब्दः अन्यपर्यायः । अन्यदन्यच्च इतः अनया दिशा अनेन सृष्टिप्रकारेण तसिलः सर्वविभक्तिकत्वोक्तेः । बहामि । सर्वमपीति भावः । अतश्च पुनरप्याह । यन्मदिमे बिभ्यति तन्म एकम् । यत् मत् मत्तः इमे व्याघ्रादयो बिभ्यति भयं प्राप्नुवन्ति । व्याघ्रादिभ्यो भूयांसो बिभ्यति । व्याघ्रादयोऽपि बहुभ्यो बिभ्यति । यस्माच्च व्याघ्रादयो बिभ्यति सोऽहमेव । तदेतदाह । तन्म एकं तत्सर्वमपि मे मम एकमेव । एवमैक्ये स्वस्य तदपेक्षया विशेषमाह । मे ते अक्षन्नहमु ताननुक्षम् ॥ २१ ॥ ते मे मां न अक्षन् न भक्षयन्ति । अदेर्घस्युपधालोपः । उ इति अनर्थकम् । अहमु तान् अनुक्षं भक्षयामि । अडागमाभावः छान्दसः । यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित् । यत् बहुधा मे मदर्थं पुरा पूर्वं तप्यथाः तत्तवानसि । चिदित्यनर्थकम् । तन्नु भुवेऽहं उरणो बोभुवे । तत् तस्मादेव हेतोः नु निश्चयेन । भुवे भवाय सत्तायै ज्ञानेन तवैव सत्त्वस्वरूपावाप्तय इति यावत् । उरणो मेषः । बोभुवे अभवम् । अतः परमुपसंहरन्नाह । ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि ॥ २२ ॥ अयसे प्राप्तये ब्रह्मण इति शेषः । ऋतस्य

सत्यस्य पन्थां पन्थानं प्रपन्नोऽसि । स त्वं मे मम एकं सत्यमित् सत्यमेव ।
न त्वन्यत् किमपि सांसारिकं ऐहिकं प्राप्नुहि । पुनः शुद्धं स्वस्वरूपमाह ।
अहं ज्योतिरहममृतं विनद्धिः । नद्धिः बन्धनम् । तद्रहितम् । स्पष्टम् ।
स्वविवर्तत्वेन विश्वस्य स्वामेदमाह । अहं जातं जनि जनिष्यमाणम् । जनि
जायमानम् । स्पष्टम् । मेधातिथेः स्वामेदमुपदर्शयन्नाह । अहं त्वमहमहं
त्वमिन्नु त्वमहं चक्ष्व । अहं त्वमेव । अहं दृश्यमानश्चेत् प्रतिबिम्बवत्
त्वम् । तर्हि कदाचित् मम मिथ्याभूतत्वं प्रतिबिम्बवत् स्यादत आह ।
अहं चाहमेव । न प्रतिबिम्बवन्मिथ्याभूत इत्यर्थः । तर्हि तवैव
प्रतिबिम्बवन्मिथ्याभूतत्वं कदाचित् स्यादत आह । त्वमिन्नु त्वमहं
चक्ष्व । त्वमपि त्वमेव अहं चेति चक्ष्व जानीहि । विचिकित्सीर्मे
ऋज्वा ॥ २३ ॥ ऋज्वा ऋजुः साम्प्रतं न तथाऽपककषायोऽब्रह्मज्ञश्चेति
मा विचिकित्सीः मा संशयं कार्षीः । कुतः सन्देहे सन् । मा इत्यत्र
ऋत्यक इति ह्रस्वः । विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः
प्रजापतिः । विधरणः जगद्धारकत्वात् । प्रणीती जगत्प्रणेतृत्वात् अन्तर्यामिस्व-
रूपेणेति भावः । तमनः शमनः । यमस्वरूपत्वात् । स्पष्टम् । हंसो
विशोको अजरः पुराणो ऋतीयमानो अहमस्मि नाम ॥ २४ ॥ हंसो
विवेचकत्वसामान्यात् ऋतीयमानत्वं सर्वत्र घृणावत्त्वेन निर्लेपत्वम् । ऋतिः
सौत्रो घृणार्थः प्रसिद्धः । ऋच्छतेरियतेर्वा ल्युट् । अहमस्मि दरिता
सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः । जरिता यजमान इति व्याख्यातं
प्राक् । पर्यारणः व्यापकः । नृचक्षाः साक्षी । अहं विष्वङ्महमस्मि
प्रसत्त्वानहमेको अस्मि यदिदं नु किञ्च ॥ २५ ॥ विष्वङ् व्यापकत्वात्
प्रसत्त्वान् साक्षी । स्पष्टम् । इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् ।

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् सञ्ज्ञिका समाप्ता

मठास्त्रायोपनिषत्

ॐ ऊर्ध्वाम्नायगुरूपदेशशुवनाकारसिंहासनसिद्धाचारवन्दितं समस्त-
वेदवेदान्तसारनिर्माणं परात्परं निरञ्जनज्ञानार्थषट्चक्रजाग्रतीमयं परावाचा
परात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्लिङ्गं निराकारं गळितं पूर्णप्रभाशोभितं
शान्तं चन्द्रोदयनिभं भज मनस्तच्छ्रीगुरुचैतन्यं प्रणमामि ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ प्रथमे पश्चिमात्मनायः शारदामठः कीटवारिसंप्रदायः
तीर्थाश्रमपदं द्वारकाक्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाळी देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः
गङ्गागोमतीतीर्थे स्वरूपब्रह्मचारी सामवेदप्रपठनं “तत्त्वमसि” इत्यादिवाक्य-
विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे
संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ द्वितीये पूर्वाम्नायः गोवर्धनमठः भोगवारिसंप्रदायः वनारण्ये
पुरुषोत्तमं क्षेत्रं जगन्नाथः विमला देवी भद्रपद्मपादाचार्यः महोदधितीर्थं
प्रकाशब्रह्मचारी ऋग्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म”
इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे
साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ तृतीये उत्तराम्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारिसंप्रदायः गिरिपर्वत-
सागरपदानि बदरिकाश्रमक्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णगिरी देवी त्रोटकाचार्यः
अलकनन्दातीर्थे आनन्दब्रह्मचारी अथर्वणवेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “अयमात्मा
ब्रह्म” इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे
आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरीमठः भूरिवारिसंप्रदायः सर-
स्वतीभारतीपुरी चेतिपदानि रामेश्वरक्षेत्रं आदिवराहो देवता कामाक्षी
देवी शृङ्गी ऋषिः पृथ्वीधराचार्यः तुङ्गभद्रातीर्थं चैतन्यब्रह्मचारी यजुर्वेद-
प्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “अहं ब्रह्मास्मि” इत्यादिवाक्यविचारः
नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे
संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशीसंप्रदायः जनकयाज्ञव-
ल्क्यादिशुकवामदेवादिजीवन्मुक्ताः एतत्सनकसनन्दनकपिलनारदादिब्रह्मनिष्ठाः
नित्यब्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं गानससरोवरं तीर्थं निरञ्जनो देवता माया देवी
ईश्वराचार्यः अनन्तब्रह्मचारी शुकदेववामदेवादिजीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं
परोरजसेसावदौ “संज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवे-
केनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं
करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ षष्ठे आत्मान्नायः परमात्मा मठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्ड-
लिक्षेत्रं त्रिकुटी तीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपासोहंमहामन्त्रः ब्रह्म-
विष्णुमहेश्वराद्याः जीवब्रह्मचारी हंसविद् उपास्तिः उपाधिभेदसंन्यासार्थं
ज्ञानसंन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ सप्तमे जम्बूद्वीपः सम्यग्ज्ञानं शिखा न सूत्रं वेद्यवेदकः
श्रद्धा नदी विमलातीर्थं आत्मलिङ्गशान्त्यर्थं विचारः नित्यानित्यविवेकेन
आत्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये ।
ॐ नमो नारायणायेति ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता मठान्नायोपनिषत् समाप्ता

विश्रामोपनिषत्

ॐ पूर्वदले श्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा धैर्यमुदारं च धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥
 अग्निदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा क्रोधश्च कामश्च मन्दं बुद्धिर्मतिर्भवेत् ॥
 कृष्णवर्णे दक्षिणदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 निद्रालस्यभयं देवि मत्सरे च मतिर्भवेत् ॥
 नैऋतदले नीलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा क्रोधश्च कामश्च मनोभिन्नमतिर्भवेत् ॥
 पश्चिमदले कपिलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा हास्यविनोदौ च उत्साहे च मतिर्भवेत् ॥
 श्यामवर्णे वायुदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा चिन्तोच्चाटनं च वैराग्ये च मतिर्भवेत् ॥
 पीतवर्णोत्तरदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा शृंगारभोगौ च कल्पनायां मतिर्भवेत् ॥
 गौरवर्णेशानदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा कृमात्मानं धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥
 सन्धौ सन्धौ मिश्रितानां यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा देहो गृहं राज्यं निर्दोषा च मतिर्भवेत् ॥
 श्यामवर्णे मध्यदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा सर्वगुणं ज्ञानं चैतन्यं च मतिर्भवेत् ॥

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

ये पठन्ति सदा भक्त्या सायुज्यपदमाप्नुयुः ॥

इति विश्वामोपनिषत् संपूर्णा

शौनकोपनिषत्

ॐ देवासुराः संयत्ता आसन् । तेषामिन्द्रो न प्रत्यपद्यत । ते ह वसूनेव प्रातस्सवनेषु पुरोधाय व्यजिगीषन्त । ते ह नुत्रेषु नाराशंसेषु ऋषीणां यज्ञवास्त्वभ्यायन् हनिष्याम वा एतद्वो यद्देवान् पराभावयिष्यथेति । ते ह विभ्यत एवं स्तोकानुदकल्पयन् विजेष्यध्वे वावैतानन्विति । ते ह तत् एवार्तिमार्च्छंस्तानन्वितरान् पराभावयन् । ततो हेन्द्रोऽपश्यत् । स ह गायत्रीमेव प्रतिसंदिदेश । सा होवाच । विभेमि वा एतदेतेभ्यो यथैतत्परावृत्तन्निति । स प्रणवमेवास्याः पुरोगमकरोदेष वाच ते गोप्यायेति । सा होवाच । यदेष पुरोगाः उदेष मे भागधेयी स्यादिति । स होवाच । न ह वावैष त्वद्भागधेयी भवति । महान्वा अस्य महिमा न ह वा महीयांसो भागक्लृप्तिमप्याभजन्तीति । विश्वमिन्नु समन्वालभध्वमिति । सेनान्यास्तु प्रथमजानाग्याययिष्यर्सीत्योमिति होवाच । स होवाच यत्प्रथमं नाभ्यकीर्तयो नामग्राहमथ नानुवत्स्य इति । नामग्राहमेनेन सर्वमभिपद्यन्ते । सर्वे वा एष सर्वमश्नोतीति । अक्षरं वा षष्ठः । तस्मादोमित्यनुजानन्ति । ओमिति प्रतिपद्यन्त ओमित्यभ्याददत्त ओमित्यभिनिधापयन्ति । तदेतदक्षरं जैत्रमभित्वरं सर्वाणि भूतान्यभ्यात्तं यदनेकमेकं नानावर्णं नानारूपं नानाशब्दं नानागन्धं नानागमं नानाम्पर्शमिति । अथो खल्वाहुरिन्द्रो वा

चैतदक्षरम् । सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्येतदक्षरमन्वायत्तानि सर्वे वेदाः
सर्वे यज्ञा इत्यथ खल्विन्द्रमन्वायत्तमिति ॥

स मंद्रेणैवान्वाभक्तो विदिद्युतेऽञ्जसैव आतृव्यानपहनानीति ।
तस्मान्मन्द्रं प्रातःसवनमभवद्यद्वायत्रं तद्वायत्री तद्वायत्रं यद्वसवः तद्वसव्यम् ।
स ह प्रणव उवाच । यदहं सर्वं भवानि यद्वायत्री वै पुरोगाः तत्किं मे
स्यादिति । गायत्रमन्वेव गायत्रीमन्वेव त्वा सर्वरूपमिमं कृत्वा हिं कुर्वन्ति ।
स हापश्यन्नैतदञ्जसैव सर्वा रूपाण्येवमभिचक्षीरन्निति । स हान्तत
एवात्मानमुपसंहृत्य तावदेवाग्राहयत् । स विशृङ्ग एवाभवत् । तस्माद्विशृङ्गमेवैत-
दिहानुद्भवन्ति । तदाहुंर्यद्वा एतस्य वीर्यं यच्छुक्रं यज्ज्योतिर्यदमृतं यदजर्यं
तदवरमिति । तस्मात्तत एवातो ज्योतिरमृतमजर्यं प्रतिपद्यन्ते । ततो हासु-
राः पराभवन् । स एष इन्द्रः सर्वं यद्वायत्री उद्गीथो वसवः प्रातस्सवनमिति ।
तदाहुः । सर्वं वा एतदिन्द्रो यज्जगद्यथैवेति ॥

ततो हासुराः पुनरेवोदयन्ति । ते ह माध्यंदिनस्यैव सवनस्य
पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषां जरितारो बिभ्यत एव वस-
तीवरीरूपाकल्पयन् । ते ह ताभिरेव जिघांसन् । तेषामिन्द्रो रुद्रानेव
सेनान्योऽकः । ते हाक्षीयन्त । स ह त्रिष्टुभमेव प्रतिसंददत् । साब्रवीत् ।
विभेमि वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो वलीयांस इमे पराभवन्निति । स ह
प्रणवमेवोवाच पुरोगायमेवारभस्वेति । सोऽब्रवीत् । किं मेऽतः स्यादिति ।
यदहं स त्वं ममैव रूपेण न्यूंखयिष्यन्ति त्वामिति । स हापश्यत् । सर्वं
एव न्यूंखयन्तो मामभिचक्षीरन्निति । स ह सर्वमेवात्मानमुपसंहृत्य शृंग
एवागूहयत् । स ह विशृङ्ग एवाभवत् । तस्मादित्यैव न्यूंखयन्ति ।
ततो हासुराः पराभावयन् । तस्माद्रुद्रानेव माध्यंदिनं सवनं त्रैष्टुभं
चेति ॥

ते हासुराः पुनरेवोदपतिष्यन्त । ते ह तृतीयस्येह सवनस्य पवमानेषु
 यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषामिमे बिभ्यत एवांशुनुपाकल्पयन् । ते ह तैरेव
 देवानपाजिघांसन् । तेषामिन्द्रो जगतीमेव प्रतिसंदिदेश । साब्रवीत् बिमेमि
 वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो बलीयांस इमे परावृतत्रिति । तस्या इन्द्रः
 प्रणवमेव पुरोगामकरोत् । स होवाच । किं मेऽतः स्यादिति । स
 होवाचेन्द्रो यत्त्वामुद्गीथेनोपावनेष्यन्ते तेनैव ते कल्पयिष्यन्तीति । सेनान्यो
 हि तर्ह्यादित्यानकल्पयन् तस्माज्जागतं तृतीयसवनमादित्यानाम् । स
 हापश्यदादित्यो वा उद्गीथोऽसौ खल्वादित्यो ब्रह्म । न ह वा एनं मिथु
 चिदेमीति । स ह स्वेनैव रूपेणादित्यानगच्छत् । स ह तेनैव वज्रेणासुरान्
 पराभावयन् । तद्यत् स्वेनैव रूपेणाविस्तरामगच्छत्प्रतिष्ठामविन्दत् ।
 प्रतिष्ठा ह वा एषा यत्प्रणवः । सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्रणव एव
 प्रतितिष्ठन्ति । तस्य ह वा एषा प्रतिष्ठा यत्रासावात्मानमुपसंहृत्याजूगुपत् ।
 तस्मात्तदेवोपन्वीतेति तदेवोपासीत । तदेतद्वचाभ्युक्तम्—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः

द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति

महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ इति ॥

यदिमास्तिस्रोथासाविति चत्वारीति । यदिमे द्वे एवाक्षरे त्रिभिरुपन्वन्ति
 तत्त्रय इति । यत्प्रत्यक्षं तद्वे इति । यदुद्गीथं सप्तभिरभिप्रपद्यन्ते तत्सप्तेति ।
 अथो खल्वाहुः । सप्तभिरेनं स्वारयन्तीति । यदीमान् त्रीनभिषत्ते तत्त्रिषेति ।
 यदिन्द्र एवोद्गीथस्तद्वृषभ इति । तदेतद्वचाभ्युक्तम्—

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम् ।

यद्वावयन्ति तद्रोरवीति ॥

यदेष सर्वाणि भूतान्यनुप्रविष्टस्तन्मर्त्याः आविवेशेति । तस्मादो-
मित्येकाक्षरमुद्गीथमुपासीतेत्याह भगवान् शौनकः शौनक इति ॥

इति शौनकोपनिषत् समाप्ता

सूर्यतापिन्युपनिषत्

प्रथमः पटलः

ॐ अथ भगवन्तं कमलासनं चतुर्मुखं पितरं ब्रह्माणं सनत्कुमार
उपससार । प्रणनामाहं भो इति । अधीहि भो इति पप्रच्छ । को मनुः ।
दिव्यं किं ध्येयम् । यज्जपात्सर्वेनोनिवृत्तिः । यद्वद्यानात्सारूप्यसिद्धिः तद्ब्रवीतु
भगवान् लोकानुग्रहयन्ति । तच्छ्रुत्वा पितामह आह — शृणोतु भवानेकमनाः
सर्वदा यमामनन्ति यन्नमस्यन्ति देवाः स ब्रह्मा स शिवः स हरिस्सेन्द्रः
सोऽक्षरः परमः स्वराट् स सूर्यो भगवान् सहस्रांशुः तं सूर्यं भगवन्तं
सर्वस्वरूपिणं निगमा बहुधा वर्णयन्ति । कश्यपः पश्यको भवति । यत्सर्वं
परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् । कश्यपादुदिताः सूर्याः पापान्निर्घ्नन्ति सर्वदा ।
रोदस्योरन्तर्देशेषु । अपैतं मृत्युं जयति । य एवं वेद । योऽसौ तपन्नृदेति ।
असौ योऽस्तमेति । असौ योऽपक्षीयति । एष हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः । स विजायमानः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति विश्वतोमुखः । असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्यः । उतैनं विश्वा भूतानि स दृष्टो
मृडयाति नः । ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईर्यते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये

अहः । सामवेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः । ऋग्यो
जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।

त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः ॥ इति ।

योगेन ऊर्ध्वमन्थिनः सूर्यं भगवन्तमुपासते । धनधान्यबहुरत्नवन्तो निर्व्याधिवन्त
आयुष्यवन्त आरोग्यवन्तो रयिवन्तो धनवन्तो बलवन्तो बहुपुत्रवन्त इति ।
यः श्रीकामः शान्तिकामः तुष्टिकामः पुष्टिकामो मेधाकामः प्रज्ञाकाम
आयुष्काम आरोग्यकामोऽन्नाद्यकामो भास्करं भगवन्तमुपासीत । सयोगिनिः
सरूपतां सलोकतां गत्वा स्तुत्वा महानन्दमुदकमुपस्पृश्यापोऽवगाह्य वाग्यतः
नित्यकर्म कृत्वा शुचौ देशेऽप्यासीनो दर्मान् धारयमाणः प्राङ्मुख उपविश्य
प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य त्रिवेदमयं त्रिमूर्तिं त्रिगुणं चतुष्पदं पञ्च-
रूपं षडर्णवेद्यं सप्ताश्वमष्टशापेति (?) मुदयाद्रिसमारूढमुदयन्तं पद्मकरं पद्मासनं
पद्मनयनं पद्मबान्धवं दिव्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनं सर्वाभरणभूषितं
सर्ववेदसं सर्वदेवाधिदैवतं सर्वदेवनमस्यन्तं काश्यपं भास्करं ध्यात्वा प्रस्कण्वः
कण्वपुत्रो मुनिरस्य छन्दोऽनुष्टुब्भास्करो द्वादशात्मको दैवतमुदात्तस्वरो ज्ञानं
नेत्रं सूर्यस्तत्त्वं प्रथमं बीजं द्वितीयं शक्तिस्तृतीयं कीलकगथापि श्रीबीजं शक्तिः
सूर्य इति कीलकम् । अथ पादाद्यैरर्धचैः ऋग्भिस्तृचेन द्वादशभिर्नामभिः
मित्ररविसूर्यमानुस्वगपूषहिरण्यगर्ममरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्कराख्यैः षड्बीजैः
संपुटिताः । स्तस्य सिध्यन्ति । गच्छेदन्ते परं पदम् ॥

प्रोक्तमादित्यमाहात्म्यं यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।

प्रत्यक्षदैवतं मानुः परोक्षं सर्वदेवताः ॥

तद्व्यानं पूजनं कार्यं श्रेयस्कामैर्जितेन्द्रियैः ।

जितेन्द्रियाय शान्ताय मन्त्रं देयमिदं महत् ॥

न देयं चञ्चलाक्षाय नामक्ताय कदाचन ।
 हसन्ति लोकायतिका हसन्ति कुटिला जनाः ॥
 तस्माद्गोप्यं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।
 रोगी रोगात् प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥
 तथा प्रत्यर्थिकृत्याभिर्मन्त्रयन्त्रादिकिल्बिषैः ।
 किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ॥ इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये प्रथमः पटलः

द्वितीयः पटलः

सनत्कुमारो भगवन्तं पितरं प्रणिपत्य पप्रच्छ ॥
 कथं ध्यानं कथं न्यासः कथं पूजाविधानकम् ।
 अर्घ्यदानं कथं कार्यं ब्रवीतु भगवानिदम् ॥ इति ॥

ततो भगवान् पितामह आह—

यतवाक्कायमनसः सूर्यभक्तो ब्रह्मचारी व्रतधरः ष
 समुदायगुरुं कृधि । उद्यन्नद्यमिनो भज । पिता पुत्रेभ्यो यथा । दीर्घायुत्वस्य
 हेशिषे । तस्य नो देहि सूर्य । इति द्व्यर्चं महामन्त्रं जप्त्वा प्रत्यर्थिनो जयति ।
 उद्यन्नद्यमित्र महः । आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य । हरि-
 माणं च नाशय । शुक्रेषु मे हरिमाणम् । रोपणाकासु दध्मसि । अथो
 हारिद्रवेषु मे । हरिमाणं निदध्मसि । उदगादयमादित्यः । विश्वेन सहसा
 सह । द्विषन्तं मम रन्धयन् । मो अहं द्विषतो रथम् । उद्यन्नद्येत्ययं तृचो
 रोगघ्नः उपनिषदंत्यार्धर्चशो द्विषं (?) ना (?) यो नः शपादशपत् । यश्च नः

शपतः शपात् । उषाश्च तस्मै निम्नुक् च । सर्वं पापं समूहताम् । इत्येकचो
रोगघ्नः प्रत्यर्थिहारी ॥

आकाशो वह्निना युक्तो दीर्घाद्यश्च सविन्दुकः ।

आद्योऽयमर्णकोपिष्ठो द्वितीयेन द्वितीयकः ॥

तृतीयं तृतीयः स्यात् द्वादशेन तृतीयकः ।

भूतेन पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठः षोडशतः स्वरात् ॥

पडचोऽयं महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।

एतन्मन्त्रं मयोद्दिष्टं गुह्याद्गुह्यतमं महत् ॥

एतज्जप्त्वा महामन्त्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

पूजयित्वा विवस्वन्तमर्घ्यदानं समाचरेत् ।

एवं यः कुरुते पूजां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

सर्वामश्नुत इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये द्वितीयः पटलः

तृतीयः पटलः

अथ सौरमनूनि प्रवक्ष्यामि निगमोदितानि । घृणिरिति द्वे अक्षरे ।
सूर्य इति त्रीणि । आदित्य इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं
श्रियाभिषिक्तम् । य एवं वेद । श्रिया हैवाऽभिषिच्यते । सह वा एतस्य
स्वधा न यजुषा न साम्नामर्थोऽस्ति । यस्सावित्रं वेद । अहो नाहाश्चर्यः ।
सावित्रं विदाम्नाकार । तं ह वागदृश्यमानाभ्युवाच । सर्वं वत गौतमो वद ।
यस्सावित्रं वेदेति । स होवाच । सैषा वागसीति । अयमहं सावित्रः ।
देवानामुत्तमो लोकः । गुह्यं महो विभ्रदिति । एतावदिह गौतमः यज्ञोपवीतं

कृत्वाऽथो निपपात । नमो नम इति । स होवाच । मा भैषीर्गौतम
जितो वै ते लोक इति । तस्माद्ये केच सावित्रं विदुः । सर्वे ते जितलोकाः ।
उद्यन्नद्य मित्र महः । सपत्नान्मे अनीनशः । दिवैनान्विद्युता जहि । निम्नो-
चन्नधरान् कृधि । न्यासोपयोगस्तथैवार्घ्यदाने च पादन्यास आद्योऽर्घ्यन्यासो
द्वितीयरुज्ञस (?) स्तृतीयस्तृचन्यासश्च बीजन्यासो हंसन्यास इति बहुधा
वर्णयन्ति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये तृतीयः पटलः ।

चतुर्थः पटलः

अथ पूजाविधानं वक्ष्ये—यन्त्रस्य पूर्वद्वारे द्वारश्रियै क्षेत्रपालाय
मायायै नम इति दक्षिणतो द्वारश्रियै गणेशाय मायायै प्रत्यक्तो दुर्गायै मा-
यायै उदक्तो महालक्ष्म्यै मायायै नमः । पूर्वपत्रे सूर्यायाम्नेयपत्रे रवये दक्षिणे
विवस्वते नैर्ऋतौ खगाय पश्चिमे वरुणाय वायव्ये मित्राय सौम्ये आदित्याय
ईशान्ये नमो महसे भास्कराय नम इत्यथाष्टदलपूजादित्यसवितृ-
सूर्यखगपूषगमस्तिमार्ताण्डजगच्चक्षुभिरष्टभिर्जातैरथ पीठपूजाधारशक्तिमूलं-
प्रकृतिकूर्मानन्तवराहपृथिवीसुवर्णमण्डपरत्नसिंहासनैर्दन्तैः धर्मज्ञानवैराग्यैश्च-
यैर्नञ्पूर्वैश्च दन्तैर्ऋग्वेदादिभिश्चतुर्भिः कृतादिभिश्चतुर्भिर्मन्दारादिभिः पञ्चभिः
पीठकल्पमूलकन्दनाळपञ्चपत्रकेसरकर्णिकासूर्यमण्डलसोमवह्निब्रह्मविष्णुरुद्रसत्त्व-
रजस्तमआत्मान्तरात्मा परमात्मभूः पुरुषसुवः पुरुषसुवः पुरुषभूर्भुवस्सुवः
पुरुषाद्यैर्दन्तैस्तृचेन सर्वोपचारोपयोगस्तेन सर्वाधौघनिवृत्तिः सिद्ध्यतीति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये चतुर्थः पटलः

पञ्चमः पटलः

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवतासु प्रसाधनम् ।

यन्त्रं विना देवता च न प्रसीदति सर्वदा ॥

वृत्तमादौ विलिख्य साष्टपत्रं ततस्त्रिकोणं वृत्तं षड्भुजं वृत्तयुगळं साधुकोणं समालिखेदिति । तत्रैता देवता आवाह्य द्वादशावरणानि कुर्यात्तत्र देवतामार्ताण्डादिभान्वादित्यहंससूर्यदिवाकरतपनभास्करा डिन्ताः प्रथमावरणे मित्राद्रयो द्वादशमन्त्राद्याः द्वितीये सूर्योदये नववेदस्तृतीये धाता ध्रुव-सोमानिलानलप्रत्युषप्रभासश्चतुर्थे वीरभद्रगिरिशंकरैकपादाहर्बुध्न्यादीनाः भुवनाधिपतिविशांपतिपशुपतिस्थाणुभवाः पञ्चमे धात्र्यर्चमांशुमध्यमणि-भवेन्द्रविवस्वत्पूषगभस्तिमार्ताण्डजगच्चक्षुषः षष्ठे अरुणसूर्यवेदाङ्गभान्विन्द्र-रविगभस्तिग्रमसुवर्णरेतोदिवाकरमित्रविष्णुमाघादिद्वादशमासाधिपतयः सप्तमे असिताङ्गो रुरुश्चन्द्रक्रोधोन्मत्तकपालिभीषणसंहाराः अष्टमे ब्राह्मचादयः सप्तमातरो नवमे इन्द्रादयोऽष्टौ दशमे मेषादयो द्वादशैकादशे वज्रशक्ति-खङ्गपाशाङ्कुशगदात्रिशूलचन्द्रमुसलपद्मानि द्वादशे मध्ये भास्करं ध्यायेदुप-चारान् समर्प्यार्घ्याणि दद्यात् भगवान् सुप्रीतो भवेत् ॥

इत्यार्यवर्णशिरसि सूर्यतापिनीये पञ्चमः पटलः

षष्ठः पटलः

अथ यन्त्रे बीजोद्धारं प्रवक्ष्यामि देवतासन्निधये वृत्तभानुमती-द्व्यर्चमुद्धरेत्कमलाष्टपत्रेषु दण्ड एषः पिङ्गाक्षप्रचण्डक्षेत्रपालगणपतिदुर्गाल-क्ष्म्यो डेन्ता अष्टौ स्याद्वर्ण (?) बीजकाद्याः षट्कोणेषु तारया हंसस्सोहमिति

चतुराशासु मायामङ्कुशं च मास्र (?) प्वष्टसु तत्तदाद्यर्णमध्ये तृतीय-
नामादिकमिति देशिकोक्त्या सर्वं विज्ञाय साधकः सिद्धयति ॥

गुरुभक्ताय शान्ताय प्रदेयं नियतात्मने ।
न च शुश्रूषवे वाच्यं हैतुकाय कदाचन ॥
देशिकोक्तविधानेन यन्त्रे देवं प्रपूजयेत् ।
अर्घ्यदानं ततः कुर्याद्भानुरर्घ्यप्रियः सदा ॥
देशिकोक्तेन मन्त्रेण तृचेन च यथाविधि ।
साधकः साधयेत् सर्वमिह लोके परत्र च ॥
किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ।
प्रत्यक्षनैवतं सूर्यः परोक्षं सर्वदेवताः ॥
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेत् सूर्यसः सदम् ।
गच्छेत् सूर्यसः सदं गच्छेत् सूर्यसः सदमिति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये षष्ठः पटलः

सूर्यतापिन्युपनिषत् समाप्ता

स्वसंवेद्योपनिषत्

ॐ सर्वेषां प्राणिवृद्धदानां निरञ्जनाव्यक्तामृतनिधौ विलयविलासः
स्थितिर्विजृम्भते । तेषामेव पुनर्भवानं नो इहास्ति । स यथा मृत्पिण्डे घटानां
तन्तौ पटानां तथैवेति भवति । वस्तुतो नोपादानमत एव नोपादेयमत एव
न निमित्तमत एव न विद्या न पुराणं नो वेदा नेतिहासा इति न जगदिति
न ब्रह्मा नो विष्णुः नाथ रुद्रो नेश्वरो न बिन्दुः नो कलेति अग्रे

३. वैष्णव-उपनिषदः

ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत्

अथ श्रीवराहरूपिणं भगवन्तं प्रणम्य सनत्कुमारः पप्रच्छ । अधीहि भगवन् ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिम् । किं द्रव्यं किं स्थानं का रेखा को मन्तः कः कर्ता किं फलमिति च । श्रीवराह उवाच । क्षीराब्धितः श्वेतद्वीपे क्षीरखण्डान् वैनतेय आनीय सटाभिः द्विदलनश्वेतमृत्तिकासण्डमुक्तिसाधिका भवन्ति । विष्णुपत्नीं मह्यं देवीमिति श्वेतमृत्तिकां नमस्कृत्य, ओमिति हस्तेनोद्धृत्य ।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरा ।

शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥

इत्यंताभिः प्रार्थयेत् । इमं मे-गङ्गेति जलमादाय, गन्धद्वारेति निक्षिप्य, विष्णोर्नुकमिति मर्दयेत् । तन्मध्ये नृसिंहबीजं विलिख्य, “अतो देवा अवन्तु नः” इति विष्णुगायत्र्या त्रिवारमभिमन्त्र्य “नारायणाय विद्महे वसुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।” इत्येकवारम् ॥

श्वेतमृद्देवि पापघ्ने विष्णुदेहसमुद्भवे ।

चक्राङ्किते नमस्तेऽस्तु धारणान्मुक्तिदा भव ॥

श्रीचूर्णं श्रीकरं दिव्यं श्रियश्चाङ्गे समुद्रवम् ।

पुण्ड्रं च यस्य मध्ये तु धार्यं मोक्षार्थिभिः स्मृतम् ॥

तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत व्रतमेतत्तु वैष्णवम् ॥

यस्त्वेवं विजानीयात् स नारायणसायुज्यमवाप्नोति । न च पुनः कुल कुत्र धार्यम् । मत्पादाकृतयश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रा नासादयः स्मृताः रेखाद्वादशकस्थाने । प्रथमं तु ललाटके द्वितीयं तु नाभौ तृतीयं वक्षसि चतुर्थं कण्ठे पञ्चमं नाभिदक्षिणे षष्ठं दक्षिणबाहौ सप्तमं तदूर्ध्वस्कन्धे अष्टमं नाभ्युत्तरे नवमं वामबाहौ दशमं तदूर्ध्वस्कन्धे एकादशं पृष्ठोर्ध्वतः द्वादशं कण्ठपृष्ठे मोक्षं देहि शिरसि । नारायणे मय्यचला भक्तिस्तु वर्धते । संज्ञेन फलं लब्ध्वा तद्विष्णोः परमं पदमवाप्नोति । केशवादिद्वादशनामभिः ब्रह्मचारी गृहस्थो यतिश्च सर्वेभ्यो दुःखेभ्यो मुक्तो भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । सर्वैर्देवैः ज्ञातो भवति । अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । अनुपनीतोऽप्युपनीतो भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते । इत्याह भगवान् वराहरूपी । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इत्यूर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत् समाप्ता

कात्यायनोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य कात्यायनो ब्रह्माणमन्वयुङ्क्त । अधीहि भगवः किं पवित्राणां पवित्रम् । केन वा कर्मणा सफलानि । किं दुष्करं तपो मत्तानाम् । केन सुकरोणामृतत्वमेति । स होवाच । साधु ते सुयोगः शृणु ।

भो पवित्रं सुलभं सुकरम् । यद्विष्णुक्षेत्रम् । तत्र मृत्त्वां श्वेतां “उद्धृतासि”
 इत्युद्धरेत् । अमृतमेव श्वेतमृत्त्वा भवति । तां शुद्धजलेन प्रणवेन घर्षयेत् ।
 देवपितृकर्माण्यारभमाणस्तया नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विभृयान्मन्त्रैः केशवादीनाम् ।
 तद्रहितं कर्म निष्फलं रक्षांसि गृहीयुः । तदेवमभ्युक्तं भवति । नासादि-
 केशान्तमूर्ध्वपुण्ड्रं विष्णोः स्थितस्य चरणद्वयाकृति । एकाङ्गुलं पादतरो-
 रस्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे शाखे । तदेव च मध्याकारोऽङ्गुलादन्यूनः ।
 स श्रीः प्रतिष्ठायै । श्रीर्हरिद्रा । यतो हरिं द्रावयति तच्छ्रीचूर्णं श्रियावधृतं
 आदित्यवर्णं श्रीफले धारयेत् । तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां
 धारयेत् । स श्रीमान् भवति । ते द्वे शाखे हंसवर्णे गायत्रीत्रिष्टुप्छन्दसी
 आत्मपरमात्मदैवत्ये दर्शपूर्णमासिके इष्टापूर्तक्रिये भुक्तिभुक्तिफले । सा
 रेखा श्रीवर्णा । गायत्री छन्दः । आनन्दक्रियामृतत्वफला । अयनूर्ध्वपुण्ड्र-
 विधिः । एवं विदित्वा यो धारयति स सर्वकर्माहो भवति । कायिकात्पूतो
 भवति । स विष्णुसायुज्यमवाप्नोति स विष्णुसायुज्यमवाप्नोति । य एवं
 वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति कात्यायनोपनिषत् समाप्ता

गोपीचन्दनोपनिषत्

ॐ नमस्कृत्य भगवन्तं नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ । श्रीभगवन्
 ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिं द्रव्यमन्त्रस्थलादिसहितं मे ब्रूहीति । तं होवाच भगवान्
 वासुदेवो वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं
 वैकुण्ठस्थानादाहृत्य द्वारकायां मया प्रतिष्ठितं चन्दनं कुङ्कुमादिसहितं

विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनात् गोपीचन्दनमा-
ख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तःस्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं
भवति ॥ अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य,

गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव ।

चक्राङ्कित नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ॥

इति प्रार्थनम् । “इममे गङ्गे” इति जलमादाय, “विष्णोर्नुकं” इति
मर्दयेत् । “अतो देवा अवन्तु नः” इत्येताभिर्ऋग्भिर्विष्णुगायत्र्या
त्रिवारमभिमन्त्र्य,

शंखचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ॥

इति मां ध्यात्वा, गृहस्थो ललाटादिस्थलेष्वनामिकाङ्गुल्या
विष्णुगायत्र्या केशवादिद्वादशनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी वानप्रस्थो
ललाटकण्ठहृदयबाहुमूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिपञ्चनामभिर्वा धारयेत् ।
यतिस्तर्जन्या शिरोललाटहृदयेषु प्रणवेन धारयेत् । ब्रह्मादयस्त्रयो मूर्तयस्तिष्ठो
व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि त्रयो लोकाः त्रयो वेदास्त्रयः स्वराः
त्रयोऽग्नयो ज्योतिष्मन्तस्त्रयः कालास्तिष्ठोऽवस्थास्त्रय आत्मानः पुण्ड्रास्त्रयः
ऊर्ध्वाः अकारोकारमकाराः एते सर्वे प्रणवमयोर्ध्वपुण्ड्रतयात्मकास्तदेतदोमि-
त्येकधा समभवन् । परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत् । तत्र
दीपप्रकाशं स्वमात्मानं परं ब्रह्मैवाहमस्मीति भावयन् योगी मत्सायुज्य-
मवाप्नोति ॥

अथान्यो हृदयस्योर्ध्वं पुण्ड्रं मध्ये बहुहृदयकमलमध्ये वा स्वमात्मानं
भावयेत् ॥

तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ।

गोपी का । का नाम संरक्षणी । कुतः संरक्षणी । लोकस्य नरकात्
मृत्योर्महामयाच्च संरक्षणी । चन्दनं तुष्टिकरणम् । किं तुष्टिकरणम् ।
ब्रह्मानन्दकारणम् । य एवं विद्वानेतदाख्यापयेत् । य एतच्च धारयेद्गोपी-
चन्दनमृत्तिकानिरुक्त्यानि (?) धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके
महीयत इति ॥

गोप्यो नाम विष्णुपत्न्यस्तासां चन्दनं आह्लादनम् । कश्चाह्लाद एष
ब्रह्मानन्दरूपः । काश्च विष्णुपत्न्यो गोप्यो नाम जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः
प्रकृतिमहदहमाद्या महामायाः । कश्च विष्णुः परं ब्रह्मैव विष्णुः ।
कश्चाह्लादो गोपीचन्दनसंसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्म-
ज्ञानप्राप्तिश्च य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

गोपीत्यग्र उच्यताम् । चन्दनं तु ततः पश्चात् । गोपीत्यक्षरद्वयम् ।
चन्दनं त्र्यक्षरम् । तस्मादक्षरपञ्चकम् । य एवं विद्वान् गोपीचन्दनं
धारयेदक्षयं पदमाप्नोति । पञ्चत्वं न स पश्यति । ततोऽमृतत्वमश्नुत इति ।
अथ मायाशबलितब्रह्मासीत्ततश्च महदाद्या ब्रह्मणो महामायासंमीलनात्
पञ्चभूतेषु गन्धवती पृथिव्यासीत् । पृथिव्याश्च वैभवाणवभेदाः पीतवर्णा
मृदो जायन्ते । लोकानुग्रहार्थं मायासहितं ब्रह्म संभोगवशादस्य चन्दनस्य
वैभवं य एवं विद्वान् यतिहस्ते दद्यादनुग्रहार्थं मायापल्लवः सर्वमायुरेति ॥
ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं यच्च एतद्रहस्यं सायंप्रातर्ध्यायेद्दहोरात्रकृतं
पापं नाशयति मृतो मोक्षमश्नुते मृतो मोक्षमश्नुत इति ॥

गोपीचन्दनपङ्केन ललाटं यस्तु लेपयेत् ।

एकदण्डी त्रिदण्डी वा स वै मोक्षं समश्नुते ॥ १ ॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा ।

तं तं पूतं विजानीयाद्राजभिः सत्कृतो भवेत् ॥ २ ॥

ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च गोघ्नश्च गुरुतल्पगः ।
 तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ३ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
 अभिव्यस्ययायतो भूत्वा देवेन्द्रपदमश्नुते ॥ ४ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं पुरुषं य उपासते ।
 एवं ब्रह्मादयो देवाः सन्मुखास्तमुपासते ॥ ५ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः पुरुषो येन पूज्यते ।
 विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥
 सदाचारः शुभाकल्पो मिताहारो जितेन्द्रियः ।
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत् ॥ ७ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो व्रतं यस्तु समाचरेत् ।
 ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ८ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गैर्जपदानादिकं, कृतम् ।
 न्यूनं संपूर्णतां याति विधानेन विशेषतः ॥ ९ ॥
 गोपीचन्दनमायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम् ।
 कामदं मोक्षदं चैव इत्येवं मुनयोऽब्रुवन् ॥ १० ॥
 अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 तेषां पुण्यमवाप्नोति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ११ ॥
 गोपीचन्दनदानस्य चाश्वमेधसमं फलम् ।
 न गङ्गाया समं तीर्थं न शुद्धिर्गोपीचन्दनात् ॥ १२ ॥
 बहुनात्र किमुक्तेन गोपीचन्दनमण्डनम् ।
 न तत्तुल्यं भवेल्लोके नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
 चन्दनं वापि गोपीनां केलिकुङ्कुमसम्भवम् ।
 मण्डनात् पावनं नृणां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १४ ॥

कृष्णगोपीरतोद्भूतं पापघ्नं गोपिचन्दनम् ।

तत्प्रदानात्सर्ववेदचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ १५ ॥

तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनाद्रिसमं फलम् ।

कुङ्कुमं कृष्णगोपीनां जलक्रीडासु संभृतम् ॥ १६ ॥

गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः ।

कृष्णगोपीजलक्रीडाकुङ्कुमं चन्दनैर्युतम् ॥ १७ ॥

तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्यादशमं कुलम् ।

गोपीचन्दनखण्डं तु चक्राकारं सुलक्षणम् ।

विष्णुरूपमिदं पुण्यं पावनं पीतवर्णकम् ॥ १८ ॥

आपो ह वाग्रे आसन् । तत्र प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाश्राम्यतेदं सृजेयमिति ।
स तपोऽतप्यत । तत ओङ्कारमपश्यत्ततो व्याहृतीस्ततो गायत्री गायत्र्या
वेदास्तैरिदमसृजत् । धूममार्गविसृतं हि वेदार्थमभिमन्धाय चतुर्दश लोकान-
सृजत् । तत उपनिषदः श्रुतयः आविर्बभूवुः । अर्चिमार्गविसृतं वेदार्थमभिमन्धाय
सर्वान् वेदान् सरहस्योपनिषदङ्गान् ब्रह्मलोके स्थापयामास । स एताश्चो-
पनिषद्वैवस्वतेन्तरे सगुणं ब्रह्म विधिनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां
वसुदेवसन्न्याविर्भविष्यति । तत्रभवत्यः सर्वलोकैः कृष्णसौन्दर्यं क्रीडाभो-
गागोपिकास्वरूपैः परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भञ्जिष्यथ । तत्र श्लोकौः—

इति ब्रह्मवरं लब्ध्वा श्रुतयो ब्रह्मलोकगाः ।

कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसंकुले ॥

श्रीकृष्णाख्यपरं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन् ।

एतत्संभोगसंभूतं चन्दनं गोपिचन्दनम् । इति ॥

इत्यथर्ववेदोक्तगोपीचन्दनोपनिषत् समाप्ता

तुलस्युपनिषत्

अथ तुलस्युपनिषदं व्याख्यास्यामः । नारद ऋषिः । अथर्वाङ्गि-
रश्छन्दः । अमृता तुलसी देवता । सुधा बीजम् । वसुधा शक्तिः । नारायणः
कीलकम् । श्यामां श्यामवपुर्धरां ऋक्स्वरूपां यजुर्मतां [?] ब्रह्माथर्वप्राणां
कल्पहस्तां पुराणपठितां अमृतोद्भवां अमृतरसमञ्जरीं अनन्तां अनन्तरसभोगदां
वैष्णवीं विष्णुवल्लभां मृत्युजन्मनिबर्हणीं दर्शनात्पापनाशिनीं स्पर्शनात्पावनीं
अभिवन्दनाद्रोगनाशिनीं सेवनान्मृत्युनाशिनीं वैकुण्ठार्चनाद्विपद्मन्त्रीं भक्षणात्
वयुनप्रदां प्रादक्षिण्याद्धारिद्रचनाशिनीं मूलमूलेपनान्महापापभञ्जिनीं प्राण-
तर्पणादन्तर्मलनाशिनीं य एवं वेद स वैष्णवो भवति । वृथा न छिन्धात् ।
दृष्ट्वा प्रदक्षिणं कुर्यात् । यां न स्पृशेत् । ५ णि न विचिन्वेत् । यदि
विचिन्वति स विष्णुहा भवति । श्रीतुलस्यै स्वाहा । विष्णुप्रियायै स्वाहा ।
अमृतायै स्वाहा । श्रीतुलस्यै विद्महे विष्णुप्रियायै धीमहि । तन्नो अमृता
प्रचोदयात् ॥

अमृतेऽमृतरूपासि अमृतत्वप्रदायिनि ।
त्वं मामुद्धर संसारात् क्षीरसागरकन्यके ॥
श्रीसखि त्वं सदानन्दे मुकुन्दस्य सदा प्रिये ।
वरदामयहस्ताभ्यां मां विलोकय दुर्लभे ॥
अवृक्षवृक्षरूपासि वृक्षत्वं मे विनाशय ।
तुलस्यतुलरूपासि तुलाकोटिनिभेऽजरे ॥
अतुले त्वतुलायां हि हरिरिकोऽस्ति नान्यथा ।
त्वमेव जगतां धात्री त्वमेव विष्णुवल्लभा ॥

त्वमेव सुरसंसेव्या त्वमेव मोक्षदायिनी ।
 त्वच्छायायां वसेल्लक्ष्मीस्त्वन्मूले विष्णुरव्ययः ॥
 समन्ताद्देवताः सर्वाः सिद्धचारणपन्नगाः ।
 यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये ब्रह्मदेवताः ॥
 यदग्रे वेदशास्त्राणि तुलसीं तां नमाम्यहम् ।
 तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ॥
 नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये ।
 ब्रह्मानन्दाश्रुसंजाते वृन्दावननिवासिनि ॥
 सर्वावयवसंपूर्णे अमृतोपनिषद्रसे ।
 त्वं मामुद्धर कल्याणि महापापाब्धिदुस्तरात् ॥
 सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तं त्वमेव हि ।
 देवानां च ऋषीणां च पितॄणां त्वं सदा प्रिये ॥
 विना श्रीतुलसीं विप्रा येऽपि श्राद्धं प्रकुर्वते ।
 वृथा भवति तच्छ्राद्धं पितॄणां नोपगच्छति ॥
 तुलसीपत्रमुत्सृज्य यदि पूजां करोति वै ।
 आसुरी सा भवेत् पूजा विष्णुप्रीतिकरी न च ॥
 यज्ञं दानं जपं तीर्थं श्राद्धं वै देवतार्चनम् ।
 तर्पणं मार्जनं चान्यन्न कुर्यात्तुलसीं विना ॥
 तुलसीदारुमणिभिः जपः सर्वार्थसाधकः ।
 एवं न वेद यः कश्चित् स विप्रः श्वपचाधमः ॥

इत्याह भगवान् ब्रह्माणं नारायणः, ब्रह्मा नारदसनकादिभ्यः, सनका-
 दयो वेदव्यासाय, वेदव्यसः शुकाय, शुको वामदेवाय, वामदेवो मुनिभ्यः,
 मुनयो मनुभ्यः प्रोचुः । य एवं वेद स स्त्रीहत्यायाः प्रमुच्यते । स वीरह-

त्यायाः प्रमुच्यते । स ब्रह्महत्यायाः प्रमुच्यते । स महाभयात् प्रमुच्यते ।
 स महादुःखात् प्रमुच्यते । देहान्ते वैकुण्ठमवाप्नोति वैकुण्ठमवाप्नोति ।
 इत्युपनिषत् ॥

इति तुलस्युपनिषत् समाप्ता

नारदोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य नारदो ब्रह्माणं प्रायुङ्क्त । अधीहि भगवन्मे किं
 पवित्राणां पवित्रं केन सुकरेणामृतत्वमेति । स होवाच साधुत्वे नियोगं
 सुलभं पवित्रं सुलभं सुकरं तद्विष्णुक्षेत्रं तत्र मृदं श्वेतं “उद्धृतासि” इत्युद्धरेत् ।
 अमृतमेव श्वेतमृद्ववति । मूलमन्त्रद्वयं च “विष्णोर्नुक्तम्,” “गन्धद्वाराम्”
 इत्येताभिरभिमन्त्रयेत् । देवपितृकर्माण्यारभमाणस्त्रयी नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं च
 कुर्यान्मन्त्रैः केशवादीनाम् । तत्कर्म सफलं च भवति । न रक्षांसि गृहीयुः ।
 तदेवमभ्युक्तं भवति । नासादिकेशान्तमूर्ध्वपुण्ड्रं विष्णोः स्थितस्य चरण-
 द्वयाकृति । आयतमेकाङ्गुलं पादतरोरस्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे रेखे । तथैव च
 धृतं विष्णुना वा “आदित्यवर्णे तपसः” इति हरिद्रां श्रीफले धारयेत् ।
 तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां धारयेत् । ते द्वे शाखे हंसवर्णे
 गायत्रीत्रिष्टुब्दैवत्ये आत्मपरमात्मदैवत्ये लक्ष्मीनारायणदैवत्ये दर्शपूर्णमासेष्टके
 इष्टापूर्तक्रिये

मातृकायामेतादौ देवोपलब्धम्

नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत्

प्रथमः खण्डः

अथ ब्रह्माणं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ । कीदृशं नारायणाष्टाक्षरं
भवतीति व्याचष्टे । अथ यो वै नारायणः स भगवान् परब्रह्मण आनन्दो
भवति । ज्ञात्वा जीवन्मुक्तो भवति । सच्चिदानन्दस्वरूपपरवस्तु भवति ।
अष्टाक्षरं अष्टमूर्तिं भवति । प्रथमरूपः पृथिवीरूपो भवति । द्वितीयमापो
भवति । तृतीयस्तेजो भवति । चतुर्थो वायुर्भवति । पञ्चम आकाशो
भवति । षष्ठश्चन्द्रमा भवति । सप्तमः सूर्यो भवति । अष्टमो यजमानः ॥

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः ।

सूर्यः पुमांस्तथाचेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः ॥

अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं
भवति । अकारः सद्योजातो भवति । उकारो वामदेवः । अघोरो मकारो
भवति । तत्पुरुषो नादः । बिन्दुरीशानः । कला व्यापको भवति ।
अनुसन्धानो नित्यः । ध्यानस्वरूपं ब्रह्म । सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः ॥

नारायणः परं ब्रह्म ज्ञानं नारायणः परः ।

नारायणं महापुरुषं विश्वमात्मानमव्ययम् ॥

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं स्थितो नारायणः परः ।

सहस्रशीर्षं देवमक्षरं परमं पदम् ॥

नारायणं शिवं शान्तं सर्ववेदान्तगोचरम् ।

सृष्टिः स्थितिश्च संहारतिरोधानानुसंमतम् ।

पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये प्रथमः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणाष्टाक्षरमन्त्रं व्याचष्टे ।
 श्रीमन्नारायणस्य दशमन्त्राः कथ्यन्ते । ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो
 मन्त्रः । स एव मन्त्रराजो भवति । एतन्नारायणस्य तारकं भवति ।
 तदेवोपासितव्यं भवति । इत्युवाच भगवान्नारायणशब्दपरब्रह्मश्रीमहामाया-
 प्रकृतिसर्वमेकजननीलक्ष्मीर्भवति । देवानां देवलक्ष्मीर्भवति । सिद्धानां
 सिद्धलक्ष्मीर्भवति । मुमुक्षूणां मोक्षलक्ष्मीर्भवति । योगिनां योगलक्ष्मीर्भवति ।
 मुनीनां विवेकबुद्धिर्भवति । राज्ञां राज्यलक्ष्मीर्भवति । सृष्टिरूपा सरस्वती
 भवति । स्थितिरूपा महालक्ष्मीर्भवति । संहाररूपा रुद्राणी भवति ।
 तिरोधानकरी पार्वती भवति । अनुग्रहरूपा उमा भवति । पञ्चकृत्यरूपा
 परमेश्वरी भवति । श्रीमहालक्ष्म्यै नम इति सप्ताक्षरो मन्त्रः ॥

सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी ।
 महालक्ष्मीर्महादेवी सर्वलोकैकमोहिनी ॥
 साम्राज्यदायिनी नित्यं सर्ववेदस्वरूपिणी ।
 महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी ।
 ज्ञानिनां ज्ञानदा सत्यं दानवानां विनाशिनी ॥

इति महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिर्भवति । नारायणः स भगवान् परब्रह्मस्व-
 रूपी सर्ववेदान्तगोचरः नित्यशुद्धबुद्धपरब्रह्मानन्दमयो भवति । तस्माल्लक्ष्मी-
 नारायण इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणमन्त्रः कीदृशो भवति । “ ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ” इति गायत्री भवति । “ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाशसुरे । ”, “ अतो देवा भवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ” इति मन्त्रद्वयेन नारायणप्रतिपादितं भवति । “ स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ” । नारायणायेति पञ्चाक्षरं भवति । ॐ नमो विष्णवे इति षडक्षरं विज्ञातम् । नमो नारायणायेति सप्ताक्षरं भवति । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशं परिकीर्तितम् । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नारायणाय स्वाहा । यस्य कस्यापि न देयम् ।

पुत्रो देयः शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ।

न वदेद्यस्य कस्यापि किं तु शिष्याय तां वदेत् ॥

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो भगवते लक्ष्मीनारायणाय विष्णवे वासुदेवाय स्वाहा ॥

श्रीमहाविष्णवे तुभ्यं नमो नारायणाय च ।

गोविन्दाय च रुद्राय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥

नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त केशव ।

वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः ॥

इत्यनुष्टुबद्धयं मन्त्रं व्याख्यातम् । अथ मालामन्त्रं व्याख्यास्यामः ।

स होवाच भगवान् ब्रह्मा य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये तृतीयः खण्डः

चतुर्थः खण्डः

स होवाच भगवान् पितामहः गायत्रीं व्याचष्टे । गोविन्दाय विद्महे वांसुदेवाय धीमहि । तन्नो नारायणः प्रचोदयात् । कामदेवाय विद्महे पुष्पवागाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । महादेव्यै च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । “ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाऽसि यो अस्कमायदुत्तरः सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ”, “ त्रिदेवः पृथिवीमेष एताम् । विचक्रमे शतर्चसं महित्वा । प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् । त्वेषः ह्यस्य स्थविरस्य नाम । ”

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत ।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥

“ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । ”, “ य ईः शृणोत्यलकः शृणोति । न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् । ” अक्षन्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनो जीवेष्वसमा बभूवुः । तस्माल्लक्ष्मीनारायणं सर्वबीजं सर्वभूताधिवासं यो वेत्ति स विद्वान् भवति । उपासकानां मोक्षप्राप्तिर्भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । स होवाच भगवान् उपासनविधिं व्याचष्टे । ब्रह्मा ऋषिर्भवति । गायत्री छन्द उच्यते । श्रीमन्नारायणपरमात्मा देवता । प्रणवं बीजम् । नमः शक्तिरुच्यते । कीलकं नारायणेति ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगोऽथ भावना ।

महोल्काय वीरोल्काय वृद्धोल्काय पृथूल्काय विद्युल्काय ज्वलदुल्काय च षडङ्गकल्पिताः नमःस्वाहावषड्वौषट्पदान्ता अङ्गन्यासा भवन्ति ।

नीलजीमूतसंकाशं पीतकौशेयवाससम् ।

किरीटकुण्डलधरं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ॥

शङ्खचक्रगदाखङ्गधारिणं वनमालिनम् ।
 वामभागे महालक्ष्म्यालिङ्गितार्धशरीरिणम् ॥
 सनकादिभिः संसेव्यं स्तूयमानं महर्षिभिः ।
 ब्रह्मादिभिः सदा ध्येयं ध्यात्वा नारायणं विभुम् ॥
 कर्मणा मनसा वाचा संस्मरेत् प्रजपेत् सुधीः ।
 अयुतं जपमात्रेण सर्वज्ञानप्रदो भवेत् ॥
 लक्षमात्रं तु प्रजपेत् स्वस्वरूपं भवेन्मनुः ।
 अत ऊर्ध्वं सदा ध्यायेत् साक्षान्नारायणो हरिः ॥
 स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये चतुर्थः खण्डः

पञ्चमः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा दशकळात्मकोऽवतारः कथ्यते ॥

जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका ।

वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः ॥

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते । ॐ नमो नारायणाय
 स्वाहा । एवं दशाक्षरो महामन्त्रो भवति । तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः ।
 द्वितीयः कूर्मः । तृतीयो वराहः । चतुर्थो नरसिंहः । पञ्चमो वामनः ।
 षष्ठो जमदग्निः । सप्तमो रामचन्द्रः । अष्टमः कृष्णः परमात्मा । नवमो
 बुद्धावतारः । दशमः कल्किर्जनार्दनः । ॐ मत्स्यावताराय नमः । श्रीं
 कूर्मावताराय नमः । ह्रीं वराहावताराय नमः । हुं नृसिंहावताराय नमः ।

सौः वामनावताराय नमः । ऐं परशुरामावताराय नमः । ग्लौं रामचन्द्राय नमः । क्लीं कृष्णाय नमः । ब्रूं बुद्धावताराय नमः । सः कल्क्यवताराय नमः इति । प्रजापतिः प्रजायते । तस्मान्नारायणः प्रजायते । ब्रह्मा जायते । ब्रह्मणः सकाशात् पञ्चमहाभूतानि तन्मात्राणि जायन्ते । ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियाणि मनोबुद्धिचित्ताहंकारा जायन्ते । प्रकृतिर्जायते । चतुर्विंशति-तत्त्वात्मको नारायणः । पञ्चविंशतितत्त्वात्मकः पुरुषत्वं परब्रह्म भवेत् । शिवश्च नारायणः । शक्रश्च नारायणः । दिशश्च नारायणः । ऊर्ध्वश्च नारायणः । अन्तश्च नारायणः । नारायणः सर्वं खल्विदं ब्रह्म । तस्मान्नारायणादण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजमनसिजादयः सर्वे महाभूताः प्रजायन्ते ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बर्ही प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् ।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां मुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

अण्डजाः सर्वस्वरूपा जायन्ते । स्वेदजाः क्रिमिकीटादयः । उद्भिज्जास्तरुगुल्मलतादयः । जरायुजा नरपशुमृगादयो जायन्ते । मनसिजा नारदादयः सर्वे ऋषयः । नारायणः स्थावरजङ्गमात्मको भवति । अष्टवसवो नारायणः । एकादशरुद्रा नारायणः । नारायणात् द्वादशादित्याः । सर्वे देवा ऋषयो मुनयः सिद्धगन्धर्वयक्षरक्षःपिशाचाः सर्वे नारायणः । नारायण एवेदं सर्वम् । लक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति विज्ञायते । वस्त्वेकं परब्रह्म नारायणः सनातनः ॥

साक्षान्नारायणो देवः परब्रह्माभिधीयते ।

सच्चिदानन्दात्मकाः स्युर्विष्णौ नित्ये प्रकल्पिताः ।

नानाविधानि रूपाणि हाटके कटकादिवत् ॥

“ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि । तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेज्जयन्ति । तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति । ”
परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा सरस्वतीति चतुर्विधा वाचो वदन्ति । वैखरी
सर्वविद्यासु प्रशस्ता ॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।

पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्व मन्त्रशास्त्रकम् ।

विद्याश्चाष्टादश प्रोक्ता नारायणनिवेशिताः ॥

तस्य निश्चसितमेव ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरश्चेति ।
सर्ववेदवेदान्तानां नारायणपरब्रह्मण्येव तात्पर्यम् । स होवाच भगवान् य
एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये पञ्चमः खण्डः

षष्ठः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणयन्त्रमन्त्रावरणपूजामाचक्षे ।
त्रिकोणं प्रथमं भवति । द्वितीयं षट्कोणं भवति । वृत्तमष्टदलं तृतीयम् ।
चतुर्थं द्वादशदलम् । पञ्चमं षोडशदलम् । चतुर्विंशतिः षष्ठम् । द्वात्रिंशतिः
सप्तमम् । अष्टमं भूपुरम् । एवं यन्त्रं समालिखेत । मध्ये लक्ष्मीनारायणं
विक्षेपशक्त्यावरणं शक्तिप्रभाशक्तित्रिकोणदेवताः षट्कोणं वृद्धोल्कादयः
पूज्याः । सर्वज्ञानित्वतृप्त्यनादिबोधस्वतन्त्रनित्यमलुप्तानन्तं षट्कोणशक्तयः ।
सनकसनन्दनसनत्सुजातसनत्कुमारसनातननारदतुम्बुरुसमन्तादयोऽष्टदलाः ।

वसिष्ठबालखिल्यविश्वामित्रकश्यपात्रिभरद्वाजाङ्गीरसजामदग्निगौतमागस्त्यजा
बालिकपिला द्वादशदलाः । मत्स्यकूर्मवराहनारसिंहवामनरामरामकृष्णबुद्ध-
कल्किसद्योजातवामदेवा अघोरतत्पुरुषेशानपरमेश्वराः षोडशदलाः । शंखचक्र-
गदापद्मखड्गश्रीवत्सकौस्तुभवनमालादिकिरीटकुण्डलकेयूरहाराङ्गदशाङ्गिशर -
नन्दकपद्मवेणुबर्हिपिञ्छशेषानन्तगरुडविष्वक्सेनब्रह्माणश्चतुर्विंशतिदलाः केश-
वादिचतुर्विंशत्यनुकमम् । हरिश्रीकृष्णमुकुन्दकुमुदाक्षपुण्डरीकाक्षधामकशङ्ख-
वर्णसर्वनेत्रसुमुखसुप्रतीका द्वात्रिंशदलाः । ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्प-
दन्तसार्वभौमसुप्रतीकाक्षाश्चतुरश्रदेवताः । ॐ नमो नारायणायाष्टाक्षरसंज्ञा-
वरणदेवतापूजा कर्तव्या । स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्यार्षवर्णरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये षष्ठः खण्डः

इति नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत्

प्रथमः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् सच्चिदानन्दस्वरूपो
भवति ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
 तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
 वासनाद्वासुदेवस्य वासितं हि जगत्त्रयम् ।
 सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

भूश्च नारायणः । भुवश्च नारायणः । सुवश्च नारायणः । महश्च
 नारायणः । जनश्च नारायणः । तपश्च नारायणः । सत्यं च नारायणः ।
 नारायणः परं ब्रह्म । नारायण एवेदं सर्वम् । नारायणान्न किञ्चिदस्ति ।
 सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । तस्माद्वा
 एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः ।
 अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः ।
 नारायणः सर्वपुरुष एवेदं परब्रह्म । नारायणः सर्वभूतान्तर्याम्यात्मा । आत्मेदं
 सर्वं नारायणः । नारायणः स्वयं ज्योतिः । तस्मात्प्रकाशात्मा ॥

नीवारशूकवत्तन्वी पीतां भास्वत्यणूपमा ।
 तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥
 पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सनातनः ।
 तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषामावेन तण्डुलः ॥
 परब्रह्म स्वयं चात्मा साक्षान्नारायणः स्मृतः ।
 नारायणमनादिं च योगनिद्रापरायणम् ॥
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीषु सर्वकालव्यवस्थितम् ।
 नारायणं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।
 सर्ववेदान्तसंलक्ष्यं तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥

होवाच भगवान् नारायण एवेदं सर्वं प्रतिष्ठितं य एवं वेद ।

इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये प्रथमः खण्डः

द्वितीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परवस्तु भवतीति विज्ञायते ।

सच्चिदानन्दरूपाय ज्ञानायामिततेजसे ।

परब्रह्मस्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥

नित्यशुद्धाय बुद्धाय नित्यायाद्वैतरूपिणे ।

आनन्दायात्स्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥

ओं नमो भगवते श्रीमन्नारायणाय महाविष्णवे अमितबलपराक्रमाय
शङ्खचक्रगदाधराय लक्ष्मीसमेताय गरुडवाहनाय दशावताराय सर्वदुष्टदै-
त्यदानवसंहरणाय शिष्टप्रतिपालकाय परब्रह्मरूपाय महात्मने परमपुरुषाय
पुण्डरीकाक्षाय पुराणपुरुषाय शुद्धबुद्धाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय महात्मने
ऋणिः सूर्य आदित्य ॐ नमो नारायणाय सहस्रारं हुं फट् स्वाहा ॥

नारायणाय शान्ताय शाश्वताय मुरारये ।

यज्ञेश्वराय यज्ञाय शरण्याय नमो नमः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा सर्वं विश्वमिदं नारायणः य एवं
वेद इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परब्रह्मेति य एवं वेद ।
नारायणात्मा वेदं सर्वं निर्विकारं निरञ्जनवस्तु प्रतिपाद्यते । स नारायणो
विगात्पुरुषो भवति । देवानां वासवो भवति । इन्द्रियाणां मनो भवति ।

सर्वेषां वस्तूनां मुख्यवस्तु भवति । ॐ नमो नारायणादन्यो मन्त्रः
 नारायणादन्योपास्तिर्नास्ति । नान्यन्नारायणादुपासितव्यम् । सर्वं नारायण
 एव भवतीति विज्ञायते । योऽधीते नित्यं सर्वान् कामानवाप्नोति । स
 ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । सुरापानात् पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात् पूतो
 भवति । गुरुतल्पगमनात् पूतो भवति । अगम्यागमनात् पूतो भवति ।
 अभक्ष्यभक्षान् पूतो भवति । स उपपातकमहापातकेभ्यः पूतो भवति ।
 सर्ववेदमधीयानो भवति । सर्वक्रतुफलं प्राप्नोति । सर्वकर्मकर्ता भवति ।
 चतुःसमुद्रपर्यन्तभूदानफलं प्राप्नोति । द्विजोत्तमो भवति । चतुर्वर्गफलं
 प्राप्नोति । ब्रह्मचारी ज्ञानवान् भवति । गृही पुत्रपौत्रमहैश्वर्यवान् भवति ।
 सत्यासी मोक्षवान् भवति ॥

पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

नारायणप्रसादेन वैकुण्ठपदमश्नुते ॥

इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः ।

तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ॥

नारायण हरे कृष्ण वासुदेव जगद्गुरो ।

मुकुन्दाच्युत देवेश महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥

भूतानि तत्त्वसंज्ञानि कूटस्थोऽक्षरसंज्ञितः ।

उत्तमश्चापि पुरुषो नारायण इतीर्यते ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये तृतीयः खण्डः

इति नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नृसिंहषट्चक्रोपनिषत्

ॐ देवा ह वै सत्यं लोकमायंस्तं प्रजापतिमपृच्छन्नारसिंहचक्रो ब्रूहीति । तान्प्रजापतिनारसिंहचक्रमवोचत् । षडै नारसिंहानि चक्राणि भवन्ति । यत् प्रथमं तच्चतुरं यद्वितीयं तच्चतुरं यत्तृतीयं तदष्टारं यच्चतुर्थं तत्पञ्चारं यत्पञ्चमं तत्पञ्चारं यत् षष्ठं तदष्टारं तदेताति षडेव नारसिंहानि चक्राणि भवन्ति ॥

अथ कानि नामानि भवन्ति । यत् प्रथमं तदाचक्रं यद्वितीयं तत्सुचक्रं यत्तृतीयं तन्महाचक्रं यच्चतुर्थं तत्सकललोकरक्षणचक्रं यत्पञ्चमं तद्द्यूतचक्रं यद्वै षष्ठं तदसुरान्तकचक्रं तदेतानि षडेव नारसिंहचक्रनामानि भवन्ति ॥

अथ कानि त्रीणि वलयानि भवन्ति । यत्प्रथमं तदान्तरवलयं भवति । यद्वितीयं तन्मध्यमं वलयं भवति । यत् तृतीयं तद्बाह्यं वलयं भवति । तदेतानि त्रीण्येव वलयानि भवन्ति । यदा तद्वैतद्वीजं यन्मध्यमं तां नारसिंहगायत्रीं यद्बाह्यं तन्मन्त्रः ॥

अथ किमान्तरं वलयम् । षडान्तराणि वलयानि भवन्ति । यन्नारसिंहं तत्प्रथमस्य यन्माहालक्ष्म्यं तद्वितीयस्य यत्सारस्वतं तत्तृतीयस्य यस्य यत्कामं देवं तच्चतुर्थस्य यत् प्रणवं तत्पञ्चमस्य यत्क्रोधदैवतं तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षडान्तराणि वलयानि भवन्ति ॥

अथ किं मध्यमं वलयम् । षडै मध्यमानि वलयानि भवन्ति । यन्नारसिंहाय तत्प्रथमस्य यद्विद्महे तद्वितीयस्य यद्वज्रनखाय तत्तृतीयस्य यद्वीमहि तच्चतुर्थस्य यत्तत्तत्तत्पञ्चमस्य यत्सिंहः प्रचोदयादिति तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षण्मध्यमानि वलयानि भवन्ति ॥

अथ किं बाह्यं बल्यम् । षड् बाह्यानि बल्यानि भवन्ति । यदाचक्रं
यदात्मा तत्प्रथमस्य यत्सुचक्रं यत्प्रियात्मा तद्द्वितीयस्य यन्महाचक्रं
यज्ज्योतिरात्मा तत्तृतीयस्य यत्सकललोकक्षणचक्रं यन्मायात्मा तच्चतुर्थस्य
यदाचक्रं यद्योगात्मा तत्पञ्चमस्य यदसुरान्तकचक्रं यत्सत्यात्मा तत् षष्ठस्य ।
तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षट् बाह्यानि बल्यानि भवन्ति ॥

कैतानि न्यस्यानि । यत्प्रथमं तद्धृदये यद्द्वितीयं तच्छिरसि यत्तृतीयं
तच्छिखायां यच्चतुर्थं तत्सर्वेष्वङ्गेषु यत्पञ्चमं तत्सर्वेषु [?] यत् षष्ठं तत्सर्वेषु
देशेषु । य एतानि नारसिंहानि चक्राण्येतेष्वङ्गेषु विभृयात् तस्यानुष्टुप्
सिध्यति । तं भगवान् नृसिंहः प्रसीदति । तस्य कैवल्यं सिध्यति । तस्य
सर्वे लोकाः सिध्यन्ति । तस्य सर्वे जनाः सिध्यन्ति । तस्मादेतानि षण्णां
नारसिंहचक्राण्यङ्गेषु न्यस्यानि भवन्ति । पवित्रं च एतत्तस्य न्यसनम् ।
न्यसनान्नृसिंहानन्दी भवति । कर्मण्यो भवति । ब्रह्मण्यो भवति
अन्यसनान्नृसिंहानन्दी भवति । न कर्मण्यो भवति । तस्मादेतन्मयं
तस्य न्यसनम् ॥

यो वा एतं नारसिंहं चक्रमधीते स सर्वेषु वेदेष्वधीतो भवति ।
स सर्वेषु यज्ञेषु याजको भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति ।
स सर्वेषु मन्त्रेषु सिद्धो भवति । स सर्वत्र शुद्धो भवति । स सर्वरक्षो
भवति । भूतपिशाचशाकिनीप्रेतवन्ताकनाशको भवति । स निर्मयो भवति ।
तदेतन्नाश्रद्धानाय प्रब्रूयात्तदेतन्नाश्रद्धानाय प्रब्रूयादिति ॥

इत्याथर्वणीये नृसिंहचक्रोपनिषत् समाप्ता

पारमात्मिकोपनिषत्

सव्याख्या

ओं विष्णुस्सर्वेषामधिपतिः परमः पुराणः परो लोका-
नामजितो जितात्मन् भवते भवाय स्वाहा ॥ १ ॥

यः सर्वलोकैरपि वन्दनीयः स्मृतिं शुभां यच्छति यो नराणाम् ।
तस्मै नमो यः कुलदैवतं नरः स राघवो मे हृदि सन्निधत्ताम् ॥

श्रीलक्ष्मीवल्लभाद्यां तां विखनोमुनिमध्यमाम् ।

अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

श्रीविष्णुमानसाज्जातो विष्णुवागमविशारदः ।

तं वन्दे सूत्रकर्तारं वैष्णवं विखनोमुनिम् ॥

व्याप्नोतीति विष्णुः सर्वव्यापक इत्यर्थः ॥

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ इति श्रुतेः

विश्वव्यापनशीलत्वाद्विष्णुरित्युच्यते बुधैः ॥ इति ॥

नन्वादौ तावत् परंब्रह्मपरंज्योतिः परंतत्त्वपरमात्मादिशब्दा विद्यन्ते
चत्वारः पारमात्मिकं भवति ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् ।

अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

इति वचनात् त्रयाणां पारमात्मिकत्वमिति चेदुच्यते ॥

अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च ।

षडक्षरश्च यो मन्त्रो विष्णोरमिततेजसः ॥

एते मन्त्राः प्रधानास्तु वैदिकाः प्रणवैर्युताः ।

प्रणवेन विहीनास्तु तान्तिका एव कीर्तिताः ॥

इति भगवन्मन्त्रेष्वव्यापकमन्त्रापेक्षया व्यापकमन्त्राः प्रधानाः ।
व्यापकमन्त्रेषु च अष्टाक्षरषडक्षरौ । अष्टाक्षरेण प्रतिपाद्यो नारायणः ।
षडक्षरेण प्रतिपाद्यो विष्णुः । प्रधानभूतनारायणविष्णुशब्दाभ्यां वासु-
देवादिशब्दैश्च उत्तरत्र प्रतिपाद्यैः परंब्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दैः
पर्यायवाचकैश्च क्रियाकाण्डत्वादूदुःसित एव विष्णुशब्दप्रयोगः ॥

किञ्च—“विष्णोरंशस्तु पुरुषः” इति दैविकव्यूहभूतस्य पुरुषस्य
मानुषव्यूहभूतस्य वासुदेवस्य मूलभूतत्वाद्विष्णुशब्दग्रहणम् । यद्वा—सर्वमन्त्रा
अपि परंब्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दप्रयोगात् अद्वारकत्वेन सद्धार-
कत्वेन भगवल्लीलाप्रतिपादकत्वात् भगवत्प्रादुर्भावाविभावलीलाप्रतिपाद-
कत्वाद्वा सर्वेषामधिपतिः सर्वेषां ब्रह्मरुद्रादीनां नित्यमुक्ता
सर्वशब्दस्य सङ्कोचाभावात् चेतनाचेतनवर्गाणामण्डाद्बहिर्भूता-
नामप्यधिपतिनि . . . “पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्” इति श्रुतेः ॥

श्वेताश्वतरे—

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।

ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः ।

स्त्रीप्रायमितरत् सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ॥ इति ।

परमः परि . . मास्मेति परमः समाभ्यधिकरहितः । यद्वा उत्कृष्टः
पुराणः अनादिः परो लोकानाम् ।

एकतो वा जगत्सर्वमेकतो वा जनार्दनः ।

सारतो जगतः कृत्स्यादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ इति ॥

अजितः जेतुमशक्यः ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवदानवयक्षराक्षसादिभिः रहितः
इत्यर्थः ।

यद्वा—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
इति श्रुतेरवाङ्मनसो गोचरत्वात् योगिभिरप्यजितः ॥
नारसिंहपुराणे —

हिरण्यकशिपोस्त्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः ।
क्षीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः ।
युष्माभिः संस्तुतो विष्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥
इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम् ।

तस्मै कोपाभिभूतस्य नृसिंहस्य जगत्पतेः ।
दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रसुर्देवदानवाः ॥
इत्यारभ्य शरभनिर्माणादिकं प्रतिपाद्यते । ततस्तस्य भवानीश . . .
ण्डस्थानमयाचत ।

पृष्ठभागे चतुर्वक्त्रं तस्य रुद्रो न्यवेशयत् ।
सोमसूर्यौ नयनयोर्मरुतं पक्षयोर्द्वयोः ॥
पादेषु भूचरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् ।
एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः ॥
ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् ।
ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः ॥
अभ्याशमगमद्विष्णोः निनदन्मैरवस्वनम् ।
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा नृसिंहः शरभं रुषा ।
जघान निशितैरुग्रैस्तीक्ष्णैर्नखवरायुधैः ॥

निहते शरमे तस्मिन् रौद्रे मधुनिघातिना ।

तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्षयस्तथा ॥ इति ॥

भवाय रुद्राय अजितः जितार्तभक्तैः जितात्मन्,

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः ॥

इति वचनात्,

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।

इति भगवद्वचनाच्च ।

यद्वा—परशुराममन्तरत्वात् रामभद्रेण जितात्मन् । यद्वा—
स्वभक्तस्य भीष्मस्य प्रतिज्ञापरिपालनार्थं जगद्रक्षणार्थं च भवाय उत्पन्नाय
भवते तुभ्यं स्वाहा ।

स्वाहास्वधावषड्वौषण्मःपर्यायवाचकाः ।

भारते—

ओमिति ब्रह्मणो योनिर्नमःस्वाहास्वधावषट् ।

यस्यैतानि प्रयुज्यन्ते यथाशक्ति कृतान्यपि ॥

न तस्य त्रिषु लोकेषु परं लोकेषु संविदुः ।

इति वेदां वदन्ति स्म वृद्धाश्च परमर्षयः ॥

स्वधा नम इति . . . वषट्कारोति च [?] ।

नमःशब्दप्रधानाद्वा स्वाहाशब्द इवेति तु ॥

स्वाहाशब्दे नमःशब्दः प्रतिपादितः । अनेन प्रपत्तिः प्रतिपादिता ॥

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया ।

रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते ॥

लक्ष्मीं महीं च शेषं हि विभूतिमुभयात्मिकाम् ॥

“अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी”.

लक्ष्मीविशिष्ट एवैकः प्रपत्तव्य इहोदितः ॥ इति ॥

लक्ष्मीविशिष्ट एव प्रपत्तव्य इत्यभिप्रायेणादौ विष्णुशब्दः । एतत्सर्व-
मेकादशानुवाके विस्तरेणोच्यते ॥ १ ॥

सुमुख्यः सार्वः सर्वेषामन्तरात्मा तस्थुः तस्थुषां जङ्गमो
जङ्गमानां विश्वविभूणां विभवोद्भवाय स्वाहा ॥ २ ॥

अजडं स्वात्मसंबोधि नित्यं सर्वावगाहि यत् ।

ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुणचिन्तकाः ॥

स्वरूपं ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते ।

जगत्प्रकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥

श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत् ।

बलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकैः ॥

कर्तृत्वं नाम यत्तस्य स्वातन्त्र्यं परिवृंहितम् ।

ऐश्वर्यं नाम तत्प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकैः ॥

तस्यापादानभावेऽपि विकारविरहे हि यः ।

वीर्यं नाम गुणस्यायमच्युतस्यापराह्वयः ।

सहकार्यमपेक्ष्यं यत् तत्तैजसमुदाहृतम् ॥ इति ॥

ज्ञानादिषाङ्गुण्यसंपूर्णं नानाव्यूहैकहेतुकं लक्ष्मीलक्षणसंयुक्तम् ।

“ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ” इति श्रुतेः । निरुपाधिकसत्तायोगत्वं सत्यत्वं नित्या-
सङ्कुचितज्ञानैकाकारत्वं ज्ञानत्वं कालतो वस्तुतो देशतश्चापरिच्छिन्नत्व-
मनन्तत्वमिति ब्रह्मस्वरूपशोधकवाक्यप्रतिपन्नसत्त्वादिविशिष्टम् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

संभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।

नेता गमयिता स्रष्टा शंकारार्थस्तथा मुने ॥

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।

स च सर्वेषु भूतेषु वकारार्थस्तथा मुने ॥

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥

एवमेव महाभाग मैत्रेय भगवानिति ।

परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यथा ।

शब्दोऽयं सोपचारेण ह्यन्यत्र ह्युपचारतः ॥ इति ॥

भगवच्छब्दशब्दितमित्यादिगुणविशिष्टं परं ब्रह्म विष्णुरेवेति
विज्ञाप [नेन] सुसूक्ष्म इत्युक्तम् ।

श्रीवैखानसे तर्ककाण्डे ब्रह्मचिन्ताध्यायेऽभिहितम्—

आपः पृथिव्या सूक्ष्मास्तु तेभ्यस्तेजस्ततोऽनिलः ।

तस्मादाकाशमेतस्मात्तन्मात्राणि मनीषिणः ॥

तेभ्यः सूक्ष्मो ब्रह्मकारस्त्रिधाभूय व्यवस्थितः ।

तस्मान्महान् त्रिधा भूतो बुद्धिलक्षणलक्षितः ॥

तस्मात्तु मूलप्रकृतिरव्यूढगुणवृंहिता ।

ततो व्यष्टिसमष्ट्याख्यो जीवः सूक्ष्मतरः स्मृतः ॥

ततो व्योमपदं विष्णोः स्थानमानन्दपूरितम् ।

तस्मात्तत्पञ्चशक्तिस्थं पञ्चोपनिषदात्मकम् ॥

पञ्चमूर्तिविभेदेन विभिन्नं विश्वतोमुखम् ।

आभूतसंलवस्थानं स्वरूपं चिद्धनं परम् ॥

विष्णोरकुण्ठवीर्यस्य नानाव्यूहैकहेतुकृतम् ।

ततः षड्गुणसंपूर्णं लक्ष्मीलक्षणसंयुतम् ॥

सत्यं ज्ञानमनन्ताख्यं भगवच्छब्दशब्दितम् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्ममिति ख्यातं स्वरूपं रूपवर्जितम् ॥

जातिक्रियादिरहितं सरूपं गुणसङ्गतम् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्ममवाप्नोति परंब्रह्मेदमव्ययम् ॥ इति ॥

सार्वः “ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ” इत्यादिश्रुतिसिद्धम् ।

आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि ॥ इति ॥

सर्वेषामन्तरात्मा ब्रह्मरुद्रादीनामन्तरात्मा । “ अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ” इति श्रुतेः, “ यस्त्वात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम् ” इत्यादिश्रुतेश्च । तस्थुः तस्थुषां स्थावराणां मध्ये अतिशयेन तथा परभूतः “ मेरुः शिखरिणामहम् ” इति भगवद्वचनात् । जङ्गमो जङ्गमानां जङ्गमेष्वप्यतिशयं जङ्गमभूतः । यद्वा शक्तिप्रदः । विशुर्विभूणां आकाशादीनामपि । तथा विभवोद्भवाय एवं तस्य परमात्मन उद्भवः प्रादुर्भावः अवतारादिषु—

यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः ।

अपश्यन्तः परं भावं नमस्तस्मै परात्मने ॥ इति ॥

एवमवतारादिषु प्रादुर्भावः—

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।

आत्ममायां विनेशस्य परस्य स्रष्टुरात्मनः ॥

रामायणे—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ॥

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥ इति ॥

तस्मै दिशं प्रतिपाद्य ज्योतिर्मयानि सर्वाण्यपि पारमात्मिकान्येवेति
प्रतिपादयति ॥ २ ॥

ज्योतिर्वा पारमात्मिकं सार्वं विश्वं भवं भवाय प्राभूतं
प्राहिष्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे स्वाहा ॥३॥

सूर्यचन्द्रामचादिषु स्थितं ज्योतिः पारमात्मिकम् ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ इति ॥

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुना

सर्वाणि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।

नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं

यदस्ति यच्चास्ति च विप्रवर्यः ॥ इति ॥

नक्षत्राणि च विश्वलोकं साव विश्वं सर्वलोकसंज्योतिः । पार-
मात्मिकं “अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते”, “विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः
पृष्ठेष्वनुत्तमेषु” इत्यादिश्रुतिसिद्धम् । “एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्ये”, ।

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

इति श्रुतिषु श्रूयमाणत्वात् । विश्वाधिपस्य रुद्रस्य जननं
कथमुपपद्यत इति शङ्कायां तद्वा श्रुत्यर्थं भवशब्दः भवाय रुद्राय प्राभूतं प्रभूतं
बहुविधमित्यर्थः । परं भवमुत्पत्तिं प्राहिष्वन् प्रायच्छन् । “नारायणाद्भुद्रो
जायते” इत्यादिश्रुतिभ्यः “ललाटात्क्रोधजो रुद्रो जायते” इत्यादि ।

ब्रह्मणो वै ललाटाच्च ततो देवस्य वै द्विज ।

क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥ इति ॥

“अष्टौ वसव एकादश रुद्राः”, “सहस्राणि महस्रशो ये रुद्राः”
इति श्रुत्यन्तरेषु श्रूयमाणत्वात् पारमात्मिकोपनिषदि च प्राभूतं प्राहिण्व-
न्वित्युक्तम् । अनेनैकत्वनिवृत्तिः । अस्य मन्त्रस्य परम्पराय इत्यारभ्य
ईशो यस्मादित्यत्रान्वयः । सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे ॥ ३ ॥

ईशो यस्माद्विततं वितत्य कं धृतं कामहुतो जुहोति
ककुदं : कुच्छित्वा भूयः पराय स्वाहा ॥ ४ ॥

ईशः रुद्रः यस्मात् सागराणामुज्जीवनकारणात् विततं विस्तृतं
धृतं शिरसा धृतं कं गङ्गाजलं वितत्य भूमौ विस्तार्य सुकृताय कृतवते
वरमनं विश्वं भवं भवाय प्राभूतं प्राहिण्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै
पराय परं कामहुतः कामदाहको रुद्रः ककुदं श्रेष्ठः दक्षः ककुच्छित्वा
जुहोति अग्नौ प्रक्षिप्तवान् । भूयः पुनरपि पराय विभक्तिव्यत्ययः
ब्रह्मणः शिरश्छित्वा प्रक्षिप्तवान् । एवंभूताय रुद्राय सुकृतं कृताय ईशिषे
सम्भूय तुभ्यं इत्यर्थः ।

अयमेवार्थो मात्स्ये—

ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च ।

वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मया ॥

ब्रह्मा—

यस्मादनपराद्धस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम ।

तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि ॥

ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चरन् तीर्थानि भूतले ।

ततोऽहं गतवान्देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥

तत्र नारायणः श्रीमान् मया मिक्षां प्रयाचितः ।

ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् ॥

स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता ।
 विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा ।
 स्फुटितं बहुधा जातं स्वमलब्धं धनं यथा ॥

विष्णुधर्मे—

अच्युतानन्तगोविन्दमन्त्रमानुष्टुभं परम् ।
 ॐ नमःसंपुटीकृत्य जपन् विषधरो हरः ॥
 यन्नजीर्णं च गरलं कण्ठे स्तब्धं कपालिनः ।
 अन्तरात्मधृतस्तस्य हृदये गरुडध्वजः ॥ इति ॥
 मैत्रलोके भक्ष्यमाणे तथा मातृगणेन वै ।
 नृसिंहमूर्तिदेवेशं प्रदद्याद्भगवान् शिवः ॥ इति ॥

वराहे—

प्रागितिहासेऽगस्त्यं प्रति रुद्रः—ब्रह्माणं च पुरा सृष्टः पुण्डरीकाक्षः
 रुद्रेण दृष्टः । कस्त्वमिति प्रोक्तः सृज इति प्रजाः ।

अविज्ञातासमर्थोऽहं निमग्नः सलिले द्विजः ।

इत्यारभ्य जलमध्ये कालमेघसङ्काशः पुण्डरीकाक्षः रुद्रेण दृष्टः
 कस्त्वमिति पृष्टस्य वचनम्—

अहं नारायणो देवो जलशायी सनातनः ।
 दिव्यं चक्षुर्भवतु ते तेन व . . यन्नतः ॥
 एवमुक्तस्तदा तेन यावत्तस्याप्यहं तनुः ।
 तावदङ्गुष्ठमात्रं तु ज्वलद्भास्करतेजसम् ॥
 तमेवाहं प्रपश्यामि तस्य नामौ तु पङ्कजम् ।
 ब्रह्माणं तत्र पश्यामि ह्यात्मानं च तदङ्गतः ॥

इत्यारभ्य रुद्रेणानन्तरं [?] विष्णुः—

सर्वज्ञस्त्वं न सन्देहो ज्ञानराशिः सनातनः ।
 देवानां च परः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि ॥
 एवमुक्तः पुनर्वाक्यमुवाचोमापतिस्तथा ।
 अन्यद्देहि वरं देव प्रसिद्धं सर्वजन्तुषु ॥
 मर्त्यो भूत्वा भवानेव मामाराधय केशव ।
 मां वहस्व च देवेशं वरं मत्तो गृहाण च ।
 येनाहं सर्वदेवानां पूज्यात्पूज्यतरोऽभवम् ॥

विष्णुः—

देवकार्यावतारेषु मानुषत्वमुपागतः ।
 त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव ॥
 यत्त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव उमापते ।
 सोऽहं नमामि देव त्वां मेघो भूत्वा शतं समाः ॥
 एवमेव हरिर्देवः सर्वेशः सर्वभावनः ।
 वरदोऽभूत्ततो मद्यं तेनाहं दैवतैर्नतः ॥ इत्यादि ॥

पुराणसङ्ग्रहे—

अङ्गुष्ठाग्रविनिर्मिण्णादण्डकोशात्स्रवज्जलम् ।
 विष्णोरादाय चार्घ्यं वै ददौ तस्मै चतुर्मुखः ॥
 तत्पादशौचविमलं तोयमासीत्सरिद्वरा ।
 पुण्या त्रिपथगङ्गा यां दधार शिरसा स्वयम् ॥

ईश्वरसंहितायाम्—

पुरा त्रिभुवनाक्रान्तं हरिणा बलिबन्धने ।
 मम लोके पदं प्राप्तं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ॥

पारमात्मिकोपनिषत्

९७

पादं दत्तं मया पुत्र कमण्डलुजलेन वै ।
 कमण्डलुजलं स्वल्पं कृतमन्तर्गतं हि तत् ॥
 धर्मं समीपतो दृष्ट्वा . . चोक्तं जलं भव ।
 द्रवीभूतस्तथा धर्मो हरिभक्त्या महामुने ॥
 गृहीत्वा धर्मपानीयं पादं नाथस्य तुष्टये ।
 क्षाळितं परया भक्त्या पाद्यार्घ्यादिभिरर्चितः ॥
 तदम्बु पतितं दृष्ट्वा दधार शिरसा हरः ।
 पावनार्थं जटामध्ये योग्योऽस्मीत्यवधारणात् ।
 वर्षायुतानथ बहून् न मुमोच तथा हरः ॥

श्रुतिरपि—“ ये मरुतामर्चयन्ति रुद्रं यत्तेजनी चारुदन्तं पदं
 यदिष्णोरुपमं निधाय तेन पासि गुह्यं गोनाम् ” इतीयं श्रुतिः त्रिविक्रमावतार-
 मुद्दिश्य गङ्गाविषयत्वेन श्रूयत इति केचिद्वदन्ति । ब्रह्मरुद्रादीनामपि
 वरप्रदानादिषु समर्थतेत्यर्थः ॥ ४ ॥

रायामीशो रहितो भरन्त्यै रां रां वहन्त्याहितः रायां
 पतिं रां रां धरते धरित्र्यै रां वहतोद्वहाय स्वाहा ॥ ५ ॥

रायां “ रै ऐश्वर्ये ” इति धातुसिद्धैश्वर्यवाचकरैशब्दाभिहि-
 तानामैश्वर्याणां ईशः तद्भोगार्हः परमतमः प्रभुः रहितः ताभिरैश्वर्यैर्वि-
 हीनः चतुर्दशाब्दप्रमाणवनवासहेतुकपितृवाक्यपरिपालनद्वारा समस्तैश्वर्यरहित
 इत्यर्थः । रां सकलप्राणिपोषकां रां भूमिं प्रति वहन्त्या आत्मसौशील्यानुकूल-
 प्रभुसेवां वाञ्छन्त्या अतिभक्तिभरसहितभरतोपयुजा सकलप्रजया भरन्त्यै
 सकलप्राणिसंरक्षणमाप प्रक्रियायै रां आहितः भूमिं प्रति तन्नासिं प्रति
 यः वनवासात्पुरमागच्छेति महामक्तिपुरस्कृतप्रयत्नेन प्रार्थितः यः रायां पतिं

प्रसिद्धक्षत्रियधर्मरूपाणामैश्वर्याणां पतिं अत्र विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः ।
 “बहुलं छन्दसि” इत्यत्र बहुलग्रहणादतः पतिः प्रतिष्ठापक इत्यर्थः । यः
 रां स्वीयपठनश्रवणधारणानुष्ठानैः परिपावयित्रीं सकललोकान् रां रावयति
 समस्तदुरितातिगा ऋग्यजुस्सामात्मिका श्रुतिः तां धरते तत्प्रतिपाद्यत्वेन
 प्रतिष्ठां धत्ते । प्रतिपाद्यमाहात्म्य इत्यर्थः । यः पुनरपि चतुर्दशाब्दसङ्कल्पित-
 वनवासप्रतिज्ञानिवृत्त्यनन्तरं धरित्र्यै श्रीमदयोध्याभूमिप्राप्त्यै हेतुभूतां रां
 सकललोकपावनहेतुभूतश्रीरामायणकथारूपिणीं कीर्तिसम्पत्तिं बहूतः बहूते ।
 अत्रापि विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः । उद्बहाय अवतारविशेषेऽपि परमपावन-
 शक्तिवहाय श्रीरामस्वरूपाय परमात्मने स्वाहा नम इति सूत्रार्थः ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मशब्दः प्रणवः प्रधानः शब्दः शब्दान्तरात्मनित्यो
 वियन्तः यत्तः प्रतरन् प्रकामं प्राजापत्यं प्रतरन् प्रकुर्वन् भूयो
 भूत्यै अचरं चराय स्वाहा ॥ ६ ॥

उत्तरप्रतिपाद्यमानायाः न्यासविद्यायाः प्रधानभूतप्रणवस्वरूपप्रति-
 पादनमुपेन न्यासविद्याफलं च प्रतिपादयति—यो ब्रह्मशब्द इत्यादिना ।
 यो ब्रह्मशब्दवाच्यप्रणवः । “ओमिति ब्रह्म” इति श्रुतिः । तस्य प्रधानोऽयं
 शब्दः शब्दान्तरात्मशब्दबुद्धिकर्मणां त्रिभिर्क्षणावस्थायित्वात् शब्दनाशेऽपि
 परमात्मनो नाशभावात् नित्य इत्युक्तम् ।

कठवल्लिकोपनिषदि—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
 यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥
 एतद्वचेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदवाक्षरं परम् ।
 एतद्वचेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

आकाशगमनादीनामन्यासां सिद्धिसम्पदाम् ।
 स्वेच्छामात्रेण संसिद्धिः प्राकाम्यमभिधीयते ॥
 स्वशरीरप्रकाशेन सर्वार्थानां प्रकाशनम् ।
 प्राकाम्यमिदमैश्वर्यमिति केचित्प्रचक्षते ॥
 स्वेच्छामात्रेण लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकर्तृता ।
 सूर्यादिना वियोक्तृत्वमीशित्वमभिधीयते ॥
 सलोकपालाः सर्वेऽपि लोकाश्चेद्वशवर्तिनः ।
 तदैश्वर्यं वशित्वाख्यं सुलभं शिवयोगिनाम् ॥ इति ॥

चराय संसरते प्रत्यगात्मने अचरन्नाशरहितमैश्वर्यं कुर्वन् । यद्वा
 अचरन्नाशरहितमैश्वर्यं कुर्वन् चराय सृष्टिस्थितिसंहारादिगतिं कुर्वते
 तुभ्यमित्यर्थः ॥

विष्णुपुराणे—

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां ब्राह्मं सद्यसासिनां स्मृतम् ।
 एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ते ।
 तेषां तत्परमस्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥ इति ॥

प्रधानशब्द इत्यनेन त्रिमात्रशब्दः । एवं श्रूयते उपनिषदि—“ यः
 पुनरेतल्लिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये
 सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः
 स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् ” इति । प्रणवशब्दार्थः अथर्वशिरसि—
 “ अरसादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋचो यजुंषि सामान्यथर्वाङ्गि-
 रसश्च यज्ञब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणवयति । तस्मादुच्यते प्रणवः ” इति । न्यास-
 विद्यास्वरूपमुत्तरत्र प्रतिपाद्यते ॥ ६ ॥

यो वा त्रिमूर्तिः परमः परश्च

त्रिगुणं जुषाणः सकलं विधत्ते ।

त्रिधा त्रिधा वा विदधे समस्तं

त्रिधा त्रिरूपं सकलं धराय स्वाहा ॥ ७ ॥

त्रिविक्रमस्यायं मन्त्रः । यः परमात्मा विष्णुः त्रिमूर्तिः
ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

विष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥

यद्वा—त्रिविक्रमत्वात्पदविक्षेपभेदेन त्रिमूर्तिः “इदं विष्णुर्विचक्रमे
त्रेधा निदधे पदम्” इति श्रुतिः । परमः त्रिविक्रमावतारापेक्षया ब्रह्मरुद्रादिषु
समाभ्यधिकामावात् परमशब्दः । परश्च अवतारत्वेऽपि उक्तृष्टः । त्रिगुणं
जुषाणः “जुषी प्रीतिसेवनयोः” इति त्रिगुणेषु सात्त्विकराजसतामसेषु
प्रीतिं कुर्वन् । यद्वा—सेवमानः सकलं चिदचिदात्मकं प्रपञ्चं विधत्ते ।
“व्यस्कन्नाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः” इति विष्णुरेव
ब्रह्मशब्दवाच्य इति ज्ञापयितुं ब्रह्माभ्यधितिष्ठतु भुवनानि धारयन्निति ।
“नमो विष्णवे बृहते करोमि ।”

बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेति प्रकीर्तितम् ॥ इति ॥

यद्वा—विधत्ते जगत्सृष्ट्यादिश्चरभेदेन त्रिधा त्रिधा वा विदधे
समस्तं ह्रस्वदीर्घसमरूपेण गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीय इति त्रिधाभिरूपेण
उत्तममध्यमाधमस्वर्गनरकमोक्षइत्यादि समस्तं त्रिधा त्रिधा विदधे चकार
त्रिरूपं स्त्रीपुत्रपुंसकादि त्रिधा भूत्वा त्रिविक्रमरूपी भूत्वा निवहं
स्वचकीयसहितैर्देवमनुष्यादिभिरावृतं विधत्ते धृतवान् तस्मै ॥ ७ ॥

यद्वा कृतममृतञ्चराणां यत्सर्वनिष्ठमजरं समस्तं यत्यश्नमान-
मात्माभिजुषाणमन्तस्सुषुप्त्यानभिगम्यमानाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रिविक्रमावतारे प्रत्यक्षे कृतस्य परमात्मानपरं रूपं स्वप्नेऽपि
देवैर्द्रष्टुमशक्यमित्याह—यच्चेति । कृतं त्रिविक्रमरूपेण कृतं सर्वनिष्ठमन्तर्व्या-
प्तमजरमपहतपाप्मत्वादियुतं समस्तं बहिश्च व्याप्तम् । यद्वा परिदृश्यमानं
सर्वमात्माभिजुषाणम् ।

आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि । इति ॥

जीवात्मना सेवमानमेवंविधरूपमन्तर्हृदये सुषुप्त्या स्वप्नेनापि अमृतच-
राणां अमृतं चरन्तीति अमृतंचरा देवाः । तेषामपि अनभिगम्यमानाय
ध्यातुमशक्याय । यद्वा—चराणां देवादीनाममृतं कृतं समुद्रमथनादिकं
कृतम् । यद्रूपं तत्पश्यमानं चेदपि सुषुप्त्या स्वप्नेनापि प्राप्तुमशक्यमिति
तस्मै ॥ ८ ॥

कः कोशमङ्गे कुशलं विधाय साकृतं कृष्वतेऽग्न इदं
सुकान्तं ककुद्धते ते कामचरं चराय स्वाहा ॥ ९ ॥

कः कोशं ब्रह्माण्डकोशमङ्गे म्वाङ्गे कुशल क्षेमसहितं विधाय
साकृत् आकृतिसहितं कृण्वते तत्र ब्रह्माणं कुर्वते अग्रे सृष्ट्यादौ ककुद्गते
श्रेष्ठचराय ब्रह्मणे सुकान्त मनोहरं कामचरं अण्डकोशं विधाय तत्र साकृतं
आकृतिसहितब्रह्माणं कृण्वते तुभ्यम् । अन्यत्रोपनिषदि—“अथ पुनरेव
नारायणः सोऽन्यं कामो मनसाध्यायत । तस्य ध्यानान्तस्थस्य
ललाटात् स्वेदोपहताः प्रपत आपस्तासु तेजो हिरण्मयमण्डलस्तत्र ब्रह्मा
चतुर्मुखोऽजायत” इति ॥ ९ ॥

यं यज्ञैर्मुनयो जुषन्ति यं देवाः परमं पवित्रं भविष्य-
न्यातिष्ठु प्रणताः प्रधानाः यं सूरयो जपन्तो योगिनः सूक्ष्मैः
सुप्रदर्शनैः पश्यन्तीश्वराय स्वाहा ॥ १० ॥

यं परमात्मानं महाविष्णुं यज्ञैः “यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु”
इति समाराधनैः पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयज्ञैः ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ इति ॥

“यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति” इति श्रुतेः ।

द्रव्ययज्ञादिभिर्मुनयः वैखानसाः ।

वैखानसैर्मुनिगणैः नित्यमाराधितोऽमलैः ।

वैखानसैर्मुनिश्रेष्ठैः पूजिताय वेङ्कदेशाय नमः ॥

इति पद्मवचनार्चनम् । अत्र प्रतिपादिता मुनय आपस्तम्बादयः ।

किंनरः स्वरिति चेत् ।

गारुडे—

पुरा चतुर्मुखादेशाञ्चत्वारो मुनयोऽमलाः ।

प्रणीय वैष्णवं शास्त्रं भूमावभ्यर्च्य यं नृपः ॥

मरीचिर्मन्दरे विष्णुमर्चयामास केशवम् ।

आदेशाद्ब्राह्मणो विष्णुं श्रीनिवासे त्रिरर्चयेत् ॥

काश्यपो विष्ण्वधिष्ठाने शुभक्षेत्रे भृगुर्मुनिः ।

नन्दायां दक्षिणे सीम्नि श्रमात्तरे [?] सखा ।

तच्छुद्धौ शुचिषं नाम भृगुणा स्थापितो हरिः ॥ इति ।

ब्रह्मकैवतं पुष्करतीर्थवैभववर्णने—“निम्नगानां यथा गङ्गा”

इत्यारभ्य,

यथा मुनीनां विखना आदिभूत उदाहृतः ॥ इति श्रुतिः ॥

धेनुर्वहाणामदितिस्सुराणां ब्रह्मा ऋभूणां विखना मुनीनाम् ॥ इति ॥

एवं श्रुतिस्मृतिपुराणादिमुख्यत्वेन वैखानसानामेव मुनिशब्दवाच्यत्व-
प्रतिपादनात् यज्ञैर्मुनयो जुपन्ति इत्युक्तत्वात् । आपस्तम्बादीनामद्वार-
भगवद्भजनविधिप्रतिपादनाभावात् । पञ्चपूजाप्रतिपादकस्य यमित्यत्र एकवच-
नास्वारस्याभावाच्च । वैखानसाः मुनयः जुपन्ति । यज्ञैः प्रीणयन्ति सेवां
कुर्वन्तीति वा । यज्ञशब्द आराधनपरः यं महाविष्णुं प्रधानदेवाः ब्रह्मरुद्रादयः ।

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ इति ॥

रूपबलप्रभावातिशयेन चिन्त्यत्वात् परमं इत्युक्तम् । पवित्रं उपनिषदि
“स एष सर्वभूतान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः” इति ।

अशुद्धा ब्रह्मरुद्राद्या जीवा विष्णोर्विभूतयः ।

तान्वै कुदृष्टसाम्यत्वं परत्वादप्युपासते ॥ इति ॥

अतएव पवित्रमित्युक्तम् । यद्वा स्वभक्तान् वज्रादपि त्रायत इति
पवित्रशब्दप्रयोगः ।

दन्ता गजानां कुलिशाग्रविष्णुराशीर्णयत्तेन जलं ममैतत् ।

महद्विपत्तित्वविनाशनो यो जनार्दनानुस्करणानुभावः ॥ इति ॥

अमृतापहरणे गरुडेन्द्रयोर्युद्धे च द्रष्टव्यम् । अत एव आर्तिषु प्रणता
भविष्यन्ति ।

श्रीमद्रामायणे वालकाण्डे—

राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योत्सेकेन बाधते । इत्यादि ।

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिस्सह ।

सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

त्वं गतिः परमो देवः सर्वेषां नः परन्तपः ।
 वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ॥
 एवमुक्तः सुरगणैः विष्णुस्त्रिदशपुङ्गवः ।
 पितामहपुरोगांश्च सर्वलोकनमस्कृतः ॥
 अब्रवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ।
 मयं त्यजत् भद्रं वो वधार्थं युधि रावणम् ॥
 सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ।
 हत्वा क्रूरं दुरात्मानं देवर्षीणां भयावहम् ॥ इत्यादि ॥

भागवते—

पुरासुराय गिरिशो वरं दत्वाप सङ्कटम् ।
 इत्यारभ्य अन्ते तु सङ्कटं लेभे नर चितः शिव इत्युक्तम् [?] बाणासुर-
 युद्धे च द्रष्टव्यम् ।

प्रसादयामास भवो देवं नारायणं प्रभुम् ।

शरणं च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हरिम् ॥ इति ॥

अनेन ब्रह्मरुद्रादीनामुपास्यराहित्यं तत्प्रयुक्तव्रतानामप्युपादेयराहित्यं
 च दर्शितम् । प्रधानधर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थेषु स्वाभिमतार्थप्रधान-
 मार्तिषु स्वाभिमतार्थालाभे नाशे च प्रणता भविष्यन्ति ।

गीतायाम्—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।

उदाराः सर्वे एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । इति ॥

यं परमात्मानं यं मन्त्रमिति काकाक्षिन्यायेनोभयत्रान्वयः । यं
मन्त्रराजमष्टाक्षरं यं विष्णुषडक्षरं मन्त्रं जपन्तः ।

पराशरः—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ।

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।

शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥

अपरैरश्रुतं किञ्चिद्य उपांशुजपः स्मृतः ।

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ॥

मन्त्रार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ।

त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥

अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च ।

षडक्षरश्च यो मन्त्रो विष्णोरमिततेजसः ॥

एते मन्त्राः प्रधानाः स्युर्वैदिकाः प्रणवैर्युताः ।

प्रणवेन विहीनास्तु तान्तिका एव कीर्तिताः ॥ इति ॥

सूरयो नित्यसूरयः अनन्तगरुडादयः पश्यन्ति । “तद्विष्णोः परमं
पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” इति श्रुतिः । यद्वा ब्रह्मविदः पश्यन्ति योगिनः
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरित्यष्टाङ्गयोगिनः ध्यानेन
पश्यन्ति ।

यद्वा

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तिषु ।

इति भगवत एवोपायोपेयत्वम् । अनेन सिद्धरूपा प्रपत्तिः साध्यरूपा
प्रतिपाद्यते ।

समर्थपुरुषार्थानां साधकस्य दयानिधेः ।
 प्रमतः पूर्वसिद्धत्वात्सिद्धोपायविदो विदुः ॥
 भक्तिप्रपत्तिप्रमुखैस्तद्वशीकारकारणम् ।
 तत्तद्भलानि साध्यत्वात्साध्योपायं विदुर्बुधाः ॥ इति ॥
 ईदृशः परमात्मा यः प्रत्यगात्मा तथेदृशः ।
 तत्सम्बन्धानमिति [?] योगः प्रकीर्तितः ॥

यद्वा—

योगःसन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तिषु ॥ इति ॥
 स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।
 स्वदत्तस्वधया स्वार्थं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वयम् ॥ इति ॥
 सर्वदानुसन्धानम्—

स्वोजीवनेच्छा यदि ते स्वदत्तायां स्पृहा यदि ।
 आत्मनिक्षेपणं दास्यं हरेः स्वाम्यं सदा स्मरेत् ॥ इति ॥
 कर्मयोगिनस्तं सुप्रदर्शनैः उद्दिष्टादिकालव्यतिरिक्तकालेषु भगव-
 दाराधनादिकं कुर्वन्ति । भगवद्भक्ताः कैङ्कर्यपराः परात्मयोगिन इत्युच्यन्ते ।
 एतेषां भगवद्विश्लेषमसहमानानाम् ।

न प्रदोषे हरिं पश्येत् ।
 यदि पश्येत्प्रमादेन द्वादशाब्देन नश्यति ॥
 इति हरिदर्शननिषेधे नास्त्येव स्मृतिः—
 अर्चकान् परिचारांश्च वैष्णवान् ज्ञानिनो यतीन् ।
 दासीदासादिकांश्चैव ॥
 तापत्रयानलोज्वालामालिने देहमन्दिरे ।
 विष्णुभक्तिरसैः शान्तिं जानन् कः कालमीक्षते ॥

कालोऽस्ति यज्ञे कालोऽस्ति दाने कालोऽस्ति वै जपे ।

सर्वेशदर्शने कालो वक्ष्यमाणस्तदञ्चितः ॥ इति ॥

मौनं वाचोनिवृत्तिः स्यान्नात्र भाषणसंस्कृतम् ।

नान्यदेवेरणं विष्णोः सदा ध्यायेच्च कीर्तयेत् ॥

सुप्रदर्शनैरित्युक्तं सुप्रदर्शनैः पश्यन्ति । अत्र प्रणता इत्यनेन
परमात्मनो नारायणस्य पादारविन्दे न्यस्तभरा उच्यन्ते । परमात्मनि
नारायणे सर्वभारसमर्पणात् ।

संज्ञातनैरपेक्षं तु नम इत्युच्यते बुधैः ।

भरन्यासबलादेव स्वयत्नविनिवृत्तये ।

अत्रोपायान्तरस्थाने रक्षको विनिवेशते ॥ इति ॥

प्रकर्षेण नताः प्रणताः । नमःशब्दस्य स्थूलसूक्ष्मपरमो जन इति
अहिर्बुध्न्येन व्याख्यातम् ।

प्रेक्षावतः प्रवृत्तिर्या प्रहृभावात्मिका स्वतः ।

उत्कृष्टः परमुद्दिश्य तत्तमः परिगीयते ॥

लोके चेतनवर्गस्तु द्विधैव परिगीयते ।

ज्यायांश्चैव तथाज्यायान् नैवाख्या विद्यते परा ॥

कालतो गुणतश्चैव प्रकर्षो यत्र तिष्ठति ।

शब्दस्यौन्मुख्यया वृत्त्या ज्यायानित्यवलम्ब्यते ॥

अतश्चेतनवर्गस्तु स्मृतः प्रत्यवरो बुधैः ।

तज्यायांश्च तयोर्योगः शेषशेषितयेष्यते ॥

अज्यायांसः परे सर्वे ज्यायानेको मतः परः ।

नन्तनन्तृत्वभावेन तेषां तेन समन्वयः ॥

नन्तव्यः परमः शेषी शेषा नन्तार ईरिताः ।
 नन्तुनन्तव्यभावोऽयं न प्रयोजनपूर्वकः ॥
 निश्चयो हि स्वभावोऽयं नन्तुनन्तव्यतात्मकः ।
 उपाधिरहितो नायं येन भावेन चेतनाः ॥
 नमनं जायते तस्मै तद्वा नमनमुच्यते ।
 भगवान् नः परो नित्यमहं प्रत्यवरः सदा ॥
 इति भावो नमः प्रोक्तो नमसः कारणं हि सः ।
 नमयत्यपि वा देवं प्रह्वभावयति भ्रुवम् ।
 अतो वा नम उद्दिष्टं यत्तन्नामयति स्वयम् ॥
 वाचा नम इति प्रोच्य मनसा वपुषा च यत् ।
 तन्नमः पूर्वमुद्दिष्टमतोऽन्यन्यूनमुच्यते ॥
 इयं करणपूर्तिः स्यादङ्गपूर्तिमिमां शृणु ।
 शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वो भवामि यत् ॥
 पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरतोऽन्यथा ।
 इत्यङ्गमुदितं श्रेष्ठं फलेच्छा तद्विरोधिनी ॥
 अनादिवासनारोहादनैश्वर्यत्वभावजात् ।
 मलावकुण्ठितत्वाच्च दृक्क्रियाविहतिर्हि या ॥
 तत्कार्पण्यं तदुद्धोषो द्वितीयं क्षण्णमीदृशम् ।
 स्वस्वातन्त्र्यावबोधस्थं तद्विरोध उदीर्यते ॥
 परत्वे सति देवोऽयं भूतानामनुकम्पया ।
 अनुग्रहैकधीर्नित्यमित्येतद्भक्तवत्सलः ॥

उपेक्षको यथा कर्मफलदायीति या मतिः ।
 विश्वासात्मतया यत्तो त्वदीयं वा तु वै सदा ॥
 एवंभूतोऽप्यशक्तः सन् नञ्जाता भवितुं क्षमः ।
 इति बुद्ध्या स्वदेवस्य गोप्तृशक्तिनिरूपणम् ॥
 चतुर्थमङ्गमुद्दिष्टममुष्या व्याहतिः पुनः ।
 उदासीनो गुणाभावादित्युत्प्रेक्षा निमित्तजा ॥
 स्वस्वस्वामिनिवृत्तिर्या प्रातिकूल्यविवर्जनम् ।
 तदङ्गं पञ्चमं प्रोक्तमाज्ञाख्यातवर्जनम् ॥
 अशास्त्रीयोपवासे तु तद्व्याख्यात उदीर्यते ।
 चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः ॥
 अतस्तदानुकूल्यं मे कार्यमित्येव निश्चयः ।
 षष्ठमङ्गं समुद्दिष्टं तद्विघाते निराकृतिः ॥
 पूर्णमङ्गैरुपाङ्गैश्च नमनं ते प्रकीर्तितम् ।
 स्थूलो यो नमनस्यार्थः सूक्ष्ममन्यं निशामय ॥
 चेतनस्थं यदा मन्त्रं स्वस्मिन् स्वीये च व्रुतेति ।
 नम इत्यक्षरद्वन्द्वं तद्धाम ह्यन्यवाचकम् ॥
 अनादिवासनारूढमिथ्याज्ञाननिबन्धनात् ।
 आत्मात्मीयपरार्चस्ता यास्वतन्त्रस्वतामिति [?] ।
 मेन एवं समीचीना बुद्ध्या साऽत्र निवार्यते ॥
 नाहं मम स्वतन्त्रोऽहं नास्तितस्त्वार्थ उच्यते ।
 न मे देहादिकं वस्तु स शेषः परमात्मनः ॥
 इति बुद्ध्या निवर्तन्ते तानि सेयं मनीषिका ।
 अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैर्विकल्पितैः ॥

रुपितं यद्दृढं चित्तं स्वातन्त्र्यं सत्त्वधीमयम् ।
 चित्तद्वैष्णवसार्वभौम्यप्रतिबोधसमुत्थया ॥
 नम इत्यनया वाचा मन्त्रात्स्वस्मादपोह्यते ।
 इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमं स्वं निशामय ॥
 पन्था नकार उद्दिष्टो मः प्रधान उदीर्यते ।
 विसर्गः परमेशस्तु तत्रार्थोऽयं निरूप्यते ॥
 अनादिपरमेशस्तु शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ।
 स्वप्राप्तये प्रधानोऽयं पन्था नमननामवान् ॥
 इति ते त्रिविधः प्रोक्तो नमःशब्दार्थतां प्रति ।
 निवेदयेत् स्वमात्मानं विष्णोरमितनेजसि ॥
 तदात्मना मनःशान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ।
 शरीरपातकाले च सार्थस्वानुग्रहं स्वयम् ॥
 परिपाकं प्रपन्नानां प्रयच्छति यथातथम् ।
 अङ्गोलतैलसिक्तां वीजानामचिराद्यथा ।
 विपाकः फलपर्यन्तस्तथात्रेति निदर्शितः ॥ १० ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

द्वितीयोऽनुवाकः

यो वा गविष्ठः परमः प्रधानः पदं वा यस्य सत्त्वमासीत्
 यस्योपरि त्वं मुनयो न पश्यन्ति तस्मै मुख्याय विष्णवे स्वाहा ॥ १ ॥

यो वा गविष्ठ इत्यादि पञ्चमन्त्राननुक्रमात् पञ्चोपनिषन्मन्त्रे यः परमात्मा गविष्ठः भूमिस्थः अवकाशप्रदः । यद्वा चराचरात्मकेषु लोकेषु आकाशरूपेण स्थितः । परमः व्याप्त्या परमः प्रधानः पञ्चभूतेषु प्रधानः कारणभूतः । पदं वा यस्य सत्त्वमासीत् यस्याकाशस्य पदमुत्पत्तिस्थानं त्वमेवासीत् । आसीदिति छान्दसः । यस्य परमात्मनस्तत्त्व उपरि त्वं मुनयो न पश्यन्ति । मननशीलो मुनिः नारायणपारायणो निर्द्वन्द्वो मुनिरिति वा मुख्याय तस्मै विष्णवे तुभ्यम् ॥ १ ॥

यो वा वायुर्द्विगुणोऽन्तरात्मा सर्वेषामन्तश्चरतीह विष्णोः
स त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा वायुः महाभूतचतुर्थः । द्विगुणः शब्दस्पर्शवान् इति । द्वौ वायोरिति अन्तरात्मा व्याप्तः । सर्वेषामन्तश्चरतीह प्रकृतिमण्डले विष्णोः स वायुः त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे देवान् वर्धयसि मृतान् मनुष्यान् सान्दीपनीपुत्रब्राह्मणपुत्रादीन् सञ्जीवसे तुभ्यम् ॥ २ ॥

त्वमग्ने त्रिगुणो वरिष्ठः परं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वेषां त्वं
पालनाय हुतममृतं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वं त्रिगुणो गन्धरसविहीनास्त्रयोमेरिति वरिष्ठः श्रेष्ठः परं ब्रह्म परं ज्योतिः “अग्निः सर्वा देवताः” इति श्रुतिः । सर्वदेवात्मकत्वात्परं-ब्रह्मशब्दप्रयोगः । प्रलयकालापेक्षया उत्कृष्टज्योतिः । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां त्वं पालनाय रक्षणाय हुतममृतं वहिष्यसे । अमृतरूपेण सर्वेषां प्रापयिष्यसि । त्वया हुतममृतरूपेण कलाद्वारेण प्रापयिष्यसि । श्रीवैखानससूत्रे “यथावास्य सुषुम्ना ज्योतिष्मती प्राणाहुती रेतोधाः” इत्येता आहुतीर्गृहीत्वा “रश्मयश्च-तस्रः पृथ्नौ सन्दधीन् सह वा शुद्धा अमृतावहाचीनुहि दिव्यालोकं पावनीत्ये-

तामिश्वन्द्रमसमाप्याययत्यसौ नु राजा सोम आप्यायितो मूलगामीव
पावानस्यमृतोद्धारिसुरप्रिया ” इत्येताभिरमृतेन तां देवतां तर्पयति ।
मनुष्याणां त्वधिकं पाकभेदेन प्राप्यसि । त्वं समर्थः । एवंपायाभिस्वरूपिण
इत्यर्थः ॥ ३ ॥

त्वं जीवस्त्वमाप्सर्वेषां जनिता त्वमाहरः त्वं विष्णो
श्रमापनुदाय चतुर्गुणाय स्वाहा ॥ ४ ॥

हे विष्णो जीवकारणभूता आपस्त्वं छान्दोग्ये ईरितम् “पञ्चम्या-
माहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति” इति ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥

सर्वेषां जनिता उत्तरोत्तरं कारणत्वेन जनिता । त्वमाहरः त्वमाहर
छान्दसत्वात् त्वमाहर इति । सर्वेषां श्रमापनुदः सर्वेषां स्नानपानादिना
श्रमशान्तिप्रदः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु कालिन्ध्यादिरूपेण श्रम-
शान्तिप्रदः ।

संभक्षयित्वा भूतानि जगत्येकार्णवीकृते ।

नागपर्यङ्कशयने शेतेऽसौ परमेश्वरः ॥ इति ॥

चतुर्गुणाय गन्धविहीनाश्चत्वारोऽप्यां गुणा इति तस्मै ॥ ४ ॥

भूमेर्वितन्वन् प्रतरन्प्रकामः पोष्यमानः पञ्चभिः स्वगुणैः
प्रसन्नैस्सर्वाणि मां धारयिष्यसि स्वाहा ॥ ५ ॥

हे परमात्मन् प्रकामः ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।

कामभूतः भूमेः पञ्चभिः स्वगुणैः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा इति
 पञ्चेन्द्रियविषयभूतैर्गुणैः सर्वान् वितन्वन् विस्तारयन् विषयप्रवणान् कुर्वन्
 पोष्यमानः पवित्रभूतः प्रतरन् तदाक्रम्य स्थितस्सन् ,

गीतायाम्—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरिभिस्सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ इति ॥

स्वतेजसाऽप्याधीतैः प्रसन्नैर्गुणैरिमान् लोकान् धारयिष्यसि ।
 “व्यस्कन्नाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः” इति श्रुतेः ।
 भूम्या ऐन्द्रियविषयशक्तप्रदायेत्यर्थः ॥ ५ ॥

मनस्त्वं भूत्वा मनःप्रदोऽग्रे त्वत्तो भूतं सम्भावयिष्यसि
 सर्वेषां कायानामर्हमर्हते स्वाहा ॥ ६ ॥

हे परमात्मन् त्वं अग्रे सृष्ट्यादौ मनो भूत्वा त्वत्तः त्वत्सकाशादुद्भूत-
 मनोभिमानिदेवतां संभावयिष्यसि सङ्कल्पयिष्यसि । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां
 कायानां शरीराणां यथार्हं मनःप्रदः ।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । इति श्रुतेः ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ इति ॥

मनोरूपेण भवितुं अर्हते समर्थायेत्यर्थः ॥ ६ ॥

त्वं बुद्धिर्भूतानामन्तरात्मा पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः त्वं
 बुद्ध्वा विचिन्वमानः पुण्यरूपाय स्वाहा ॥ ७ ॥

हे परमात्मन् त्वं बुद्धिः बुद्धिरूपः । भूतानां पञ्चभूतानां अन्तरात्मा
 तत्तदंभिमानिदेवतानामन्तरात्मा । पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः निविष्टः ।

त्वं बुद्ध्या विचिन्वमानः “बुद्धिस्तात्कालिकी मता” इति । तथा बुद्ध्या विचिन्वमानः पुण्यरूपाय “सत्यं तपो दमः शमो दानं धर्मः प्रजननमग्नयोऽग्नि-
होत्रं यजमानः संन्यासः” इति ते पुण्यशब्दवाच्याः । “यद्वद्योन्नः स्थानं
गळान्तरं बुद्धेर्वचनमहंकारस्य हृदयचित्तस्य नाभिरिति बुद्ध्या विचिन्वमानः”
इत्युक्तत्वात् । अभ्यासरूपमात्रेण वा विचिन्वमानः तस्मै ॥ ७ ॥

यः सूक्ष्मान् सञ्चरमाणान् भावाभावान् भव्याभव्यान्
कुर्वन्नात्मीयममितो धुनोति धुरं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परमात्मा सूक्ष्मान् भूतसूक्ष्मान् सञ्चरमाणान् विरजापर्यन्तं
सञ्चरमाणान् भावाभावान् सूक्ष्मरूपत्वात् भावरूपान् सुखदुःखानुभवा-
भावात् अभावरूपान् भव्यान् “अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको
विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः” इति गुणाष्टकाविर्भावाय
भव्यान् अमानवकरस्पर्शात्पूर्वं गुणाष्टकाविर्भावाभावात् अभव्यान्
कुर्वन्नात्मीयं ब्रह्मालङ्कारादिनालङ्कृत्य मुक्तं परमात्मसम्बन्धं कुर्वन् अमितः
अमानवः सुकृतदुष्कृते धुनोति ।

कौषीतकिब्राह्मणे—

“तमेतं देवयजनं पन्थानमासाद्याभिलोकमागच्छति । स वायुलोकं
स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम् ।
तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्थारो हृदो मुहूर्तोऽन्वेष्टिहा विरजा नदीव्यो
वृक्षः सालज्जं संस्थानं अपराजितमायतनं इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुप्रमितं
विचक्षणसन्ध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी
पुष्पाण्यादायावयतौ वै च जगन्यम्बा चाम्बावयवाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यः ।
तमित्यंविधा गच्छति । तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजां वा
पालयन्नदीं प्रापं न वा अयं जिगीष्यतीति ॥

तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति । शतं मालाहस्ताः शत-
माञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फणहस्तास्तं बभ्रा-
लङ्कारेणालङ्कुर्वन्ति । स ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ।
स आगच्छत्यारं हृदं तं मनसात्येति । तमृत्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति । स
आगच्छति । मुहूर्तान्विहेष्टिहास्तेऽस्मादपद्रवन्ति । स आगच्छति विरजां नदीं
तां मनसैनात्येति । तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते । तस्य प्रिया ज्ञातयस्सुकृतमुपयन्त्य-
प्रिया दुष्कृतम् । तद्यथा रथेन धावयन् रथचक्रे पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे
पर्यवेक्षते । एवं सुकृतदुष्कृते धूनुते सर्वाणि च द्वन्द्वानि । स एष विसुकृतो
विदुष्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥

स आगच्छतीत्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति । स आगच्छति
सालज्जं संस्थानं तं ब्रह्म स प्रविशति । स आगच्छत्यपराजितमायतनं तं
ब्रह्मतेजः प्रविशति । स आगच्छतीन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्मा-
दपद्रवतः । स आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मयशः प्रविशति । स आगच्छति
विचक्षणामासन्दीं बृहद्रथन्तरे सामनी पूर्वीं पादौ ध्यैत नौधसे चापरौ पादौ
वैरूपवैराजे शाकरैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति । स
आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कं तं स प्राणः । तस्य भूतं च भविष्यच्च पूर्वीं पादौ
श्रीश्चोरा चापरौ बृहद्रथन्तरे अनूच्यं भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्यमृचश्च सामानि
च प्राचीनागानं यजूंषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्रीथ उपश्रीः
श्रीरुपवर्हणम् । तस्मिन् ब्रह्मास्ते । तमित्थं वित्यादेनैवाग्र आरोहति । तं ब्रह्माह
कोऽसीति । तं प्रतिब्रूयात् ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेस्संभूतो हाव ।
एतत् संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति ।
तमाह कोऽहमस्मीति ॥

सत्यमिति ब्रूयात् । किं तत्सत्यमिति । यदन्यदेवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च
तत्सद् यदेवाश्च प्राणाश्च तद्यत्तदेतया वाचाभिव्याह्रियते सत्यमिति ।
एतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसीत्येवैनं तदाह ।

तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तम्—

यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरव्ययः ।

स ब्रह्मेति हि विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महान् ॥ इति ॥

तमाह केन पौसानि नामान्याप्नोतीति । प्राणेनेति ब्रूयात् । केन
क्षीनामानीति । वाचेति । केन नपुंसकनामानीति । मनसेति । केन
गन्धानिति । प्राणेनेति ब्रूयात् । केन रूपाणीति । चक्षुषेति । केन
शब्दानिति । श्रोत्रेणेति । केनाक्षरसानिति । जिह्वेति । केन कर्माणीति ।
हस्ताभ्यामिति । केन सुखदुःखे इति । शरीरेणेति । केनानन्दं रतिं
प्रजातिमिति । उपस्थेनेति । केनेत्या इति । पादाभ्यामिति । केन धियो
विज्ञातव्यं कामानिति । प्रज्ञयेति प्रब्रूयात् । तमाहापैव खलु मे ह्यसावयं
ते लोक इति । सा या ब्रह्मणि चिति या व्यष्टिस्तां चितिं जयति
तां व्यष्टिं व्यञ्जुते य एवं वेद य एवं वेद ॥

धुरं बहिष्यसे पारमात्मिकोपनिषन्मन्त्राध्येता वैष्णवो मन्त्रार्थवित्पर-
मैकान्ती च तस्य धुरं बहिष्यसे ॥

शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः ।

तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति तद्वैष्णवं पदम् ॥

“ब्रह्मविद्यामोति परम्” इति श्रुतेश्च ।

मत्पदद्वन्द्वमेकं ये प्रपद्यन्ते परायणम् ।

उद्धरिष्याम्यहं देवि तस्मात् संसारसागरात् ॥ इति ॥ ८ ॥

यस्या दौ भयाद्भगवानुत्तस्ते स्वयं सूर्यस्य त्वं कालं
वहमानः यस्मात्तेज आत्मीयं कृत्वा सर्वानस्मान् पालयिष्यसि
स्वाहा ॥ ९ ॥

यस्य सृष्टिस्थितिसंहारादिकं परमात्मनो नारायणस्य नियमनाति-
क्रमभयात् भगवान्—

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

उत्पत्त्यादिकं परमात्माधीनमिति यो वेत्ति स भगवान् षाड्गुण्य-
वित्पूर्वं “भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्नि-
श्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ।” कथमुपेति । सत्यं कालं वहमानः ।
“कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः । अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च
कल्पन्ताम् ।” इति । अहोरात्रादिकालं यथाप्रकारं देवमनुष्यादिषु प्रापय
देहाद्यैः प्रतिदिनं युद्धसामर्थ्यसंभवकारणात् । आत्मीयं तेजः परामवामिभव-
सामर्थ्यं तेज इति प्रणवादिकं तेजः सर्वानस्मान् सूर्यरूपेण पालयिष्यसि ।

षड्विंशब्राह्मणे—

“देवाश्च वा असुराश्च लोकेष्वंसन्ततेऽसुरा आदित्यमभिद्रवन्
स आदित्यो . . भित्त . . मरूपेण तिष्ठत्यप्रजापतिमुपायावत् । तस्य प्रजा-
पतिरेतत् मेषजमश्वत् ऋतं च सत्यं च ब्रह्म चोङ्कारं च त्रिपदां च गायत्रीं
ब्रा . . . मपश्यत् ” इत्यादि ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति घातितुम् ।

प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् ॥

अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिनेदिने ।

ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ॥

इत्यादि ।

वैष्णव कारं तस्य तत्प्रेरकं परम् ।

तेन तत्प्रेरितं ज्योतिरोद्गारेणाय दीप्तिमान् ॥

दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यानि यानि वै ।

ततः प्रयाति : . ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥

वालखिल्यादिभिश्चैव प्रभुर्वैखानसैरपि ।

महात्मभिर्महात्मा वै जगतः पालनाद्यतः ॥

इति भगवदाज्ञा यात् जगत्पालनादिकं करोति
जगत्पालनादिशक्तिप्रदाय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यं त्वं पालनायाभिभूतं देवास्सर्वे विचरन्ति ते देवास्त्व-
मेव सर्वे माया मायैषते स्वाहा ॥ १० ॥

हे परमात्मन् पुत्रेण सह बाणासुरपरिपालनार्थमागतं सर्वं त्वयाभि-
भूतं अभिभवं प्राप्तं रुद्रं सर्वदेवाः ब्रह्मादयः प्रमुखं श्रुत्वा अध्याहारः पश्येति
जीवभूतेन नरसिंहे कोपशान्त्यर्थं विचरन्ति शरम विनागतिं कुर्वन्ति
ये च सर्वे रुद्रदेवाः [?] ब्रह्मादयः विचरन्ति स्वरक्षकत्वेन गतिं कुर्वन्ति
देवास्त्वमेव सर्वे

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोशसंभवम् इति ॥

त्वद्विभूतिभूताश्चेच्छरमनिर्माणादिगतं कथं कुर्वन्तीति चेत् तत्राह .
माया मायैषते पूषा ते माया आश्चर्यकारिणी विद्या सैव माया ।
अन्येषां माया का माया ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

इति भगवद्वचनात् । शरभरूपेण गतानां ब्रह्मरुद्रादीनामपि नृसिंह-
रूपिणा संहारादिकं नारसिंहपुराणादिष्ववगम्यते सप्तत्रिंशोऽध्याये—

हिरण्यकशिपोस्त्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः ।

क्षीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः ।

युष्माभिः संस्तुतो विष्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥

इत्यारभ्य —

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ।

हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्करेण च ॥

इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम्—

तस्य कोपाभिभूतस्य नृसिंहस्य जगत्पतेः ।

दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रमुर्देवदानवाः ॥

इत्यादिस्तोत्रानन्तरं ब्रह्मसमीपगमनादिकं प्रतिपाद्य—

तस्मिन् भगवति क्रुद्धे नरसिंहे महात्मनि ।

प्रवेपते जगदिदं देवेशे कुपिते भृशम् ॥

त्वत्तो हि नान्यच्छरणं देवानामिह विद्यते ।

नरसिंहसमुद्भूतं भयं नाशय नो हरे ॥

इत्यारभ्य अनन्तरं रुद्रवचनम्—

हतो हिरण्यकशिपुर्यो स दैत्यो महाबलः ।

को नः शमयिता तस्य . . . हरिमेघसः ॥

त्वं मे जनयिता तात स ते जनयिता हरिः ।

तस्य देवस्य कः शक्तो विष्णोर्वै निग्रहे भवेत् ॥

यद्भयात्पवते वायुः सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
 यद्भयाद्धरणी धत्ते निग्रहे तस्य कः प्रभुः ॥
 तथाप्युपायं पश्यामः परमेण समाधिना ।
 कृते यस्मिन् भवेच्छ्रेयस्तूष्णींभावो न रोचते ॥
 अश्वानां माहिषः शत्रुवार्णानां मृगाधिपः ।
 वानराणां तथा मेषः पक्षिणां गरुडः स्मृतः ॥
 मूषकानां तु मार्जालो मृगाणां श्वा प्रकीर्तितः ।
 वायसानां दिवाभीतः सिंहानां शरभस्तथा ॥
 ततः समे भजिष्यामः शरभं भयशान्तये ।
 शरभोऽधिष्ठितोऽस्माभिः नृसिंहं शमयिष्यति ॥
 इत्येवमुक्तो भगवान् ससर्ज शरभं तथा ।
 यस्य सन्दर्शनादेव त्रस्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥
 ततस्तस्य भवानीशस्तुण्डस्थानमरोचत ।
 पृष्ठभागे चतुर्वक्त्रस्तस्य रुद्रो न्यवेशयत् ॥
 सोमसूर्यौ नयनयोर्मारुतः पक्षयोर्द्वयोः ।
 पादेषु भूधरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् ॥
 एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः ।
 ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् ॥
 ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः ।
 अभ्याशमगमद्विष्णोर्विनदन् भैरवस्वरम् ॥
 तमभ्याशगतं दृष्ट्वा नृसिंहः शरभं रुषा ।
 जघान निशितैरुग्रैर्दंष्ट्रानखवरायुधैः ॥

निहते शरमे तस्मिन् रौद्रे मधुनिघातिना ।

तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्ष्यस्तथा ॥ इति ॥

गारुडे—

हन्तुमभ्यागतं रौद्रं शरमं नरकेसरी ।

नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपुं यथा ॥

निकृत्तबाहूरुशिरा वज्रकल्पमुखैर्नखैः ।

मेरुपृष्ठे नृसिंहेन सहस्रार्कसमं च तत् ॥

पाद्रे—

तौ युध्यमानौ तु चिरं वेगेन बलवत्तरौ ।

विनाशं जग्मतुर्देवौ नृसिंहशरभाविति ॥

ततः क्रुद्धो महाकायो नृसिंहेऽभिमुखस्वनः ।

सहस्रशिरसं नेत्रैस्तस्य गात्रं न्यकर्तयत् ॥

पतितं भीममत्युग्रं विबुधा द्रष्टुमागताः ।

ऋषयो देवगन्धर्वा यत्र शेते हरो हतः ॥

तं दृष्ट्वा परमं जग्मुर्विस्मयं ते दिवौकसः ।

प्रशशंसुस्तदा कर्म नरसिंहस्य चान्द्रतम् ॥ इति ॥ १० ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः

तृतीयोऽनुवाकः

यस्त्वं भूत्वा पर्जन्यो बिभेति रन्ध्रे प्रजाभिराकृष्य-
माणः सत्यं कालं व्रतेन पालयन् ऋदयिष्यसे स्वाहा ॥ १ ॥

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।

इति यज्ञोद्भवो भूत्वा यः पर्जन्यः सत्यं कालं पालयन् रन्ध्रे भगवदा-
ज्ञामङ्गे विभेति सः । त्वं रन्ध्रे अनावृष्ट्यादौ व्रतेन कारिकेष्ट्यादिना
प्रजाभिराकृष्यमाणः वर्षप्रदानादिना ह्यदयिष्यसे तुभ्यम् ॥ १ ॥

कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थितस्सर्वान् लोकान् ह्यदयन्
जीवमानः सन्दर्पणाय हरये पराय स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थितः । अनङ्गत्वात्तत्र
स्थितस्सन् सर्वान् लोकान् जनान् ह्यदयन् जीवमानः अभिलषितवस्तु-
लामादिमुखेन सन्तोषयन् सन्दर्पणाय गर्वरूपाय हरये हरयित्रे ननु कामदाह-
कत्वाद्वुद्भस्य सर्वहन्तृत्वमुपपद्यत इति चेत् तदसंत् ।

ब्रह्माणमिन्द्रमग्निं च यमं वरुणमेव च ।

निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्भरिहोच्यते ॥

स शुक्लाज्जायते कामो मज्जायाः क्रोध एव च ।

अस्थिम्यो जायते लोमो मेदसश्च मदस्तथा ॥

मांसात् प्रजायते मोहोऽसृग्भ्यः क्रोधः प्रजायते ।

त्वचश्चैवापि धर्मस्तु क्रमाज्जातस्ततो दश ॥ इति ॥

भगवतोऽपि शुक्लादुत्पत्त्यादिकं श्रूयत इति चेत् ॥ २ ॥

अङ्गादङ्गादनुप्राविशत्सर्वान् लोकान् संरक्षणाय यो वा
वसन् देवो मातरिश्वा स योऽस्माकं भूत्यै भूतये स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा मातरिश्वा वाय्वन्तर्यामी देवः क्रीडाकामः
अङ्गादङ्गादनुप्राविशत् त्वदङ्गात्पुत्रस्याङ्गं जीवेन सह दीपात् दीपमिव
जननात्प्राविशत् “अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे” इति श्रुतेः ।

भारते —

वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना । इति ।

स देवः सर्वान् लोकान् जनान् प्रति संरक्षणाय निवसन्
योऽस्माकं मातरिश्वनः अन्तर्यामिणः अस्माकं भूत्यै भूतये निरवधि-
कैश्वर्याय ॥ ३ ॥

यो मोहयन् भूतानां सर्गादिरक्षणाय यः सङ्कोचः
सङ्कोचनाय भवते स्वाहा ॥ ४ ॥

यः परमात्मा सर्गादिरक्षणाय सृष्टिस्थितिसंहारार्थं भूतानां इन्द्रियाणि
मोहयेत् । “मुह वैचित्र्ये” इति यः अन्तर्यामी सन् सङ्कोचः । “अणोरणी-
यान्” इत्यादि सङ्कोचनाय भवते तस्मै ॥ ४ ॥

यो वा दशात्मा उपरि स्पृशन्वा देवानां जेनातिषामुत्तरः
जेनातिर्ज्योतिषे स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा मत्स्यादिदशावताररूपी द्वादशात्मापि केषांचित् वा
आदित्यमण्डलवर्ती उपरि स्पृशन् सेवेषामुपरि स्थित्वा स्वकिरणैर्मेध्या-
मेध्यादिकं स्पृशन् देवानां मध्ये ज्योतीरूपः जेनातिषां चन्द्रा-
ग्न्यादिज्योतिषां उत्तरः स्वयं वा स्पृशन् तैरभेदैरस्पृष्टः जेनातिर्ज्योतिषे
ज्योतिषां जेनातिर्भवति तस्मै ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मा ब्रह्मविदामात्मा स्यादात्मचक्षुषां भूतिर्भूतिमतां
सुकृतं कृताय स्वाहा ॥ ६ ॥

यः परमात्मा ब्रह्मविदां ब्रह्मा छान्दसत्वात् दीर्घः परंब्रह्म । आत्मा
स्यादात्मचक्षुषां अन्तः प्रविश्य नियन्ता य आत्मा । परमात्मत्वेन पश्यतां

परमात्मा । भूतिर्भूतिमतां ऐश्वर्यवतामैश्वर्यरूपः सुकृतं कृताय कृतवते तस्मै ॥ ६ ॥

सारस्वतो वा एष देवो न हि पारमात्मिकः ह्योऽभयो
वा सर्वं सन्धुषे स्वाहा ॥ ७ ॥

हयग्रीवमन्त्रः—एष देवो लीलाविभूतो हयग्रीवरूपेण स्थितः अयं केवलहयो न भवति । किन्तु अमयप्रदः भयरहितः सारस्वतः अखिल-विद्याधारस्वरूपी पारमात्मिकः परमात्मा जगत् सर्वं सन्धुषे कृपाकटाक्षेण प्रेक्षयसि तुभ्यम् ॥ ७ ॥

यो वा परं ज्योतिः परं सन्दधानः परमात्मा पुरुषं
संजनयिष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परं ज्योतिः परमात्मा यं निर्हेतुककृपाकटाक्षेण रक्षितुमिच्छति तं पुरुषं परं सन्दधानः उत्कृष्टगुणं सन्दधानं संजनयति संजनयिष्यसे तुभ्यं व्यत्ययः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु वसुदेवदशरथादिषु परं सन्दधानः पुरुषं प्रति सम्यक् जनिष्यसे “जनी प्रादुर्भावे” इति प्रादुर्भावं प्रजननं कुर्वते ।

न तस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।

आत्ममायां विनेशस्य परमा सृष्टिरात्मना ॥ इति ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ इति ॥

जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः ।

सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः ॥

पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः

रजसा तमसा चास्य मानसं समभिप्लुतम् ॥ इति ॥

अनेन निर्हेतुत्वं प्रतिपादितम् । अधिकारिविशेषेण निर्हेतुकं
सहेतुकं च ॥ ८ ॥

यो दोषश्चतुरथतुर्यश्चतुरः पदार्थान् सर्वं लोकस्य सन्द-
धानस्ते सन्ते सत्त्वमादधानाय स्वाहा ॥ ९ ॥

यो दोषः यस्य परमात्मनो बाहुषु चतुर्यः । वरप्रदानहस्तः चतुरः
वरप्रदानेन चतुरः समर्थः चतुरः पदार्थान् धर्मार्थकाममोक्षाख्यान् सर्वं
लोकस्य सर्वजनानां सन्दधानः प्रयच्छमानः सन्ते सत्सु सत्त्वमादधानाय
“एको बहूनां यो विधाति कामान् ” इति श्रुतिः । ते इदम् ॥ ९ ॥

यस्यैता ब्रह्ममूर्तयो बृहद्ब्रह्माणं ब्रह्म आदधानः यं ब्रह्म
ब्रह्मगुप्तये परम्पराय स्वाहा ॥ १० ॥

यस्य परंब्रह्मणः एताः अव्यया ब्रह्ममूर्तयः दत्तोऽयं चतुर्मुखब्रह्म-
गुप्तये वेदगुप्तये परम्पराय सृजति तस्मै ।

श्वेताश्वतरे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥
इति ॥ १० ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

चतुर्थोऽनुवाकः

वाको वा अनुवाको वाकं वाकं संजुषमाणः देवस्य स्वं
स्वगुप्तये स्वयं जेनातिषे ज्योतिषे स्वाहा ॥ १ ॥

वाकः अनुवाक एव यद्वा वाकं वाकं प्रत्यनुवाकं प्रतिवाक्यं
वा संजुषमाणः अस्य मन्त्रस्याध्येतरि प्रियमाणः ॥

वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः ।

यावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ।

तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥

इति स्वनामत्वाच्च “स ह वा एतस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्वेदः”

इत्यादिश्रुतेर्निश्वासरूपत्वाच्च वाकं संजुषमाण इत्युक्तम् । देवः “दिवु क्रीडा-
विजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु” इति । स देवः स्वं
स्वतेजोरूपं स्वगुप्तये स्वकृतलोकमर्यादरक्षणार्थं त्रयोमयं सूर्यं जेनातिषे
कल्पयति । “सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्” इति श्रुतिः ।
“आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तद्वचा मण्डलं स ऋचां
लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां
लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषा
मण्डलं स यजुषां लोकः सैषा त्रय्येव विद्या तपति” इत्यादिस्वयं
ज्योतिषे अनश्वरज्योतिषे तुभ्यम् ॥ १ ॥

द्वावेतौ पक्षी अचरं चरन्तौ नाधुरं व्यधुनीते यश्चैकं भुनक्ति
भोक्त्रे स्वाहा ॥ २ ॥

शरीरस्य तौ एतौ द्वौ जीवात्मपरमात्मानौ पक्षी पक्षिप्रायौ अचरं
प्रकृतिं चरन्तौ शरीरं स्थितौ । यद्वा “ चर गतिभक्षणयोः ” इति प्रयोज्य-
प्रयोजकभावेन प्रकृतिं भक्षयन्तौ ।

यद्वा कर्मफलमुपनिषदन्तरे—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके

गुहां प्रविष्टौ परमे परार्थे ।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति

पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ इति ॥

नाधुरं व्यधुनीते तत्र परमां धुरं मारं धुनित इति न धुनित एव ।
श्रुत्यन्तरे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

यथैकं भुनक्ति यः परमात्मा एकजीवात्मानं चकारात्मकृतिं च
भुनक्ति संहरति ।

श्रुतिः—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्या वेद यत्र सः ॥ इति ॥

हरेरेव सर्वसंहारकरत्वं श्रूयते “ हरिः हरन्तमनुयन्ति देवाः ।
विश्वस्येशानं वृषमं मतीनाम् ” इति । ईशानशब्दश्रवणाद्बुद्ध एवेति चेत्
सत्यम् । “ विश्वस्येशानम् ”, “ पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम् ”, “ अस्येशाना
जगतो विष्णुपत्नी ” इत्यादिश्रुतिषु लक्ष्मीनारयणयोर्जगदीश्वरत्वश्रवणात्केव-
लेशानशब्दश्रवणाभावात् । “ ईशानः सर्वविद्यानाम् ” इति विद्यामात्रेशा-
नत्वस्य श्रवणात् ।

१३०

वैष्णव-उपनिषदः

ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।
 एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥
 जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।
 वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥

अत एव सर्वसंहारकत्वं श्रीमन्नारायणस्य सर्वसंहारकस्य ॥ २ ॥

यो वा आयुः परमात्मा न मीढुषः पारम्पर्यात्परं परायणः
 पराय लोकानां परमादधानः परम्पराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा नारायणः मीढुषो रुद्रस्य “नमो रुद्राय मीढुषे” इति
 परमायुः आपन्निवारकत्वात् परममृत्युवाच्च । आरण्यके — “किं तद्विष्णोर्बल-
 माहुः” इत्यारभ्य बलादिकमुत्पाद्य “पृच्छामि त्वा परं मृत्युम्” इति प्रश्नस्य
 प्रतिवचनम् । “अमुमाहुः परं मृत्युम् । पवमानं तु मध्यमम् । अग्निरेवावमो
 मृत्युः । चन्द्रमाश्चतुरुच्यते ॥” इति भगवत्येव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम् ।
 परमात्मानमन्तर्यामिणम् । विभक्तिव्यत्ययः । परमात्मा पारम्पर्यात्परम्पराय
 लोकानां परमुत्कृष्टपरः भिन्नपरः शत्रुश्च परमादधानः उत्कृष्टत्वं प्रथमानः
 अत एव परायणः परमगतिभूतः मोक्षोपायभूत इत्यर्थः । यद्वा चतुर्विध-
 पुरुषार्थानां गतिभूतः । पराय उत्कृष्टगतिभूताय ।

ननु,

यो ब्रह्मा ब्रह्मण उज्जहार प्राणेश्वरः कृत्तिवासाः पिनाकी ।
 ईशानो देवः स न आयुर्दधातु तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन ॥

इत्यायुषो निमित्ते कथं रुद्रप्रार्थना प्रतिपाद्यत इति चेत्सत्यम् ।

भारते—

ततस्ते च सुरास्सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः ।
 वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं क्रतुमारभन् ॥
 तस्मिन् सत्रे तदा ब्रह्मा स्वयं भागमकल्पयत् ।
 देवा महर्षयश्चैव सर्वे भागानकल्पयन् ॥
 ते कार्तियुगधर्माणो भागाः परमसत्कृताः ।
 प्रापुरादित्यवर्णान्तं पुरुषं तमसः परम् ॥

श्रीभगवान्—

येन यः कल्पितो भागः स तथा समुपागतः ।
 यतोऽहं प्रविशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम् ॥
 यज्ञैर्ये वापि यक्ष्यन्ति सर्वलोकेषु वै सुराः ।
 कल्पयिष्यन्ति वै भागांस्ते नरा वेदकल्पितान् ॥
 यो मे यथा कल्पितवान् भागमस्मिन् महाक्रतौ ।
 स तथा यज्ञभागाहो वेदसूत्रे मया कृते ॥ इति ॥

अतो ब्रह्मरुद्रादीनां तत्तत्कर्मसु पूजार्हत्वं भगवतो नारायणस्य
 वरप्रदानलब्धम् । यद्वा संहारकत्वेन भगवता सृष्टत्वात् तत्पूजेति इदं प्रपन्नविषयं
 न भवति । भगवन्मन्त्रस्य मृत्युञ्जयत्वम् । “एते सहस्रमयुतं पाशा मृत्यो
 मर्त्याय हन्तवे । तान् यज्ञस्य मायया सर्वानवयजामहे ।” अस्यार्थः—हे
 मृत्यो मर्त्याय हन्तवे वर्तसे व्रतसहस्रमयुतमेते पाशाः तान्पाशान् यज्ञस्य
 मायया “यज्ञो वै विष्णुः” इति श्रुतेः ।

उपनिषदन्तरे—

यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते तस्य होतृभिः ।
 उपनीतं ततोऽस्यैतत्तस्माद्यज्ञोपवीतकम् ॥ इति ॥

विष्णोर्मायया आश्चर्यकारिण्या वैष्णव्या विद्यया मन्त्रेण सर्वान्
तान् पाशानवयजामहे अधस्तात्कुर्मः ।

यदन्तस्तमशेषेण बाङ्मयं देववैदिकम् ।

तस्मै व्यापकमुख्याय मन्त्राय महते नमः ॥

ननु “हरिः हरन्तमनुयन्ति देवाः । विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम् ।
ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात् ।” इत्यादिषु हरिं नृसिंहं हरन्तं शरभरूपेण ईशानं
रुद्रं देवा अनुयान्ति गतिं कुर्वन्ति । अतः सर्वसंहारकारको रुद्र एवेति
चेत् तदसत् ।

पूर्वापरपरामृष्टशब्दानां कुरुते मतिम् । इति ।

पूर्वानुवाके—“भर्ता सन्निभयमाणो विभर्ति । एको देवो बहुधा
निविष्टः ।” इत्यारभ्य “तमेव मृत्युममृतं तमाहुः । तं भर्तारं तमु
गोप्तामाहुः” इत्यादिषु भर्तृशब्देन “व्यष्टभ्राद्रोदसी विष्णवेते । दाधर्थ
पृथिवीमभितो मयूखैः” इति स्वकान्त्यैवावतीर्य तेन रूपेण जगद्धरणम् “किं
तद्विष्णोर्बलमाहुः । का दीप्तिः किं परायणम् । एको यद्भारयद्देवः । रेजती
रोदसी उभे । वाताद्विष्णोर्बलमाहुः ।” इत्यारभ्य । “पृच्छामि त्वा परं
मृत्युम् । अवमं मध्यमं चतुम् । लोकं च पुण्यपापानाम् । एतत्पृच्छामि संप्रति ।
अमुमाहुः परं मृत्युम् । पवमानं तु मध्यमम् । अभिरेवावमो मृत्युः ।
चन्द्रमाश्चतुरुच्यते ॥” इति परमात्मनो विष्णोरेव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम् ।
देवशब्दः सामान्यवाचीति एको देव इत्युक्तम् । “एको देवो नारायणः”,
“अपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः”, “रुद्रास्तु बहवः”,
“सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्राः”, “तमेव मृत्युम्”, “परं मृत्यो अनु
परेहि पन्थाम् ।” इति ।

नृसिंहतापनीयोपनिषदि—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

तत्रैव—“ अथ कस्मादुच्यत उग्रमिति । स होवाच प्रजापतिः—

यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि
उद्गृह्णाति अजस्रं सृजति विसृजति वासयति उदग्राह्यत उदगृह्यते ।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।

मृडा जरित्रे सिंह स्तवानो अन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥

तस्मादुच्यत उग्रमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते वीरमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान्
सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजस्रं सृजति
विसृजति वासयति । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ।
तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान्
लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्यापयति
स्नेहो यथा पल्लपिण्डं शान्तमूलमोतं प्रोतमनुव्याप्तं व्यतिषिक्तो व्याप्यते
व्यापयते ।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति

य आविवेश भुवनानि विश्वा ।

प्रजापतिः प्रजया संविदानः

त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥

तस्मादुच्यते महाविष्णुमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति । यस्मात् स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वतेजसा ज्वलति ज्वालयति ज्वालयते ज्वालयते । सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपन् संतपन् रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः । तस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वयमनिन्द्रियोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः शृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आदत्ते सर्वगः सर्वगतस्तिष्ठति ।

एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोपाः ।

यमप्येति भुवनं सांपराये नमामि तमहं सर्वतोमुखमिति ।

तस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति । यस्मात्सर्वेषां भूतानां ना वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च सिंहो वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च तस्मान्नृसिंह आसीत् परमेश्वरो वा जगद्धितमेतद्रूपं यदक्षरं भवति ।

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

तस्मादुच्यते नृसिंहमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते भीषणमिति । यस्माद्भीषणं यस्य रूपं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि भीत्या पलायन्ते स्वयं यतः कुतश्च न विभेति ।

भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

तस्मादुच्यते भीषणमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते भद्रमिति । यस्मात् स्वयं भद्रो भूत्वा सर्वदा भद्रं ददाति । रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिः व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

तस्मादुच्यते भद्रमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति । यस्मात् स्वमहिम्ना स्वभक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयति ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विषेम ॥

तस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते नमामीति । यस्मात् सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च ।

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

तस्मादुच्यते नमामीति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते अहमिति ।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः ।

यो मा ददाति स इ देवमावाः अहमन्नमन्नमदन्तमग्नि ।

अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां सुवर्णज्योतीः ॥

य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ ” उपनिषत्सु नृसिंहस्य प्रभावा एवं

श्रूयन्ते ।

पुराणेषु च—

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवह्नीन्दुदिवाकरमनुग्रहाः ।

तच्छक्त्याऽधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥

जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।

वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चतामुपयान्ति च ॥ इति ॥

भारते—

सत्त्वमादाय सर्वेषां तेजसोऽथ दिवौकसाम् ।

तेजसाऽप्यधिको भूत्वा भूयोऽप्यतिबलोऽभवत् ॥

ततः प्रभृति देवानां देवदेवो भवोद्भवः ।

पतिश्च सर्वभूतानां पशूनां चाभवत्तदा ॥

भासयामास तान् सत्त्वान् देवदेवो महाद्युतिः ।

अर्थमादाय सर्वेषां तेजसा प्रज्वलन्ति ॥

ततोऽभिषिषिबुः सर्वे सुरा रुद्रा मुरारिहम् ।

महादेव इति ह्यासीद्देवदेवो महेश्वरः ॥

अत एव महादेवादिशब्दवाच्यत्वं रुद्रस्य वरप्रदानलब्धं अत एव तमेव मृत्युमित्युक्तम् । अत्र परंब्रह्मण एवामृतशब्दवाच्यत्वं न तु रुद्रस्य । आरण्यके— “नैव देवो न मर्त्यः । न राजा वरुणो विभुः । नाग्निर्नेन्द्रो न पवमानः । मातृक्कच्चन विद्यते । दिव्यस्यैका धनुरार्षिः पृथिव्यामपरा श्रिता । तस्येन्द्रो वग्निरूपेण । धनुर्ज्यामच्छिनत्स्वयम् । तदिन्द्रधनुरित्युज्यम् । अभ्रवर्णेषु चक्षते । एतदेव शंयोर्बार्हस्पत्यस्य । एतद्रुद्रस्य धनुः । रुद्रस्य त्वेव धनुरार्षिः । शिर उत्पिपेष । स प्रवर्ग्योऽभवत् । तस्माद्यस्स प्रवर्ग्येण यज्ञेन यजते । रुद्रस्य स शिरः प्रतिदधाति । नैन रुद्र आरुको भवति” ॥ इति ॥

त्रिपुरसंहारकस्य रुद्रस्य पशुपतित्वादिप्रार्थना श्रूयते यजुषि—

“तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाथ रजताथ हरिणी
ता देवा जेतुं नाशकनुवन् ता उपसदैवाजिगीषन् तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च
नोपसदा दै महापुरं जयन्तीति त इषुः समस्कुर्वतामिमांसीकः सोमः शस्यं
विष्णुं तेजनं तेऽब्रुवन् क इमामसिष्यतीति रुद्र इत्यब्रुवन् रुद्रो वै क्रूरः
सोऽस्यत्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणा अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः
पशूनामधिपतिः” इत्यादि ॥

श्वेताश्वतरे—

तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ॥
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥

इत्यादि ।

तं विश्वरूपमित्यारभ्य प्रतिपादितानि विशेषणानि रुद्रपराणीति
चेत् तदसत् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशंभुवम् ॥

विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ।

विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ॥

विश्वमेवेदं सर्वं तद्विश्वमुपजीवति ।

पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ॥ इत्यादि ॥

मुण्डकोपनिषद्—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषि चन्द्रसूर्यौ

दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ इत्यादि ॥

दिवौकसामर्धतेजसाप्याये तस्य अखिलदेवतावरप्रदानेन पशुपति
त्वादिकं प्राप्तस्य पशुपतेः सर्वसंहारकत्वं नोपपद्यते ।

किञ्च—

नमाम्यहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

इत्याद्युपनिषद्वाक्येषु भगवन्महिमा प्रतिपाद्यते ।

व्यक्तं हि भगवान् देवः साक्षान्नारायणः स्वयम् ।

अष्टाक्षरस्वरूपेण मुखेषु परिवर्तते ॥

इति भगवन्मन्त्राः केवलमृत्युञ्जया न भवन्ति । किन्तु चतुर्वर्गफलप्रदा
वा ॥ ३ ॥

तेजसां तेजस्तेज आदधानः सत्त्वस्तेजस्तेजसां
तेजस्तेजसे स्वाहा ॥ ४ ॥

यः परमात्मा तेजसां तेजस्तेज आदधानः नक्षत्राभिचन्द्रसूर्याणा-
मुत्तरोत्तरं तेजः प्रयच्छमानः सत्त्वस्तेजस्तेजसां सूर्यादीनां तेजोयुक्तानां
यदा कदाचित् तेजोदर्शनाभावात् ।

कठवल्लीषु—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ इति ॥

सूर्याद्यपेक्षयाऽधिकतेजोरूपत्वश्रवणात् नाशरहितत्वाच्च सत्त्वस्तेजसा-
मित्युक्तम् । तेजस्विषु स्थितानां तेजसां तेषां तेजसामपि तेजसे पराभि-
भवनसामर्थ्यं तेज इति तस्मै ॥ ४ ॥

सह संपायास्त्वमाशिषमाशिभूताभूतमाशिषमाशिराशी -
राशिरनुभूमिः स्वाहा ॥ ५ ॥

चेतनाचेतनेषु सर्वत्रान्तर्यामित्वेन वसन् वैषम्यनैर्घृण्यामावात्
शत्रुमित्रोदासीनानां सहासमत्वे समत्वायाः पासि त्वं आशिषमाशिभूताभूतं
आशिभूतं अभूतं च आशिषमाशिः आशीराशिः आशिषां राशिः
अनुभूमिः उत्पत्तिस्थानम् । तुभ्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥

यो ह संयोगो ध्यानं जुषमाणः सन्धुः सन्धुक्षणानां
संयोगः सन्दधानः पुण्यः पुण्यानां पुण्याय स्वाहा ॥ ६ ॥

जीवात्मपरमात्मनोर्यो वा संयोगः उपायत्वेन च ध्यानं संयोगः ।
उपायत्वेनोपेयत्वेन च प्रीतिपूर्वकं जुषमाणः सेवमानः सन्धुक्षणानां
कृपाकटाक्षेण प्रोक्षणाप्रोक्षणानां विषयभूतः सन्धुः सम्यक् प्रोक्षित इत्यर्थः ।

संयोगः सन्दधानः एवंभूतः संयोगः सन्दधानः । पुण्यानां पुण्यशरीराणां
एष एव साधु कर्मकरायते । यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निषति एष एव साधुकर्म
कारयति यमरो निनीषतीति ।

श्रीगीतायाम्—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

यद्वा पुण्यानां पुण्य इतरेषां मध्यस्थः तेन विना तृणाग्रमपि न
चलतीति । पुण्याय पुण्यस्वरूपिणे तुभ्यम् ॥ ६ ॥

सहस्रं वा यस्य वै वितानमादधानः सहस्रं वा आशिषः

सहस्रं यस्य वै सासिकाः सहस्रं सहस्राय स्वाहा ॥ ७ ॥

मुक्तानामैश्वर्यं प्रतिपादयति । यस्य मुक्तस्य परमपदं गच्छतः
सहस्रं वा यस्य वै वितानं मण्टपादूर्ध्वाच्छादनादि आदधानः । स्वयमेवा-
तपमप्रयच्छमानः । सहस्रं वा आशिषः सकृच्चन्दनादयः । सासिकाः
आसनादिभिः सहिताः । सहस्रं यस्य वै सासिकाः आसने सह रन्तुं
योग्याः स्त्रियः । सहस्रं सहस्राय । “सहस्रशीर्षा पुरुषः” इत्यादिश्रुति-
सिद्धाय तुभ्यम् । “तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः”
इत्यादि ॥ ७ ॥

स्वातीका गुप्तयो गुप्तिः सत्त्वं सत्त्वानां (सत्यं सत्यानां)

सात्त्वपदं तत्सत्त्वं सत्त्वमासीत् सात्त्वं सात्त्वं वै सत्त्वमादधानाय
स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वातीका गुप्तयः स्वर . . शं परमात्मानं नारायणमतिक्रम्य
देवतान्तरमन्त्रान्तरसाधनान्तरप्रयोजनान्तरादीनामकिञ्चित्करत्वात् तेषां गोप्तृ-

त्वशक्त्यभावात् गोप्त्वान्न वरणं गुप्तयः । यद्वा स्वान्तर्यामिणः परमात्मन
एव गोप्त्वान्न वरणं ।

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्त्ववरणं तथा ॥

आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ।

अनन्यसाध्ये स्वामीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् ।

तदेकोपायता याच्ञा प्रपत्तिः शरणागतिः ॥ इति ॥

गुप्तिः रक्षणं सत्त्वं यथार्थं सत्त्वानां सत्त्वभूतहितमिति भूतहित-
युक्तानां सात्त्वंपदं सत्त्वपदप्रदं तत्सत्त्वं तत्सात्त्विकपदं नान्यदिति ।

यत्पदं सात्वताभिर्यत् विष्णुलोके महीयते ।

“देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव” इति
ऋग्वेदब्राह्मणे । यद्वा परमात्मनो गुप्तयः गोप्त्वान्नमेव धर्मोत्तरापेक्षया सत्यं
यथार्थमिति ये गृह्णन्ति तेषां सत्यानां सत्यत्वेन गृहीतानां सात्त्वंपदं
परमपदं सत्त्वमासीत् । सात्त्विकमेवासीत् । सात्त्वं वै सत्त्वमेव सात्त्वं
सात्वतशब्दवाच्यम् । “नामैकदेशे नामग्रहणम्” भीमो भीमसेन इतिवत् ।

नित्यनैमित्तिकाजसा याज्ञीयाः परमाः क्रियाः ।

सर्वं सात्वतमास्थाय विधिश्चक्रे समाहितः ॥ इति ॥

सत्त्वप्रधानत्वात् सात्वतशब्दप्रयोगः । भारतोक्तसात्वतशब्दवाच्यं पञ्चरात्रं
न भवति सात्त्विकनामत्वेन प्रणीतत्वात् ।

अथांशोः सात्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ।

महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ॥

स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः ।

शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोळादिभिः श्रुतम् ॥

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतं नाम शोभनम् ।
प्रवर्तते महांशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ॥ इति ॥

साङ्ख्यपुराणे—

श्रुतिभ्रष्टः श्रुतिप्रोक्तप्रायश्चित्ते भयं गतः ।
क्रमेण श्रुतिविध्यर्थं मनुष्यस्तन्त्रमाश्रयेत् ॥
धर्मशास्त्रपुराणे च प्रोक्तं हि मरणान्तिकम् ।
प्रायश्चित्तं मनुष्याणां पापिष्ठानां सुदारुणम् ॥
भयं प्रबलचित्तानां मरणे जायते भृशम् ।
तेषामेवाभिरक्षार्थं खल्वहं तन्त्रमुक्तवान् ॥
पाञ्चरात्रं भागवतं तन्त्रं सात्वतनामकम् ।
वेदाग्रहं समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान् ॥ इति ॥

भागवते—

त्रिवक्त्राया उपश्लोकः पुत्रः कृष्णमनुव्रतः ।
शिष्यः साक्षान्नारदस्य ददौ चित्तमखण्डितम् ॥
तेनोक्तं सात्वतं तन्त्रं यज्ज्ञात्वा मुक्तिभाग्भवेत् ।
यत्र स्त्रीशूद्रदासानां संस्कारो वैष्णवः स्मृतः ॥

इति परमात्मपरत्वात् पारमात्मिकं सात्वतशब्दवाच्यं स्वातन्त्र्येण देवतान्तर-
मन्त्रान्तरादिप्रतिपादनाभावात् वैदिकत्वेन प्रसिद्धं श्रीमद्वैखानसं सात्त्विक-
मेव । सत्त्वमादधानाय सात्त्विकगुणं प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

सत्त्वं वा उद्रेकमासीद्यत्सत्त्वमुभयोरनुगोप्ता तत्सत्यं सत्यं-
पदाय सत्याय स्वाहा ॥ ९ ॥

सत्त्वं वा सात्त्विकमेव यत्तस्य परमात्मनः उद्रेकमासीत् प्रचुरमासीत् ।
यत्सत्त्वं सात्त्विकप्रधानं ब्रह्म उभयोरपि ऐहिकामुष्मिकयोः अनुगोप्ता

साकल्येन गोप्ता । यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकयोः । यद्वा मृते जन्मनो रक्षतः
तत्सत्यं सत्यंपदाय ततः ब्रह्मपदाय परमपदाय सत्यं परमपदप्राप्तये
सत्यमित्यर्थः । “ नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ” इति श्रुतेः । सत्याय
यथार्थभूताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

सत्यो जेनातिः सत्यान्तरात्मा सत्योद्योगः सत्यः सत्कर्मा
सत्यं सत्यं वितानमासीत्सत्यं सत्याय स्वाहा ॥ १० ॥

विनाशरहितत्वात् सत्यो जेनातिः । यद्वा भूतहितत्वात् सर्वेषां
हितरूपः । जेनातिः दीप्तिः । सत्यान्तरात्मा सत्यस्वभावः । सत्योद्योगः
सत्यसङ्कल्पः । सत्यः नित्यः । सत्कर्मा शोभनकर्मा । ननु यदि परमात्मा
विष्णुः सत्कर्मा तर्हि भृगुपत्न्यादिस्त्रीवधादिकमेव नोपपद्यत इति चेत्सत्यम् ।

उत्तरश्रीरामायणे—

शृणु राजन् यथावृत्तं पुरा देवासुरा युधि ।
दैत्यासुरैर्मज्जमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ॥
यदा दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्निर्मयास्तदा ।
तथा परिगृहीतांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरोत्तमः ॥
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ।
ततस्तान्निहतान् दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्भवः ॥
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं परबलार्दनम् ।
यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः ॥
तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम् ।
ततः प्रतिहरः शापस्तमृषिं पुनरागमत् ॥
इत्यादिसृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वात् दुष्टनिग्रहकर्तृत्वाच्च ॥

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ इति ॥

लीलाविभूतिकत्वात् सर्वात्मकत्वात् निरङ्कुशे स्वतन्त्रत्वाच्च न दोषः ।

अत एव सत्कर्मा सत्यं सत्यं वितानमासीत् सत्यं यथार्थभूतहितं सत्याय यथार्थभूताय तुभ्यम् ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

पञ्चमोऽनुवाकः

सत्यः सत्यं पुण्यमासीत्पुण्यो वा दैविकं सत्यं सत्त्वमार्षं
सत्यं सत्त्वं सत्यथाय स्वाहा ॥ १ ॥

सत्यः चिदचिदात्मकः परमात्मा सत्यं पुण्यमासीत् । सत्यशब्देन मोक्षोपायभूतज्ञानरूपः । पुण्यशब्देन इष्टापूर्तादयः स्वयमेवासीत् । पुण्यो वा दैविकं “तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके” इति श्रुतेः । भगवत्प्रीत्यर्थं कृतं पुण्यदैविकं कालान्तरेऽपवर्गप्रदम् । सत्यं सत्त्वमार्षं मोक्षोपायभूतज्ञानरूपं शुभाश्रय-संशीलनमननमिति मननविषयत्वादार्षमित्युक्तम् । तत्परं ब्रह्म “नारायणपरं ब्रह्म” इति श्रुतेः । श्रीमन्नारायण एव सत्यं सत्त्वं सत्यथाय सन्मार्गभूतः सत्त्वशब्दवाच्यः परमात्मा अर्चिरादिमार्गभूत इत्यर्थः । “ये चत्वारः पथयो देवयानाः” इति देवयानमार्गाश्चतुर्विधाः ।

स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।

स्वदत्तस्वधियं स्वार्थं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वयम् ॥

इति न्यासविद्यानां विविधानामर्चिरादिमार्गाः प्रतिग्रथन्ते । "अचि-
षोऽहरह आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्घ्रेति मासांस्तान्मासेभ्यः
संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः
स एनान् ब्रह्म गमयति " इत्यादि ।

ये तु दग्धेन्धना लोके पुण्यपापविवर्जिताः ।

तेषां वै क्षेममध्वानं गच्छतां द्विजसत्तमः ॥

सर्वलोकतमोहन्ता आदित्यश्चारमुच्यते ।

ज्वालामाल्मिहातेजा येनेदं धार्यते जगत् ॥

आदित्यदग्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केचन कश्चित् ।

परमाण्वात्मभूताश्च तं देशं प्रविशन्त्युत ॥

तस्मादपि विनिर्मुक्ता अनिरुद्धं तथा स्थिताः ।

मनोभूतास्ततो भूयः प्रद्युम्नं प्रविशन्त्युत ॥

प्रद्युम्नाच्च विनिर्मुक्ता जिह्वासङ्कर्षणं ततः ।

प्रविशन्तीति प्रबला सङ्ख्यायोनांश्च तैस्सह ॥

ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमोजसा ।

सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः ॥

समाहितमनस्कास्तु नियताः संयतेन्द्रियाः ।

एकान्तभावा हि गताः वासुदेवं व्रजन्ति ते ॥

श्वेतद्वीपमितः प्राप्य विश्वरूपधरं हरिम् ।

ततोऽनिरुद्धमासाद्य श्रीमन् क्षीरोदधौ हरिम् ॥

ततः प्रद्युम्नमासाद्य देवं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
 ततः सङ्कर्षणं दिव्यं भगवन्तं सनातनम् ॥
 ततः भ्रम्यपरो मार्गः सदा ब्रह्महितैषिणाम् ।
 परमैकान्तिसिद्धानां पञ्चकालरतात्मनाम् ॥
 तेभ्यो विशिष्टाज्जानामि गतिमेकान्तिनां नृणाम् ।
 उत्कामन्ति च मार्गस्थाः शीतभूतो निरामयः ॥
 देवयानः परं पन्था योगिनां क्लेशसङ्क्षये ।
 अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि ॥
 सितासिता षण्णविलाः [?] कपिलाः पीतलोहिताः ।
 ऊर्ध्वमेते स्थितास्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ॥
 ब्रह्मलोकमतिक्रम्य [नूनं] याति परां गतिम् ।
 यदस्यां न द्रव्यमस्ति ह्यूर्ध्वमेतद्व्यवस्थितम् ॥
 तेन देवशरीराणि सधामानि प्रपद्यते ।
 एकैकरूपाश्चाधस्ताच्छर्म येऽस्यामृतप्रभाः ।
 इह कर्मप्रभोगाय तैस्संनरतिरेव सः ॥ इति ॥

“अग्नयो वै त्रयी विद्या देवयानः पन्था गार्हपत्य ऋक् पृथिवी
 रथन्तरमन्वाहार्यपचनं यजुरन्तरिक्षं वामदेव्यमाहवनीयस्साम सुवर्गो लोको
 बृहत्तस्मादग्नीन् परमं वदन्ति” इति श्रुतिः । अथाऽयं देहजं जन्म कृत्वा
 भार्यामयपाशबन्धनो भगवन्मायया कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यहिंसादीनि
 कार्याणि कृत्वा तद्द्वारेण निष्क्रम्य पुनः पापीयसीं योनिं प्राप्य पुनर्जायते ।
 स्वर्गनरकफलेषु प्रवर्तते । तस्माद्भगवन्मायया मोहितत्वात् भगवन्तं स्माश्रित्य
 भक्त्या नारायणमुपासीत । उपासनात्सोऽपि भक्तवत्सलत्वात् भक्तानुकम्पया
 त्वमायया विमोचयति । तत आत्मा सम्यक् ज्ञानं प्रविशति । पश्चादाश्रम-

धर्मसंयुक्तो भगवत्समाश्रयणं करोति । तत्समाश्रयेण संसारार्णवनिमग्नो जीवात्मा परमात्मानं नारायणं पश्यति । सोऽप्युपनरावृत्तिकं दिव्यलोकं प्रापयति । पश्चात्कृतकृत्यो भवति । संसारवनवासनामोक्षो मुक्तिः मोक्षविशेषः । चतुर्विधपदावाप्तिः सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्य इति । आमोदप्राप्तिः सालोक्यम् । प्रमोदप्राप्तिः सामीप्यम् । वैकुण्ठप्राप्तिः सायुज्यमिति । तच्च नित्यानन्दामृतरसपानवत्सर्वदा तृप्तिकरं परमात्मनो नित्यनिषेवणं परंज्योतिः-प्रवेशनम् । “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” इति श्रुतिः । तस्मात् भगवतो नान्यथाप्राप्तिरिति विज्ञायते इति । मोक्षोपि तारतम्यताश्रवणात् ब्रह्मविदां भगवदाराधकानामभिहोत्रिणामर्चिरादिना ब्रह्मप्राप्तिः “अर्चिरादिना तत्प्रथितेः” इति वेदान्तसूत्रे उक्तत्वात् । भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत् “तद्विष्णोः परमं पदम्” सम्यक् भवतीति विज्ञायत इति । अर्चिरादिमार्गाप्रतिपादनाच्च । न्यासविद्यानिष्ठानामर्चिरादिना परमपदप्राप्तिः । साङ्ख्यानां योगनिष्ठानामामोदप्राप्तिः । एकान्तिनां प्रमोदप्राप्तिः । परमैकान्तिसिद्धानां पञ्चकालरतात्मनां श्वेतद्वीपादिना ब्रह्मप्राप्तिः । मोदप्राप्तिः केवलस्यामोद एव । तत्रापि स्वानुभव एव ।

छान्दोग्यं—“यथाक्रतुरस्मिन् लोके पुरुषा भवन्ति । तथेतः प्रेत्य ते भवन्ति” इति श्रुतेः । तं यथायथोपासते तथैव भवन्तीति ॥ १ ॥

सत्यो ज्योतिः सत्त्वं प्राणाः सत्त्वाधाराः सत्त्वं संयानाः
सत्यः सत्त्वं प्रकाशं ज्योतिषे स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् सत्यो ज्योतिर्ज्योतिष्मत् षड्भावविकाररहितत्वात् अनेकरूपरहित इत्यर्थः । सत्त्वं प्राणाः “नव वै पुरुषे प्राणाः” इति भगवदभिमानदेवतान्तर वागाद्यभिमानिदेवतान्तर्यामिसत्त्वाधाराः

वागादयः सत्त्वाधाराः आधारभूता इत्यर्थः । सत्त्वं संयानाः सत्यः सत्य-
भूतहितः सत्त्वं “सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्” इति । ज्ञानरूपं ज्योतिः-
प्रकाशं ज्योतिषे तस्मै ज्योतिषे तुभ्यम् ॥ २ ॥

कामीमुमामीशिषमीशिषाणां तत्सत्यं सत्यरूपं सत्यं
सत्याय सन्दधानाय स्वाहा ॥ ३ ॥

कामीमुमां ब्रह्मणो मा ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।

अहं तवाङ्गसम्भूतस्तस्मात्केशवनामवान् ॥ इति ॥

कां सरस्वतीं ईं लक्ष्मीं उमां पार्वतीं ईशिषं सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं
ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।

तत्तद्रूपे पालयन्तमाशिषस्सत्यमीशिषम् ॥

रुद्रस्यापि पालकं ईशिषाणां तत्सत्यं सत्यरूपं “तमीश्वराणां परमं
महेश्वरम्” इति श्रुतेः । तत्परममहेश्वरत्वं यथार्थसत्यरूपं यथार्थसत्यं सत्याय
चिदचिदात्मकप्रपञ्चाय सत्यं हितं सन्दधानाय प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ३ ॥

अरिणिर्वा आरन्द आवारन्द आरन्दोऽयमानन्दते मारन्द-
मीशिषे स्वाहा ॥ ४ ॥

अयं परमात्मा अरं वेगः येषामस्तीति अरिणिः वेगवत्सु मुख्यः
वेगवानेव । आरन्दः आसस्पतादरं वेगं ददाति आरन्दः आवारन्दः अवगत
वेगमान्धं ददातीति आवारन्दः । “आर पीडायाम्” इति पीडाप्रदः ।

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं वराम्यहम् ।

बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याघ्रीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥

अयं परमात्मा मारं कामं ददातीति मारन्दः कामप्रदः । आनन्दते
एवमाकारेण क्रीडते—

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामगमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥

इति तुभ्यम् ॥ ४ ॥

यत्सत्यं वा विष्णुरुद्योगः सूर्यो गौर्वा विष्णुर्विशत् विश्वं
विश्वं सन्दधानः तद्विश्वं विष्णवे विश्वरूपाय स्वाहा ॥ ५ ॥

यत्सत्यं स हरिर्देव इति जीवजातमित्यर्थः । विष्णुः व्याप्तिमान्
उद्योगः सर्वोपायभूत इत्यर्थः । सूर्यो गौर्वा सूर्यं किरणं च विष्णुर्विशत्
विश्वं विश्वं सन्दधानः प्रविश्य चिदचिदात्मकं जगत् वसन्ते ग्रीष्मके
रश्मिशतैस्सन्तपतन् त्रिभिः—

तदा शरदि वर्षासु वर्षत्येष चतुःशतैः ।

हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः ॥ इति ॥

भारते—

उदितो वर्षमानामिरा मध्याह्नं तपन् रविः ।

ततः परं हसन्तीभिर्गोभिरस्तं निगच्छति ॥ इति ॥

“तदेवानुप्राविशत्” इत्यादिश्रुतेः । प्रविश्य विश्वं जीवं विश्वं लोकं
सन्दधानः धारयन् तद्विश्वं जीवात्मानं विष्णवे सर्वभूतात्मकाय ददामीति
आत्मसमर्पणमुच्यते ॥

नीचीभावेन संयोज्य ह्यात्मनो यत्समर्पणम् ।

विष्ण्वादिषु चतुर्धा तु तत्प्रदानप्रदर्शिनी ॥

नीचीभूतोऽप्यसावात्मा यतत्यंशतयेष्यते ।

तत्तस्मादित्यपेक्षायां विष्णवे स इतीर्यते ॥ इति ॥

आत्मसमर्पणप्रतिपादनाद्यासविद्या ।

हविर्गृहीत्वा स्वात्मानं वसुरण्वेति मन्त्रतः ।

जुहुयात्प्रणवेनाग्नावच्युतारूयं सनातने ॥

योगरत्ने—

पयोमक्षा वायुमक्षाः शीणपर्णाशिनो वा समलोष्टकाञ्चना वाग्यताः प्राणायामाद्यासननिरताः सर्वतोऽरता बहिष्कृतसर्वकामाः परमशान्ताः परमात्मनि गोविन्दे सदा निहितमानसाः वसुरण्वमन्त्रमुच्चारयन्त आत्मानं तेजोमये परमात्माग्नौ दहन्ति तेऽपि मुक्ता भवन्ति । एष जीवात्मपरमात्मनोर्ज्ञान-गो मोक्षयुक्त-इति विजानीयात् । एतज्ज्ञानमात्रादेवाचिरान्मोक्षः सिध्यतीति जानीयादिति । प्रसङ्गाद्वसुरण्वमन्त्रस्यार्थ उच्यते । हे प्रत्यगात्मन् वसुर्वसुस्सर्वेषां सवितासि सर्वेषां धनमिवासीति । वसुरण्वशब्दे च सर्वैः कीर्तनीय-श्चासि । विभूरसि सङ्कल्पमात्रेण विविधं भावयितासि । प्राणे त्वमसि सन्धाता प्राणे वसन् सर्वस्यानुसन्धाता चासि ब्रह्मन् तृचोत्तरस्त्वमसि विश्वं त्वमेवासि विश्वस्रष्टा चासि । तेजोदास्त्वमस्यग्नेः तेजसि भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणीति पराभवसामर्थ्यम् । तेजसो वा वर्चोदास्त्वमसि सूर्यस्य वर्चोदा अस्त्विति दीप्तिप्रदः द्युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमसः द्युम्नशब्दो दीप्ति-विशेषपरः उपयामगृहीतोऽसि हविषोः स्कन्दने हेतुभूत उपभृदादिरूप उपयामः तत्र प्रकृतिपुरुषज्ञानमुपयामः तेन गृहीतोऽसि ब्रह्मणे त्वामहस ओमित्यात्मानं युञ्जीत ॥

अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः ।

उद्धृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेण तथोच्यते ।

मकारस्तु तयोर्दास इति प्रणवलक्षणम् ॥

अकारवाच्याय सर्वकारणभूताय सर्वरक्षकाय सर्वशेषिणे श्रियः पतय
एवाहमनन्य इत्याह → निरुपाधिकशेषभूतस्तम्बरणारविन्दयोरेकात्मियमरस्त-
स्यात्मा नारायणायैव सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वकैङ्कर्याणि स्युरिति
कारणभूताय विष्णवे तुभ्यम् ॥ ५ ॥

तद्भूभूस्थं भूस्थो वा विश्वरूपस्तद्भूः प्राणः सङ्ख्यातः
भूरासीद्भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूर्भूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

तद्भूः आकाशः भूस्थं जलं भूस्थः अग्निः विश्वरूपः नानारूपः
पञ्चसङ्ख्यात्वेन विद्यमानः प्राणः तद्भूश्रुतिः । “तस्माद्वा एतस्मादात्मन
आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।
पृथिव्या ओषधयः” इत्यादि भूरासीत् । भूमेरपि भूमिः आधारभूते-
त्यर्थः । भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूरादिलोकरूपोऽसि भूः भूतये
भूरादिलोकानामैश्वर्यभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ६ ॥

आपो वा अपोऽन्तरात्मा यो वेदो वेदानामाधारः
वेदान्तरात्मा सरसो रससङ्ख्यातो रसं रसमासीद्रसाय
स्वाहा ॥ ७ ॥

यः परमात्मा सर्वकारणभूता आपः सृष्ट्यर्थमित्यर्थः । अण्डस्यापि
कारणभूता इत्यभिप्रायेण पृथक्त्वेनोपादानम् । ततो “येन जीवान्व्यचसर्ज
भूम्याम्” इति श्रुतिः ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपासृजत् ।

तदण्डमभवद्देवं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ इति ॥

अपोऽन्तरात्मा योऽप्सु तिष्ठन्निजितः । यः परमात्मा वेदः वेदरूपः
वेदानामाधारः “तस्य ह वा एतस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतदहम्वेदः”

इत्यादि । वेदान्तरात्मा तदन्तर्यामी सरसः अन्तर्बहिश्च सारवान्
रससङ्ख्यातः समग्रबाहुगुण्यपरिपूर्णः । यद्वा—

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ।

बीभत्सरौद्रशान्ताश्च रसाश्च नव कीर्तिताः ॥ इति ॥

यद्वा—लवणान्लकटुतिक्तकषायाः । रसं रसमासीत् रसानां रस
आसीत् । रसाय रसरूपाय तुभ्यम् ॥ ७ ॥

त्रयी वा कामं त्रयीमयं त्रिगुणं त्रेतात्मकं त्रयी वा जेनातिः
त्रिगुणं त्रिगुणात्मकं तस्मै त्रेताग्रये त्रिगुणाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रयी वा कामं इत्यनेनैव वेदवाक्यव्यतिरिक्तभाषान्तरव्यावृत्तिः ।
शान्तिपर्वणि—

ओङ्कारमुद्गिरन्नेतां सावित्रीं च तदन्वयात् ।

शेषेभ्यश्चैव वक्तेभ्यश्चतुर्वेदगतं वसु ॥ इति ॥

त्रयीमयं वेदस्वरूपं वेदेषु प्राचुर्येण प्रतिपाद्यं वेदभेदादुच्च-
नीचादिस्वरभेदेन त्रिगुणं त्रेतात्मकं गार्हपत्यान्वाहार्यपचनाहवनीयभेदेन
त्रेतात्मकम् । यद्वा गार्हपत्यादीनां प्राणभूतत्वात् त्रेतात्मकमित्युक्तम् । त्रयी
वा जेनातिः वेदरूपजेनातिः त्रिगुणं ि यनैमित्तिककाम्यभेदेन त्रिगुणम् ।
यद्वा—सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रिगुणम् । त्रिगुणात्मकं आधारभूतमेवं-
भूताय तस्मै त्रेताग्रये त्रिगुणाय गुणत्रयसहिताय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

द्वौ वा मुख्यौ मुख्याधारौ ससुखौ सानन्दौ सस्मेरौ
स्मेरायितौ सानन्दमानन्दते स्वाहा ॥ ९ ॥

द्वौ ब्रह्मरुद्रौ । यद्वा प्रतिपुरुषौ मुख्यौ मुख्याधारौ अस्वतन्त्रौ
परमात्माधारौ । “अन्तरस्मिन्निमे लोकाः” इति । ससुखौ सुखसहितौ

सानन्दौ हितरूपं सुखं अहितं दुःखं सस्मेरौ स्मेरयुतौ हाससहितौ
स्मेरायितौ,

एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ ।

तथा दर्शितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवह्नीन्दुदिवाकरमनुग्रहाः ।

तच्छक्त्याधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥ इति ॥

सानन्दं आनन्दसहितं आनन्दते ।

इष्टे वस्तुनि दृष्टे च प्रियमेवावभासते ।

तद्वस्तुलभान्मोदः स्यात्प्रमोदस्तस्य भोगतः ।

एते स्म जठरानन्दात् स्वदन्ते जलधेरिव ॥ इति ॥

“ सैवाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति । युवा स्यात्साधुयुवा-
ध्यायकः । आशिष्ठो द्रदिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा
स्यात् । स एको मानुष आनन्दः ” इत्यारभ्य “ स एको ब्रह्मण आनन्दः ”
इत्यन्तं मानुषमनुष्यगन्धर्वदेवगन्धर्वाणां पितृणामाजानजानां कर्मदेवानामिन्द्रस्य
बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मण इति मानुषानन्दमुपक्रम्य ब्रह्मानन्दपर्यन्तमुक्त्वा
ब्रह्मानन्दस्यापरिमितत्वात् आनन्दो ब्रह्मेति सदतिशयानन्दस्वरूपत्वाच्च
ब्रह्मणः “ यतो वाचो विवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ” इत्युक्तम् । एवं-
भूताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

स एकैकः साधारः साधिष्ठानो नाधिष्ठानः कं कं कस्मै
पदे पदे पातः पादाय पादिते स्वाहा ॥ १० ॥

स परमात्मा एकैकः अनेन “ सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ”, “ एक-
मेवाद्वितीयम् ” इति श्रुतेः । सृष्टेः प्राक् निमित्तोपादानकारणान्तररहिते

साधारः हृदयकमलाद्याधारः । साधिष्ठानः “तद्विष्णोः परमं पदम्” इति
 श्रुतेः परमपदाद्यधिष्ठानसहितः । नाधिष्ठानः अवान्तरकत्वेनाधिष्ठानभूतो न
 भवति । यद्वा—धारकान्तररहितः एवंभूतस्य परमात्मनः पादाय पातः
 प्रणतिः कं कं पुरुषमपि पदे पदे परमात्मना संपादिते ।

आमोदश्च प्रमोदश्च संमोदस्तदनन्तरम् ।

वैकुण्ठमिति विज्ञेयास्तेऽन्योन्यमुपरि स्थिताः ॥

अतः परं चतुर्थः स्याल्लोकः परमभास्वरः ।

वासुदेवस्य सुमहत्तद्दीप्तमजरावृतम् ॥

द्वादशावरणोपेतं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।

सर्वतेजोमयं भास्वदनिर्देश्यं सुरैरपि ॥

आनन्दं नाम तं लोकं परमानन्दमद्भुतम् ।

यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता यत्र कुत्र निवासिनः ।

वासुदेवरता नित्यं यमलोकं न यान्ति ते ॥ इति ॥

पदे पदे आमोदादिपदे पदान्तरे वा तापयतीति शेषः ।
 नित्यमुक्तबन्धैश्च क्रीडते तुभ्यम् ॥ १० ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।

षष्ठोऽनुवाकः

स्वयमादिः सर्वान्तरात्मा देवस्य स्वयं क्रीडात्मकमवासृजत्
 यः स्वयं लोकमवधारमवधारयन् स्वाहा ॥ १ ॥

अतः परं परब्रह्मणो नारायणस्य परत्वान्तर्यामित्वादिप्रतिपादनमुखेन अर्चावतारादिकं प्रतिपादयति—स्वयमादिः इत्यादिना । स्वयमित्यनेन “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्”, “एकमेवाद्वितीयम्” इति श्रुतेरभिन्न-निमित्तोपादानकारणभूतं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिभिः सत्यत्व-ज्ञानत्वानन्तत्वविशिष्टं “आनन्दो ब्रह्म” इति निरतिशयानन्दस्वरूपं “नारायणपरं ब्रह्म” इत्यादिभिः परंब्रह्मपरंतत्त्वपरं ज्योतिःपरमात्मादिशब्दवाच्यं नारायणमेवाह—स्वयमिति ॥

नारस्त्विति सर्वपुंसां समूहः परिकीर्तितः ।

गतिरालम्बनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥

अखिलजगत्कारणभूतो नारायण एवादिरित्युच्यते । यद्वा—
आदिशब्देन परत्वम् ।

परत्वं नाम—

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः ।

आस्ते विष्णुरचिन्त्यात्मा भक्तैर्भागवतैः सह ॥

परे लोके—

अतः परं चतुर्थः स्यादित्यादि ॥

श्रिया सार्धम्—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।

यथा सन्नगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥

जगत्पतिः —

पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।

एक एव जगत्त्वामी शक्तिमानच्युतः प्रभुः ॥

तदंशाच्छक्तिमन्तोऽन्ये ब्रह्मेशानादयोऽमराः ।

ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः ॥

स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ।

विश्वव्यापकशीलत्वाद्विष्णुरित्यभिधीयते ॥

अचिन्त्यात्मा—

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥

भक्तैः—

भक्तैस्तद्भक्तवात्सल्यं तत्पूजास्वनुरञ्जनम् ।

तत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥

तदनुस्मरणं नित्यं तदन्यस्य च वर्जनम् ।

नित्यं तदेकशेषत्वं यद्भुक्तेनोपजीवति ॥ इति ॥

भांगवतैः—

उत्पत्तिश्च विनाशश्च भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

पञ्चशक्तिमयो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ।

लोकस्थितिमिमां दीर्घो विशालामतिदुस्तराम् ।

पश्यन्नास्ते हृषीकेशः परमे व्योम्नि भास्वति ॥

एवं परत्वमुपपादितम् । सर्वान्तरात्मा इत्यनेन “अन्तः प्रविष्टः
शास्ता जनानां सर्वात्मा”, “यस्यात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम्”
इत्याद्यन्तर्यामित्वं स्वयमादिः इत्युक्तत्वात् । दैविकमानुषभेदेन व्यूहो
द्विविधः ।

कथं त्वमर्चनीयोऽसि मूर्तयः कीदृशास्तु ते ।

वैखानसाः कथं वा स्युः कथं वा पाञ्चरात्रिकाः ॥

श्रीभगवान्—

शृणु पाण्डव तत्सर्वमर्चनाश्रममात्मनः ।

स्थण्डिले पद्मकं कृत्वा साष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥

अष्टाक्षरविधानेन अथवा द्वादशाक्षरैः ।

वैदिकैरथवा मन्त्रैर्मनुनोक्तेन वा पुनः ॥

स्थितं मामन्तरे तस्मिन्नर्चयित्वा समाहितः ।

पुनः च ततस्सत्यमच्युतं च युधिष्ठिर ॥

अनिरुद्धं च मां प्राहुर्वैखानसविदो जनाः ।

अन्ये त्वेवं विजानन्ति मां राजन् पाञ्चरात्रिकाः ॥

वासुदेवं च राजेन्द्र सङ्कर्षणमथापि च ।

प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चतुर्भूर्तिं प्रचक्षते ॥

एताश्चान्याश्च राजेन्द्र संज्ञाभेदेन मूर्तयः ।

विद्धि मेऽर्चान्तराण्येव मामेवं चार्चयेद्बुधः ॥ इति ॥

वैभवं त्ववतारानाम्—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः ।

रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश ॥ इति ॥

देवशब्दप्रयोगसामर्थ्यात् व्यूहविभवे अभिप्रेते स्वयं इत्यनेन

“पञ्चधा पञ्चात्मा” इत्यादिश्रुत्यर्थोऽत्रानुसन्धेयः । पञ्चधेत्यनेन परव्यूह-

विभवान्तर्याम्यर्चावतार इति पञ्चधा प्रतिपादितासु,

व्याप्तिः कान्तिः प्रवेशोऽर्चा तत्क्रियासु निबन्धनाः ।

परत्वेऽप्यधिकं विष्णोर्देवस्य परमात्मनः ॥

मुक्तोऽपि भोगभेदत्वात्परव्यूहात्मनो हरेः ।

तत्कालसन्निकृष्टे च लक्ष्यत्वाद्विभवात्मनः ॥

विशुद्धैर्यागसंसिद्धैश्चिन्त्यत्वादनन्तरात्मनः ।

अर्चात्मन्येव सर्वेषामधिकारो निरङ्कुशः ॥

अर्चावतारविषयं ममाप्युद्देशतस्तथा ।

उक्ता गुणा न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ॥

एवं पञ्चप्रकारोऽहमात्मनां पततामधः ।

पूर्वस्मादपि पूर्वस्माज्जायांश्चैवोत्तरोत्तरः ।

सौलभ्यतो जगत्स्वामी सुलभो ह्युत्तरोत्तरः ॥ इति ॥

परत्वादौ सौलभ्याभावात् सर्वसुलभत्वादर्चावतारः ।

शिलादारु च ताम्रं च रजतं काञ्चनं मणिः ।

उक्तानि कौतुकार्थं तु षड् द्रव्याणि मनीषिभिः ॥ इति ॥

शैलजादिरूपेण विग्रहपरिग्रहादिकं भगवतः प्रतिपादयति इयं

श्रुतिः—क्रीडात्मकमवाप्तृजत् इति ॥

नृसिंहतापनीयोपनिषदि—

अथ कस्मादुच्यते वीरमिति यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान्
सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजसं सृजति
विसृजति वासयति यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः
तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ इत्यादि ॥ यतः भक्तसंरक्षणादिहेतुत्वेन वीरः—

यदि ब्रह्मं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यो कर्म चेदहम् ।

संकरस्य च कर्ता त्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

इत्यादिभगवद्वचनानुरोधेन नित्यविभूतौ पादप्रक्षाळनादिकर्मकरणे योग्यताभावात्, विभूतौ पादप्रक्षाळनाचमनस्नानादिकर्मकरणायोग्यतात्वमिच्छन् सुदक्षां सुतरां स्वापकादीनां यथायोग्यं कामितफलप्रदानसमर्थः “युक्तग्रावा जायते देवकामः” देवतात्वमिच्छन् श्रीवैखानसादिशास्त्रोक्तशैलादिप्रतिमारूपे जायते । ग्रावाग्रहणं सुवर्णरजतादीनामप्युपलक्षणम् ।

किञ्च—

पिशङ्गरूपस्तुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

पिशङ्गरूपः सुवर्णवर्णः सुभरः सुखेन भर्तुं शक्यः वयोधाः वयसा गरुडेन ध्रियत इति वयोधाः वीरशब्देन पूर्वोक्तमन्त्रप्रतिपाद्य एवात्रापि प्रतिपाद्यते पिशङ्गरूप इत्यादि गुणशिष्टत्वेनोक्तत्वात् सालग्रामपरत्वेन वा ग्रावापरत्वेन वा वक्तुमयुक्तमित्यवगम्यते ।

भारते—

सुरूपां प्रतिमां विष्णोः प्रसन्नवदनेक्षणाम् ।

कृत्वात्मनः प्रीतिकरीं सुवर्णरजतादिभिः ॥

तामर्चयेत्तां प्रणमेत्तां जपेत्तां विचिन्तयेत् ।

विशत्यपास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मरूपिणीम् ॥

ग्रन्थान्तरे—

द्वीपवर्षविभागेषु तीर्थेष्वायतनेषु च ।

मानुषाश्चात्मना चाहं ग्रामेग्रामे गृहेगृहे ॥

पुंसिपुंसि संभवानि दारुलोहशिलामयः ।

अहं पञ्चोपनिषदः परव्यूहादिषु स्थितः ॥

आविर्भावेषु सर्वेषु स्वसङ्कल्पशरीरवान् ।

आवेशाश्चावतारेषु पाञ्चभौतिकविग्रहः ॥

दारुलोहशिलामृत्तनाशरीरोर्चात्मकः स्मृतः ।
 चेतनाचेतनैर्देही परमात्मा भवाम्यहम् ॥
 अर्चात्मनावतीर्णं मां जानन्तो हि विमोहिताः ।
 कृत्वा दारुशिलाबुद्धिं गच्छन्ति नरकायुतम् ॥
 स्वयम्भूनां विमानानामभितो योजनद्वयम् ।
 क्षेत्रे पापहरं प्रोक्तं मृतानामपवर्गदम् ॥
 योजनं दिव्यदेशानां सिद्धानामर्थमेव च ।
 मनुष्याणां विमानानामभितः क्रोशमुत्तमम् ।
 गृहमात्रं प्रशस्तं वा गृहार्चा यत्र विद्यते ॥ इति ॥

पुरुषसंहितायां नारदं प्रति सनत्कुमारः—

पुरा नारायणो देवः कृपया परयान्वितः ।
 देवतिर्यङ्मनुष्यादीन् वीक्ष्य संसारमध्यगान् ॥
 एवं सञ्चिन्तयामास संस्मरन् वैभवं स्वकम् ।
 स्वतःप्रमाणवाक्यैश्च दुर्विज्ञानं वदन्ति माम् ॥
 अणोरणीयान्महतो महीयान्निर्गुणो गुणी ।
 दिग्देशकालावस्थायैरसौ चामेद्यवैभवः ॥
 प्रधीक्ष्यविहीनश्च सत्यकामो निरञ्जनः ।
 विनेन्द्रियेण सर्वज्ञो विना पादेन सर्वगः ॥
 अनासोऽनुभवन् गन्धं स्पृशन् सर्वमपाणिकः ।
 शृण्वन् श्रुतिं विना शब्दमजिह्वोऽपि लिहन् रसम् ॥
 साधनेन विना सर्वं साध्यं साधयतेऽवहम् ।
 तस्मात्सर्वप्रमाणेन सुदुर्ज्ञानतरो ब्रह्म ॥

मज्ज्ञानाभावगे मोक्षो न सिद्ध्यति कदाचन ।
 तस्मात्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यन्ते च सुदुस्तरे ॥
 उद्धरेयमिमान् सर्वान् यातनाशतसंकुलान् ।
 इति सञ्चिन्त्य भगवान् स्वच्छन्दोपात्तविग्रहः ॥
 हित्वौपनिषदं वेधं प्रमाणानामगोचरम् ।
 सर्वेषां हर्षदं भक्त्या दृष्टमात्रेण मुक्तिदम् ॥
 सर्वकल्याणसंपूर्णं गुणराशिसमाश्रयम् ।
 सहस्रमुखदृक्पादमाददे रूपमद्भुतम् ॥ इति ॥
 अतः स्वयं च भगवान् क्रीडात्मकमवाप्तुजत् ।
 अवतारस्य सत्यत्वमजिहासन् स्वभावतः ॥
 शुद्धसत्त्वमयत्वं च स्वेच्छामात्रेण दासता ।
 धर्मज्ञोऽसौ समूहश्च साधुसंरक्षणार्थता ।
 इति जन्मरहस्यं यो वेत्ति नास्य पुनर्भवः ॥ इति ॥

पात्रे—

उद्धृतायां स मेदिन्यां पूर्णं तद्भूतभोन्ते ।
 जलं तत्कृतमर्यादं व्यवच्छिन्नमभूत्तव ॥
 संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदुर्व्याधारसिद्धये ।
 दिग्माजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥
 तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ।
 अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयुजे च दयापरः ॥ इति ॥

यः परमात्मा स्वयं लोकं भूरादिसर्वलोकान् अवधारं

अधस्ताद्धृतम् ।

U 21

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोज्जनः ।

पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥

इति शेषदिग्गजादिभिर्धृतं दिग्गजादीनामाधारत्वेन अबस्तात्
धारयन् कूर्मरूपेणेत्यर्थः ॥ १ ॥

यः स्वयं सृष्टमात्मना गुप्तमनुसंदितानमचरं चरन्तं स्वयं
क्रीडं क्रीडयन् क्रीडान्तरमनुप्राविशत् स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा स्वयं सृष्टं स्वेन सृष्टं आत्मना स्वेनैव गुप्तं
रक्षितं अनुसन्दितानं साकल्येन जीवस्य चात्मनः फलितं अचरं स्वातन्त्र्येण
गतिरहितं चरन्तं जीवं यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकं तं प्रत्यात्मानं

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ इति ॥

स्वतन्त्रत्वात्प्रतिमाप्रायेण क्रीडं क्रीडयन् अन्योन्यं क्रीडयन् स्वयं
क्रीडान्तरं वारोहादिरुक्तं अनु साकल्येन प्राविशत् । यद्वा कूर्मविषयत्वेन
स्वसृष्टमन्दरपर्वतं समुद्रमथनेन मन्थरस्योपरि चरन्तं गतिं कुर्वन्तं स्वयं
क्रीडयन् तथारणेन क्रीडयन् क्रीडान्तरममृतप्रदानार्थं स्त्रीविषधारणादिकं
साकल्येन प्राविशत् ।

देवतिर्यङ्मनुष्याख्यचेष्टामप्ति स्वलीलया ।

जगतामुपकाराय मनःकर्मनिमित्तजः ॥

समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्भूतभूतसर्गः ।

इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः सनाथिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥

इति तस्मै ॥ २ ॥

स्वौजसा सर्वमादधाति यः पापीयांसमनुपदमार्हिसत् सुपुण्यं
पुण्यात्मकं पुण्यं वितानं दाधार देवाय स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा स्वौजसा परबलाहरणशक्त्या सर्वं जगत् आदधाति
स्थापयति यः परमात्मा बलमद्रूपी पापीयांसं प्रलम्बासुरं अनुपदं लीलाकाले
गृहीत्वा गच्छन्तं पदमनुसृत्य अहिंसत् हिंसितवान् ।

श्रीवैखानसे—

योगनिद्रे ममादेशात् पातालतलसंश्रयान् ।
एकैकशश्च षड्गर्मान् देवकीजठरे नय ॥
हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्यांशस्ततो मम ।
अंशांशेनोदरात्तस्याः सप्तमः स भविष्यति ॥
गोकुले वसुदेवस्य तथान्या रोहिणी तथा ।
तस्य संभूतिसमये स विनेयस्त्वयोदरम् ॥ इति ।

सुपुण्यं सुतरां पुण्यस्वरूपं पुण्यात्मकं पुण्यशब्दवाच्यानामन्तर्या-
मिणं पुण्यं वितानं वितानरूपत्वेन दाधार शेषरूपेण कृष्णं दाधार
सङ्कर्षणभूतित्वेन क्रीडमानस्तस्मै । यद्वा पापीयांसं सर्वयज्ञविनाशकं
हिरण्याक्षपदमनुसृत्य अहिंसत् हिंसितवान् सुपुण्यं पुण्यात्मकं यज्ञं “यज्ञो
वै विष्णुः” इति पुण्यं वितानं दाधार त्रयीसंवरणं यत इति वेदमूलत्वात्
आच्छादकं दाधार स्थापितवान् ।

भृगुः—

हिरण्याक्षोऽपि दैत्येन्द्रो बलवान् बलिनां वरः ।
परेण गर्वाद्बुद्धिर्यज्ञविद्वेषकोऽभवत् ॥
तद्यथाकृतवान्विष्णुर्नरसूकरमूर्तिमान् ।
इत्वा स दैत्यं सबलं पश्चाद्यज्ञोनुवर्तयन् ॥

यज्ञवराहरूपिणौ इत्यर्थः ।

किञ्च—

आद्ये कलियुगे प्राप्ते सोमकेन हता त्रयी ।

इत्यारभ्य ।

अथ मत्स्याकृतिः श्रीशः प्रविश्याम्बुधिमध्यगम् ।

निमेष्य सोमकं वेदानदात् कञ्जनयोनये ॥

तादृशं पुण्डरीकाक्षं स्तोत्रैः सन्तोष्य पद्मभूः ।

उवाच वचनं प्रेम्णा दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥

तान्त्रिकेण पुरा प्रोक्तं मार्गेण भवदर्चनम् ।

न प्रसिद्धयति चास्माकं मनः कमललोचन ॥

वैदिकेन त्वदर्चा वै यथापूर्वं वदाच्युत ।

इत्युक्तो भगवान् देवः शास्त्रं श्रुतिपथागतम् ॥

सहस्रकोटिभिः श्लोकैः सङ्ख्यातं बहुविस्तरम् ।

सूत्रे मूलमनाद्यन्तं कल्पे कल्पे समाश्रितम् ॥

उवाच जगतां प्रीत्यै यज्ञानां पूरणाय च ।

मूलं सर्वाङ्गमानां च पुराणानां तथैव च ॥

स्मृतीनां सर्वसूत्राणां प्रत्यङ्गोपाङ्गशोभनम् ।

श्रुत्युक्तं तदिदं शास्त्रं वैखानसमहार्णवम् ॥

इत्युक्त्वा भगवानाद्यस्तत्रैवान्तरधीयत ।

ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डभृत् ॥

नैमिशारण्यमासाद्य मुनिबृन्दनिषेवितम् ।

तपस्तप्त्वा चिरं कालं ध्यायंस्तेजस्तु वैष्णवम् ॥

पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरं तथा ।

सश्रौतं च स्वमात्रं च वेदमन्त्रैरभिष्टुतम् ॥

सङ्क्षिप्य सारमादाय शाणोल्लिखितरत्नवत् ।
 धातुर्विखनसा नाम्ना मरीच्यादीन् सुतान् मुनीन् ॥
 अबोधयदिदं शास्त्रं सार्धकोटिप्रमाणतः ।
 मुनिभिस्तस्य सङ्क्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ॥
 कल्पेकल्पे महाविष्णोरुद्भूतं पूर्वतस्सदा ।
 तस्माद्वैदिकमाचारं यः कर्तुं भुवि वाञ्छति ।
 तस्येदं शास्त्रमित्युक्तं नेतरेषामितीरितम् ॥ इति ॥
 देवशब्दसामर्थ्यान्मत्स्यादिरूपेण क्रीडते तुभ्यम् ॥ ३ ॥

क्षमामेकां सलिलावसन्नां श्रुत्वा स्वनन्तीमनु स्वयं भूत्वा
 वराहो जहार तस्मै देवाय सुकृताय पित्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

क्षमां भूमिं एकां सलिलावसन्नां प्रलयजलाक्रान्तां स्वनन्तीं
 क्रोशन्तीं श्रुत्वा अनु पश्चात् स्वयं वराहो भूत्वा जहार उद्धृतवान् देवाय
 द्योतमानाय सुकृताय सुकृतं कृतवते पित्रे रक्षकाय ।

शान्तिपर्वणि—

आदौ महार्णवे घोरे भाराक्रान्तामिमां पुनः ।
 तदा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ॥
 सत्त्वैराक्रान्तसर्वाङ्गां नष्टां सागरमेखलाम् ।
 आगमिष्यामि संस्थातुं वाराहं रूपमास्थितः ॥
 इति तस्मै ॥ ४ ॥

यः कुं धरमाणः कुं धरतां कुं धरतामित्यबोचत् तां सानु-
 मन्तो विदधत्स्वतेजसा तस्मै देवाय वरिष्ठाय वरप्रदाय पित्रे
 स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा कुं भूमिं धरमाणः- आधारकूर्मादिरूपेण
धारयमाणः कुं धरां धरतां गोवर्धनपर्वतभङ्गभयभीतानां भयनिवारणार्थं
वर्षादिभयनिवारणार्थं च गोपान् प्रति कुं धरतां पर्वतानां सानुषु
वसन्त्वित्यध्याहारः अवोचत् इत्युक्तवान् औचित्यवशात् समीचीनार्थश्च-
कारनियमाच्च तां भूमिं सानुमन्तः पर्वताश्च गोपानां रक्षणार्थं स्वतेजसा—

सहकार्यनपेक्षं यत्तत्तेजः समुदाहृतम् ॥ इति ॥

विदधत् भृतवान् वरिष्ठाय श्रेष्ठाय वरप्रदाय पित्रे रक्षकाय तस्मै
तुभ्यम् ॥ ५ ॥

पृथां प्रस्वलन्तीं प्रमृज्यामृजाङ्गीं य ऊर्वोरूपादधात् तस्मै
मुख्याय वरदाय पित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

पृथां भूमिं प्रस्वलन्तीं जलमज्जनायासेन प्रकर्षेण स्वलन्तीं
यथास्थाने स्थातुमसमर्था अमृजाङ्गीं पङ्कादिमिलितशरीरां प्रमृज्य शुद्धिं
कृत्वा ऊर्वोरूपादधात् ऊरुमध्ये स्थापितवान् तस्मै मुख्याय वरदाय
पित्रे ॥ ६ ॥

यां गामुशन्तीमुशन्नभिपूर्णाभारक्तनीलाममृतां रजन्तीमा-
लालयन् लालितकङ्कणाङ्गीं तस्मै प्रजेशाय वरदाय पित्रे
स्वाहा ॥ ७ ॥

यां गां भूमिं उशन्तीं आक्रोशन्तीं भूतभूभारपीडया क्रोशन्तीं
वराहरूपेणावतीर्य उशन् शब्दं कुर्वन् अभिपूर्णां स्थावरजङ्गमादिभिः समृद्धां
आरक्तनीलां रक्तनीलवर्णां अमृतां जलेनाद्रां रजन्तीं रजसामिप्लुतां
लालितकङ्कणाङ्गीं जवोद्धरणवेळायां लालितानि जलकणानि यद्वा कङ्कणानि
यस्याः सा लालितकङ्कणाङ्गी तां भूमिं आलालयन् यः परमात्मा तिष्ठति
प्रजानामीशाय प्रजेशाय वरदाय पित्रे तस्मै ॥ ७ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां
स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजानां प्रतिः प्रजापतिः हे प्रजापते शब्दवाच्यपरमात्मन् त्वदन्यः
विश्वा जातानि विश्वस्मिन् जातानि परिता पालयिता रक्षकः स्रष्टा वा
न बभूव यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां पतये
स्याम तुभ्यम् ॥ ८ ॥

यो धूर्धुरं धूर्धुरं धूर्वराणां सुधूर्धूरसि धूर्धुराणां धूरसि
धूर्वराणे वे स्वाहा ॥ ९ ॥

यः परमात्मा धूर्धुरं भारस्यापि भारभूतः धूर्वराणां भारवहने पुष्टानां
धूर्धुरं भाररूपं सुधूर्धूरसि धूर्धुराणां धूरसि भारभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वाप्यर्हिसीज्जरया जरन्तं तं दैत्यमुख्यममृतात्मरूपं
सुत्तुरं स्तुराणां किंचित्स्वनन्तं तस्मै नृसिंहाय सुरेशपित्रे
स्वाहा ॥ १० ॥

यः परमात्मा नृसिंहरूपी जरया जरन्तं जीर्णतारहितं दैत्यमुख्यं
प्रथमं अमृतात्मरूपं वरप्रदानेन देवमनुष्यादिभिः दिवारात्रौ च मरणरहितं
भृगुः—

हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्यराट् स प्रमुर्भवेत् ।

वरेण गर्वी दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥

देवैर्वा मानुषैर्वापि मृगैर्जीवैरजीवकैः ।

दिवारात्रौ तथा चैवं वयो नैवं ममेति च ॥

एवं वरेण गर्वन्तं दैत्यं देवविरोधिनम् ।

वधं कर्तुं कृतोद्योगश्चिन्तयित्वा हरिः प्रभुः ॥

नरसिंहवपुः कृत्वा दिवारात्रौ व्यपोह्य च ।

सन्ध्यायां तु वधं कुर्यात् स्वीयाङ्के तु नखाङ्कुरैः ॥

बाह्यमभ्यन्तरं भित्त्वा जीवाजीवैर्नखैः शुभैः ।

एवं दैत्यवधं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ इति ॥

सुखुरं सुराणां नृसिंहनखापेक्षया सुकुमारनखं किञ्चित्स्थनन्तं
क्वजाधिकनखाग्रैः हिंसितत्वात् सन्धितुमशक्याद्वा प्रभुत्वाद्वा किञ्चित्स्थ
नन्तमर्हिंसीत् हिंसितवान् तस्मै नृसिंहाय नरसिंहरूपिणे सुरेशो ब्रह्मा रुद्रः
तस्य पित्रे रक्षकाय तस्मै ॥ १० ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

सप्तमोऽनुवाकः

तपोनिधि तपसां रयिदं रयिमायुरङ्गं व्यसनौघहन्तु
सासिष्वसन्तं सवने सवित्रे तस्मै सुरेशाय सुरबृन्दकर्त्रे स्वाहा ॥१॥

तपोनिधि "ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपश्चान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो
दानं तपो यज्ञं तपो भूर्भुवस्सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः " इति, तपः स्वधर्मवर्तित्वम्,
"तप इति तपो नानशनात् परम् " इत्यादिश्रुतिसिद्धानां तपःशब्दवाच्या-
नामावासभूतम् । तपसां रयिदं तपसामप्यैश्वर्यप्रदम् । रयिं ऐश्वर्यभूतम् ।
व्यसनौघहन्तु आपन्निवारकं स्वमक्तस्वापन्निवारकत्वं ब्रह्मादेरदृष्टम् ।
सासिष्वसन्तं असिंसहितः सासिः प्रतिघ इत्यर्थः तेष्वसन्तम् । सवने

समये सवित्रे फलप्रदाय सुरेशाय ब्रह्मरुद्रादीनामीश्वराय सुरबृन्दकर्त्रे
देवसमूहकर्त्रे तस्मै तुभ्यम् ॥ १ ॥

यो वा नृसिंहो विजयं विभर्षि साराजिमन्तं रयिदं
कवीनां साराजिमन्तं सजयं सहस्रं तस्मै सुयन्त्रे सुशेवधये
स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा हिरण्यवधादिना विजयं विभर्षि । विष्णुसूक्ते
“प्रतद्विष्णुस्तव ते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु
त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा” । प्रकर्षेण तस्माद्धि-
रण्यवधादिकारणादाविर्भूतो नृसिंहो न मृगः किन्तु विष्णुः भीमः दैत्य-
दानवरक्षसां भयंकरः,

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

कुचरो गिरिष्ठाः रत्नकूटपर्वते स्थितः सन् पादचारी भूत्वा
सन्ध्याकाले हिरण्यवधादिकं कृतवान् । यस्य विष्णोरुरुषु महत्सु त्रिषु
विक्रमणेषु भुवनानि अधिक्षियन्ति अधिक्षिप्तानि भवन्ति । तस्माद्विष्णुः
वीर्यवत्तया स्तवत इति ॥ श्रीमद्वैखानसेऽखिलसंहितायामप्येवमेवोक्तम्—

नरसिंहः सुभविता कस्माच्च भुवनेश्वरः ।

इत्युपक्रम्य ।

गत्वा तत्पुरंसाद्ये तु पर्वतं शृङ्गिरूपिणम् ।

रत्नकूटमिति ख्यातं पर्वतं सुमनोहरम् ॥

तस्यैव शिखरे रम्ये दृष्टः स भगवान् किल ।

नारायणस्तु सिंहत्वे मुखं कृत्वा च दारुणम् ॥

दंष्ट्राणां च तु तीक्ष्णत्वं सटाभिः स्कन्धसङ्कटम् ।

नररूपं वपुः कृत्वा मानुषत्वे व्यवस्थितः ॥

सुदारुणं महद्रूपं शत्रूणां साधनाय च ।

नखैस्तीक्ष्णैः सुदंष्ट्रैश्च चतुर्भिर्बाहुभिर्युतम् ॥

नागराश्च किलोद्युक्ता हिरण्यपुरवासिनः ।

अपराह्णे महासिंहं पर्वताग्रे प्रतिष्ठितम् ॥

सहस्रादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं प्रभया युतम् ।

आगच्छन्तं समुत्प्रेक्ष्य विद्रुता भयमोहिताः ॥

अपराह्णे मन्दभूते रक्तादित्यकरप्रभे ।

शीघ्रमुच्चार्य वेगेन मन्दिरं प्राविशद्वरिः ॥

इत्यादि ।

शीघ्रं चापं च गृह्णन्तं तत्प्रमुच्यासिमुत्तमम् ।

उत्पत्य खड्गं दृष्ट्वा तं हिरण्यकशिपुं रिपुम् ॥

एकेनैव च हस्तेन खड्गं जग्राह तस्य तम् ।

अन्येन पाणिना चारु समालम्ब्यादिकङ्कतम् ।

अस्त्रेण सह संयोज्य विभिदे तद्विधा हरिः ॥ इति ॥

साराजिमन्तं सर्वैश्वर्यवन्तं कवीनां ज्ञानिनां यद्वा भक्तानां
साराजिमन्तं साम्राज्यं सजयं जयसहितं ब्रह्मसं अपरिमितं तस्मै प्रह्लादाय
सुयन्त्रे भगवद्भक्ताय यद्वा परमात्मज्ञानिने सुशेवधये निधिभूताय ॥ २ ॥

रयिः ककुब्बान् दधद्विनष्टं रयिमद्विधानं तस्मै ककुब्बे
विद्विष्य पित्रे स्वाहा ॥ ३ ॥

रयिः ऐश्वर्यरूपः ककुब्बान् वृषभाववान् यद्वा श्रेष्ठः दधद्विनष्टं
येन केन प्रकारेण यस्मै कस्मैचित् विनष्टं पदार्थं वरप्रदानादिमुखेन प्रापयन्

रयिमद्विधानं रयिः इत्यनेन “ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम्” इति श्रुत्युक्तं विधानं विधिः श्रुतिप्रसिद्ध इत्यर्थः । अनेन शास्त्रबोद्धित्वं दर्शितम् । ककुत्त्रे ककुदि स्थिताय विकटाय वेङ्कटाय । ऋग्वेदे “अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे शिरिं बिठस्य सत्त्वभिस्तेभिष्ठा चातयामसि” इति ॥ हे अरायि ऐश्वर्यहीने काणे एकाक्षिन् अन्वस्य गमने सामर्थ्याभावात्काणस्य यथाकथंचित् गमनयोग्यता संभवतीति काणेत्युक्तम् । विकटे गिरिं गच्छ वेङ्कटगिरिं प्रति गच्छ “चतुर्हृतो ह वै नामैषः । तं वा एतं चतुर्हृतं सन्तम् । चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥”, “इन्द्रो ह वै नामैषः । तं वा एतमिन्द्रं सन्तम् । इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥” इति श्रुतेः परोक्षेणोक्तम् । सदान्वे सर्वदा अन्वेषणं कुरु ॥ यद्वा सर्वदा अन्वेषय शिरिं बिठस्य श्रीपीठस्य,

स्वामिपुष्करिणीतीरे कोटिकन्दर्पमूर्तिमान् ।

आस्ते लक्ष्म्या च धरया रमन् षोडशवार्षिकः ॥ इति ॥

सत्त्वभिः सात्त्विकगुणैः तेभिः तैः त्वा त्वां चातयामसि चातयामः

विनाशयामः ।

पादो—

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तिर्याम्यघोक्षजः ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

चिन्तितस्य तु विद्या तु चिन्तामणिमिमं जगुः ।

केचिद्दानप्रदत्वाच्च ज्ञानाद्रिरिति तं विदुः ॥

सर्वतीर्थमयत्वाच्च तीर्थाद्रिं प्राहुरुत्तमाः ।

पुष्कराणां च बाहुल्यत्वात् गिरावस्मिन् सररसु च ।

पुष्कराद्रिं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
 गिरावस्मिन् तपस्तेपे सोऽपि च स्वामिवृद्धये ॥
 तस्मादाहुर्वृषाद्रिं तं मुनयो वेदपारगाः ।
 शातकुम्भस्वरूपत्वात् कनकाद्रिं च तं विदुः ॥
 द्विजो नारायणः कश्चित् तपः कृत्वा महत्पुरा ।
 पश्चादश्वस्य नामा च व्यपदेशं मुरारितः ॥
 वैकुण्ठादागतत्वेन वैकुण्ठाद्रिरिति स्मृतः ।
 हिरण्यक्षविनाशाय प्रह्लादानुग्रहाय च ॥
 नारसिंहाकृतिं लेभे यस्मात्तस्मात्त्वयं हरिः ।
 सिंहाचल इति प्राहुस्तस्मादेव मुनीश्वराः ॥
 अञ्जनाद्रौ तपः कृत्वा हनूमन्तं व्यजायत ।
 तदा देवाः समागत्य देवकार्यार्थकारकम् ॥
 यस्मात्पुत्रं मम सुतं जन्मुस्तस्मादमुं गिरम् ।
 अञ्जनाद्रिं वराहाद्रिं वराहक्षेत्रलक्ष्मतः ॥
 नीलस्य वासुरेन्द्रस्य यस्मान्नित्यमवस्थितिः ।
 तस्मान्नीलगिरिं नामावदंस्ते तं महर्षयः ॥
 वेकारोऽमृतबीजं तु कट ऐश्वर्यमुच्यते ।
 अमृतैश्वर्यसङ्घत्वाद्देवताद्रिरिति स्मृतः ॥
 अयं कदाचिद्देवानां श्रीनिवास इवावभौ ।
 श्रीनिवासागिरिं प्राहुस्तस्माद्देवा दिवौकसः ॥
 आनन्दाद्रिमिमं प्राहुर्वैकुण्ठपुरवासिनः ।
 प्राहुर्भगवतः क्रीडाप्राचुर्यात् तवासुराः ॥

श्रीप्रदत्वाच्छ्रियो वासाच्छब्दशक्त्या च योगतः ।

रूढ्या श्रीशैल इत्येतन्नाम चास्य गिरेर्भवेत् ॥

बहूनि चान्यनामानि कल्पभेदाद्भवन्ति हि ॥

सर्वपापानि वै प्राहुः कटस्तद्वाह उच्यते ।

सर्वपापदहो यस्माद्वेङ्कटाचेल इत्यभूत् ॥

कलिदोषपरीतानां नराणां पापचक्षुषाम् ।

वेङ्कटेशात्परो देवो नास्त्यन्यः शरणं भुवि ॥ ३ ॥

राकामह९ सुहवा९ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु

त्पना सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीर९ शतदाय-
मुच्यं स्वाहा ॥ ४ ॥

राका परमपुरुषरञ्जनाद्राका यद्वा रातीति राका परमपुरुषरञ्जन-
योग्या अहं तापत्रयाभिभूतोऽहं यद्वा चतुर्विधपुरुषार्थकामोऽहं सुहवां
शोभनहवां लक्ष्म्याराधनं अधिकं शोभनार्थमेव नाभिचारनिमित्तम् ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

सत्त्वेन शौचसत्याभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।

धनैश्चर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।

स शूरः स च विक्रान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसे ॥

सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।

पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥ इति ॥

चतुर्विधपुरुषार्थेष्वपि लक्ष्म्या एव प्राधान्यात् सुहवां इत्युक्तम् ।

सुष्टुती सुषन्ति शोभनरूप्या स्तुत्या हुवे आह्वये शृणोतु नः आर्तनादं
शृणोतु यद्वा मम विज्ञापनं सुभगा,

भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्यवार्त्ताकीर्तिषु ॥ इति ॥

शृणोति निखिलं दोषं शृणोतु च गुणैर्जगत् ॥

श्रूयते चाखिलैर्नित्यं श्रूयते च परं पदम् ॥ इति ॥

सा भक्तस्य आर्तनादं श्रुत्वा तन्निवारणे यत्नं कर्तुं समर्था महानुभावा वीर्यवती कीर्तिमतीत्यादिगुणविशिष्टेत्यभिप्रायेण सुभगा इत्युक्तम् । बोधतु त्मना वेगेन बुध्यताम् । यद्वा सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया सूच्यग्र-सन्ततधारया कृपाकटाक्षजलेन नः सिञ्चतु ददातु वीरं परमात्मानं यद्वा पुत्रपौत्रादिकं शतदायमुक्थ्यं प्राणभूतं ददातु प्रयच्छतु ॥

ननु “पूर्वपक्षो राकापरपक्षः कुहूः” इति श्रुतेः देवतान्तरपरत्वेन श्रूयमाणो राकाशब्दः कथं लक्ष्मीपरो भविष्यतीति चेत्—उच्यते ; प्रकरणानुक्तादुक्तां योगो रूढिमपहरतीति न्यायात् भगवच्छब्दस्य तत्रैव मुख्यवृत्तत्वात् पुरुषार्कारभूतत्वात् राशिं हं रञ्जनात् सतामिति “अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी” इत्यादिभिः पुंस्त्वाभिधानेश्वरेश्वरीमिति सर्वशेषित्वाच्च ॥ ४ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे सर्वाणि
रूपाणि विचिंत्य धीरः नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते
स्वाहा ॥ ५ ॥

श्रीवेङ्कटेशत्वेन पूर्वं प्रतिपादितस्य परमात्मनः स्वरूपं स्तोतुमारभते—
वेदाहं इति ॥ एतं वेङ्कटाचलनिवासिनं पुरुषं पुरुषसूक्तेन प्रतिपाद्यम् । श्रूयते हि—भगवन् कूर्मरूपं प्रस्तुत्य कूर्मरूपो भगवान् ब्रह्माणमाह—“मम वै त्वङ्मांसं सा । समभूत्”—इति ॥ ब्रह्माह—“नेत्यब्रवीत्”—इति ॥ पुनश्च भगवान् कूर्मः प्राह—“पूर्वमेवाहमिहासमिति । तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्”—इति ॥ तदेव न्यस्तपुरुषत्वात् परं दर्शयति—“स सहस्रशीर्षा

पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूत्वोदतिष्ठत् ॥ इत्यादि ॥ महान्तं
“तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्” इति ॥ पूर्णत्वात्पुरुषः इति ॥

पादो—

शब्दोऽयं सोपचारेण तथा पुरुष इत्यपि ।
निरुपाधौ वदन्त्येते वासुदेवे सनातने ॥
सर्वलोकप्रतीत्या च पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुषशब्दभाक् ॥
ब्रह्माद्याः सकला देवा यक्षतुम्बुरुनारदाः ।
ते सर्वे पुरुषांशत्वादुच्यन्ते पुरुषा इति ॥

उत्तररामायणे अगस्त्यः—

असौ राम महाबाहुः रतिमानुषचेष्टया ।
तेजोमहत्तया चासि संस्कार इति पुरुषम् ॥

हरिवंशे—

गोवर्धनादिधरणीनाम् नन्दसुतोऽपि सन् ।
पुरुषस्यांशभूतं त्वामादधन्निरणे बही ॥

स्कान्दे—

यदा भास्करशब्दोयमादित्ये प्रतितिष्ठति ।
यदा चामौ बृहद्भानुर्यदा वायौ सदा गतिः ॥
तथा पुरुषशब्दोऽयं वासुदेवेऽवतिष्ठति ।
यदा शङ्करशब्दोऽयं यथा देवे व्यवस्थितः ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

देवतिर्यङ्मनुष्येषु पुंनामा भगवान् हरिः ।
श्रीर्नाम लक्ष्मीर्मेत्रिय नानयोर्विद्यते परम् ॥

नारसिंहे—

य एव वासुदेवोऽयं पुरुषः प्रोच्यते बुधैः ।

प्रकृतिस्पर्शराहित्यात् स्वातन्त्र्ये वैभवादपि ॥

स एव वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरुष उच्यते ।

स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ॥ इत्यादि ॥

सहस्रशीर्षेत्यादिशब्दसिद्धः पुरुषः श्रीवेङ्कटेशः तस्य वैभवं
भूतिपादयति ॥

अत्र प्रथमया विष्णोर्देशतो व्याप्तिरीरिता ।

द्वितीययास्य विष्णोश्च कालतो व्याप्तिरीरिता ॥

विष्णोर्माहसदत्वं च कथितं तु तृतीयया ।

एतावानिति मन्त्रेण वैभवं कथितं हरेः ॥

तस्माद्विराडित्यनया वदेन्नारायणाद्धरेः ।

प्रकृतेः पुरुषस्यापि समुत्पत्तिः प्रदर्शिता ॥

यत्पुरुषेणेत्यनया सृष्टियज्ञः समीरितः ।

अनेनैव तु मन्त्रेण मोक्षश्च समुदीरितः ॥

तस्मादिति च सप्तार्चान् जगत्सृष्टिः समीरिता ।

वेदाहमिति मन्त्राभ्यां वैभवं कथितं हरेः ॥

यज्ञेनेत्यनया चर्चा सृष्टेमोक्षस्य चेरितः ।

य एवमेतज्जानाति स हि मुक्तो भवेदिति ॥

पुरुषसंहितायां किं स्वरूपं आदित्यवर्णम्—

आदित्यवर्णं पुरुषं वासुदेवं विचिन्तय ॥ इति ॥

तमसस्तु पारे तमशब्देन प्रकृतिरुच्यते—

तमसः परमे दान्ते ह्यस्ति प्रकृतिमण्डलम् ।

ऊर्ध्वमवस्थितं सर्वाणि विचित्य निर्माय नामानि कृत्वा ॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥

भारते—

सर्वेषां च सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ इति ॥

धीरः—धियो रममाणः अभिवदंस्तैराभिमुख्येन वदन् यदास्ते
अस्त्येव तमित्यनेन पूर्वं प्रस्तुतमेव नान्यं दद इति । सन्निहितस्य परित्यागे
कारणाभावात् ॥

वेङ्कटाचलमाहात्म्ये—

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोक्षजः ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

इति पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यत्वेनोक्तत्वाच्च ॥ ५ ॥

दिग्दोषो यस्य विदिशश्च कर्णौ द्यौरास वक्त्रमुदरं नभौ
वा सासि वा स्म य स्वयमाप दन्तं तस्मै वरत्रे वरदाय कस्मै
स्वाहा ॥ ६ ॥

यस्य परमात्मनः दिग्दोषः दिशः दोषः बाहवः विदिशश्च
अवान्तरकर्णौ द्यौर्वक्त्रमास उदरबभूवः “नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्”
इत्यादिश्रुतयः । या विश्वंभरा भूमिः सा त्वमेवासि स्म भूतार्थसूचकं
अन्तर्यामीत्यर्थः ॥

श्रुत्यन्तरे—

—यस्यास्यमग्निर्द्यौर्मूर्धा खं नामिश्चरन्मौ क्षितिः ॥ इत्यादि ॥

पादभूता या भूमिः सा स्वयं वराहरूपेण तव दन्तमाप दंष्ट्राग्रस्थि
नेत्यर्थः तस्मै वराहरूपिणे वरत्रे वरप्रदास्तेन त्रासि वरत्रः वरप्रदानसमर्थ्याय

कस्मै परब्रह्मणे कस्मा इत्युक्तत्वात् ब्रह्मकं ब्रह्ममुखमिति परब्रह्मपरत्वेनोक्तत्वात् ।
 “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्”, “एकमेवाद्वितीयम्” इत्यादिश्रुत्यनुसारेण
 पृथग्देवीभूषणायुधादिरहितत्वेन श्रुतिसिद्धम् । वेङ्कटाचले विद्यमानोऽपि
 मन्त्रो वेङ्कटेश्वरः ॥

पाद्मे—

येनैव दंष्ट्राग्रसमुद्धृता धरा विभर्ति विश्वं ससुरासुरेन्द्रम् ।
 नताः स्म तस्मै वरदाय पुंसे सर्वात्मने शेषविभूतिदायिने ॥ इति ॥

पद्मास्य वक्षाः परमः सुपुण्यः पद्मा जनित्री परमस्य वासः
 सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमादधानः सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं स्वाहा ॥७॥

पद्मा लक्ष्मीः अस्य पूर्वं प्रतिपादितस्य वेङ्कटेश्वरस्य वक्षाः वक्षसि
 विभक्तिव्यत्ययः परमः अर्चावतारे वरप्रदानादिषु समाभ्यधिकरहितः
 सुपुण्यः,

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।

वेङ्कटेश्वरसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥

याश्च सप्तमहापुरुषः कीर्त्यन्ते मोददायकाः ।

ता वेङ्कटाद्रिपर्यन्ता ग्रामकोट्यंशशक्तयः ॥

नास्ति पुण्यतमं तीर्थं स्वामिपुष्करिणीसमम् ।

सममस्तीति यो ब्रूयात्तत्समो नास्ति पातकी ॥ इत्यादि ॥

पद्मा जनित्री सर्वत्र जननी । ऋग्वेदे—“अहं रुद्राय धनुरातनोमि
 ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ । अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आवि-
 वेश । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तस्समुद्रे ।” श्रीसूक्ते—
 “मातरं पद्ममालिनीम्”, श्रीविष्णुपुराणे—

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।
 त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्यासं चराचरम् ॥ इति ॥
 परमस्य अभ्यधिकरहितस्य अस्य वक्षः पद्मावास इति वा ॥
 भगवच्छास्त्रे—

महाप्रलयकाले तु सर्वलोकविनाशने ।
 तस्मिन्नपि च काले तु वत्सरूपावसत्स्वयम् ॥
 श्रीवत्साङ्को हरिस्तस्मात् हरिवक्षसि सुस्थिता ।
 प्रलयान्ते पुनस्तृष्टा पृथग्भूता च सा भवेत् ।
 स्त्रीविषेण च सर्वासां भेदमूर्तित्वमेयुषी ॥ इति ॥

सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमादधानः “अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्” इत्य-
 स्यार्थोऽत्राभिप्रेतः । छान्दोग्ये—“य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो
 दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा
 कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी” इति ॥ मैत्रायणीश्रुतिः—“स्थिरमचलम-
 मृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम” इति ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

ईश्वरं पुरुषाख्यं च सत्यधर्माणमच्युतम् ।
 भर्गाख्यं विष्णुसंज्ञं च ध्यात्वामृतमुपाश्नुते ॥ इति ॥
 दृश्यो हिरण्मयो देव आदित्यो नित्यसंस्थितः ।
 यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येव चिन्तयामः सदैव तु ॥

किञ्च—सूक्ष्मं सावित्रं इत्युक्तत्वात् “वृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इति
 त्रीणि आदित्य इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्तम्
 य एवं वेद । श्रिया हैवामिषिच्यते” ॥ इति ॥ यजुषि—“वृणिः सू-
 आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योत-

रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ” ॥ इति ॥ एवं श्रुतिस्मृतिषु प्रतिपादितं सावित्रं रूपं पूर्वोक्तः परमात्मा स्वयमादधानः सावित्ररूपं परमं सुपुण्यम् । “आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम् ” इत्यादिश्रुत्यनुसारेण, “असावादित्यो ब्रह्म ” इति श्रुतेश्च, आदित्यमण्डलान्तर्वर्ती श्रीवेङ्कटेश इत्यभिप्रायेण सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं इत्युक्तम् ॥ ७ ॥

यः पुण्डरीकः परमान्तरात्मा कम्प्राङ्गरूपं कमलं दधार
सासिम्बसन्तं सरसे रसाय स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परमात्मा पुण्डरीकः पुण्डरीकः छान्दसत्वात् । परमान्तरात्मा अत्रापि दहरपुण्डरीकमध्यवर्ती चेत्यर्थः । छान्दोग्ये—“अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम् ” इति ॥ यद्वा—पुरुषव्याघ्रः कम्प्राङ्गरूपं कमनीयमङ्गरूपं यस्य तत् । कमलं जलमलङ्करोतीति कमलं दधार कमले दधार ब्रह्माणं सरसे रससहिते द्रवेऽपि चेति रागात्मकरससूते पद्मे रसाय लोकसृष्टये ब्रह्माणं दधार तस्मै ।

भारते—

स्वयंभूस्तस्य देवस्य पद्मं सूर्यसमप्रभम् ।

नाभ्या विनिस्तृतमरुक् तत्रोत्पन्नः प्रजापतिः ॥ इति ॥ ८ ॥

रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं रारागमुक्तं गुरुं सश्रीकं तं
रायिरूपं रयिभूतभूतं रयिमत्सुरत्रः स्वाहा ॥ ९ ॥

रयीणां पतिं ऐश्वर्याणां पतिं बृहन्तं “बृहद्ब्रह्ममहश्चेतिशब्दाः पर्यायवाचकाः ” इति पूर्वस्मिन्मन्त्रे प्रतिपादितं ब्रह्माणं परब्रह्मभूतं रारागमुक्तं समग्रषाड्गुण्यपरिपूर्णैश्वर्यत्वात् तुच्छरूपपरत्वादिन्द्राद्यैश्वर्यरागरहितम् ,

एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ।

इति वचनात् । गुरुं—

गुरुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।

अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥ इति ॥

विमृष्टादिसामर्थ्यज्ञानप्रदं सश्रीकं सर्वैश्वर्यवन्तं तं रायिरूपं
ऐश्वर्यरूपं रयिभूतभूत ऐश्वर्यस्यापि ऐश्वर्यभूतं रयिमत्सुरत्रः ऐश्वर्यवतां
देवानां रक्षिता अस्मै ।

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छिद्यमिच्छेद्धुताशनात् ।

शंकराज्ज्ञानमन्यच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ इति ॥

ज्ञानप्रदोऽपि परमात्मैवेत्यभिप्रायेण गुरुशब्दप्रयोगः यद्वा तत्त-
दन्तर्यामित्वेन ॥ ९ ॥

रायां पतत्रे रयिमादधात्रे रथो बृहन्तं रयिमत्सुपुण्यं
राराजिमन्तं रतये रमन्तं तं विम्बवन्तं ककुदाय भद्रे स्वाहा ॥१०॥

रायां पतत्रे स्वभक्तस्थतुच्छैश्वर्याणां पतनानन्तरं त्रात्रे रक्षित्रे,

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् ।

बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥

रयिमादधात्रे अनश्वरैश्वर्यप्रदात्रे रायो बृहन्तं लीलाविमूत्यपेक्षया
नित्यविभूतेरधिकत्वात् “पादोऽस्य विश्वामूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि”
इति श्रुतेः । रयिमत्सुपुण्यम् ,

सत्पात्रदानेन भवेद्धनाढ्यो धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम् ।

पुण्यादवश्यं त्रिदिवं प्रयाति पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥

सुपुण्यं सुप्रसिद्धानां पुण्यप्रदं राराजिमन्तं देशकालाद्यपेक्षा-
राहित्येन निरन्तरैश्वर्यवन्तं रतये लीलारसानुभवार्थं रमन्तं परमात्मानं

शैलजादिरूपेण विम्बवन्तं ककुदाय श्रैष्ठ्याय भद्रे शुभाश्रयाय स्वाहा
जुहोमीत्यर्थः ॥ १० ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

अष्टमोऽनुवाकः

यत्सारभूतं सकलं धरित्रीं मोदप्रायेणानुभूतमनुविधं सूक्ष्मः

सुरेशः सकलं विभर्ति तस्मै सुरेशाय सकलं सुपुण्यं स्वाहा ॥ १ ॥

यत्सारभूतं प्रकृतिपुरुषयोर्वलभूतं यद्वा जगतः सकलं “षोडशकलो
वै पुरुषः” इति श्रुतेः । सकलासु हितां धरित्रीं धारणात् त्रायत इति
धरित्रीं प्रकृतेः मोदप्रायेणानुभूतं लीलाप्रायेण परमात्मनानुभूतं अनुविधं
अनुप्रविद्धं “तदेवानुप्राविशत्” इति श्रुतेः ॥ सूक्ष्मः,

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ इति श्रुतेः ॥

“अणोरणीयान्” इति जीवापेक्षया सूक्ष्मः सुरेशः ब्रह्मादीनामीशः
सकलं चिदचिदात्मकं जगत् विभर्ति । “व्यष्टभ्राद्रोदसी विष्णुरेते । दाधार
पृथिवीमभितो मयूखैः” इति तस्मै सुरेशाय पूर्वोक्तसुरेशः सकलं
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सुपुण्यं सुतरां पुण्यं यत्सुरेशाय तस्मै ॥ १ ॥

फलो वा एष लोकानामजरो महात्मा विश्वं यः पाति

विमलोऽमलाख्यस्तस्मै ककुत्त्रे वरदस्य पुष्ट्यै स्वाहा ॥ २ ॥

एष परमात्मा लोकानां भूरादीनां तत्तल्लोकानां देवमनुष्यादीनां
च फलः फलभूतः फलप्रदश्च । “फलमत उपपत्तेः” इति । अजरः
जरारहितः ।

अशनायापिपासे च शोकमोहौ जरामृती ।

एताः षड्भ्रमयः प्रोक्ताः षड्भ्रमिरहितश्च सः ॥

महात्मा महान् विश्वं जगत् यः पाति रक्षति विमलः अपहृतपाप्म-
त्वादिगुणः अमलाख्यः,

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विट्कर्णविण्णखाः ।

श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

इति द्वादशमलरहितः ककुत्त्रे श्रेष्ठाय पोषणादिशक्तिसहिताय तस्मै
वरदस्य वरप्रदानसमर्थस्य पुष्ट्यै,

भृगुः—

श्रीः सा सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च ।

कीर्तिः शान्तिस्तथा पुष्टिस्तुष्टिरित्यष्टशक्तयः ॥ इति ॥

पोषणरूपायै शक्त्यै परमात्मने ॥ २ ॥

धूर्नो वहन्तां रतये रमन्तां प्रभूतिमन्तस्समयं सुषुम्ना अं
राजिमन्तं सकलस्य गुप्त्यै स्वाहा ॥ ३ ॥

नः धूः भारं भरन्यासं वहन्तां “वह प्रापणे” इति । परमात्मा स्वयमेव
प्रापयताम् ।

स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।

स्वदत्तस्वधिया सार्धं स्वस्मिन्त्यस्यति मां स्वयम् ॥

इति सर्वदानुसन्धाय संयोज्य धूर्वहन्तां रतये तत्तद्विषयानुभवायै
तत्तत्स्थाने रमन्तां इन्द्रियाणां प्रभूर्तिं परमपुरुषानुभवैश्वर्यरूपां अन्तस्समयं
सुषुम्ना अन्तस्समये अं राजिमन्तं अकाराक्षरपूर्वकमन्त्रं प्रतिपादयन्तं
सकलस्य कला तु षोडशो भागः सर्वेन्द्रियोपरतस्य सुषुम्नानाड्यां गमनं च
भरन्यासं श्रुतवतः प्रयच्छति तस्मै ॥ ३ ॥

विश्वं विभर्ति प्रसुरोऽभूदन्तं संराजवन्तं सकलं प्ररूढं स
नो वितत्य प्रहिणोतु पत्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

विश्वं समस्तं प्रसुरोऽभूदन्तं ताम्रयादिना प्रकर्षेण सुरोऽभूदन्तं
संराजवन्तं समूहवन्तं सकलं कलासहितं प्ररूढं देवमनुष्याद्यनुकारेण समस्तं
वितत्य विस्तार्य विभर्ति स देवः नः श्रेयः प्रहिणोतु प्रयच्छतु पत्रे पदात्
त्रायत इति तस्मै ॥ ४ ॥

सो वा स्वरूपः समष्टक् समग्रो विधुदं तुदन् यो विदधत्यदं
वा वियति प्रकाशं बृहते गुहेन तं बिम्बवन्तं समदं समग्रं
स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा देवासुरेषु समुद्रमथनवेळायां समष्टक् समग्रः वञ्चितुं साव-
धानः विधुदं विधुश्चन्द्रः तं दमयतीति । दम इतीन्द्रियनिग्रहशक्तिसम्भवात्
विधुरो राहुः तं समदं मदसहितं समग्रं सावधानं बिम्बवन्तं राहुममृतपान-
वेळायां तुदन् हिंसां कुर्वन् तस्य राहोः वियति आकाशे पदं स्थानं गुहेन
ग्रहरूपेण बृहते पूर्वचन्द्राय विदधत् कल्पितवान् स एव स्वरूपः तस्मै ॥ ५ ॥

भूर्भुवं वा भुवो वा सुवो वा किञ्चित्स्वनन्तं सुषुवे समस्तं
सर्वस्य दातारमजरं जरित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

भूर्भुवं भूमेरपि भूमिं उत्तरकुल्देशादिकं भुवो वा सुवो वा
अन्तरिक्षं स्वर्गं वा वाशब्दो लोकान्तरपरः । किञ्चित्स्वनन्तं अल्पशब्द-
वाच्यत्वेन स्वनन्तं शब्दयन्तं सुषुवे सृष्टवान् समस्तमपि सर्वस्य दातारं
ऋतुर्गोमलप्रदं अजरं जरारहितम् ।

न जायते म्रियते वा विपश्चित्नायं कुतश्चिन्न बभूव ऋश्चित् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरेः ॥ इति ॥

जरित्रे प्रकृतिद्वारेण जरित्रे ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ इति ॥

तस्मै ॥ ६ ॥

दाक्षायण्यां प्रसृतं समस्तं सङ्कोचयित्वा सकलं वितानं
संवासयन् यः सकलं वरिष्ठं तस्मै प्रजेशाय धुरन्धराय स्वाहा ॥७॥

दाक्षायण्यदितिः तस्यां तं प्रसृतं उद्धृतं समस्तं दैतेयजातं सङ्कोच-
यित्वा अल्पावशिष्टं कृत्वा सकलं कलासहितं वितानं लोकस्याच्छादन-
भूतदेवजातं संवासयन् वरिष्ठं श्रेष्ठं मनुष्याणां रक्षणार्थं स्थापितवान् “ त
एनं तृप्त आयुषा तेजसा वर्चसा श्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन च
तर्पयन्ति ” इत्यादि प्रजेशाय प्रजानामीश्वराय धुरंधराय सर्वभारवहाय
तुभ्यम् ॥ ७ ॥

आशास्समस्ताः प्रतरन्नु तमन्तस्तास्ता वसेद्द्यौः कमला
समस्ताः सा मे गृहे समधत्त पुष्टिं स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वभक्तानां स्वाराधकानां आशाः कामान् प्रतरन् प्रयच्छन् अनु-
साकल्येन तं अन्तः हृदये परमात्मा तिष्ठति । या कमला लक्ष्मीः सापि
तास्ताः प्रविश्य वसेत् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।

त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्यासं चराचरम् ॥ इति ॥

सर्वत्र व्याप्तिरुच्यते कथं व्याप्तिरिति चेत् यथा परमात्मना
जगद्व्यासं तथेति भावः सर्वात्मना सा लक्ष्मीः सैषा लक्ष्मीः मे गृहे पुष्टिं,

त्वयावलोकिताः सद्यः शीलधैः सकलैर्गुणैः ।

धनैश्चर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।

समधत्त अन्तर्यामिणः परमात्मनो लक्ष्म्याश्चायं मन्त्रः ॥ ८ ॥

यो जङ्गमानां सकलं विभर्षि सर्वं वियद्विचरते शक्ष्यन्

तन्नौकूले वान्तिकेऽजस्रं स्वाहा ॥ ९ ॥

यः परमात्मा जङ्गमानां देवमनुष्यादीनां सकलं योगक्षेमादिकं
विभर्षि वियद्विचरते आकाशे यत्किञ्चित् विचरते तत् सर्वं त्वमेव विभर्षि
शक्ष्यन् शक्तः तन्नौकूले वा तत्सर्वं नौरिव जलधौ नौरिव अन्तिके समीपे
अजस्रं पुष्टिं विभर्षि तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वा दशानां प्रसृताः समस्तास्तां तां दधानास्समयात्सु-

बीजाः शब्दादिरीत्यै स्वबलं बलाय स्वाहा ॥ १० ॥

बीजाङ्कुरप्ररोहादिकं परमात्मशक्त्येत्याह—यो वा दशानां इति ॥
यः परमात्मा दशानां देवमनुष्यमृगपक्षिसरीसृपक्रिमिश्वेतदृक्षजगुल्मलतादीनां
प्रसृताः प्रसृतयः समस्ताः नामरूपकृत्यविभागादिकं तां तां दधानाः
समयात् समये सुबीजाः शब्दादिरीत्यै परमात्मशक्त्या प्ररोहादि-
सामर्थ्ययुक्ता भवन्ति ये स्वबलं तत्सर्वं परमात्मन एव बलं तस्मै बलाय
बलरूपाय ॥ १० ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः

नवमोऽनुवाकः

चत्वारो दोषाः प्रहरन्ति यस्य सर्वस्य गोप्त्रे सुरसाय
धान्ने सोमस्य पुष्पं रयिमत्प्रवृद्धयै स्वाहा ॥ १ ॥

यस्य सवितृमण्डलवर्तिनः परमात्मनः चत्वारः सुषुम्नादिका दोषः
बाहवः पुण्यमाहुतिं प्रहरन्ति ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥ इति ॥

सर्वस्य गोप्त्रे—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।

इति सर्वौषधीनां पोषणद्वारा मनुष्यादीनां गोप्त्रत्वं सुरसाय सुतर्गं
रसरूपाय धाम्ने अमृतमयतेजःस्वरूपिणे प्रहरन्ति प्रकर्षेण हरन्ति
रयिमत्प्रवृद्धयै—

दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णता ॥ इति ॥

श्रीवैखानससूत्रे—

“यथा ह्वास्य सुषुम्ना जेनातिप्यति प्राणावति रेतोधा इत्येताहुतिं
गृहीत्वा रश्मयश्चतस्रः प्रश्नाः सन्दधीरन् सह वा शुद्धा अमृतवह चिनुहि
दिव्यालोकपावनीत्येताभिश्चन्द्रमसमाप्याययति मूलगामीव वा
यावन्नमृतोद्गारिसुरप्रियेत्येताभिरमृतेन तां तर्पयति ।” किंच सर्वस्य गोप्त्रत्व-
श्रवणात् ॥

ऋषय ऊचुः—

कौतूहलसमुत्पन्ना देवता ऋषिभिः सह ।

संशयं परिपृच्छन्ति व्यासं धर्मार्थकोविदम् ॥

कथं वा क्षीयते सोमः क्षीणो वा वर्धते कथम् ।

इमं प्रश्नं महाभाग ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥

व्यासः—

शृण्वन्तु देवताः सर्वे यदर्थमिह आगताः ।

तदहं संप्रवक्ष्यामि सोमस्य गतिमुत्तमाम् ॥

अमौ हुतं च दत्तं च सर्वं सोमगतं भवेत् ।
 तत्र सोमः समुत्पन्नः शीतांशुर्हिमलक्षणः ॥
 अष्टाशीतिसहस्राणि विस्तीर्णं योजनानि तत् ।
 प्रमाणं तत्र विज्ञेयं कलाः पञ्चदशैव हि ॥
 षोडशी तु कलाप्यत्र त्वित्येकोऽपि विधेर्वले ।
 पपुः सोमवपुर्देवाः पर्ययेणानुपूर्वशः ॥
 प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः ।
 विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं सलिलाधिपः ॥
 पञ्चमीं तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः ।
 सप्तमीमृषयो दिव्या अष्टमीमज एकपात् ॥
 नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कलाम् ।
 दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा ॥
 द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राप्नोति भागशः ।
 त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् ॥
 चतुर्दशीं पशुपतिः पिबत्यन्त्यां प्रजापतिः ।
 एवं पीतः कलाशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥
 कला षोडशिका या तु ह्यपः प्रविशते सदा ।
 अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते ॥
 तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत् ।
 तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः ॥
 हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी ।
 दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णिमा ॥
 “नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे” ॥ इत्यादि ॥

त्रिमुहूर्तं वसेदर्के त्रिमुहूर्तं जले वसेत् ।
 त्रिमुहूर्तं वसेद्गोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ ॥
 वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ।
 स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः ॥
 वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् ।
 घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥
 वनस्पतिगते सोमे यस्तु भुङ्क्ते परौदनम् ।
 तस्य मासगतं पुण्यं दातारमधिगच्छति ॥
 वनस्पतिगते सोमे नातिहेयांस्तु वाहयेत् ।
 नाश्रन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ॥
 वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् ।
 गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥
 वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ।
 स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु गर्भिणीं श्रावयेत्स्त्रियम् ।
 ऋषभं जनयेत्पुत्रं सर्वज्ञं वेदपारगम् ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु श्राद्धकाले सदा पठेत् ।
 तदन्नममृतं भूत्वा पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु सर्वकाले सदा पठेत् ।
 सर्वं मानव आप्नोति सोमलोकं स गच्छति ॥ इति ॥
 एवंविधाकारचन्द्ररूपेण गोप्त्रे ब्रुम्यम् ॥ १ ॥

वक्षो वसत्यस्य वरा वरिष्ठं वाकं दधाना वदधे समस्तं
 तस्मै वरिष्ठाय वरप्रवृद्धयै स्वाहा ॥ २ ॥

अस्य परमात्मनो वक्षसि वाकं दधाना वरिष्ठं श्रेष्ठं वक्षः प्राप्य या
वसति वरां वाकं दधाना उत्कृष्टरूपां वाकं वाचं दधाना पुरुषाकाररूपां
वाचं दधाना श्रावयन्ती वसति वष्टुधे समस्तं जङ्गमाजङ्गमादिकं प्रति वृद्धिं
गता तस्यै वरिष्ठाय तस्मै ॥ २ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य
जन्तोः तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशं
स्वाहा ॥ ३ ॥

अणोरणीयान्महतः आकाशादिभूपर्वतादिभ्यो महीयानात्मा अन्तः
प्रविश्य नियन्ता ह्यात्मा अस्य जीवस्य गुहायां हृदयगुहायां निहितः एवं-
भूतं तं अक्रतुं अकर्माणं पश्यति वीतशोकः धातुः प्रसादात् परमात्मनः
प्रसादाद्यः पश्यति वीतशोकः महिमानं महिमावन्तं ईशं इत्यर्थः ॥ धातुः
प्रसादादित्यनेन—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेघया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

इति निर्हेतुकत्वं तस्य प्रसादात् ॥ ३ ॥

विष्णुर्वरिष्ठो वरदानमुख्यो यो विश्वर्षीन् ध्यायन्नकुर्वन्
विश्वं हीषद्विष्णवे याः प्रभविष्णवे ता अमितंभरत्रे स्वाहा ॥४॥

विष्णुः व्याप्तः परमात्मा वरिष्ठः श्रेष्ठः वरदानमुख्यः यः परशु-
रामरूपी विश्वर्षीन् जमदग्नीन् । पूजायां बहुवचनम् । ध्यायन् अकुर्वन्
विश्वं यथायोग्यत्वेन क्षत्रियवंशजातं ईषत्कार्यं हि विष्णवे याः शक्तयः—

परमेष्ठी पुमान्विश्वो निवृत्तः सर्व एव च ।

पञ्चैताः शक्तयः प्रोक्ताः परस्य परमात्मनः ॥

आचार्या वैष्णवी सूक्ष्मा लक्ष्मीः पुष्टिर्निरञ्जना ।

जीवनी मोहिनी माया नवैता विष्णुशक्तयः ॥ इति ॥

ता विष्णुशक्तयः प्रभविष्णवे रामभद्राय अमितंभरत्रे मितरहित-
धनुर्भरणादमितंभरः तेन जनकप्रतिज्ञाप्रातिभरत्वधनुः स्वशक्तिभिस्सहस्र-
शोऽधाद्यः अत्र विश्वर्षिशब्दप्रयोगात् अत्यन्तश्रेष्ठत्वं वा । श्रुतिः—“ विश्वा-
मित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेताः सं एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तेन वै स
वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृद्धम् ” इत्यादि ॥ ४ ॥

अब्जोऽजुषन्तः प्रपतत्पतन्तः पूंषुपुषन्तः पुनयः प्रवाळः
कंकं जनित्रे समतेजसं ते स्वाहा ॥ ५ ॥

अब्जः ब्रह्मा । भारते—

निशि सुस्वाथ भगवान् क्षपान्ते प्रतिबुध्य यः ।

पश्चाद्वुध्वा ससर्जापस्तासु वीर्यमवासृजत् ॥

तदण्डमभवद्द्वैवं सहस्रांशुसमप्रभम् ।

अहं कृत्वा ततस्तस्मिन् ससर्ज प्रभुरीश्वरः ॥

हिरण्यगर्भं विश्वात्मा ब्रह्माणं जलजं मुनिम् ।

भूतभव्यमविष्यस्य कर्तारमनघं विभुम् ॥ इति ॥

अजुषन्तः सृष्टिकर्तृत्वाभिमानेन त्वत्पादसेवामकुर्वन्तः । अब्ज इति
जातावेकवचनम् । यद्वा अण्डबाहुल्यत्वाभिप्रायेण प्रपतत्पतन्तः पूंषुपुषन्तः
शरीरं पोषयन्तः पुनयः प्रवाळः प्रकर्षेण बालं वयोरभेदः कंकं जनित्रे
समतेजसं ते एवं रजोगुणदोषदुष्टं ब्रह्माणं ते त्वं समतेजसं जनित्रे
“ नारायणाद्ब्रह्मा जायते ” इति श्रुतयः तुभ्यम् ॥ ५ ॥

मामात्मगुप्तां वहते स्वभूत्यै तां राजिमन्तां धूर्धूरयन्तीं
धूरसि ध्रुवाय स्वाहा ॥ ६ ॥

मां लक्ष्मीं आत्मगुप्तां आत्मभूतेन स्वेनैव गुप्तां भूत्यै लोकानामैश्वर्याय
वहते वक्षसि वहते स्म भूतार्थसूचनत्वात् प्रळयकालेऽपीत्यर्थः । तां राजिमन्तां
लावण्यसंपत्सारभूतां धूर्धूरयन्तीं समग्रैश्वर्यगतिभूतां मां वहत इति
पूर्वत्रान्वयः धूरसि भारभूतोऽसि ध्रुवाय स्थिराय तुभ्यम् ॥ ६ ॥

यं चिन्तयन्तो निगमान्तरूपं यं विश्वरूपं परमात्मपुण्यं
तं विन्दमानां सकलं व्रजन्तीं तं दैवमुख्यं सुरतं भवाय
स्वाहा ॥ ७ ॥

यं निगमान्तरूपं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिवेदान्तप्रति-
पाद्यरूपम् । यद्वा यं विश्वरूपं—

यस्यास्यमग्निर्द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।

इत्यादिविश्वरूपम् । यद्वा परत्वव्यूहविधावन्तर्याम्यर्चावतारादिरूपं
वा चिन्तयन्तः ध्यायन्तः सकलं स्वकलासहितत्वेन ।

लक्ष्मीतन्त्रे—

महालक्ष्मीः समाख्याता साऽहं सर्वाङ्गसुन्दरी ।

महाश्रीः सा महालक्ष्मीश्चण्डाचण्डी च चण्डिका ॥

भद्रकाली तथा मेदा काली दुर्गा महेश्वरी ।

त्रिगुणा भगवत्पत्नी तथा भगवती परा ॥

एताः संज्ञास्तथान्याश्च तत्र मे बहुधा स्मृताः ।

विकारयोगादन्याश्च तास्ता वक्ष्याम्यशेषतः ॥

रक्षयामि जगत्सर्वं पुण्यापुण्ये कृताकृते ।

महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥

पारमात्मिकोपनिषत्

१९३

महाब्धिश्चयणीयत्वान्महाश्रीरिति गद्यते ।
 भण्डस्य दयिता भण्डी भण्डत्वाद्भण्डिका भता ॥
 कल्याणरूपा भद्रास्मि काली भद्रा प्रकीर्तिता ।
 कलात्सतां स्वरूपत्वादपि काली प्रकीर्तिता ॥
 सुहृदां च द्विषां चैव युगपत्सदसद्विभोः ।
 भद्रकाली समाख्याता मायाश्चर्यगुणात्मिका ॥
 माया योग इति ज्ञेया यज्ज्ञानाज्ञानयोर्नृणाम् ।
 पूर्णषाड्गुण्यरूपत्वात्समृता चाऽहं परात्परा ॥
 शासनाच्छक्तिरूपाहं राश्यहं रञ्जनात्सताम् ।
 सदा शान्तविकारत्वाच्छान्ताहं परिकीर्तिता ॥
 मत्तः प्रक्रमते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता ।
 श्रयन्ति ह्ययना चास्मि शृणामि दुरितं सताम् ॥
 शृणोमि करुणां वाचं शृणोमि च गुणैर्जगत् ।
 शरणं सर्वभूतानां रमेऽहं सर्वकर्मणाम् ॥
 ईडिता च सदा देवैः शरीरं चास्मि वैष्णवम् ।
 एतान्मयि गुणान् दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
 गुणयोगविधानज्ञाः श्रियं मां संप्रचक्षते ।
 साऽहमेवंविधा नित्या सर्वाकारा सनातना ॥ इति ॥

ब्रजन्तीं सर्वस्यापि गतिभूतं तं परमात्मानं विन्दमानां प्राप्तवतीं
 च चिन्तयन्तो ये तिष्ठन्ति तेषां भोग्यरूपाय “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह
 ब्रह्मणा विपश्चितेति” इति श्रुतेः ॥ ७ ॥

पुण्यां च पुण्यः पुरुषे पुरये तां राजिमन्तां निशि चोदि-
 तानां निदधाति पुष्ट्यै हरन् पराय स्वाहा ॥ ८ ॥

पुण्यः पोषकः परमात्मा यद्वा परमपावनः पुण्यां पोषिकां पुरुषं पुरुषशब्दः साधारणः स्वकृपाकटाक्षविषयभूते पुरुषे पुरग्रे शरीरपूर्वभागे पादगुह्यनाभिहृदयकण्ठमुखेषु पुष्ट्यै ऐश्वर्यानुभवार्थं लक्ष्मीं निदधाति स्थापयते निशि चोदितानां रात्रौ चकारात् सन्ध्याकाले च उदिताः जाताः सुरदानवादयः “दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान्” इति श्रुतेः । तां राज्ञि दीप्तिरूपां लक्ष्मीं हरन् तेषामैश्वर्यं हरन् अन्तां शिरसि स्थितां निदधाति अयमेवार्थो मार्कण्डेयपुराणेऽवगम्यते—

सप्तस्थानान्यतिक्रम्य येषां लक्ष्मीः शिरःस्थिता ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं तेषां सम्यक्प्रहीयते ॥

एवंरूपेण मर्यादास्थापकाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

स नो भूतो यो वाऽमृतात्मा सुषुष्टिमस्मत्पितरं पवित्रं स नोऽस्तु भूत्यै कमलं पराय स्वाहा ॥ ९ ॥

स परमात्मा नो भूतः न जातः “अमानोनाः प्रतिषेधे” इति । श्वेताश्वतरे—

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इत्यादयः ॥

अमृतात्मा—

षड्भावषट्कोशषड्भिर्मिहीनं शुद्धात् परं निर्मलमप्रमेयम् ।

ब्रह्माद्यमेकं सदनं समग्रं भजन्ति ये तत्र भवन्ति धन्याः ॥ इति ॥

अस्ति जायते परिणमते वर्धते अपक्षीयते, विनश्यतीति षड्भावविकाराः

अस्थिशुक्लमज्जाः पितृतः, त्वड्मांसरुधिराणीति मातृतः, इति षट्कोशाः ।

अशनायापिपासे च शोकमोहौ जरामृती ।

एताः षड्वर्त्मयः प्रोक्ता देहिनां तु विशेषतः ॥ इति ॥

अस्माकं सुपुष्टिं सुतरां पुष्टिं ऐहिकं अस्मत्पितरं पवित्रं पितृ-
शब्देन पितृवंशजानां मातृवंशजानां सर्वेषामुपलक्षणम् ।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।

वैष्णवो नः कुले जातः स पुनस्तारयिष्यति ॥

स नोऽस्तु भूत्यै स परमात्मा नः भूत्यै भगवत्प्राप्तिरूपैश्वर्याय अस्तु
कमलम् ॥ ९ ॥

स एव नित्यं सकलाः समूर्तयः सुरतास्त्वनन्तास्ते
जयन्तो वियति क्षयाणां तत्तत्सवित्रे हरते पराय स्वाहा ॥१०॥

नित्यं वियति आकाशे यद्वा अनन्ता इत्यनेन आकाशास्ता
उच्यन्ते सुरताः रतिसहिताः सकलाः नृत्यगीतवाद्यादिकलासहिताः
समूर्तयः मूर्तिमन्तः जयन्तः जयशीलास्सन्तः ये तिष्ठन्ति ते सर्वे स एव ।
तु शब्दो विशेषद्योतकः । सद्धारकत्वेन यद्वा अन्तर्यामित्वेन—

ज्योतींषि विष्णुर्मुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।

नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यच्चास्ति च विप्रवर्ध ॥

वियति क्षयाणां आकाशे स्थानं प्राप्तानां “देवगृहा वै नक्षत्राणि”

इति श्रुतेः । तत्तत्सवित्रे तत्तत्कर्मफलानुभवस्थानजनकाय हरते—

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥

इति भगवद्वचनात् । पराय—

ब्रह्माण्डे—

ब्रह्मा शंभुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।

एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥

जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।

वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥

जगत्संहारकत्वेन रुद्ररूपक्षयशब्देन स्थानम् ।

निरुक्ते—

क्रमादिह गृहादीनां नामानि विविदुर्बुधाः ।

प्रासादमास्पदं सप्त गृहं धाम सनातनम् ॥

विमानं निलयं धिष्यं गेहं च वसतिस्तथा ।

हर्म्यं निकेतनं चैव सौधं वासः श्रयः क्षयम् ।

आलयो मन्दिरं चैव भवनावासवाचकाः ॥ इति ॥

इति श्रीवेङ्कटेशपादाब्जसपर्यासुरतात्मना श्रीमत्कौशिकगोत्रेण गोविन्दाचार्यसंयुता

वेदान्तदेशिकश्रीनिवासयज्वना विरचितपारमात्मिकोपनिषद्वाक्याने

नवमानुवाकार्थविवरणं समाप्तम्

दशमोऽनुवाकः

या गौर्वरिष्ठा सह सोर्धरित्री वसुं वसुं वै वसुनीह भद्रा
प्रेरीजयन्तो रजतं रजते स्वाहा ॥ १ ॥

या गौः वरिष्ठा धरित्री विश्वंभरा वरिष्ठा या गौः भूत्वा वसुं
ब्रीहियवादिकं वसुं द्रव्यादिकं वसुनीह भूलोके तत्तज्जात्यानुसारेण दुग्ध्वा

जङ्गमाजङ्गमादिकं च परमात्मना सह सोर्भद्रा शोभनानां कारणभूता
विभर्ति रेरीजयन्तो दीप्तिमन्तो लोकस्थान् रजतं रजोयुक्तं यत्किञ्चिद्व-
स्तुजातं रजते दीप्तिं कुर्वते तुभ्यम् ॥ १ ॥

वायोरन्तरात्मा वहति समस्तः सपुण्यदेवेति स स्वरिमुक्तः
स्वरिः सुराणां सुरसोऽप्यसुन्दः समूह देवा वरदाय पित्रे
स्वाहा ॥ २ ॥

अयं मन्त्रः सुदर्शनपरः । वायोरन्तस्य सुदर्शनस्य वायुर्गतिः
अन्तरात्मा बुद्धिरूपः चलस्वरूपमत्यन्तमन्तरितानलम् ।

चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥ इति ॥

समस्तः—

विष्णोरपररूपत्वात्सर्वं विष्णुवदाचरेत् ॥ इति ॥

सर्वस्वरूपी वहति भगवता मनसि यत्किञ्चिच्चिन्तितं तत्सर्वं प्रापयति
स सुदर्शनः स्वरिमुक्तः भगवता राक्षसवधादिकं प्रति मुक्तः तद्वधप्रयुक्तदो-
षाभावात् । सपुण्यदेवेति सर्वत्रापि प्रसिद्धः । सुराणां स्वरिः पूज्यः सुरसः
हत्यादिदोषदुष्टस्य लोके त्याज्यताप्रतिपादनात् तद्दोषाभावात्सुरसः । यद्वा
रुद्रनिवासभूतत्वाद्वा असुन्दः सुन्द दाहे [?] इति प्रतिसंहारकः । यद्वा
प्राणदः अनध्यायेष्वधीयानास्ते चक्रेण हताः प्रणष्टा इति चरण-
व्यूहैश्छन्दोगानां शिखाग्रहणमात्रेण प्राणदः समूह देवा य एवरूपं
सुदर्शनं समूह सम्यक् धृत्वा देवाय वरदाय रुद्रस्य वरदायेत्यर्थः ।
पित्रे “नारायणाद्बुद्धो जायते” इत्यादिश्रुतिभ्यः रुद्रस्य पित्रे रक्षकाय ॥

ननु जगत्संहारकस्य कथं सुदर्शने वास उपपद्यत इति चेत् उच्यते ।

वेङ्कटगिरिमाहात्म्ये—

कथं सूर्यं परित्यज्य प्रमाऽन्यस्य भविष्यति ।

एवं श्रीकौस्तुभं चक्रं शार्ङ्गं शङ्खं तथैव च ॥

एवमादीनि वस्तूनि नित्यसिद्धानि शंकर ।
 नैतेषां च परित्यागे नान्यस्तेषां व्यपाश्रयः ॥
 अशक्यमिदमत्यर्थमित्याह प्रमथाधिपम् ।
 स चाह चान्वेतु वक्ष्ये तथैवास्तु यथेप्सितम् ॥

तत्रैव—

अन्तरात्मा हि सर्वेषां स्तौति नारायणं प्रभुम् ।
 तदशक्यं महच्चक्रं विष्णोरन्यस्य कस्यचित् ॥
 शुद्धसत्त्वस्य तद्विष्णोः सर्वेशस्य मया वपुः ।
 साक्षात्स्पृष्टो महान् भीतस्तमोगुणसमाश्रयः ॥
 यस्तत्त्वं च मया विष्णो दिव्यमङ्गलविग्रह ।
 त्वामेव तदहं नित्यं विष्णोर्नित्यानपायिनम् ॥
 अनुप्रविश्य त्वद्देहे वसिष्यामि सुदर्शन ।
 ननु यद्वैष्णवं तेजः शाणितं विश्वकर्मणा ॥
 जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम ।
 तेन चक्रं महाविष्णोः शिबिकामप्यकल्पयत् ॥
 दैत्यः पञ्चजनो नाम प्रभुर्जलभरस्तथा ।
 तस्यास्थिप्रभवं शङ्खमादाय पुरुषोत्तमः ॥ इति ॥

अनुशासनिके उमा—

बहूनामायुधानां तु पिनाकं धर्तुमिच्छसि ।
 किमर्थं देवदेवेश तन्मे शंसितुमर्हसि ॥

महेश्वरः—

शस्त्रग्रहं ते वक्ष्यामि शृणु धर्मं शुचिस्मिते ।
 युगान्तरे महादेवि कण्वनामा महासुनिः ॥

सेहे तीव्रां तपश्चर्यां कर्तुमेवोभयोः प्रियम् ।
 महाविष्णोश्च या माऽस्ति तां मायां प्रकृतिं विदुः ॥
 लोकयात्रा विना तां तु नैति श्रीः सा स्मृता बुधैः ।
 तस्याः श्रियाः स्त्रियोऽभिन्नाः पूर्वाश्च पुरुषोत्तमात् ॥
 तस्मात्तया श्रिया सार्धं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
 संसारचक्रयत्नाभ्यां निजं ते स्यात्सुदर्शनम् ॥
 हंसारूपं चेतनारूपं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ।
 तच्छब्दरूपो देवश्च पाञ्चजन्याख्य उच्यते ॥
 पञ्चभूतात्मको ह्यस्य सर्ववेदमयोऽक्षरः ।
 छन्दोमयाभ्यां पक्षाभ्यां युक्तः पक्षिणेश्वरः ॥
 गरुडो वाहनं चापि विष्णोर्देवस्य कीर्तितः ।
 पृथिवीवायुसंयोगश्चापः शार्ङ्गं हरेः स्मृतः ॥
 तेजो वायुमयो ह्यस्य नाम्ना संशरणाच्छरः ।
 विद्याविद्याशरैर्युक्ते अक्षये ते महेषुधी ॥
 लोकालोकाचलः प्रोक्तो विद्योताख्यं तु खेटकम् ।
 कृतान्तो नन्दकः खड्गं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥
 या दण्डनीतिः सा ख्याता गदा कौमोदकी हरेः ।
 सर्वार्थेषु जयो ह्यस्य स त्वजागरता स्थिता ॥
 सर्वबन्धुषु यद्बद्धं प्रेमपाशं परस्परम् ।
 दृढं भ्रातृसमाख्यं तत्त्वाशुसर्वार्थसंमतम् ॥
 सर्वप्राणिषु या शक्तिः शक्तिर्विद्युन्निभा मता ।
 मर्यादा यदधोलोके मेरी सा तु महारवा ॥

संसारभित्तिर्यो देहो लीलाख्यः स हरेर्द्विजाः ।

यन्मनः शीघ्रं तस्य स रथः कामगो मतः ॥

यो वायुर्वाति सोऽश्वस्तु पुण्डरीकपदाह्वयः ।

इत्येवं ब्रह्मणा चोक्तं तस्मादेवि श्रिया सह ॥

आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणोऽमलम् ।

विमर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान् हरिः ॥

श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् ।

प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥

भूतादिमिन्द्रियादींश्च द्विधा वै परमीश्वरः ।

विमर्ति शङ्करूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ॥

चलस्वरूपमत्यन्तं जपेनान्तरितानिलम् ।

चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥

पञ्चरत्ने तु या माता वैजयन्ती गदाभृतः ।

सा भूतहेतुसङ्घातभूता माता च वै द्विज ॥

यानीन्द्रियाण्यशेषेण बुद्धिकर्मात्मकानि वै ।

शराणि यान्यशेषेण तानि धत्ते जनार्दनः ॥

विमर्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् ।

विद्यामयं नु तज्ज्ञानमविद्याचर्मसंस्थितम् ॥

भूतानि च हृषीकेशो धत्ते सर्वेन्द्रियाणि च ।

विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ॥

अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितम् ।

विमर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे भगवान् हरिः ॥

सविकारं प्रधानं च पुमान् स्वं चाखिलं जगत् ।

विमर्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ॥ इति ॥

एवं स्वतः सिद्धानामकृतकानां शङ्खादीनामन्येन धर्तुमशक्यत्वात् योगेन पाञ्चजन्यत्वादिशब्दवाच्यत्वाभावात् रूढ्या पाञ्चजन्यत्वादिकमुपपन्नं ब्रह्मणा कल्पितं शार्ङ्गमिति नाम । एवमन्येषामप्राकृतानां पाञ्चजन्यादिकं परमात्मन एव । अवतारादिष्वन्यत् अप्राकृतं वाचकवृत्तिप्रभृतिर्वा । कल्पितानि शङ्खादीनि ॥ २ ॥

यस्योपरिष्ठादधि तिष्ठदात्मा सर्वोपरिष्ठात् परमात्मा मुक्तं तं विरजं नित्यमनु संपराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यस्य बद्धस्य उपरिष्ठात् बद्धापेक्षया मुक्तपरमसर्वोपरिष्ठादधि तिष्ठदात्मा बद्धमुक्तनित्यापेक्षया परमात्मा तं विरजं बद्धापेक्षया मुक्तं विरजं अपहृतपाप्मत्वादिगुणविशिष्टं मुक्तापेक्षया नित्यं अनु साकल्येन संपराय उत्कृष्टाय यद्वा प्रकृत्यपेक्षया बद्धायेत्यादि ॥ ३ ॥

तमस्सर्वभूतमधुनाध्वरेण तं सत्त्वरूपमनुप्रविश्य संल्लेशयन् सृष्टिनिमित्ताय तस्मै परब्रह्मणे परंज्योतिषे स्वाहा ॥ ४ ॥

“नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् । नासीद्भजो नो व्योमापरो यत् । किमावरीवः कुह कस्य शर्मन् । अम्भः किमासीद्भहनं गभीरम् । न मृत्यु-रमृतं तर्हि न । रात्रिया अह आसीत् प्रकेतः । आनीदवात्तः स्वधया तदेकम् । तस्माद्भान्यं न परः किंच नास । तम आसीत् तमसा गूढमग्रे प्रकेतम्” इति । जाबालोपनिषदि—“ओं तदाहुः । किं तदासीत् । तस्मै स होवाच । न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तमः स जायते तमसो भूतादिराकाशमाकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी तदण्डं समभवत् । तद्वत्संवत्सरमात्रमुषित्वा द्विधाऽकरोत् । अधस्तात् भूमिरुपरिष्ठादाकाशं मध्ये पुरुषो दिव्यः । सहस्रशीर्षा पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् सहस्रबाहुरिति

सर्वं तमोभूतं सृष्टेः प्रागा मनोस्तु सत्त्वरूपं सहस्रशीर्षेत्यादिरूपं
प्रजासृष्टिनिमित्ताय सृष्ट्यर्थम् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्य स्वेच्छया हरिः ।

क्षोभयामास संप्राप्ते सर्गकाले व्ययः स्वयम् ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विध्यनादी उभावपि ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भे दधाम्यहम् ।

संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥

एवमुक्तप्रकारेण अनुप्रविश्य प्रकृतिपुरुषौ शङ्केश्वयन् सृष्टिमकरोत् ।
कथमिति चेत् सहस्रबाहुरिति सोऽग्रे भूतानां मृत्युमसृजत् । त्र्यक्षं त्रिपादं
खण्डपरशुमजीजनत् । तस्य ब्रह्माभिपेदे स ब्रह्माणमेव विवेश । स मानसात्
सप्त पुत्रानसृजत् । ते ह विराजं सप्तमानसानसृजन् प्रजापतयः “ब्राह्मणोऽस्य
मुखमासीत् । बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः । पद्भ्यां शूद्रो
अजायत । चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत”, “श्रोत्राद्वायुश्च
प्राणश्च हृदयात् इदं जायते अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोभ्यः
पर्वतो लोमभ्यः ओषधिवनस्पतयो ललाटात् क्रोधजो रुद्रो जायते । तस्यैतस्य
महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्येवेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्वणवेदः शिक्षा कल्पो
व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि व्याख्या-
नान्युपव्याख्यानानि सर्वाणि च भूतानि हिरण्यज्योतिर्यस्मिन्नयमात्मा
धीयन्ते भुवनानि विश्वा आत्मानं द्विधाऽकरोत् । अर्धेन स्त्री अर्धेन पुरुषो
देवो भूत्वा देवानसृजत् ऋषिर्भूत्वा ऋषीन् यक्षराक्षसगन्धर्वान् ग्राम्याना-
रण्यांश्च पशून्सृजत् । इतरा गा इतरोऽनडुह इतरा बडबा इतरोऽश्वतरान्
इतरा गर्दभीः इतरो गर्दभान् इतरा विश्वंभरीरितरो विश्वंभरान्” इति एवं

सृष्टवान् । अयं परमात्मा क इत्याकाङ्क्षायां तस्मै परब्रह्मणे परंज्योतिष इति पुरुषनारायणपरंब्रह्मपरंतत्त्वपरंज्योतिःपरमात्मादिशब्दवाच्यो नारायण एवेति ज्ञापयितुं परब्रह्मणे परंज्योतिष इत्युक्तम् । परब्रह्मग्रहणात् सर्वमपि गृहीतं भवति ।

किञ्च—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

इत्यादि । किञ्च—“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते” इत्यादि ।

जगत्कारणं ब्रह्मेत्युक्तं जगत्कारणत्वात् विष्ण्वादिमूर्तीनां मूलभूतानां षट्कोश-षडूर्मिलेशाभावात् ।

न भूतसङ्घसंस्थानं देवस्य परमात्मनः ।

न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोऽस्थिसम्मिता ।

सर्वभूतमयं देहं त्रैलोक्ये सर्वजन्तुषु ॥

इत्यप्राकृतत्वात् “ऋतं सत्यं परं ब्रह्म” इत्यादिपरब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादनात् पादादर्धात् त्रिपादात् देवेषु क्रमेणादिमूर्तिश्च मूर्त्या क्रमेण विष्णुं महाविष्णुं सदाविष्णुं व्यापिनारायण इति चतुर्भूतयो भवन्तीति मरीच्यादिभिः प्रतिपादितत्वात् “तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्” इत्युक्तत्वाच्च । “ऋतमग्निर्वा ऋतमसावादित्यम्”, “अग्निस्सर्वा देवताः”, “असा-वादित्यो ब्रह्म” इति समस्तकल्याणगुणामिप्रायेण ऋतं सत्यमित्युक्तं “पूर्ण-त्वात् पुरुषः” इति पादनारायणादिषु पूर्णत्वाभावात्पूर्णत्वाद्वापिनारायणस्य ।

परशब्देन च व्यापी नारायण इतीरितः ।

नारशब्देन जीवानां समूहः प्रोच्यते नृषैः ॥

तेषामयनभूतत्वान्नारायण इहोच्यते ।
 नरसंबन्धिनो नारा नरश्च पुरुषोत्तमः ॥
 नाम्यत्यखिलविज्ञानं नाशयत्यखिलं तमः ।
 नरिष्यति च सर्वत्र नरस्तस्मात्सनातनः ॥
 नरसंबन्धिनः सर्वे चेतनाचेतनात्मकाः ।
 नृगन्तव्यतया नारा भार्या पोष्यतया नराः ॥

तथा—

नियाम्यत्वेन सृज्यत्वप्रवेशभरणैस्तथा ।
 अयं ते निहितो नारात् व्याप्नोति क्रिययाऽखिलम् ॥
 नाराश्चाप्ययनं तस्य तस्मै भावनिरूपणात् ।
 नराणामयनं वासश्चेतनस्थायनं सदा ।
 परमा च गतिस्तेषां नराणामात्मना स्थितिः ॥

व्यापिनारायणपरत्वाभिप्रायेण तस्मै परब्रह्मणे इत्युक्तम् ॥ ४ ॥

जेनातिर्जेनातिषां जेनातिरोजो बलमाहरत्सत्त्वात्मकं सं-
 जेनातिरित्थं तस्मै सूक्ष्मसूक्ष्माय तेजसे स्वाहा ॥ ५ ॥

परब्रह्मभूतनारायणस्य माहात्म्यं प्रतिपादयति अत्यन्तदीपवत्
 सूर्यचन्द्राम्यादीनां जेनातिः दीप्तिः ओजः परबलाहरणसामर्थ्यमोजः
 जगत्सृष्ट्यादिकं कुर्वतस्तस्य श्रीमहाविष्णोः बलं सत्त्वं सत्त्वात्मकं तदन्त-
 र्यामिणां संजेनातिः सम्यक् ज्योतिः इत्थं उक्तप्रकारेण तस्मै ॥ ५ ॥

सत्त्वं सत्त्वात्मकं वा रजो रजस आत्मकस्तपस्तपस
 आधारः साकृतं निरीश्वरमीश्वराय स्वाहा ॥ ६ ॥

अयमपि मन्त्रः पूर्वोक्तपरमात्मपरः सत्त्वं सात्त्विकं सत्त्वात्मकं
तदन्तर्यामिणं रजो रजस आत्मकः तदन्तर्यामिणं तमः तमस आधारः
साकृत् आकृतसहितं निरीश्वरम् ,

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इति ॥

ईश्वराय सर्वेश्वरायेत्यर्थः ।

विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसन्निधिः ।

प्रीतिः फलप्रदत्वं च देवतानां न विद्यते ॥ इति ॥

विग्रहादिपञ्चकाभावात् चतुर्थ्यन्तः शब्दो देवता शब्दातिरिक्तदेवता-
भावात् मन्त्रार्थवादानां तत्र तात्पर्याभावाच्च ईश्वरायेति कथमुच्यत इति
चेत्—उच्यते ; “ यद्वै किञ्च मनुर्वदत् तद्भेषजम् ” इति श्रुतेः,

मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥

इति संवर्तस्मरणाच्च । प्रमाणत्वेनाभिहितायां मनुस्मृतौ—

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

इति प्रत्यक्षादीनां त्रयाणां प्रामाण्यपतिपादनात् “ महा५ इन्द्रो वज्र-
बाहुः”, “ वज्रहस्तः पुरन्दरः”, “ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिमे
अवेपथः ” इत्यादिदेवतासद्भावप्रतिष्ठादनात् गारुडादिषु मन्त्रेषु मन्त्रवर्णानां
स्वार्थे तात्पर्यदर्शनात् विषहरणादिषु दृष्टत्वाच्च ईश्वरसद्भावोऽस्तीत्यवगन्तव्यः ।
स्मृतीनामपि वेदमूलत्वे त्रेधा निर्वाहः कार्य इति । नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वं

प्राभाकराः । उत्सन्नशास्त्रामूलत्वमापस्तम्बाद्याः । विप्रकीर्णशास्त्रामूलत्वमितरे । नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वे अक्षरानुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्य नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वम् । नाक्षरानुपूर्व्यमूलत्वं यद्युच्यते तर्हि घटपटादीनामपि नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वं स्यात् । आनुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्येति चेदुच्चार्यमाणानुपूर्व्यविशेषणविशिष्टत्वमिति सिद्धान्तेऽनुमेयत्वं भज्येतेति । उत्सन्नशास्त्रा मूलमिति चेत् तेऽपि भिन्नभिन्नपाठाः प्रयोगादनुमीयन्त इति विक्षेपोत्सन्ना वा एकैवेति चेन्न सर्ववेदसाक्षात्कारवतो व्यासस्य एकस्यापि शिष्यस्याध्यापनसामर्थ्याभावेन तथा वक्तुमयुक्तम् । भवेदेवेति चेत् सः पदक्रमादिरूपेणाधीयमानत्वात् तथा वक्तुमयुक्तम् । किन्तु प्रकीर्णशास्त्रामूलत्वं वक्तुं युक्तम् ॥

तदुक्तम्—

दुर्बोधा वैदिकाश्शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च ते खिलाः ।

तथैत एव स्पष्टार्थाः स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिताः ॥ इति ॥

प्रसङ्गादेतत्सर्वमुपपादितम् ॥ ६ ॥

अनिर्भिण्णं यस्येदमासीदुदकात्मकं यस्योदावोज्यनुयमुच्च-
मुच्चैरुत्गाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यस्य परमात्मनः यदा प्रलयः तदा लोके अनिर्भिण्णं मेदरहितं निरन्तरमुदकात्मकमासीत् । यस्य परमात्मनो दग्धुमिच्छा यदा यदा उदावः उत्कृष्टो दावः प्रळयाग्निः अयनुयं तथा असमृद्धिः उच्चं अत्यन्तं उच्चैरुत्गाय श्रुतिस्मृतिषु सर्वत्र अत्यन्तं गायति इति उरुगः तस्मै ॥ ७ ॥

यस्येच्छा लोके वा प्रजायतिलोके तस्मै वासि तस्मै वासीत् यद्वास्संजातं [?] यत्सर्वमीशमाशिषे स्वाहा ॥ ८ ॥

यस्य परमात्मनः इच्छा लोके प्रजानामायतिः सृष्ट्यादिकं
 “सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति” इत्यादिश्रुतेः । मनसैव जगत्सृष्टि-
 संहारौ करोति यः तस्यां पक्षक्षपणे कियान् विस्तर इति लोके

(मातृकायामेतावदेवोपलब्धम्)

यज्ञोपवीतोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्रह्मविद्ब्रह्मविदां मनीषी हिरण्यमादाय
 सुदर्शनं कृत्वा बहिसंयुक्तं स्त्री शूद्रो बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्गर्भेण जायते ।
 ब्राह्मणस्य शरीरं जायते । श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति ।

नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥

भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥

मृत्तिके हन मे पापं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

तस्माद्विरेखं भवति तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा चक्रं
 पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य संमुखं
 प्रपद्येत । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यं
 गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति यज्ञोपवीतोपनिषत् समाप्ता

राधोपनिषत्

प्रथमः प्रपाठकः

ॐ अथ सुषुप्तौ रामः स्वबोधमाधयेव किं मे देवः कासौ
 कृष्णो योऽयं मम आतेति तस्य का निष्ठा ब्रूहीति । सा वै ह्युवाच ।
 राम शृणु भूर्भुवस्स्वर्महर्जनस्तपस्सत्यं तलं वितलं सुतलं रसातलं
 तलातलं महातलं पातालं एवं पञ्चाशत्कोटियोजनं बहुलं स्वर्णाण्डं
 ब्रह्माण्डमिति अनन्तकोटिब्रह्माण्डानामुपरि कारणजलोपरि महाविष्णोर्नित्यं
 स्थानं वैकुण्ठः । स ह पृच्छति । कथं शून्यमण्डले निरालम्बने वैकुण्ठ इति
 साऽनुयुक्ता । पद्मासनासीनः कृष्णध्यानपरायणः शेषदेवोऽस्ति । तस्यानन्त-
 रोमकूपेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि अनन्तकोटिकारणजलानि तस्य सप्तकोटि-
 परिसहस्रपरिमिताः फणाः तदुपरि वैकुण्ठो विष्णुलोक इति । रुद्रलोकः
 शिववैकुण्ठ इति । दशकोटियोजनविस्तीर्णो रुद्रलोकः । तदुपरि विष्णु-
 लोकः । सप्तकोटियोजनविस्तीर्णो विष्णुलोकः । तदुपरि सुदर्शनचक्रं
 त्रिकोटियोजनविस्तीर्णम् । तदुपरि कृष्णस्य स्थानं गोकुलादयं माथुरमण्डलं
 महत्पदं सुधामयसमुद्रेणावेष्टितमिति । तत्राष्टदलकेसरमध्ये मणिपीठे सप्ता-
 वरणकमिति । स पृच्छति । किं रूपं किंस्थानं किं पद्मं किमन्तःकेसरः
 किमावरणम् । इत्युक्ते साऽनुयुक्ता । गोकुलादये माथुरमण्डले वृन्दावनमध्ये
 सहस्रदलपद्मे षोडशदलमध्ये अष्टदलकेसरे गोविन्दोऽपि श्यामपीताम्बरो
 द्विभुजो मयूरपिच्छशिराः वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो
 निरीहः स चेष्टते विराजत इति । पार्श्वे राधिका चेति । तस्या अंशो
 लक्ष्मीदुर्गाविजयादिशक्तिरिति । पश्चिमे सम्मुखे ललिता । वायव्ये श्यामला ।
 उत्तरस्मिन् श्रीमती । ऐशान्यां हरिप्रिया । पूर्वस्मिन् विशाला । अग्रेय्यां

श्रद्धा । याम्यां पद्मा । नैर्ऋत्यां भद्रा । षोडशदले अग्रे चन्द्रावती । तद्दामे
चित्ररेखा । तत्पाश्वे चित्रकरा । तत्पाश्वे मदनसुन्दरी । तत्पाश्वे श्रीमदा ।
तत्पाश्वे शशिरेखा । तत्पाश्वे कृष्णप्रिया । तत्पाश्वे वृन्दा । तत्पाश्वे
मनोहरा । तत्पाश्वे योगनन्दा । तत्पाश्वे परानन्दा । तत्पाश्वे प्रेमानन्दा ।
तत्पाश्वे सत्यानन्दा । तत्पाश्वे चन्द्रा । तत्पाश्वे किशोरीवल्लभा । तत्पाश्वे
करुणाकुशला इति । एवं विविधा गोप्यः कृष्णसेवां कुर्वन्तीति । इति
वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति ।
मानसपूजया जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं
प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति ॥

इत्याथर्वण्यां पुष्पबोधन्यां पारमहंस्यां प्रथमः प्रपाठकः

द्वितीयः प्रपाठकः

ॐ साऽनुयुक्ता । तस्य बाह्वेषु शतदलपद्मपत्रेषु योगपीठेषु रासक्रीडा-
नुरक्ता गोप्यस्तिष्ठन्ति । एतच्चतुर्द्वारं लक्षसूर्यसमुज्ज्वलम् । तत्र द्रुमाकीर्णम् ।
तत्प्रथमावरणे पश्चिमे सम्मुखे स्वर्णमण्डपे देवकन्या । द्वितीये सुदामादि ।
तृतीये किङ्किण्यादि । चतुर्थे लवङ्गादि । पञ्चमे कल्पतरोर्मूले उषा तत्सहितोऽ-
निरुद्धोऽपि । षष्ठे देवाः । सप्तमे रक्तवर्णो विष्णुरिति द्वारपालाः । एतद्बाह्वं
राधाकुण्डम् । तत्र स्नात्वा राधाङ्गं भवति । ईश्वरस्य दर्शनयोग्यं भवति ।
यत्र स्नात्वा नारद ईश्वरस्य नित्यस्थलसामीप्ययोग्यो भवति । राधाकृष्णयोरे-
कमासनम् । एका बुद्धिः । एकं मनः । एकं ज्ञानम् । एक आत्मा । एकं
पदम् । एका आकृतिः । एकं ब्रह्म । तथा समं हेममुरलीं वादयन् हेमस्व-

रूपामनुरागसंवल्लितां कल्पतरोर्मूले [आस्ते ।] सुरभिविद्या अक्षमाला श्रुतिरिव परमा सिद्धा सात्त्विकी । (^१शुद्धा सात्त्विकी गुणातीता स्नेहभावरहिता । अत एव द्वयोर्ने भेदः । कालमायागुणातीतत्वात् । तदेव स्पष्टयति अथेति । अथानन्तरं मङ्गले वा । अथ वा श्रीवृन्दावनमध्ये ऋग्यजुस्सामस्वरूपम् । ऋगात्मको मकारः । यजुरात्मक उकारः । श्रीरामः सामात्मकोऽपि अकारः । श्रीकृष्णः अर्धमात्रात्मकोऽपि । यशोदा इव बिन्दुः । परब्रह्म सच्चिदानन्दानन्दराधाकृष्णयोः परस्परसुखामिलापरसास्वादनेन इव तत्सच्चिदानन्दामृतं कथ्यते । तल्लक्षणं यत् प्रणवं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं इच्छाज्ञानशक्तिनिष्ठं कायिकवाचिकमानसिकभावं सत्त्वरजस्तमस्वरूपं सत्यत्रेताद्वापरानुगीतम् । द्वापरस्य पश्चाद्वर्तते कलिः । एतच्चतुर्युगेषु गीयते । तद्भूर्भुवस्स्वर्लक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदतिरिक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्वं ह्येतद्ब्रह्म आत्मा सोऽहमस्मि इति धीमहि चिन्तयेमहि । “आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति” इति यत् श्वेताख्यं श्वेतद्वीपनाम स्थानं तुरीयातीतं गोकुलमथुराद्वारकाणां तुरीयमेतदिव्यं वृन्दावनमिति पुरैवोक्तं सर्वं संपत्संप्रदायानुगतं यत्र ॥)

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां द्वितीयः प्रपाठकः

तृतीयः प्रपाठकः

अथानन्तरं भद्रश्रीलोहभाण्डीरमहातालखदिरवकुलकुमुदकाम्बुमधुवृन्दावनानि द्वादशवनानि कालिन्ध्याः पश्चिमे सप्तवनानि पूर्वस्मिन् पञ्चवनानि उत्तरस्मिन् गुह्यानि सन्ति । मथुरावनमधुवनमहावनखादिरवनभाण्डीरवननन्दीश्वरवननन्दवनानन्दवनखाण्डवनपलाशवनाशोकवनकेतकवनद्रुमवन-

^१ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

गन्धमादनवनशेषशायिवनश्यामायुवनभुज्युवनदधिवनवृषभानुवनसंकेतवनदीप-
वनरासवनक्रीडावनोत्सुकवनान्येतानि चतुर्विंशतिवनानि नित्यस्थलानि नाना-
लीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडति । [तानि वनानि] वसन्तऋतुसेवितानि
मन्दादिपवनयुक्तानि [सन्ति] यत्र दुःखं नास्ति सुखं नास्ति जरा नास्ति मरणं
नास्ति क्रोधो नास्ति तत्र पूर्णानन्दमयः श्रीकैशोरकृष्णः शिखण्डिललम्बित-
त्रियुगगुञ्जावतंसमणिमयकिरीटशिराः गोरोचनातिलकः कर्णयोर्मकरकुण्डलो
वन्यस्रग्भी मालतीदामभूषितशरीरः करे कङ्कणं बाहौ केयूरं पादयोः किङ्किणी
कट्यां पीताम्ब [रं च धारयन्] गम्भीरनाभिकमलः सुवृत्तनासायुगलो
ध्वजवज्रादिचिह्नितपादपद्मो महाविष्णु [रास्ते] ।

एवंरूपं कृष्णचन्द्रं चिन्तयेन्नित्यशः सुधीः ॥ इति ॥

तस्याद्या प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिता प्रसन्नाशे-
षलावण्यसुन्दरी । अस्मदादीनां जन्म तदधीनं अस्यांशाद्बहवो विष्णुरुद्रादयो
भवन्ति । एवंभूतस्यागाधमहिम्नः सुखसिन्धोरुत्पन्नमिति मानसपूजया ध्यानेन
कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति ।
नान्येनेति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं
भवति ॥

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां तृतीयः प्रपाठकः

चतुर्थः प्रपाठकः

अथ पुरुषोत्तमो यस्यां निशायां तुरीयं साक्षाद्ब्रह्म । यत्र परमसंन्या-
सस्वरूपः कृष्णः कल्पपादपः । यत्र लक्ष्मीर्जाम्बवती राधिका विमला चन्द्रावली

सरस्वती ललितादिरिति । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपो जगन्नाथः अहंशेषांशज्योतीरूपः सुदर्शनो भक्तश्च । एवं पञ्चधा विभूतमिति । यत्र च मथुरा गोकुलं द्वारका वैकुण्ठपुरी श्वेतपुरी रामपुरी यमपुरी नरसिंहपुरी नरनारायणपुरी कुबेरपुरी गणेशपुरी शक्रपुरी एता देवतास्तिष्ठन्ति । यत्र रसातलपातालमङ्गारोहिणी-कुण्डममृतकुण्डमित्यादिनानापुरी । यत्रान्नं सिद्धानम् । (‘शूद्रादिस्पर्शदोषरहितं ब्रह्मादिसंस्कारापेक्षारहितं यत्र श्रीजगन्नाथस्य योगमित्यर्थः । “नाभ्या आसीत्” इति मन्त्रेण, “अन्नपतेऽन्नस्य” इति मन्त्रेण, “अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाय भागमत्समे सुखं प्रमार्यते यशसा च बलेन च” इति मन्त्रेण, “विश्वकर्मणि स्वाहा” इति मन्त्रेण, “आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्” इति मन्त्रेण, “पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि स्वाहा” इति मन्त्रेण, “अन्नं ब्रह्म” इति श्रुत्या च कैवल्यमुक्तिरुच्यते । यत्रान्नं ब्रह्म परमं पवित्रं शान्तो रसः कैवल्यमुक्तिः सिद्धा भूर्भुवस्त्वर्महत्तत्त्वमित्यादि यत्र भार्गवी यमुना समुद्रममृतमयं बृन्दावनानि नीलपर्वतगोवर्धनसिंहासनं प्रासादो मणिमण्डपो विमलादिषोडशचण्डिकागोप्यो यत्र समुद्रतीरे च निरन्तरं कामधेनुबृन्दं यत्र नृसिंहादयो देवता आवरणानि यत्र न जरा न मृत्युर्न कालो न भङ्गो न जयो न विवादो न हिंसा न शान्तिर्न स्वप्न एवं लीलाकामशरीरी स्वप्तिनोदार्थं भक्तैः सहोत्कण्ठितैस्तत्र क्रीडति कृष्णः ।)

एको देवो नित्यलीलानुरक्तो

भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

¹ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

मानसपूजया जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण
नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति । इति वेदवचनं
भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति ॥

इत्यायवर्ण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां चतुर्थः प्रपाठकः

इति राधोपनिषत् समाप्ता

लाङ्गूलोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीअनन्तधोरप्रलयज्वालाभिरौद्रस्य वीरहनुमत्साध्यसाधना-
धोरमूलमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीरामलक्ष्मणौ देवता ।
सौ बीजम् । अञ्जनासूनुरिति शक्तिः । वायुपुत्र इति कीलकम् । श्रीहनु-
मत्प्रसादसिद्धयर्थं भूर्भुवस्स्वर्लोकासमासीनतत्त्वंपदशोधनार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ भूः नमो भगवते दावानलकालाभिहनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
हृदयाय नमः । ॐ भुवः नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते तर्जनीभ्यां नमः ।
शिरसे स्वाहा । ॐ स्वः नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते मध्यमाभ्यां नमः ।
शिखायै वषट् । ॐ महः नमो भगवते पातालगरुडहनुमते अनामिकाभ्यां
नमः । कवचाय हुम् । ॐ जनः नमो भगवते कालाभिरुद्रहनुमते
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ तपः सत्यं नमो भगवते भद्र-
जातिविकटरुद्रवीरहनुमते करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अस्त्राय फट् ।
पाशुपतेन दिग्बन्धः । अथ ध्यानम्—

वज्राङ्गं पिङ्गनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाक्रान्तगण्डं
दम्भोलिस्तम्भसारप्रहरणविवशीभूतरक्षोऽधिनाथम् ।

उद्यल्लाङ्गूलधर्षप्रचलजलनिधिं भीमरूपं कपीन्द्रं

ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्लवगपरिवृढं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥

इति मानसोपचारैः संपूज्य, ॐ नमो भगवते दावानलका-
लाग्निहनुमते [जयश्रियो जयजीविताय] धवलीकृतजगत्त्रय वज्रदेह वज्रपुच्छ
वज्रकाय वज्रतुण्ड वज्रमुख वज्रनख वज्रबाहो वज्ररोम वज्रनेत्र
वज्रदन्त वज्रशरीर सकलात्मकाय भीमकर पिङ्गलाक्ष उग्र प्रलयकालरौद्र
वीरमद्रावतार शरमसालुवभैरवदोर्दण्ड लङ्कापुरीदाहन उदधिलङ्घन
दशग्रीवकृतान्त सीताविश्वास इश्वरपुत्र अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्कर-
विम्बानलग्रासक देवदानवत्रक्षिमुनिवन्द्य पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रवैलवास्त्रनाराय-
णास्त्रकालशक्तिकास्त्रदण्डकास्त्रपाशाघोरास्त्रनिवारण पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रवैल-
वास्त्रनारायणास्त्रमृड सर्वशक्तिग्रसन ममात्मरक्षाकर परविद्यानिवारण आत्म-
विद्यासंरक्षक अग्निदीप्त अथर्वणवेदसिद्धस्थिरकालाग्निनिराहारक वायुवेग
मनोवेग श्रीरामतारकरपरब्रह्मविश्वरूपदर्शन लक्ष्मणप्राणप्रतिष्ठाबन्धकर स्थल-
जलाग्निमर्ममेदिन् सर्वशत्रून् छिन्धि छिन्धि मम वैरिणः खादय खादय
मम संजीवनपर्वतोत्पाटन डाकिनीविध्वंसन सुग्रीवसस्यकरण निष्कलङ्क
कुमारब्रह्मचारिन् दिगम्बर सर्वपाप सर्वग्रह कुमारग्रह सर्वं छेदय छेदय मेदय
मेदय भिन्धि भिन्धि खादय खादय टङ्क टङ्क ताडय ताडय मारय मारय
शोषय शोषय ज्वालय ज्वालय हारय हारय देवदत्तं नाशय नाशय अति-
शोषय अतिशोषय मम सर्वं च हनुमन् रक्ष रक्ष ॐ हां ह्रीं हूं हुं फट् धे
धे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते महावीराय सर्वदुःखविनाश-
नाय ग्रहमण्डलभूतमण्डलप्रेतपिशाचमण्डलसर्वोच्चाटनाय अतिभयङ्करज्वर-
माहेश्वरज्वर-विष्णुज्वर-ब्रह्मज्वर-वेताळब्रह्मराक्षसज्वर-पित्तज्वर-श्लेष्मसाज्जिपा-

तिकज्वर-विषमज्वर-शीतज्वर-एकाहिकज्वर-द्वयाहिकज्वर-त्र्यैहिकज्वर-चातु-
र्थिकज्वर - अर्धमासिकज्वर - मासिकज्वर-षाण्मासिकज्वर-सांवत्सरिकज्वर-अ-
स्थ्यन्तर्गतज्वर-महापस्मार-श्रमिकापस्मारांश्च भेदय भेदय खादय खादय
ॐ हां हीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते अङ्गशूल-अक्षिशूल-शिरश्शूल-
गुल्मशूल-उदरशूल-कर्णशूल-नेत्रशूल गुदशूल-कटिशूल-जानुशूल-जङ्घाशूल-ह-
स्तशूल-पादशूल-गुल्फशूल-वातशूल-पित्तशूल-पायुशूल-स्तनशूल-परिणामशूल-
परिधामशूल-परिबाणशूल-दन्तशूल-कुक्षिशूल सुमनश्शूल-सर्वशूलानि निर्मूल्य
निर्मूल्य दैत्यदानवकामिनीवेतालब्रह्मराक्षसकोलाहलनागपाशानन्तवासुकि-
तक्षककार्कोटकलिङ्गपद्मकुमुदज्वलरोगपाशमहामारीन् कालपाशविषं निर्विषं
कुरु कुरु ॐ हां हीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ हीं श्रीं क्लीं ग्लं ग्लीं ग्लूं ॐ नमो भगवते पातालगुरुडहनुमते
भैरववनगतगजसिंहेन्द्राक्षीपाशबन्धं छेदय छेदय प्रलयमारुत कालाभि-
हनुमन् शृङ्खलाबन्धं विमोक्षय विमोक्षय सर्वग्रहं छेदय छेदय मम सर्वका-
र्याणि साधय साधय मम प्रसादं कुरु कुरु मम प्रसन्न श्रीरामसेवकसिंह
भैरवस्वरूप मां रक्ष रक्ष ॐ हां हीं हूं हां हीं क्ष्मौं त्रैं श्रां श्रीं क्लां क्लीं
क्रां क्रीं हां हीं हूं हैं हौं हः हां हीं हुं ख ख जय जय मारण मोहन
घूर्ण घूर्ण दम दम मारय मारय वारय वारय खे खे हां हीं हूं हुं फट्
घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते कालाभिरौद्रहनुमते आमय आमय लव लव
कुरु कुरु जय जय हस हस मादय मादय प्रज्वलय प्रज्वलय मृडय मृडय
त्रासय त्रासय साहय साहय वशय वशय शामय शामय अस्त्रिशूलडमरुतज-
कालमृत्युकपालखट्टाङ्गधर अभयशाश्वत हुं हुं अवतारय अवतारय हुं हुं

अनन्तभूषण परमन्त्र-परयन्त्र-परतन्त्र-शतसहस्र-कोटितेजःपुञ्जं मेदय मेदय
 अग्निं बन्धय बन्धय वायुं बन्धय बन्धय सर्वग्रहं बन्धय बन्धय अनन्तादिदुष्ट-
 नागानां द्वादशकुलवृश्चिकानामेकादशलक्षानां विषं हन हन सर्वविषं बन्धय
 बन्धय वज्रतुण्ड उच्चाटय उच्चाटय मारणमोहनवशीकरणस्तम्भनजृम्भणाक-
 र्षणोच्चाटनमिलनविद्वेषणयुद्धतर्कमर्माणि बन्धय बन्धय ॐ कुमारीपदत्रिहार-
 बाणोग्रमूर्तये ग्रामवासिने अतिपूर्वशक्ताय सर्वायुधधराय स्वाहा अक्षयाय
 घे घे घे घे ॐ लं लं लं प्रां प्रौं स्वाहा ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं हुं फट् घे घे
 स्वाहा ॥

ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रै श्रौं श्रः ॐ नमो भगवते भद्रजानिकटरुद्रवीर-
 हनुमते टं टं टं लं लं लं लं देवदत्तदिगम्बराष्टमहाशक्त्यष्टाङ्गधर अष्ट-
 महाभैरवनवब्रह्मस्वरूप दशविष्णुरूप एकादशरुद्रावतार द्वादशार्कतेजः
 त्रयोदशसोममुख वीरहनुमन् स्तंभिनीमोहिनीवशीकरिणीतन्त्रैकसावयव नगर-
 राजमुखबन्धन बलमुखमकरमुखसिंहमुखजिह्वामुखानि बन्धय बन्धय स्तम्भय
 स्तम्भय व्याघ्रमुखसर्ववृश्चिकाग्निज्वालाविषं निर्गमय निर्गमय सर्वजन-
 वैरिमुखं बन्धय बन्धय पापहर वीर हनुमन् ईश्वरावतार वायुनन्दन अञ्जना-
 सुत बन्धय बन्धय श्रीरामचन्द्रसेवक ॐ ह्रां ह्रां ह्रां आसय आसय ह्रीं ह्रां
 प्रीं क्रीं यं मै ग्रं प्रः हट् हट् खट् खट् सर्वजन-विश्वजन-शत्रुजन-वश्यजन-
 सर्वजनस्य दशं लं लां श्रीं ह्रां ह्रीं मनः स्तम्भय स्तम्भय भञ्जय भञ्जय
 अद्रि ह्रीं व ह्रीं ह्रीं मे सर्व ह्रीं ह्रीं सागरह्रीं ह्रीं वं वं सर्वमन्त्रार्थवर्ण-
 वेदसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । श्रीरामचन्द्र उवाच । श्रीमहादेव उवाच ।
 श्रीवीरभद्रस्तौ उवाच । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥

इत्याथर्वणहस्त्ये लाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत्

निरञ्जनो निराख्यातो निर्विकल्पो नमो नमः ।

पूर्णानन्दो हरिर्मायारहितः पुरुषोत्तमः ॥

अष्टावष्टसहस्रे द्वे स्त्रियो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । स्मृतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । षट्छास्त्राणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । छन्दो जायते पुरुषोत्तमात् । निगमो जायते पुरुषोत्तमात् । प्रजापतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । शशिरवी जायते पुरुषोत्तमात् । सकलतीर्थानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । परशिवशक्तिर्जायते पुरुषोत्तमात् । ऋषयोऽनृषयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । इन्द्रो जायते पुरुषोत्तमात् । द्वादशादित्या रुद्राः सर्वा देवता जायन्ते पुरुषोत्तमात् । देवा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सप्त सागरा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सर्व आत्मा जायते पुरुषोत्तमात् । मनःसर्वेन्द्रियाणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टादश ब्रह्माण्डानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टसिद्धिनवनिधयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । वनमारा अष्टादश जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अमृतो जायते पुरुषोत्तमात् । अम्भो जायते पुरुषोत्तमात् ॥

ॐ निगमं शङ्करोऽब्रवीत् । गौः । म्मा । ज्मा । क्षमा । क्षा । क्षमा । क्षोभिः । क्षितिः । अवनिः । उर्वी । पृथ्वी । मही । रिपः । अदितिः । इळा । ^१जीवामकालाश्रुता जीवः जीवा अस्ताजीव्यामं सर्वमायु-जीव्यासं [?] । लोदकंचनकांचानु अमृतं न भवति [?] पारमधाराणि [परमधर्माणि] जातवेदाः प्रोवाचैवेदं सर्वम् । शिवशक्तिपशुजीवो ब्रह्मा भक्तः पशुवत् [?] । यन्नत्यादेव पर श्रक्तो परशिवः अन्या अवतारातेहि व्यास-वल्लश्रविठलेहरयस्तथा [?] । ललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्रं मध्यच्छिद्रं चन्दनतिलकं

^१“जीवामकालाश्रुता जीवः” इत्यारभ्य “पुरुष एवेवं सर्वम्” इत्येतत्पर्यन्तं अतीव विकला मातृकेति सान्नातापं यथास्थितं वीयते ॥

शुभं हरिमन्दिरं मध्यपद्मं कण्ठेतुलसी शङ्खचक्रं गदा बाहुगोपीचन्दनचर्चनं
परं गतिः जीवोत्तमस्य । ब्रह्मा शक्तिर्महादेवो जन्यते पुरुषोत्तमात् । ॐ
आपोऽमृतमर्त्यस्य मर्त्योऽपश्यत यस्तु जन्यते पुरुषोत्तमात् । अमृतात्
प्राणाश्चाहो मम जायन्ते पुरुषोत्तमात् । मनसि निषण्णः श्रीप्राणाय प्रज्ञानाय
स्वराद् पुरुषोत्तमः । श्रीकृष्णभगवान् नारायणः परमात्मा पुरुषोत्तमः
त्रिगुणरहितः स्वयम् । कथम् ? पुरुष एवेदं सर्वम् ॥

इति श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत् समाप्ता

सङ्कर्षणोपनिषत्

अथ तद्विष्णोः इति शान्तिः । अथ सङ्कर्षणोपनिषदुच्यते । शेषो ह
वै वासुदेवात्सङ्कर्षणो नाम जात आसीत् । सोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति ।
ततः प्रधुम्नसंज्ञं मन आसीत् । तस्मादहंकारनामाऽनिरुद्धः । ततो हिरण्य-
गर्भोऽजायत । तस्माद्दश प्रजापतयो मरीच्यादयः स्थाणुदक्षकर्दमप्रियव्रतो-
त्तानपादादयोऽप्यजायन्त । तेभ्यः सर्वाणि भूतानि च । तस्माच्छेषादेव
सर्वाणि समुत्पद्यन्ते । तस्मिन्नेव प्रलीयन्ते । स एव बहुधा जायमानः
सर्वान् परिपाति । स एव काद्रवेयो व्याकरणज्यौतिषादिशास्त्राणि निर्दिष्टमाणां
बहुभिर्मुमुक्षुभिरुपास्यमानोऽखिलां भुवमेकस्मिन् शीर्ष्णि सिद्धार्थेवद्वार-
यमाणस्सर्वैर्मुनिभिः संप्रार्थ्यमानः सहस्रशिखरमेरोश्शिरोभिर्वारयमाणो
महाबायोरहंकारं निराचकार । स भगवान् युगसन्धिकाले स्वेन रूपेण
युगे युगे तेनैव जायमानः स्वयमेव सौमित्रिरैक्षवाके[वंशे जा]यमा[नो]
रक्षांसि सर्वाणि विनिम्नं चातुर्वर्ण्यधर्मान् प्रवर्त[यति] । स एव
भगवान् युगसन्धिकाले[शरदभ्रस]निकाशो रौहिणेयो वासुदेवः सर्वाणि

ग[दा]द्यायुधशास्त्राजन्यमण्डलान्निराचिकीर्ष[ति ।] भूभारमखिलं निचखान ।
 स एव भगवान् [शेषः] युगे तुरीयेऽपि ब्राह्मण्यां जायमा[नो]
 रानानुजो भूत्वा सर्वा उपनिषद उद्धीर्ष[ति ।] सर्वाणि धर्मशास्त्राणि
 विस्तारयिष्णुः सर्वानपि वैष्णवान् धर्मान् विजृम्भयन् सर्वानपि पाषण्डान्नि-
 चखान । स एष जग[दाविर्भावतिरोभावहेतुः ।] स एष सर्वात्मकः । स
 एष मुमुक्षुभिर्ध्येयः । स एष मोक्षप्रदः एतत्स्मृत्या[] सर्वेभ्यः पाप्मे-
 [प्म]भ्यो मुच्यते । तन्नाम संकीर्तयन् विष्णुसायुज्यं गच्छति । तदेतद्विष्णु-
 धीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । नक्तमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति ।
 तदेतद्वेदानां रहस्यम् । तदेतदुपनिषदां रहस्यम् । एतदधीयानः सर्वकृतुफलं
 लभते । शान्तिमेति । मनश्शुद्धिमेति । सर्वतीर्थफलं लभते । य एवं वेद ।
 देहबन्धाद्विमुच्यते । देहबन्धाद्विमुच्यते । इत्येवोपनिषत् ॥

इति सङ्कर्षणोपनिषत् समाप्ता

सामरहस्योपनिषत्

एकदा ब्रह्मणः पुत्राः सनकादयस्तत्त्वविवित्सया पितामहं पप्रच्छुः
 प्रणिपातपुरस्सरम् । अहो पितः निरन्तरं वैकुण्ठे या लीलास्ता ध्यायमानाः
 निरन्तरं चिदानन्देन सह संप्रेक्षामहे । वद यदि रुचिरापद्यते ।
 चिदानन्दरसं ब्रह्म किं वदन्ति ? व्यापकतया जगद्व्याप्य तिष्ठति यच्चद्रह
 वदन्तितराम् । आपद्यमानोऽस्ति प्रकृतिं पुरुषः । कस्मात्प्रकृतियोगिता
 भवति ? जीवाः कीदृग्विधाः ? कस्मात्समुत्पन्ना भवन्ति ? तेषां लोका अलोकाः
 कियत्प्रमाणाः ? यान् वदन्ति पुराविदः । पितामह उवाच । नारायण-

मुखाच्छ्रुतोऽयं धर्मः । शृणुत सर्वा यैषा सृष्टिस्समुत्पद्यते । क्षराक्षराभ्या-
मधिकः पुरुषोत्तमसंज्ञितो भक्तिगम्य आनन्दमयो लोकः संविराजते । तस्य
पुरुषोत्तमस्य उत्तरकटाक्षात्समुत्पन्ना जीवाः । तेषां स्नेहमार्गोऽयमापद्यते ।
दक्षिणकटाक्षादुत्पन्नाः कर्मजडा आसुरा अल्पोपासका भवन्ति । तस्मिन्
रसिकानन्दस्वरूपात्पार्श्वे द्वे एव मूर्ती प्रकटिते । प्रथमा भक्तिसुन्दरी
प्रकटिता । पश्चान्मायादासी प्रकटिता । तयोः प्रथमा अत्यन्तवल्लभा
आस्त । भक्तेस्सकाशादुत्पन्ना जीवाः स्नेहमार्गीया भवन्ति । मायायाः
समुत्पन्ना आसुराः कर्मजडा अन्यधर्मरता एव भवन्ति । यदा कर्ममार्गे
रतिरसतां ते आसुरा भवन्ति । सा भक्तिस्त्रिविधैव भवति । एका
कर्ममिश्रिता देवानामृषीणामुपासकानां भवतितराम् । श्रवणकीर्तन-
स्मरणवन्दनसेवनोपकरणदास्यभावेनात्मसमर्पणम् । ते जीवा भक्तिमार्गीयाः
एवैते । स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान् । तद्रूपं
रससंवल्लितमानन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति । सर्वे आनन्दरसा यस्मात्
प्रकटिता भवन्ति । आनन्दरूपेषु पुरुषोऽयं रमते । स एवायं पुरुषः
स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत् । अतो
लोके वेदे श्रीराधा गीयते । तत्स्वरूपात्सृष्टिर्या समुत्पन्ना सा रसिकानन्देन
सुसेव्यतां प्राप्ता आसीत् । प्रमाणप्रमेयादस्मान्मार्गादतिरिक्तोऽयं मार्गो
रसात्मकः । य एतन्मार्गे आसक्तास्ते रसरूपिणीं सृष्टिमन्तरूपद्यमानाः
भवन्ति । लक्ष्मीनारायणीयोऽयं संवादः । त्रिरन्तरं नारायणो वैकुण्ठे रमया
रहस्यलीलां सङ्गायमानोऽभवत् । रमारमणो वैकुण्ठे नारायणः स्वयं
ध्यानापन्नोऽभवत् । तदा लक्ष्मीः रहस्युपासमाना तस्य तामवस्थां निरीक्ष्य
प्रश्नयावनता पप्रच्छ । किं ध्यायसि ? किं जपसि ? परं कौतूहलं
मे मनसि वर्तते । त्वत्तः परं को देवः ? को लोकः ? यस्य त्वं ध्यायसे

प्रतिक्षणम् । तव मनः कां लीलामापन्नं दृश्यते ? स होवाच लक्ष्मीं प्रति । महालीलास्थानं क्षराक्षराभ्यामधिकं पुरुषोत्तमाधिष्ठानम् । यत्र सप्तावरणानि तेजोमयानि । यत्र ब्रह्माण्डान्युत्पद्यन्ते लीयन्ते । कोटिश अण्डकटाहाः उत्पद्यन्ते लीयन्ते । यस्य प्रतापकल्या उत्पन्ना ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो देवाश्च दिक्पालाः कोटिश उत्पद्यमाना लीयमानाश्च भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो क्षराक्षराभ्यामधिकस्य रसिकानन्दस्य स्थानं विस्तरशो ब्रूहि । स होवाच । आदौ पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य अनादिसंसिद्धा लीलाः भवन्ति । अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति । तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति । तस्मादानन्दमयोऽयं लोकः । यत्रायं पुरुषो रमते तत्रायं रसो ब्रजति । तस्माल्लोके वेदे ब्रजलीला गीयते । तन्मध्ये वनानि द्वादश सन्ति । तेषां पृथक् नामानि सन्ति । तालवनं बृहद्वनं कुमुदवनं लोहवनं बकुलवनं भाण्डीरवनं महावनं गोष्ठं काम्यवनमरिष्टं च सदाशुभं दधिवनं वृन्दावनमिति । सदा आनन्दमयोऽयं लोको वेदविदो यं वदन्ति । यत्र वृन्दावनं सर्वकामसुखावहं भवति । यत्र वृक्षा आधिदैविका देवा एव भवन्ति । यत्र साधनवट-भाण्डीरवटौ । यत्र वंशीवटसंकेतवटौ । अन्ये वृक्षाः कदम्बाद्या यत्र राजन्ते । यत्रोभयतटवद्धा यमुना रत्नसचिता आस्ते । यस्यां कुमुदवनानि राजन्ते । यस्यां हंससारसयूथानि क्रीडापराणि शोभाब्जानि भवन्ति । यस्यास्तटे कोटिशः कुञ्जाश्च निकुञ्जाश्च राजन्ते । तस्मिन् मण्डले गोवर्धनोऽयं गिरिः । रत्नमयोऽयं गिरिः राजमानो भवति । अयं गिरिः श्रीराधिकायाः रमणस्थानम् । स एवायं गिरिर्वृन्दावने सदा रसिकानन्दस्य क्रीडास्थानं भवति । तस्मिन् वने पशुपक्षिगणा आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सदा सानुभवा भवन्ति । आधिदैविकी या सृष्टिः सा सृष्टिस्तस्मिन् लोके

लोकतां प्राप्नोति । सा सृष्टिर्द्विभेदा भवति । एका संसिद्धा अन्या
 साधनसिद्धा भवति । या संसिद्धा सा तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपात्
 समुत्पाद्या भवति । या साधनसिद्धा सा भजनमार्गे प्रपन्ना । भक्तास्तां
 लीलां तद्भावेन प्राप्नुवन्ति । रसलीलायामुपकरणानि रसलीलायामधिकरणे
 सख्यश्चातुर्यगुणयुताः ससखीसमूहा यौवनसंपत्तिपूर्णा अनेककलाकोविदाः
 रसभावेन पूर्णा भवन्ति । यत्र चन्दनवृक्षाणां श्रेणयो राजमाना भवन्ति ।
 मणिविद्रुमलताग्रथिताः सुवर्णसुगन्धसंवलिता वृक्षास्तथा पुष्पाणि संराजमानानि
 भवन्ति । तत्र सखीयूथानि भोज्यं हस्ते गृहीत्वा तिष्ठन्ति । तासु श्रेणिषु
 लतान्तरैर्ग्रथितानि द्वाराणि मणिलतायुतानि भवन्ति । मणिमण्डलं यत्र
 तेजोमयं मणिमण्डपेन सह आजमानं भवति । लताग्रथिता मणिस्तंभाः
 शतशो राजमाना भवन्ति । तस्मिन् मण्डपे परितः सुवर्णभित्तिषु जटिताः
 मणयस्तेजोमयाः संराजमाना भवन्ति । तत्राधित्यकासु चन्द्रकान्तमणिना
 द्योतिता जलमणयो जलधाराश्च भवन्ति । तेन जलेन पूरिताः सुगन्ध-
 मणिपुष्करिण्यो राजमाना भवन्ति । तत्र कमलानि प्रफुल्लानि श्वेतरक्त-
 पीतानि मनोहरशोभां ददति । तत्रोपस्थितपरागस्तद्वनं वासयति । तत्र
 हंसयुग्मानि कोटिशो देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति । यत्र अमराः
 सानुभवा देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति । तत्र पुष्करिणीः
 परितो दश दश मन्दिराणि चतुष्कोणेषु सन्ति । रत्नमयकुड्येषु कृत्रिमाः
 पक्षिणः सानुभवा इव दृश्यन्ते । तत्र मध्ये मध्ये वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति ।
 सुकोमलैः पत्रैस्तेजोमयै राजन्ते । तेषां सुगन्धेन उन्मदा अमरास्तस्याः
 श्रीराधिकाया यशो गायन्ति । तत्र केचित् वृक्षाः पुष्पैः शाखाप्रतिशाखाः
 नम्रा भवन्ति । तेषु वृक्षेषु हरितपीतशुभ्रश्चेता द्योतिताः पुष्पगुच्छा भवन्ति ।
 तेषामधःशृङ्गारवत्यादयः सख्यः पुष्पाणां शय्या रचयन्ति । तत्र लतान्तरैः

आच्छादिता वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र मणिजटितानि रमणस्थानानि कोटिशो राजन्ते । यत्र ललिता विशाखा सुभगा कलावती मनोरमा चन्द्रकलामोहिनी गतिरतिविलासिनी मोहिनी शास्त्रगीतज्ञा गुणज्ञा भोगज्ञा भोगप्रदा कामप्रदा कामदा, केलिदा सुरतकलाकोविदा संभोगसुखदा गतत्रपा निःशङ्करतिदा सुतरां सुरतान्तनिद्रिता अन्याः कोटिशः सख्यः संविराजमाना भवन्ति । दश मन्दिराणि भक्ष्यभोज्यैः संपूरितानि भवन्ति । यत्र घृतपक्वानि पक्वान्नान्यनेकशो विविधरसयुक्तानि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु कटुतिक्तकषायमाधुर्यरसा भोगवत्या सख्या कृताः संपूर्णाः प्रतिक्षणं नूतना भवन्ति । अत्रे सिद्धान्नभोगापूपपायसपक्वान्नभागाः शाकविविध-षड्रससंवलिता अन्नपूर्णया सख्या संपादितास्तथा निकुञ्जदेव्या सेव्यमाना भवन्ति । वस्त्रवत्या सख्या संपादिता न्यनेकशो वस्त्राणि समयोचितानि मनोरमाणि सन्ति । भूषणभूष्या सख्या रचितानि भूषणानि तस्या निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गाराः कोटिशः सन्ति । तत्रान्ये शृङ्गारादिभोगा भोगवत्या कृतास्तेषु मन्दिरेषु तस्याः सुखार्थं भवन्ति । तत्र चतुःश्रेणीनि दशदशमन्दिराणि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गारा अनेकधा रचिता भवन्ति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां समूहाः पृथक् पृथक् कार्येषु संलग्ना भवन्ति । तेषां मध्ये रासमण्डलं तेजोमयमानन्दमयं तस्याः श्रीराधिकायाः सुखार्थं वृन्दानाम्ना सख्या तथा संपादितं भवति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां एका योगमाया सखी सर्वासां सखीनां सर्वत्र एकभावं करोति । तस्मिन् स्थाने सुनादाः सख्यः सुनादेन सप्तस्वराणि श्रावयन्ति । तत्र ब्रह्माण्डे याः सिद्धयोऽणिमादयस्तत्र सखीरूपं विधाय तां श्रीराधिकां सेवमाना भवन्ति । सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वता अन्ये च निधयो देवानां सन्ति ते निधयस्तस्याः

निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय सखीनां रूपाणि विधाय तन्मण्डलं सेवन्ते । तस्मिन्मण्डले श्रीरपि सखीरूपं विधाय आकारं गोपयन्ती सेवमाना भवति । नित्यलीलायां षडृतवोऽपि सखीनां रूपाणि विधाय सेवमाना भवन्ति । काले काले तासु निकुञ्जश्रेणिषु सञ्चारिणीनां नानाभोगान् ददति । मेघा नाना-सखीनां रूपाणि कृत्वा जलसेचनं कुर्वन्ति । कामदेवोऽपि सखीरूपं विधाय तत्स्थानं सेवमानो भवति । अहोरात्रमपि स्वस्वरूपेण अहनि निशि च सेवते तन्मण्डलम् । तदिच्छया कचिद्दिवा कचिन्निशा कचित्प्रातः कचित्सायं कचिन्मध्याह्नः कचिन्निशीथं नानाभावेन कालेकाले तन्मण्डलं सेवते । नानामणय ओषधयो वनस्पतयो वृक्षा ये पृथिव्यां सन्ति ते आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सेवमाना भवन्ति । सिन्धवः स्वरूपेण निधीन् गृहीत्वा तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वताः तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । सखीरूपेणात्यन्तमणिज्योत्स्नाभिर्यत्र तत्र अन्ये च ब्रह्माण्डवर्तिनस्तत्स्थानं दीपयन्तो भवन्ति । पृथिव्यां यत्किञ्चिद्भुत्सुमात्रं तस्याधिदैविकं रूपं तत्रैवास्ति । तस्मात्सर्वं समुत्पन्नं भवति । ब्रह्माण्डे ये देवास्ते आधिदैविकेन रूपेण तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । तस्मात्ते सर्वे समुत्पन्ना ब्रह्माण्डे भवन्ति । वेदाः स्वऋचाभिस्तस्मिन्स्थाने तस्या निकुञ्ज-देव्या यशो गायन्ति । कामदुघाः स्वयूथेनाधिदैविकं रूपं विधाय संसेवन्ते । दधिदुग्धतक्रनवनीतघृताद्यान् रसान् गृहीत्वा सेवमाना भवन्ति । तत्र रासमण्डलमेतैर्गुणैरन्यैर्विविधैः संपूरितं रसिकानन्देन सह श्रीराधिकां सेवमानं भवति । यस्य रासमण्डलस्य परितः स्थानानि द्वादश संशोभमानानि भवन्ति । एकं मज्जनस्थानम् । यत्रोष्णोदकपुष्करिण्यो जलैः संपूर्णा भवन्ति तत्र मज्जनवत्यादयः सख्यो मज्जनार्थं सेवमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । तत्र निकुञ्जानां श्रेणयो रत्नालवालैश्चन्द्रोद्भवैर्जलैः

सेव्यमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । चन्द्रका-
न्तमणेरुत्पन्नैर्जलैः सेव्यमाना मुक्तालता मुक्तागुच्छैः संपूरिता भवन्ति ।
मणिलतासु ज्योत्स्नायां प्रतिविम्बिताः पक्षिणः परस्परं दृष्टिवन्धेन नृत्यं
कुर्वन्ति । द्वितीयं शृङ्गारस्थानम् । यत्र शृङ्गारवत्या सख्या अधिश्रितम् । तस्मिन्
स्थाने अधिश्रिता रङ्गवत्यादयः सख्यो मोदन्ते । तृतीयं मानस्थानम् । यत्र
मानवत्यादयः सख्यो मानं रचयन्ति । यस्मिन् मन्दारवृक्षाः सुवर्णलताः
सुगन्धा अथिता भवन्ति । तेषु वृक्षेषु पुष्पाणि सुगन्धसंवलितानि भवन्ति ।
लतान्तरैराच्छादितं स्थानं सुगन्धसंवलितं मनोरमं तेजसा दीप्यमानं भवति ।
हरितपीतच्छायाभिः संयुतं तेजसा दीप्यमानं भवति । मन्दारनिकुञ्जाः
श्रीराधिकाया अधिष्ठानम् । यमुनायास्तीरे धीरसमीरे एकवटश्चकास्ति ।
तस्य वटस्य परितो निकुञ्जानां श्रेण्यो राजमाना भवन्ति । द्वादश निकुञ्जाः
सन्ति । सखीनां सञ्चाराः सूक्ष्मतरा लतान्तरैर्ग्रथिता भवन्ति । तत्र ललि-
तादयः सख्यो रसिकानन्देन सह वचनप्रतिवचनोत्तरं ददति । कुञ्जान्तर-
श्रेणिषु सखीनां मध्यसञ्चारोऽस्ति । रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः स्वयमेव
प्रणिपातं करोति । स्वामिनी मनोरमा निकुञ्जे स्वयमेवातिमानातुरतया
मनोभावापन्ना भवति । स्वभावसंसिद्धाः सख्यो भावापन्ना भवन्ति ।
अतिरसलंपटो रसिकानन्दः सर्वासां सखीनां प्रणिपातं करोति । अत्यन्त-
मग्नाः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्य सुरतानन्दे मग्ना भवन्ति । चतुर्थं भोगस्थानम् ।
यत्र सुभोज्या सख्या सेवितम् । यत्र खाद्यपेयलेखचोप्यरसा अनेकस्वादुयुताः
भवन्ति । अन्नपूर्णया सख्या पाचितानन्नरसानत्युष्णान् सद्यःपाचिता-
निव श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सेवते । अगुरुरसांस्तैलरसान्
पुष्परसान् नानासुगन्धरसान् श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः संसेवमानो
भवति । अन्ये ताम्बूलादयो लवङ्गकर्पूरादय एलाजातीफलपूगफलनाळिके-

रपनससहकारभद्राक्षेक्षुरसैः शर्करादयः पिष्टरसपूर्णतया निकुञ्जदेव्या सं-
 सेव्यन्ते । ललिता रङ्गवती भोगवती प्रेमोत्कण्ठा सुरतानन्दा सुरतरसको-
 विदा चेति सख्यः श्रीराधिकाया दत्तं प्रसादं भुञ्जते । तत्रैकं रसिकानन्द-
 शृङ्गारस्थानम् । यत्र पारिजातकवृक्षाः सदा पुष्पैः प्रफुल्लिता नम्रा भवन्ति ।
 तत्र सुगन्धसुवर्णलताभिः संवलितं भवति । सुगन्धमुक्तालताभिः पारि-
 जातकवृक्षा ग्रथितनिकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र एको अमरो देववाण्या
 चातुर्येण मानस्थाने राधिकां प्रति दूतत्वं करोति । स अमरो रसिकानन्दं प्रति
 प्रियो भवति । स अमरः स्वचातुर्येण श्रीराधिकाया मानापकरणं करोति ।
 स अमरोऽत्यन्तमनोहरचातुर्यासीमगुणज्ञः स्वभावसंसिद्धः साधनसिद्धो
 भवति । स अमरो रसिकानन्दस्य दूतो भवति । निरन्तरं श्रीराधिकायाः
 मानलीलायां सहकारी भवति । तस्माद्रसिकानन्दस्यातितरां बल्लभो भवति ।
 तेऽत्र अमरा मनोहरशब्देन सङ्गीतरसं गमयन्ति । तत्रैकः शुकः साधनसिद्धः
 श्रीराधिकाया मानस्थाने मन्दारनिकुञ्जे निवसति । तेन शुकेन अमरचातुर्यं
 निरीक्ष्य तस्या निकुञ्जदेव्याः कृपां निरीक्ष्य अत्याश्चर्यं प्रपेदे । स अमरस्तेन
 शुकेन पृष्ठः अहो अले त्वं कः ? केन साधनेन त्वयेदं रूपं प्राप्तम् ? कथं
 श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकाया दूतत्वं प्राप्तः ? अलिरुवाच । अहो शुक त्वं
 पूर्वं कोऽसि ? केन साधनेनेदं लीलास्थानं प्राप्तम् ? शुक उवाच । अहं पूर्वं
 ब्राह्मणोऽस्मि । विष्णोरुपासककुलोत्पन्न एकात्मभावेन मम मनो हरिं भजमानं
 भवति । एकस्मिन् वासरेऽस्मि ब्रह्मलोकं गतः । तत्रानन्यमार्गीया भक्ताः
 मया दृष्टाः । रसमार्गीया भक्ता मया दृष्टाः । तेषां सङ्गमेन मया
 निकुञ्जलीला अनुभूताः । तत्रारिष्टे श्रीराधाकृष्णपुष्करिण्युद्धवां मृत्तिकां
 भक्षयता तत्र निरन्तरक्रीडास्थलं मया श्रुतं पूर्वम् । अस्या मृत्तिकायाः
 माहात्म्यं महालीलायाः प्राप्तेः कारणम् । अमरो वदति । त्वया किं

श्रुतमस्या माहात्म्यम् ? शुक उवाच । श्रीरसिकानन्देन वन्दितम् ।
 श्रीराधिकायाः प्रेमवत्यादयः सख्यस्तस्मात्स्थानात्समुत्पन्नाः । स्वयमपि
 तस्मिंस्थले रासलीलायाः प्रारम्भः कृतः । तस्मिन् काले श्रीरसिकानन्देन
 स्वयमेव वन्दितं तपसा ध्यानेनाधिकृतम् । तस्माल्लोके वेदे वन्दितमिदं
 स्थानम् । अस्य स्थानस्य मृत्तिका मया अनुभूता । तेनेदं स्थानं प्राप्तम् ।
 इदं शरीरं तथा मृत्तिकया पुष्टं साधनसिद्धं जातम् । अहो अमर त्वं
 कथय यदि रुचिः स्यात् । अलिरुवाच । अहमपि पूर्वं गौडदेशोद्भवकायस्थः ।
 वैष्णवोऽहं निरन्तरं प्रेमाधिक्येन रसिकानन्दं सेवमानोऽभवम् । गुर्वनुग्रहेण
 साधूनां रसमार्गीयाणां सङ्गेन मया रसमार्गरूपा कथा श्रुता । तेषां
 साधूनां सङ्गो मयानुभूतः । तत्कथाद्वारेण मम हृदि प्रविष्टो रसः । अहं
 रसलीलायां प्रपन्नोऽभवम् । रसलीलायां प्रवृत्तिरन्यधर्मविस्मरणपूर्विका
 जाता । तस्याः सेवाकथायां प्रत्ययो बभूव । ये रसमार्गीया भक्तास्तेषां
 सम्बन्धालापकीर्तनगोष्ठीमार्गानुभवान्मनो भावमापन्नं प्रेमाधिक्यं सुखसंपत्तिः
 इष्टतमवस्तुपात्रदेहादि यत्किञ्चित् समर्पयेदिति । इत्यानुभवेन मार्गेण
 भक्तैस्सह ब्रजलोके प्राप्तोऽहं सर्वसङ्गरिक्तोऽभवम् । तस्मिन् ब्रजमण्डले
 निवसन्नहं प्रतिकक्षं प्रतिकुञ्जं तां लीलां चिन्तयमानस्तद्भावापन्नो भवामि ।
 तद्भक्तैः सह देहादिसुखं ततो ग्राह्यं ततो देयमिति मनसा वाचा तैः सह
 कालोऽज्ञातकालविषयोऽप्यते । एवं मम धर्मः सिद्धो भवति । सिद्धधर्मेण
 शरीरं साधनसिद्धं बभूव । तदा ममाभिलाषो मनस एव भूतो भवति ।
 येनाभिलाषेणाहं अमररूपेण तस्या निकुञ्जदेव्या यशः सङ्गायामि ।
 पश्चात्प्रसन्नेन रसिकानन्देन तथा देव्या मनसेप्सितं रूपं दत्तम् । इदं
 मान्यस्थानं दत्तम् । अहो शुक अहमस्मिन् स्थाने श्रीराधिकाया वने
 क्रीडापरो भवेयमिति । तद्बृन्दावनं सर्वकालसुखसमृद्धिसंपूर्णं श्रीराधिकाया

सदा सेवितं रसिकानन्देन सह । तस्मिन् वायवः शीतमन्दसुरभिभावेन
 सेवमानाः सन्ति । तत्र स्थाने अमृतोदा पुष्करिणी आस्ते । तासु पुष्करिणीषु
 कन्दुकलीलया श्रान्ताः सख्यो मञ्जनं कुर्वन्ति । अतितरां सितजलकल्लोलैर्मञ्ज-
 नक्रियायां तस्मिन्नत्यन्तरसमग्रानि हंसयूथानि राजन्ते । उपरि पक्षिणां
 पङ्क्तिः कलकण्ठैः सेव्यमाना अभ्येति । अतितरामानन्दमग्नाः सखीनां
 गणा गुणगणान् सङ्गायमाना भवन्ति । तत्रोपर्येकं शृङ्गारस्थलं
 मन्दिरमस्ति । एकं भक्ष्यभोज्यस्थलमस्ति । एकं सखीसङ्गमोपवेशताम्बूल-
 सुगन्धरससेवनायैवेति । एकं शय्यागृहं सुगन्धमणिमयभोगान्वितम् ।
 आधिदैविकेन रूपेण कामः सखीरूपं विधाय स्वयमेव सेवमान आस्ते ।
 रतिसंभोगातिकलाकौतुकानि नेत्रहावभावकटाक्षसंवलितकामरसभावभेदानि
 संयोक्ष्यमाणकामरससुखसंपत्तियोग्यतां मनोभवः संयोक्ष्यमाणसुखं च पिबति ।
 नित्यं नित्यनूतनभावभेदशृङ्गारं नूतनम् । रूपं नूतनम् । क्रीडा नूतना । वचनं
 नूतनम् । प्रतिक्षणं प्रतिक्षणं नूतमेव सुखं सखीनाम् । नूतः सर्वो भाव आस्ते ।
 एकादशश्रेणयः सदा वसन्तस्थानम् । किंशुकवकुलाम्रवृक्षाः शोभायमानल-
 वङ्गलतापरिशीलिता अत्यन्तं निगूढगुच्छपुष्पपरागा भवन्ति । उन्म-
 दकोकिलभ्रमरसूक्ष्मस्वरसङ्गीयमानानि सखीनां यूथानि केशबन्धन-
 वस्त्राण्यतिरञ्जितानि शोभामातन्वन्ति । कलगीतानि वसन्तोद्भवानि
 सङ्गीयन्ते । तस्मिन् स्थाने सदा कौतुकाविष्टा गोप्यः केसरकर्पूरमृगमदा-
 गुरुरसान् सेचयन्त्यो भवन्ति । परस्परं हस्तैः कनकखचितजटिताः सर्वाः
 कन्या मृगमदकर्पूररसं सिञ्चन्त्य आपद्यन्ते । अभिलिम्पन्त्यः परिमृजन्त्यः
 अञ्जन्त्यो लोचने काश्चित् काश्चित् गानं गायन्त्यो गोप्यः । तां ब्रजेश्वरीं
 ब्रजनायिकां ताः सख्यो वेषशृङ्गारशोभासंराजितामशोभयन्त । तस्मिन्
 वसन्तऋतुः सखीरूपं विधाय तां ब्रजेश्वरीमुपसेवमान आस्ते । यत्र

वसन्तस्तत्रैव कामावेशो जन्यते । स कामः सखीरूपं विधायोपसेवमानः
 आस्ते । रतिभावे सा ब्रजेश्वरी तां देवीमुपसेवमानातिगुणगणनया
 क्वचित्पुष्पावेशेन वसन्तं सुखमुपसेवते । क्वचित्फलावेशेन वसन्त उपसेवते ।
 क्वचित्कोमलाङ्कुरावेशेन वसन्त उपसेवमान आस्ते । क्वचित्पक्षिणां
 रवेण उपसेव्यमान आसेवामातनोत् । क्वचित्तान्तरैराविर्भावोन्मदभ्रमर-
 पिकशुका गीतगानं कुर्वाणा आपद्यन्ते । रसिकानन्दस्तथा निकुञ्जदेव्या
 सह वसन्तोद्भवैः पत्राङ्कुरैः शय्यां विधाय वसन्तसुखान्यनुभवन्नास्ते ।
 विविधलतान्तरेषु पुष्पगुच्छसंवलिताः सख्यः शय्यां विविधप्रकारां प्रतिकुञ्जं
 रचयन्ति । उपकरणकामकलया सुरतकेलिञ्च उपतापसुखमन्वभूत् । आसे-
 दिवान् रतिरससुरतानन्दो विविधकलारूपेण प्रतिपद्यमानो भवति । हाव-
 भावकेलिकौतुकानि भवन्ति । वसन्तः कामेन सह रसलीलारतिं विस्तार-
 यति । तत्रानेकलता वसन्तोद्भवैः कुसुमैर्वनलीलायां प्रफुल्लिता नम्राः
 भवन्ति । नानाकौतुकाविष्टाः प्रेमवत्यादयः सख्य अतिभावापन्ना बभूवुः ।
 तस्यां लीलायां चतस्रः सख्यः श्रीराधिकां संसेवमाना भवन्ति । तस्य
 वसन्तस्य सुखं केनोपवर्ण्यते । चतस्रः सख्यः कथिताः । तासां नामानि
 शृणुत । रङ्गवती गुणवती गानवती मनोरमा । एताः सख्यस्तस्मिन्
 वसन्तस्थाने सेवमाना भवन्ति । तद्वसन्तस्थानं श्रीराधिकाया अतितरां
 बल्लभं भवति । तत्स्थानं श्रीराधिकाया रसिकानन्देन सह सेव्यमानं भवति ।
 ताः सख्यस्तस्मिन् स्थाने प्रेम्णो भावं विस्तारयन्ति । रङ्गवती रसरङ्गलीलां
 विस्तारयति । नानाभावेन वसन्तरङ्गभोगान् विस्तारयति । एवं नानाभाव-
 भेदं सुरतानन्दं विस्तारयति । गुणवती रागरङ्गसुगन्धरसवीणावेणुप्रणालिकया
 सर्वासां सखीनां कामलीलायाः प्रबोधं जनयति । गानवती गीतगानगुणेन
 श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकां प्रीणयति । मनोरमा मनोरमं भावमापन्ना

भवति । ताः सख्यो भावापन्नाः साधनसिद्धा भवन्ति । ता ऊचुः । तास
साधनं किं येन साधनेन वसन्तलीलायाः स्थानं प्राप्तम् । अहो भक्तानां
रसमार्गीयाणां पुण्या रसमार्गिणी कथा निःश्रेयसाय भवति । येषां स्नेहमार्ग-
धर्मकर्मरहितकेवलमनसा वृत्तिः श्रीराधिकायां गतिरतिभावो भवेत् ते एव
तां लीलां प्राप्नुवन्ति । तस्मात्ताभिर्यत्साधनं कृतं तत्सर्वं कथय । अहो ताः
सख्यः वैवस्वतमनोः पुत्र्य आसन् । ताः कन्याः पितुर्गृहे निरन्तरं क्रीडमानाः
बभूवुः । एकरूपा एकस्थिता एकप्राणा एकभावापन्ना बभूवुः । अतिगुण-
गणनारताः पितृवत्सला भवन्ति । तस्य राज्ञो गृहे एकदा नारदः समागतः ।

ताः कन्या नारदं दृष्ट्वा प्रणिपातपुरस्सराः ।

तद्रूपमद्भुतं दृष्टं जटामकुटमण्डितम् ॥

वस्त्रालंकरणैर्युक्तं वीणावादनतत्परम् ।

कृताञ्जलिपुटाः सर्वाः स्थितास्तं चोपतस्थिरे ॥

पप्रच्छुस्तं तथाभूतं विनयान्नयकोविदाः ।

भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽसि ॥

भवादृशा महाभागा लोकानां च हिते रताः ।

शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

इति संप्रार्थितो नारदः प्रसन्नो बभूव । भोः पुत्र्यः को भवतीनां
मनोऽभिलाषः ? तत्सर्वं विस्तरशो ब्रूत । नारदेनैवं चोदिताः कन्याः पुनः
प्रोचुः । पितुर्गृहे भावापन्नैर्मैकैः सङ्गीयमानोऽयं ब्रजलोकः । त्वं विस्तरशो
ब्रूहि तम् । श्रुतमात्रोऽयं रसलीलां ददाति । तस्मात्तत्स्थानं रसिकानन्देन
श्रीराधिकया सह सेवितं वर्णय । नो मनोऽभिलाषो भवति । यदि कृपा
स्यात्तर्हि तल्लोकविस्तारं वद । पुनर्नारद उवाचेदं तासां मनोऽभिलाषं ज्ञात्वा ।
शृणुत सख्यो रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयम् । तत्स्थानं कोटिसूर्यप्रतीकाशं

तेजोमयं यत् निर्गुणं ब्रह्म पुराविदो वदन्ति । यस्मात्प्रजाः समुत्पन्नाः ।
 ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्मादुत्पद्यन्ते लीयन्ते । आत्मविदो ज्ञानिन उत्यद्यन्ते
 लीयन्ते रसमार्गिणो भक्ता यं स्थानं प्राप्नुवन्ति । कन्या ऊचुः । ये रसमार्गीयाः
 भक्तास्तेषां लक्षणानि वद । नारद उवाचेदम् । ये रसिकानन्दोपासकास्ते
 सर्वात्मभावेन भजनं कुर्वते । भजनानन्दोपासकानां न वर्णो नाश्रमो न देशो
 न कालोऽस्ति । यो धर्माधर्मौ परित्यज्य श्रीरसिकानन्दं सेवमानो भवति सः
 तां लीलां प्राप्नोति । येषां मनसि निश्चयस्तेषां प्रीतिरुत्पद्यते । य एवं
 रसमार्गे प्रपन्ना न तेषां धर्माधर्मौ बाधमानौ भवतः । विषयैर्बाध्यमानोऽपि
 न बाध्यते । येषामहोरात्रं सेवाकथायां नित्यमासक्तिस्तेषां भजनानन्दो
 भवति । ये तस्मिन् मार्गे प्रपन्ना भक्तास्तेषां देयं ततो ब्राह्मं
 यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रम् । भक्तानां भक्तैस्सह कार्यं नान्यैः । भक्तानां भक्त एव
 ज्ञातिः । कुलवर्णधर्मादि सर्वं दैवतं यत्किञ्चिन्मात्रम् । रसगाः सेवकाः
 तेषां संवन्धो नान्यैः । अहो वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैः शास्त्रैर्नानावादैः
 नानाकर्मव्रतोपवासादिभिर्यमैर्नियमैश्च नानाक्रषिकृतस्मृतिसिद्धान्तैरेकादश्युप-
 वासादिव्रतनियमैस्तुलापुरुषदानादिभिर्नानादर्शनसिद्धान्तविचारैर्वर्णाश्रमोचित-
 धर्मैः पितृश्राद्धादिभिः सूर्यचन्द्रोपरागकालोचितैर्ग्रहनक्षत्रताराज्योतिश्शास्त्र-
 निश्चयेन भ्रान्तचित्तैर्विधिनिषेधस्मृत्योक्तैर्धर्मैर्भ्रान्ताः सन्ध्योपासनकालसं-
 स्कारैर्वलिष्वैश्वदेवबलिदानोपसर्पणैर्वेदमार्गादिभिर्नियमैरेतैश्चान्यैर्धर्मैर्विभ्रान्तास्तेषां
 रसिकानन्दः पुरुषोत्तमो न रमते । अहो सख्यः कर्मविभ्रान्तास्तां
 लीलां कदाचिन्न जानन्ति । सामिका अग्निव्रतधारकाः कर्मजडास्तैः
 सह कदाचित्तद्धर्मापनं न कुर्यात् । अतः किं बहुनोक्तेन । ब्राह्मणा ये
 भक्तिमार्गे न विदन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शं न कुर्यात् । कदाचिन्नालपेत् ।
 ता ऊचुः—

भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽसि ।

शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

अतः प्रार्थयामो महालीलाया दर्शनं यत्र रसिकानन्दपुरुषोत्तमो रमते । एवं प्रार्थितो भगवान् नारदस्तासामत्यानन्दमयलोकं दर्शयामास । महामन्त्रविद्यया कृतसंस्कारास्ताः सख्यस्तस्यां लीलायां भावापन्ना बभूवुः । ता ऊचुः । नारदेनोपदिष्टां विद्यां कथय यया विद्यया श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकया सह क्रीडास्थानं द्रक्ष्यामः । स होवाच । शृणुत सख्यः । यस्यां विद्यायां सद्यः समभ्यसनेन महावनविहारस्पर्शनं भवति । कृपासमभ्यसनात् रमणानन्दलोकस्पर्शनं भवेत् । क्लीं सकलकामदात्रीं भ्रूं भोगदात्रीं ह्रीं रसिकानन्दविलासदात्रीं ह्रीं रतिकेलिकलाकोविदां बां वृन्दावनशशिनीं सुं सुरतानन्दरूपां श्रीं मनोहारिणीं नृं निकुञ्जकेलिकौतुकाविष्टदेहां भ्रूं भोगात्मिकां स्त्रां सखीनां सुखदायिनीं ह्रीं रासकेलिकलात्मिकां ध्यायेत् । क्लीं नमः । इमां विद्यां भोगात्मिकां नारदेन दत्तां ताः कन्या जगृहुः । रसिकानन्दप्राप्त्यर्थे गृहीत्वा तां विद्यामभ्यसेत् । तासां पितुर्गृहे एकं वनं नानापुष्पवृक्षैः सुशोभाढ्यम् । तत्र पुष्पलतानां निकुञ्जाः सुशोभाढ्याः संराजमाना मनोहराः सन्ति । तत्र ताः कन्या इमां विद्यामभ्यस्तवत्यः वृन्दावनबुद्ध्या । अहोरात्रं तद्बुद्ध्यस्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः तस्यां लीलायां ममा नान्यं देहविषयं त्रिदुः । कचिद्रुदन्यस्तच्चिन्तया कचिन्नृत्यन्त्यः कचिदलौकिकाः कथा वदन्यः कचिद्भक्तैस्सह अनुशीलयन्त्यः कचित्तस्मिन् वने वृन्दावनशोभां विधाय तद्भक्तैः सह राधारसिकलीलयोरनुभवं कुर्वन्ति । एकदा तासामाश्विन्यां पौर्णमास्यां महालीलाया महोत्सवकाले निकुञ्जदेव्या दर्शनं प्रदत्तम् । अशरीरया वाण्या वरो दत्तः । भवतीनां मनोऽभिलाषो मया ज्ञातः । यदि मम लोकदर्शना-

काङ्क्षा स्यात् । वृन्दावने गोवर्धनाद्रिशिरसि पुष्करिणीं विधाय तत्र
मम ध्यानापन्नैर्भूयताम् । ममानुग्रहेण मम लीलावलोको भविष्यतीति
ता वरेण छन्दयित्वा अन्तर्दधे । ताः कन्यास्तत्र गत्वा तथाकुर्वन् ।
तस्मिन् गोवर्धने अप्सरःपुष्करिण्यां ताः सर्वाः पूर्वोक्तया विधया
श्रीराधिकाया भजनं चक्रुः । इत्थं भजनमापन्नाः कन्या मासेनैकेन तं
लोकमपश्यन् । वृन्दावनं श्रीमत् सर्वकालसुखावहम् । यत्र षडृतवः
आधिदैविकेन रूपेण सेवमाना भवन्ति । यत्र रत्नजटिला भूमयो
मणिज्योत्स्नाभिर्दीप्यमाना भवन्ति । यत्र फलैः पुष्पैः पत्रैर्मणीनां स्तम्भाः
शतशो राजमाना भवन्ति । यत्र मणीनां लता आजमाना विद्रुमलताभिः
ग्रथिता भवन्ति । सुवर्णलताग्रथिता मुक्तालता मुक्तागुच्छैः पूर्यमाणाः
भवन्ति । यत्र सखीनां यूथानि परस्परं शृङ्गाररसेन क्रीडमानानि भवन्ति ।
यत्र फलैः पुष्पैः सुकोमलैः पत्रैर्विराजमाना वृक्षा लताभिः संकीर्णा भवन्ति ।
यत्र मध्यश्रेणीषु सखीनां चारा अतिसुशोभमाना भवन्ति । यत्र
वकुलवृक्षाणां वनानि कुत्रचित्संराजमानानि भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः
संराजन्ते । अम्लानपुष्पैर्नारङ्गैः सुशोभाढ्या भवन्ति । कुत्रचित्पारिजातक-
वनानि सुगन्धसंवलितानि सन्ति । तत्र वनेषून्मदाः कोकिला गायमानाः
भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः पुष्पपरागैश्चिता वस्त्रैश्छादिता इवासन् । तासु
वृक्षाणां श्रेणीषु ताः कन्या एकं महास्थानं ददृशुः । पञ्चविंशद्योजनायतं
परितो वाप्यो दशदशचतुष्कोणेषु नानारसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश
वायवः केसरकर्पूरमृगमदरसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवोऽगुरुस-
संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवः सुगन्धपयसा संपूर्णा भवन्ति । दश
वायव उष्णोदकेनातिनिर्मलेन सुगन्धेन संपूर्यमाणा भवन्ति । तत्र
दश वायवो मृज्जलेन सुशीतलेन संपूर्यमाणा भवन्ति । तत्र मध्यमण्डले

पञ्चविंशद्योजनायते सुशोभादये मणिज्योत्स्नाभिः संवेष्टिते सखीनां यूथानि यत्र क्रीडां कुर्वन्ति तत्र परितो निकुञ्जानां श्रेणयः सूक्ष्मलतान्तरैः संवेष्टिता भवन्ति । तत्र मध्ये एकं रत्नासनं सुखसंपूरितं सुरतानन्दस्थानं भवति । यत्र प्रेमवती स्नेहवती गुणवती उत्कण्ठावती उत्साहवती भोगवती कलावती गानवती मनोरमा सुरतानन्दा सुखसंवलिता निद्रा-संवलिता निःशङ्का लज्जागतत्रया सुभगा शृङ्गारवती संभोगवती भावशुद्धा एता अन्याश्च सख्यस्तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । निरन्तरं रासकेलिकौतुकेन नृत्यपरा सुगन्धकलावती संगीतज्ञा अङ्गसंवलिता रागज्ञा गुणज्ञा एताः अन्याश्च सिद्धान्तस्थानं सेवमाना भवन्ति । तत्र विहङ्गमानां पङ्क्तयो नानारूपैः कलशब्दैः सङ्गायन्त्यो भवन्ति । कचित् सखीमण्डले ताः रासक्रीडां कुर्वन्ति । कचित् कुञ्जान्तरे पुष्पपल्लवैः रचितशय्यायां क्रीडां कुर्वन्ति । कचिन्नानापुष्पैरङ्गप्रत्यङ्गेषु परस्परं शृङ्गारं कुर्वन्ति । कचित् पुष्पमालाभिरङ्गप्रत्यङ्गैः शृङ्गाररसं कुर्वन्ति । कचित्कुञ्जान्तरे शृङ्गाररसं कृत्वा सुखं संसेवमाना भवन्ति । ताः कन्याः श्रीराधिकारसिकं दृष्ट्वा अत्यन्तमेव मुमुहुः स्तुतिं चक्रुः । अतितरां नम्राः कन्याः प्रश्रयावनताः नमश्चक्रुः विनयभावापन्ना बभूवुः । तथा श्रीराधिकया स्वस्वरूपं प्रदत्तम् । तासां महालीलायां योग्यता प्रदत्ता । अहो सत्सङ्गमाहात्म्यं केन वर्ण्यते । दर्शनात्स्पर्शनादालापाद्भोजनाच्छयनादासनाद्भोजनोच्छिष्टकृपाप्रसादात् रसिकानन्देन सहितायाः श्रीराधिकायाः कृपा भवति । अहो रसिकानन्दोपासकानां लक्षणानि वद येनाहं सतां सङ्गे विचरामि । अहो श्रुतमहालीलाः ! ये निरन्तरं सेवमाना भक्ता वेदमार्गकर्मातिरिक्ता भवन्ति ते रसिकानन्दमार्गमाचार्योक्तमधीत्य यो वृन्दावोक्तमार्गः सुखीभिरुपासितः तासां मार्गे प्रपन्ना भवन्ति । अहो नानास्मृत्युक्तान् धर्मान् ये कुर्वन्ति

त इह संसारे विचरन्ति । ये पितॄन् यजन्ति ते पितृलोकं प्राप्नुवन्ति । देवान् ये यज्ञकर्मणा यजन्ति ते देवलोकं स्वकर्मोपार्जितं यान्ति । ये ब्राह्मणाः ब्रह्मवर्चसमुपासमानास्ते ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति । गायत्रीं य उपासते ते सूर्य-मण्डले लयं यान्ति । येषां मध्ये शैवाः शिवोपासकास्तेषां प्रमादेनापि संभाषणं न कुर्यात् । ये कैवल्यधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासाः जलमाविशेत् । अहो रुद्रोपासका ये तमोधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेत् । यक्षोपासकाः सदा त्याज्याः । गणपतिदुर्गायाः भजनभेदा अनेकशः सन्ति । तान् ये भजन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेद्रसिकानन्दोपासकः । कर्मकाण्डोपासका रसिकानन्दमार्गं न जानन्ति । जैनबौद्धचार्वाकमीमांसकवेदान्तन्यायपातञ्जलमतान्तराणि तेषां सिद्धान्तं कुर्वन्ति । ये भ्रान्ता भजनमार्गमविदुषः पण्डितमानिन्स्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च न कुर्यात् । विष्णुभजनरता नारायणोपासकाः श्रवणकीर्तनस्मरणवन्दनरता मत्स्यकच्छपवराहनृसिंहवामनपरशुरामरामोपासका वैष्णवास्तेऽपि तं लोकं न जानन्ति । तस्मात्तेषां सङ्गस्त्याज्यः । विष्णुभक्ताः ज्ञानवैराग्ययुक्ता अनन्याश्रययुक्तास्तेऽपि तं मार्गं न जानन्ति । सूक्ष्मतरमार्गो ब्रह्मादिभिर्नारदादिभिः रुद्रादिभिः सृष्टिकर्तृभिः प्रजापतिभिरप्यगम्यः । तस्मात्तया श्रीराधिकयानुगृहीतास्तं रसं जानन्ति नान्ये । यदा यस्य देवतान्तरभजनं भवति वैष्णवेषु विद्वेषो भवति तान् रसिकानन्दपुरुषोत्तमो न स्पृशेत् । अहो रसिकानन्दोपासकानां क्रियाः शृणुत । ये मनसि भजने सुनिश्चयास्तल्लीलोपासकाः सत्कथाक्षिप्तमानसाः तल्लीलोपासकानां सङ्गेन कथाकीर्तनासक्तास्ते तत्सेवातद्भावेन शोकमोहभयोद्वेगरहिता अमत्सरा अहंभावरहिता ज्ञानवैराग्यसहिता बुन्दावनल्लीलोपासका भवन्ति । रसलीलायां निमग्नानां तेषां तद्भजनमेव

साधनं तद्भजनमेव ज्ञानं तद्भक्ता एव ज्ञातिः तद्भक्ता एव कुलं एवं
 रसलीलाप्रपन्नो भवति । गृहादिधर्मान् त्यक्त्वा वर्णाश्रमधर्मान् त्यक्त्वा
 जातिकुलधर्मान् त्यक्त्वा मोक्षधर्मान् त्यक्त्वा सत्त्यासधर्मान् त्यक्त्वा
 देशकालकर्मस्वभावसंसिद्धान् धर्मान् त्यक्त्वा रसलीलामभ्यसेत् । रसलीलायाः
 सेवावधिं कथं येन विधिना महालीलायाः प्राप्तिर्भवति । तद्भक्तानां
 दर्शनं भवेत् । स होवाच । रसलीलाया भजनं त्रिविधात्मकम् । एकं
 ध्यानमयम् । प्रतिकुर्जं प्रतिवृक्षं ध्यानापन्नो भवेत् । रात्रौ दिवा रसिकानन्दं
 श्रीराधिकया सह हृदि चिन्तयमानः सखीभावेन भावापन्नो भवेत् ।
 तदनुभावेन पुल्लिङ्गं विधूय महालीलायां लयलीयमानो भवेत् । द्वितीयं
 भजनप्रकारं शृणुत । येन भजनेन रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह
 दृष्टिपथमापद्येत योऽश्ममयं वा धातुमयं वा रसिकानन्दस्वरूपं श्रीराधिकया
 युतं विधाय शय्याभोजनशृङ्गारै राजोपचारैः स्नेहभावेन भजनं करोति
 अहोरात्रं तद्भावेनापन्नो भजनं करोति स तां लीलां प्राप्नोति । ये
 रसिकानन्दोपासका भक्तास्तेषां सेवायां व्रतधारणम् । अहो भक्तानां
 सेवास्तु दुर्लभतराः । येषां हृदि निश्चय आपन्नस्तेषां श्रीरसिकानन्दः
 श्रीराधिकया सह प्रसन्नो भवति । भक्तानां सेवास्तु अत्यन्तदुर्लभा भवन्ति ।
 ये निष्कर्ममार्गिणो भक्तिमार्गं केवलमापन्नास्ते सेव्याः पूज्या एव भवन्ति ।
 ये अन्यधर्मं त्यक्त्वा रसिकानन्दसेवकास्ते भक्ता नान्ये । भक्ताः
 सुसेवमाना भवन्ति । तस्मात्सुसेवमाना भक्ताः कृपां कुर्वन्ति । साधूनां
 समचित्तानां कृपया महालीलाया दर्शनं भवति । तस्मात् रसिकानन्दं
 हृदि स्थाप्य साधूनां सङ्गेन वृन्दावनरहस्यमार्गानुसारेण सुसेवमानो भवति ।
 अतिरसमग्ना भक्ता नान्यं विदन्ति । अहो पुनर्महालीलाया वर्णनं श्रुत्वा
 वयं न तृप्यामः । शृणुत पुत्राः । वनविहारलीला पूर्वं नारायणेन लक्ष्म्यग्रे

कथिता तदा श्रुतं तदहं वर्णयामि । अहो महालीलायाः स्थानं नारायणेनापि न दृष्टम् । यत्राद्यौ मणयः संराजमाना भवन्ति । चन्द्रकान्तमणिनामृतेन पुष्पपल्लविता वृक्षाः सेव्यमाना भवन्ति । लतानामालम्बलानि सौवर्णानि दीप्यमानानि जलैः पूर्यमाणानि भवन्ति । तत्र सूर्यकान्तमणिना प्रदीप्यमाना वृक्षलताः शोभायमाना भवन्ति । मणिलताभिर्ग्रथितानि मन्दिराणि तेजोमयानि संराजन्ते । प्रसारितलता वृक्षैर्ग्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तेषु निकुञ्जेषु लतानां नानारङ्गाः संदीप्यन्ते । तत्र शृङ्गारवत्यादयः सख्यः शय्योपकरणानि रचयन्ति । सुशोभायमानाः पक्षिणः कलशब्देन श्रीराधिकायाः शृङ्गाररसं सङ्गायन्तो भवन्ति । पिकयूथानि मनोहरेण शब्देन देववाण्या तस्याः श्रीराधिकाया रमणलीलां गायन्ति । तत्र मध्येमण्डलं तेजोमयमस्ति । हाटकमयास्तेजोभूमयस्तेजोमयाः संविराजन्ते । यत्र भूमौ परितः अष्टौ मणयः सन्ति तेषां प्रसारिता लता सुवर्णलताभिर्मुक्तालताभिर्ग्रथिताः पुष्पैः पल्लवैः संवल्लिता भवन्ति । प्रतिमण्यैकैकं मन्दिरं सकलसिद्धवस्तुसमन्वितं भवति । रतिमन्दिरे शय्याः पयःफेननिभाः संराजन्ते । तत्रान्नानि विविधानि अन्यपूर्णया सख्या पाचितानि । प्रतिक्षणं नूत्नानि श्रीराधिकायै भोज्यार्थं भवन्ति । तत्र सुगन्धरसिकया सख्या रचिताः सुगन्धरसा अगुरुचन्दनकेसरीमृगमदकपूर्णाद्या अनेकसुगन्धरसाः श्रीराधिकया संभोज्या भवन्ति । तत्र शृङ्गारवत्या सख्या रचिताः शृङ्गारा वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुभगा नानावस्तुमयाः श्रीराधिकार्थं कल्पिताः सुभोज्या भवन्ति । रङ्गवत्या रचिता रतिरङ्गा वचनप्रतिवचनमया इन्द्रियादिभावमयाः श्रीराधिकाया भोगार्थं भवन्ति । गानवत्या रचिता नानारागरङ्गभोगाः समयोचिताः प्रतिक्षणं नूत्नाः श्रीराधिकार्थं सुभोज्या भवन्ति । नृत्यकवत्या रचिताः सुगन्धकलाः श्रीराधिकार्थं कल्पिता भवन्ति । तत्र

स्थाने भोगवती नाम्ना सखी नानाभोगान् कल्पयति । कटुतिक्तमधुरकषायाः
 सुस्वादा भोगाः श्रीराधिकाया भोज्यापन्ना भवन्ति । रतिवती नाम्ना
 सखी नानारतिसुखमुत्पादयति । रतिकलाकौतुकानि मनोज्ञानि भवन्ति ।
 सुरतानन्दा सखी नानासुरतकलां श्रीराधिकायै कल्पयति । मनोज्ञा सखी
 नानामनोभावं ददाति । सुखदा सखी मानासुखं रसिकानन्दं प्रति राधि-
 कार्थे कल्पयति । ताः सर्वाः सख्यः सुखकेलिकलानुभावेन रासलीलां
 कुर्वन्ति । तस्मिन् मध्यमण्डले सुरचिता सखी कस्मिंश्चित्समये रासलीलां
 रचयति । तत्र मध्ये कामेन सेवितं तेजोमयमासनं कल्पयित्वा श्रीराधिकाया
 सह रसिकानन्दं समावेशयति । तत्र परित एताः सख्यः क्रीडाकलां
 दर्शयन्ति । कलावती गुणवती पुष्पवती अङ्गचपला सुरतकलाकोविदा
 रसकलाभिज्ञा रसभावज्ञा विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा एताश्चान्याः सख्यः
 तस्मिन् मण्डले स्वान् स्वान् गुणान् प्रकटीकृत्य रसिकानन्दं सेवमानाः
 भवन्ति । साधनसिद्धाः संसिद्धाः सख्यः अनेकरूपैस्ताभ्यां सुसेव्यमानाः
 भवन्ति । यादृशा भक्तास्तादृशं सुखं तादृशो लीलाभावश्च भवेत् । पुनस्ते
 ऊचुः । महास्थानं कियत्प्रमाणम् ? संसिद्धोऽयं रसः । संसिद्धः कीदृग्विधः ?
 ते संसिद्धा भक्ताः कीदृग्विधाः ? तेषां रूपं कीदृग्विधम् ? रसिकशिरोमणिरा-
 नन्दात्मकपुरुषोत्तमः श्रीराधामानन्दरमणानन्दरूपां तेन रूपेण सह वुमुजे ।
 नित्यानन्दरूपेण सह पुरुषोत्तमो नित्यानन्दरूपः संक्रीडमानो भवति । सः
 एवं रूपं गोपिकास्वाविर्भावेन क्रीडयिष्यति । पृथग्रूपेण क्रीडमाना
 अभ्येति । तद्भावे क्रीडिष्यमाणा गोप्यः पृथक् संक्रीडमाना इव एकमेव
 स्थानमध्यासते । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् ? कीदृग्विधा भक्ताः ?
 क्रीडमानं रूपं ताभिः संपीयमानसौष्ठवं किम् ? पुनरुवाचेदम् । रहस्य-
 मतितरां सौष्ठवम् । षड्विधोऽयं रासः । तेषामेव रासलीलायामापद्यमानं

रूपम् । रहस्यस्थानं महालीलायां शतयोजनायतं पद्मरागजाम्बूनदसुवर्ण-
 खचितम् । नीलमणिना परिधयः शोभाढ्या एवासन् । मध्येमध्ये पुष्पराग-
 मणीनां स्थानं संभ्राजते । तेषामतितरां मणिज्योत्स्नां राजमानामभ्येत्य
 तस्मात् परितः शतकुञ्जविद्रुमलताः सुवर्णसुगन्धलताग्रथिताः सुसुगन्धाढ्य-
 मातन्वन् । तेषामेव मणीनां शक्रयो विराजन्ते । पुष्पितवृक्षलता सुगन्धर-
 साभ्येति । तत्सुगन्धावेशिताः सख्यो भावापन्ना रमणरसरमणे रसरमणा-
 नन्दे रसे मग्ना भक्ताः प्रेमवत्यादयो लीलायां योग्यतामभियन्ति । रतिक्रीडा-
 यामानन्दरसः संभवति । ते सख्यस्तस्मादुत्पन्ना भवन्ति । शृङ्गाररसं दृष्टि-
 गोचरमुपसंपद्यन्ते । तस्मात् रमणानन्दादुत्पन्ना आत्मानन्दरूपिणः । यत्र
 यत्र तथा देव्या स्वावेशेन सुखं सुसंसिद्धोऽयं रसः । तासां गोपीनां
 गृहंगृहमापद्यमानः प्रतिरूपं सुखं संयोजयति । तासामेव रसावेशेन रासस्थानं
 शतयोजनायतं पद्मरागमणिजटिलनीलमणिना विराजितं जाम्बूनदमणिना
 सुवर्णेन जटितं शतशो मणिखचितम् । तस्मिंस्थाने मणिस्तंभाः शतशो
 विराजमानास्तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन अनेकशो रूपाणि कृत्वा
 आत्मानं विभज्य स्वरसभोगसुखं संमुञ्जते । यथायथा रूपाणि तथातथा
 रसिकानन्दस्य रूपाणि सुखं संभोक्ष्यन्ते । तेषु तेषु रूपेषु क्रीडन्त्यस्ताः
 निकुञ्जदेव्याः स्वामिभावेन व्रजलीलायाः सुखमापद्यन्ते । स एव रासः ।
 आनन्दाद्रमणानन्दोऽयं योज्यते । चन्द्रावलीचन्द्रभागासुश्रोणीसुभगाद्याः
 शतशो गोपभार्या वेदऋचः । वेदपुरुषा इमे गोपास्तासां गोपीनां
 स्वामिन्या आत्मस्वरूपेण स्वयमेव रमणानन्देनायोज्यन्त । अग्निना
 प्रज्वलिता रज्जुर्दृश्यमाना अग्निरेवाभाति । गोकुलोऽयमग्नेः संयोगादेवा-
 भाति । ता गोप्यस्तद्भावेन रसं अनुभवन्त्यस्तस्या निकुञ्जदेव्या भावमा-
 पन्ना आसन् । द्वयो रासयोरिदं भवति । तृतीये रासे तु गृहं गृहं प्रति

स्वयंस्वयमेव रसिकानन्दस्वरूपे क्रीडिता आसन् । स्वानन्दाविर्भावाय तासां योग्यतां निरूपयति । सुखमनुभवन्त्य आत्मभाव एवासन् । चतुर्थे तु गोरसविक्रीडा गोप्यश्चन्द्रावलीप्रभृतयोऽनेकशो दानलीलया निकुञ्जदेव्या स्वावेशेन सुखमनुभूय तद्वचनादभीष्टानि प्रतिपद्य योग्यानीन्द्रियाणि परस्परसुखं भुञ्जानास्तस्या निकुञ्जदेव्या रसिकशिरोमणिना सह सुखं स्वयमेव रूपेण अनुभवन्ति । पञ्चमी महालीला स्वयमेव वृषभानुगृहे प्रकटिता । तां तथा सह पुरुषोत्तमरसिकानन्दोऽयं स्वयमेव ब्रजलीलायां प्रकटितवान् । सः एव सुखं रमणानन्दरूपेण संभोक्ष्यमाणोऽभवत् । परस्परबाललीलासुखयुग्मरूपे एकमेव रूपं भवति । एवं तस्मिन् वृषभानुगृहे स्थानानि शतशः पद्मरागकुड्यानि गृहाणि तप्तसुवर्णपरिधीनि विराजमानानि भवन्ति । ललिता-विशाखाशृङ्गारवत्यादयः स्वयमेव प्रकटिताः सख्यः स्वयमेव स्वरसं प्राप्ताः रसमानन्दात्मकमनुभवन्ति । अन्याश्च शतशो गोपीभावं प्राप्तास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति । यं यं भावं संयोक्ष्यमाणा गोपी भवेत्तं भावं द्वारि प्राप्य रास-लीलाकृते उज्जहार । अत्यन्तभावलीलायां संयोक्ष्यमाणा गोपी पुष्करिण्यां तासामङ्गरागेण गीपीचन्दनं तासामेवोच्छिष्टं बुभुजे । भक्तानां तदेव हितकारि भवेत् । तदङ्गरागोद्भूततदाविर्भावेन महालीलायोग्यतां प्रतिपेदिरे । पुनः संशयं पप्रच्छुः । अहो द्वारिकायां रासः कस्मिन् समये कृतः ? तत्र महालीलायाः स्थानं कुत्रास्ति ? यत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः क्रीडति । केऽत्र भक्ताः ? केषां सहायेन महालीलास्थानं प्रकटितम् ? शृणुत सख्यः । महानयं गोप्यो रसः । ये प्रत्ययापन्ना भक्तास्ते तं रसमनुभवन्ति ब्रजलीलायाम् । त्रिविधा गोप्यः सन्ति । एका वेदऋचः सन्ति । एके अम्बिकुमाराः सन्ति । एके संसिद्धाः श्रीराधिकया सह प्रकटिता भवन्ति । अष्टौ यूथानि संसिद्धानां भवन्ति । तेषां द्वादश यूथानि ब्रह्मणः पुत्राः

अभिकुमाराः सन्ति । द्वादश यूथानि वेदस्त्रीणां सन्ति । ते साधनसिद्धाः
 ये भक्ताः श्रीराधिकया सह रसिकानन्दोपासका भवन्ति । याः
 संसिद्धास्तासां नित्यलीलयामनुभवः । ये अभिकुमारास्ते ब्रजलीलायां
 श्रीराधिकया सह रसिकानन्दमुपासमानास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति ।
 या वेदरूपिण्यस्तासां विरहभावेन महाननुग्रहः कृतः । प्रथमं महालीलायाः
 प्राप्तिः पश्चाद्विरहः । ता विरहोत्कण्ठिता गोप्यो नान्यसुखं विदुः । तासामर्थे
 पञ्चयोजनपर्यन्तं महालीलायाः स्थानं प्रकटीकृतम् । तासां मनोभावबुमुत्सया
 एकं स्वगणं रहस्यलीलायोग्यं प्रेषयामास । द्वारिकालीलायां महालीला
 प्रकटिता । स एव गणस्तास्तत्रैव नयति । रसिकानन्दस्तासां स्वली-
 लमाविष्करोति । रुक्मिण्याद्याः पट्टराज्यस्तां लीलां श्रुत्वा उत्कण्ठिताः
 बभूवुः । ताभिः प्रार्थितो रसिकानन्दो महालीलां दर्शयामास । तदा
 रसिकानन्देनोक्तास्ताः पट्टराज्यो भवन्त्यस्तलीलायोग्या न भवन्ति । इमाः
 लीला लोके वेदमर्यादातिरिक्ताः । रसमार्गोपासका भक्ताः स्त्रियस्तां
 लीलां जानन्ति । वयं राजपुत्र्यः कथं तस्यां लीलायां योग्या न भवेम ।
 बहुशः प्रार्थितो रसिकानन्दस्तथेत्युक्त्वा पुनराह । अहो राजपुत्र्यो भवतीनां
 यदि महालीलादर्शनाकाङ्क्षा भवति तर्हि अहं निशीथे आधिदैविकीं
 रात्रिं प्रकटयिष्यामि । तत्राधिदैविकोऽयं चन्द्रस्तत्राधिदैविका भक्ताः
 लीलोपयोग्या भवति । भवत्यस्तत्रैवायान्तु । इति कथितास्ताः सर्वाः
 विस्मयापन्ना बभूवुः । अहो अत्यन्तमाश्चर्योऽयं विलासः । तत्रागता सुयोगा
 सखी रासलीलायां योगं चकार । सखी तत्र रासलीलां रचयति ।
 तत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमोऽतिमनोहररूपेण तासां मनांसि जहे ।
 ताः सर्वा गोप्यः श्रीराधिकायाः कृपावशेन रमयांचक्रुः । तत्र रसिकानन्देन
 ब्रह्मरात्रिः प्रकटिता । तस्यां रात्रौ ताः सर्वा मनोरथशतै रमयांचक्रुः ।

क्रीडान्ते ब्रह्मरात्रिरपावृत्ता बभूव । द्वारिकायां स्थिता राजपुत्र्यः
 द्वारे स्थितान् गुरुनुग्रसेनवसुदेवाद्यान् ददृशुः । रसिकानन्देन मोहि-
 तास्तत्र स्थिता गुरवो ददृशुः । तासां ता रात्रयो रासलीलाया ध्यानेन
 व्यतीताः । ब्रह्मरात्रिरपावृत्तेति प्रातस्ताः सर्वास्तत्रैव समागताः ।
 तत्र तत्स्थानं ददृशुः । यत्र मणिलता मुक्तालताः सुवर्णलताः पुष्पैः पत्रैः
 फलैः संपूर्णा मणिस्तम्भैर्भ्रिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । सिद्धयो मूर्तिमत्यः
 तत्रैव स्थिता ददृशिरे । कामदेवो रत्या सह तत्रैव ददृशे । तत्र स्थिताः
 गोप्यो रसिकानन्देन संयुक्तास्तासां राजपुत्रीणां लीलां दृष्ट्वा निर्गलित-
 माना बभूवुः । ताः प्रश्रयावनता रसिकानन्दं पप्रच्छुः । अहो
 रासलीलामस्माकं दर्शय । ताथिः प्रार्थितो रसिकानन्दः प्रोवाच ।
 समयोऽयं व्यतीतः । ब्रह्मरात्रिस्तु गता । मया भवतीनां पूर्वं कथितमस्ति ।
 भवत्यो रासलीलायां योग्या न भवन्ति । ये वैदोक्तकर्ममार्गरतास्ते
 कदाचिदिमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्य इमा लीलायोग्या न
 भवन्ति । ब्रह्मलोके स्थिता रुद्रलोके स्थिता इन्द्रलोके स्थिता नागलोके
 स्थिताः स्त्रियस्ता अपीमां लीलां न जानन्ति । अन्ये मम भक्ताः
 बहवः सन्ति । तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्यो
 निर्गलितमाना जाताः । तेन भावेनैतासां दर्शनं न प्राप्ताः । ताः
 राजपुत्र्यो रुक्मिण्याद्या रसिकानन्देनोक्ता दृष्ट्वा प्रसन्ना बभूवुः । तासां
 नामानि पप्रच्छुः । सुयोगजा सखी तासां गोपीनां नामानि कथयामास ।
 इयं चन्द्रावली नाम्ना तथा चन्द्रकला विख्याता । चन्द्रानना रोहिणी
 मनोरमा माधवी पुष्पगन्धा सुरतकलावती भोगवती हंसगमना गुणवती
 मानवती सुरतकलाकोविदा सुविहारवती नृत्यकलाभिज्ञा एताः सख्यः
 स्वयूथैस्तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । ताः पट्टराज्यस्ताः संपूजयामासुः ।

नानासुगन्धाङ्गरागेण वस्त्रालङ्कारभूषणैस्तासां शृङ्गारमकुर्वन् । तासामुच्छिष्ट-
जलेन पङ्काङ्गरागेण गोपीपुष्करिणीति विख्याता बभूव । यस्यामुत्पन्ना
मृत्तिका अतिपवित्रा भवति । ता गोप्यस्तद्भावेन महालीलायां लयं
प्राप्ता बभूवुः । सा लक्ष्मीः प्रश्रयावनता नारायणं पप्रच्छ । तेऽभिकुमाराः
ऋषयः कुतः समुत्पन्नाः ? तैरिदं स्थानं कथं प्राप्तम् ? केन साधनेन
ते सिद्धा भवन्ति ? स होवाच । पूर्वं ब्रह्मा लोकपितामहः सनकादिना
पृष्टः । महालीलायाः स्थानं कथय । यत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह
नित्यं क्रीडति । तत्प्रश्नेनातुरो ब्रह्मा ध्यानापन्नो बभूव । १ समाधौ
महालीलां ददर्श । तद्दर्शनेन विकलेन्द्रियो बभूव । तत इन्द्रियेभ्यो रेतः
आपद्यत । ततो रेतः अग्नौ न्यपतत् । गार्हपत्यकुण्डे निपतितं रेतः पुरुषायितं
बभूव । ततः समुत्पन्नाः पुरुषा अभिकुमरा भवन्ति । ततस्ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ
शिरसि तप आतन्वन् । तद्दिनमारभ्यैते तु ऋषयो व्रजं सेवमाना बभूवुः ।
एकदा ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ शिरस्येकां कन्यां ददृशुः । श्रीराधिकयानु-
गृहीतां सर्वाङ्गमनोहरां तत्रापसरःपुष्करिण्यां मज्जमानां तां दृष्ट्वा ते प्रश्रयेण
नम्रा बभूवुः । सा कन्या तान् प्रत्युवाच । भो ऋषयः कुतः समायाताः ?
किं कुरुत ? ऋषय ऊचुः । वयं ब्रह्मणः पुत्रा अस्मिन् वने निवसन्तो
महावनविहारलीलादर्शनकाङ्क्षिणो भवामः । पुनस्तेऽभिकुमारा ऋषयः
ऊचुः । भो भवती कुतः समायाता किं कार्यं कुरुते ? इदं रहस्यम् ।
यदि मनसि कृपाविष्टा तर्हि रहस्यं कथय । साधवो दीनवत्सला एवासते ।
तया देव्या अनुगृहीतानां तेषामतिकृपाशाली स्वभावोऽयमापद्यते । सा
पुनरुवाचेदं स्वयमेव करुणया । अहो अहमपि पूर्वं महारुद्रराज्ञः पुत्री
आसम् । तस्य गृहे निरन्तरम् । इतः क्रीडमाना गीतगानैर्हरैर्लीलां मनस्या-
सादितास्मि । तस्य गुरुविभाण्डकमुनिपुत्री रूपशालिनी नाम्ना सा

निरन्तरं तस्यां लीलायां सदा ध्यानानुभावना तथा देव्यानुगृहीता लीलोपयोग्यैति । तदा श्रावितानामधुनातर्नीं लीलां सोपरिष्टामभ्येति । ते ऊचुः । को मन्त्रः ? क उपदेशः ? किं ध्यानं तस्याः ? उपदिश । यदि करुणावती वद । शृणुतेदं रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयोऽयं रसः सर्व एव । धर्माधर्मविरक्ता ये भक्तास्तेषामप्यवचनीयः । रसरहस्यविद्यामुपासमानः सद्योदर्शनमापद्यते । ॐ क्लीं क्लीं राधे संमोहिनि कामदात्रि काम-केलिकलारूपिणि नमो नमस्ते । इदं रहस्यं सर्वेषामपि दुर्लभतरम् । आनन्दरसिकशिरोमणिमोहनेन रूपेण सद्योलक्षं जपित्वा ध्यानापन्नो भवेत् । संश्रुणुयात्तां सा नवकिशोरी तप्तहाटकामरणा केशच्छटाचिकणसुगन्धर-सङ्घावितसीमन्तसिन्दूरसेचितमणिघटितसुवर्णभूषणैर्भूषिता रत्नकर्णभूषणज्वलितकुण्डलाभ्यामन्यैः शुभ्राद्यैर्भूषणैः संयोजिता केसरमृगमदकर्पूरचन्दन-नानारेखासंयोजितललाटा मणिहीरकजात्यतिलकयोजिता संशोभते । काम-कार्मुकभ्रूलतासंमोहितरसिकानन्दा तद्भाणमूर्च्छितेयं सदा तदावेशयोग्यतां प्रपद्य ध्यायमाना भवति । तां प्रपद्य स विश्वजयी भवेत् । नेत्रकृपाकटाक्षैर्भक्ता-नामभयदायिनी भवति । खञ्जनमीनचाञ्चल्यवशीकृतो रसिकानन्दो भवेत् । नासाचञ्चुरतितरां तेजसा राजते । कपोलौ सुवर्णसंपुटौ तेजोमयौ भातः । शोभते नासा आभरणरचिता । मणिमयमुक्ताफलैर्गुम्भितो भवति विम्बाधरो विद्रुमकान्तिः । द्विजाली ताराकारा भवति । सा तेजसा भातितराम् । ज्योत्स्नाराजगानाननोत्कण्ठग्रीवा राजन्तेऽतितरां कपोलकण्ठादयः । तिर-स्कुर्वन्ति तस्या बाहुशोभां केयूरकटकानि मरकतगुम्भितानि बलयानि शतशः तेजोमयानि । अतितरां लघु ताराकान्ति तिलकं शोभामत्येति । राजमानौ हस्तौ करतलाभ्यां यावकरसविभाविताङ्गुलीभ्यां सूक्ष्मतरमणिघटिकाभ्यां भवेताम् । सुवर्णभूषणानि संराजमानानि सुरोचन्ते । तस्या वक्षोजावति-

मृगमदागुरुरचितावेव पुरुषोत्तमरसिकानन्दरमणाधिष्ठानं संराजमानावेव
भवतः । मुक्तागुम्भितहारवल्लीद्वयौ च गिरी इव संराजमानौ भवतः ।
गम्भीरनाभिहृदसन्निधाने नवरोमराजीया शोभा हाटकपघटितनीलमणि-
राजिरिव राजते । कटिमेखला क्षुद्रघण्टिकाराजमाना मणिघटितहाटकखचि-
तताराजालशोभामभ्येति । संराजमानजघनस्थलवासिमोहनगृहं सौभाग्याढ्यं
शंबरवैरिणोऽधिष्ठानं रसिकानन्दैककलसुरतममलाम्बरैः परिवेष्टितं सुवर्णतार
गुम्भितं शोभायमानं राजते । कदलीकाण्डरुचिरावूरू शोभामभीतः ।
चरणकमलमञ्जरीशोभा राजमाना यावकरङ्गरञ्जितेव शोभामभ्येति । नख-
चन्द्रतेजसा राजमानोऽयं लोको विराजमभ्येति । अतः परं शृणुत सखायः ।
रसिकानन्दस्य रूपं सदा निकुञ्जदेव्या ध्येयम् । आनन्दमात्रोऽयं
करपादे तेजोमयोऽमृतमयः । श्यामहिरण्यपरिमध्यवनमालया युतो बर्हापीडो
नटनाट्ययुक्तो मञ्चो रोचमानो राजमानः शोभायमानः शोभया संराजते
अतितराम् । एक एव पुरुषोऽयं स्त्रीषु रमणानन्दीयति । रसः संराजमानत्व-
मभ्येति । संशोभायमानो भवेत् । एक एव रसो द्विधा भिन्नोऽयं श्रीराधा-
कृष्णरूपाभ्याम् । नित्यानन्दाय नमो नमः । तस्मात् रससंयोगे भक्ता-
स्तस्मिन् रसे संप्रीयमाणमनसः सखिस्थाने शोभायमानमभ्येत्य संगच्छन्ते ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रप्रभं संराजमानं तेजोमयं ब्रह्मेति पुराविदो
वदन्ति । यस्मात् सृष्टिरुत्पद्यमानाभ्येति । संरोचमानाद्यस्मात् समुत्पन्नसृष्टयो
ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्य प्रतापशक्त्योत्पन्ना नानासृष्टिं कुर्वन्ति । यस्य
प्रतापशक्त्योत्पत्तिस्थितिल्यानातन्वन्ति । यस्मात् प्रेमानन्दान्नित्यानन्दोऽयं
लोकः प्रकटितो भवति । प्रेमानन्द एव सृष्टिस्त्वाधिदैविकी । तस्मात्
प्रेमानन्दरक्तपुरुषोत्तमाधिष्ठानसौष्ठवं यत्र कोटिशो निकुञ्जनानालताग्रन्थिस्तासु
गन्धवृक्षादिः राजमानत्वमभ्येति । यत्र निकुञ्जश्रेणिषु सखीनां यूथान्यतितरां

क्रीडाशृङ्गारयोग्यान्युपकरणानि राजमानान्यभ्येत्य शोभायमानानि राजन्ते ।
 स्थाने स्थाने पृथक् प्रक्रियमाणानि शृङ्गारस्थानानि । हाटकमणिमय्यो
 भूमयः । नानारङ्गमयफलपुष्पवृक्षादिराजमानामभियन्ति षडृतवः । यत्राधि-
 दैविकरूपेण विराजमाना नानातन्वन् । तेषामेव यादृशा भक्तास्तादृशलीला-
 दृष्टिमामद्यमानं शृणुत । सखिप्रेम्णाऽयं लोकः सृष्टोऽस्माभिः पितृगृहं
 त्यक्त्वा अस्मिन् बने पर्वते नानारमणस्थानमस्माकमनुभवं प्रतिपद्य रचितं
 आधिदैविकं स्थानं वृन्दावनं अतिपुष्टपुष्करिणि यत्र निकुञ्जदेव्या सह
 पुरुषोत्तमो रमणानन्दो नित्यक्रीडामातनोत् । संकेतस्थानं रमणानन्दयुतो
 रसिकानन्दः क्रीडते । रमणानन्दः स्वरूपस्वामिन्यावेशः । रसिकानन्दस्तु
 पुरुषावेशः । इमां लीलाविद्यामधीयते ये तेऽनेन व्रजसङ्गिनः सङ्गेन सङ्गच्छ-
 न्ते । तस्मात् तस्या लीलायाः कथा मद्भक्तैः सह भक्त्या लीलाकथायां मग्नाः
 रात्रौ यत्र यत्र पुरुषासक्ता आत्मानन्दं तद्रूपिणं कुर्वाणा भवेयुः । रुचिरां
 लीलां योज्यमानां तां प्रतिपद्यमाना हि तथा स्तुत्या ध्यानेन तल्लीलानुभवेन
 तन्मन्त्रोपासनेन तां लीलां पश्यन्तस्त ऋषयस्तद्भावेन गोवर्धनाद्रिशिरसि
 अटन्तः आत्मानं तद्भावेन भावयन्तोऽभवन् । रतिरसभावेनानन्द-
 योग्यतां वृक्षलतौषधयोऽनेकशोऽतितरामापद्यन्त । श्रीराधापुष्करिण्यां तं
 मन्त्रं जेषुः । तद्वचनं चक्रुः । तद्रूपे गुणात्मके एकरसे प्रत्यपद्यन्त ।
 अतितरां गाढप्रेमरूपमापद्यन्त । अतीन्द्रियज्ञानेन संयोक्ष्यमाणा
 आपद्यन्त । रतिप्रसङ्गेन तथा निकुञ्जदेव्या स्वलोकदर्शनमनुभाविता
 अभूवन् । सा अत्यन्तगाढप्रेम्णा तल्लोकसेवनात् स्वोच्छिष्टं मुञ्जानान्
 तान् प्रति तद्भावाभवत् । वृन्दावनेरहस्यक्रीडायां महारासस्थलं दर्शया-
 मास । तद्दर्शनेन योग्यतां प्राप्ता अत्यन्तस्तवनं चक्रुः । ते अमि-
 नमः । नम आनन्दरसदायिने । प्रेमानन्दाय रतिदायकसुरतानन्दाय

कुमारा ऊचुः । श्रीरसिकानन्दाय नमः । नमस्तुभ्यम् । रसिकानन्दाय नमो नमः ।

अव्याकृतविहारिण्यै सर्वव्याकृतिहेतवे ।

नमः कल्याणनिधये नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥

नमोऽनन्तभोगवर्धिन्यै भोगात्मिकायै भोगसाक्षिण्यै । नमः शृङ्गार-
रूपाय । नमो भोगरूपाभ्याम् ।

शरदि क्रीडते तुभ्यं नम आनन्दशालिने ।

नमोऽनन्तविहाराय नमस्ते रसरूपिणे ॥

नमो रससाक्षिणं । नमो गूढकेलिकलाय । नमो दानशीलाय ।
नमो वृन्दारण्यविहारिणे । तदनुरूपेण तदा साक्षिणे नमोऽणुरूपाय । नमो
धर्माय । नमः सर्वधर्मातिरिक्ताय । नमः कामदेवकुञ्जराय नमो नमः ।
सङ्केतविहारिणे नमः । दानलीलासुखदायिने नमः । भोगसुखरूपाय
नमः । अत्यन्तसुखदेहिने नमः । सर्वधर्मातिरिक्ताय नमः । अनन्त-
सुखसंभवाय नमः । श्रीराधिकावल्लभाय नमः । श्रीराधाधरसुधा-
शालिने नमः । क्लीं कामवने कुञ्जकेलिरसिकाभ्यां नमः । त्रं
व्री वृन्दावने रहसि संवलितनित्यानन्दरूपाभ्यां नमः । नमः ह्रीं
सृष्टिसमुत्पन्नाभ्याम् । नमः ह्रां सर्वचैतन्यभोगश्रावकाभ्याम् । युवाभ्यां
नमो रमणसुखवल्लभाभ्याम् । ॐ श्रीवृन्दावनसदामोददायिभ्यां नमः । ॐ
नमो वृन्दावने सखीसमूहे परस्परक्रीडासंवलितदेहाभ्याम् । ॐ नमः
परस्परशृङ्गारसुखभोगवद्भ्याम् । ॐ नम आद्यनादिसंभोगसुखभोक्तृ-
भोगाभ्याम् । ॐ नमो वृषभानुनन्दगृहे क्रीडार्थं संप्रकटितदेहसंभवाभ्याम् ।
ॐ नमो ललितादिसंस्तुत्यदेहाभ्याम् । ॐ नमो यमुनाकेलिरसिकाभ्याम् ।
ॐ नमो जलकेलिरसिकाभ्याम् । ॐ नमो नौकारसकलोलभ्याम् ।

ॐ नमो ग्रीष्मर्तुसेवितरूपाभ्याम् । ॐ नमो वसंतर्तुसेवितरूपाभ्याम् ।
 ॐ नमः शरदि रासक्रीडाकुतूहलैर्नानन्दविहारसर्वप्रदायिभ्याम् । यत्
 यौवनेऽद्भुतं रूपं कामकलाचातुर्याभिसंमितं तेभ्य एव नमो नमः ।
 अत्रातिस्नेहसंकुलितमनोसद्म येषां तेभ्य एव नमो नमः । सर्वकारणरूपाभ्यां
 नमो नमः । सर्वरूपाविर्भावाभ्यां नमो नमः । भक्तवात्सल्याविर्भावाभ्यां
 नमो नमः । अत्यन्तनिगूढभावसंमोहिताभ्यां नमो नमः । प्रत्ययरस-
 वीरुत्सुखदातृगुणगणयोग्याभ्यां नमो नमः । अनन्यभावरूपशोभासञ्चरित-
 स्वारस्यसंवलितगुणगणनाभ्यां नमो नमः । रूपशोभासञ्चरितरसरसवादिगुण-
 गणनाभावाभावसंवाहिभ्यां नमो नमः । यद्रूपदत्तृदेव्यां तदेकरूपाभ्यां
 नमो नमः । एवं स्तुत्या स्तावितौ सद्योदर्शनमभवताम् । तद्दर्शनप्राप्त्या
 कोटिर्मूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्राद्वादं तस्या निकुञ्जदेव्याः कटाक्षमन्वभवन् ।
 तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपेणाहो प्रार्थयत वरमित्युक्त्वा मनोऽभिलषितं
 उपाच्छन्दन्त । ब्रजगोपकन्या भविष्यामः । तथा ममावेशेन रसिकानन्दे
 सुरतानन्दा भवन्तु । तेऽभिपुत्रा ब्रजे सत्स्वरूपतां प्राप्ता महालीलायाम् ।
 नित्यानन्दरूपमेव यन्ति ते येषां स्थानं शतशो निकुञ्जरासस्थलानि ।
 निकुञ्जदेव्या श्रीराधिकयात्मानं शतसहस्रधा कृत्वा तस्मिन् रसिकानन्दे तया
 देव्यात्मानं रसयाञ्चकृस्त ऋषयः । तदभावोऽनल्पं विपर्ययमातनोत् । तस्यां
 लीलायां भावापन्ना भावा अभवन् । शृणु महालक्ष्मि लीलायां येऽप्यरण्य-
 धर्मिणो ये ज्ञानवैराग्यरहितास्ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । तस्माद्धर्माधर्मौ
 परित्यज्य पापपुण्यं परित्यज्य ये रसिकानन्दीमाज्ञां प्राप्तास्ते तां प्राप्नुवन्ति ।
 इदं रहस्यं न कदाचिद्वाच्यम् । सा लक्ष्मीः पुनरुवाच । ये योग्येषु
 सदा सहकारिणोऽभवन् नित्यलीलयानुभवलीलामापद्यन्त तैः किं
 साधनं कृतम् ? केन साधनेन सिद्धा आसत ? अत्यन्तरसलीलामग्नाः

रसिकानन्दे तथा देव्या श्रीराधिकया दर्शनसुखं प्राप्तवन्तः । किं प्राप्तं येन आनन्दे अभवन् । स होवाचेदं रहस्यं प्रश्नम् । सखायः समुत्पद्य नित्यं ब्रजलीलायां सहकारिणोऽयुज्यन्त । यथापूर्वं गोपानां द्विधा भेदा अभवन् । ये गोपाः सदा वनलीलायां सहकारिण आसत् ते सदा सुश्लोकदेवप्रस्थवरूपकृष्णबलरामदेवहारकुमुदरोचिष्मद्रमणाद्या विराजमाना अभियन्ति । तेषां स्वलीलार्थं स्वर्गानन्दात् ते गोपाः प्रकटिताः । तेषां प्रेमानन्दं दत्तवान् । ते प्रेम्णा भजनेन रमणानन्ददर्शनयोग्या अभवन् । येषां प्रेमानन्दसंपत्तिस्ते रमणानन्ददर्शनयोग्या एव भवन्ति । रमणसंपदि योग्या दर्शनस्पर्शालापसुखलीलारतिरास्तां तेषाम् । रमणानन्ददर्शनयोग्यतामातन्वन्नन्येषाम् । एकरतिरास्ताम् । रमणसेवायां संस्थापकशय्योपकरणगुणरूपगानरतिध्यानकीर्तनलीलास्मरणतद्भावापत्तिरूपसेवा यथाकालोपपन्नसेवैवास्ताम् । रतिसेवायां रतिसेवाकथायां मनोऽयुञ्जत । अहो लक्ष्मि मम रूपाण्यनेकशो ममावतारा अनेकशः । अंशकला आवेशाः पूर्णाशास्तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । अन्यास्तवांशकला उत्पन्नास्ताः अपि लीलां न जानन्ति । अन्ये ये शतशः सहस्रशस्तेऽपि तस्या लीलायाः अनन्तरा आपद्यन्ते । तस्मात्तल्लीलोपयोगिलीलाप्राप्तिरेवास्ताम् । न धर्मो न कर्म न ज्ञानम् । न कर्म केवलम् । एक एव तल्लीलापाठः । एकैव लीलोपसेवा । किशोरनवनूतनवीयस्सदाविहारानन्दकलानिधेः रसिकानन्दशिरोमणः श्रीराधाश्रियोऽतिमोहनस्योपासका भक्तास्तेषामुपासनम् । तल्लीलायोग्यतया धर्मोपासका वैष्णवा वैकुण्ठलीलामनाश्रिताः सनकादयो नारदादयोऽपि । जयन्तकुमुदजयविजया अन्ये च ये तेषां मम रूपाणि रासलीलायोग्या ये ममाविर्भास्तेषां दर्शनं न भवत्येव । अन्ये कर्मोपासकास्तां लीलां स्वप्नेऽपि न ददृशुः । अहो अनन्यभक्तिपरा काष्ठा । अहो मद्भक्तानां पङ्क्त

एव परा काष्ठा । तल्लीलाकथा परा काष्ठा । तस्यां लीलायां प्रत्ययः परा काष्ठा । अन्यकथाधर्मदानव्रततीर्थसाधनानि विमुक्तानि । यमनियमप्राणायाम-प्रत्याहारकलासुखभाविता सामान्यभक्तिरपि त्यक्ता । तल्लीलोपासकानां एकैव ब्रजलीलातायत । रतौ रमणानन्दे रतिरासां भवति । अवस्थितोऽयं रसः । शुष्कवादिनामन्यां लीलां न शृणुयात् । कर्मवेदजनितानि कर्मोपासनानि ये कुर्वन्ति ते कर्मजडा आसुरास्तेषां हठात्सङ्गस्त्यज्यते । चित्तवृत्तिं दूषयति । येषां सङ्गं नालपेन्न शृणुयात् ते धर्मविरोधिनस्तां लीलां न जानन्ति । तस्मात्तद्धर्मदृढकारिणो ये ते सेव्याः पूज्याः । ते तां लीलां ददति । अनन्यधर्मान् शृणुयादिति रसमार्गिणां धर्मः । अरसिका जीवाः कर्मजडा ये तेषां स्वेष्टं न दर्शयेत् । स्वेष्टस्य वार्तामपि न श्रावयेत् । सखायो येषां विद्याविर्भावस्तेषाम् । अन्य-विद्यारुचिर्न भवत्येव । यदनन्यधर्मे रुचिरास्तेऽरुचिरन्यत्र भवेत् । तस्य स्वेष्टे आविर्भवति रतिः । सोऽन्यदिष्टं विस्मरति । गुरुकृपया जीवत्वं प्रपन्नानामनुग्रहत अनुग्राह्यानुग्राहकभावेन रतिराविर्भवति । अतिरतेः स्नेहं विना न प्राप्तिः स्यात् । नारायणं प्रति लक्ष्म्या आविर्भूतया तया निकुञ्जदेव्या यानि सुखान्यनुभूयन्ते तेषां प्रश्नं पुनरभिवदति । ये साधनसिद्धास्तेषां कुतः स्थितिः । कया सरण्या तल्लोकप्राप्तिः स्वरतिरास्ते । कया रसिकानन्देन तस्या निकुञ्जदेव्याः प्राप्तिर्भवेत् । ये गवां गणास्तेऽतितरां तस्या देव्याः दृष्टिगोचरा एवासताम् । पुरुषो रसिकानन्दः स्वहस्तेन तेषां यथासुखं परिमार्जयन् दधिदुग्धनवनीताद्यान् रसान् स्वयमेव मुङ्क्ते । ये वत्सतरास्तेषां स्वहस्तेन पृष्ठभागान् परिमार्जयति । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् । नन्दादयो गो । वृषभान्वादयश्च ते गोपाः साधनसिद्धा वा संसिद्धा वा । यशोदाद्याः क्लियो मातृभावं प्राप्तास्ता अनादिसंसिद्धा वा साधनसंसिद्धा वा । यासां

गृहे रसिकानन्दोऽयं पूर्वं तथा श्रीराधया स्वयमेव संसिद्धासु भावप्रकटितः
 एव भवति । अत्यन्तस्नेहावभवताम् । अत्यन्त उत्सवो रमण एव भवति
 भजनप्रेमानन्दसुखप्राप्तौ । अतितरां रूपासक्तिर्न कथं भवेत् । सुखरूप-
 रतिर्येषामन्यत्किं स्मर्यते । स होवाच पूर्वं सृष्ट्युत्पन्ना अष्टौ वसवः । तेषां
 वसुनाम्ना अष्टौ कोटयो वसवो देवप्रवरा मम लीलालोकं श्रुत्वा तल्लोके श्रुते
 उत्कण्ठमाना लीलयापेदुरिति श्रुतम् । इमं महिमानमभ्येत्य वनलीलासक्ताः
 अतितरामासताम् । अतिलोलुपे चित्ते तस्यां व्रजलीलायां राधा आस्त ।
 संसिद्धनिकुञ्जलीलायां मयोपविष्टा मौनेनापन्नभावा अभवन् । ओङ्कारा-
 विर्भावलीलारूपश्रीराधारसिकानन्दरूपं प्रतिपद्य मनो भावापन्नं कृत्वा तां
 लीलां गायमाना अभवन् । ते वसव ऊचुः । ॐ श्रीराधारसिका-
 नन्दविनोदाभ्यां संयुक्ताभ्यां नमो नमः । नित्यक्रीडात्मने नमो नमः ।
 कामकेलिकौतुकात्मने नमो नमः । केलिकौतुकात्मने नमो नमः ।
 शृङ्गाररसविनोदिने नमो नमः । धात्रे क्रीडासंपादिने नमो नमः ।
 अनन्तरससंपादकारिणे नमो नमः । सीमन्तिने नमो नमः । रतौ
 संभोगिने नमो नमः । नानासुरतानन्दनिधये नमो नमः । रसिकानन्दशि-
 रोमणये नमो नमः । रासमानजलक्रीडात्मने नमो नमः । क्रीडाविनो-
 दिने नमो नमः । रतिसंभावितसुखसंवलितात्मने नमो नमः । सुरतो-
 त्कण्ठिने नमो नमः । यौवनात्मने नमो नमः । रससंभोगात्मने नमो नमः ।
 अत्यन्तक्रीडाश्रान्तिसंवलितवदनाय नमो नमः । प्रथमसङ्गरञ्जितात्मने नमो
 नमः । संभोगचटुदाटुवचनाय नमो नमः । मृदुकपोलवाण्यात्मने नमो नमः ।
 निकुञ्जे पुष्पशय्याशृङ्गारवत्सखीसुखदात्रे नमो नमः । आलिङ्गनचुम्बनसुरत
 सुखसंवलितवदनाय नमो नमः । सुरतानन्दसमग्रवशीकृतरसिकानन्दाय
 नमो नमः । आसनभेदसंयोगसुखदात्रे नमो नमः । विपरीतसुखदाय

उदारचेतसे संभावितजितरसिकशिरोमणये नमो नमः । सुरतानन्दवशी-
 कृतस्वाधीनपतिकाशृङ्गारात्मसुखदायिने नमो नमः । ललितायां विशाखायां
 कलावत्यां शृङ्गारवत्यां योजितात्मने नमो नमः । भोगद्रष्टे भोगसंभवाय
 नमो नमः । निद्रासंभावितविप्रलम्भसुखसमनुभवतिरस्कृतरसिकानन्दात्मने नमो
 नमः । अत्यन्तप्रवीणरससुखरसिकशिरोमणिभोगभावुकात्मने नमो नमः ।
 सर्वक्रीडारसपूर्णरिणे नमो नमः । पृथिव्यां यत्र सुरतानन्दभोगास्तद्भोगाविर्भा-
 वान्तर्यामिणे नमो नमः । पृथिव्यां यदानन्दरूपं तत्तदानन्ददायिने नमो
 नमः । पृथिव्यामतिकाममनोरथं सिद्धं वासिद्धं सुन्दरं सुभगं तेषामेव नमो
 नमः । एवं स्तुतस्तदा वसुभिः स्वानन्दाविर्भावं ददावतिप्रीतो रुद्रोऽयम् ।
 वसूनां प्रवरोऽयं नन्दोऽभवत् । धरानाम्नी स्त्री यशोदास्त । बृहद्वसुश्रेष्ठः
 कीर्तिदेव्या सह वृषभानुरभवत् । निकुञ्जदेव्या रसिकानन्देन सह यत्रा-
 नन्दोऽभवत् । नन्दोपनन्दभद्राश्वकृतवदुग्रभङ्गोदधिसामन्तातिरोचिष्मत्कात्ये-
 यमत्यनघरोचिष्मदुष्णीषरश्मिवसुसुजया अन्ये च शतशो वसवः साधनसिद्धाः
 एवासत । तेषां स्त्रीषु श्रीयशोदा सा च सत्या आस्त । रसिकानन्दशिरोम-
 णिर्वृन्दावनेश्वर्या सह संक्रीडमानोऽभवत् । अतिरूपलावण्यलवकसूक्ष्मस्व-
 रूपेणैवं भजमानाय नन्दरूपं दत्तवान् । ते गोपा गोप्यः । ते परस्परमेक-
 प्राणा एवासत । ते गोपा एकप्राणा एकरूपिण एकभावा अभवन् ।
 येषां पुरुषोत्तम आनन्दः । अन्याश्च गोप्यो नानाभजनभावमाविष्कृत्य
 भजनानन्दे भजनं कुर्वन्ति । अतितरां स्नेहोऽभवत् । सा लक्ष्मीनारायण-
 मुवाचेदम् । अत्यानन्दोऽयं लोकः । यस्मिन् लोके केवलरसनिधिर्मोहनेन
 रूपेण क्रीडामकरोत् । सा वृन्दावनेश्वरी कोट्यानन्दरूपा यत्र बालकेलिक्रीडां
 व्यदधात् । तेषां स्थानानि कीदृग्विधानि । गृहाणि कीदृग्विधानि ।
 वद सर्वमानन्दाविर्भावेन । भजनानन्दः सुखं श्रीराधारसिकमोहनमेवं

क्रीडामातनोत् । स होवाच लक्ष्मीम् । नन्दस्य गृहं सर्वसमृद्ध्या-
 नन्दावधि मणिमयमाधिदैविकेन रूपेण स्वप्रकाशमकरोत् । पद्मराग-
 मयः कुड्यः । सुवर्णजाम्बूनदप्राकारा वीथयो विराजमाना भवन्ति ।
 यत्र वृषभानुगृहं नन्दगृहाद्योजनायितम् । तस्मात् स्थानात् द्वादश
 श्रेणयोऽतितरां लघुकोमलमणय एवासन् । तासु श्रेणिष्वनेकशो
 लताप्रतानिन्य एवासन् । सुवर्णयूथिकाप्रवात्रैर्मणीनारङ्गप्ररोहैरानन्द-
 क्रीडास्थानमनुरचितं भवति । तत्रेदं संकेतस्थानम् । अहो लक्ष्मि
 किं वर्ण्यते चतुर्योजनायितम् । नन्दवृषभानोर्गृहात् द्वादश श्रेणयो
 विराजमानाः सङ्केतस्थलादुपरितः । तेषु स्थानेषु मध्यस्थिता अनेकशो
 विविधलताप्रावारा अभियन्ति । मुक्तालताग्रथिता मणीनां तेजसा प्रद्योतिता
 अभ्येत्यतितराम् । सहस्रनिकुञ्जा कदम्बलता सुगन्धसंवलितातितरां
 विस्तीर्णाम्येति सुभगा कदम्बमञ्जरी । हरितपीतनीलश्वेतशुभ्राः कदम्बाश्च
 परागोद्धृतपरिधयः सुवासिता आसन् । तद्गन्धलेखपद्मराः संसिद्धाः
 साधनसिद्धा अनेकशः कोमलकलं यशो गायमानाः सन्ति । कोकिलपिकशुकाः
 संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेककोमलकलं गायमानाः सन्ति । रूपलावण्ययुताः
 हंसमयूरादयोऽनेकशो रुचिरा भवन्ति । ते तस्मिन् स्थाने रसिकानन्देऽति-
 मोहनरूपे नित्यं संक्रीडमाना भवन्ति । बृन्दावनेश्वरीनित्यक्रीडाप्रधानं भवति
 राससखीनां समूहेन दशसहस्राणां समेतानां वृषभानोर्गृहम् । वृषभानुपुरं
 पूर्णानन्दयुतं प्रेमानन्दयुतं सुखसन्ततियुतम् । सर्वाः समृद्धयो द्वारे तिष्ठन्ति ।
 अष्टमहासिद्धयो द्वारे द्वारे तिष्ठन्ति । अतितरां सुखसंपत्तिः स्वरूपेण
 सुसेवते । ये ये विद्यासधर्माणः सुभगाः सुरतकलाकामनिद्रालज्जाप्रेमसुरतो-
 त्कण्ठादयस्ते विराजमाना भवन्ति । अधितत्स्थानं निकुञ्जे मध्ये सुगन्ध-
 शीतला मणयो ग्रीष्मादिषु ऋतुषु सेव्यरूपाः क्वचित् सुगन्धपारिजाताः

केचिद्वृक्षाश्चम्पकाः सदापुष्पिताः सदा सुकोमलैः पत्रैर्विराजन्ते सुगन्धाः ।
 केचिद्वृक्षाः पक्वफलसुगन्धरसयुक्ता विराजमाना आसते । केचिल्लताप्रकीर्णाः
 अतितरां सुगन्धयुताः । आमोदगन्धलुब्धा भ्रमरा मुदा गायन्ति ।
 काश्चिद्गोप्यस्तत्र मज्जन्य आसते । काश्चिद्गोप्यस्तस्यां वल्लालंकरणै-
 र्भूषयांचक्रुः । काश्चिद्गोप्यः प्रेमासक्ता राधारसिकानन्दाभ्यां भोजनं चक्रुः ।
 काश्चिद्गोप्यो दोलां ताभ्यां सह दोलयित्वा गायमाना आसन् । मुदा
 काश्चिद्गोप्यस्तच्चित्रशालायां स्वानि स्वानि रूपाणि पश्यन्ति हृष्यन्ति
 रात्रौ दिवानवरतम् । गोप्यो भावाश्रितास्तद्द्वाललीलां गायमाना भजनं
 चक्रुः । अत्यासक्ताः प्रेमभजनरूपा आनन्दं विन्दन्ते । ततो गोपास्तथा
 रसिकानन्दे मग्ना अत्यन्तप्रेमभजनं कुर्वते । ये प्रेमभजने निमग्नास्ते तां
 लीलामापद्यन्त । नित्यलीलाभजनानन्दोऽयं रसोऽनिर्वचनीयः । नन्दयशोदा-
 वृषभानुसत्यादयो ये भक्तास्ते भजनानन्दं नित्यमनुभवन्त्यतितराम् ।
 भूयो भूयः सुखसौष्ठवमभवत् । एवं गोपा गोप्यस्तन्मयतां प्राप्नुवन्ति ।
 तासां मातृभावं प्रपन्ना गोप्यो भजनानन्दे भजनमेव कुर्वाणा आसन् ।
 तासां गृहा दिष्ट्यानादिसुखसमृद्धिसंपत्तयो भवन्त्यानन्दसुखसमृद्धि-
 सिद्धयः । नानाभजनयोग्यान्युपकरणानि तदर्थं संपादितानि भवन्ति ।
 गोपगोपिकादीनां समृद्धिसुखं तस्य भजनार्थमेव भवति । अतितरां सुखार्थमेव
 योग्यतापद्यते । अनन्तसुखसंपत्तितया निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन सुखकोट्या-
 नन्दं प्राप्नुवन्ति । अभियन्ति च सुखसंयोग्यताम् । पृथिव्यां भारते क्षेत्रे
 आनन्दमयो लोकः स्वसृष्टिलीलार्थं स्वयमेव प्रकटितः । तस्मिन् ब्रजलोके
 सर्वा एव लीलाः सन्ति । ये गोपा गोप्यस्ते आधिदैविकीं लीलामतितरां
 संसिद्धा अनुभवन्ति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । रहस्य इह ब्रजमण्डले यानि
 पृथक्स्थानानि तानि ब्रूहि । एकविंशतियोजना भूमिरानन्दमय्येवास्ति ।

यमुनाया दक्षिणकूलतो महास्थानं पञ्चयोजनायतं विहारस्थानमतितरां
सूक्ष्मं नित्यविहाररहस्यकेलिकलाविर्भावभावितम् । तस्मिन् स्थाने ये वृक्षाः
गृहाणि निकुञ्जा अन्यानि विहारस्थानानि तान्याधिदैविकान्यासन् । यो
वंशीवटोऽयं साक्षाच्छिवोऽयम् । यो मण्डीरवटः स एव देवेन्द्र आसीत् ।
तत्र स्थिता ये पक्षिणस्ते साधनसिद्धा आसन् । ते निरन्तरं ताभ्यामासन् ।
ये तत्र मनुष्या आधिदैविकरूपा एवासन् ते बृन्दावनेश्वरीसमनुगृहीतास्सदा
तां लीलां दर्शयन्ति तदनुग्रहतः । यासामज्ञात्वा ज्ञात्वा वा यस्मिन्
कस्मिन् भावे भावो भवेत्ता भावेन तां लीलां प्राप्नुवन्ति । यत्र कुत्रापि
स्थितोऽपि तद्बृन्दावनोद्भवां मृत्तिकां भक्षयेत् । स एव तां लीलां प्राप्नोति ।
तत्स्थानोद्भवानां वृक्षाणां पुष्पमालां ये कण्ठे धारयन्ति ते सर्वकृत्यं विधूय तां
लीलां प्राप्नुवन्ति । सदा तां लीलां गायमानास्तां लीलां प्राप्ता एव सन्ति ।
यैः प्रतिक्षणं बृन्दावनं स्मर्यते ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्त्यतितराम् । अस्या-
माधिदैविकीं लीलां प्राप्तास्तां लीलां गायन्ति ध्यायन्ति । स्नेहासक्ता ये
तस्मिन् स्थले निवसन्ति ते पूर्वं तत्सृष्ट्युत्पन्ना एव सन्ति नान्यत्र ।
तस्मिन् बृन्दावने गोवर्धनोऽयं पर्वतः पञ्चयोजनायतः । त्रीणि योजना-
न्यच्छिद्रितसप्तशृङ्गाणि निरस्तघातुमयानि । यत्र निरन्तरं श्रीराधारसिकः
पुरुषोत्तमः संक्रीडते । यस्य गह्वराणि सुकोमलानि सुगन्धजुष्टानि
विराजमानानि भवन्ति । यस्मिन् गोवर्धने स्वयमेव श्रीराधारसिकशिरोमणिः
क्रीडां करोति । अतितरामानन्दमयोऽयं पर्वतो यस्मिन् पर्वते रुद्रो रुद्राण्या
सह पूर्वं सृष्ट्यादौ तप आतनोत् । येन तपसा शिवः शिवोऽभूत् तत्र
रुद्रशिवपुष्करिण्यां ये मज्जनं कुर्वन्ति ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । ये तं पर्वत-
मुपसेवमाना भवेयुस्तेषामनेनैव शरीरेण लीलायोग्यतास्ति । अनेनैव
गोवर्धनाद्रौ कामदुघा या तप आतनोत् सेयं गोविन्दपुष्करिणी ।

ये प्रेममग्नास्तस्यां पुष्करिण्यां मज्जन्ति सेवन्ते ते तां काले काले तस्याः दर्शनयोग्यतामतिप्रेमानन्दप्राप्तिमनुभवन्ति । यत्र मानससरोवरं विधाय मयापि तप आतन्यत । तत्तल्लोकेच्छया अप्सरसा उर्वश्या तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ तप आतन्यत । सानुभवोऽयं लोको यत्र यत्र परितः शिलाः श्रीराधाकृष्णनामाञ्चितास्तत्र ताः शिलाः श्रीवृन्दावनेश्वर्यधिवसति । आनन्दमयेन सह ये भक्तास्तत्र परिक्रमं कुर्वन्ति ते तल्लीलादर्शनयोग्यतां प्राप्नुवन्ति । इन्द्रपराजयमहोत्सवे अहमपि ब्रह्मादिना सह तस्मिन् स्थाने दर्शनार्थं गमिष्यामि । अतितरां श्रीराधारसिकस्य क्रीडास्थानं भवति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यस्थानेऽस्मिन् पर्वते रुद्रेण कस्मिन् काले तपः आतन्यत । तल्लीलां विस्तरशो ब्रूहि । मम मनोऽतिलोलं तस्यां कथायाम् । सुखे कस्तृप्तिं याति । येन तपसा ध्यानेन तद्भावो भवेदतितराम् । अहो अहं तं लोकं श्रोतुकामा । विस्तरेण ब्रूहि । एवं प्रपन्नां हृद्याधाय स्वयमेव नारायण अभिवदत्यतितरामानन्दमयेन चेतसा । स होवाच । शृणु लक्ष्मि अस्य लोकस्य हन्त माहात्म्यम् । अहं वक्तुमशक्तश्च । यस्य श्रीराधिका रसिकानन्दस्य विहारस्थस्य दर्शनालापकथानुभव अतितरां सद्यः सरूपे रमणानन्दे स्नेहाधिक्यं प्रापयन्ति । तथैव ते धन्यास्ते कृतार्थाः । ते अन्य-धर्मरहितत्वेन प्रेमानन्दे प्रीतिमापद्यन्ते । अतितरामासक्तिर्भवेत् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा अन्ये जात्यन्तरजाः शतशो जात्यन्तरभेदास्ते प्राप्नुवन्ति । न वर्णेन न धर्मेण येषां लीलारतिरास्ते ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । अन्यभावेनेश्वराविष्टचित्ता अन्यदेव प्राप्नुवन्ति । तद्भावे न कदाचित्तमेव प्राप्नुवन्ति । येषां तल्लीलानुभवो न स्यात् तेषामनेकशः साधनानि वृथा स्युः । ब्रह्मविद्यासेविनो ज्ञानिन आत्मवेदनेन तां लीलां न प्राप्नुवन्ति । तस्मात्तल्लीलादर्शनयोग्या भक्ताः स्वभावेन तस्याः श्रीराधि-

काया अनुग्रहात्स्वात्मभावा भवन्ति । शिष्टानुशिष्टस्वेष्टध्यानकथासेवानुभावेन
 तेषामनुभवकथायामासक्तिः स्यात् । सा संयोक्ष्यमाणा रतिरिन्द्रियार्थे ।
 रतिसङ्गो भावापन्नो भवति । ये रतिकलनयानुगृह्यन्ते ते तां लीलां
 प्राप्तवन्तो भवन्ति । सर्वं त्यक्त्वा तल्लीलाया अनुभविनो भवन्ति ।
 अनुभवसंभवस्तदा भवेत् यदा साधवः कृपां कुर्वन्ति रतिर्भवति च । सा
 लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । त्वयोक्तं यैषा ब्रजवासिनीं सृष्टिरद्भुतं स्थानं प्राप्तैवेति
 यस्मिन् स्थाने गोवर्धनोऽयं राजमान आस्ते । तस्मिन् गोवर्धने रुद्रेण तपो
 रुद्राण्या सहाक्रियत । पुष्करिणीं विधाय तप आतनोत् । यथायं लोको
 रुद्रेण तपता दृष्टः स्तुतः कथितो हृदि ध्यात एवायं लोकः सर्वेषां भक्तानां
 संदृश्यते । सुशोभनोऽयं लोकः सर्वेषां लोकमहालीलाया आवेशेन तेषां
 भक्तानामनुग्रहं प्रपद्यमानो भवेत् । कथं रुद्रेण दर्शनं प्राप्तम् ? केन साधनेन
 शिवः सिद्धोऽभवत् ? स एवं गोवर्धनाद्रौ कियत्कालं किरूपं तपोऽतप्यत ?
 दृष्टविभवोऽयम् । विस्तरशो ब्रूहि यदि कृपाभावो भवेत् । स होवाच । पूर्वं
 सृष्ट्यादावेकस्मिन् समये शिवः शिवया वैकुण्ठे तल्लीलादर्शनार्थं गतवान् ।
 तत्र नानासत्त्वमयानि संक्रीडमानान्यनेकशो रुद्रेण दृष्टानि । सर्वा मया
 क्रीडिताः क्रीडा दृष्ट्वा अनुभूय अतृप्तेन्द्रियोऽभवत् । ममाग्रे स्थितो रुद्रो मम
 ध्यानावस्थां दृष्ट्वा अत्याश्चर्यवान् अहो साक्षान्नारायणोऽयं परं ब्रह्म । रुद्रादयो
 यं ध्यायन्ति । रुद्रादयो यां वैकुण्ठाश्रितां लीलामभिलषन्ति । आदित्या-
 दयो यं द्योतयन्ति । यस्य कलावतारान् पृथिव्यां देवा ऋषयः स्तुवन्ति ।
 यं नारायणं ध्यायन्ती तेन रमा सदा क्रीडते । यं गत्वा चतुर्धा मुक्तयो द्वारे
 तिष्ठन्ति । तद्धाम सर्वेषां देवादीनामपि दुर्लभतरम् । स एव नारायणः
 कस्य भजनं कुरुते । अत्याश्चर्यं गतो रुद्रो बद्धाञ्जलिः सन्
 नारायणं स्तौति । स होवाच रुद्रः । नमोऽनन्ताय महते वैकुण्ठाय श्रीमते

तेजोमयाय तुभ्यं नित्यं नमो नमः । तवांशकला या नृसिंहाद्याः
 रामाद्या अनेकशो लीलामयास्ता ध्यायमानोऽहं शिवतां प्राप्तः ।
 अहमधुनात्याश्चर्यं गतवानस्मि । अहं निरन्तरं तव ध्यानेन विचरामि
 पृथिव्याम् । त्वं कं ध्यायसि ? सर्वं वर्णय तव कृपा यदि स्यात् । इति
 शिवेन संप्रार्थितोऽहं तल्लोकस्थितिं कथयिष्यन्—शृणु तात अहं नित्यं
 तल्लोकं ध्यायामि । यत्र निकुञ्जेश्वर्या क्रीडते रसिकानन्दो वनविहारे ।
 यद्रहसि क्रीडास्थानम् । यत्र आनन्दमयकामकेलिकौतुकरतिरासविनोद-
 कुञ्जाश्च शतशो विराजन्ते । यत्र गोवर्धनोऽयं गिरिः राजभानो भवति । यत्र
 कदम्बकुञ्जश्रेणयो गह्वराणि रत्नानि धातुमयानि । यत्र पुष्करिण्योऽ-
 मृतोदैः पूर्णा विराजन्ते । यत्र मणिगणाकरा ज्योत्स्नातितेजोरूपसंवलि-
 परस्परवस्तुप्रतिबिम्बिता आसते । तस्य लोकस्य दैवतं श्रीराधिकया
 सहानन्दरसिकं पुरुषं ध्यायेम । यस्य कटाक्षात् समुत्पन्ना लोकानां
 ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिस्थितिलयान् कुर्वन्ति । अनेकशो विद्या अविद्या देवा-
 श्चासुराश्चानेकशः सृष्टिस्थितिलयान् लभन्ते । यत्र ब्रह्माण्डानि कोटिशो
 विराजमानानि राजन्ते । तदतितरां सुशोभायमानं ब्रह्मेति पुराविदो
 वदन्ति । यत्र गत्वा धाम्नि लयं यान्ति योगीन्द्राः । शृणु यदि
 ते तस्य लोकस्य द्रष्टुमिच्छा वर्तते तर्हि त्वं ब्रज । ब्रजमण्डले
 गोवर्धनो गिरिरास्ते । रत्नधातुमयोऽयं पर्वतः । यत्र रसिकानन्दो वृन्दावनेश्वर्या
 सह क्रीडमानोऽभवत् । परितः क्रीडोपयुक्तानि वनानि द्वादश शोभाय-
 मानानि सुगन्धलतौषधिभिः संलम्बानि राजन्ते । यमुनामृतोदकैः क्रीडाविहार-
 स्थलानि संराजन्ते । यत्र यमुना बद्धोभयतटीविराजमाना भवति । अतितरां
 पद्मरागपुष्परागचन्द्रकान्तसूर्यकान्तमणीनां तेजोभिर्विराजमानानि जलानि
 शोभन्ते । यत्र यमुनाया उपरि शतशो वानीरकुञ्जा विराजन्ते ।

जातियूथिकामलिकासुवर्णयूथिकाप्रकरसुगन्धसंवलितेऽस्मिन् परागधृतोन्मदाः
 भ्रमरपिकशुकसारसहंसश्रेणयः शोभायमानाः कलकण्ठैर्निकुञ्जदेव्या यशोऽति-
 तरां गायमाना भवन्ति । यत्र वृन्दावनलीलाया निकुञ्जदेव्याः
 रमणलीलास्थानम् । यस्य स्मरणादेव रसाविष्टचित्तो भवेत् । वृन्दावनं
 वृन्दावनं इति प्रतिक्षणं ये वदन्ति ते देहोपाधिं त्यक्त्वा तस्य
 लीलारतिमनुभवन्ति । तन्ममापि निरन्तरं ब्रह्मादीनामप्यदृष्टगोचरम् ।
 सहस्रयोजनात् ये वृन्दावनं संस्मरन्ति वृन्दावनमिति प्रतिक्षणं वदन्ति ते
 तल्लीलोपयोग्या एव भवन्ति । यत्र कुत्रापि मृतो वृन्दावनोपासकस्तत्स्थलं
 तीर्थरूपं भवेत् । ये वृन्दावनोद्भवास्तुलसीकाष्ठाङ्कितमालाः कण्ठे धारयन्ति
 ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्ति । तस्यां लताः सरसा आसते । अतितरां प्रीतिः
 भवति । ये वृन्दावने वृक्षास्ते आधिभौतिकाः सिद्धाः । साधनसिद्धा इतस्ततो
 भ्रमन्तीर्लता ओषधिक्रीडास्थलानि कुर्वन्ति । तथा देव्या वृन्दावनेश्वर्या
 त्रयः कोटयः पुलिन्दगणा उत्पादिताः । तेषां वृन्दावनवासिनां देहोच्छिष्टानि
 मलमूत्रादीनि देहोद्भवानि कफलालामूत्राणि ते पुलिन्दगणा ऊषरे
 उत्क्षिपन्ति । तेषां भक्तानां दिव्यदेह आधिदैविक एवास्ते । अतितरां
 सौभाग्याढ्यो भवति । अहो शिव वृन्दावनमाहात्म्यं केन वर्ण्यते ? सेवका यत्र
 कुत्रापि यत्किञ्चित् भोगार्थं कुर्वन्ति तद्भोगो रसिकानन्देन सह निकुञ्जदेव्या
 सर्वः संमोक्ष्यते । अतितरां सुखसंभोगस्थानं तत् स्थानं ममापि ध्येयं भवति ।
 अहं निरन्तरं ध्यानापन्नो भवामि । तस्मिन् वृन्दावने मध्यस्थानं निरन्तरं
 मम ध्येयम् । तस्य स्थानस्य ध्यानेनाहमानन्दस्थानमानन्दावेशेन
 भवामि । आनन्दध्यानादहं तत् प्रतिपद्ये । अहो शिव त्वमप्यानन्द-
 स्थानमतितरां प्रतियोज्य तदभ्येहि । ध्यानापन्नो भव । रतिसमावभेदध्याना-
 पन्नो भव । तद्वृन्दावनेश्वरीरूपमङ्गप्रत्यङ्गं रसिकानन्देन सह यो ध्यायति

२६०

वैष्णव-उपनिषदः

स एव क्रीडायां मनोभावापन्नो भवति । पुनः शिव उवाच । त्वयोक्तानि द्वादशवनानि । तेषु वनेषु पृथक् पृथक् वद सर्वम् । स होवाच । शृणु शिव वर्णनं वनानां यानि श्रुत्वा ब्रजलीलायामत्यन्तसुखिनः संभवन्ति । महावने नन्दस्याधिष्ठानम् । गोकुले गवामधिष्ठानम् । यमुनायां क्रीडाधिष्ठानम् । बृन्दावने स्वामिन्या लीलाधिष्ठानम् । कामवने महालीलासङ्केतस्याधिष्ठानम् । बृहद्वने वृषभानुपुरनन्दपुराधिष्ठानम् । लोहवने पुलिन्दस्याधिष्ठानम् । तालवने उपनन्दाद्यधिष्ठानम् । दधिग्रामे दध्यधिष्ठानम् । गोवर्धनाद्रिपृष्ठे दधिविक्रयाधिष्ठानम् । गोवर्धनाद्र्यधो दानश्रेणिदानलीलाधिष्ठानम् । अयं गोवर्धनाद्रिः रमणलीलाधिष्ठानं भवति ।

अरिष्टे गोगणे कुब्जवटे बृन्दावने तथा ।

गोवर्धनगिरौ रम्ये सृष्टिः सर्वात्मना भवेत् ॥

भोः शिव अस्मिन् स्थाने श्रीराधारसिकानन्दाविव रूपेण सदा रमणं कुरुतो लीलासमेतौ । अत्यद्भुता संसिद्धा लीला सदा गोवर्धनाद्रौ । आनन्दमये स्थाने तप आचर । स रुद्रो रुद्राण्या सह तत्र पुष्करिणीं विधाय तन्नारायणमुखात् श्रुतं लोकस्य ध्यानमकरोत् । किञ्चिद्भयानेन ध्यानापन्नोऽभवत् । दशसहस्रवर्षं तल्लोकदर्शनार्थं तप आचरत् । तद्भयानेन निकुञ्जदेव्या दृष्टिपथमतिमोहनेन रूपेणानन्ददर्शनमापेदे । घनविद्युदुपमरूपनवीनया जायया सह केलिसम्पत्तिसमवेतं रमणानन्दं क्रीडासमेतमरूपयत् । तद्रूपदर्शनेन समाकुलोऽयं शिवस्त्रिभिर्नेत्रैर्निरूपयन् पुनःपुनः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तुतिमापेदे । उवाचायं शिवः । अं अं अनन्ताय नमो नमः । श्रीं श्रीं श्रीकृष्णाय तुभ्यं नमो नमः । सं सं संमोगप्रियाय नमो नमः । बृं बृं बृन्दावनविहारिणे नमो नमः । कुं कुं कुञ्जविहारिणे नमो नमः । लं लं ललिताविहारिणे नमो नमः । क्रीं क्रीं क्रीडावनविहारिणे नमो नमः । रां रां

राधामनोहारिणे नमो नमः । किञ्च निरन्तररासक्रीडासक्ताय नमो नमः ।
 सदामनोहारिणे नमो नमः । सदा रतिप्रियाय नमो नमः । सदा गानप्रियाय
 नमो नमः । सुरतानन्दाय नमो नमः । आलिङ्गनप्रियाय नमो नमः ।
 कूटस्थाय नमो नमः । रमणानन्दसुखदात्रे नमो नमः । अतिमोगप्रियाय
 नमो नमः । अन्तरात्मने नमो नमः । अतिरतिविहारिणे नमो नमः ।
 अत्यद्भुतचारित्राय नमो नमः । भारद्वाजरूपिणे नमो नमः । रामाय
 नमो नमः । मोक्षदाय नमो नमः । भक्तप्रियाय नमो नमः ।
 भक्तानन्दप्रदाय नमो नमः । अत्यानन्ददायकाय नमो नमः ।
 सकलकलाकोविदाय नमो नमः । महाक्रीडासुखदाय नमो नमः । महा-
 लीलाविहारिणे नमो नमः । कस्तूरीतिलकाङ्किताय नमो नमः ।
 शृङ्गारवत्यादीनां सखीनां सुखदायकाय नमो नमः । मोक्षदाय नमो नमः ।
 स्वच्छन्दोपात्तदेहाय नमो नमः । शोकमोहभयवैराग्यदुःखनाशहेतवे नमो
 नमः । अन्तर्यामिणे नमो नमः । रसिकानन्दाय नमो नमः । परस्पर-
 रासकेलिकलाकौतुकाय नमो नमः । विप्रलम्भसुखप्रदाय नमो नमः । अति-
 रतिकौतुकाय नमो नमः । अगणितानन्ददायिने नमो नमः । एवं स्तुत्वा तदा
 रुद्रस्तूर्ण्णीं केवलेन्द्रियस्तद्भावभावितोऽप्यासीत् । सरतिरासीत् । गतव्यथः
 आसीत् । समचेता आसीत् । स्तुत्वा रसिकानन्देऽभवत् । तया
 बृन्दावनेश्वर्यां स्तुत्या प्रसन्नया वरेण छन्दितः साभिप्रायेण स्तवेन
 स्तविता त्वं वरं प्रार्थयेति । अकामो वा सकामो वा मद्भक्तो यजमानोऽयम् ।
 वरेण तां प्रति छन्दयित्वा शिश्राय । अहो मयि यदि तुष्यसि तर्हि
 ब्रजलोके क्रीडास्थानं दर्शय । अयं देवो वरो ममामिलषितः । वरोऽसौ तव
 भवेत् । तया निकुञ्जदेव्या दत्तो वरोऽयं ते दिव्यं चक्षुर्दत्तवत्यस्मि । त्वं
 चक्षुषाऽनेन मम विहारस्थलं दर्शयिष्यसि । तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ रुद्रस्य

सर्वा ब्रजलीला दृष्टिपथे आविरभूवन् । प्रथमं नन्दस्य भवनं कोटि-
 वैकुण्ठन्यापिरत्नकुड्यैर्वरमणिस्तम्भैः शोभितमप्यासीत् । अतितरां नन्दगृहं
 पञ्चविंशतियोजनायतं पञ्चयोजनभूमौ मणिस्तम्भाकुलं बालक्रीडायां
 रमणयोग्यं यत्र पुरुषोत्तमो रसिकानन्दः संसिद्धलीलां करोति । सा
 ब्रजेश्वरी स्वयमेव देवरूपं विधाय तस्मिन् रसिकानन्दे क्रीडां करोति ।
 यथा पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य संसिद्धप्रकटानुभावस्तथा संसिद्धोऽयं
 नन्दवसुभिः स्वावेशप्रकटानुभावो वितन्यते । नन्दगृहाद्बृषभानोर्गृहं यो-
 जनायितम् । रङ्गवत्यादयः सख्यः प्रेमवत्यादयश्च यशोदायाः समीपे
 क्रीडोपकरणान्यकुर्वन् । उपनन्दस्य पुत्री विशाखा नाम्ना रसिकानन्दस्य
 भावाभिज्ञैवास्ते । नन्दस्य वृषभानोर्गृहात् श्रीरसिकशिरोमणिद्वादशश्रेण्यः
 एवास्ते । रमणस्थानं पञ्चयोजनविस्तीर्णमेवास्ते । अतिरतिरमणकोटिकाम-
 पूर्णं जाम्बूनदसुवर्णखचितसुकोमलमास्ते । रमणसरसाः शतशः सुगन्धपारि-
 जातका इव मणयो ललामभूतपरस्परगन्धाढ्या भवन्ति । कल्पद्रुमवृक्षाः
 वाञ्छितफलदातारो भवन्ति । अतितरां फलपुष्पमणिलताहरितपीतश्वेतशुभ्र-
 अमरसंवलितयोजितानि रतिकलाभावस्थानानि संराजन्ते यमलैर्यमलैः
 कुञ्जविद्रुमलताग्रथितानि । अतिरसरमणानन्दयोग्यानि शय्योपकरणानि
 संयोक्ष्यमाणानि भवन्ति । शाखासक्ताः पक्षिणो विराजमाना नानारङ्गैश्च-
 न्चुपक्षैर्भवन्ति । ते पक्षिणः कलशब्दं समवेता यशो गायमाना भवन्ति ।
 तेषु पक्षिषु केचित् साधनसिद्धाः संसिद्धाश्च भवन्ति । अतिप्रव्रजिताः
 परस्परगोष्ठीयुक्ता आसतेऽतितराम् । मणिज्योत्स्नापाकृतान्धकारैरतितरां
 रात्रौ दिवा तेजसा व्यक्तान्यासत । तस्मिन् स्थाने रङ्गवती प्रेमवती रसि-
 कानन्देन सह क्रीडतः । वृषभानुकुमारी ललिता विशाखा अनूराधा
 चन्द्रकला सुमुखी सुभगा भोगवती सुगन्धाङ्गी रतिमती कामपूरा कामदा

कामाक्षी कलावती हरिणाक्षी हंसगमना शृङ्गारवती दृष्टिमोहना जितकामा
 वशकामा कामवर्धिनी सर्वाङ्गकामा कामदृष्टिः कामकलाकोविदा रतिदात्री
 रतिसुखसंपत्प्रदा सलज्जा निःशङ्का निर्लज्जा अतिरतिमोक्त्री श्रान्ता
 सोत्साहा सुरतागमज्ञा वनस्थानज्ञा सङ्केतज्ञा लतावृक्षज्ञा निकुञ्जश्रेणिषु मार्गज्ञा
 लतापरीक्षाकोविदा मणिपरीक्षाकोविदा अतिसन्धिज्ञा सङ्केतरसज्ञा केकाभिज्ञा
 पक्षिणां भाषाभिज्ञा पक्षिसंवन्धाभिज्ञा सङ्केतस्थानज्ञा संभावितरसज्ञा
 शय्योत्पाता खाद्यपेयचोप्यलेख्यसास्वादज्ञा नानासुगन्धरसभेदज्ञा वस्त्र-
 सुगन्धभेदज्ञा भूषणज्ञा अङ्गयोग्यभेदाभिज्ञा शृङ्गारयथायोग्यकालाभिज्ञा
 तालाभिज्ञा गीतज्ञा गीतरसभेदज्ञा तन्तूत्पाद्यरागभेदज्ञा सुगन्धज्ञा अङ्गरसभेद-
 गुणज्ञा सुगन्धनृत्यभेदज्ञा संपत्तिसुखज्ञा सदारासक्रीडाप्रकटगुणगानको-
 विदा रासागमसोत्साहा रासलीला वचनसुखदायिनी एताः सख्यो विहार-
 स्थाने आसते । कुञ्जप्रतिकुञ्जसुखदायिनीषु सखीनां कुञ्जश्रेणिषु सुखसंपत्ति-
 सुखार्थं विद्रुमश्रेणीया नानाकुञ्जा अतितरां संशोभन्ते । तासु श्रेणिषु
 पुष्पपरागोद्धृता यवनिकाः संभवन्ति । तत्सृष्टिवेष्टितेऽङ्गभूषणैर्भूषितानि
 स्थानानि भूषयन्ति । शोभायमानानि रचितयोग्यान्यत्युन्नतश्रेणिषु
 वियूथानि विराजमानानि भवन्ति । सखीनां समूहाः श्रेणिषु संभोक्ष्यमाणाः
 क्रियामारमन्ते । द्वादशश्रेणिषु श्रीनन्दस्य श्रीवृषभानोर्गृहात् पृथग्द्वाराणि
 राजन्ते । तत्र जाम्बूनंदसुवर्णभूमिमणिगणचित्रितमध्यस्थलं क्रीडाविहारसं-
 युक्तं मण्डलाकारं पञ्चयोजनायतम् । यत्र काम आधिदैविकेन रूपेण
 उपसेवमानो भवति । श्रेणीनां द्वाराणि तस्मिन्मण्डले पृथक्शोभायमानानि
 सन्ति । एका श्रेणी मणिलतासुगन्धाढ्या सुकोमलातितरां न कोमला
 न कठिना । अत्यद्भुतसुरचितायां वृन्दा सखी आस्ते । तयातितरां
 तस्य सेवार्थं श्रीराधिकायाश्च रचिता शय्यैवास्ते । तत्र तस्मिन्

मणिलतान्तरे चतस्रः श्रेणयः शोभायमाना भवन्ति । तासु श्रेणिषु चतस्रः पुष्करिण्य आसते । एका पुष्करिण्युष्णोदकेन पूर्णैवास्ते । एका पुष्करिणी सुगन्धशीतजलैवास्ते । एका पुष्करिण्यमृतोदकेन पूर्णैवास्ते । तत्र मज्जनस्थानमत्यन्तशोभायमानं चतुःसरं यत्र मणीनां द्वादश शृङ्गाणि शोभायमानानि, भवन्ति । एकस्माद्गृहादन्तःसुगन्ध-तैलागुरुरसकर्पूरमृगमदकेसररसाः शतशः पुष्पलतापत्रत्वक्पयोभिः सुगन्धि-तेषु रसेषु संपूरिता भवन्ति । मज्जनक्रियोपयोग्याः सखीनां समूहाः मज्जनं कारयन्ति । नानाजलकेलिसुखसंपत्तिर्मज्जनावती तन्मज्जनेऽतितरां सरतिरास्ते । जलसंपत्त्यै अतितरां सुजलकल्लोला सखी उपसेवते । तत्र हंसीहंसाः सारसाः पक्षिणोऽग्रेऽग्रे क्रीडन्ति । अतितरां जलकेलिकल्लोलकर्म-करणादनन्तरं तत्राधिदैविकेन रूपेणाभिरत्यन्तसुखदायकरूपेण सेवते । अतितरां सूक्ष्मस्वरूपकिरणैः सूर्यरूपः सेवमान आस्ते । अङ्गराग-संपूर्णमङ्गरागस्थानम् । मन्दिरमत्यमृतमङ्गसुखदायि शोभायमानमभ्येति । यत्र चन्द्रकिरणाः शोभायमाना आसते । सूक्ष्मतरतेजसा सेवमानाः आसते । तत्र रङ्गवत्यौ नानाङ्गरागं प्रकुर्वन्ति । अतिसुखदायिनोऽतितरा-मङ्गरागाः शोभायमानाः सुखमोगा आसते । शोभते तृतीयं शृङ्गारगृहम् । यत्र गृहात् गृहन्तरात् द्वाराणि शोभायमानानि भवन्ति । तत्र सखीनां सञ्चार आस्ते । अतिरतिसञ्चरिताः सख्यः सुखदायिन्यः शृङ्गारमधि-कुर्वन्ति । प्रथममगुरुवासितकवरीसुगोप्यमानानि मन्दारपारिजातपुष्पाणि शोभायमानान्यातन्वन् । तत्कालं मण्डलेन गुम्भितकेशपाशः शोभते । क्षुद्रघण्टिकाशब्दसूक्ष्मतरसंभाविता वृन्दावनेश्वरी प्रीयमाणा भवति । सीमन्तो नानामणिमुक्ताग्रथितजाम्बूनदसुवर्णखचित एवैति । मेघोपरि चन्द्र-ज्योत्स्ना इव नक्षत्रगणा विराजन्ते । स्यूतपुष्पसुवर्णजटितमणिमुक्ता-

खचितान्तरज्योत्स्नाभाविताः शोभायमाना आसते । कुटिलजटितज्योत्स्नाभिः
 अभ्रच्छायाकर्तुर्वरितचन्द्र इवास्ते । कर्णकुण्डलज्योत्स्नारुचिमण्डलं कुण्डल-
 युगळम् । ललाटं तिलकहाटकहीरकमणिज्योत्स्नाभिरतितरां जटितं संराजते ।
 मणिभ्रुवौ विजयकामकर्मुकखण्डलते इव संविराजते । नेत्रे चितखञ्जनमीन-
 चातुर्यं जितवती । नासा केनकमुक्तायोजिता संराजते नितराम् ।
 नासाभरणनीलपीतरक्तमणिज्योत्स्ना राजमाना नासामभ्येति । अतिरति-
 विम्बाधरोष्ठौ विद्रुमरङ्गरञ्जितावास्ताम् । हीरकावलीघटितमुक्ताफलज्यो-
 त्स्नाभिः रञ्जितमध्यचिबुकं मुखमण्डलं सलाञ्छनं चन्द्रमण्डलमिवास्ते ।
 घटितकोमळमुक्तावलीकौ कुचकुम्भौ हाटकमणिज्योत्स्नाभिः पुष्पपराग-
 परीतावास्ताम् । भुजलताकरकङ्कणमरकतज्योत्स्नाभिर्हिस्ताङ्गुलिमुद्रिका-
 जटितमणितेजांसि राजमानानि सन्ति । नाभिहृदकुहरे लोक इव
 आशङ्क्यते । कटिमेखलाक्षुद्रघण्टिकाः कामदेवदुन्दुभिभूषणानि भवन्ति ।
 नागेन्द्रहस्ता अतितिरस्कृता एव त्वचि कर्कशत्वेन । कदलीस्तम्भाः
 एकान्तशैत्येन तदूर्वोरुपमानबाह्या एवासन् । चरणकमलौ नूपुराभ्यां शोभाय-
 मानावास्ताम् । आपद्यमाना आसेदुष्यो विशदचरणाङ्गुल्यः शोभायमानाः
 भवन्ति । गतिरतिविलासयत्यास्ते । रञ्जवती सखी वानीरश्रेणिनिकुञ्जे
 रसिकानन्दस्य शृङ्गारं दर्शयन्त्यास्ते । श्यामहिरण्यपरिधिवनमाल्यबर्हाद्योतित-
 मुक्तावली शोभते । धातुप्रवालनटवेषविचित्रिताङ्गशोभाढ्यां सन्निकृष्यन्त्या-
 सीत् । मकराकृतिकुण्डलौ शोभायमानमाननमतनुताम् । कनककपिशं
 वनमालया विराजते वेणुवादनकलरवकलापकलितं पीताम्बरम् । तस्मिन्
 मध्यस्थाने चतुर्धा श्रेणयः विद्रुमलतालवज्जलताग्रथिताः । वृक्षाग्रग्रथिताभिः
 श्रेणिसञ्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यां मध्ये एकं शय्यामन्दिरं मणिकुञ्जघटितं
 विराजते । पुष्परागमणिना खचितज्योत्स्नाभिः संबलिताः प्रतिविम्बिताः

मणयोऽतितरां राजमाना भवन्ति । रङ्गवती प्रेमवती नन्दगृहं सकलशृङ्गार-
 भूषणैर्भूषितं रसिकानन्दमतिप्रेम्णा आनयति । अत्यन्तानन्दमग्नान्यानन्द-
 रसेन वनान्युत्फुल्लितानि संसिद्धानि कोटिशः । सखीनां समूहांः कोटिशो
 गीतानि गायन्ति । तासु श्रेणिषु परस्परसञ्चाराय संखीनां मार्गा आसते ।
 मार्गे मणिद्योतिताः परिधयो राजमानाः शोभन्ते । एका पञ्चमी श्रेणी
 पुष्पिता नानारङ्गरचिता आस्ते । पुष्पाणि फलानि लतायां सन्ति ।
 अनेकमणिलताप्रवरज्योत्स्नापुष्पलता आरक्ता एवासते । पुष्पितवृक्षाणां
 सुगन्धमणिलतानां परस्परज्योत्स्नासंवलितवीथयो विराजन्ते । अमृतफल-
 फलिता वृक्षा अतितरां पीतरक्ततरङ्गितनानाज्योत्स्नाः परस्परमतितरां
 शोभायमाना भवन्ति । अतिस्वादूनि मधुराणि फलानि नम्राणि सन्ति तेषाम् ।
 तेषामधः सूक्ष्माः पुष्पलता नानारागरञ्जिता एवासते । तासां लतानामधः
 शय्यारचिता रमणानन्दसुखसंभोगायैवातितरां सुगन्धपुष्पसिकतारचिताः
 योग्या नानास्तरणैः संवलिताः कामरसपोषका एवासते । तासु
 श्रेणिषु विचित्रशाला अनेकशः संराजमाना भवन्ति । तासु शालासु सूक्ष्माणि
 सुगन्धमणीनां गृहाणि संराजन्ते । तेष्वन्तर्नानाभक्ष्यभोज्यानि वस्तून्य-
 तितरां सौष्ठवेन राजमानानि प्रकाशन्ते । अन्यतो रचिता शय्या विविक्ता
 आस्ते । यत्र सा वृषभानुसुता सुरतानन्दश्च संभाषेते । तस्मिन् क्रीडामण्डले
 षष्ठी श्रेणी मणिप्रेष्ठैर्विराजमाना भवति तिराम् । द्वारं त्वारक्तमणिखचित-
 यन्त्रकवाटस्थलहाटकजटितमणिराजिराजमानं भवति । तत्र षडृतवः संलम्भाः
 सेवन्तेऽतितराम् । यत्र ग्रीष्मोऽयं ऋतुः तत्र शीतलजलाः पुष्करिण्यस्तट-
 भूमिरलकुटीचन्द्रकान्तमणिजलयन्त्राणीवासीदन्ति । यत्र हंसीनां यूथानि
 क्रीडां कुर्वन्ति । अन्ये पक्षिणः देववाण्यां परस्परसुखमनुभवन्त आसते ।
 भोगताम्बूलाद्या अतितरां तस्मिन् स्थाने आसते । श्रेणिसप्तमद्वारमतितेजो-

मयमुत्तरा शतं मन्दिराणि एकावल्या सन्ति । दक्षिणतः शतं मन्दिराण्ये-
कावल्या राजन्ते । यत्र सखीनां यूथानि तेषां स्थानानि क्रीडाविहारस्थ-
लानि योज्यमानानि संभवन्ति । यत्र ललिता विशाखा अन्याश्च शतशः
सख्यो रतिप्रेमानन्दस्थाने रमणानन्दयोग्या भक्तास्तिष्ठन्ति । यस्यां श्रेण्यां
गृहं गृहं प्रति अष्ट सिद्धयो मूर्तिमत्यः संराजमाना आसते । अनेकशो
भूषणैर्भूषिता अलं गोप्यस्तेषु गृहेषु क्रीडां कुर्वन्ति । नानारसा नवनीतरसाः
राधास्वादितमिष्टरसा अनेकरसास्वादसुखदाः सन्ति । दुग्धफेनानेकभोगाः
सुखसंमोग्या भवन्ति । तेषु आस्तरणयुक्ताः शय्याः शतशो राजमानाः
भवन्ति । तेषु स्थानेषु सुरतानन्दप्रेमानन्दमग्नाः सख्यस्तदुपकरणरसं
सङ्कलयन्ते । अष्टमी श्रेणिः आम्रकदम्बकदलीचम्पकाशोकपुन्नागरोध्रमन्दा-
रपारिजातकल्पकनीपनीरवटन्यग्रोधोदुम्बरजम्बूवृक्षसरलशिंशुपाखदिरवकुलपि-
प्पलश्लेष्मातकवदरीतालतालीवनमधुरशाखालवङ्गैलाजातीत्वक्पूगनालिकेरमातु-
लङ्गकमुककण्टकिनोऽनेकशः वृक्षाः पुष्पलताग्रथिताः केतक्यः अमृतवल्ल्य-
मृतफलैर्ग्रथिता अनेकपुष्पगुच्छलताग्रथिता वल्ल्यो वसन्ते वासन्तीपल्लवैः
योग्यास्तस्मिन् कदम्बवने निर्भरसेचनरससङ्कुलिता अनेकलताग्रथिताः
सुवर्णालवालश्रेणयो ग्रथिताः जलपुष्करिण्य इवागाधजलपूरिता एवासते ।
पट्टडोरिग्रथितसुवर्णघटिको जलप्रवाहो जलयन्त्रमुखाविर्भूतो भवति । तत्र
मध्ये पुष्करिण्यां रत्नखचिता मुक्ताखचिता द्वार्जलयन्त्रशीकरैराविष्टा भवति ।
नवमी श्रेणिर्जलेन सिच्यमाना अनेकजलक्रीडोपकरणा संयोक्ष्यमाणा
भवति । कचित्सूर्यवंशीकमलानि कचित्सोमवंशीकमलानि विराजमानानि ।
तस्य मध्यस्थले वानीरकुञ्जे यमुना जलकल्लोलवती रत्नबद्धोभयतटी राजमाना
भवति । यत्र वृक्षशाखा जलस्पर्शाद्दोलाविद्रुमलता भवन्ति तत्र वृन्दावने-
श्वरी रसिकानन्देन सह दोलायामेति । ललिताद्याः सख्यः संगायन्त्यो

भवन्ति । तत्र मयूरकोकिलहंससारसविहगाद्याः सङ्गायमाना गुणगणनायुताः
 भवन्तितराम् । दशमी श्रेणिः रसिकानन्दस्य कन्दुकलीलाधिष्ठानस्थानं प्रति
 योजनायत्तं सुवर्णभूमिजटितखचितं पद्मरागमणिगणावलितं भूमिरचितं
 रङ्गश्रेणिविराजितमतितरां शोभते । अतिविविक्ते तस्मिन्स्थाने कन्दु-
 कलील्या सुशोभमानं स्थानम् । ताः सर्वाः सख्यः कन्दुकलीलायां
 कन्दुकलीलापरस्परस्वमर्यादा नातिक्रामन्ति । श्यामा रसवती ललिता शृङ्गा-
 रवती रङ्गवती कलावती गुणवती गानवती कुञ्जवती सुश्रोणी
 चन्द्रमुखी चन्द्रलेखा ताः सर्वाः सख्यः कन्दुककेलियष्टिं गृहीत्वा स्वमर्यादाः
 नातिक्रामन्त्यः क्रीडन्ति । रसिकानन्दशिरोमणिः स्वयमेव कन्दुकयष्टिं
 गृहीत्वा क्रीडति । विशाखा चन्द्रलेखानूराधा अतिरतिज्ञा रमणानन्दज्ञा
 सुरतोपदेशा सुरतकलाकोविदा गानवतीत्येताः सर्वाः सख्यः कन्दुकयष्टिं
 गृहीत्वा श्रीराधिकायाः कन्दुकमर्यादामनतिक्रम्य कन्दुकं नयन्ति ।
 एवं परस्परं स्वं स्वं मर्यादया कन्दुकं नयन्ति । यदा श्रीराधिकाया सह
 रसिकानन्दः कन्दुकव्याजेन क्रीडामनुभवति तदा ताः सर्वाः सख्यो
 जयशब्दमुदीरयन्ति । अन्याः पुष्पवत्यादयः सख्यः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति ।
 तस्मिन् क्रीडास्थाने एकं मन्दिरं प्रेमवत्या सुरचितं सर्वभोगाढ्यं
 मनोरममस्ति । प्रेमवती प्रणिपातपुरस्सरं श्रीराधिकाया सह रसिकानन्दं
 श्रमापनोदार्थं नयति । तत्र भोगवती सर्वभोगान् गृहीत्वाऽग्रतस्तिष्ठति ।
 तत्रान्तः सुरचिता सखी सुभगां सर्वभोगान्वितां शय्यां रचयित्वा
 प्रश्रयावनता श्रीराधिकाया सह रसिकानन्दं नयति । तत्र मनसि सोत्साहं
 करोति । तत्र रहसि चतस्रः सख्यः सुसेवमाना भवन्ति । सुकामा
 अलज्जा सुरतोद्गमा सुरताजन्दा सेवमाना भवन्ति । अन्या ललितादयः
 सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्यातिरसमग्नास्तां लीलां गायमाना भवन्ति ।

सामरहस्योपनिषत्

२६९

तदा लीलान्ते चतस्रः सख्यः सेवमाना भवन्ति । निद्रालसा संमीलिता सुसुखा गतत्रपा सुसेवमाना भवन्ति । तत्र जाताः सुलज्जा भोगवती गानवती सुसेवमाना भवन्ति । एवं कन्दुकलीलायाः सुखं प्रत्यवसरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सुसेवते । तत्र सहस्रनिकुञ्जैर्ग्रीष्मर्तुः सेव्यमानो भवति । रत्नजटिताः पुष्करिण्यः सुवासितैः सुजलैः संपूर्णाः भवन्ति । तत्र नम्रा वृक्षाः परितः पुष्पैः फलैः संपूर्णा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां करोति । तत्र मज्जनवती तरङ्गिणी जलकल्लोला प्रेङ्खितवती सेव्यमाना अगाधजला नौकावती सुप्लवनवती जलभिज्ञा सुलहरी हस्तपल्लवा एताश्चान्याः सख्यः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां कुर्वन्ति । तत्र जलक्रीडाव्याजेन रसिकानन्दो नानासुखं करोति । तत्र जलक्रीडान्ते शृङ्गारवती सखी शृङ्गारस्थानं नयति । तत्र पुष्पवती पुष्पमण्डनं रचयति । एवं ग्रीष्मलीलां नानासखीभिः सार्धं रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह संसेवमानो भवति । ततः प्रावृल्लीलाया अनुभवः कथ्यते । सहस्रनिकुञ्जैः प्रसारिता प्रावृडानन्दमयी भवति । मेघा नानारूपाणि विधाय मणिमयभूमिं जलैः सिञ्चमाना हरितशाडलैः शोभायमानां कुर्वन्ति । मयूरपिकहंससारसयुताः पक्षिणः नानाकलशब्दैः कुञ्जान्तरं सेवमाना भवन्ति । कौसुम्भासुरङ्गाक्षणिकाप्रद्योतिताः सोत्साहाः सख्यः रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह सेवन्ते । नानावृक्षा लताभिर्ग्रथिताः पुष्पैर्नम्रा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नानावैभैः शृङ्गारानुभवैः सुरतानन्दसुखं भुञ्जमानो भवति । प्रावृल्लीलां निरीक्ष्य ललितादयस्तां लीलां सङ्गायमाना भवन्ति । ततः शारदलीलायाः सुखं संवर्ण्यते । सहस्रैर्निकुञ्जैः प्रसृता शरत् प्रद्योतमाना भवति । यत्र सर्वाः लताः प्रफुल्लिताः सर्वे वृक्षाः प्रफुल्लिताः सर्वासां सखीनां मनांसि

प्रफुल्लितानि भवन्ति । यत्र शारदनिकुञ्जाः प्रफुल्लिताः तत्र मध्ये नित्यं रासमण्डलं सदा रसिकानन्देन सेवितम् । यत्र श्रीराधिका स्वसखीभिः सार्धं नित्यानन्दलीलां करोति । तन्मण्डलं पञ्चयोजनायतं नानारङ्गमणिस्तम्भ-शतशोभितं नानालताभिः पुष्पिताभिराच्छादितं परितः द्वादशश्रेणि-संवलितम् । तासु श्रेणिषु अनेकशः सख्यः संशोभमाना भवन्ति । प्रथमश्रेण्यां ललिताविशाखादयः सख्यः नानाविधान्युपकरणानि कुर्वन्ति । द्वितीय-श्रेण्यां प्रेमवत्यादयः सख्यः राजमाना भवन्ति । तृतीयश्रेण्यां शृङ्गारवत्या-दयः सख्यो नानालंकारसुखरूपा अनेकशः शृङ्गारं कुर्वन्ति । चतुर्थश्रेण्यां भोगवत्यादयः सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानाभोगरसान् रचयन्ति । पञ्चम-श्रेण्यां पुष्पवत्यादयः सख्यो नानाविचित्राणि माल्यानि कुर्वन्ति । षष्ठश्रेण्यां भूषावत्यादयः सख्यो रत्नजटितानि हाटकमयानि मनईप्सितानि रचयन्ति । सप्तमश्रेण्यामन्नपूर्णाद्याः सख्यो नानान्नमयरसान् पाचयन्ति । नानाविधानि पक्वान्नानि प्रतिक्षणं नूतनानि पाचयन्ति । अन्या रसभेदान् रचयन्ति । अष्टमश्रेण्यां सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानासुगन्धान् रचयन्ति । गानवत्यादयः सख्यो गानं कुर्वन्ति । तन्तुवादिन्यादयः सख्यस्तालैः सुगानं कुर्वन्ति । नवमश्रेण्यां विलाससुरतरङ्गवत्यादयः सुरतानन्दादय अभिनव-कला आसनभेदान् सङ्गीतसाहित्यकलाकुशलाः सख्य ऋग्यजुस्सा-मथर्ववेदरूपाः सख्यो नानास्तुतिभेदैर्गुणगणनां कुर्वन्ति । एकादश-श्रेण्यां रङ्गवत्यादयो रङ्गरसभावान् नानाविचित्राणि वचनानि नम्राणि प्रेमोत्पादकयुतानि श्रावयन्ति । द्वादशश्रेण्यां सखीनां विविधसञ्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यामन्तर्भागे चतस्रः श्रेण्यो विराजन्ते । तत्र गृहाणि शतशो हाटकमणिसूचितानि संरोचमानानि भवन्ति । रत्नविधिषु योज्यमानाः श्रेणयः सुवर्णयूथिका अतिसुगन्धा मुक्तायूथिका अतितरां राजमानाः

भवन्ति । तत्र तरुपुष्पाणि नानारङ्गमयानि सुगन्धाढ्यान्यनेकशो राजमानानि भवन्ति । तस्यां हरितपीतारक्तरक्तलता अनेकशः शोभाभेदैरत्यन्तं राजमानाः आसते । मणिलता आन्तरैर्मणिपुष्पैः संराजमाना भवन्ति । तासां लतान्तः सूक्ष्मलताः पुष्पिता रजमाना आसते । तासु श्रेणिषु सखीनां रमणस्थानानि सुरच्यमानानि गुणगन्धाढ्यानि रूपप्रतिकृतियुतान्यतितरां भवन्ति । सा श्रेणी श्रीराधाया अतितरां बल्लभा आस्ते । यदा गृहवनविहारेच्छाविर्भवति तदा तस्यां श्रीराधा स्वयमेव विचिन्वती स्वयमेव पुष्पहारावलीं ग्रथयति । रसिकानन्दः पुष्पाणि चिनोति । हरितपीतश्चेतारक्तपुष्पगुच्छैर्ग्रथितां हारावलीं श्रीराधायाः कण्ठे स्वहस्तेन परिधापयति । सा अतितरां विराजते । तस्यां श्रेण्यामेकं मन्दिरं गुप्तक्रीडास्थलं महतेजोमयं मणिमयसप्तभूमिकं संराजमानं भवति । एका भूमिः कनकमयी । तदुपरि रत्नसोपानसंबलिता भूरारक्तमणियुता भवति । अनेकरङ्गरञ्जितान्तरा सोपानपरम्परा संराजमाना भवति । तदुपरि भूः पुष्प-रागरचितातितरां सुशोभाढ्या भवति । तत्र सोपानपरम्परा शोभायमाना भवति । तदुपरि सोपानपरम्परा रत्नावलीखचिता नानारङ्गैः सुरचिता जाम्बूनदसुवर्णभूषिता परस्परसुगन्धसंबलितैवास्ते । सुरचितमणिवल्ली पुष्प-परागपरिधिमतितरां करोति । तदुपरि चन्द्रकान्तरचिता तत्सकाशात् चतुर्थी भूमिर्जलशीकरसंयोगिनी भवति । जलयन्त्रशीकरकणिकामयैः सुगन्ध-जलैः पूरितायां पुष्करिण्यां ग्रीष्मादौ श्रीराधिकया श्रीरसिकानन्देन च सुरतानन्दसुखमनुभूयते । यत्र सुखमनुभवन्तावासाते तत्र मणिलताग्रथिता विद्रुमदोलास्ते । रत्नजटितदोलायां मणिज्योत्स्नाः प्रतिबिम्बभावापन्ना एव भवन्तितराम् । तदुपरि सोपानपरंपरा मणिग्रथिता भवति । तदुपरि सुगन्धमणिरसवल्लिता भूः संराजमाना आस्ते । तत्र भूम्यां सूर्यचन्द्राग्नि-

२७२

वैष्णव-उपनिषदः

देवता आधिदैविकेन रूपेण सखीरूपं विधायोपसेवमाना भवन्ति । तस्यां भूयां सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो भवन्ति । श्रीराधिकायाः रसिकानन्देन सह देहात्समुत्पन्नाः सख्यो दृष्टवती कलावती सोत्साहा प्रेमसंवलित्वा लज्जावती गुणवती गुणाढ्या भवन्ति । अन्या अनेकसख्यो रतिसुखमनुभवन्त्यो भावापन्ना भवन्ति । तदुपरि सोपानपरम्परा चत्वरे आस्ते । अत्यन्तसुखश्रेणिसञ्चारा सोपानपरम्परा रत्नावलीभूषिता भवति । रतिसुखसंपत्तिप्रतिकूजा अनेकभूमयो योजिताः । एवंविधं मण्डलं द्वादशद्वारयुतम् । द्वादशद्वारे द्वादश श्रेणिसञ्चारा भवन्ति । अतः परम्पराश्रेणिसञ्चारो भवति । तन्मण्डलं यदेतत् षड्गुणप्रसिद्धं भवति । षड्गुणाः षडृतवः उपसेवमाना भवन्ति । एतस्मिन् मण्डले पूर्वतः सखीरूपं विधाय सूर्यः सुकोमलैः किण्वैरुपसेवमान आस्ते । तस्य मण्डलस्योत्तरतश्चन्द्रः उपसेवमानो भवति । एतस्मिन् मण्डले पश्चिमतोऽग्निराधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति । ग्रहास्तास्तारका अन्यानि नक्षत्राण्याधिदैविकं रूपं विधाय सदा उपसेवमाना भवन्ति । इन्द्रोऽपि सखीरूपं विधाय देवाङ्गनाभिः सह विमानावलीषूपविश्य सदोपसेवमानो भवति । पितामहोऽपि सूक्ष्मरूपं विधायान्तरिक्षे तल्लोकदर्शनाकाङ्क्षो भवति निरन्तरम् । अन्ये दिक्पालाः संसिद्धा निरन्तरमाधिदैविकेन रूपेण तन्मण्डलमुपसेवमानास्तन्मण्डललोकानन्दमग्ना भवन्ति । तन्मण्डलोपासका भक्ता अन्यं न भजेरन् । अन्यधर्मासक्ता इदं मण्डलं न जानन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । ये मण्डलमुपासते ते किं कर्म कुर्वन्तो भवन्ति ? स होवाच । तेऽनन्योपासकाः भवन्ति । अनन्यभजनसिद्धा आत्मभावा भवन्ति । आत्मभावा मण्डलमुपासते । आत्मानात्मभावो भवेत् । अतितरामात्मानन्दे मग्ना अन्यरसं न भावयन्ति । आत्मानन्दे मग्ना अभक्तान्न स्पृशन्ति । आत्मानन्दे

मग्ना आत्मभावा भवन्ति । नम्रं शृण्वन्ति न नमन्ति न गायन्ति । ते भक्ता अत्तरसभाविता आत्मनो रतिरसभावनयानन्दं शृण्वन्त्यानन्दं गायन्ति । आनन्दयुता भक्ता अतिरसमग्ना गुणान् गृणन्ति । अतिरस-मग्नास्तदुच्छिष्टमुपभुञ्जते । अनुच्छिष्टं कदाचिन्न भुञ्जते । तन्मण्डलोपासकाः भक्ता अभक्तान् न स्पृशन्ति । ये अन्योपासका भक्ता आनन्देऽनाश्रिताः कर्मजडाः कर्मकाण्डोपासका एव ते । अन्योपासका ये ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसो-पासका एव ते । तेषां संभाषणं तन्मण्डलोपासकः प्रमादेनापि न कुर्यात् । ये अन्यधर्मरहिता अन्यासक्तिरहितास्ते तन्मण्डलं प्राप्नुवन्ति । अन्य-धर्मरहिता एव प्राप्नुवन्ति । अन्ये आत्मानं न विदुरात्मना । किं बहुनोक्तेन धर्मेण । ये ब्राह्मणा अन्यविद्योपासकाः कर्मजडाः कर्मकाण्डो-पासकाः कालोपासकाः कर्मधर्मदेवपित्रोपासका एव भवन्ति ते । ये शैवाः शाक्ताः सुरामांसरताः कौला जैनाः पातञ्जला मीमांसकाः जडतां प्राप्ताश्चार्वाका अन्यधर्मदृढासक्ता भवन्ति । ये तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपासते सदानन्दरसमनुभवन्तो भवन्ति । रतिकला-कोमला गुणगणनां कुर्वन्ति । तमेव रसं गायन्तो भवन्ति । अतिरतिमापद्य-माना भवन्ति । ये दर्भं हस्ते गृह्णन्ति ते तं रसं न प्राप्नुवन्ति । तिलाञ्जलिं पितृणां ये ददति ते तन्मण्डलं न प्राप्नुवन्ति । देवाश्चासुराश्च कर्मकाण्डोपासका एवेति, देवाः सद्विद्योपासका वैष्णवा एवेति, गुणातीतास्ते बृन्दावनेश्वरीमुपासते । रसिकानन्देन सह उपसेव्यमानमभियन्ति । अतिगुणमग्ना रात्रौ दिवा सदा सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो युज्यन्ते । रतिकलाकौतुकानि संभोक्ष्यमाणा भवन्ति । भक्तानामनुग्रहात् भगवान् रसिकानन्दोऽनुग्रहं करोति । ते मण्डलं विदुः । ये ब्रजमण्डलं सेवन्ते ते मण्डलं जानन्तोऽन्यासक्तिं विना मण्डलासक्तिं कुर्वन्तः सदा सर्वलोक-

रसलीलायामासक्ता भवन्ति । ये मनोरथशतैः रात्रौ दिवा तल्लीलाः
 ग्रथन्ति ते तन्मण्डले भावापन्ना भूत्वा प्रतिष्ठितचित्ता भवन्ति । तन्मण्डलं
 श्रुत्वानन्दमासीदन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदं नारायणं तदा ।
 रमारमण वैकुण्ठे यो वै क्रीडयित्वात्मभावो भवतितरामतिप्रीत्या
 नारायणोऽयं वदत्यभीष्टमनन्तरम् । अन्ये ब्रजमण्डले पञ्चयोजनायतं
 मण्डलमस्ति । अधितन्मण्डलमासेदिवान् रुचिररतिभातनोति । यत्र शतशो
 गृहाणि हाटकमणिमयानि सहस्रपङ्क्तयोऽतितरां श्रेणयो विराजमानाः
 भवन्ति । येषु मन्दिरेषु सप्तभूमिष्वतितरामभ्येत्य मनुष्या रतिरसमग्नाः
 भावापन्ना भवन्ति । मणिभूमिष्वतितरामास्ते पुरुषः । तत्र गोपानां गृहाणि
 पङ्क्तिशो विराजमानानि भवन्ति । गोपानां गृहे गृहे अष्टमहासिद्धयो
 राजमानाः सन्ति । तेषां गृहे गृहे कल्पद्रुमा राजमाना एव भवन्ति । तेषां
 गृहाश्रमः केवलं क्रीडार्थमेव भवति । तेषामात्मसुखार्थमेव न भवति ।
 कदाचन तेषामतिरसक्रीडा । अतिरसमग्ना हि संसिद्धा एवेति ते गोपाः
 गायन्ति रसिकानन्दस्य यशः । ब्रजेश्वर्या सह सङ्क्रीडमानो मानेन
 रसिकानन्दो गवां यूथान्यनेकशो हरितपीतश्वेतशुभ्रधूम्राताम्राणि विराज-
 मानान्यनुयाति । कपिलाकज्जलिकाशुभ्राशुभ्राभ्राजमानानि यूथान्यनेकशो
 राजन्ते । यूथेषु प्रतिपङ्क्ति घटोद्गीः शतशो राजमानाः सा ब्रजेश्वरी
 प्रतिक्षणमभ्येति । गाः कृपादृष्ट्यासेदिवान् संपोष्यमाणो भवति । सिद्धामं
 पञ्चयोजनायतं गवाममृतमयं मण्डलम् । गवां गणा गोपैः सह सङ्क्रीडिताः
 भवन्ति । तत्र दुग्धसिन्धुरास्ते । वत्सवत्सतरीसहिता महोक्षाः सङ्क्रीडमानाः
 भवन्ति । तत्र मलमूत्ररहिता गावोऽमृतसं संभुञ्जाना भवन्ति । तत्र तत्र
 ता गावः कुञ्जे निकुञ्जे क्रीडमाना भवन्ति । अतिरतिमग्ना गावः
 क्रीडापरा भवन्ति । नन्दगृहात्परितो गवां गणाः कोटिशः शोभमानाः

भवन्ति । ताः सर्वा गोप्यो दधिमथनक्रियापरा रसिकानन्दस्य ब्रजेश्वर्या
 सह क्रीडां तां तां लीलां गायमाना भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् ।
 कामदुधया किं तप आचरितम् ? अतिरतिप्रीतिः कथमभूत् ? यासामेव
 दुग्धदधिनवनीतरसा घृततरसास्तथा निकुञ्जदेव्योपसेव्यमाना वृषभानुगृहे
 प्रकटिता भवन्ति । निकुञ्जदेव्या सह तस्मिन् गृहे पुरुषो ह वै सङ्क्रीडा-
 मातनोत् । तस्मिन् गृहे गवां गणाः शतशो राजमाना भवन्ति । ताः
 किमाचरितवत्यः किं कृतवत्यः कामापेदिरे रतिप्रीतिं कथमासत ? किं
 शृण्वन्त्य आपेदिरे ? स होवाच नारायणोऽयम् । गवां भेदौ द्वावेव भवतः ।
 संसिद्धाः साधनसिद्धाश्च । या गावो ब्रजमण्डले तिष्ठन्ति ताः संसिद्धाः
 भवन्ति । एकस्मिन्नवसरेऽहं तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह संवलित्वां
 तस्मिन् ब्रजमण्डले मनसासेदिवान् । कामदुघा या तप आतनोत् तस्मिन्न-
 वसरे वैकुण्ठे आगता । कामदुघा मां निरन्तरं ध्यानावस्थायां रममाणं
 वीक्ष्य विचारितवती । अहो नारायणोऽयं सदा लक्ष्मीकान्तोऽपि प्रतिकलं
 कस्य ध्यानापन्नो भवतितराम् । पश्चात् यं नारायणो देव्या सह ध्यायति
 स्म । यस्यावतारकलाः कोविदाः सर्वे ध्यात्वा उपजीवन्ति । यद्येवंविधो
 नारायणः सर्वसुखसंपत्तिपूर्णानन्दः कस्य ध्यानमापन्न आसेदिवानिति ।
 तथैवेत्यस्या मनोभिलाषं ज्ञात्वाहमुवाचेदम् । अहो कामदुघे तव मनसि
 किमागममिति । सोवाचेदम् ।

नमोऽनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।

योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥

त्वयानुगृहीता भक्ता आत्मानं तन्मयं मत्वा आत्मभावा भवन्ति ।
 गवां यूथानि शतशो विराजमानान्यमृतरससंज्ञिता गावो भवन्ति । तस्मिन्न-
 वसरे वनेषु तृणसंवलितानि निकुञ्जा अतिरसपूर्णा जलाशयाः शतशः

शोभमाना आसते । तस्मिन् स्थाने संभाषमाणान् तृणजलौषधयः संभाष-
 माणा भवन्ति । अतिपुष्टा गावो गोष्ठ्या आसेदुष्यः सुखसंभोज्यदुग्धरस-
 वृत्तरसदधिरसनवनीतरसाद्यान् भावापन्ना दाशुष्यो भवन्ति । शुभ्रश्चेतर्बुरिताः
 गावो रससंवलिता गोष्ठान्यनेकशो राजमानान्यभियन्ति । ता गोष्यो
 दधिमन्थनघोषेण सह संगायमाना भवन्ति । तासां शृङ्गारसुखमापद्य-
 मानोऽभवत् । गोलोकादागता कामदुघा नारायणमुखाच्छ्रुतमात्रे गोवर्धनाद्रौ
 शिरसि मन्त्रं जप्त्वा तद्भावेनाभवत् । सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन प्रत्यक्ष-
 भावमातेने । सा प्रसन्ना सती तां लीलां दत्तवतीति । नारायणः
 प्रत्युत्तरमुवाच । अहो प्रिये अस्य लोकस्य कथा श्रूयमाणा सर्वेषां
 निविशमाना हृदि गतं कामक्रोधादिकं नाशयति । अतिरतिभक्तिरापद्यते
 रसिकानन्दरतिरापद्यते । वर्णाश्रमस्वधर्मा बाधका न भवन्ति । कामदुघा
 गोवर्धनाद्रिशिरसि गोविन्दपुष्करिण्यां तपश्चकार । महामन्त्रममुं जजाप ।
 शृणु तन्मन्त्रध्यानम् । ॐ नमः श्रीराधारसिकानन्दाभ्याम् । मूलमन्त्रोऽयम् ।
 द्वादशाक्षरसंवलितमोङ्कारबीजसंवलितं यो ध्यायेत् स एव तां लीलां प्राप्नोति ।
 अत एव कृतं 'पुष्करिण्यां गोविन्दकुण्डमिति नाम्ना प्रसिद्धं कुञ्जम् ।
 पृथिव्यां तस्मिन्नद्रौ सा वनफलतृणौषधीर्भक्षयामास । सा कामदुघा तपः
 आचरन्ती तस्मिन्नद्रौ परिचक्राम । एवं शतं समास्तप आचरितवती । यत्र
 गोवर्धनाद्रौ रत्नधातुमयलतौषधयः सदा प्रफुल्लिताः फलिता रससंवलिताः
 अतिशोभायमाना भवन्ति । यत्र गह्वराणि रत्नहाटकमयान्यनेकशः शोभाय
 मानानि क्रीडास्थानानि भवन्ति । अनेकरङ्गविचित्रा ओषधयो नानारङ्गैः
 रचिता एव यत्र फलपुष्पैर्भासिता भवन्ति । यत्र सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन
 सह सङ्क्रीडामतितरामातनोति । यत्र सखीनां वृन्दानि विहारपराणि । तत्र
 तस्यां पुष्करिण्यां सा ब्रजेश्वरी स्वस्वरूपं दर्शयामास । रसिकानन्दरूपं

रसरूपमेव साक्षादेवंविधमतिगुणसंबलितमेवास्ते । नूतनो नवजायया सह
 क्रीडनं दर्शयामास । सा कामदुधा स्तोत्रं चकार । नमो रसात्मने । नमो
 ज्ञानात्मने । नमः सदावनविहारिणे । नमः स्वभक्तकर्मस्वभावदुःखनाश-
 हेतवे । नमः प्राकट्यदेहरूपिणे । नमो यमुनाजलकलोलविहाराम्ने । नमः
 कामकेलिकौतुकात्मने । नमः कामप्रियाय । नमः कामात्मने । नमः काम-
 संबलितदेहदात्रे । नम आदिकर्त्रे । नम आदिहेतुरतिदात्रे । नमः श्रीराधा-
 ध्यानापन्नदेहात्मने । नमो रसात्मने । नमो रसलंपटपरिपूर्णदेहदातृरूपिणे ।
 नमोऽनिर्वचनविहारिणे । नमो रतिदात्रे । नमो रतिकेलिकलाकौतुकात्मने ।
 नमो भक्तिरतिदात्रे । नमो ज्ञाननिर्वाणदात्रे । नम आनन्दस्वरूपिणे ।
 नमस्तद्दष्ट्रे । नमस्तस्य हेतवे । नमः कलरासज्ञानविहाराम्ने । नमोऽगुणाय ।
 नमः सृष्टिरूपगुणदायिने । नमो गुणकेलिसुरतानन्दसुखभोक्ते । नमो भोग-
 दायिने । नमो भोगात्मने । नम आत्मरूपिणे । नमः सुरतानन्दरूपरसदात्रे ।
 नमोऽनन्तचरित्रदायिने । नमः क्रमलीलात्मने । नमः श्रीराधाकृष्णरूपिणे ।
 नमः श्रीकृष्णराधारूपिणे । नमोऽनेकविहारदेहधारिणे । नमः शतसहस्र-
 कोटिशो लक्षकोटिविहाररूपिणे । नमो ललिताप्रतिक्षणसुखदात्रे । नमः
 कुञ्जान्तरविशाखाद्यनेकसखीविहाराम्ने । नम आद्यनादिरूपसंसिद्धभक्ति-
 रूपिणे । नमो दानधर्मदात्रे । नमः सुखरूपिणे । नमो ब्रजाविर्भावभावि-
 ताय । नमोऽनन्तदानरूपिणे । नमः सदा बृन्दावनश्रेणिविहारिणे ।
 नम आदिद्वादशवनविहाराम्ने । नमः पृथिव्यां यानि रूपाणि सुन्दराण्यने-
 कशस्तत्त्व विजानीयात् । इति लक्ष्मीलज्जाधृतिकान्त्यनेकाकाराय गुणरति-
 दायिने नमो नमः इति स्तुत्वा स्थितां कामदुधां तद्दर्शनमहोत्सवाकुलां
 रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या सहोवाचेदम् । अहो का त्वं स्तुतिं ब्रुवाणासि ।
 मम भक्तिरिह लोके दुर्लभा । दुर्लभतरं वरं वरय । तव मनसि मम

दर्शनादधिकं न किञ्चिदवशिष्यते । तव स्तवेन यो नित्यं स्तौति समाहितः
 सदाभीष्टं प्राप्नोति । पुनरुवाचेदं कामदुषा यदि देयो वरो नाथ तव
 लोके वसाम्यहम् । गोरसदधिरसदुग्धरसनवनीतरसघृतरसफाण्टरसैरहं सेवे ।
 रसिकानन्द उवाच । अनेकशः स्वाविर्भावेन लोके मम बल्लभा त्वं सदा वस ।
 अहं त्वां रक्षिष्यामि । वनविहारे यथेच्छं विहर । ये अनन्याश्रया मम
 भक्तास्तेषां न वर्णाश्रमधर्मा आन्तराळिका जायन्ते । तेषां न कर्माणि
 आन्तराळिकानि जायन्ते । तेषां साधनमान्तराळिकं न जायते । व्रतानि
 यज्ञाश्छन्दांसि योगक्षेमफलानि चानन्यानि धर्मसाधनानि यत्किञ्चिदपि
 कृत्यं सर्वमान्तराळिकं न जायते । ये ब्राह्मणाः कर्मज्ञानसाधकास्तेषां
 ज्योतिषागमकर्मसाधकास्तेषां च सङ्गो हठात् त्याज्य एवेति वचनमस्ति ।
 दशयोजनं व्रजपरिणाहः । तत्र पशुपक्षिणो मृगा गावोऽन्ये ये वृक्षाः
 अनन्यपरा आसते । अतिरसमग्ना गायन्ति । तस्मिन्मण्डले देवाः
 दर्शनकाङ्क्षा एव भवन्ति । भक्तक्रियामापद्यमाना भक्तास्तन्मण्डलं वन-
 विहारस्थानं ये व्रजवासमिच्छन्ति ते एव सर्वधर्मातिरिक्ता भवन्ति ।
 कर्मातिरिक्ता भवन्ति । सङ्गातिरिक्ता भवन्ति । व्रजमण्डलोपासकाः
 भवन्ति । अहो लक्ष्मि सा सृष्टिस्तु सृष्ट्यतिरिक्तैवास्ते । तत्सृष्टेरुत्पद्यमानो
 रसमार्गमाश्रितो भवति । मनः सोत्साहं यद्येतस्मिन्मण्डले तदङ्गीकारं
 प्राप्तोऽमनोमोहोऽतितरां प्रतिसंयोक्ष्यमाणस्तं रसमनुभवन् भावापन्न आस्ते ।
 यदा यदा देवाश्च पितरश्च कालश्च व्रजातिसाधने यतन्ते तावत्सहस्र-
 शाखाध्यायी भवति । सर्वयज्ञकर्मकरोऽपि तन्मण्डलं स्वप्नेऽपि न जानाति ।
 ज्ञानिनो ये ब्रह्मबोधका योगिनस्तपस्विनस्ते स्वप्नेऽपि तन्मण्डलं न जानन्ति ।
 सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कैश्चिहैस्तान् भक्तान् जानीमहे । स होवाच ।
 ने सदा प्रेममार्गिणो भवन्त्येव । न निर्विण्णा नातिसक्ता गृहादौ विषयादौ

नातिसक्ता यदृच्छया प्राप्तवस्तुमात्रमुपसेवमाना एव भवन्ति । न निर्वेदो नाश्रमो न कर्म यदृच्छाकथासेवा भक्तानां प्रीतिरनन्या भक्तिर्भवति । एवंविधसंसारातिरिक्तः स्वभावसंसिद्धो भवति । ततस्तां लीलां प्राप्तवन्तो भवन्ति । एवमुपासकास्तस्मिन्मण्डले गत्वातितरां संयोक्ष्यमाणाः आपद्यन्ते । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रसमार्गीया भक्तास्तन्मण्डलं प्राप्तवन्तः । तेषामेका दशा । तेषां का गतिः ? स होवाच । तन्मण्डलोद्भवाः भक्ता आत्मरतिगुणा रतिगुणाढ्या अनन्यमार्गाढ्यास्तां लीलां प्राप्तवन्तस्तन्नामाङ्कितवर्ष्माणस्तुलसीकाष्ठाङ्कितदेहा आत्मनाम्ना सुखालङ्कृतशरीरा रासादिलीलाध्यानावस्थायामापद्यमाना युज्यन्ते । कुञ्जे निकुञ्जे श्रेण्यां श्रेण्यां रतियोग्यताभावमापद्यमाना भवन्ति । तामेव कथां प्रतिक्षणं नूतनामासेवमाना आसते । श्वपचो वा ब्राह्मणो वा वर्णान्तरो वा यो भक्तानां सह सङ्गमापद्यते स एव तां लीलां प्राप्तो भवति । रतिमासेदिवान् यदि तदुच्छिष्टे कदाचिदन्नबुद्धिस्तेषामस्ति । तदुच्छिष्टे जले सदा तीर्थबुद्धिः भवति । तत्र तत्कथायां साक्षाद्बुद्धिर्भवति । ये मण्डलमुपासमानास्तेषां को धर्मः ? किं कर्म ? को रसो भवतितराम् ? ये तन्मण्डलमुपासमानाः भवन्ति तेषां किं तीर्थव्रतयज्ञधर्माः सन्ति ? किं बाध्यमानं भवेत् ? तेषां मुख्यं मनो भवति । ये गुणाढ्या रसरूपिण आनन्दरसनिमग्नास्ते गुणतद्भागिनो भवन्ति । तन्मात्रप्राप्तमार्गोऽयं लोकः सदाण्डजो भवेत् । आत्मानन्दे मग्नासु ये रात्रौ दिवा ब्रजध्यानापन्ना भवन्ति सदा तेषां नित्यं निकुञ्जदेव्या अनुग्रहो भवति । ये महालीलायामत्यासक्तास्तेषां कदाचित्कालधर्मभयं न भवत्येवेति सद्यः कृतार्थतोत्पद्यमाना भवति । अवर्णोऽपि सवर्णतां प्राप्नोति । ये न भवन्ति ते दुष्टगतयो भवन्ति । ये ब्रजमण्डलोपासकास्ते ब्रजे निवसन्ति । ये रासमण्डलोपासकास्ते रासलीलां

प्राप्नुवन्ति । अनन्तसुखं संभुञ्जते । या यशोदाद्या लीलामुपासमाना भजने प्रपद्यमाना भजनानन्दे संयोक्ष्यमाणा भवन्ति । ये नन्दादयोऽत्यन्तसखीभावमुपासमाना अत्यन्तसङ्गं प्राप्तास्ते रमणानन्दसखीसमूहं प्राप्ताः । ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति ये निकुञ्जदेवीं ध्यायन्ति रमणानन्दमुपासते । अत्यन्तं सुरतानन्दं प्राप्ता ये संयोक्ष्यमाणा ऋजमण्डलं मध्यस्थानं भजन्ति ते महालीलां प्राप्य संभोगसुखं संप्राप्नुवन्ति । स आह लक्ष्मीम् । श्रुत-परकाष्ठा ये सखीभावं प्राप्तवन्तस्ते गोपास्तां लीलां संप्राप्नुवन्ति । यः सर्वधर्मान्परित्यज्य तन्मण्डलोपासको भवति स एव तां लीलां प्राप्य सर्वव्रतातिरिक्तो ज्ञानातिरिक्तो विधूतविधिनिषेधकृत्याकृत्यगुणा-गुणभावाभावः सदा सङ्कल्प्यमाणो लीलायां प्रतिपद्यमानः संयुज्य-तेऽतितरां रसे । अहो लक्ष्मि षड्विधं रासमाया कथिता । सर्वो लीलां परित्यज्य तत्स्थानं प्राप्तवन्तो भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कीदृग्विधं रासस्थानम् ? निरन्तरं तत्स्थानस्योपासका यदुपासनामात्रात्तां लीलां प्राप्नुवन्ति तद्वर्णय । स होवाच नारायणोऽयम् । एकं सहस्रादित्य-सङ्काशमतिहादमयम् । अहं ब्रह्मा रुद्रो देवा दिक्पाला यस्मात्समुत्पद्यमानाः यस्य प्रतापात्तस्मिन् स्थाने संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशो भक्ताः । यत्र मणय आधिदैविकेन रूपेण तेजांसि ददति । यत्र संसिद्धः सूर्यः सखीरूपं विधायोपसेवते । सूक्ष्मसूक्ष्मरूपं विधाय यत्रात्मना चन्द्रः सेवमानो भवतितराम् । यत्राग्निः सखीरूपं विधायोपसेवमान आस्ते । देवास्तस्मिन् स्थाने सदा संसिद्धा एवोपसेवमाना आसते । पृथिव्यां सूर्यचन्द्रनक्षत्राणि अन्ये ये साधनोपकारकास्ते सर्वे उपसेवमाना एवासते । अन्यास्तु यस्मात्स्थानादिमाः प्रजाः समुत्पद्यमाना भवन्ति तल्लोकं वर्ण-यामि । अनेकशः कोटिब्रह्माण्डकान्यतिशयाविर्भावमापद्यमानानि सन्तितराम् ।

तस्मिन् स्थाने मध्ये मध्ये आवरणज्योतिरास्ते । आवरणस्य मध्ये सहस्रयोजनपरिणाहवति गुणगणनाय श्रीराधाकृष्णस्य गुणगणाः सङ्गीयन्ते । प्रथमपरिणाहे गवां गणाः क्रीडापरा एव भवन्ति गोपगोपीभिः । एतानि क्रीडास्थानानि तृणजलौषधीलताफलपुष्पपत्रकोमलान्यासते । मधुघृतदुग्ध-
दधिनवनीताद्या रसाः संसिद्धा भवन्तितराम् । यत्रात्रानि खाद्यपेयचोप्य लेखविधपक्करसानेकसंवर्लितानि भवन्ति । यत्र वृक्षा अमृतमधुधाराः अतितरामासेदुषां वर्षन्ति । यत्र पुष्करिण्योऽमृतपूर्णा भवन्ति । तत्रामृतं पीत्वा जरामरणगर्भोत्पत्तिविनाशा न भवन्तितराम् । अमृतोदं नाम सरो देवैरुपपीयमानं भवति । तथा निकुञ्जदेव्या स्वदृष्ट्यमृतेन संपूर्यमाणं भवति-
तराम् । तस्मिन् स्थाने गोपगोपीगणाः पुलिननिलीनाः सदा क्रीडापराः भवन्ति । द्वितीयपरिणाहे वाटिकाः क्रीडास्थानानि वृक्षाः एकफलपुष्पनम्राः पत्रैर्नम्रा धारा आसीदन्ति । क्रीडापराणां गोपीनां गणा निकुञ्जदेव्याः श्रीराधायाः स्वावेशेन क्रीडापराः सुरतानन्देन संभोक्ष्यमाणा भवन्ति । यत्र भक्तास्तत्क्रीडापराम्तद्वयानपरास्तद्रूपा आसते । तस्मिन्स्थाने ये भक्ताः सदा रसमार्गिणस्तेषां सङ्ग आस्ते । अहो भक्तिमार्गरससंवर्लितोऽनुभवन् तस्य सङ्गं रसिकानन्दस्वरूपो भवति । धर्मः स एव कर्माणि स एव विद्या स एव भवति । ये धर्मास्ते अधर्माः । ये कर्माणि तान्येवाकर्माणि । तृतीयमावरणं महाक्रीडास्थानम् । तस्मिन् स्थाने एकसप्तत्यधिककोट्यो निकुञ्जाः शोभायमाना आसते । यस्मिन्नावरणमध्ये रमणस्थलानि कोटिशो राजमानानि । यस्मिन् स्थाने मणीनां चल्याः सुगन्धयुताः राजमाना भवन्ति । पद्मरागमणिलताग्रथिता नीलमणिपुष्पसंवर्लिता भवन्ति-
तरां मध्ये मध्ये । विद्रुमकृता हाटककोटयो लताग्रथिता हाटकभूमिषु रमणस्थानं शोभाढ्यं कुर्वन्तितराम् । रमणानन्दोऽयं सदा भक्तानां

सुखकरो भवति । यस्य लोकस्य कथाश्रवणमात्रात् सर्वे वर्णाः सर्वे धर्माः विधर्माणः प्रतिभान्तितराम् । यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः श्रीराधायाः श्रीरसिकानन्दस्य च सदा क्रीडास्थलं भवति । मणिलतानां सञ्चारे हंसीनां यूथान्यत्यन्तसोल्लासानि पीतग्रीवाणि रक्तचञ्चुपुटानि राजमानानि भवन्ति । ते सुस्वरेण संज्ञिता इव सामगानं कलकण्ठैः कुर्वन्तो भवन्ति । तस्मिन् आवरणे लतायां शुक्रयूथान्यत्यन्तहरितानि रक्तचञ्चुपुटानि पीतपुच्छपक्षाणि । यैः प्रतिशाखं गान्धर्ववेदो गीयमानो भवति । यस्मिन्नावरणे श्रीराधिकायाः स्वाङ्गात् संभाविताः सख्यः क्रीडापरा भवन्ति । सोत्साहा सोत्कण्ठा प्रेमप्रेक्षणा हास्यवती कटाक्षगुणवती सुखेहा मलिना शय्योपकरणा पुष्पवती निःशङ्का निर्लज्जा सुरतोत्कण्ठा सुरतानन्दा मालावती सुखश्रमा कलावती कलाकोविदा गुणज्ञा शृङ्गाररसा कामभाविता भावोत्साहा निद्रा-जागरिता सरससुखेत्यादिनानासख्यो रतिशृङ्गारमनुभवन्त्यो भवन्ति । निरन्तरं ताः सख्यः क्रीडापराः कुञ्जान्तरे रसिकानन्दं सेवमाना भवन्ति । लतान्तरे भक्ष्यभोज्यानि ताम्बूलाद्या भोगाः कामकेलिरसान्तरे सुखभोग-रसक्रीडाः कृतवत्यो भवन्ति । एतां लीलां संसिद्धाः सखीना गणाः पक्षिणां गणाः प्राप्तवन्तो भवन्ति । साधनसिद्धास्तस्मिन्नावरणे क्रीडापराः भवन्ति । सा लक्ष्मीरूपाचेदम् । केन साधनेनेदं स्थानं दृष्टिगोचरं भवति । स होवाच । सृष्टौ त्रयो योगा भवन्ति । ज्ञानयोगः कर्मयोगो भक्ति-योगश्चेति । तेषां त्रयाणां योगानां मध्ये प्रेमयोगोऽतिरिक्तो भवतितराम् । येषामेव प्रेमसंपत्तिस्तेषामेव सुरतानन्दसुखं भवति । न धर्मेण नेष्टा-पूर्तेन न वर्णेन नाश्रमेण न तीर्थेन न व्रतेन न देहशोषणयोगेन न वेदोदितेन कर्मणा न धर्माधर्मविचारसाधनेन तत्स्थानं भवति । यो मनसि निरन्तरं तद्व्यापनापन्नो भवति तस्य भवति । यत्र यत्र स्थितं

तत्र तत्र तमेव धर्मं जानीमहे । तमेव सुखं जानीमहे । तद्वानिः
तदन्तरायः । तदेव सुखं यत् तद्वक्तैः सह संभाषणात्तस्यावरणलीला-
वार्तायां कालनिर्यापणम् । गृहोत्सवे येषामुपार्जितवस्तुमात्रं तदर्थं विनिहितं
भवति ते तल्लोकं प्राप्नुवन्ति । अहो लक्ष्मि इयं सृष्टिस्तु रसरूपिणी
भवति । तेषां रसमार्गव्यतिरिक्ता धर्मा बाधका एव भवन्तितराम् ।
मनःसङ्ग्रहमानीय मनसा भावेनेन्द्रियाणि मनसि धृत्वा मनसा भावेन
अहोरात्रं लयमापद्यन्ते । यस्मिन्नावरणे मनो निमग्नतां प्राप्नोति । तथा
निकुञ्जदेव्यानुगृहीतो रात्रौ दिवा कालेऽकाले तन्मार्गीयस्तल्लोकं सेवमानो
भवति । अहो मनसो वृत्तिरतितरां चञ्चलापि ते भक्ताः संसारासक्तिरहिताः
लोकेऽन्वेषणात्मानस्तन्मया अनपेक्षाश्चित्ते संपूर्णाः प्रशान्ताः समदर्शिनो
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा भवन्ति । तेषु नित्यं महाभागाः
अन्यमार्गरहिता हि ये आत्मानं तन्मयं पश्यन्तस्त एवात्मानं सेवन्ते ।
ये तन्मार्गीयाः सन्तः सदोपासकास्तेषां प्रेमलक्षणकाष्ठाप्रतीक्षा भवति ।
अहो चतुर्थावरणं महास्थानम् । यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः स्वयं
विहारस्थलमस्ति । शतसहस्रकुञ्जा निकुञ्जा लतावती सुवर्णवर्णा विद्रुमलता
अमला निर्मला व्यक्तमुक्तालता आजमाना आसां सखीनां सञ्चा-
रोऽत्र स्थान आस्ते । सूक्ष्मलतान्तरे शय्योपकरणानि । अनेकलतान्तरे
रासक्रीडा भवतितराम् । अयं रासः सहजसंवलितो भवति । तस्मिन्नावरणे
अतिक्रीडापराणि रूपाणि कृत्वा रासलीलासुखमनुभवन्ती सा ब्रजेश्वरी
रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडमाना आपद्यते । पञ्चममावरणं तेजोमयम् ।
अमृतमय्य ओषधयो राजमानाः फलपुष्पयुताः पक्वफलरसयुक्ता भवन्ति ।
अन्नरसः सुपच्यमानाः सरसाः कटुतिक्तमाधुर्यमिष्टरससंयुक्ता अनेकशः
स्थानेषु तथा श्रीराधिकया सेव्यमाना रसिकानन्देन संमोक्ष्यमाणाः

विराजमाना भवेन्ति । आत्माविर्भावेन नानासुखं भवति । भोगस्थानं भवतितराम् । स्थाने स्थाने तस्मिन्नावरणे रतिसुखं भवतितराम् । षष्ठमावरणं तेजोमयम् । यस्मिन् हाटकमयानि मन्दिराणि विराजमानानि भवन्ति । शतं मन्दिराणि तेजोमयानि यत्र राजन्ते । सुवर्णजटितमणिभिराक्रान्ताश्चामीकरखचिता मञ्जूषाः शोभायमाना भवन्ति । यत्र राजमानानि हाटकमणिजटितानि भूषणानि यथायोग्यानि वस्त्राणि भवन्तितराम् । यत्रावरणे संभोगस्थाने सखीनां समूहाः शृङ्गारवत्यादयो राजमानाः भवन्ति । आत्मानं शतधा कृत्वा अनेकभोगरसरतिसुखं संभोक्ष्यमाणाः भवन्ति । सप्तमावरणं क्रीडास्थानं सहस्रयोजनायतम् । परितः परितो मणिस्तम्भा अतिरसाढ्याः सुगन्धाढ्या भवन्ति । अतिरसगुणाढ्या भूः हाटकसुगन्धकोमला आविष्टसुखाढ्या भवतितरां संभोक्ष्यमाणैव । यत्र वल्लीनां सञ्चाराः परापरसञ्चारा एवासते । हाटकजटितमणिज्योत्स्नाभिः सर्वं प्रतिविम्बितं वस्तुमात्रम् । तत्र कलावती गानवती सुगन्धा नृत्यपरा विशदा भोगपरा भोगवती भोगाभिज्ञा रतिकलाभिज्ञा कामसुखा कामातुरा निःशङ्का सदानन्दा सुरतसुखा सुरतानन्दा सुरतमग्ना आसनभेदाभिज्ञा अतिरसदानाभिज्ञा रसदा रसदातृभोगाभिज्ञा एताः सख्यः संसिद्धा अन्याः साधनसिद्धा अनेककलाकोविदा भवन्ति । तत्र मण्डलावरणे महास्थानं सशय्योपकरणम् । कलावती शय्योकरणानि करोति । सुरतोत्साहा सुरतोत्कण्ठां ददाति । निर्लज्जा निःशङ्कं सुखं ददाति । सुरतोद्गमा आलिङ्गनचुम्बननमितप्रेमभररससुखं ददाति । रतिवती रतिसुखं ददाति । रतिकल्लोला रतिभररसालस्यमुकुलितनयना' केलिसुखं ददाति । निभृतनिकुञ्जगृहं गतया तया देव्या सह रसिकानन्दः सुखमनुभवन्नास्ते । तस्मिन्नि कुञ्जे सुरचिता सखी प्रतिकुञ्जं शय्यासुखं करोति ।

एका कलहंसी निरन्तरं तस्मिन्नावरणे. सखीनां मण्डले मध्यस्था सदा
 क्रीडापरा कलशब्देन तां श्रीराधां रसिकानन्दं च क्रीडमानाऽभ्येति ।
 तस्मिन्समये सुस्वरकण्ठेन सूक्ष्मस्वरं यथा भवति तथा तं गायमाना
 भवति । मानलीलायां रसिकानन्दवचनात्तां ब्रजेश्वरीं प्रसादयति निरन्तर-
 मतिमनोत्साहं च ददाति । सा ब्रजेश्वरी कलहंसी प्रत्यापद्यमानैव
 भवतितराम् । सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातितरां बल्लभतया सुखमनु-
 भवन्ती संरोचते । सा सदा जागरिता सा सदा गुणज्ञा सा सदा
 रससुरतभोगज्ञा भवतितराम् । सा कलहंसी सर्वासां सखीनां मनांसि
 प्रतिहरति स्वक्रीडया । सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातिवल्लभा भवतितराम् ।
 सा कलहंसी साधनसिद्धैवेति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो ! कलहंसी
 पूर्वं केन साधनेनेदं स्थानं प्राप्तवती । महास्थानं प्राप्तवती । अत्याश्चर्यम् !
 निरन्तरं केन साधनेन श्रीराधायाः क्रीडासखी भवतितराम् । स होवाच
 नारायणोऽयम् । सा कलहंसी सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्री सरस्वती । सर्वविधाः
 प्रभवा यस्याः सकाशादुत्पद्यन्ते । चत्वारो वेदा उपवेदाः पुराणानि धर्म-
 शास्त्राणि पृथिव्यां यानि वर्तिष्यमाणानि तानि तस्या उत्पद्यमानानि भवन्ति ।
 सा ब्रह्मणः पुत्री आप्तयौवनैवास्त । सा एकस्मिन् समये मम लोकं प्राप्ता
 ममोपासनां चक्रे । स्वसुखार्थं मम ध्यानापन्नाऽभवत् । बहुकालं मामुपसेव-
 मानाऽभवत् । तस्या भजनेन प्रसन्नोऽहं मम लीलास्थानं वैकुण्ठं दर्शितवान् ।
 तस्मिन् त्वया मया क्रीडितानि स्थानानि संराजन्ते । यत्र वैकुण्ठे अनेकशो
 भक्ता जयन्तकुमुदजयविजयगरुडाद्याः शतशः पार्षदा राजमाना भवन्ति ।
 यत्र चतुर्धा मुक्तयः सेव्यमाना आसते । यत्र वनानि कोटिशोऽतितरां
 सन्ति । सा वादेव्यतितरामुत्कण्ठमना अत्यन्तं सुखसमाविष्टमना
 मम कृपादृष्ट्या सुखं प्राप्ता महालीलां प्रार्थयामास । तदा मयोक्ता सा

वाग्देवी — त्वं ब्रजवासे ब्रज । पृथिव्यामच्छोदं नाम सरः कामवने सुगन्ध-
 शिलायामस्ति । तत्राच्छोदे मज्जयित्वा सुगन्धशिलायां ब्रजेश्वरीं ध्यायमाना
 रसिकानन्देन सह आपन्नसह— इति । तत्र तत्स्थाने सर्वात्मभावेन प्रीतिरूपद्य-
 माना भवति । प्रेमानन्दमनुभवन्तो भक्तास्तल्लीलेपयोग्या भवन्ति । सा
 निरन्तरं वृन्दावनं कामवनं श्रीगोवर्धनमुपसेवमानासेदुषी । अच्छोदेऽप्सरः-
 पुष्करिण्यां निरन्तरं मज्जमानाऽभवत् । शतं समा ब्रजलीलां सेवमानाऽभवत् ।
 एकस्यां कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तस्मिन् तद्वासिनो रासलीलां कुर्वन्ति ।
 बहवो भागवतानां समाजे कलहंसीरूपं विधाय तां लीलामदर्शयन् । निशि
 दिने सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह दर्शनदृष्टिगोचरे भवतितराम् ।
 अत्यानन्दरूपे सखीनां समूहमध्यस्थे महाक्रीडापरेऽतिमहामोहनरूपं दृष्ट्वा
 इन्द्रियशुद्धिप्रेम्णा भावापन्नाऽभवत् । प्रसेदुष्यतिसुकोमललावण्या सा वरं
 वरयेत्याह । सोवाचेदम् । यदि देयो वरस्तर्हि महालीलायां सदाहं सहचारिणी
 भवामि । किमन्येन वरेण । अयं तावन्मनोमिलाषो यल्लीला दृश्यते ।
 तथेत्युक्ता सा ताभ्यां स्वस्थानं ययौ । या सा तद्दिनमारभ्य क्रीडापरा
 भवतितराम् । कुञ्जे निकुञ्जे तेनैव कलहंसीरूपेण प्रतिशाखं लीयमाना
 सामगानेन मनोभावेन स्तौति नानाकौतुकक्रीडामकरोत् । सा महार-
 मणस्थानं प्राप्ता । महालीलायां मग्ना रतिसुखमनुभवन्त्यास्त । सा
 कलहंसी स्वयूथं विधाय कदाचित्समये रात्रिपरभागे सुरतोत्थितां लीला-
 मगायत् । कदाचिन्मज्जनलीलामागायमाना भवति । शृङ्गारलीलायां शृङ्गारं
 प्रति प्रतिक्षणं नूतनस्वाविर्भावरोद्धवा भवतितराम् । लीलामागायमाना
 संभोक्ष्यमाणा भवति । भोगावस्थायां सक्चन्दनताम्बूलागुरुरसमृग-
 मदकर्पूरकेसरसंवलितान्यास्तरणानि प्रतिक्षणं नूतनानि । अनेकशय्यायाः
 सुगन्धशृङ्गारादुपरिप्रफुल्लितलताग्रथितपरस्परशुभाङ्गशोभनचन्दनवृक्षालम्बिताः

सुवर्णगन्धेन युता लतान्तराः सन्तितराश्च । तत्र शृङ्गारे रतिशृङ्गाररसस्थानं
 सङ्गायमाना भवतितराम् । भूषणस्थानं सुगन्धं सुवर्णम् । सुवर्णजटिता मणयः
 सुष्ठु गन्धेन पूर्यमाणा भवन्तितराम् । वस्त्राप्यतिसुगन्धेनातिपद्यमानानि
 परिधापयति । एवं कलहंसी वाग्भिः स्तुतिं चकार । अत्यर्थं सा निकुञ्जदेव्या
 गानवल्लभा भवति । महाशृङ्गाररसोऽयम् । विधিনিषेधमार्गाननुसारिणी
 शृङ्गाररसादनन्तरमात्मभावे भवति । रसमग्ना भवति संभाष्यमाणा मनोभव-
 भावे भवति । आत्मभावेनेयं प्रत्यनुकरणं क्रियमाणमातनोति । वनलीलां
 मनस्यातनोति । अतिरतिं संयोक्ष्यमाणा कलहंसी रात्रौ दिवा लतान्तेरेषु फल-
 मिष्टं मधु राधाया दत्त्वान्यदासेवते । तत्रैका पुष्करिणी मिष्टामृतरसपूरिता
 भवति चतुर्योजनायता । तत्र पद्मषण्डानि सुवर्णसुगन्धसुकोमलानि
 मनोहराणि भवन्ति । तस्मिन् पद्मवने विहारक्रीडापरा कलहंसी सुरोचमाना
 भवति । अहो लक्ष्मि तस्मिन् केन भाग्योदयेन तस्या निकुञ्जदेव्या अनुग्रहेण
 अनन्याश्रयधर्मोत्पत्तिर्यदा भवतितरां तदा रतिराविर्भवति । तावद्देहोपाधिकर्म-
 क्षुत्तृट्पिपासामोहभयदुःखं तथा सुखानि तथा न भवन्ति यथा देवादीनाम् ।
 व्रतोपवासधर्माधर्माः पितृकार्याकार्याणि यत्किञ्चिद्धर्माः शोभमाना धर्माः
 अन्यान्युपवासमयानि पापपुण्यानि ज्ञात्वा यः सर्वधर्मातिरिक्तो भवेत् स
 एव तन्मण्डलं प्राप्नोतीत्याह । अहो रम्यं पुण्यमाचरेत् । अतितरां भावो
 भवेत् । संमोगलीलायां सुरतानन्दोऽयं लोकः सोऽवशिष्यते । सुरतानन्द-
 सुखमनुभवन्तो भक्ता आत्मानं तन्मयतां नयन्ति । धर्माधर्मौ त्यक्त्वा समाः
 सहजभावा भवन्ति । अतिरसमग्ना विद्यातपोध्यानमैत्रीकलागुणसंयुक्ताश्च
 भवन्ति । अन्यप्रतिपत्तिसहितो नास्तिको न लभते तल्लोकप्राप्तिम् । अहो लक्ष्मि
 कदाचिन्महाभाग्योदयेन अस्मिन्नावरणे प्रीतिरास्ते । यत्र वृक्षाः फलैर्नग्नाः
 पुष्पमिष्टामृतमयरसमग्ना भवन्ति । यत्र शाखाः पुष्पनग्ना भवन्ति । पञ्चमे

आवरणे संसिद्धानि शुक्लपिकयूथानि संराजमानान्यासते । केचिदाग्रवृक्षाः पक्वफलाः सदा संभोक्ष्यमाणा आसते । अतिरसमग्नः साधनसिद्ध एकः शुकोऽत्यन्तवल्गुभोऽस्ति । यस्य पक्षचञ्चुकाः सा ब्रजेश्वरी स्वहस्तेन मार्जयति । रसिकानन्दोऽपि स्वहस्तेन भक्षं ददाति । तस्य सहचारिण्येका शारिका आस्ते । सा साधनसिद्धा भवतितराम् । तच्छुक्लशारिकामिथुनं रसिकानन्दक्रीडायां सहचार्येव भवतितराम् । तत्र रसिका सा शारिका निरन्तरक्रीडापरा भवति । सुवर्णवर्णासु भूमिषु रत्नपरिधिषु सशय्योपकरणं विहारस्थलम् । तत्र वृक्षसञ्चाराः सुशोभाढ्या भवन्तितराम् । तत्र शुक्लशारिकाः साधनसिद्धाः क्रीडापरा भवन्ति । अत्यासक्ता महाक्रीडायां संभवन्ति । अहो रसमार्गोऽयं दुर्लभतरोऽप्यासीत् । अहो महाभाग्यवशात्तस्याः निकुञ्जदेव्या अनुग्रहादत्यन्तप्रियतमो भवति । प्रीतिः प्रीत्या भवति भक्तिर्मत्तया भवति स्नेहः स्नेहेन भवति तस्माद्भाग्योदयादतितरामासेदुषः । अहो भाग्यवन्तः कृतकृत्यवन्तः सर्वे तीर्थवन्तो भवन्ति । अतिरसमग्नः अतिभुञ्जाना अत्यन्तसुखमनुभवन्ति । य इमां लीलां संभुञ्जमानाः भवन्ति य इमां लीलामुपासमाना एव भवन्ति ते भक्ता भवन्ति । यदा महाभाग्योदयो भवतितरां तदास्यां लीलायां प्रत्ययो भवेत् । ते धर्मकारिणः, ते व्रतकारिणः । येषां लीलायामुपासनारुचिरास्ते ते व्रतकारिणो भवन्ति । यस्य महालीलायां मनोऽभ्येति । यो विधौ च प्रतिषेधे च निर्विघ्न अस्यां लीलायां मनोभावापन्नो भवेत् स एव लीलोपयोग्यो भवेत् । ये प्रत्ययकारिणः तेषामनुग्रहः । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यलीलायां मनो भावापन्नं भवति । अत्यन्तरत्याविष्टचित्ता भावापन्ना भवामि । कः शुक्लः ? का शारिका भावापन्ना ? यस्यां रसिकानन्दोऽत्यन्तस्नेहाविष्टमना भवति सा ब्रजेश्वरी अत्यन्तं स्नेहं चकार । अतिदुर्लभतरं स्थानं प्राप्तम् । अविच्छिन्ना रतिगति-

सामरहस्योपनिषत्

२८९

योग्यता संयोक्ष्यमाणा भवतितराम् । स होवाच नारायणोऽयम् । शृणु लक्ष्मि
 आदौ सृष्टेः सुमन्तो नाम ब्राह्मणः कौशिकगोत्रात्समुद्भूतो भवति । स कान्य-
 कुब्जदेशे समुद्भूत आसीत् । अतितरां भावापन्नोऽभवत् । तस्य मनोरमा
 भवत्यतिशयभक्तिमार्गरता । तौ दम्पती । अतिसुभगावतितरस्नेहसंपन्नौ
 निरन्तरसेवायां संयोक्ष्यमाणरती आसाताम् । तौ दम्पती अतिस्नेहेनाविष्ट-
 चित्तौ काले काले तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह उपसेवमानावासाताम् ।
 तावतिवनलीलायामत्यासक्तौ भवतः । कस्मिन् कियद्वाग्योदयेन भक्तानां
 सङ्गेन वनं वृन्दावनं प्राप्तौ ? तत्र वृन्दावने कामवने कदम्बषण्डे
 वृषभानुपुरे नन्दग्रामे पावनसरसि प्रतिपद्यमानावभवताम् । एवंविधे रहसि
 क्रीडाविहारे कियत्कालं वासमालम्ब्य तिष्ठन्तावभवताम् ? दम्पती सामिलाषौ
 वने अत्यासक्तावभवताम् । मनोरथेन सह ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह
 दृष्टिपथमापेदे । महालीलायां क्रीडापरौ संभाषमाणौ संयुज्जाताम् ।
 तद्दिनमारभ्य तौ दम्पती महालीलायां क्रीडापरावभवताम् । सा लक्ष्मीरुवा-
 चेदं रहस्यम् । ब्रजवासिनीसृष्टिः कीदृग्विधा ? ये संसिद्धास्ते कीदृग्विधाः ?
 अन्ये के जीवाः सृष्ट्यादौ प्रकटिताः ? जीवस्य कीदृग्विधं रूपम् ?
 बन्धमोक्षौ कीदृग्विधौ भवतः ? पुनः स होवाच नारायणोऽयम् । अहो !
 प्रपञ्चोऽयमनादिसंसिद्धो भवति । यथा ब्रह्म त्रिविधात्मकम् । सच्चिदानन्दा-
 त्मकम् । सत्तु व्यापकतयास्ति । तेजोमयं चिदस्ति । आनन्दमयस्तु
 पुरुषोत्तमोऽतिरिच्यते । यथा ब्रह्मानन्दोऽयं लोकः सच्चिदानन्दो भवति तथा
 जीवसङ्ख्यस्त्रिविधो भवति । सोवाचेदम् । किमयं जीवसङ्ख्यो भवेत् ?
 तेषां का दृष्टिः ? कावस्था भवति ? स होवाचेदम् । शृणु । अनादि-
 संसिद्धोऽयं जीवश्चिदंशो भवति । सोवाचेदम् । यदि चिदंशो जीवः
 कथमज्ञानेन जडतां प्रपद्यते । स होवाच । यथा अनादिसंसिद्धोऽयं

२९०

वैष्णव-उपनिषदः

जीवसङ्घस्तथा मायाप्यनादिसिद्धा भवति । सा त्रिविधा व्याप्य तिष्ठति । स एवं जीवस्त्रिविधो भवति । सोवाचेदम् । जीवसङ्घस्त्रिविधस्तिष्ठति । वर्णय । स होवाच । सद्रूपः संसारात्मको भवति । नानाकर्माणि करोति । वर्णाश्चाश्रमाश्च धर्माश्च साधनानि संयुज्यन्ते । तेषामुत्पत्तिः स्थितिः । चिद्रूपो जीवो ज्ञानी भवति । स निष्कर्ममार्गीयो भवति । ये जीवाः आनन्दरूपास्तेषां सर्वधर्मत्यागात् रसानन्दस्वरूपा महालीलोपसेव्यमानाः आसते । तान् धर्माधर्मौ न बाधेते तस्यां महालीलायाम् । सोवाचेदम् । कया मायया संयुज्यमानो जीवः कर्ममार्गरतो भवति ? स होवाच । मायारूपं त्रिविधम् । यद्रूपं सद्रूपं तन्मायासंवलितोऽयं जीवसङ्घः कर्मकाण्डरतो भवति । चिद्रूपया मायया संवलितो जीवसङ्घः संन्यासी भवति । आनन्दसंवलितया माययानन्दात्मक एव भवति । आनन्दरसस्तु महालीलायाः कारणं भवतितराम् । तेषां कर्माणि याथातथ्येन वदामि । तेषां ये कर्ममार्गीयाः कर्मप्रतिपादका महावनलीलायामप्रत्ययकारिणोऽसुराः कर्मजडा अन्योपासकास्तदुपाधितयान्यमार्गं न विन्दन्ते । अग्निरूपासकास्ते यज्ञकर्मवासनात्मकलिङ्गशरीरिभूतपत्तिं भजन्ते । तेन वासनात्मकेन लिङ्गेनोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यन्ते । तस्माल्लिङ्गशरीरात्मकोऽयं जीवस्य स्वभावः । यदा सर्वा वासना विधूय महालीलायां प्रविष्टचित्तो जायते अहो लक्ष्मि लीलां ज्ञात्वा ज्ञात्वा ध्यायमानो देहजनितकामक्रोधलोभमोहभयसुखदुःखलज्जालज्जाज्ञानमोहमत्सरादीनागममन्ततन्त्रौषधिरसज्योतिषवाग्विलासप्रपन्नान् नानासंसारजनिताननेकशः सात्त्विकराजसतामसान् संराजमानधर्माधर्मानतितरामभिमानगुणान्निरस्यन् महालीलां प्रविष्टो भवेत् । आत्मानं तन्मयमातनोति । अन्यत्र कापि विषयान्तरे प्रविष्टचित्तस्तदा तं लिङ्गं प्राप्नोति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । त्वयोक्तं जीवस्य मायाधीनत्वं जीवो येन वासनालिङ्ग-

शरीरं उत्पद्यमानो भवति । किं बलं येन प्रयत्नवान् भवति ? स होवाच । तस्मान्महामाग्योदयेन यदृच्छया गुरुसहायेन सङ्गेन साधूनामन्यधर्मरहितानां विधूतपापं मनस्तन्मयतया तेन मार्गेण लिङ्गशरीरं विधूय महालीलायां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपसेवमानं आसीदति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । जीवस्य रूपं कीदृग्विधम् ? केन रूपेणोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यते ? स होवाच । अनिर्वचनीयोऽयं जीवः । नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहत्यग्निर्मारुतो नैनं शोषयत्यापो नैनं क्लेदयन्ति । यां यां वासनां प्राप्नोति तं तं लिङ्गशरीरं प्राप्नुवन्नास्ते । अत्यन्तं वासनाबद्धो जीवः । वासनामुक्तो महालीलायामासक्तः संसारे ननिर्विण्णो नातिसक्तो भवति । संसिद्धोऽयं जीवसङ्घो मायोपाधिभेदेन नानाशरीरभावमाप्नोति । असंसिद्धस्तु रक्तशरीरसंयुक्तो भवति । सोवाचेदम् । शरीरं कीदृग्विधम् ? तस्मिन् शरीरं के गुणा के अवगुणाः ? केन बन्धः शरीरः ? केनैव मुक्तिः तस्मिन् शरीरः ? को निरुपाधिः ? तस्मिन् किं ज्ञानं भवति ? कीदृशेन शरीरेण बन्धः ? कीदृशेन मोक्षो भवति ? स होवाच । शरीरमेवाः द्विविधाः । शरीरमेव कर्मोपजनितं यदृच्छया चोत्पन्नं तस्या निकृञ्जदेव्याः अनुग्रहाद्भवति । कर्मजडानां कर्मसंभूतवासनाजडात्मकं भवति । येषामनुग्रहात्संभवो भवति तेषां स्नेहमार्गे रुचिरास्ते । येषां निर्वाणमार्गे रुचिर्भवति ते संन्यासिनो भवन्ति । शरीरं तु एकादशेन्द्रियात्मकम् । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनो जायते । पञ्च महाभूतानि पञ्च तन्मात्राणि । त्रयो गुणाः । पञ्चविंशत्तमो जीवः । षड्विंशको महाविष्णुः सदा द्रष्टा भवति । इमे जीवाः शरीरोपाधिं मुञ्चानाः सुखं दुःखं प्राप्नुवन्तो भवन्ति । सर्वेषां शरीराणां समानगुणा भवन्ति । रागादयः कामक्रोधलोभमोहजरामरणसुखदुःखान्यनुभवन्त आपद्यन्ते । इदं शरीरं जरया अस्तं गन्धर्वनगरोपमं मनोरथमयं

भवति । ते सर्वे गुणा लिङ्गशरीरोदयादपेता लिङ्गं विधूयात्मानं तन्मयतां नयन्ति । ते रागादयो दोषाः शरीरसंवल्लिताः । ते कामक्रोधादयस्तदर्थं प्रयुज्यमानाः साधनरूपा भवन्ति । सोवाचेदम् । कथं रागादयः साधनरूपा भवन्ति ? येषां संसर्गात् विकल्पां प्रपेदिरे । भगवदर्थं प्रयुज्यमानाः रागादयः कथं निष्कर्मतां प्राप्नुवन्ति ? एष काम एष क्रोध एष लोभ एष मोह इत्यात्मलीलार्थं जीवं प्रयोजयति । स होवाच । माया त्रिविधा भवति । सद्रूपया माययोत्पादिताः कामक्रोधादयो गुणाः संसारोत्पत्तिप्रयोजकाः भवन्ति । चिद्रूपे आश्रिता जीवास्ते तान् गुणान् प्रपद्य जडतां प्रपेदिरे । आनन्दरूपे आश्रिता जीवास्तन्मयतां प्रपेदिरे । संसारितोऽयमानन्दमयो रस आत्मानमानन्दमयतया प्रपद्यते । रागादयः कामक्रोधादयो गुणाः साधनरूपा भवन्ति । अहो ! रसमार्गं प्रपद्यमानोऽयं जीवसङ्घ आत्मानं तन्मयतया ध्यात्वा वासनात्मकं लिङ्गं विधूयात्मभावमभ्यस्य तन्मयतां प्राप्नोति । यां यां वासनामात्मा विलापयमानो भवति तत्तद्भावेन तत्तद्विषयं विलीयमानं भवति । अत्यन्तासक्तस्तस्मिन् मार्गे लिङ्गं विधूयापपाप्मा भावापन्नो भवेत् । यो मार्गस्ते कथितोऽयं मार्गो देवादिना न ज्ञातः । रुद्रादिना न ज्ञातः । तन्मण्डलमुपासमानस्तन्मयतां प्रपद्यते । इदं रहस्यं कथितम् । न वचनीयं कस्यचित्त्वया । स्वेष्टं हृदि ध्यात्वा तद्भावेन प्रलीयते । अहो लक्ष्मि इमं मार्गं समाश्रितां भक्ताः शरीरोपाधिधर्मान् मुक्त्वा तद्गुणतां प्राप्नुवन्तीति सामगा निरन्तरं रहसि सङ्गायन्तो भवन्ति ॥

यदक्षरपदग्रहं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां राधे प्रसीद हरिवल्लभे ॥

इति सामरहस्योपनिषत् समाप्ता

[अस्याः “रसिकानन्दोपनिषत्” इत्येव नाम सुवचम्]

सुदर्शनोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्ब्रह्मविदां मनीषी हिरण्य-
मादाय सुदर्शनं कृत्वा वह्निसंयुक्तं स्त्रीशूद्रैर्बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्भर्षेण
जायते । ब्राह्मणस्य शरीरं जायते ।^१ श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति ।

नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥

मृत्तिके देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

तस्मादद्विरेखं भवति । तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा
चक्रं पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य
संमुखं प्रपद्येत । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्य-
सायुज्यं गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत्^१ ।

यजुर्वेदे तृतीयकाण्डे तृतीयप्रश्ने—“कक्षमुपौषेद्यदि दहति पुण्यसमं
भवति यदि न दहति पापसममेतेन” । उष दाहे । उपकक्षं भुजः । “चरणं
पवित्रं विततं पुराणम् । येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन
पूताः । अतिपाप्मानमरार्तिं तरेम । लोकस्य द्वारमर्चिमत्यविव्रम् । ज्योति-
ष्मद्भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके
सुधितां दधातु” । “पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते । प्रमुर्गात्राणि पर्येषि
विश्वतः । अतस्ततनूर्न तदामो अश्नुते । श्रुतास इद्ब्रह्मन्तस्तत्समाशत ।”

^१ “यज्ञोपवीतोपनिषत्” इत्याख्यया या पूर्वं प्रकाशिता सैवेयमेतदवधीति
विभाव्यताम् ।

यो ह वै सुश्लोकमौले धर्माननुतिष्ठमानोऽग्निना चक्रं योऽग्निर्वै सहस्रारस्सह-
स्रारो नेमिर्नेमिना तप्ततनूस्सायुज्यं सलोकतामाप्नोतीति ।

चक्रं बिभर्ति वपुषामितप्तं बलं देवानाममृतस्य विष्णोः ।
स एति नाकं दुरिता विधूय विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥
चर्मूषच्छयेनश्शकुनो बिभृत्वा गोविन्दद्रप्स आयुधानि बिभ्रत् [?] ।
अपामूर्मिं सचमानस्समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति [?] ॥
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः ।
तदीयाराधनं चैव भक्तिर्बहुविधा स्मृता ॥
पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च ।
अङ्गयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ॥
पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः ।
तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शङ्खं बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
अर्चनीयश्च सेव्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु ॥
ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः
श्रीवैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥
पञ्चार्द्रतत्त्वविदुषां पञ्चसंस्कारसंस्कृतम् ।
पञ्चावस्थास्वरूपं ते विज्ञेयं सततं विमो ॥

पञ्चसंस्कारयुक्तानां वैष्णवानां विशेषतः ।

गृहार्चनविधाने न शङ्खं घण्टारवं त्यजेत् ॥ इति ॥

एतदथर्वशिरो योऽधीते य ऊर्ध्वपुण्ड्रं विधिवद्विदित्वा धारयति स वैदिको भवति । स कर्माहो भवति । अनेन तेजस्वी यशस्वी ब्रह्मवर्चस्वी भवति । अनेन क्वायिकवाचिकमात्मसपातकेभ्यः पूतो भवति । श्रीविष्णु-सायुज्यमवाप्नोति । श्रीविष्णुसायुज्यमवाप्नोति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति सुदर्शनोपनिषत् समाप्ता

४. शैव-उपनिषदः

नीलरुद्रोपनिषत्

नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता

प्रथमः खण्डः

अपश्यं त्वावरोहन्तं दिवितः पृथिवीमवः ।
अपश्यं रुद्रमस्यन्तं नीलग्रीवं शिखण्डिनम् ॥
दिव उग्रोऽवारुक्षत् प्रत्यस्थाद्भूम्यामंघ्रि ।
जनासः पश्यतेमं नीलग्रीवं विलोहितम् ॥
एष एत्यवीरहा रुद्रो जलासमेषजीः ।
वित्तेऽक्षेममनीनशद्वातीकारोऽप्येतु ते ॥
नमस्ते भवभामाय नमस्ते भवमन्यवे ।
नमस्ते अस्तु बाहुभ्यामुतो त इषवे नमः ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्षं सुमना असत् ॥

या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
 शिवा शरव्या या तव तथा नो मृड जीवसे ॥
 या ते रुद्र शिवा तनूरधोराऽपापकाशिनी ।
 तथा नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्तामिचाकशत् ॥
 असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुर्विलोहितः ।
 ये चेमे रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥१॥

नीलरुद्रोपनिषदि षोडश्यां खण्डकत्रयम् ।
 श्रुतिरूपेण तं देवं स्तौत्यपश्यमिति क्रमात् ॥

अस्पर्शयोगमुक्त्वा तत्संप्रदायप्रवर्तकं परमगुरुं योगसिद्धिप्रदं नीलरुद्रं
 स्तौति—अपश्यमिति ॥ दिवितो दिवः पृथिवी भूमिमवः अवस्तात्
 अवरोहन्तं त्वामहमपश्यमिति मन्त्रद्रष्टुर्वचः । अस्यन्तं क्षिपन्तं दुष्टान्
 “असु क्षेपणे” इति धातोः । शिखण्डिनं, “शिखण्डो बर्हचूडयोः” इति
 विश्वः । तयोरन्यतरदस्यास्तीति शिखण्डी तम् । दिवः सकाशादुग्रो रुद्रः
 अवारुक्षत् अवतीर्णवान् । प्रत्यस्थात् प्रतिष्ठां स्थितिं कृतवान् । भूम्यामधि,
 “अधिरीश्वरे” इत्यधिः कर्मप्रवचनीयः “यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं
 तत्र सप्तमी” इति स्वात्सप्तमी । भूमेरीश्वर इत्यर्थः । जनासः “आज्जसेर-
 सुक्”, “संबोधने च” इति प्रथमा । एत्यागच्छति । न वीरहा अवी-
 रहा सौम्यः । यद्वा अवीराणि पापानि हन्तीत्यवीरहा । जले आसः क्षेपो
 यासां ता जलासाः ताश्च ता मेषज्यश्च ता एतीत्यन्वयः । जलक्षिसाना-
 मोषधीनामक्षेमनिर्णोदकत्वं रुद्रसन्निधानादेव ते तवाक्षेमं व्यनीनशत् । अनेन
 क्षेमकारित्वमुक्तम् । अलङ्घ्यलामो योगस्तत्कारित्वगम्याह—वातीकार इति ॥
 वातिः प्राप्तिः अप्राप्तं प्राप्तं करोतीति वातीकारः सोऽपि ते तवापूर्वलाभकरः

एतु आगच्छतु । योगक्षेमकरोऽभिषेकजले संनिहितो भवत्वित्यर्थः । मन्त्र-
 लिङ्गादभिषेके विनियोगः । मामः क्रोधः । मन्युः तत्पूर्वावस्था । उतो उत ।
 इषवे वाणरूपाय । अस्तवे “असु क्षेपणे” इति धातोः तवेन्प्रत्ययस्तुमर्थे,
 अस्तुं क्षेप्तुमित्यर्थः । कं क्षेप्तुं गिरिशन्तं श्यतीति श्यन्, गिरेः श्यन्
 संबन्धसामान्ये षष्ठ्या समासः, तं गिरिशन्तं, छान्दसो यलोपः । हे गिरित्र
 गिरिरक्षक । तां शिवां कल्याणीं कुरु । अच्छा वदामसि । अच्छा
 निर्मलम् । वदामसि वदाम । अच्छशब्दस्य “निपातस्य” इति दीर्घः ।
 “इदन्तो मसि,” इदनर्थको निपातः । अयक्ष्मं नीरोगम् । सुमनाः
 सुमनस्कमसत् भवेत् । लिङ्गर्थे लेट् तिप् इतश्च लोपः । परस्मैपदेषु लेट्
 प्रभवत्यट् । शरव्या शरसंधात्री ज्या । “शरो दध्यग्रवाणयोः” इति
 विश्वः । शरमर्हति यत् । अव शरस्य चेत्यवादेशः । शरवृत्ताद्वा सिद्धं
 “शरुरायुधकोपयोः” । “उगवादिभ्यो यत्” । जीवसे जीवितुं, मृड
 मोदय । यद्वा हे मृड । तथा तन्वा नः अस्मान् जीवसे जीवयसि । शन्तमया
 अतिशयेन शं शंतमा तथा अभिचाकशत्, कशेर्यङ् उदात्ताल्लेट् तिप् अट् ।
 अतिशयेन प्रकाशयत्विति प्रार्थना । बभ्रुः पिङ्गलः अव एषां ह ईडे
 स्तुतये ईमहे कामयामहे ॥ १ ॥

इति प्रथमः खण्डः

द्वितीयः खण्डः

अपश्यं त्वावरोहन्तं नीलग्रीवं विलोहितम् ।

उत त्वा गोपा अदृशन्नुत त्वोदहार्यः ॥

उत त्वा विश्वा भूतानि तस्मै दृष्टाय ते नमः ।
 नमो अस्तु नीलशिखण्डाय सहस्राक्षाय वाजिने ॥
 अथो ये अस्य सत्त्वानस्तेभ्योऽहमकरं नमः ।
 नमांसि त आयुधायानातताय धृष्णवे ॥
 उभाभ्यामकरं नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ।
 प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरान्नियोज्याम् ॥
 या श्व ते हस्त इषवः परा ता भगवो व्रप ।
 अवतत्य धनुस्त्वसहस्राक्ष शतेषुवे ॥
 निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः शंभुरामर ।
 विज्यं धनुः शिखण्डिनो विशल्यो वाणवाऽउत ॥
 अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गथिः ।
 परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ॥
 अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्निधेहि तम् ।
 या ते हेतिर्मीदुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ॥
 तथा त्वं विश्वतो अस्मानयक्ष्मया परिब्भुज ।
 नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥
 ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।
 ये वाभिरोचने दिवि ये च सूर्यस्य रश्मिषु ॥
 येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।
 या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीनाम् ।
 ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥

गोपा गोपाला अदृशन् अपश्यन् । उदहार्यः पानीयहारिण्यः ।
 विश्वा विश्वानि भूतानि अदृशन् । योगिनामप्यदृश्यं त्वां कृपया आविर्भ-

वन्तमादित्यवत्प्रकाशमानं पामरा अपि ददृशुरित्यर्थः । वाजिनेऽन्नवते बाण-
रूपाय वा । सीदन्तीति सत्वानो गणाः । नमांसि नमस्काराः । न आत-
ताय अनातताय । धृष्णवे प्रगल्भाय । बाहुभ्यां कृत्वा धन्वने नमोऽकरव-
मित्यर्थः । उमयोररिप्रत्यरिभूतयो राज्ञोर्धन्वनो ज्यां प्रमुञ्च अनाततं कुरु ।
राज्ञोर्विग्रहे लोकानां क्लेशो भवति । ततस्तं शमयेति भावः । हे भगवः ।
यास्ते हस्त इषवो बाणास्ताः परावप पराङ्मुखान् मुञ्च । त्वमपि कोपं
लोकेषु मा कृथा इति भावः । इन्द्ररूपेण जगद्रक्षेति प्रार्थयते—अव-
तत्येति । स्वधिज्यं कृत्वा । सहस्राक्ष शक्ररूप । शतमिषुधयस्तूणा यज्ञरूपाः
यस्य तत्संबोधने । निशीर्य तीक्ष्णीकृत्य । मुखां मुखानि । नोऽस्मान् ।
शिवः कल्याणरूपः । शम्भुः सुखहेतुः सन्नाभर धारय पोषय वा ।
बाणवान् तूणीरः विशल्योऽस्तु मल्लरहितो भवतु । वैरिषु हतेषु तत्प्रयोजना-
भावात् । अनेशन अदृश्या अभूवन् । “नशिगम्योरलघित्वम्” इति वार्ति-
केन छडि घडि एत्वम् । निषङ्गथिः निषङ्गे । विश्वतः सर्वतः । अस्मान्
परिवृणक्तु परिवृणातु । अरे सम्बोधने । अथो पश्चाद्रक्षणानन्तरं यस्तव
इषुधिरस्मिन्निषुधौ तं बाणं निषेहि स्थापय । हे मीढुष्टम ईडितत-
मेत्यर्थः । सेचकतम अयक्ष्मया सज्जया तया हेत्या परिव्रुज परिपालय ।
सदस्कृतं गृहं कृतं यातुघ्नानां रक्षसां वनस्पतीनां चेषवः सर्पाः । तैर्हि ते
जनान् दशन्ति । अवतेषु गर्तेषु ॥ २ ॥

इति द्वितीयः खण्डः

नीलखण्डोपनिषत्

३०१

तृतीयः खण्डः

यः स्वजनानीलग्रीवो यः स्वजनान्हरिः ।
 कल्माषपुच्छोषधे जम्भयोताश्चरुन्धति ॥
 बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च नीलग्रीवश्च यः शिवः ।
 शर्वेण नीलकण्ठेन भवेन मरुतां पिता ॥
 विरूपाक्षेण बभ्रुणा वाचं वदिष्यतो हतः ।
 शर्व नीलशिखण्ड वीर कर्मणि कर्मणि ॥

इमामस्य प्राशं जहि येनेदं विमजामहे । नमो भवाय ।
 नमश्शर्वाय । नमः कुमाराय शत्रवे । नमः सभाप्रपादिने । यस्याश्वतरौ
 द्विसरौ गर्दभावभितस्सरौ । तस्मै नीलशिखण्डाय नमः । नीलशिखण्डाय
 नमः ॥ ३ ॥

केदाराधीशं महिषरूपं स्तौति—य इति । यः शिवः स्वजनान् भक्तान्
 प्रति नीलग्रीवः । यश्च स्वजनान्भक्तान् प्रति हरिर्हरितवर्णो भक्तवात्सल्येन
 भवति । महिषस्य हि तादृग्रूपं संभवति । ओषधे अरुन्धति रोषरहिते ।
 तं कल्माषपुच्छं कृष्णपाण्डुरपुच्छम् । आशु शीघ्रम् । जम्भय वीर्यवन्तं
 कुरु । ओषधीनां पशुभ्यो बलप्रदत्वात् । “कल्माषो राक्षसे कृष्णे कल्माषः
 कृष्णपाण्डुरे” इति विश्वः । केदारेश्वरस्य महिषरूपत्वात्पुच्छवत्ता संभवति ।
 बभ्रुः कचिदवयवे पिङ्गलवर्णः । बभ्रुकर्णः अन्तःपिङ्गलवर्णकर्णः । पितेति
 तृतीयार्थे प्रथमा । पितेत्यर्थः । अथ वाचं वदिष्यतः पिता देहिमात्रस्य
 जनकः ब्रह्म येनेश्वरेण हतस्तं त्वं पश्येत्यन्वयः । हे वीर कर्मणि कर्मणि
 विहितनिषिद्धरूपे इमामस्य जनस्याशं पृच्छतीति प्राट् । तां प्राशं
 पृच्छकां वाचं जहि । वेदविहितनिषिद्धकर्मविषयं संशयं निराकुर्वित्यर्थः ।

३०२

शैव-उपनिषदः

येन कर्मणेदं जगद्विभजामहे कर्मभूमिभोगभूमिरूपेण विभक्तं कुर्महे ।
 कुमाराय कालानभिभूताय । शत्रवे संहर्त्रे । सभाप्रपादिने सभां प्रपद्यते
 तच्छीलः । सभाप्रपादी तस्मै सभ्यायेत्यर्थः । अश्वतरौ ईषदूनमश्वत्वं ययोस्तौ
 अश्वतरौ । गर्दभादश्वयां जातौ । द्विसरौ अभितः सरत इत्यभितःसरौ
 गर्दभौ वर्तेते तस्मै । द्विरुक्तिः समाप्त्यर्था ।

नारायणेन रचिता श्रुतिमात्रोपजीविता ।

अस्पष्टपदवाक्यानां नीलरुद्रस्य दीपिका ॥ ३ ॥

इति तृतीयः खण्डः

इति नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता नीलरुद्रोपनिषत् समाप्ता

पारायणोपनिषत्

अथाह वै वेदानां वेदत्वमेतेन शाक्ते शक्तित्वमेति न वेदमातुर्वेद-
 मातृत्वमेतेन तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।
 परोरजसे सावदोम् । महाकालाय विद्महे श्मशानवासिने धीमहि । तन्नो
 रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवाभिरिति । अथ प्रकाशः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ
 ऐं ह्रीं सौः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः
 प्रचोदयात् । परोरजसे सावदोम् । सौः ह्रीं ऐं हौं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं
 ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । हां ऐं
 ह्रीं श्रीं ॐ ॐ ॐ श्रीं ह्रीं ऐं । महाकालाय विद्महे श्मशानवासिने
 धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवाभिरिति संघट्टनाधीशो

बिल्वोपनिषत्

३०३

भवेत् । तदिदंपारायणवशादानन्दपूर्णो भवेत् । ओषत्रयनामविशिष्टमाकृति-
विशिष्टं मवनाथनामविशिष्टं वा नाममयीमाज्ञां दद्यात् । घटिकापारायणं
चरेत् । दिनाक्षरयुगाक्षरे तद्दिननित्याहंसस्तदनु मातृकां जपेत् । कालनित्यां
जपेत् । द्विशतसाहस्रशीर्षं तरसांमिजापी भवेत् । मन्त्रपारायणी भवेत् ।
नामपारायणी भवेत् । चक्रपारायणी भवेत् । स सर्वं पश्यति । स सर्वं जलमयो
भवेत् । वह्नौ वह्निमयो भवेत् । चराचरगतिर्भवेत् । पराशतषष्टिवाणीज्ञो
भवेत् । षोढान्यासाधिकारी भवेत् । मासतः पक्षतो वारतः पारायणी
भवेत् । सर्वाधिकारी भवेत् । दृष्टार्कं चरेत् । तदाचरणी अमृतत्वं गच्छति ।
ब्रह्मत्वं गच्छति । साक्षात्सप्तमीरूपो भवेदिति प्रोतं वेद ॥

इत्याथर्वणीये सौभाग्यकाण्डे पारायणोपनिषत् समाप्ता

बिल्वोपनिषत्

अथ वामदेवः परमेश्वरं सृष्टिस्थितिलयकारणमुमासहितं स्वशिरसा
प्रणम्येति होवाच । अधीहि भगवन् सर्वविद्यां सर्वरहस्यवरिष्ठां सदा सद्भिः
पूज्यमानां निगूढाम् । कया च पूजया सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं शिव-
सायुज्यमाप्नोति ? केनैकेन वस्तुना मुक्तो भवति ? तं होवाच भगवान्
सदाशिवः ।

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ।

मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः ।

एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महाशुने ॥

इति ब्रुवन्तं परमेश्वरं पुनः प्रणम्येति होवाच ॥

भगवन् सर्वलोकेश सत्यज्ञानादिलक्षण ।

कथं पूजा प्रकर्तव्या तां वदस्व दयानिधे ॥

इति पुनः पृच्छन्तं वामदेवमालिङ्गयेति होवाच ॥

बुद्धिमांस्त्वमिति ज्ञात्वा वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।

मम प्रियेण बिल्वेन त्वं कुरुष्व मदर्चनम् ॥

द्रव्याणामुत्तमैर्लोके मम पूजाविधौ तव ।

पत्रपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्बिल्वपत्रैः समर्चय ॥

बिल्वपत्रं विना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा ।

मम रूपमिति ज्ञेयं सर्वरूपं तदेव हि ॥

प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च ।

भूतिरुद्राक्षभरण उदीचीं दिशमाश्रयेत् ॥

सद्योजातादिभिर्मन्त्रैर्मन्त्रैर्मस्कृत्य पुनः पुनः ।

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा शिवरूपमिति स्फुटम् ॥

देवीं ध्यायेत्तथा वृक्षे विष्णुरूपं च सर्वदा ।

ब्रह्मरूपं च विज्ञेयं सर्वरूपं विभावयेत् ॥

वामदक्षिणमध्यस्थं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।

इन्द्रादयश्च यक्षान्ता वृन्तभागे व्यवस्थिताः ॥

पृष्ठभागेऽमृतं यस्मादर्चयेन्मम तुष्टये ।

उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥

मम सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणं बैल्वमग्निरूपं तथैव च ।

ब्रह्मरूपं कलारूपं वेदरूपं महामुने ॥

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ।
 सबिल्वरूपं सगुणात्मरूपं तिमूर्तिरूपं शिवरूपमस्मि ॥
 पृष्ठभागेऽमृतं न्यस्तं देवैर्ब्रह्मादिभिः पुरा ।
 उत्तानबिल्वपत्रेण पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदा र्चयेत् ।
 बिल्वपत्रं विना वस्तु नास्ति किञ्चित्तवानघ ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदा र्चयेत् ।
 उत्तानपत्रपूजां च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥
 इह लोकेऽखिलं सौख्यं प्राप्नोत्यन्ते पुरे मम ।
 तिष्ठत्येव महावीरः पुनर्जन्मविवर्जितः ॥
 सोदकैर्बिल्वपत्रैश्च यः कुर्यान्मम पूजनम् ।
 मम सान्निध्यमाप्नोति प्रमथैः सह मोदते ॥
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
 बिल्वपूजनतो लोके मत्पूजायाः परा न हि ॥
 त्रिसुपर्णं त्रिऋचां रूपं त्रिसुपर्णं त्रयीमथम् ।
 त्रिगुणं त्रिजगन्मूर्तित्रयं शक्तित्रयं त्रिदृक् ॥
 कालत्रयं च सवनत्रयं लिङ्गत्रयं त्रिपात् ।
 तेजस्त्रयमकारोकारमकारप्रणवात्मकम् ॥
 देवेषु ब्राह्मणोऽहं हि त्रिसुपर्णमयाचितम् ।
 मह्यं वै ब्राह्मणायेदं मया विज्ञप्तकामिकम् ॥
 दद्याद्ब्रह्मभूणवीरहत्यायाश्चान्यपातकैः ।
 मुक्तोऽखण्डानन्दबोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

त्रिसुपर्णोपनिषदः पठनात्पङ्क्तिपावनः ।
 बोधको ह्या सहस्राद्वै पङ्क्तिं पावयते ध्रुवम् ॥
 त्रिसुपर्णश्रुतिर्बोधा निष्कृतौ त्रिदले रता ।
 श्रद्धत्स्व विद्वन्नाद्यं तदिति वेदानुशासनम् ॥
 अखण्डानन्दसंबोधमयो यस्मादहं मुने ।
 विन्यस्तामृतभागेन सुपर्णेनावकुण्ठय ॥
 अमृतं मोक्षवाचन्तु तेनास्मदवकुण्ठनात् ।
 प्राप्येते भोगमोक्षौ हि स्थित्यन्ते मदनुग्रहात् ॥
 उत्तानभागपर्णेन मूर्ध्नि मे न्युब्जमर्पयेत् ।
 मोक्षेऽमृतावकुण्ठोऽहं भवेयं तव कामधुक् ॥
 येन केन प्रकारेण बिश्वकेनापि मां यज ।
 तीर्थदानतपोयोगस्वाध्याया नैव तत्समाः ॥
 बिल्वं विधानतः स्थाप्य वर्धयित्वा च तद्दलैः ।
 यः पूजयति मां भक्त्या सोऽहमेव न संशयः ॥

य एतदधीते ब्रह्महाऽब्रह्महा भवति । स्वर्णस्तेय्यस्तेयी भवति ।
 सुरापाय्यपायी भवति । गुरुवधूगाम्यगामी भवति । महापातकोपपातकेभ्यः
 पूतो भवति । न च पुनरावर्तते । न च पुनरावर्तते । न च पुनरावर्तते ।
 ॐ सत्यम् ॥

इति बिल्वोपनिषत् समाप्ता

मृत्युलाङ्गूलोपनिषत्

अथ मृत्युलाङ्गूलं व्याख्यास्यामः । अस्य मृत्युलाङ्गूलमन्त्रस्य
 वसिष्ठ ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । कालाग्निरुद्रो यमश्च देवता । मृत्यूपस्थाने
 विनियोगः । अथातो योगजिह्वः सधुमतियोजितं स मे वाह कालं पुरुष-
 ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः । पशुपतये नमः । य इदं
 शृणुयान्नित्यं मृत्युलाङ्गूलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयति वा स ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
 सुवर्णस्तेय्यस्तेयी भवति । गुरुदाराभिगाम्यगामी भवति । सर्वेभ्यः पात-
 केभ्य उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो भवति । सकृज्जप्तेनानेन गायत्र्याः
 षष्टिसहस्राणि फलितानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोक-
 मवाप्नोति । यः कश्चिद् ददाति स श्वित्री कुष्ठी कुनखी वा भवेत् ।
 यः कश्चिद्दीयमानं न गृह्णाति सोऽन्धो बधिरो मूको वा भवति ।
 मृत्युमुपस्थितः षण्मासादवाक् । बन्धोऽयं नश्यति इत्यनेन मृत्युलाङ्गू-
 लाख्यस्य च महामन्त्रस्य शतकृत्वो जप्तेन भगवान् धर्मराट् मम प्रीयताम् ।

ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति ।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥

ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम् ।

सत्यं तु पञ्चमे मासे परं ब्रह्म चतुर्थके ॥

पुरुषं च तृतीये वा द्वितीये कृष्णपिङ्गलम् ॥

ऊर्ध्वलिङ्गं तु षण्मासेन विरूपाक्षं तदर्धके ।

विश्वरूपं तृतीयेऽहि सद्यश्चैव नमो नमः ॥

इति मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

रुद्रोपनिषत्

विश्वमयो ब्राह्मणः शिवं व्रजति । ब्राह्मणः पञ्चाक्षरमनुभवति । ब्राह्मणः शिवपूजारतः । शिवभक्तिविहीनश्चेत् स चण्डाल उपचण्डालः । चतुर्वेदज्ञोऽपि शिवभक्त्यान्तर्भवतीति स एव ब्राह्मणः । अधमश्चाण्डालोऽपि शिवभक्तोऽपि ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठतरः । ब्राह्मणस्त्रिपुण्ड्रधृतः । अत एव ब्राह्मणः । शिवभक्तेरेव ब्राह्मणः । शिवलिङ्गार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको वति । अग्निहोत्रमसिताच्छिवभक्तचाण्डालहस्तविभूतिः शुद्धा । कपिश वा श्वेतजापि धूम्रवर्णा वा । विरक्तानां तपस्विनां शुद्धा । गृहस्थानां निर्मल-विभूतिः । तपस्विभिः सर्वभस्म धार्यम् । यद्वा शिवभक्तिसंपुष्टं सदापि तद्भसितं देवताधार्यम् ।

ॐ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । स्थलमिति भस्म । जलमिति भस्म । व्योमेति भस्म इत्याद्युपनिषत्कारणात् तत् कार्यम् । अन्यत्र “ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्घावापृथिवी जनयन् देव एकः । ” तस्मात्प्राणलिङ्गी शिवः । शिव एव प्राणलिङ्गी । जटाभस्मधारोऽपि प्राणलिङ्गी हि श्रेष्ठः । प्राणलिङ्गी शिवरूपः । शिवरूपः प्राणलिङ्गी । जङ्गमरूपः शिवः । शिव एव जङ्गमरूपः । प्राणलिङ्गिनां शुद्धसिद्धिर्न भवति । प्राणलिङ्गिनां जङ्गमपूज्यानां पूज्यतपस्विनामधिकश्चाण्डालोऽपि प्राणलिङ्गी । तस्मात्प्राण-लिङ्गी विशेष इत्याह । य एवं वेद स शिवः । शिव एव रुद्रः प्राणलिङ्गी नान्यो भवति ।

ॐ आत्मा परशिवद्वयो गुरुः शिवः । गुरुणां सर्वविश्वमिदं विश्व-मन्त्रेण धार्यम् । दैवाधीनं जगदिदम् । तदैवं तन्मन्त्रात् तनुते । तन्मे दैवं

गुरुरिति । गुरूणां सर्वज्ञानिनां गुरुणा दत्तमेतदन्नं परब्रह्म । ब्रह्म स्वानुभूतिः ।
 गुरुः शिवो देवः । गुरुः शिव एव लिङ्गम् । उभयोर्मिश्रप्रकाशत्वात् ।
 प्राणवत्त्वात् महेश्वरत्वाच्च शिवस्तदैव गुरुः । यत्र गुरुस्तत्र शिवः । शिवगुरु-
 स्वरूपो महेश्वरः । अमरकीटकार्येण दीक्षिताः शिवयोगिनः शिवपूजापथे
 गुरुपूजाविधौ च महेश्वरपूजनान्मुक्ताः । लिङ्गाभिषेकं निर्माल्यं गुरोरभिषेक-
 तीर्थं महेश्वरपादोदकं जन्ममालिन्यं क्षालयन्ति । तेषां प्रीतिः शिवप्रीतिः ।
 तेषां तृप्तिः शिवतृप्तिः । तैश्च पावनो वासः । तेषां निरसनं शिवनिरसनम् ।
 आनन्दपारायणः । तस्माच्छिवं व्रजन्तु । गुरुं व्रजन्तु । इत्येव पावनम् ॥

इति छोपनिषत् समाप्ता

लिङ्गोपनिषत्

ॐ धर्मजिज्ञासा । ज्ञानं बुद्धिश्च । ज्ञानान्मोक्षकारणम् । मोक्षा-
 न्मुक्तिस्वरूपम् । तथा ब्रह्मज्ञानाद्बुद्धिश्च । लिङ्गैक्यं देहो लिङ्गभेदे न ।
 अज्ञानात् ज्ञानं बुद्धिश्च । चतुर्वर्णानां धारणां कुर्यात् । पशुपक्षि-
 मृगकीटकलिङ्गधारणमुच्यते । पञ्चबन्धस्वरूपेण पञ्चबन्धा ज्ञानस्वरूपाः ।
 पिण्डाज्जननम् । तज्जननकाले धारणमुच्यते । “सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणि-
 मन्त्रं पवित्रम्”, “अयं मे हस्तो भगवान्” इति धारयेत् । “या ते रुद्र
 शिवा तन्नूरोराऽपापकाशिनी”, “रुद्रपते जनिमा चारु चित्रम्”, “वयं
 सोम व्रते तव । मनस्तनुषु बिभ्रतः । प्रजावन्तो अशीमहि ।”, “त्रियम्बकं
 यजामहे” इति धारयेत् । ब्राह्मणानां धारणां कुर्यात् । “पवित्रं ते विततं

ब्रह्मणस्पते”, “सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि घत्तम् । अवस्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् । सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः । जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् । ” इति प्राकट्यं कुर्यात् । न कुर्यात्पशुभाषणम् । श्रौतानामुपनयनकाले धारणम् । चतुर्थाश्रमः संन्यासः । पञ्चमो लिङ्ग-धारणम् । अत्याश्रमाणां मध्ये लिङ्गधारी श्रेष्ठो भवति । शिरसि महादेव-स्तिष्ठतु इति धारयेत् । अन्यायो न्यायः । पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाश इति पञ्चस्वरूपं लिङ्गम् । त्वच्छ्रोत्रनेत्रजिह्वाघ्राणपञ्चस्वरूपमिति लिङ्गम् । रेतोबुद्ध्यापमनस्स्वरूपमिति लिङ्गम् । सङ्कल्प इति लिङ्गम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वरूपमिति लिङ्गम् । व्रतं चरेत् । संतिष्ठेन्नियमेन । सर्वं शाम्भवीरूपम् । शाम्भवी विद्योच्यते । चरेदेतानि सूत्राणि । पञ्चमुखं पञ्चस्वरूपं पञ्चाक्षरं पञ्चसूत्रं ज्ञानम् । सिद्धिर्भवत्येव । ज्ञानाद्वारणं लिङ्गदेह-प्रकार उच्यते । शिरःपाणिपादपायूपस्थं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । ब्राह्मणो वदेत् ।

ओङ्कारो बाणः शक्तिरेव पीठं सिन्दूरवर्णं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । कैवल्यं केवलं विद्यात् । व्यवहारपरः स्यात् । प्राण एव प्राणः । पूर्वं ब्रह्मा पीठम् । विष्णुर्बाणः । रुद्रः स्वरूपम् । सर्वभूतैरथापरित्याज्यश्च । विग्रहमनुग्रहलिङ्गेषु शक्तिकपालेषु सर्ववशङ्करं विद्यात् । जातिविषयान् त्यजेत् । श्रौताश्रौतेषु धारणम् । वेदोक्तविधिना श्रौतं तद्रहितमश्रौतम् । सर्ववर्णेषु धारणं कैलाससिद्धिर्भवति । धारणं देहे कैलासस्वरूपम् । धारणं देहे कैवल्यस्वरूपम् । धारणं देहे प्रणवस्वरूपम् । धारणं देहे वेदस्वरूपम् । धारणं देहे ब्रह्मस्वरूपम् । धारणं देहे शिवस्वरूपम् । शिरसि बाणं बाहुनाभिपीठप्रकृतिरूपकं देहे धारणं यस्य न विद्यते तद्देहं न पश्येत् । शिरःकपालं केशान् न कुर्यात् । शिरःपीठं लिङ्गात्मकं सर्वम् ।

शाम्भवीविग्रह उच्यते । प्राणादिलिङ्गस्वरूपं गुरोर्लिङ्गम् । गुरुसंभवात्मकं
 लिङ्गं प्रगुरोः । ततः प्रथमं प्रणिपतति । प्रणवस्वरूपं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गम् ।
 प्रकाशात्मकं लिङ्गं विद्यालिङ्गम् । विद्यालिङ्गं ज्ञानस्वरूपम् । लिङ्गं प्रचरेच्छा-
 स्नात् । लिङ्गस्वरूपेयं सिद्धिर्भविष्यति । सर्वदेहेषु लिङ्गधारणं भवति । इति
 वेदपुरुषो मन्यते । महापुरुषोपेतं यो वेद स एव नित्यपूतस्थः । स एव
 नित्यपूतस्थः स्यादैवलौकिकः पुरुषः । स एवामुष्मिकपुरुष इति मन्यन्ते ।
 जीवात्मा परमात्मा च स एवोच्यते । इष्टप्राणाभावेपु लिङ्गधारणं वदन्ति ।
 इष्टे धारणम् । तिस्रः पुरस्त्रिपदा विश्वचर्षणी । पुरनाशे लिङ्गस्वरूपाज्ञासिद्धिर्भव-
 त्यवज्ञानेऽसति । संयुक्तं लिङ्गं मोक्ष एव भवत्येव । मोक्षमेव धारणं
 विद्यात् । उशंतीव मातरं कुर्यात् । इत्येवं वेदेत्युपनिषत् । ॐ तत्सत् ॥

इति लिङ्गोपनिषत् समाप्ता

वज्रपञ्जरोपनिषत्

सह नाववतु— इति शान्तिः ।

वज्रपञ्जरेण भस्मधारणं कुर्यात् । वामकरे भस्म गृहीत्वा सद्यो-
 जातमिति पञ्चब्रह्ममन्त्रः । त्रियम्बकं जातवेदसे गायत्र्या मानस्तोकैरभिमन्त्र्य
 मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य श्रीविद्येयं शिरसि । ऐं वद वद वाम्बादिनि ह्रस्वैः क्लिप्ते
 क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु । हसकलरी ओं मोक्षं कुरु कुरु । हसौः इति
 मुखे । ओं ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वज्ञानं हारिके

जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति प्रज्वल प्रज्वल हूं ह्रीं हूं र र र र ज्वाला-
 मालिनि हुं फट् स्वाहा इति हृदये । जलवासिन्यै नमो नामौ । ह्रीं
 वह्निवासिन्यै नमो गुह्ये । ओं सह नाभ्यादिजान्वन्तम् । ओं ह्रीं श्रीं
 पशु हुं फट् स्वाहा जान्वादिपादपर्यन्तम् । ओं ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर
 प्रस्फुर रूप तट तट चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम
 बन्धय बन्धय घातय घातय हुं फट् स्वाहा इत्यधोरेण शिरसि । ओं वैष्णव्यै
 नमो हृदये । पुनः अधोरेण पृष्ठे । पुनः सुदर्शनेन जान्वादिनाभ्यन्तम् ।
 पुनः पाशुपतेन पादादिजान्वन्तम् । ह्रसौः अ अं क्षं स्हौः . . ओं ह्रीं
 क्लीं क्लौं श्रीं ।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

श्रीं क्लौं श्रीं ह्रीं ओं इति दक्षिणबाहौ । ओं क्षां ओं नमो भगवते
 नारसिंहाय ज्वालामालिने तीक्ष्णदंष्ट्राभिनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वज्वरविनाशाय
 सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति
 वामबाहौ । उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गल लोहिताक्ष देहि मे दापय स्वाहा ।
 ओं ह्रीं हुं उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम् । यदि
 शक्यमशक्यं वा ते भगवति शमय शमय स्वाहा ।

मृत्योस्तुल्यं त्रिलोकीं प्रसितुमतिरसान्निस्तृता किं नु जिह्वा

किं वा कृष्णाङ्घ्रिपद्मसृतिभिररुणिता विष्णुपद्माः पदव्यः ।

प्राप्ताः सन्ध्याः स्मरारेः स्वयमुत नृतिभिस्तिष्ठ इत्यूह्यमानाः

देवैर्देव्यास्त्रिशूलक्षतमहिषजुषो रक्तधारा जयन्ति ॥

इति बडवानलदुर्गामृत्योस्तुल्यवनदुर्गाभिः सर्वाङ्गमुद्धूळयेत् । ततः
 शेषमस्मिन् जलं निक्षिप्य त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात् ।

वटुकोपनिषत्

एता एव महाविद्या विभूतेरभिधारणे ।

कथिताः परमेशानि सतां पूर्वतराघहाः ॥

वज्रपञ्जरनाम्नैव यः कुर्याद्भस्मधारणम् ।

स सर्वभयनिर्मुक्तः साक्षाच्छिवमयो भवेत् ।

एतानि तानि श्रीमन्त्रपवित्रे यानि भस्मनि ॥

दग्धकामाङ्गविभूतित्रैपुण्ड्रतानि कथितानि ललाटपट्टे लोपयन्ति
दैवलिखितानि दुरक्षराणि ।

इति वज्रपञ्जरोपनिषत् समाप्ता

वटुकोपनिषत्

अथ वटुकोपनिषदं व्याख्यास्यामः ।

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम् ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिर्भविता नेतरेषाम् ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः ।

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च रुद्रस्तस्मै वै नमो नमः ।

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाग्निस्तस्मै वै नमो नमः ।

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः ।

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चोपग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भूस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्वस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च द्यौस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चापस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च तेजस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च मृत्युस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चामृत्युस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकाशस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विश्वं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च शुक्लं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च दम्भस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चादम्भस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवात् यश्च सूक्ष्मं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्थूलं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कृष्णस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकृष्णस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सत्यं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सर्वं तस्मै वै नमो नमः ॥

भूस्ते आदिर्मध्यं भुवः स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकत्वं द्विधा
त्रिधा बुद्धित्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं
कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्यो-
तिरविदाम देवान् । किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य ।
सोमसूर्यपुरस्तात् सूक्ष्मः पुरुषः । सर्वं जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सूक्ष्मं
सौम्यं पुरुषं ग्राह्यमग्राह्येण भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं
वायव्येन असति स्वेन तेजसा तस्मादुपसंहर्त्रे महाग्रासाय वै नमो नमः ।

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।

हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः ॥

तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारो य
ओङ्कारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो
योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं
तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एको य एकः स रुद्रो य रुद्रः स ईशानो य
ईशानः स भगवान् महेश्वरो यो भगवान् महेश्वरः स भगवान् वटुकेश्वरो
यो भगवान् वटुकेश्वरः ।

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुक्ताम-
यति तस्मादुच्यत ओङ्कारः । अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण
एव ऋग्यजुस्सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च
तस्मादुच्यते प्रणवः । अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुच्चार्यमाण एव
सर्वान् लोकान् व्याप्नोति स्नेहो यथा तल्लपिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनु-
प्राप्तो व्यतिषक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी । अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो
यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तोः नोपलभ्यते तस्मादुच्य-
तेऽनन्तः । अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधि-

जरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम् । अथ
 कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति
 सर्वाणि चाज्ञान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम् । अथ कस्मादुच्यते शुक्लं
 यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लृप्तं क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम् । अथ
 कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुच्चार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयति
 तस्मादुच्यते वैद्युतम् । अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात् परमपरं परायणं
 च बृहद्बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म । अथ कस्मादुच्यत एको यः
 सर्वान् प्राणान् संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विसृजति तीर्थमेके व्रजन्ति
 तीर्थमेके दक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिब्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह
 सद्गतिः । साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्मादुच्यत एकः । अथ
 कस्मादुच्यते रुद्रो यस्माद्विभिर्नान्यैर्मकैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते
 रुद्रः । अथ कस्मादुच्यत ईशानो यः सर्वान् देवानीशत ईशानीभिर्जननी-
 मिश्च परमशक्तिभिः । अभि त्वा शू नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य
 जगतः सुवर्द्धशमीशानमिन्द्र तस्थुषः । तस्मादुच्यत ईशानः । अथ कस्मा-
 दुच्यते भगवान् महेश्वरो यस्माद्भक्ता ज्ञानेन भजन्त्यनुगृह्णाति च वाचं
 संसृजति विसृजति च सर्वान् भावान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति
 महीयते तस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरः । अथ कस्मादुच्यते भगवान् बटुकेश्वरो
 यस्मादन्तर्जलौषधिवीरुधानाविश्येनं विश्वं भुवनानि वा अवते तस्मादुच्यते
 भगवान् बटुकेश्वरः । तदेतद्ब्रुवचरितम् ।

एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः

पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः

प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

एको वटुको न द्वितीयाय तस्मै
 य इमान् लोकानीशत ईशनीभिः ।
 प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
 संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता ॥
 यस्मिन् क्रोधं यां च तृष्णां क्षमां च
 ह्यक्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलम् ।
 बुद्ध्या सञ्चितं स्थापयित्वा तु रुद्रे
 शाश्वतं वै रुद्रमेकत्वमाहुः ॥
 वटुको हि शाश्वतेन पुराणेन
 वेषमूर्जेण तपसा नियन्ता ॥

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म
 व्योमेति भस्म सर्वं ह वेदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्माद्ब्रतमिदं पाशु-
 पतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्ब्रह्म तदेतद्वटुकं पशुपाशविमोक्षणाय ।

यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं
 तस्मादन्यन्न परं किञ्चनास्ति ।
 न तस्मात् पूर्वं न परं तदस्ति
 न भूतं नोत भव्यं यदासीत् ॥
 अक्षराज्जायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते ।

व्यापको हि भगवान् वटुको भोगायमानो यदा शेते रुद्रस्तदा संहरते
 प्रजाः । उच्छ्वासिते तमो भवति तमस आपोऽप्स्वङ्गुल्या मथिते मथितं
 शिशिरे शिशिरं मथ्यमानं फेनं भवति फेनादण्डं भवत्यण्डाद्ब्रह्मा भवति
 ब्रह्मणो वायुर्वायोरोङ्कार ओङ्कारात्सावित्री सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोकाः

भवन्ति । एतद्धि परमं तपः । आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरो
नम इति ।

य इमां वटुकोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति ।
अनुपनीत उपनीतो भवति । स हासिपूतो भवति । स वायुपूतो भवति ।
स सूर्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स सर्वपूतो
भवति । स सर्वदेवैरनुज्ञातो भवति । स सर्वदेवैरनुध्यातो भवति । स
सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वयुरारोग्यवान् भवति ।
स कालज्ञानी भवति । स गुर्वनुग्रहभागी भवति । इत्येवं भगवद्वटुकेश्वरं
यः स्तौति स वेद्यं वेदेति ॥

इत्याथर्वणरहस्ये वटुकोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्कल्पोपनिषत्

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदंजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

इति वाजसनेयसंहितायां शिवसङ्कल्पोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्कल्पोपनिषत्

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा यतो वाचा मनसा चारु यन्ति ।
यत्संमितमनु संयन्ति प्राणिनस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदंजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥
यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥
यदत्र षष्ठं त्रिशतं सुवीरं यज्ञस्य गुह्यं नवनावमाय्यम् [?] ।
दश पञ्च त्रिशतं यत्परं च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

यज्जाग्रतो हूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।

बूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥८॥

येन द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षं च ये पर्वताः प्रदिशो दिशश्च ।

येनेदं जगद्व्याप्तं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ९ ॥

येनेदं विश्वं जगतो बभूव ये देवा अपि महतो जातवेदाः ।

तदेवाग्निस्तमसो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१०॥

ये मनो हृदयं ये च देवा ये दिव्या आपो ये सूर्यरश्मिः ।

ते श्रोत्रे चक्षुषी सञ्चरन्तं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ११ ॥

अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं च यत् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १२ ॥

एका च दश शतं च सहस्रं चायुतं च

नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च ।

समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १३ ॥

ये पञ्च पञ्चदश शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं च ।

तेऽग्निचित्येष्टकास्तं शरीरं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१४॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

यस्य योर्नि परिपश्यन्ति धीरास्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

यस्येदं धीराः पुनन्ति कवयो ब्रह्माणमेतं त्वा वृणुत इन्दुम् ।

स्थावरं जङ्गमं द्यौराकाशं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१६॥

परात् परतरं चैव यत्पराच्चैव यत्परम् ।

यत्परात् परतो ज्ञेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १७ ॥

परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।

तत्परात् परतोऽधीशस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १८ ॥

या वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरी ।

ऋग्यजुस्सामाथर्वैश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १९ ॥

यो वै देवं महादेवं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

यः सर्वे सर्ववेदैश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥

प्रयतः प्रणवोङ्कारं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

ओङ्कारं प्रणवात्मानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः ।

अकायो निर्गुणो ह्यात्मा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥

गोभिर्जुष्टं धनेन ह्यायुषा च बलेन च ।

प्रजया पशुभिः पुष्कराक्षं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥

त्रियम्बकं यजामहे

सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय

माऽमृतात्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥

कैलासशिखरे रम्ये शङ्करस्य शिवालये ।

देवतास्तत्र मोदन्ते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो

विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।

संबाहुभ्यां नमति संपतत्रैर्धावापृथिवी

जनयन् देव एकस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २६ ॥

चतुरो वेदानधीयीत सर्वशास्त्रमयं विदुः ।

इतिहासपुराणानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २७ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्मकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नः

तनुवो रुद्र रीरिषस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २८ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः

नमसा विषेम ते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २९ ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म

पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३० ॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीदुष्टमाय तव्यसे ।

वोचेम शन्तमं हृदे ।

सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३१ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्

वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

स बुद्धिया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिं

असतश्च विवस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३२ ॥

शिवसङ्कल्पोपनिषत्

३२३

यः प्राणतो निमिषतो

महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय

हविषा विधेम तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय

हविषा विधेम तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३४ ॥

यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु

यो रुद्रो विश्वा भुवनाऽऽविवेश ।

तस्मै रुद्राय नमो अस्तु

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३५ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां

नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियं

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३६ ॥

य इदं शिवसङ्कल्पं सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः ।

ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३७ ॥

इति शिवसङ्कल्पोपनिषत् समाप्ता

[इति शिवसङ्कल्पमन्त्राः समाप्ताः]

शिवोपनिषत्

प्रथमोऽध्यायः

कैलासशिखरासीनमशेषामरपूजितम् ।
 कालम्रं श्रीमहाकालमीश्वरं ज्ञानपारगम् ॥ १ ॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या ऋष्यान्नेयः सुसंयतः ।
 सर्वभूतहितार्थाय पप्रच्छेदं महामुनिः ॥ २ ॥
 ज्ञानयोगं न विन्दन्ति ये नरा मन्दबुद्धयः ।
 ते मुच्यन्ते कथं घोराद्भगवन् भवसागरात् ॥ ३ ॥
 एवं पृष्टः प्रसन्नात्मा ऋष्यान्नेयेण धीमता ।
 मन्दबुद्धिविमुक्त्यर्थं महाकालः प्रभाषते ॥ ४ ॥

महादेव उवाच—

पुरा रुद्रेण गदिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
 देव्याः सर्वगणानां च संक्षेपाद्ग्रन्थकोटिभिः ॥ ५ ॥
 आयुः प्रज्ञां तथा शक्तिं प्रसमीक्ष्य नृणामिह ।
 तापत्रयप्रपीडां च भोगतृष्णाविमोहिनीम् ॥ ६ ॥
 ते धर्माः स्कन्दनन्दिभ्यामन्यैश्च मुनिसत्तमैः ।
 सारमादाय निर्दिष्टाः सम्यक्प्रकरणान्तरैः ॥ ७ ॥
 सारादपि महासारं शिवोपनिषदं परम् ।
 अल्पग्रन्थं महार्थं च प्रवक्ष्यामि जगद्धितम् ॥ ८ ॥
 शिवः शिव इमे शान्तनाम चाद्यं मुहुर्मुहुः ।
 उच्चारयन्ति तद्भक्त्या ते शिवा नात्र संशयः ॥ ९ ॥

अशिवाः पाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः ।
 यस्माद्विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः ॥ १० ॥
 गुणो बुद्धिरहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
 भूतानि च चतुर्विंशदिति पाशाः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥
 पञ्चविंशकमज्ञानं सहजं सर्वदेहिनाम् ।
 पाशजालस्य तन्मूलं प्रकृतिः कारणाय नः ॥ १२ ॥
 सत्यज्ञाने निबध्यन्ते पुरुषाः पाशबन्धनैः ।
 मद्भावाच्च विमुच्यन्ते ज्ञानिनः पाशपञ्जरात् ॥ १३ ॥
 षड्विंशकश्च पुरुषः पशुरज्ञः शिवागमे ।
 सप्तविंश इति प्रोक्तः शिवः सर्वजगत्पतिः ॥ १४ ॥
 यस्माच्छिवः सुसंपूर्णः सर्वज्ञः सर्वगः प्रभुः ।
 तस्मात्स पाशरहितः स विशुद्धः स्वभावतः ॥ १५ ॥
 पशुपाशपरः शान्तः परमज्ञानदेशिकः ।
 शिवः शिवाय भूतानां तं विज्ञाय विमुच्यते ॥ १६ ॥
 एतदेव परं ज्ञानं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
 विचाराद्याति विस्तारं तैलबिन्दुरिवाभ्रमसि ॥ १७ ॥
 सकृदुच्चारितं येन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
 बद्धः परिकरस्तेन मोक्षोपगमनं प्रति ॥ १८ ॥
 द्व्यक्षरः शिवमन्त्रोऽयं शिवोपनिषदि स्मृतः ।
 एकाक्षरः पुनश्चायमोमित्येवं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
 नामसङ्कीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः ।
 यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः ॥ २० ॥
 यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत् ।
 एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम् ॥ २१ ॥

भिन्नस्वजनबन्धूनां कुर्यान्नाम शिवात्मकम् ।
 अपि तत्कीर्तनाद्याति पापमुक्तः शिवं पुरम् ॥ २२ ॥
 विज्ञेयः स शिवः शान्तो नरस्तद्भावाभावितः ।
 आस्ते सदा निरुद्विग्नः स देहान्ते विमुच्यते ॥ २३ ॥
 हृद्यन्तःकरणं ज्ञेयं शिवस्यायतनं परम् ।
 हृत्पद्मं वेदिका तत्र लिङ्गभोङ्कारमिष्यते ॥ २४ ॥
 पुरुषः स्थापको ज्ञेयः सत्यं संमार्जनं स्मृतम् ।
 अहिंसा गोमयं प्रोक्तं शान्तिश्च सलिलं परम् ॥ २५ ॥
 कुर्यात् संमार्जनं प्राज्ञो वैराग्यं चन्दनं स्मृतम् ।
 पूजयेद्ध्यानयोगेन सन्तोषैः कुसुमैः सितैः ॥ २६ ॥
 धूपश्च गुग्गुलुर्देयः प्राणायामसमुद्भवः ।
 प्रत्याहारश्च नैवेद्यमस्तेयं च प्रदक्षिणम् ॥ २७ ॥
 इति दिव्योपचारैश्च संपूज्य परमं शिवम् ।
 जपेद्ध्यायेच्च मुक्त्यर्थं सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ २८ ॥
 ज्ञानयोगविनिर्मुक्तः कर्मयोगसमावृतः ।
 मृतः शिवपुरं गच्छेत्स तेन शिवकर्मणा ॥ २९ ॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान्प्रलये सर्वदेहिनाम् ।
 शिवधर्माच्छिवज्ञानं प्राप्य मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३० ॥
 ज्ञानयोगेन मुच्यन्ते देहपातादनन्तरम् ।
 भोगान् भुक्त्वा च मुच्यन्ते प्रलये कर्मयोगिनः ॥ ३१ ॥
 तस्मात् ज्ञानविदो योगात्तथाज्ञाः कर्मयोगिनः ।
 सर्व एव विमुच्यन्ते ये नराः शिवमाश्रिताः ॥ ३२ ॥
 स भोगः शिवविद्यार्थं येषां कर्मास्ति निर्मलम् ।
 ते भोगान् प्राप्य मुच्यन्ते प्रलये शिवविद्यया ॥ ३३ ॥

विद्या सङ्कीर्तनीया हि येषां कर्म न विद्यते ।
 ते चावर्त्य विमुच्यन्ते यावत्कर्म न तद्भवेत् ॥ ३४ ॥
 शिवज्ञानविदं तस्मात्पूजयेद्विभवैरुगुम् ।
 विद्यादानं च कुर्वीत भोगमोक्षजिगीषया ॥ ३५ ॥
 शिवयोगी शिवज्ञानी शिवजापी तपोऽधिकः ।
 क्रमशः कर्मयोगी च पञ्चैते मुक्तिभाजनाः ॥ ३६ ॥
 कर्मयोगस्य यन्मूलं तद्वक्ष्यामि समासतः ।
 लिङ्गमायतनं चेति तत्र कर्म प्रवर्तते ॥ ३७ ॥

इति शिवोपनिषदि मुक्तिनिर्देशाध्यायः प्रथमः

द्वितीयोऽध्यायः

अथ पूर्वस्थितो लिङ्गे गर्भः स त्रिगुणो भवेत् ।
 गर्भाद्वापि विभागेन स्थाप्य लिङ्गं शिवालये ॥ १ ॥
 यावदलिङ्गस्य दैर्घ्यं स्यात्तावद्वेद्याश्च विस्तरः ।
 लिङ्गतृतीयभागेन भवेद्वेद्याः समुच्छयः ॥ २ ॥
 भागमेकं न्यसेद्भूमौ द्वितीयं वेदिमध्यतः ।
 तृतीयभागे पूजा स्यादिति लिङ्गं त्रिधा स्थितम् ॥ ३ ॥
 भूमिस्थं चतुरश्रं स्यादष्टाश्रं वेदिमध्यतः ।
 पूजार्थं वर्तुलं कार्यं दैर्घ्यात् त्रिगुणविस्तरम् ॥ ४ ॥
 अधोभागे स्थितः स्कन्दः स्थिता देवी च मध्यतः ।
 ऊर्ध्वं रुद्रः क्रमाद्वापि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।
 एत एव त्रयो वेदा एतच्चान्यस्थितं त्रिधा ॥ ६ ॥
 नवहस्तः स्मृतो ज्येष्ठः षड्दस्तश्चापि मध्यमः ।
 विद्यात् कनीयस्त्रैहस्तं लिङ्गमानमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥
 गर्भस्यान्तः प्रविस्तारस्तदूनश्च न शस्यते ।
 गर्भस्यान्तः प्रविस्तारात्तदुपर्यपि संस्थितम् ॥ ८ ॥
 प्रासादं कल्पयेच्छ्रीमान् विभजेत त्रिधा पुनः ।
 भाग एको भवेज्जङ्घा द्वौ भागौ मञ्जरी स्मृता ॥ ९ ॥
 मञ्जर्या अर्धभागस्थं शुक्रनासं प्रकल्पयेत् ।
 गर्भादर्थेन विस्तारमायामं च सुशोभनम् ॥ १० ॥
 गर्भाद्वापि त्रिभागेन शुक्रनासां प्रकल्पयेत् ।
 गर्भादर्थेन विस्तीर्णा गर्भाच्च द्विगुणायता ॥ ११ ॥
 जङ्घाभिश्च भवेत् कार्या मञ्जर्यङ्गुलराशिना ।
 प्रासादार्धेन विज्ञेयो मण्डपस्तस्य वामतः ॥ १२ ॥
 मण्डपात्पादविस्तीर्णा जगती तावदुच्छ्रिता ।
 प्रासादस्य प्रमाणेन जगत्या सार्धमङ्गणम् ॥ १३ ॥
 प्राकारं तत्समन्ताच्च गोपुरादालभूषितम् ।
 प्राकारान्तः स्थितं कार्यं वृषस्थानं समुच्छ्रितम् ॥ १४ ॥
 नन्दीश्वरमहाकालौ द्वारशाखाव्यवस्थितौ ।
 प्राकारादक्षिणे कार्यं सर्वोपकरणान्वितम् ॥ १५ ॥
 पञ्चभौमं त्रिभौमं वा योगीन्द्रावसथं महत् ।
 प्राकारगुप्तं तत्कार्यं मैत्रस्थानसमन्वितम् ॥ १६ ॥
 स्थानाद्दशसमायुक्तं भव्यवृक्षजलान्वितम् ।
 तन्महानसमाप्नोय्यां पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥ १७ ॥

स्थानं चण्डेशमैशान्यां पुष्पाणामं तथोत्तरम् ।
 कोष्ठागारं च वायव्यां वारुण्यां वरुणालयम् ॥ १८ ॥
 शमीन्धनकुशस्थानमायुधानां च नैऋतम् ।
 सर्वलोकोपकाराय नगरस्थं प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥
 श्रीसदायतनं शम्भोर्योगिनां विजने वने ।
 शिवस्यायतने यावत्समेताः परमाणवः ॥ २० ॥
 मन्वन्तराणि तावन्ति कर्तुर्मोगाः शिवे पुरे ।
 महाप्रतिमलिङ्गानि महान्त्यायतनानि च ॥ २१ ॥
 कृत्वाऽऽप्नोति महाभोगानन्ते मुक्तिं च शाश्वतीम् ।
 लिङ्गप्रतिष्ठां कुर्वीत यदा तल्लक्षणं कृती ॥ २२ ॥
 पञ्चगव्येन संशोध्य पूजयित्वाऽधिवासयेत् ।
 पालाशोदुम्बराश्वत्थपृषदाज्यतिलैर्यवैः ॥ २३ ॥
 अग्निकार्यं प्रकुर्वीत दद्यात् पूर्णाहुतित्रयम् ।
 शिवस्याष्टशतं हुत्वा लिङ्गमूलं स्पृशेदबुधः ॥ २४ ॥
 एवं मध्येऽवसाने तन्मूर्तिमन्तैश्च मूर्तिषु ।
 अष्टौ मूर्तीश्वराः कार्या नवमः स्थापकः स्मृतः ॥ २५ ॥
 प्रातः संस्थापयेद्विङ्गं मन्तैस्तु नवभिः क्रमात् ।
 महास्नापनपूजां च स्थाप्य लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ २६ ॥
 गुरोर्मूर्तिधराणां च दद्यादुत्तमदक्षिणाम् ।
 यतीनां च समस्तानां दद्यान्मध्यमदक्षिणाम् ॥ २७ ॥
 दीनान्धकूपणेभ्यश्च सर्वासामुपकल्पयेत् ।
 सर्वभक्ष्यान्नपानाद्यैरनिषिद्धं च भोजनम् ॥ २८ ॥
 कल्पयेदागतानां च भूतेभ्यश्च बलिं हरेत् ।
 रात्रौ मातृगणानां च बलिं दद्याद्विशेषतः ॥ २९ ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं यः स्थापयेच्छिङ्गं तस्य पुण्यफलं शृणु ।

कुलत्रिंशकमुद्धृत्य भृत्यैश्च परिवारितः ॥ ३० ॥

कलत्रपुत्रमित्राद्यैः सहितः सर्वबान्धवैः ।

विमुच्य पापकलिलं शिवलोकं व्रजेन्नरः ।

तत्र भुक्त्वा महाभोगान् प्रलये मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

इति शिवोपनिषदि लिङ्गायतनाध्यायो द्वितीयः

तृतीयोऽध्यायः

अथान्यैरल्पवित्तैश्च नृपैश्च शिवभाविनैः ।

शक्तिः स्वाश्रमे कार्यं शिवशान्तिगृहद्वयम् ॥ १ ॥

गृहस्थेशानदिग्भागे कार्यमुत्तरतोऽपि वा ।

खात्वा भूमिं समुद्धृत्य शल्यानाकोट्य यत्नतः ॥ २ ॥

शिवदेवगृहं कार्यमष्टहस्तप्रमाणतः ।

दक्षिणोत्तरदिग्भागे किञ्चिद्दीर्घं प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥

हस्तमात्रप्रमाणं च दृढपट्टचतुष्टयम् ।

चतुष्कोणेषु संयोज्यमर्ध्यपात्रादिसंश्रयम् ॥ ४ ॥

गर्भमध्ये प्रकुर्वन्ति शिववेदिं सुशोभनाम् ।

उदगर्वाक्च्छितां किञ्चिच्चतुःशीर्षकसंयुताम् ॥ ५ ॥

त्रिहस्तायामविस्तारां षोडशाङ्गुलमुच्छ्रिताम् ।

तच्छीर्षाणीव हस्तार्धमायामाद्विस्तरेण च ॥ ६ ॥

शिवस्थण्डिलमित्येतच्चतुर्हस्तं समं शिरः ।

मूर्तिनैवेद्यदीपानां विन्यासार्थं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥

शैवलङ्गेन कार्यं स्यात् कार्यं मणिजपार्थिवैः ।

स्थण्डिलार्थं च कुर्वन्ति वेदिमन्यां सर्वतुलाम् ॥ ८ ॥

षोडशाङ्गुलमुत्सेधां विस्तीर्णां द्विगुणेन च ।

गृहे न स्थापयेच्छैलं लिङ्गं मणिजमर्चयेत् ॥ ९ ॥

त्रिसन्ध्यं पार्थिवं वापि कुर्यादन्यद्दिने दिने ।

सर्वेषामेव वर्णानां स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥ १० ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तमन्यथा दोषमावहेत् ।

आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी ॥ ११ ॥

वरमिष्टं च लभते लिङ्गं पार्थिवमर्चयन् ।

तस्माद्वि पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥ १२ ॥

निर्दोषं सुलभं चैव पूजयेत् सततं बुधः ।

यथा यथा महालिङ्गं पूजा श्रद्धा यथा यथा ॥ १३ ॥

तथा तथा महत्पुण्यं विज्ञेयमनुरूपतः ।

प्रतिमालिङ्गवेदीषु यावन्तः परमाणवः ।

तावत्कल्पान्महामोगस्तत्कर्ताऽऽस्ते शिवे पुरे ॥ १४ ॥

इति शिवोपनिषदि शिवगृहाध्यायस्तृतीयः

चतुर्थोऽध्यायः

अथैकभिन्नावच्छिन्नं पुरतः शान्तिमण्डपम् ।

पूर्वापराष्टहस्तं स्याद्द्वादशोत्तरदक्षिणे ॥ १ ॥

तद्द्वारभित्तिसंबद्धं कपिच्छुकसमावृतम् ।

पटद्वयं भवेत् स्थाप्यं सुवाद्यावारहेतुना ॥ २ ॥

द्वारं त्रिशखं विज्ञेयं नवत्यङ्गुलमुच्छ्रितम् ।
 तदर्धेन च विस्तीर्णं सत्कवाटं शिवालये ॥ ३ ॥
 दीर्घं पञ्चनवत्या च पञ्चशाखासुशोभितम् ।
 सत्कवाटद्वयोपेतं श्रीमद्वाहनमण्डपम् ॥ ४ ॥
 द्वारं पश्चान्मुखं ज्ञेयमशेषार्थप्रसाधकम् ।
 अभावे प्राङ्मुखं कार्यमुदग्दक्षिणतो न च ॥ ५ ॥
 गवाक्षकद्वयं कार्यमपिधानं सुशोभनम् ।
 धूमनिर्गमनार्थाय दक्षिणोत्तरकुड्ययोः ॥ ६ ॥
 आग्नेयभागात्परितः कार्या जालगवाक्षकाः ।
 ऊर्ध्वस्तूपिकया युक्ता ईषच्छिद्रपिधानया ॥ ७ ॥
 शिवामिहोत्रकुण्डं च वृत्तं हस्तप्रमाणतः ।
 चतुरश्रवेदिका श्रीमन्मेखलात्रयभूषितम् ॥ ८ ॥
 कुड्यं द्विहस्तविस्तीर्णं पञ्चहस्तसमुच्छ्रितम् ।
 शिवामिहोत्रशरणं कर्तव्यमतिशोभनम् ॥ ९ ॥
 जगतीस्तम्भपट्टाद्यं सप्तसंख्यं च कल्पयेत् ।
 बन्धयोगविनिर्मुक्तं तुल्यस्थानपदान्तरम् ॥ १० ॥
 ऐष्टकं कल्पयेद्यन्त्राच्छिवाग्न्यायतनं महत् ।
 चतुःप्रेगीवकोपेतमेकप्रेगीवकेन वा ॥ ११ ॥
 सुधाप्रलिप्तं कर्तव्यं पञ्चाण्डकविभूषितम् ।
 शिवामिहोत्रशरणं चतुरण्डकसंयुतम् ॥ १२ ॥
 बहिस्तदेव जगती त्रिहस्ता वा सुकुट्टिमा ।
 तावदेव च विस्तीर्णा मेखलादिविभूषिता ॥ १३ ॥
 कर्तव्या चात्र जगती तस्याश्वाधः समन्ततः ।
 द्विहस्तमात्रविस्तीर्णा तदर्धार्धसमुच्छ्रिता ॥ १४ ॥

अन्या वृत्ता प्रकर्तव्या रुद्रवेदी सुशोभना ।
 दशहस्तप्रमाणा च चतुरङ्गुलमुच्छ्रिता ॥ १५ ॥
 रुद्रमातृगणानां च दिक्पतीनां च सर्वदा ।
 सर्वाग्रपाकसंयुक्तं तासु नित्यबलिं हरेत् ॥ १६ ॥
 वेद्यन्या सर्वभूतानां बहिः कार्या द्विहस्तिका ।
 वृषस्थानं च कर्तव्यं शिवा लोकनसंमुखम् ॥ १७ ॥
 अग्राधसवितुर्व्योम वृषः कार्यश्च पश्चिमे ।
 व्योम्नश्चाधस्त्रिगर्भं स्यात् पितृतर्पणवेदिका ॥ १८ ॥
 प्राकारान्तर्बहिः कार्यं श्रीमद्गोपुरभूषितम् ।
 पुष्पारामजलोपेतं प्राकारान्तं च कारयेत् ॥ १९ ॥
 मृद्वारुजं तृणच्छन्नं प्रकुर्वीत शिवालयम् ।
 भूमिकाद्वयविन्यासादुत्क्षिप्तं कल्पयेद्बुधः ॥ २० ॥
 शिवदक्षिणतः कार्यं तद्भुक्तेर्योग्यमालयम् ।
 शय्यासनसमायुक्तं वास्तुविद्याविनिर्मितम् ॥ २१ ॥
 ध्वजसिंहौ वृषगजौ चत्वारः शोभनाः स्मृताः ।
 भूमश्चगर्दभध्वाङ्क्षाश्चत्वारश्चार्थनाशकाः ॥ २२ ॥
 रुद्रस्यायामविस्तारं कृत्वा त्रिगुणमादितः ।
 अष्टभिः शोधयेदापैः शेषश्च गृहमादिशेत् ॥ २३ ॥
 इति शान्तिगृहं कृत्वा रुद्राग्निं यः प्रवर्तयेत् ।
 अप्येकं दिवसं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥
 कलत्रपुत्रमित्राद्यैः स भृत्यैः परिवारितः ।
 कुलैकविंशदुत्तार्य शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
 नीलोत्पलदलश्यामाः पीनवृत्तपयोधराः ।
 हेमवर्णाः स्त्रियश्चान्याः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ २६ ॥

तामिः सार्धं महामोगैर्विमनैः सार्वकामिकैः ।
 इच्छया क्रीडते तावद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २७ ॥
 ततः कल्पाग्निना सार्धं दह्यमानं सुविह्वलम् ।
 दृष्ट्वा विरज्यते भूयो भवभोगमहार्णवात् ॥ २८ ॥
 ततः संपृच्छते रुद्रास्तत्रस्थान् ज्ञानपारगान् ।
 तेभ्यः प्राप्य शिवज्ञानं शान्तं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ २९ ॥
 अविरक्तश्च भोगेभ्यः सप्त जन्मानि जायते ।
 पृथिव्यधिपतिः श्रीमानिच्छया वा द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥
 सप्तमाज्जन्मनश्चान्ते शिवज्ञानमवाप्नुयात् ।
 ज्ञानाद्विरक्तः संसाराच्छुद्धः खान्यधितिष्ठति ॥ ३१ ॥
 इत्येतदखिलं कार्यं फलमुक्तं समासतः ।
 उत्सवे च पुनर्ब्रूमः प्रत्येकं द्रव्यजं फलम् ॥ ३२ ॥
 सद्गन्धगुटिकामेकां लाक्षां प्राण्यङ्गवर्जिताम् ।
 कर्पासास्थिप्रमाणां च हुत्वाग्नौ शृणुयात् फलम् ॥ ३३ ॥
 यावत्सद्गन्धगुटिका शिवाग्नौ संख्यया हुता ।
 तावत्कोट्यस्तु वर्षाणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ३४ ॥
 एकाङ्गुलप्रमाणेन हुत्वाग्नौ चन्दनाहुतिम् ।
 वर्षकोटिद्वयं भोगैर्दिव्यैः शिवपुरे वसेत् ॥ ३५ ॥
 यावत्केसरसंख्यानं कुसुमस्यानले हुतम् ।
 तावद्भुगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ३६ ॥
 नागकेसरपुष्पं तु कुङ्कुमार्धेन कीर्तितम् ।
 यत्फलं चन्दनस्योक्तमुशीरस्य तदर्धकम् ॥ ३७ ॥
 यत्पुष्पधूपमक्षयान्नदधिक्षीरघृतादिभिः ।
 पुण्यलिङ्गार्चने प्रोक्तं तद्धोमस्य दशाधिकम् ॥ ३८ ॥

हुत्वाऽग्नौ समिधस्तिष्ठः शिवोमास्कन्दनामभिः ।
 पश्चाद्दद्यात्तिलान्नानि होमयीत यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥
 पलाशाङ्कुरजारिष्टपालाल्यः समिधः शुभाः ।
 पृषदाज्यप्लुता हुत्वा शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ ४० ॥
 पलाशाङ्कुरसंख्यानां यावदग्नौ हुतं भवेत् ।
 तावत्कल्पान्महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ४१ ॥
 तल्लक्ष्यमध्यसंभूतं हुत्वाग्नौ समिधः शुभाः ।
 कल्पार्धसंमितं कालं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४२ ॥
 शमीसमित्फलं देयमब्दानपि च लक्षकम् ।
 शम्यर्धफलवच्छेषाः समिधः क्षीरवृक्षजाः ॥ ४३ ॥
 तिलसंख्यान् तिलान् हुत्वा ह्याज्याक्ता यावती भवेत् ।
 तावत्स वर्षलक्षांस्तु भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४४ ॥
 यावत्सुरौषधीरञ्जस्तिलतुल्यफलं स्मृतम् ।
 इतरेभ्यस्तिलेभ्यश्च कृष्णानां द्विगुणं फलम् ॥ ४५ ॥
 लाजाक्षताः सगोधूमा वर्षलक्षफलप्रदाः ।
 दशसाहसिका ज्ञेयाः शेषाः स्युर्बीजजातयः ॥ ४६ ॥
 पलाशेन्धनजे वह्नौ होमस्य द्विगुणं फलम् ।
 क्षीरवृक्षसमृद्धेऽग्नौ फलं सार्धाधिकं भवेत् ॥ ४७ ॥
 असमिद्धे सधूमे च होमकर्म निरर्थकम् ।
 अन्धश्च जायमानः स्याद्धारिद्र्योपहतस्तथा ॥ ४८ ॥
 न च कण्टकिभिर्वृक्षैरग्निं प्रज्वाल्य होमयेत् ।
 शुष्कैर्नवैः प्रशस्तैश्च काष्ठैरग्निं समिन्धयेत् ॥ ४९ ॥
 एवमाज्याहुतिं हुत्वा शिवलोकमवाप्नुयात् ।
 तत्र कल्पशतं भोगान् भुङ्क्ते दिव्यान् यथेप्सितान् ॥ ५० ॥

स्रुचैकाहितमात्रेण व्रतस्यापूरितेन च ।
 याहुतिर्दीयते बहौ सा पूर्णाहुतिरुच्यते ॥ ५१ ॥
 एकां पूर्णाहुतिं हुत्वा शिवेन शिवभावितः ।
 सर्वकाममवाप्नोति शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ५२ ॥
 अशेषकुलजैः सार्धं स भृत्यैः परिवारितः ।
 आभूतसंस्तवं यावद्भोगान् भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥ ५३ ॥
 ततश्च प्रलये प्राप्ते संप्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ।
 प्रसादादीश्वरस्यैव मुच्यते भवसागरात् ॥ ५४ ॥
 शिवपूर्णाहुतिं बहौ पतन्ती यः प्रपश्यति ।
 सोऽपि पापैर्नरः सर्वैर्मुक्तः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ५५ ॥
 शिवाग्निधूमसंस्पृष्टा जीवाः सर्वे चराचराः ।
 तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥ ५६ ॥
 शिवयज्ञमहावेद्या जायते ये न सन्ति वा ।
 तेऽपि यान्ति शिवस्थानं जीवाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५७ ॥
 पूर्णाहुतिं घृताभावे क्षीरतैलेन कल्पयेत् ।
 होमयेदतसीतैलं तिलतैलं विना नरः ॥ ५८ ॥
 सर्षपेङ्गुदिकाशाम्रकरञ्जमधुकाक्षजम् ।
 प्रियङ्गुबिल्वपैप्पल्यनालिकेरसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥
 इत्येवमादिकं तैलमाज्याभावे प्रकल्पयेत् ।
 दूर्वया बिल्वपत्रैर्वा समिधः संप्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥
 अन्नार्थं होमयेत् क्षीरं दधि मूलफलानि वा ।
 तिलार्थं तण्डुलैः कुर्याद्भार्थं हरितैस्तृणैः ॥ ६१ ॥
 परिधीनामभावेन शरैर्वैशैश्च कल्पयेत् ।
 हन्त्रनानामभावेन दीपयेत् तृणगोमयैः ॥ ६२ ॥

गोमयानामभावेन महत्यम्भसि होमयेत् ।
 अपामसंभवे होमं भूमिभागे मनोहरे ॥ ६३ ॥
 विप्रस्य दक्षिणे पाणावश्वत्थे तदभावतः ।
 छागस्य दक्षिणे कर्णे कुशमूले च होमयेत् ॥ ६४ ॥
 स्वात्माग्नौ होमयेत् प्राज्ञः सर्वाग्नीनामसंभवे ।
 अभावे न त्यजेत् कर्म कर्मयोगविधौ स्थितः ॥ ६५ ॥
 आपत्कालेऽपि यः कुर्याच्छिवाग्नेर्मनसा चर्चनम् ।
 स मोहकञ्चुकं त्यक्त्वा परां शान्तिमवाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
 प्राणामिहोत्रं कुर्वन्ति परमं शिवयोगिनः ।
 बाह्यकर्मविनिर्मुक्ता ज्ञानध्यानसमाकुलाः ॥ ६७ ॥

इति शिवोपनिषदि शान्तिगृह्यक्रियाध्यायश्चतुर्थः

पञ्चमोऽध्यायः

अथाग्नेयं महास्नानमलक्ष्मीमलनाशनम् ।
 सर्वपापहरं दिव्यं तपः श्रीकीर्तिवर्धनम् ॥ १ ॥
 अग्निरूपेण रुद्रेण स्वतेजः परमं बलम् ।
 भूतिरूपं समुद्रीर्णं विशुद्धं दुरितापहम् ॥ २ ॥
 यक्षरक्षःपिशाचानां ध्वंसनं मन्त्रसत्कृतम् ।
 रक्षार्थं बालरूपाणां सूतिकानां गृहेषु च ॥ ३ ॥
 यश्च भुङ्क्ते द्विजः कृत्वान्नस्य वा परिधिन्नयम् ।
 अपि शूद्रस्य पङ्क्तिस्थः पङ्क्तिदोषैर्न लिप्यते ॥ ४ ॥

आहारमर्धमुक्तं च कीटकेशादिवृषितम् ।
 तावन्मात्रं समुद्धृत्य भूतिस्पृष्टं विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 आरण्यं गोमयकृतं करीषं वा प्रशस्यते ।
 शर्करापांसुनिर्मुक्तमभावे काष्ठभस्मना ॥ ६ ॥
 स्वगृहाश्रमबल्लीभ्यः कुलालालयभस्मना ।
 गोमयेषु च दग्धेषु हीष्टकार्णि च येषु च ॥ ७ ॥
 सर्वत्र विद्यते भस्म दुःखापार्जनरक्षणम् ।
 शङ्खकुन्देन्दुवर्णभस्मादद्याज्जन्तुवर्जितम् ॥ ८ ॥
 भस्मानीय प्रयत्नेन तद्रक्षेद्यत्नवांस्तथा ।
 माजारमृषिकाद्यैश्च नोपहन्येत तद्यथा ॥ ९ ॥
 पञ्चदोषविनिर्मुक्तं गुणपञ्चकसंयुतम् ।
 शिवैकादशिकाजसं शिवभस्म प्रकीर्तितम् ॥ १० ॥
 जातिकारुकाकायस्थानदुष्टं च पञ्चमम् ।
 पापघ्नं शाङ्करं रक्षापवित्रं योगदं गुणाः ॥ ११ ॥
 शिवव्रतस्य शान्तस्य भासकत्वाच्छुभस्य च ।
 भक्षणात् सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम् ॥ १२ ॥
 भस्मस्नानं शिवस्नानं वारुणादधिकं स्मृतम् ।
 जन्तुशैवालनिर्मुक्तमाग्नेयं पङ्कवर्जितम् ॥ १३ ॥
 अपवित्रं भवेत्तोयं निशि पूर्वमनाहृतम् ।
 नदीतडागवापीषु गिरिप्रस्रवणेषु च ॥ १४ ॥
 स्नानं साधारणं प्रोक्तं वारुणं सर्वदेहिनाम् ।
 असाधारणमेवोक्तं भस्मस्नानं द्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥
 त्रिकालं वारुणस्नानादनारोम्यं प्रजायते ।
 आग्नेयं रोगशमनमेतस्मात् सार्वकामिकम् ॥ १६ ॥

सन्ध्यात्रयेऽर्घ्यात्रे च भुक्त्वा चाकशिरेचने ।
 शिवयोग्याचरेत् स्नानमुद्यारादिक्रियासु च ॥ १७ ॥
 भस्मास्तृते महीभागे समे जन्तुविवर्जिते ।
 ध्यायमानः शिवं योगी रजन्यन्तं शयीत च ॥ १८ ॥
 एकरात्रोषितस्यापि या गतिर्भस्मशायिनः ।
 न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं यज्ञशतैरपि ॥ १९ ॥
 गृहस्थस्त्रयायुषोद्धारैः स्नानं कुर्यात् त्रिपुण्ड्रकैः ।
 यतिः सार्वभौमिकं स्नानमापादतलमस्तकात् ॥ २० ॥
 शिवभक्तस्त्रिधा वेद्यां भस्मस्नानफलं लभेत् ।
 हृदि मूर्ध्नि ललाटे च शूद्रः शिवगृहाश्रमी ॥ २१ ॥
 गणाः प्रव्रजिताः शान्ता भूतिमालम्ब्य पञ्चधा ।
 शिरोललाटे हृद्वाहोर्भस्मस्नानफलं लभेत् ॥ २२ ॥
 संवत्सरं तदर्थं वा चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
 यः कुर्याद्भस्मना स्नानं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २३ ॥
 शिवभस्मनि यावन्तः समेताः परमाणवः ।
 तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २४ ॥
 एकविंशकुलोपेतः पत्नीपुत्रादिसंयुतः ।
 मित्रस्वजनभृत्यैश्च समस्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥
 तत्र भुक्त्वा महामोगानिच्छया सार्वकामिकान् ।
 ज्ञानयोगं समासाद्य प्रलये मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
 भस्म भस्मान्तिकं येन गृहीतं नैष्ठिकव्रतम् ।
 अनेन वै स देहेन रुद्रश्चङ्क्रमते क्षितौ ॥ २७ ॥
 भस्मस्नानरतं शान्तं ये नमन्ति दिने दिने ।
 ते सर्वपापनिर्मुक्ता नरा यान्ति शिवं पुरम् ॥ २८ ॥

इत्येतत्परमं ज्ञानमाग्नेयं शिवनिर्मितम् ।
 त्रिसन्ध्यमाचरेन्नित्यं जापी योगमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
 भस्मानीय प्रदद्याद्यः स्नानार्थं शिवयोगिने ।
 कल्पं शिवपुरे भोगान् भुक्त्वान्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ ३० ॥
 आग्नेयं वारुणं मान्नं वायव्यं त्वैन्द्रपञ्चमम् ।
 मानसं शान्तितोयं च ज्ञानस्नानं तथाष्टमम् ॥ ३१ ॥
 आग्नेयं रुद्रमन्त्रेण भस्मस्नानमनुत्तमम् ।
 अम्भसा वारुणं स्नानं कार्यं वारुणमूर्तिना ॥ ३२ ॥
 मूर्धानं पाणिनाऽऽलभ्य शिवैकादशिकां जपेत् ।
 ध्यायमानः शिवं शान्तं मन्त्रस्नानं परं स्मृतम् ॥ ३३ ॥
 गवां खुरपुटोत्खातपवनोद्धूतरेणुना ।
 कार्यं वायव्यकं स्नानं मन्त्रेण मरुदात्मना ॥ ३४ ॥
 व्यभ्रेऽर्कं वर्षति स्नानं कुर्यादैन्द्रीं दिशं स्थितः ।
 आकाशमूर्तिमन्त्रेण तदैन्द्रमिति कीर्तितम् ॥ ३५ ॥
 उदकं पाणिना गृह्य सर्वतीर्थानि संस्मरेत् ।
 अभ्युक्षयेच्छिरस्तेन स्नानं मानसमुच्यते ॥ ३६ ॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च ।
 तेषु स्नातस्य अत्पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा ॥ ३७ ॥
 न तथा शुध्यते तीर्थैस्तपोभिर्वा महाध्वरैः ।
 पुरुषः सर्वदानैश्च यथा क्षान्त्या विशुद्ध्यति ॥ ३८ ॥
 आक्रुष्टस्ताडितस्तस्मादधिकक्षिप्तस्तिरस्कृतः ।
 क्षमेदक्षममानानां स्वर्गमोक्षजिगीषया ॥ ३९ ॥
 यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्यैव प्राप्तिस्तपस्विनाम् ।
 यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावत्तम् ॥ ४० ॥

ज्ञानामलाभसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः । ४० ॥
 निर्मलस्सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरश्मिवत् ॥ ४१ ॥
 मेध्यामेध्यरसं यद्वदपि वत्स विना करैः ।
 नैव लिप्यति तदोषैस्तद्वदज्ञानी सुनिर्मलः ॥ ४२ ॥
 एषामेकतमे स्नातः शुद्धभावः शिवं व्रजेत् ।
 अशुद्धभावः स्नातोऽपि पूजयन्नाप्नुयात् फलम् ॥ ४३ ॥
 जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः ।
 ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम् ॥ ४४ ॥
 अङ्गुष्ठतलमूले च ब्राह्मं तीर्थमवस्थितम् ।
 तेनाचम्य भवेच्छुद्धः शिवमन्त्रेण भावितः ॥ ४५ ॥
 यदधः कन्यकायाश्च तत्तीर्थं दैवमुच्यते ।
 तीर्थं प्रदेशिनीमूले पित्र्यं पितृविधोदयम् ॥ ४६ ॥
 मध्यमाङ्गुलिमध्येन तीर्थमारिषमुच्यते ।
 करपुष्करमध्ये तु शिवतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ ४७ ॥
 वामपाणितले तीर्थमौमं नाम प्रकीर्तितम् ।
 शिवोमातीर्थसंयोगात् कुर्यात् स्नानाभिषेचनम् ॥ ४८ ॥
 देवान् दैवेन तीर्थेन तर्पयेदकृताभसा ।
 उद्धृत्य दक्षिणं पाणिमुपवीती सदा बुधः ॥ ४९ ॥
 प्राचीनावीतिनाः कार्यं पितृणां तिलवारिणा ।
 तर्पणं सर्वभूतानामारिषेण निवीतिना ॥ ५० ॥
 सव्यस्कन्धे यदा सूत्रमुपवीत्युच्यते तदा ।
 प्राचीनावीत्यसव्येन निवीती कण्ठसंस्थिते ॥ ५१ ॥

पितृणां तर्पणं कृत्वा सूर्यायार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।

उपस्थाय ततः सूर्यं यजेच्छिवमनन्तरम् ॥ ५२ ॥

इति शिवोपनिषदि शिवभस्मस्नानाध्यायः पञ्चमः

षष्ठोऽध्यायः

अथ भक्त्या शिवं पूज्य नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।

यदन्नमात्मनाऽश्रीयात्तस्याग्ने विनिवेदयेत् ॥ १ ॥

यः कृत्वा भक्ष्यभोज्यानि यत्नेन विनिवेदयेत् ।

शिवाय स शिवे लोके कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ २ ॥

यः पक्वं श्रीफलं दद्याच्छिवाय विनिवेदयेत् ।

गुरोर्वा होमयेद्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३ ॥

श्रीमद्भिः स महायानैर्मोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।

वर्षाणामयुतं साग्रं तदन्ते श्रीपतिर्भवेत् ॥ ४ ॥

कपित्थमेकं यः पक्वमीश्वराय निवेदयेत् ।

वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥

एकमाग्नफलं पक्वं यः शंभोर्विनिवेदयेत् ।

वर्षाणामयुतं भोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ ६ ॥

एकं वटफलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् ।

वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ७ ॥

यः पक्वं दाडिमं चैकं दद्याद्विकसितं नवम् ।

शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८ ॥

यावत्तद्बीजसंख्यानं शोभनं परिकीर्तितम् ।
 तावदष्टायुतान्युच्चैः शिवलोके महीयते ॥ ९ ॥
 द्वाक्षाफलानि पक्वानि यः शिवाय निवेदयेत् ।
 भक्त्या वा शिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १० ॥
 यावत्तत्फलसंख्यानमुभयोर्विनिवेदितम् ।
 तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ११ ॥
 द्वाक्षाफलेषु यत्पुण्यं तत्त्वर्जूरफलेषु च ।
 तदेव राजवृक्षेषु पारावतफलेषु च ॥ १२ ॥
 यो नारङ्गफलं पक्वं विनिवेद्य महेश्वरे ।
 अष्टलक्षं महाभोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ १३ ॥
 बीजपूरेषु तस्यार्थं तदर्थं लिङ्गेषु च ।
 जम्बूफलेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं तिन्दुकेषु च ॥ १४ ॥
 पनसं नारिकेलं वा शिवाय विनिवेदयेत् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ १५ ॥
 पुरुषं च प्रियालं च मधूककुसुमानि च ।
 जम्बूफलानि पक्वानि वैकट्यफलानि च ॥ १६ ॥
 निवेद्य भक्त्या शर्वाय प्रत्येकं तु फले फले ।
 दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ १७ ॥
 क्षीरिकायाः फलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ १८ ॥
 वालुकान्नपुसादीनि यः फलानि निवेदयेत् ।
 शिवाय गुरवे वापि पक्वं च करमर्दकम् ॥ १९ ॥
 दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 बदराणि सुपक्वानि तिन्तिडीकफलानि च ॥ २० ॥

दर्शनीयानि पकानि ह्यामलक्याः फलानि च ।
 एवमादीनि चान्यानि शाकमूलफलानि च ॥ २१ ॥
 निवेदयीत शर्वाय शृणु यत्फलमामुयात् ।
 एकैकस्मिन् फले भोगान् प्राप्नुयादनुपूर्वशः ॥ २२ ॥
 पञ्चवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 गोधूमचणकाद्यानि सुकृतं सक्तुमर्जितम् ॥ २३ ॥
 निवेदयीत शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यावत्तद्धीजसंख्यानं शुभं अष्टं निवेदयेत् ॥ २४ ॥
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 यः पकानीक्षुदण्डानि शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २५ ॥
 गुरवे वापि तद्वक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 इक्षुपर्णानि चैकैकं वर्षलोकं प्रमोदते ॥ २६ ॥
 साकं शिवपुरे भोगैः पौण्ड्रं पञ्चगुणं फलम् ।
 निवेद्य परमेशाय शुक्तिमात्ररसस्य तु ॥ २७ ॥
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।
 निवेद्य फाणितं शुद्धं शिवाय गुरवेऽपि वा ॥ २८ ॥
 रसात् सहस्रगुणितं फलं प्राप्नोति मानवः ।
 गुडस्य पलमेकं यः शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २९ ॥
 अब्दकोटिं शिवे लोके महाभोगैः प्रमोदते ।
 खण्डस्य पलनैवेद्यं गुडाच्छतगुणं फलम् ॥ ३० ॥
 खण्डात् सहस्रगुणितं शर्कराया निवेदने ।
 मत्संडिकां महाशुद्धां शङ्कराय निवेदयेत् ॥ ३१ ॥
 कल्पकोटिं नरः साग्रं शिवलोके महीयते ।
 परिशुद्धं भृष्टमाज्यं सिद्धं चैव सुसंस्कृतम् ॥ ३२ ॥

मांसं निवेद्य शर्वाय शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।
 अशेषफलदानेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥
 तत्पुण्यं प्राप्नुयात् सर्वं महादाननिवेदने ।
 पनसानि च दिव्यानि स्वादूनि सुरभीणि च ॥ ३४ ॥
 निवेदयेत्तु शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कल्पकोटिं नरः साग्रं शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ३५ ॥
 पिबन् शिवामृतं दिव्यं महाभोगैः प्रमोदते ।
 दिने दिने च यस्त्वापं वल्लपूतं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
 सुखाय शिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 महासरांसि यः कुर्याद्भवेत् पुण्यं शिवाग्रतः ॥ ३७ ॥
 तत्पुण्यं सकलं प्राप्य शिवलोके महीयते ।
 यदिष्टमात्मनः किञ्चिदन्नपानफलादिकम् ॥ ३८ ॥
 तत्तच्छिवाय देयं स्यादुत्तमं भोगमिच्छता ।
 न शिवः परिपूर्णत्वात् किञ्चिदश्नाति कस्यचित् ॥ ३९ ॥
 किन्न्वीश्वरनिमं कृत्वा सर्वमात्मनि दीयते ।
 न रोहति यथा बीजं स्वस्थमाश्रयवर्जितम् ॥ ४० ॥
 पुण्यबीजं तथा सूक्ष्मं निष्फलं स्यान्निराश्रयम् ।
 सुक्षेत्रेषु यथा बीजमुप्तं भवति सत्फलम् ॥ ४१ ॥
 अल्पमप्यक्षयं तद्वत् पुण्यं शिवसमाश्रयात् ।
 तस्मादीश्वरमुद्दिश्य यद्यदात्मनि रोचते ॥ ४२ ॥
 तत्तदीश्वरभक्तेभ्यः प्रदातव्यं फलार्थिना ।
 यः शिवाय गुरोर्वापि रचयेन्मणिभूमिकम् ॥ ४३ ॥
 नैवेद्यं भोजनार्थं यः पत्नैः पुण्यैश्च शोभनम् ।
 यावत्तत्पुण्याणां परिसंख्या विधीयते ॥ ४४ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि सुरलोके महीयते ।
 पलाशकदलीपद्मपत्राणि च विशेषतः ॥ ४५ ॥
 दत्त्वा शिवाय गुरवे शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।
 यावत्तत्पत्रसंख्यानमीश्वराय निवेदितम् ॥ ४६ ॥
 तावदब्दायुतानां स लोके भोगानवाप्नुयात् ।
 यावत्ताम्बूलपत्राणि पूगांश्च विनिवेदयेत् ॥ ४७ ॥
 तावन्ति वर्षलक्षाणि शिवलोके महीयते ।
 यच्छुद्धं शङ्खचूर्णं वा गुरवे विनिवेदयेत् ॥ ४८ ॥
 ताम्बूलयोगसिद्धयर्थं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यावत्ताम्बूलपत्राणि चूर्णमानेन भक्षयेत् ॥ ४९ ॥
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 जातीफलं सकङ्कोलं लताकस्तूरिकोत्पलम् ॥ ५० ॥
 इत्येतानि सुगन्धीनि फलानि विनिवेदयेत् ।
 फले फले महाभोगैर्वर्षलक्षं तु यत्नतः ॥ ५१ ॥
 कामिकेन विमानेन क्रीडते स शिवे पुरे ।
 त्रुटिमात्रप्रमाणेन कर्पूरस्य शिवे गुरौ ॥ ५२ ॥
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।
 पूगताम्बूलपत्राणामाधारं यो निवेदयेत् ॥ ५३ ॥
 वर्षकोट्यष्टकं भोगैः शिवलोके महीयते ।
 यश्चूर्णाधारसत्पात्रं कस्यापि विनिवेदयेत् ॥ ५४ ॥
 मोदते स शिवे लोके वर्षकोटीश्चतुर्दश ।
 मृत्काष्ठवंशखण्डानि यः प्रदद्याच्छिवाश्रमे ॥ ५५ ॥
 प्राप्नुयाद्विपुलान् भोगान् दिव्याम्बिवपुरे नरः ।
 माणिक्यं कलशं पात्रीं स्थाल्यादीन् भाण्डसंपुटान् ॥ ५६ ॥

दत्त्वा शिवाग्रजस्त्वेभ्यः शिवलोके महीयते ।
 तोयाधारपिधानानि मृद्वस्त्रतरुजानि वा ॥ ५७ ॥
 वंशालाबुसमुत्थानि दत्त्वाप्नोति शिवं पुरम् ।
 पञ्चसंमार्जनीतोयं गोमयाञ्जनकर्पटान् ॥ ५८ ॥
 मृत्कुम्भपीठिकां दद्याद्भोगाच्छिवपुरे लभेत् ।
 यः पुष्पधूपगन्धानां दधिक्षीरघृताम्भसाम् ॥ ५९ ॥
 दद्यादाधारपात्राणि शिवलोकं स गच्छति ।
 वंशतालादिसंभूतं पुष्पाधारकरण्डकम् ॥ ६० ॥
 इत्येवमाद्यान् यो दद्याच्छिवलोकमवाप्नुयात् ।
 यः सुवसुवादिपात्राणि होमार्थं विनिवेदयेत् ॥ ६१ ॥
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।
 यः सर्वधातुसंयुक्तं दद्याल्लवणपर्वतम् ॥ ६२ ॥
 शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ६३ ॥
 स गोतृमृत्युसंयुक्तो वसेच्छिवपुरे नरः ।
 विमानयानैः श्रीमद्भिः सर्वकामसमन्वितैः ॥ ६४ ॥
 भोगान् भुक्त्वा तु विपुलांस्तदन्ते स महीपतिः ।
 मनःशिलां हरीतालं राजपट्टं च हिङ्गुलम् ॥ ६५ ॥
 गौरिकं मणिदन्तं च हेमतोयं तथाष्टमम् ।
 यश्च तं पर्वतवरं शालितण्डुलकल्पितम् ॥ ६६ ॥
 शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कल्पकोटिशतं साग्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ६७ ॥
 यः सर्वधान्यशिखरैरुपेतं यवपर्वतम् ।
 घृततैलनदीयुक्तं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६८ ॥

कल्पकोटिशतं साग्रं भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 समस्तकुलजैः सार्धं तस्यान्ते स महीपतिः ॥ ६९ ॥
 तिलधेनुं प्रदद्याद्यः कृत्वा कृष्णाजिने नरः ।
 कपिलायाः प्रदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ७० ॥
 घृतधेनुं नरः कृत्वा कांस्यपात्रे सकाञ्चनाम् ।
 निवेद्य गोप्रदानस्य समग्रं फलमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
 द्वीपिचर्मणि यः स्थाप्य प्रदद्याल्लवणाढकम् ।
 अशेषरसदानस्य यत्पुण्यं तदवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥
 मरिचादेन कुर्वीत मारीचं नाम पर्वतम् ।
 दद्याद्यज्जीरकं पूर्वमाग्नेयं हिङ्गुमुत्तमम् ॥ ७३ ॥
 दक्षिणे गुडशुण्ठी च नैर्ऋते नागकेसरम् ।
 पिप्पली पश्चिमे दद्याद्वायव्ये कृष्णाजीरकम् ॥ ७४ ॥
 कौबेर्यामजमोदं च त्वगेलाश्चेशदैवते ।
 कुत्तुम्बर्याः प्रदेयाः स्युर्बहिः प्राकारतः स्थिताः ॥ ७५ ॥
 ककुभामन्तरालेषु समन्तात् सैन्धवं न्यसेत् ।
 सपुष्पाक्षततोयेन शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ७६ ॥
 यावत्तद्दीपसंख्यानं सर्वमेकत्र पर्वते ।
 तावद्ब्रह्मशतादूर्ध्वं भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ७७ ॥
 कूश्माण्डं मध्यतः स्थाप्य कालिङ्गं पूर्वतो न्यसेत् ।
 दक्षिणे क्षीरतुर्न्वी तु वृन्ताकं पश्चिमे न्यसेत् ॥ ७८ ॥
 पटीसान्युत्तरे स्थाप्य कर्कटीमीशदैवते ।
 न्यसेद्भजपटोलांश्च मधुरान् वह्निदैवते ॥ ७९ ॥
 कारवेलांश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां निम्बकं फलम् ।
 उच्चावचानि चान्यानि फलानि स्थापयेद्बहिः ॥ ८० ॥

अभ्यर्च्य पुण्यघृषैश्च समन्तात् फलपर्वतम् ।
 शिवाय गुरवे वापि प्रणिपत्य निवेदयेत् ॥ ८१ ॥
 यावत्तत्फलसंख्यानं तद्दीपानां च मध्यतः ।
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८२ ॥
 मूलकं मध्यतः स्थाप्य तत्पूर्वं वालमूलकम् ।
 आग्नेय्यां वास्तुकं स्थाप्य याम्यायां क्षारवास्तुकम् ॥ ८३ ॥
 पालक्यं नैर्ऋते स्थाप्य सुमुखं पश्चिमे न्यसेत् ।
 कुहद्रकं च वायव्यामुत्तरे वापि तालिकीम् ॥ ८४ ॥
 कुसुम्भशाकमैशान्यां सर्वशाकानि तद्दहिः ।
 पूर्वक्रमेण विन्यस्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥
 यावत्तन्मूलनालानां पत्रसंख्या च कीर्तिता ।
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८६ ॥
 दत्त्वा लभेन्महाभोगान् गुग्गुलुवद्रेः पलद्वयम् ।
 वर्षकोटिद्वयं स्वर्गे द्विगुणं गुडमिश्रितैः ॥ ८७ ॥
 गुडार्द्रकं सलवणमाग्रमंजरिसंयुतम् ।
 निवेद्य गुरवे भक्त्या सौभाग्यं परमं लभेत् ॥ ८८ ॥
 हस्तारोप्येण वा कृत्वा महारत्नान्वितां महीम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय शिवतुल्यः प्रजायते ॥ ८९ ॥
 वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यपद्मरागं समौक्तिकम् ।
 कीटपक्षं सुवर्णं च महारत्नानि सप्त वै ॥ ९० ॥
 यश्च सिंहासनं दद्यान्महारत्नान्वितं नृपः ।
 क्षुद्रंरत्नैश्च विविधैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९१ ॥
 कुलत्रिशकसंयुक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः ।
 समस्तमृत्युसंयुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ९२ ॥

तत भुक्त्वा महाभोगान् शिवतुल्यपराक्रमः ।
 आमहाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥
 यदि चेद्राज्यमाकाङ्क्षेत्ततः सर्वसमाहितः ।
 सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥ ९४ ॥
 जन्मकोटिसहस्राणि जन्मकोटिशतानि च ।
 राज्यं कृत्वा ततश्चान्ते पुनः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ९५ ॥
 एतदेव फलं ज्ञेयं मकुटाभरणादिषु ।
 रत्नासनप्रदानेन पादुके विनिवेदयेत् ॥ ९६ ॥
 दद्याद्यः केवलं वज्रं शुद्धं गोधूममात्रकम् ।
 शिवाय स शिवे लोके तिष्ठेदाप्रलयं सुखी ॥ ९७ ॥
 इन्द्रनीलप्रदानेन स वैदूर्यप्रदानतः ।
 मोदते विविधैर्मोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ॥ ९८ ॥
 मसूरमात्रमपि यः पद्मरागं सुशोभनम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय मोदते कालमक्षयम् ॥ ९९ ॥
 निवेद्य मौक्तिकं स्वच्छमेकमागैकमात्रकम् ।
 मोगैः शिवपुरे दिव्यैः कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ १०० ॥
 कीटपक्षं महाशुद्धं निवेद्य यवमात्रकम् ।
 शिवायाद्यः शिवे लोके मोदते कालमक्षयम् ॥ १०१ ॥
 हेम्ना कृत्वा च यः पुष्पमपि माषकमात्रकम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय वर्षकोटिं वसेद्विवि ॥ १०२ ॥
 क्षुद्ररत्नानि यो दद्याद्धेम्नि बद्धानि शम्भवे ।
 मोदते स शिवे लोके कल्पकोट्ययुतं नरः ॥ १०३ ॥
 यथा यथा महारत्नं शोभनं च यथा यथा ।
 तथा तथा महत्पुण्यं ज्ञेयं तच्छिवदानतः ॥ १०४ ॥

भूमिभागे सविस्तीर्णे जम्बूद्वीपं प्रकल्पयेत् ।
 अष्टावरणसंयुक्तं नगेन्द्राष्टकभूषितम् ॥ १०५ ॥
 तन्मध्ये कारयेद्विव्यं मेरुप्रासादमुत्तमम् ।
 अनेकशिखराकीर्णमशेषामरसंयुतम् ॥ १०६ ॥
 बहिः सुवर्णनिचितं सर्वरत्नोपशोभितम् ।
 चतुःप्रग्रीवकोपेतं चक्षुर्लङ्गसमायुतम् ॥ १०७ ॥
 चतुर्दिक्षु वनोपेतं चतुर्भिः संयुतैः शरैः ।
 चतुर्णां पुरयुक्तेन प्राकारेण च संयुतम् ॥ १०८ ॥
 मेरुप्रासादमित्येवं हेमरत्नविभूषितम् ।
 यः कस्येद्वनोपेतं सोऽनन्तफलमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥
 भूम्यम्भःपरमाणूनां यथा सङ्ख्या न विद्यते ।
 शिवायतनपुण्यस्य तथा सङ्ख्या न विद्यते ॥ ११० ॥
 कुलत्रिंशकसंयुक्तः सर्वमृत्युसमन्वितः ।
 कलत्रपुत्रमितैश्च सर्वस्वजनसंयुतः ॥ १११ ॥
 आश्रितोपाश्रितैः सर्वैरशेषगणसंयुतः ।
 यथा शिवस्तथैवायं शर्वलोके स पूज्यते ॥ ११२ ॥
 न च मानुष्यकं लोकमागच्छेत् कृपणं पुनः ।
 सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति ॥ ११३ ॥
 यः शिवाय वनं कृत्वा मुदाब्दसलिलोत्थितम् ।
 तदण्डकोपशोभं च हस्ते कुर्वीत सर्वदा ॥ ११४ ॥
 शोभयेद्भूतनाथं वा चन्द्रशालां क्वचित् क्वचित् ।
 वेदीं वाथाम्यपद्यन्त प्रोन्नताः स्तम्भपङ्क्तयः ॥ ११५ ॥
 शातकुम्भमयीं वापि सर्वलक्षणसंयुताम् ।
 ईश्वरप्रतिमां सौम्यां कारयेत् पुरुषोच्छ्रिताम् ॥ ११६ ॥

त्रिशूलसव्यहस्तां च वरदाभयदायिकाम् ।
 सव्यहस्ताक्षमालां च जटाकुसुमभूषिताम् ॥ ११७ ॥
 पद्मसिंहासनासीनां वृषस्थां वा समुच्छ्रिताम् ।
 विमानस्थां रथस्थां वा वेदिस्थां वा प्रमान्विताम् ॥ ११८ ॥
 सौम्यवक्त्रां करालां वा महामैरवरूपिणीम् ।
 अत्युच्छ्रितां सुविस्तीर्णां नृत्यस्थां योगसंस्थिताम् ॥ ११९ ॥
 कुर्यादसंभवे हेमस्तारेण विमलेन च ।
 आरकूटमयीं वापि ताम्रमृच्छैलदारुजाम् ॥ १२० ॥
 अशेषकैः सरूपैश्च वर्णकैर्वा पटे लिखेत् ।
 कुड्ये वा फलके वापि भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ १२१ ॥
 एकां सपरिवारां वा पार्वतीं गणसंयुताम् ।
 प्रतीहारसमोपेतां कुर्यादिवाविकल्पतः ॥ १२२ ॥
 पीठं वा कारयेद्रौप्यं ताम्रं पित्तलसंभवम् ।
 चतुर्मुखैकवक्त्रं वा बहिः काञ्चनसंस्कृतम् ॥ १२३ ॥
 पृथक्पृथगनेकानि कारयित्वा मुखानि तु ।
 सौम्यमैरवरूपाणि शिवस्य बहुरूपिणः ॥ १२४ ॥
 नानाभरणयुक्तानि हेमरौप्यकृतानि च ।
 शिवस्य रथयानायां तानि लोकस्य दर्शयेत् ॥ १२५ ॥
 उक्तानि यानि पुण्यानि सङ्क्षेपेण पृथक् पृथक् ।
 कृत्वैकेन मसैतेषामक्षयं फलमाप्नुयात् ॥ १२६ ॥
 मातुः पितुः सहोपायैर्दशभिर्दशभिः कुलैः ।
 कलत्रपुत्रमित्राद्यैर्मृत्यैर्युक्तः स बान्धवैः ॥ १२७ ॥
 अयुतेन विमानानां सर्वकामयुतेन च ।
 भुङ्क्ते स्वयं महामोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १२८ ॥

मण्डपस्तम्भपर्यन्ते कीलयेद्दर्पणान्वितम् ।
 अभिविच्य जना यस्मिन् पूजां कुर्वन्ति बिल्वकैः ॥ १२९ ॥
 कालकालाकृतिं कृत्वा कीलयेद्यः शिवाश्रमे ।
 सर्वलोकोपकाराय पूजयेच्च दिने दिने ॥ १३० ॥
 धूपवेलाप्रमाणार्थं कल्पयेद्यः शिवाश्रमे ।
 क्षरन्तीं पूर्यमाणां वा सदाऽऽयामे घटीं नृपः ॥ १३१ ॥
 एषामेकतमं पुण्यं कृत्वा पापविवर्जितः ।
 शिवलोकं नरः प्राप्य सर्वज्ञः स सुखी भवेत् ॥ १३२ ॥
 रथयात्रां प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ।
 सर्वलोकहितार्थाय महाशिल्पिविनिर्मिताम् ॥ १३३ ॥
 रथमध्ये समावेश्य यथा यष्टिं तु कीलयेत् ।
 यष्टेरमध्ये स्थितं कार्यं विमानमतिशोभितम् ॥ १३४ ॥
 पञ्चभौमं त्रिभौमं वा दृढवंशप्रकल्पितम् ।
 वर्मणा सुनिबद्धं च रज्जुमिश्रं सुसंयुतम् ॥ १३५ ॥
 पञ्चशालाण्डकैर्युक्तं नानाभक्तिसमन्वितम् ।
 चित्रवर्णपरिच्छन्नं पटैर्वा वर्णकान्वितैः ॥ १३६ ॥
 लम्बकैः सूत्रदान्ना च घण्टाचामरभूषितम् ।
 बुद्बुदैर्ध्वजैश्च दर्पणैश्च समुज्ज्वलम् ॥ १३७ ॥
 कदल्यर्धध्वजैर्युक्तं महाच्छत्रं महाध्वजम् ।
 पुष्पमालापरिक्षिप्तं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ १३८ ॥
 महारथविमानेऽस्मिन् स्थापयेद्गणसंयुतम् ।
 ईश्वरप्रतिमां हेम्नि प्रथमे पुरमण्डपे ॥ १३९ ॥
 मुखत्रयं च बध्नीयाद्बहिः कुर्यात्तथाश्रितम् ।
 पुरे पुरे बहिर्दिक्षु गृहकेषु समाश्रितम् ॥ १४० ॥

चतुष्कं शिववक्त्राणां संस्थाप्य प्रतिपूजयेत् ।
 दिनत्रयं प्रकुर्वीत खानमर्चनभोजनम् ॥ १४१ ॥
 नृत्यक्रीडाप्रयोगेण गेयमङ्गलपाठकैः ।
 महाबादित्रनिर्घोषैः पौषपूर्णिमपर्वणि ॥ १४२ ॥
 ब्रामयेद्राजमार्गेण चतुर्थेऽहनि तद्रथम् ।
 ततः स्वस्थानमानीय तच्छेषमपि वर्धयेत् ॥ १४३ ॥
 अवधार्य जगद्धात्रीं प्रतिमामवतारयेत् ।
 महाविमानयात्रैषा कर्तव्या पट्टकेऽपि वा ॥ १४४ ॥
 वंशैर्नवैः सुपकैश्च कटं कुर्याद्भरक्षमम् ।
 वृत्तं द्विगुणदीर्घं च चतुरश्रमधः समम् ॥ १४५ ॥
 सर्वत्र चर्मणा बद्धं महायष्टिसमाश्रितम् ।
 मुखं बद्धं च कुर्वीत वंशमण्डलिना दृढम् ॥ १४६ ॥
 कटेऽस्मिंस्तानि वस्त्राणि स्थाप्य बध्नीत यत्नतः ।
 उपर्युपरि सर्वाणि तन्मध्ये प्रतिमां न्यसेत् ॥ १४७ ॥
 वर्णकैः कुङ्कुमाद्यैश्च चित्रपुष्पैश्च पूजयेत् ।
 नानाभरणपूजामिर्मुक्ताहारप्रलम्बिभिः ॥ १४८ ॥
 रथस्य महतो मध्ये स्थाप्य पट्टद्वयं दृढम् ।
 अधरोत्तरभागेन मध्ये छिद्रसमन्वितम् ॥ १४९ ॥
 कटिघट्टेऽधोभागं स्थाप्य छिद्रमयं शुभैः ।
 आबद्ध्य कीलयेद्यन्त्राद्यष्ट्यर्धं च ध्वजाष्टकम् ॥ १५० ॥
 कटस्य पृष्ठं सर्वत्र कारयेत् पटसंयुतम् ।
 तत्पटे च लिखेत् सोमं सगणं सवृषं शिवम् ॥ १५१ ॥
 विचित्रपुष्पसम्प्राप्ता समन्ताद्भूषयेत् कटम् ।
 रवकैः किङ्किणीजालैर्बण्टाचामरभूषितैः ॥ १५२ ॥

महापूजाविशेषैश्च कौतूहलसमन्वितम् ।
वाधारम्भोपचारेण मार्गशोभां प्रकल्पयेत् ॥ १५३ ॥
तद्व्यं आमयेद्यन्नाद्राजमार्गेण सर्वतः ।
ततः स्वाश्रममानीय स्थापयेत्तत्समीपतः ॥ १५४ ॥
महाशब्दं ततः कुर्यात्तालत्रयसमन्वितम् ।
ततस्तूर्ण्णीं स्थिते लोके तच्छान्तिमिह धारयेत् ॥ १५५ ॥
शिवं तु सर्वजगतः शिवं गोब्राह्मणस्य च ।
शिवमस्तु नृपाणां च तद्भक्तानां जनस्य च ॥ १५६ ॥
राजा विजयमाप्नोतु पुत्रपौत्रैश्च वर्धताम् ।
धर्मनिष्ठश्च भवतु प्रजानां च हिते रतः ॥ १५७ ॥
कालवर्षी तु पर्जन्यः सस्यसंपत्तिरुत्तमा ।
सुमिक्षातु क्षेममाप्नोति कार्यसिद्धिश्च जायताम् ॥ १५८ ॥
दोषाः प्रयान्तु नाशं च गुणाः स्थैर्यं भजन्तु वः ।
बहुक्षीरयुता गावो हृष्टपुष्टा भवन्तु वः ॥ १५९ ॥
एवं शिवमहाशान्तिमुच्चार्य जगतः क्रमात् ।
अभिवर्धय ततः शेषामैश्वरीं सार्वकामिकीम् ॥ १६० ॥
शिवमालां समादाय सदासीपरिचारिकः ।
फलैर्मक्षैश्च संयुक्तां गृह्य पार्त्वीं निवेशयेत् ॥ १६१ ॥
पार्त्वीं च धारयेन्मूर्ध्ना सोष्णीषां देवपुत्रकः ।
अलङ्कृतः शुक्लवासा धार्मिकः सततं शुचिः ॥ १६२ ॥
ततश्च तां समुत्क्षिप्य पाणिना धारयेद्बुधः ।
प्रब्रूयादपरश्चात्र शिवधर्मस्य भाजकः ॥ १६३ ॥
तोयं यथा घटीसंस्थमजस्रं क्षरते तथा ।
क्षरते सर्वलोकानां तद्वदायुरहर्निशम् ॥ १६४ ॥

यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ।
 तदा न द्वीयते कस्मात् पाथेयार्थमिदं धनम् ॥ १६५ ॥
 कलत्रपुत्रमित्राणि पिता माता च बान्धवाः ।
 तिष्ठन्ति न मृतस्यार्थे परलोके धनानि च ॥ १६६ ॥
 नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमः सखा ।
 यतः सर्वैः परित्यक्तं नरं धर्मोऽनुगच्छति ॥ १६७ ॥
 तस्माद्धर्मं समुद्दिश्य यः शेषामभिवर्धयेत् ।
 समस्तपापनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ १६८ ॥
 उपर्युपरि वित्तेन यः शेषामभिवर्धयेत् ।
 तस्येयमुत्तमा देया यतश्चान्या न वर्धते ॥ १६९ ॥
 इत्येवं मध्यमां शेषां वर्धयेद्वा कनीयसीम् ।
 ततस्तेषां प्रदातव्या सर्वशोकस्य शान्तये ॥ १७० ॥
 येनोत्तमा गृहीता स्याच्छिवशेषा महीयसी ।
 प्रापणीया गृहं तस्य तथैव शिरसा वृता ॥ १७१ ॥
 ध्वजच्छत्रविमानाद्यैर्महावादित्रनिस्वनैः ।
 गृहद्वारं ततः प्राप्तार्चयित्वा निवेशयेत् ॥ १७२ ॥
 दद्याद्भोत्रकलत्राणां भृत्यानां स्वजनस्य च ।
 तर्पयेच्चानतान् भक्त्या वादित्रध्वजवाहकान् ॥ १७३ ॥
 एवमादीयते भक्त्या यः शिवस्योत्तमा गृहे ।
 शोभया राजमार्गेण तस्य धर्मफलं श्रृणु ॥ १७४ ॥
 समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ।
 शिवलोकमवाप्नोति समृत्यपरिचारकः ॥ १७५ ॥
 तत्र दिव्यैर्महाभोगैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 कल्पानां क्रीडते कोटिमन्ते निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १७६ ॥

रथस्य यात्रां यः कुर्यादित्येवमुपशोभया ।
 मक्ष्यमोज्यप्रदानैश्च तत्फलं शृणु यत्नतः ॥ १७७ ॥
 अशेषपापनिर्मुक्तः सर्वभूत्यसमन्वितः ।
 कुलत्रिंशकमुद्धृत्य सुहृद्भिः स्वजनैः सह ॥ १७८ ॥
 सर्वकामयुतैर्दिव्यैः स्वच्छन्दगमनालयैः ।
 महाविमानैः श्रीमद्भिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥ १७९ ॥
 इच्छया क्रीडते भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ।
 ज्ञानयोगं ततः प्राप्य संसारादवमुच्यते ॥ १८० ॥
 शिवस्य रथयात्रायामुपवासपरः क्षमी ।
 पुरतः पृष्ठतो वापि गच्छंस्तस्य फलं शृणु ॥ १८१ ॥
 अशेषपापनिर्मुक्तः शुद्धः शिवपुरं गतः ।
 महारथोपमैर्यानैः कल्पाशीतिं प्रमोदते ॥ १८२ ॥
 ध्वजच्छलपताकाभिर्दीपदर्पणचामरैः ।
 धूपैर्वितानकलशैरुपशोभा सहस्रशः ॥ १८३ ॥
 गृहीत्वा याति पुरतः स्वेच्छया वा परेच्छया ।
 संपर्कात् कौतुकाल्लाभाच्छिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ १८४ ॥
 शिवस्य रथयात्रां तु यः प्रपश्यति भक्तितः ।
 प्रसङ्गात् कौतुकाद्वापि तेऽपि यान्ति शिवं पुरम् ॥ १८५ ॥
 नानायन्त्रादिशेषान्ते नानाप्रेक्षणकानि च ।
 कुर्वीत रथयात्रायां रमते च विभूषिता ॥ १८६ ॥
 ते भोगैर्विविधैर्दिव्यैः शिवासन्ना गणेश्वराः ।
 क्रीडन्ति रुद्रभवने कल्पानां विंशतीर्नराः ॥ १८७ ॥
 महता ज्ञानसङ्घेन तस्माच्छिवरथेन च ।
 पृथक्जीवा मृता यान्ति शिवलोकं न संशयः ॥ १८८ ॥

श्रीपर्वते महाकाले वाराणस्यां महालये ।
 जलेश्वरे कुरुक्षेत्रे केदारे मण्डलेश्वरे ॥ १८९ ॥
 गोकर्णे भद्रकर्णे च शङ्कुकर्णे स्थलेश्वरे ।
 भीमेश्वरे सुवर्णाक्षे कालञ्जरवने तथा ॥ १९० ॥
 एवमादिषु चान्येषु शिवक्षेत्रेषु ये मृताः ।
 जीवाश्चराचराः सर्वे शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ १९१ ॥
 प्रयागं कामिकं तीर्थमविमुक्तं तु नैष्ठिकम् ।
 श्रीपर्वतं च विज्ञेयमिहामुत्र च सिद्धिदम् ॥ १९२ ॥
 प्रसङ्गेनापि यः पश्येदन्यत्र प्रस्थितः क्वचित् ।
 श्रीपर्वतं महापुण्यं सोऽपि याति शिवं पुरम् ॥ १९३ ॥
 व्रजेद्यः शिवतीर्थानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 पापयुक्तः शिवज्ञानं प्राप्य निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९४ ॥
 तीर्थस्थानेषु यः श्राद्धं शिवरात्रे प्रयत्नतः ।
 कल्पयित्वानुसारेण कालस्य विषुवस्य च ॥ १९५ ॥
 तीर्थयात्रागतं शान्तं हाहाभूतमचेतनम् ।
 क्षुत्पिपासातुरं लोके पांसुपादं त्वरान्वितम् ॥ १९६ ॥
 सन्तर्पयित्वा यत्नेन ग्लानलक्ष्मीमिवाम्बुभिः ।
 पाद्यासनप्रदानेन कस्तेन पुरुषः समः ॥ १९७ ॥
 अश्नन्ति यावत्तत्पिण्डं तीर्थनिर्घृतकल्मषाः ।
 तावद्धर्षसहस्राणि तद्वातास्ते शिवे पुरे ॥ १९८ ॥
 दद्याद्यः शिवसत्रार्थं महिषीं सुपयस्विनीम् ।
 मोदते स शिवे लोके युगकोटिशतं नरः ॥ १९९ ॥
 आर्ताय शिवभक्त्या दद्याद्यः सुपयस्विनीम् ।
 अजामेकां सुपुष्टार्ज्जीं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०० ॥

यावत्तद्रोमसंख्यानं तत्प्रसूतिकुलेषु च ।
 तावद्बर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २०१ ॥
 भृदुरोमाञ्चितां कृष्णां निवेद्य गुरवे नरः ।
 रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ २०२ ॥
 गजाश्वरयसंयुक्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 सानुगः क्रीडते भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ॥ २०३ ॥
 निवेद्याश्वतरं पुष्टमदुष्टं गुरवे नरः ।
 सङ्गतिं सोपकरणं भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०४ ॥
 दिव्याश्वयुक्तैः श्रीमद्भिर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 कोटिं कोटिं च कल्पानां तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥ २०५ ॥
 अपि योजनमात्राय शिबिकां परिकल्पयेत् ।
 गुरोः शान्तस्य दान्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०६ ॥
 विमानानां सहस्रेण सर्वकामयुतेन च ।
 कल्पकोट्ययुतं साग्रं भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०७ ॥
 छागं मेघं मयूरं च कुक्कुटं शारिकां शुक्रम् ।
 बालक्रीडनकानेतानित्याद्यानपरानपि ॥ २०८ ॥
 निवेदयित्वा स्कन्दाय तत्सायुज्यमवाप्नुयात् ।
 मुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तदन्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ २०९ ॥
 मुसलोलखलाद्यानि गृहोपकरणानि च ।
 दद्याच्छिवगृहस्थेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१० ॥
 प्रत्येकं कल्पमेकैकं गृहोपकरणैर्नरः ।
 अन्ते दिवि वसेद्भोगैस्तदन्ते च गृही भवेत् ॥ २११ ॥
 खर्जूरतालपत्रैर्वा चर्मणा वा सुकल्पितम् ।
 दत्त्वा कोट्यासनं वृत्तं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २१२ ॥

प्रातर्नीहारवेलायां हेमन्ते शिवयोगिनाम् ।
 कृत्वा प्रतापनायामि शिवलोके महीयते ॥ २१३ ॥
 सूर्यायुतप्रभादीर्तेर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 कल्पकोटिशतं भोगान् भुक्त्वा स तु महीपतिः ॥ २१४ ॥
 यः प्रान्तरं विदेशं वा गच्छन्तं शिवयोगिनम् ।
 भोजयति यथाशक्त्या शिधिलोके महीयते ॥ २१५ ॥
 यश्छत्रं धारयेद्ग्रीष्मे गच्छते शिवयोगिने ।
 स मृतः पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रामवाप्नुयात् ॥ २१६ ॥
 यः समुद्धरते मार्गे मात्रोपकरणासनम् ।
 शिवयोगप्रवृत्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१७ ॥
 कल्पायुतं नरः साग्रं भुक्त्वा भोगाञ्छिवे पुरे ।
 तदन्ते प्राप्नुयाद्राज्यं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ २१८ ॥
 अभ्यङ्गोद्धर्तनं स्नानमार्तस्य शिवयोगिनः ।
 कृत्वाऽऽप्नोति महाभोगान् कल्पाञ्छिवपुरे नरः ॥ २१९ ॥
 अपनीय समुच्छिष्टं भक्तिः शिवयोगिनाम् ।
 दशधेनुप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ २२० ॥
 पञ्चगव्यसमं ज्ञेयमुच्छिष्टं शिवयोगिनाम् ।
 तद्भुक्त्वा लभते शुद्धिं महतः पातकादपि ॥ २२१ ॥
 नारी च भुक्त्वा सत्पुत्रं कुलाधारं गुणान्वितम् ।
 राज्ययोग्यं धनाढ्यं च प्राप्नुयाद्धर्मतत्परम् ॥ २२२ ॥
 यश्च यां शिवयज्ञाय गृहस्थः परिकल्पयेत् ।
 शिवभक्तोऽस्य महतः परमं फलमाप्नुयात् ॥ २२३ ॥
 शिवोमां च प्रयत्नेन भक्त्याब्दं योऽनुपालयेत् ।
 गवां लक्षप्रदानस्य संपूर्णं फलमाप्नुयात् ॥ २२४ ॥

प्रातः प्रदद्यात् सघृतं सुकृतं बालपिण्डकम् ।
 दूर्वा च बालवत्सानां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २२५ ॥
 यावत्तद्बालवत्सानां पानाहारं प्रकल्पयेत् ।
 तावदष्टायुतान् पूर्वभोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २२६ ॥
 विधवानाथवृद्धानां प्रदद्याद्यः प्रजीवनम् ।
 आभूतसंभवं यावच्छिवलोके महीयते ॥ २२७ ॥
 दद्याद्यः सर्वजन्तूनामाहारमनुयन्ततः ।
 त्रिः पृथ्वीं रत्नसंपूर्णां यद्वत्वा तत्फलं लभेत् ॥ २२८ ॥
 नियमव्रतदानानि यानि सिद्धानि लोकतः ।
 तानि तेनैव विधिना शिवमन्त्रेण कल्पयेत् ॥ २२९ ॥
 निवेदयित रुद्राय रुद्राण्याः षण्मुखस्य च ।
 प्राप्नुयाद्विपुलान् भोगान् दिव्याञ्छिवपुरे नरः ॥ २३० ॥
 पुनर्यः कर्तरीं दद्यात् केशक्लेशापनुत्तये ।
 सर्वक्लेशविनिर्मुक्तः शिवलोके सुखी भवेत् ॥ २३१ ॥
 नासिकाशोधनं दद्यात् सन्दंशं शिवयोगिने ।
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३२ ॥
 नखच्छेदनकं दत्वा सुकृतं शिवयोगिने ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३३ ॥
 दत्वाञ्जनशलाकां वा लोहाद्यां शिवयोगिने ।
 भोगाञ्छिवपुरे प्राप्य ज्ञानचक्षुरवाप्नुयात् ॥ २३४ ॥
 कर्णशोधनकं दत्वा लोहाद्यं शिवयोगिने ।
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३५ ॥
 दद्याद्यः शिवभक्ताय सूचीं कौपीनशोषनीम् ।
 वर्षलक्षं स लक्षार्घ्यं शिवलोके महीयते ॥ २३६ ॥

निवेद्य शिवयोगिभ्यः सूचिकं सूत्रसंयुतम् ।
 वर्षलक्षं महामोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ २३७ ॥
 दद्याद्यः शिवयोगिभ्यः सुकृतां पत्रवेधनीम् ।
 वर्षलक्षं महामोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३८ ॥
 दद्याद्यः पुस्तकादीनां सर्वकार्यार्थकर्तृकाम् ।
 पञ्चलक्षं महामोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ २३९ ॥
 शमीन्धनतृणादीनां दद्यात्तच्छेदनं च यः ।
 क्रीडते स शिवे लोके वर्षलक्षचतुष्टयम् ॥ २४० ॥
 शिवाश्रमोपमोगाय लोहोपकरणं महत् ।
 यः प्रदद्यात् कुठागद्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४१ ॥
 यावत्तत्पलसंख्यानां लोहोपकरणे भवेत् ।
 तावन्ति वर्षलक्षाणि शिवलोके महीयते ॥ २४२ ॥
 शिवायतनवित्तानां रक्षार्थं यः प्रयच्छति ।
 धनुःखड्गायुधादीनि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४३ ॥
 एकैकस्मिन् परिज्ञेयमायुधे चापि वै फलम् ।
 वर्षकोट्यष्टकं भोगैः शिवलोके महीयते ॥ २४४ ॥
 यः स्वात्मभोगभृत्यर्थं कुसुमानि निवेदयेत् ।
 शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४५ ॥
 यावदन्योन्यसंबन्धास्तस्यांशाः परिकीर्तिताः ।
 वर्षलक्षं स तावच्च शिवलोके प्रमोदते ॥ २४६ ॥
 नष्टापहृतमन्विष्य पुनर्वित्तं निवेदयेत् ।
 शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४७ ॥
 यावच्छिवाय तद्वित्तं प्राङ्निवेद्य फलं स्मृतम् ।
 नष्टमानीय तद्भूयः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २४८ ॥

देवद्रव्यं हृतं नष्टमन्वेष्यमपि यत्नतः ।
 न प्राप्नोति तदा तस्य प्राप्नुयाद्विगुणं फलम् ॥ २४९ ॥
 ताम्रकुम्भकटाहाद्यं यः शिवाय निवेदयेत् ।
 शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २५० ॥
 यावच्छिवाय तद्विचित्रं प्राह्निवेद्य फलं स्मृतम् ।
 नष्टमानीय तद्भूयः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २५१ ॥
 स्नानसत्रोपभोगाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यावत्तत्पलसंख्यानां ताम्रोपकरणे स्थितम् ॥ २५२ ॥
 पले पले वर्षकोटिं मोदते स शिवे पुरे ।
 यः पत्रपुष्पवस्तूनां दद्यादाधारभाजनम् ॥ २५३ ॥
 तद्वस्तुदातुर्यत्पुण्यं तत्पुण्यं सकलं भवेत् ।
 दत्तोपकरणं किञ्चिदपि यो वित्तमर्थिनाम् ॥ २५४ ॥
 यद्वस्तु कुरुते तेन तत्प्रदानफलं लभेत् ।
 यः शौचपीतवस्त्राणि क्षाराद्यैः शिवयोगिनाम् ॥ २५५ ॥
 स पापमलनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ।
 यः पुष्पपट्टसंयुक्तं पटगर्भं च कम्बलम् ॥ २५६ ॥
 प्रदद्याच्छिवयोगिम्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 तेषां च वस्त्रतन्तूनां यावत्संख्या विधीयते ॥ २५७ ॥
 तावद्वर्षसहस्राणि भोगान् मुहूर्ते शिवे पुरे ।
 श्लक्ष्णवस्त्राणि शुक्लानि दद्याद्यः शिवयोगिने ॥ २५८ ॥
 चित्रवस्त्राणि तद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यत्तत्सुस्मवस्त्राणां तन्तुसङ्ख्या विधीयते ॥ २५९ ॥
 तावद्युगानि संमोगैः शिवलोके महीयते ।
 शङ्खचक्रं तु विंस्तीर्णं भाण्डं वापि सुशोभनम् ॥ २६० ॥

प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 दिव्यं विमानमारूढः सर्वकामसमन्वितम् ॥ २६१ ॥
 कल्पकोट्ययुतं साग्रं शिवलोके महीयते ।
 शुक्त्यादीनि च पात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६२ ॥
 निवेद्य शिवयोगिभ्यः शङ्खध्वेन फलं लभेत् ।
 स्फाटिकानां च पात्राणां शङ्खतुल्यफलं स्मृतम् ॥ २६३ ॥
 शैलजानां तदध्वेन पात्राणां च तदर्धकम् ।
 तालखर्जूरपात्राणां वंशजानां निवेदने ॥ २६४ ॥
 अन्येषामेवमादीनां पुण्यं वाक्ष्यार्धसंमितम् ।
 वंशजार्धसमं पुण्यं फलपात्रनिवेदने ॥ २६५ ॥
 नानापर्णपुटानां च साराणां वा फलार्धकम् ।
 यस्ताम्राकांस्यपात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६६ ॥
 स्नानभोजनपानार्थं दद्याद्यः शिवयोगिने ।
 ताम्रां कांसीं त्रिलोहीं वा यः प्रदद्यात् त्रिपादिकाम् ॥ २६७ ॥
 भोजने भोजनाधारां गुरवे तत्फलं शृणु ।
 यावत्तत्पलसंख्यानं त्रिपाद्या भोजनेषु च ॥ २६८ ॥
 तावद्युगसहस्राणि भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 लोहं त्रिपादिकं दत्त्वा सत्कृत्वा शिवयोगिने ॥ २६९ ॥
 दशकल्पान् महाभोगैर्नरः शिवपुरे वसेत् ।
 यः प्रदद्यात् त्रिविष्टम्भं भिक्षापात्रसमाश्रयम् ॥ २७० ॥
 वंशजं दारुजं वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 दिव्यस्त्रीभोगसंपन्नो विमाने महति स्थितः ॥ २७१ ॥
 चतुर्युगसहस्रं तु भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 भिक्षापात्रमुखाच्छादं वस्त्रपर्णादिकल्पितम् ॥ २७२ ॥

दत्त्वा शिवपुरे भोगान् कल्पमेकं वसेन्नरः ।

संश्रयं यः प्रदद्याच्च भिक्षापात्रे कमण्डलौ ॥ २७३ ॥

कल्पितं वस्त्रसूत्राद्यैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।

तद्वस्त्रपूततन्तूनां संख्या यावद्विधीयते ॥ २७४ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।

सूत्रवल्कलवालैर्वा शिष्यभाण्डसमाश्रयम् ॥ २७५ ॥

यः कृत्वा दामनीयोक्तं प्रग्रहं रज्जुमेव वा ।

एवमादीनि चान्यानि वस्तूनि विनिवेदयेत् ॥ २७६ ॥

शिवगोष्ठोपयोगार्थं तस्य पुण्यफलं शृणु ।

यावत्तद्रज्जुसंख्यानं प्रदद्याच्छिवगोकुले ॥ २७७ ॥

तावच्चतुर्युगं देही शिवलोके महीयते ।

यथा यथा प्रियं वस्त्रं शोभनं च यथा यथा ॥ २७८ ॥

तथा तथा महत्पुण्यं तद्दानादुत्तरोत्तरम् ।

यः पन्थानं दिशेत् पृष्ठं प्रणष्टं च गवादिकम् ॥ २७९ ॥

स गोदानसमं पुण्यं प्रज्ञासौख्यं च विन्दति ।

कृत्वोपकारमार्तानां स्वर्गं याति न संशयः ॥ २८० ॥

अपि कण्टकमुद्धृत्य किमुतान्यं महागुणम् ।

अन्नपानौषधीनां च यः प्रदातारमुद्दिशेत् ॥ २८१ ॥

आर्तानां तस्य विज्ञेयं दातुस्तत्सदृशं फलम् ।

शिवाय तस्य संरुद्धं कर्म तिष्ठति यद्विना ॥ २८२ ॥

तदल्पमपि यज्ञाङ्गं दत्त्वा यज्ञफलं लभेत् ।

अपि काशकुशं सूत्रं गोमयं समिदिन्धनम् ॥ २८३ ॥

शिवयज्ञोपयोगार्थं प्रवक्ष्यामि समासतः ।
 सर्वेषां शिवभक्तानां दद्याद्यत्किञ्चिदादरात् ।
 दत्त्वा यज्ञफलं विद्यात् किमु तद्वस्तुदानतः ॥ २८४ ॥

इति शिवोपनिषदि फलोपकरणप्रदानाध्यायः षष्ठः

सप्तमोऽध्यायः

अथ स्वर्गापवर्गार्थं प्रवक्ष्यामि समासतः ।
 सर्वेषां शिवभक्तानां शिवाचारमनुचमम् ॥ १ ॥
 शिवः शिवाय भूतानां यस्माद्दानं प्रयच्छति ।
 गुरुमूर्तिः स्थितस्तस्मात् पूजयेत् सततं गुरुम् ॥ २ ॥
 नालक्षणे यथा लिङ्गे सान्निध्यं कल्पयेच्छिवः ।
 अल्पागमे गुरौ तद्वत्सान्निध्यं न प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
 शिवज्ञानार्थतत्त्वज्ञं प्रसन्नमनसं गुरुम् ।
 शिवः शिवं समास्थाय ज्ञानं वक्ति न हीतरः ॥ ४ ॥
 गुरुं च शिववद्भक्त्या नमस्कारेण पूजयेत् ।
 कृताञ्जलिस्त्रिसन्ध्यं च भूमिविन्यस्तमस्तकः ॥ ५ ॥
 न विविक्तमनाचान्तं चङ्क्रमन्तं तथाऽऽकुलम् ।
 समाधिस्थं ब्रजन्तं च नमस्कुर्याद्गुरुं बुधः ॥ ६ ॥
 व्याख्याने तत्समाप्तौ च संप्रश्ने स्नानभोजने ।
 भुक्त्वा च शयने स्वप्ने नमस्कुर्यात् सदा गुरुम् ॥ ७ ॥

ग्रामान्तरमभिप्रेत्सुगुरोः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
 सार्वार्जिकप्रणामं च पुनः कुर्यात् तदागतः ॥ ८ ॥
 पूर्वोत्सवेषु सर्वेषु दद्याद्गन्धपवित्रकम् ।
 शिवज्ञानस्य चारम्भे प्रवासगमनागतौ ॥ ९ ॥
 शिवधर्मव्रतारम्भे तत्समाप्तौ च कल्पयेत् ।
 प्रसादनाय कुपितो विजित्य च रिपुं तथा ॥ १० ॥
 पुण्याहे ग्रहशान्तौ च दीक्षायां च सदक्षिणम् ।
 आचार्य पदसंप्राप्तौ पवित्रे चोपविग्रहे ॥ ११ ॥
 उपानच्छत्रशयनं वस्त्रमासनभूषणम् ।
 पात्रदण्डाक्षसूत्रं वा गुरुसक्तं न धारयेत् ॥ १२ ॥
 हास्यनिष्ठीवनास्फोटमुच्चभाष्यविजृम्भणम् ।
 पादप्रसारणं गीतं न कुर्याद्गुरुसन्निधौ ॥ १३ ॥
 हीनान्नपानवस्त्रः स्यान्नीचशय्यासनो गुरोः ।
 न यथेष्टश्च संतिष्ठेत् कलहं च विवर्जयेत् ॥ १४ ॥
 प्रतिवातेऽनुवाते वा न तिष्ठेद्गुरुणा सह ।
 असंश्रये च सततं न किञ्चित् कीर्तयेद्गुरोः ॥ १५ ॥
 अन्यासक्तो न भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ।
 न शयानो न चासीनः संभाष्येद्गुरुणा सह ॥ १६ ॥
 दृष्ट्वैव गुरुमायान्तमुत्तिष्ठेद्दूरतस्त्वरम् ।
 अनुज्ञातश्च गुरुणा संविशेच्चानुपृष्ठतः ॥ १७ ॥
 न कण्ठं प्रावृतं कुर्यान्न च तत्रावसक्तिकाम् ।
 न पादधावनस्नानं यत्र पश्येद्गुरुः स्थितः ॥ १८ ॥
 न दन्तधावनाभ्यङ्गमायामोद्वर्तनक्रियाः ।
 उत्सर्गपरिधानं च गुरोः कुर्वीत पश्यतः ॥ १९ ॥

गुरुर्यदप्येत् किञ्चिद्गृहासनं तदञ्जलौ ।
 पात्रे वा पुरतः शिष्यस्तद्वक्तमभिवीक्ष्यन् ॥ २० ॥
 यदप्येद्गुरुः किञ्चित्तन्म्रः पुरतः स्थितः ।
 पाणिद्वयेन गृहीयात् स्थापयेत्तच्च सुस्थितम् ॥ २१ ॥
 न गुरोः कीर्तयेन्नाम परोक्षमपि केवलम् ।
 समानसंज्ञमन्यं वा नाह्वीत तदाख्यया ॥ २२ ॥
 स्वगुरुस्तद्गुरुश्चैव यदि स्यातां समं क्वचित् ।
 गुरोर्गुरुस्तयोः पूज्यः स्वगुरुश्च तदाज्ञया ॥ २३ ॥
 अनिवेद्य न भुञ्जीत भुक्त्वा चास्य निवेदयेत् ।
 नाविज्ञाप्य गुरुं गच्छेद्ब्रुहिः कार्येण केनचित् ॥ २४ ॥
 गुर्वाज्ञया कर्म कृत्वा तत्समाप्तौ निवेदयेत् ।
 कृत्वा च नैत्यकं सर्वमधीयीताज्ञया गुरोः ॥ २५ ॥
 मृद्भस्मगोमयजलं पत्रपुष्पेन्धनं समित् ।
 मर्यासमष्टकं ह्येतद्गुर्वर्थं तु समाहरेत् ॥ २६ ॥
 भैषज्याहारपात्राणि वस्त्रशय्यासनं गुरोः ।
 आनयेत् सर्वयत्नेन प्रार्थयित्वा धनेश्वरान् ॥ २७ ॥
 गुरोर्न खण्डयेदाज्ञामपि प्राणान् परित्यजेत् ।
 कृत्वाज्ञां प्राप्नुयान्मुक्तिं लङ्घयन्नरकं व्रजेत् ॥ २८ ॥
 पर्यटेत् पृथिवीं कृत्वा सशैलवनकाननाम् ।
 गुरुभैषज्यसिद्धयर्थमपि गच्छेद्द्रसातलम् ॥ २९ ॥
 यदादिशेद्गुरुः किञ्चित् कुर्यादविचारतः ।
 अमीमांस्या हि गुरवः सर्वकार्येषु सर्वथा ॥ ३० ॥
 नोत्थापयेत् सुखासीनं शयानं न प्रबोधयेत् ।
 आसीनो गुरुमासीनमभिगच्छेत् प्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥

पथि प्रयान्तं यान्तं च यत्नाद्विश्रामयेद्गुरुम् ।
 क्षुत्पिपासातुरं स्नातं ज्ञात्वा शक्तं च भोजयेत् ॥ ३२ ॥
 अभ्यङ्गोद्धर्तनं स्नानं भोजनघ्नीवमार्जनम् ।
 गात्रसंवाहनं रात्रौ पादाभ्यङ्गं च यत्नतः ॥ ३३ ॥
 प्रातः प्रसाधनं दत्त्वा कार्यं संमार्जनाञ्जनम् ।
 नानापुष्पप्रकरणं श्रीमद्व्याख्यानमण्डपे ॥ ३४ ॥
 स्थाप्यासनं गुरोः पूज्यं शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ।
 तत्र तिष्ठेत् प्रतीक्षंस्तदुरोरागमनं क्रमात् ॥ ३५ ॥
 गुरोर्निन्दापवादं च श्रुत्वा कर्णौ पिधापयेत् ।
 अन्यत्र चैव सर्पेतु निगृह्णीयादुपायतः ॥ ३६ ॥
 न गुरोरप्रियं कुर्यात् पीडितस्तारितोऽपि वा ।
 नोच्चारयेच्च तद्वाक्यमुच्चार्य नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥
 गुरुरेव पिता माता गुरुरेव परः शिवः ।
 यस्यैव निश्चितो भावस्तस्य मुक्तिर्न दूरतः ॥ ३८ ॥
 आहाराचारधर्माणां यत् कुर्याद्गुरुरीश्वरः ।
 तथैव चानुकुर्वीत नानुयुज्जीत कारणम् ॥ ३९ ॥
 यज्ञस्तपांसि नियमात्तानि वै विविधानि च ।
 गुरुवाक्ये तु सर्वाणि संपद्यन्ते न संशयः ॥ ४० ॥
 अज्ञानपङ्कनिर्ममं यः समुद्धरते जनम् ।
 शिवज्ञानात्महस्तेन कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥ ४१ ॥
 इति यः पूजयेन्नित्यं गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ४२ ॥
 स्नात्वाम्भसा भस्मना वा शुक्लवस्त्रोपवीतवान् ।
 दूर्वागर्भस्थितं पुष्प गुरुः शिरसि धारयेत् ॥ ४३ ॥

रोचनालभनं कुर्याद्धूययेदात्मनस्तनुम् ।
 अङ्गुलीयाक्षसूत्रं च कर्णमात्रे च धारयेत् ॥ ४४ ॥
 गुरुरेवंविधः श्रीमान्नित्यं तिष्ठेत् समाहितः ।
 यस्मादज्ञानोपदेशार्थं गुरुरास्ते सदाशिवः ॥ ४५ ॥
 धारयेत् पादुके नित्यं मृदुवर्मप्रकल्पिते ।
 प्रगृह्य दण्डं छत्रं वा पर्यटेदाश्रमाद्बहिः ॥ ४६ ॥
 न भूमौ विन्यसेत् पादमन्तर्धानं विना गुरुः ।
 कुशपादकमाक्रम्य तर्पणार्थं प्रकल्पयत् ॥ ४७ ॥
 पादस्थानानि पत्राद्यैः कृत्वा देवगृहं विशेत् ।
 पात्रास्तरितपादश्च नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ४८ ॥
 न पादौ धावयेत् कांस्ये लोहे वा परिकल्पिते ।
 शौचयेत्तृणगर्भायां द्वितीयायां तथाचमेत् ॥ ४९ ॥
 न रक्तमुल्बणं वस्त्रं धारयेत् कुसुमानि च ।
 न बहिर्गन्धमाल्यानि वासांसि मलिनानि च ॥ ५० ॥
 केशास्थीनि कपालानि कार्पासास्थितुषाणि च ।
 अमेध्याङ्गारभस्मानि नाधितिष्ठेद्रजांसि च ॥ ५१ ॥
 न च लोष्टं विमृद्नीयान्न च छिन्द्यान्नखैस्तृणम् ।
 न पत्रपुष्पमूल्यानि वंशमङ्गलकाष्ठिकाम् ॥ ५२ ॥
 एवमादीनि चान्यानि पाणिभ्यां न च मर्दयेत् ।
 न दन्तखादनं कुर्याद्रोमाण्युत्पाटयेन्न च ॥ ५३ ॥
 न पद्म्यामुल्लिखेद्भूमिं लोष्टकाष्ठैः करेण वा ।
 न नखांश्च नखैर्विध्यान्न कण्डूयेन्नखैस्तनुम् ॥ ५४ ॥
 मुहुर्मुहुः शिरः श्मश्रु न स्पृशेत् करजैर्बुधः ।
 न लिष्ठाकर्षणं कुर्यादात्मनो वा परस्य वा ॥ ५५ ॥

सौवर्णरौप्यताम्रैश्च शृङ्गदन्तशलाकया ।
 देहकण्डूयनं कार्यं वंशकाष्ठीकवीरणैः ॥ ५६ ॥
 न विचितं प्रकुर्वीत दिशश्चैवावलोकयन् ।
 न शोकार्तश्च संतिष्ठेत् धृत्वा पाणौ कपोलकम् ॥ ५७ ॥
 न पाणिपादवाक्चक्षुःश्रोत्रशिश्नगुदोदरैः ।
 चापलानि न कुर्वीत स सर्वार्थमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
 न कुर्यात् केनचिद्वैरमध्रुवे जीविते सति ।
 लोककौतूहलं पापं सन्ध्यां च परिवर्जयेत् ॥ ५९ ॥
 न कुद्वारेण वेष्मानि नगरं ग्राममाविशेत् ।
 न दिवा प्रावृत्तशिरा रात्रौ प्रावृत्य पर्यटेत् ॥ ६० ॥
 नातिभ्रमणशीलः स्यान्न विशेषं गृहाद्गृहम् ।
 न चाज्ञानमधीयीत शिवज्ञानं समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥
 शिवज्ञानं परं ब्रह्म तदारभ्य न संत्यजेत् ।
 ब्रह्मासाध्यं च यो गच्छेद्ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥ ६२ ॥
 कृताञ्जलिः स्थितः शिष्यो लघुवैद्यमुदङ्मुखः ।
 शिवमन्त्रं समुच्चार्य प्राङ्मुखोऽध्यापयेद्गुरुः ॥ ६३ ॥
 नागदन्तादिसंभूतं चतुरश्रं सुशोभनम् ।
 हेमरत्नचितं वापि गुरोरासनमुत्तमम् ॥ ६४ ॥
 न शुश्रूषार्थकामाश्च न च धर्मः प्रदृश्यते ।
 न भक्तिर्न यशः क्रौर्यं न तमध्यापयेद्गुरुः ॥ ६५ ॥
 देवाग्निगुरुगोष्ठीषु व्याख्याध्ययनसंसदि ।
 प्रश्ने वादेऽनृतेऽशौचे दक्षिणं बाहुमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥
 वशे सततनम्रः स्यात् संहृत्याङ्गानि कूर्मवत् ।
 तत्संमुखं च निर्गच्छेन्नमस्कारपुरस्सरः ॥ ६७ ॥

देवाग्निगुरुविप्राणां न ब्रजेदन्तरेण तु ।
 नार्पयेन्न च गृहीयात् किञ्चिद्वस्तु तदन्तरा ॥ ६८ ॥
 न मुखेन धमेदग्निं नाघः कुर्यान्न लङ्घयेत् ।
 न क्षिपेदशुचिं वह्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ६९ ॥
 तृणकाष्ठादिगहने जन्तुमिश्रं समाकुले ।
 स्थाने न दीपयेदग्निं दीप्तं चापि ततः क्षिपेत् ॥ ७० ॥
 अग्निं युगपदानीय धारयेत् प्रयत्नतः ।
 ज्वलन्तं न प्रदीपं च स्वयं निर्वापयेद्बुधः ॥ ७१ ॥
 शिवव्रतधरं दृष्ट्वा समुत्थाय सदा द्रुतम् ।
 शिवोऽयमिति संकल्प्य हर्षितः प्रणमेत्ततः ॥ ७२ ॥
 भोगान् ददाति विपुलान् लिङ्गे संपूजितः शिवः ।
 अग्नौ च विविधां सिद्धिं गुरौ मुक्तिं प्रयच्छति ॥ ७३ ॥
 मोक्षार्थं पूजयेत्तस्माद्गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् ।
 गुरुभक्त्या लभेद्ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
 सर्वपर्वसु यत्नेन ह्येषु संपूजयेच्छिवम् ।
 कुर्यादायतने शोभां गुरुस्थानेषु सर्वतः ॥ ७५ ॥
 नरद्वयोच्छ्रिते पीठे सर्वशोभासमन्विते ।
 संस्थाप्य मणिजं लिङ्गं स्थाने कुर्याज्जगद्धितम् ॥ ७६ ॥
 अन्नपानविशेषैश्च नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।
 भोजयेद्भूतिनश्चात्र स्वगुरुं च विशेषतः ॥ ७७ ॥
 पूजयेच्च शिवज्ञानं वाचयीत च पर्वसु ।
 दर्शयेच्छिवभक्तेभ्यः सत्पूजां परिकल्पिताम् ॥ ७८ ॥
 प्रियं ब्रूयात् सदा तेभ्यः प्रदेयं चापि शक्तितः ।
 एवं कृते विशेषेण प्रसीदति महेश्वरः ॥ ७९ ॥

छिन्नं भिन्नं मृतं नष्टं वर्धते नास्ति केवलम् ।
 इत्याद्यान् वदेच्छब्दान् साक्षाद्ब्रूयात्तु मङ्गलम् ॥ ८० ॥
 अधेनुं धेनुमित्येव ब्रूयाद्भद्रमभद्रकम् ।
 कपालं च भगालं स्यात्परमं मङ्गलं वदेत् ॥ ८१ ॥
 ऐन्द्रं धनुर्मणिधनुर्दाहकाष्ठादि चन्दनम् ।
 स्वर्गातं च मृतं ब्रूयाच्छिवीभूतं च योगिनम् ॥ ८२ ॥
 द्विधाभूतं वदेच्छिन्नं भिन्नं च बहुधा स्थितम् ।
 नष्टमन्वेषणीयं च रिक्तं पूर्णमिबार्धितम् ॥ ८३ ॥
 नास्तीति शोभनं सर्वमाद्यमङ्गाभिवर्धनम् ।
 सिद्धिमद्ब्रूहि गच्छन्तं सुप्तं ब्रूयात् प्रवर्धितम् ॥ ८४ ॥
 न म्लेच्छमूर्खपतितैः क्रूरैः संतापवेदिभिः ।
 दुर्जनैरवल्लिप्तैश्च क्षुद्रैः सह न संवदेत् ॥ ८५ ॥
 नाधार्मिकनृपाक्रान्ते न दंशमशकावृते ।
 नातिशीतजलाकीर्णे देशे रोगप्रदे वसेत् ॥ ८६ ॥
 नासनं शयनं पानं नमस्कृताभिवादनम् ।
 सोपानत्कः प्रकुर्वीत शिवपुस्तकवाचनम् ॥ ८७ ॥
 आचार्यं दैवतं तीर्थमुद्धूतोदं मृतं दधि ।
 वटमश्वत्थकपिलां दीक्षितोदधिसङ्गमम् ॥ ८८ ॥
 यानि चैषां प्रकाराणि मङ्गलानीह कानिचित् ।
 शिवायेति नमस्कृत्वा प्रोक्तमेतत्प्रदक्षिणम् ॥ ८९ ॥
 उपानच्छस्त्रवस्त्राणि पवित्रं करकं सजम् ।
 आसनं शयनं पानं धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ ९० ॥
 पालाशमासनं शय्यां पादुके दन्तधावनम् ।
 वर्जयेच्चापि निर्यासं रक्तं न तु समुद्भवम् ॥ ९१ ॥

सन्ध्यामुपास्य कुर्वीत नित्यं देहप्रसाधनम् ।
 स्पृशेद्वन्देच्च कपिलां प्रदद्याच्च गवां हितम् ॥ ९२ ॥
 यः प्रदद्याद्गवां सम्यक् फलानि च विशेषतः ।
 क्षेत्रमुद्दामयेच्चापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९३ ॥
 यावत्तत्पत्रकुसुमकन्दमूलफलानि च ।
 तावद्द्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ९४ ॥
 कृशरोगार्तवृद्धानां त्यक्तानां निर्जने वने ।
 क्षुत्पिपासातुराणां च गवां विह्वलचेतसाम् ॥ ९५ ॥
 नीत्वा यस्तृणतोयानि वने यन्नात् प्रयच्छति ।
 करोति च परित्नाणं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९६ ॥
 कुलैकविंशकोपेतः पत्नीपुत्रादिसंयुतः ।
 मित्तभृत्यैरुपेतश्च श्रीमच्छिवपुरं व्रजेत् ॥ ९७ ॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः ।
 स महाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९८ ॥
 गोब्राह्मणपरित्नाणं सकृत्कृत्वा प्रयत्नतः ।
 मुच्यते पञ्चभिर्घोरैर्महद्भिः पातकैर्दुतम् ॥ ९९ ॥
 अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता ।
 अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं सन्तोषमार्जवम् ॥ १०० ॥
 अहिंसाद्या यमाः पञ्च यतीनां परिकीर्तिताः ।
 अक्रोधाद्याश्च नियमाः सिद्धिवृद्धिकराः स्मृताः ॥ १०१ ॥
 दशलाक्षणिको धर्मः शिवाचारः प्रकीर्तितः ।
 योगीन्द्राणां विशेषेण शिवयोगप्रसिद्धये ॥ १०२ ॥
 न विन्दति नरो योगं पुत्रदारादिसङ्गतः ।
 निबद्धः स्नेहपाशेन मोहस्तम्भबलीयसा ॥ १०३ ॥

मोहात् कुटुम्बसंसक्तस्तृष्ण्या शृङ्खलीकृतः ।
 बालैर्बद्धस्तु लोकोऽयं मुसलेनाभिहन्यते ॥ १०४ ॥
 इमे बालाः कथं त्याज्या जीविष्यन्ति मया त्रिणा ।
 मोहाद्धि चिन्तयत्येवं परमार्थौ न पश्यति ॥ १०५ ॥
 संपर्कादुदरे न्यस्तः शुक्रबिन्दुरचेतनः ।
 स पित्रा केन यत्नेन गर्भस्थः परिपालितः ॥ १०६ ॥
 कर्कशाः कठिना भक्षा जीर्यन्ते यत्न भक्षिताः ।
 तस्मिन्नेवोदरे शुक्रं किं न जीर्यति भक्ष्यवत् ॥ १०७ ॥
 येनैतद्योजितं गर्भे येन चैव विवर्द्धितम् ।
 तेनैव निर्गतं भूयः कर्मणा स्वेन पाल्यते ॥ १०८ ॥
 न कश्चित् कस्यचित् पुत्रः पिता माता न कस्यचित् ।
 यत्स्वयं प्राक्तनं कर्म पिता मातेति तत्स्मृतम् ॥ १०९ ॥
 येन यत्नं कृतं कर्म स तलैव प्रजायते ।
 पितरौ चास्य दासत्वं कुरुतस्तत्प्रचोदितौ ॥ ११० ॥
 न कश्चित् कस्यचिच्छक्तः कर्तुं दुःखं सुखानि च ।
 करोति प्राक्तनं कर्म मोहाल्लोकस्य केवलम् ॥ १११ ॥
 कर्मदायादसंबन्धादुपकारः परस्परम् ।
 दृश्यते नापकारश्च मोहेनात्मनि मन्यते ॥ ११२ ॥
 ईश्वराधिष्ठितं कर्म फलतीह शुभाशुभम् ।
 ग्रामस्वामिप्रसादेन सुकृतं कर्षणं यथा ॥ ११३ ॥
 द्वयं देवत्वमोक्षाय ममेति न ममेति च ।
 ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति विमुच्यते ॥ ११४ ॥
 द्व्यक्षरं च भवेन्मृत्युल्लक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
 ममेति द्व्यक्षरं मृत्युल्लक्षरं न ममेति च ॥ ११५ ॥

तस्मादात्मन्यहङ्कारमुत्सृज्य प्रविचारतः ।
 विधूयाशेषसङ्गांश्च मोक्षोपायं विचिन्तयेत् ॥ ११६ ॥
 ज्ञानाद्योगपरिक्लेशं कुप्रावरणभोजनम् ।
 कुचर्यां कुनिवासं च मोक्षार्थी न विचिन्तयेत् ॥ ११७ ॥
 न दुःखेन विना सौख्यं दृश्यते सर्वदेहिनाम् ।
 दुःखं तन्मात्रकं ज्ञेयं सुखमानन्त्यमुत्तमम् ॥ ११८ ॥
 सेवायां पाशुपाल्यं च वाणिज्ये कृषिकर्मणि ।
 तुल्ये सति परिक्लेशे वरं क्लेशो विमुक्तये ॥ ११९ ॥
 स्वर्गापवर्गयोरेकं यः शीघ्रं न प्रसाधयेत् ।
 याति तेनैव देहेन स मृतस्तप्यते चिरम् ॥ १२० ॥
 यदवश्यं परार्थीनैस्त्यजनीयं शरीरकम् ।
 कस्मात्तेन विमूढात्मा न साधयति शाश्वतम् ॥ १२१ ॥
 यौवनस्था गृहस्थाश्च प्रासादस्थाश्च ये नृपाः ।
 सर्वे एव विशीर्यन्ते शुष्कस्निग्धान्नमोजनाः ॥ १२२ ॥
 अनेकदोषदुष्टस्य देहस्यैको महान् गुणः ।
 यां यामवस्थामामोति तां तामेवानुवर्तते ॥ १२३ ॥
 मन्दं परिहरन् कर्म स्वदेहमनुपालयेत् ।
 वर्षासु जीर्णकटवत्तिष्ठन्नप्यवसीदति ॥ १२४ ॥
 न तेऽत्र देहिनः सन्ति ये तिष्ठन्ति सुनिश्चलाः ।
 सर्वे कुर्वन्ति कर्माणि विकृशाः पूर्वकर्मभिः ॥ १२५ ॥
 तुल्ये सत्यपि कर्तव्ये वरं कर्म कृतं परम् ।
 यः कृत्वा न पुनः कुर्यान्नानाकर्म शुभाशुभम् ॥ १२६ ॥
 तस्मादन्तर्बहिश्चिन्तामनेकाकारसंस्थिताम् ।
 संत्यज्यात्महितार्थाय स्वाध्यायध्यानमभ्यसेत् ॥ १२७ ॥

विविक्ते विजने रम्ये पुष्पाश्रमविभूषिते ।
 स्थानं कृत्वा शिवस्थाने ध्यायेच्छान्तं परं शिवम् ॥ १२८ ॥
 येऽतिरम्याप्यरण्यानि सुजलानि शिवानि तु ।
 विहायाभिरता ग्रामे प्रायस्ते दैवमोहिताः ॥ १२९ ॥
 विवेकिनः प्रशान्तस्य^१ यत्सुखं ध्यायतः शिवम् ।
 न तत्सुखं महेन्द्रस्य ब्रह्मणः केशवस्य वा ॥ १३० ॥
 इति नामामृतं दिव्यं महाकालादवाप्तवान् ।
 विस्तरेणानुपूर्व्याच्च ऋष्यात्रेयः सुनिश्चितम् ॥ १३१ ॥
 प्रज्ञामथा विनिर्मथ्य शिवज्ञानमहोदधिम् ।
 ऋष्यात्रेयः समुद्धृत्य प्राहेदमणुमात्रकम् ॥ १३२ ॥
 शिवधर्मं महाशास्त्रे शिवधर्मस्य चोत्तरे ।
 यदनुक्तं भवेत् किञ्चित्तदत्र परिकीर्तितम् ॥ १३३ ॥
 त्रिदैवत्यमिदं शास्त्रं मुनीन्द्रात्रेयभाषितम् ।
 तिर्यङ्मनुजदेवानां सर्वेषां च विमुक्तिदम् ॥ १३४ ॥
 नन्दिस्कन्दमहाकालास्त्रयो देवाः प्रकीर्तिताः ।
 चन्द्रात्रेयस्तथाऽत्रिश्च ऋष्यात्रेयो मुनित्रयम् ॥ १३५ ॥
 एतैर्महात्मभिः प्रोक्ताः शिवधर्माः समासतः ।
 सर्वलोकोपकारार्थं नमस्तेभ्यः सदा नमः ॥ १३६ ॥
 तेषां शिष्यप्रशिष्यैश्च शिवधर्मप्रवक्तृभिः ।
 व्याप्तं ज्ञानसरः शर्वं विकचैरिव पङ्कजैः ॥ १३७ ॥
 ये श्रावयन्ति सततं शिवधर्मं शिवार्थिनाम् ।
 ते रुद्रास्ते मुनीन्द्राश्च ते नमस्याः स्वभक्तिः ॥ १३८ ॥
 ये समुत्थाय शृण्वन्ति शिवधर्मं दिने दिने ।
 ते रुद्रा रुद्रलोकेशा न ते प्रकृतिमानुषाः ॥ १३९ ॥

शिवोपनिषदं ह्येतदध्यायैः सप्तभिः स्मृतम् ।

ऋष्यात्रेयसगोत्रेण मुनिना हितकाम्यया ॥ १४० ॥

इति शिवोपनिषदि शिवाचाराध्यायः सप्तमः

इति शिवोपनिषत् समाप्ता

सदानन्दोपनिषत्

तच्छंयोरावृणीमहे— इति शान्तिः

अथैनं सदानन्दः संवर्तो जैगीषव्यश्च नीललोहितं रुद्रमुवाच ।
भगवन् किमपर्वी साधयतीति । स एतेभ्यो भगवान् नीललोहितः प्रोवाच ।
अन्तर्बहिर्धारितं परंब्रह्माभिधेयं शाम्भवं लिङ्गम्,

आधारे दहरेऽव्यक्ते स्वर्णस्फाटिकवैद्रुमम् ।

निरन्तरानुसन्धानात् तदन्तर्धारणे विदुः ॥

चतुर्दलं द्वादशारं द्व्यश्रमव्यक्तकं शिवम् ।

दहरेऽङ्गुष्ठमात्रं तमुमाकान्तमहर्निशम् ।

अनिराकारमात्मानं धृत्वा यान्ति परं पदम् ॥

परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।

तत्परात् परतोऽधीशस्तस्मात् स्यादुत्तरः शिवः ॥

जातवेदसमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं परं सदा ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः

तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

अन्तर्धारणशक्तेन ह्यशक्तेन द्विजोत्तमाः ।

संस्कृत्य गुरुणा दत्तं शैवं लिङ्गमुरःस्थले ।

धार्यं विप्रेण मुक्त्यर्थे शिवतत्त्वविदो विदुः ॥

येनाचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान् ।

अस्य मात्रा अकारो ब्रह्मरूप उकारो विष्णुरूपो मकारः कालकालः
अर्धमात्रा परमशिवः ओङ्कारो लिङ्गम् ।

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः ।

तस्मात्तद्धारणादेतलिङ्गदेहमलौकिकम् ।

मृतेऽपि तन्न दह्येत बिले चैतद्विनिक्षिपेत् ॥

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः ॥

यो वा स्वहस्तार्चितलिङ्गमेकं परात्परं धारयते नरो वा ।

तस्यैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ निरञ्जनं साम्यमुपैति दिव्यम् ॥

शिवलिङ्गधरं विप्रं विपन्नं तु न दाहयेत् ।

यदि वा दाहयेत्तस्य ब्रह्महत्या तदा भवेत् ॥

यदिदं लिङ्गं सकलं सकलनिष्कलं निष्कलं च स्थूलं सूक्ष्मं च
तत्परं स्थूले स्थूलं सूक्ष्मे सूक्ष्मं कारणे तत्परं च ।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।

ध्याननिर्मथनादेव पाशं दहति मानवः ।

अन्तर्बहिश्च तलिङ्गं विधत्ते यस्तु शाश्वतम् ॥

अविद्याऽऽवरणं भित्त्वा ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामामोति । तदिदं
लिङ्गं ब्रह्म । तदिदं ॐ सत्यम् । यो विद्वान् ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यत्किं
सदानन्दोपनिषदं पठति सोऽग्निपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति ।

स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । स सकलभोगभुक्
देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति । इत्युपनिषत् ॥

इति सदानन्दोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तशिखोपनिषत्

ॐ अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । कोऽयं भवादृशानां परमशिव-
भक्तानां सिद्धान्तः । कुतः सर्वे न विदन्तीति । तद्ब्रुमुवाच स्कन्दः ।
भारद्वाज शृणु नाम कचिद्वदन्ति साम्बं सर्वदेवप्रकृष्टं शिवं वरेण्यं पक्वचित्ताः
शिवस्य प्रसादतो ज्ञानमात्राद्विदन्ति ।

विश्वाधिकं शङ्करं ये प्रमूढा हीनं विष्णोर्ब्रह्मणो वा वदन्ति ।
न संसारात् प्रमुच्यन्ते कदाचिच्छतैः कल्पैः कोटिभिर्वाऽथ दोषैः ॥

यथा राज्ञे कुर्वन्नमात्यबुद्धिः

तेही विन्देद्बाधमस्माद्विनष्टम् ।

शिवमेवं विदित्वैः

बुद्ध्या दीयतेऽज्ञानसङ्गात् ॥

महानभिः काष्ठमाद्रौ च शुष्कं कृत्वा दहेदीश्वरोत्कृष्टबुद्धिः ।
दहेत् पापान्याशु विज्ञानदात्री न संसारे मज्जते वा कदाचित् ॥
महादेवे त्रिपुण्ड्रस्य धारणे भस्मकुण्ठने ।
पुण्यलेशविहीनस्य श्रद्धा नैव प्रजायते ॥

पापपूर्णस्य मर्त्यस्य त्रिपुण्ड्रोद्धूलने शिवे ।

रुद्राक्षधारणे द्वेषः स्वत एव प्रजायते ॥

जन्मान्यनन्तानि विस्तीर्य भूयः शिवप्रसादाद्धृतपुण्यलेशः ।

शिवे भक्तिं प्राप्य तद्भक्तसङ्गान्न संसृतौ घोरदुःखात् प्रमज्जेत् ॥

योऽज्ञानाद्वा शिवशब्दं गृणानः पापैर्घोरैर्मुच्यते वा कदाचित् ।

को वा वेत्ता महिमानं शिवस्य परात् परस्य ज्ञानगुह्यस्य गुह्यम् ॥

सद्योजाताद्वाक्षणाः संबभूवुर्वामदेवात् क्षत्रिया वै विशश्च ।

अघोराच्छूद्रास्तत्पुरुषाच्छिवस्य पञ्चात्मकस्य गणा ईशतोऽस्य ॥

आत्माश्रमिताद्गणवंशजाता लिङ्गाङ्गसङ्गस्तत्र जन्मान्तदीक्षा ।

यथा गङ्गा शिवसङ्गात्तथैव न सूतकं वा नाप्यशुचित्वमेषाम् ॥

गच्छंस्तिष्ठन्निमिषन्नुन्मिषन् वा स्वपञ्चाग्रालिङ्गधारी शुचिः स्यात् ।

मुञ्जन् मूत्राद्युत्सृजन् वा कदाचिन्न तत्रोच्छिष्टं भजते शुद्धदेही ॥

शीर्षे कण्ठे वक्षसि कक्षदेशे नामौ हस्ते सर्वदा प्राणलिङ्गम् ।

धार्य यथासम्प्रदायं पुरस्तादुरोर्विदित्वा हृदये मुख्यमुक्तम् ॥

स्नानं कृत्वा शिवतीर्थे च देहं सर्वं भस्मोद्धूलनात् पावयित्वा ।

त्रिपुण्ड्रं धार्य भर्त्सनात् पातकौघगिरेर्मत्स्यं प्राहुरत्यर्थमेतत् ॥

स्नानं त्रिपुण्ड्रस्य शिरोललाटवक्षःस्कन्धमणिबन्धेषु कूर्पे ।

नाभिप्रदेशे पार्श्वयोर्गण्डदेशे गुदप्रदेशे गुल्फयोश्च क्रमात् स्यात् ॥

वह्नित्रयं तच्च जगत्त्रयं यद्गुणत्रयं तच्च शक्तित्रयं स्यात् ।

धृतं त्रिपुण्ड्रं यदि कोपि दैवात् तद्दृष्ट्वान्यः पातकौषाद्विमुक्तः ॥

निमीलिताक्षस्य पुरत्रयाणि

दग्धाः शंमोर्नयनेभ्योऽथ ये तु ।

जाता रुद्राक्षा जलबिन्दवोऽस्य

सद्योजातादीन् पञ्च वक्त्राणि विन्ध्यात् ॥

द्वात्रिंशद्द्राक्षाः कण्ठमालाप्रयुक्ताः

शिखायामेको द्विचत्वारिंशदुक्ताः ।

शिरोधार्याः कर्णयोर्द्वादशास्थ

शतत्रयं तूपवीतं च बाह्वोः ॥

द्वात्रिंशदुक्ता मणिबन्धयोश्च चतुर्विंशाः शतमष्टौ जपार्थम् ।

पुरा लीनाः सृष्टिकालाच्छिवस्य पञ्चाक्षरे मन्त्रवर्ये समस्ताः ।

भूतानि पञ्च वेदा आगमाश्च शिवाल्लब्धोऽभून्मन्त्रवर्यो विधाता ॥

देहिनो देहमायान्ति न यावन्मन्त्रनायकः ।

तावत्पापानि गर्जन्ति सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥

योऽयं नकारः सोऽयमकारः स सद्योजातो भूर्ऋग्वेदः संपुटमुच्यते ।

योऽयं मकारः सोऽयमुकारः स वामदेव आपो यजुर्वेदो वक्त्रमुच्यते ।

योऽयं शिकारः सोऽयं मकारः स घोरः सं वायुः सामवेदो गुण उच्यते ।

योऽयं वकारः सोऽयं नादः स तत्पुरुषः स तेजोऽथर्ववेदोऽघोरमुच्यते ।

योऽयं यकारः तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषप्रणवः स सर्वोत्तम ईशान

आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते । इत्येतत्तत्त्वं यो विजानाति स नित्यं शुद्ध-

बुद्धपरमानन्दपरमशिवस्वरूपः ।

पुरा देवाः पशुपाशाद्विमुक्ताः शिवं पूज्यैव हरिपद्मादयोऽपि ।

ऐन्द्रनीलं पूजितं विष्णुनासील्लिङ्गं वैदूर्यं विधिना पद्मरागम् ॥

शक्रेण हैमं यक्षराजेन विश्वेदेवै रौप्यं वसुभिः कांस्यकं च ।

यद्दारुकूटं वायुना पार्थिवं तदश्विभ्यामासीत् स्फाटिकं पाशिनाथ ॥

आदित्यैस्ताम्रं मौक्तिकं देवतैस्तैरनन्ताद्यैः फणिभिश्च प्रवालम् ।

दैत्यैर्जालं राक्षसैश्च त्रिलोहं गणैः शैलं सैकतं मातृकाभिः ॥

सिद्धान्तसारोपनिषत्

३८३

दारुद्र्यं निर्ऋतिना यमेन सुपूज्यमासीन्मारकतं च रुद्रैः ।
 सुभस्मरूपं सूक्ष्मरूपं च लक्ष्म्या शैलान्येव मुनयो भेजिरेऽथ ॥
 सरस्वती रत्नरूपं च दुर्गा हैमं लिङ्गं पूजयामास भक्त्या ।
 जलैरुष्णैः शीतलैर्वा कदाचिदज्ञानाद्वा पतितैः पत्रपुष्पैः ।
 तुष्टो यच्छेद्वाञ्छितार्थं महेशः किं दुर्लभं शिवभक्तस्य लोके ॥
 अत्यल्पमपि नैवेद्यं फलं वा जलमेव वा ।
 तदेव प्राशयित्वाथ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
 किमन्यैर्धार्मैर्मस्मिन् शुद्धपुण्ड्रे स्थिते किमन्यैर्मन्त्रवर्येऽथ मन्त्रैः ।
 शिवे स्थिते सर्वदेवाधिराजे भारद्वाज निर्जरैः किं तथाऽन्यैः ॥
 सिद्धान्तोऽयं निश्चितोऽस्माभिरेष भारद्वाज गुह्यमेतन्न वाच्यम् ।
 सदा प्रशान्ताय न नास्तिकाय परीक्ष्याथ ब्रूहि सर्वार्थवेत्त्रे ॥

इत्याह भगवान् स्कन्दः । तामेनां सिद्धान्तशिखां प्रातर-
 धीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानोऽद्विकृतं पापं नाशयति ।
 सार्वकालं प्रयुञ्जानः पापैरपापो भवतीति विज्ञायते । इति वेदवचनं
 भवति । इति वेदवचनं भवति । ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥

इति सिद्धान्तशिखोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तसारोपनिषत्

भद्रं कर्णेभिः—इति शान्तिः

प्रथमावरणम्

अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । भगवन् मे ब्रूहि परमतत्त्वकैलास-
 रहस्यम् । तदुब्रमुवाच स्कन्दः । साधु पृष्टं सर्वं निवेदयामि यथाज्ञातं

मया । हे भारद्वाज शृणु वाक्यमेतत् । परमकैवल्यः स एव कैलासः । ईश्वरकृपया परमपरिपक्वचित्ता जानन्ति । नान्ये जानन्ति गुह्यमिदमनिर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुद्रमखण्डानन्दरूपन्निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तं ब्रह्मानन्दसमष्टिकृदं तैरानन्दपुरुषैश्चिद्रूपैरधिष्ठितं ब्रह्मानन्दमयानन्तनिरतिशयानन्दसागराकारमात्मसमानानन्दविभूतिपुरुषानन्तानन्दमण्डितं नित्यमङ्गलमनन्तविभवम् । ब्रह्मानन्दमयानन्तप्राकारप्रासादतोरणविमानोपवनावलीभिर्ज्वलच्छिखरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवधनिरतिशयनिरवधिकब्रह्मानन्दाचलो विराजते । तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दलक्षणं विभाति । तदन्तराले चिन्मयवेदिकाऽऽनन्दवेदिकाऽऽनन्दवनविभूषिता । तत्र वेदकल्पतरुवं यज्ञकल्पतरुवं योगकल्पतरुवनम् । तदभ्यन्तरे अमिततेजोराशिस्वात्मज्योतिर्ज्वलति । तत्र परममङ्गलासनं विराजते । तस्योपरि समासीनानन्तपरिपालकनन्धादिगणपाः सन्ति । अनन्तोत्कटजलदमण्डलं निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलबृन्दाकारपरमानन्दशुद्धबोधस्वरूपमनन्तानन्दसौदामिनीपरमविलासं निरतिशयानन्तपरमानन्दपारावारजालम् ॥

इति प्रथमावरणम्

द्वितीयावरणम्

तन्मध्ये कल्याणाचलो विभाति । अनन्तानन्दपर्वतशिखरैरभिव्याप्तमनन्तबोधानन्दव्यूहैरमितस्ततं ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्दरसनिर्भरैः क्रीडानन्दपर्वतैरनन्तैरभिव्याप्तं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्राकारैरानन्दामृतमयैर्दिव्यगन्धैः स्व-

भावचिन्मयैरनन्तब्रह्मवर्णैरतिशोभितमपरब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतमनन्तमोक्ष -
 साम्राज्याद्वितीयमेकं परमकल्याणमनन्तविभवममितबोधानन्दाचलोपरिस्थितं
 शुद्धबोधमयानन्तप्रासादैः संवृतमानन्दमयानन्तविमानावलीभिर्विराजितमत्या-
 श्रयानन्तविभूतिसममनन्तशुद्धानन्दपरिधैः समावृतमनन्तदिव्यतेजोज्वाला-
 जालैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तमत्याश्रयानन्तविभूतिसमष्टाकारमानन्दरसप्रवा-
 हैरलङ्कृतममितविज्ञानतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैर-
 नन्तब्रह्मवर्णैरभितस्ततं ब्रह्मविद्याकल्पतरुवनैः सुशोभितं बोधकल्पतरुवनैः
 परिवेष्टितमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं तदभ्यन्तरेऽनन्तदिव्यमङ्गलासनं विराजते ।
 तदुपरि नित्यज्ञानानन्दरूपा अद्वैतशिवपूजकास्तिष्ठन्ति ॥

इति द्वितीयावरणम्

तृतीयावरणम्

तन्मध्ये चिदानन्दाचलो विभाति । तदुपरि ब्रह्मतेजोमयानन्तशिखराः
 सन्ति । तत्र ब्रह्मविद्यामयानन्तपरिधाः सन्ति । वाचामगोचरानन्तचिन्मया-
 नन्दवनैः परिवेष्टितं ब्रह्मकल्पतरुवनैः समावृतं अमृतकल्पतरुवनैरुपशोभितं
 ब्रह्मतेजोमयानन्दरसप्रवाहैरतिशोभितं ब्रह्मविद्यातरङ्गिण्याः प्रवाहैः सुमङ्गलं
 निरतिशयानन्तदिव्यानन्दतेजोज्वालाराशिमण्डलं ज्वलति । परमानन्दमया-
 नन्तविमानावलिभिः संकुलमनन्तचिन्मयप्रासादजालसंकुलमनन्तब्रह्मानन्दानु-
 भवपताकाध्वजतोरणैरलङ्कृतमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं तदभ्यन्तरसंस्थानेऽन-
 न्तचिन्मयासनं विराजते । तस्योपरि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तशिवैक्यमक्तास्तिष्ठन्ति ॥

इति तृतीयावरणम्

चतुर्थावरणम्

तन्मध्येऽमितबोधानन्दाचलो विभाति । तदुपरि परमकैवल्यानन्द-
रूपानन्तशिखराः सन्ति । तत्र परमानन्दामृतमयैर्दिव्यानन्तप्राकारो
ज्वलति । दिव्यगन्धैः स्वभावचिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमानन्दकल्पतरुव-
नैरावृतं मुक्तिकल्पतरुवनैः सुशोभितं पारावारानन्दरसनिर्भरैरतिशोभितं स्वा-
त्मानन्दानुभवतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं परमकल्याणमनन्तविभवममितते-
जोराश्याकारमनन्तब्रह्मतेजोराशिसमष्ट्याकारमनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरभि-
तोऽनिशं प्रज्वलितमनन्तदिव्यापारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतममोघनिजमन्द-
कटाक्षचिदानन्दमयानेकप्रासादविशेषैः परिवेष्टितं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्रकारा-
नन्दामृतदिव्यमङ्गलविमानैः सुशोभितं चिद्रूपविलासनिभचिन्मयासनं विरा-
जते । अधितिष्ठन्ति तेजोराशिं तदन्तर्गतदिव्यतेजोविशेषमखिलपवित्राणां
परमं पवित्रं चिद्रूपपरानन्तनित्यमुक्तैरभिव्यासं सच्चिदानन्दरूपाः शिवा-
त्मैक्योपासकाः ॥

इति चतुर्थावरणम्

पञ्चमावरणम्

अनन्तानन्दपर्वतैः परमकौतुकमाभाति । तदुपरि ज्वलति निरति-
शयानन्ददिव्यतेजोराशिमण्डलम् । चिदानन्दमयानन्तप्राकारविशेषैः परिवेष्टि-
तम् । तच्च परमकल्याणविलासविशेषम् । तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं
परमानन्दसौदामिनीचयोज्ज्वलम् । तच्चामितपरमतेजःपरमविहारसंस्थानविशेषं
परमतेजोमण्डलविशेषं परमानन्दामृतब्रह्मविद्यामयानन्तसमुद्रं चिदानन्दतरङ्गा-

सिद्धान्तसारोपनिषत्

३८७

कारम् । तन्मध्ये अनन्तदिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्ध-
 बोधानन्दमण्डलं वाचामगोचरानन्दब्रह्मतेजोराश्याकारमनन्तशिखरोज्ज्वलम-
 खण्डतेजोमण्डलविशेषं नित्यानन्दमूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परिधीकृतम-
 परिच्छिन्नानन्दसागराकारं ब्रह्मानन्दरसक्रीडावनैः सुशोभितमनन्तसहस्रान-
 न्दप्राकारैः समुज्ज्वलितं मुक्तिकल्पतरुवनैः परिवेष्टितं विभूतिकल्प-
 तरुवनैरभितस्ततमनन्तानन्दविमानजालसंकुलमनन्तबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं
 प्रज्वलितं क्रीडानन्तमण्डपविशेषैर्विशेषितं बोधानन्दमयानन्तपरमछत्तध्वज-
 चामरवितानतोरणैरलङ्कृतं शुद्धानन्दविशेषसमष्टिमण्डलविशेषानन्तप्रासादोन्न-
 तोज्ज्वलमखण्डचिद्ब्रह्मानन्दविशेषं परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्त-
 दिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्धबोधानन्दमण्डलं परमानन्द-
 लहरीवनशोभितमसङ्ख्याकानन्दसमुद्रमनन्तज्वालाजालैरलङ्कृतं चिदानन्द-
 तरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं स्वात्मानन्दानुभवामृतकलोलरसप्रवाहैरलङ्कृतं स्व-
 प्रकाशानन्तानन्दतेजोज्वालाजालैरावृतम् । तदभ्यन्तरे चिन्मयानन्दासन-
 मुज्ज्वलम् । तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तदभ्यन्तरसमासीनाः
 आनन्दसागरनित्यतृप्ताः शिवाद्वैतोपासकाः स्वात्मलिङ्गार्चकास्तिष्ठन्ति ।
 निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलाकारा आनन्दधनसागराः परमकैवल्यस्वरूपानन्त-
 गणाः परिसेवन्ते ॥

इति पञ्चमावरणम्

षष्ठावरणम्

परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवधं निराश्रयमतिनिर्मला-
 नन्तकोटिरविप्रकाशैकोज्ज्वलमनन्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं मनो-

वाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपं कैवल्यानन्दरूपं परमानन्दलक्षणापरि-
 च्छिन्नानन्तज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति । तदभ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्द-
 चिद्रूपाचलमखण्डपरमानन्दविशेषं बोधानन्दमहोज्ज्वलमनन्तचित्सागरकल्लो-
 लजालशिखराकारं नित्यमङ्गलमन्दिरमनन्तानन्दबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं
 प्रज्वलितं चिदानन्दानन्तचित्सागरैः परिधीकृतं ब्रह्माक्षात्कारानु-
 भवविशेषबोधसारतरानन्तप्राकारैः समुज्ज्वलितमनन्तसहस्रकैवल्यानन्दवनोप-
 वनैः सुशोभितमनन्तानन्दविभूतिदिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारं स्वात्मानन्दानु-
 भवविज्ञानघनरुद्राक्षकल्पतरुवनैरतिमङ्गलमनन्तानन्दचित्सागरमथनोद्धूतरसप्र-
 वाहैरलङ्कृतमद्वितीयं स्वयंप्रकाशमनिशं ब्रह्मानन्दामृतरसाम्भोनिधितर-
 ङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं निरुपमनिरवधनित्यशुद्धबुद्धनिरतिशयतेजोराशि-
 विशेषानन्तानन्दविमानजालावलिभिः समाकुलं क्रीडानन्तमण्टपविशेषैर्विशे-
 षितं बोधानन्दमयानन्तदिव्यतेजोराशिविशेषचैतन्यप्रासादैः परिवेष्टितमनन्त-
 परमानन्दामृतरसाब्धिकल्लोलतरङ्गावलिभिर्दिव्यतेजोमयछत्रचामरध्वजपताका-
 वितानतोरणादिभिरलङ्कृतं परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततं तच्चानन्तब्रह्म-
 तेजोमयबिम्बकल्पतरुवनैराकुलं वेदान्तसारभूतसिद्धान्तानन्तस्कन्धैर्विराजितं
 महावाक्यार्थस्वरूपानन्तशाखासमन्वितं सच्चिदानन्दस्वरूपानन्तानन्दपत्रैस्सु-
 मङ्गलमद्वितीयात्मचैतन्यवृन्तैः सुसंलग्नं विज्ञानघनमानन्दामृतकल्लोलानन्त-
 पुष्पैरलङ्कृतमखण्डानन्दाह्लादानन्तप्रवाहदिव्यसुगन्धैः समाकुलं निरतिशया-
 नन्दामृतसारसागरानन्तमकरन्दाकारं निश्शङ्कानन्दभोक्षमाप्राज्यचिन्तामणि-
 फलानन्तैर्विराजितं वाचामगोचरमनोन्मनानन्दाम्बुधिविव्यतेजोमयज्वालाजाल
 दीपितात्यन्तोन्नतानन्तशिखराकारं शिवालयं शिवानन्दमयदिव्यनानालीला
 विग्रहविलासविलसितानन्दाविर्भावचरित्रचित्रीकृतचित्रैरलङ्कृतं मूर्तिमग्निः
 शिवधर्मानन्तोन्नतगोपुरद्वाराकारैरसंख्यैरावृतं शिवधर्मानन्दमूर्तिवृक्षमावलिभिः

सिद्धान्तसारोपनिषत्

३८९

सुमङ्गलं शिवविज्ञानानन्दसागरतीर्थाकारं पुरतःस्थितानन्तदिव्यतीर्थानां
 निजमन्दिरं विज्ञानानन्दधनस्वरूपानन्तसोपानमण्डलमालयमध्यगतं स्वात्म-
 ज्योतिर्मयचिद्रूपवेदिकास्थानविशेषं तदुपरि चैतन्यशक्त्यालङ्कृतस्वात्मचैतन्य-
 कैलासेश्वरलिङ्गाकारं सुपूजितं तत्सन्निधौ शिवविज्ञानानन्दधनशैवधर्ममूर्तिमा-
 साद्य वृषभाकृतविराजितं शिवानन्दनन्दिसेनबाणरावणधनन्तनानामयानन्ता-
 नन्दमूर्तिमासाद्य गणेशकुमारनन्दभृङ्गिचण्डिरिडिकीर्तिमुखवीरभद्रभैरवमहा-
 कालशोभनन्दिसुनन्दनन्दिसेनबाणरावणाद्यनन्तनानागणपरूपमासाद्यानन्तग-
 णसेवितशिवालयस्य समन्तात् स्वस्वस्थाने सुशोभितं बोधानन्दमयैरनन्त-
 नित्यमुक्तैः परिसेवितं शुद्धबोधपरमानन्दाकारवनं सन्ततामृतपुष्पवृष्टिभिः
 परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरभिव्याप्तं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परमकौतुका-
 परिच्छिन्नानन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिषोभितं वाचामगोचरानन्द-
 ब्रह्मतेजोराशिमण्डलमखण्डतेजोमण्डलविशेषं दिव्यनानामङ्गलवाद्यैरलङ्कृतं
 प्रणवात्मकध्वन्याकारं विज्ञानधनस्वरूपमनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकारं शिवा-
 द्वैतोपासका भजन्ते ॥

इति षष्ठावरणम्

इति सिद्धान्तसारोपनिषत् समाप्ता

हेरम्बोपनिषत्

सह नावतु इति—शान्तिः

अथातो हेरम्बोपनिषदं व्याख्यास्यामः । गौरी सा सर्वमङ्गला सर्वज्ञं परिसमेत्योवाच ।

अधीहि भगवन्नात्मविद्यां प्रशस्तां यया जन्तुर्मुच्यते मायया च ।
 यतो दुःखाद्विमुक्तो याति लोकं परं शुभ्रं केवलं सात्त्विकं च ॥
 तां वै स होवाच महानुकम्पासिन्धुर्बन्धुर्भुवनस्य गोप्ता ।
 श्रद्धस्वैतद्गौरि सर्वात्मना त्वं मा ते भूयः संशयोऽस्मिन् कदाचित् ॥
 हेरम्बतत्त्वे परमात्मसारे नो वै योगाच्चैव तपोबलेन ।
 नैवायुधप्रभावतो महेशि दग्धं पुरा त्रिपुरं दैवयोगात् ॥ ३ ॥
 तस्यापि हेरम्बगुरोः प्रसादाद्यथा विरिञ्चिर्गर्ुडो मुकुन्दः ।
 देवस्य यस्यैव बलेन भूयः स्वं स्वं हितं प्राप्य सुखेन सर्वम् ॥
 मोदन्ते स्वे स्वे पदे पुण्यलब्धे सर्वैर्देवैः पूजनीयो गणेशः ।
 प्रभुः प्रभूणामपि विघ्नराजः सिन्दूरवर्णः पुरुषः पुराणः ॥ ५ ॥
 लक्ष्मीसहायोऽद्वयकुञ्जराकृतिश्चतुर्भुजश्चन्द्रकलाकलापः ।
 मायाशरीरो मधुरस्वभावस्तस्य ध्यानात् पूजनात्तत्त्वभावाः ॥
 संसारपारं मुनयोऽपि यान्ति सं वा ब्रह्मा स प्रजेशो हरिः सः ।
 इन्द्रः स चन्द्रः परमः परात्मा स एव सर्वो भुवनस्य साक्षी ॥
 स सर्वलोकस्य शुभाशुभस्य तं वै ज्ञात्वा मृत्युमत्येति जन्तुः ।
 नान्यः पन्था दुःखविमुक्तिहेतुः सर्वेषु भूतेषु गणेशमेकम् ॥ ८ ॥

विज्ञाय तं मृत्युमुत्तात् प्रमुच्यते स एवमास्थाय शरीरमेकम् ।
 मायामयं मोहयतीव सर्वं स प्रत्यहं कुरुते कर्मकाले ॥ ९ ॥
 स एव कर्माणि करोति देवो लोकः गणेशो बहुधा निविष्टः ।
 स पूजितः सन् सुमुखोऽभिभूत्वा दन्तीमुखोऽभीष्टमनन्तशक्तिः ॥
 स वै बलं बलिनामग्रगण्यः पुण्यः शरण्यः सकलस्य जन्तोः ।
 त्रमेकदन्तं गजवक्त्रमीशं विज्ञाय दुःखान्तमुपैति सद्यः ॥ ११ ॥
 लम्बोदरोऽहं पुरुषोत्तमोऽहं विज्ञान्तकोऽहं विजयात्मकोऽहम् ।
 नागाननोऽहं नमतां सुसिद्धः स्कन्दाग्रगण्यो निखिलोऽहमस्मि ॥
 न मेऽन्तरायो न च कर्मलोपो न पुण्यपापे मम तन्मयस्य ।
 एवं विदित्वा गणनाथतत्त्वं निरन्तरायं निजबोधवीजम् ॥ १३ ॥
 क्षेमद्वारं सन्ततसौख्यहेतुं प्रयान्ति शुद्धं गणनाथतत्त्वम् ।
 विद्यामिमां प्राप्य गौरी महेशादभीष्टसिद्धिं समवाप सद्यः ।
 पूज्या परा सा च जजाप मन्त्रं शम्भुं पतिं प्राप्य मुदं कवाप ॥

य इमां हेरम्बोपनिषदमधीते स सर्वान् कामान् लभते । स
 सर्वपापैर्मुक्तो भवति । स सर्वैर्वेदैर्ज्ञातो भवति । स सर्वैर्वेदैः पूजितो भवति ।
 स सर्ववेदपारायणफलं लभते । स गणेशसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद ।
 इत्युपनिषत् ॥

इति हेरम्बोपनिषत् समाप्ता

५. शाक्त-उपनिषदः

अल्ला-उपनिषत्

दिव्यानि धत्ते धत्ते दिव्यानि दिव्यानि धत्ते । धत्त इलल इलले
 धत्ते धत्त इलले । धत्त इति धत्ते । इलले वरुणो वरुण इलल इलले वरुणः ।
 इलल इति इलले । वरुणो राजा राजा वरुणो वरुणो राजा । राजा पुनर्दुः
 पुनर्दुः राजा राजा पुनर्दुः । पुनर्दुरिति पुनः दुः । ह्वयामि मित्रो मित्रो
 ह्वयामि ह्वयामि मित्रः । मित्र इलामिलां मित्रो मित्र इलाम् । इलामिलल इलल
 इलामिलामिलले । इलल इलामिलामिलल इलल इलाम् । इलां वरुणो वरुण
 इलामिलां वरुणः । वरुणो मित्रो मित्रो वरुणो वरुणो मित्रः । मित्रस्तेज-
 स्कामस्तेजस्कामो मित्रो मित्रस्तेजस्कामः । तेजस्काम इति तेजः कामः ॥१॥
 अयामिलामिलामयामयामिलाम् । इलां त्वं त्वमिलामिलां त्वम् । त्वमर्यम-
 मर्यमं त्वं त्वमर्यमम् । अर्यमं वरुणो वरुणोऽर्यममर्यमं वरुणः । वरुणो
 दध्म दध्म वरुणो वरुणो दध्म । दध्म दीर्घायुर्दीर्घायुर्दध्म दध्म
 दीर्घायुः । दीर्घायुर्वहते वहते दीर्घायुर्दीर्घायुर्वहते । दीर्घायुरिति दीर्घ
 आयुः । वहते सुयः सुयो वहते वहते सुयः । सुय इति सुयः ।
 होतारमिन्द्र इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्रः । इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्र इन्द्रो

आथर्वणद्वितीयोपनिषत्

३९३

होतारम् । इन्द्रो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्र इन्द्र इन्द्रो महासुरेन्द्रः ।
 महासुरेन्द्रः सप्तऋषयः सप्तऋषयो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्रः सप्तऋषयः ।
 सप्तऋषयः सं सं सप्तऋषयः सप्तऋषयः सम् । सप्तऋषय इति सप्त
 ऋषयः । सं तुष्ट तुष्ट सं सं तुष्ट । तुष्ट देवा देवास्तुष्ट तुष्ट देवाः । देवा
 इति देवाः ॥ २ ॥

इलामिलामिलामिलामिलाम् । इलेलाकबहोऽकबर्ह इलेलाकबहोऽकबर्ह
 इलेलाकबहोऽकबर्ह इलेलाकबहोऽकबर्ह इलेलाकबहोऽकबर्हः । अकबहोऽस्म्यक-
 बहोऽस्म्यकबहोऽस्म्यकबहोऽस्म्यकबहोऽस्मि ॥ ३ ॥

इति अल्ला-उपनिषत् समाप्ता

आथर्वणद्वितीयोपनिषत्

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्ध्यादिदशकं तस्यै वै
 नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लघिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती महिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 मुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती इच्छा-
 सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राप्तिरसिद्धिस्त-
 स्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो

नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्राह्मचर्यकं तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ब्राह्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईं माहेश्वरीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती ऊं कौमारीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती ऋं वैष्णवीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती ॠं वाराहीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ऐं इन्द्राणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ओं चामुण्डाशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 महालक्ष्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 मुद्रादशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वां
 सर्वसंशोभिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वां
 दाविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं
 सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वृद्धं
 सर्वव्याहरीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सः
 उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रस्वर्षे
 खेचरीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रसौं
 बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं सर्वयोनि-
 मुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रसौं त्रिखण्ड-
 मुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रथमचक्रेश्वरी
 त्रिपुरा देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अग्निमादि-
 सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंशोभिणीमुद्रा
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वां सर्वाकर्षिणीमुद्रा

तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिणी तस्यै वै
 नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती बुद्ध्याकर्षिणी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अहङ्काराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शब्दाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती स्पर्शाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती रूपाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या शिवा भगवती
 रसाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती गन्धाकर्षिणी
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चित्ताकर्षिणी तस्यै वै
 नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती धैर्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती स्मृत्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती नामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती बीजाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती आत्माकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 अमृताकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 शरीराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वितीय-
 चक्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं ह्रीं सौः
 त्रिपुरेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रीं
 सर्वविद्राविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 अनङ्गकुसुमाष्टकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती चे छं जं झं ञं अनङ्गमेखला तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती टं ठं डं ढं णं अनङ्गमदना तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अनङ्गमदनातुरा तस्यै वै नमो नमः ।

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती पं फं बं भं में अनङ्गरेखा तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं अनङ्गवेगा तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशा तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लं क्षं अनङ्गमालिनी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं क्लीं सौः तृतीयचक्रेश्वरी त्रिपुर-
 सुन्दरी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्लीं
 सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वसंक्षोभिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वविद्राविणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वाकर्षिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वाह्लादिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंमो-
 हिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वस्तंभिनी-
 शक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वजृम्भिणीशक्ति-
 स्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वरञ्जनी तस्यै वै
 नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्ववशङ्करी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वोन्मादिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वार्थसाधकी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती सर्वसंपत्तिपूरणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वमन्त्रमयी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ऐं क्लीं सौः त्रिपुरवासिनी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती

ॐ सर्वज्ञाद्विमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसिद्धिप्रदादिदशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसिद्धिप्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्व-
 संप्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वप्रियहरी
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमङ्गलकारिणी तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकामप्रदा तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वदुःखविमोचनी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमृत्युप्रशमनी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वविघ्ननिवारणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वाङ्गसुन्दरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती सर्वसौभाग्यदायिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती ह्रसै हसूली हसौः पञ्चमचक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीस्तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या
 वै शिवा भगवती उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वज्ञादिदशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वज्ञशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वशक्तिदेवी
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वैश्वर्यप्रदायिनी तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज्ञानमयी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वव्याधिविनाशिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाधारस्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वपापहरा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वानन्दमयी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वरक्षास्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती

सर्वेप्सितफलप्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं
 ह्रीं ब्लें त्रिपुरामालिनी नित्या तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशिन्ध्याद्य-
 ष्टकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अं आं ईं ईं उं ऊं
 ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनी वाग्वादिनी देवता तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरी
 वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं
 ञं ह्रीं मोदिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं
 ठं डं ढं णं ह्रूं विमला वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती तं थं दं धं नं अरुणा वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती पं फं बं मं मं हसलव्यूं जयिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं हस्म्यो सर्वेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं क्ष्वीं कौलिनी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं श्रीं सौः सप्तमचक्रेश्वरी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुरा सिद्धा नित्या तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती मुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती हस्र्क्ष्त्रे खेचरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती यां रां लां वां शां द्रां द्रीं ह्रीं ब्लूं सः बाणस्तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती घं थं सं मोहनकोदण्ड-
 रूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ह्रीं
 पाशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 अङ्कुशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रें

हस्रौ हस्रौः त्रिपुरजननी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती इच्छासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 हस्रौ बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 कामेश्वर्यादिदेवतात्रयं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 वामभवकूटे कामेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 कामराजकूटे वज्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 शक्तिकूटे भगमालिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 हसकलरडैं हसकलरडां हसकलरडैं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती प्राप्तिरसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ऐं योनिमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ओङ्कारपीठदेवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वात्मकेन सर्वेश्वरी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुर-
 सुन्दरी त्रिपुरवासिनी त्रिपुराश्रीस्त्रिपुरमालिनी त्रिपुरासिद्धिस्त्रिपुरजननी
 त्रिपुरभैरवी ताम्ब्यो वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकाय-
 सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती हस्रौ त्रिखण्डमुद्रा
 तस्यै वै नमो नमः ।

ब्रह्मब्रह्मविदित्येतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत् ।

इत्याह भगवान् । ततो देवी स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद्य
 एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति । स सर्वं पश्यति । सोऽमृतत्वं च
 गच्छति । य एवं वेद । इति महोपनिषत् ॥

इत्याथर्वणद्वितीयोपनिषत् समाप्ता

कामराजकीलितोद्धारोपनिषत्

अथोषाच कामराजम् । तदुपासनात् कुशलं लभेत् । श्रियं लभेत् ।
 गृहीं वाणीं लभेत् । सर्वयुवतीनां प्रियो भवेत् । प्रथमं कामस्ततः
 शक्तिस्तदनु तुरीयं द्वावेतौ परैतानि पञ्चाक्षराणि भवन्ति । ततः शून्यं च
 द्वौ दिवाकरहरौ । तदनु गोत्रभृन्माया । एतानि षडक्षराणि भवन्ति ।
 ततश्चन्द्रः प्रजापतिशक्रौ । ततो माया । एतानि चतुरक्षराणि भवन्ति । आद्यं
 वाम्भवं द्वितीयं कामराजं तृतीयं शक्तिबीजं शुक्लं तरुणदिवाकराभं शशिकान्तं
 क्रमेण स्मरेत् । कफारादित्वात्कीलिता । कोटिजपात् सिद्धिर्न जायते । यदा
 मन्मथकलादिर्भवति तदा निष्कीलिता भवेत् । सिद्धिदा भवेत् । सा
 वीर्यवती भवेत् । त्रैलोक्यं वशमानयेत् । पूजनाद्दौर्भाग्यनाशो भवेत् । जपात्
 सिद्धीश्वरो भवेत् । इति शिवम् ।

अथाद्यं शाम्भवं द्वितीयं शाक्तं चेति गुरुमुखात् ज्ञातव्यम् । अन्यथा
 ज्ञापमाप्नुयात् । उपासना द्विविधा । शाम्भवं शाक्तं चेति । एवं लोप-
 नालोपा । प्रथमं शंभुचन्द्रौ । तदनु दिवाकरेन्द्रौ । ततः पराबीजं वाम्भवम् ।
 ततः कामराजं शिवचन्द्रकामशम्भुहरयः । पराबीजं शक्तिः । कामपरामध्ये
 देवराजमेतच्छक्तिकूटम् । एतेन पञ्चदशाक्षराणि भवन्ति । शम्भुप्रधानत्वाच्छा-
 म्भवम् । पूर्णोऽहं शिवोऽहमद्वैतरूपोऽहं नित्यानन्दरूपोऽहं इति स्मरेत् ।
 नापि पूजायां व्रतनियमः । सर्वदा जपं चरेत् । विनोदतः कामिनीमध्ये कामि-
 नीर्दृष्ट्वा च सदानन्दरूपो भवेत् । दिव्याङ्गरागैर्देहं भूषयेत् सुगन्धमाल्याम्ब-
 रालङ्काराद्यैः । मांसाद्यैः शुद्धैः सुमधुरैर्भोजयेत् । मपञ्चकेन पूजा कार्या ।
 सदा कौलिको भवेत् । कुलाचारात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । एकाकी शक्ति-
 युक्तो भवेत् । मादनं भुक्त्वा शक्तिभुग्भवेत् । शक्तिचक्रं पूजयेत् ।

भोगेन मोक्षमाप्नुयात् । शक्तिहर्षोत्पादनाच्छक्तिः प्रीता भवति । इति शिवम् ॥ २ ॥

अथ वकुलैरर्चयेत् । रक्तपुष्पैरर्चयेत् । तदभावे जलैस्तदभावे मानसीं भक्तिमाचरेत् । इति शिवम् ॥ ३ ॥

इत्याथर्वणशाखायां कामराजकीलितोद्धारोपनिषत् समाप्ता

कालिकोपनिषत्

ॐ अथ हैनं ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति । सुभगां त्रिगुणितां मुक्तासुभगां कामरेफेन्दिरासमस्तरूपिणीमेतानि त्रिगुणितानि तदनु कूर्च-
बीजं व्योमषष्ठस्वरां बिन्दुमेलनरूपां तद्वयं मायाद्वयं दक्षिणे कालिके चेत्य-
भिमुखगतां तदनु बीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानुजायामुच्यते । स तु शिवमयो
भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति ।
स तु वागीश्वरः । स तु नारीश्वरः । स तु देवेश्वरः । स तु सर्वेश्वरः ।
अभिनवजलदसङ्काशा घनस्तनी कुटिलदंष्ट्रा शवासना कालिका ध्येया । त्रिकोणं
पञ्चकोणं नवकोणं पद्मम् । तस्मिन् देवीं सर्वाङ्गेऽभ्यर्च्य तदिदं सर्वाङ्गं ओ
काली कपालिनी कुला कुरुकुला विरोधिनी विप्रचित्ता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता
नीला घना बलाका मात्रा मुद्राऽमिता चैव पञ्चदशकोणगाः । ब्राह्मी नारायणी
माहेश्वरी कौमारी अपराजिता वाराही नारसिंहिका चेत्यष्टपत्रगाः । षोडशस्वर-
भेदेन प्रथमेन मन्त्रविभागः । तन्मूलेनावहनं तेनैव पूजनम् । य एवं मन्तराजं
नियमेन वा लक्ष्मावर्तयति स पाप्मानं हन्ति । स ब्रह्मत्वं भजति । सः

अमृतत्वं भवति । स आयुरारोह्यैश्वर्यं भवति । सदा पञ्चमकारेण पूजयेत् । सदा गुरुभक्तं भवेत् । सदा देवभक्तो भवेत् । धर्मिष्ठतां पुष्टिमहत्वाच्च विद्यां लभन्ते । मन्त्रज्ञापिनो ब्रह्मा विद्याप्रपूरितो भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । स सर्वज्ञानं जानाति । स सर्वपुण्यकारी भवति । स सर्ववैश्याजी भवति । राजानो दासतां यान्ति । जप्या स सर्वमेतं मन्त्रराजं स्वयं शिव एवाहमित्यणिमादिभिभूतीनामीश्वरः कालिकां लभेत् ।

आवयोः पात्रभूतः सन् सुहृती त्यक्तकल्मषः ।

जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो यस्मै लब्धा हि दक्षिणा ॥

दशांशं होमयेत्तदनु तर्पयत् । अथ हैके यज्ञान्कामानद्वैतज्ञानादीन-
निरुद्धसरस्वतीति । अथ हैषः कालिकामनुजापी यः सदा शुद्धात्मा
ज्ञानवैराग्ययुक्तः क्षाम्भवीदीक्षासु रक्तः शाक्तासु । यदि वा ब्रह्मचारी रात्रौ
नमः सर्वदा मधुनाऽऽक्तो मनसा जपपूजादिनियमवान् । योषित्वियकरो
भगोदकेन तर्पणं तेनैव पूजनं कुर्यात् । सर्वदा कालिकाकृष्णमात्मानं विभावयेत् ।
स सर्वदा योषिदासक्तो भवेत् । स सर्वहत्यां तरति तेन मधुदानेन । अथ
पञ्चमकारेण सर्वमायादिविद्यां पशुधनधान्यं सर्वेशत्वं च कवित्वं च । नान्यः
परमः पन्था विद्यते मोक्षाय ज्ञानाय धर्माधर्माय । तत्सर्वं भूतं भव्यं
यत्किञ्चिद्दृश्यमानं स्थावरजङ्गमं तत्सर्वं कालिकातन्त्रे ओतं प्रोतं वेद । य
एवं मनुजापी स पाप्मानं तरति । स ब्रूणहत्या तरति । सोऽग्न्यागमनं
तरति । स सर्वसुखमाप्नोति । स सर्वं जानाति । स सर्वसंन्यासी भवति । स
विरक्तो भवति । स सर्ववेदाध्यायी भवति । स सर्वमन्त्रजापी भवति । स
सर्वशास्त्रवेत्ता भवति । स सर्वज्ञानकारी भवति । स आवयोर्मित्रभूतो
भवति । इत्याह भगवान् शिवः । निर्विकल्पेन मनसा स बन्धो भवति ।

अथ हैनां,

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् ।

शिखा आनीय तस्याग्रेरथ तूर्ध्वं व्यवस्थिता ॥

नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ।

नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ॥

तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।

स ब्रह्मा स शिवः मेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराद् ॥

स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ।

इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

महापातकेभ्यः पूतो भूत्वा सर्वमन्त्रसिद्धिं कृत्वा भैरवो भवेत् । महा-
कालभैरवोऽस्य ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः (उष्णिक् छन्दः) कालिका देवता ।
ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं अनिरुद्धसरस्वती देवता । कवित्वे पाण्डित्यार्थे
(धर्मार्थकाममोक्षार्थे) जपे विनियोगः । इत्येवमृषिच्छन्दोदैवतं ज्ञात्वा मन्त्र-
साफल्यमश्नुते । अथर्वविद्यां प्रथममेकं द्वयं त्रयं वा नामद्वयसंपुटितं कृत्वा
योजयेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति । ॐ सत्यम् ।
ॐ तत्सत् ।

अथ हैनं गुरुं परितोष्यैनं मन्त्रराजं गृहीयात् । मन्त्रराजं गुरुस्तमपि
शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय सुवेषां स्त्रियं स्पृष्ट्वा स्वयं निशायां
निरुपद्रवः परिपूज्य एकाकी शिवगेहे लक्षं तदर्धं वा जपित्वा दद्यात् । ॐ
ॐ ॐ सत्यं सत्यं सत्यम् । नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवति । अथाह वै कालि-
कामनोस्तारामनोऽलिपुरामनोः सर्वदुर्गामनोर्वा स्वरूपसिद्धिरेवमिति शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे कालिकोपनिषत् समाप्ता

कालीमेधादीक्षितोपनिषत्

अथाह वै देवानां पर्वा भजते । तस्योपासकोऽन्यां गच्छन् ॐ
 अर्चनां मेधादीक्षितरूपिणीं भावयेत् । स शिवो भवेत् । स कालीरूपो
 भवेत् । सोऽयं मेधास्पर्शमणिकालीं दीक्षयेत् । ततश्चिन्तामणिकालीं
 दीक्षयेत् । ततः सिद्धकाल्यधिकारी भवेत् । ततो विद्याराज्ञीं जपेत् ।
 ततः कामकलाकालीं परारूपिणीं जपेत् । ततश्चरणदीक्षारूपिणीं हंसकालीं
 यजेत् । रक्तशुक्लमिश्रनिर्वाणरूपिणीं यजेत् । सर्वनिर्वाणदीक्षितो भवेत् ।
 ततः शाम्भवीदीक्षितो भवेत् । गुह्यकाल्यधिष्ठितो भवेत् । शिवो भवेत् ।
 स परारूपो भवेत् । परात् पररूपो भवेत् । परात् परातीतरूपो भवेत् ।
 चित्परारूपो भवेत् । चित्परात् परारूपो भवेत् । चित्परात् परातीतरूपो
 भवेत् । ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवमहाकालचित्पराम्बारूपो भवेत् । स ब्रह्मत्वं
 गच्छति । मेधादीक्षां लभेत् । मेधादीक्षातः परा दीक्षा न विद्यत इत्याह
 भगवान् शिवः । स्पर्शविद्यया देहशुद्धिर्भवेत् । ततश्चिन्तामणिविद्याधिकारी
 विद्याराज्ञीं लभेत् । विद्याराज्यधिकारी तु षोढां जपेत् । तुर्याषोढाधिकारी
 कामकलां जपेत् । कामकलाधिकारी चरणरूपिणीं जपेत् । हंसदीक्षितो
 भवेत् । चरणाधिकारी षट्छाम्भवसंपन्नो भवेत् । गुह्यकाल्यधिष्ठितो भवेत् ।
 ततो मेधां चरेत् । जीवको हि भृङ्गत्वं गच्छति । भृङ्गीभूत्वा षट्
 चक्राणि निर्मिन्धात् । ततः परागमुभवेत् । परकायप्रवेशवान् वयस्स्थैर्यं
 चरेत् । कामरूपत्वं गच्छति । षष्टिसिद्धीश्वरो भवेदिति शिवप्रोक्तं वेद ॥

इत्याद्यवगणे सौभाग्यकाण्डे कालीमेधादीक्षितोपनिषत् समाप्ता

गायत्रीरहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति सिद्धम् । ॐ नमो ब्रह्मणे । ॐ नमस्कृत्य याज्ञवल्क्यः
 ऋषिः स्वयंभुवं परिपृच्छति । हे ब्रह्मन् गायत्र्या उत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि ।
 अथातो वसिष्ठः स्वयंभुवं परिपृच्छति । यो ब्रह्मा स ब्रह्मोवाच ।
 ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः प्रकृतिं व्याख्यास्यामः । को नाम स्वयंभूः पुरुष इति ।
 तेनाङ्गुलीमथ्यमानात् सलिलमभवत् । सलिलात् फेनमभवत् । फेनाद्बुद्बुदम-
 भवत् । बुद्बुदादण्डमभवत् । अण्डाद्ब्रह्मभवत् । ब्रह्मणो वायुरभवत् ।
 वायोरग्निरभवत् । अग्नेरोष्णरोऽभवत् । ओष्णराद्व्याहृतिरभवत् । व्याहृत्याः
 गायत्र्यभवत् । गायत्र्याः सावित्र्यभवत् । सावित्र्याः सरस्वत्यभवत् ।
 सरस्वत्याः सर्वे वेदा अभवन् । सर्वेभ्यो वेदेभ्यः सर्वे लोका अभवन् ।
 सर्वेभ्यो लोकेभ्यः सर्वे प्राणिनोऽभवन् ।

अथातो गायत्री व्याहृत्यश्च प्रवर्तन्ते । का च गायत्री काश्च
 व्याहृतयः । किं भूः किं भुवः किं सुवः किं महः किं जनः किं तपः किं
 सत्यं किं तत् किं सवितुः किं वरेण्यं किं भर्गः किं देवस्य किं धीमहि
 किं धियः किं यः किं नः किं प्रचोदयात् । ॐ भूरिति भुवो लोकः ।
 भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । स्वरिति स्वर्गलोकः । मह इति महर्लोकः ।
 जन इति जनोलोकः । तप इति तपोलोकः । सत्यमिति सत्यलोकः । तदिति
 तदसौ तेजोमयं तेजो भिर्देवता । सवितुरिति सविता सावित्रमादित्यो वै ।
 वरेण्यमित्यत्र प्रजापतिः । भर्ग इत्यापो वै भर्गः । देवस्य इतीन्द्रो
 देवो द्योतत इति स इन्द्रस्तस्मात् सर्वपुरुषो नाम रुद्रः । धीमहीत्यन्त-
 रात्मा । धिय इत्यन्तरात्मा परः । य इति सदाशिवपुरुषः । नो इत्यस्माकं
 स्वधर्मे । प्रचोदयादिति प्रचोदितकाम इमान् लोकान् प्रत्याश्रयते यः परो

धर्म इत्येषा गायत्री । सा च किंगोत्रा कन्यक्षरा कतिपादा । कति कुक्षयः ।
 कानि शीर्षाणि । सांख्यायनगोत्रा सा चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री त्रिपादा
 चतुष्पादा । पुनस्तस्याश्चत्वारः पादाः षट् कुक्षिकाः पञ्च शीर्षाणि भवन्ति ।
 के च पादाः काश्च कुक्षयः कानि शीर्षाणि । ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो
 भवति । यजुर्वेदो द्वितीयः पादः । सामवेदस्तृतीयः पादः । अथर्ववेदश्चतुर्थः
 पादः । पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति । दक्षिणा द्वितीया कुक्षिर्भवति ।
 पश्चिमा तृतीया कुक्षिर्भवति । उत्तरा चतुर्थी कुक्षिर्भवति । ऊर्ध्वं पञ्चमी
 कुक्षिर्भवति । अधः षष्ठी कुक्षिर्भवति । व्याकरणोऽस्याः प्रथमः शीर्षो भवति ।
 शिक्षा द्वितीयः । कल्पस्तृतीयः । निरुक्तश्चतुर्थः । ज्योतिषामयनमिति
 पञ्चमः । का दिक् को वर्णः किमायतनं कः स्वरः किं लक्षणं कान्यक्षर-
 दैवतानि क ऋषयः कानि छन्दांसि काः शक्तयः कावि तत्त्वावि के
 चावयवाः । पूर्वायां भवतु गायत्री । मध्यमायां भवतु सावित्री । पश्चिमायां
 भवतु सरस्वती । रक्ता गायत्री । श्वेता सावित्री । कृष्णा सरस्वती ।
 पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरायतनानि । अकारोकारमकाररूपोदात्तोदिस्वरात्मिका ।
 पूर्वा सन्ध्या हंसवाहिनी ब्राह्मी । मध्यमा वृषभवाहिनी माहेश्वरी । पश्चिमा
 गरुडवाहिनी वैष्णवी । पूर्वाह्नकालिका सन्ध्या गायत्री कुमारी रक्ता
 रक्ताङ्गी रक्तवासिनी रक्तगन्धमाल्यानुलेपनी पाशाङ्कुशाक्षमालाकमण्डलुश्च-
 हस्ता हंसारूढा ब्रह्मदैवत्या ऋग्वेदसहिता आदित्यपथगामिनी श्रृणुण्डल-
 वासिनी । मध्याह्नकालिका सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासिनी
 श्वेतगन्धमाल्यानुलेपनी त्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा रुद्रदैवत्या यजुर्वेद-
 सहिता आदित्यपथगामिनी भुबलोके व्यवस्थिता । सायं सन्ध्या सरस्वती
 वृद्धा कृष्णाङ्गी कृष्णवासिनी कृष्णगन्धमाल्यानुलेपना शङ्खचक्रगदामयहस्ता
 गरुडारूढा विष्णुदैवत्या सामवेदसहिता आदित्यपथगामिनी स्वर्गलोकव्यव-

स्थिता । अग्निवायुसूर्यरूपाऽऽहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपा अम्यजुःसाम-
 रूपा भूर्मुदःस्वरिति व्याहृतिरूपा प्रातर्मध्याह्नतृतीयसवनात्मिका सत्त्व-
 रजस्तमोगुणात्मिका जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तरूपा वसुरुद्रादित्यरूपा गायत्री-
 त्रिष्टुब्जगतीरूपा ब्रह्मशङ्करविष्णुरुपेच्छाज्ञावक्रियाशक्तिरूपा स्वराद्विराडव-
 षड्ब्रह्मरूपेति । प्रथममाग्नेयं द्वितीयं 'प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं चतुर्थमीशानं
 पञ्चममादित्यं षष्ठं गार्हपत्यं सप्तमं मैत्रमष्टमं भगदैवतं नवममार्यमणं
 दशमं सावित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वादशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्राग्नं चतुर्दशं वायव्यं
 पञ्चदशं वामदेवं षोडशं मैत्रावरुणं सप्तदशं आतृव्यमष्टादशं वैष्णवमेको-
 नविंशं वामनं विंशं वैश्वदेवमकविंशं रौद्रं द्वाविंशं कौबेरं त्रयोविंशमाग्निं
 चतुर्विंशं ब्राह्ममिति प्रत्यक्षरदैवतानि । प्रथमं वासिष्ठं द्वितीयं भारद्वाजं
 तृतीयं गार्ग्यं चतुर्थमौपमन्यवं पञ्चमं भार्गवं षष्ठं शाण्डिल्यं सप्तमं लौहितम-
 ष्ठमं वैष्णवं नवमं शातातपं दशमं सनत्कुमारमेकादशं वेदव्यासं द्वादशं
 शुक्रं त्रयोदशं पाराशर्यं चतुर्दशं पौण्ड्रं पञ्चदशं क्रतुं षोडशं दाक्षं सप्त-
 दशं काश्यपमष्टादशमात्रेयमेकोनविंशमगस्त्यं विंशमौदालकमेकविंशमाङ्गिरसं
 द्वाविंशं नाभिकेतुं त्रयोविंशं मौद्गल्यं चतुर्विंशमाङ्गिरसं वैश्वामित्रमिति
 प्रत्यक्षराणामृषयो भवन्ति । गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्तिर्वृहत्युष्णिगदिति-
 रिति त्रिराष्ट्रेण छन्दांसि प्रतिपाद्यन्ते । प्रहादिनी प्रज्ञा विश्वमद्रा
 विलासिनी प्रभा शान्ता मा कान्तिः स्पर्शा दुर्गा सरस्वती विरूपा
 विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी विमला तमोऽपहारिणी सूक्ष्मावयवा पद्मालया
 विरजा विश्वरूपा भद्रा कृपा सर्वतोमुखीति चतुर्विंशतिशक्तयो निगद्यन्ते ।
 पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरसरूपस्पर्शशब्दवाक्यानि पादपायूपस्थत्वक्चक्षुः-
 श्रोत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धयहङ्कारचित्तज्ञानानीति प्रत्यक्षराणां तत्त्वानि प्रतीयन्ते ।
 चम्पकातसीकुङ्कुमपिङ्गलेन्द्रनीलाग्निप्रभोद्यत्सूर्यविद्युत्तारकसरोजगौरमरक्तशुक्ल

कुन्देन्दुशङ्खपाण्डुनेत्रनीलोत्पलचन्दनागुरुकस्तूरीगोरोचनधनसारसज्जिमं प्रत्यक्षरमनुस्मृत्य समस्तपातकोपपातकमहापातकागम्यागमनगोहत्याज्राहत्याध्रूणहत्यावीरहत्यापुरुषहत्याऽऽजन्मकृतहत्यास्त्रीहत्यागुरुहत्यापितृहत्याप्राणहत्याचराचरहत्याऽभक्ष्यभक्षणप्रतिग्रहस्वकर्मविच्छेदनस्वाभ्यार्तिहीनकर्मकरणपरधनापहरणशृङ्गान्नभोजनशत्रुमारणचण्डालीगमनादिसमस्तपापहरणार्थं संस्मरेत् ।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाटं रुद्रश्चक्षुषी चन्द्रादित्वौ कर्णौ शुक्रबृहस्पती नासापुटे अश्विनौ दन्तोष्ठाशुभे सन्ध्ये मुखं मरुतः स्तनौ वस्वादयो हृदयं पर्जन्य उदरमाकाशो नाभिरग्निः कटिरिन्द्राग्नी जघनं प्राजापत्यमूर्धू कैलासमूलं जानुनी विश्वेदेवौ जङ्घे शिशिरः गुल्फानि पृथिवीवनस्पत्यादीनि नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा अस्तुले-
तुर्मांसमृतुसन्धयः कालद्वयास्फालनं संवत्सरो निमेषोऽहोरात्रमिति वाग्देवी गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ।

य इदं गायत्रीरहस्यमधीते तेन ऋतुसहस्रमिष्टं भवति । य इदं गायत्रीरहस्यमधीते दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातर्मध्याह्नयोः षण्मासकृतानि पापानि नाशयति । सायं प्रातरधीयानो जन्मकृतं पापं नाशयति । य इदं गायत्रीरहस्यं ब्राह्मणः पठेत् तेन गायत्र्याः षष्टिसहस्रलक्षाणि जप्तानि भवन्ति । सर्वान् वेदानधीतो भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । अपेयपानात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । वृषलीगमनात् पूतो भवति । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति । पङ्क्तिषु सहस्रपानान् पूतो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति । इत्याह भगवान् ब्रह्मा ॥

इति गायत्रीरहस्योपनिषत् समाप्ता

गायत्र्युपनिषत्

ॐ भूमिरन्तरिक्षं चौरित्यष्टावक्षराणि । अष्टाक्षरं ह वा एकं
 गायत्र्यै षडमेतदु हास्या एतत्स यावदेतेषु लोकेषु तावद् जयति ।
 योऽस्या एतदेवं पदं वेद ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टाक्षरं ह वा एकं
 गायत्र्यै षडमेतदु हास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद् जयति ।
 योऽस्या एतदेवं पदं वेद प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं
 गायत्र्यै षडमेतदु हास्या एतत्स यावदिदं प्राणिति तावद् जयति । योऽस्या
 एतदेवं पदं वेदाद्यास्या एतदेव तुरीयं दर्शितं पदं परोरजाय एष
 तपतीति यद्वै चतुर्थं तचुरीयं दर्शितं पदमिति ददर्श इव खेष परोरजा
 इति सर्वेष्टु खेष रज उपर्युपरि तपत्येवं ह वा एष श्रिया यशसा तपति ।
 योऽस्या एतदेवं पदं वेद सैषा गायत्री एतस्मिंस्तुरीय दर्शिते पदे परोरजसि
 प्रतिष्ठिता तद्वै सत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ
 विषदमानावेयातां अहमद्राक्षमहमश्रौषमिति । य एव ब्रूयादहमद्राक्षमिति
 तस्या एव श्रद्धया य एतद्वै तत् सत्यं बले प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्वलं
 सत्यादौ ज्ञेय एवं वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गायंस्तते प्राणा
 वै गाथास्तान् प्राणांस्तते उचद्वायंस्तते तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं
 मत्वा हैवैवमास यस्मा इत्याह तस्य प्रमाणं त्रायने तां हैके सावित्री-
 मनुष्टुभमन्वाहुरनुष्टुभैतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेवानु-
 ब्रूयाद्यदि ह वापि बह्वि प्रतिगृह्णाति । इहैवं तद्गायत्र्या एकंचन
 पदं प्रति य इमांस्त्रीन् लोकान् पूर्णान् प्रतिगृहीयात् सोऽस्या एतत्प्रथमं
 पदमाप्नुयात् अथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत् प्रतिगृहीयात् सोऽस्या
 एतद्वितीयमाप्नुयात् । अथ यावदिदं प्राणिति यस्तावत् प्रतिगृहीयात् ।

तस्या उपस्थाना गायत्र्यैकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदपदा सा न हि पश्यते ।
 यस्ते तुरीयाय पदाय दर्शिताय परोरजसे सावदोमिति समधीयीत वा
 न हैवास्यै सकामः समृद्धयते । यस्मा एवमुपतिष्ठते ह मदः प्रापमिति वा
 एतद् वै तज्जनको वैदेहो वुरिलमाश्रितराश्विमुवाच । यत्तु होतर्गायत्रीं
 कथं हलीभूतो बहसीति । मुखं ह्यस्याः ससंभ्रमं विदांचकारेति होवाच ।
 तस्या अग्निरेव मुखं यदिह वापि बहिमानग्नावभ्यादधाति सर्वमेतत्सन्द-
 हत्येवंविद्यपवह्नीव पापं करोति सर्वमेवैतत्सम्यग्बिगुद्धो यतोऽजरोऽमृत-
 स भवतीति ॥

इति गायत्र्युपनिषत् समाप्ता

गुह्यकाल्युपनिषत्

अथर्ववेदमध्ये तु शास्त्रा मुख्यतमा हि षट् ।
 स्वयंभुवा याः कथिताः पुत्रायाथर्वणे पुरा ॥ १ ॥
 तासु गुह्योपनिषदस्तिष्ठन्ति वरवर्णिनि ।
 नामानि शृणु शास्त्रानां तत्राद्या वारतन्तवी ॥ २ ॥
 मौञ्जायनी द्वितीया तु तृतीया तार्णवैन्दवी ।
 चतुर्थी शौनकी प्रोक्ता पञ्चमी पैप्पलादिका ॥ ३ ॥
 षष्ठी सौमन्तवी ज्ञेया सारात् सारतमा इमाः ।
 गुह्योपनिषदो गूढाः सन्ति शाखासु षट्स्यपि ॥ ४ ॥
 ता एकीकृत्य सर्वास्तु मयाऽभ्यां विनिवेशिताः ।
 संहितायां साधकानामुद्धाराय वरानने ॥ ५ ॥

ब्रह्मविष्णवादिका देवा मनुष्याः पशवो यतः ।
 प्राणापानौ ब्रीहयश्च सत्यं श्रद्धा विधिस्तपः ॥ ३० ॥
 समुद्रा गिरयो नद्यः सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
 विसृज्यमानि सर्गादौ त्वं प्रकाशयसे ततः ॥ ३१ ॥
 जङ्गमानि विधायान्वे यिषत्यप्रतिभूतकम् ।
 नवद्वारं पुरं कृत्वा गवाक्षाणीन्द्रियाण्यपि ॥ ३२ ॥
 सा पश्यत्यत्ति बहति स्पृशति क्रीडतीच्छति ।
 शृणोति जिघ्रति तथा रमते विरमत्यपि ॥ ३३ ॥
 तथा मुक्तं पुरं तद्धि मृतमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥
 ये तपः क्षीणदोषास्ते नैव पश्यन्ति भाविताम् ।
 ज्योतिर्मयीं शरीरेऽन्तर्ध्यायमानां महात्मभिः ॥ ३५ ॥
 बृहच्च तद्विव्यमचिन्त्यरूपं
 सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
 दूरात् सुदूरे तदिहास्ति किञ्चित्
 पश्येत्त्विहैतन्निहितं गुहायाम् ॥ ३६ ॥
 न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
 नान्यैर्योगैर्न हि सा कर्मणा वा ।
 ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः
 ततस्तु तां पश्यति निष्कलां च ॥ ३७ ॥
 यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
 गच्छन्त्यस्तं नामरूपे विहाय ।
 तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः
 परात् परां जगदम्बामुपैति ॥ ३८ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ३९ ॥

सैवैतत् ॥

एषैवालम्बनं श्रेष्ठं सैवैवालम्बनं परम् ।

एषैवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४० ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ ४१ ॥

महत्तः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।

पुरुषास्तु परा देवी सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ४२ ॥

व्योदकं गिरौ सृष्टं समुद्रेषु विधावति ।

एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तामेवानुविधावति ॥ ४३ ॥

एका गुणा सर्वभूतान्तरात्मा

एकं रूपं बहुधा या करोति ।

तामात्मस्थां येऽनुपश्यन्ति धीराः

तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तामेव भान्तीमनुभाति सर्वं

तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ४५ ॥

यस्याः परं नापरमस्ति किञ्चित्

यस्या नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।

वृक्ष इव स्तब्धा दिवि तिष्ठत्येका

यदन्तः पूर्णमवगत्य पूर्णः ॥ ४६ ॥

सर्वाननशिरोध्रीवा सर्वभूतगुहाशया ।

सर्वत्रस्था भगवती तस्मात् सर्वगता शिवा ॥ ४७ ॥

सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखा ।

सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ४८ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासा सर्वेन्द्रियविवर्जिता ।

सर्वेषां प्रभुरीशानी सर्वेषां शरणं सुहृत् ॥ ४९ ॥

नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायतां बहिः ।

ध्येया सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ ५० ॥

अपाणिपादा जननी ग्रहीत्री

पश्यत्यचक्षुः सा शृणोत्यकर्णा ।

सा वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तु वेत्ता

तामाहुरग्र्यां महतीं महीयसीम् ॥ ५१ ॥

सा चैवाग्निः सा च सूर्यः सा वायुः सा च चन्द्रमाः ।

सा चैव शुक्रः सा ब्रह्म सा चापः सा प्रजापतिः ।

सा चैव स्त्री सा च पुमान् सा कुमारः कुमारिका ॥ ५२ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्यां देवा अघिरुद्रा निषेदुः ।

यस्तां न वेद किमृचा करिष्यति

ये तां विदुस्त इमे समासते ॥ ५३ ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि

भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।

सर्वे देवी सृजते विश्वमेतत्

तस्याश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ५४ ॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् प्रभुं तस्या महेश्वरीम् ।
 अस्या अवयवैः सूक्ष्मैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ ५५ ॥
 या देवानां प्रभवा चोद्भवा च
 विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा ।
 हिरण्यगर्भे जनयामास पूर्वं
 सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ५६ ॥
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं पलिलस्य मध्ये
 विश्वस्य रुष्ट्रीमनेकाननाख्याम् ।
 विश्वस्य चैकां परिवेष्टयित्रीं
 ज्ञात्वा गुह्यां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ५७ ॥
 सा ह्येव काले भुवनस्य गोप्त्री
 विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा ।
 यस्यां मुक्ता ब्रह्मर्षयोऽपि देवाः
 ज्ञात्वा तां मृत्युपाशाञ्छिनत्ति ॥ ५८ ॥
 घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
 ज्ञात्वा कार्त्तिकीं सर्वभूतेषु गूढाम् ।
 कल्पान्ते वै सर्वसंहारकर्त्री
 ज्ञात्वा गुह्यां मुच्यते सर्वपापैः ॥ ५९ ॥
 एषा देवी विश्वयोनिर्महात्मा
 सदा जनानां हृदि सन्निविष्टा ।
 हृदा मनीषा मनसाभिवल्लसा
 ये तां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६० ॥

यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिः

न सन्न चासद्भगवत्येव गुह्या ।

तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं

प्रज्ञा च तस्याः प्रसृता परा सा ॥ ६१ ॥

नैनामूर्ध्वं न तिर्यक् च न मध्यं परिजग्रमत् ।

न तस्याः प्रतिमामिश्च तस्या नाम महद्यशः ॥ ६२ ॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्याः

न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनाम् ।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तां

य एनां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६३ ॥

भूयश्च सृष्ट्वा त्रिदशानयेशी

सर्वाधिपत्यं कुरुते भवानी ।

सर्वा दिशश्चोर्ध्वमधश्च तिर्यक्

प्रकाशयन्ती आज्ञते गुह्यकाली ॥ ६४ ॥

नैव स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसका ।

यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेनैव युज्यते ॥ ६५ ॥

धर्माविहां पापनुदां भगोर्शी

ज्ञात्वात्मस्थाममृतां विश्वमातरम् ।

तामीश्वराणां परमां महेश्वरीं

तां देवतानां परदेवतां च ।

पतिं पतीनां परमां पुरस्तात्

विद्यावतां गुह्यकालीं मनीषाम् ॥ ६६ ॥

तस्या न कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समा चाप्यधिका च दृश्यते ।

परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वामाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ६७ ॥

कश्चिन्न तस्याः पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव तस्याश्च लिङ्गम् ।

सा कारणं कारणकारणाधिपा

नास्याश्च कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ६८ ॥

एका देवी सर्वभूतेषु गूढा

व्याप्नोत्येतत् सर्वभूतान्तरस्था ।

कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासा

साक्षिण्येषा केवला निर्गुणा च ॥ ६९ ॥

वशिन्येका निष्क्रियाणां बहूनां

एकं बीजं बहुधा या करोति ।

नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते

नानारूपान् या च बाहून् बिभर्ति ॥ ७० ॥

नित्या नित्यानां चेतना चेतनानां

एका बहूनां विदधाति कामान् ।

तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं

ज्ञात्वा देवीं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ७१ ॥

या वै विष्णुं पालने संनियुङ्क्ते

रुद्रं देवं संहतौ चापि गुह्या ।

तां वै देवीमात्मबुद्धिप्रकाशां

मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ ७२ ॥

निष्कलां निष्क्रियां शान्तां निरवधां निरञ्जनाम् ।

बह्वाननकरां देवीं गुह्यामेकां समाश्रये ॥ ७३ ॥

इयं हि गुह्योपनिषत् सुगूढा

यस्या ब्रह्मा देवता विश्वयोनिः ।

एतां जपंश्चान्वहं भक्तियुक्तः ०

सत्यं सत्यं ह्यमृतः संवभूव ॥ ७४ ॥

वेदवेदान्तयोर्गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।

नाप्रशान्ताय दातव्यं नाशिष्याय च वै पुनः ॥ ७५ ॥

यस्य देव्यां परा भक्तिर्यथा देव्यां तथाऽगुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ ७६ ॥

महाकाल उवाच —

गुह्योपनिषदित्येषा गोप्यात् गोप्यतरा सदा ।

चतुर्भ्यश्चापि वेदेभ्य एकीकृत्यात्र योजिता ॥ ७७ ॥

उपदिष्टा च सर्गादौ सर्वानिव दिवौकसः ।

एवंविधं च यद्ब्रह्मानमेवंरूपं च कीर्तितम् ॥ ७८ ॥

सा सपर्या परिज्ञेया विधानमधुना शृणु ।

सोऽहमस्मीति प्रथमं सोऽहमस्मि द्वितीयकम् ॥ ७९ ॥

तदस्म्यहं तृतीयं च महावाक्यत्रयं भवेत् ।

आद्यान्येतानि वाक्यानि छन्दांसि परिचक्षते ॥ ८० ॥

देवता गुह्यकाली च रजःसत्त्वतमोगुणाः ।

सर्वेषां प्रणवो बीजं हंसः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥ ८१ ॥

मकारश्चाप्यकारश्च ह्युकारश्चेति कीलकम् ।

एभिर्वाक्यत्रयैः सर्वे कर्म प्रोतं विधानतः ॥ ८२ ॥

अनुक्षणं जपंश्चैव निश्चयः परिकीर्तितः ।
 द्वितीयोपासकानां हि परिपाटीयमीरिता ॥ ८३ ॥
 एवं चाप्यातुरो यस्तु मनुष्यो भक्तिभाविताः ।
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कैवल्यायोपकल्पते ।
 सर्वाभिः सिद्धिभिस्तस्य किं कार्यं कमलानने ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां गुणकाल्युपनिषत् समाप्ता

गुह्यषोढान्यासोपनिषत्

अथ गुह्यां न्यसेत् । शिवो भवेत् । शक्तिरूपो भवेत् । विद्याराज्ञीन्या-
 समेवं चरेत् । न जपो न पूजा न साधनं न कालनियमो न दिवा न रात्रिः ।
 सर्वकालं न्यसेत् । शक्तियुक्तो भवेत् । यथाधिकारवान् न्यसेत् । पूर्णदीक्षां
 लभेत् । षोढारूपो भवेत् । चिन्तामणिर्भवेत् । क्रीं मातृस्थाने न्यसेत् ।
 परात् परतरो भवेत् । शिवो भवेदित्येकः । अथ ताराद्वयपुटितां मातृकां
 मातृकापुटितां तां मातृकास्थाने न्यसेत् । परातीतारूपो भवेदिति द्वितीयः ।
 अथ शक्तिकाद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितां तां न्यसेत् । तुर्यारूपो
 भवेत् । तृतीयकलारूपो भवेत् । कालसंकलनात् काली । सहेलं सलीलं वा
 स्मरणाद्वरदानेषु चतुरा । तेनेयं दक्षिणा । संबोधनद्वयपुटितां मातृकां
 मातृकापुटितं नामद्वयं लिपिस्थाने न्यसेत् । तुर्यात् परारूपो भवेत् । चतुर्थी-
 कलारूपो भवेत् । लोकपालसंवादिनी चतुर्थी । अथ पञ्चमीं कलां न्यसेत् ।
 पञ्चमीकलारूपो भवेत् । सुभगात्रयं कूर्चवहिललनां वहेल्लिकोणदैवतस्य

लालनाच्छीकण्ठरूपस्तुर्या परातीता । एतत्पुटितमातृकापुटितमेतन्मन्त्रं मातृ-
कास्थाने न्यसेदिति पञ्चमी । शिवत्वं गच्छति । स सर्वरूपो भवेत् ।
अथ षष्ठीं कलां न्यसेत् । पूर्णो विद्याराज्ञी लिपिस्थाने न्यसेद्व्यापयेत् ।
स शिवो भवेत् । स सर्वज्ञत्वं गच्छति । स कविर्भवेत् । स सन्ध्यासी
भवेत् । देवो ह वै भवेत् । विश्वरूपो भवेत् । अयुतं न्यसेत् । ऋषिच्छन्दादि
पूर्ववद्भवेत् । ब्रह्माण्डगोलकेऽपि या जगतीतले तां सर्वो मुनक्ति । यस्याः
स्मरणात् सिद्धो निदेशवर्ती च भवेत् तां न्यसेत् । न्यसनं न्यासः । सम्यक्
न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । तस्य देवादयो नमस्यन्तीति प्रोतं
वेद । ॐ शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे गुह्यषोढान्यासोपनिषत् समाप्ता

पीताम्बरोपनिषत्

ॐ अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणीमामोति । ब्रह्मास्त्रां
महाविद्यां शम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं सिद्धां चतुर्भुजां दक्षाभ्यां कराभ्यां
मुद्गरपाशौ वामाभ्यां शत्रुजिह्वावज्रे दधानां पीतवाससं पीतालङ्कारसंपन्नां
द्विभूतपीनोन्नतपयोधरयुग्माढ्यां तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां
ललाटपट्टोलसत्पीतचन्द्रार्धमनुबिभ्रतीमुद्यद्दिवाकरोद्योतां स्वर्णसिंहासनमध्य-
कमलसंस्थां धिया संचिन्त्य तदुपरि त्रिकोणषट्कोणवसुपत्रवृत्तान्तः षोडश-
दलकमलोपरि भूविम्बत्रयमनुसंधाय तत्राद्योन्यन्तरे देवीमाहूय ध्यायेत् ।
द्योनिं जगद्योनिं समाधुमुच्चार्य शिवान्ते भूमाग्रविन्दुमिन्दुखण्डमग्निबीजं
ततो वरुणाङ्गुणार्णमत्रियुतं स्थिरामुखि इति सम्बोध्य सर्वदेवानामिदं

चाभाष्य वाचमिति मुखमिति पदमिति स्तम्भयेति बोधार्थं जिह्वां
 वैशारदी कीलयेति बुद्धिं विनाशयेति प्रोच्चार्य भूमायां वेदाद्यं ततो
 यज्ञभूगुह्यायां योजयेत् । स महास्तम्भेश्वरः सर्वेश्वरः । स सेनास्तम्भं
 करोति । किं बहुना दिवस्वदृतिस्तम्भकर्ता सर्ववातस्तम्भकर्तेति । किं
 दिवाकर्षयति । स सर्वविघ्नेश्वरः सर्वमन्त्रेश्वरो भूत्वा पूजाया आवर्तनं
 तैलोक्यस्तम्भिन्याः कुर्यात् । अङ्गमाद्यं द्वारतो गणेशं वटुकं योगिनीं क्षेत्राधीशं
 च पूर्वादिकमभ्यर्च्य गुरुपङ्क्तिमीशासुरान्तमन्तः प्राच्यादौ क्रमानुगता
 वगला स्तम्भिनी जृम्भिणी मोहिनी वज्र्या अचला चला दुर्धरा अकल्मषा
 आधारा कल्पना कालकर्षिणी अमरिका मदगमना भोगा योगिका एता षष्ट-
 दलानुगताः पूज्याः । ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही
 चामुण्डा महालक्ष्मीश्च । षड्योगिनीर्भाता डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी
 शाकिनी हाकिनी वेद्याद्यस्थिरमायाद्याः समभ्यर्च्य शक्राभियमनिर्ऋतिवरुण-
 वायव्यधनदेशानप्रजापतिनागेशाः परिवाराभिमाताः स्थिरादिवेदाद्याः सवाहनाः
 सदस्रका बाह्यतोऽभ्यर्च्य तां योनिं रतिप्रीतिमनोभवा एताः सर्वाः
 समाः पीतांशुका ध्येयाः । तदन्तमूलायां बलादिषोडशानुगताः पूज्याः
 नीराजनैः । स हैश्वर्ययुक्तो भवति । य एनां ध्यायति स वाम्सी भवति ।
 सोऽमृतमश्नुते । सर्वसिद्धिकर्ता भवति । सृष्टिस्थितिसंहारकर्ता भवति ।
 स सर्वेश्वरो भवति । स तु ऋद्धीश्वरो भवति । स शाक्तः स वैष्णवः
 स गणपः स शैवः । स जीवन्मुक्तो भवति । स संन्यासी भवति । न्यसनं
 न्यासः । सम्यङ्न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । षट्त्रिंशदस्त्रेश्वरो
 भवेत् सौभाग्यार्चनेनेति प्रोतं वेद । ॐ शिवम् ॥

इति पीताम्बरोपनिषत् समाप्ता

राजश्यामलारहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेभिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ रत्नसानुशिखरेष्वासीनं श्रीराजश्यामलारहस्योपनिषद्वेत्तारं मतङ्ग-
त्रुषिं गुरुं कूचिमारः प्रोवाच । मतङ्ग भगवन् गुरो राजश्यामलारहस्योपनिषदं
मेऽनुब्रूहि । मतङ्गभगवान् कूचिमारं स होवाच । ते राजश्यामलारहस्यो-
पनिषदमुपदिशामि ।

अथातः श्रीराजश्यामलारहस्योपनिषदं व्याख्यास्यामः । मन्त्रजपाधि-
करणन्यासाधिकरणस्तोत्राधिकरणपूजाधिकरणमैथुनाधिकरणैः पञ्चभिर्ब्राह्मणो
भोगमोक्षमाप्नोति । गुरोरनुज्ञया श्रीराजश्यामलामन्त्रं नित्यं सहस्रसङ्ख्यया
त्रिशतेन वाऽष्टाविंशदुत्तरशतेन वा जप्त्वा मन्त्रसिद्धिर्भवति । शुक्रवारे
भार्याजगन्मोहनचक्रे त्रिशतं मन्त्रजपेन मन्त्रसिद्धिः । पुरश्चरणसिद्धिर्भवति ।
नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवताशरीरी भवति । नवाशीतिन्यासानां
न्यसनेन सर्वदेवैर्नमस्कृतो भवति । नवाशीतिन्यासानां शरीरे न्यसनेन
गन्धर्वकन्याभिः पूजितो भवति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवस्त्री-
भोगमाप्नोति । रम्भासंभोगमाप्नोति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवता-
रूपमाप्नोति । देवताशरीरी भूत्वा विमानवान् भवति । विमानमारुह्य
स्वर्गं गच्छति । स्वर्गं प्राप्य तद्भोगमाप्नोति । जगन्मोहनचक्रे पाटलकुसुमैः
सहस्रसङ्ख्यया पूजिता श्रीराजश्यामला कामितार्थप्रदा मङ्गलप्रदा भवति ।
वर्षर्तौ श्रावणे मासि सर्वरान्निषु भार्याजगन्मोहनचक्रे चम्पककुसुमैः सहस्र-
सङ्ख्यया पूजिता श्रीराजश्यामलाऽऽरोग्यप्रदा भवति । तत्र शुक्रवारे पूजिता

महालक्ष्मीप्रदा भवति । शुक्रवारयुतायां पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे शतसङ्ख्यया श्रीराजश्यामलाम्बां पूजयन् देहान्तरे रम्भासंभोगमश्नुते । भाद्रपदे मासि महालक्ष्मीव्रतदिनेषु भार्याजगन्मोहनचक्रे श्रीराजश्यामलाम्बां जाजीकुसुमैः पूजयन् मानवो महदैश्वर्यमाप्नोति । शरत्काले सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे नीलोत्पलैः सहस्रसङ्ख्यया श्यामलां पूजयन् महाभोगमश्नुते । शुक्रवारयुतायां पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे श्रीराजश्यामलां पूजयन् कल्हारैः शचीभोगमश्नुते । हेमन्तकाले सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे जवन्तीकुसुमैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् वरुणदेवेन कनकच्छत्री भवति । मार्गशीर्षे पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे कुसुम्भपुष्पैः पूजयन् मानवो देवेन्द्रैश्वर्यमाप्नोति । माघ्यां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे द्वन्द्वभल्लिकाकुड्मलैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् मानवो राजस्त्रीसंभोगमाप्नोति । सर्वदा पुष्पिण्यां भार्यायां जगन्मोहनचक्रे वसन्तपुष्पैः पूजयन् मानवो देवतात्वमश्नुते । चतुर्थ्यां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे देवतां श्यामलां जपन् परशिवत्वमाप्नोति । श्रीराजश्यामलाम्बायाः पञ्चदशस्तोत्राणां पारायणेन देवतासन्तुष्टिर्भवति । मङ्गलप्रदा राजवशंकरी च भवति । देवतासन्निध्यमाप्नोति । सन्निधानेन सर्वनिवृत्तिर्भवति । सर्वमङ्गलमाप्नोति । सर्वदेवनमस्कृतो भवति । सर्वे राजानो वश्या भवन्ति । रम्भादिभिः पूजितो भवति । स्वर्गभोगमाप्नोति । गुणेरनुज्ञया शुक्रवारे दिवा रात्रौ च चम्पकतैलघ्नैः कृतस्नातां सर्वालङ्कारभूषितां शुभ्रवस्त्रधरां श्रीचन्दनविलिप्ताङ्गीं कस्तूरीतिलकोपेतां कुङ्कुमलिलकुचभारां पुष्पदामयुक्तधम्मिल्लां ताम्बूलपूरितमुखीं स्वेदविन्दूल्लसन्मुखीं बिम्बोष्ठीं कुन्दरदनां कम्बुकण्ठीं मञ्जुहासां यौवनोन्मत्तां कञ्जलोचनां पृथुनितम्नां राजरम्भोरुं संपूर्णचन्द्रवदनां संभोगेच्छां शुक्रवार्णीं सङ्गीतरसिकां कुरवकरसाञ्चितपाणिपादां वशवर्तिनीं भार्यां पुष्पशय्या-

यासुत्तानशाधिनीं कृत्वा दर्पणवन्निर्मलं जगन्मोहनचक्रं गन्धद्रव्येण धूपदीपैश्च
 परिमलीकृतं कुङ्कुममिलितैर्मल्लिकाकुङ्मलैः शरसङ्ख्यया पूजयन् ब्राह्मणो
 देवभोगमाप्नोति । वसन्तनवरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे मल्लिकाकुङ्मलैः
 सहस्रनामभिः रहस्यनामभिश्च पूजिता राजश्यामला राजवशङ्करी भवति ।
 शुक्रवासरयुक्तायां सप्तम्यां रात्रौ भार्याया जगन्मोहनचक्रे प्रथमयामे कल्हार-
 पुष्पैः सहस्रनामभिर्देवतां पूजयन् देवतासालोक्यमाप्नोति । तस्यामेव
 द्वितीययामे भार्याजगन्मोहनचक्रे पारिजातपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन्
 देवतासामीप्यमाप्नोति । तस्यामेव तृतीययामे भार्याजगन्मोहनचक्रे
 मन्दारपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवतासारूप्यमाप्नोति । तस्यामेव
 चतुर्थयामे जगन्मोहनचक्रे चम्पकपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवता-
 सायुज्यमाप्नोति । सर्वरात्रिषु जगन्मोहनचक्रे मल्लिकाकुङ्मलैः पूजिता श्यामला
 कामितार्थप्रदा भवति । ग्रीष्मकाले सर्वरात्रिषु श्रीचन्दनविलिप्तभार्याजगन्मो-
 हनचक्रं पूजयन् सर्वसिद्धिमाप्नोति । दूर्वाभिः पूजयन् महदायुष्यमश्नुते ।
 अष्टम्यां शुक्रवासरयुक्तायां रात्रौ जगन्मोहनचक्रे राजश्यामलाम्बां
 श्रीचन्दनेन पूजयन् मानवो गन्धलिप्तो जगन्मोहको भवति । महानवम्यां
 शुक्रवासरयुक्तायां रात्रौ जगन्मोहनचक्रे कुङ्कुमाक्षतैर्देवता पूजयित्वा पूजि-
 ताक्षतान् राज्ञे निवेदयेत् । राजा दासभावमाप्नोति । त्रयोदश्यां शुक्रवास-
 रयुक्तायां रात्रौ भार्याजगन्मोहनचक्रं पूजयन् मानवः कामसुन्दरो भवति ।
 चन्द्रदर्शनयुक्तायां द्वितीयायां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे राजश्या-
 मलाम्बां श्वेतगन्धाक्षतैः श्वेतपुष्पैश्च पूजयन् साधको देहान्ते राजा भवति ।
 सर्वभोगप्रदा सर्वसौभाग्यप्रदा दीर्घायुष्यप्रदा महायोगप्रदा महामङ्गलप्रदा
 काम्यप्रदा श्रीराजश्यामला देवेन्द्रभोगप्रदा भवति । सर्वकाम्यरहस्यपूजान्तं
 मैथुनं देवताप्रीतिकरं भवति । मोक्षप्रदं भवति । स एव भोगापवर्गः ।

गुर्वनुज्ञया गुप्तः क्षणको मुक्तो भवति । एवं कान्तायाः पूजिता स्वर्णचक्रे-
स्यामला मङ्गलप्रदा भवति । द्रोहिणां नोपदेशः । क्षणकानां पञ्चाधि-
करणैः परो मोक्षो नान्यथेति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति राज्ञस्यामलाऋत्योपनिषत् समाप्ता

वनदुर्गोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीवनदुर्गामहामन्तस्य किरातरूपधर ईश्वर ऋषिः ।
अनुष्टुप् छन्दः । अन्तर्यामी नारायण ईश्वरो वनदुर्गा गायत्री देवता ।
दुं बीजम् । स्वाहा शक्तिः । क्लीं कीलकम् । मम वनदुर्गाप्रसादसिद्धयर्थे
धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः । मूलेन व्यापकत्रयं कुर्यात् । ह्रीं इति
व्यापकत्रयम् । ॐ हंसिनी ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां हृदि । ॐ शिखिनी ह्रीं
तर्जनीभ्यां शिरसि । ॐ चक्रिणी हूं मध्यमाभ्यां शिखायाम् । ॐ त्रिशूल-
धारिणी ह्रौं अनामिकाभ्यां कवचम् । ॐ पद्मिनी ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां
नेत्रयोः । ॐ गदिनी हः करतलकरपृष्ठाभ्यामस्त्रम् । ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति
दिग्बन्धः । अथ ध्यानम्—

अरिशङ्खकृपाणखेटबाणान् सधनुश्शूलकतर्जनीर्दधानाम् ।

भज तां महिषोत्तमाङ्गसंस्थां नवदूर्वासदृशीं त्रियेज्स्तु दुर्गा ॥१॥

हेमप्रख्यामिन्दुखण्डान्तमौलिं शङ्कारिष्टामीतिहस्तां त्रिणेत्राम् ।

हेमाब्जस्थां पीतवस्त्रां प्रसेनां देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि ॥२॥

उद्यद्वास्वत्समाभां विधृतनवजपामिन्दुखण्डावबद्धां
ज्योतिर्मौलिं त्रिणेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मकाञ्चीम् ।
हारत्रैवेयभूषां मणिगुणवल्याद्यैर्विचित्राम्बराढ्यां
अम्बां पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरां मञ्जुकान्तां नमामि ॥

सिद्धलक्ष्मी राजलक्ष्मीर्जयलक्ष्मीः सरस्वती ।

श्रीलक्ष्मीर्वरलक्ष्मीश्च प्रसन्ना मम सर्वदा ॥ ४ ॥

मायाकुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी

मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।

शक्तिः शङ्करवल्लभा लिणयना वाम्बादिनी भैरवी

हीङ्कारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ ५ ॥

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिणयनां सौदामिनीसन्निभां

शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां विभ्रतीम् ।

त्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां

ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननाम् ॥

सिंहारूढां श्यामकान्तिं शङ्खचक्रधरां हृदा ।

दुर्गां देवीं तथा ध्यायेच्छरचापौ च विभ्रतीम् ॥ ७ ॥

मनुः—हास्वा यमश यमश तिवगभ न्मेत वा क्यंशमक्यश दिय
तंस्थिपमुस मे यंम विपिस्व किं पिरुपु छत्तिउ ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ।
ॐ ह्रीं महाभीषणे करालवदने विन्ध्यवासिनि हां ह्रीं हूं ह्रैं ह्रौं हः ।
नादयक्षयोगिनीपरिवृते दुष्टग्रहनाशिनि हुं फट् स्वाहा । जम्भिनि मोहिनि
स्तम्भिनि पूर्वद्वारं बन्धय बन्धय । दं अचुं अग्निद्वारं बन्धय बन्धय । द द द
ओं यमद्वारं बन्धय बन्धय । खं ध्यं निर्ऋतिद्वारं बन्धय बन्धय । लं ब्लौं
वरुणद्वारं बन्धय बन्धय । यं श्लीं वायुद्वारं बन्धय बन्धय । क्लीं स्त्रीं

कुबेरद्वारं बन्धय बन्धय । ओं हं ई ईशानद्वारं बन्धय बन्धय । ॐ हं कं
 खं ऊर्ध्वद्वारं बन्धय बन्धय । ग्लौं ब्रौं पातालद्वारं बन्धय बन्धय । ई ई
 अधोद्वारं बन्धय बन्धय । सर्वग्रहान् बन्धय बन्धय । सर्पराजचोरदुष्ट-
 मृगादिसकलभयं बन्धय बन्धय । परप्रयोगभूतप्रेतपिशाचभैरवदुर्गाहनुम-
 द्गणेश्वरादिसकलकिस्त्रिषं बन्धय बन्धय । भञ्जय भञ्जय । अमुकं मेह-
 स्तम्भनं वाक्कायसर्वाङ्गं बन्धय बन्धय । सर्वक्षुद्रोपद्रवं छिन्धि छिन्धि ।
 रे रे वे वे हुं फट् स्वाहा । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सौः ॐ नमो भगवति
 माहेश्वरि अक्षपूर्येश्वरि मां पालय पालय स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः ।
 पूर्वदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । आग्नेयदिशं
 चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं
 सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । याम्यदिशं चोराञ्छ-
 त्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार
 हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । निर्ऋतिदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय
 बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट्
 स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । वरुणदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय ।
 ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा ।
 सं सहस्रबाहवे नमः । वायव्यदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों
 त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे
 नमः । कुबेरदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं
 ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः ।
 ईशानदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्ळं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । आकाश-

दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रो त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रारं हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । पाताल-
 दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रो त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रारं हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । अवान्त-
 रदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रो त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं श्रीं हुं
 सं सहस्रारं हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं गग
 गल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं
 क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
 ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
 सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं यदन्ति यच्च दूरके भयं
 विन्दति मामिह । पवमान वितज्जहि । यदुत्थितं भगवति तत्सर्वं शमय
 शमय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं
 ह स क ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं
 ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
 ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
 सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं ह्रीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गोणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽप्यग्निः ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं ह्रीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । ॐ नमो भस्माङ्गरागाय उग्रतेजसे हन हन
दह दह पञ्च पञ्च मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हल हल भङ्गय भङ्गय शूलिनि
जय जय तेजसा पूर्वा सिद्धिं कुरु कुरु समुद्रं पूर्वादिष्टं शोषय
शोषय स्तम्भय स्तम्भय परस्मन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्रपरभूतंप्रकटिनि छिन्धि छिन्धि
ह्रीं फट् स्वाहा ।

हेतुकं पूर्वपीठे तु ह्यग्नेय्यां त्रिपुरान्तकम् ।

दक्षिणे चाग्निवेतालं नैर्ऋत्यां यमजिह्वकम् ॥

कालाख्यं वारुणे पीठे वायव्यां च करालिन्म ।

उत्तरे लोकपादं च त्वीशान्यां श्रीमरूपिणम् ॥

आकाशे तु निरालम्बं पाताले बडबानलम् ।

यन्मा ग्रामे यथा क्षेत्रे रक्षेन्मां वदुकस्तथा ॥

ॐ ह्रीं वदुक्ताय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु वदुक्ताय ह्रीं ॐ वदुक्ताय
स्वाहा ।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्यं त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नमः । ॐ ह्रीं प्रयोगविषये ब्रह्माण्यै नमः ।

ॐ ह्रीं वारुणि खल्विनि माहेश्वर्यै नमः । ॐ ह्रीं कुस्यवासिन्यै कुमार्यै नमः ।

ॐ जयन्तपुरवाहिनि वाराह्यै नमः । ॐ अष्टमहाकालि रुद्राण्यै नमः । ॐ

चित्रकूट इन्द्राण्यै नमः । ॐ एकवृक्षशुम्भिन्यै महालक्ष्म्यै नमः । ॐ

त्रिपुरहरब्रह्माण्डनायिकायै नमः । ॐ त्रिपुरहस्तत्राक्षचारिण्यै नमः । एतानि

क्षं क्षं क्षं त्रैलोक्यवशङ्करीबीजाक्षराणि । ॐ ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ

हां ह्रीं हूं जय जय चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमुकुटकोटिरत्नसङ्घटितचरणार-

विन्दे गायत्रि सावित्रि सरस्वति माहेश्वरि ब्रह्माण्डमाण्डोदररूपधारिणि

प्रकटितदंष्ट्रोद्गमरूपवदने घोरघोरानने नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महादृ-

हासधवलीकृतदिगन्तरे कोटिदिवाकरसमप्रभे कामरूपिणि महाविद्यासम्पन्न-

प्रभाभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णं कपालहस्ते गजाननोत्तरीयं

भूतवेतालपरिवृते प्रकटितवसुन्धरे मधुकैटभमहिषासुरधूम्रलोचनचण्डमुण्ड-

प्रचण्डरक्तबीजशुम्भनिशुम्भदैत्यनिकृन्तके कालरात्रि महामाये शिवदूति

इन्द्राणि शाङ्करि आग्नेयि यामि नैर्ऋति वारुणि वायवि कौबेरि ईशानि

ब्रह्माणि विष्णुवक्षःस्थिते त्रिभुवनधराधरे ज्येष्ठे रौद्रे चाम्बिके ब्राह्मि

माहेश्वरि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि शाङ्करि चण्डिके शूलिनि महोग्र-

विषोग्रभक्षितदंष्ट्रिणि हरितहयबद्धबहुकठोरोत्तमाङ्गनवरत्ननिधिकोशे तत्र बहु-

जिह्वापाणिपादशब्दस्पर्शरूपरसगन्धचक्षुष्मति महाकिञ्च्यस्थिते महाज्वाला-

मणिमहिषोपरि स्थिते गन्धर्वविद्याधरस्तुते ऐंकारिह्रींकारिश्रींकारिर्ह्रींकारि-

हस्ते आं ह्रीं क्रों यज्ञपात्रं प्रवेशय प्रवेशय । द्रां प्रवेशय प्रवेशय । श्रीं

कुसुमापय कुसुमापय । श्रीं सर्वं प्रवेशय प्रवेशय । त्रैलोक्यान्तर्वर्तिन्ये-

काप्रचित्तवशीकृते ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं फ्रः हुं हुं
 हीं हीं फट् फट् । एता महाशक्तयः । एताभिररिष्टकारिभूतप्रेतपिशाचान्
 विध्वंसय विध्वंसय । अष्टादशबीजयन्त्रनामानि । ॐ नमो भगवति
 महाविद्ये मदनराज्यं ह्रीं उपनिद ॐ हीं शिवं कुरु स्वाहा । ॐ ऐं हीं
 सकलनरमुखभ्रमरि ॐ ह्रीं हीं श्रीं सकलराजमुखभ्रमरि ॐ क्रौं सौं हीं
 सकलदेवतामुखभ्रमरि ॐ ह्रीं ह्रीं सकलकामिनीमुखभ्रमरि मनोभञ्जनि ॐ
 ग्लौं सकललोकमुखभ्रमरि ॐ ईं सौं सकलदेवतामुखभ्रमरि ॐ हीं ह्रीं
 सकलकामिनीमुखभ्रमरि मनोभञ्जनि ॐ ग्लौं सकललोकमुखभ्रमरि ॐ इं
 सौं सकलदेशमुखभ्रमरि ह्रस्वफ्रें त्रैलोक्यचित्तभ्रमरि ॐ क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं
 क्षूं क्षैं क्षौं क्षों क्षौं क्षं क्षः दिग्भवाद्युग्रभैरवादिभूतप्रेतपिशाचचित्तभ्रमरि
 दुष्टग्रहमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमरि ह्रस्वह्रस्वौ त्रैलोक्यान्तरभ्रमरि ॐ हुं क्षूं हुं ह्रीं
 राजमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमरि ॐ हुं क्षूं हुं ह्रीं परमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमरि ॐ हुं क्षूं
 हुं ह्रीं सिद्धमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमरि ॐ ऐं ईं सौं सकलसुरासुरसर्वमन्त्रयन्त्र-
 तन्त्रभ्रमरि सर्वक्षोभिणि सर्वक्लेदिनि सकलमनोन्मादिनि भक्तत्राणपरायणि
 ॐ हीं रक्तचामुण्डि अमुकमाकर्षयाकर्षय । आं हीं क्रौं परमयोगिनि
 परमकल्याणि पवित्रि ईश्वरि स्वाहा । गायत्रि हुं फट् स्वाहा ।

अक्षिस्पन्दं च दुःस्वप्नं भुजस्पन्दं च दुर्मतिम् ।

दुश्चित्तं दुर्गतिं रोगं सदा नाशय शाङ्करि ॥

महाविद्यां प्रवक्ष्यामि महादेवेन निर्मिताम् ।

चिन्तितां च किरातेन मातृणां चित्तनन्दिनीम् ॥

उत्तमां सर्वविद्यानां सर्वभूतवशङ्करीम् ।

सर्वपापक्षयकरीं सर्वशत्रुनिवारणीम् ॥

कुलगोत्रकरीं विद्याधनधान्ययशस्करीम् ।
 जृम्भिणीं स्तम्भिनीं देवीयुत्साहवलवर्धनीम् ॥
 सर्वज्वरोच्चाटनीं च सर्वमन्त्रप्रभञ्जनीम् ।
 सनातनीं मोहिनीं च सर्वविद्याप्रभेदिनीम् ॥
 विश्वयोनिं महाशक्तिमायुःप्रज्ञाविवर्धनीम् ।
 मातङ्गीं मदिरामोदां वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥
 मोहिनीं सर्वलोकानां तां विद्यां शाम्बरीत्रयाम् ।
 अभीष्टफलदां देवीं वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥

परकृताभिचारभस्मनां यन्त्रीकृतदुष्टत्रिकोणयन्त्रमध्ये पदन्यासारिष्टं
 जिम्नं छिन्धि छिन्धि । अरिष्टकारिणं हन हन । कृष्णपक्षरिक्तसन्ध्यामरिष्ट-
 युक्तप्रकृतिकाले योगिनीकालाशनिकृतारिष्टं कृतदृष्टिं जिम्नं छिन्धि छिन्धि ।
 अरिष्टकारिणीविभाविनीपरकृतदुष्टग्रहमन्त्रयन्त्रतन्त्रोच्चाटनीप्रेरितब्रह्मराक्षसशा-
 किनीडाकिनीछायावासिनीकङ्कालीहिरण्याक्षसन्धिग्रहमुक्तकंश्यादिपिशाचेभ्यो
 महाभयं छिन्धि छिन्धि । अरिष्टकारिणीछेदिनीपरकृतसर्वोपद्रवेभ्यः सर्पो-
 ल्लककाककङ्कपोतादिवृश्चिकाभिज्ज्वालामण्डलाग्रेण नवकारश्मशानभस्मना
 परवश्ययन्त्रतन्त्रादिदुष्टवाक्स्तम्भनं च समाजयं ब्रह्मं फट् फट् ॐ नमो
 महाविद्यायै स्वाहा । ऐकाहिकं द्वायाहिकं त्रयाहिकं चातुर्थिकं पञ्चाहिकं
 षष्ठाहिकं सप्ताहिकमष्टाहिकं नवाहिकं दशाहिकमेकादशाहिकं द्वादशाहिकं
 त्रयोदशाहिकमर्धमासिकं मासिकं द्विमासिकं त्रिमासिकं षाण्मासिकं सां-
 वत्सरिकं वातिकं पैत्तिकमापस्मारिकं ब्राह्मीकं श्लैष्मिकं सान्निपातिकं
 संततज्वरं शीतज्वरमुष्णज्वरं विषमज्वरं गण्डपित्तालुकविस्फोटकादित्व-
 भोगादिसर्वरोगान् सर्वविषं जहि जहि ।

आद्यन्तशून्याः कवयः पुराणाः सूक्ष्मा बृहन्तो ह्यनुशासितारः ।

सर्वान् ज्वरान् म्रन्तु ममानिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवाः ।

आद्यानिरुद्धाखिलविश्वरूप त्वं पाहि नः सर्वभयादजसम् ॥

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा रक्तलोचनः ।

स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिज्वरैः ।.

भस्मायुधाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः
प्रचोदयात् । शिरश्शूलक्षिशूलकर्णशूलनासिकाशूलगण्डशूलकपोलशूलतालुशूलौ-
ष्ठशूलजिह्वाशूलमुखशूलकण्ठशूलकूर्परशूलावरगलशूलस्कन्धशूलबाहुशूलकक्षशूल-
प्रकोष्ठशूलमणिबन्धशूलकरशूलकरपृष्ठशूलकराङ्गुलीशूलहृदयशूलमनःशूलस्तन-
शूलपार्श्वशूलकुक्षिशूलनाभिशूलकटिशूलगुदशूलगुह्यशूलमूलशूलोरुशूलजानुशूल-
जङ्घाशूलगुल्फशूलपादशूलपादाङ्गुलीशूलविस्फोटकप्रमेदिनि ह्रीं ॐ नमो
भगवति परच्छेदमंत्रायत्ते भो भो भो दृष्टिशूलमुष्टिशूलमुष्टिपृष्ठशूल-
मुष्टिपार्श्वशूलसर्वशूलपारावारङ्गमनायै स्वाहा । ॐ नमो भगवते नायकाय
छिन्धि छिन्धि आवेशयावेशय परमेश्वराय अघोररूपाय ह्रीं ज्वल ज्वल
मुलूट्मुलूट् ह्रीं फट् फट् स्वाहा । आत्मरक्षापररक्षाप्रत्यक्षरक्षाऽभिरक्षावायु-
रक्षोदकरक्षामहान्धकारोल्काविद्युदग्न्यनिलचोरशस्त्रास्त्रेभ्यो भयान्मां रक्ष रक्ष ।
पथगतांश्चोरान् शत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्रूं आं ह्रीं क्रों
श्रीं हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय महामुजपरिवारित-
सप्तद्वीपाय । अस्मद्वसुविलम्पकान् चोरसमूहान् सहस्रभुजैर्दशदिक्षु बन्धय
बन्धय । चोरान् ध ध ध ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा । महादेवस्य तेजसा
भयङ्करादिष्टदेवतां बन्धयामि । महागणेन पञ्चशीर्षेण पाणिना ॐ ब्रूं ग्लौं
हं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरदाय सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।
कलहलपिङ्गलकण्ठमयीं रुद्राङ्गीं रुद्रजटीं महावृक्षनिवासिनीं महामत्तमातङ्गीं

स्वरबीजैर्बन्धयामि । ॐ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि
 सर्वजनवशङ्करि ह्रीं स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं-ह्रीं सौः ॐ नमो
 भगवति मातङ्गि सर्वजनमनोहारिणि सर्वदुःखरञ्जनि ह्रीं ह्रीं श्रीं सर्वराजव-
 शङ्करि सर्वेश्वीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकव-
 शङ्करि अमुकं वशमानय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं मातङ्गि ॐ ऐं
 ह्रीं श्रीं हं ईं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उं ऊं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऋं ॠं
 मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लं लृं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एं ऐं मातङ्गि
 ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ओं औं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं अः मातङ्गि ॐ स्वर
 स्वर । ब्रह्मदण्ड विस्फुर विस्फुर विष्णुदण्ड विस्फोटय विस्फोटय । रुद्रदण्ड
 प्रज्वल प्रज्वल । वायुदण्ड प्रहर प्रहर । इन्द्रदण्ड भक्षय भक्षय । निर्ऋतिदण्ड
 हिलि हिलि । यमदण्ड रक्ष रक्ष । कुबेरदण्ड प्रज्वल प्रज्वल । अग्निदण्ड
 शमय शमय । वरुणदण्ड एष्येहि । नित्यानन्दिनि हंसिनि चक्रिणि शङ्खिनि
 गदिनि पद्मिनि त्रिशूलधारिणि हुं फट् । क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ।

आयुः प्रज्ञां च सौभाग्यं धान्यं च धनमेव च ।

सदा शिवं पुत्रवृद्धिं देहि मे चण्डिके शुभे ॥

अथतो मन्त्रपदानि भवन्ति । ॐ छां छायायै स्वाहा । ॐ चं
 चतुरायै स्वाहा । ॐ कुं कुलि स्वाहा । ॐ खुं खुलि स्वाहा । ॐ हिं
 हिलि स्वाहा । ॐ जं जलि स्वाहा । ॐ झं झलि स्वाहा । ओं ऐं
 पिलि स्वाहा । ओं ऐं पिलि पिलि स्वाहा । ॐ हरं स्वाहा । ॐ हरहरं
 स्वाहा । ओं गं गन्धर्वाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाधि-
 पतये स्वाहा । ॐ रं रक्षसे स्वाहा । ॐ रं रक्षोऽधिपतय स्वाहा । ॐ
 भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ उल्कामुखि स्वाहा ।
 ॐ रं रुद्रजटि स्वाहा । ॐ अं ऊं मं ब्रह्मविष्णुरुद्रतेजसे स्वाहा । ॐ ह्रीं

श्रीं ह्रीं नमश्चाण्डिकायै महासिद्धलक्ष्म्यै ममेष्टार्थसिद्धये धीमहि । तन्नः शक्तिः
 प्रचोदयात् । ॐ ऐं वद वद वाम्बादिनि ह्रीं सौं महाक्षेमं कुरु कुरु ज्वाला-
 मालिनि वह्निवासिनि विद्याया नामौ हुं फद् स्वाहा । वर्णात्मिकायै
 ब्रह्माण्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं एं ऐं
 ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं
 नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं
 श्रीं छं जं णं नं मं स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गायत्रि सावित्रि सरस्वति
 हुं फद् स्वाहा । ये भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसनवग्रहभूतवेतालशाकिनीडाकिनी-
 कूश्माण्डवासवाश्चत्वरराजपुरुषकलहपुरुषाः कुसुमाम्बोवासिनस्तेषां बाधकं
 फण्टकं बध्नामि । हस्तौ बध्नामि । चक्षुषी बध्नामि । श्रोत्रे बध्नामि ।
 भुखं बध्नामि । घ्राणं बध्नामि । जिह्वां बध्नामि । गतिं बध्नामि । मतिं
 बध्नामि । बुद्धिं बध्नामि । आकाशं बध्नामि । पातालं बध्नामि । अन्तरिक्षं
 बध्नामि । पार्श्वौ बध्नामि । सर्वाङ्गं बध्नामि । ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां
 बाधं मुखं पदं स्तम्भय । जिह्वां कीलय । बुद्धिं विनाशय । ह्रीं ॐ
 स्वाहा । ॐ नमो भगवति पुण्यपवित्रि महाविद्यासर्वार्थसाधिनि सिद्धलक्ष्मि
 बागीश्वरि परमसुन्दरि मां रक्ष रक्ष । ॐ ह्रीं फद् स्वाहा । ॐ हुं ह्रीं
 श्रीं ह्रीं सौं ऐं ह्रीं ॐ नमो भगवति महामाये कालि कङ्कालि
 महाकालि शाङ्करि परमकल्याणि पवित्रि शाम्भवि परंज्योतिःपरमात्मिके
 आदिभवान्यानन्दयोगिन्यादियोगिन्यादिपतियोगिनि रेणुकायोगिन्येकाक्षरि
 परब्रह्माणि महाकालि सिद्धिकारिणि शिवरूपिणि सरस्वति मत्तकालि
 मन्मथमनोन्मादिन्यादिभवान्यखिलाण्डकोटिब्रह्माण्डनायकि ब्रं ब्रं ब्रह्माण्ड-
 निलये मां मां माहेश्वरि महामाये वै वै वैष्णवि वरमुनिदेवि वां वां
 वाराह्यादिभेदिनि वं वं वनदुर्गे वरत्रिवेदि स्थं स्थं स्थलदुर्गे स्थलत्रिवेदि

वनदुर्गोपनिषत्

४३७

जं जं जलदुर्गे जलत्रिवेदि अं अं अग्निदुर्गे आनन्दवेदि चं चं चण्डदुर्गे
चण्डफपालिनि सां सां सकलदुरितनिवारणि हं हं हंसरूपिण्यट्टहासिनि
ऊं ऊं उत्तिष्ठ पुरुषि दुं दुं ह्रीं ह्रीं क्रों क्रों मां मां महाविद्ये दुं ह्रीं
दुर्गायै नमः । नमस्ते अस्तु मा .मा हिंसीः । द्विषन्तं मे नाशय । तं
मृत्यो मृत्यवे नय । इष्टं रक्ष रक्ष । अरिष्टं मे भञ्जय भञ्जय स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् । ॐ सूर्याय स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य
सङ्गथे । ॐ सोमाय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः
पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति । ॐ अङ्गारकाय स्वाहा । ॐ ऐं
ह्रीं श्रीं उदबुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्ये वः । ॐ बुधाय
स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहस्पते अति यदयो अर्हाद्व्युमद्विमाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । ॐ बृहस्पतये स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शुक्रः शुशुक्लं उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् । ॐ शुक्राय स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शमभिरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा
अप स्निधः । ॐ शनैश्चराय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कया नश्चित्र आ
मुवदूती सदावृधः सन्वा । कया शचिष्ठया वृता । ॐ राहवे स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं केतुं कृष्णकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजा-
यथाः । ॐ केतवे स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं
लं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं
णं तं थं दं धं नं पं फं बं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः स्वाहा ।

४३८

शाक्त-उपनिषदः

ॐ अश्विन्यै स्वाहा । ॐ भरण्याै स्वाहा । ॐ कृत्तिकायै स्वाहा ।
 ॐ रोहिण्यै स्वाहा । ॐ मृगशीर्षाय स्वाहा । ॐ आर्द्रायै स्वाहा । ॐ
 पुनर्वसवे स्वाहा । ॐ पुष्याय स्वाहा । ॐ आश्लेषायै स्वाहा । ॐ मघाय
 स्वाहा । ॐ पूर्वफल्गुन्यै स्वाहा । ॐ उत्तरफल्गुन्यै स्वाहा । ॐ हस्ताय
 स्वाहा । ॐ चित्रायै स्वाहा । ॐ अभिजित्यै स्वाहा । ॐ विशाखायै
 स्वाहा । ॐ अनूराधाय स्वाहा । ॐ ज्येष्ठायै स्वाहा । ॐ मूलाय स्वाहा ।
 ॐ पूर्वाषाढायै स्वाहा । ॐ उत्तराषाढायै स्वाहा । ॐ श्रोणायै स्वाहा ।
 ॐ श्रविष्ठायै स्वाहा । ॐ शतभिषजे स्वाहा । ॐ पूर्वप्रोष्ठपदाय स्वाहा ।
 ॐ उत्तरप्रोष्ठपदाय स्वाहा । ॐ रेवत्यै स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय
 नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । यममुखेन पञ्चयोजनविस्तीर्णेन रुद्रो
 बध्नातु रुद्रमण्डलम् । रुद्र सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं रुद्रमण्डलं
 मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचल-
 मचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं
 नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं व्लूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट्
 स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
 बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु
 यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । वर्षन्तु ते विभावरी
 दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
 भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रो देवता । ऐरावतारूढो
 हेमवर्णो वज्राङ्कुशहस्त इन्द्रो बध्नातिन्द्रमण्डलम् । इन्द्र सपरिवार देवता-
 प्रत्यधिदेवतासहितमिन्द्रमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।

सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्रैः
 राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हुं श्रीं
 क्लीं ब्लं फ्रों आं हीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो
 विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरी
 दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
 भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिश्यभिर्देवता । मेषारूढो
 रक्तवर्णो ज्वालाहस्तोऽभिर्बध्नात्वग्निमण्डलम् । अग्ने सपरिवार देवताप्रत्यधि-
 देवतासहितमग्निमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
 मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्रैः राजचोर-
 सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं
 फ्रों आं हीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
 उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं दूतं वृणीमहे
 होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् । वर्षन्तु ते विभावरी
 दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
 भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि यमो देवता । महिषारूढो
 नीलवर्णः कालदण्डो यमो बध्नातु यममण्डलम् । यम सपरिवार देवता-
 प्रत्यधिदेवतासहितं यममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
 सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्रैः राज-
 चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं
 फ्रों आं हीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निवृत्तो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिर्देवता । नरारूढो नीलवर्णः खड्गहस्तो निर्ऋतिर्बध्नातु निर्ऋतिमण्डलम् । निर्ऋते सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं निर्ऋतिमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं व्हूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि वरुणो देवता । मकरारूढः श्वेतवर्णः पाशहस्तो वरुणो बध्नातु वरुणमण्डलम् । वरुण सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं वरुणमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं व्हूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण श्रुधी हवमथा च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्या यामि ब्रह्मणा बन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह वोध्युरुक्षंस

मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विष्णुतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि वायुर्देवता । मृगारूढो
ध्रुवर्णो ध्वजहस्तो वायुर्बभ्रातु वायुमण्डलम् । वायो सपरिवार देवता-
प्रत्यधिदेवतासहितं वायुमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
चोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्रूं
फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामा-
तरक्षुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य
विष्णुतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय
नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यां दिशि कुबेरो देवता । अश्वा-
रूढः पीतवर्णो गदाङ्कुशहस्तः कुबेरो बभ्रातु कुबेरमण्डलम् । कुबेर
सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं कुबेरमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं
बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्र-
कवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं
हूं श्रीं क्लीं ब्रूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदव्यं
समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य
विष्णुतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानो देवता । वृषभारूढः
 श्वेतवर्णस्त्रिशूलहस्त ईशानो बध्नात्वीशानमण्डलम् । ईशान सपरिवार
 देवताप्रत्यधिदेवतासहितमीशानमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय
 बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः
 राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं
 क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं
 जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा
 वेदसामसद्रूपे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो
 अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
 रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा देवता । हंसारूढो
 रक्तवर्णः कमण्डलुहस्तो ब्रह्मा बध्नातु ब्रह्ममण्डलम् । ब्रह्मन् सपरिवार देवता-
 प्रत्यधिदेवतासहितं ब्रह्ममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
 सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
 चोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं क्लीं
 ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां
 पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्व-
 नानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः ।
 रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि वासुकिर्देवता । कूर्मारूढो
 नीलवर्णः पद्महस्तो वासुकिर्बध्नातु वासुकिमण्डलम् । वासुके सपरिवार देवता-

वनहुगोपनिषत्

४४३

प्रत्यधिदेवतासहितं वासुकिमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
 सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्रैः राजचोर-
 सर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों
 आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
 उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के
 च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते
 विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
 ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि विष्णुर्देवता ।
 गरुडारूढः श्यामवर्णः शङ्खचक्राङ्कितहस्तो विष्णुर्बध्नातु विष्णुमण्डलम् ।
 विष्णो सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं विष्णुमण्डलं मम सपरिवारकस्य
 प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य
 महावज्रकवचैरस्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां
 ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
 सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं
 विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरि
 दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
 भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । सिक् च क्षीहितिश्च क्षिहितिश्च ।
 उष्णा च शीता च । उग्रा च भीमा च । सदास्त्री सेदिरनिरा ।
 एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । तामिरभुं गच्छ स्वाहा ।

अष्टापिधाना नकुली दन्तैः परिवृता पविः ।
 सर्वस्यै वाच ईशाना चारु मामिह वादयेत् ॥

ऐं वद वद बान्वादिनि स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रः सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु त्रिशूलको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूत-
प्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी-
वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष
रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रा-
न्याधुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों
हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । लं इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्नस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिश्यग्निः सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु मारीचको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूत-
प्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी-
वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष
रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रा-
न्याधुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों
मां हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्नस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि यमः सपरिवारो
देवता प्रत्यधिदेवता । तदिक्ष्वेकपिङ्गलको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटि-

भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनी
 लाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो
 मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
 चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं
 क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों यां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
 सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
 यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यभि-
 वृत्तो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्नस्य विद्युतः ।
 रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।
 ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिः

सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु सत्यको नाम राक्षसः ।
 तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी
 याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य ।
 सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-
 सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों
 आं ह्रीं क्रों सां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
 उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दु-
 र्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्नस्य विद्युतः ।
 रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि वरुणः सपरि-
 वारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु यत्सलो नाम राक्षसः ।
 तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी
 याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य ।

सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः
 राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं ह्रीं
 व्हूं फ्रों आं ह्रीं क्रों वां हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण
 श्रुषी हवमथा च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा बन्धमानस्तदा
 शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः
 प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव
 ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि वायुः सपरिवारो देवता
 प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु प्रलम्बको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-
 पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी
 वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
 अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं
 नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं ह्रीं व्हूं फ्रों आं ह्रीं क्रों वां हुं
 फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
 बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
 अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
 सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यां दिशि कुबेरः सपरिवारो देवता
 प्रत्यधिदेवता । तदिक्ष्वश्वालको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाच-
 ब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनीवेताल
 कामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
 अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं

नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं क्रों आं ह्रीं क्रों सां हुं फट्
स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्ध-
नान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं
कर्म्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु
ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानः सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णुमत्तको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाच-
ब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनीवेताल
कामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याधु-
पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं क्रों आं ह्रीं क्रों ॐ हुं
फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं
जिन्वमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसदृधे रक्षिता पायुरदब्धः
स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव
ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तद्विष्वाकाशवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-
पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी -
वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याधु-
पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं क्रों आं ह्रीं क्रों ॐ हुं

फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां
महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमस्येति
रेभन् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव
ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि वायुकिः सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु पातालवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-
पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी -
वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्यु-
पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों लां हुं
फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु संप्रेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः संप्रेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो
अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि विष्णुः
सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु भीमको नाम राक्षसः ।
तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी
याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-
सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों
आं ह्रीं क्रों ॐ हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा
निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ कालि हुं कालि मं कालि पुलकिते
पुलकिते उच्चाटन्युच्चाटनि ॐ कालि भवानि राजपुरुषस्त्रीपुरुषवशद्वारि
स्वाहा । ॐ नमो भगवति इन्द्राक्षि मम शत्रुप्राणिनां रक्तपायिनि हां ग्रस
ग्रस । गृह गृह । दुष्टग्रहज्वालामालिनि मोहिनि स्तम्भय स्तम्भय । सर्व-
दुष्टप्रदुष्टान् शोषय शोषय । मारय मारय । मम शत्रूणां शिरोलुण्ठनं कुरु
कुरु । ठः ठः ठः स्वाहा । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । उच्चा मदन
स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्विवः । अव ब्रह्म द्विषो जहि । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशि ॐ नमो भगवति इन्द्राणि
वज्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष
रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं
वो विश्वतस्पारि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिशि ॐ नमो भगवति
आग्नेयि ज्वालाहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो

४५०

शाक्त-उपनिषदः

मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । वर्षन्तु
ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो
जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि ॐ नमो भगवति यायि
कालदण्डहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय
सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ।
वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो
जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि ॐ नमो भगवति
निर्ऋति खड्गहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि ॐ नमो भगवति
वारुणि पाशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।

इमं मे वरुण श्रुषी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि
ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह
बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि ॐ नमो भगवति वायवि
ध्वजहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष
रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव
वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यां दिशि ॐ नमो भगवति कौबेरि
गदाङ्कुशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । सोमो
धेनुं सोमो अर्बन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं समेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशि ॐ नमो भगवति ईशानि
त्रिशूलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह गृह । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं

जगतस्तस्थुवस्यति धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसाध-
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ॐ नमो भगवति
ब्रह्माणि सुकृशुवकमण्डल्वक्षसूत्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय
बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं शटि स्वाहा ।
त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय
मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां सहिषो मृगाणाम् ।
इयेनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि ॐ नमो भगवति पाताल-
वासिनि विषगलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं शटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः
सर्पेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि ॐ नमो
भगवति महालक्ष्मि पद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं
बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं
शटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव

बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति कौमारि शक्तिहस्तेन
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो विश्वत-
स्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति वाराहि
असिहस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं
वूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । वर्षन्तु ते
विभावरी दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति सिद्धचामुण्डेश्वरि
शङ्खचक्रहस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निवूतो
अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति गणेश्वरि परशुहस्तेन
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि

पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा
निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति क्षेत्रपालिनि विषज्वाला-
हस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि
ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह
बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अभ्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय
नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति नारसिंहि
दशननखाग्रैः सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव
वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरी
दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति बगळामुखि
ब्रह्मास्त्रेण सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृ-
तात् । सोमो वेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं त्रिदध्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरी

दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णेश्वरि कनकदर्वि-
हस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं
जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा
वेदसामसद्बुधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतौघात्

सुतदुहितृकळत्रोपद्रवैर्व्याप्यमानम् ।

विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं

सकलभुवनमातस्त्राहि मां त्वं नमस्ते ॥

ॐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै नमः । ॐ नमो भगवति पद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं श्रुति स्वाहा ।

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरी

दासीभूतसमस्तदेववनितां लोकैकदीपाङ्कुराम् ।

श्रीमत्कामकटाक्षलब्धविभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां

तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनीं सरसिजां वन्दे मुकुन्दप्रियाम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीं सिद्धलक्ष्म्यै स्वाहा । सुवर्णं धर्मं परिवेद
वेनम् । इन्द्रस्यात्मानं दशधा चरन्तं स्वाहा । ॐ नमो भगवत्यै सर्वतो
भूर्भुवः स्वरोमिति दिव्यन्वः । ॐ ह्रीं दुर्गे स्वाहा ।

वन्दे रुद्रप्रियां नित्यमुत्पन्नां कामरूपिणीम् ।

उत्कामुर्खी रुद्रजटी नागपुष्पशिरोरुहाय ॥

ॐ महिषमर्दिनि स्वाहा । ॐ ह्रीं दुं हुं फद् स्वाहा । प्रयोग-
वीजानि । ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लौं ॐ ह्रीं क्रीं गं ॐ नमो भगवते
महागणपतये स्मरणमात्रसन्तुष्टाय सर्वविद्याप्रकाशकाय सर्वकामप्रदाय
मन्त्रबन्धविमोचनाय ह्रीं सर्वभूतबन्धनाय क्रीं साध्याकर्षणाय ह्रीं जगत्त्रय-
वशीकरणाय सौः सर्वमनःक्षोभणाय श्रीं महासंपत्प्रदाय क्लौं भूमण्डलाधिपत्य-
प्रदाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दात्मने गौरीनन्दनाय महायोगिने शिवप्रियाय
सर्वानन्दवर्धनाय सर्वविद्याप्रकाशनप्रदाय द्रां चिरंजीविने क्लं संमोहनाय
ॐ मोक्षप्रदाय । फद् वशीकुरु वशीकुरु । वौषडाकर्षणाय हुं विद्वेषणाय
विद्वेषय विद्वेषय । फद् उच्चाटयोच्चाटय । ठः ठः स्तम्भय स्तम्भय । खें खें
मारय मारय । शोषय शोषय । परमन्त्रयन्त्रतन्त्राणि छेदय छेदय । दुष्ट-
ग्रहाक्षिवारय निवारय । दुःखं हर हर । व्याधिं नाशय नाशय । नमः संप-
न्नाय संपन्नाय स्वाहा । सर्वपल्लवस्वरूपाय महाविद्याय गं गणपतये स्वाहा ।

यन्मन्त्रेक्षितलाञ्छिताममनघं मृत्युश्च वज्राक्षिणो

भूतप्रेतपिशाचकाः प्रति हता निर्घातपातादिव ।

उत्पन्नं च समस्तदुःखदुरितं पुष्पाटनोत्पादकं

वन्देऽभीष्टगणाधिपं भयहरं विघ्नौघनाशं परम् ॥

ॐ गं गणपतये नमः । ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं स्वाहा ।

ईकारप्रथमाक्षरश्च वदने द्रां द्रीं कुचावेष्टिते

ह्रीं नाभिस्थमनङ्गराजसदने क्लंकारमूलद्वये ।

सः पादेऽपि च पञ्चबाणसदने बन्धूकपुण्यद्युतिं

ध्यायेन्नमनिवर्तिनेन पुलको गङ्गाप्रवाहो द्रवः ॥

ॐ नमो भगवते कामदेवाय द्रां द्रां द्रावणवाणाय द्रीं द्रीं सन्दी-
पनवाणाय ह्रीं ह्रीं संमोहनवाणाय व्लं व्लं सन्तापनवाणाय सः सः
वशीकरणवाणाय ह्रीं ह्रीं मदनावेशवाणाय सकलजनचिन्तितं द्रावय द्रावय ।
कम्पय कम्पय । हुं फट् स्वाहा । ॐ ह्रीं नमो भगवते कामदेवाय श्रीं
सर्वजनमियाय सर्वसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हन हन वद वद
तप तप संमोहय संमोहय सर्वजनं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रीं
श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो विष्णवे । ॐ
नमो नारायणाय । ॐ नमो जय जय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।
सहस्रारज्वालावर्त ह्रीं हन हन हुं फट् स्वाहा । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ श्रीनारायणस्य चरणौ
क्षरणं प्रपद्ये । श्रीमते नारायणाय नमः ।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हुं हुं फट् कनकवज्रवैद्यमुक्तालङ्कृतभूषणे एषोहि
आगच्छागच्छ मम कर्णे प्रविश्य प्रविश्य भूतभावेष्वद्वर्तमानकालज्ञानदूर-
दृष्टिदूरस्थश्रवणं ब्रूहि ब्रूहि । अग्निस्तम्भनं शत्रुमुखस्तम्भनं शत्रुबुद्धिस्तम्भनं
शत्रुगतिस्तम्भनं परेषां गतिमतिवाग्निह्वास्तम्भनं कुरु कुरु । शत्रुकार्यं हन
हन । मम कार्यं साधय साधय । शत्रूणामुद्योगविन्वंसनं कुरु कुरु ।
वीरचामुण्डि असिकण्टकधारिणि नगरपुरीपट्टणराजधानीसंमोहिनि असाध्य-
साधनि ॐ ह्रीं श्रीं देवि हन हन हुं फट् स्वाहा । ॐ अमरदुर्गे
ॐ आं ह्रां सौं ऐं ह्रीं हुं सौः ग्लौं श्रीं क्रौं एषोहि अमराम्ब सकल-
जगन्मोहिनि सकलाण्डजपिण्डजान् आमय आमय । राजप्रजावशह्वरि
संमोहय संमोहय । महामाये अष्टादशपीठरूपिणि अमलवरयूं स्फुर स्फुर ।

प्रस्फुर प्रस्फुर । कोटिसूर्यप्रभाभासुरे चन्द्रजटे मां रक्ष रक्ष । मम शत्रून्
भस्मीकुरु भस्मीकुरु । विश्वमोहिनि हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।

शिरो रक्षतु वाराही चैन्द्री रक्षेद्भुजद्वयम् ।

चामुण्डा हृदयं रक्षेत् कुक्षिं रक्षतु वारुणी ॥

वैष्णवी पादमाश्रित्य पृष्ठदेशे धनुर्धरा ।

यथा ग्रामे तथा क्षेत्रे रक्षेन्मां च पदे पदे ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे
सिद्धिचामुण्डे क्षेत्रपालिके नारसिंहि महालक्ष्मि सर्वतो दुर्गे हुं फट् स्वाहा ।

भगवन् सर्वविजय सहस्रारापराजित ।

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि श्रीकरं श्रीसुदर्शनम् ॥

अरुणी वारुणी रक्षेत् सर्वग्रहनिवारणी ।

सर्वदारिद्र्यशमनी सर्वराजवशङ्करी ॥

सर्वकर्मकारिणि ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः
स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रौं ।

फट् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाभिसमप्रभे ।

हन शत्रूँक्षिशूलेन कुद्धास्ये पिव शोणितम् ॥

देवि देवि महादेवि ह्रीं मम शत्रून् विनाशय विनाशय । अहं
न जाने न च पार्वतीशः । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ततो महाविद्या
सिध्यति । अशिक्षिताय नोपयच्छेत् ।

एकविंशतिवाराणि परिजप्य शुचिर्भवेत् ।
 पत्रं पुष्पं फलं दद्यात् स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
 अवश्यं वशमित्याहुरात्मना च परेण वा ॥
 महाविद्यावतां पुंसां मनःक्षोभं करोति यः ।
 सप्तरात्रौ व्यतीतायां स च शत्रुर्विनिश्चयति ॥
 कुबेरं ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दमावह ।
 ज्वरं मृत्युभयं घोरं द्विषं नाशय नाशय ॥

ॐ नमो भगवतेऽमृतवर्षाय रुद्राय हृदयेऽमृताभिवर्षणाय । मम
 ज्वरदाहशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ हौं जूं सः मां पालय पालय सः
 जूं हौं ॐ । ॐ नमो भगवते । भो भोः सुदर्शन दुष्टं दारय दारय । दुरितं
 हन हन । पापं मथ मथ । आरोग्यं कुरु कुरु । द्विषन्तं हन हन । ठः ठः
 सहस्रार हुं फट् । भस्मायुधाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो
 ज्वरः प्रचोदयात् ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।

चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति लिखित्वा यस्तु पश्यति ॥

यस्ते मन्योरिति च चतुर्दशर्चस्य सूक्तस्य रुद्रो दुर्वासास्तपनपुत्रो
 मन्युर्देवता । अपनिलयन्तामिति बीजम् । संसृष्टमिति शक्तिः । शत्रुं
 क्षपयेति कीलकम् । मम शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः । अथ ध्यानम्—

दंष्ट्राकरालवदनं ज्वालामालाशिरोरुहम् ।

कपालकर्तिकाहस्तं रुद्रं मन्युं नमाम्यहम् ॥

यस्ते मन्योऽविधद्वज्रं सायकं सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।

साक्षाम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
 मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥
 अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
 अभिग्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्त्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥
 त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्मामो अभिमातिषाहः ।
 विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥
 अग्नागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविस्स्य प्रचेतः ।
 तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्वलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥
 अयं ते अस्म्युप मेघर्बाह् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
 मन्यो वज्रिन्नमि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूनुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥
 अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽघा वृत्राणि जह्वनाह भूरि ।
 जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥
 त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो घृषिता मरुत्वः ।
 तिमेषव आयुधा संशिक्षाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥
 अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एषि ।
 हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुवस्व ॥
 सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
 उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ १० ॥
 एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशं विशं युधये सं शिक्षाषि ।
 अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥ ११ ॥
 विजेषकृदिन्द्र इवानवव्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
 प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्वा तमुत्तं यत आ वमूध ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
 क्रत्वा नो मन्यो सह मेघेधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ १३ ॥
 संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
 भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्ताम् ॥

हुं फट् ।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
 स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽप्यग्निः ॥
 तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
 दुर्गो देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ २ ॥
 अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
 पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥ ३ ॥
 विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदस्सिन्धुं न नावा दुरिताऽतिपिषि ।
 अग्ने अत्रिवन्मनसा गृणानोऽस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥ ४ ॥
 पृतनाजितं सहमानमग्निसुग्रं हुवेव परमात् सधस्थात् ।
 स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामहेवो अति दुरिताऽप्यग्निः ॥
 प्रत्नोषि कम्पीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
 स्वां चाग्ने तनुवं पिप्रियस्वास्मभ्यं च सौमगमा यजस्व ॥ ६ ॥
 गोभिर्जुष्टमयुजो निषिक्तं तवेन्द्र विष्णोरनु सं चरेम ।
 नाकस्य पृष्ठमग्नि सं वसानो वैष्णवीं लोक इह मादयन्ताम् ॥

भास्कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोद-
 यात् । दृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् ।
 सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ।

श्रीं श्रीं सोऽहमर्कमहमहं ज्योतिरहं शिवः ।

आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसोऽहमोम् ॥

आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् ।

नामषट्कं स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

कात्यायनाय विद्महे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् ।

ॐ नमो भगवति माहेश्वरि ह्रीं श्रीं क्लीं कल्पलते ममाभीष्टफलं देहि ।

प्रतिकूलं मे नश्यतु । अनुकूलं मे अस्तु । महादेव्यै च विद्महे विष्णु-

पत्न्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । ॐ व्लूं ह्रीं श्रीं क्लीं

ब्रह्मेशानि मां रक्ष रक्ष ।

पञ्चम्यां च नवम्यां च पञ्चदश्यां विशेषतः ।

पठित्वा तु महाविद्यां श्रीकामः सर्वदा पठेत् ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षो नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

श्रीर्मे भजतु । अलक्ष्मीर्मे नश्यतु ।

यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव ।

तां ब्रह्मणे च निर्णुमः प्रत्यकर्तारमृच्छतु ॥

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमानं वि तज्जहि ॥

क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्तुरेव गृहान् प्रति ।

नाशयास्य पशूंश्चैव वीरांश्चास्य निवर्हय ॥

ॐ स्वाहा । यदुदितं भगवति तत्सर्वं शमय शमय स्वाहा । ॐ

गायत्र्यै स्वाहा । ॐ सावित्र्यै स्वाहा । ॐ सरस्वत्यै स्वाहा । ॐ

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु

रुद्ररूपेभ्यः । तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः

प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः षण्मुखः
 प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ।
 वेदात्मनाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।
 नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
 वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात् ।
 भास्कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोदयात् ।
 वैश्वानराय विद्महे लालीलाय धीमहि । तन्नो अग्निः प्रचोदयात् ।
 कात्यायनाय विद्महे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् ।
 सदाशिवाय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः साम्बः प्रचोदयात् ।
 क्षेत्रपालाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो भैरवः प्रचोदयात् ।
 रघुवंश्याय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् ।
 कुलकुमार्यै विद्महे कौलदेवाय धीमहि । तन्नः कौलः प्रचोदयात् ।
 कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि । तन्नोऽघोरः प्रचोदयात् । ॐ ऐं
 ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै च धीमहि । तन्नो अर्धनारीश्वरः
 प्रचोदयात् । एं वागीश्वर्यै च विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै च धीमहि । तन्नः क्लीं
 प्रचोदयात् । ऐं त्रिपुरादेव्यै च विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै च धीमहि । सौः
 तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् । हंसहंसाय विद्महे सोऽहं हंसाय धीमहि । तन्नो
 हंसः प्रचोदयात् । यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि । तन्नो
 यन्त्रः प्रचोदयात् । तन्त्रराजाय विद्महे महातन्त्राय धीमहि । तन्नस्तन्त्रः
 प्रचोदयात् । मन्त्रराजाय विद्महे महामन्त्राय धीमहि । तन्नो मन्त्रः
 प्रचोदयात् ।

यत् इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मघवञ्छधि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृषो जहि ॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्बृहदा विमृषो वशी ।
 वृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा अभयंकरः ॥
 सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा ।
 सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्ननाशिनी ॥
 काण्डात्काण्डात्परोहन्ती परुषः परुषः परि ।
 एवा नो दूर्वं प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥
 या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ।
 तस्यास्ते देवीष्टके विषेम हविषा वयम् ॥
 अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्वरा ।
 शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे ॥
 ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
 ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः ॥

ॐ ह्रीं फट् स्वाहा । खण्फण्मसि । ब्रह्मणा त्वा श्रुतामि । ब्रह्मणस्त्वा
 श्रुपथेन श्रुतामि । घोरेण त्वा मृगूणां चक्षुषा प्रेक्षे । रौद्रेण त्वाग्निर्सां मनसा
 ध्यायामि । अधस्य त्वा धारया विध्यामि । अधरो मत्पद्मस्वासौ । उत्तुद
 शिमिजावरि । तल्पेजे तल्प उत्तुद । गिरीं रनु प्रवेशय । मरीचिरूपं संनुद ।
 यावदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः । तावदितोऽमुं नाशय । योऽस्मान् द्वेष्टि ।
 यं च वयं द्विष्मः । खट् फट् जहि । छिन्धी भिन्धी हन्धी कट् । इति
 वाचः क्रूराणि । नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । द्विषन्तं मेऽभिराय । तं
 मृत्यो मृत्यवे नय । संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
 भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्तां हुं फट् । ॐ ह्रीं
 कृष्णवाससे नारसिंहवदने महाभैरवि विद्युज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे
 क्ष्मीं क्ष्मौ ज्वल ज्वल । ॐ नमो नारायणाय । घृणिः सूर्य आदित्यौ सहस्रा

हुं फट् । इष्टं रक्ष रक्ष । अरिष्टं भञ्जय भञ्जय स्वाहा । ब्रह्मा नारदाय नारदो
 बृहत्सेनाय बृहत्सेनो बृहस्पतये बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो भारद्वाजाय भारद्वाजो
 जीवितुकामेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् क्षीं स्वाहा । नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये
 नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहते
 करोमि । ॐ नमो भगवते श्रीं श्रीमन्महागरुडाग्रामृतकलशोद्भवाय वज्रनखाय
 वज्रतुण्डवज्रपक्षालङ्कृताय एषेहि महागरुड हुं फट् स्वाहा । ॐ ह्रीं
 हुं सर्पोल्लककाकपोतवृश्चिकदंष्ट्राभिर्विशं नो भयं भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षस-
 सकलकिंत्विषादिमहारोगविषं निर्विषं कुरु कुरु स्वाहा । विन्ध्यस्योत्तरे
 तीरे मारीचो नाम राक्षसः । तत्र मूत्रपुरीषाभ्यां हुताशनं शमय शमय
 स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रौं एषेहि दत्तात्रेयाय स्वाहा । महाविद्यां ज्ञातवतो
 योऽस्मान् द्वेष्टि योऽरिः स्मरति यावदेकविंशतिं कृत्वा तावदधिकं नाशय ।

ब्रह्मविद्यामिमां दिव्यां नित्यं सेवेत यः सुधीः ।

ऐहिकामुष्मिकं सौख्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

अनवद्यां महाविद्यां यो दूषयति मानवः ।

सोऽवश्यं नाशमाप्नोति षण्मासाभ्यन्तरेण वै ॥

अग्रतः पृष्ठतः पार्श्व ऊर्ध्वतो रक्ष सर्वतः ।

चन्द्रघण्टाविरूपाक्षि त्वां भजे जगदीश्वरीम् ॥

एवं विद्यां महाविद्यां त्रिसन्ध्यं स्तौति मानवः ।

दृष्ट्वा दुष्टजनाः सर्वे तस्य मोहवशं गताः ॥

तामभिवर्णो तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।

दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥

मातर्मे मधुकैटभन्नि महिषप्राणापहारोद्यमे

हेलानिर्मितधूम्रलोचनवधे हे चण्डमुण्डादिनि ।

निश्शेषीकृतरक्तबीजदनुजे नित्ये निशुम्भापहे
शुम्भध्वंसिनि कालि सर्वदुरितं दुर्गे नमस्ते हर ॥

कालदण्डां करालास्यां रक्तलोचनमीषणाम् ।

कालदण्डपरं मृत्युं विजयां बन्धयाम्यहम् ॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णं मृत्योश्च मुखमण्डलम् ।

तस्माद्रक्ष महाविद्ये भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥

अव ब्रह्म द्विषो जहि ।

वारिजलोचनसहाये वारिगतिं वारयासुकरनिकरैः ।

पीडितमत्र भ्रान्तं मामनिशं पालय त्वमनवद्ये ॥

अव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धलक्ष्मि स्वाहा । ॐ
क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ आवहन्ती वितन्वाना । कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासांसि
मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । तनो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः
सह स्वाहा ।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।

श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फद् स्वाहा । सह
नाववतु । सह नौ मुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा
विद्विषावहै ।

देहमध्यगतो बहिर्बहिमध्यगता शुतिः ।

शुतिमध्यगता दीप्तिर्दीप्तिमध्यगतः शशी ॥

शशिमध्यगतं देव्याश्चक्रं परमशोभनम् ।

तन्मध्ये च गतो बिन्दुर्बिन्दुमध्यगतं मनः ॥

इयामोपनिषत्

१६७

मनोमध्यगतो नादो नादमध्यगताः कलाः ।
 कलामध्यगतो जीवो जीवमध्यगता परा ।
 जीवः परः परो जीवः सर्वं ब्रक्षेति भावयेत् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इत्यार्यवर्णरहस्ये नन्दुगोपनिषत् समाप्ता

इयामोपनिषत्

ॐ क्रीं अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमामोति शुभगां शुभषातु-
 कामरेफेन्द्रिरासमष्टिरुपिणीमेतत्त्रिगुणमादौ तदनु कूर्चबीजद्वयं व्योम-
 षष्ठस्वरविन्दुमेलनरूपं तदनु भुवनेशीद्वयं भवतु व्योमज्वलनेन्द्रिराशून्य-
 मेलनरूपं ततो दक्षिणे कालिके चेत्यपि ततो मुखबीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानु-
 जायामुच्चेत् । अयं स मन्त्रोत्तमः । य इमां सकृज्जपन् स तु देवेश्वरः ।
 स तु विश्वेश्वरः । स तु नारीश्वरः । स तु सर्वगुरुः । स तु सर्वनमस्यः ।
 स तु सर्ववेदैरधीतो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स स्वयं सदा-
 शिवः । त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं पुनश्चैव त्रिकोणं साष्टपत्रं सकेसरं
 भूपुरैकेण संयुतं तस्मिन्देवीं हृल्लेखामङ्गे विन्यस्य ध्यायेत् । अभिनवजलद-
 नीला कुटिलदंष्ट्रावराभयखड्गमुण्डसहितहस्ता कालिका ध्येया । काली
 कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी विप्रचित्तेति बहिः षट्कोणगाः ।
 उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता नीला घना वलाका मात्रा मुद्रा अमितेति नवकोणगाः ।
 ब्राह्मी नारायणी माहेश्वरी चामुण्डा वाराही नारसिंही कौमारी चापरा-

जितेत्यष्टपत्रगाः । चतुष्कोणेषु चत्वारो माधवरुद्रविनायकसौराः । विष्णु
विकपालाः । देवीं सर्वाङ्गेणादौ संपूज्य भगोदकेन तर्पणं पञ्चमकारेण
पूजनमेतस्याः । एवं द्वित्रिक्रमेण कुर्वाणा मुनयो भवन्ति । नारिमित्रादि-
लक्षणमस्यवर्तते । अमुष्या मन्त्रपाठकस्य गतिरस्ति । नान्यस्येह गतिरस्ति ।
एतस्यास्तारामनोर्दुर्गामनोत्सुन्दरीमनोर्वा सिद्धिरिदानीम् । सर्वाः सुप्ता
भूताः । असिताङ्गी जागर्ति । इमामसिताङ्ग्युपनिषदं योऽधीते अपुत्री पुत्री
भवति । योऽन्यस्य वरदो दृष्ट्या जगन्मोहयेत् । गङ्गादितीर्थक्षेत्राणामग्निष्टो-
मादियज्ञानां फलभागीयते ।

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे श्यामोपनिषत् समाप्ता

श्रीचक्रोपनिषत्

ॐ अथाह वै श्रीचक्रे नित्याक्रान्ते ।

गौरीर्मियाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥

इति प्रत्यहं ससङ्गति सहस्रं कलशान् स्थाप्य शतं वा नव वा
सर्वाभावे पूर्णाभिषेकं चरेत् । अष्टाष्टकं चरेत् । पञ्चपञ्चकं वा चरेत् । सर्वाभावे
शतं पूजयेत् । अमृतत्वं गच्छति । श्रीचक्रन्यासं चरेत् । स व्यापकत्वं गच्छति ।
मूलाधाराद्विलान्तं क्रमेण न्यसेत् । स्वराट्चक्रं विराट्चक्रं सम्राट्चक्रं
विराज्यचक्रं विश्वरूपचक्रं शत्रुजिह्वचक्रं क्रमेण सप्तकलामयं न्यसेत् । स
शिवो भवेत् । स कविर्भवेत् । स सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । स नवनाथाधिष्ठितो

अवेत् । स भुवनाराधितो अवेत् । निर्विकल्पेन मनसा यश्चरेच्छक्तिदेहे स
कालीरूपो अवेत् । विना शक्तिं न मोक्षो न ज्ञानं न सत्त्वं न
धर्मो न तपो न हरिर्न हरो न विरिञ्चिः । सर्वं शक्तियुक्तं अवेत् । तत्संयो-
गात् सिद्धीश्वरो अवेत् । इति शिवम् ॥

प्रत्यायवणे सौभाग्यकाण्डे श्रीचक्रोपनिषत् समाप्ता

श्रीविद्यातारकोपनिषत्



सं नो मित्रः सं वरुणः—इति शान्तिः

प्रथमः पादः

अथैनमगस्त्यः पप्रच्छ हयग्रीवं किं तारकं किं तरति । स होवाच
हयग्रीवः । तारदीर्घानुलम्बिपूर्वकं प्रथमं खण्डं ततो द्वितीयं खण्डं ततस्तृतीयं
खण्डं ततश्चतुर्थं खण्डं ब्रह्मात्मसच्चिदानन्दात्मकमन्त्रमित्युपासितव्यम् । अकारः
प्रथमकूटाक्षरो भवति । उकारो द्वितीयकूटाक्षरो भवति । मकारस्तृतीय-
कूटाक्षरो भवति । अर्धमातृका चतुर्थकूटाक्षरो भवति । बिन्दुः पञ्चम-
कूटाक्षरो भवति । नादः षष्ठकूटाक्षरो भवति । तारकत्वाचारको भवति ।
तदेव मन्त्रतारकं भवति । तदेव मन्त्रतारकब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवोपासित-
व्यम् । गर्भजन्ममरणसंसारमहद्भयाच्चं तारयति । तारकमित्येतत्तारकं ब्राह्मणो
नित्यं महीयते । स पाप्मानं तरति । स मृत्युं तरति । स ब्रह्महत्यां तरति ।
स भ्रूणहत्यां तरति । स वीरहत्यां तरति । स सर्वं तरति । स संसारं तरति ।
सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति ।

शाक्त-उपनिषदः

अकाराक्षरसंभूता वाम्भवा विश्वमाविता ।
 उकाराक्षरसंभूता तेजसः कामराजका ॥
 प्राज्ञो मकारसंभूता तार्तीया च तृतीयका ।
 अर्धमात्रा षोडशी च ब्रह्मानन्दैकविग्रहा ॥
 तस्याः साभिध्यवशतो जगदानन्ददायिनी ।
 उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
 त्रिकूटा भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसङ्गता ।
 प्रकृतिः प्रणवत्वाच्च सा त्रिकूटत्रयात्मिका ॥

एवं यच्चान्यत् त्रिकालातीतम् । चतुष्कूटालिकैव सर्वकूटालिका-
 ब्रह्ममयी । तुर्यात्मब्रह्मा सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जगतः स्थानं न बहिःप्रज्ञं
 नोभयतःप्रज्ञं सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः । स्थूलभुवैश्वानरात्मिकां काम-
 पीठालयां मित्रेशनाथात्मिकां जाग्रदृशाधिष्ठायिनीमिच्छाशक्त्यात्मिकां कामे-
 श्वरीं प्रथमकूटां मन्यन्ते ।

इति प्रथमः पादः

द्वितीयः पादः

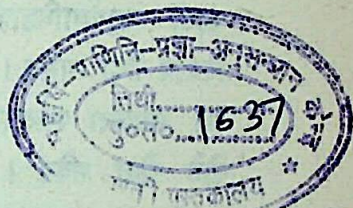
स्वप्नस्थानेऽनन्तः संज्ञासप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविभक्तोऽभूत् ।
 तैजसात्मिकां जालन्धरपीठालयां षष्ठीशनाथात्मिकां वज्रेश्वरीं विष्ण्वात्मिकां
 कियारूपां स्वप्नावस्थानस्थितिरूपां मिच्छाशक्तिस्वरूपिणीं द्वितीयकूटां मन्यन्ते ।

इति द्वितीयः पादः

तृतीयः पादः

यत्र सुप्तो न कश्चन कामं कामयते तत्सुषुप्तम् । पश्यन्ति यत् सुषु-
 स्थितान् एकीभूतप्रज्ञानघन एवानन्देऽभूत् । इच्छाशक्तिरूपां स्वप्नावस्थान-
 सुषुप्तिदशाधिष्ठायिनीं सानन्दकलां तृतीयकूटां मन्यन्ते ।

इति तृतीयः पादः



चतुर्थः पादः

एषा सर्वेश्वर्येषा सर्वोत्तमैवान्तर्याम्येषा योनिः सर्वेषां प्रमवाप्ययौ हि
 भूतानाम् । नोभयतः प्रज्ञां प्रज्ञानघनां न प्रज्ञां नाप्रज्ञामदृष्टामव्यवहार्याम-
 प्राणामलक्षणामचिन्त्यामव्यपदेश्यामेकात्मप्रत्ययसारां प्रपञ्चोपशमनीं शान्तां
 शिवामद्वैतां षोडशाक्षरीं स्फुरचादृशाधिष्ठायिनीं चतुर्थखण्डात्मिकां मन्यन्ते ।
 सात्मा विज्ञेया । सदोज्ज्वलाविद्या । तत्कार्यहीना स्वात्मबन्धहरा सर्वदा-
 द्वैतानन्दरूपा सर्वाधिष्ठानसन्मात्रा निरस्ताविद्यातमोमोहाहमेवेति संभाव्या-
 हर्मो तत्सद्यत् परं ब्रह्म चतुष्कूटा परं ज्योतिस्साहमोमित्यात्मानमादाय मनसा
 चतुष्कूटामेककार्यो तदा चतुष्कूटाहमिति तत्पराः प्रवदन्ति । येन ते
 संसारिण आत्मना विरागा एव । न संसारिणः । य एवं वेद स मुक्तो
 भवति स मुक्तो भवति इत्यगस्त्यः । इत्युपनिषत् ।

इति चतुर्थः पादः

इति श्रीविद्यातारकोपनिषत् समाप्ता

षोडोपनिषत्

अथाह वै इमं शवः शानं शयनं शवानां शयनं इमंशानं तदधिष्ठानो
 महाकालस्तत्पर्यङ्कसमासीनां विश्वव्यापकरूपिणीं कालीं कालादिसंज्ञासात्
 कालीं चतुर्युगाधिष्ठात्रीं स्वस्मिन् भाव्य षोढां न्यसेत् । स्थानशुद्धिन्यासं
 विधाय षोढां न्यसेत् । अथ षोढान्यासी षट्कालित्वं गच्छति । सेयं षट्कला
 परा परात्परा परात्परातीता चित्परा चित्परात्परा चित्परात्परातीता । षण्णां
 योगे षोढा भवेत् । वैष्णवकलायुक्तां मातृकायुक्तां वैष्णवीं न्यसेदिति
 प्रथमः । स परारूपो भवेत् । स भूमिं जयति । स शक्तिरूपो भवेत् ।
 अथ वै कामकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितां कामकलां विस्थाने
 न्यसेत् । द्वितीयारूपो भवेत् । सोऽमृतत्वं गच्छति । स जलं रतीति
 वै यज्ञे गीर्णं भवति । आदिकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितामादिकलां
 मातृस्थाने न्यसेत् । स सिद्धीश्वरो भवेत् । स वह्निं जयति । दिवारात्रि-
 व्यापी भवेत् । कूर्चं चन्द्रं कूर्चं चन्द्रमन्तर्दृष्टिमहीपनमन्तं राज्ञीपुटितमेतेन
 पुटितां राज्ञीं न्यसेत् । स खेचरो भवेत् । स वायुपुरगामी भवेत् ।
 स कलावान् भवेत् । चतुर्थीरूपो भवेत् । अनुलोमदिलोमेन मूलमन्त्रं
 केवलं न्यसेत् । विद्यान्यासरूपो भवेत् । सर्वं जयति । स पञ्चमीरूपो
 भवेत् । स चाकाशं जयति । अष्टोत्तरशतानुलोमविलोमाकृतिक्रमेण देवतां
 व्यापयेत् । स ध्वनिरूपो भवेत् । सर्वं जयति । सर्वं जरति । महापात-
 कोपपातकानि तरति । वयःस्थैर्यकरो भवेत् । अष्टसिद्धिदाता भवेत् ।
 तद्दर्शनेन देवत्वं भवेत् । षष्ठीकलावान् भवेत् । विश्वरूपो भवेत् । यं
 पश्यति तं शिवं कुरुते । नमस्कारान्मूर्तिस्फोटो भवेत् । स गारूपनाशको
 भवेत् । स महेन्द्रजालदर्शको भवेत् । तद्दर्शनात् सिद्धीश्वरो भवेत् । पुटिति

सुमुख्युपनिषत्

४७३

छिन्नाकल्पामुग्रायामङ्गबोढां न्यसेत् । तत्स्पशादष्टलोहस्पशो भवेत् ।
शक्तिकुण्डे जिह्वां नाडीं वा न्यस्य यो जपेत् स कालीरूपो भवेत् ।
इति शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे षोडोपनिषत् समाप्ता

सुमुख्युपनिषत्

अथैनामावाहयाम्यनवबां शवाधिरूढां रक्तवस्त्रालङ्कारयुक्तां रक्त-
पी. ष्ठां गुञ्जाहारविभूषितहृदयां षोडशसमासमाकारां युवतीं पीनोन्नत-
घनस्तनीं स्वहृदये चिन्तयित्वोच्छिष्टपदमाभाष्य चण्डालिनीमभिमतं
सुमुखीं तदन्ते देवीं चोक्त्वा महापिशाचिनीं तस्माद्वरामभिमायां बिन्दु-
मौलिनीं समुच्चार्य ठान्तत्रयं सविसर्गं समुद्धृत्य देवीं हृदये विभाव्य ईङ्गार-
स्वरूपं सविन्दुमुखं युष्मस्तनपदान्तं भावयित्वा यन्तं योनिं तदुपरि
शिववक्तयोनिमष्टपत्रं षोडशाब्जकं वृत्तमेकं चतुरश्रं यन्तराजं विचिन्त्यादौ
देवीमावाह्य बिन्दौ गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपान् संस्कृतान्नं नानाविधं निवेद्याद्यं
फलं मीनाद्यन्नं मूलेन मूलां सन्तर्प्य संस्कृतां पुरस्कृतां योनिं देवतायै निवेद-
येत् । सुकृती चतुरश्रान् देवानिन्द्राभियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशानान्
वामावर्तेन संपूज्य षोडशाब्जके कलावती कपालिनी कल्याणी नित्या कमला
क्रिया कृपा आकुला कुलीना कुमारी कुण्डला आकरा किशोरी कोमला कल्या
कुमुदा एताः पूजयेत् । अष्टाब्जे ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही
इन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीः । ततो योनिपञ्चके चन्द्रा चन्द्रानना चारुमुखी
चामीकरप्रभा चतुरा । ततो योनौ वामा ज्येष्ठा रौद्री । तदन्ते रतिप्रीति-

मनोभवाः पूज्याः । प्रान्ते पूजां सन्तर्प्य पुनर्नैवेद्यं बहुगुणं निवेष्टारान्निकं
निवेद्य परां पूजयन् महाछत्रचामरादिसर्वदेवैर्नमस्कृतामाद्यशक्तिमष्ट-
जातीयां स्वयं भूत्वा कुलाकुलामृतैर्देवीं सन्तर्प्य स्वहृदये तां परां
विस्तृज्य सुखेनैव शिवशक्त्यात्मको भावयन् विहरेत् । स सिद्धीश्वरो
भवेत् । स सर्वेश्वरो भवेत् । स लोकाध्यक्षो भवेत् । भवो भूत्वा विभावयति ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे सुमुख्युपनिषत् समाप्ता

हंसषोढोपनिषत्

अथाह वै हंसषोढान्यासी शिवो भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
एतत्फलं वक्तुं सदाशिवोऽपि न समर्थः । षोढान्यासस्य विरूपाक्षमहाकाल
ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । काली देवता । कालीदेहार्थे विनियोगः । हंसेनाङ्ग-
षट्कम् । स निर्वाणरूपो भवेत् । हंसः कं खं गं घं ङं महामुण्डमालाधारिणि
महाकालप्रिये मां रक्ष रक्ष । षट्चक्रवासिनि वागीश्वरि^० जिह्वाग्रे वस । हं
नमः शिरसि प्रोतं वेद शिवो भवेत् । हंसः चं छं जं झं ञं महात्रि-
पुरभैरवि पुस्तकाक्षमालाधारिणि शत्रुमुखस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहेति महा-
पद्मे । हंसः टं ठं डं ढं णं डां डीं डं डाकिनि मां रक्ष रक्ष स्वाहेत्य-
नाहने न्यसेत् । तृतीयारूपो भवेत् । हंसः तं थं दं धं नं महामारि मार-
हारिणि हुं हुं दारिद्र्यं हर हर स्वाहा । गुं न्यसेत् । स ब्रह्मकालीत्वं गच्छति ।
चतुर्थत्वं गच्छति । हंसः पं फं बं भं मं मार्जारि वीरावलि ममालस्यं
नाशय नाशय । हंसः यं रं लं वं शं षं सं हं लम्बोदरि मातर्महामङ्गलप्रिये

हंसषोढोपनिषत्

४७६

मम जाड्यं छेदय छेदय । अंश अंश । भगवति मां रक्ष रक्ष । सुव-
 धारिणि मां धारय धारय । स्वाहापदद्वयं न्यस्य शिवो भवेत् ।
 अथ वै षष्ठीं न्यसेत् । हंसः लं क्षं महालक्ष्मि राजराजेश्वरि महा-
 कालप्रिये कालखण्डिनि खण्डिनि खण्डय खण्डय खां स्त्रीं खूं सैं खों खौं
 खः खनित्रि समे स्वाहेति सर्वाङ्गे न्यसेत् । हंसः पञ्चाशत् व्यापकं कुर्यात् ।
 इति षष्ठी । स शिवो भवेत् । स सोमयाजी भवेत् । स विरक्तो भवेत् ।
 स सर्वदीक्षितो भवेत् । सोऽमृतत्वं गच्छति । स सर्वकालत्वं गच्छति । स
 सर्वन्यासकारी भवेत् । अनधीतगतिर्विद्यां लभेत् । कर्तव्याकरणादिकर्ता
 भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । कालीरूपो भवेत् । सोऽहं हंस इत्याह
 भगवान् सदाशिव इति प्रोतं वेद ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे हंसषोढोपनिषत् समाप्ता





उपनिषत्सङ्ग्रहः

इस संग्रह में १८८ उपनिषद् समाविष्ट हैं जिन्हें दो भागों में रखा गया है। प्रथम भाग में ईश आदि १२० उपनिषद् हैं। द्वितीय भाग में योग आदि ६८ उपनिषद् हैं।

प्रथम भाग के उपनिषदों का मुख्य विषय 'ब्रह्म-विद्या' है। इस भाग में वे सभी उपनिषद् सम्मिलित हैं जिन पर श्री शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है।

द्वितीय भाग के उपनिषदों का पांच खंडों में विभाजन हुआ है: (१) योग, (२) आदित्य, (३) वैष्णव, (४) शैव, और (५) शाक्त। ये सभी उपनिषद् दर्शन-शास्त्र के स्रोत माने जाते हैं।

आरम्भ में विषयानुक्रमणी और लघु भूमिका भी दी गई हैं।

१५० (सजिल्द)
१२० (अजिल्द)